भारतीय अर्थव्यवस्था

भारतीय अर्थव्यवस्था

लेखक
रुद्र दत्त
भूतपूर्व प्रिंसिपल, स्कूल ऑफ कारेसपोंडेस कोर्सेस,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
एवं
के. पी. एम. सुन्दरम
भूतपूर्व प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग
श्रीराम कॉलेज ऑफ कॉमर्स, दिल्ली

1998
एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि.
रामनगर, नई दिल्ली–110055

उनतीसवें संस्करण की भूमिका

हम उन विद्यार्थियों एव प्राध्यापकों के प्रति आभार प्रकट करते हैं जिन्होंने हमारी पुस्तक के लिए सुझाव भेजे। इससे पुस्तक का उनतीसवा सस्करण प्रस्तुत करने का अवसर मिला।

श्री पी वी नरसिह राव के नेतृत्व में कांग्रेस सरकार द्वारा आर्थिक सुधारो को प्रक्रिया आरभ किए सात वर्ष पूरे हो गए हैं। चाहे सात वर्षों की अवधि को लम्बा काल नहीं समझा जा सकता जिसके पश्चात् आर्थिक सुधारों के प्रभाव को आका जाना चाहिए, किन्तु यह इतना छोटा भी नहीं कि इसका मूल्याकन ही न किया जाए। इस कारण अर्थव्यवस्था पर आर्थिक सुधारों के प्रभाव की समीक्षा का प्रयास किया गया है। 1991 में नई औद्योगिक नीति की घोषणा की गयी और सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित बहुत से क्षेत्र निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए गए। ऐसे नियम एव विनिमय जो निगम क्षेत्र के स्वतत्र विकास मे रुकावट थे, या तो ढीले कर दिए गए या हटा दिए गए। इस प्रकार अफसरशाही नियन्त्रण के कारण बहुत सी अनावश्यक अडचनो को समाप्त कर उदारीकरण की प्रक्रिया मजबूत बनायी गयी। सरकार ने आवश्यकता से अधिक झुककर विदेशी पूजी को आकर्षित करने के लिए बहुत सी रियायतों की घोषणा की। चाहे अनौपचारिक नीति के आधीन केवल उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों और उच्च तकनालाजी वाले क्षेत्रो अर्थात्, पावर, टेली सचार, पैट्रोलियम परिष्करण, आदि मे विदेशी पूजी के प्रवेश की इजाजत दी गयी किन्तु व्यवहार में विदेशी पूजी सभी उद्योगों में घुसनी शुरू हो गयी और इसका कार्यक्षेत्र उच्च तकनालाजी एव सामरिक महत्त्व के उद्योगों से लेकर विलासी उपभोग वस्तुओ तक फैलने लगा। कांग्रेस और सयुक्त मोर्चा दोनो की सरकारो ने इस नीति का अनुसरण किया।

1998 के आम चुनाव के पश्चात् भारतीय जनता पार्टी और उसके सहयोगी दलो ने सत्ता सभालने के पश्चात् शासन के लिए राष्ट्राय एजेडा को अन्तिम रूप दिया। राष्ट्रीय एजेंडा का बुनियादी तौर पर बल स्वदेशी पर था परन्तु यहा यह बात स्पष्ट करनी होगी कि स्वदेशी का अर्थ अलगाववाद नहीं। स्वदेशी का अर्थ भारत को मजबूत और आत्मनिर्भर बनाना है ताकि हम विश्व से प्रतियोगिता कर सके। राष्ट्रीय एजेडा में आर्थिक नीति के विस्तृत ढाचे का जिक्र करते हुए यह उल्लेख किया गया "हम सकल देशीय उत्पाद की वृद्धि दर को 7 8 प्रतिशत करेंगे और राजकोषीय एव राजस्व घाटे को नियंत्रित करेगे। हम वे सभी कदम उठाएंगे जिनसे राष्ट्रीय हितो के अनुकूल नीतियों एव प्रोग्रामों के कार्यान्वयन को त्वरित किया जा सके। हम समग्र राष्ट्रीय विकास के प्रयासों को एक मानवीय चेहरा प्रदान करेंगे ताकि हम अपने गरीबी की समाप्ति के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। इसके लिए हमारा नारा है--बेरोजगारी हटाओ।" राष्टीय एजेंडा मे इसके अतिरिक्त यह उल्लेख किया गया " रोजगार विहीन विकास की वर्तमान प्रवृत्ति के विरुद्ध, हमारी सरकार विकास का मूल्याकन लाभकारी रोजगार के जनन के रूप मे करेगी। हमारे नये विनियोग और सस्थानात्मक बल के केन्द्र होंगे--कृषि स्वरोजगार, अनिगमीय क्षेत्र, आधार सरचना विकास और गृह निर्माण जो सभी स्तरों पर भारी रोजगार कायम करने के उपकरण के रूप म कार्य करेगे।" विदेशी विनियोग बनाम देशीय उद्योगों के हितो के प्रश्न पर राष्ट्रीय एजेडा में उल्लेख किया गया "हम विश्वाकरण के प्रभावो का बडो सावधानी से विश्लेषण करेंगे, इसके कार्यान्वयन के लिए अपनी राष्टीय परिस्थितियो ओर आवश्यकताओ के अनुसार एक समय सारिणी तय करेंगे ताकि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था क्षति ग्रस्त होने की अपेक्षा और मजबूत हो ओर देशाय औद्योगिक आधार और वित्तीय एव सेवा क्षेत्रो को बढावा मिले।" भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाला सरकार ने सुधारो के सुधार की प्रक्रिया चालू की है ताकि स्वदेशी और विदेशी हितों में सन्तुलन स्थापित किया जा सके। मूल धारणा यह है कि विदेशी विनियोग केवल अनुपूरक कार्यभाग ही अदा कर सकता है ओर विकास का मुख्य भार तो स्वय भारताय अर्थव्यवस्था को ही सहन करना पडेगा। दूसरे शब्दों मे भारत का विकास भारतीयों द्वारा ही होगा। जाहिर हे कि हम पुन विकास के नेहरूवादी सिद्धान्त पर पहुच गए हैं जिसमे विदेशी पूजी के प्रयोग पर बल दिया गया परन्तु इसम स्वामित्व ओर प्रबन्ध दोनो ही भारतीय हाथो मे रखने की आवश्यकता को रेखांकित किया गया। आज के विश्वाकरण के सदभ मे यह कठिन तो मालूम होता हे परन्तु असभव नहीं।

1997 98 के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था में कुछ असतोषजनक प्रवृत्तिया अनुभव की गयीं। समग्र आर्थिक वृद्धि दर

कम होकर 1997 98 मे 5 प्रतिशत हो गयी कृषि वृद्धि दर नकारात्मक थी खाद्यान्न उत्पादन पिछले वर्ष की तुलना मे 1990 लाख टन से गिरकर 1940 लाख टन हो गया औद्योगिक वृद्धि दर ढीली होकर 4 2 प्रतिशत हो गयी निर्यात निष्पादन लगातार दूसरे वर्ष भी कमजोर रहा और डालरो के रूप मे केवल 1 4 प्रतिशत की वृद्धि दिखा पाया। आयात मे 4 1 प्रतिशत की वृद्धि हुई जिसके परिणामस्वरूप व्यापार शेष का घाटा बढकर 6 793 अरब यू एस डालर के रिकार्ड स्तर पर पहुच गया। राजकोषीय घाटे की स्थिति और अधिक बिगड गयी और यह सकल देशीय उत्पाद के 6 1 प्रतिशत के स्तर पर पहुच गया। पूजी बाजार भी शोचनीय स्थिति मे फसा रहा और आधार सरचना कठिनाइयो के कारण अर्थव्यवस्था के विकास पर दुष्प्रभाव पडा। अत बुनियादी समस्या अर्थव्यवस्था को मन्द विकास दर के जाल मे ग्रस्त हो गयी है पुन पटरी पर लाना है।

भारत द्वारा मई 11 और 13 1998 को नाभिकीय विस्फोट करने के कारण सयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार ने प्रतिबन्ध लगा दिए जिसके परिणामस्वरूप सयुक्त राज्य अमेरिका और जापान से प्राप्त होने वाले विदेशी विनियोग के बारे मे अनिश्चितता का वातावरण कायम हो गया। इससे विकास की समस्या और भी गभीर हो गयी। चाहे वित्त मत्री यशवन्त सिन्हा ने अपने 1 जून 1998 के बजट भाषण मे प्रतिबन्धो के प्रभाव को वस्तुत एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा नहीं समझा परन्तु प्रतिबन्धो के प्रभाव की उपेक्षा करना अपनी आखे वास्तविकता के प्रति मूद लेना है। सरकार द्वारा प्रतिबन्धो के प्रभाव का निराकरण करने के लिए एक आकस्मिकता योजना तैयार करनी चाहिए।

चाहे भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाली सरकार केवल तीन महीने से ही सत्ता मे रही है परन्तु यह सयुक्त मोर्चा सरकार द्वारा विरासत मे दी गयी समस्याओ का समाधान करने का भरसक प्रयास कर रही है। परन्तु यह बात तो समय ही बताएगा कि क्या यह विकास का एक नया मार्ग बनाने मे सफल हुई है या नहीं। इन सब बदलती हुई परिस्थितियो और हाल ही मे नीतियो मे किए गए परिवर्तनो और देश के सामने उभरते हुए खतरो का उल्लेख पुस्तक मे उचित स्थान पर किया गया है।

नये अध्याय जो जोडे गए हैं —

शासन के लिए राष्ट्रीय एजेंडा

नौवीं पचवर्षीय योजना (1997-2002)

नये प्रभाग जो जोडे गए हैं —

भारतीय जनसंख्या प्रक्षेपण—(1996-2016)

बचत दर, वृद्धि-दर और वर्धमान पूंजी-उत्पाद अनुपात मे सम्बन्ध

नौवीं योजना और निर्धनता प्रक्षेपण

नौवीं योजना मे रोजगार नीति

हम श्रीमती राजदत्त के अत्यन्त आभारी हैं जिन्होंने पुस्तक के कार्य मे अनथक सहयोग दिया।

अध्यापको एव विद्यार्थियो से हमारी प्रार्थना है कि पुस्तक के बारे में अपने विचार एव आलोचनाए हमे भेजे ताकि इसे और सुधारा जा सके।

हम श्री राजेन्द्र गुप्त प्रबन्ध निदेशक एस चन्द एण्ड कम्पनी के आभारी हैं जिन्होंने पुस्तक के प्रकाशन मे विशेष ध्यान दिया। हमारे धन्यवाद के पात्र श्री रवीन्द्र गुप्त निदेशक राजेन्द्र रवीन्द्र प्रिंटर्स भी हैं जिनके अनथक प्रयास के परिणामस्वरूप यह संस्करण रिकार्ड समय मे पूरा किया गया।

जुलाई 1998

रुद्र दत्त
के पी एम सुन्दरम

प्रथम संस्करण की भूमिका

भारत एक विकासमान अर्थव्यवस्था है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था आर्थिक पिछडेपन तथा निर्धनता के दुश्चक्र मे फसी हुई थी। आयोजन के प्रभावाधीन भारतीय अर्थव्यवस्था धीरे धीरे द्रुत आर्थिक विकास और आय के उच्चस्तर की प्राप्ति के लिए अग्रसर हो रही है। हमारे देश की मुख्य आर्थिक समस्याए या तो आर्थिक विकास से सम्बन्धित हैं या प्रत्यक्षत इससे उत्पन्न होती हैं। इसलिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि विश्वविद्यालय में पढने वाले विद्यार्थियो को इन समस्याओ से परिचित कराया जाए।

भारतीय अर्थव्यवस्था के अध्यापक काफी समय से एक ऐसी पुस्तक की आवश्यकता महसूस कर रहे थे जो विकास की समस्याओ पर अधिक बल दे और जो भारतीय अर्थव्यवस्था का एक नवीन ढग से अध्ययन करे। हमारी पुस्तक इस कमी को पूरा करने की ओर एक प्रयास है। हमने भारतीय अर्थव्यवस्था के अध्ययन सम्बन्धी पारम्परिक पद्धति का त्याग कर विकास प्रधान अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

पुस्तक के छ भाग हैं। भाग 1 मे भारतीय अर्थव्यवस्था की सरचना का विश्लेषण किया गया है। अल्पविकास सन्तुलन का विद्यमान होना भारतीय अर्थव्यवस्था के मूल लक्षण, राष्टीय आय और उसके सगठन, राष्टीय आय का वितरण एव उपभोग ढाचा, आर्थिक विकास के सदर्भ मे मानवीय एव प्राकृतिक स्रोतो का अध्ययन और पूजी निर्माण की समस्या इस भाग के मुख्य अग हैं। भारतीय अर्थव्यवस्था के चित्र को और परिपूर्ण करने के लिए दो अन्य अध्याय आर्थिक विकास के समाजशास्त्री तत्व और भारत की आर्थिक सक्रान्ति दिए गए हैं। इनका उद्देश्य पिछले 200 वर्षों मे भारत मे चलाई गई आर्थिक नीतियो का सक्षिप्त विवेचन करना है।

भाग 2 आयोजन की समस्याओ से सम्बन्धित हैं। आयोजन की विचारभूमि और दार्शनिक आधार, औद्योगिक नीति और भारतीय अर्थव्यवस्था मे बढती हुई राजकीय क्षेत्र, जो भारतीय अर्थव्यवस्था का मूलाधार है इस प्रभाग के पहले तीन अध्यायों मे दिए गए हैं। इसके पश्चात् आयोजन के पन्द्रह वर्षों, चौथी योजना के निर्माण मे विचाराधीन कारणतत्व और योजनाओ के वित्त प्रबन्ध के ढाचे का अध्ययन किया गया है। इसके अतिरिक्त, भारत जैसी विकासमान अर्थव्यवस्था मे विदेशी सहायता का कार्यभाग कीमत नीति का महत्त्व और विपण्य-अतिरेक को विकसित व गतिमान करने की समस्याओ का सविस्तार विवेचन किया गया है। इस प्रभाग मे हमारा उद्देश्य भारतीय आयोजन की समस्याओ को व्यापक रूप मे प्रस्तुत करना और आयोजन के अनुभव से उपलब्ध शिक्षाओ का उल्लेख करना है ताकि हमे उन केन्द्रीय नियत्रणो का ज्ञान प्राप्त हो सके जिनके द्वारा आर्थिक नीतियो को अभीष्ट दिशाओं मे चलाया जा सकता है।

समष्टि स्तर पर भारतीय अर्थव्यवस्था के इस सर्वेक्षण के पश्चात् भाग 3 4 और 6 मे कृषि क्षेत्र औद्योगिक क्षेत्र और ततीयक क्षेत्र का अध्ययन किया गया है। भाग 5 भारतीय श्रम सम्बन्धी समस्याओं से सम्बन्धित है।

इस पुस्तक की तैयारी मे हमने अद्यतन सूचना प्राप्त करने की चेष्टा की है। इसके लिए सरकारी प्रकाशनो, प्रकाशित एव अप्रकाशित लेखों, पुस्तको एवं रिपोर्टों का प्रयोग किया है। हम अपने उन सभी मित्रों के आभारी हैं जिन्होंने पुस्तक के निमाण मे अपने अमूल्य सुझाव दिए। विशेष रूप से हम श्री ओमप्रकाश कोहली देशबन्धु कालेज, दिल्ली के प्रति आभार प्रदर्शित करते हैं जिन्होंने पुस्तक की भाषा सुधारने मे योगदान दिया।

पारिभाषिक शब्दो के लिए हमने डा रघुवीर के प्रसिद्ध तथा महान् अंग्रेजी हिन्दी कोष, डा हरदेव बाहरी के अंग्रेजी हिन्दी कोष तथा भारत सरकार के पारिभाषिक शब्द सग्रह की सहायता ली है। इन कृतियो के लेखको के भी हम कृतज्ञ हैं।

अध्यापको एव विद्यार्थियो से हम प्रार्थना करते हैं कि यदि उन्हें कुछ त्रुटिया दृष्टिगत हो, तो कपया हमे सूचित करे। पुस्तक की विषय सामग्री को और उन्नत ढग से प्रस्तुत करने के लिए हम अपने पाठको के सुझावो का स्वागत करगे।

दिल्ली
1 अगस्त, 1966

रुद्र दत्त
के पी एम सुन्दरम

विषय-सूची

भाग 2 : भारतीय अर्थव्यवस्था के क्षेत्रीय पहलू

1

आर्थिक संवृद्धि एवं विकास
(ECONOMIC GROWTH AND DEVELOPMENT)

1 आर्थिक सवृद्धि एव आर्थिक विकास (Economic Growth And Economic Development)

आर्थिक सवृद्धि (Economic Growth) से हमारा अभिप्राय राष्ट्रीय आय के विस्तार से है। अत आर्थिक सवृद्धि में केवल इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि क्या किसी कालावधि मे इससे पहले के काल की तुलना मे मात्रा की दृष्टि से अधिक उत्पादन हो रहा है या नहीं। दूसरे शब्दो में आर्थिक सवृद्धि एक परिमाणात्मक सकल्पना (Quantitative concept) है। इसके विरुद्ध आर्थिक विकास अपेक्षाकृत अधिक व्यापक धारणा है। आर्थिक विकास का क्षेत्र आर्थिक सवृद्धि से कहीं अधिक है। चाहे कई अर्थशास्त्री आर्थिक सवृद्धि और आर्थिक विकास को एक दूसरे के पर्यायवाची के रूप मे इस्तेमाल करते रहे हैं परन्तु हाल ही के आर्थिक साहित्य में इन दोनों धारणाओ के बारे मे स्पष्टीकरण हुआ है। चार्ल्स किडलबर्गर (Charles P Kindleberger) ने इस सम्बन्ध मे उल्लेख किया है **आर्थिक सवृद्धि का अर्थ अधिक उत्पादन से है जबकि आर्थिक विकास से अभिप्राय अधिक उत्पादन के अतिरिक्त तकनीकी एव सस्थानात्मक व्यवस्था (Institutional arrangement) मे हुए परिवर्तनों से भी है *जिनके कारण यह उत्पाद (Output) निर्मित* एव वितरित किया जाता है।"** आर्थिक सवृद्धि मे न केवल अधिक मात्रा मे आदानो (Inputs) के कारण अधिक उत्पादन को शामिल किया जाता है बल्कि इसमे प्रति इकाई आदान के बदले अधिक उत्पादन का समावेश भी है *अर्थात् आर्थिक* सवृद्धि की धारणा मे उत्पादन मे समय के साथ होने वाली अधिक कार्यकुशलता को शामिल किया जाता है। विकास की धारणा इससे कहीं विस्तृत है। इसमे उत्पादन की सरचना (Composition) में होने वाले परिवर्तनों और क्षेत्रानुसार आदानो के आबटन (Allocation of inputs by sectors) में परिवर्तन को भी शामिल किया जाता है। अत आर्थिक विकास के बिना आर्थिक सवृद्धि तो सम्भव है परन्तु आर्थिक सवृद्धि के बिना आर्थिक विकास सम्भव नहीं क्योंकि तकनीकी एव सस्थानात्मक व्यवस्था मे परिवर्तन का उद्देश्य राष्ट्रीय आय से प्राप्त वृद्धि को विभिन्न क्षेत्रों और जनसख्या के विभिन्न वर्गों में सापेक्षत अधिक न्यायोचित रूप मे बाटना है। जब तक कोई अर्थव्यवस्था अपनी निर्वाह आवश्यकताओ से अधिक पैदा नहीं करती तब तक वह देश की जनसख्या के जीवन स्तर को उन्नत करने और उसे अधिक न्यायपूर्ण वितरण उपलब्ध कराने में सफल नहीं हो सकती जिससे कि जनसामान्य की वास्तविक आय मे वृद्धि हो सके।

आर्थिक विकास की धारणा की व्याख्या किसी समाज मे विभिन्न नीति उद्देश्यो के रूप मे ही करनी सम्भव है। अत इस धारणा का आधार समाज द्वारा स्वीकृत वे मूल्य (Values) हैं जिनके आधार पर समाज के निर्माण का सकल्प किया गया हो। इस दृष्टि से आर्थिक विकास गुणात्मक रूप में आर्थिक सवृद्धि से भिन्न है। आर्थिक विकास को जिस परिभाषा को सबसे अधिक स्वीकृति प्राप्त हो सकती है वह प्रोफेसर जी एम मेयर के अनुसार इस प्रकार है

"आर्थिक विकास की परिभाषा एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में की जा सकती है जिसके परिणामस्वरूप कोई देश एक लम्बी कालावधि मे *अपनी वास्तविक प्रति* व्यक्ति आय मे वृद्धि करता है बशर्ते कि 'परम निर्धनता रेखा' (Absolute poverty line) के नीचे रहने वाली जनसख्या मे वृद्धि न हो और आय का वितरण और अधिक असमान न हो जाए।"

इस परिभाषा से आर्थिक विकास के बारे मे जो बाते सुव्यक्त होती हैं वे ये हैं

1 आर्थिक विकास एक प्रक्रिया (Process) है—इस बात पर बल देना आवश्यक है कि आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमे कुछ शक्तियाँ जो एक दूसरे से सम्बन्धित हैं कारण और कार्य के रूप मे क्रियाशील होती हैं। अत हमे

आर्थिक विकास की परीक्षा एक प्रगतिशील प्रोग्राम के रूप में करनी चाहिए जिसके फलस्वरूप यह किसी देश की जनसख्या, विशेषकर निर्धन जनसख्या के लिए अधिक अर्थपूर्ण सिद्ध हो सके। इस प्रकार आर्थिक विकास की कल्पना विकास की कुछ शर्तों या इसके लक्षणा की सूची के रूप मे न करके एक ऐसी प्रक्रिया के रूप मे करनी होगी जिसमे कारण और परिणाम के आपसी सम्बन्ध स्पष्ट हो सके।

2 निर्धनता दूर करना आर्थिक विकास का प्रधान लक्ष्य—विभिन्न औपनिवेशिक देशा द्वारा बीसवीं शताब्दी मे *स्वाधीनता प्राप्त करने के पश्चात् आर्थिक विकास के आन्दोलन* ने बल पकडा। इन देशो में साम्राज्यवादी शासन के आधीन आर्थिक शोषण की जो प्रक्रिया जारी रही इसके परिणामस्वरूप इन देशों मे अधिकाश जनसख्या निधनता के चगुल मे ग्रस्त रही। अत आर्थिक विकास की मूल प्रेरणा इन राष्ट्रो मे निर्धनता दूर करने के लक्ष्य से उत्पन्न हुई। इसलिए आवश्यक है कि केवल राष्ट्रीय आय मं वृद्धि को लक्ष्य न मानकर प्रति व्यक्ति वास्तविक आय मे वृद्धि को लक्ष्य माना जाये। यदि केवल राष्ट्रीय आय मे वृद्धि को लक्स माना जाता है तो यह सम्भव है कि कुल उत्पादन मे वृद्धि तो हो जाए परन्तु प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि न हो। यदि राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर जनसख्या की वृद्धि दर के बराबर है तो प्रति व्यक्ति आय स्थिर रहेगी। यदि जनसख्या की वृद्धि दर राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर से अधिक है तो प्रति व्यक्ति आय कम हो जाएगी। इन दोनों परिस्थितियो मे या तो जीवन स्तर स्थिर रहगे या गिर जाएँगे। इसे आर्थिक विकास समझना भूल होगी। अत आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय की वृद्धि-दर जनसख्या की वृद्धि-दर से अधिक हो ताकि जनसख्या का जीवन-स्तर उन्नत हो सके। यदि ऐसा होता है तो गरीबी दूर करने की प्रक्रिया चालू हो जाएगी।

3 आर्थिक विकास का अर्थ वास्तविक आय में दीर्घकालीन वृद्धि है—आर्थिक विकास का अर्थ वास्तविक आय में दीर्घकाल में लगातार वृद्धि है न कि अल्पकाल में वृद्धि जो कि सामान्यत व्यापार चक्रो (Business cycles) के तेजी के काल में व्यक्त होती है। *आर्थिक विकास के* मूल मे बात यह है कि राष्ट्रीय एव प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि की प्रवृत्ति कम से-कम दो या तीन दशक तक बनी रहनी चाहिए। तभी यह बात अधिक विश्वास से कही जा सकती है कि आर्थिक विकास प्रोन्त हो रहा है। इस दृष्टि से पचवर्षीय योजना को तो विकास प्रक्रिया (Development process) के मील के पत्थर के रूप मे ही कल्पित करना होगा। जब तक कई पचवर्षीय योजनाओ के परिणामस्वरूप यह प्रवृत्ति टिकाऊ न बन जाए, तब तक यह कहना ठाक न होगा कि आथिक विकास हो रहा है या देश अपना मंजिल की ओर बढ रहा है। इसमें हम दीर्घकाल मे प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की निरन्तर वृद्धि पर बल देना चाहते हैं। *आथिक विकास को प्रारम्भ करने और उसे दीर्घकाल तक* बनाए रखने के कठिन कार्य मे स्पष्ट भेद समझना अनिवार्य है।

4 आर्थिक विकास का उप-लक्ष्य आर्थिक असमानता मे कमी लाना है—आर्थिक विकास के बहुत से विशेषज्ञ अब इस बात पर सहमत हं कि चाहे आथिक विकास का प्रधान लक्ष्य प्रति व्यक्ति आय म वृद्धि है परन्तु इसके साथ एक अनिवार्य उप लक्ष्य के रूप मे आर्थिक असमानता मे कमी करना आवश्यक है। इसके लिए निर्धनता रेखा के नीचे रहने *वाली जनसख्या (Population living below the* poverty line) परम और सापेक्ष रूप मे कम करनी होगी। कई अर्थव्यवस्थाओ मे यह अनुभव किया गया है कि चाहे वास्तविक प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि हुइ परन्तु जनसख्या की वृद्धि और आर्थिक विकास के लाभो के असमान वितरण के कारण निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली जनसख्या की मात्रा मे वृद्धि हुई है। यह परिस्थिति अधिकाश अर्थशास्त्रियो के अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था मे भी बनी रही है।

जहाँ द्वैध अर्थव्यवस्था (Dual economy) विद्यमान होता है वहाँ अर्थव्यवस्था के दो अग होते है—आधुनिक मौद्रिक अर्थव्यवस्था (Modern money economy) और पारम्परिक देशीय अर्थव्यवस्था (Traditional indigenous economy)। इसमे यह बिल्कुल सम्भव हे कि कुल आय मे वृद्धि केवल आधुनिक मौद्रिक अर्थव्यवस्था मे ही व्यक्त हो और प्रति व्यक्ति आय मे भी वृद्धि हो सकती ह चाहे पारम्परिक देशीय अर्थव्यवस्था मे कोई परिवर्तन न हो। अत आर्थिक विकास के एक समन्वित अग के रूप मे आय के वितरण को कसौटी को महत्व देना ही होगा।

5 आर्थिक विकास के कुछ अन्य उप-लक्ष्य है . *उपभोग का न्यूनतम स्तर, बेरोजगारी* को *समाप्त करना,* विभिन्न क्षेत्रो के विकास एव समृद्धि मे भारी अन्तरो को कम करना, अर्थव्यवस्था का विशाखन (Diversification) और आधुनिकीकरण (Modernization) करना। इन सभी उप लक्ष्यो के मूल मे यह बात निहित है कि आर्थिक विकास किसी एक क्षेत्र या कुछ क्षेत्रो या किसी एक वर्ग या कुछ उच्च वर्गों तक ही सीमित न रहे बल्कि इसका प्रभाव व्यापक रूप मे समग्र जनसख्या पर पडे। इस प्रकार आधुनिकीकरण की क्रिया का विस्तार होना चाहिए ताकि पारम्परिक अर्थव्यवस्था को आधुनिक अर्थव्यवस्था में परिवतित किया जा सके।

निष्कर्ष यह कि चाहे यह परम्परा बनी हुई है कि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि को आर्थिक विकास का सर्वोतम उपलब्ध सूचक माना जाता है परन्तु इसे आर्थिक कल्याण या आर्थिक प्रगति का पर्यायवाची समझना उचित नहीं होगा। बहुत से देशों के सन्दर्भ मे यह बात स्पष्ट हो गयी है कि चाहे कुल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product) मे वृद्धि व्यक्त हुई परन्तु इनमे अभी भी निर्धनता रेखा (Poverty line) के नीचे रहने वाली जनसख्या की भारी मात्रा विद्यमान है, इनमें बेरोजगारी बढती जा रही है और आय की असमानताए और उग्र हो गयी हैं। अत विकास-अर्थशास्त्री अब कुल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) की बलिवेदी के ही पुजारी नहीं रहे बल्कि प्रत्यक्ष रूप में विकास प्रक्रिया की गुणवत्ता (Quality) पर अपना ध्यान केन्द्रित करने लगे हैं। पाकिस्तानी अर्थशास्त्री महबूब उल हक ने ठीक ही कहा है "विकास की समस्या की परिभाषा निर्धनता के सबसे बुरे रूप पर चयनात्मक प्रहार के रूप मे की जानी चाहिए। विकास के लक्ष्यो की परिभाषा कुपोषण (Malnutrition) बीमारी निरक्षरता, गरीबी, बेरोजगारी और असमानताओ मे क्रमिक कमी करने और अन्ततोगत्वा इन्हे समाप्त करने के रूप मे की जानी चाहिए। हमे यह पढाया गया है कि हमे अपने कुल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) का ध्यान रखना चाहिए जो स्वय निर्धनता का ध्यान कर लेगा। अब हमे इसे उलट देना चाहिए और हमे निर्धनता को समाप्त करने की ओर ध्यान देना चाहिए और यह प्रक्रिया कुल राष्ट्रीय उत्पाद का ध्यान कर लेगी। दूसरे शब्दो में हमे कुल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) की सरचना का इसकी वृद्धि दर की अपेक्षा अधिक ख्याल रखना होगा।"[1]

2. अल्पविकास के कारण (Causes of Underdevelopment)

अपने राजनीतिक एक आर्थिक विचारो के अनुसार अर्थशास्त्रियों ने अर्थव्यवस्थाओ के पिछडेपन और अल्पविकास के विभिन्न कारणो पर बल दिया है। परन्तु ध्यानपूर्वक विचार करने से यह बात साफ हो जाती है कि निर्धनता के कुछ कारण सभवत गरीबी के परिणाम या चिन्ह हैं।

1 उपनिवेशवाद और आर्थिक पिछड़ापन (Colonialism and economic backwardness)—वामपथी *विचारधारा के अर्थशास्त्रियों का यह प्रबल मत है कि परतत्र देशो मे विकास के अभाव का मूल कारण उपनिवेशवाद है।* इस कथन में काफी सत्य है। इसमे सन्देह नहीं कि साम्राज्यवादी शक्तियो ने, जब तक सभव हो सका परतत्र उपनिवेशो मे औद्योगीकरण की इजाजत नहीं दी। उन्होंने परतत्र देशों मे ऐसे उद्योगो की स्थापना नहीं होने दी जो साम्राज्यवादी देशो मे स्थापित उद्योगो से प्रतिस्पर्द्धा कर सकते थे। अत उपनिवेशवाद को अल्प विकास का एक कारणतत्व अवश्य मानना होगा। परन्तु कुछ ऐसे देश भी हैं जिनमें राष्ट्रवादी सरकारे दीर्घकाल से स्थापित हैं परन्तु वे आर्थिक दृष्टि से समुन्नत नहीं हैं। ऐसे देशो का विद्यमान होना इस बात का प्रमाण है कि उपनिवेशवाद को विभिन्न देशों के अल्पविकास का एकमात्र कारण निश्चित करना सही नहीं है भले यह कुछ देशो मे प्रधान कारण है।

2 प्राकृतिक ससाधन और आर्थिक पिछडापन—कई बार आर्थिक पिछडेपन को प्राकृतिक ससाधनो से सम्बन्धित करने का प्रयास किया जाता है। यह कहा जाता है कि सभी समुन्नत देशो (Advanced countries) के पास प्रचुर मात्रा मे प्राकृतिक ससाधनो का विशाल भण्डार है और इसलिए वह समुन्नत है। परन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका के भी देश प्राकृतिक ससाधनों से सम्पन्न हैं पर ये विकसित देश नहीं बन पाए। इसके विरुद्ध बहुत से पश्चिमी यूरोप के देशो के पास उर्वर भूमि सीमित मात्रा मे है और उनके पास खनिज साधनो के भण्डार भी थोडे ही हैं किन्तु फिर भी वे आर्थिक प्रगति के उच्च स्तर पर पहुँच चुके हैं। अत प्राकृतिक ससाधनो का उपलब्धि आर्थिक विकास की पर्याप्त शर्त नहीं समझी जा सकती। अप्रयुक्त ससाधनो का कोई आर्थिक लाभ नहीं होता जब तक कि उन्हे इस्तेमाल मे न लाया जाए। अत प्राकृतिक ससाधनों की उपलब्धि और आर्थिक विकास मे केवल एक सीमित सम्बन्ध ही जान पडता है।

3 अपर्याप्त पूँजी, आर्थिक पिछड़ेपन का कारण—पूँजी का अभाव किसी भी देश के आर्थिक पिछडेपन का महत्वपूर्ण कारण समझा जाता है। यह कहा जाता है कि अल्पविकसित देश में पूँजी की कमी होती है। यह भी कहा जाता है कि पूँजी वस्तुओ का कुछ सग्रह परम न्यून स्तर पर होता है अर्थात् यह अनिवार्य वस्तुओ के उत्पादन के लिए नाकाफी होता है इसके अतिरिक्त पूँजी वस्तुओ की मात्रा श्रम की दृष्टि से भी बहुत ही कम होती है और परिणामत बडी भारी मात्रा मे अदृश्य बेरोजगारी (Disguised unemployment) पायी जाती है। किन्तु बहुत से अर्थशास्त्री ऊपर दिए गए तर्कों को स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि बहुत से अल्पविकसित देशो मे चाहे यह कहा जाता है कि पूँजी

1 Mahbub-ul Haq Employment and Income Distribution in the 1970 s A New Perpective *Pakistan Economic and Social Review* June December 1971 p 6

कम है परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि इनमे बडी मात्रा में सभाव्य पूँजी (Potential capital) उपलब्ध है। पर इस पूँजी का एक भारी अनुपात अनुत्पादक भूमि मे लगा हुआ है या कम प्राथमिकता वाले मकानो या नकदी एव जवाहरात के रूप मे विनियुक्त है। आर्थिक विकास की दृष्टि से यह एक प्रकार की निष्फल भूमि (Sterilised land) है और इसलिए प्रयोगहीन है। कुछ परिस्थितियो मे राजनीतिक अस्थिरता या करेन्सी के मूल्यह्रास की प्रवृत्ति को देखते हुए इसकी भारी मात्रा विदेशों मे रख ली जाती है। अत यह कहना अनुचित होगा कि अल्पविकसित देशो के पास पर्याप्त पूँजी उपलब्ध नहीं होती। पूँजी तो होती है परन्तु ऐसे रूप मे कि इसका प्रयोग आर्थिक विकास के लिए नहीं हो सकता। वास्तव मे स रा अमेरिका और कई अन्य देशो ने अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओ के विकास के लिए करोडों डालर ऋण एव अनुदान के रूप मे दिए परन्तु वे अब महसूस करने लगे हैं कि विकास के लिए केवल पूजी की उपलब्धि पर्याप्त शर्त नहीं। यदि पूँजी का प्रयोग आर्थिकेतर उद्देश्यो के लिए किया जाए या अच्छी परियोजनाओ की व्यवस्था घटिया ढग से की जाए या इनके कार्यान्वयन मे ढील रहे तो परिणाम सकारात्मक होने की अपेक्षा नकारात्मक हो सकते हैं। यह बात अब सभी स्वीकार करते हैं कि भारी राशियो के प्रभावी व्यय (Effective spending) के लिए अनुभव योग्यता ईमादारी और सगठन की आवश्यकता होती है। इनमे से किसी के अभाव के परिणामस्वरूप इच्छित परिणाम प्राप्त होने कठिन हैं। विकास के लिए किसी देश को कितनी अतिरिक्त पूँजी चाहिए, इसकी जाच इस बात से करनी चाहिए कि कोई देश एक निश्चित अवधि मे कितनी पूँजी का प्रभावी रूप मे प्रयोग कर सकता है न कि इस बात से कि अन्य देश इसे कितनी पूँजी उधार देने के लिए तैयार है।

4 तकनालाजीय पिछडापन और अल्पविकास (**Technological backwardness and underdevelopment**)—तकनालाजीय पिछडापन आर्थिक विकास के अभाव का एक महत्त्वपूर्ण कारणतत्त्व माना जाता है। कृषि एव अन्य उद्योगो मे पिछडी तकनीक का प्रयोग किया जाता है। अत यह कहा जाता है कि पिछडी तकनीक उत्पादन की ऊची लागत के रूप में व्यक्त होती है और उत्पादन मे श्रम के ऊँचे अनुपात या पूँजी के निम्न अनुपात के रूप मे। तकनीकी पिछडेपन के कारण पूँजी एव श्रम दोनो की उत्पादिता (Productivity) निम्न ही रहती है। अल्पविकसित देशो मे अकुशल श्रम प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होता है परन्तु यह सकेत करना आवश्यक है कि तकनीकी पिछडापन आर्थिक पिछडेपन का एकमात्र कारण नहीं यह उसका परिणाम भी है।

5 उद्यम और आर्थिक विकास (Enterprise and economic development)—विकास का अभाव आधुनिक उद्यम के विकसित न होने का परिणाम है। हम जानते है कि उत्पादन की व्यवस्था औद्योगिक इकाइयो का प्रबन्ध नवप्रवर्तन (Innovations) चालू करना और जोखिम सहन करने का दायित्व उद्यमी पर होता है। उद्यमकर्त्ता आर्थिक क्रियाओ के लगातार पुनर्गठन के लिए जिम्मेदार होता है ताकि उत्पादिता और वास्तविक आय की ऊर्ध्वमुखी प्रवृत्ति कायम हो सके। 19वीं शताब्दी के इग्लैण्ड और 19वीं एव 20वीं शताब्दी मे यू एस ए का आर्थिक विकास प्रधानत उद्योग के उन कप्तानो या उद्यमकर्त्ताओ (Entrepreneurs) के कारण हुआ जो किसी ऐसे परिवर्तन को करने के लिए तत्पर थे जो उन्हे अधिक मुनाफा देने वाला हो। किन्तु एक अल्पविकसित देश मे शूम्पीटर (Schumpeter) का प्रारूपिक उद्यमकर्त्ता (*Typical entrepreneur*) एक दुर्लभ बात है। किसी अल्पविकसित देश मे आधुनिक उद्यम का अभाव अनुकूल आर्थिक सामाजिक एव सास्कृतिक वातावरण के अभाव का परिणाम है। उदाहरणार्थ, बहुत से अल्पविकसित देशो मे कोई मजबूत मध्यम वर्ग नहीं है जो समुन्नत देशो की भाँति आर्थिक विकास के लिए आवश्यक नेतृत्व प्रदान कर सके।

किसी अल्पविकसित देश मे थोडी बहुत उद्यमकर्त्ता *योग्यता (Entrepreneurial ability) उपलब्ध भी होती है* वह अर्थव्यवस्था के कुछ ही क्षेत्रो तक सीमित हो जाती है। तृतीयक क्षेत्र (Tertiary sector) विशेषकर व्यापार मे इतनी अधिक उद्यमकर्त्ता योग्यता की आवश्यकता नहा होती और परिणामत अधिकाश देशी उद्यमकर्त्ता इस क्षेत्र को अपनाते चले जाते हैं। इसके अतिरिक्त विदेशी व्यापार की अर्जन *क्षमता (Earning power) और तरलता (Liquidity) बहुत अधिक होती है और यही कारण है कि इन देशो मे बहुत से* सट्टेबाज न कि उद्यमकर्त्ता विदेशी व्यापार मे कूद पडते है। इसके विरुद्ध औद्योगिक उत्पादन करना अपेक्षाकृत अधिक कठिन होता है और इस कारण अधिकाश अल्पविकसित देशो मे यह कार्य सामान्यतया विदेशी उद्यमकर्त्ताओ (विशेषकर आरम्भिक काल मे द्वारा किया जाता है अत बहुत से अर्थशास्त्री इस राय के हैं कि आर्थिक विकास के अभाव का कारण एक ऐसे उद्यमकर्त्ता वर्ग (Entrepreneurial class) का अभाव है जो जोखिम सहने के लिए तैयार हो और नये उद्यम चालू करने का इच्छुक हो।

6 सस्थानात्मक कमजोरियाँ और आर्थिक पिछडापन—आर्थिक पिछडेपन के लिए कुछ सस्थानात्मक कमजोरियो

(Institutional weaknesses) को भी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। यह बात याद रखनी होगी कि पिछली दो शताब्दियो में यूरोप और अमेरिका के आर्थिक विकास का वित्त प्रबन्ध बैंकिग तथा अन्य सस्थानो के विकास द्वारा किया गया। बहुत से अल्पविकसित देशों मे बैंक प्रणाली अभी अल्पविकसित ही है। इनमे बहुत से देशो मे औद्योगिक एव ग्रामीण बैंक नहीं हैं जिन्होंने यूरोपीय आर्थिक विकास मे महत्त्वपूर्ण भाग अदा किया। यह सच है कि कुछ अल्पविकसित देशो में हाल ही के वर्षों मे ये संस्थान स्थापित किए गए हैं और परिणामत विनियोग के लिए राशियो की उनकी माग और पूर्ति में भारी अन्तर है। बैंक व्यवस्था के अतिरिक्त अल्पविकसित देशो मे सामान्यत पूँजी बाजार (Capital market) नहीं है या एक पूर्णतया विकसित पूँजी बाजार नहीं है जहाँ पर हिस्से और स्टाक खरीदे और बेचे जाते हैं। सस्थानात्मक विनियोक्ता (Institutional investors) जैसे बीमा कम्पनियाँ, थोडी हैं और महत्त्वपूर्ण नहीं है। पिछडे हुए देशो मे मौद्रिक एव वित्त प्रणालियो की कमजोरियो के परिणामस्वरूप पूँजी को गतिमान करना और इसका उचित ढग से प्रयोग करना एक कठिन कार्य है।

7 **आर्थिकेतर कारणतत्त्व और आर्थिक पिछड़ापन—** आर्थिक विकास को कुछ आर्थिकेतर कारणतत्त्व (Non economic factors) भी प्रभावित करते हैं। उदाहरणार्थ, आर्थिकेतर कारणतत्त्व उत्पादन के साधनो की गुणवत्ता (Quality) उनके प्रयोग की कुशलता की मात्रा और इनके विभिन्न क्रियाओं मे आबटन (Allocation) को निश्चित करते हैं। कुछ हालात में तो ये कारणतत्त्व आर्थिक विकास को प्रोन्नत करते हे परन्तु ये प्राय गतिरोधक का कार्य करते हैं। उदाहरणार्थ, जाति प्रथा, श्रम की निम्न गतिशीलता व्यावसायिक एव सामाजिक-आर्थिक पिछडेपन के लिए उत्तरदायी है। किसान अपनी जमीन से बधा हुआ है और इसलिए उसकी भौगोलिक गतिशीलता कम हैं। किसी लेखक ने ठीक ही कहा है "परिदृढ वर्ग भेद, ज्ञान का अभाव और सचार के घटिया साधनो के कारण श्रम की समस्तर एव ऊर्ध्व गतिशीलता (Horizontal and vertical mobility) मे बाधा पडती है।" बहुत से अल्पविकसित देशो जैसे भारत मे सामाजिक प्रतिष्ठा और शारीरिक श्रम एक दूसरे के विरोधी माने जाते हैं और इस कारण ऐसे व्यवसाय जिनमे शारीरिक श्रम की आवश्यकता होती हे के प्रति अनिच्छा पायी जाती है। इसके अतिरिक्त सामाजिक प्रतिष्ठा को अधिक महत्त्व देने के कारण व्यय द्वारा आय एव उत्पादन के आकार पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पडता है। उदाहरणार्थ, विदेशो में बनी प्रतिष्ठा वस्तुओ (Prestige goods) की अधिक माग होती है जिसके परिणामस्वरूप लोग देशी वस्तुओ की तुलना में विदेशी वस्तुओ के लिए अधिक मूल्य देने के लिए तैयार हो जाते हैं। इससे देशी वस्तुओ के उत्पादन पर दुष्प्रभाव पडता है।

हमने कई कारणतत्त्वो पर बल दिया है जो कि किसी देश के आर्थिक पिछडेपन के कारण समझे जाते हैं। कुछ अर्थशास्त्री इनमे से किसी एक को प्रधान कारण मानते हैं जबकि अन्य इन सभी को एक साथ कार्यशील समझते हैं। परन्तु राबर्ट गार्नर, जो विश्व बैंक के भूतपूर्व उपप्रधान रहे हैं का विश्वास है कि "आर्थिक विकास या इसका अभाव मुख्यत विभिन्न देशों मे रहने वाले लोगो की अभिवृत्तियो, रिवाजों, परम्पराओ और इनके परिणामस्वरूप उनके राजनीतिक सामाजिक एव धार्मिक सस्थानो मे अन्तर के कारण है।" अत यदि आर्थिक दृष्टि से पिछडे देश वास्तव मे प्रगति करना चाहते हैं तो उन देशो के लोगो को अपने विचारो एव कार्यपद्धति मे परिवर्तन करना होगा। आर्थिक विकास की रफ्तार को निश्चित करने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण कारणतत्त्व है कितनी तेजी से किसी देश के लोग अपने को बदल सकते हैं? जैसा कि गार्नर (Garner) ने उल्लेख किया है "एक बुलडोजर द्वारा बहुत सी वस्तुओ को गति प्रदान की जा सकती है परन्तु विचारो एव आदतो को नहीं।" पुराने एव पारम्परिक जीवन के मूल्यो का परित्याग किए बिना और आधुनिक जीवन पद्धति के लिए आवश्यक अनुशासन को अपनाए बिना, आर्थिक प्रगति करना असम्भव है।

3 आर्थिक विकास की शर्ते
(Conditions of Economic Development)

कोई भी अल्पविकसित देश जो आर्थिक विकास की सीढी पर चढना चाहता हे उसे आर्थिक विकास की कुछ आवश्यकताओ की पूर्ति करनी होगी। प्रोफेसर ल्यूइस यह स्पष्ट करते हैं कि आर्थिक विकास के तीन तात्कालिक कारण हैं अर्थात् बचत का प्रयत्न ज्ञान का सचय तथा इसका प्रयोग और पूँजी का सचय (Accumulation of capital)। उनके अनुसार स्वाभाविक ही है कि अल्पविकसित देश आर्थिक विकास की इन शर्तों को पूरा करने के लिए कुछ प्रयत्न करे। बहुत से प्रसिद्ध लेखकों ने पूँजी निर्माण (Capital formation) को आर्थिक विकास की प्रक्रिया मे केन्द्रीय स्थान दिया है। हम न केवल इन्हीं कारणो पर बल देगे बल्कि कुछ अन्य शर्तो पर भी जिनको अनेक राजनीति तथा अर्थशास्त्र के विद्वानों ने महत्त्व दिया है।

अल्पविकसित देश के लिए, सर्वप्रथम एक राज्य सरकार,

की आवश्यकता होती है जो प्रशासन कार्य समाल सके। *राज्य सरकार का रूप क्या हो—पूँजीवादी या अन्यथा—यह* प्रत्येक देश की स्थिति पर निर्भर होगा। परन्तु राज्य सरकार देश मे कानून और व्यवस्था (Law and Order) स्थापित करने का प्रयत्न करे क्योंकि राजनीतिक जीवन मे स्थायित्व *के बिना निर्विघ्न आर्थिक विकास सम्भव नहीं।* यदि राजकीय नीतियाँ प्राय बदलती रहे तो आर्थिक योजनाएँ गमता प्राप्त नहीं करतीं और निजी विनियोग विफल हो जाता है।

आर्थिक विकास की दूसरी शर्त, **एक ईमानदार तथा प्रभावी लोकशासन का विद्यमान होना है।** इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अधिकाश अल्पविकसित देशों मे रिश्वत, भ्रष्टाचार और बन्धुपोषण के कारण अधिकाश ससाधन जो कि आर्थिक विकास मे जुटाये जा सकते हैं व्यर्थ प्रयुक्त होते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि भ्रष्टचार और रिश्वत केवल अल्पविकसित देशो का ही विशेष लक्षण है परन्तु भ्रष्टाचार समृद्ध समाजो की अपेक्षा निर्धन देशो के लिए *अधिक हानिकारक है। ईमानदारी के अतिरिक्त प्रशासन प्रभावी* भी होना चाहिए। अल्पविकसित देशो मे आर्थिक विकास की एक मुख्य अडचन राजकीय अधिकारियो मे अनुभव की कमी है और प्रशिक्षण तथा योग्यता कम होने के कारण तुरन्त निर्णय न कर सकने की कमी होती है।

ऊपर दी गई आवश्यकताओ को एक शीर्षक के अधीन भी रखा जा सकता है—अर्थात् अच्छा तथा प्रभावी प्रशासन। विनियोग चाहे सार्वजनिक हो या निजी इस पर अकुशल लोक प्रशासन का प्रभाव अवश्य पडता है और इस कारण भी विनियोक्ताओ को कुछ जोखिम तथा अनिश्चितता सहन करनी पडती है। यह कल्पना करना व्यर्थ होगा कि अच्छी *राज्य व्यवस्था के बिना अच्छी विकास योजनाओ* (Development Plans) का निर्माण किया जा सकता है अथवा इन्हें कार्यान्वित किया जा सकता है। इससे भी हानिकारक बात यह है कि न ही तकनीकी सहायता और न ही कुशल तकनीशियनो का लाभ उठाया जा सकता है जब तक कि लोग प्रशासन उनके प्रति उदासीन हो।

शिक्षा आर्थिक विकास की तृतीय शर्त है। जैसा कि *गालब्रेथ (Galbraith) ने अपने लेख मे लिखा है* 'पिछली शताब्दी मे आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति की आवश्यकताओ मे लोक शिक्षा (Public Education) तथा जन ज्ञान वृद्धि *की अपेक्षा किसी और बात को इतना अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान* नहीं दिया गया। लोक शिक्षा कुछ ही लोगो की शक्ति नहीं बढाती बल्कि अनेक व्यक्तियो की शक्ति का विस्तार करती है और इस प्रकार तकनीकी ज्ञान (Technical Knowledge) के द्वार खोल देती है। प्रबुद्ध जनता के बिना जो कि *उद्योगीकृत पश्चिमी देशो की उन्नत तकनीक के प्रयोग मे* रुचि न रखती हो, केवल विदेशी मशीनो के आयात से उद्योगीकरण सम्भव नहीं हो सकेगा। लोक शिक्षा द्वारा मानव की बुद्धि का विकास होता है जो किसी अन्य ढग से नहीं हो *सकता और तब ही लोग नई पद्धतियो तथा नई तकनीक को* अपनाते हैं। जैसा कि गालब्रेथ ने लिखा है 'शिक्षित लोग मशीने प्राप्त करने की आवश्यकता को अच्छी प्रकार समझ लेंगे। क्या मशीने शिक्षित लोगो को प्राप्त करने की आवश्यकता को अनुभव करेगी यह समझ मे नहीं आता।' लोक शिक्षा से लोक जागृति उत्पन्न होती है जिसके कारण जनता का अधिकाश भाग आर्थिक क्रिया मे सक्रिय रूप से कार्य कर सकता है। लोक शिक्षा लोक आकाक्षाओ की पूर्ति के लिए भी प्रभावी महत्त्व रखती है और इस प्रकार यह विकास की इच्छा को प्रोत्साहन देती है।

आर्थिक विकास की चौथी शर्त सामाजिक न्याय (Social Justice) है। *अधिकाश अल्पविकसित देशो मे* सम्पत्ति तथा राजनीतिक सत्ता जनसख्या के बहुत ही छोटे से वर्ग के हाथ मे होती है जबकि अधिकाश जनता को अपनी उन्नति के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं होता। 'कोई भी कृषि *विस्तार विशेषज्ञ इस बात को व्याख्या नहीं कर सकता कि* किसान को जहाँ एक क्विटल गेहूँ पैदा होता है दो क्विटल गेहूँ पैदा करने से क्या लाभ होगा जबकि किसान भली भाँति समझता है कि दोनो क्विन्टल ही निश्चित रूप मे भू स्वामी को अर्पित करने होगे। कृषि विनियोग के सर्वोत्तम ढग तथा कृषि विस्तार की सर्वश्रेष्ठ तकनीक का कोई लाभ नहीं उठाया जा सकता यदि कृषक युगो के अनुभव के आधार पर *यह जानता है कि उन्नति का लाभ किसी प्रकार भी उसे* प्राप्त नहीं होगा।" अत प्रभावी आर्थिक विकास उन परिस्थितियों में सम्भव नहीं हो सकता जब तक कि अधिकाश जनसख्या इनमे भाग न ले। मानव अपनी सर्वोच्च शक्तियो का प्रयोग दूसरो की समृद्धि के लिए कब तक और क्यो कर करेगा। अत सामाजिक न्याय आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारणतत्त्व है। भू सुधार (Land Reforms) तथा *आर्थिक असमानताओ को कम करने के उपाय इस कारण* आर्थिक प्रगति के लिए अनिवार्य होते हैं।

विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था (Developing Economy) की पाचवी शर्त के दो भाग है—**पूँजी और तकनीक (Technology)**। हमने पहले भी पूँजी सचयन (Capital Accumulation) के महान् महत्त्व का वर्णन किया है जो कि अल्पविकसित देशो मे अत्यन्त आवश्यक सीमा कारक

(Limiting Factor) है। कुछ लोगो का कहना है कि यदि आर्थिक विकास के लिए अन्य अनुकूल कारणतत्व अनुपस्थित हों तो ऐसी परिस्थिति मे पूँजी-*निर्माण व्यर्थ ही होगा।* उनके अनुसार, आर्थिक विकास का अर्थ केवल पूँजी की मात्रा को बढावा ही नहीं बल्कि आर्थिक विकास के काल मे नई सामाजिक अभिवृत्तिया (Social Institutions) तथा नए सामाजिक संस्थान (Social Institutions) कायम किए जाना है। किन्तु इग्लैण्ड तथा सयुक्त राज्य अमेरिका जैसे उन्नत देशों का इतिहास यह स्पष्टतया अभिव्यक्त करता है कि यह आवश्यक नहीं है कि विकास के पूर्व ही सामाजिक अभिवृत्तियों में परिवर्तन हो, बल्कि आर्थिक विकास के साथ साथ सामाजिक तथा आर्थिक मूल्यो (Social and Economic Values) सस्थानो तथा अभिवृत्तियो मे भारी परिवर्तन विद्यमान हुए। अत आर्थिक विकास की मूल शर्त यह है कि समाज मे आर्थिक विकास मे रुचि रखने वाला एक वर्ग विद्यमान हो जो मितव्ययी ढग से कार्य करना चाहता हो और जिसमे परिवर्तनो को चालू करने का ज्ञान तथा शक्ति हो। ऐसे उद्यमकर्त्ता वर्ग के विद्यमान होने की स्थिति मे आर्थिक विकास की समस्त क्रिया इस बात पर निर्भर है कि पूँजी निर्माण की दर को किस प्रकार राष्ट्रीय आय के 20 से 25 प्रतिशत स्तर तक बढाया जा सकता है।

पूँजी-वस्तुएँ और उपकरण या तो देश मे ही उत्पन्न किए जा सकते हैं या उनका विदेशो से आयात किया जा सकता है। अल्पविकसित देशो मे उन्हे विदेश से ही मगवाना पडता है। विदेशी पूँजी (Foreign Capital) का आयात तीन प्रकार से किया जा सकता है (क) उसका भुगतान निर्यात द्वारा किया जा सकता है (ख) यह ऋणो के रूप में प्राप्त की जा सकती है और (ग) उसे उन्नत देशों से उपहार के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है। परन्तु द्वितीय और तृतीय उपाय ऐसे है जिनका साधारणतया प्रयोग किया जाता है क्योंकि उन्नत देश कम उन्नत देशो की सहायता के लिए तत्पर होते हैं। भय इस बात का होता है कि जो देश पूँजी वस्तुओ और मशीनरी का आयात करता है इस प्रकार प्राप्त सहायता (ऋण या उपहार के रूप में) का सर्वोत्तम प्रयोग न कर सके बल्कि सम्भवत इसमे से कुछ भाग का व्यर्थ प्रयोग करे। इसके अतिरिक्त भारी मात्रा मे पूँजी प्रयोग करने की योग्यता विकास का ही परिणाम होती है। यदि प्रशिक्षित पढे लिखे तथा स्वतत्र लोगो को पूँजी वस्तुएँ, सचालन शक्ति और परिवहन सुविधाएँ उपलब्ध कराई जायें तो इससे उनकी उत्पादिता (Productivity) बढनी स्वाभाविक है। परन्तु उत्पादिता निश्चित रूप से नहीं बढायी जा सकती यदि पूँजी वस्तुए तथा उपकरण ऐसे लोगो को उपलब्ध कराए जाए जो अज्ञान तथा रूढिवाद मे फसे हुए हैं और जो पिछडी हुई सामाजिक प्रणाली मे जकडे हुए हैं।

पूँजी के अतिरिक्त जिसका एक पिछडा हुआ देश एक उन्नत देश से आयात कर सकता है यह भी अनिवार्य है कि पूर्वोक्त उत्तरोक्त से तकनालाजी (Technology) का आयात करे। परन्तु तकनालाजी का आयात एक जटिल समस्या है। यह आवश्यक है कि अल्पविकसित देश उस तकनीक को अपनाए जो उनके लिए वाछनीय एव सम्भव है न कि उस तकनीक को जो कि उन्नत देशो मे प्रचलित है। उदाहरणार्थ, मक्की के अधिक उत्पादक प्रसकर (High-yielding maize hybrid), चावल बोने का जापानी ढग कृत्रिम खादो के उन्नत प्रयोग इस्पात के उत्पादन की उन्नत प्रक्रिया सभी ऐसे उपाय हैं जिनका सामान्य रूप मे प्रयोग किया जा सकता है। इसके द्वारा सभी प्रकार के ससाधनो का मितव्ययी ढग से प्रयोग होता है और ये उपाय पिछड़े तथा उन्नत देशो के लिए उचित एव आवश्यक समझे जा सकते हैं। परन्तु उन्नत देशों मे अधिकाश तकनीक श्रम-बचाव उपायो (Labour-saving devices) के रूप मे हैं और अधिक उन्नत अर्थव्यवस्थाओ के लिए विशेष रूप मे लाभदायक हैं। रूई चुनने के यत्र, भारी फार्म ट्रैक्टर इस प्रकार की तकनालाजी के उदाहरण हैं। ये व्यक्त करते हैं कि मजदूरो का सभरण (Supply) सयुक्त राज्य अमेरिका मे बहुत कम है। पिछडे हुए देशो को इस तकनीक को अपनाना नहीं चाहिए क्योंकि इसके कारण न केवल ससाधनो का अपव्यय होगा बल्कि इससे बेरोजगारी भी बढेगी।

किसी भी अल्पविकसित देश के विकास की छठी शर्त यह है कि वह **उचित विकास-आयोजन (Development Planning) की व्यवस्था** करे। बाजार प्रक्रिया (Market mechanism) द्वारा बहुत कुछ हो सकता है परन्तु सभी कुछ नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ इसके द्वारा किसी व्यक्ति को अन्तरिक्ष यात्रा के लिए नहीं भेजा जा सकता न ही इसके द्वारा 100 करोड रुपये की लागत का बाध बनाया जा सकता है और न ही इसके द्वारा ऐसी जगहो पर जहाँ पहले इस्पात उद्योग न हो इस्पात उद्योग कायम किया जा सकता है। बाजार-अर्थव्यवस्था (Market economy) ने उन्नत देशो के विकास मे सहायता की है परन्तु इसके द्वारा अल्पविकसित देशो के विकास मे अधिक सहयोग देने की सभावना नहीं क्योंकि इन देशो मे न केवल विकास अनिवार्य है बल्कि यह विकास तेज गति से होना चाहिए। बाजार की शक्तियो पर विश्वास रखना कि वे द्रुत आर्थिक विकास सम्भव कर

सकती हैं एक अनावश्यक तथा परिहार्य जोखिम (Avoidable Risk) उठाना है। अत किसी विकासोन्मुख देश के लिए आयोजन अनिवार्य है कि आयोजन के सिद्धान्तो और व्यवहार मे कोई ऐसा बना बनाया फार्मूला नहीं जो प्रत्येक पिछडे हुए देश पर लागू किया जा सके। वास्तव मे आयोजन को प्रत्येक देश की आर्थिक विकास की व्यवस्था के अनुसार ढालना पडता है। उदाहरणार्थ, विकास की आरम्भिक अवस्थाओं मे योजना-निर्माण आर्थिक आयोजन की समस्या ही नहीं बल्कि इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि मूल प्रशासनिक विभाग विकसित किए जाए, शिक्षा तथा आधारभूत सास्कृतिक ढाचे का निर्माण किया जाए ताकि एक प्रगतिशील एव स्थायी सामाजिक पद्धति का विकास हो सके। जब प्रशासनिक तथा सामाजिक परिवर्तन का कार्य काफी आगे बढ जाता है तब उत्पादन लक्ष्य (Production Target) और विनियोग परिव्यय (Investment Outlay) करना बहुत आसान हो जाता है।

आधुनिक विकास योजना एक विनियोग योजना (Investment Plan) होती है और इसका प्राथमिक उद्देश्य आर्थिक विकास की उचित दर सम्भव करना होता है। ऐसी योजना मे इसके विभिन्न अगो का समन्वय और उन्हे ठीक प्रकार से चलाने की आवश्यकता है और साथ ही विनियोग-ससाधनों (Investment Resources)-आन्तरिक एव बाहरी—की उपलब्धि की व्यवस्था करनी भी आवश्यक है। एक अच्छी योजना मे तीन बाते होनी चाहिए। प्रथम इसमे आर्थिक विकास की रणनीति (Strategy) होनी चाहिए अर्थात् इसमे उन कारणतत्त्वो पर जो अनिवार्य एव अधिक लाभदायक है अधिक बल दिया जाना चाहिए और उन्हे निष्क्रिय कारणतत्त्वो से पृथक करना चाहिए। उदाहरणार्थ कृषि मे बहुत सी चीजे लाभदायक हैं परन्तु कुछ तो अनिवार्य हैं। सिचाई कृत्रिम खादो एव उन्नत बीजो द्वारा कृषि में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया जा सकता है परन्तु अन्य कृषि सेवाओ (Agricultural Services) से सामान्य परिवर्तन ही सम्भव हो सकता है। द्वितीय किसी अच्छी योजना को औद्योगिक उन्नति के दृश्य और अदृश्यो अशो पर बल देना चाहिए। विकास योजना के दृश्यो अशो मे इस्पात कारखानें रेल मार्गों कोयले की खानो, तेल साफ करने के कारखानो आदि की स्थापना शामिल है। विकास आयोजन (Development Planning) के अदृश्य अशो मे कच्चे माल की लागत मे कमी वस्तु के प्रकार मे उन्नति, विस्थापन (Replacement) के लिए पर्याप्त साधन अधिक श्रम और कुशल प्रबन्ध आदि सम्मिलित किए जाते हैं। अल्पविकसित देश की विकास-योजना औद्योगिक उन्नति के दृश्य तथा अदृश्य दोनो अगो मे परिपूर्ण होनी चाहिए। तृतीय आधुनिक विकास आयोजन मे उपभोग का सिद्धान्त (Theory of Consumption) होना अनिवार्य है क्योंकि अन्तिम विश्लेषण मे सभी आयोजन उपभोक्ता के लिए है। अत यह अनिवार्य है कि उपभोक्ताओ की आवश्यकताओ पर उचित रूप से विचार किया जाए और आवश्यक वस्तुए उत्पन्न की जाये। इसके अतिरिक्त सबसे अधिक बल रोटी कपडा और मकान की प्रचुर मात्रा पर तथा कुशलातापूर्वक उत्पादन पर देना चाहिए क्योंकि यही मानव-समाज की सर्वव्यापक आवश्यकताएँ हैं। निष्कर्ष यह है कि अल्पविकसित देश को आर्थिक विकास के लिए सुव्यवस्थित योजना बनानी चाहिए।

अन्तिम निरन्तर प्रगति के लिए अल्पविकसित देश मे पर्याप्त वित्तीय स्थायित्व (Financial Stability) होना चाहिए। बहुत से प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मुद्रास्फीति (Inflation) द्वारा आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने का समर्थन करते हैं। मुद्रा-स्फीति द्वारा आर्थिक क्रिया को त्वरित करने के कुछ लाभ अवश्य हैं परन्तु इसकी हानियाँ बहुत सी हैं। भूतकाल मे मुद्रा स्फीति द्वारा बहुत-सी राज्य सरकारो को आपत्ति काल का सामना करना पडा और इसके परिणामस्वरूप आय का वितरण दोषपूर्ण हो गया जिससे निर्धन लोगो को रोटी प्राप्त करने मे कठिनाई हो गयी और समृद्ध अधिक समृद्ध हो गए। अत न्यून वित्त प्रबन्ध (Deficit Financing) और कीमतो मे स्फीतिकारी वृद्धि का जहाँ तक सम्भव हो सके परिहार करना चाहिए।

अत किसी अल्पविकसित देश को औद्योगिक विकास के लिए बहुत से कार्य एक साथ करने पडते है। इसमे इसे उन्नत देशो का सहयोग मिलना अनिवार्य है जो आर्थिक विकास मे सहायता देने के लिए तैयार हैं।

❑❑❑

2

निर्धनता का दुष्चक्र तथा विकास की समस्या
(THE VICIOUS CIRCLE OF POVERTY AND THE PROBLEM OF GROWTH)

1 निर्धनता का दुष्चक्र और पूँजी निर्माण (The Vicious Circle of Poverty and Capital Formation)

अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओ के लक्षणो का वर्णन करते हुए यह बताया गया कि इन देशो की मुख्य समस्या 'निर्धनता का दुष्चक्र' है। प्रश्न उठता है कि निर्धनता के दुष्चक्र के विद्यमान होने तथा अल्पविकसित देशो के इस दुष्चक्र मे ग्रस्त रहने के क्या कारण हैं। इस समस्या पर प्रोफेसर नर्क्स (Professor Nurkse) ने गम्भीर रूप से चिन्तन किया है और इस समस्या का वर्णन उन्हीं के शब्दों मे करना अनुचित न होगा।

निर्धनता के दुष्चक्र का अभिप्राय **"विभिन्न शक्तियो के वर्तुल नक्षत्र (Circular constellation of forces) से है जो एक दूसरे पर इस प्रकार क्रिया तथा प्रतिक्रिया करती हैं कि निर्धन देश मे निर्धनता की परिस्थिति बनी रहती है।"** इस प्रकार के वर्तुल नक्षत्रो के विशिष्ट उदाहरणो की कल्पना करना कठिन नहीं। उदाहरणार्थ, हो सकता है कि
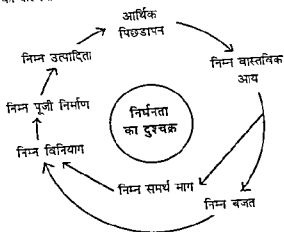
चित्र 2.1

किसी निर्धन व्यक्ति को पर्याप्त भोजन उपलब्ध न हो, आधापेट भरने के कारण उसका स्वास्थ्य निर्बल हो सकता है शारीरिक रूप में निर्बल होने के कारण उसकी कार्यक्षमता कम रहती है जिसका अर्थ यह हुआ कि वह निर्धन रहता है। इसका फिर यह परिणाम होगा कि उसे पर्याप्त मात्रा मे भोजन प्राप्त नहीं होगा और यह क्रम ऐसे ही चलता रहेगा। समस्त देश से सम्बन्धित इस प्रकार की परिस्थिति को यह कह कर व्यक्त किया जा सकता है कि **"कोई देश इसलिए निर्धन है क्योंकि यह निर्धन है।"** **(A country is poor because it is poor)**

निर्धनता के दुष्चक्र मे सबसे महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध वे हैं जो अल्पविकसित देशों मे पूँजी सचयन (Capital Accumulation) पर प्रभाव डालते हैं। पूँजी का सभरण (Supply of Capital) सचय करने की सामर्थ्य एव इच्छा पर निर्भर करता है जबकि पूँजी की माँग विनियोग प्रोत्साहन (Inducement to Invest) पर निर्भर करती है। अल्पविकसित देशो में पूँजी निर्माण की समस्या के दोनों पक्षों में वर्तुल सम्बन्ध विद्यमान हैं।

अल्पविकसित देशो में निर्धनता के दुष्चक्र के दो पहलू हैं—पूँजी निर्माण का सम्भरण पक्ष तथा माग पक्ष। चित्र 2.1 मे सभरण पक्ष के बाह्य वर्तुल सम्बन्ध (External Circular Relationship) को व्यक्त किया गया है और पूँजी निर्माण के माँग पक्ष को आन्तरिक वर्तुल सम्बन्ध द्वारा।

पूँजी निर्माण का सभरण पक्ष (Supply side of capital formation)—अल्पविकसित देशो मे आर्थिक पिछडेपन के कारण विभिन्न व्यवसायो और मुख्यत कृषि में, जो इन देशों का प्रधान व्यवसाय होता है उत्पादिता का स्तर निम्न होता है। निम्न उत्पादिता स्तर (Low level of productivity) के कारण जनसामान्य का वास्तविक आय स्तर निम्न होता है और निम्न वास्तविक-आय (Low Real Income) होने के कारण इन देशो में बचत सामर्थ्य (Saving

Capacity) कम होती है। निम्न बचत विनियोग की सीमा निर्धारित करती है। परिणामत इन देशो मे निम्न विनियोग स्तर होता है और विनियोग स्तर के निम्न होने के कारण इन देशो मे पूँजी निर्माण कम होता है। पूँजी निर्माण का निम्न स्तर होने से इन देशो मे आर्थिक पिछडापन और निम्न उत्पादिता स्तर ही विद्यमान होता है। अत कम वास्तविक आय कम उत्पादिता का प्रतिबिम्ब है जिसका मुख्य कारण है पूँजी का अभाव। पूँजी का अभाव सचय की निम्न सामर्थ्य का परिणाम है और इस प्रकार निर्धनता के दुष्चक्र का सभरण पक्ष चक्र पूरा हो जाता है।

अल्पविकसित देशो मे पूँजी निर्माण की समस्या का दूसरा पहलू माग पक्ष कहलाता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि अल्पविकसित देशो मे आर्थिक पिछडेपन तथा उत्पादिता के निम्न स्तर के विद्यमान होने के कारण जनसामान्य की वास्तविक आय कम होती है। इस वास्तविक आय के अधिकतर भाग का प्रयोग लोग उपभोग की वस्तुए क्रय करने मे करते हैं। चूँकि लोगो की वास्तविक आय अर्थात् क्रयशक्ति कम होती है इसलिए उनकी उपभोग वस्तुओ की माग भी कम होगी। दूसरे शब्दो मे निम्न वास्तविक आय निम्न उपभोग माग का कारण बनती है। विनियोग वस्तुओ की माग एक व्युत्पन्न माग (Derived demand) है क्योकि यह उसी समय उत्पन्न होगी यदि उपभोग वस्तुओ की माग होगी। चूँकि अल्पविकसित देशो मे उपभोग माग (Consumption Demand) कम होती है इसलिए विनियोग के लिए कम प्रोत्साहन होता है। परिणामत निम्न उपभोग माग निम्न विनियोग का कारण बनती है जिसके परिणामस्वरूप पूँजी निर्माण का स्तर भी नीचा ही रहता है। अत माग पक्ष की ओर से विनियोग के लिए कम प्रोत्साहन का कारण लोगो के पास कम क्रय शक्ति है जिसके लिए निम्न वास्तविक आय उत्तरदायी है जो स्वय निम्न उत्पादिता पर निर्भर है। इस प्रकार निम्न उत्पादिता निम्न विनियोग प्रोत्साहन (Low Inducement to Invest) निम्न पूँजी निर्माण और फिर निम्न उत्पादिता का चक्र पूरा हो जाता है। अत निर्धनता का दुष्चक्र पूँजी निर्माण के माग पक्ष की ओर से भी अर्थव्यवस्था को आर्थिक पिछडेपन मे ग्रस्त रखता है।

इन दोनो चक्रो (पूँजी निर्माण के माग पक्ष तथा सभरण पक्ष के चक्रो) मे वास्तविक आय का निम्न स्तर जो निम्न उत्पादिता (Low Productivity) को व्यक्त करता है साझा है। प्रोफेसर नर्क्स का कहना है कि अल्पविकसित देशो मे निर्धनता का अध्ययन करते समय पूँजी निर्माण के सभरण पक्ष पर अधिक बल दिया जाता है। सभरण पक्ष मे बाधा तो चत रूप मे सुव्यक्त एव गम्भीर समस्या है परन्त माग पक्ष मे बाधा चाहे इतनी गम्भीर समस्या नहीं परन्तु समस्या अवश्य है और इसे भी दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

मेयर और बाल्डविन द्वारा गरीबी के दुष्चक्र का वर्णन

मेयर (Meier) और बाल्डविन (Baldwin) एक और प्रकार के गरीबी के दुष्चक्र (Vicious circle) का वर्णन करते हे। अल्पविकसित अर्थव्यवस्था मे साधन गतिहीनता (Factor immobility) अशिक्षा साहसी कौशल के निम्न स्तर की पूर्ति और निम्न तकनीकी स्तर होने के कारण ससाधनो का अल्प प्रयोग (Under utilisation) और दुरुपयोग होता है। इस कारण अर्थव्यवस्था तीव्र गति से विकास नहीं कर पाती। वास्तव मे उत्पादन उत्पादक क्षमता सभावना (Productive potential) के स्तर तक न पहुँचकर इसके नीचे ही रहता है।

अल्पविकसित देश पूँजी दुर्लभ (Capital scarce) निम्न बचत और निम्न विनियोग करने वाली अर्थव्यवस्थाए होती है। प्रश्न उठता है निम्न बचत के क्या कारण हैं—

1 वास्तविक प्रति व्यक्ति आय के बहुत निम्न होने के कारण लोग पर्याप्त मात्रा मे बचत नही कर पाते। अधिकतर बचत लगभग 5 प्रतिशत अमीर जनसख्या द्वारा की जाती है। प्राय ये लोग व्यापारी जमादार होते है जो अनुत्पादक कार्यों जैसे सोना कीमती पत्थर, आरामदायक वास्तविक सम्पदा (Real estate) अर्थात भूमि मकान या अन्य निर्माणकारी स्थायी सम्पत्ति म विनियोग कर देते है।

2 अल्पविकसित देशो मे निम्न बचत का कारण प्रदर्शन प्रभाव (Demonstration effect) है। उपभोग स्तर दो बातो पर निर्भर करता है आय स्तर और सामाजिक सम्पर्क (Social contact)। लोग उन व्यक्तियो या वर्गों के उपभोग ढाँचे की नकल करते हे जिनके साथ उनके सामाजिक सम्पर्क है चाहे उनकी आय का स्तर इस प्रकार के उपभोग की इजाजत न दे। इस प्रकार के उपभोग की नकल करने के कारण उपभोग मे वृद्धि को प्रदर्शन प्रभाव कहते है। उपभोग स्तर उन्नत हो जाने से बचत कम हो जाती है।

2 गरीबी के दुष्चक्र को तोड़ने के उपाय
(Ways to break the Vicious Circle of Poverty)

गराबी के दुष्चक्र को तोडने के लिए पूँजी निर्माण की दर मे वृद्धि लानी होगी। इसके लिए आवश्यक है कि अनुत्पादक परिसम्पत् (Unproductive assets) जैसे कि वास्तविक सम्पदा और विलासी उपभोग पर खर्च को कम किया जाए। अत बचत का प्रयोग उत्पादक क्रियाओ मे किया जाना चाहिए।

नर्क्स का कहना है कि अति जनसख्या वाली

unemployment) पूँजी-निर्माण का एक सम्भाव्य स्रोत है। उत्पादन की तकनीक में परिवर्तन किए बिना (आर्थिक सगठन में परिवर्तन द्वारा) कृषि भूमि से अतिरिक्त श्रमशक्ति (Surplus labour power) को उत्पादन पर दुष्प्रभाव डाले बिना हटाया जा सकता है। इस श्रमशक्ति का प्रयोग पूँजी परियोजनाओं (Capital Projects) जैसे सिचाई, सडक रेलवे मकान पुल, स्कूल हस्पताल के निर्माण मे किया जा सकता है। इस प्रकार अनुत्पादक श्रमिको (*Unproductive labourers*) का प्रयोग पूँजी निर्माण के लिए किया जा सकता है।

गरीबी के दुष्चक्र को तोड़ने के लिए विदेशी सहायता भी ली जा सकती है। विदेशी सहायता द्वारा अन्तर्देशीय बचत (Domestic savings) की पूर्ति मे वृद्धि की जा सकती है। चूँकि विदेशी पूँजी अन्तर्देशीय पूँजी की पूरक होती है विदेशी पूँजी के प्रयोग से उत्पादिता मे वृद्धि होगी और इससे बचत के बढने की भी सभावना है। उन्नत आय-स्तर के कारण सकल माँग (Aggregate demand) में भी वृद्धि होगी जोकि पूँजी निर्माण को और प्रोत्साहन देगी और इसके फलस्वरूप लाभदायक विनियोग के अवसर प्राप्त होंगे। कई बार विदेशी सहायता से आर्थिक विकास की प्रक्रिया को गति मिलती है जैसा कि ताईवान और प्युरेटो रिको (Pureto Rico) मे हुआ है। परन्तु कुछ देश बहुत कम विदेशी सहायता का प्रयोग कर आर्थिक विकास कर पाए हैं। स्मरण रहे कि विदेशी सहायता आर्थिक विकास की न तो आवश्यक शर्त है और न ही पर्याप्त शर्त।

3. विनियोग-प्रोत्साहन
(*Inducement to Invest*)

साधारणतया यह समझा जाता है कि अल्पविकसित देशो मे पूँजी दर बढाने की समस्या का अध्ययन केवल संभरण पक्ष की ओर से ही होना चाहिए। इसमे सन्देह नहीं कि सभरण पक्ष का अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है परन्तु इस कारण पूँजी निर्माण के माग पक्ष के अध्ययन की उपेक्षा करने में कोई बुद्धिमत्ता नहीं। हो सकता है कि अल्पविकसित देशो मे पूँजी-निर्माण की समस्या के माग पक्ष मे भी कुछ त्रुटि हो। प्रश्न उठता है कि क्या पूँजी की माँग मे भी कमी व्यक्त हो सकती है ? साधारणतया, यह विश्वास परिदृढ होता है कि अल्पविकसित देशो में अपने श्रम के प्रयोग तथा प्राकृतिक ससाधनों के विदोहन (Exploitation of natural resources) के लिए पूँजी की भारी मात्रा मे आवश्यकता होती है। इसलिए यह कल्पना की जाती है कि इन देशो मे पूँजी की माँग अत्यधिक है। ध्यानपूर्वक विचार करने से सिद्ध हो जाता है कि यह धारणा पूर्णतया युक्तिसगत नहीं। किसी भी देश के आर्थिक विकास की आरंभिक अवस्थाओ मे देशीय बाजार (Domestic market) का सीमित होना, उत्पादन प्रक्रिया में पूँजीवादी उपायो को चालू करने के लिए निजी प्रोत्साहनो के रूप मे कठिनाई उत्पन्न कर सकता है।

विनियोग-प्रोत्साहन (Inducement to Invest) बाजार के आकार से सीमित हो जाता है।[1] यह प्रस्ताव एडम स्मिथ (Adam Smith) की प्रसिद्ध धारणा कि **'श्रमविभाजन बाजार के आकार से सीमित हो जाता है'**, का आधुनिक रूप है।[2] यह एक सरल तत्त्व है और वाणिज्य ससार मे चिरकाल सुविदित है। पूँजी-वस्तुओं की माग तो एक प्रकार की व्युत्पन्न माग (*Derived Demand*) है। कारण यह है कि पूँजी-वस्तुओं की माँग उपभोग वस्तुओं की माँग से उत्पन्न होती है जो कि देशीय बाजार के आकार पर निर्भर करती है। यदि किसी देश मे लोगो की क्रयशक्ति कम हो तो *बाजार का आकार (Size of market) छोटा होगा।* क्रयशक्ति से हमारा अभिप्राय मौद्रिक क्रयशक्ति (Monetary purchasing power) की अपेक्षा वास्तविक क्रयशक्ति से है। मौद्रिक क्रयशक्ति मे वृद्धि से तो वस्तुओ के सभरण पर केवल माँग का प्रभाव ही पडेगा जिसके कारण कीमतो मे स्फीतिकारी परिस्थितियाँ (Inflationary conditions) विद्यमान हो जायेगी परन्तु क्रयशक्ति मे वास्तविक वृद्धि से बाजार के आकार का विस्तार होगा क्योंकि इससे वस्तुओं तथा सेवाओ की अधिक मात्रा माँग की तुष्टि करेगी। इस बात को पूर्णतया समझने के लिए हम एक उदाहरण लेते हैं।

कल्पना करो कि किसी देश (जैसे भारत) मे घडियाँ बनाने का एक आधुनिक कारखाना लगाया जाता है और इसके द्वारा एक वर्ष मे 50 लाख घडियाँ बनायी जा सकती हैं। प्रश्न उठता है कि यदि भारत मे निर्धन लोग घडी खरीद ही न सकते हो और देश मे घडियों की वास्तविक माँग 10 लाख घडियो के समान हो, तो इतना बडा कारखाना लगाना लाभदायक न होगा। कारण यह है कि बाजार का आकार छोटा होने के कारण इसकी उत्पादन-सामर्थ्य (Productive Capacity) का पूर्ण प्रयोग नहीं हो सकता। इस प्रकार की वस्तुओ के बहुत से उदाहरण दिए जा सकते हैं। सयुक्त राज्य अमेरिका में टाइपराइटर, रेफ्रीजरेटर, कार, टेलीफोन, कपडे धोने की मशीन इत्यादि बहुत-सी ऐसी वस्तुए जनसामान्य द्वारा प्रयुक्त की जाती हैं परन्तु इनकी माँग क्रयशक्ति के अभाव के कार— अल्पविकसित देशो में बहुत ही कम है। परिणामत इन देशो में क्रशक्ति का अभाव बाजार के आकार को सीमित कर देगा और बाजार का आकार सीमित होने से पूँजी की माग सीमित हो जाएगी और परिणामत

1 'Inducement to invest is limited by the size of the market —Nurkse

2 The division of labour is limited by the extent of the market —Adam Smith

का मूल कारण यह है कि वहाँ उत्पादिता का स्तर बहुत ऊँचा है क्योंकि वहाँ उत्पादन मे पूँजी की भारी मात्रा का प्रयोग होता है। अमेरिका मे बृहद् उत्पादन (Mass production) एव विशाल बाजार कभी भी सभव न होता, यदि यह उत्पादन जनसामान्य के लिए न होता। संयुक्त राज्य अमेरिका मे आर्थिक विकास के कारण जनसामान्य श्रेष्ठतर वस्तुओ तथा सेवाओ का अधिक मात्रा मे प्रयोग करने लगा है। वे सभी वस्तुएँ जो कि अमेरिकन जीवन स्तर का अग बन चुकी हैं—अर्थात् कार, कपडे धोने की मशीन रसोई मशीन रेडियो टेलीविजन कैमरा, टाइपराइटर, कम्प्यूटर आदि निम्न आय वर्ग (Low income group) द्वारा भी प्रयुक्त की जाती हैं। अमेरिकन श्रमिक की अधिक उत्पादिता के कारण इन वस्तुओ का बृहद् उत्पादन (Mass production) ही नहीं होता परन्तु बृहद् उपभोग (Mass consumption) भी होता है। अत बाजार के आर्थिक आकार के विकास का प्राथमिक कारण (Primary factor) उत्पादिता के स्तर मे महान् उन्नति है।

क्या गरीबी के दुष्चक्र को पूर्ति पक्ष की ओर से तोडा जा सकता है या माँग पक्ष की ओर से? इस प्रश्न पर अर्थशास्त्रियो मे सदैव मतभेद रहा है परन्तु एक बात पर सभी सहमत है कि इस चक्र को तोडा जा सकता है और आर्थिक विकास द्वारा समृद्धि लायी जा सकती है। यह भी सत्य है कि ससार के कुछ देशो मे आर्थिक विकास हो चुका है। इसका तात्पर्य यह है कि गरीबी का दुष्चक्र किसी न किसी प्रकार से अवश्य तोडा गया होगा। नर्क्स बहुत आशावादी अर्थशास्त्री था। उसके विचार में अगर एक बार गरीबी का दुष्चक्र तोड दिया जाए, तो यह चक्र हितकारी चक्र (Beneficent circle) बन जाएगा।

❑❑❑

3

आर्थिक विकास की कुछ समस्याएं

(Some Problems of Economic Growth)

1 अल्पविकसित अर्थव्यवस्था मे पूँजी-निर्माण

प्रोफेसर नर्क्से (Nurkse) के अनुसार, "पूँजी निर्माण का अर्थ यह है कि समाज अपनी समस्त वर्तमान उत्पादन क्षमता को उपभोग की तत्कालीन आवश्यकताओ की पुष्टि के लिए नहीं लगाता, अपितु इसका एक भाग पूँजी वस्तुओ अर्थात् यन्त्र तथा उपकरण मशीने तथा परिवहन सुविधाए, सयन्त्र तथा उपकरण बनाने के लिए इस्तेमाल करता है—ये वास्तविक पूँजी के वे तमाम विभिन्न रूप हैं जो उत्पादन क्षमता को प्रभाविता को बहुत बढा सकते हैं। अत प्रक्रिया का सार इस बात मे है कि समाज द्वारा वर्तमान मे उपलब्ध ससाधनो के एक भाग का प्रयोग पूँजी वस्तुओ का स्टाक बढाने के लिए किया जाता है ताकि भविष्य मे उपभोग योग्य उत्पादन मे वृद्धि हो सके।" पूँजी निर्माण की ऊपर दी गई परिभाषा वास्तविक अथवा भौतिक पूँजीनिर्माण के रूप मे दी गई है।[1]

अल्पविकसित देश के सदर्भ में पूँजी निर्माण के अर्थ का विस्तार कर इसमे बहुत सी अदृश्य पूँजी (Invisible capital) जो मानवीय स्वास्थ्य कौशल (Skill) और खाद्यान्न के रूप मे उपलब्ध होती है को भी शामिल किया जाता है। दूसरे शब्दो म वे सभी वस्तुएँ तथा सेवाएँ, जिनकी उपलब्धि आर्थिक विकास के लिए अनिवार्य है और जिनकी अनुपस्थित आर्थिक विकास के मार्ग मे रुकावट है पूँजी का अग समझी जानी चाहिए। भारत जैसे देश मे खाद्यान्न की कमी के कारण आर्थिक विकास प्रोन्नत करना कठिन हो जाता हे परिणामत खाद्य-अतिरेक (Food surplus) पूँजी का कार्यभाग अदा करता है और इस प्रकार विकास प्रोन्नत करता है। इसी तरह किसी अल्पविकसित देश के आर्थिक विकास मे मानवीय कोशल (Human skill) का अभाव गभार अडचन है। उदाहरणार्थ, भारत अपने आर्थिक विकास के लिए और भौतिक सामग्री अथात् मशीनें, औजार और उपकरण तो किसी अन्य देश से प्राप्त कर सकता है परन्तु हो सकता है कि इन मशीनो तथा औजारो के प्रयोग के लिए भारत मे आवश्यक कौशल उपलब्ध न हो। अत 'पूँजी निर्माण' की धारणा मे मकान, मशीनरी परिवहन तथा सचालन प्रतिष्ठान, कच्चे माल श्रम प्रशिक्षण और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि कुछ हद तक भृतिवस्तुओ (Wage goods) को भी शामिल करना चाहिए।

पूँजी सचयन (Capital Accumulation)

पूँजी सचयन तीन स्वतत्र कारणतत्वो पर निर्भर करता है

(क) वास्तविक बचत मे वृद्धि ताकि जो ससाधन उपभोग के लिए इस्तेमाल हो जाते, उनका प्रयोग अन्य उद्देश्यो के लिए किया जा सके

(ख) एक ऐसी बैंकिग एव वित्तीय प्रणाली का विद्यमान होना जो एक ओर जनता की बचत को गतिमान कर सके और दूसरी ओर विनियोक्ताओ (Investors) को यह बचत उपलब्ध करा सके और

(ग) स्वय विनियोग को प्रोत्साहित करना जिसका अर्थ पूँजी वस्तुओ के निर्माण से है।

पूँजी सचयन केवल वित्तीय सस्थानो की स्थापना द्वारा और मौद्रिक विस्तार द्वारा नहीं किया जा सकता। वित्तीय ढाँचे का महत्त्व तो हे परन्तु वित्तीय सस्थानो के अस्तित्वमात्र से पूँजी निर्माण के स्तर मे वृद्धि की गारटी नहीं दी जा सकती। वास्तव मे बिना वास्तविक बचत किए यदि मौद्रिक विस्तार किया जाए, तो इससे मुद्रा स्फीति को बढावा ही मिलेगा। चूंकि पूँजी का अर्थ मौद्रिक पूँजी (Money capital) नहीं बल्कि वास्तविक पूँजी है पूँजी निर्माण का अर्थ वास्तविक परिसम्पत् (Real assets) की स्थापना ही समझना चाहिए। इससे यही निष्कर्ष प्राप्त होता है कि अतिरिक्त बचत और उत्पादक विनियोग (Productive investment) को बढावा देना आवश्यक है।

1 Nurkse R *Problems of Cap tal Format on n Under developed Countr es* p 2

पूँजी निर्माण की प्रक्रिया (The Process of Capital Formation)

पूँजी निर्माण की प्रक्रिया मे यह कल्पना की जाती है कि किसी निश्चित अवधि मे राष्ट्रीय आय उपभोग के स्तर से अधिक है। यदि Y राष्ट्रीय आय है C उपभोग S बचत और I विनियोग के समान है तो इनका समीकरण इस प्रकार होगा—

Y C S

सन्तुलन की स्थिति मे बचत विनियोग के बराबर होगी इसलिए यह कहना उचित होगा कि राष्ट्रीय आय का उपभोग पर अधिशेष समाज की बचत होगी जो उसका विनियोग भी होगा। अत पूँजी निर्माण के लिए विनियोग का सकारात्मक (Positive) होना एक अनिवार्य शर्त है।

परन्तु *विनियोग (I) और पूँजी निर्माण के बीच सम्बन्ध* पर बल देना बहुत आवश्यक है। जबकि I विनियोज्य अतिरेक (Investible surplus) को व्यक्त करता है वहाँ पूँजी निर्माण *का अर्थ अर्थव्यवस्था* के पूँजी स्टाक मे शुद्ध वृद्धि से है। कल्पना करो कि अर्थव्यवस्था के विनियोज्य अतिरेक का प्रयोग उपभोग वस्तुओ के उत्पादन के लिए किया जाता है तब पूँजी निर्माण बिल्कुल नही होगा क्योकि केवल उपभोग वस्तुओ का उत्पादन होगा और अर्थव्यवस्था के पूँजी सग्रह मे कोई वृद्धि नहीं होगी। अत किसी विशेष अवधि मे पूँजी निर्माण की मात्रा को विनियोग अतिरेक के बराबर होना आवश्यक नहीं। इसलिए यह कहना तो ठीक है कि पूँजी निर्माण के लिए विनियोग का सकारात्मक (Positive) होना आवश्यक है परन्तु इससे यह नतीजा निकालना कि इसके परिणामस्वरूप पूँजी निर्माण अपने आप होने लगेगा उचित नहीं।

अनिवार्यत अर्थव्यवस्था मे पूँजी निर्माण के दो तरीके है पहला कुछ ससाधन जो उपभोग वस्तुओ के उत्पादन में लगे हुए हैं उन्हे परिवर्तित करके पूँजी वस्तुओ के उत्पादन में लगाया जाए। ऐसी परिस्थिति मे उपभोग वस्तुओ की मात्रा अपेक्षाकृत कम हो जाएगी और पूँजी वस्तुओ की मात्रा मे वृद्धि होगी। कारण यह है कि पूँजी के प्रवाह में वृद्धि उपभोग वस्तुओ के कुछ भाग की स्थानापत्ति (Substitution) द्वारा की जा रही है। दूसरा *अर्थव्यवस्था* के कुल उत्पादन को इस प्रकार बढाया जाए कि उत्पादन में वृद्धि केवल पूँजी वस्तुओ के रूप मे ही हो (उपभोग वस्तुओं के उत्पादन की मात्रा स्थिर रहे)। इस परिस्थिति मे पूँजी के प्रवाह मे वृद्धि का कारण उपभोग वस्तुओ के गत प्रवाह मे वृद्धि है।

एक *अल्पविकसित अर्थव्यवस्था* तीन प्रकार से आन्तरिक रूप मे पूँजी सचयन कर सकती है (क) अदृश्य बेरोजगारी (Disguised unemployment) या कृषि मे मौसमी बेरोजगारी *का प्रयोग करके (ख) श्रम एव अन्य उत्पादक ससाधनो* (Productive resources) को आर्थिकेतर पूँजी निर्माण (Non economic capital formation) से हटा कर इन्हे उत्पादक *पूँजी निर्माण (Productive capital formation)* मे लगा कर और (ग) उपभोग को काट कर उत्पादन के साधनो का प्रयोग पूँजी वस्तुओ के उत्पादन मे करके। पहले उपाय मे *कुछ कठिनाइयाँ अवश्य हैं* परन्तु दूसरा और तीसरा उपाय व्यवहार्य है।

तीव्र पूँजी निर्माण या आय में तीव्र वृद्धि

चूँकि पूँजी निर्माण से अभिप्राय विनियोग वस्तुओ की मात्रा मे वृद्धि से लिया जाता है इसलिए यह इस बात पर निर्भर है कि विनियोज्य अतिरिक का कितना भाग *विनियोग वस्तुओ के उत्पादन मे लगाया जाता है और कितना* उपभोग वस्तुओ के उत्पादन मे। यदि उपभोग वस्तुओ के उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले विनियोज्य अतिरेक का अनुपात *Pc है और विनियोग वस्तुओ के उत्पादन मे यह अनुपात Pk* है तो पूँजी सचयन Pk पर निर्भर होगा। एक सम्पन्न अर्थव्यवस्था (Advanced economy) में Pk की मात्रा अधिक होगी और इस प्रकार पूँजी निर्माण की प्रक्रिया लगभग स्वचालित ही बनी रहेगी परन्तु अल्पविकसित देश की समस्या यह है कि वह Pk की मात्रा को बढाए ताकि इसके फलस्वरूप पूँजी निर्माण की दर ऊँची हो जाए।

किसी भी अल्पविकसित अर्थव्यवस्था को इन परस्पर प्रतिद्वन्द्वी *समस्याओ का समाधान करना पडता है कि क्या* वह पूँजी निर्माण की ऊँची दर प्राप्त करना चाहती है या राष्ट्रीय आय की ऊँची वृद्धि दर। यदि सारे का सारा विनियोज्य *अतिरेक उपभोग वस्तुओं के उत्पादन के लिए इस्तैमाल किया* जाए, तो इससे आय मे तो तत्काल वृद्धि होगी वास्तव मे आय में यह वृद्धि उस परिस्थिति से कहीं अधिक होगी यदि समग्र विनियोज्य अतिरेक पूँजी वस्तुओ के उत्पादन के लिए इस्तेमाल होता। इसका आधार यह मान्यता है कि पूँजी वस्तु क्षेत्र में पूँजी उत्पाद अनुपात (Capital output ratio) उपभोग वस्तु क्षेत्र की तुलना मे अधिक है। अल्पकाल मे एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था मे आय मे वृद्धि की दर Pc के अधिक अनुपात के परिणामस्वरूप अधिक होगी परन्तु Pk के अधिक अनुपात के फलस्वरूप कम होगी। साथ ही जैसा कि हमने पहले सकेत किया है पूँजी निर्माण Pk के अनुपात पर निर्भर करेगा अत जितना Pk अधिक होगा उतना पूँजी निर्माण बढेगा। इस प्रकार एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था इस उलझन

मे ग्रस्त रहती है।

(क) यदि यह अल्पकाल मे अपनी आय की वृद्धि दर को बढाना चाहता है तब इसे अपने विनियोज्य-अतिरेक का अधिक अनुपात उपभोग वस्तुओ के उत्पादन में लगाना होगा।

(ख) यदि यह पूँजी निमाण की दर बढाना चाहती हे तो इसे विनियोज्य अतिरेक का अधिक अनुपात पूँजी वस्तुओ मे लगाना होगा। ऐसी परिस्थिति मे अल्पकाल में आय की वद्धि दर अपेक्षाकत कम रहेगी।

यह उलझन यहीं समाप्त नहीं होती। परिस्थिति दीर्घकाल मे पलट जाएगी। दीर्घकाल मे आय की वद्धि दर Pk की अधिक मात्रा से अधिक होगी किन्तु Pc की अधिक मात्रा से कम होगी। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि—

(*i*) Pk की अधिक मात्रा के परिणामस्वरूप पूँजी निर्माण की दर मे वद्धि होगी (विनियोग वस्तुआ मे उत्पादन मे वद्धि के कारण) आय मे वद्धि की दर पूँजी सग्रह (Capital stock) की वृद्धि दर पर निर्भर करेगी और

(*ii*) दीर्घावधि मे उपभोग वस्तुओ की आय जनन क्षमता (Income generating capacity) शून्य होगी क्योंकि वे कवल उपभोग के लिए उत्पन्न को गयी हे।

जाहिर है कि दार्घकाल को दृष्टि से अल्पविकसित अथव्यवस्था के हित मे यह होगा कि विनियोज्य अतिरेक का अधिकतर भाग पूँजी वस्तुओ क उत्पादन (अर्थात् पूँजी निमाण) मे लगाए। परन्तु अल्पकाल की दृष्टि से जनसामान्य जो अपना जीवन स्तर शीघ्र उन्नत करना चाहते हैं आय मे वद्धि के अधिक इच्छुक हागे। परिणामत वे योजना प्राधिकार को इस बात के लिए मजबूर करेगे कि विनियोज्य अतिरेक का अपेक्षाकत अधिक अनुपात उपभोग वस्तुओ के उत्पादन मे लगाया जाए। अत अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के सामने समस्या यह है कि (क) क्या यह अल्पकाल मे आय की अपक्षाकृत अधिक वद्धि दर चाहती है या (ख) जबकि दाघकाल मे आय का अधिक वद्धि दर के लिए क्षमता कायम की जा रही है यह अल्पकाल मे आय की अपेक्षाकत नीचा वद्धि दर स्वाकार करना चाहती हे ताकि वह दीर्घकाल मे अपेक्षाकत अधिक आय वद्धि दर प्राप्त कर सके। इनमे से कोन सा विकल्प चुना जाएगा यह प्रधानत राज्य के स्वरूप पर निर्भर करेगा। एक लोकतांत्रिक ढाँचे मे जहाँ लोकप्रिय सरकार का चुनाव होता है पहले विकल्प की ओर झुकाव बना रहेगा। परन्तु एक अधिकारतत्राय प्रणाली (Authoritarian sys tem) मे जहाँ जनसामान्य को आकाक्षाओ को अल्पकाल मे दबाया जा सकता है दूसरा विकल्प सामान्यत स्वाकार किया जाएगा।

अन्य अनुकूल कारणतत्त्व

यह बात पहले स्पष्ट की जा चुकी हे कि पूँजी निर्माण मुख्यत बचत की दर पर निर्भर करता है। जितनी बचत की सीमान्त प्रवत्ति (Marginal propensity to save) अधिक होगी देश मे पूँजी निमाण की दर उतनी हो अधिक होगी। वास्तव मे बचत की ऊँची प्रवृति के भी बड विध्वसक आर्थिक परिणाम हो सकते हैं यदि बचत का प्रयोग उत्पादक पूँजी परिसम्पत् (Capital assets) के निर्माण के लिए नहीं किया जाता। बचत के अ प्रयोग (Non utilisation) अल्प प्रयोग (Under utilisation) या दुष्प्रयोग (Misutilisa tion) से निश्चित ही पूँजी निर्माण मे योगदान प्राप्त नहीं होता। दूसरे यदि बचत को पूर्णत या अशत निष्प्रयोज्य रखा जाता हे तो इससे समर्थ माग (Effective demand) कम हो जाएगी और परिणामत कोई लाभदायक उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा। तीसरे बचत का व्यर्थ अभिदृश्य उपभोग (Con spicuous consumption) मे प्रयोग अर्थात् अपनी शान या सत्ता का प्रदर्शन करने (अथात् हारे, जवाहरात या जायदाद आदि खरीदने मे) से पूँजी निर्माण को बढावा नहीं मिलता। चौथे उपभोग की उचित सीमान्त दर जिससे श्रम की कार्य कुशलता अधिकतम की जा सकेगी और जो उपभोग वस्तुओ की माग को वढाएगी भी पूँजा निर्माण का एक अनिवार्य अग है। अत यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि पूँजी निमाण वर्तमान आय के सर्वोत्तम प्रयोग पर निभर करता है ताकि भावी आय मे वद्धि हो और इसके लिए दो बाते करनी हागी (*i*) वतमान आय का अधिकतर अनुपात कार्यकुशलता बढाने के लिए किए जाने वाले उपभोग मे इस्तेमाल किया जाए और (*ii*) विनियोग के लिए बचत का प्रयोग सबसे अधिक लाभदायक उत्पादक परिसम्पतो के लिए किया जाए।

अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं मे पूँजी का आबटन (Allocation of capital)

पूँजी के आबटन की समस्या का सम्बन्ध पूँजी सग्रह के प्रकार ओर किस्म उन विभिन्न क्षेत्रो से हे जिनमे विनियोग किया जाता है और उन कसौटियो के निर्धारण से है जिनका प्रयोग पूँजी-आवटन मे किया जाता है।

पूँजी के आवटन (Allocation of capital) पर अल्प विकसित देशो के विशेष लक्षणो का प्रभाव पडेगा। चूँकि अल्पविकसित देशो मे श्रम प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होता है परन्तु पूजी न्यून मात्रा मे इसलिए इन देशो मे पूँजी बचाव के उपायो अथवा श्रम प्रयोग के उपायो का अधिक इस्तेमाल होना चाहिए (जहाँ कहीं भी उत्पादन के विभिन्न ढंगो से

चुनाव की समस्या उत्पन्न होती है)। कृषि मे चाहे अधिक पूँजी भी लगायी जाए, उत्पादन का ढग श्रम प्रधान (Labour-intensive) ही रहेगा। कृषि के यत्रीकरण (Mechanisation) मे पूँजी-विनियोग करने की अपेक्षा यदि इसका प्रयोग अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रो मे किया जाए, तो यह अपेक्षाकृत अधिक उत्पादक होगा।

अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओ मे विनियोग अधिकतर छोटे उद्यमो में किया जाएगा। इसका कुछ हद तक तो यह कारण है कि पूँजी की मात्रा न्यून है और कुछ हद तक यह कि इनमे कम जोखिम सहन करना पडता है। लघु स्तर के उद्यमो के पक्ष मे अन्य लाभ ये हैं कि इनके द्वारा उत्पादन के श्रेष्ठतर उपायो का अधिक प्रसार हो सकता है नयी उत्पादक तकनीको मे बहुत से व्यक्ति भाग ले सकते है और प्रबन्ध प्रशिक्षण (Management training) के लिए अधिक अवसर उपलब्ध हो सकते हैं। परन्तु छोटे पैमाने की इकाइयो के लाभो की प्राय सीमाए भी होती हैं। इसके अतिरिक्त अल्पविकसित देशो के लिए यह अनिवार्य है कि कुछ क्षेत्रो मे वे कुछ प्रकार के विनियोग पर ध्यान केन्द्रित करे और अन्य क्षेत्रो मे नयी उत्पादक तकनीको को अपनाने की छूट दे।

कई बार किसी एक उद्योग मे केवल एक ही तकनीक उपलब्ध हो सकती है। उदाहरणार्थ इस्पात या रासायनिक उर्वरको के उत्पादन मे केवल पूँजी प्रधान उपाय ही उपलब्ध है। अत इनमे निम्न मजदूरी (Low wages) के विद्यमान होने से कोइ लाभ नहीं होगा। इसके अतिरिक्त रोजगार की दृष्टि से इतने बडे व्यापारिक उद्यमो से कोई लाभ नहीं।

विनियोग की एक और कसौटी पूरकता (Complementarity) है। बहुत से उद्योग एक दूसरे के पूरक हे और उन्हें एक साथ उन्नत करना होगा। इस आधार पर विनियोग की उच्च दर प्राप्त करने और सतुलित विकास (Balanced growth) के सिद्धान्त पर तीव्र औद्योगीकरण को बढावा देने की सिफारिश की जाती है। परन्तु इस सम्बन्ध मे भी सावधानी बरतनी होगी क्योकि सभी क्षेत्रो मे एक साथ तीव्र प्रगति करने के उपाय मे कई कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं जैसे तकनीकी श्रम के अभाव को अडचन।

अन्तिम अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान शेष अल्पविकसित अर्थव्यवस्था मे विनियोग विकल्पो (Investment alternatives) की महत्त्वपूर्ण कसौटी है। उदाहरणार्थ यदि निर्यात उद्योगो को बढावा देने की अपेक्षा विनियोग देशी वस्तु उद्योगो तक केन्द्रित रहता है तो इसके परिणामस्वरूप भुगतान शेष मे घाटा उत्पन्न होगा। परिस्थिति मौद्रिक आय मे वृद्धि से और भी बिगड जाएगी जिससे माग और बढ जाएगी और इस कारण और अधिक आयात करने आवश्यक हो जाएगे।

पूँजी संचयन की दर (Rate of Capital Accumulation)

किसी अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की आर्थिक प्रगति के मार्ग पर सहायता करने के लिए पूँजी सचयन की दर के बारे मे काफी मतभेद हैं। इस पर दो स्पष्ट राय है। "अधिक तीव्र विकास का दृष्टिकोण" और "धीरे-धीरे विकास का दृष्टिकोण'।

एक विचारधारा के अनुसार किसी भी अल्पविकसित अर्थव्यवस्था को अपने सहस्रो वर्षों के निर्धनता के दुप्चक्र को झटका देने के लिए वास्तविक पूँजी की दर बहुत तेजी से बढानी होगी। इस दृष्टिकोण के पक्ष मे मुख्य तर्क निम्नलिखित हैं—

(*i*) किसी भी पिछडी एव अल्पविकसित अर्थव्यवस्था को आर्थिक प्रगति मे इसकी पुरानी परम्पराए, रूढ़िवादी सास्कृतिक सस्थान और विशाल जनसख्या जो कि बहुत ही तेजी से बढ रही है रुकावट डालते हैं। अत आर्थिक विकास का मार्ग साफ करने के लिए भारी मात्रा मे विनियोग करना आवश्यक हो जाता है।

(*ii*) कुछ का विचार है कि विकास के मार्ग मे मुख्य रुकावटे हैं सामान्यत घटिया स्वास्थ्य बीमारियो एव महामारियो का फैलना, घटिया सफाई, अपर्याप्त और असंतुलित भोजन घटिया मकान शिक्षा सुविधाओ का अभाव आदि। इन सब को दूर करने के लिए सरकार को भारी मात्रा मे पूँजी विनियोग करना होगा। इसके अतिरिक्त सरकार को आर्थिक ऊपरी व्यय (Economic overheads) के रूप मे परिवहन एव सचार, बन्दरगाहे सिचाई एव सचालन शक्ति परियोजनाएँ (Power projects) आदि स्थापित करने होगे। इसलिए 'अधिक तीव्र" विचारधारा के अनुसार पूँजी निर्माण तेजी से भारी मात्रा मे किया जाना चाहिए ताकि अल्पविकसित देश की अवरुद्ध अर्थव्यवस्था को जो आर्थिक एव सामाजिक दृष्टि से सड रही है इस चगुल से मुक्त किया जा सके। इस सदर्भ मे वित्त प्रबन्ध और तकनीकी ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से किसी अल्पविकसित अर्थव्यवस्था मे विदेशी सहायता की आवश्यकता का भारी महत्त्व है।

जब कि पहली विचारधारा द्वारा आर्थिक पूँजी निर्माण की तीव्र दर की सिफारिश की गयी दूसरी विचारधारा पूँजी सचयन मे धीरे धीरे वृद्धि कराने पर बल देती है। धारे धारे विकास वाली विचारधारा का विश्वास है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्था मे पूँजी की भारी मात्रा एक दम लगाने से अपव्यय होगा और यह भी सभव है कि यह नीति अर्थव्यवस्था

के लिए घातक सिद्ध हो।

'धीरे धीरे विकास' के समर्थक यह मानते हैं कि एक अश तक विदेशी वित्त एव तकनीकी ज्ञान द्वारा लाए गए तीव्र परिवर्तन समाज मे निरन्तर आर्थिक विकास की नींव स्थापित नहीं कर सकेंगे। जैसे ही विदेशी सहायता वापस खींच ली जाएगी अर्थव्यवस्था पुन गतिरोध (Stagnation) की स्थिति मे फस जाएगी। दूसरे लोगो की आदते विचार-शैली, जीवन पद्धति आदि बदलने मे समय लगता है। जब तक ये परिवर्तन नहीं होते, अर्थव्यवस्था की आर्थिक प्रगति की आशा नहीं की जा सकती। केवल भारी मात्रा मे रुपया झोक देने से कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि इन परिवर्तनों के व्यक्त होने मे काफी समय लगता है। तीसरा, यह बात भी स्वीकार नहीं की जा सकती कि केन्द्रीय आयोजन (Central planning) जिसके साथ इसकी अनेक प्रशासनिक समस्याएँ जुडी हुई हैं अल्पविकसित देशो के विकास का एकमात्र या श्रेष्ठतम मार्ग है।

इस प्रकार "धीरे धीरे विकास" के समर्थक अर्थशास्त्रियो का मत है कि आर्थिक विकास को एक दम बढाना भूल है और बहुत ऊँची पूँजी निर्माण दर के साथ बहुत अधिक विदेशी सहायता पर निर्भरता किसी देश के विकास के लिए सर्वोत्तम ढग नहीं। इसके विरुद्ध, वे पूँजी निर्माण की दर मे मर्यादित वृद्धि के पक्ष मे हैं वे विदेशी उधार या अनुदान की अपेक्षा देशी पूँजी सचयन (Domestic capital accumulation) पर कहीं अधिक निर्भर रहना चाहते हैं और वे शान्तिमय सामाजिक परिवर्तन लाना चाहते हैं।

इन दोनो विचारधाराओ मे से किसी एक को सही मानना काफी कठिन है। दोनो के तर्कों मे बहुत बल है। अत इन दोनो चरम परिस्थितियो के बीच का रास्ता ही विवादों मे सही मालूम जान पडता है। एक ओर तो पूँजी निर्माण की दर पर्याप्त मात्रा मे बढनी चाहिए ताकि अर्थव्यवस्था को निर्धनता एव दीनता (Misery) के चगुल से छुडाया जा सके परन्तु इसके साथ यह भी ध्यान रखना होगा कि यह इतनी ऊँची न हो जो देश की क्षमता से बाहर हो य इसके लिए अधिक उन्नत देशो पर भारी मात्रा मे निर्भर होना पडे।

2 गुप्त बेरोजगारी, बचत सामर्थ्य के स्रोत के रूप मे

(Disguised Unemployment as a Source of Saving Potential)

गुप्त बेरोजगारी का अर्थ

अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओ का एक मुख्य लक्षण गुप्त बेरोजगारी का विद्यमान होना है। सभी अल्पविकसित देशो में जनसख्या का आधिक्य है और जनसख्या का अधिकतर भाग प्राथमिक उत्पादन अर्थात् कृषि पर आश्रित है। परन्तु सत्य तो यह है कि जितनी जनसख्या कृषि उत्पादन मे व्यस्त है उतनी इस कार्य के लिए आवश्यक नहीं। दूसरे शब्दो मे यदि कुछ जनसख्या को कृषि से हटा लिया जाए, तो भी कृषि उत्पादन में कमी नहीं होगी। इसका अर्थ यह हुआ कि गुप्त रूप मे लोग बेरोजगार हैं। यह बेरोजगारी ऐसी है कि सयुक्त परिवार प्रथा (Joint family system) होने के कारण पता नहीं चलती है और किसी विशेष व्यक्ति को निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि वह उत्पादन कार्य मे लगा हुआ नहीं है। इस प्रकार गुप्त बेरोजगारी और व्यक्त औद्योगिक बेरोजगारी (Open industrial unemployment) में यह भेद है कि जहाँ अवरोक्त स्थिति मे निश्चित रूप मे यह बताया जा सकता है कि अमुक व्यक्ति को रोजगार प्राप्त नहीं वहाँ पूर्वोक्त स्थिति मे ऐसा कहना असभव है। परन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि कृषि में गुप्त बेरोजगारी विद्यमान होने की अवस्था मे और व्यक्त औद्योगिक बेरोजगारी की अवस्था मे भी श्रम शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net national output) मे कोई योगदान नहीं देता है। तकनीकी रूप मे यह कहा जा सकता है कि अदृश्य बेरोजगारी की अवस्था मे श्रम की सीमान्त उत्पादिता (Marginal productivity) या तो शून्य है या कुल हालतो मे नकारात्मक भी है। गुप्त बेरोजगारी सम्बन्धी कई अनुमान लगाए गए हैं और कृषि-श्रम शक्ति (Agricultural labour force) का लगभग 15 से 30 प्रतिशत अदृश्य बेरोजगारी में ग्रस्त है। इस प्रकार यह कहना उचित है कि अदृश्य बेरोजगारी अल्पविकसित देशो की एक महत्त्वपूर्ण समस्या है जो कि इनमे कृषि उत्पादिता में उन्नति के लिए एक बडी रुकावट है।

प्रोफेसर नर्क्स (Nurkse) ने गुप्त बेरोजगारी की व्याख्या करते हुए लिखा है "गुप्त बेरोजगारी शब्द का प्रयोग भृति-श्रम (Wage Labour) के लिए नहीं किया जाता है। इसका सम्बन्ध तो किसान समाजो में विद्यमान पारिवारिक रोजगार (Family employment) की स्थिति से है। फार्मों तथा छोटे छोटे खेतो पर काम करने वाले बहुत से लोग वस्तुत उत्पादन मे कुछ भी योगदान नहीं देते, बल्कि परिवार की वास्तविक आय के एक भाग पर गुजारा करते हैं औद्योगिक देशों मे बेरोजगारी प्रकट रूप मे ससाधनो का अपव्यय जान पडती है जो कि सबको दिखाई पडती है और इसी कारण सम्भवत इस समस्या की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। जनाधिक्य वाली, कृषि-अर्थव्यवस्थाओ मे किसी व्यक्ति को विशेष रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि वह गुप्त रूप मे बेरोजगार है। ऐसा जान पडता है कि सभी लोग काम पर लगे

हुए है और कोई भी बेकार नहीं, परन्तु फिर भी इस बात को झुठलाया नहीं जा सकता कि उत्पादन पर कोई दुष्प्रभाव डाले बिना श्रम शक्ति के एक भाग को हटाया जा सकता है।"[2]

प्रोफेसर नर्क्स ने गुप्त बेरोजगारी को और स्पष्ट करते हुए यह बताया कि यदि कृषि-तकनीक (Technique of agriculture) मे कोई परिवर्तन न हो, तो भी कृषि उत्पादन को घटाए बिना कृषि-व्यवसाय मे से जनसख्या के एक बड़े भाग को हटाया जा सकता है।"[3] अत गुप्त बेरोजगारी की धारणा की परिभाषा मे यह बात केन्द्रीय महत्त्व रखती है कि उतना ही कृषि-उत्पादन अपेक्षाकृत कम श्रम शक्ति द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इसका यह अर्थ नहीं कि कृषि-उत्पादन को बढाने के लिए तकनीकी उन्नति महत्त्वपूर्ण नहीं। तकनीकी विकास का आर्थिक विकास के सन्दर्भ मे विशेष महत्त्व है परन्तु गुप्त बेरोजगारी की व्याख्या के लिए यह कल्पना करनी आवश्यक है कि कृषि तकनीक में कोई परिवर्तन न हो तो भी पहले जितना-उत्पादन करने के लिए श्रमिको की कम सख्या चाहिए।

इसके अतिरिक्त, इस बात पर भी बल देना आवश्यक है कि गुप्त बेरोजगारी एक मौसमी समस्या नहीं। इसमे सन्देह नहीं कि वर्ष के कुछ भाग में मौसमी-कृषि-बेरोजगारी विद्यमान होती है परन्तु इस प्रकार की बेरोजगारी अदृश्य बेरोजगारी नहीं कही जा सकती। कारण यह है कि अदृश्य बेरोजगारी दीर्घकालिक (Chronic) होती है और इसमें मुख्य बल इस बात पर दिया जाता है कि जितने व्यक्ति कृषि पर लगे हुए हैं, उतने व्यक्तियो को कृषि मे अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग करने के लिए काम उपलब्ध नहीं। परिणामत कृषि में व्यस्त जनसंख्या का अल्प-प्रयोग होता है।

गुप्त बेरोजगारी, बचत सामर्थ्य के रूप में

अल्पविकसित देशो में आय कम होने के कारण उनकी बचत करने की शक्ति कम होती है। कारण यह है कि अल्पविकसित देश अपनी राष्ट्रीय आय का बहुत भारी भाग उपभोग के लिए प्रयुक्त करते हैं। उपभोग के स्तर को और कम करना सभव नहीं क्योकि इन देशो मे लोग पहले ही निर्धनता तथा निर्वाह स्तर (Subsistence level) पर रह रहे हैं। इन देशों में विद्यमान गुप्त बेरोजगारी में निहित बचत सामर्थ्य (Saving potential) का प्रयोग करने का सुझाव देकर प्रोफेसर नर्क्स ने एक *आशावादी सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसके* अनुसार उपभोग का स्तर कम किए बिना पूँजी-निर्माण किया जा सकता है। विकास का यह सिद्धान्त प्रतिष्ठित एवं *केन्स-अर्थशास्त्र के मध्य का मार्ग है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र* (Classical Economics) मे पूँजी-निर्माण की दर बढाने के लिए उपभोग-स्तर को कम करना आवश्यक है। केन्स-अर्थशास्त्र (Keynesian Economics) मे औद्योगिक बेरोजगारी को दूर करने के लिए उपभोग तथा विनियोग दोनो का विस्तार आवश्यक है। इन दोनो सिद्धान्तो की तुलना मे नर्क्स के सिद्धान्तानुसार उपभोग के स्तर को स्थिर रखते हुए पूँजी-निर्माण को *बढाया जा सकता है।*

गुप्त बेरोजगारी को पूँजी निर्माण के लिए प्रयुक्त करने का क्या तरीका है ? प्रोफेसर नर्क्स के इस सुझाव को समझने के लिए हम एक उदाहरण लेते है। कल्पना करो कि कृषि परिवार के पाँच सदस्य तीन एकड़ भूमि पर काश्त कर रहे है और इससे तीन मन गेहूँ उत्पन्न होता है परन्तु यदि पाँच व्यक्तियो की अपेक्षा तीन व्यक्ति इस भूमि के टुकड़े को जोतें तो भी कुल उत्पादिता मे कोई अन्तर नहीं होता। इस कारण यह कहा जा सकता है कि दो श्रमिको की सीमान्त *उत्पादिता (Marginal productivity) शून्य है। जब ये* पाँचों व्यक्ति कार्य करते है तो तीस मन गेहूँ पैदा होता है और पाँचों इसका उपभोग करते है। जब तीन कार्य करेगे तब भी तीस मन गेहूँ उत्पन्न होगा और इसका उपभोग कर सकते है। यदि परिवार यह *निर्णय* कर ले कि इन दो *अनुत्पादक आश्रितो* को जहाँ भी वे कार्य करेगे उनके हिस्से का अन्न पहुचा दे, तब उन्हे किसी अन्य कार्य अर्थात् सडके बनाने नहरें खोदने सिचाई योजनाओं में कार्य करने नदियों पर बाँध बनाने गृह-निर्माण करने आदि मे लगाया जा सकता है।

इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि समाज को करना यह है कि कृषि-परिवारो से कहे कि अपने "अनुत्पादक *आश्रितो'* (Unproductive dependants) को *अन्य व्यवसायों* मे भेज दे और उनके हिस्से का अन्न भी भेज दे। इस परिस्थिति में परिवार के दृष्टिकोण से उपभोग के स्तर में कोई कमी नहीं होती क्योकि जितने व्यक्ति पहले कृषि-उत्पाद का प्रयोग कर रहे थे उतने ही अब करते है परन्तु सामाजिक दृष्टिकोण से परिस्थिति परिवर्तित हो गई है। अत कुछ श्रमिक पूँजी-वस्तुओं के निर्माण कार्य मे लग गए हैं और परिणामत अतिरिक्त कृषि जनसंख्या (Surplus agricultural population) का अनुत्पादक-उपभोग उत्पादक उपभोग (Productive consumption) का रूप धारण कर गया है। उतने ही उत्पादन का प्रयोग करते हुए अब समाज वस्तुओं तथा सेवाओं का अधिक संग्रह निर्मित करने लगा है। दूसरे शब्दो में गुप्त बेरोजगारी ने पूँजी-निर्माण का रूप धारण किया है। इस उपाय का प्रयोग करते हुए यह कहा जा सकता है कि अर्थव्यवस्था में पूँजी-निर्माण करने की शक्ति निहित

2 Nurkse R *Problems of Capital Formation In Under developed Countries* p 33
3 *Ibid* p 32

है। अत किसी भी व्यक्ति को उपभोग की मात्रा कम करने की आवश्यकता नहीं।

प्रश्न उठता है कि "खाद्य अतिरेक" (Food surplus) को जनसख्या के लिए जो कृषि से हटा कर अन्य व्यवसायो मे लगायी गई है कैसे प्राप्त किया जाए। साम्यवादी देशो मे इस समस्या का समाधान करने के लिए कृषको को मजबूर किया गया कि वे "खाद्य अतिरेक" को निश्चित कीमत पर राज्य को बेच दे। उदाहरणार्थ कल्पना करो कि कोई कृषि परिवार 60 मन अन्न का उत्पादन करता है और कृषि परिवार के पूर्ववत् स्तर पर 20 मन अन्न की आवश्यकता है। तब कृषि परिवार के लिए यह अनिवार्य है कि अतिरिक्त 40 मन अन्न राज्य सरकार को निश्चित कीमत पर दे दिया जाए। कई परिस्थितियो मे 'खाद्य अतिरेक' प्राप्त करने की कीमत प्रचलित कीमत (Current price) से भी कम रखी जाती थी। इस प्रकार अनिवार्य खाद्य वसूली प्रणाली (System of compulsory delivery of foodgrains) द्वारा आर्थिक विकास के लिए पूजी निर्माण किया गया। अनिवार्य उपायो का प्रयोग सोवियत रूस तथा अन्य समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं मे किया गया।

प्रजातत्रो मे इन अनिवार्य उपायो का प्रयोग कठिन है। इसलिए 'खाद्य अतिरेक' को शत प्रति शत रूप मे प्राप्त करना सभव नहीं। इसका कारण यह है कि बचत सामर्थ्य को गतिमान करने में दो रिसाव (Leakages) हैं। एक रिसाव तो यह है कि जैसे ही गुप्त रूप मे बेरोजगार श्रमिको को अन्य व्यवसायो मे लगाया जाता है ग्रामीण क्षेत्र मे रहने वाले शेष उत्पादक श्रमिक अपने जीवन स्तर को बढाने के लिए अधिक मात्रा में उपभोग प्रारम्भ कर सकते हैं। परिणामत बचत सामर्थ्य के रूप मे उपलब्ध खाद्य-अतिरेक कम हो जाएगा। दूसरी सभावना यह है कि जिन बेकार श्रमिको को उत्पादक कार्य म लगाया जाएगा वे भी अपना उपभोग बढा सकते हैं और परिणामत खाद्य-अतिरेक कम हो जाएगा। इस प्रकार यह शका प्रकट की जाती है कि खाद्य-अतिरेक को पूर्णतया गतिमान करना सम्भव नहीं। इसके अतिरिक्त यह स्पष्ट करना भी आवश्यक है कि अदृश्य रूप मे बेरोजगार श्रमिको को खाद्य उपलब्ध कराने के लिए कुछ अनिवार्य उपाय करने होंगे। इसके लिए ऐसे वर्गों पर जो उपभोग बढाना चाहते हैं कुछ प्रतिबन्ध लगाने अनिवार्य हैं। उदाहरणार्थ उनके द्वारा इस्तेमाल की गई वस्तुओं पर कर लगाना लगान को बढाना राशनिंग और अनिवार्य वसूली (Compulsory procurement) कुछ ऐसे उपाय हैं। इस सम्बन्ध मे यह स्पष्ट हो जाता है कि लोकतत्राय अथव्यवस्थाओ मे अधिकारतन्त्रीय अर्थव्यवस्थाओ (Totalitarian economies) की अपेक्षा खाद्य-अतिरेक को गतिमान करने मे कहीं अधिक कठिनाईयाँ विद्यमान हैं।

उल्लेखनीय बात यह है कि सब उपाय करने पर भी इन रिसावो (Leakages) को बन्द नहीं किया जा सकता। अत यह अनिवार्य हो जाता है कि 'खाद्य-अतिरेक' के अतिरिक्त बचत सामर्थ्य को बढाने के लिए किसी अन्य स्रोत की सहायता लेनी चाहिए। यह भी हो सकता है कि ग्रामीण क्षेत्र की बचत के अतिरिक्त नगरीय क्षेत्रों द्वारा भी बचत की जा सकती है परन्तु चाहे बचत ग्रामीण क्षेत्र मे हो या नगरीय क्षेत्र में ये दोनो बचत के आन्तरिक स्रोत हैं। यदि देश मे पर्याप्त मात्रा मे अन्न उपलब्ध न हो तो विदेशो से इसका आयात किया जा सकता है। ऐसा करने के लिए या तो अनावश्यक आयात (Non essential imports) को कम करना होगा या निर्यात को बढाना होगा। यह ठीक है कि कुछ हद तक विदेशी अनुदान या ऋण प्राप्त करने होंगे परन्तु विदेशी सहायता को उपभोग बढाने के लिए इस्तेमाल नहीं करना चाहिए बल्कि इसे उत्पादक क्रियाओ मे प्रयुक्त करना चाहिए। इस प्रकार विदेशी सहायता द्वारा पूजी निर्माण को बढाने मे महत्त्वपूर्ण योगदान प्राप्त हो सकता है।

गुप्त बेरोजगारी और बचत सामर्थ्य सम्बन्धी नर्क्स-प्रस्ताव की आलोचना

प्रोफेसर नर्क्स ने इस बात पर बल दिया कि श्रम सभी सम्पत्ति का मुख्य स्रोत है। इस प्रकार नर्क्स ने यह बताया कि अदृश्य बेरोजगारी को पूजी निर्माण के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। परन्तु विवादास्पद बात यह है कि क्या अदृश्य बेरोजगारी को आसानी से पूजी निर्माण के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है? सत्य तो यह है कि इस प्रस्ताव के कार्यान्वियन में बहुत सी कठिनाइयाँ हैं।

सर्वप्रथम नर्क्स ने गुप्त रूप मे बेरोजगार श्रम और पूजी निमाण के लिए आवश्यक श्रम के स्वरूप में भेद को ठीक प्रकार नहीं समझा। जबकि गुप्त रूप मे बेरोजगार श्रमिक सामान्यतया अकुशल होते हैं पूजी निर्माण (Capital formation) के लिए कुशल एव तकनीकी श्रम की आवश्यकता होती है। नर्क्स प्रस्ताव तब उचित माने जा सकते हैं यदि अकुशल श्रम को थोडे से उपकरण देकर पूजी निर्माण प्रोजेक्टो मे इस्तेमाल किया जा सके।

कुरीहारा (Kurihara) इस सम्बन्ध मे दो आलोचनाएँ करता है। यदि यह मान भी लिया जाए कि अकुशल श्रम का प्रयोग कुछ ऐसी परियोजनाओ मे किया जा सकता है जो श्रम प्रधान (Labour intensive) हैं परन्तु इसके द्वारा वह अचल पूजी (Fixed capital) निर्मित नहीं की जा सकती जो कि औद्योगीकरण (Industrialisation) के लिए अनिवार्य

है। "अधिक से अधिक इन परियोजनाओ द्वारा प्रारम्भिक पूंजी-निर्माण किया जा सकता है (अथात् कारखानो के सामने से गन्दगी साफ की जा सकती है आधुनिक प्रमुख मार्गों के लिए कच्ची सडक बनायी जा सकती है और कुछ हस्तशिल्प उद्योगो मे वस्तुएँ बनायी जा सकता हैं जो मशीन-निर्मित वस्तुओ के लिए कच्चे माल का काम दे सकती हैं।) परन्तु औद्योगीकरण को त्वरित करने के लिए बडे पैमाने पर मशीने बनाने वाली मशीने बनानी चाहिए और ऐसी मशीने बनाने के लिए गुप्त रूप मे बेरोजगार व्यक्ति असमर्थ हैं।"[4]

इस सम्बन्ध मे हर्शमैन (Hirschman) द्वारा आज्ञात्मक और अनिवार्यात्मक कारणतत्त्वो (Permissive and compulsive factors) में भेद विशेष महत्त्व रखता है। नर्क्स के अनुसार, गुप्त रूप मे बेरोजगार-श्रम का प्रयोग सडको, मकानो के निर्माण, जल प्रतिष्ठानो तथा भू-सुधार उपायो आदि मे किया जा सकता है। इन सब को सामाजिक ऊपरीव्यय (Social overheads) की संज्ञा दी जाती है। नर्क्स का कहना है कि ये सब भी पूजी निर्माण का अग हैं और इसलिए आर्थिक विकास को प्रोन्नत करेंगे। परन्तु हर्शमैन का कहना है कि चाहे सामाजिक ऊपरीव्यय द्वारा निर्मित पूंजी आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है परन्तु यह तो आर्थिक विकास का केवल आज्ञात्मक कारणतत्त्व हो सकता है। इसके विरुद्ध, 'प्रत्यक्ष रूप मे उत्पादक पूजी' (Directly productive capital) की विद्यमानता और प्रोत्साहन आर्थिक विकास का अनिवार्यात्मक कारणतत्त्व है। प्रत्यक्ष रूप मे उत्पादक-पूंजी मे अन्य उत्पादक क्रियाओ के अतिरिक्त मशीनी औजारों का उद्योग, लौह तथा इस्पात उद्योग भी शामिल किए जाते हैं। नर्क्स के विकास सिद्धान्त द्वारा अदृश्य बेरोजगारी का प्रयोग सामाजिक ऊपरीव्यय सम्बन्धी पूजी का निर्माण करने मे सहयोगी सिद्ध हो सकता है परन्तु इसके द्वारा प्रत्यक्ष रूप मे *उत्पादक पूंजी के निर्माण मे सहायता नहीं मिलती। आर्थिक* विकास के सन्दर्भ मे तो प्रत्यक्ष रूप मे उत्पादक पूजी का अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व है।

द्वितीय नर्क्स ने यह तर्क दिया कि गुप्त रूप मे बेरोजगार श्रम को व्यवसायान्तरण (Shifting of occupation) में अधिक मजदूरी नहीं देनी चाहिए। किन्तु नर्क्स द्वारा गुप्त बेरोजगारी की दी गई परिभाषा इस निष्कर्ष का खण्डन करती है। गुप्त रूप मे बेरोजगार व्यक्तियो को वैयक्तिक रूप मे ढूँढना तो सम्भव नहीं, इसलिए उन्हे ग्रामीण क्षेत्र से हटाने के लिए श्रम बाजार प्रक्रिया (Labour market mechanism) का प्रयोग करना होगा। इसलिए उन्हे अधिक मजदूरी देनी अनिवार्य है। अधिक मजदूरी के प्रलोभन के दो कारण हैं—

(क) गुप्त रूप मे बेरोजगार श्रमिक यह महसूस करते हैं कि वे उत्पादक कार्य मे लगे हुए हैं और उन्हे श्रम-बाजार (Labour market) में लाने के लिए अधिक मजदूरी का प्रलोभन देना अनिवार्य है और

(ख) अर्थव्यवस्था मे स्फीतिकारी प्रवृत्तियो (Inflationary tendencies) के प्रकट होने के कारण मौद्रिक मजदूरी (Money wages) मे वृद्धि स्वाभाविक है। चूँकि जिन पूजी-परियोजनाओ (Capital projects) पर गुप्त रूप मे बेरोजगार श्रमिक लगाये जायेंगे, उनके पूर्ण एवं फलीभूत होने के लिए समय लगेगा, इसलिए अन्तरिम काल मे स्फीतिकारी दबाव का व्यक्त होना निश्चित ही है। यह भी निश्चित है कि यदि स्फीतिकारी प्रवृत्तियाँ बल पकड जाये, तो इस कारण पूजी-निर्माण का उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

तृतीय नर्क्स ने यह तर्क दिया कि यदि गुप्त रूप मे बेरोजगार श्रमिको को *ग्रामीण क्षेत्र से व्यवसायान्तरित किया* जाए, तो इन बेरोजगार व्यक्तियो द्वारा उपभोग होने वाला खाद्य पदार्थ बचत सामर्थ्य को जाहिर करता है। इस विचार का आधार स्थिर उपभोग (Constant consumption) की कल्पना है। इन समर्थ बचतो को निर्वाह कोष (Subsistence fund) कहा जाता है जिसका प्रयोग पूर्ववत् बेरोजगार व्यक्तियो के पालन-पोषण के लिए किया जा सकता है जो कि अब पूजी परियोजनाओ के निर्माण मे उत्पादक रूप मे *व्यस्त हैं।* इसका एक कारण तो यह है कि जो व्यक्ति ग्रामीण क्षेत्र मे शेष रह जाएगे (गुप्त रूप में बेरोजगार श्रमिको के व्यवसायान्तरण के पश्चात्) वे उदार रूप से उपभोग करने का निर्णय कर सकते हैं। ऐसी परिस्थिति मे उपलब्ध निर्वाह कोष का आकार व्यवसायान्तरित श्रमिको के लिए जो पूजी-परियोजनाओ में लगाए गए हैं काफी नहीं होगा। दूसरे, यह भी सभव है कि *चूँकि गुप्त रूप मे बेरोजगार श्रमिक अब स्वतन्त्र कर्मचारी बन* गये हैं, इसलिए वे अपने उपभोग को बढा ले। इसका परिणाम फिर वही होगा अर्थात् निर्वाह कोष उनके लिए अपर्याप्त होगा। अत नगरीकरण (Urbanization) के परिणामस्वरूप समस्त अर्थव्यवस्था मे उपभोग-प्रवृत्ति (Propensity to consume) के बढ जाने की सभावना है क्योंकि पूर्ववत् अनुत्पादक श्रमिक जब उत्पादक कार्यों मे लग जाएगे तो वे अपने उपभोग की मात्रा को बढा लेंगे। ऐसी अवस्था मे वे ससाधन जिनका प्रयोग पूजी-वस्तुओ के निर्माण के लिए होता, उपभोग-वस्तुओं के निर्माण मे प्रयुक्त होने लगेंगे।

परन्तु इन गुप्त रूप मे बेरोजगार श्रमिको को निर्वाह-कोष मे गुजारा करने के लिए तभी बाध्य किया जा सकता है यदि पूजी-परियोजनाएँ ग्रामीण क्षेत्र में ही या इसके निकटवर्ती इलाकों मे प्रारभ की जाये और गुप्त रूप मे बेरोजगार श्रमिक

---

4 K K Kurihara *The Keynesian Theory of Economic Development* p 119

पुराने ढग से ही जीवन व्यतीत करे। इसका अर्थ यह है कि पुरानी सामाजिक पद्धति के आधीन परिवार के सभी सदस्य कार्य करते रहे। परन्तु इस कारण अदृश्य रूप मे बेरोजगार श्रम का प्रयोग ग्रामीण क्षेत्र तक ही सीमित हो जाता है।

चतुर्थ तकनीकी तटस्थता (Technological neutrality) की कल्पना भी अप्रमाणित एव असहायक प्रतीत होती है। औद्योगीकरण की प्रक्रिया मे यह आशा की जाती है कि अर्थव्यवस्था अधिकाधिक मात्रा मे श्रम बचाव उपायों का प्रयोग करेगी और इस कारण विभिन्न क्षेत्रो मे अकुशल श्रम को गतिमान करना सीमित हो जाता है। इसके अतिरिक्त उत्पादिता बढाने के लिए श्रम को बढिया पूजी यत्रो से लैस करना अनिवार्य हो जाता है। दूसरे शब्दो मे आर्थिक विकास मे *तकनीकी विकास अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त अल्प* विकसित देशो में जनसख्या का तीव्र विकास परिस्थिति को दो ढगो से जटिल बना देगा। प्रथम अदृश्य रूप मे बेरोजगार श्रमिको की मात्रा मे निरन्तर वृद्धि होती जाएगी। परिणामत अतिरिक्त जनसख्या ग्रामीण बचत सामर्थ्य का प्रयोग व्यवसायान्तरित श्रम के जीवन निर्वाह के लिए साधन उपलब्ध कराने की अपेक्षा, स्वय अपना उपभोग बढाने मे करेगी। दूसरे, यदि जनसख्या की दर मे वृद्धि पूजी निर्माण की दर मे वृद्धि से अधिक हो जाए, तो इसके फलस्वरूप गुप्त बेरोजगारी की मात्रा भी अधिक बढ जाएगी और पूजी सग्रह मे वृद्धि इस बढती हुई गुप्त बेरोजगारी का समाधान नहीं कर सकेगी।

अन्तिम नए उद्योगो तथा नए व्यवसायो मे मानव शक्ति के अतिरेक के प्रयोग के कारण विभिन्न हितो में सघर्ष उत्पन्न हो जायेगा। गुप्त रूप में बेरोजगार श्रमिको की नियुक्ति से उपलब्ध निर्वाह साधनो (Means of subsistence) के पुनर्वितरण की समस्या उत्पन्न हो जाएगी। इस समस्या का समाधान बाजार प्रक्रिया द्वारा ही होगा। परन्तु सघर्ष तो ऐसे लोगो में होगा जो पहले ही जीविका कमा रहे हैं और उनमे जो रोजगार के विस्तार द्वारा जीविका अर्जित करने लगेंगे।

निष्कर्ष यह है कि अल्पविकसित देशो मे अतिरिक्त मानव शक्ति को बचत एव पूजी निर्माण का स्रोत मानना भ्रमात्मक है और इसका बहुत ही कम व्यावहारिक महत्त्व है। डा के एन राज के अनुसार, "यह कहना कि अप्रयुक्त श्रम का विद्यमान होना ऐसे बचत सामर्थ्य का प्रमाण है जिसका प्रयोग आर्थिक विकास मे किया जा सकता है ठीक नहीं। अत इसे व्यावहारिक नीति का आधार बनाने की तो गुजाइश भी नहीं।"[5]

प्रोफेसर कुरीहारा इससे भी अधिक आलोचनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए लिखता है "गुप्त बेरोजगारी पूजी निर्माण और आर्थिक विकास मे सहयोग देने की अपेक्षा ऐसी रोजगार बढाने वाली न कि सामर्थ्य बढाने वाली भ्रामक परियोजनाओं की सहायता करेगी जिनसे विकास की गति कम होने की *सभावना है।*"[6]

5 विदेशी पूजी एव आर्थिक विकास (Foreign Capital and Economic Development)

अल्पविकसित देशों मे आर्थिक विकास को त्वरित करने के लिए पूजी-आयात (Capital imports) करने का विचार कोई नया नहीं है। ससार मे आज के विकसित देशो को भी अपनी आर्थिक विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं मे पूजी का आयात करना पडा था। 17वीं और 18वीं शताब्दी मे इग्लैण्ड ने हॉलैण्ड से ऋण लिया था। 19वीं शताब्दी में सयुक्त राज्य अमेरिका ने भी यूरोप से भौतिक और मानवीय पूजी की सहायता ली थी ताकि अमेरिका में तीव्र गति से आर्थिक विकास हो सके। यही बात जापान और सोवियत रूस के सम्बन्ध मे भी सही है। 1890 और 1914 के दौरान रूस ने पश्चिमी यूरोप से विदेशी पूजी की सहायता ली थी परन्तु 1930 के पश्चात् रूस ने विदेशी पूजी की आवश्यकता को अनुकूल व्यापार शेष (Balance of trade) द्वारा सन्तुष्ट किया।

अल्पविकसित देशो के आर्थिक विकास मे विदेशी पूजी महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती है परन्तु अल्पविकसित अर्थव्यवस्था को विदेशी पूजी की कितनी मात्रा चाहिए, को निर्धारित करने वाले कई तत्त्व हैं। प्रथम, अल्पविकसित अर्थव्यवस्था किस सीमा तक आन्तरिक ससाधनो को गतिमान कर सकती है। दूसरे, दाता देशो (Donor countries) का पूजी प्राप्त करने वाले देशों के प्रति क्या रुख है और तीसरे, अल्पविकसित देश मे तकनीकी विकास की व्यवस्था क्या है? अल्प विकसित देशों की औद्योगीकरण की प्रक्रिया में *विदेशी ससाधन निम्नलिखित ढगो से योगदान दे सकते हैं*

(1) अल्पविकसित देशो मे आन्तरिक बचत आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से अपर्याप्त होती है। विदेशी सहायता बचत मे बढ़ोतरी करती है। दूसरे शब्दो मे *विदेशी पूजी* आन्तरिक पूजी की पूरक होती है।

(2) विदेशी पूजी के साथ जिन अन्य उत्पादक साधनो के सचरण में *भी वृद्धि होती है वे हैं तकनीकी ज्ञान (Technical knowledge)* और व्यापारिक अनुभव।

(3) विदेशी पूजी के परिणामस्वरूप आन्तरिक पूजी और *उद्यमकर्तृत्व (Entrepreneurship)* को भी इच्छित उत्पादन इकाइयों में लगाया जा सकता है।

---

5 K N Raj *Employment Aspects of Planning in Under-developed Countries* P 24

6 K.K Kurihara, *Op cit* p 120

(4) विदेशी पूजी के कारण आन्तरिक ससाधनो और भुगतान-शेप (Balance of payment) पर भी दवाव कम हो जाता है।

इस प्रकार विदेशी ससाधन अल्पविकसित देशो के आर्थिक विकास मे महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

अल्पविकसित देशो मे विदेशी पूजी निम्नलिखित रूपों मे प्राप्त की जा सकती है।

विदेशी पूजी के रूप (Forms of Foreign Capital)

(क) प्रत्यक्ष उद्यमकर्त्ता-विनियोग (Direct Entrepreneurial Investment)-विदेशी पूजी किसी देश मे प्रत्यक्ष विनियोग के रूप मे प्रवेश कर सकती है। भूतकाल मे उन्नत देशो मे ऐसी कई कम्पनियाँ बनाई गई है जिनका उद्देश्य केवल अल्पविकसित देशो मे कार्य करना है। कइ बार उन्नत देशो की कम्पनियाँ या तो अपनी अनुषगी कम्पनियाँ (Subsidiary companies) अल्पविकसित देशा मे चालू कर देती है या वे अपनी शाखाएँ इनमे खोल देती ह या सहायक कम्पनियाँ आरभ कर देती हैं। कुछ परिस्थितियो म विदेशी अल्पविकसित देशों की निजी कम्पनियों या सार्वजनिक कम्पनियो मे हिस्से या ऋणपत्र (Debentures) क्रय कर लेते हैं। इसे पोटफोलियो विनियोग (*Portfolio Investment*) कहा जाता है। सामान्यतया पूर्वोक्त प्रकार का विनियोग प्रधान होता है। उदाहरणार्थ भारत मे सयुक्त राज्य (United Kingdom) *से प्राप्त प्रत्यक्ष-विनियोग विशेष महत्त्व रखता है।* इसका मुख्य रूप सयुक्त राज्य मे ऐसी कम्पनियो की स्थापना था जो केवल भारत म कार्य करने के लिए ही बनायी गया। इसी प्रकार विदेशा फर्मों की शाखाएँ और सहायक इकाइयाँ (जिन्हे सामान्यतया India Limited कहा जाता है) पृथक रूप मे भारत मे रजिस्टर कराई गई ताकि सरकार से कुछ रियायते और अन्य सुविधाएँ प्राप्त का जा सके।

प्रत्यक्ष उद्यमकर्त्ता विनियोग का विशेष लाभ यह है कि इससे उत्पन्न लाभ का पुनर्विनियोजन (Re investment) किया जा सकता है और यह लाभ विशेषकर तब उपलब्ध होता है यदि अल्पविकसित देश 'प्रोत्साहक कराधान' (Incentive taxation) की नीति अपनाए। इसके अतिरिक्त पूजी आयात करने वाले देश इस प्रकार भारी मात्रा म पूजी प्राप्त कर सकते है बेहतर मशीनरी से लाभ उठा सकते है और प्रवन्ध योग्यता एव कौशल का प्रयोग कर सकते है। प्रत्यक्ष उद्यमकर्त्ता विनियोग की हानि यह है कि इसके कारण पूजी आयात करने वाले देशो को पूजा नियात वाले देशों क आर्थिक साम्राज्यवाद (Economic imperialism) एव प्रभुत्व का भय बना रहता है।

(ख) विदेशी सहयोग (Foreign Collaboration)—कुछ वर्षों से विदेशी और देशी पूजी द्वारा सयुक्त रूप मे फर्म बनाई गई है। भारत मे इस प्रकार के पूजी-आयात को प्रोत्साहन दिया गया है। विदेशी सहयोग के तीन रूप ह—निजी पार्टियो मे सयुक्त सहयोग विदेशी विनियोक्ताओ और देशा सरकार मे सयुक्त सहयोग विदेशी सरकार और अल्पविकसित देश की देशी सरकार मे सयुक्त सहयोग। इस प्रकार के सयुक्त सहयोग से विदेशी और देशी पूजी के प्रयोग द्वारा उद्योग के विकास के लिए ससाधना का विदोहन विदेशी मशीनरी तथा तकनीकी कौशल (Technical skill) की उपलब्धि प्रबन्ध मे सहयोग तकनीकी श्रमिको के प्रशिक्षण के लिए अधिक सुविधाएँ, लाभ के प्रतिधारण (Retention of Profits) के कारण पुनर्विनियोजन की काफी सभावना होती है। इन्हीं कारणो के आधार पर सयुक्त सहभागिता (Joint participation) को प्रत्यक्ष विनियोग का एक उत्तम रूप समझा जाता है।

(ग) अन्त राजकीय ऋण (Inter-governmental Loans)— द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् प्रत्यक्ष अन्त राजकीय ऋण तथा अनुदान प्राप्त करने की प्रवृत्ति बढी है। मार्शल सहायता (Marshall Aid) अमेरिका द्वारा युद्ध से बरबाद हुई यूरोपीय अर्थव्यवस्थाओ के विकास के लिए एक महान् प्रोग्राम था। आजकल अमेरिकी सरकार ने अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओ के विकास के लिए उन्ह सहायता देने की विदेश नाति को स्वीकार कर लिया है। अन्य उन्नत देश भी पिछडे हुए देशा को सरकारा को ऋण एव अनुदान देते हैं। परन्तु अन्त राजकीय ऋणा की आलोचना भी की गइ है। सामान्यतया इनके कारण राजनीतिक द्वेष और भ्रम उत्पन्न होता है। ऋणदाता देशा के नागरिक तो अधिकारतत्रीय अपव्यय (Bureaucratic waste) के कारण इस पद्धति की आलोचना करते ह और उधार लेने वाले देश इस पद्धति का विरोध राजनीतिक गुटबन्दी के कारण करते है।

(घ) अन्तर्राष्ट्रीय सस्थानों से ऋण (Loans from International Institutions)—1949 तक पुनर्निर्माण एव विकास सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय बैंक (International Bank for Reconstruction and Development) भी अल्प विकसित देशा के लिए विदेशी पूजी का महत्त्वपूर्ण स्रोत रहा है। इसके प्रारभ से ही इस बक द्वारा विकास कार्य के लिए 600 करोड डालर का ऋण दिया गया। इसके द्वारा दो अन्य सस्थान अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (International Finance Corporation) और अन्तर्राष्ट्रीय विकास सस्था (International Development Association) भी कायम किए गए जिनके द्वारा विकासमान देशा को अतिरिक्त विदेशी पूजा

उपलब्ध करायी जाती है। इन ऋणो पर ब्याज की दर कम होने दीर्घकाल मे वापसी आरभकाल मे भुगतान करने से अवकाश राजनीतिक बन्धनो की अनुपस्थिति आदि के कारण ये ऋण अल्पविकसित देशो मे विशेषकर लोकप्रिय हो गए हैं।

चाहे सहायता किसी भी रूप मे प्राप्त की जाए इसका कुशलतापूर्वक प्रयोग करने के लिए आवश्यक है कि अल्पविकसित देशो के पास विकास प्रोग्रामो के सविस्तार नक्शे तैयार हो ताकि वे विकसित देशो से अधिकरण (Authorisation) प्राप्त करने के पश्चात् इसका फोरन प्रयोग कर सके। कई बार यह देखा गया है कि अल्पविकसित देश सहायता सम्बन्धी समझोता तो कर लेते हैं परन्तु उनके पास ठीक परियोजनाए तैयार नहीं होतीं। ऐसी हालत मे विकसित देश से सहायता प्राप्त करने के अधिकरण और उसके वास्तविक प्रयोग मे विलम्ब होता हे। इस प्रकार के विलम्ब मे अल्पविकसित देशो को ही खतरा होता है क्योंकि राजनीतिक गतिविधियो के कारण कई बार सहायता सम्बन्धी नीति मे परिवर्तन आ जाता है ओर वचनबद्ध सहायता भी प्राप्त नहीं हो पाती। इस कारण अल्पविकसित देशो मे विकास कार्यक्रमो मे रुकावट पेदा हो जाती है। अल्पविकसित देशो मे विदेशी सहायता की कार्य कुशलता को बढाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए गए हैं—

1 अल्पविकसित देशो को विस्तत योजनाए तैयार करनी चाहिए और विशेष परियोजनाओ के डिजाइन पर पयाप्त समय लगाना चाहिए। परियोजना सम्बन्धी रूपरेखा ठीक और विश्वसनीय आधार सामग्री पर आधारित होनी चाहिए।

2 विस्तत पूर्व-आयोजन (Advance planning) के लिए आवश्यक है कि विदेशी सहायता दीर्घकाल के आधार पर प्राप्त होनी चाहिए, न कि प्रतिवर्ष प्रयत्न किए जाने चाहिएँ। वर्ष प्रतिवर्ष प्रयत्न के कारण अनिश्चितता बनी रहती है ओर पूर्व-आयोजन में कठिनाइयाँ उत्पन्न होती है।

3 विदेशी सहायता के अनुकूलतम प्रयोग के लिए आवश्यक है कि सहायता प्रोग्रामो से जुडी होनी चाहिए, न कि विशिष्ट परियोजना से या दाता देश से ही वस्तुएं क्रय करने से। दूसरे शब्दो मे, विदेशी सहायता ऊपर दी गई शर्तो से किसी प्रकार से भी जुडी नहीं होनी चाहिए।

प्राय यह देखा गया हे कि अल्पविकसित देश सहायता को उत्पादक कार्यो मे प्रयोग न कर इसे अनुत्पादक कार्यो मे लगाते हे। दाता देशो को इस प्रकार सहायता का अपव्यय करना बुरा लगता हे। इसलिए इन देश ने सामान्य प्रयोग के लिए सहायता देना बन्द कर दिया जिसका प्रयोग ऋणी देश किसी भी परियोजना पर या किसी भी देश से वस्तुओ को क्रय करने मे प्रयुक्त कर सकता था। दुर्भाग्यवश, अब तो दाता देश स्रोतबद्ध, परियोजनाबद्ध और पण्यवस्तुबद्ध उधार देते हैं।

बहुमुखी एजेन्सी (पुनर्निर्माण एव विकास सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय विकास सस्था) से तो हमेशा ही भारत को और अन्य देशो को उधार स्रोत-अबद्ध रहे हैं। द्विपक्षीय स्रोतो (Bilateral sources) से उधार और अनुदान स्रोत बद्ध हैं और तृतीय पचवर्षीय योजना से भारत मे स्रोतबद्धता की शर्तें और कडी बना दी गयी हैं। इग्लेण्ड ओर जर्मनी ने भी इसी काल मे स्रोतबद्धता के सिद्धान्त को अधिकाधिक अपनाया है।

उधार लेने वाले देश के ऋणदाता देश से वस्तुए या उपकरण क्रय करने के लिए बाध्य किया जाता है। दाता देशो द्वारा कुछ वस्तुओ के सम्बन्ध मे 30 40 प्रतिशत की सामा तक अन्तर्राष्टीय कीमतो से अधिक कीमत वसूल की जाती है और सामान्य रूप से सभी वस्तुओ के लिए 10 20 प्रतिशत अधिक कीमते वसूल की जाती हैं। इस प्रकार विदेशी उधार 10 20 प्रतिशत महगे हो जाते हैं। यह एक प्रकार से भारत जैसे अल्पविकसित देशो का गुप्त रूप से आर्थिक शोषण है।

पण्यवस्तु सहायता (Commodity Aid)

अल्पविकसित देशो मे विदेशी सहायता 'पण्यवस्तु सहायता' के रूप मे भी प्राप्त की जा सकती हे। यह सहायता अमेरिकी सार्वजनिक अधिनियम 480 665 (Public Law 480 665) के अधीन उपलब्ध कराई गयी। इसके अन्तर्गत अल्पविकसित देशो को गेहूँ, चावल कपास और तम्बाकू जैसी वस्तुएँ उपलब्ध कराई जाती हैं। इन वस्तुओं के आयात के लिए आयात करने वाले देश को अपनी ही करेन्सी मे दाता देश को भुगतान करना पडता है। अल्पविकसित देशो मे खाद्य समस्या की गभीरता को कम करने और खाद्यान्न की कीमतो को स्थायित्व प्रदान करने के लिए पी एल 480 आयात किए गए। परन्तु भारत जैसे अल्पविकसित देश ने खाद्यान्नो मे जैसे जैसे आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली पी एल 480 सहायता पर निर्भरता समाप्त हो गयी।

सक्षेप मे विदेशी सहायता देश की उत्पादक क्षमता (Productive potential) का विकास करने मे सहायक हो सकती है बशर्ते कि प्रापक देश (Recipient country) विदेशी सहायता का विवेकपूर्ण प्रयोग कर सके और अन्तर्देशीय साधनो को गतिमान करने के प्रयास मे सफल हो सके। देश के आर्थिक विकास म देशी सहायता निम्नलिखित ढगो से सहायक हो सकती हे

1 सिचाई और बिजली क्षमता के विस्तार के लिए

2 इस्पात उद्योग के निर्माण और तथा रेलवे परिवहन के विकास के लिए

3 तकनीकी साधनों के विकास के लिए का

प्रयोग तीन प्रकार से हो सकता है। (*i*) दक्ष सेवाओ की व्यवस्था करके (*ii*) अल्पविकसित देश के कर्मचारियो को प्रशिक्षण देकर, तथा (*iii*) देश मे प्रशिक्षण गवेषण और अनुसधान सस्थाओ को स्थापित करके।

4 विदेशी मुद्रा की आवश्यकताओ की पूर्ति करके।

5 विनियोग का स्तर उन्नत करने मे विदेशी सहायता से लाभ हो सकता है।

परन्तु एक बात स्मरण रहे कि कोई भी देश विदेशी सहायता पर हमेशा के लिए निर्भर नहीं रह सकता है। प्रत्येक देश को आन्तरिक प्रयत्न करना होगा ताकि इस सहायता को क्रमश कम किया जाए। देश मे वास्तविक प्रगति तभी होगी *जब देश विदेशी सहायता रूपी बैसाखी का प्रयोग कुछ समय* के पश्चात् छोडकर अपने पाव पर खडा हो सके।

4 तकनीक का चुनाव
(Choice of Technique)

विकासमान देशो के पास प्राकृतिक ससाधन (Natural Resources) तो प्रचुर मात्रा मे हो सकते है परन्तु उनके *विकास मे पूजी तथा तकनीकी श्रम की न्यूनता बाधा हो* सकती है। किन्तु इन दो कारणतत्त्वो को उन्नत किया जा सकता है। विकास के लिए उद्योगो एव तकनीक के चुनाव सम्बन्धी कई प्रकार की समस्याए होती हैं और इस सम्बन्ध मे हमे निम्नलिखित बातो का ध्यान रखना होगा

आजकल उद्योगो के चुनाव सम्बन्धी स्वीकार्य धारणा मे सन्तुलित विकास (Balanced growth) को महत्त्व दिया *जाता है। सबसे पहले ऐसे उद्योगो का चुनाव करना चाहिए* जो अन्य उद्योगो के विकास को प्रोत्साहित करे। जैसा कि सतुलित विकास के सिद्धान्त मे बताया गया है बहुत से उद्योगो के एक साथ विकास के कारण साधनो की दुर्लभता तीव्र बन सकती हैं। किन्तु सन्तुलित विकास के सिद्धान्त को केवल माग पक्ष की दृष्टि से ही नहीं सोचना चाहिए बल्कि सम्भरण पक्ष (Supply side) से भी। आर्थिक विकास के *सामान्य सिद्धान्त के रूप मे बहुत से अल्पविकसित देशों मे* सन्तुलित विकास की धारणा जो कि बाह्य मितव्ययताओ (External economies) पर आधारित है स्वीकार्य होनी चाहिए।

किन्तु विकास के लिए विशेष उद्योगो के चुनाव के सम्बन्ध मे कुछ कसौटियाँ निर्धारित करनी आवश्यक है। उद्योगो के चुनाव की ये कसौटियाँ विभिन्न परिस्थितियो मे भिन्न भिन्न होगी। उद्योगो के चुनाव के लिए हम तीन शर्तों का उल्लेख कर सकते है—

(क) वे उद्योग जो तकनीकी दृष्टि से कुशल और श्रम प्रधान (Labour intensive) है चुने जाने चाहिए,

(ख) उद्योग ऐसे होने चाहिए *जिनके लिए पूजी तथा* कौशल की थोडी सी मात्रा चाहिए और जो आयात पर बहुत कम आधारित हो तथा

(ग) वे शीघ्र विनियोग (Quick investment) के प्रकार के होने चाहिए।

भारत जैसे अल्पविकसित देश जहाँ मानव शक्ति जोकि एक प्रचुर साधन (Abundant factor) है का उचित प्रयोग होना चाहिए। इस प्रकार ऐसे उद्योगो एव तकनीक का चुनाव करना चाहिए जो अधिक मात्रा मे श्रम का प्रयोग करते हो। श्रम प्रधान उपायो को प्राथमिकता देने के कई कारण बताये जा सकते हैं। प्रथम पिछडी अर्थव्यवस्थाओ मे वास्तविक रोजगार द्वारा ही आय का वितरण होता है। इसका कारण यह *है कि पिछडी अर्थव्यवस्थाओ मे सामाजिक सुरक्षा (Social* security) की कोई व्यापक पद्धति नहीं है जिसके आधार पर रोजगार या बेरोजगारी की स्थिति मे लोगो को एक न्यूनतम जीवन स्तर (Minimum standard of living) उपलब्ध कराया जा सके। अत आर्थिक विकास का वह ढग जिसके *द्वारा आय का वितरण समस्त जनसख्या पर फैलाया जा सके* समर्थनीय होगा। श्रम उत्पादिता (Labour productivity) को बढाने के लिए श्रम को ऐसे उद्योगो से हटाकर जिनमे इसकी उत्पादिता कम है (जैसे कृषि) ऐसे उद्योगो मे लगाना चाहिए जहाँ इसकी उत्पादिता अधिक है। परिणामत कृषि मे भी तकनीकी कुशलता (Technical efficiency) मे वृद्धि होगी।

द्वितीय चूंकि किसी पिछडे हुए देश मे पूजी का अभाव होता है इसलिए स्वाभाविक ही है कि कम पूजी प्रधान उद्योगो का विकास किया जाए। दूसरे शब्दो म उत्पाद पूजी अनुपात (Output capital ratio) अधिक होना चाहिए। साथ ही साथ पूजी उपकरण (Capital equipment) ऐसे होने चाहिए जिन्हे अकुशल श्रम भी इस्तेमाल कर सके। साथ ही उद्योग ऐसे नहीं होने चाहिए जो विदेशी उपकरणो एव कच्चे *माल पर बहुत अधिक निर्भर हो क्योकि इनके कारण विदेशी* पूजी की अधिक आवश्यकता होगी और परिणामत भुगतान शेष (Balance of payments) और अधिक प्रतिकूल हो जाएगा।

तृतीय चुने गए उद्योग शीघ्र विनियोग वाले होने चाहिए अर्थात् विनियोग और उपभोग वस्तुओ के उत्पादन के बीच अवधि थोडी होनी चाहिए। स्फीतिकारी दबाव को कम करने के लिए ऐसा करना अनिवार्य है। जीवन स्तर को उन्नत *करने की दृष्टि से भी यह निर्णय युक्तिसगत है।*

विभिन्न प्रकार के विनियोजन के बीच चुनाव की समस्या का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि क्या निकट भविष्य मे

इसके द्वारा अधिक उत्पादन होगा या उद्योग कुछ समय के पश्चात् उपभोग-वस्तुओ मे उत्पादन को त्वरित करेंगे। इस परिस्थिति मे आयोजन अधिकारी को देश की वर्तमान आवश्यकताओ सम्बन्धी अनुमान लगाना होगा और यह देखना होगा कि देश में वर्तमान आवश्यकताओ को किस सीमा तक स्थगित किया जा सकेगा।

विकल्प उद्योगो के चुनाव मे आर्थिकेतर बातो ने भी महत्त्वपूर्ण भाग अदा किया है। उदाहरणार्थ, आयोजन प्राधिकार पर प्रतिरक्षा की आवश्यकताओ प्रादेशिक माँग को तुष्ट करने की आवश्यकता राजनीतिक दबाव आदि का भी प्रभाव पडता है।

अभी तक हम समग्र अर्थव्यवस्था के लिए विनियोग सम्बन्धी कसौटियो का विवेचन कर चुके हैं अर्थात् हमने उन कारणो का अध्ययन किया जिनके आधार पर आर्थिक विकास के लिए विभिन्न उद्योगो का चुनाव किया जाता है। किन्तु प्रत्येक उद्योग मे भी विकल्प तकनीकी (Alternative technique) के चुनाव का प्रश्न होता है। क्या श्रम-प्रधान तकनीक अपनायी जाये या पूजी-प्रधान तकनीक-यह भी कई बातो पर निर्भर होगा। सर्वप्रथम जो उद्योग निजी क्षेत्र के अधीन हैं उनमे सबसे निर्णयात्मक महत्त्वपूर्ण कारण उत्पादन की मौद्रिक लागत (Money cost of production) होगा, निजी उद्योगपति का उद्देश्य लागत को न्यूनतम करना और लाभ को अधिकतम करना होगा, परिणामत वह उत्पादन की ऐसी तकनीक चुनेगा जो उसे इस उद्देश्य की प्राप्ति मे सहायता दे। इसके विरुद्ध, सार्वजनिक क्षेत्र मे, उत्पादिता तथा लाभ को अधिकतम करना ही उद्देश्य नहीं होता। सामाजिक लागत (Social cost) पर भी इस सम्बन्ध मे बल दिया जाता है। इसके अतिरिक्त आर्थिक उत्पादन एव अधिक पूजी-प्रधान तकनीक को अपनाने की कठिनाई के कारण आयोजन प्राधिकार उपरोक्त को अपनाने मे असमर्थ रहता है। द्वितीय निजी उद्यमकर्त्ताओ को भी तकनीक के चुनाव मे अधिक उत्पादन एव अधिक पूजी-प्रधान तकनीक में इस बात का ध्यान रखना होगा कि कौन सी अधिक महगी है। साधारणतया निजी उद्यमकर्ता ऐसी उत्पादन की तकनीक का चुनाव करता है जिसमे अधिक पूजी लगी हुई हो और जिसका उत्पाद रोजगार अनुपात (Output employment ratio) अधिक हो, अर्थात् जो लागत कम होने के कारण अधिक उत्पादिता रखती हो। उसे उधार तथा परिशोधन (Amortisation) की अधिक लागत का भी ध्यान नहीं होता। इसके विरुद्ध, समग्र देश के लिए आयोजन प्राधिकार को ऐसी तकनीक चुननी चाहिए जो अधिक उचित हो और जिसका भार सबसे कम हो। उदाहरणार्थ, भारत मे जहाँ पर पूजी की न्यूनता और श्रम का आधिक्य है वह तकनीक उचित है जिसमे थोडी पूजी लगाकर अधिक रोजगार कायम किया जा सके।

श्रम प्रधान और पूजी-प्रधान तकनीको के क्या गुण एव अवगुण हैं। श्रम-प्रधान तकनीको और परिणामत लघु स्तर उद्योगो के बहुत से लाभ हैं। प्रथम, इनके द्वारा लाखो बेरोजगार एव अल्परोजगार व्यक्तियो को बडी मात्रा मे रोजगार उपलब्ध कराया जाता हैं। दूसरे, इन तकनीको के प्रयोग से न तो पूजी की अधिक मात्रा की आवश्यकता पडती है और न ही अधिक मशीनरी तथा उपकरणो का आयात करना पडता हैं। तीसरे, ये तकनीके ग्रामीण क्षेत्रो मे ऐसे उद्योगो मे इस्तेमाल की जाती हैं जो स्थानीय कच्चे माल का प्रयोग करते हैं। इन उद्योगो मे कपडा बुनना तेल निकालना साबुन बनाना गुड तैयार करना आदि शामिल हे। चौथे इनके द्वारा स्त्रियो तथा बच्चों को जिनकी गतिशीलता कम होती है रोजगार उपलब्ध कराया जाता है। पाँचवे श्रम-प्रधान तकनीको से शीघ्र परिणाम प्राप्त होते हैं और फलत विनियोग एव उत्पादन मे अन्तरावधि कम होती है। इस कारण इनका प्रयोग स्फीति (Inflation) के प्रभाव को कम करने के लिए किया जाता है। छठे, इनके कारण देश मे आय तथा क्रय-शक्ति का प्रसारण समस्त देश मे होता है और इस प्रकार ये उद्योग वस्तुओ की माग को विस्तृत क्षेत्र में फैला देते हैं। अन्तिम श्रम प्रधान तकनीको और लघु स्तर उद्योगो के चुनाव द्वारा (विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रो में) अनावश्यक सामाजिक लागत को हटाया जा सकता है। यदि छोटी उत्पादन इकाइयाँ ग्रामो मे ही स्थित हो तो श्रमिक अपने पारम्परिक घरो मे रहेगे परिणामत मकानो लोक स्वास्थ्य एव चिकित्सा, गन्दी बस्तियो को साफ करना, आदि पर व्यय की आवश्यकता नहीं होगी जो कि साधारणतया बडे-बडे औद्योगिक केन्द्रो मे अनिवार्य होगी।

अन्य सम्भव लाभो मे उद्योगो का सारे देश मे फैला होना (जोकि युद्ध काल मे सामरिक महत्त्व रखता है) कुछ ही लोगो के हाथो मे आर्थिक शक्ति (Economic power) का सकेन्द्रण आदि उल्लेखनीय हैं। दो अनुकूल कारण जो भारत में वर्तमान हैं श्रम प्रधान उपायो को काफी हद तक अपनाने मे सहायक हैं। इनमे से एक तो है बिजली का ग्रामो को पहुँचना (ग्रामीण विद्युतीकरण) जिससे भारत के ग्रामो मे लघु तथा मध्यम वर्गीय उत्पादन इकाइयाँ लगानी आसान हो जाती हैं। दूसरे, एक ओर तो लोह तथा इस्पात उद्योग के तीव्र विकास के कारण और दूसरी ओर, मशीनी औजारो के उद्योग के विकास के कारण ऐसी मशीनरी जिसके लिए सचालन-शक्ति की आवश्यकता हो, लगायी जा सकती है। यदि बिजली और मशीनरी का श्रम के साथ प्रयोग किया जाये तो श्रम-प्रधान तकनीक उत्पन्न वस्तुओ की उत्पादन लागत कम कर देगी

और परिणामत इन उद्योगो की स्पर्धा-क्षमता (Competitive Strength) उन्नत हो जायेगी।

पूजी-प्रधान तकनीको (Capital intensive techniques) मे लाभ मुख्यत बडे पैमाने की मितव्ययताओ द्वारा प्राप्त होते हैं। पूजी-प्रधान उपायो के कारण आन्तरिक *मितव्ययताएँ-अर्थात् प्रबन्ध तकनीक विपणन वित्त तथा* अन्य लाभ-उत्पन्न होती है। बृहद् स्तर पर उत्पादन करने से ये उत्पादन इकाइयाँ वस्तुओ तथा सेवाओ की उत्पादन लागत को कम कर सकती हैं। तीव्र औद्योगीकरण तथा जीवन स्तर को तेजी से उन्नत करने के लिए पूजी प्रधान तकनीको का प्रयोग ही केवल एक सभव उपाय है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे उद्योग हैं जिनमे पूजी-प्रधान तकनीको को अपनाना अनिवार्य है। इस सन्दर्भ मे हमारा अभिप्राय लौह तथा इस्पात *मशीनी औजार बिजली के उत्पादन आदि से है। वे लोग भी* जो विकेन्द्रीकरण की दृष्टि से श्रम-प्रधान उपायो के प्रयोग के समर्थक हे इस बात को स्वीकार करते हे कि कुछ उद्योगो मे तो पूजी-प्रधान उपायो का प्रयोग अनिवार्य है।

पूजी प्रधान उपायो के चुनाव सम्बन्धी मुख्य कठिनाई पूजी की उपलब्धि है। अल्पविकसित देशो मे तो पहले ही पूजी की कमी होती है। इसके अतिरिक्त पूजी उपकरणो तथा तकनीकी कौशल के लिए विदेशो से प्राप्त आयात पर निर्भर करना होगा। *स्वाभाविक ही है कि इससे भुगतान शेष की* स्थिति और भी गभीर बन जाए। इसके अतिरिक्त विनियोग एव वास्तविक उत्पादन मे अन्तरावधि और भी अधिक हो सकती हे और परिणामत स्फीतिकारी प्रवृत्तियाँ (Inflationary tendencies) जो पहले भी विद्यमान होती है बलवती बन सकती है।

सत्य तो यह है कि कुछ परिस्थितियो मे पूजी प्रधान तकनीको को अल्पविकसित देशो मे इसलिए अपनाया जाता है क्योंकि इनके साथ देश का औद्योगिक सम्मान जुडा हुआ होता है।

निष्कर्ष यह है कि प्रत्येक विकासमान देश को विभिन्न उद्योगो और विभिन्न वैकल्पिक तकनीको मे चुनाव करना पडता है। इस चुनाव का मूल कारण यह है कि इनमे पूजी की न्यूनता और श्रम का प्राचुर्य विद्यमान होता है।

5. प्रदर्शन प्रभाव और आर्थिक विकास (Demonstration Effect and Economic Development)

अल्पविकसित देशो मे प्रति व्यक्ति आय निम्न होने के कारण बचत भी निम्न होती हे। बचत के कम होने का दूसरा कारण प्रदशन प्रभाव भी है। देश मे लोग समृद्ध वर्गों को ऊँचे उपभोग स्तर पर जीवन व्यतीत करते देखते हैं और वे इससे उत्तेजित होकर उनकी नकल करते है। इस नकल करने से उपभोग प्रवृत्ति मे वृद्धि होती है और परिणामत बचत प्रवृत्ति कम हो जाती है। *उपभोग प्रवृत्ति मे इस उत्तेजित परिवर्तन* को प्रदर्शन प्रभाव कहते है। नर्क्स के अनुसार, प्रदर्शन प्रभाव पूजी निर्माण को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता हे क्योंकि लोग अपनी आय का अपेक्षाकृत अधिक भाग उपभोग मे इस्तेमाल करते है।

केन्ज (Keynes) के अनुसार वैयक्तिक बचत वैयक्तिक आय पर निर्भर करती है। परन्तु जब आय मे वृद्धि होती है तो उपभोग मे भी वृद्धि होती है परन्तु उपभोग मे वृद्धि आय मे वृद्धि से कम होती है। दूसरे शब्दो मे *उपभोग की सीमान्त* प्रवृत्ति इकाई से कम होती हे। यह बात किसी समय-विशेष पर तो सही है परन्तु देखा गया है कि दीर्घकाल मे बचत दर *मे कमी आती है जिसे केन्ज का नियम स्पष्ट नहीं करता।* परन्तु इसको ड्यूसेनबरी सिद्धान्त (Duesenberry effect) द्वारा वर्णन किया जा सकता है। उसके अनुसार, एक व्यक्ति का उपभोग केवल उसकी आय पर ही निर्भर नही है परन्तु वह जिस सामाजिक वर्ग के सम्पर्क मे आता है उसकी आय पर भी निर्भर करता है। वैयक्तिक उपभोग श्रित (Consumption function) स्वतत्र नहीं है परन्तु अन्त निर्भर है। यह उच्च आय वर्ग के श्रेष्ठ उपभोग ढाँचे से प्रभावित होता है। *इस प्रभाव के अनुसार, "जब लोग श्रेष्ठ वस्तुओ या उपभोग* के बेहतर प्रारूप के सम्पर्क में आते हैं जब पुरानी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए नयी वस्तुओ या नये ढगो का ज्ञान होता है तो उनको कुछ समयोपरान्त एक विशेष प्रकार की बेचैनी तथा असन्तोष का अनुभव होता है उनके ज्ञान मे विस्तार होता है उनकी कल्पना प्रेरित होती है नई इच्छाए जाग्रत होती हैं और इन सब के कारण उपभोग प्रवृति मे वृद्धि होती है। प्रदर्शन प्रभाव दो प्रकार का होता है अन्तर्देशीय और *अन्तर्राष्टीय प्रदर्शन प्रभाव।*

अन्तर्देशीय प्रदर्शन प्रभाव (Internal Demostration Effect)

सयुक्त राज्य अमेरिका के पारिवारिक बजट अध्ययनो से पता चलता है कि उच्च आय वर्ग से सम्बन्धित 25 प्रतिशत जनसख्या ही बचत करती है जबकि शेष 75 प्रतिशत जनसख्या बिल्कुल भी बचत नहीं करती। इसका कारण यह नही कि 75 प्रतिशत अमेरिको जनसख्या इतनी निर्धन है कि वह *बचत कर ही नहीं सकती परन्तु वह बचत इसलिए नहीं कर* पाती कि 25 प्रतिशत जनसख्या का उपभोग स्तर ऊँचा है और उसकी नकल करने के चक्कर मे वह अपने आपको बचत करने में असमर्थ पाती है। नर्क्स के अनुसार, "एक व्यक्ति द्वारा की जाने वाली बचत की मात्रा उसकी अपनी

आय के निरपेक्ष स्तर पर मुख्यत निर्भर नहीं करती है, परन्तु इस बात पर निर्भर करती है कि उसके सम्पर्क मे आने वाले व्यक्तियो की आय का उच्च-स्तर और उसकी आय में क्या अनुपात है।" दूसरे शब्दों मे, लोगो के उपभोग श्रित (Consumption function) एक दूसरे से स्वतत्र नहीं हैं परन्तु लोगो की इच्छाएँ और आवश्यकताएं एक दूसरे पर निर्भर करती हैं जिसके परिणामस्वरूप बचत और उपभोग पर गहरा प्रभाव पडता है।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन प्रभाव (International Demonstration Effect)

जिस प्रकार एक देश मे लोगो के उपभोग श्रित अन्त निर्भर हैं उसी प्रकार विभिन्न देशो के उपभोग श्रित अन्त निर्भर हैं। दूसरे शब्दो मे प्रदर्शन प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर क्रियाशील होता है। सामान्यतया अल्पविकसित देशो के लोग जब अन्य समृद्ध देशो के सम्पर्क मे आते हैं, तो वे असमान-जीवन स्तर (Unequal standard of living) का आभास करते हैं और उनके मन मे अपने जीवन स्तर को उन्नत करने की इच्छा उत्पन्न होती है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क के कारण निर्धन देश के लोगो की भौतिक कल्पनाओं और इच्छाओ का विस्तार होता है। उदाहरणार्थ जब भारत के लोग अमरीकनो को विलासी कारो मे घूमते, टेलीविजन, ट्रांजिस्टर, स्कूटर, टेलीफोन रेफ्रीजरेटर आदि का सामान्य जीवन मे प्रयोग करते देखते हैं तो उनके मन मे भी इन सुविधाओं और विलास-वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा जन्म लेती है।

प्रदर्शन प्रभाव के परिणाम

अर्थशास्त्रियो के अनुसार प्रदर्शन प्रभाव के एक दृष्टि से अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं। प्रोफ़ेसर नर्क्स ने इनमे बचत प्रवृत्ति पर प्रभाव और भुगतान शेष पर प्रभाव का वर्णन किया है। कुछ अन्य लेखको ने प्रदर्शन प्रभाव के अनुकूल प्रभावो अर्थात् उत्पादन बढाने की प्रेरणा, समाज के आर्थिक एव सामाजिक मूल्यो मे परिवर्तन का उल्लेख किया है। अब हम इनका अध्ययन करेंगे।

प्रदर्शन प्रभाव के प्रतिकूल प्रभाव (Negative Effects)

प्रोफेसर नर्क्स का कहना है कि अन्तर्राष्टीय स्तर पर प्रदर्शन प्रभाव के दो मुख्य कारण है—**एक विभिन्न देशों मे वास्तविक आय और उपभोग-स्तरों में असमानता की सीमा और दूसरे निर्धन देशों के नागरिकों मे इस बारे में जानकारी।** विश्व आय सम्बन्धी आकडो से पता चलता है कि अधिक आय वाले देशो मे जबकि विश्व की कुल जनसख्या का 18 प्रतिशत निवास करता है इन्हे विश्व आय का 67 प्रतिशत प्राप्त है। इसके विरुद्ध कम आय वाले देशो मे जबकि विश्व जनसख्या का 67 प्रतिशत निवास करता है, उन्हे विश्व-आय का केवल 15 प्रतिशत प्राप्त है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय असमानताएँ विस्तृत रूप मे विद्यमान हैं। परिवहन तथा सचार के साधनो के अभूतपूर्व विकास ने विभिन्न देशो को एक दूसरे के बहुत निकट कर दिया है और परिणामत इन असमानताओ का आभास तीव्र रूप से होने लगा है। उसके साथ ही निर्धन देशों में शिक्षा के विस्तार के कारण भी पहले तो इच्छाए उत्तेजित होती हैं चाहे बाद मे इससे उत्पादिता ही बढे। इन सभी कारणो का समग्र प्रभाव यह होता है कि समाज मे उपभोग प्रवृत्ति बढ जाती है।

वैयक्तिक बचत पर प्रभाव—प्रदर्शन प्रभाव के कारण फिर लोग कुछ वस्तुओ को प्रतिष्ठा का चिन्ह मानने लगते हैं। इस प्रकार उन प्रतिष्ठा वस्तुओ (Prestige Goods) को प्राप्त करने की इच्छा बलवती बन जाती है। परिणामत निर्धन देशो के लोग अपनी बचत का प्रयोग चिरस्थायी उपभोग वस्तुओ (Durable consumer goods) के क्रय के लिए करते हैं। प्रदर्शन प्रभाव के कारण समाज मे उपभोग प्रवृत्ति (Propensity to consume) बढ जाती है और इस कारण बचत-प्रवृत्ति पर दुष्प्रभाव पडता है जोकि सामाजिक दृष्टि से वाछनीय एव समर्थनीय नहीं। विशेषकर ऐसे देश मे जो विकास करने के लिए प्रयत्नशील हो, अभिदृश्य उपभोग (Conspicuous consumption) मे वृद्धि पूँजी सचय को हतोत्साहित करती है। नर्क्स ने ठीक ही लिखा है "अमरीकी उपभोग ढाँचे की नकल करने की उत्तेजना बचत करने की इच्छा को कम कर विनियोज्य राशि (Investible funds) के सभरण को सीमित कर देती है। इस प्रकार चाहे लोगो मे बचत करने की सामर्थ्य तो होती है परन्तु बचत करने की इच्छा कम हो जाने के कारण विनियोग के लिए अल्प बचत की जाने लगती है।" इस प्रकार नर्क्स का कहना है कि निर्धन देशो मे लोगो का उपभोग व्यवहार न केवल उनकी अपनी राय पर निर्भर करता है बल्कि अन्य देशो मे विद्यमान सापेक्ष आय स्तर (Relative income levels) पर भी।

यहाँ यह उल्लेख कर देना उचित होगा कि उन देशो के ऊँचे उपभोग स्तर का अल्पविकसित देशो के विभिन्न वर्गों पर भिन्न भिन्न प्रभाव पड़ा है। यह प्रभाव सबसे अधिक नगरो के उच्च आय वर्ग वाली जनसख्या पर पडता है और बाद मे यह शिक्षा और सचार के माध्यम से निम्न आय वर्ग के लोगो मे भी फैल जाता है। निष्कर्ष यह है कि उन्नत देशो मे विद्यमान अधिक आय तथा उपभोग स्तर अल्पविकसित देशों मे पूजी-निर्माण को कम करके इसे हानि पहुचा सकते हैं क्योंकि इन देशो मे राष्ट्रीय आय का अपेक्षाकृत अधिक भाग उपभोग-व्यय का रूप धारण कर लेता है।

भुगतान शेष पर प्रभाव

विकसित देशो के सम्पर्क मे आने के कारण अल्पविकसित देशो मे उपभोग व्यय मे वृद्धि होती है। विभिन्न प्रकार की चिरस्थायी उपभोक्ता वस्तुओ की माँग की जाती है। माँग का कुछ भाग तो आयात करके पूरा किया जाता है और शेष आन्तरिक उत्पादन से। परन्तु अल्पविकसित देशो मे माग अधिक और पूर्ति कम होने के कारण कीमतों में वृद्धि होती है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था मे मुद्रा स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। कीमतो के बढने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे अल्पविकसित देशो की प्रतियोगिता करने की शक्ति क्षीण हो जाती है। इस प्रकार निर्यात तीव्र गति से बढ नहीं पाता। दूसरे, अपनी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए अधिक आयात किया जाता है। अल्पवकसित देश होने के कारण आर्थिक विकास के लिए प्लाट और मशीनरी का आयात भी करना पडता है। इस प्रकार भुगतान शेष प्रतिकूल हो जाता है और यह स्थायी रूप धारण कर लेता है।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन प्रभाव के अनुकूल प्रभाव (Positive Effects)

कुछ अर्थशास्त्रियो का विचार है कि नर्क्स ने अल्पविकसित देशो पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन प्रभाव के प्रतिकूल प्रभावो पर ही अधिक बल दिया हे और अनुकूल प्रभावों की उपेक्षा की है। वास्तव में अन्तर्राष्टीय प्रदर्शन प्रभाव तो दोहरा अस्त्र है। यदि यह एक ओर बचत प्रवृत्ति को कम करता है और भुगतान शेष पर दबाव डालता है तो दूसरी ओर यह अल्पविकसित देशो को श्रेष्ठतर उत्पादन तकनीक का ज्ञान भी प्राप्त कराता है परिणामत उच्च जीवन स्तर प्राप्त करने के लिए श्रम का समरण (Supply of labour) भी बढ़ सकता है।

हम जानते हैं कि आर्थिक जीवन अनिश्चितताओ से परिपूर्ण है और इसके परिवर्तनशील स्वभाव का पूर्वानुमान लगाना बहुत कठिन है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन प्रभाव के कारण उपभोग ढाचे मे परिवर्तन के साथ साथ सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन भी आ सकते हैं।

1 विकसित देशो के सामाजिक और आर्थिक सदर्भ में जो वस्तुए उपभोक्ता वस्तुएँ कहलाती हैं वही अल्पविकसित देशो में उत्पादक वस्तुओं का कार्य कर सकती हैं। इडोनेशिया और मध्यपूर्व (Middle East) मे साईक्लि का आयात प्रतिष्ठा वस्तु के रूप मे किया गया। परन्तु बाद में महसूस किया गया कि इसको वाहन के रूप में वस्तुओ को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है। इसी प्रकार, द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् ग्रीक (Greece) के एक छोटे से कस्बे पोलिपोनेस (Poleponness) में तीन रेफिरिजरेटरो का आयात एक औषधि विक्रेता और दो डाक्टरों ने किया। प्रदर्शन प्रभाव के अन्तर्गत इनका आयात प्रतिष्ठा वस्तु के रूप मे किया गया। कुछ समय प्रयोग करने के पश्चात् लोगो ने महसूस किया कि कुछ औषधियों जैसे पेनीसिलिन एटीबायोटिक और रक्त प्लाविका (Blood plasma) को लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। अत रेफिरिजरेटर का प्रयोग इस कार्य के लिए किया गया। सुरक्षित रखने की लागत मे कमी आयी और उपभोक्ताओ को कुशल और बेहतर सेवाए उपलब्ध कराने मे सहायता मिली। इसी प्रकार ग्रीस मे समृद्ध किसानो ने प्रतिष्ठा वस्तु के रूप मे कारों का आयात किया। कुछ समय के पश्चात् महसूस किया गया कि इन कारो को फलो और सब्जियो को दूर स्थानो पर स्थित मण्डियो मे ढोने के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है। पहले परिवहन की सुविधाए अपर्याप्त और अकुशल होने के कारण अधिकाश उत्पादन गावो में ही बेचना पडता था परन्तु कारो को सामान ढोने के लिए प्रयुक्त करने के कारण नई नई मण्डियो की खोज की गई और उत्पादन बडे पैमाने पर होने लगा और उत्पादन और परिवहन लागत में कमी आयी।

यह तो अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन प्रभाव का लागत प्रभाव (Cost effect) है। इसका एक और भी प्रभाव पडा जिसे उत्पादन प्रभाव (*Production effect*) कहते हे। इससे तात्पर्य है नयी नयी प्रकार की वस्तुओ को उत्पन्न करना। इस उत्पादन प्रभाव के अतर्गत फलो और सब्जियो की नई नई किस्मो का उत्पादन किया गया। हम जानते हैं कि निम्न आय वाले देशो मे कषि वस्तुओ के प्रारूप मे परिवर्तन बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता हे। ग्रीस मे इस प्रारूप मे परिवर्तन लाने वाला समूह समृद्ध और प्रभावशाली किसान था। अब जब कारो का प्रयोग किया गया, तो यह आवश्यक था कि अच्छी और पक्की सडकें हो। इसलिए इन किसानो ने राजनीतिक दलो के प्रतिनिधियो और ससद् सदस्यो द्वारा दबाव डलवाया कि अच्छी सडकें आर्थिक विकास के लिए आवश्यक हैं। यह कहा जाता है कि ग्रीस मे कुशल सडक परिवहन इन्हीं किसानों के दबाव के कारण उन्नत हो सका।

2 अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन प्रभाव सामाजिक और आर्थिक मूल्यो (Social and economic values) मे भी परिवर्तन लाता है। इस प्रभाव के अन्तर्गत प्राय केमरा रेडियो मोटर गाडियाँ और टेलीविजन आदि वस्तुओं का आयात किया जाता है। अल्पविकसित देश के लोग जब भी औद्योगिक देशो की इन वस्तुओ के सम्पर्क मे आते हैं तो वे अपने पारम्परिक दृष्टिकोण मे परिवर्तन महसूस करने लगते हैं। इन पारम्परिक मूल्यों मे परिवर्तन आने से सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन सुलभ हो जाते है जो कि आर्थिक विकास की शर्त है।

3 अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन प्रभाव श्रम की पूर्ति मे वृद्धि लाने में सहायक हो सकता है। इस प्रभाव के कारण अल्पविकसित देशो को भौतिक इच्छाओं और कल्पनाओ मे विस्तार होता है। इन इच्छाओं को पूरा करने के लिए बचाए हुए धन का भी प्रयोग किया जाता हे और इस प्रकार उपभोग प्रवृति मे वृद्धि होती है परन्तु यह भी तो हो सकता है कि उन्नत जीवन स्तर की नकल करने के लिए आय की माग मे वृद्धि हो और अधिक आय कमाने के लिए प्राथमिकताओ मे परिवर्तन हो। लोग पहले से अधिक कार्य करना प्रारभ कर दे। इससे श्रम के सभरण मे वृद्धि होगी। श्रम के कौशल मे भी वृद्धि हो सकती है। नई प्रकार की वस्तुओ की माग को पूरा करने के लिए उद्योग स्थापित किए जाएगे और इनमे काम करने के लिए श्रमिक प्रशिक्षण प्राप्त करेगे। यह एक वास्तविकता है कि नई प्रकार की वस्तुओ के सम्पर्क मे आने से कई अल्पविकसित देशो मे काम एव अवकाश (Work and leisure) के ढाचे मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं।

आर. कर्ज और हेविट (Kurz and Hewitt) के अनुसार, जब अंग्रेज भारत मे कई विलास-वस्तुओ को लाए, तो भारतीयो ने इन वस्तुओ को प्राप्त करने के लिए कड़ी मेहनत की। रिकार्डो (Ricardo) अपनी पुस्तक *Principles of Taxation* मे लिखता है "अगर आयरलैंड के श्रमिको को वे सुविधाए और मनोरजन उपलब्ध कराए जाए, जो एक इगलिश श्रमिक के लिए आवश्यकता का अग बन गए हैं तो आइरिश श्रमिक इन सुविधाओ को प्राप्त करने के लिए उद्योग मे और अधिक श्रम लगाएगे।"

इस प्रकार प्रदर्शन प्रभाव के ऋणात्मक और सकारात्मक पहलू हैं। इनमे से कौन-सा प्रभाव अधिक बलशाली होगा यह प्रत्येक देश मे वर्तमान परिस्थितियो पर निर्भर करता है। इसलिए हम अल्पविकसित देशो के आर्थिक अलगाव की नीति को एक पराजयवादी नीति (Defeatist policy) समझते हैं। वास्तव मे अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शन प्रभाव दोधारी तलवार है परन्तु फिर भी इस प्रभाव के कारण उपभोग मे वृद्धि की प्रवृति को नियत्रण मे रखने के लिए सरकार को अवश्य प्रयत्न करना चाहिए।

आरंभिक विकास काल में अल्पविकसित देशो में प्रदर्शन प्रभाव को सीमित करने की विशेष आवश्यकता है और राज्य सरकार कई प्रकार के उपायो द्वारा ससाधनो के अपनिर्देशन (Misdirection of resources) को नियंत्रित कर सकती है। इस सम्बन्ध मे चिरस्थायी उपभोग वस्तुओ के उत्पादन को सीमित करना आवश्यक है। विकास-प्रक्रिया पर प्रदर्शन के विमन्दन प्रभाव के बल को कम करना अल्पविकसित देशो के लिए अनिवार्य है।

□□□

4

अल्पविकास और भारतीय अर्थव्यवस्था
(UNDERDEVELOPMENT AND THE INDIAN ECONOMY)

1 अल्पविकसित बनाम विकसित अर्थव्यवस्थाए
(Underdeveloped versus Developed Economies)

अर्थशास्त्र विषयक नए साहित्य मे विश्व के देशो का *अल्पविकसित और विकसित* देशो मे वर्गीकरण करने का फैशन हो गया है। पूर्व प्रचलित शब्द अर्थात् पिछडे (Back ward) और उन्नत (Advanced) के स्थान पर अल्पविकसित और विकसित शब्दो के व्यवहार को श्रेयस्कर समझा जा रहा है। 'पिछडे' शब्द की अपेक्षा अल्पविकसित नरम शब्द है क्योंकि इसमे विकास की सभावना पर बल दिया गया है। इसमे सन्देह नहीं कि अल्पविकसित और विकसित देशो का अन्तर एक प्रकार से अनियमित और कुछ हद तक मनमाना भी है। अल्पविकसित देशो के आर्थिक विकास के लिए उपाय सुझाने के उद्देश्य से नियुक्त सयुक्त राष्ट सघ के विशेषज्ञो के दल ने कहा है 'हमे **'अल्पविकसित देश' शब्द के अर्थ समझने मे कुछ कठिनाई हुई है। हमने इस शब्द का प्रयोग उन देशो के अर्थ मे किया है जिनकी प्रति व्यक्ति वास्तविक आय (Per capita real income) संयुक्त राज्य अमेरिका कनाडा आस्ट्रेलिया और पश्चिमी यूरोप की प्रति व्यक्ति वास्तविक आय की तुलना मे कम है। इस अर्थ मे 'निर्धन देश' उपयुक्त पर्याय होगा।"**[1] अत अल्पविकसित देश सापेक्ष शब्द है। सामान्यत वे देश, जिनकी वास्तविक प्रति व्यक्ति आय सयुक्त राज्य अमेरिका की प्रति व्यक्ति आय की एक चौथाई से कम है अल्पविकसित देशो के वर्ग मे रखे जाते है।

हाल ही के वर्षों मे, इन अर्थव्यवस्थाओ को 'अल्पविकसित कहने की बजाए सयुक्त राष्ट के प्रकाशनो मे इन्हे 'विकासशील अर्थव्यवस्थाओं' (Developing economies) के रूप मे सम्बोधित किया गया है। विकासशील अर्थव्यवस्थाओ के शब्द से यह बोध होता है कि चाहे ये अर्थव्यवस्थाए अल्पविकसित हैं किन्तु इनमे विकास प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है। इस प्रकार अर्थव्यवस्थाए दो वर्गों मे विभक्त की जाती है— विकासशील अर्थव्यवस्थाए और विकसित *अर्थव्यवस्थाए*

विश्व बैंक ने अपनी *World Development Report* (1997) मे प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product) के आधार पर विभिन्न देशो का वर्गीकरण किया है। विकासशील देश तीन भागो मे बाटे गए है (क) निम्न आय वाले देश जिनमे 1995 मे प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय उत्पाद (Per capita GNP) 765 डालर या इससे कम है (ख) मध्यम आय वाले देश जिनकी प्रति व्यक्ति आय 766 डालर से 9385 डालर की अभिसीमा के बीच है और (ग) उच्च आय वाले देशो मे आर्थिक सहयोग एव विकास सस्था (*Organisation for Economic Co operation and* Development—OECD) के सदस्य एव कुछ अन्य देश हैं जिनमे प्रति व्यक्ति उत्पाद 9386 डालर या इससे अधिक है।

निम्न आय वर्ग मे मुख्य देश ह बगला देश बर्मा अफगानिस्तान भारत श्रीलका चीन पाकिस्तान तनजानिया कीनिया सूडान आदि। मध्यम आय वर्ग मे मुख्य देश हैं इडोनेशिया मिस्र थाईलैण्ड फिलिपाइन्स नाइजेरिया मलेशिया दक्षिण कोरिया टर्की मेक्सिको दक्षिण अफ्रीका ब्राजील अर्जेन्टाइना यूगोस्लाविया वेनजुएला।

1 United Nat ons *Meas res for the Econom c Development of Underdeveloped Co nt es (1951) p 3*

तालिका 1 विश्व की जनसंख्या और विश्व के कुल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) का 1995 मे वितरण

देश	सकल राष्ट्रीय उत्पाद (अरब डालर)		कुल जनसंख्या (करोड)		औसत प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय उत्पाद (डालर)
1 निम्न आय वाले देश	1,367	(4 9)	318 0	(56 1)	430
2. मध्यम आय वाले देश	3 802	(13 8)	159 1	(28 0)	2,390
3 उच्च आय वाले देश	2 487	(81 3)	90 2	(15 9)	24 930
विश्व जोड	27 656	(100 0)	560 1	(100 0)	4 880
भारत	316	(1 1)	92 9	(16 4)	340

स्रोत *World Development Report (1997)* से सकलित

तालिका 1 से पता चलता है कि जहा निम्न आय वाले देशो मे 1995 म कुल विश्व जनसख्या का 56 प्रतिशत निवास करता है वहा उन्हे कुल विश्व राष्ट्रीय आय का केवल 4 9 प्रतिशत प्राप्त है। इसी प्रकार मध्यम आय वाले देशो मे कुल विश्व जनसख्या का लगभग 28 प्रतिशत रहता है परन्तु उनको कुल विश्व आय का लगभग 14 प्रतिशत प्राप्त है। यदि इन दोनो को एक साथ जोड ले तो ये ऐसे देश हैं जिन्हे आम भाषा मे 'विकासशील अर्थव्यवस्थाएं' या अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाएं' कहते है। इन अर्थव्यवस्थाओ मे विश्व की कुल जनसख्या का लगभग 84 प्रतिशत रहता है परन्तु इन्हे विश्व की कुल आय का लगभग 19 प्रतिशत प्राप्त होता है। इनमे एशिया अफ्रीका ओर लेटिन अमेरिका के अधिकतर देश और यूरोप के कुछ देश शामिल हैं।

इसके विरुद्ध, उच्च आय वाले देश जिनमे कुल विश्व जनसख्या का 16 प्रतिशत निवास करता है का विश्व की कुल आय मे 81 प्रतिशत है। जाहिर है कि विश्व अर्थव्यवस्था मे आय का सकेन्द्रण उच्च आय वाले देशो अथात् विकसित अर्थव्यवस्थाओ के पक्ष मे हो रहा है। इसके विरुद्ध, विश्व के अधिकतर गरीब निम्न आय एव मध्यम आय वाले विकासशील देशो मे रहते है। प्रोफेसर केरनक्रास (Cairncross) के शब्दो मे "अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाए विश्व अर्थव्यवस्था की गन्दा बस्तिया है।"

1995 मे भारत की जनसख्या 92 9 करोड थी जो कि विश्व की कुल जनसख्या का 16 4 प्रतिशत है परन्तु इसे विश्व आय का केवल 1 1 प्रतिशत प्राप्त था। इसका कारण भारत की प्रतिव्यक्ति आय का केवल 340 डालर होना है। जाहिर है कि भारत की गणना विश्व की निर्धन अर्थव्यवस्थाओ मे की जाती है।

सयुक्त राष्ट सघ की रिपोर्ट में दी गई परिभाषा वास्तविक प्रति व्यक्ति आय पर ध्यान केन्द्रित करती है। यद्यपि यह परिभाषा विकसित और अल्पविकसित देशो के वर्गीकरण के लिए आधार प्रदान करती है तथापि यह सकीर्ण है। यूजिन स्टेली (Eugene Staley) ने अल्पविकसित देश की निम्नलिखित परिभाषा दी है 'वह देश जिसमे (1) व्यापक निर्धनता, जो कि स्थायी हो, न कि किसी अस्थायी विपद् का दुष्परिणाम हो, और (2) उत्पादन तथा सामाजिक सगठन के अप्रचलित तरीको (Obsolete Methods) का व्यवहार होता हो, जिसका अर्थ यह हे कि निर्धनता पूर्णतया हीन प्राकृतिक ससाधनो के कारण नहीं है बल्कि इसे अन्य देशो मे परखे हुए तरीको द्वारा सभवत कम किया जा सकता है।" अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की उपर्युक्त परिभाषा से निम्नलिखित तथ्यों का सकेत मिलता है—

1 अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओ के विकसित अर्थव्यवस्थाओ से भेद का आधार निम्न प्रति व्यक्ति आय है। यद्यपि प्रति व्यक्ति आय एकमात्र आधार नहीं है किन्तु फिर भी विभिन्न अर्थव्यवस्थाओ की तुलना के लिए अकेला यहा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्व है।

2 अल्पविकसित देशों की केन्द्रीय समस्या इनमें विद्यमान 'व्यापक निर्धनता (Mass poverty) है जो इनके विकास के निम्न स्तर का कारण भी है और परिणाम भी।

3 व्यापक निर्धनता गरीबो के निम्न साधन-आधार (Low resource base) का परिणाम है। निर्धनो के पास भूमि पूजी गृह सम्पत्ति आदि के रूप मे कुल परिसम्पत् का बहुत थोडा भाग होता है। निम्न साधन-आधार के कारण करीब लोग अपने बच्चो को अच्छी शिक्षा और प्रशिक्षण (Training) दिलाने म असमर्थ रहते हैं। परिणामत गरीबो के बच्चे या तो अकुशल व्यवसायो या अर्धकुशल व्यवसायों मे काम करते है। इसके फलस्वरूप वे बहुत ही थोडी मजदूरी प्राप्त कर पाते हैं और इस कारण वे गरीबी मे ग्रस्त रहते हैं। दूसरे शब्दो मे परिसम्पत् के वितरण मे असमानता एक ओर आय के वितरण मे असमानता का प्रधान कारण है और दूसरी ओर अवसरो के असमान वितरण का।

4 अल्पविकसित देशों में व्यापक निर्धनता का कारण हीन प्राकृतिक ससाधन नहीं अपितु उत्पादन ओर सामाजिक सगठन के अप्रचलित तरीको का व्यवहार है।

2 Eugene Staley *The Future of Underdeveloped Countries* New York (1954) P 13

2. अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के रूप मे भारतीय अर्थव्यवस्था के मूल लक्षण

भारत एक *अल्पविकसित अर्थव्यवस्था है*। इसमे सन्देह नहीं कि भारत की जनसख्या का एक बहुत भाग दीनता (Destitution) की अवस्था मे रह रहा है। भारत में निर्धनता का रोग तीव्र होने के साथ चिरस्थायी भी है। इसके साथ ही भारत मे अप्रयुक्त प्राकृतिक ससाधन विद्यमान है। इसलिए भारत को विश्व के अल्पविकसित देशो मे से एक मानते हुए इसकी मूल विशेषताओ को समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है।

1 **निम्न प्रति व्यक्ति आय** (Low per capita income)—निम्न प्रति व्यक्ति आय अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओ की विशिष्टता है। 1995 मे भारत की प्रति व्यक्ति आय 340 डालर थी। चीन की 620 डालर की प्रति व्यक्ति आय भारत से अधिक है। कुछ देशो को छोडकर भारतवासियो की प्रति व्यक्ति आय विश्व मे निम्नतम है। स्विट्जरलेण्ड की प्रति व्यक्ति आय 1995 मे स्थूल रूप मे भारत की आय लगभग 119 गुना सयुक्त राज्य अमेरिका की 79 गुना है। ध्यान देने योग्य बात है कि 1960 मे सयुक्त राज्य अमेरिका को प्रति व्यक्ति आय भारत की प्रति व्यक्ति आय की तुलना मे 36 गुना थी। जाहिर है कि विकसित अर्थव्यवस्थाए भारतीय अर्थव्यवस्था की तुलना मे तेजी से प्रगति कर रही हैं और परिणामत इनमे आय-स्तर मे असमानता की खाई ओर चौडी हो गई है।

तालिका 2 **चुने हुए देशो की प्रति व्यक्ति आय (1995)**

देश	विनिमय दर के आधार पर	क्रयशक्ति के आधार पर	1985-95 में औसत वार्षिक वृद्धि दर (%)
स्विटजरलैण्ड	40 630	25 860	0.2
यू एस ए.	26 980	26 980	1 3
जर्मनी	27 510	20 070	
यू के	18 700	19 260	1 4
जापान	39 640	22,110	2.9
भारत	340	1 400	3 2
चीन	620	2,920	8 3

स्रोत *World Development Report (1997)* से संकलित

भारत की तुलना में चीन की प्रति व्यक्ति आय 620 डालर थी। कारण यह है कि 1985 95 के दौरान भारत की औसत प्रति व्यक्ति आय मे केवल 3.2 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि हुई जबकि चीन की प्रति व्यक्ति आय मे 8.3 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई। इस कारण चीन की प्रति व्यक्ति आय भारत की तुलना मे बढ गयी।

सयुक्त राष्ट्र द्वारा तैयार किए गए आकडे औपचारिक विनिमय दर पर प्राक्कलित किए गए हैं। आई बी क्रेविन (I B Kravis) एव अन्य अर्थशास्त्रियो ने यह सुझाव दिया कि वास्तविक उत्पाद की तुलना के लिए विभिन्न करेंसियों की क्रय-शक्ति (Purchasing power) को आधार बनाना चाहिए। इस विधि का प्रयोग करके यह नतीजा प्राप्त हुआ *कि औपचारिक विनिमय दर को आधार बनाकर क्रयशक्ति के* रूप मे इन देशो की आय का लगभग 60 प्रतिशत तक अल्पानुमान लगाया गया। यू एस ए की प्रति व्यक्ति आय जो औपचारिक विनिमय दर पर भारत की आय का 79 गुना थी क्रयशक्ति के रूप मे घट कर केवल 19 गुना रह गयी। चाहे इसके परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति आय के अन्तर कुछ हद तक कम हो गए हे परन्तु फिर भी विकसित देशो और भारत जैसे अल्पविकसित देश के जीवन स्तर मे अन्तर काफी बडा एव महत्त्वपूर्ण है।

2 **भारत का व्यावसायिक ढांचा प्राथमिक उत्पादनशील है**—अल्पविकसित अर्थव्यवस्था का आधारभूत लक्षण इसका प्राथमिक उत्पादनशील (Primary producing) होना है। प्राथमिक उत्पादन का इस प्रसग मे अर्थ उत्पादन के ढाचे मे कच्चे माल तथा खाद्य के उत्पादन का प्रधान होना है। दूसरे शब्दो मे कार्यकारी जनसख्या (Working population) का एक बहुत बडा भाग कृषि मे लगा रहता है और राष्ट्रीय आय मे कृषि के योगदान का अश बहुत बडा होता है। भारत मे 1991 मे कार्यकारी जनसख्या का लगभग 66 प्रतिशत कृषि मे लगा हुआ था ओर राष्ट्रीय आय मे इसका योगदान लगभग 31 प्रतिशत था। एशिया अफ्रीका ओर मध्यपूर्व के देशो मे 66 प्रतिशत से लेकर लगभग 80 *प्रतिशत से कुछ अधिक जनसख्या कृषि से अपनी जीविका* अर्जित करती है और बहुत से लेटिन अमेरिकी देशो मे दो तिहाई से तीन चौथाई जनसख्या कृषि पर निर्भर है। विकसित देशों में कृषिरत जनसख्या का अनुपात अल्पविकसिकत देशो की कृषिरत जनसख्या के अनुपात से कम है। परन्तु कृषि उत्पाद कुल राष्ट्रीय उत्पादन का बहुत बडा भाग है। उद्योगो के भाग का अपेक्षाकृत कम महत्त्व है। कृषि क्षेत्र से प्राप्त आय का भाग कृषि मे नियुक्त जनसख्या के भाग की तुलना मे कम है। इसका मूल कारण कृषि मे प्रति व्यक्ति निम्न उत्पादिता (Low productivity) है। व्यावसायिक ढाचे की दृष्टि से भारतीय अर्थव्यवस्था प्राथमिक उत्पादनशील है क्योंकि राष्ट्रीय आय मे कृषि का *भाग* लगभग 31 प्रतिशत है और भारत मे प्रत्येक 10 रोजगार प्राप्त व्यक्तियो मे से 7 कृषि मे लगे हुए है। फिर भी कृषि एक मन्द उद्योग (Depressed Industry) माना जाता है क्योंकि इसमे सलग्न जनसख्या की प्रति व्यक्ति उत्पादिता बहुत कम है।

3 **भारतीय अर्थव्यवस्था पर जनसख्या का दबाव बढ़ रहा है**—जन्म और मत्यु की ऊची दर अल्पविकसित देश की मुख्य समस्या है। जब किसी देश की अर्थव्यवस्था मे जन्मदर तथा मृत्युदर दोनो ऊचे होते हैं तो इस कारण जनसख्या की वद्धि अपेक्षाकत कम होती है। किन्तु स्वास्थ्य सुविधाओ और उत्तम सफाई व्यवस्था के प्रसार और निरोधात्मक तथा उपचारात्मक औषधियो के प्रयोग के कारण मत्युदर कम होने लगती है। इसके परिणामस्वरूप जनसख्या मे वद्धि की दर बढ जाने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस समय भारत ऐसी ही स्थिति से गुजर रहा है। 1941 50 के दौरान जनसख्या वद्धि की दर लगभग 1.31 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी किन्तु 1981 94 की अवधि मे यह बढकर 2 04 प्रतिशत हो गई। जनसख्या की इस तीव्र वद्धि का कारण मृत्युदर मे कमी होना है। 1911 20 के दौरान मृत्युदर 48 6 प्रति हजार थी किन्तु 1994 के दौरान यह घटकर 9 0 प्रति हजार रह गई। इसकी तुलना मे जन्मदर 1911 20 की अवधि मे 49 प्रति हजार थी जो 1994 मे घटकर 28.3 प्रति हजार हो गई।

जनसख्या की वृद्धि दर की तीव्रता के कारण विकास दर उन्नत करने की आवश्यकता पडती है ताकि जनता का पहले सा जीवन स्तर बनाये रखा जा सके। चूंकि जनसख्या समाज का दायित्व है इसलिए खाद्य वस्त्र, आवास औषधि, शिक्षा आदि सभी की आवश्यकताओं मे वद्धि होती है। परिणामत बढती हुई जनसख्या का देश पर अधिक आर्थिक भार पडता है और इस कारण समाज को विकास प्रक्रिया प्रोन्नत करने के लिए अपेक्षाकत अधिक प्रयास करना पडता है। इसके अतिरिक्त बढती हुई जनसख्या के काण श्रम शक्ति मे वद्धि होती है। भारत मे यह स्थिति विशेष रूप से दिखाई पडती है।

4 **भारतीय अर्थव्यवस्था मे चिरकाल से चली आ रही बेरोजगारी और अल्परोजगार की विद्यमानता**—भारत में श्रम प्रचुर तत्त्व (Abundant factor) होता है परिणामत समस्त कायकारी जनसंख्या को लाभकारी रोजगार (Ga nful employment) दिलाना बहुत कठिन होता है। विकसित देशो मे बेरोजगारी की प्रकति चक्रिक (C) clical) होती है और समर्थ माग के अभाव (Deficiency of Effective Demand) में ही बेरोजगारी उत्पन्न होती है। अल्पविकासत देशो मे बेरोजगारी का स्वरूप सरचनात्मक (*Structural*) होता है तथा इसका कारण पूजी की कमी होना है। अर्थव्यवस्था अपने उद्योगों का इतना विस्तार करने के लिए उनमे सम्पूर्ण श्रम शक्ति खपाई जा सके पर्याप्त पूजी जुटा नहीं पाती है।

इसके अतिरिक्त भारताय अथव्यवस्था मे कृषि क्षेत्र मे उत्पादन म सलग्न श्रमिको की सख्या वास्तविक आवश्यकता से बहुत अधिक है। इस प्रकार निर्वाह क्षेत्र (Subsistence sector) अर्थात् कषि मे श्रम का सीमान्त उत्पादन नगण्य, शून्य अथवा नकारात्मक है। अत कृषि मे अदृश्य अथवा गुप्त बेरोजगारी (Disguised unemployment) वर्तमान है। अतिरिक्त जनसख्या को हटा देने पर भी कषि के कुल उत्पादन में कमी नहीं आएगी क्योंकि उस अवस्था मे उन श्रमिको का पूर्ण उपयोग किया जा सकेगा जो अभी तक अपनी क्षमता से कम काम कर रहे थे।

भारत मे बेरोजगारी और अल्परोजगार की समस्या का भी सामना करना है। यद्यपि यह सच है कि शहरी क्षेत्रा मे खुली बेरोजगारी (Open unemployment) अधिक मात्रा मे विद्यमान है ग्रामीण क्षेत्र बेरोजगारी और अल्परोजगार की समस्या से पीडित है। इस सम्बन्ध मे तीसरी पचवर्षीय योजना मे उल्लेख किया गया कि "ग्रामीण क्षेत्रो मे बेरोजगारी और अल्परोजगार साथ साथ विद्यमान है। उनमें किसी भी प्रकार से भेद प्रखर नहीं हैं। गावो मे साधारणतया बेरोजगारी अल्परोजगार का रूप धारण कर लेती है। व्यस्त मौसम के दौरान कषि मे देश के अनेक भागो मे श्रम की कमी की बार बार खबर मिलती है किन्तु वर्ष के अधिकाश भाग मे कृषि श्रमिको और सम्बद्ध क्रियाओ मे सलग्न अन्य लोगो को लगातार रोजगार नहीं मिल पाता। परिणामस्वरूप श्रमिक गावो से नगरो को चले आते हैं जिसके कारण शहरी क्षेत्रो मे बेरोजगारी बढ जाती है। वास्तव मे शहरी और ग्रामीण बेरोजगारी एक ही अविभाज्य समस्या के दो पहलू हैं।"[3]

आठवीं योजना के अनुसार 1995 और 2000 के दौरान श्रमशक्ति के 410 लाख से बढ जाने का अनुमान है। इस प्रकार श्रमशक्ति की वार्षिक वद्धि दर 2.5 प्रतिशत बैठती है। इसमे यदि 250 लाख अविशिष्ट बेरोजगार व्यक्तियो को जोड दिया जाए, तो 1995 2000 के दौरान 660 लाख व्यक्तियो के लिए रोजगार का प्रबन्ध करना होगा। इतनी बडी मात्रा में बरोजगारी गभीर चिन्ता का विषय है।

5 **भारतीय अर्थव्यवस्था पूजी के अभाव (Capital Deficiency) मे ग्रस्त है**—भारताय अर्थव्यवस्था के अल्पविकास का एक अन्य मूल कारण पूजी का अभाव है जो दो रूपो मे प्रकट होता हे—प्रथम प्रति व्यक्ति उपलब्घ पूजा की निम्न मात्रा, और द्वितीय पूंजी निर्माण (Capital formation) की प्रचलित निम्न दर। अल्पविकसित देशा मे प्रति व्यक्ति उपलब्ध पूजा का कमी के दो महत्त्वपूर्ण सूचक

3 Plann ng Commission *Th rd Five year Plan* p 154

कच्चा इस्पात और विद्युत शक्ति का उत्पादन हैं।

तालिका 3 कुछ देशों में इस्पात तथा बिजली का उपभोग

देश	कच्चे इस्पात का प्रति व्यक्ति उत्पादन (1987) (किलोग्राम)	ऊर्जा का प्रति व्यक्ति उपभोग (1991) (तेल तुल्य किलोग्राम)
संयुक्त राज्य अमरीका	417	7681
इंग्लैण्ड	259	3688
जापान	582	3552
चीन	64	602
भारत	20	337

उपर्युक्त आंकड़े स्पष्ट रूप से यह निर्देश करते हैं कि उन्नत देशों की तुलना में भारत में इस्पात का प्रति व्यक्ति उत्पादन और ऊर्जा का प्रति व्यक्ति उपभोग बहुत ही कम है।

तालिका 4 कुल देशीय विनियोग और बचत

(कुल देशीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप में)

देश	कुल देशीय विनियोग		कुल देशीय बचत	
	1985	1995	1985	1995
जापान	32	2[illegible]	31	31
आस्ट्रेलिया	25	23	24	22
जर्मनी		21		23
यू एस ए	20	1[illegible]	1[illegible]	15
यू के	17	1[illegible]	19	15
भारत	21	25	17	23

स्रोत World Bank *World Development Report* (1997)

इसके अतिरिक्त भारत में पूजी निर्माण की प्रचलित दर भी कम है। संयुक्त राष्ट्र संघ के विश्व आर्थिक सर्वेक्षण World Economic Survey में कुल पूजी निर्माण के आंकड़ों से यह संकेत मिलता है कि विकसित देशों की तुलना में अल्पविकसित देशो मे कुल पूजी निर्माण कम है। प्रोफेसर कोलिन क्लार्क (Colin Clark) के अनुसार यदि किसी देश की जनसख्या एक प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ रही हो तो उसे अपने वर्तमान जीवन स्तर को कायम रखने के लिए 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष अतिरिक्त विनियोग की आवश्यकता पड़ेगी। भारत जैसे देश मे जहां जनसख्या की वृद्धि दर 2 04 प्रतिशत है (1981 91 के दौरान) बढती हुई जनसख्या के कारण उत्पन्न अतिरिक्त भार को संभालने के लिए लगभग 8 प्रतिशत तक पूंजी निर्माण की आवश्यकता है। इस प्रकार भारत जैसे निर्धन देश मे मूल्यह्रास की पूर्ति और पूर्ववत् जीवन स्तर को बनाए रखने के लिए 15 प्रतिशत तक पूंजी निर्माण की आवश्यकता पड़ती है। अत आर्थिक विकास के लिए कुल पूजी निर्माण की दर को और अधिक ऊचा उठाना आवश्यक है ताकि जनता के जीवन स्तर को उन्नत किया जा सके। बढ़ती हुई जनसख्या के सन्दर्भ में चाहे वर्तमान पूजी निर्माण दर काफी ऊची है यह पर्याप्त नहीं। 1995 में कुल देशीय विनियोग का 25 प्रतिशत तक पहुच जाना अभिनन्दनीय है।

6 परिसम्पतों का दोषपूर्ण वितरण (Maldistribution of assets) *रिजर्व बैंक आफ इण्डिया द्वारा ग्राम* परिवारों के परिसम्पत् वितरण (Asset distribution) से पता चलता है कि लगभग 24 प्रतिशत परिवारों के पास 5 000 रुपये से कम परिसम्पत् थी और उनका कुल परिसम्पत् में भाग 1 5 प्रतिशत था (देखिए तालिका 5)। न केवल यह 57 प्रतिशत ऐसे परिवारों (जिनके पास 20 000 रुपये से कम परिसम्पत् थी) का कुल परिसम्पत् में भाग केवल 12 प्रतिशत था। इसके विरुद्ध उच्चतम 8 प्रतिशत ऐसे परिवारो का (जिनके पास 100 000 रुपये से अधिक परिसम्पत् थी) कुल परिसम्पत् में लगभग 46 प्रतिशत भाग था।

तालिका 5 भारत में ग्राम परिवारो में परिसम्पत् वितरण (1981)

परिसम्पत् वर्ग	कुल परिवारों में प्रतिशत भाग	कुल परिसम्पत् के मूल्य में प्रतिशत भाग
रु 5 000 से कम	23 9	1 5
रु 5 000 से 20 000	33 3	10 5
रु 20 000 से रु 50 000	*23 8*	*21 0*
रु 50 000 से रु 100 000	11 1	21 4
रु 100 000 से अधिक	7 9	45 6

स्रोत Reserve Bank of India *All India Debt and Investment Survey (1981 82)*

परिसम्पत् वितरण मे असमानता ग्राम क्षेत्रो मे आय के असमान वितरण का मुख्य कारण है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि लगभग 60 प्रतिशत परिवारो का ससाधन आधार (Resource base) इतना कमजोर है कि वे इसके सहारे निर्वाह स्तर से कुछ भी अधिक प्राप्त नहीं कर सकते। *रिजर्व बैंक की इस खोज की राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (National Sample Survey)* के आकडो से पुष्टि प्राप्त हुई है जिनके अनुसार 60 प्रतिशत निर्धन ग्राम परिवारो के स्वामित्वाधीन सकार्य क्षेत्र (Area operated) का केवल 9 3 प्रतिशत भाग था उनके पास कुल पशुओ का 14 प्रतिशत और लकड़ी के हलों का लगभग 10 प्रतिशत था।

औद्योगिक क्षेत्र में बड़े व्यापारिक घरानों (Big business houses) के पास परिसम्पतों के सकेन्द्रण की भारी

मात्रा पायी जाती है। 1963 64 म 20 बडे व्यापारिक घरानो के पास कुल परिसम्पत् के रूप मे 1,326 करोड रुपये की परिसम्पत् उपलब्ध थी परन्तु *1988 89 तक यह बढकर* 33 197 करोड रुपए हो गई। इसमे से बिडला घराने का प्रथम स्थान था और उसकी परिसम्पत् 6 974 करोड रुपये थी और इसके बाद टाटा घराने का नम्बर था और उसके पास 6621 करोड रुपये की परिसम्पत् थी। यदि बिडला और टाटा को एक साथ लिया जाये तो इन दो बडे घरानों के पास कुल परिसम्पत् का लगभग 41 प्रतिशत था। इससे यह बात बिल्कुल साफ हो जाती है कि भारत मे परिसम्पतो का वितरण दोषपूर्ण हैं और वह आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रण का मुख्य कारण है।

7 घटिया किस्म की मानव पूजी (Human Capital) भारतीय अर्थव्यवस्था का स्पष्ट लक्षण है—अल्पविकसित अर्थव्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण उसकी मानव पूजी की घटिया किस्म है। मानवीय ससाधनो पर बहुत अधिक विनियोजन करना पडता है। स्वास्थ्य शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा, सामाजिक सेवाओ और समाज कल्याण पर किया गया व्यय मनुष्यो पर किया गया व्यय होता है। अधिकाश अल्पविकसित देशो मे व्यापक निरक्षरता (Mass Illiteracy) विद्यमान है। निरक्षरता विकास की अवरोधक है। सामाजिक समस्याओ की जानकारी के लिए शिक्षा का न्यूनतम स्तर आवश्यक होता है। ग्रामीण क्षेत्र जहा अशिक्षा का साम्राज्य फैला हुआ है सभ्यता से अछूता है और अन्धविश्वास सामाजिक प्रतिबन्ध और रुढिवाद का केन्द्र है। भाग्यवाद, दु ख को जीवन का अग स्वीकार करने की भावना और प्रारब्ध में विश्वास व्यापक अशिक्षा से सम्बद्ध हैं। उदाहरणतया, 1991 की जनगणना के अनुसार भारत म केवल 52 प्रतिशत व्यक्ति साक्षर हैं। इसका अर्थ यह है कि भारत की 48 प्रतिशत जनसख्या पढ लिख नहीं सकती जब कि आस्टेलिया कनाडा, इग्लैण्ड और सयुक्त राज्य अमेरिका मे निरक्षरता का स्तर 5 प्रतिशत से कम है।

किन्तु पूजी निर्माण की परिभाषा का इस रूप मे विस्तार कर लिया जाए कि भावी उत्पादन में योग देने वाले सभी साधन समाविष्ट हो सके तो भौतिक पूजी (Material capital) के अतिरिक्त जनता का ज्ञान और प्रशिक्षण भी पूजी का अग बन जाएगा। यही कारण है कि शिक्षा, कौशल निर्माण, अनुसधान और स्वास्थ्य सुधार पर किया गया व्यय राष्ट्रीय पूंजी (National capital) मे समाविष्ट किया जाता है। विश्व के अन्य देशो की तुलना मे भारत के अल्पविकास (Under development) के कुछ सूचक है। भारत मे शिक्षा और अनुसधान पर 1993 94 मे 279 रुपये प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष खर्च किए गए जोकि कुल राष्ट्रीय उत्पाद का लगभग 4 प्रतिशत है। इसकी तुलना मे सयुक्त राज्य अमेरिका मे शिक्षा पर व्यय *कुल राष्ट्रीय उत्पाद का 10 प्रतिशत है।*

सयुक्त राष्ट्र विकास प्रोग्राम (United Nation s Development Programme) ने देशों को मानवीय विकास सूचकाक (Human Development Index) के आधार पर स्थान दिया है। इस सूचकाक का आधार जीवन प्रत्याशा प्रौढ साक्षरता स्कूल में शिक्षा के औसत वर्ष और वास्तविक प्रतिव्यक्ति कुल देशीय उत्पाद है। यह बात बडी निराशाजनक है कि उस सूचकांक के आधार पर भारत का नम्बर 135 है जबकि चीन का नम्बर 108 है। जाहिर है कि मानवीय विकास सूचकाक के रूप मे विकसित देशो के स्तर तक पहुचने के लिए भारत को अभी एक लम्बा सफर तय करना है।

8 भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण निम्न स्तर की तकनीक (Low level of technique)—अल्पविकसित अथव्यवस्थाए तकनीकी पिछडेपन मे ग्रस्त होती हैं। इसमे सदेह नहीं कि भारत जैसी अल्पविकसित अर्थव्यवस्था मे एक ही उद्योग मे नितान्त अविकसित तकनीक के साथ साथ आधुनिक तकनीक का प्रयोग भी किया जाता है। परन्तु अधिकाश उत्पादन इकाइयो मे घटिया तकनीक का प्रयोग होता है। विकास क अभाव मे अल्पविकसित देश उत्पादन के उन पुराने और प्रचलित तरीको का प्रयोग करते चले जाते हैं जिन्हे यूरोप तथा अमरीका के उन्नत देश पहले ही छोड चुके हैं। अल्पविकसित क्षेत्रो मे कम उत्पादिता के प्रमुख कारणों मे अविकसित तकनीक एक उल्लेखनाय कारण है। इसलिए यह आवश्यक है कि नई तकनीके उत्पादन की अधिकाधिक इकाइयों तक पहुंचाई जाए ताकि इनका अथव्यवस्था में विस्तार हो सके। अत *भारतीय अर्थव्यवस्था मे नई तकनीकों* को ग्रहण करने की समस्या विद्यमान है।

चूंकि नई तकनीके महगी हैं और उत्पादन मे उनके प्रयोग के लिए काफी मात्रा मे कुशल श्रमिको की आवश्यकता होती है इसलिए नई तकनीको के भारी मात्रा मे प्रयोग करने की दो शर्तें हैं —(1) इनके क्रय के लिए पूजी की उपलब्धि और (2) काफी सख्या मे श्रमिको का प्रशिक्षण। नई तकनीक को अपनाने के लिए उत्पादको के लिए शिक्षा का एक न्यूनतम स्तर प्राप्त करना अनिवार्य है। परन्तु अल्पविकसित देशो मे ये परिस्थितिया विद्यमान नहीं। पूजी क अभाव के कारण पुरानी तकनीको को छोडकर नई तकनीको को अपनाने मे रुकावट पैदा हो जाती है। निरक्षरता और कुशल श्रमिको का अभाव नई तकनीक के प्रसार मे अन्य मुख्य बाधाए हैं।

भारतीय कृषि मे प्रति एकड निम्न उत्पादिता (Low

productivity) और कृषि एव उद्योगो के क्षेत्र मे प्रति श्रमिक निम्न उत्पादिता का प्रमुख कारण पिछडी तकनीक का प्रयोग ही है। भारत मे कृषक इतने निर्धन हैं कि फसल काटने की मशीन ट्रैक्टर और बुवाई की मशीन आदि अपेक्षाकृत महगी उत्पादन वस्तुओ की तो बात ही क्या वे अच्छे बीज उर्वरक और कीटनाशक आदि सस्ती उत्पादक वस्तुए भी खरीद नहीं पाते। उद्योग के क्षेत्र मे भी भारत मे सबसे बडी सख्या उन उद्योगो की है जिनका सचालन या तो वैयक्तिक आधार पर किया जाता है या साझेदारी के आधार पर। साथ ही यह भी सत्य है कि आधुनिक तकनीक के प्रयोग की छोटे उद्योगो के पास सामर्थ्य नहीं। इस प्रकार यह आवश्यक है कि भारत म जहा पूजी विनियोग की मात्रा बढायी जाये वहा यह भी अनिवार्य है कि उन्नत तकनीक को सभी स्तरो पर अपनाया जाए, विशेषकर छोटे पैमाने के उद्योगो को रियायती दरो पर उधार उपलब्ध कराके उन्हे उन्नत तकनीक अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।

9 औसत भारतीय का नीचा जीवन स्तर, भारत में अल्पविकास का विशेष लक्षण—भारत मे अधिकतर जनता को सतुलित भोजन (Balanced diet) प्राप्त नहीं होता और इसकी अभिव्यक्ति कैलोरी तथा प्रोटीन (Protein) के निम्न उपभोग मे मिलती है। जहां अधिकतर विकसित देशो में खाद्य का औसत कैलोरी उपभोग (Calorie intake) 3 000 से अधिक है वहा भारत मे यह केवल 1 990 है। जीवन को कायम रखने के लिए 1 800 कैलोरी के न्यूनतम स्तर से यह थोडा सा अधिक है। चूंकि 40 प्रतिशत जनसख्या गरीबी रेखा (Poverty line) के नीचे रहता है इसलिए इस बात मे भी बहुत सदेह है कि गरीब जनता 1 800 कैलोरी का न्यूनतम उपभोग भी प्राप्त कर पाती है। जनता के स्वास्थ्य पर प्रभाव डालने वाला एक और महत्वपूर्ण कारण यह है कि भारतीय भोजन अनाज प्रधान है इसके विरुद्ध विकसित देशो के लोगों के भोजन म पुष्टिकर पदार्थों अर्थात् फल, मछली अण्डा, गोश्त, मक्खन चीनी आदि की अधिक मात्रा उपलब्ध होती है। उन्नत देशो की तुलना मे प्रोटीन का उपभोग भी लगभग आधे से कम ही है।

10 भारतीय अर्थव्यवस्था के जनांकिकीय लक्षण (Demographic Characteristics) एक अल्पविकसित देश के हैं—अल्पविकास के साथ सम्बन्धित जनांकिकीय लक्षणो में जनसख्या का अधिक घनत्व 0 15 आयु वर्ग मे जनसख्या का एक बडा अनुपात और कार्यकारी आयुवर्ग (Working age group) अर्थात् 20 से 60 वर्ष के बीच जनसख्या का कम अनुपात शामिल हैं। इसके अतिरिक्त जीवन की औसत प्रत्याशा कम होती है और शिशु मृत्यु दर (Infant mortality) अधिक होती है। भारत के सदर्भ में पता चलता है कि जनसख्या का घनत्व 1991 मे 267 प्रति वर्ग किलोमीटर था। इसके विरुद्ध विश्व मे औसत जनघनत्व 29 प्रति वर्ग कि मी है। यू एस ए, मे जनघनत्व 23 है यू एस एस आर मे 11 कनाडा और आस्ट्रेलिया मे तो यह केवल 2 प्रति वर्ग कि मी है। चीन मे भी जनघनत्व 85 प्रति वर्ग किमी है। जाहिर है कि अधिक जनघनत्व होने के कारण भूमि तथा अन्य प्राकृतिक ससाधनो पर अपेक्षाकृत अधिक भार पडता है।

1991 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसख्या का 35 प्रतिशत 0 14 आयु वर्ग मे है 58 प्रतिशत कार्यकारी आयु वर्ग अर्थात् 15 से 59 के बीच है और केवल 6 प्रतिशत 60 और उससे ऊपर के आयु वर्ग मे है। दूसरे शब्दो मे भारत के उन्नत देशो की तुलना मे बच्चो का अनुपात अधिक है। जाहिर है कि यह परिस्थिति निर्भरता भार (Dependency load) को बढाती है क्योंकि अनुत्पादक जनसख्या (Unproductive Population) का आकार तथा अनुपात दोनों अधिक हैं। ऐसी परिस्थिति मे अधिक जनसख्या वृद्धि काल के दौरान बनी रहती है परन्तु जैसे जनसख्या की वृद्धि दर धीमी हो जाती है यह परिस्थिति उत्पादक जनसख्या के पक्ष में परिवर्तित हो जाती है जनसख्या का अत्यधिक निर्भरता भार अल्पविकास का एक विशिष्ट लक्षण है।

निम्न प्रति व्यक्ति आय निम्न भोजन स्तर, सतुलित भोजन का अभाव घटिया मकान और रहन सहन की बुरी दशाए ये सभी स्वास्थ्य के स्तर को नीचा रखने की ओर ही क्रियाशील होती हैं। इस घटनाचक्र की अभिव्यक्ति जीवन की निम्न प्रत्याशा (Low life expentancy) और उच्च शिशु मृत्यु दर म पायी जाती है। भारत म 1991 मे औसत प्रत्याशित आयु 57 वर्ष थी जबकि विकसित देशा मे यह 75 वर्ष थी। इसी प्रकार भारत की शिशु मृत्यु दर 1990 मे 91 प्रति हजार थी जबकि विकसित देशा मे यह 5 से 7 प्रति हजार थी।

भारत की लगभग 25 से 40 प्रतिशत जनसख्या कुपोषण की शिकार है। भारतीय भोजन मे प्रति दिन औसतन 40 ग्राम प्रोटीन प्राप्त होती है जबकि उन्नत देशा मे यह मात्रा दुगुनी है। भारत में 1960 मे दूध की प्रति व्यक्ति उपलब्धि 46 किलोग्राम थी जो 1993 94 मे बढ कर 69 किलोग्राम हो गयी है परन्तु यह अब भी विकसित देशो का तुलना म कम है। 1975 मे केवल 33 प्रतिशत जनसख्या को पीने का सुरक्षित पानी प्राप्त था। इस कारण जनता की बीमारियो का मुकाबला करने की शक्ति कम हो जाती है और यह तत्त्व भारतीय श्रमिको का निम्न कुशलता के लिए एक हद तक जिम्मेदार है।

राष्ट्रीय बिल्डिग सगठन (National Building Organisation) के अनुसार भारत म मार्च 1991 के अन्त

तालिका 6 कुछ चुने हुए देशो के रहन-सहन के सामाजार्थिक सूचक (1988-92)

देश	प्रति व्यक्ति दैनिक उपभोग			प्रत्येक मद के लिए जनसंख्या	
	चरबी (ग्राम)	प्रोटीन (ग्राम)	कैलोरी	टी वी	डाक्टर
भारत	38	55	2,395	20	2,440
चीन	46	64	2,729	4.3	730
जापान	81	95	2,921	2 1	610
जर्मनी	147	101	3 472	1 8	370
यू एस एस	154	110	3 642	1.3	420
यू के	142	94	3 270	2 2	710

तक 310 लाख मकानो की कमी थी—206 लाख ग्रामीण क्षेत्रो मे और 104 लाख शहरी क्षेत्रों मे। बडे शहरो मे गन्दी बस्तियो मे रहने वाली जनसख्या भयानक रूप धारण कर गयी है। उदाहरणार्थ 1981 मे कुल जनसख्या के प्रतिशत के रूप मे मुख्य नगरो मे गन्दी बस्तियो (Slums) मे रहने वाली जनसख्या का अनुपात इस प्रकार था कलकत्ता 35% बम्बई 38% मद्रास 32%, दिल्ली 30%, कानुपर 40% और लखनऊ 39%।

11 उपभोग के समाजार्थिक सूचक (Socio economic indicators) भारत मे अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के लक्षण मात्र हो हैं—अल्पविकास की अभिव्यक्ति कई समाजार्थिक सूचको द्वारा होती है अर्थात् प्रति व्यक्ति कैलारी उपभोग प्रति हजार जनसख्या के लिए डाक्टर, मोटर गाडियो, टेलीफोनो या टी वी सेटो की मात्रा, आदि। तालिका 6 मे कुछ चुने हुए देशो के लिए दिए गए आकडो से पता चलता है कि भारत रहन सहन के स्तर के सूचको की दृष्टि से विकसित देशो से कहीं पीछे है।

12 भारतीय अर्थव्यवस्था निर्बल आर्थिक सगठन (Poor Economic Organisation) मे ग्रस्त है—भारतीय अर्थव्यवस्था का एक अन्य महत्त्वपूर्ण लक्षण निर्बल आर्थिक सगठन है। आर्थिक विकास के लिए कुछ सस्थाए पर्याप्त रूप मे विकसित नहीं हुई हैं। उदाहरणार्थ बचत को (विशेषकर ग्रामीण बचत को) गतिमान करने के लिए वित्तीय सस्थानो (Financial Institutions) का निमाण और विकास अनिवार्य शर्त है। भारत में ग्रामाण क्षेत्रो मे वित्तीय सस्थाओ का अभाव है। हाल ही मे सरकार ने ग्रामीण क्षेत्र मे डाकघरो की सख्या बढा दी है और स्टेट बैंक आफ इंडिया ने तहसील नगरो मे अपनी शाखाए खोली हैं किन्तु अभी तक भी ग्रामीण बचत (Rural Saving) को गतिमान करने के लिए पयाप्त मात्रा में वित्तीय सस्थाए कायम नहीं की गई हैं। 1969 मे बैंक राष्ट्रीयकरण के पश्चात् ग्राम क्षेत्रो मे बैंको की शाखाओ के विस्तार मे अभूतपूर्व वृद्धि हुई है।

इसी प्रकार भारत मे जहा बडी सख्या में छोटे छोटे कृषक रहते हैं कुछ ऐसे ऋण-अभिकरणो (Credit Agencies) के विकास की आवश्यकता है जो कृषकों को आसान शर्तों पर ऋण प्रदान कर सके। इसी प्रकार उद्योगो को मध्यकालीन (Medium term) ऋण दिलाने के लिए औद्योगिक वित्त निगमो (Industrial Finance Corporations) का विकास अत्यन्त आवश्यक है।

निर्धन काश्तकारो का शोषण करने वाले जमींदार वर्ग के अस्तित्व के कारण यह आवश्यक हो गया है कि काश्तकारों को सरक्षण प्रदान करने वाले काश्तकारी विधान (Tenancy Legislation) को शीघ्र लागू किया जाए। किसान जनता की उत्पादन शक्तियो के विकास के लिए भू स्वामित्व के ऐसे सस्थानात्मक ढाचे का निर्माण करना आवश्यक है जो उसे अधिक उत्पादन के लिए प्रोत्साहित करे।

इन सब सस्थानात्मक अडचनों (Institutional Bottle necks) का समाधान करने के लिए कुशल और ईमानदार प्रशासन की आवश्यकता है। अल्पविकसित देशो में ईमानदार प्रशासको की बहुत कमी है। प्रशासन-तत्र के पुनर्गठन की आवश्यकता से आर्थिक सगठन की एक अन्य कमी का पता चलता है।

साराश यह है कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की मूल विशेषताए ये हैं प्राथमिक उत्पादनशीलता, प्रति व्यक्ति निम्न आय जनसख्या का दबाव बेरोजगारी और अल्परोजगार, पूजी की न्यूनता, तकनीक का निम्न स्तर, परिसम्पतो का दोषपूर्ण वितरण निर्बल आर्थिक सगठन और घटिया मानव शक्ति।

3 आर्थिक विकास और मानवीय विकास (Economic Development and Human Development)

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (United Nations

Development Programme) द्वारा 1990 के पश्चात् प्रकाशित साहित्य के रूप मे मानवीय विकास रिपोर्ट मे इस बात पर बल दिया गया 'मानवीय विकास ध्येय है और *आर्थिक विकास एक साधन है। अत आर्थिक विकास का* उद्देश्य जनता के जीवन को समद्ध बनाना होना चाहिए।[4] भारत में पिछले 50 वर्षों मे हुए आर्थिक विकास और अन्य देशो के अनुभव से भी यह पता चलता है कि आर्थिक विकास और मानवीय विकास मे कोई स्वचालित सम्बन्ध नहीं है।

इससे स्वाभाविक ही यह प्रश्न उठता है कि मानवीय विकास किन तत्वो पर आधारित है ? मानवीय विकास के लिए यह आवश्यक है कि रोजगार गरीबी दूर करने समाज के कमजोर और कम सम्पन्न वर्गों को अधिकार सम्पन्न (Empowerment) बनाने विकास की प्रक्रिया मे जनता के अधिकाधिक सहयोग और विकास की दीर्घकालीन पोषणीयता की समस्याओ की ओर अधिक ध्यान दिया जाए। अत मानवीय विकास मे तीन मुख्य उद्देश्यो का समावेश है वृद्धि, साम्य और लोकतन्त्र (Growth equity and democracy)।

भारत मे विकास प्रक्रिया के परिणामस्वरूप असमानता मे वद्धि हुई है। विश्व विकास रिपोर्ट (*World Develop ment Report* 1996) मे दिए गए प्रतिव्यक्ति उपभोग व्यय के आकडो से पता चलता है कि 1992 मे 20 प्रतिशत निम्नतम जनसख्या का कुल व्यय मे भाग केवल 8 5 प्रतिशत था जबकि इसके विरुद्ध उच्चतम 20 प्रतिशत जनसख्या का कुल उपभोग व्यय मे भाग 42 6 प्रतिशत था। यह सकेन्द्रण और भी अधिक प्रखर रूप धारण करता है जब यह तथ्य सामने आता है कि निर्धनतम 10 प्रतिशत जनसख्या का कुल उपभोग व्यय मे भाग केवल 3 7 प्रतिशत था जबकि उच्चतम 10 प्रतिशत जनसख्या का भाग 28 4 प्रतिशत था। दूसरे *शब्दो में यह कहना उचित होगा कि विकास के लाभ समाज* के समृद्ध वर्गों द्वारा हथिया लिए गए और गरीब वर्गों के लिए कुछ टुकडे ही बच पाए। नौवी योजना के दिशा निर्देश पत्र (1997 2002) मे यह बात साफ शब्दो मे स्वीकार की गयी है। 'चाहे समष्टि स्तर पर आठवीं योजना के दौरान अर्थव्यवस्था का निष्पादन काफी अच्छा रहा परन्तु इसमे कुछ कमजोरिया भी सामने आयीं। विशेष रूप मे यह अनुभव किया गया कि विकास के ढाचे ने गरीबो एव कम सम्पन्न वर्गों को लाभ नहीं पहुचाया। नौवीं योजना का मुख्य ध्येय जन प्रेरित आयोजन *के युग को आरभ करना होगा जिसमे न केवल केन्द्रीय और* रा यीय सरकारे ही भाग ले बल्कि आम जनता विशेषकर गरीब पूरी तरह सहयोगी बने। न्याय को सुनिश्चित करने आर अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर को त्वरित करने के लिए सहभागी *आयोजन प्रक्रिया (Participatory planning process)* का विकास एक अनिवार्य शर्त है।[5] जाहिर है कि विकास प्रक्रिया द्वारा रोजगार का इतना विस्तार नहीं हो सका कि हम पूर्ण रोजगार की स्थिति तक पहुच सके न ही इसके कारण हम गरीबी पर गहरी चोट कर पाए है। अत मानवीय विकास रिपोर्ट (*Human Development Report*) (1996) ने इस बात पर बल दिया हे कि हमे रोजगार विहीन विकास निष्ठुर विकास मूक विकास जडहीन विकास और भविष्यहीन विकास से बचने की जरूरत है।

रोजगार विहीन विकास (Jobless growth) का गुढ्यार्थ यह है कि अर्थव्यवस्था मे सकल देशीय उत्पाद की वृद्धि दर तो त्वरित हो जाती है परन्तु उसकी तुलना मे रोजगार के पर्याप्त अवसरो का विस्तार नही होता। उदाहरणार्थ छठी योजना (1980 85) के दोरान सकल देशीय उत्पाद की वृद्धि दर 5 73 प्रतिशत हुई किन्तु रोजगार की वद्धि दर केवल 1 73 प्रतिशत थी। इसी प्रकार, सातवीं योजना (1985 90) के दोरान चाहे सकल देशीय उत्पाद की वद्धि दर औसतन 5 8 रही पर रोजगार मे 1 89 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि हुई। यही परिस्थिति आठवीं योजना (1992 95) के दौरान बनी रही जिसमे पहले तीन वर्षों के दौरान रोजगार मे औसतन 2 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि सकल देशीय उत्पाद की वृद्धि दर 6 प्रतिशत से भी अधिक थी। 15 वर्षों (1980 95) की समग्र अवधि मे रोजगार की वद्धि श्रमशक्ति मे शुद्ध वृद्धि *को भी समेने मे नाकामयाब रही अवशिष्ट बेरोजगारी* (Back log unemployment) को कम करने की बात तो दूर रही। *इसका मुख्य कारण यह था कि रोजगार को विकास प्रक्रिया* का केन्द्रीय लक्ष्य नहीं माना गया बल्कि इसको कल्पना विकास के उप परिणाम के रूप मे की गयी। विकास की इस प्रक्रिया को रोजगार विहीन विकास की सज्ञा देना उचित ही है।

निष्ठुर विकास (Ruthless growth) का अर्थ ऐसी विकास प्रक्रिया से है जिसमे आर्थिक विकास के लाभो का अधिकतर भाग समृद्ध वर्गों को प्राप्त होता है और लाखो गरीब परिवारो को ओर बढती हुई गरीबी की परिस्थितियो मे सघर्ष करना पडता हे। चाहे भारतीय आयोजन के अनुभव को इस शब्द के अत्यन्त कडे अर्थ के रूप मे निष्ठुर विकास कहना सही नहीं होगा फिर भी बहुत से तथ्य हमारे सामने एक काली तस्वीर प्रस्तुत करते है। 1987 88 मे 31 2

4 UNDP *Human Development Report* (1996) p 1

5 Planning commission *Approach Paper of the Ninth Five Year Plan* (1997 2002) p 1

करोड व्यक्ति निर्धनता रेखा के नीचे रह रहे थे जैसा कि प्रोफेसर लकडवाला के नेतृत्व मे विशेषज्ञ दल ने स्पष्ट किया, इन गरीबो का अनुपात 1993 94 मे नाममात्र कम होकर 39.3 प्रतिशत की अपेक्षा 36 प्रतिशत हो गया, भले ही उनकी कुल सख्या बढकर 32 करोड हो गयी। शहरी क्षेत्रो मे गन्दी बस्तियो में रहने वाली जनसख्या का बढता हुआ अनुपात निष्ठुर विकास की ही अभिव्यक्ति है। अमीरो और गरीबों में बढता हुई खाई के कारण देश में लोग दो अलग-अलग दुनियाओ मे रह रहे हैं एक है समृद्ध वर्गों की दुनिया और दूसरी है सम्पत्ति विहीन गराब वर्गों की दुनिया।

मूक विकास (Voiceless growth) से तात्पर्य अर्थव्यवस्था के ऐसे विकास से है जिसमे लोकतत्र का विकास नहीं होता अथात् गरीब एवं कम सम्पन्न वर्गों को रूप-सय अधिकार प्रदान नहीं किए जाते। गरीबों को अधिकार सम्पन्न बनाने का मूल उपाय उन्हे सम्पत्ति का स्वामित्व प्रदान करना होगा ताकि वे बेहतर आजाविका अर्जित कर सके। अन्य उपाय है बेहतर साक्षरता, बेहतर शिक्षा एव कौशल और स्वास्थ्य। लडको ओर लडकियो के बाच साक्षरता दरों (Literacy rates) मे ताव्र अन्तर, समृद्ध और कमजोर वर्गों की शैक्षणिक उपलब्धियों मे चौडी खाइ विशेषकर अनुसूचित जातियो, जनजातियो आर अन्य पिछडे वर्गों की दयनाय दिशा, सभा मूक विकास की ओर सकेत करते हैं। अच्छा स्वास्थ्य सुविधाओ का अभाव उन परिस्थितियो के विकास मे एक ऐसी रुकावट है जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन की कुशलता को बढाने पर दुष्प्रभाव पडता हैं मूक विकास के परिहार के लिए आवश्यक हे कि स्त्रियो, अनुसूचित जातियो, जनजातियो, कृषि श्रमिको और अन्य पिछडे वर्गों को अधिकार सम्पन्न बनाया जाए।

जडहीन विकास (Rootless growth) के कारण जनसाधारण का सास्कृतिक पहचान लोप हो जाती है। विकास प्रक्रिया का मुख्य बल प्राकतिक साधनो का इस प्रकार प्रयोग करना है कि इससे अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके। इस कारण विकास प्रक्रिया के परिणामस्वरूप लाखो व्यक्तियो का विस्थापन (Displacement) इसका एक स्वाभाविक परिणाम ही था। भारत म अन्य देशो की भांति विकास को बांधो, कारखानो, रेलवे लाइनो आर ऐसी ही अन्य परियोजनाओ की सख्या द्वारा मापा जाता है। जबकि ये विकास के अग माने जा सकते हैं किन्तु यह प्रक्रिया लाखो जन जाति वर्ग के सदस्यों, विशेषकर स्त्रियो के विस्थापन को छुपा लेता हे जो कि इनके कारण बेघर हो जाते हैं और इस प्रकार वे भूमिहीन मजदूरो और प्रवासी घरेलू श्रमिको की श्रेणा मे शामिल हो जाते हैं। यह पर्यावरण के विनाश ओर विस्थापन का परिणाम ही है। इस सम्बन्ध मे शालिनी ने उल्लेख किया है " एक सन्तुलित अनुमान के अनुसार पहली छ योजनाओ मे 100 लाख से भी अधिक व्यक्ति विस्थापित किए गए। अनुसधायको के अनुसार 1956 से पूर्व 1 8 लाख व्यक्ति विस्थापित किए गए। फिर 1968 मे हाराकुण्ड डैम ने लगभग 1 1 लाख व्यक्तियो को बेघर कर दिया। सरदार सरोवर ओर टिहरी बाध जैसी योजनाओ के सम्बन्ध मे विस्थापित व्यक्तियो की सख्या 90 000 अकी गयी है। अनौपचारिक अनुमानो ने यह आकडा 2 लाख के कराब बताया है"[6] भारतीय सामाजिक सस्थान (Indian Social Institute) के डा फर्नांडीज ने दिल्ली की कुछ बस्तियो क अध्ययन से स्पष्ट किया कि 'गन्दी बस्तियो मे रहने वाले जनजातीय व्यक्ति ऐसे थे जो पिछले 15 वर्षों के दौरान विकास परियोजनाओ द्वारा विस्थापन और सूखे के कारण वननाश के फलस्वरूप शहरो मे आकर बस गए थे।" सरकारे इन लोगा के यह आश्वासन देने का प्रयास करती हैं कि राष्ट्रीय विकास के लिए यह विस्थापन एक अस्थायी कीमत है जो चुकानी ही पडती है और कुछ वर्षो के पश्चात् उनकी आर्थिक दशा मे काफा सुधार हो जाएगा। उजाडे गए जनजातियो (Tribals) या ग्राम समुदायो का बहुत थोडा क्षतिपूर्ति दी गयी। इनके पुनर्वास के प्रयास नाममात्र ही रहे और राष्ट्रीय विकास के चार दशको के पश्चात् ये जनजाताय लोग अत्यन्त दयनाय परिस्थितियो मे अपना जावन व्यतात कर रहे हैं। वन उत्पाद मे उनके प्राकतिक अधिकार ठेकेदारो द्वारा हथिया लिए गए जिनको वनो के उत्पादन के पट्टे दिए गए। जनजाताय एव ग्राम समुदायो (Village communities) की सास्कृतिक क्षति की प्रक्रिया को जडहान विकास कहा जाता है। कई गेर सरकारी सगठन इस पारिस्थितिक पतन (Ecological degradation) के विरुद्ध सघर्ष कर रहे हैं ताकि जनजातीय एव ग्राम समुदायो की पहचान नष्ट न हो जाए। विकास प्रक्रिया इन लोगा का जोकि नदियो पर बनाए गए बाधो कारखानो सडको रेलवे लाइनो ओर अन्य नगरो की स्थापना के कारण बेघर हुए हे उचित रूप मे ध्यान रखने मे विफल रही है। इसलिए तो इसे जडहान विकास की सज्ञा दी गयी है।

भविष्यहीन विकास (Futureless growth) का अर्थ विकास का ऐसी प्रणाली मे है जिसमें वर्तमान पीढा भावी पाढा के लिए आवश्यक ससाधनो का बुरी तरह अपव्यय

---

6 Shalini SCN Ecological Transitions and Tribal Domestic Women in Search of Alternatives in *Organising the Unorganised Workers* ed Ruddar Datt (1997) p 258

करती है। इस सदर्भ मे, लोहा, ताबा जस्ता, सीसा, अल्युमीनियम आदि जैसे नि शेष और गैर नवीकरण योग्य ससाधनो का विशेष महत्त्व है। इसी प्रकार धरती मा से अधिक उपज प्राप्त करना परन्तु धरती की उर्वरता की शक्तियो की क्षतिपूर्ति न करने के परिणामस्वरूप भारी मात्रा मे भूमि बजर भूमि बन जाती है। वनो को बेदर्दी से काटते चले जाना और इसके साथ साथ वनरोपन का कार्यक्रम न चलाने से पारिस्थितिकी पतन होने लगता है। इससे बार बार बाढ और सूखे पडने आरभ हो जाते हैं। अत जरूरत इस बात की है कि भविष्यहीन विकास को बढावा देने की अपेक्षा पोषणीय विकास (Sustainable development) को प्रोत्साहन दिया जाए।

नीति की दिशा

विश्वभर का अनुभव जिसमे भारत कोई अपवाद नहीं यह बताता है कि विकास की सरचना और गुणवत्ता से माग की जाती है कि वह मानवीय विकास रोजगार जनन निर्धनता समाप्ति और दीर्घकालीन पोषणीयता की ओर अधिक ध्यान दे। अन्य देशो की भाँति भारत मे भी दबाव बढ रहे है कि ससाधनो के सरक्षण प्रदूषण असमानता एव बेरोजगारी के रूप मे विकास प्रक्रिया के दुष्प्रभाव को कम करने की जरूरत है। इसी कारण मानवीय विकास रिपोर्ट ने इस बात पर बल देते हुए उल्लेख किया है 'ऐसा विकास जो आज की असमानताओ को शाश्वत बनाता है न ही पोषणीय है और न इसे कायम रखा जाना चाहिए।'

जैसा कि मानवीय विकास रिपोर्ट (1996) ने सुझाव दिया है भारत को विकास के ऐसे ढाचे को अपनाना चाहिए जो (i) रोजगार जनन विकास को प्रोन्नत करे (ii) जिससे साम्यिक विकास (Equitable growth) को बढावा मिले (iii) जिससे सहयोगी विकास (Participatory growth) प्रोन्नत हो, (iv) जिससे जमीनी विकास (Grassroot growth) प्रोन्नत हो सके और (v) जिससे पोषणीय विकास को बढावा दिया जा सके। यदि विकास के ऐसे ढाचे का अनुसरण किया जाता है तो इससे उलार विकास (Lopsided development) से बचा जा सकता है। मानवीय विकास रिपोर्ट (1996) मे चेतावनी दी गयी है 'पिछले 30 वर्षों का आर्थिक विकास और मानवीय विकास का रिकार्ड यह स्पष्ट करता है कि कोई भी देश लम्बे समय के लिए उलार विकास का मार्ग अपना नहीं सकता जहा आर्थिक विकास का प्रतितुलन मानवीय विकास के साथ न किया जाए, और विलोम क्रम भी।

तालिका 7 में भारत के विभिन्न राज्यो मे वर्तमान परिस्थिति के बारे मे बहुत ही रुचिकर जानकारी प्राप्त होती है। केरल एक ऐसा राज्य है जिसमे निम्न आर्थिक विकास के साथ उच्च मानवीय विकास का सकेत मिलता है। 1993 में केरल मे जन्म दर 17 प्रति हजार के निम्न स्तर पर पहुच गयी जोकि विकसित देशो के साथ तुलनीय है। स्त्री साक्षरता (Female literacy) 86 प्रतिशत पर पहुच गयी जबकि समग्र साक्षरता 90 प्रतिशत के उच्च स्तर पर थी। किन्तु 1980 81 और 1990 91 के दौरान राज्यीय घरेलु उत्पाद (State Domestic Product) की वद्धि दर 1 85 प्रतिशत रही और प्रति व्यक्ति शुद्ध घरेलू उत्पाद 1 851 रुपये था जो कि पजाब की तुलना मे लगभग आधा था। दूसरी ओर, हरियाणा मे प्रति व्यक्ति शुद्ध उत्पाद 1990 91 में 3 467 रुपये (1980 81 की कीमतो पर) था जिससे 1981 91 के दौरान 3 9 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर का सकेत मिलता है। किन्तु मानवीय विकास के क्षेत्र मे हरियाणा का रिकार्ड घटिया है 1993 मे इसमे जन्म दर 30 6 प्रति हजार थी और साक्षरता दर 56 प्रतिशत थी जबकि स्त्री साक्षरता दर केवल 41 प्रतिशत थी। एक अन्य अजीब परिस्थिति राजस्थान की थी जिसमे राज्यीय घरेलू उत्पाद मे 4 75 प्रतिशत की उच्च वृद्धि दर अनुभव की गयी और इस प्रकार 14 मुख्य राज्यो मे इसका स्थान 1991 मे न 13 से उन्नत होकर न 8 हो गया। इसमे गरीबी रेखा के नीचे रहने वाली जनसख्या भी 1977 78 के 38% से गिरकर 1987 88 मे 34 6% हो गयी चाहे इस गिरावट की वार्षिक दर 0 34 प्रतिशत थी जोकि देश मे सबसे कम है। किन्त मानवीय विकास के सदर्भ मे इसका रिकार्ड भी घटिया है—इसमे 1993 मे जन्म दर 33 6 प्रति हजार थी शिशु मृत्यु दर 82 और स्त्री साक्षरता दर का स्तर बहुत ही नीचा अर्थात 20 प्रतिशत था और समग्र साक्षरता दर भी लगभग 39 प्रतिशत थी। राजस्थान आर्थिक विकास के मार्ग पर तो आगे बढ रहा है परन्तु मानवीय विकास के मार्ग पर बहुत ही पिछड गया है।

भारतीय परिस्थिति मे विभिन्न राज्यो मे भारी अन्तर पाए जाते हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार है—

1 उच्च मानवीय विकास के साथ सापेक्षत नीची आय केरल

2 निम्न मानवीय विकास के साथ उच्च आय हरियाणा

3 तीव्र आर्थिक विकास किन्तु निम्न मानवीय विकास राजस्थान।

4 मन्द आर्थिक विकास के साथ मन्द मानवीय विकास पश्चिमी बगाल।

5 आर्थिक विकास और मानवीय विकास एक दूसरे को परस्पर बढाते हुए पजाब गुजरात तमिलनाडु और महाराष्ट्र।

6 आर्थिक विकास और मानवीय विकास एक दूसरे पर मन्द प्रभाव डालते हुए-आन्ध्रप्रदेश मध्यप्रदेश उत्तरप्रदेश, उडीसा और बिहार।

तालिका 7 भारत में आर्थिक विकास और मानवीय विकास के चुने हुए संकेतक

राज्य	प्रति व्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय घरेलू उत्पाद		प्रतिव्यक्ति शुद्ध उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर	गरीबी रेखा के नीचे जनसंख्या (%)		गरीबी में औसत वार्षिक गिरावट (%)	रोजगार की औसत वार्षिक वृद्धि दर 1980 91	जन्मदर 1993	मृत्युदर 1993	शिशु मृत्युदर 1993	साक्षरता (1991)	
	1980 81	1990 91		77 78	87 88						कुल	स्त्री
	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)	(9)	(10)	(11)	(12)
पंजाब	2,674	3 754	3 44	19 4	12 7	0 67	2 15	26 3	7 9	55	58 5	50 4
महाराष्ट्र	2,435	3 438	3 51	56 1	40 1	1 0	2 47	25 0	7 2	50	64 9	52 3
हरियाणा	2,370	3 467	3 88	29 5	16 6	1 29	2 56	30 6	7 8	65	55 8	40 5
गुजरात	1 948	2,559	2 78	42 2	32 3	0 99	2 53	28 0	8 1	58	61 3	48 6
प बंगाल	1 612	1 946	1 89	60 7	44 0	1 67	2 93	25 6	7 3	58	57 7	46 6
कर्नाटक	1 527	2 049	3 00	49 5	38 1	1 14	2 29	25 5	8 0	67	56 0	44 3
केरल	1 508	1 815	1 86	52 9	32 1	2 08	2 03	17 0	6 0	13	89 8	86 1
तमिलनाडु	1 498	2 219	4 00	56 3	45 1	1 12	1 83	19 2	8 0	56	62 7	51 3
आंध्र प्रदेश	1 380	177)	2 57	40 0	27 2	1 28	2 31	24 1	8 4	64	44 1	32 7
मध्य प्रदेश	1 358	1 708	2 32	62 4	43 4	1 90	2 21	33 4	12 6	106	44 2	28 9
उत्तर प्रदेश	1 278	1 615	2 35	49 2	42 0	0 72	2 47	36 0	11 4	93	41 6	25 3
उड़ीसा	1 231	1 383	1 16	70 4	55 6	1 48	1 85	27 2	12 2	110	49 1	34 7
राजस्थान	1 222	1 943	4 75	38 0	34 6	0 34	2 91	33 6	9 0	82	39 6	20 4
बिहार	917	1 185	2 60	62 0	53.4	0 86	2.13	32 1	10 6	70	38 5	22 9
अखिल भारत	1 625	2,267	3 38	51 8	39 3	1 25	2 37	28 5	9 2	74	52 2	39 3

भारतीय अभिदृश्य मे भारी असमानताए विद्यमान हैं और कई प्रतिरूपो मे अन्तर्निहित खतरे भी है। ऐसे राज्य जिनमे विकास का उलार ढाचा मानवीय विकास के विरुद्ध झुका हुआ है शीघ्र ही गतिरोध की स्थिति मे पहुच जाएगे। तीव्र आर्थिक विकास भी एक दशक या कुछ अधिक समय के पश्चात् मन्द होना शुरू हो जाएगा जब तक कि राज्य मानवीय विकास को प्रोन्नत करने का विशाल कार्यक्रम लागू नहीं करता। इसी प्रकार केरल को आर्थिक विकास को त्वरित करने का प्रोग्राम चालू करना होगा ताकि मानवीय विकास के लाभ उच्च उत्पादिता के रूप मे प्राप्त किए जा सके।

आध्र प्रदेश उत्तर प्रदेश उडीसा और बिहार जैसे पिछडे हुए राज्य निम्न आर्थिक विकास और निम्न मानवीय विकास के दुष्चक्र मे फस गए हैं। उन्हे इस दुष्चक्र को तोडने के लिए पहले विनियोग को बढाना होगा ताकि आर्थिक विकास त्वरित किया जा सके और बाद मे मानवीय विकास को बढावा देना होगा। अन्यथा वे दूसरी दिशा मे भी चल सकते है और पहले मानवीय विकास को बढावा दे जिससे बाद मे आर्थिक विकास त्वरित करने के लिए दबाव बढे।

बुनियादी प्रश्न यह है कि क्या विकास और साम्य (*Equity*) मे अन्तर्विरोध है ? एक समय था जब साइमन कुजनेट्स (Simon Kuznets) ने यह तर्क दिया कि आर्थिक विकास के आरंभिक चरणो मे असमानता बढेगी क्योकि श्रमिक कृषि को छोड उद्योग की ओर चलेगे और फिर जैसे औद्योगिक उत्पादन अधिक विस्तृत हो जाएगा यह असमानता कम हो जाएगी। इसी प्रकार निकोलास काल्डर (Nicholas Kaldor) ने यह तर्क दिया कि आर्थिक विकास को त्वरित करने के लिए बचत उद्योगपतियो की जेबो से प्राप्त होगी और इस वर्ग के लिए अधिक लाभ को बर्दाश्त करना होगा ताकि ये विनियोग के उच्च स्तर को प्रोन्नत करने के लिए बचत उपलब्ध करा सके जिससे विकास प्रक्रिया त्वरित की जा सके।

मानवीय विकास रिपोर्ट (1996) ने यह बात साफ शब्दो मे कही है "पारम्परिक विचार कि आर्थिक विकास के आरंभिक चरणो मे अनिवार्य आय-वितरण मे गिरावट आती है असत्य प्रमाणित हुआ है। नयी खोज से यह पता चला है कि सार्वजनिक और निजी ससाधनो के साम्यिक वितरण (Equitable distribution) से अधिक विकास की सभावना बढती है।[7] इस सदर्भ मे विकास साम्य और लोकतन्त्र के उद्देश्यो को एक-साथ चलाने की आवश्यकता है क्योकि वे एक दूसरे से प्रबल रूप मे जुडे हुए हैं।

विश्व बैक के 192 देशो के बारे मे किए गए अध्ययन से पता चलता है कि विकास के केवल 16% भाग को व्याख्या भौतिक पूजी (Physical capital) तीव्रता द्वारा की जा सकती है (अर्थात् मशीनरी बिल्डिग और भौतिक आधार सरचना (*Physical Infrastructure*) द्वारा, जबकि 20 प्रतिशत के लिए मानवीय एव सामाजिक पूजी (Human and social capital) को श्रेय दिया जा सकता है।

ऐसे विश्वसनीय प्रमाण के होते हुए यह वाछनीय नहीं कि आर्थिक विकास को धीरे-धीरे नीचे की ओर रिसने दिया जाए। नीचे की ओर रिसने वाले दृष्टिकोण (Trickle down *approach*) का प्रतिस्थापन रोजगार जनन विकास (Employment generating growth) से किया जाना चाहिए जिसके लिए भारत को पूर्ण रोजगार के प्रति अपनी वचनबद्धता प्रदर्शित करनी होगी। इसके साथ-साथ विकास प्रक्रिया को साम्यिक विकास के साथ अधिक जनसहयोग को बढावा देना होगा। इसके लिए सामाजिक क्षेत्र अर्थात् स्वास्थ्य और शिक्षा मे भारी विनियोग करना होगा ताकि एक बेहत्तर श्रमशक्ति द्वारा उत्पादिता बढ सके जिसके परिणामस्वरूप विकास के लाभो मे श्रम को बेहत्तर भाग मिल सके। दूसरे शब्दों मे तीव्र आर्थिक विकास और तीव्र मानवीय विकास मे कोई अन्तर्विरोध नहीं है दोनो एक दूसरे को पुष्ट करते हैं और जब तक भारत इन दोनो मे सन्तुलन स्थापित नहीं कर लेता विकास साम्य और लोकतन्त्र के उद्देश्य प्राप्त नहीं किए जा सकेगे और विकास देश के गरीब वर्गों के बडे भाग के लिए अपूर्ण ही रहेगा।

❏❏❏

7 *UNFP Human Development Report* (1996) p 6

5

भारत की राष्ट्रीय आय
(NATIONAL INCOME OF INDIA)

राष्ट्रीय आय समिति (National Income Committee) के अनुसार, "राष्ट्रीय आय के प्राक्कलन के लिए किसी अवधि-विशेष मे उत्पन्न वस्तुओ और सेवाओ की मात्रा को दुहरी बार गिने बिना मापा जाता है।"[1] इस प्रकार कुल राष्ट्रीय आय किसी अर्थव्यवस्था मे वस्तुओ और सेवाओ के प्रवाह का माप है। राष्ट्रीय आय प्रवाह है सग्रह नहीं। राष्ट्रीय सम्पत्ति (National wealth) की राष्ट्रीय आय से तुलना करे तो राष्ट्रीय सम्पत्ति एक विशेष समय मे किसी राष्ट्र के लोगो के पास विद्यमान वस्तुओ के सग्रह का माप है जबकि राष्ट्रीय आय एक दिए हुए समय मे किसी अर्थव्यवस्था की उत्पादन शक्ति को मापती है। सुविधा के लिए 'एक वर्ष की अवधि में' उत्पन्न वस्तुओ और सेवाओ की मात्रा को मापने की रीति प्रचलित है। इस प्रकार जब हम राष्ट्रीय आय की बात करते हैं तो हमारा अभिप्राय वस्तुओ और सेवाओ के वार्षिक प्रवाह से होता है। भारत मे राष्ट्रीय आय के आकडे वित्तीय वर्ष (अर्थात् 1 अप्रैल से 31 मार्च तक) पर आधारित हैं। राष्ट्रीय आय मापने के लिए एक वर्ष की अवधि को इसलिए भी आधार बनाया जाता है क्योंकि इसमे वर्ष की सभी ऋतुओ का समावेश हो जाता है।

1. भारत मे राष्ट्रीय आय के अनुमान का तरीका

किसी देश की राष्ट्रीय आय का अनुमान तीन प्रकार से लगाया जा सकता है (1) साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद, (2) साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय आय और (3) साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय व्यय। सैद्धान्तिक दृष्टि से इन तीनो तरीको द्वारा राष्ट्रीय आय का एक ही योग प्राप्त होना चाहिए परन्तु विभिन्न अनुमानो के लिए आवश्यक आकडो की विश्वसनीयता मे भिन्नता होने के कारण, इन तीनो योगो मे अन्तर विद्यमान होते हैं। उन्नत देशो में कृषि राष्ट्रीय आय का बहुत थोडा भाग उपलब्ध कराती है और निगम क्षेत्र (Corporate Sector) कुल आय का मुख्य भाग। परिणामत राष्ट्रीय आय का अनुमान *आय-गणना* प्रणाली (*Census of* Income Method) के आधार पर करना सभव है। परन्तु भारत जैसे अल्पविकसित देश मे 1983-84 मे कृषि द्वारा कुल राष्ट्रीय आय का लगभग 37 प्रतिशत उपलब्ध कराया गया और निगम क्षेत्र ने कुल उत्पादन का केवल 8 प्रतिशत भाग जुटाया इस कारण आय-गणना प्रणाली के आधार पर अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रो की आय प्राप्त करना सभव नहीं। परिणामत उत्पादन प्रणाली और आय प्रणाली के सम्मिश्रण का प्रयोग किया जाता है। यह भारत मे विद्यमान परिस्थितियो का स्वाभाविक परिणाम है।

स्वतत्रता-पूर्व काल के अनुमानों मे दादाभाई नौरोजी शाह और खम्बत फिण्डले शिराज और वाडिया एव जोशी ने कृषि क्षेत्र के उत्पादन का मूल्य प्राप्त कर इसमे एक निश्चित प्रतिशत कृषि-भिन्न क्षेत्र (Non agricultural Sector) के भाग के रूप मे जोड दिया। इन अनुमानों की मान्यताओ का कोई वैज्ञानिक आधार न था।

डॉ वी के आर वी राव का अनुमान—डॉ राव ने उत्पादन गणना प्रणाली (Census of Production Method) और *आय-गणना* प्रणाली के *सम्मिश्रण का प्रयोग किया।* उन्होंने भारत के लोगो को दो वर्गों मे बाट दिया। प्रथम वर्ग मे कृषि चरागाह खान जगल मत्स्य और आखेट को शामिल किया। इन क्षेत्रो से उत्पादन का मूल्य प्राप्त करने के लिए उत्पादन-प्रणाली का प्रयोग किया गया। द्वितीय वर्ग मे उद्योग व्यापार, परिवहन सार्वजनिक सेवाएं और प्रशासन व्यवसाय ललित कलाए और गृह सेवा शामिल किए गए। इन व्यवसायो के लिए आय गणना प्रणाली का प्रयोग किया गया। इन दो उपयोगो मे मकानो के रूप मे सम्पत्ति और अन्य ऐसी मद से प्राप्त आय को जोड दिया गया जो पहले दो *वर्गों मे शामिल* न की गई थीं। इस कुल आय-योग मे से उन वस्तुओ और सेवाओ के मूल्य को घटा दिया गया जो उत्पादन-क्रिया मे प्रयुक्त हो गए। इसमे विदेश मे प्राप्त शुद्ध आय को जोडकर

1 Government of India *First Report of the National Income Committee* April 1951, p 6

राष्ट्रीय आय का अनुमान तैयार किया गया। स्वतत्रता पूर्व काल मे उपलब्ध आकडो की विश्वसनीयता को ध्यान में रखते हुए डॉ राव का अनुमान सबसे अधिक विश्वसनीय माना जाता है। *राष्ट्रीय आय समिति और केन्द्रीय सांख्यिकी* सगठन (Central Statistical Organisation) ने डा राव की पद्धति मे कुछ सशोधन कर उसे स्वीकार कर लिया।

राष्ट्रीय आय समिति और सी एस ओ के अनुमान

स्वतत्रता उपरान्त काल के लिए राष्ट्रीय आय अनुमानो की तीन श्रृखलाए उपलब्ध है—

(1) पारम्परिक श्रृखला (Conventional Series) द्वारा 1948 की कीमतो और वर्तमान कीमतो पर राष्ट्रीय आय के अनुमान तैयार किए गए है।

(2) सशोधित श्रृखला (Revised Series) मे राष्ट्रीय आय के अनुमान 1960 61 और उनके बाद के काल के लिए वर्तमान कीमतो एव 1960 61 कीमतो पर तैयार किए गए। *यह श्रृखला 1960 61 से 1975 76 तक के लिए उपलब्ध* है। आधार वर्ष को 1970 71 मे बदल कर, 1970 71 की कीमतो पर एक नई श्रृखला तैयार की गई।

सशोधित श्रृखला मे भवन निर्माण क्षेत्र (Construction) को छोडकर सभी क्षेत्रो मे एक सी विधि अपनायी गयी। भवन निर्माण क्षेत्र मे आय प्रणाली की अपेक्षा व्यय और वस्तु प्रवाह प्रणाली (Expenditure and commodity flow approach) *का प्रयोग किया गया। वस्तु प्रवाह* के उत्पादन का अनुमान लगाया गया और इसमे स्टाक मे परिवर्तन आयात एव निर्यात के आधार पर आवश्यक घटाव बढाव किया गया। इसके अतिरिक्त परिवहन लागतो व्यापारियो के लाभान्तर (Margin) अप्रत्यक्ष करो आदि के रूप मे सहायक सूचना भी प्राप्त की गई ताकि निर्माण सामग्री का निर्माण स्थल पर मूल्य प्राप्त किया जा सके। व्यय प्रणाली द्वारा नए निर्माण पुनर्निमाण एव विस्थापन आदि पर कुल व्यय आका गया।

चालू कीमतों पर प्रत्येक क्षेत्र के योगदान को प्रत्येक क्षेत्र के कीमत सूचकाक (Price index) द्वारा सममूल्यित किया जाता हैं प्रत्येक क्षेत्र को अनुमानित वास्तविक आय को जोडकर स्थिर कीमतो पर राष्ट्रीय आय तैयार की जाती है।

1980-81 के आधार पर सी एस ओ की नयी श्रृखला

केन्द्रीय सांख्यिकी सगठन ने 1980 81 को आधार वर्ष बना कर *राष्ट्रीय आय की एक नयी श्रृखला तैयार की है।* इस आधार पर 1950 51 के बाद से 1979 80 तक 1980 81 की कीमतो पर राष्ट्रीय आय के अनुमान तैयार किए गए हैं *ताकि एक पूर्ण श्रृखला उपलब्ध हो सके।*

नयी श्रृखला मे एक मुख्य सुधार अचल पूजी के उपभोग (Consumption of fixed capital) के अनुमान की विधि के बारे म किया गया है। अचल पूजी के उपभोग के वर्तमान *अनुमान सामान्यत उद्यमो के खातों में मूल्यह्रास (Depreciation)* के लिए किए गए प्रावधान पर आधारित है या विभिन्न समग्र सर्वेक्षणो या तदर्थ अध्ययनो मे मूल्यवृद्धि (Value added) मे मूल्यह्रास के अनुपात पर आधारित हैं। सरकार द्वारा अचल सम्पत्ति के बारे मे, अचल पूजी के उपभोग का कोई अनुमान तैयार न किया जाता था क्योकि सरकार सामान्यत मूल्यह्रास के लिए कोई प्रावधान नही *करती थी। नयी श्रृखला मे अचल पूजी के उपभोग* का अनुमान तैयार करते हुए स्टाक के मूल्य वर्ष के दौरान हुए अचल पूजी निर्माण ओर प्रत्येक प्रकार की परिसम्पत् की आय को दृष्टि में रखा गया। यह दावा किया गया हैं कि नये *अनुमान इन परिसम्पतो के विस्थापन मूल्य (Replacement value)* के लगभग समान होगे। इस दृष्टि से यह विधि पहले अपनायी गयी विधि से बेहतर है और भारत मे पूजी निर्माण एव बचत पर राज कार्यदल (Raj Working Group) की सिफारिशो के अनुरूप है।

संशोधित विधि के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय सम्बन्धी योगो के अनुमानो मे 1970 71 की श्रृखला के विरुद्ध, नयी *श्रृखला मे वृद्धि देखने मे आयी है।* उदाहरणार्थ 1980 81 के दौरान साधन लागत पर कुल देशी उत्पाद 1 22 226 करोड रुपए आका गया जबकि 1970 71 की श्रृखला के अनुसार यह 1 13 548 करोड रुपए था अर्थात् 8 678 करोड रुपए की वृद्धि व्यक्त हुई। जबकि नयी श्रृखला मे आय सम्बन्धी योगो मे वृद्धि व्यक्त हुई है कुल देशीय बचत (Gross domestic saving) के अनुमान सामान्यत कम हुए है। इसका मुख्य कारण भौतिक परिसम्पतो के बारे में परिवारो की बचत के अनुमान का सशोधन हे। शुद्ध बचत की दर इनमे भी कम आकी गयी है क्योकि नयी श्रृखला मे अचल पूजी के उपभोग की दर *अधिक ऊची रखी गयी है। परिणामत नयी श्रृखला* मे 1970 71 की श्रृखला के विरुद्ध प्रतिव्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Per capita NNP) अधिक है।

2 राष्ट्रीय आय की सरचना एव वृद्धि की प्रवृत्तिया
(Trends in the Composition and Growth of National Income)

भारत के आयोजन के प्रभाव का अनुमान लगाने के लिए राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियो का अध्ययन करना आवश्यक है। केन्द्रीय *सांख्यिकी सस्थान (CSO)* ने *1980 81* की कीमतो

पर राष्ट्रीय आय के आकडे और इसके विभिन्न योग प्रस्तुत किए हैं। अत यह अच्छा होगा यदि हम आयोजन के पिछले 48 वर्षों मे राष्ट्रीय आय और राष्ट्रीय उत्पाद की सरचना मे परिवर्तन की प्रवृत्तियो का अध्ययन करे।

1 शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद और प्रति व्यक्ति आय की प्रवृत्ति--राष्ट्रीय आय एव प्रति व्यक्ति आय के आकडे चालू एव स्थिर कीमतो पर एकत्र किए जाते हैं परन्तु चालू कीमतो पर राष्ट्रीय आय सबन्धी आकडे अर्थव्यवस्था के विकास का सही चित्र प्रस्तुत नहीं करते। इसका कारण यह है कि चालू कीमतो पर राष्ट्रीय आय की वृद्धि दो कारणो से सयुक्त प्रभाव को व्यक्त करती है अर्थात् (क) वास्तविक वस्तुओ एव सेवाओ के उत्पादन की वृद्धि, और (ख) कीमतो मे वृद्धि। यदि राष्ट्रीय आय मे वृद्धि पूर्वोक्त कारण का परिणाम है तो यह वास्तविक वृद्धि की सूचक है क्योंकि इसके फलस्वरूप लोगो को वस्तुओ एव सेवाओं की अधिक मात्रा उपलब्ध हो जाती है। यदि राष्ट्रीय आय मे वृद्धि उपरोक्त कारण का परिणाम है तो यह मौद्रिक रूप मे राष्ट्रीय आय की वृद्धि को व्यक्त करती है। इसी कारण किसी काल सम्बन्धी राष्ट्रीय आय के आकडो को स्थिर कीमतो (Constant Prices) पर अवमूल्यित किया जाता है ताकि कीमतो मे वृद्धि के प्रभाव को दूर किया जा सके। इस प्रकार स्थिर कीमतो पर राष्ट्रीय आय के आकडे तुलनीय बन जाते हैं। परन्तु ये जनसख्या प्रभाव को छुपाए रखते हैं। जनसख्या वृद्धि के प्रभाव को दूर करने के लिए प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय उत्पाद या प्रति व्यक्ति आय का परिकलन किया जाता है। जहा स्थिर कीमतो पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद मे वृद्धि समाज द्वारा कुल उत्पादन प्रयास की सूचक है और यह वस्तुओ और सेवाओ की वृद्धि दर को व्यक्त करती है वहा स्थिर कीमतो पर प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि लोगो के जीवन स्तर मे परिवर्तन की सूचक है।

तालिका 1 मे दिए गए आकडो से पता चलता है कि 30 वर्षों (1950-51 से 1980 81) की अवधि के दौरान शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product) (1980-81 की कीमतो पर) की वार्षिक वृद्धि-दर (Growth Rate) 3 4 प्रतिशत रही और प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि-दर केवल 1 2 प्रतिशत थी। इसके विरुद्ध चालू कीमतो पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद की वार्षिक वृद्धि दर 8 9 प्रतिशत और प्रति व्यक्ति उत्पाद की वृद्धि दर 6 6 प्रतिशत थी। किन्तु चालू-कीमतो पर शुद्ध राष्ट्रीय आय की वृद्धि का अधिकतर भाग मिथ्या है क्योंकि यह कीमतो मे वृद्धि के कारण मौद्रिक वृद्धि को दर्शाता है विशेषकर तीसरी योजना के बाद के काल म।

आकडो को तीन अवधियो मे विभक्त करने से पता चलता है कि आयोजन के पहले 10 वर्षों (1950 51 से 1960 61) मे शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद की वार्षिक वृद्धि-दर 3 8 प्रतिशत और प्रति व्यक्ति उत्पादन की वृद्धि दर 1 8 प्रतिशत थी। परन्तु इसके बाद अर्थव्यवस्था के निष्पादन (Performance) मे गिरावट आती गयी। 1960-61 और 1970-71 के दौरान, शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद की वार्षिक वृद्धि दर कम होकर 3 4 प्रतिशत और प्रति व्यक्ति उत्पाद की केवल 1.2 प्रतिशत हो गयी। इसके बाद के 10 वर्षों (1970-71 से 1980 81) में शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि-दर 3 0 प्रतिशत हो गयी और प्रति व्यक्ति उत्पाद की तो केवल 0 7 प्रतिशत प्रति वर्ष हो गयी।

दूसरी पचवर्षीय योजना ने अपने दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य मे कल्पना की थी कि 1977 तक प्रति व्यक्ति आय को दुगुना किया जाएगा। किन्तु 30 वर्षों (1950-51 से 1980-81) के काल मे प्रति व्यक्ति आय मे केवल 50 प्रतिशत की वृद्धि यह सकेत देती है कि प्राप्ति दीर्घकालीन लक्ष्य के आधे से भी कम थी। यह हमारे देश की आयोजन प्रक्रिया पर दु खद टिप्पणी है। केवल 1993-94 में अर्थात् 43 वर्षों की अवधि मे प्रतिव्यक्ति आय दुगुनी की जा सकी। यह एक निराशाजनक परिस्थिति है।

1980-81 से 1990 91 के दशक के दौरान वृद्धि-दर मे महत्त्वपूर्ण उन्नति हुई। 1980-81 और 1990 91 के दौरान शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद मे 5 4 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि हुई और प्रति व्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद मे (1980-81 की कीमतों पर) 3 1 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई। यह एक स्वस्थ प्रवृत्ति है क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था, प्रोफेसर राजकृष्ण की उक्ति मे हिन्दू वृद्धि दर (Hindu Rate of Growth) के अवरोधक को पार कर गयी है।

1990-91 और 1995 96 के दौरान, शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (1980-81 की कीमतो पर) की औसत वार्षिक वृद्धि दर 4 9 प्रतिशत थी और प्रति व्यक्ति उत्पाद की वृद्धि दर केवल 3 4 प्रतिशत थी। 1991-92 के पश्चात् सुधार प्रक्रिया के प्रभावाधीन अर्थव्यवस्था का पुनरुत्थान हुआ है और 1992-93 ओर 1993-94 मे आरम्भ पुनरुत्थान के पश्चात् 1994 95 से 1996-97 के दौरान वृद्धि-दर तेजी से बढी। इसका कारण कृषि, विनिर्माण, बिजली निर्माण व्यापार एव होटल परिवहन ओर सचार मे तीव्र वृद्धि था। यह आशा की जाती है कि 1992 93 और 1996-97 के दौरान, सकल देशीय उत्पाद की औसत वृद्धि-दर 6.5 प्रतिशत हो जाएगी ओर प्रति व्यक्ति उत्पाद की वृद्धि दर 4.3 प्रतिशत तक पहुच जाएगी। यह एक अभिनन्दनीय प्रवृत्ति है।

2 विभिन्न योजनाओं के दौरान वार्षिक वृद्धि दरें—पहली योजना के दौरान शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP) की औसत वार्षिक वृद्धि-दर (1970-71की कीमतो पर) 3 8 प्रतिशत थी जो दूसरी योजना मे बढकर 4 प्रतिशत हो

गयी। तीसरी योजना के दौरान राष्ट्रीय आय की औसत वार्षिक वृद्धि-दर एक दम गिरकर 2 2 प्रतिशत हो गयी जो केवल जनसख्या की वृद्धि को निष्प्रभावी करने के लिए पर्याप्त ही थी। इसका सकेत इस बात से मिलता है कि तीसरी योजना के दौरान प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि-दर शून्य थी। इसका मुख्य कारण 1965-66 का भारी सूखा था जिसके परिणामस्वरूप विकास-दर धीमी पड गई। इससे *अगले वर्ष फिर सूखा पडा और साथ ही व्यापारिक प्रतिसार* (Business Recession) भी व्यक्त हुआ। 1967-68 के पश्चात् अर्थव्यवस्था ने धीरे-धीरे उन्नति करनी शुरू की और विकास दर मे सुधार हुआ। इस कारण वार्षिक योजनाओ मे अपेक्षाकृत अधिक उन्नति हुई। अत राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर 1 7 *प्रतिशत (1970-71 की कीमतो पर)* प्रतिवर्ष हुई। चौथी योजना के दौरान राष्ट्रीय आय की औसत वार्षिक वृद्धि-दर कम होकर 3 1 प्रतिशत हो गयी और वास्तविक प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर घट कर 1 1 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो गयी।

तालिका 1 साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद एवं प्रति व्यक्ति उत्पाद

अवधि	1980-81 की कीमतों पर		चालू कीमतों पर	
	शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (करोड रुपये)	प्रति व्यक्ति उत्पाद (रुपये)	शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (करोड रुपए)	प्रति व्यक्ति उत्पाद (रुपये)
1950 51	40 454	1 12	8 525	239
1960 61	58 602	1 35	14 160	328
1970 71	82 211	1 52	3(362	675
1980 81	110 685	1 6 [illegible]	1[illegible] 685	1 630
1984 85	133 808	1 8	185 018	2 504
1990 91	1 86 446	2 222	418 074	4 983
1992 93	1 95 602	2 243	546 023	6 262
1993 94	2 07 545	2 337	638 979	7 196
1994 95	2 23 580	2 449	759 597	8 402
1995 96	2 39 957	3 608	881 216	9 578
1996 97*	258 446	2 761	1 008 188	10 771
वार्षिक वृद्धि-दर				
1950 51से 1960 61	3 8	1 8	5 2	3 2
1960 61से 1970 71	3 4	1 2	9 9	7 5
1970 71से 1980 81	3 0	0 7	11 7	9 2
1980 81से 1990 91	5 4	3 1	14 2	11 6
1990 91से 1995 96	4 9	3 4	16 4	13 3

*शीघ्र अनुमान

स्रोत : 1950 51 से 1979 80 की अवधि के लिए आंकडे *(National Accounts Statistics New Series) 1950 51 to 1979 80* और बाद के काल के लिए आर्थिक समीक्षा (1997 98) से आकडे लिए गए हैं।

पाचवी योजना के पहले 4 वर्षों के दौरान (1974-75 से 1977-78) राष्ट्रीय आय की औसत वार्षिक वृद्धि-दर 4 प्रतिशत थी और प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर केवल 2 3 *प्रतिशत थी। कुल मिलाकर पाचवीं योजना के दौरान अर्थव्यवस्था* की प्रगति सतोषजनक समझी जा सकती है।

छठी योजना (1980 85) के दौरान भारत की राष्ट्रीय *आय मे 4 7 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि और प्रति व्यक्ति आय* मे 2 5 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

सातवीं योजना (1985 90) के दौरान भारत के शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद मे 5 4 प्रतिशत की दर से वार्षिक वृद्धि हुई और प्रति व्यक्ति उत्पाद की वृद्धि दर 3 3 प्रतिशत रही। जाहिर है कि सातवीं योजना शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद मे 5 प्रतिशत और प्रति व्यक्ति उत्पाद मे 3 प्रतिशत के लक्ष्य को प्राप्त करने म सफल हुई। यह एक अभिनन्दनीय स्थिति है।

आठवीं योजना (1992 97) के दौरान सकल देशीय उत्पाद मे 6 5 प्रतिशत की वृद्धि दर ओर प्रति व्यक्ति उत्पाद मे 4 3 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त करने की सभावना हे। यह अत्यन्त अभिनन्दनीय प्रवृत्ति हे इस प्रवृत्ति को बनाए रखना होगा।

3 *राष्ट्रीय आय के उद्योगवार वितरण की प्रवृत्ति*- तालिका 2 मे शुद्ध देशीय उत्पाद (Net domestic product) के उद्योगवार वितरण की सरचना मे परिवर्तन का पता *चलता है।*

(*i*) प्राथमिक क्षेत्र मे कृषि वन क्षेत्र मत्स्य क्षेत्र और खाने शामिल किए जाते है इसका भाग जो 1950 51 मे *शुद्ध देशीय उत्पाद का 55 3 प्रतिशत था कम होकर 1970 71* मे 44 5 प्रतिशत हो गया और फिर ओर कम होकर 1995 96 मे 26 8 प्रतिशत हो गया। कृषि द्वारा 1950 51 मे सकल *देशीय उत्पाद का 48 6 प्रतिशत योगदान किया गया* परन्तु यह भाग 1995 96 मे गिरकर 25 प्रतिशन हो गया। प्राथमिक क्षेत्र मे कृषि सबसे महत्तपूर्ण है और कृषि उत्पादन मे *परिवर्तन की प्रवृत्ति ही राष्ट्रीय उत्पादन मे प्राथमिक के भाग* को निर्धारित करती है।

(*ii*) द्वितीयक क्षेत्र के दो प्रमुख अग है—विनिर्माण *(Manufacturing)* और *निर्माण (Construction)। सकल* देशी उत्पाद मे विनिर्माण का भाग 1950 51 मे 12 5 प्रतिशत था जो 1995-96 में वढकर 24 2 प्रतिशत हो गया।

तालिका 2 साधन लागत पर सकल देशीय उत्पाद का वितरण

	प्रतिशत वितरण (1980-81 की कीमतों पर)		
	1950 51	1970 71	1995 96
(क) प्राथमिक क्षेत्र	55.3	44 5	26 8
1 कृषि	48 6	39 7	25 0
2. वन, मत्स्य एवं खाने	5 7	4 8	1 8
(ख) द्वितीयक क्षेत्र	16 1	2 36	31 1
3 विनिर्माण	12 5	17 4	24 2
4 निर्माण	3 3	5 0	4 3
5 बिजली गैस एवं जलसंभरण	0 3	1 2	2 6
(ग) तृतीय क्षेत्र	28 5	31 8	42 1
6 व्यापार, परिवहन आदि	11 0	14 2	20 1
7 वित्त एवं वास्तविक जायदाद	9 0	8 0	11.3
8 सामुदायिक एवं वैयक्तिक सेवाएं	8 5	9 6	10 7
कुल शुद्ध घरेलू उत्पाद	100 0	100 0	100 0

(iii) तृतीयक क्षेत्र मे व्यापार, परिवहन गोदाम सचार, बैंकिंग बीमा, वास्तविक जायदाद और सामुदायिक एव वेयक्तिक सेवाए शामिल की जाती हैं। तृतीयक क्षेत्र का कुल देशीय उत्पाद में भाग 1950 51 मे 28 5 प्रतिशत था जो 1995 96 मे बढकर 42 1 प्रतिशत हो गया। ततीयक क्षेत्र म तीन अग है (क) परिवहन, सचार और व्यापार का भाग जो 1950 51 मे 11 प्रतिशत था उन्नत होकर 1995 96 मे 20 1 प्रतिशत हो गया। (ख) बैंकिंग बीमा और वास्तविक जायदाद (Real estate) अर्थात गृह आवास और व्यापारिक सेवाओ का भाग 9 0 प्रतिशत से बढकर 11 3 प्रतिशत हो गया। (ग) सार्वजनिक प्रशासन और प्रतिरक्षा का भाग जो 1950 51 में 2 3 प्रतिशत था बढकर 1995 96 मे 4 9 प्रतिशत हो गया। परन्तु इसके विरुद्ध वेयक्तिक सेवाओ का भाग जो 1950 51 मे 6 4 प्रतिशत था कम होकर 1995 96 मे 5 8 प्रतिशत हो गया। यदि सामुदायिक एव वेयक्तिक सेवाओ को एक साथ लिया जाये तो इनके भाग में सीमात वृद्धि हुइ और यह 1950 51 के 8 5 प्रतिशत की तुलना मे बढकर 1995 96 म 10 7 प्रतिशत हो गया।

उद्योगवार राष्ट्रीय आय के मिश्रण के सरचनात्मक परिवर्तन योजनाओ के दौरान आर्थिक विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ करने का परिणाम हैं। चूंकि विकास प्रक्रिया के दौरान सगठित क्षेत्र म विनिर्माण का तीव्र विस्तार अन्तर्निहित था, इसलिए विनिर्माण का भाग राष्ट्रीय आय मे प्रोन्नत होना स्वाभाविक था। किन्तु कृषि मे विकास की दर अधिक नहीं रही। 1950 51 से 1990 91 के बीच कृषि के वास्तविक उत्पादन की वृद्धि दर 2 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी परन्तु इसके विरुद्ध इस काल के दौरान विनिर्माण की वार्षिक वृद्धि दर 5 6 प्रतिशत थी। इसी प्रकार व्यापार, परिवहन एव सचार की वृद्धि दर भी 5 4 प्रतिशत थी। बैंकिंग बीमा और वास्तविक जायदाद म विकास दर 4 4 प्रतिशत थी परन्तु सार्वजनिक प्रशासन और प्रतिरक्षा मे समग्रकाल के दौरान विकास दर 6 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो रही।

आर्थिक विकास का सिद्धान्त भी राष्ट्रीय उत्पाद के मिश्रण में सरचनात्मक परिवर्तन का समर्थन करता है। विकसित देशो मे कुल देशीय उत्पाद (Gross Domestic Product) के वितरण मे उद्योगो और सेवाओं का भाग अधिक है और कृषि का भाग अपेक्षाकृत कहीं कम है। विकसित और अल्पविकसित देशो की प्रति व्यक्ति आय म असमानता उनको अर्थव्यवस्थाओ की सरचना में असमानता का ही प्रतिबिम्ब है। जबकि विकसित अर्थव्यवस्थाए अपनी सरचना मे अधिकतर औद्योगीकृत हैं, भारत जैसी अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाए मुख्यत कृषि प्रधान हैं।

जैसे औद्योगीकरण प्रगति करता है उसके फलस्वरूप उद्योगो और सेवाओ के भाग में उन्नति होती है। भारतीय अर्थव्यवस्था कृषि-अर्थव्यवस्था से औद्योगीकृत अर्थव्यवस्था में प्रवेश करने की सक्रान्ति प्रक्रिया (Process of trasition) मे से गुजर रही है। इस प्रक्रिया म राष्ट्रीय आय के मिश्रण मे एक सरचनात्मक परिवर्तन होना आवश्यक है। यह सरचनात्मक परिवर्तन हो रहा है चाहे इसकी गति धीमी है।

जसी कि विकास प्रक्रिया मे प्रत्याशा रहती है भारत म भी ततीय क्षेत्र के भाग मे उन्नति अनुभव की गयी। इसका मुख्य कारण परिवहन एव सचार, बैंक तथा बीमा और प्रशासन का तेज गति से विस्तार है। तृतीय क्षेत्र के सभी अगो का 1950 51 और 1990 91 के दौरान 4 9 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर से विकास हुआ जोकि अर्थव्यवस्था मे सकल देशीय उत्पाद की समग्र औसत 4 1 प्रतिशत की वृद्धि से अधिक है। राष्ट्रीय आय की बदलती हुई सरचना को और प्रोत्साहन देने के लिए औद्योगीकरण के प्रोग्राम को और मजबूत बनाना होगा। इसका अर्थ कृषि की उपेक्षा नहीं है बल्कि कृषि मे विकास प्रक्रिया को त्वरित करने के लिए अर्थव्यवस्था का औद्योगीकरण करना है और इसके लिए कृषि पर आधारित उद्योग या कृषि को आदान (Input) उपलब्ध कराने वाले उद्योगो का विकास अनिवार्य है। इस प्रकार की भारतीय अर्थव्यवस्था को अल्पविकसित से विकसित अर्थव्यवस्था म परिवर्तित करने की प्रक्रिया पूरी हो सकती है।

4 शुद्ध घरेलू उत्पादन मे सरकारी क्षेत्र का भाग (चालू कीमतो पर) 1960 61 की तुलना मे 10 6 प्रतिशत से बढकर 1995 96 मे 24 (प्रतिशत हो गया। सरकारी क्षेत्र मे वृद्धि क्रमश राज्य की आर्थिक क्रियाओ के विस्तार की सूचक है। इसका मुख्य कारण सरकारी प्रशासन एव गैर विभागीय उद्यमो (Non departmental Enterprises) के क्षेत्र का विस्तार है। (देखिए तालिका 3)

तालिका 3 शुद्ध देशीय उत्पाद मे सरकारी क्षेत्र

मद	वर्तमान कीमतों पर प्रतिशत वितरण		
	1960 61	1969 70	1995 96
सरकारी क्षेत्र में शुद्ध उत्पाद	10 7	14 0	46
(i) सरकारी प्रशासन	5 5	6 8	5 8
(ii) विभागीय उद्यम	3 3	3 9	3
(iii) गैर विभागीय उद्यमो	1 3	3 3	1 4

8 भारत मे राष्ट्रीय आय प्राक्कलन की सीमाए
(Limitation of National Income Estimation in India)

राष्ट्रीय आय प्राक्कलन देश की आर्थिक क्रिया तथा देश की अर्थव्यवस्था के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो की क्रिया का शाब्दिक वर्णन करने की बजाय परिमाणात्मक मापदण्ड (Quantitative measure) निर्मित करता है।[2] इस प्रकार राष्ट्रीय आय का प्राक्कलन करते समय लाखो आर्थिक मात्राओ (Economic quantities) का योग करना पडता है। इस उद्देश्य के लिए किसी समाज की परपरा और पद्धति पर आधारित कुछ मूलभूत निर्णयो और सामाजिक कसौटियो को ध्यान मे रखना पडता है। उदाहरणतया सेवाओ के समावेश की समस्या विवादास्पद है

सयोगवश भौतिक उत्पादन प्रणाली (System of material production) के साहित्य मे जिसका प्रयोग भूतपूर्व केन्द्रीय आयोजित अर्थव्यवस्थाओ (Centrally planned economies) मे किया जाता था सेवाओ को दो भागो मे विभक्त किया गया—भौतिक (अथवा उत्पादक) और अभौतिक (अथवा अनुत्पादक)। भौतिक या उत्पादक सेवाओ मे परिवहन एव सचार और वाणिज्य (जिसमे थोक एव परचून क्रियाए और रेस्तरा भी शामिल है) अनिवार्यत अन्य सभी वैयक्तिक एवं अधिकतर सार्वजनिक सेवाए भौतिक उत्पादन के क्षेत्र से बाहर रखी गयीं। परन्तु भौतिक उत्पादन प्रणाली के विरुद्ध राष्ट्रीय लेखा प्रणाली (National System of Accounts) मे कोई ऐसा भेद नहीं किया गया और सभी सेवाए उत्पादक क्रियाए ही मानी गयीं। अत राष्ट्रीय लेखा प्रणाली मे सभी सेवाओं को भारतीय राष्ट्रीय आय का अग माना गया। इसी से मिलता जुलता विवाद सरकारी प्रशासनिक सेवाओं के समावेश के सम्बन्ध मे है। प्राक्कलनकर्त्ता के लिए यह गुत्थी सुलझाना कठिन है कि सरकार के सामान्य प्रशासन का कौन सा भाग व्यापारिक फर्मों के प्रति सेवा है जो अपने उत्पादन के मूल्य मे सम्मिलित रहने के कारण नहीं गिना जाना चाहिए तथा कौन सा भाग व्यक्तियो और उपभोक्ताओ के रूप मे जनता के प्रति सेवा है जिसकी गणना की जानी चाहिए। इसी प्रकार उत्पादन प्रक्रिया मे क्या उपभोग है और क्या शुद्ध उत्पाद, यह विचार करते समय प्राक्कलनकर्त्ता समाज के निर्णय का जिनके अनुसार वैयक्तिक अथवा सामूहिक रूप मे व्यक्तियो के उपभोग के लिए अथवा पूजी सग्रह मे योग करने के लिए उपलब्ध वस्तुए शुद्ध उत्पाद होती है अनुसरण ही करता है।

उक्त सैद्धान्तिक समस्याओ के अतिरिक्त राष्ट्रीय आय के प्राक्कलन की अनेक सीमाए है जिनकी भारत के लिए विशेष रूप मे सार्थकता है। अब हम उनका विवेचन करेगे—

1 अमुद्रीकृत (Non monetised) क्षेत्र का उत्पाद— राष्ट्रीय उत्पाद मापते समय साधारणतया यह मान लिया जाता है कि उत्पादित वस्तुओ और सेवाओ का मुद्रा से विनिमय होता है। भारत जैसे अल्पविकसित देश मे जहा निर्वाह खेती (Subsistence farming) की जाती है उपज का काफी भाग विक्रय के लिए बाजार मे नही आ पाता। इस भाग को या तो उत्पादक उपभोग के लिए रख लेते है या अन्य वस्तुओ और सेवाओ के विनिमय मे उसे दूसरे उत्पादको को दे देते है। कृषि उत्पाद के इस अश की उपेक्षा कर देने पर राष्ट्रीय उत्पाद मे काफी कमी हो जाएगी। तात्पर्य यह है कि भारत के सम्बन्ध मे एक विशेष कठिनाई अमुद्रीकृत क्षेत्र के उत्पादन का अभ्यारोपित मूल्य (Imputed Value) तय करके उसे मुद्रीकृत क्षेत्र के मूल्य मे जोडना है।

2 छोटे उत्पादको या घरेलू उद्योगो की आय के सम्बन्ध मे सामग्री उपलब्ध न होना— भारत के सम्बन्ध मे एक सीमा यह है कि यहा बहुत बडी सख्या मे उत्पादक परिवार स्तर पर उत्पादन करते है या बहुत छोटे पैमाने पर घरेलू उद्योग चलाते है। इन छोटे उत्पादको मे से अधिकाश

[2] ... n tice (1951)

3 तत्रैव प 8 9

इतने अशिक्षित होते हैं कि वे या तो लेखा रखना जानते ही नहीं या नियमित लेखा रखने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं करते। राष्ट्रीय आय समिति ने इस बारे मे निम्नलिखित टिप्पणी की 'यदि वह (छोटा उत्पादक) लेखा रख भी सके तो भी भारत मे उत्पादक के लिए शुद्ध उत्पाद के मूल्य की तो बात ही क्या अपने उत्पाद का सकल मूल्य (Gross Value) तय करना भी कठिन होगा लेखे के अभाव मे उसकी आय और व्यय के विषय मे जाना ही नहा जा सकता, इस बारे मे विश्वस्त सूचना तो प्राप्त ही नहीं की जा सकती। इसलिए उत्पादन के मूल्याकन मे विशेषतया अर्थव्यवस्था के बडे क्षेत्रो के उत्पादन का मूल्य प्राप्त करने मे जिनमे छोटे उत्पादको या घरेलू उद्यमो का प्रभुत्व है अनिवार्यत अनुमान का आश्रय लेना पडता है। इस बात पर बल देते हुए वी के आर वी राव लिखते हैं जितना अधिक कोई अर्थव्यवस्था निगमीय या गैर निगमीय इकाइयो मे सगठित हो जाएगी उतना ही अधिक गणना का क्षेत्र विस्तार हो जाएगा और इस प्रकार त्रुटि की मात्रा उतनी ही कम हो जाएगी।

घरेलू उत्पाद (Domestic Product) के आकडे अशत प्रत्यक्ष वर्तमान आकडो (Direct Current Data) पर आधारित होते हैं और अशत सदर्भिका अनुमान (Bench mark esti mates) हैं जिनको आधार बनाकर आगामी वर्षों के अनुमान तैयार किए जाते हैं। केन्द्रीय साँख्यिकी सगठन का दावा है कि 1985 86 म सकल देशीय उत्पाद का 67 7 प्रतिशत प्रत्यक्ष वर्तमान आकडो पर आधारित था (अर्थात् सम्बन्धित वर्ष के लिए आकडे मूल स्रोतो से उपलब्ध हो सके)। इसी प्रकार, फसल काट प्रयोग (Crop cutting experiments) के आधार पर मूल्य वद्धि का 85 1 प्रतिशत प्रत्यक्ष वर्तमान आकडो से प्राप्त किया गया परन्तु कृषि-आदानो (Agricul tural inputs) मे यह अनुपात 50 6 प्रतिशत था। असगठित क्षेत्र के कुछ भागो अर्थात् व्यापार, हो ल वास्तविक जायदाद (Real estate) और व्यावारिक सेवाओ म सकल देशीय उत्पाद का शून्य से 25 प्रतिशत प्रत्यक्ष आकडो के आधार पर प्राप्त किया गया। परिणामत त्रुटि का मात्रा (Margin of error) बढ जाता है यदि अर्थव्यवस्था मे असगठित क्षेत्र का भाग सापेक्षत अधिक होता है।

3 आर्थिक कार्य पद्धति मे विभिन्नता का अभाव—भारत मे उद्योगो के अनुसार राष्ट्राय आय के आकडे सकलित करने का रीति प्रचलन है। इस प्रकार यह आवश्यक है कि उत्पादको को विभिन्न व्यवसाय वर्गों (Occupational categories) मे रखा जाए। उदाहरणतया एक कृषि-श्रमिक वर्ष का कुछ समय खेती मे कुछ उद्योग मे और कुछ तागा चलाने मैं लगा सकता है। ऐसी स्थिति मे उसकी आय को विभिन्न व्यवसायो मे बाटना कठिन होगा।

4 रिपोर्ट न की जाने वाली गैर-कानूनी आय—भारत मे काले धन के बारे मे किए गए अध्ययनो से पता चला है कि अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण भाग छिपी हुई या काली-अर्थव्यवस्था (Black economy) के रूप मे कार्य करता है और इसमे उत्पन्न होने वाली आय रिपोर्ट नहीं की जाती। हाल ही मे सार्वजनिक वित्त एव नीति के सस्थान के अनुसार काली आय 18 से 21 प्रतिशत है। प्रोफेसर सूरजभान गुप्त ने अपने अध्ययन मे यह बताया कि काली आय 1987 88 मे कुल देशीय उत्पाद के लगभग 51 प्रतिशत के समान है। जाहिर है कि इस सीमा तक राष्ट्रीय आय के आकडे अल्पानुमान है। यह भी सत्य है कि समय के साथ साथ काली-अर्थव्यवस्था का आकार बढता ही गया और इस प्रकार इस कारण से त्रुटि की मात्रा भी बढती गई है।

5 आय वितरण सम्बन्धी आकडो का अभाव—राष्ट्रीय लेखा साँख्यिकी मे परिवारो या व्यक्तियो के आय वितरण सम्बन्धी आकडे एकत्र नहीं किए जाते। इस उद्देश्य से पारिवारिक आय या अन्य सम्बन्धित चलो (Variables) के बारे मे पछताछ करने की अपेक्षा राष्ट्राय नमूना सर्वेक्षण सस्था (National Sample Survey Organisation) ने उपभोक्ता व्यय के आकडो का प्रयोग किया है और ये आकडे 1983 84 के दौरान 5 चुने हुए राज्यो और 4 महानगरो म आय उपभोग और बचत के वितरण की दृष्टि से प्रायोगिक सर्वेक्षण (Pilot Survey) द्वारा एकत्र किए गए है। इन सर्वेक्षणो के नमूने का आकार छोटा होने के कारण आलोचना की गयी और प्रत्यक्ष पूछताछ के आधार पर यह पाया गया कि प्रायोगिक सर्वेक्षणो के आकडे प्रत्यक्ष जाच के आकडो से 30 40 प्रतिशत कम थे। अत इस प्रयोग को निराशाजनक मानते हुए, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण ने पारिवारिक आय बचत और उपभोग के पूर्ण प्रायोगिक सर्वेक्षण करने का सुझाव दिया है। चाहे 1992 मे ऐसे सर्वेक्षण का आयोजन किया गया परन्तु वित्तीय कठिनाइ के कारण इसे कार्यान्वित नहीं किया गया। परन्तु आय वितरण सम्बन्धी आकडो को एकत्र करने की सख्त जरूरत है ताकि विकास प्रक्रिया के निम्न आय परिवारो पर प्रसार प्रभाव (Spread effect) का उचित रूप मे विश्लेषण किया जा सके।

4 उपरेव पृ० 1

6 **विश्वसनीय साख्यिकीय जानकारी की अनुपलब्धता—** यद्यपि उपर्युक्त कठिनाईया सैद्धान्तिक हैं किन्तु एक अन्य प्रकार की सांख्यिकीय कठिनाई भी है। वह है विश्वसनीय सांख्यिकीय सामग्री की अनुपलब्धता। ग्रामो मे आकडे एकत्र करने वाला मुख्य व्यक्ति पटवारी या ग्राम सेवक होता है। ये दोनो ही आकडे सकलित करने की दृष्टि से अप्रशिक्षित हैं। इसके अतिरिक्त आकडे सकलित करना उनका मूल कार्य भी नहीं है। परिणामस्वरूप उनके द्वारा सकलित आकडे विश्वसनीय नहीं होते। हाल ही के वर्षों मे भारत सरकार ने अनेक सांख्यिकीय सस्थाए स्थापित की हैं। राष्टीय नमूना सर्वेक्षण (National Sample Survey) प्रशिक्षित अन्वेषको की सहायता से सामग्री सकलित करता है। किन्तु सामग्री सकलन मे अत्यधिक व्यय होने के कारण राष्टीय आय का प्राक्कलन तैयार करने मे पर्याप्त ओर विश्वसनीय जानकारी की कमी बराबर चली आ रही है। राष्टीय समिति के अनुसार भारत मे राष्ट्रीय आय के क्षेत्र मे साख्यिकीय और विश्लेषणात्मक (Statistical and Analytical) दोनो प्रकार की सामग्रियो का अपेक्षाकत अभाव निर्धनता के उस दुष्चक्र का जो अल्पविकसित अर्थव्यवस्था का लक्षण होता है एक अग है।[5]

❑❑❑

6

जनसंख्या और आर्थिक विकास
(POPULATION AND ECONOMIC DEVELOPMENT)

1 जनांकिकीय सक्रमण का सिद्धान्त (The Theory of Demographic Transition)

जनांकिकीय सक्रमण के सिद्धान्त मे आर्थिक विकास से सम्बन्धित जन्म और मृत्यु दरो की तीन अवस्थाए स्वीकार की गई हैं

जनांकिकीय संक्रमण की प्रथम अवस्था

इस सिद्धान्त के अनुसार घटिया भोजन, अविकसित सफाई व्यवस्था और प्रभावशाली डाक्टरी की सहायता के अभाव के कारण कृषि अर्थव्यवस्था की प्रथम अवस्था मे मृत्यु दर ऊची होती है। इस अवस्था मे व्यापक निरक्षरता, परिवार नियोजन (Family Planning) के तरीको के विषय में ज्ञान के अभाव छोटी आयु मे विवाह परिवार के आकार मे विषय में दृढ सामाजिक विश्वासो और प्रथाओ तथा बच्चो के प्रति मनोभाव इत्यादि के कारण जन्म दर ऊची होती है। इसके अतिरिक्त आदिमकालीन समाज (Primitive Society) मे बडे परिवार के आर्थिक लाभ भी होते हैं "बच्चे छोटी अवस्था से ही काम में हाथ बटाने लगते हैं और माता पिता के लिए उनके बुढापे मे सुरक्षा का परम्परागत स्रोत होते हैं। मृत्यु की विशेषत शिशु मृत्यु की ऊची दर से यह सकेत मिलता है कि अधिक बच्चे उत्पन्न करके ही उक्त सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है।" ऐसे समाज मे जनसख्या वृद्धि दर वास्तव मे अधिक ऊची नहीं होती क्योंकि उच्च जन्म दर को उच्च मृत्यु दर सतुलित कर देती है। यह अवस्था अधिक जनवृद्धि की सभावना (High population growth potential) की अवस्था है किन्तु इसमें वास्तविक वद्धि कम होती हे।

जनांकिकीय सक्रमण की द्वितीय अवस्था

आय के स्तर मे वृद्धि के परिणामस्वरूप जनता अपने भोजन मे सुधार करने के योग्य हो जाती हे। आर्थिक विकास के कारण सर्वांगीण सुधार होता है जिसमे परिवहन का सुधार भी समाविष्ट है। परिवहन के सुधार के फलस्वरूप खाद्य सभरण (Food Supply) नियमित हो जाता है। इन सब कारणो से मृत्यु दर कम हो जाती है। इस प्रकार द्वितीय अवस्था मे जन्म दर ऊची रहती है किन्तु मृत्यु दर मे तीव्र गिरावट आने लगती हे। इसके कारण जनसख्या वृद्धि की गति बढ जाती है। मृत्यु दर मे कमी के कारण प्रथम अवस्था की उच्च वृद्धि सभावना द्वितीय अवस्था मे उच्च वास्तविक वृद्धि बनकर प्रकट होती है। उच्च जन्म दर और घटती हुई मृत्यु दर के कारण द्वितीय अवस्था मे परिवार का औसत आकार बडा हो जाता है।

जनांकिकीय सक्रमण की तृतीय अवस्था

इसके अतिरिक्त आर्थिक विकास के कारण अर्थव्यवस्था का स्वरूप कृषक (Agrarian) से परिवर्तित होकर अशत औद्योगिक हो जाता है। औद्योगीकरण में वृद्धि के परिणामस्वरूप जनसख्या ग्रामीण क्षेत्रों से औद्योगिक ओर वाणिज्यिक केन्द्रो (Commercial centres) की ओर स्थानान्तरित होने लगती है। शहरी जनसख्या मे वृद्धि ओर "स्त्रियो के लिए घर से बाहर आर्थिक कार्यों के विकास के परिणामस्वरूप आर्थिक गतिशालता की सभावना बढ जाती है जिसे छोटे परिवारो के सहारे भली भाँति प्राप्त किया जा सकता हे। परिणामत बडे परिवार की आर्थिक लाभकारिता कम हो जाती है। आर्थिक विकास का एक लक्षण विशेष रूप से बढता हुआ नगरीकरण (Urbanisation) है और ग्रामो के विपरीत नगरो मे बच्चे अमूल्य निधि नहीं भार समझे जाते हैं।" उचित जीवन स्तर बनाये रखने की चेतना औद्योगिक अर्थव्यवस्था मे परिवार छोटा करने का प्रेरणा देती है। इस प्रकार ततीय अवस्था की विशेषताए हैं निम्न जन्म दर, निम्न मृत्यु दर, छोटा परिवार और जनसख्या वृद्धि की निम्न दर। यह जनसख्या मे कमी की अवस्था है।

इन तीनो अवस्थाओ से उच्च जन्म दर और उच्च मृत्यु-दर वाली अर्थव्यवस्था मे रूपान्तर व्यक्त होता है। जब कोई *अर्थव्यवस्था जनांकिकीय सक्रमण की प्रथम अवस्था से द्वितीय अवस्था मे प्रवेश करती है तो घटती हुई मृत्यु दर किन्तु अपेक्षाकृत स्थिर जन्म दर के कारण उनमे असन्तुलन उत्पन्न* हो जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह देखा गया है कि मृत्यु दर का नियत्रण अपेक्षाकृत सरल है क्योकि मृत्यु दर घटाने के उपाय बाह्यजात (Exogenous) होने के कारण जनता उन्हे तत्परतापूर्वक स्वीकार कर लेती है। किन्तु जन्म दर मे कमी के लिए अन्तरजात तत्त्वो (Endogenous Factors) को परिवर्तित करना पडता है। इसके लिए सामाजिक मनोवृत्तियो (Social attitudes) और प्रथाओ तथा परिवार के आकार और विवाह आदि के *सम्बन्ध में विश्वासो और सिद्धान्तो मे परिवर्तन करना आवश्यक है। मृत्यु दर में कमी की अपेक्षा* इसके लिए अधिक समय अपेक्षित होता है। परिणामत जन्म दर मे गिरावट विलम्ब से आती है। इसलिए जनांकिकीय विकास की दूसरी अवस्था को जनसख्या विस्फोट (Population explosion) की अवस्था कहा गया है। विकासमान अर्थव्यवस्था के लिए यह अवस्था सर्वाधिक सक्टमय होती है। इसलिए द्वितीय अवस्था मे मृत्यु दर मे कमी होने के कारण असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है जिसे सुधारने के लिए सक्रमण की अवधि अपेक्षित होती है। इस प्रकार इस सिद्धान्त को *जनांकिकीय सक्रमण सिद्धान्त कहा गया है सक्रमणकाल* मे जनांकिकीय तत्त्वो मे असामजस्य उत्पन्न हो जाता है। नए जनांकिकीय तत्त्व उपस्थित होते है जो समाज का स्वरूप परिवर्तित कर देते है। जन्म दर और मृत्यु दर निम्न स्तर पर सन्तुलित हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप जनसख्या वृद्धि की दर भी कम हो जाती है। इस प्रकार किसी समाज के जनांकिकीय विकास का निर्णय परिवार के आकार और जनसख्या मे वृद्धि की दर के सम्बन्ध मे जन्म और मृत्यु दर के स्तर और परिवर्तनो के रूप मे किया जा सकता है।

2 भारत मे जनसख्या का आकार और वृद्धि-दर

आज भारत के पास विश्व के कुल भू क्षेत्र का 2 4 प्रतिशत भाग है किन्तु उसे विश्व की कुल जनसख्या के 16 प्रतिशत का पालन पोषण करना पडता है। बीसवीं शताब्दी के आरभ पर भारत की जनसख्या 23 6 करोड *अनुमानित* की गई और 1981 की जनगणना के अनुसार यह 68 3 करोड आकी गई। 1991 तक भारत की जनसख्या 84 4 करोड और 1997 मे 94 8 करोड हो गयी। (देखिए तालिका 1)

तालिका 1 **भारत में जनसंख्या की वृद्धि-दर**

जनगणना वर्ष	जनसख्या (करोडों मे)	10 वर्षीय वृद्धि या कमी (करोडो मे)	दशक में प्रतिशत वृद्धि या कमी
1891	23 6		
1901	23 6	0 0	0 0
1911	25 2	+1 6	+5 7
1921	25 1	0 1	–0 3
(1891 1921)		**+1 5**	**+0 19**
1931	27 9	+2 8	+11 0
1941	31 9	+4 0	+14 2
1951	36 1	+7 2	+13 3
(1921 1951)		**+11 0**	**+1 22**
1961	43 9	+7 8	+21 5
1971	54 8	+10 9	+24 8
1981	68 3	+13 5	+24 7
(1951 1981)		**+32 4**	**+2 14**
*1991**	84 4	+16 1	+23 5
1997	94 8	10 4	+12 3
(1981 1991)		+23 5	+2 11
1991 1997			+1 94

भारत मे जनसख्या की वृद्धि तीन स्पष्ट अवधियो मे विभक्त की जा सकती है 30 वर्षों की पहली अवधि 1891 से 1921तक 30 वर्षों की दूसरी अवधि 1921 से 1951 तक *और 47 वर्षों की तीसरी अवधि 1951 से 1997 तक।*

30 वर्षों की पहली अवधि **(1891 से 1921)** के दौरान भारत की जनसख्या जो 1891 मे 23 6 करोड थी बढकर 1921 मे 25 1 करोड हो गई अर्थात् इसमें केवल 1 5 करोड की वृद्धि हुई। इस अवधि के दौरान जनसख्या की वार्षिक चक्रवृद्धि दर नाम मात्र थी अर्थात् 0 19 प्रतिशत। जनसख्या की वृद्धि को रोकने के लिए अधिक जन्म दर के विरुद्ध अधिक मृत्यु दर विद्यमान थी। इस काल के दौरान जन्म दर एव मृत्यु दर लगभग बराबर थीं। इस काल मे भारत जनांकिकीय सक्रमण (Demographic transition) की प्रथम अवस्था मे था।

30 वर्षों की दूसरी अवधि मे भारत की जनसख्या जो *1921 मे 25 1 करोड थी बढकर 1951 मे 36 1 करोड हो गई अर्थात्* इसमे 11 करोड की वृद्धि हुई। जनसख्या की चक्रवृद्धि दर (Compound growth rate) 1 22 प्रतिशत प्रति वर्ष थी जो मर्यादित ही समझी जा सकती है। जनसख्या की वृद्धि दर में उन्नति का मुख्य कारण मृत्यु दर का 49 प्रति हजार से गिरकर 27 प्रति हजार हो जाना था। मृत्यु दर

मे कमी का मुख्य कारण व्यापक महामारियो अर्थात् प्लेग चेचक हैजा आदि पर नियत्रण था जो बडे पैमाने पर मौतो का कारण बनती थीं। इस काल मे भारत ने जनांकिकीय सक्रमण की दूसरी अवस्था मे प्रवेश करना आरभ कर दिया था।

30 वर्षों की तीसरी अवस्था (1951 से 1981) के दौरान भारत की जनसख्या जो 1951 मे 36 1 करोड थी बढकर 1981 मे 68 3 करोड हो गई। दूसरे शब्दो मे इन तीस वर्षो की अवधि मे जनसख्या मे 32 2 करोड की वद्धि का रिकार्ड कायम हो गया। इस अवधि मे जनसख्या चक्र वद्धि दर 2 14 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी जोकि पिछली अवस्था से लगभग दुगुनी थी। आयोजन के प्रारभ के साथ, हस्पताला और चिकित्सा सुविधाओ का बडे पैमाने पर विस्तार किया गया और मृत्यु दर नियत्रण के उपायो ने मत्यु दर को और तेजी से कम किया और यह 15 प्रति हजार हो गयी परन्तु जन्म दर बडी सुस्ती से 40 से 36 प्रति हजार ही कम हुई। परिणामत इस अवधि मे जनसख्या विस्फोट (Population explosion) हुआ। 1981 और 1991 के दौरान भारत की जनसख्या की वद्धि दर 2 11 प्रतिशत प्रति वर्ष रही और भारत की जनसख्या बढकर 84 4 करोड हो गई। 1991 97 के दौरान जनसख्या को वद्धि दर कम होकर 1 9 प्रतिशत हो गयी।

भारत मे जनसख्या वद्धि की तीव्र गति की व्याख्या जन्म और मत्यु की दर के परिवर्तन के आधार पर की जा सकती है। भारत मे जन्म दर और मत्यु दर निम्नलिखित रही है—

तालिका 2 भारत मे औसत जन्म व मृत्यु दर

अवधि	जन्म दर (प्रति हजार)	मृत्यु दर (प्रति हजार)
1901 1911	48 1	42 6
1911 1921	49 2	48 6
1921 1931	46 4	36 3
1931 1941	45	31 2
1941 1951	39 9	27 4
1951 1961	40 0	18 0
1961 1971	41 2	19 2
1971 1980	37	15 0
1985 1986	3 6	11 1
1996	27 4	8 9

तालिका 2 से स्पष्ट हो जाता है कि 1921 से पूर्व भारत मे विद्यमान जन्म और मृत्यु की ऊची दर के कारण जनसख्या वद्धि नियत्रित था। 1901 1921 के बीच जन्म दर 46 और 49 के बाच तथा मत्यु दर 42 ओर 49 के बाच घटती बढती रही। तद्नुरूप जनसख्या वद्धि बहुत कम या नगण्य रही। किन्तु 1921 के पश्चात् मृत्यु दर मे स्पष्ट गिरावट हुई। 1911 21 मे मृत्यु दर के विपरीत जन्म दर मे बहुत थोडी कमी हुई है। परिणामत समय के साथ साथ उच्च जन्म दर और गिरती हुई मृत्यु दर के बीच अन्तर बढ गया जो उच्च जीवित शेष दर (High Survival Rate) के रूप मे प्रकट हुआ। इस प्रकार जनसख्या वृद्धि का ऊची दर की व्याख्या जन्म का निरन्तर उच्च दर किन्तु मत्यु की अपेक्षाकत तेजी से गिरती हुई दर के आधार पर की जा सकती है। चूंकि मृत्यु दर उन्नत सफाई व्यवस्था सार्वजनिक स्वास्थ्य उपायो और इन्फ्लुएजा हैजा प्लेग जैसी महामारियो के नियत्रण आदि बाह्यजात तत्वा (Exogenous factors) पर निर्भर रहती है अत इसका नियत्रण अपेक्षाकत सरलता से किया जा सकता है किन्तु इसकी तुलना मे जन्म दर अन्तरजात तत्वो (Enodogenous factors) पर, यथा विवाह विषयक दृष्टिकोण परिवार का आकार, गर्भनिरोधकों का प्रयोग नौकरी मे सन्तोष और यौन सम्बन्धो आदि पर निर्भर करती है। अत परिवार नियोजन कठिन समस्या है तथा जन्म दर मे कमा के लिए दीर्घ अवधि ओर निरन्तर प्रयत्न की आवश्यकता होती है।

1921 से पूर्व भारत जनांकिकीय सक्रमण (Demo graphic Transit on) की प्रथम अवस्था मे था किन्तु 1921 के पश्चात् भारत जनांकिकीय सक्रमण की दूसरी अवस्था मे प्रवेश कर चुका है। इस अवस्था मे जनसख्या की उच्च वद्धि की सभावना वास्तविक वद्धि के रूप में प्रकट हो रही है। यह आशा की जा रही है कि थोडे समय के पश्चात् भारत जनांकिकीय सक्रमण की तीसरी अवस्था मे प्रवेश कर जाएगा।

राज्यो से सम्बन्धित जन्म तथा मत्यु दर सम्बन्धी आंकडो से पता चलता है कि केरल तमिलनाडु, आध्र प्रदेश पश्चिमी बगाल हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक हरियाणा महाराष्ट्र, गुजरात ओर असम मे जन्म दर 30 प्रति हजार से कम हो चुकी है। इस प्रकार से ये राज्य जनांकिकीय सक्रमण की ततीय अवस्था म प्रवेश कर गए हैं। इसके विरुद्ध, उत्तर प्रदेश, राजस्थान बिहार ओर मध्य प्रदेश मे जन्म दर 31 34 प्रति हजार के उच्च स्तर पर कायम है। ये राज्य जनांकिकीय सक्रमण की द्वितीय अवस्था मे ह परन्तु इनमे भारत की कुल जनसख्या का 44 प्रतिशत निवास करता है। जब तक इन राज्यो मे परिवार नियोजन कार्यक्रमो का प्रभाव व्यक्त नहीं होता, तब तक समग्र भारत जनांकिकीय सक्रमण की ततीय अवस्था मे प्रवेश नहीं कर सकता।

जन्म दर (Birth Rate)

जननक्षमता (Fertility) तीन कारणो पर निर्भर करती है (1) स्त्रियो की विवाह की आयु, (2) जननक्षमता की अवधि और (3) परिवार मे वद्धि की गति।

भारत् मे पुरुषो और स्त्रियो दोनो की विवाह आयु कम है चाहे यह कहा जा सकता है कि 1991 और 1971 के बीच इसमे धीरे धीरे वद्धि हो रही है। 1929 मे बाल विवाह प्रतिबन्ध अधिनियम (Child Marriage Restraint Act) जो साधारणत शारदा कानून के नाम से प्रसिद्ध हे के पास हो जाने के कारण बाल विवाह की सख्या मे कमी हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि जहा 1891 1901 के दौरान 14 वर्ष से कम आयु वाली 27 प्रतिशत लडकियो का विवाह हो चुका था वहा 1951 61 के दशक मे यह अनुपात 20 प्रतिशत रह गया। भारत मे स्त्रियो की विवाह की औसत आयु 1921 मे 13 7 वर्ष थी जो 1991 मे बढकर 18 3 वर्ष हो गयी। पुरुषो के सम्बन्ध मे यह 1922 मे 20 7 वर्ष थी जो 1994 मे बढकर 23 3 वर्ष हो गई। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि विवाह आयु मे वद्धि जननक्षमता को कम करती है जिसके परिणामस्वरूप जन्म दर मे कमी होती है। ईसाइयो मे विवाह की औसत आयु सबसे अधिक है और उसके क्रमश बाद हैं सिख मुसलमान और हिन्दू। हिन्दुओ मे अनुसूचित जातियो एव पिछडी जातियो की स्त्रियो में औसत विवाह आयु सबसे कम है। इसके बाद क्रमश ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य आते है। जनगणना विश्लेषण से पता चला है कि शहरी क्षेत्रो मे ग्राम क्षेत्रो की तुलना मे औसत विवाह आयु 2 3 वर्ष अधिक है। औसत विवाह आयु मे वद्धि के परिणामस्वरूप 1988 ओर 1993 के दौरान सामान्य जननदर (General Fertility rate) 171 प्रति हजार से कम होकर 154 हो गयी। परन्तु अभी भी 15 19 20 24 और 25 29 आयु वर्गों मे जननदर काफी अधिक है और इसमे प्रभावी रूप मे कमी लाने की सख्त जरूरत है ताकि सामान्य जननदर और अधिक घटाई जा सके।

तालिका 3 **चुने हुए देशो मे विवाह की औसत आयु**

देश		पुरुष	स्त्री
नार्वे		28 0	24 4
पूर्वी जर्मनी		27 4	24 7
फ्रास		26 0	22 6
जापान		25 8	23 0
भारत	(1921)	20 7	13 7
	(1971)	22 2	17 2
	(1994)	23 3	19 4

जननक्षमता का माता के शिक्षा स्तर के साथ गहरा सम्बन्ध है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (National Sample Survey) के अध्ययनो से पता चलता हे कि अशिक्षित या प्राथमिक शिक्षा प्राप्त स्त्रियो के ओसत 6 6 जीवित बच्चे होते है जबकि मिडिल मैटिक ओर विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा प्राप्त स्त्रिया क्रमश ओसत रूप मे 5 0 4 9 और 2 0 बच्चो को जन्म देती हैं।

केरल राज्य जनाकिकीय सक्रमण की ततीय अवस्था मे प्रवेश कर गया है। 1993 मे केरल मे जन्म दर के 17 3 प्रति हजार के निम्न स्तर पर पहुच गयी ह। इस सम्बन्ध मे टी एन कष्णन लिखते हे केरल मे जन्म दर मे गिरावट की व्याख्या विवाह दरो मे परिवर्तन लगातार और तेजी से बढती हुई स्त्री शिक्षा की ऊची दरा के परिणामस्वरूप विवाह की प्रभावी आयु मे वृद्धि के रूप मे की जा सकती हे।

मृत्यु दर (Death Rate)

19वीं शताब्दी के प्रारभ मे विश्व के उन्नत देशो मे मृत्यु दर 35 40 हजार के बीच थी। यह अब कम होकर 1996 मे 8 9 प्रति हजार हो गई है। मृत्यु दर मे तीव्र कमी अच्छे भोजन पीने के स्वच्छ पानी उन्नत चिकित्सा सुविधाओ अच्छी सफाई ओर भयानक महामारियो आर अन्य बीमारियो के नियत्रण का परिणाम है।

1891 1901 और 1911 21 के दशको के दोरान जनसख्या की वद्धि बहुत ही कम रही। इसके मुख्य कारण व्यापक अकाल एव 1918 के इनफ्लुएजा के प्रभावाधीन 10 लाख व्यक्तियो की मृत्यु थी। इस वर्ष के दोरान मत्यु दर 63 प्रति हजार के आश्चर्यजनक स्तर पर पहुच गई जबकि यह इससे पहले और बाद के वर्ष मे 33 और 36 प्रति हजार थी।

मृत्यु दर को कम करने वाला एव ओर महत्त्वपूर्ण कारण शिशु मृत्यु दर मे कमी हे। जबकि 1916 18 मे शिशु मत्यु दर 218 प्रति हजार थी यह 1970 मे शहरी क्षेत्रो के लिए 90 प्रति हजार और ग्रामीण क्षेत्रो के लिए 130 प्रति हजार हो गयी। समग्र देश के लिए यह 1978 तक कम होकर 125 और फिर कम होकर 1996 मे 72 हो गयी। शिशु मत्यु दर के मुख्य कारण हैं अपयाप्त भोजन निमोनिया दस्त सक्रामक और परजीवी रोग (Infectious and parasitic diseases)। बार बार और शीघ्रातिशीघ्र गर्भ ठहरने के फलस्वरूप शिशु मृत्यु दर मे वृद्धि हो जाती हे। इन सभी कारणो को दूर करने के उपाय किए जा रहे ह।

इसके अतिरिक्त प्रजनन काल के दारान स्त्रियो मे अधिक मृत्यु दर पायी जाती है। 15 45 वर्ष की स्त्रियो के लिए यह 300 400 प्रति हजार है। निर्धनता के कारण जन्मपूर्व (Prenatal) और जन्मोपरान्त काल मे अपर्याप्त सावधानी आर चिकित्सा सुविधाओ का अभाव इसके लिए उत्तरदायी ह। भोजन चिकित्सालय और प्रसुति सुविधाओ (Midwifery facilities) मे उन्नति के साथ यह आशा की जा सकती ह

कि शिशु मृत्यु-दर एव सामान्य मृत्यु-दर मे और भी कमी व्यक्त होगी।

इसके अतिरिक्त, मलेरिया अन्य कई प्रकार के ज्वर, हेजा, चेचक, प्लेग, दस्त, पेचिश ओर श्वास सम्बन्धी बीमारिया भी मृत्यु दर को बढाती हैं। इनमे से मलेरिया चेचक प्लेग और हैजा को लगभग समाप्त ही कर दिया गया हे। आशा की जाती है कि मृत्यु दर जीवन-स्तर मे उन्नति ओर चिकित्सा-सुविधाओ के विकास के कारण और भी कम हो जाएगी।

अत पिछले 50 वर्षों मे जन्म दर और मृत्यु दर दोनो ही कम हुई है परन्तु मृत्यु दर अधिक तेजी से गिरी है। मृत्यु-दर अब बहुत ही नीचे स्तर पर पहुच गयी है और चाहे स्वास्थ्य सुविधाए कितनी भी उन्नत क्यो न कर ली जाए, यह 7 8 हजार के नीचे नहीं गिर सकती। अत भारत की जनसख्या का भावी विकास जन्म दर के भावी स्तर पर निर्भर करेगा।

3. जनसख्या का घनत्व (Density of Population)

जनसख्या के घनत्व का अर्थ किसी देश मे रहने वाले व्यक्तियो की प्रति वर्ग किलोमीटर औसत सख्या से है। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत का औसत जनघनत्व 267 व्यक्ति प्रतिवर्ग किलोमीटर हे। परन्तु यह जनसख्या असमान रूप मे बटी हुई है। 1961 की जनगणना के अनुसार भारत का औसत जनघनत्व 142 व्यक्ति प्रति वर्ग कि मी था किन्तु 1971 मे यह बढकर 177 और 1981 मे यह 216 हो गया। 1991 मे भारत मे जनघनत्व ओर बढकर 267 हो गया। दूसरे शब्दो मे भारत मे मनुष्य भूमि अनुपात (Man land ratio) निरन्तर बढता जा रहा हे।

तालिका 4 मे भारत के विभिन्न राज्यो मे जनघनत्व मे पाए जाने वाले अन्तर दिए गए है। केरल पश्चिमी बगाल बिहार, तमिलनाडु और उत्तर प्रदेश अधिक जनघनत्व वाले राज्य हे परन्तु मध्य प्रदेश राजस्थान हिमाचल प्रदेश ओर नागालेण्ड ऐसे राज्य हैं जिनमे जनघनत्व कम है।

भारत का जनसख्या के घनत्व की तुलना कुछ अन्य देशो से करने से पता चलता हे कि न तो भारत उन देशों मे से हे जिनमे मनुष्य भूमि अनुपात अधिक हे और न ही भारत उन देशो की श्रेणी मे हे जिनमे मनुष्य भूमि अनुपात कम है। भारत की स्थिति न तो जापान इग्लैड और इटली जितनी बुरी है और न ही सयुक्त राज्य अमेरिका और रूस जितनी अच्छी। जनघनत्व के आधार पर भारत का स्थान मध्यम जनघनत्व वाले देशो मे है।

तालिका 4 1991 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या का घनत्व

जनसंख्या : लाखों में, जनघनत्व व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर

राज्य	जनसंख्या	जनघनत्व
दिल्ली	94	6 319
चण्डीगढ	6	5 620
केरल	290	747
पश्चिमी बगाल	680	766
बिहार	863	497
तमिलनाडु	556	478
उत्तर प्रदेश	1,388	471
पजाब	202	401
हरियाणा	163	369
असम	223	284
महाराष्ट्र	787	256
आध्र प्रदेश	663	241
कर्नाटक	448	234
उडीसा	315	202
गुजरात	412	210
मध्य प्रदेश	661	149
राजस्थान	439	128
हिमाचल प्रदेश	51	92
जम्मू व कश्मीर	77	59
भारत	8 439	267

जनघनत्व किसी देश की अपने आश्रित व्यक्तियो का पालन पोषण करने की क्षमता का उचित सूचक नहीं है। कोई देश कितने लोगो का पालन पोषण कर सकता हे यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसके पास प्राकृतिक ससाधन कितने हैं ओर उनका उपयोग करने के लिए किस सीमा तक उन्नत तकनीक का प्रयोग होता हे। दूसरे शब्दो मे प्राकृतिक ससाधनो की उपलब्धि और औद्योगीकरण की मात्रा के आधार पर यह निर्धारित किया जा सकता हे कि किस सीमा तक जनसख्या के उच्च घनत्व का निर्वाह सभव है। उदाहरणतया जापान मे जनसख्या का घनत्व भारत की तुलना मे लगभग दुगुना है किन्तु जापान अपेक्षाकृत अधिक जनसख्या का उच्चतर जीवन स्तर पर पालन-पोषण करता है। इसका प्रधान कारण यह हे कि जापान का औद्योगीकरण हो चुका हे जबकि भारत की 68 प्रतिशत जनसख्या कृषि पर निर्भर हे। सयुक्त राज्य अमेरिका मे जीवन स्तर का बहुत ऊचा होना आंशिक रूप मे अत्यन्त अनुकूल मनुष्य-भूमि अनुपात और प्राकृतिक साधनो की उपलब्धि पर निर्भर है। इसके अतिरिक्त आर्थिक विकास की उच्च अवस्था प्राप्त करने के कारण भी अमेरिका मे उच्च जीवन-स्तर सभव हुआ हे। सक्षेप मे जनसख्या का घनत्व न तो किसी देश की निर्धनता का सूचक है ओर न हो सम्पन्नता का।

4 नगरीकरण और भारत का आर्थिक विकास (Urbanisation and Economic Growth in India)

यह एक सर्वमान्य सत्य है कि आर्थिक विकास का सम्बन्ध *नगरीकरण के विकास के साथ होता है।* कुछ लेखक तो यहा तक कहते है कि ग्रामीण क्षेत्रो म जनसख्या का नगरीय क्षेत्रो मे परिवर्तन आर्थिक विकास की दृढ कसौटी है। *20वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे भारत आर्थिक गतिरोध* (Economic Stagnation) के काल से गुजरा। परिणामत नगरीकरण की मात्रा सीमित ही रही। नगर जनसख्या जो 1911 मे कुल जनसख्या का 11 प्रतिशत थी बहुत धीमे धीमे बढते हुए 1941 मे 14 प्रतिशत हो गई। 1951 की जनगणना मे नगर क्षेत्र की उदार परिभाषा अपनाने के कारण नगर जनसख्या कुल जनसख्या का 17 3 प्रतिशत हो गई। अत इसमे वृद्धि का बहुत बडा भाग सांख्यिकीय था न कि वास्तविक। 1961 की जनगणना मे नगर क्षेत्र की थोडी सख्त परिभाषा करने के कारण नगर जनसख्या मे बहुत थोडी वृद्धि हुई और यह 18 प्रतिशत हो गयी। 1981 की जनगणना मे भी नगर क्षेत्र 1971 वाली परिभाषा अपनायी गयी।

'नगर क्षेत्र की निम्नलिखित परिभाषा स्वीकार की गई *(क) सभी स्थान जहा नगरपालिका नगर निगम छावनी या* अनुसूचित नगर क्षेत्र है (ख) सभी अन्य स्थान जो निम्नलिखित कसौटियो पर पूरे उतरते हैं—(*i*) 5000 की निम्नतम जनसख्या (*ii*) पुरुष कार्यकारी *जनसख्या* (Male Working Population) का कम से कम 75 प्रतिशत गैर कृषि व्यवसायों (Non agricultural Occupations) मे कार्यरत होना और (*iii*) कम से कम 400 प्रति वर्ग किलोमीटर का जनघनत्व होना।

चाहे पहली जनगणनाओ मे नगर क्षेत्र की दी गई परिभाषाओ की तुलना मे 1971 की जनगणना की परिभाषा काफी परिदृढ थी परन्तु अन्य देशो मे नगर क्षेत्र की दी गई परिभाषा मे यह अभी भी तुलनीय नहीं है। उदाहरणार्थ जापान मे कोई भी स्थान जिसकी जनसंख्या 30000 या इससे अधिक हो नगर माना जाता है। इसके बावजूद 1981 मे भारत मे नगर जनसख्या कुल जनसख्या के 23 3 प्रतिशत के समान थी जोकि 1971 की नगर जनसंख्या से थोडा ही अधिक है।

यह भी सत्य है कि चाहे औद्योगीकरण की क्रिया द्वितीय योजना मे प्रारभ की गई परन्तु नगर क्षेत्रो मे जनसख्या परिवर्तन की दृष्टि से 1961 तक इसका प्रभाव नाममात्र ही रहा। चाहे दूसरी और तीसरी योजना से औद्योगीकरण का महान् प्रोग्राम लागू करने का निर्णय किया गया परन्तु इन योजनाओ मे भारी और मूल उद्योगो के विकास पर बल दिया गया। इन उद्योगो की रोजगार क्षमता (Employment Potential) सीमित होने के कारण इनके विकास के फलस्वरूप श्रमशक्ति ग्रामो से नगरो मे इस हद तक जज्ब न हो सकी कि इसका अर्थव्यवस्था पर प्रभाव सुव्यक्त हो जाए। अत यह कहा जा सकता है कि चाहे औद्योगीकरण की क्रिया प्रारभ हो गई परन्तु 1961 71 के दशक मे यह गमता प्राप्त न कर पाई। परिणामत औद्योगीकरण की प्रगति महत्त्वपूर्ण रूप मे नहीं हुई। इसके अतिरिक्त 1971 की जनगणना मे नगर क्षेत्र की अधिक सख्त परिभाषा करने के कारण जो थोडा बहुत नगरीकरण हुआ भी था वह भी दब गया।

परम रूप मे नगर जनसख्या 1901 मे 256 लाख से बढकर 1991 मे 2172 लाख हो गई अत इसमे 8 5 गुना वृद्धि हुई। सापेक्ष रूप में ग्राम नगर जनसख्या अनुपात (Rural *urban population ratio*) जो *1901 मे 8 1 1 था कम* होकर 1991 मे 2 9 1 हो गया (देखिए तालिका 5)

तालिका 5 का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से पता चलता है *कि नगरीय जनसख्या जो 1901 मे 256 लाख थी बढकर* 1951 मे 624 लाख हो गयी अर्थात् इन 50 वर्षों मे इसमे 368 लाख की वृद्धि हुई परन्तु इसके बाद के तीन दशको *अर्थात् 1951 81 के दौरान नगर जनसख्या मे 971 लाख की* वृद्धि हुई। इससे जाहिर है कि औद्योगीकरण के प्रोग्रामो का प्रभाव नगर क्षेत्रो मे जनसख्या समोने पर अवश्य पडा चाहे *यह बहुत अधिक व्यापक न हो सका।* केवल पिछले दशक (1981 1991) के दौरान नगरीय जनसख्या मे 577 लाख की वृद्धि हुई जिससे नगरीकरण की बढती हुई प्रवृत्ति का *सकेत मिलता है। कुल रूप मे नगरी जनसख्या 1991 मे* 2172 लाख हो गयी अर्थात् कुल जनसख्या का 25 7 प्रतिशत।

तालिका 5 **नगर और ग्राम जनसंख्या की सापेक्ष वृद्धि**

वर्ष	जनसंख्या लाखों में		कुल जनसंख्या का प्रतिशत		नगर ग्राम जनसंख्या
	ग्रामीण	नगरीय	ग्रामीण	नगरीय	अनुपात
1901	2073	256	89 0	11 0	1 8 1
1951	2987	624	82 7	17 3	1 4 7
1961	3603	789	82 0	18 0	1 4 5
1971	4319	1091	80 1	19 9	1 3 7
1981*	5257	1595	76 7	23 3	1 3 3
1991*	6,271	2172	74 3	25 7	1 2 8

नोट इसमें जम्मू तथा कश्मीर और असम के आंकडे शामिल नहीं किए गए।

स्रोत *Ce of India 1991*

1 यदि इसमे जम्मू तथा कश्मीर और असम के आँकडे 1971 की जनसंख्या के आधार पर अनुमान लगाकर जोड दिए जाएँ, तो नगर जनसंख्या का कुल जनसंख्या में अनुपात 23 2 प्रतिशत बैठता है।

भारत में नगरीकरण की कुछ चुने हुए देशों के साथ तुलना

भारत मे नगरीकरण की तुलना यदि विश्व के विकसित देशो के साथ की जाए, तो इससे पता चलता है कि भारत उच्च आय वाले देशो से अभी बहुत पीछे है। 1990 मे कुछ जनसख्या मे नगरीय जनसख्या का अनुपात यू एस ए मे 75 प्रतिशत जापान मे 77 प्रतिशत और यू के मे 89 प्रतिशत था। इसकी तुलना मे 1991 मे भारत का 26 प्रतिशत अनुपात बहुत ही नाचा प्रतीत होता है। जाहिर है कि रोजगार प्रोग्राम इस प्रकार से आयोजित किए जाने चाहिए कि इनसे जनसख्या नगर क्षेत्रो की ओर आकर्षित हो। आर्थिक विकास के खिचाव के प्रभावाधीन ही नगरीकरण के सम्बन्ध मे इच्छित परिणाम प्राप्त किए जा सकते है।

भारत में नगरीकरण की प्रवृत्ति (1901-91)

तालिका 6 का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से पता चलता है कि 1 लाख से अधिक जनसख्या वाले प्रथम श्रेणी के नगरो मे नगरीय जनसख्या का अनुपात जो 1901 मे 25 7 प्रतिशत था बढकर 1991 में 65 2 प्रतिशत हो गया। स्पष्टत नगर जनसख्या की प्रवृत्ति बडे नगरो मे सकेन्द्रित होने की है। द्वितीय ओर तृताय श्रेणी के नगरो मे नगर जनसख्या का सापेक्ष अनुपात लगभग स्थिर ही रहा अथात् 1901 91 के दौरान यह लगभग 25-28 प्रतिशत था। परन्तु इसकी तुलना मे चतुर्थ पचम और षष्ठ श्रेणी के नगरो मे जनसख्या के सापेक्ष अनुपात मे तीव्र कमी हुई ओर यह 1901 की तुलना मे 47 2 प्रतिशत से कम होकर 1991 मे केवल 10 7 प्रतिशत हो गया।

तालिका 6 नगरो का आकार श्रेणियों के आधार पर जनसंख्या का प्रतिशत वितरण

वर्ष	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	पचम	षष्ठ
	1 00 000+	50 000 1 00 000	20 000 49 999	10 000 19 999	5 000 9 999	5 000 से कम
1901	25 7	11 3	15 8	20 9	20 1	6 2
1951	44 6	10 0	15 7	13 6	13 0	3 1
1961	51 4	11 0	16 9	12 8	6 9	0 8
1971	57 2	10 9	16 0	10 9	4 5	0 4
1981	60 4	11 6	14 3	9 5	3 6	0 5
1991	65 2	10 9	13 2	7 8	2 6	0 3

स्रोत *Census of Ind a 1991*

प्रथम श्रेणी के नगर, प्रशासनिक ओर सामान्य आर्थिक क्रिया के केन्द है। उद्योग परिवहन, व्यापार और वाणिज्य प्रशासनिक एव उदार सेवाए भी इन्हा मे केन्द्रित है। नगर जनसख्या का इस आकार-श्रेणी (Size class) के नगरो मे सकेन्द्रण का यही कारण है। इसके अतिरिक्त द्वितीय श्रेणी का उच्चतम सीमा पर पहुचे नगर प्रथम श्रेणी मे प्रवेश कर जाते है। इसका प्रमाण यह है कि जहा 1951 मे 74 नगर प्रथम श्रेणी मे थे वहा उनका सख्या बढकर 1991 मे 296 (लगभग तीन गुना) हो गयी। परिणामत प्रथम श्रेणी के नगरो मे जहा 1951 मे 275 लाख व्यक्ति रहते थे वहा 1991 मे इनकी सख्या 1 388 लाख हो गयी अथात् इसमे 405 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

द्वितीय और तृतीय श्रेणी के नगर सक्रान्ति की अवस्था मे है। इनकी सख्या और इनमे रहने वाली जनसख्या मे वृद्धि हुई है। द्वितीय श्रेणी के नगरो की सख्या जो 1951 मे 91 थी बढकर 1991 मे 341 हो गयी आर इनम कुल जनसख्या लगभग 61 लाख से बढकर 233 लाख हो गयी अर्थात् इनमे चार गुना वृद्धि हुई। तृतीय श्रेणी के नगरो की सख्या जो 1951 में 330 थी बढकर 1991 मे 927 हो गयी और 1951 91 के दौरान इनका कुल जनसख्या 97 लाख से बढकर 281 लाख हो गयी अर्थात् इसमे 190 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

चतुर्थ पचम और षष्ठ श्रेणा के नगरो मे नगर जनसख्या के अनुपात मे अधोप्रवृत्ति विद्यमान हुई, चाहे कुल रूप मे इनकी जनसख्या में वृद्धि हुई। चतुर्थ श्रेणी के नगरो की सख्या 1951 मे 16 8 से बढकर 1991 मे 1 135 हो गया और उनकी कुल जनसख्या 84 लाख से बढकर 165 लाख हो गया केवल 96 प्रतिशत की वृद्धि। इसके विरुद्ध, पचम श्रेणा के नगरो का सख्या जो 1951 म 1 124 था गिरकर 1991 मे 725 हो गया और 1951 91 के दौरान इनकी कुल जनसख्या 80 लाख से कम होकर 55 लाख रह गया लगभग

तालिका 7 विभिन्न जनगणनाओं मे नगरो की सख्या और जनसख्या

	नगर श्रेणी					
वर्ष	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	पचम	षष्ठ
नगरों की संख्या						
1951	74	91	327	608	1 124	569
1961	102	129	437	719	711	172
1971	148	173	558	827	623	147
1981	216	270	738	1 053	739	229
1991	296	341	927	1 135	725	185
कुल नगर जनसख्या (लाखो मे)						
1951	275	61	9	84	80	19
1961	399	87	13	99	53	6
1971	617	117	171	117	48	5
1981	945	182	2	149	56	8
1991	1 388	233	281	165	55	6

३0 प्रतिशत की गिरावट। इसी प्रकार, षष्ठ श्रेणी के नगरो की सख्या 1951 मे 1569 से गिरकर केवल 185 रह गयी और 1951-91 के दौरान इस श्रेणी के नगरो की कुल जनसख्या 19 लाख से तीव्र रूप मे गिरकर केवल 6 लाख रह गयी। (देखिए तालिका 7)

10 लाख से अधिक आबादी वाले महानगर

जबकि 19९1 की जनगणना मे 10 लाख से अधिक जनसख्या वाले 12 शहर थे और इनकी कुल जनसख्या 421 लाख थी वहा 1991 की जनगणना से पता चलता है कि ऐसे 2३ बडे शहर है और इनकी कुल जनसख्या 707 लाख हो गयी है। इन 23 बडे शहरो की जनसख्या कुल नगरीय जनसख्या के लगभग ३३ प्रतिशत के बराबर है। विशाल बम्बई का पहला स्थान है और इसकी जनसख्या 126 लाख हो गयी है इसके बाद कलकत्ता का नम्बर है (109 लाख जनसख्या)। दिल्ली की जनसख्या जो 19९1 मे ५7 लाख थी एकदम 1991 मे ९4 लाख हो गयी है अर्थात् इसमे दशक के दौरान 46 2 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। 19९1 91 के दशक के दौरान 2३ बडे शहरो की जनसख्या मे लगभग 6९ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। जनसख्या की सबसे अधिक वृद्धि दर हैदराबाद (67%) मे व्यक्त हुई इसके बाद है *लखनऊ (63%) जयपुर (49%)* पूणे (47 4%) और दिल्ली (46 2%)

तालिका ९ **10 लाख से अधिक जनसख्या वाले महानगरो की जनसख्या**

	1991 मे जनसख्या (लाख व्यक्ति)	1981 में जनसंख्या (लाख व्यक्ति)
विशाल बम्बई	126	82
कलकत्ता	109	92
दिल्ली	84	57
मद्रास	54	43
हैदराबाद	4३	29
बगलौर	41	25
अहमदाबाद	3३	25
पूणे	2५	17
कानपुर	21	17
नागपुर	17	13
लखनऊ	16	10
जयपुर	15	10

महानगरो (Mega cities) अर्थात् 10 लाख से अधिक आबादी वाले इन नगरो की सूची के अतिरिक्त जो *अन्य नगर* इसमे प्रवेश कर गए है वे है सूरत, कोची कोयम्बटोर, बदोदरा इन्दौर, पटना मदुरई भोपाल विशाखापतनम वाराणसी और लुधियाना।

नगरीकरण और भारत में औद्योगीकरण का स्वरूप

पश्चिम मे औद्योगिक क्रान्ति के प्रभावस्वरूप नगरो की *सख्या मे वृद्धि हुई। मशीनी वस्तुओ की प्रतिस्पर्द्धा के कारण* श्रमिक कारीगर और शिल्पी बेकार हो गए और इन बेरोजगार श्रमिको को नगर क्षेत्रो मे रख लिया गया। इस प्रकार बडे पैमाने पर उत्पादन *मशीनो के प्रयोग और औद्योगिक सभ्यता* के विकास के परिणामस्वरूप नगरीकरण हुआ। भारत मे यूरोप की भाँति नगरीकरण की प्रक्रिया घटित नहीं हुई। बल्कि 19वी *शताब्दी तथा 20वीं शताब्दी के आरंभिक काल* मे निम्नलिखित तत्त्वो के परिणामस्वरूप नगरीकरण हुआ—

(1) रेल के विकास के कारण व्यापार महत्त्वपूर्ण स्टेशनो के मार्गो द्वारा होने लगा। भारत मे रेल की आवश्यकता या तो प्रशासनिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए अनुभव की गई या फिर निर्यात के उद्देश्य से महत्त्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्रो पर वस्तुए और कच्चा माल एकत्रित करने के लिए।

(2) 19वीं शताब्दी मे व्यापक अकालो के कारण बडे पैमाने पर किसान बेरोजगार हो गए। ग्राम क्षेत्रो मे रोजगार न मिल सकने के कारण ग्रामीण जनसख्या रोजगार की तलाश मे नगरो की ओर चल पडी। 1872 से 18९1 और 1891 से 1901 की अवधि मे भीषण अकाल पडने के कारण नगरो की ओर जनसख्या का प्रवाह सर्वाधिक तीव्र दिखाई पडता है।

(३) भूमिहीन *श्रमवर्ग* के *विकास से भी नगरीकरण* उत्पन्न हुआ चाहे यह केवल नकारात्मक प्रवृत्ति ही थी। इस वर्ग का मूल कृषि मे था और यह ग्राम तथा नगरो के बीच *आने जाने वाली श्रम शक्ति का ही एक अग था।* इस वर्ग के जिन लोगो को नगर क्षेत्रो मे स्थायी रोजगार अथवा अपेक्षाकृत ऊची मजदूरी मिल गई वे वहीं बस गये। किन्तु इनमे से कोई आकर्षण महत्त्वपूर्ण रूप मे कार्य नहीं कर सका।

(4) धनी जमीदारो मे नगरो मे बसने की प्रवृत्ति भी विद्यमान हुई क्योंकि नगर जीवन मे कुछ ऐसे आकर्षण है जिनका ग्रामो मे सर्वथा अभाव है।

(५) नये उद्योगो की स्थापना अथवा पुराने उद्योगो का विस्तार होने के *कारण श्रम शक्ति नगरो मे खपने लगी।*

इस सम्बन्ध मे प्रोफेसर डी आर गाडगिल इस परिणाम पर पहुचे है 'इन सब कारणो मे उद्योगों का विकास अन्य सभी देशो मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण रहा है किन्तु भारत मे इसका प्रभाव निश्चय ही इतना सशक्त नहीं रहा। सच तो

यह है कि भारत मे बहुत कम ऐसे नगर हैं जिनका उद्‌भव नए उद्योगो के कारण हुआ हो।"

नगरीकरण एव आर्थिक विकास

आर्थिक विकास से तान उपलब्धियो की आशा की जाती है (i) प्रति व्यक्ति आय की वद्धि ताकि लोगो का जीवन स्तर उन्नत हो सके (ii) बेरोजगारी की दर एव आकार मे कमी और (iii) निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली जनसख्या मे कमी। आर्थिक विकास पर नगरीकरण के प्रभाव को समझने के लिए आर्थिक विकास का एक व्यापक रूप मे परीक्षण करना होगा, न केवल एक चल अर्थात् प्रति व्यक्ति आय के आधार पर इसे सीमित करना होगा। तालिका 9 मे 1981 मे नगर जनसख्या का कुल जनसख्या मे राज्यवार अनुपात 1981 82 की प्रति व्यक्ति आय दैनिक स्तर की बेरोजगारी (1977 78) की दर और निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली जनसख्या का प्रतिशत दिया गया है। यह कल्पना की गयी है कि बेरोजगारी की दर ओर निर्धनता रेखा के नीचे जनसख्या का प्रतिशत काफी स्थिर चल (Stable variable) हैं और ये नगरीकरण के प्रभाव को आकने के लिए उचित रूप मे इस्तेमाल किए जा सकते हैं। जिन प्राक्कल्पनाओ (Hypotheses) का परीक्षण किया गया है वे हैं—

(i) क्या नगरीकरण प्रति व्यक्ति आय के साथ सकारात्मक रूप मे सम्बन्धित है ?

(ii) क्या नगरीकरण की मात्रा मे वद्धि के परिणामस्वरूप बेरोजगारी मात्रा मे कमी होती है।

(iii) क्या नगरीकरण की मात्रा में वद्धि के परिणामस्वरूप निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली जनसख्या के अनुपात मे कमी होती है ?

तालिका 9 नगरीकरण की मात्रा प्रति व्यक्ति आय बेरोजगारी की दरे और निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली जनसख्या

	कुल जनसंख्या के रूप मे नगर जनसख्या का प्र श (1981)	प्रतिव्यक्ति आय प्रचलित कीमतों पर (1981 82)	दैनिक स्थिति बेरोजगारी की दर (1977 78)	निर्धनता रेखा के नीचे जनसंख्या का प्रतिशत (1977 78)
	(1)	(2)	(3)	(4)
1 महाराष्ट्र	35 0	2446	7 99	47 7
तमिलनाडु	33 0	1541	15 59	52 1
3 गुजरात	31 1	2238	6 24	39 0
4 पश्चिमी बगाल	65	1771	10 15	52 5
5 कनाटक	28 9	1644	9 36	48 3
6 पजाब	27 7	3169	4 8	15 1
7 आध्र प्रदेश	23 3	1659	10 67	42 2
8 हरियाणा	2 0	601	6 41	24 8
9 राजस्थान	20 9	1429	2 99	33 8
10 मध्य प्रदेश	0 3	1240	3 09	57 7
11 केरल	18 8	1445	25 69	47 0
12 उत्तर प्रदेश	18 0	1296	4 12	50 1
13 बिहार	12.5	1007	8 01	57 5
14 उडासा	11 8	1308	8 13	66 4
15 हिमाचल प्रदेश	7 7	1806	1 92	27.2
16 मणिपुर	26 4	14 3	2 00	29 7
17 त्रिपुरा	11 0	1206	5 04	59 7
अखिल भारत	23 7	1746	8 18	48 1

(1) और (2) में सहसम्बन्ध गुणाक 0.5

(1) और (3) में सहसम्बन्ध गुणाक = 0 18

(1) और (4) मे सहसम्बन्ध गुणाक -0.22

स्रोत कालम (1) के लिए भारत की जनगणना (1981)
कालम (2) के लिए केन्द्रीय सांख्यिकीय सगठन, राष्ट्रीय लेखा साख्यिकी
कालम (3) के लिए योजना आयोग, छठी पचवर्षीय योजना (1980-85)
कालम (4) के लिए लोकसभा के चिन्ह रहित प्रश्न न. 3 20 दिसम्बर, 10 1980 के उत्तर से

कुल जनसख्या मे नगर जनसख्या के अनुपात और प्रति व्यक्ति आय मे सह सम्बन्ध गुणाक (Co eff cient of cor relation) 0 5 था जो काफी महत्त्वपूर्ण था। इससे सकेत मिलता है कि नगरीकरण की मात्रा और प्रति व्यक्ति आय मे सकारात्मक सम्बन्ध है।

किन्तु नगर जनसख्या के अनुपात ओर दैनिक स्थिति की बेरोजगारी की दर मे सह सम्बन्ध गुणाक +0 18 था जो कि सकारात्मक किन्तु महत्वहीन था। इसका अर्थ यह है कि नगरीकरण की अधिक मात्रा के परिणामस्वरूप बेरोजगारी की दर मे कमी नहीं हुई अर्थात् ग्राम क्षेत्र से मुक्त हुई अतिरिक्त श्रमशक्ति को नगरीय रोजगार में समोया न जा सका। अनुभवजन्य आकडों के विश्लेषण से नगरीकरण और बेरोजगारी के बीच प्रत्याशित नकारात्मक सह सम्बन्ध प्रमाणित हो सका।

नगर जनसख्या के अनुपात ओर निर्धनता रेखा के नीचे जनसख्या के प्रतिशत के बीच सहसम्बन्ध गुणाक -0 22 था। इसके हल्के से नकारात्मक सम्बन्ध का सकेत मिलता है जो सांख्यिकीय दृष्टि से महत्त्वहीन है। जाहिर है कि नगरीकरण का जो ढाचा भारत मे विकसित हुआ है उसका गरीबी को कम करने पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पडा।

2 D R Gadgil *The Industrial Evolution of India*, p 148

निष्कर्ष के रूप मे यह उल्लेख किया जा सकता है कि नगरीकरण और प्रति व्यक्ति आय सकारात्मक रूप मे सम्बन्धित हैं किन्तु नगरीकरण और बेरोजगारी मे सम्बन्ध लगभग गायब है और नगरीकरण और निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली जनसख्या मे कोई सम्बन्ध विद्यमान नहीं। इस स्थिति के लिए कई कारणतत्व जिम्मेदार हे प्रथम हमारे आयोजन प्रोग्रामो मे नगर क्षेत्रो मे गन्दी बस्तियो के सुधार के प्रति उपेक्षा के कारण निर्धनता की स्थिति बदस्तूर बनी हुई है। उदाहरणार्थ, कलकत्ता के गन्दी बस्ती सर्वेक्षण से पता चलता है कि इसकी जनसख्या का 33 प्रतिशत गन्दी बस्तियो मे रहता है। दूसरे, जहा पर सगठित क्षेत्र अपनी आय को सामूहिक सौदाशक्ति द्वारा उन्नत कर लेते हैं असगठित क्षेत्रो के श्रमिको का पूजीपतियो, जमींदारो, ठेकेदारो और उत्पादन के साधनो के अन्य मालिको द्वारा बुरी तरह शोषण किया जाता है। तीसरे, नगरीय क्षेत्रो म पूजी प्रधान तकनीको के बढ़ते हुए प्रयोग के कारण उत्पादन मे वृद्धि तो प्राप्त हो जाती है परन्तु इससे सापेक्ष रूप मे रोजगार मे वृद्धि नहीं होती परिणामत अर्थव्यवस्था की श्रम प्रचूषण क्षमता (Absorptive Capacity) कम रहती है और इससे इस बात का कुछ हद तक व्याख्या होती है कि नगरीकरण का बेरोजगारी पर निश्चित रूप से प्रभाव नहीं पडता। अन्तत, परन्तु महत्त्वपूर्ण कारण तत्व यह है कि विकास के लाभ समाज के विभिन्न वर्गों मे असमान रूप मे वितरित होते हैं और इसके परिणामस्वरूप आय एव सम्पत्ति के सकेन्द्रण से प्रति व्यक्ति आय तो बढ जाती है परन्तु इससे न तो निर्धन वर्गों का अधिक दशा उन्नत होती है और न ही न्यूनतम मजदूरी स्तर पर रोजगार का विस्तार होता है दूसरे शब्दो म देश म घेरा म परिबद्ध विकास (Enclave type of development) होता है जिसका विस्तार प्रभाव बहुत ही सीमित रहता है।

5 जनसख्या वृद्धि आर्थिक विकास की गतिरोधक

आर्थिक विकास का प्रक्रिया म किसी देश का श्रम शक्ति द्वारा अपने यहा के प्राकृतिक ससाधनो का उपयोग सम्मिहित रहता है ताकि देश का उत्पादन सभावना सिद्ध की जा सके। इसमे सन्देह नहीं कि विकास प्रक्रिया म देश का श्रम शक्ति का सक्रिय योगदान रहता है किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसख्या विकास प्रक्रिया को मन्द कर देती है बढ़ती हुई जनसख्या आर्थिक ससाधनो के लिए अनेक रूप में बाधक सिद्ध होती है। इस सम्बन्ध म समस्या का अध्ययन रोचक विषय है—

(1) जनसख्या और राष्ट्रीय आय वृद्धि—यद्यपि 1960-61 से 1990-91 के दौरान (1980 81 की कीमतो पर) राष्ट्रीय आय मे 215 प्रतिशत की वृद्धि हुई किन्तु जनसख्या की वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति आय केवल 58 प्रतिशत बढ गई। इस समय हमारा राष्ट्रीय आय का चक्रवृद्धि दर 3 9 प्रतिशत, प्रति व्यक्ति आय का वृद्धि दर 1 6 प्रतिशत है। जनसख्या का वृद्धि दर मे गिरावट आने के साथ शुद्ध प्रति व्यक्ति आय का वृद्धि दर बढ जाएगा परन्तु जनसख्या का ऊची वृद्धि दर देश मे प्रति व्यक्ति आय के स्तर को उन्नत करने मे रुकावट ही सिद्ध हो सकता है।

(2) जनसख्या और खाद्य सभरण (Population and Food Supply)—जबसे माल्थस ने अपना प्रसिद्ध ग्रथ 'ऐसे आन पापुलेशन' रचा तब से जनसख्या बनाम खाद्य सभरण की समस्या पर ध्यान केन्द्रित हो गया। इसमे सन्देह नहीं कि भारत म प्रति व्यक्ति कृषि योग्य क्षेत्र क्रमश कम होता जा रहा है। 1971 से 1991 के बीच प्रति व्यक्ति कृषि क्षेत्र 1 11 एकड से घटकर 0 47 एकड रह गया जिसका अभिप्राय 44 प्रतिशत की कमी है। आगामी दशको म जीवित शेष दर (Survival Rate) बढने के कारण प्रति व्यक्ति कृषि भूमि और भी कम हो जाएगी। परिणामत कृषि भूमि व्यक्ति अनुपात म कमी की क्षतिपूर्ति के लिए उत्पादिता बढाने के लिए प्रयत्न करना अनिवार्य होगा।

तालिका 10 खाद्यान्नो की शुद्ध उपलब्धि

वर्ष	जनसख्या (लाखों मे)	खाद्यान्नों का शुद्ध उत्पादन (लाख टन)	प्रति व्यक्ति उपलब्धि (ग्रामों में)
1	2	3	4=3÷2
956	39 3	62	431
1961	44	[illegible]	469
19 [illegible]	59 [illegible]	890	409
19 9	6590	1[illegible]0	4 4
1958	[illegible]90	13 0	458
1990	[illegible] 0	1[illegible]0	4 4
1991*	8[illegible]0	1[illegible]	510
1996	93 0	1694	498

नोट शुद्ध उत्पादन कुल उत्पादन का [illegible] प्रतिशत अनुमानित है 12 [illegible] प्रतिशत उत्पादन के बीज चारे को [illegible] और क्षय व्यय के लिए [illegible] है * अनुमान

स्रोत भारत सरकार, आर्थिक समीक्षा, (1996-97)

1956 और 1996 के बीच खाद्यान्नो का शुद्ध उत्पादन 62 लाख टन से बढ़कर 1694 लाख टन हो गया अर्थात् इसमे 170 प्रतिशत वृद्धि हुई परन्तु खाद्यान्नो का प्रति व्यक्ति उपलब्धि 431 ग्राम से बढ़कर 498 ग्राम हो गई अर्थात् इतने 40 वर्षों म केवल 15 5 प्रतिशत की सामान्य वृद्धि हुई। प्रति व्यक्ति उपलब्धि म सामान्य वृद्धि का कारण जनसख्या का वृद्धि है। चूँकि अधिक जनसख्या वृद्धि का

में होती है इस कारण कुल खाद्य उत्पादन मे पारिवारिक उपभोग का भाग बढ जाएगा जिसके परिणाम के तौर पर विक्रय अतिरेक (Marketable surplus) काफी कम बचेगा। इन आशकाओं के कारण परिवार परिसीमन (Family limitation) की आवश्यकता ओर अधिक प्रबल प्रतीत होती है।

(3) जनसख्या और अनुत्पादक उपभोक्ताओ का भार—स्थूल रूप मे भारतीय जनता को दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—उत्पादक उपभोक्ता और अनुत्पादक उपभोक्ता। उत्पादक उपभोक्ता (Productive consumers) शब्द का प्रयोग जनसख्या के उस भाग से है जो राष्ट्रीय आय मे योगदान करता है दूसरे शब्दो मे इससे देश की श्रम शक्ति का बोध होता है। अनुत्पादक उपभोक्ता वर्ग मे वे सभी व्यक्ति शामिल है जो अपने पालन पोषण के लिए दूसरो पर निर्भर हैं अर्थात् बच्चे बूढे ऐसी स्त्रिया जो केवल घरेलू कार्य करती हैं बेरोगार व्यक्ति आदि। स्थूल रूप मे बच्चे बूढे ओर 15 से 59 वर्ष तक के आयु वर्ग (Age groups) के बेरोजगार व्यक्ति अनुत्पादक उपभोक्ता वर्ग मे समाविष्ट है।

तालिका 11 भारत मे उत्पादक और अनुत्पादक उपभोक्ताओ की सख्या

	कुल कार्यकारी जनसंख्या (या उत्पादक उपभोक्ता)		कुल अकार्यकारी जनसंख्या (या अनुत्पादक उपभोक्ता)	
	कुल	प्रतिशत	कुल	प्रतिशत
1961	1830 लाख	(43 0)	2560 लाख	(57 0)
1971	1750 लाख	(34 2)	3720 लाख	(65 0)
1981	2200 लाख	(37 6)	4640 लाख	(62 4)
1991	3150 लाख	(37 8)	5290 लाख	(62 2)

तालिका 11 मे दिए गए श्रम शक्ति के आकडो से स्पष्ट है कि 1961 81 के दौरान कार्यकारी एव अकार्यकारी जनसख्या (Working and non working population) के परस्पर अनुपात मे कमी हुई। जबकि 1961 मे अनुत्पादक उपभोक्ताओ की सख्या 2,560 लाख थी 1981 मे इनकी सख्या 4 640 लाख आकी गयी। न केवल परम रूप मे ही बल्कि सापेक्ष अनुपात की दृष्टि से भी अनुत्पादक उपभोक्ताओं (Unproductive consumers) का चाहे 1981 91 के दौरान कार्यकारी जनसख्या का अनुपात स्थिर रहा, परन्तु अकार्यकारी जनसख्या की मात्रा बढकर 5,290 लाख हो गयी। कुल जनसख्या मे भाग 1961 मे 57 प्रतिशत से बढकर 1991 मे 62 2 प्रतिशत हो गया। कुल जनसख्या का 42 प्रतिशत 14 वर्ष तक आयु वर्ग के अन्तर्गत होने के कारण अनुत्पादक उपभोक्ताओ मे बालको की सख्या कुल अकार्यकारी जनसख्या का लगभग 80 प्रतिशत है। बालको की अधिक तथा बढ़ती जनसख्या के कारण उनके पालन पोषण के भार मे वृद्धि हुई।

(4) जनसख्या और बेरोजगारी—बढती हुई जनसख्या के साथ साथ समाज की श्रम शक्ति मे वृद्धि होती है। *परिणामस्वरूप बेरोजगारी की समस्या और अधिक जटिल* हो जाती है। छठी योजना (1980 85) से पता चलता है कि बेरोजगारो की सख्या 207 लाख थी जो कुल श्रम शक्ति के 7 74 प्रतिशत के समान है। आठवीं योजना (1992 97) ने अनुमान लगाया कि 1990 मे अवशिष्ट बेरोजगारो की सख्या 280 लाख थी। परम एव सापेक्ष दोनो रूपो मे बेरोजगार व्यक्तियो की सख्या में वृद्धि से जाहिर होता है कि आयोजन के पिछले 40 वर्षों मे अवशिष्ट बेरोजगारो को तो समोने की बात ही क्या पचवर्षीय योजनाए श्रम शक्ति मे शुद्ध वृद्धि का जज्ब करने मे भी असमर्थ रही है। स्पष्ट है कि राष्ट्रीय साधनो का एक बडा अश रोजगार के अवसरो का विस्तार करने मे व्यय हो जाएगा ताकि जनसख्या मे तीव्र वृद्धि के अनवरत दबाव के परिणामस्वरूप श्रमिको की बढती हुई सख्या ओर अवशिष्ट बेरोजगारो (Backlog of unemployed) को काम मे लगाया जा सके

(5) जनसख्या और शिक्षा डाक्टरी सहायता तथा आवास का भार—बढती हुई जनसख्या के कारण बालको की सख्या मे वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा पर अधिक व्यय आवश्यक हो जाता है इसमे सन्देह नही कि शिक्षा पर किया गया व्यय मनुष्यो पर किया गया ऐसा व्यय है जो अन्तत श्रमिको की उत्पादिता मे वृद्धि करता है किन्तु इस बात पर बल देना होगा कि इस सम्बन्ध मे समयान्तर काफी लम्बा होने के कारण विनियोग की प्रति इकाई द्वारा उत्पाद म वृद्धि पर प्रभाव बहुत कम पडता है प्रत्येक छात्र पर 144 रुपये वार्षिक व्यय का अनुमान लगाया गया है। 1991 मे 5 से 14 वर्ष तक के आयु वर्ग मे 1960 लाख *व्यक्तियो के होने के कारण शिक्षा व्यय मे 2822 करोड रुपये* वार्षिक वृद्धि होगी। इसके साथ साथ यदि माध्यमिक स्तर के स्कूलो से निकलने वाले छात्रो के दबाव के परिणामस्वरूप विश्वविद्यालय शिक्षा पर व्यय मे होने वाली वृद्धि को भी जोड लिया जाए, तो शिक्षा पर व्यय मे वृद्धि ओर भी अधिक हो जाएगी। इसके अतिरिक्त, डाक्टरी देखभाल ओर सार्वजनिक स्वास्थ्य पर भी ओर अधिक विनियोग करना पडेगा। केवल इतना ही नहीं अतिरिक्त जनसख्या के लिए आवास की व्यवस्था भी करनी होगी।

(6) जनसख्या वृद्धि और पूजी निर्माण—प्रति व्यक्ति वास्तविक आय के विद्यमान स्तर को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि राष्टीय आय मे उसी दर से वृद्धि हो जिस दर से जनसख्या मे वृद्धि हो रही है भारत मे जनसख्या वृद्धि की वार्षिक वर्तमान दर 2 11 प्रतिशत है। प्रति व्यक्ति वास्तविक आय के विद्यमान स्तर को स्थिर रखने के लिए

यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय मे 2 11 प्रतिशत वार्षिक दर से वृद्धि हो। इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए पूजी विनियोग आवश्यक है। भारतीय अर्थव्यवस्था मे पूजी उत्पाद अनुपात (Capital output ratio) 4 2 आका गया है जिसका अर्थ यह है कि उत्पाद की एक इकाई की वद्धि के लिए 4 2 इकाई पूजी आवश्यक है। इस प्रकार राष्टीय आय मे 2 1 प्रतिशत की दर से वद्धि के लिए 8 6 प्रतिशत (अर्थात 2 1 × 4 2) पूजी सचय आवश्यक है। इस विवेचन से स्पष्ट रूप मे यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि जनसख्या मे 2 1 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि के सदर्भ मे लगभग 9 प्रतिशत दर से विनियोग अपेक्षित है। इसका अर्थ यह है कि जनता का जीवन स्तर उन्नत करने के लिए बहुत कम पूजी शेष रह जाती है।

इन सब बातो से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि विकास के लाभ भारत की गरीब जनता तक नहीं पहुच पाते। इसके लिए बहुत से कारण उत्तरदायी ठहराये जा सकते है जैसे भूमि तथा अन्य सम्पत्ति के स्वामित्व का अन्यायपूर्ण ढाचा समाज के निर्धन वर्गों के उत्थान के लिए निर्देशित उपायो पर कम बल और भारत मे पिछले दो दशको के दौरान आर्थिक विकास की धीमी गति। परन्तु इन सब कारणो के साथ जनसख्या की वृद्धि भी एक महत्त्वपूर्ण कारण है। अत **भारत अति जनसख्या वाला देश है या नहीं यह विवाद अनावश्यक है। यदि जनसख्या आवश्यकता से अधिक हो तो भी अतिरिक्त जनसख्या का सहार नहीं किया जा सकता। आवश्यकता इस बात की है कि एक ओर तो अधिक जनसंख्या का निर्वाह करने के लिए अपनी उत्पादन क्षमता बढानी होगी और दूसरी ओर प्रजनन कम करना होगा ताकि जनसख्या वृद्धि दर को कम किया जा सके।**

6 जनसख्या नीति
(Population Policy)

जनसख्या वृद्धि की अधिकता का निर्णय इस तथ्य से किया जा सकता है कि इसम 1981 96 मे लगभग 2 490 लाख की वृद्धि हुई। 1996 मे भारत की जनसख्या लगभग 93 2 करोड हो गई। सन् 2000 तक यह बढकर 100 करोड हो जाएगी। जनसख्या वृद्धि की चिन्तनीय दर को देखते हुए यह आवश्यक है कि जनसख्या वद्धि की दर को कम करने के लिए ठोस जनसख्या नीति अपनाई जाए।

परिवार नियोजन कार्यक्रम और पचवर्षीय योजनाएं

चाहे भारत पहला देश था जिसने 1952 मे परिवार नियोजन कार्यक्रम को औपचारिक रूप मे स्वीकार किया परन्तु जनसख्या वृद्धि पर गभीर चिन्तन तीसरी योजना मे आरभ हुआ और जनसख्या वद्धि की दर को उचित समय-अवधि के अन्दर सीमित करने का निर्णय किया गया। इसके पश्चात् विभिन्न नीति सम्बन्धी प्रलेखो मे लक्ष्य निर्धारित किए गए। तालिका 12 मे निश्चित लक्ष्य और वास्तविक उपलब्धि का साराश दिया गया है।

तालिका 12 जनसख्या सम्बन्धी लक्ष्य और वास्तविक उपलब्धि

वर्ष	रूक्ष जन्मदर का निश्चित लक्ष्य	लक्ष्य प्राप्त करने का निर्धारित वर्ष	वास्तविक उपलब्धि
1962	25	1973	34 6
1968	23	1978 79	33 3
1974	30	1979	33 7
अप्रैल 1976	30	1978 79	33 3
	25	1983 84	33 7
अप्रैल 1977	30	1978 79	33 3
	25	1983 84	33 7
राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति	31	1985	32 9
(1983)	27	1990	29 9
सातवीं योजना	29 1	1990	29 9
आठवीं योजना	26 0	1997	

स्रोत योजना आयोग आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992 97)

तीसरी योजना मे पहली बार रूक्ष जन्मदर (Crude Birth Rate) को 1973 तक घटा कर 25 प्रति हजार तक करने का जनसख्या सम्बन्धी लक्ष्य रखा गया परन्तु उपलब्धि प्रत्याशा से कहीं कम थी। इसी प्रकार 1968 मे जन्मदर को 1978 79 तक घटा कर 23 प्रति हजार तक लाने का लक्ष्य तय किया गया किन्तु फिर उपलब्धि निराशाजनक थी। 1983 मे राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति की घोपणा मे सन् 2000 तक रूक्ष जन्मदर को 21 मृत्युदर को 9 और शुद्ध प्रजनन दर (Net Reproduction Rate) को 1 तक लाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया । इसके साथ साथ शिशु मृत्युदर को 60 प्रति हजार से कम करने और परिवार नियोजन उपायो का प्रयोग करने वाली दम्पत्तियो का अनुपात 60 प्रतिशत तक बढाने का लक्ष्य तय किया गया। इस नीति को छठी योजना मे 1995 तक के लिए लक्ष्य माना गया। किन्तु हाल ही मे की गयी समीक्षा से सकेत मिला कि यह लक्ष्य 2006 11 की अवधि मे पूरा हो सकेगा। केवल आठवी योजना के दौरान 1997 तक रूक्ष जन्मदर को 26 प्रति हजार तक लाने का लक्ष्य लगभग प्राप्त कर लिया जाएगा।

परिवार नियोजन लक्ष्यो को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाए गए।

(i) परिवार नियोजन सम्बन्धी जानकारी बढाने के लिए प्रेरणा प्रोग्राम (Motivation Programme) परिवार नियोजन

का संदेश प्रत्येक नगर तथा गाव मे फैलाने के लिए जन प्रचार के सभी माध्यमो अर्थात् समाचार पत्रो रेडियो, टी वी फिल्मो आदि का विस्तृत रूप मे प्रयोग किया गया ताकि परिवार परिसीमन (Family limitation) सम्बन्धी चेतना जगाई जा सके। (*ii*) ग्रामीण एव शहरी जनसख्या के सभी वर्गों को गर्भनिरोधको का सभरण बढाना। (*iii*) वन्ध्यकरण या नसबन्दी (Sterilisation) करवाने वाले व्यक्तियो को नकद इनामो के रूप में वित्तीय प्रोत्साहन देना। (iv) पुरुषों एव स्त्रियो पर वन्ध्यकरण या नसबन्दी का विस्तृत प्रयोग।

भारत में परिवार नियोजन कार्यक्रम मे किसी एक उपाय का ही आश्रय नहीं लिया गया बल्कि कैफेटेरिया प्रणाली (Cafetaria approach) अपनाई गई जिसके अधीन गर्भनिरोधक के विज्ञान द्वारा स्वीकृत सभी उपायो का प्रयोग किया गया। इनमे मुख्य उपाय थे वन्ध्यकरण या नसबन्दी यू सी डी झिल्ली मौखिक गोली आदि। इन उपायो के अतिरिक्त कुछ हद तक सरकार शिक्षा और आर्थिक विकास द्वारा जनसख्या की वृद्धि को सीमित करने मे विश्वास रखती थी। जनता के शिक्षा स्तर को ऊचा करने से जन्म दर को कम करने पर प्रभाव पडता है। ऐसा विशेष रूप मे स्त्री जनसख्या के शिक्षित होने पर होता है। भारत मे किए गए अध्ययनो से इस तथ्य का समर्थन हुआ है कि जनन दर (Fertility rate) का शिक्षा और आर्थिक विकास से सम्बन्ध है। छोटा परिवार रखने और गर्भनिरोधको को सफलतापूर्वक अपनाने की प्रेरणा उन वर्गों मे सबसे अधिक बलवती है जो शिक्षित और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं।

आपातकाल के दौरान जनसख्या नीति

16 अप्रैल 1976 को सरकार ने राष्ट्रीय जनसख्या नीति की घोषणा की। इस नीति का आधार यह था कि जनसख्या विस्फोट (Population explosion) एक गम्भीर सकट का रूप धारण कर लिया गया है और जनसख्या को सीमित करना हमारी सबसे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय समस्या है। इस समस्या के समाधान के लिए सीधा प्रहार करना होगा। इस जनसख्या नीति के मुख्य लक्षण थे।

(*i*) सरकार ने विवाह की न्यूनतम आयु लडकियो के लिए 18 वर्ष और लडकों के लिए 21 वर्ष करने का विधान बनाया।

(*ii*) चूँकि गरीब वर्गों द्वारा परिवार नियोजन की स्वीकार्यता का मौद्रिक क्षतिपूर्ति (Monetary Compensation) से महत्वपूर्ण सम्बन्ध है नयी जनसख्या नीति मे मई, 1976 से मौद्रिक क्षतिपूर्ति बढा दी गयी।

(*iii*) जबरन नसबन्दी (Compulsory sterlisation) के प्रश्न पर सरकार का मत था कि वह देशभर के लिए केन्द्रीय अधिनियम द्वारा जबरन नसबन्दी लागू करने का इरादा नहीं रखती किन्तु यदि कोई राज्यीय सरकार (State Government) यह निर्णय करे कि इसके लिए उपयुक्त समय आ गया है तो वह ऐसा कर सकती है।

राष्ट्रीय जनसख्या नीति का घोषणा के फौरन बाद, सरकार ने देश मे आपातकालीन परिस्थितियो का लाभ उठाते हुए जबरन नसबन्दी का महाभियान चलाया। 1976 77 के दौरान, 43 लाख नसबन्दियो के लक्ष्य के विरुद्ध 82 लाख नसबन्दियो की गयीं। जबरन नसबन्दी के प्रोग्राम म यह तेजी एक ओर तो जबरी उपायो और दूसरी ओर प्रोत्साहन की सहायता से लायी गयी। आम जनता ने यह महसूस किया कि प्रशासन का बल जबरन नसबन्दी लागू करने के लिए इस्तेमाल किया गया। चूँकि प्रशासन को लक्ष्य प्रेरित पद्धति पर कार्य करना पडता था, इस कारण प्रशासन द्वारा अपनी शक्ति का बडे पैमाने पर दुरुपयोग किया गया और बडे पमाने पर 'नसबन्दी शिविरो (Vasectomy camps) पर लोगो को जबरदस्ती घेर कर लाया गया।

आपातकाल के पश्चात् जनसख्या नीति

1977 के आम चुनाव मे जबरन नसबन्दी एक मुख्य प्रश्न बन गया। लोगो ने परिवार नियोजन कार्यक्रम मे जबरदस्ती और बल प्रयोग के विरुद्ध अपना रोष व्यक्त किया। इसके फलस्वरूप श्रीमती इन्दिरा गांधी का सरकार की भारी पराजय हुई।

जनता सरकार, जिसने मार्च 1977 मे प्रशासन की बागडोर सभाली ने जनसख्या की समस्या की गभीरता को बिल्कुल अनुभव न किया और इस कारण परिवार नियोजन कार्यक्रम को भारी धक्का लगा। परिणामत 1977 78 म गत वर्ष की 82 लाख नसबन्दियो के विरुद्ध केवल 6 4 लाख नसबन्दिया की गयीं। जनता सरकार द्वारा जुलाई 1977 मे घोषित जनसख्या नीति मे जनसख्या की समस्या का समाधान करने के लिए स्वेच्छिक नियत्रणो के प्रयोग पर बल दिया गया। साथ ही इस बात पर जोर दिया गया कि परिवार नियोजन सेवाओ का समन्वय स्वास्थ्य प्रसूति तथा शिशु कल्याण और पोषाहार के साथ करना चाहिए। नौकरशाही ने भी परिवार नियोजन कार्यक्रम के कार्यान्वियन मे ढाल दिखाई। यह बात दो तथ्यो से व्यक्त हुई पहला, नसबन्दी अभियान (Sterlisation compaign) की गति मे कुछ ढील आनी ता अनिवार्य भी थी परन्तु जितना अधिक धक्का इस प्रोग्राम को आपातकाल के बाद लगा, वह न्यायेचित नहीं माना जा सकता।

छठी योजना (1980 85) के अधीन परिवार नियोजन

छठी योजना मे परिवार कल्याण प्रोग्राम की समीक्षा से

पता चलता है कि वन्ध्यकरण के 240 लाख के लक्ष्य के विरुद्ध वास्तविक रूप मे केवल 170 लाख वन्ध्यकरण किए गए। लूप लगाने के 79 लाख लक्ष्य के विरुद्ध केवल 70 लाख लूप लगाए गए। निरोध का प्रयोग करने वालो के 110 लाख व्यक्तियो के लक्ष्य के विरुद्ध केवल 93 लाख व्यक्तियो को 1984-85 तक के लिए प्रेरित किया गया।

उपलब्धियो में कमी के निम्नलिखित मुख्य कारण थे—(*i*) अध सरचना सुविधाओ (Infrastructure facilities) का अभाव, (*ii*) उपलब्ध ससाधनो के अनुकूलतम स्तर से कहीं कम उपयोग (*iii*) राजनीतिव आर्थिक एव सास्कृतिक *सीमाबन्धन* (*iv*) उच्च शिशु मृत्यु दर जो चाहे 1970 80 के दशक मे लगभग 125 से कम होकर 1980 मे 114 हो गयी है परन्तु अब भी इतनी अधिक है कि दम्पती अपने बच्चो के जीवित रहने के बारे मे पूरा भरोसा महसूस नहीं करते।

सातवीं योजना और परिवार कल्याण प्रोग्राम

छठी योजना के लक्ष्यो की पूर्ति न होने की पृष्ठभूमि मे सरकार ने इस स्थिति की एक वास्तविक समीक्षा करते हुए अपनी स्वास्थ्य नीति को सशोधित किया ताकि सन् 2000 तक शुद्ध प्रजनन दर (Net reproduction rate) को 1 तक लाने की बजाए सन् 2006 से 2011 की अवधि के बीच यह लक्ष्य प्राप्त किया जा सके। सातवीं योजना मे सन् 2000 जनसख्या की वृद्धि दर को 1 2 प्रतिशत तक लाने के लिए जन्म-दर को घटाकर 21 प्रतिशत और शिशु मृत्यु दर को घटा कर 60 प्रति हजार करने का लक्ष्य रखा गया। परिवार परिसीमन के लिए दम्पती सुरक्षा-दर को बढाकर सन् 2000 तक 60 प्रतिशत करने का निश्चय किया गया।

परिवार नियोजन और माता एवं बाल स्वास्थ्य विधि

समय के साथ सरकार ने यह महसूस किया है कि देश मे परिवार नियोजन तभी सफल हो सकता हे यदि बाल जीवित शेष दर (Child survival rate) बढाई जा सके। सातवीं योजना मे साफ तौर पर उल्लेख किया गया "उच्च जन्म-दर और उच्च शिशु मृत्यु दर के बीच निकट सम्बन्ध को मानते हुए, जच्चा बच्चा स्वास्थ्य कार्यक्रम (Maternity Health Programme) को उच्च प्राथमिक्ता दी जाएगी।" *योजना मे फिर उल्लेख किया गया* 'दो बच्चो' के मानक को प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है कि देश मे शिशु जीवित-शेष दर बढाई जाए। प्रति 1000 पर 114 की शिशु मृत्यु दर निश्चित की बहुत अधिक और अस्वीकार्य है। यहा भी भिन्न भिन्न राज्यो मे काफी अन्तर हे-कुछ राज्यो जैसे केरल ने शिशु मृत्यु-दर कम करने मे बढिया काम किया जबकि अन्य राज्य जैसे उत्तर प्रदेश और बिहार काफी पीछे हैं। चूंकि आधे से अधिक बच्चो की मृत्यु नवजात अवस्था में हो जाती है, अत जच्चा-बच्चा स्वास्थ्य उपचर्या कार्यक्रमो को काफी *मजबूत बनाना होगा।*"[3]

प्रमाण इस बात को सिद्ध करता है कि चीन मे 1965-83 के दौरान शिशु मृत्यु दर भारी मात्रा मे घट कर 90 से 38 हो गयी और बाल मृत्यु दर मे भारी एव प्रशसनीय उन्नति के परिणामस्वरूप परिवार नियोजन उपायो की स्वीकार्यता के प्रति अनुकूल वातावरण कायम हो गया। परिणामत जन्म दर जो 1965 मे 39 प्रति हजार थी गिरकर 1983 मे 19 प्रति हजार हो गयी। इस प्रकार चीन मे जनसख्या की वृद्धि दर *जो 1965 75 मे 2 7 थी कम होकर 1978-83 के दौरान* 1 5 हो गयी। सातवां योजना द्वारा जच्चा-बच्चा प्रोग्राम पर अधिक बल देना अभिनन्दीय था।

सातवीं योजना का दूसरा मुख्य बल जच्चा मृत्यु दर (Maternal mortality) को कम करना है। सातवीं योजना मे यह स्वीकार किया गया 'देहाती इलाको मे आज भी दो तिहाई से अधिक जच्चाओ की शुश्रूषा अप्रशिक्षित दाइया करती ह अत इसके लिए उनके प्रशिक्षण को बढावा देने की जरूरत हे।'[4]

परिवार नियोजन कार्यक्रमों का क्षेत्र इसका नया नाम सस्करण कर, परिवार कल्याण कायक्रमो के रूप मे विस्तृत किया गया है ताकि इसमें मातृ तथा बाल-स्वास्थ्य की समस्याओ की ओर ध्यान दिया जा सके। यह एक सही दिशा मे कदम है। बच्चो की जीवित शेष दर मे उन्नति तथा देश मे जच्चा-बच्चा सेवाआ मे सुधार से ग्राम-क्षेत्रा और विशेषकर निघनो मे परिवार नियोजन की स्वीकार्यता बढ जाएगी।

आठवीं योजना मे परिवार नियोजन की नयी रणनीति

दिसम्बर 1991 मे राष्ट्रीय विकास परिषद् के सम्मुख पेश किए गए योजना आयोग के प्रलेख "जनसख्या नियत्रण-चुनौतिया एव रणनीतिया' मे उल्लेख किया गया 'जनसख्या विस्फोट जो हमारे देश के सामाजार्थिक विकास के सभी प्रयासो को निष्फल बनाता जा रहा है हमारी सबसे महत्त्वपूण एकमात्र समस्या हे। 1991 की जनगणना से यह बात साफ हो गयी ह कि जनसख्या की वृद्धि दर म नाममात्र *कमी हुई है। 1971 91 के दशक के दौरान 2 2 प्रतिशत* से 1981 91 के दशक मे 2 11 प्रतिशत किन्तु 2 प्रतिशत की वृद्धि दर अभी भी बहुत ऊची ह। यदि जनसख्या की वृद्धि दर वर्तमान स्तर पर बनी रहती है तो इस शताब्दी के अन्त तक

3 योजना आयोग, सातवीं पचवर्षीय योजना (1985 90) खण्ड II पृष्ठ 246

4 तत्रैव पृ 246 47

हमारी आबादी लगभग 100 करोड हो जाएगी और सन् 2040 तक यह दुगुनी होकर 170 करोड तक पहुच जाएगी। इतनी बडी जनसख्या का प्रबन्ध वस्तुत असभव हो जाएगा और भरसक प्रयास करने के बावजूद इतनी बडी जनसख्या के लिए जीवन की बुनियादी आवश्यकताए भी उपलब्ध नहीं करायी जा सकगी अत यह अनिवार्य हो जाता है कि जनसख्या नियत्रण को सर्वोच्च प्राथमिकता दा जाए।"

परिवार कल्याण कायक्रमो को प्रगति की समीक्षा से पता चलता है कि सन् 2000 तक राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति द्वारा निर्धारित लक्ष्य प्राप्त करने सभव हो सकेंगे। चाहे रूक्ष मत्यु दर को 9 प्रति हजार तक कम करना और शिशु मृत्युदर को स्वास्थ्य सेवाओ और माता एव बाल स्वास्थ्य को देखभाल के कार्यक्रमों के के परिणामस्वरूप कम करके 60 प्रति हजार तक कम करना तो सभव हो सकेगा किन्तु जन्मदर में आवश्यक कमी करके इसे 21 प्रति हजार और परिणामत जनसख्या वद्धिदर को 1 2 प्रतिशत तक कम करना व्यवहाय प्रतीत नहीं होता।" यदि ये लक्ष्य सन् 2010 तक भी प्राप्त करने हो, तो भी इसके लिए भारी प्रयास करना होगा जिसका आधार जनसंख्या नियत्रण पर सम्पूर्ण दृष्टिकोण होना चाहिए जिसमे परिवार नियोजन उपायो के साथ साथ समाजार्थिक उपाय भी करने होंगे।

1995 तक भारत दम्पत्ति सुरक्षण दर को 45 8 प्रतिशत तक बढा सका और शिशु मृत्युदर को 74 प्रति हजार तक कम कर सका। अत शुद्ध प्रजनन दर को 1 के स्तर तक 2006 2011 ईसवी तक लाने के लक्ष्य की प्राप्ति और पीछे जाती हो प्रतीत होता है। आठवीं योजना ने अपनी नजर नाचा कर ला है और यह लक्ष्य 2011 16 इसवा तक ही प्राप्त हो सकेगा। अत आठवीं योजना के अन्त तक रूक्ष जन्म दर को कम करके 26 प्रति हजार आर शिशु मत्यु दर को कम करके 70 प्रति हजार करने का लक्ष्य प्राप्त कर लिया गया है। यह एक सन्तोषजनक उपलब्धि है।

तालिका 13 विभिन्न योजनाओ मे परिवार नियोजन व्यय

	करोड रुपये	कुल योजना व्यय का प्रतिशत
दूसरी योजना (1961-66)	25	0.3
वार्षिक योजनाए (1966-69)	70	1 1
चौथी योजना (1969 74)	278	1 8
पाचवा योजना (1974 79)	49	1.2
छठी योजना (1980-85)	1448	1.3
सातवा योजना (1985 90)	3 171	1 4
आठवीं योजना (1992 97)	6,792	1 4

तालिका 13 मे दिए गए आकडो से पता चलता है कि चाहे परिवार नियोजन पर कुल व्यय जो छठी योजना (1980 85) के दौरान 1448 करोड रुपये था बढकर आठवी योजना (1992 97) मे 6792 करोड रूपये हो गया किन्तु कुल योजना व्यय के अनुपात के रूप मे यह नाममात्र 1 3 प्रतिशत से बढ कर इस अवधि के दौरान 1 4 प्रतिशत तक पहुच पाया। इससे यह बात रेखांकित होती है कि जनसख्या विस्फोट को नियंत्रित करने की बात चाहे जनसख्या नाति म तो उठायी गयी किन्तु आठवीं योजना के दौरान इसके लिए पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रदान नहीं की गया ताकि इसके विभिन्न अगा को मजबूत बनाया जा सकता। जनसख्या नाति के सम्बन्ध मे सरकार की कथनी और करनी मे यह भेद अत्यन्त निराशाजनक है।

7 भारतीय जनसख्या प्रक्षेपण (1996 2016)

1980 म भारत की जनसख्या 68 7 करोड थी जो विश्व विकास रिर्पोट के अनुसार 1995 तक बढकर 92 9 करोड हो गयी। इसके विरूद्ध चीन का जनसख्या 1980 में 98 1 करोड थी जो 1995 तक बढ कर 120 करोड हो गयी। यदि औसत वार्षिक दर के रूप मे देखें तो पता चलता है कि 1980 90 के दौरान भारत का जनसख्या की औसत वार्षिक वद्धि दर 2 1 प्रतिशत थी जब कि इसकी तुलना म चीन मे इसी काल मे वद्धि दर 1 5 प्रतिशत थी परन्तु चीन की औसत वार्षिक वद्धि दर (1990 95) के दौरान तेजी से गिरकर 1 1 प्रतिशत के निम्न स्तर पर आ गई परन्तु इसी काल के दौरान भारत मे जनसख्या वद्धि दर मे अपेक्षाकृत मामूली कमी हुई और यह कम होकर 1 8 प्रतिशत हो गयी। अत 1980 और 1995 के दौरान चीन की जनसख्या भारत का जनसख्या का तुलना मे 1 43 गुना थी परन्तु 1995 मे यह अनुपात गिर कर 1 29 हो गया। जाहिर है कि यदि जनसख्या नियत्रण मे भारत ने प्रभावी नीति नहीं अपनाया तो भारत की जनसख्या आगामी 20 वर्षों मे चीन की जनसख्या से बढ जाएगी या इसके बराबर अवश्य हो जाएगी।

इस सम्बन्ध मे योजना आयोग ने परिवार नियोजन के निष्पादन सम्बन्धी अद्यतन आकडा और जनन एव मत्यु दरो के वर्तमान स्तरो और प्रवत्तियो को ध्यान म रखते हुए, एक तकनीकी ग्रुप की नियुक्ति की जो कि नमूना पजीकरण प्रणाली (Sample Registration System) से प्राप्त सामग्री के आधार पर 1996 से 2016 की अवधि के लिए जनसख्या के प्रक्षेपण तैयार करे। इस तकनीकी ग्रुप ने रजिस्ट्रार जनरल

की अध्यक्षता मे कार्य करते हुए अपनी रिपोर्ट अगस्त 1996 मे प्रस्तुत की।

1991 की जनगणना से पता चला कि भारत की जनसख्या 84 63 करोड थी और इसमे जम्मू तथा कश्मीर राज्य की प्रक्षेपित 77 2 लाख जनसख्या भी शामिल थी जहा पर अशात परिस्थितियो के कारण जनगणना नहीं की गयी थी। चूकि आयु और लिग के आधार पर 1991 की जनगणना के आकडे उपलब्ध थे इसलिए भावी जनसख्या का पूर्वानुमान करना सभव था।

नमूना पजीकरण प्रणाली के आधार पर उपलब्ध औसत वार्षिक वृद्धि दर के आधार पर वर्ष 1996 के लिए भारत की जनसख्या का अनुमान लगाया गया। इस प्रक्षेपण के लिए यह मान्यता की गयी कि जनसंख्या के आयु वितरण का जो अनुपात 1991 मे वर्तमान था वही 1996 के लिए अपरिवर्तित रहता है। इस आधार पर 1996 मे भारत की जनसख्या 93 42 करोड आकी गयी।

प्रक्षेपण से सम्बन्धित मान्यताए

तकनीकी ग्रुप (Technical group) ने सांख्यिकीय प्रक्षेपण करते समय निम्नलिखित मान्यताए की।

(1) अन्तराष्ट्रीय प्रवसन (International Migration) की मात्रा नाममात्र मानी गयी। केरल और असम जैसे राज्यो मे भी प्रवसन दरे बहुत ही नीची पायी गयी। अत प्रवसन को ऐसा कारण तत्व समझा नहीं जा सकता जो जनसख्या प्रक्षेपणो को प्रभावित कर सके।

(2) शुद्ध प्रजनन दर – 1 को आधार बनाने की अपेक्षा इन प्रक्षेपणो मे सकल जनन दर (Total fertility rate) के साथ विस्थापित करने का निर्णय लिया गया ताकि इसका 2 1 का स्तर प्राप्त किया जा सके। तकनीकी ग्रुप ने सिफारिश की कि मध्य प्रदेश पजाब राजस्थान और उत्तर प्रदेश को छोड अन्य सभी राज्यो के लिए 1985 93 की अवधि के प्रक्षेपित सकल जनन दर के आकडो का प्रयोग किया जाए और इन चार राज्यो के लिए 1991 93 की अवधि के लिए प्रक्षेपित सकल जनन दरो को आधार बनाया जाए।

(3) चूकि 15 मुख्य राज्यो की जनसख्या कुल देश की जनसख्या के 95 7 प्रतिशत के बराबर है इस लिए इन राज्यो के आधार पर किए गए प्रक्षेपण जनाककीय दृष्टि से उचित अनुमान होगे।

(4) 15 मुख्य राज्यो के लिए सकल जनन दर के सग्रहित अनुमान (Poolled estimates) जिनका प्रयोग भारत की जनसख्या के प्रक्षेपणो के लिए किया गया तालिका 14 मे दिए गए है—

तालिका 14 भारत के लिए सकल जनन दर के सगृहीत अनुमान

वर्ष/अवधि	संग्रहीत अनुमान
1991	3 64
1991 1996	3 45
1996 2001	3 13
2001 2006	2 88
2006 2011	2 68
2011 2016	2 57

(5) जन्म पर प्रत्याशित आयु (Life expectancy at birth) मे वृद्धि को मृत्यु दर मे गिरावट के रूप मे सकेतक माना गया। आयु विशिष्ट मृत्यु दरो (Age specific death rates) के आधार पर पुरूषो और स्त्रियो की प्रत्याशित आयु परिकलित की गयी। इस प्रकार यह पता चला कि जन्म पर पुरूषो की प्रत्याशित आयु जो 1996 2001 के दौरान 62 3 वर्ष थी बढकर 2011 2016 की अवधि के दौरान 67 0 वर्ष हो जाएगी और इसी अवधि के दौरान स्त्रियो की प्रत्याशित आयु 65 3 वर्ष से बढ कर 69 2 वर्ष हो जाएगी।

(6) पुरूषो के लिए शिशु मृत्यु दर जो 1996 2001 के दौरान 78 प्रति हजार थी गिर कर 2011 2016 के दौरान 58 हो जाएगी और स्त्रियो के लिए इसी अवधि के दौरान यह गिर कर 80 से 59 तक पहुच जाएगी।

तकनीकी ग्रुप ने नमूना पजीकरण से प्राप्त जनन एव मृत्यु दरो के विश्वसनीय अनुमानो को आधार बना कर उत्तरजीवी अनुपात प्रणाली (Survivor ratio method) के प्रयोग द्वारा जनसख्या प्रक्षेपण तैयार करने की सिफारिश की।

इस प्रकार भारत की जनसख्या जो 1996 मे 93 4 करोड थी जो 2006 तक बढकर 109 4 करोड होने का अनुमान लगाया गया जो सन् 2016 तक और बढकर 126 4 करोड हो जाएगी। इस प्रकार 1996 2006 के दशक के दौरान जनसख्या की चक्रवृद्धि दर 1 58 प्रतिशत वर्ष आकी गयी जिसके 2006 से 2016 के दशक के दौरान गिर कर 1 45 प्रतिशत के स्तर पर पहुच जाने की आशा है।

तालिका 15 भारत की प्रक्षेपित जनसंख्या 1996-2006

	करोड़ व्यक्ति			प्रतिशत वितरण	
वर्ष	पुरूष	स्त्रियां	व्यक्ति	पुरूष	स्त्रियां
1996	48 5	44 9	93 4	51 9	48 1
2001	52 4	48 8	101 2	51 8	48 2
2006	56 4	53 0	109 4	51 6	48 4
2011	60 7	57 2	117 9	51 5	48 5
2016	64 9	61 5	126 4	51 3	48 7

तालिका 15 से पता चलता है कि 20 वर्षों की अवधि

1996 2016 के दौरान भारत की जनसख्या 93 4 करोड से बढकर 126 4 करोड हो जाएगी अर्थात इसमे 35.3 प्रतिशत की वृद्धि होगी। परन्तु पुरुष जनसख्या मे 33 8 प्रतिशत की वृद्धि (48.5 करोड से 64 9 करोड) होने की प्रत्याशा है जबकि स्त्री जनसख्या मे 37 प्रतिशत (44 9 करोड से 61.5) करोड वृद्धि की प्रत्याशा है। जाहिर है स्त्री जनसख्या की वृद्धि दर पुरुष जनसख्या की तुलना मे अधिक होगी। परिणामत कुल जनसख्या मे पुरुष जनसख्या का अनुपात जो 1996 मे 51 9 प्रतिशत था थोडा सा गिर कर 2016 मे 51.3 प्रतिशत हो जाएगा और इसके तदनुरूप स्त्रियो का अनुपात 48 1 प्रतिशत से थोडा बढकर 48 7 प्रतिशत हो जाएगा।

नगर जनसंख्या प्रक्षेपण

प्रक्षेपणो से पता चलता है कि नगर जनसख्या जो 1996 मे 27 23 प्रतिशत थी बढकर 2016 मे 33 67 प्रतिशत हो जाएगी। कुल रूप मे नगर जनसख्या जो 1996 मे 25 43 करोड थी बढकर 2016 में 42 56 करोड हो जाएगी।

जनसख्या की आयु सरचना

जनसख्या की आयु सरचना का विश्लेषण करने से पता चलता है कि 0 14 आयु वर्ग म बाल जनसख्या 1996 मे 35.3 करोड थी और 2016 मे इसके गिर कर 35 करोड हो जाने की प्रत्याशा है। इसका कारण जन्म दर मे प्रत्याशित गिरावट है। इस प्रकार 0 14 आयु वर्ग मे जनसख्या का अनुपात जो 1996 मे 37 7 प्रतिशत था गिर कर 2016 मे 27 7 प्रतिशत हो जाएगा।

इसके विरूद्ध 15 59 वर्ष के कार्यकारी आयु वर्ग मे जनसख्या जो 1996 मे 51 9 करोड थी से बढकर 2016 मे 80 करोड हो जाने की सभावना है। 15 59 आयुवर्ग मे जनसख्या का अनुपात जो 1996 मे 55 6 प्रतिशत बढकर 2016 मे 63.3 प्रतिशत हो जाने की प्रत्याशा है।

वृद्ध व्यक्तियो की जनसख्या (60 और इसके ऊपर के आयु वर्ग मे) के 1996 मे 6 2 करोड की तुलना मे 2016 मे 11 3 करोड तक बढ जाने की प्रत्याशा है। परिणामत वृद्ध व्यक्तियो का जनसख्या मे अनुपात जो 1996 मे 6 7 प्रतिशत था बढकर 2016 मे 9 प्रतिशत हो जाएगा।

जनसख्या प्रक्षेपणो से यह सकेत मिलता है कि जनसख्या की आयु सरचना मे एक सरचनात्मक परिवर्तन होने की सभावना है और इस प्रकार जनसख्या की औसत आयु बढ जाएगी। इसका कारण प्रत्याशित आयु मे वृद्धि और वृद्ध व्यक्तियों मे उत्तरजीवी-अनुपात मे वृद्धि है।

तालिका 16 जनसंख्या की आयु सरचना

आयुवर्ग	1996		2016	
	कोडव्यक्ति	प्रतिशत	करोडव्यक्ति	प्रतिशत
0 14	35 27	37 7	35 04	27 7
15 59	51 92	55 6	80 01	63 3
60 और अधिक	6 23	6 7	11 30	9 0
कुल	93 4	100 0	126.35	100 0

सकल जनन दर के 2 1 लक्ष्य को प्राप्त करना

तकनीकी ग्रुप ने यह लक्ष्य तय किया है कि प्रत्येक राज्य की सकल जनन दर को कम करके 2 1 के स्तर पर लाना होगा। यदि हाल ही के वर्षो मे सकल जनन दर मे कमी की गति बनी रहती है तो तकनीकी ग्रुप के विश्लेषण के अनुसार राज्यो को चार वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है।

वर्ग 1 मे दो राज्य अर्थात केरल और तमिलनाडू शामिल हैं जिन्होंने पहले ही सकल जनन दर का 2 1 का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है किन्तु ये इन दोनो की जनसख्या समग्र भारत की जनसख्या का केवल 9 7 प्रतिशत है।

वर्ग 2 मे पाच राज्य अर्थात आध्र प्रदेश महाराष्ट्र, कर्नाटक पश्चिम बगाल और उडीसा है जो सन् 2010 तक सकल जनन दर का 2 1 का लक्ष्य प्राप्त कर लेंगे। इन सभी राज्यो मे कुल मिला कर 34 प्रतिशत जनसख्या विद्यमान है।

वर्ग 3 में दो राज्य अर्थात् गुजरात और असम शामिल हैं जो सन् 2015 तक सकल जनन दर का 2 1 लक्ष्य प्राप्त कर लेंगे। कुल मिलाकर वे भारत की कुल जनसख्या का 7 5 प्रतिशत है।

वर्ग 4 मे छ राज्य हैं अर्थात पजाब हरियाणा बिहार, राजस्थान मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश। इनमे कुल मिला कर भारत की 44 5 प्रतिशत जनसख्या रहती है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि पजाब और हरियाणा ने आर्थिक विकास मे शानदार रिकार्ड कायम किया है और प्रतिव्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद के आधार पर प्रथम और द्वितीय स्थान प्राप्त किया है परन्तु मानवीय विकास के आधार पर इन का स्थान नीचा है और ये जन्मदर को कम करने मे पिछड गए हैं और परिणामत सन् 2016 मे सकल जनन दर का 2 1 का लक्ष्य प्राप्त कर सकेंगे परन्तु इन दोनो की जनसख्या कुल मिलाकर भारत को जनसख्या का केवल 4 4 प्रतिशत है।

परन्तु परिवार नियोजन के हमारे प्रयास मे वास्तविक बाधा तो चार राज्य हैं बिहार, राजस्थान मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश जो कुल मिलाकर भारत की जनसख्या का 40 प्रतिशत हैं। जिस धीमी गति से इन राज्यो मे सकल जनन दर मे गिरावट आ रही है उसका सकेत तो स्पष्टत इस बात से

लगाया जा सकता है कि सकल जनन दर का 2 1 प्रतिशत का लक्ष्य तो मध्य प्रदेश मे सन् 2060 के पश्चात ओर उत्तर प्रदेश मे सन् 2100 के पश्चात प्राप्त हो सकेगा। इन दोनो राज्यो की जनसख्या भारत की कुल जनसख्या का 25 प्रतिशत है। बिहार और राजस्थान को भी इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बहुत अधिक समय लगेगा। इसी कारण जनसख्या प्रक्षेपणो के तकनीकी ग्रुप 1996 की रिपोर्ट मे इस बात पर बल देते हुए उल्लेख किया गया यदि भारत को सन् 2011 या 2016 तक सकल जनन दर का 2 1 का एच्छित लक्ष्य प्राप्त करना है तब इसके लिए बिहार, हरियाणा पजाब मध्य प्रदेश राजस्थान और उत्तरप्रदेश की सरकारो को अपनी जनन दर को तेजी से कम करने के लिए फौजी उपाय करने हागे।

भारत के विभिन्न राज्यो मे प्रक्षेपित जनसख्या वृद्धि दरे

2006 और 2016 के दशक के दोरान जनसख्या वृद्धि की अधिकतम वार्षिक दर उत्तर प्रदेश मे 2 3 प्रतिशत रहने की प्रत्याशा है।

तालिका 17 अनुमानित वार्षिक वृद्धि दरे
(1996 से 2016)

राज्य		औसत वार्षिक वृद्धिदर
	1996 2006	2006 2016
1 केरल	1 0	0 8
2 तमिलनाडु	0 9	0 7
3 आध्र प्रदेश	1 1	1 0
4 महाराष्ट्र	1 2	1 0
5 कर्नाटक	1 3	1 1
6 पश्चिम बगाल	1 35	1 2
7 उडीसा	0 9	0 8
8 गुजरात	1 4	1 2
9 असम	1 55	1 55
10 पजाब	1 2	1 0
11 हरियाणा	1 6	1 45
12 बिहार	1 75	1 75
13 राजस्थान	1 83	1 80
14 मध्य प्रदेश	1 77	1 73
15 उत्तर प्रदेश	2 1	2 3
15 राज्यों का जोड	1 6	1 45
अन्य छोटे राज्य	1 0	1 4
कुल (भारत)	1 58	1 45

स्रोत जनसंख्या प्रक्षेपणों पर तकनीकी ग्रुप की रिपोर्ट (1996) से संकलित एव परिकलित

इसके बाद ह राजस्थान 1 8 प्रतिशत बिहार 1 75 प्रतिशत और मध्य प्रदेश 1 73 प्रतिशत। दूसरी ओर केरल तमिलनाडु, आध्र प्रदेश और महाराष्ट्र मे 2006 से 2016 के दशक के दौरान औसत वार्षिक वृद्धि दर 1 प्रतिशत या इससे कम रहने की प्रत्याशा है। उडीसा और पजाब मे भी जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर 1 प्रतिशत से कम हो जाएगी। ये स्वस्थ प्रवृत्तिया है जिन्हे और मजबूत बनाने की जरूरत ह।

वास्तविक समस्या वाले राज्य बिहार, राजस्थान मध्य प्रदेश ओर उत्तर प्रदेश ह। इन चार राज्यो की जनसख्या जो 1996 मे 37 4 करोड थी बढकर 2016 मे 55 2 करोड हो जाएगी अर्थात अगले 20 वर्षो मे इसमे 17 8 करोड की वृद्धि होगी। जनसख्या की वृद्धि दर को कम करने के लिए ठोस प्रयास करना चाहिए। इसके लिए साक्षरता विशेषकर स्त्री साक्षरता के मुख्य उपचार के साथ साथ अनुरोधक परिवार नियोजन कार्यक्रम चलाने से इस भयकर समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है।

❑❑❑

7

भारत में आर्थिक आयोजन

(ECONOMIC PLANNING IN INDIA)

1. आयोजन की ऐतिहासिक समीक्षा

भारत मे आयोजन के कर्णधार जवाहरलाल नेहरु की अध्यक्षता मे 1938 मे राष्ट्रीय आयोजन समिति (National Planning Committee) नियुक्त की गयी। समिति ने आयोजन के विभिन्न पहलुओ पर विचार कर कई रिपोर्टें प्रकाशित कीं। चूँकि राष्ट्रीय आयोजन समिति के अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू थे जो स्वतन्त्र भारत के पहले प्रधानमन्त्री बने अत इस समिति के विचार परवर्ती आयोजन का आधार बने। राष्ट्रीय आयोजन समिति ने यह मत व्यक्त किया कि समस्त मूल उद्योगों और सेवाओं, खनिज साधनो, रेलों, जल मार्गों नौ परिवहन और अन्य सार्वजनिक उपयोगिता वाले उद्योगो पर राज्य का स्वामित्व या नियत्रण होना चाहिए तथा यह सिद्धान्त उन बडे पैमाने के उद्योगो पर भी लागू होना चाहिए जिनमे एकाधिकार कायम होने की सभावना है। समिति ने यह स्पष्ट कर दिया कि कुटीर उद्योगो आर बडे पमाने के उद्योगो मे कोइ विरोध नहीं है। आर्थिक विकास के लिए अर्थव्यवस्था का औद्योगीकरण आवश्यक है। किन्तु औद्योगीकरण का अर्थ यह नहीं कि कुटीर उद्योगो की उपेक्षा कर जाए। समिति की यह धारणा थी कि कृषि का समावेश किए बिना राष्ट्रीय आयोजन की कोई भी योजना नहीं बनाई जा सकती। इस समिति ने उचित *क्षतिपूर्ति (Compensation)* देकर *जमींदारी प्रथा के उन्मूलन* की सिफारिश की। भूमि के वयक्तिक स्वामित्व के अधिक फैलाव को स्वीकार करते हुए सहकारी खेती (Cooperative farming) के सिद्धातो पर खेती करने की सिफारिश की गयी। इनके अतिरिक्त ऊची कृषि-आय पर आयकर की भाँति एक आरोही कर (Progressive Tax) लगाना वाछनीय समझा गया। राष्ट्रीय आयोजन समिति ने दस वर्षो मे जनता का जीवन-स्तर दुगुना करना अपना लक्ष्य रखा।

राष्ट्रीय आयोजन समिति के अतिरिक्त आठ उद्योगपतियों ने भारत के आथिक विकास के लिए एक योजना तैयार की जो बम्बइ योजना (Bombay Plan) के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त आचार्य श्रीमन्नारायण ने जो कि गाधी जी के अनुयायी थे गाधीवादी योजना (Gandhian Plan) मे दस वर्ष की अवधि मे न्यूनतम जीवनस्तर उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा। इस योजना मे कृषि और उद्योग के एक साथ एव सतुलित विकास पर बल दिया गया। योजना मे कुटीर तथा लघु उद्योगो को प्रोत्साहित करने का विशेष रूप मे उल्लेख किया गया। विश्व प्रसिद्ध क्रान्तिकारी एम एन रायँ ने जनता योजना (People s Plan) प्रतिपादित की। यह योजना रूसी आयोजन के अनुभव से प्रेरित थी। इसमे सामूहिक या सरकारी खेती (Collective or State Farming) पर बल दिया गया और इसके लिए भूमि के राष्ट्रीयकरण की सिफारिश की गया। योजना के प्रतिपादक एम एन राय ने सोवियत रूस के अनुभव के विपरीत उपभोग-वस्तु उद्योगो के विकास पर बल दिया क्योंकि उनके विकास द्वारा जनता के जावन-स्तर को शीघ्र उन्नत किया जा सकता था। इन सभी योजनाओ का ऐतिहासिक महत्त्व है क्योंकि ये सब कागजी योजनाए थीं जिन्हे क्रियान्वित नहीं होना था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार ने 1950 मे योजना आयोग की स्थापना की ताकि देश की भौतिक पूजी एव मानवाय ससाधनो (Human Resources) की आवश्यकता का अनुमान लगाया जाए और इनका अधिक सन्तुलित एव प्रभावी प्रयोग किया जाए। प्रथम पचवर्षीय योजना 1950-51 मे आरभ हुइ और इसके बाद पचवर्षीय योजनाओं का एक श्रृखला चालू हो गयी।

2. भारत में आयोजन के समाजार्थिक उद्देश्य (Socio-economic Objectives of Planning in India)

आर्थिक विकास की चेतना को दृष्टि मे रखते हुए हमारे सविधान के निदेशक सिद्धातो (Directive Principles of the Constitution) में यह उल्लेख किया गया है कि "राज्य अपनी नीति का सचालन खास तौर पर निम्नलिखित उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए करेगा (क) नागरिकों को—पुरुषों और

स्त्रियो दोनो को समान रूप से जीवन-निवाह के पर्याप्त साधनो का अधिकार प्राप्त होगा (ख) समाज के भौतिक साधनो के स्वामित्व का वितरण और नियन्त्रण इस प्रकार किया जाएगा कि सर्वोत्तम रूप मे सबका भला हो (ग) आर्थिक प्रणाली की कार्यान्विति का परिणाम ऐसा न हो कि धन और उत्पादन के साधनो का सकेन्द्रण (Concentration of wealth and means of production) आम जनता के हितो के विरुद्ध हो जाए।" निदेशक सिद्धान्त भारत के जनसामान्य की आर्थिक-विकास सम्बन्धी चेतना और प्रेरणा को अभिव्यक्त करते हैं और परिणामत राष्ट्रीय सरकार ने आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने के लिए आयोजन (Planning) की पद्धति को अपनायी।

आयोजन के आधान आर्थिक विकास की गति इतनी होनी चाहिए कि इसके प्रभाव को जनसामान्य अनुभव कर सके । यदि आर्थिक विकास की गति धीमी एव थोडी सी होती है तो यह लोगो को प्रोत्साहित न कर सकेगी। आयोजन का उद्देश्य आर्थिक विकास की गति को बढाना है ताकि जो प्रगति आनायोजित समाज (Unplanned Society) द्वारा दीर्घकाल मे प्राप्त की जाती है वह आयोजन के आधीन समाज द्वारा अल्पकाल मे प्राप्त की जा सके। इसी से ही समाज का आयोजन मे विश्वास कायम हो सकता है और यह सामाजिक एव आर्थिक विकास में परिवर्तन का उपकरण बन सक्ता है। भारत मे आयोजको ने चार समाजार्थिक उद्देश्य बताए हैं

1 उत्पादन को अधिकतम सम्भव सीमा तक बढाना *ताकि राष्ट्रीय एव प्रति व्यक्ति आय के उच्च स्तर की* प्राप्ति की जा सके
2 पूर्ण रोजगार प्राप्त करना
3 आय तथा सम्पत्ति की असमानताओ को कम करना और
4 सामाजिक न्याय उपलब्ध कराना।

हम इन चार उद्देश्यो का आयोजन तथा निर्धनता को दूर करना और आयोजन तथा सामाजिक परिवर्तन के शार्षक के अधीन अध्ययन करेंगे।

आयोजन और गरीबी हटाओ

भारत में आर्थिक आयोजन का मूल उद्देश्य कृषि उद्योग सचालन शक्ति परिवहन एव सचार और अर्थव्यवस्था के अन्य सभी क्षेत्रो के विकास द्वारा तीव्र आर्थिक विकास करना है। तीव्र आर्थिक विकास द्वारा देश राष्ट्रीय एव प्रति व्यक्ति आय में उन्नति ला सकता है देश से गरीबी और दीनता को दूर कर सकता हे और जनसामान्य के स्तर को उन्नत कर सक्ता है। आयोजन का उद्देश्य केवल राष्ट्रीय आय की वृद्धि ही नहीं बल्कि उन लोगो के स्तर को उठाना हे जो शताब्दियों से निर्धनता के चगुल मे फसे हुए है। वास्तव मे 'न्याय के साथ विकास' और 'गरीबी हटाओ के नारे इस बात पर स्पष्ट बल देते हैं कि उद्देश्य केवल राष्ट्राय आय की वृद्धि नहीं अपितु गरीबी को हटाना हे।

पहले यह कल्पना की जाती थी कि कृषि एव औद्योगिक विकास की गति तेज करने से अपने आप ही देश मे रोजगार की वृद्धि हो जाएगी। साथ ही बेरोजगारी अल्परोजगार और गुप्त बेरोजगारी की समाप्ति से एक ओर कुल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product) की वृद्धि होगी और दूसरा ओर प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि से लोगो का जावन स्तर उन्नत हो जाएगा। जब योजना आयोग ने यह अनुभव किया कि कृषि तथा औद्योगिक विकास की वृद्धि के साथ-साथ बेरोजगारी ओर अल्प रोजगार मे कमी नहीं हुई बल्कि वास्तव में बेरोजगारी में वृद्धि हुई है तो इसे आयोजन को रोजगार प्रधान बनाने की ओर बल देना पडा।

आयोजन और सामाजिक परिवर्तन

अनायोजित समाज में विभिन्न प्रकार का शक्तिया कार्यशील रहती है। यह आवश्यक नहीं कि सभी शक्तिया एक ही दिशा मे कार्य करे। कुछ शक्तियाँ प्रगामी होनी हे और कुछ अधोगामी (Retrogressive)। भू सुधार के उपाय सामाजिक कल्याण सम्बन्धी विधान श्रम-अधिनियम आदि प्रगतिवादी शक्तियो के उदाहरण हे जब कि आय की असमानताए निर्धनता प्रगति के लिए समान अवसरा का अभाव अधोगामी शक्तियो के उदाहरण हैं। भारत की आर्थिक योजनाओ का उद्देश्य इन सभी शक्तियो को इस प्रकार गतिमान करना है कि सामाजिक तथा वैयक्तिक विकास प्रोन्नत हो सके।

आय की असमानताओ मे कमी और समानवादी समाज की स्थापना से ऐसी परिस्थितिया कायम की जाती हे जिनमे प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा एव रोजगार मे समान अवसर प्राप्त हो सके। ऐसे समाज मे आर्थिक शक्ति का सकेन्द्रण नहीं होगा और एक व्यक्ति द्वारा दूसरे का शोषण भी नहीं होगा। इसी बात का उल्लेख भारत के सविधान के निदेशक सिद्धान्तो (Directive principles) म किया गया ह। ये निदेशक सिद्धान्त देश का जनता का आकाक्षा और सकल्प की अभिव्यक्ति करते ह जिसका मूल लक्ष्य न्याय के साथ आर्थिक विकास ह। प्रथम पचवर्षीय योजना म भारत के आर्थिक आयोजन के दीर्घकालीन उद्देश्या का स्पष्ट विवरण इस प्रकार दिया गया है अधिकतम उत्पादन पूर्ण रोजगार आर्थिक समानता तथा सामाजिक न्याय का प्राप्ति जो कि वर्तमान परिस्थिति मे आयोजन के स्वीकार्य उद्देश्य समझे जाते ह भिन्न भिन्न विचार नहीं ह बल्कि उन सम्बन्धित उद्देश्यो की

भृखला हैं जिनकी प्राप्ति के लिए देश को प्रयास करना है। इनमे से किसी एक उद्देश्य की पूर्ति दूसरे को छोडकर नहीं की जा सकती विकास की योजना मे इन सबको सतुलित महत्व देना अनिवार्य है।

विभिन्न योजनाओं की दृष्टि–अल्पकालीन उद्देश्य

मूल या दीर्घकालीन उद्देश्यो के अतिरिक्त जो सभी योजनाआ के लिए साझे ह प्रत्येक पचवर्षीय योजना मे कुछ अल्पकालीन उद्देश्यो पर बल दिया गया। ये विशेष योजना के उद्देश्य कहे जा सकते हे। उदाहरणार्थ पहली योजना मे कषि विकास शरणार्थियो के पुनवास ओर स्फीति के निय त्रण पर बल दिया गया। दूसरी योजना मे तीव्र औद्योगीकरण को लक्ष्य रखा गया जिसम विशेष बल मूल तथा भारी उद्योगो के विकास पर दिया गया। तीसरी योजना मे आधारभूत उद्योगो अर्थात् इस्पात ईधन एव सचालन शक्ति का विस्तार करने को ठाना गई ओर मशान निमार्ण क्षमता की स्थापना करने का निणय किया गया। इसके साथ साथ कषि मे आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया। परन्तु चान ओर पाकिस्तान के साथ युद्ध छिड जाने के कारण योजना का मुख्य बल प्रतिरक्षा (Defence) की ओर परिवर्तित करना पडा। चौथी योजना का लक्ष्य राष्टाय आय को 5 5 प्रतिशत का वार्षिक वद्धि दर प्राप्त करना रखा गया। इसके अतिरिक्त सामाजिक न्याय के साथ समानता की आर प्रगति ओर देश के कमजोर वर्गो के लिए राष्ट्राय न्यूनतम जावन स्तर (National mini mum) प्राप्त करने का सकल्प किया गया। ये उद्देश्य दो उद्देश्या के रूप मे उभरे गराबा हटाओ और सामाजिक न्याय के साथ विकास। पाचवी योजना मे चाथा योजना के नारा को ओर आगे बढाने का निश्चय किया गया ओर इसके साथ आ मनिभरता (*Self reliance*) पर भी जोर दिया गया। छठा योजना मे कषि एव लघु स्तर के उद्योगों के विकास पर बल दिया गया विशेषकर अधिक रोजगार कायम करने की दृष्टि से।

जब हम इन योजनाओ का सफलता अथवा विफलता का समाक्षा करे, तो अल्पकालान एव दार्घकालान दोना प्रकार के उद्देश्य दृष्टि मे रखने होग।

3 भारत मे लोकतांत्रिक समाजवाद (Democratic Socialism in India)

राष्ट को सामूहिक प्रयत्न करने के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से आयोजन का सशक्त दाशनिक आधार आवश्यक है जिससे विकास याजनाआ को क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक प्रेरणा मिल सके। बिना राजनीतिक ओर सामाजिक दर्शन के आयोजन करना वेसा ही होगा जैसे मंजिल के ज्ञान के बिना जहाज चलाना। प्रत्येक देश को आयोजन के *अल्पकालीन और दीर्घकालीन उद्देश्य* दृष्टि मे रखने पडते हैं। अल्पकालीन लक्ष्य चाहे कितने ही महत्त्वपूर्ण क्यो न प्रतीत हो दीर्घकालीन लक्ष्यो पर हावी नहीं होने चाहिए। एक कुशल आयोजक का कार्य अल्पकालीन लक्ष्यो ओर दीर्घकालीन लक्ष्यों के बीच तालमेल बैठाना है ताकि उसकी कल्पना के समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हो सके। इस उद्देश्य की सिद्वि के लिए कुशल आयोजक को प्रस्तावित समाज की स्पष्ट कल्पना होनी चाहिए तथा इस कल्पना मे मानवीय व्यक्तित्व के सभी पक्षो पर ध्यान दिया जाना चाहिए। राष्ट्रीय विकास के आयोजन के प्रति जनता मे उत्साह का सचार करने के लिए आयोजन का सुदृढ दार्शनिक आधार अपरिहार्य शर्त है।

भारत मे लोकतान्त्रिक समाजवाद (Democratic Socialism) की विचारधारा का विकास—मार्क्स और एजल्स ने समाजवाद को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। उनका विश्वास था विश्व से शोषण मिटाने के लिए उत्पादन के साधनो पर से निजी स्वामित्व समाप्त करना आवश्यक है। मार्क्स और एजल्स को निजी सम्पत्ति सब बुराइयो की जड प्रतात हुई। माक्स ओर एजल्स की विचारधारा के अनुयायी बोलशेविको को 1917 में रूस मे सत्ता प्राप्त हुई। उन्होंने मार्क्स ओर एजल्स के विचारो को व्यवहार रूप देने की चेष्टा की अत सोवियत रूस मे आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने कि लिए समग्र राष्ट्रीयकरण (Total nationalisation) पर आधारित आयोजन अपनाया गया। अत आयोजन का सर्वप्रथम विकास रूस से हुआ। मानव जाति के इतिहास मे यह पहला अवसर था जबकि समाज ने निर्धनता, भूख और बेरोजगारी मिटाने के लिए आयाजन के अनुसार सगठित प्रयत्न किया। रूसी आयोजको की भारी सफलता का विश्व के पूंजीवादी देशो मे अनिवार्य प्रभाव पडा। यद्यपि पूंजीवादी देशो की निजी सम्पत्ति के सिद्वान्त मे आस्था नहीं मिट पाई तथापि उन्हे यह विश्वास हो गया कि सरकार निर्धनता कष्ट, बेरोजगारी और अज्ञान को कम करने मे प्रभावशाली भाग अदा कर सकता है।

स्वतन्त्र होने पर भारत को पश्चिम के समुन्नत राष्टो की तुलना मे भिन्न प्रकार की समस्याआ का समाधान करना था। भारत व्यापक निर्धनता व्यापक बेराजगारी ओर अल्परोजगार मे डूबा हुआ था जिनका स्वरूप संरचनात्मक (Structural) था उसके श्रमिक निरक्षर और अप्रशिक्षित थे उसकी कषि अवरूद्व थी और अर्द्व सम्बन्धो (Semi feudal relations) मे जकडी हुइ थी तथा उसके उद्योग अपेक्षाकत पिछडे हुए

1 Plann ng Comm ss on *The F rst F e Year Plan*

थे। अत भारत की समस्याओ के समाधान के लिए विशाल राष्ट्रीय प्रयास आवश्यक था उसका काम केवल चक्र विरोधी नीति अपनाने से नही चल सकता था फलत उसने सामाजिक ओर आर्थिक उत्तोलक (Economic lever) के रूप मे आयोजन का सहारा लिया । समाजवादी आयोजन (Socialist planning) से प्रभावित होने के कारण हमने मार्क्सवादियो से समाज की सकल्पना ग्रहण की किन्तु साथ ही हमारे विचारको ने न्यायोचित समाज के पूर्ण विकास के लिए पूजीवादी समाज के लोकतात्रिक मूल्यो (Democratic values) को भी अपरिहार्य माना। इस प्रकार हमने दो चरम समाजो के गुणो का लाभ उठाते हुए जिस समाज की कल्पना की वह 'लोकतात्रिक समाजवाद (Democratic ocialism) के नाम से विख्यात हुआ। लोकतात्रिक समाजवाद के सिद्धान्त पर आधारित समाज म लोकतत्र और समाजवाद वस्तुत ऐसे समाज की रचना के साधन होते हे जिसमे जनता का जीवन स्तर उन्नत करने के लिए एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण रोका जाता है तथा व्यक्ति को आत्माभिव्यक्ति (Self expression) की पूर्ण स्वतत्रता प्राप्त होती है अत मानवीय व्यक्तिव का अपेक्षाकत पूर्ण और मुक्त विकास लोकतांत्रिक समाजवाद का सर्वोच्च लक्ष्य है। इस लक्ष्य की सिद्धि मे जहा एक ओर निर्धनता और आय तथा सम्पत्ति की असमानताए बाधक है वहा दूसरी ओर लोकतत्र का अभाव भी उतनी ही बडी बाधा समझी गई है।

सोवियत रूस और पूर्वी यूरोप के समाजवादी देशो के हाल ही हुए विघटन से यह बात सिद्ध हो गयी है कि विकास के बारे मे नेहरू ने लोकतत्रीय समाजवाद को केवल आर्थिक शक्तियो के पक्ष मे ही सीमित न रखकर इसके प्रति सम्पूर्ण दृष्टिकोण अपनाया। जबकि प्रतिष्ठित समाजवादी दर्शन मे स्वतत्रता और लोकतत्र की विकास प्रक्रिया के अग के रूप मे उपेक्षा की गयी वहा नेहरू ने इसे लोकतत्रीय समाजवाद का अग माना। हाल ही मे भूतपूर्व सोवियत रूस मे भी बाजार आधारित अर्थव्यवस्था (Market based economy) चालू की गयी है। भारत भी अपनी अर्थव्यवस्था मे उदारीकरण (Liberalisation) कर रहा हे और सरकारी नियत्रण एव विनियमन को कम करता जा रहा है परन्तु इसके साथ साथ नेहरू के लोकतात्रिक समाजवाद के दर्शन का परित्याग नही कर रहा है।

लोकतात्रिक समाजवाद के दर्शन की प्रमुख विशेषताए

लोकतात्रिक समाजवाद का दर्शन समाज की समग्र कल्पना पर आधारित है। इसका अभिप्राय यह है कि एकमात्र भौतिक समृद्धि, मानव जीवन को सुखी ओर सम्पन्न नहीं बना सकती। वस्तुओ और सेवाओ के रूप मे जन साधारण को भातिक सुख का ऊचा स्तर उपलब्ध कराने के साथ साथ सभी नागरिको को समान अवसर भी उपलब्ध कराए जाने चाहिए ताकि वैयक्तिक और सामूहिक विकास के लिए आवश्यक नीति और आध्यात्मिक मूल्य विकसित किए जा सके। इस प्रकार उत्पादन अधिकतम करने के साथ साथ आर्थिक और सामाजिक विषमताओ को कम करने का कार्यक्रम तथा जनता को राष्ट्रीय न्यूनतम आय (National minimum) उपलब्ध कराने का आश्वासन लोकतात्रिक समाजवाद के अभिन्न अग है। अत लोकतात्रिक समाजवाद के प्रमुख लक्षणो का विवेचन करना युक्तियुक्त होगा

1 समाजवादी समाज का सर्वप्रथम उद्देश्य निर्धनता समाप्त करना और राष्ट्रीय न्यूनतम की व्यवस्था करना है—इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि कृषि ओर औद्योगिक उत्पादन मे लगातार वृद्धि की जाए। निर्धनता ओर अत्यधिक निम्न जीवन स्तर की चक्की मे पिसने वाली जनता के लिए समाजवाद तभी अर्थपूर्ण हो सकता है यदि वह प्रत्येक व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओ की पूर्ति कर सके। अत निकट भविष्य मे राष्ट्रीय न्यूनतम के रूप मे खाद्य कपडा आवास डाक्टरी सहायता ओर शिक्षा की मूलभूत न्यूनतम आवश्यकताओ की व्यवस्था का आश्वासन प्रदान कर सके। राष्ट्रीय न्यूनतम की व्यवस्था करना चौथी एव उत्तरोत्तर योजनाओ का एक लक्ष्य था।

2 समाजवादी अर्थव्यवस्था का लक्ष्य आय और सम्पत्ति की असमानताए कम करना है—तत्वत समाजवाद समाज के श्रमजावी वर्गो के हित मे आय के पुनर्वितरण का आन्दोलन है। अनियमित पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप आय की असमानताओ मे वृद्धि होती है एव सम्पत्ति कुछ विशेषाधिकार सम्पन्न वर्गो के हाथों मे सकेन्द्रित हो जाती है। जब तक राष्ट्रीय आय मे श्रम वर्ग का भाग काफी न बढ जाए, तब तक जन साधारण के लिए लोकतांत्रिक समाजवाद का कुछ अर्थ नहीं होता। मजदूर सघो (Labour unions)के दबाव के राष्ट्रीय आय मे श्रमिको का भाग बढ जाता है किन्तु यह वृद्धि समाजवादी समाज की आवश्यकताओं को देखते हुए बहुत कम होती है। फलत योजना बद्ध अर्थव्यवस्था (Planned economy) मे आय और सम्पत्ति की असमानताए कम करने के लिए नीति बनाना अत्यावश्यक है।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे इस प्रश्न का विवेचन करते हुए कहा गया 'वर्तमान युग मे विकास का आरम्भ करने वाले अल्पविकसित देशो के समक्ष उत्पादन के साधनो ओर वर्ग सम्बन्धो (Class relations) का ऐसे रूप मे समन्वय करने की समस्या है जिससे कि विकास के फलस्वरूप आर्थिक और सामाजिक असमानताओ मे कमी आ जाए, विकास की प्रक्रिया और ढाचे का सार समाजीकरण (Socialization) मे है असमानताए कम करने की प्रक्रिया दुहरी है। इसके अतिरिक्त एक ओर निम्नतम स्तर पर आय मे वृद्धि करनी आवश्यक है और दूसरी आर उच्चतम स्तर पर

आय मे कमी करनी आवश्यक है। इससे यद्यपि पूर्वोक्त मूलत अधिक महत्त्वपूर्ण अग है किन्तु दूसरे पक्ष के सम्बन्ध म शीघ्र ओर उद्देश्यपूर्ण प्रयास किया जाना भी आवश्यक है।'[2]

3 समाजवादी अर्थव्यवस्था का एक उद्देश्य सबको समान अवसर प्रदान करना है—समाजवादी अर्थव्यवस्था मे जाति धर्म ओर जन्म के भेदभाव के बिना सभी नागरिको को समान अवसर प्रदान कराना आवश्यक है। अवसर की समानता (Equality of opportunity) *और राष्ट्रीय न्यूनतम की प्राप्ति* कराने की एक मूल कसौटी यह है कि सभी समर्थ नागरिको को लाभकारी रोजगार (Full employment) उपलब्ध कराया जाए। अल्पविकसित अर्थव्यवस्था मे आर्थिक ढाचे की मूलभूत कमियो के कारण बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होती है। सबसे बडी कमी पूर्ण रोजगार (Full employment) के लिए पर्याप्त स्तर तक विनियोजन का स्तर उन्नत करने मे अर्थव्यवस्था का विफल होना है इसके लिए *समाज को भारी* त्याग करना पडता है। इसके अतिरिक्त भूमि पर आबादी के अत्यधिक दबाव के परिणामस्वरूप देहातो मे अल्परोजगार विद्यमान रहता है। देश की जनशक्ति के पूर्ण उपयोग के लिए यह आवश्यक है कि उद्योगो का विस्तार किया जाए। इसके अतिरिक्त घनी आबादी वाले देहातो मे ओर विशेष रूप से कम काम काज के मोसम (Slack season) मे ग्राम कार्यों का विशाल पेमाने पर कार्यक्रम चलाया जाना *अत्यन्त महत्त्वपूर्ण* है ताकि ग्रामीण श्रमिको को लगातार काम मिलता रहे।

अपेक्षाकृत कम विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों (Less privi leged classes) की सहायता करने के लिए शिक्षा की सुविधाओ का विस्तार करना आवश्यक है ताकि प्रत्येक बच्चे के लिए उसकी योग्यता के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था की जा सके। मुक्त और सार्वभौम प्राथमिक शिक्षा (Universal primary education) की व्यवस्था तकनीकी *और* उच्चतर शिक्षा के अवसरो का विस्तार, छात्रवृत्तियो ओर अन्य प्रकार के सहायता उपायो की उदार स्वीकृत आदि के कारण जन्ममूलक क्षतियो का प्रभाव काफी सीमा तक कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अक्षम और वृद्ध लोगो की सहायता के लिए सामाजिक बीमा (Social insurance) की योजना से भी समान अवसर जुटाने मे काफी सहायता मिल सकती है।

***4 सार्वजनिक और सहकारी क्षेत्र के विस्तार मे* आस्था किन्तु समग्र राष्ट्रीयकरण मे आस्था न होना**—भारत सरकार ने नीति के लक्ष्य के रूप में समग्र राष्ट्रीयकरण (Total nationalisation) को अस्वीकृत कर दिया। लोकतात्त्रिक समाजवाद की विचारधारा मे सम्पत्ति का सर्वथा उन्मूलन वाछनीय नहीं समझा जाता। हमारे देश मे दो विचारधाराओ के अनुयायी स्पष्टत दीख पडते ह वामपथी (Leftists) और दक्षिणपथी (Rightists) वामपंथियो की समग्र राष्ट्रीयकरण के सिद्धान्त मे आस्था है ताकि सम्पत्ति को *पूर्णतया समाप्त किया जा सके*। इसके विपरीत दक्षिणपंथियो का निजी क्षेत्र की पूर्ण स्वतन्त्रता मे विश्वास है तथा वे मानते हैं कि निजी क्षेत्र आर्थिक विकास के पोषण मे समर्थ है। भारत सरकार के मत मे ये दोनो विचारधाराए चरमवादी हैं और देश की आवश्यकताओ की दृष्टि से अनुपयुक्त हैं। अत उसने निजी क्षेत्र को सर्वथा नष्ट करने के स्थान पर उसे सीमित करना उचित समझा है। जहाँ कहीं भी निजी स्वामित्व समाप्त किया गया है वहा उसके स्थान पर या तो सरकारी स्वामित्व की स्थापना की गई या उपयुक्त सहकारी स्वामित्व (Co operative ownership) की।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे निजी ओर सरकारी क्षेत्र के सापेक्ष महत्त्व का निम्नलिखित शब्दो मे उल्लेख किया गया है *'सरकारी क्षेत्र का तीव्र गति से विकास करना ही है*। इसे न केवल वे विकास क्रियाए आरम्भ करनी हैं जिन्हे आरम्भ करने के लिए निजी क्षेत्र या तो इच्छुक नहीं हैं या फिर समर्थ नहीं हैं अपितु अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत विनियोजन के सम्पूर्ण ढाचे का परिवर्तन करने मे इसे प्रमुख भाग अदा करना है। ऐसी विकासमान अर्थव्यवस्था मे सरकारी और निजी क्षेत्रो के साथ साथ विस्तार की काफी गुजाइश रहती है किन्तु यदि *विकास को परिकल्पित गति के अनुसार अग्रसर होना है* तथा व्यापक सामाजिक लक्ष्यो की पूर्ति मे प्रभावशाली ढग से अशदान करना है तो यह अनिवार्य है कि सरकारी क्षेत्र न केवल कुल रूप मे अपितु सापेक्ष रूप मे निजी क्षेत्र की अपेक्षा तेजी से विकसित हो।'[3]

5 समाजवादी अर्थव्यवस्था मे आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण और एकाधिकारी प्रवृत्तियो को पनपने से रोकने *का प्रयास किया जाना*—बडी औद्योगिक इकाइयो के विकास के कारण एक बडी सीमा तक एकाधिकारी प्रवृत्तियो का विकास होता है। एकाधिकारी प्रवृत्तियो (Monopolistic tendencies) के विकास के परिणामस्वरूप नए उद्यमकर्त्ताओ का इन उद्योगो मे प्रवेश असम्भव प्रतीत होने लगता है। इसके अतिरिक्त कुछ व्यक्तियो के हाथ मे अधिक शक्ति का संकेन्द्रित हो जाना लोकतान्त्रिक समाज के सिद्धान्त के ठीक विपरीत है। *अत एकाधिकारी प्रवृत्तियो* की रोकथाम के उपाय करने आवश्यक हो जाते हे। तीसरी योजना मे एकाधिकार का सामना करने के अनेक उपाय प्रस्तावित किए गए हे- प्रथम सरकारी क्षेत्र का उन क्षेत्रो मे विस्तार जिनके लिए बडी इकाइयो की स्थापना के लिए भारी विनियोग की आवश्यकता होती है द्वितीय नए उद्यमकर्त्ताओं मध्यम और लघु इकाइयों तथा सहकारी ढग से सगठित उद्योगो का विस्तार करना,

2 Planning Commissin *Second Five Year Plan* p 33

3 *Ibid* pp 22 23

और तृताय नियन्त्रण और नियमन की सरकार की शक्ति को प्रभावशाली ढग से प्रयोग मे लाना तथा उपयुक्त राजकोषीय उपायो (Fiscal measures) का प्रयोग करना।

एक ऐसे समाज के लिए जिसने लोकतन्त्रीय समाजवाद का व्रत ले रखा हो एकाधिकार पर नियन्त्रण करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ताकि उन समाज विरोधी प्रवृत्तियो का दमन किया जा सके जिनके कारण सामाजिक और आर्थिक न्याय की नींव पर आघात होता है। "सक्षेप मे उद्देश्य केवल यह *नहीं होना चाहिए कि आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रण* (Concentration of economic power) और एकाधिकार की प्रवृत्तियों को रोका जाए *बल्कि औद्योगिक सगठन (Industrial organisation)* के ऐसे स्वरूप को बढावा दिया जाए जिसमे उत्पादन के ऊचे स्तर प्राप्त हो और राष्ट्रीय आयोजन के भीतर उद्यमकर्त्ताओ मध्यम और छोटे पैमाने के उद्योग-धन्धो और सहकारी सगठनों को विकास का पूरा अवसर मिल सके।"[4]

6 समाजवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक निर्णय करने की मूल कसौटी निजी लाभ नहीं अपितु सामाजिक लाभ होती है समाजवादी अर्थव्यवस्था मे वैयक्तिक लाभ की भावना को सामाजिक लक्ष्य की प्राप्ति के अधीन रखने की कल्पना की जाती है। "तत्त्वत इसका अभिप्राय यह है कि *विकास की दिशा निर्धारित करने की मूल कसौटी वैयक्तिक* लाभ नहीं बल्कि सामाजिक लाभ होनी चाहिए और विकास ढाचे तथा *सामाजिक सम्बन्धों* (Socio economic relations) के ढाचे का इस प्रकार से आयोजन किया जाना चाहिए कि इससे न केवल राष्ट्रीय आय और रोजगार मे काफी वृद्धि हो अपितु आय और धन की अपेक्षाकृत अधिक समानता भी विकसित हो। उत्पादन वितरण उपभोग और विनियोजन से सम्बन्धित-और वस्तुत सभी महत्त्वपूर्ण सामाजिक सम्बन्धो से जुडे हुए मुख्य निर्णय उन अभिकरणो द्वारा किये जाने चाहिए जो सामाजिक प्रयोजन की दृष्टि से सम्पन्न हों।[5] मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी और सरकारी दोनो क्षेत्रो के लिए स्थान रहता है सरकारी क्षेत्र के विनियोग की कसौटी निर्धारित करते समय अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओ को व्यापक रूप से दृष्टिगत रखा जाता है किन्तु निजी क्षेत्र में विनियोजन विषयक निर्णय लागत और प्रतिफल के आधार पर किए जाते हैं। अत यह आवश्यक है कि ऐसी आर्थिक नीतिया विकसित की जाए जिनसे निजी क्षेत्र का विनियोग भी *योजना मे स्वीकृत सामाजिक ढाचे के साथ-साथ स्थूल रूप* मे सगत हो सके। लोकतान्त्रिक समाजवादी अर्थव्यवस्था में *उक्त उद्देश्य की पूर्ति के उपायो का अत्यन्त महत्त्व है।* इसमे सन्देह नहीं कि लोकतान्त्रिक समाजवादी आयोजन मे प्रत्यक्ष बटन (Direct allocation) सम्भव नहीं तथा राज्य को कीमत *प्रणाली के माध्यम से कार्य करना आवश्यक होता है परिणामत* नियन्त्रणों और नियमनो के कारण कीमत प्रणाली के अन्धे नियम को सामाजिक लक्ष्य की दिशा में प्रेरित किया जाता है।

एक विकासमान अर्थव्यवस्था मे स्फीतिकारी दबावों (Inflationary pressures) के पैदा होने का खतरा सदैव बना रहता है क्योंकि नई आय के उत्पन्न होने तथा उत्पादन बढने मे सदैव कुछ न-कुछ समयान्तर रहता है। परिणामत उत्पादन की कमी के कारण कीमतो के बढ जाने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि कीमतो की वृद्धि रोकने का मूल *उपाय तो उत्पादन बढाना ही है ताकि वस्तुओ की न्यूनता न* रह जाए, किन्तु इस बात का ध्यान रखना उतना ही महत्त्वपूर्ण है कि कहीं व्यापारी न्यूनता की अवस्था का लाभ उठाकर जनता का शोषण न करे । अनिवार्य वस्तुओ और खाद्य जैसी जीवन रक्षक वस्तुओ की कीमतो के उतार चढाव के सम्बन्ध मे उपर्युक्त तर्क विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है।

7 वैयक्तिक और सामाजिक जीवन की सम्पन्नता के लिए लोकतान्त्रिक मूल्यो में आस्था भारत मे लोकतांत्रिक समाजवाद की जो सकल्पना स्वीकृत की गई है उसमें वैयक्तिक और सामाजिक जीवन की सम्पन्नता के लिए लोकतान्त्रिक मूल्यो में विश्वास व्यक्त किया गया है। समाजवाद *के साथ जुडे हुए 'लोकतान्त्रिक' विशेषण के कारण* इसका रूस और चीन के सर्वाधिकारतन्त्रीय समाजवाद (Totalitarian socalism) से भेद *स्पष्ट हो जाता है। भारतीय समाजवाद* किसी भी प्रकार के अधिनायकवाद (Dictatorship) मे या व्यक्ति वर्ग दल अथवा राज्य के हाथ मे सम्पूर्ण सत्ता सौंप देने में विश्वास नहीं रखता। भारत की उदार चेतना मे मतो और विचारधाराओ को समोने का सामर्थ्य है। यह उल्लेखनीय है कि लोकतन्त्र जीवन तथा सामाजिक व्यवहार की एक ऐसा प्रणाली है जिसमे मतभेदो को शक्ति से नहीं बल्कि विचार विमर्श से सुलझाया जाता है।

भारतीय आयोजन की विचारभूमि और दर्शन अत्यन्त पुष्ट है। लोकतन्त्र और निजी उद्यम की प्रणालियो को सुरक्षित रखते हुए आर्थिक विकास की प्रक्रिया का चलाना जटिल और कठिन कार्य है। उत्साही नेतृत्व की आर्थिक विकास क अनुकुल उपयुक्त परिस्थितियो का निमार्ण कर सक्ता है। *मिश्रित पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे निहित अन्तर्विरोध* आर्थिक आयोजन के लक्ष्यो की प्राप्ति मे बाधा है किन्तु आर्थिक *विकास की प्रक्रिया केवल तभी सरलता से अग्रसर हो सकती* है जबकि निजी सरकारी और सहकारी क्षेत्रो के रूप मे *राजनीतिक प्राचल* (Parameters) स्पष्ट रूप मे *निर्धारित* किए जाए और आयोजन कार्यक्रमो को क्रियान्वित करने का प्रयत्न भी किया जाए।

4 *Third Five Year Plan* p 14
5 *Second Five Year Plan* p 22

8

मिश्रित अर्थव्यवस्था में आयोजन की प्रक्रिया

(PLANNING PROCESS IN A MIXED ECONOMY)

1 मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा का विकास
(Evolution of the Concept of Mixed Economy)

मिश्रित अर्थव्यवस्था दो बिल्कुल विरोधी विचारधाओ मे समझौते का परिणाम है इनमे से एक विचारधारा निर्बाध पूजीवाद (Laissez faire capitalism) के सिद्धान्त का समर्थन करता है और दूसरी इस बात म प्रबल विश्वास रखती है कि समग्र अर्थव्यवस्था के उत्पादन के साधनो का समाजीकरण होना चाहिए और इनका नियत्रण राज्य द्वारा किया जाना चाहिए। मिश्रित अर्थव्यवस्था मे निजी उद्यम (Private enterprise) और इसके परिणामस्वरूप निजी हित एवं लाभ प्रेरणा (Profit motive) पर बल को उचित समझा जाता है। यू के एस ए और यूरोप के सभी स्वतत्र देशो और आस्ट्रेलिया का महान् आर्थिक विकास निजी उद्यम द्वारा किया गया। यही कारण है कि अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के अर्थशास्त्रियो की कृतियो म मिश्रित अर्थव्यवस्था की धारणा का कोई जिक्र नहीं था क्योंकि उन दिनो आर्थिक स्वतत्रता और आर्थिक मामलो मे राज्य द्वारा अहस्तक्षेप (Non interference) मूल सिद्धात माने जाते थे। प्रतिष्ठित (Classical) और नव प्रतिष्ठित (Neo classical) अर्थशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक प्रणाली निर्विघ्न रूप मे कार्य करती थी और ऐसा माना जाता था कि जो क्रिया व्यक्ति के लिए लाभदायक है वह समग्र समाज के आर्थिक कल्याण को प्रोन्नत करती है। आर्थिक प्रणाली में पूर्ण समन्वय निजी हित का अदृश्य शक्ति (Invisible hand) द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इन विचारो को मार्क्स ने स्वीकार नहीं किया और विकास का समाजवादी सिद्धान्त प्रतिपादित किया। समाजवादियो ने उत्पादन के सभी साधनो के समाजीकरण का समर्थन किया। वे चाहते थे कि राज्य अर्थव्यवस्था का निर्देशन करे। वे निजी उद्यम को समाप्त करने के पक्ष मे थे क्योंकि यह निजी हित, निजी सम्पत्ति (Private Property) और व्यक्ति द्वारा लाभ अधिकतम करने के सिद्धान्त पर आधारित था। यू एस एस आर, हंगरी चैकोस्लोवाकिया, पोलेण्ड बुलगारिया, यूगोस्लाविया, साम्यवादी चीन वियतनाम क्यूबा आदि मे साम्यवादी राज्यों की स्थापना मार्क्सवादी विचारो का परिणाम था।

1929 की महामन्दी मे पूजीवादी अर्थव्यवस्था लोकहित प्रोन्नत करने मे विफल हुई और इस कारण इसकी मूल कमजोरियों के बारे में अर्थशास्त्रियो एव राजनीतिज्ञो की आखे खुल गयीं। केन्ज ने 1936 मे लिखा "ससार ऊपर से इस प्रकार प्रशासित नहीं है कि निजी एव सामाजिक हित सदा एकरूप हो जाए यह अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो से सही निष्कर्ष नहीं है कि जागरूक निजी हित सदा सार्वजनिक हित के अनुरूप कार्य कराता है। न ही यह सही है कि निजी हित सामान्यत प्रबुद्ध होता है। जब 1929 की मन्दी के कारण अर्थव्यवस्था के निर्विघ्न कार्य करने के बारे मे प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो के दावे खोखले सिद्ध हुए, तो केन्ज को सही माना जाने लगा।

प्राचीन पूजीवादी व्यवस्था की विफलता की स्वाभाविक प्रतिक्रिया समाजवादी अर्थव्यवस्था के समर्थन के रूप मे व्यक्त हुई। यह विश्वास किया जाता था कि उत्पादन के साधनो का पूर्ण समाजीकरण (Socialisation of the production) और राज्य द्वारा उत्पादन एव वितरण का निर्देशन अर्थव्यवस्था की प्रबल समस्याओ का आदर्श समाधान है। प्रोफेसर ए सी पीगू, जो कि प्रतिष्ठित विचारधारा का आखिरी प्रवक्ता था ने भी पूजीवादी अर्थव्यवस्था पर समाजवादी अर्थव्यवस्था की श्रेष्ठता को इन शब्दो मे स्वीकार किया "समाजवादी केन्द्रीय आयोजन की प्रणाली को यदि प्रभावी रूप में व्यवस्थित किया जाए, तो यह कई प्रकार से हमारी वर्तमान पूजीवादी अर्थव्यवस्था से बेहतर है।"[2]

इन परिस्थितियो मे एक समझौतावादी पद्धति का निर्माण किया गया। केन्ज ने स्वय इसके विकास मे महत्त्वपूर्ण

1 J M Keynes *The End of Laissez faire*
2 A C Pigou, *Socialism versus Capitalism*

कार्यभार अदा किया। उसका विचार था कि पूजीवाद से यदि इसके दोष दूर कर दिए जाए, तो यह एक सराहनीय प्रणाली है क्योकि इसके द्वारा उत्पादन मे प्रतियोगिता तथा कुशलता को प्रोन्नत करने मे सहायता प्राप्त होती है। साथ ही समाजवाद, यदि यह प्राधिकारवादी (Authoritarian) रूप धारण कर ले, तो वैयक्तिक स्वतत्रता—आर्थिक एव राजनीतिक दोनो प्रकार का—को पूर्णतया नष्ट कर देगा। परन्तु आधुनिक जटिल समाज म राज्य नियत्रण एव निर्देशन अपरिहार्य ह। अत इसलिए यह आवश्यक हे कि राज्य-हस्तक्षेप की अधिक मात्रा और समाजवादी अर्थव्यवस्था मे सहभागिता जो एक ओर है और पूजीवाद जो दूसरी ओर हे मे समझौता होना चाहिए। केन्ज के इन विचारो से मिश्रित अर्थव्यवस्था की धारणा का विकास हुआ।

2. मिश्रित अर्थव्यवस्था का अर्थ एव क्षेत्र

मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा में निजी क्षेत्र एव सार्वजनिक क्षेत्र के सह अस्तित्व को स्वीकार किया जाता हे। परन्तु इसके लिए जरूरी हे कि जिनी क्षेत्र अपने निजी हित की प्रेरणा को सामाजिक हित की प्रेरणा के साथ जोड ले। कुछ परिस्थितियो मे तो निजी उद्यम के कार्य सचालन की इजाजत इसी शर्त पर दी जा सकती है कि यह समग्र समाज की सेवा करे। इसके अतिरिक्त जिनी उद्यम को अथव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र मे प्रधान स्थान नहीं दिया जा सकता। जर्वाकि कुछ क्षेत्रो-कृपि एव लघु उद्यमो मे इसे पूर्ण स्वतत्रता आर पूर्ण विकास की इजाजत दी जा सकती है दूसरे क्षेत्रो मे इसे सीमित रूप मे ही सहभागिता करने की अनुमति दी जा सकी ह। कुछ ऐसे क्षेत्र भी ह जो सामरिक (Strategic) एव राष्ट्रीय महत्त्व रखते ह इनमे हो सकता है निजी उद्यम को प्रवेश की इजाजत ही न दी जाए।

मिश्रित अथव्यवस्था मे सरकार को आर्थिक क्रिया के क्षेत्र मे सकारात्मक भाग अदा करना पडता ह। कुछ उद्योग तो ऐसे हो सकते हे जिनमे पूर्णतया सरकारी स्वामित्व हो आर कुछ ऐसे उद्योग हो सकते ह जिनमे राज्य और निजी उद्यम का साझा स्वामित्व एव प्रवन्ध हो। इस प्रकार मिश्रित अथव्यवस्था मे देश की समग्र आर्थिक प्रणाली तीन भागो मे वट जाती हे

(क) ऐसे क्षेत्र जिनमे उत्पादन एव वितरण का पूर्ण स्वामित्व एव नियत्रण राज्य के हाथ मे होता ह आर निजी क्षेत्र को पूर्णतया नि सारित कर दिया जाता हे

(ख) ऐसे क्षेत्र जिनमे निजी उद्यम उत्पादन एव वितरण म साझे रूप मे सहयोग करते ह और

(ग) ऐसे क्षेत्र जिनमे निजा उद्यम पूर्णतया क्रियाशील होता है और इस पर राज्य का सामान्य नियत्रण एव विनियमन होता है।

ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमे निजी एव सार्वजनिक उद्यमो का सह अस्तित्व होता हे के लिए हेन्सन के शब्दो "द्वैध अर्थव्यवस्था" (Dual economy) का प्रयोग किया और लर्नर (Lerner) ने नियत्रित अर्थव्यवस्था (Controlled economy) का किन्तु शब्द मिश्रित अर्थव्यवस्था का प्रयोग लेखको ने अपनी कृतियो मे प्रारम्भ कर दिया ओर अव यह एक स्वीकृत शब्द बन गया हे।

3. भारत मे मिश्रित अर्थव्यवस्था का ढांचा (Famework)

मिश्रित अर्थव्यवस्था का सबसे पहला महत्त्वपूर्ण लक्षण निजा एव सार्वजनिक क्षेत्र का सह-अस्तित्व है। सकुचित रूप मे पूजीवादी एव समाजवादी अर्थव्यवस्थाए दोनो ही मिश्रित अर्थव्यवस्थाए समझी जा सकती हे क्योकि प्रत्येक पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे सार्वजनिक क्षेत्र तो होगा ही ओर इसी प्रकार की समाजवादी अर्थव्यवस्था मे छोटा सा निजी क्षेत्र भी होगा। परन्तु पूजीवादी या समाजवादी अर्थव्यवस्था मे एक छोटे से सार्वजनिक या निजी क्षेत्र के अस्तित्व-मात्र से ही ये अर्थव्यवस्थाए मिश्रित अथव्यवस्थाए नहीं वन जातीं। महत्त्वपूर्ण वात यह ह कि सरकार विधान सभा के माध्यम से यह घोपणा करे कि यह इन दोनो क्षेत्रो-निजी एव सार्वजनिक क्षेत्र के सह अस्तित्व के लिए वचनवद्ध हे। सरकार को इन दोनो क्षेत्रा के कार्यक्षेत्र का भी निधारण करना होगा।

भारत मिश्रित अर्थव्यवस्था का सर्वोत्तम उदाहरण समझा जाता हे। भारतीय सविधान के निदेशक सिद्धान्तो के आधीन आर्थिक क्षेत्र म राज्य को अपनी नीति का इस प्रकार निर्देशन करना होगा कि इससे समाज के भातिक साधनो के स्वामित्व का बेहतर वितरण एव नियत्रण प्राप्त हो सके आर इससे कुछ व्यक्तियो के हाथो मे सम्पत्ति का सकेन्द्रण आर श्रम का शोषण रोका जा सके। निदेशक सिद्धान्तो (Directive Principles) मे अन्तर्निहित ये उद्देश्य तब तक प्राप्त करने सम्भव नही जव तक कि राज्य स्वय उत्पादन आर वितरण के क्षेत्रो मे प्रवेश न करे। अत तीव्र औद्योगीकरण और आत्मनिर्भरता को प्रोन्नत करने के लिए जानबूझ कर सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार के औचित्य की इससे व्याख्या होती हे। कमजोर वर्गो की सुरक्षा के लिए सरकार को अनिवार्य वस्तुओ के वितरण पर नियत्रण करना होगा। इसी प्रकार अथव्यवस्था को बागडोर अर्थात वामा एव वकिंग अपने हाथो मे लेकर सरकार सामाजिक दृष्टि से वाछनीय क्षेत्रो मे विनियोग के निर्देशन का प्रयास कर सकती हे। इसके अतिरिक्त अध सरचना मुविधाओ (Infrastructural facilities) अथात् जल विद्युत परियोजनाओ सिचाइ सडक तथा रेल परिवहन को प्रोन्नत करके सरकार

ऐसी परिस्थितिया कायम कर सकती है जिनसे विनियोग का ऊचा स्तर प्राप्त हो सके ताकि देश के लोगो की राष्ट्रीय एव प्रति व्यक्ति आय उन्नत हो सके।

भारत मे सरकार ने निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योगो की प्रोन्नति के लिए क्षेत्र निर्धारण कर दिया है। यह वर्गीकरण 1956 की औद्योगिक नीति मे स्पष्ट किया गया। प्रथम वर्ग मे ऐसे उद्योग शामिल किए गए जिनके विकास की पूर्ण जिम्मेदारी राज्य सरकार पर डाली गई। दूसरे वर्ग मे वे उद्योग शामिल किए गए जिनमे राज्य का स्वामित्व-अधिकार बढता जाएगा परन्तु निजी क्षेत्र को सरकार के प्रयास मे सहयोग देने की इजाजत होगी। इन दोनो क्षेत्रो मे राज्य अर्थव्यवस्था के मूल महत्त्व के उद्योगो का विकास करने के लिए जानबूझ कर सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) का विस्तार करना चाहता है। इस प्रकार प्रतिरक्षा और भारी उद्योगो का विकास करके देश को विदेशी निर्भरता से मुक्त करना होगा और अध सरचना सुविधाओ अथात् पानी ऊर्जा और परिवहन का विस्तार करके कृषि तथा उद्योग में विनियोग के लिए अनुकूल परिस्थितिया कायम करनी होगी। 1969 मे मुख्य वाणिज्य बैंको के राष्टायकरण द्वारा एक और बडा कदम उठाया गया ताकि उत्पादन के सामाजिक दृष्टि से वाछनीय क्षेत्रो मे विनियोग निर्देशित हो सके।

चाहे सार्वजनिक क्षत्र को विकास प्रक्रिया मे श्रेष्ठ साझीदार माना गया किन्तु निजा क्षेत्र (Private sector) को भा कार्य करने की इजाजत दा गया और यह आशा का गयी कि इस अर्थव्यवस्था के समग्र ढाचे के अन्तगत सरकारी क्षेत्र के प्रयासों मे सहायता करनी होगी। योजना आयोग ने साफ शब्दो म कहा, आयोजित अर्थव्यवस्था मे सावजनिक और निजी क्षेत्र मे भेद सापेक्ष महत्त्व का है। दोनो क्षेत्र एक ही व्यवस्था के अनिवार्य अग है और उन्हे ऐसे ही कार्य करना होगा।"

दूसरे, एक मिश्रित अर्थव्यवस्था अनिवायत आयोजित अर्थव्यवस्था (Planned economy) है। मिश्रित अथव्यवस्था का अर्थ केवल एक नियंत्रित अथव्यवस्था से नहीं जिसमे सरकार आर्थिक मामलों म राजकोषाय एव मौद्रिक नीति द्वारा हस्तक्षेप करती है बल्कि यह एक ऐसी अथव्यवस्था है जिसमे सरकार की एक स्पष्ट एव निश्चित योजना होता है। सरकार के लिए योजना बनानी आवश्यक है क्योंकि सार्वजनिक क्षेत्र का काय सचालन निश्चित प्राथमिकताओ के आधार पर करना होगा ताकि निश्चत सामाजिक एव आर्थिक उद्देश्य प्राप्त किए जा सके। परन्तु सरकार निजी क्षेत्र को अपने आप अव्यवस्थित ढग से विकसित होने के लिए छोड नहीं सकती और इसलिए इसे एक समन्वित योजना तैयार करनी होगी जिसमे निजी क्षेत्र का एक सुनिश्चित स्थान हो।

तीसरे, मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूजीवाद और समाजवाद के मुख्य लक्षणो का बहुत स्पष्ट एव चतुर रूप मे समायोजन किया जाता है। उदाहरणार्थ निजी क्षेत्र के उद्योग निजी हित एव लाभ प्रेरणा (Profit motive) पर आधारित होते हैं। वैयक्तिक पहल (Individual initiative) को पूर्ण गुजाइश रखी जाती है और निजी सम्पत्ति का आदर किया जाता है। परन्तु यह ठीक है कि यह मुक्त या निर्बाध पूजीवाद (Laissez fair capitalism) नहीं परन्तु नियंत्रित पूजीवाद है क्योंकि स्वतत्र उद्यम और पहल निजी हित एव लाभ प्रेरणा की सचालन शक्तियो, और निजी सम्पत्ति की प्रणाली सभी को सामाजिक हित मे सीमित रखा जाता है। या तो इन्हे कुछ उद्योगो तक सीमित रखा जाता है या इन्हे वैधानिक एव अन्य उपायो द्वारा नियंत्रित किया जाता है। इसके विरुद्ध सावजनिक क्षेत्र के उद्योगो का प्रबन्ध एव कार्य सचालन समाज के कल्याण के आधार पर किया जाता है। इनमे निजी सम्पत्ति और लाभ प्रेरणा के लिए कोई स्थान नहीं। प्रतियोगिता के सभव व्यर्थ व्यय को भी कम किया जाता है। आयोजन के लाभो एव आय की सापेक्ष समानता का तालमेल निजी पहल और लाभ प्रेरणा के लाभो से बैठाया जाता है।

इस प्रकार भारत मे सरकार समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना के लिए वचनबद्ध है जिसमे सम्पत्ति की सुव्यक्त असमानताए न्यूनतम कर दी जाएगी। परन्तु राज्य यह नहीं चाहेगा कि वह निजी उद्यम प्रणाली को पूर्णतया समाप्त कर दे जो बहुत से दोषो एव कठिनाइयो के बावजूद, उत्पादन एव वितरण के क्षेत्र मे अच्छा कार्य करती चली आयी है। अत हमारी मिश्रित अथव्यवस्था लोकतत्र और समाजवाद मे हमारे विश्वास का परिणाम हैं इसके फलस्वरूप इसमे राजकाय क्षेत्र का विस्तार हुआ।

4 मिश्रित अर्थव्यवस्था मे आयोजन प्रक्रिया (Planning Process in a Mixed Economy)

चूंकि मिश्रित अर्थव्यवस्था दो अलग-अलग और कई परिस्थितियो में अन्तर्विरोधी प्रेरणाओ के अधीन कार्य करती है मिश्रित अर्थव्यवस्था मे आयोजन प्रक्रिया समाजवादी अर्थव्यवस्था की तुलना मे कहीं अधिक जटिल है। अन्तर्विरोधी प्रेरणाओ मे एक ओर तो है निजी हित और दूसरी ओर है सामाजिक लाभ। मिश्रित अर्थव्यवस्था मे आर्थिक आयोजन का उद्देश्य इन प्रतिद्वन्द्वी हितो मे तालमेल बिठाना है ताकि राष्टाय हित प्रोन्नत हो सके। मिश्रित अर्थव्यवस्था मे आयोजन की सफलता निम्नलिखित कारण तत्त्वो पर निभर करती है

(i) सावजनिक क्षेत्र किस सीमा तक सामाजिक दृष्टि से निर्धारित उद्देश्य को पूरा कर सकता है ?

(ii) सरकार किस हद तक निजी क्षेत्र को समाज द्वारा निर्धारित उद्देश्यों को पूरा करने के लिए मजबूर कर सकती है?

(iii) सरकार किस हद तक विनियोग सम्बन्धी निर्णयों म उत्पन्न होने वाली विकृतियों को रोक सकती है जो कि निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र के हितों की आपसी टक्कर से उत्पन्न होती है ?

सरकार बहुत से सामाजिक उपकरणों एवं उपायों द्वारा इस सम्बन्ध म प्रयास करती रही है ताकि भारत में आर्थिक क्रिया का निर्देशन आयोजन के दीर्घकालीन उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर किया जा सके। इस सम्बन्ध म निम्नलिखित मुख्य उपाय किए गए हैं

1 सरकार ने योजना परिव्यय का बहुत महत्त्वपूर्ण अनुपात प्रतिरक्षा भारी तथा मूल उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए खर्च किया। इस परिव्यय का मुख्य उद्देश्य देश म औद्योगिक आधार की स्थापना था। इनम से अधिकतर उद्योगों का विकास ब्रिटिश काल म नहीं किया गया। इन उद्योगों का चेतन रूप म विकास करके भारतीय अर्थव्यवस्था का औद्योगिक आधार स्थापित किया गया।

2 विनियोग का काफी बड़ा अनुपात राज्य द्वारा आर्थिक अधःसरचना (Economic Infrastructure) अर्थात् सिंचाई योजनाओं जल विद्युत परियोजनाओं सड़कों रेलवे डाक और तार टेलीफोनों और वायु परिवहन के निर्माण पर व्यय किया गया। इसमें सन्देह नहीं कि आर्थिक अधःसरचना म काफी विस्तार हो गया है और इससे बाजार का आकार बड़ा हो गया है कृषि एवं उद्योग से अधिक उत्पादिता प्राप्त करने की सम्भावना बढ़ी है और प्रत्यक्ष उत्पादक विनियोग (D rectly productive investment) के क्षेत्र का विस्तार हुआ है।

3 राज्य ने वित्तीय संस्थानों (Financial institutions) पर प्रभावी नियंत्रण प्राप्त कर लिया है। जीवन बीमा निगम का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। 1969 में वाणिज्य बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। इस प्रकार बैंक प्रणाली को अधिकाधिक राजकीय स्वामित्व एवं नियंत्रण के आधीन लाया गया है।

4 राज्य ने एकाधिकार के विकास को रोकने के लिए एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार आयोग (Monopolies and Restrictive Trade Practices Commission) की स्थापना की और इस बात के लिए प्रयास किया कि व्यापारिक घराने (Business Houses) या अन्य पूँजीपति प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार द्वारा उपभोक्ताओं का शोषण न करें।

5 राज्य कीमतों की वृद्धि को रोकने म विफल रहा है यह सत्य है कि कीमतों में कुछ वृद्धि अन्तर्राष्ट्रीय कारणतत्त्वों अर्थात् तेल की कीमतों म वृद्धि का परिणाम है परन्तु कीमत वृद्धि का अधिकतर भाग देशी कारणतत्त्वों का परिणाम है। इसके अतिरिक्त चाहे थोक कीमत सूचकांक म कुछ सुधार हुआ है परन्तु यह अभी परचून कीमतों म व्यक्त नहीं हुआ। जाहिर है कि व्यापारी दुर्लभता की कृत्रिम परिस्थितियाँ कायम कर सकते हैं। इस अन्तर्विरोध का मिश्रित अर्थव्यवस्था म समाधान करना आवश्यक है।

6 राज्य सरकार राशन व्यवस्था और नियंत्रण के प्रयोग द्वारा अनिवार्य उपभोग वस्तुओं की कीमतों म वृद्धि को रोकती रही है ताकि कमजोर वर्गों को ये वस्तुएँ उचित कीमत पर उपलब्ध कराई जा सकें। इन उपकरणों का मुख्य उद्देश्य निर्धन वर्गों को व्यापारियों के शोषण से संरक्षित करना है।

7 राज्य द्वारा कमजोर वर्गों को शिक्षा एवं प्रशिक्षण म सहायता करने के लिए विशेष प्रोग्राम चलाने होंगे ताकि (i) वे जीवन म बेहतर रोजगार प्राप्त कर सकें और (ii) उन्हें विकास के लिए समान अवसर उपलब्ध कराए जा सकें। यह स्वीकार करना होगा कि इन उपायों द्वारा गरीब परिवारों म पैदा हुए बहुत से बच्चों को जीवन म ऊँचा उठने म सहायता मिलेगी।

8 सरकार कराधान एवं सार्वजनिक व्यय के उपकरणों का प्रयोग इस प्रकार करती रही है कि साधन सम्पन्न वर्गों से राय को हस्तान्तरित हो जाए और राय इसको इस ढंग से खर्च करे कि इसका प्रयोग गरीबों के कल्याण के लिए हो।

5 स्वीकृत सामाजिक उद्देश्यों के बावजूद आयोजन प्रक्रिया म विकृतियाँ

केन्द्र एवं राज्यीय सरकारों ने उत्पादन व्यापार एवं वित्त के बहुत से क्षेत्रों म सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम स्थापित किए। कुछ परिस्थितियों म निजी क्षेत्र की असफल इकाइयों का राष्ट्रीयकरण किया गया। इस प्रकार केन्द्र सरकार द्वारा बीमा कम्पनियों और बैंकों और राज्यीय सरकारों द्वारा सड़क परिवहन प्रणालियों को सरकारी स्वामित्वाधीन लाया गया। प्राय निजी क्षेत्र की बीमार इकाइयों का स्वामित्व भी सरकार ने अपने हाथ म लिया (उदाहरणार्थ सूती वस्त्र के कारखानों और इंजीनियरिंग की इकाइयों को राजकीय स्वामित्व म लाया गया।) कई राज्यों ने सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयाँ इसलिए स्थापित कीं कि वे अपनी पार्टी के विधायकों को उनके अध्यक्ष बना कर मंत्री स्तर का दर्जा वेतन एवं अन्य लाभ दे सकें। सामान्यतया सार्वजनिक क्षेत्र के अधिकतर उद्यम अकुशल रूप म चल रहे हैं और परिणामत सरकार को इनके घाटे पूरे करने पड़ते हैं और अन्तत इसका भार करदाताओं पर

हो पडता है। भूतपूर्व सोवियत सघ और पूर्वीय यूरोप के देशो की भाँति सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति आम जनता इन्हे तीव्र घृणा की दृष्टि से देखती है ओर अब केवल वामपथी राजनीतिज्ञ और मजदूर सघो के नेता ही इनके कट्टर समर्थक रह गए हैं।

भारत मे मिश्रित अर्थव्यवस्था का प्रयोग लगभग 45 वर्ष से चल रहा है। भारतीय आर्थिक स्थिति का कोई भी तीक्ष्ण बुद्धि प्रेक्षक यह कहेगा कि राज्य द्वारा इस बात की लगातार कोशिश होती रही है कि निजी क्षेत्र को राष्ट्रीय प्राथमिकताओ मे ढालना होगा, परन्तु यह भी सही है कि निजी क्षेत्र भी लगातार और अनथक कोशिश करता रहा कि वह इन प्राथमिकताओ का उल्लघन करे और कई प्रकार से वह आयोजन प्रक्रिया को विकृत करता रहा है। पूजीपति सरकारी अफसरों एव सत्तारूढ राजनीतिज्ञो को भ्रष्ट करने की चेष्टा करते रहे हैं ताकि निजी क्षेत्र को अनुशासित करने के लिए विधान मे छिद्र छोडे जाए। परिणामत योजना प्राथमिकताओ मे ढील की इजाजत दी गई। उदाहरणार्थ जैसा कि दत्त समिति ने बताया, सरकार ने निजी क्षेत्र को उन क्षेत्रो में औद्योगिक इकाइया स्थापित करने की इजाजत दे दी है जो पहले सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित थे। इसी प्रकार, जहा परिमार्जित तकनालाजी (Sophisticated technology) के क्षेत्रो मे आयात की इजाजत दी जानी चाहिए था उनकी किसी एक या दूसरे बहाने पर कम प्राथमिकता वाले क्षेत्रो मे भी इजाजत दी गया। निजी क्षेत्र सार्वजनिक क्षेत्र के विरुद्ध कार्य करता रहा है ओर इसे इस हद तक बदनाम कर दिया गया कि सरकार को 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव द्वारा निर्धारित नीतियो मे पलटाव करने के उद्देश से 1991 म नयी औद्योगिक नीति का घोषणा करना पडी। राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय औद्योगिक लाबी के प्रभावाधीन राष्ट्रीय लाबी का नेतृत्व व्यापारिक एव औद्योगिक घराने कर रहे हे और अन्तर्राष्ट्रीय लाबी का बहुराष्ट्रीय निगम सरकार ने निजी क्षेत्र के बारे मे अपनी नीतिया मे उदारता लाने का निर्णय किया है। अत लाभ प्रेरणा ओर पूजीवादी समाज की परिग्रहणशील प्रवृत्ति (Acquisitive spirit) जिसे मधुरभाषी रूप मे मिश्रित अर्थव्यवस्था की सज्ञा दी गई, के कारण आयोजन प्रक्रिया म गम्भीर विकृतिया पैदा हो गयीं। मुख्य विकृतिया इस प्रकार हैं

(*i*) मिश्रित अर्थव्यवस्था द्वारा निर्धनता स्तर के नीचे रहने वाली जनसख्या के अनुपात को कम करने मे विफलता

(*ii*) आय ओर सम्पत्ति की असमानताओ के बने रहने के कारण उत्पादन ढाचे मे विकृतिया उत्पन्न होना। राष्ट्रीय साधनो का एक महत्त्वपूर्ण भाग उच्च वर्गो की आवश्यकताओ की तुष्टि के लिए इस्तेमाल होता है

(*iii*) चिरस्थायी उपभोग वस्तुओं के उत्पादन की अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि दर। इनकी तुलना मे जनोपभोग (Mass consumption) की गैर चिरस्थायी उपभोग वस्तुओ अर्थात् चीनी जूते, लालटेन वनस्पति तेल आदि की कम वृद्धि दर,

(*iv*) राज्य द्वारा आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रण (Concentration of economic power) को कम करने मे विफलता

(*v*) भारत में छिपे धन (Black money) या समानान्तर अर्थव्यवस्था (Parallel economy) का उभार। प्रगतिशील कराधान का उपाय विस्तृत कर वचन (Tax evasion) ओर छिपे धन के व्यापक विस्तार के कारण अर्थहीन हो गया है।

(*vi*) स्वीकृत सामाजिक उद्देश्यों के बावजूद कीमतो में वृद्धि को रोकने की विफलता। जनोपभोग की आवश्यक वस्तुओ अर्थात् चीनी वनस्पति खाद्यान्नो विशेषकर दालो की कीमतें बढती जा रही है।

(*vii*) श्रम वर्गों के पक्ष मे आय का वितरण परिवर्तित करने मे विफलता। राष्ट्रीय आय मे वृद्धि के साथ श्रम वर्ग की वास्तविक मजदूरी मे उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई।

इस सारे विश्लेषण से यह निष्कर्ष प्राप्त होता हे कि निजी क्षेत्र को सामाजिक हित के आधीन लाने मे सफलता प्राप्त नहा हुइ हे। इसके विरुद्ध राष्ट्रीय नीतियो के निधारण मे अब यह निर्णायक प्रभाव डालने लगा हे। इसके अतिरिक्त चाहे विनियोग सार्वजनिक क्षेत्र मे हो या निजी क्षेत्र मे विकास प्रक्रिया के मुख्य प्राप्तकर्त्ता तो बडे औद्योगिक घराने, बडे व्यापारी एव बडे जमींदार ही हैं। मिश्रित अर्थव्यवस्था में आन्तरिक एव अन्तनिहित अन्तर्विरोध है जो कि मूल रूप में पूजीवाद का सशोधित रूप ही हे।

❑❑❑

9

भारतीय आयोजन में विकास की रणनीति
(STRATEGY OF DEVELOPMENT IN INDIAN PLANNING)

भारत मे विकास रणनीति

अल्पविकसित अर्थव्यवस्था को स्वय स्फूर्त अर्थव्यवस्था (Self generating economy) मे परिवर्तित करने के लिए आर्थिक विकास की उचित विकास रणनीति (Development strategy) अपनानी आवश्यक है। आई जी पटेल के अनुसार, "रणनीति का अर्थ अनिवार्यत सोच समझकर चुनाव *करना है-किसी समस्या पर आक्रमण करने के लिए उचित* प्रहार बिन्दु और प्रहार की रणनीति।" किसी विकास रणनीति का निश्चय करने से पूर्व दो बातों का ध्यान रखना होगा। पहली अर्थव्यवस्था को विकास की अधिकतम दर प्राप्त करने के लिए न्यूनतम आवश्यक प्रयास करना पडे। दूसरी परिवर्तन की प्रक्रिया के लिए दीर्घावधि नहीं लगनी चाहिए।

भारत में विकास-रणनीति का उद्विकास (Evolution)

दूसरी पचवर्षीय योजना के साथ भारतीय आयोजको ने विकास की स्पष्ट रणनीति निर्माण की। प्रोफेसर महलनोबिस जो *वस्तुत दूसरी योजना के निर्माता समझे जाते है* ने रूसी अनुभव के आधार पर विकास की रणनीति निर्धारित की। *इसमें तीव्र औद्योगीकरण प्राप्त करने के लिए भारी उद्योगो में* विनियोग पर बल दिया गया जिसके परिणामस्वरूप बाद में तीव्र आर्थिक विकास की मूल परिस्थितिया कायम करने की आशा व्यक्त की गयी। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के अनुसार' भारी उद्योग का विकास औद्योगीकरण का पर्यायवाची है। 'उन्होंने कहा अहमदाबाद, बम्बई या कानपुर मे लगे हुए बहुत से सूती वस्त्र के कारखाने औद्योगीकरण नहीं है यह तो केवल इसके साथ खिलवाड है। मै सूती वस्त्र के कारखानो पर आपत्ति नहीं उठाना चाहता हमे उनकी जरूरत है परन्तु इस प्रकार हमारा औद्योगीकरण का विचार इन साधारण सूती वस्त्र के कारखानो तक ही सीमित एव सकुचित हो जाता है और हम इसे ही औद्योगीकरण कहने लगते है। औद्योगीकरण से इस्पात उत्पन्न होता है इससे सचालन शक्ति पैदा की जाती है वे ही इसका आधार है। यदि आप एक बार आधार कायम कर ले तो फिर निर्माण करना आसान हो जाता है। भारत मे आयोजन को प्रशस्त करने वाली रणनीति मे औद्योगीकरण को बढावा देना होगा और इसका अर्थ यह है कि मूल उद्योगों को (Basic industries) प्रथम स्थान दिया जाए।'[1]

एक और सन्दर्भ में नेहरू ने कहा "यदि हमे औद्योगीकरण करना है तो सबसे अधिक महत्त्व की बात यह है कि हम सभी उद्योग कायम करे जो मशीनो का निर्माण करे।' फिर *उन्होंने कहा, "कुछ लोग यह तर्क देते है कि हमे भारी उद्योगो की बजाए हल्के उद्योगो* (Light industries) का निर्माण *करना चाहिए। नि सदेह हमे हल्के उद्योगो का निर्माण तो* करना ही है परन्तु राष्ट्र का तीव्र औद्योगीकरण तब तक *सम्भव नही हो सकता जब तक कि हम मूल उद्योगो की ओर* ध्यान न दे जो औद्योगिक मशीने उत्पन्न करते है जिनका प्रयोग औद्योगिक विकास मे किया जाता है।[2] अत इस सम्बन्ध मे नेहरू का दृष्टिकोण एकदम साफ था। औद्योगीकरण का अर्थ है भारी उद्योगो का विकास। दूसरी योजना के ढाचे मे यह बात साफ शब्दो मे इस प्रकार रखी गयी

दीर्घकाल मे औद्योगीकरण और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास की दर सामान्यत भारी उद्योगो के उत्पादन मे वृद्धि, विशेषकर कोयले बिजली लौह एव इस्पात और भारी मशीनो के उत्पादन मे बढोत्तरी पर निर्भर करेगी। इससे पूजी निर्माण की क्षमता बढेगी। हमारा एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य यह है कि भारत को विदेशी उत्पादक वस्तुओ (Producer goods) के आयात से शीघ्रातिशीघ्र स्वतन्त्र बनाना है ताकि पूजी सचयन (Capital accumulation) मे अन्य देशो से प्राप्त की जाने वाली अनिवार्य उत्पादक वस्तुओ से सम्बन्धित कठिनाइयो के कारण बाधा उत्पन्न न हो। अत भारी उद्योग को अधिकतम सम्भव रफ्तार से बढाना होगा।

1 Government of India *Problems in the Third Plan A Critical Miscellany* p 35

2 वही पृ 34 35

अत भारतीय आयोजकों द्वारा दूसरी योजना और उसके पश्चात् पांचवी योजना तक कुछ थोडे बहुत फेरबदल के साथ अपनायी गयी विकास रणनीति का मूल इसी बात मे था कि भारी आधारभूत तथा मशीन निर्माण उद्योगों मे विनियोग द्वारा तीव्र औद्योगीकरण किया जाए।

2 भारतीय विकास रणनीति का गुह्यार्थ (*Implications of India's Strategy*)

इस विनियोग रणनीति का उद्देश्य स्वय स्फूर्त विकास के लिए विनियोग की अधिकाधिक मात्रा मशीन निर्माण उद्योग मे स्थापित करने मे लगाना था। इस विकास रणनीति की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताए निम्नलिखित हैं—

निर्यात प्रोत्साहन का कार्यभाग (Role of export promotion)

आरम्भ मे अपनी पूजी वस्तुओ सम्बन्धी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए योजना आयोग ने विदेशी सहायता का काफी आश्रय लिया क्योंकि हमारी विदेशी मुद्रा सम्बन्धी प्राप्तिया अपर्याप्त थीं। परन्तु 1956 57 के विदेशी मुद्रा सकट (*Foreign exchange crisis*) के पश्चात् निर्यात प्रोत्साहन का महत्त्व ठीक प्रकार से समझा गया। आयोजको ने यह बात समझ ली कि निर्यात प्रोत्साहन तीव्र औद्योगीकरण की क्रिया मे साथ साथ चल सकते हैं। तीसरी योजना मे इस बात को इस प्रकार स्पष्ट किया गया "बीते वर्षों मे एक मुख्य कमजोरी यह रहा है कि निर्यात के प्रोग्राम को देश के विकास प्रयास का एक समन्वित भाग नहीं समझा गया।"[3] योजना आयोग इस बात से बाद मे पीछे नही हटा—निर्यात प्रोत्साहन उत्तरोत्तर पचवर्षीय योजनाओं का हमेशा ही एक महत्त्वपूर्ण पहलू रहा है और पाचवी योजना ने तो इससे भी आगे बढकर शुद्ध विदेशी सहायता की शून्य दर का लक्ष्य रखा। निर्यात प्रोत्साहन के साथ साथ आयात प्रतिस्थापन (Import substitution) पर भी बल दिया गया।

उपभोग वस्तुओ का सभरण—नेहरू युग के आयोजन की दृष्टि इस सम्बन्ध मे बिल्कुल साफ थी कि भारी उद्योगों का विकास परिवार क्षेत्र मे उपभोग वस्तुओ की विकास दर से सीमित हो जाएगा। दूसरी योजना के ढाचे (Framework) मे यह बात स्पष्ट शब्दो मे इस प्रकार कही गयी "उपभोग वस्तुओ का जितनी मात्रा मे अधिक विपण्य अतिरेक (*Marketable surplus*) परिवार या हस्तशिल्प उद्योगो मे होगा, उतनी ही हद तक बिना स्फाति के डर से भारी उद्योगो मे विनियोग हो सकेगा।"[4]

एक बात तो यह है कि बढती हुई जनसख्या के लिए भोजन एव वस्त्र का प्रबन्ध करना पडता है और इस प्रकार जनसख्या मे वृद्धि के साथ उपभोग वस्तुओ की माग बढ जाएगी। दूसरे, भारी उद्योगो जिनकी परिपाक अवधि (Gestation period) लम्बी होती है से विनियोग की बढती हुई दर के कारण सामान्य जनता के पास मुद्रा सभरण (Money supply) मे वृद्धि होती है और उपभोग वस्तुओ की तुलनीय पूर्ति (Matching supply) के अभाव मे स्फीतिकारी दबाव (Inflationary pressure) उत्पन्न होंगे। नेहरू महलनोबिस माडल (Nehru Mahalanobis Model) मे उपभोग वस्तुए उत्पन्न करने वाले कुटीर उद्योगो को सक्रिय प्रोत्साहन दिया गया। यह तर्क दिया गया कि छोटे तथा कुटीर उद्योगो मे आदान प्रदान अनुपात (*Input output ratio*) नीचा होगा और परिपाक अवधि लगभग शून्य होगी और जाहिर है कि लघु क्षेत्र उपभोग वस्तुओ के सभरण को बढाने के लिए सबसे उपयुक्त रहेगा। इसके अतिरिक्त प्रोफेसर महलनोबिस ने तर्क दिया कि लघु तथा कुटीर क्षेत्र मे उत्पादन की लागत जरूरी नहीं कि फैक्टी क्षेत्र से अधिक हो क्योंकि लघु क्षेत्र भी आधुनिक मशीनरी एव बिजली का प्रयोग करेगा। उपभोग वस्तुओ के सभरण को बढाने वाले इन सभी कारणतत्त्वों के बावजूद प्रोफेसर महलनोबिस ने उपभोग वस्तुओ की कमी की प्रत्याशा नहीं की और न ही इस परिस्थिति को लागतो एव कीमतो मे वृद्धि के कारण आयोजन प्रक्रिया के प्रति एक खतरा समझा। अपनी विकास रणनीति मे उन्होंने राजकोषीय नियन्त्रणो (Fiscal controls) जिनमें राशनिंग भी शामिल था, की व्यवस्था का ताकि कीमतो की वृद्धि रोकी जा सके।

नेहरू ने भी छोटे पैमाने के उद्योगो और कृषि को उचित महत्त्व दिया क्योंकि वे उपभोग वस्तुओ के स्रोत थे। नेहरू के शब्दो मे "किसी देश मे औद्योगीकरण की प्रगति की कसौटी भारी उद्योग की स्थापना है न कि छोटे उद्योगों की। इसका यह अर्थ नहीं कि छोटे उद्योगो की उपेक्षा होनी चाहिए। वे भी अपने आप मे बहुत महत्त्व रखते हैं विशेषकर उत्पादन और रोजगार की दृष्टि से।" दूसरी पचवर्षीय योजना के ढाचे (Framework) मे उल्लेख किया गया "विकास रणनीति यह आवश्यक समझती है कि वर्तमान उद्योगो मे क्षमता के अधिकतम उपयोग के लिए पूरा प्रयास किया जाना चाहिए और इस प्रकार का भरसक प्रयास पूजी की दृष्टि से हल्के या लघु क्षेत्र के उद्योगो के उत्पादन को बढाने के लिए भी किया जाना चाहिए।[5] कृषि के सम्बन्ध मे नेहरू ने उल्लेख किया "हम यह अनुभव करेंगे कि यह औद्योगिक प्रगति कृषि मे प्रगति और तरक्की किए बिना प्राप्त नहीं की जा सकती। हर

3 योजना आयोग, तृतीय पचवर्षीय योजना।

4 *Second Five Year Plan—Framework* p 15

5 *Ibid* p 63

व्यक्ति यह बात समझता है कि जब तक हम कृषि में आत्मनिर्भर नहीं हो जाते, तब तक हम उद्योगों में प्रगति करने के साधन उपलब्ध नहीं होंगे। यदि हमें खाद्यान्न का आयात करना है तो प्रगति की दृष्टि से भविष्य अन्धकारमय ही रहेगा। हम खाद्यान्न और मशीनरी दोनों का आयात नहीं कर सकते।" दूसरी योजना के ढाँचे में भी उल्लेख किया गया "चूँकि उपभोग वस्तुओं की अतिरिक्त माँग का अधिकतर भाग खाद्यान्न के रूप में होगा, इसलिए ऐसी योजनाओं की अपनाने की ओर ध्यान देना चाहिए जो पूँजी की कम लागत पर कृषि की उत्पादकता को तेजी से बढ़ाएँ।"[6]

जाहिर है कि स्वयं स्फूर्त विकास की रणनीति, जो भारी उद्योगों पर आधारित थी, में कृषि में आत्मनिर्भरता की आवश्यकता और उपभोग वस्तुओं के संभरण को बढ़ाने के लिए लघु स्तर उद्योगों के महत्त्व पर बल दिया गया। परन्तु यह सोचा गया कि पहली योजना में इतनी सफलता प्राप्त हुई है कि भारत कृषि के सम्बन्ध में पहले ही आत्मनिर्भर हो गया है। 1965-66 के बाद ही देश ने यह अनुभव किया कि खाद्यान्नों का संभरण अपर्याप्त है।

बचत का कार्यभाग बचत के कार्यभाग के सम्बन्ध में विनियोग रणनीति में यह कल्पना की गई कि भारत को केवल घरेलू बचत (Domestic saving) पर निर्भर नहीं करना चाहिए। इसमें घरेलू बचत की दर बढ़ाने की आवश्यकता पर बल दिया गया परन्तु चूँकि यह मालूम किया गया कि घरेलू बचत विनियोग के ऊँची दर के लिए काफी नहीं [illegible] इसलिए आयोजकों ने विदेशी सहायता की व्यवस्था की। विकास रणनीति में यह बात स्वीकार की गई कि विदेशी सहायता आरम्भिक काल में विदेशी पूँजी एवं परामर्श टेक्नोलॉजी के आयात के लिए [illegible] चाहिए और धीरे धीरे देश को विदेशी सहायता से मुक्त करना होगा ताकि आत्मनिर्भरता की लक्ष्य प्राप्त हो सके।

सार्वजनिक क्षेत्र का कार्यभाग (Role of public sector)—विनियोग रणनीति में सार्वजनिक क्षेत्र को प्रमुख कार्यभार सौंपा गया। चूँकि भारी उद्योगों में विनियोग बहुत ऊँचे रखे गए और इन योजनाओं की [illegible] अवधि (Gestation period) लम्बी थी परन्तु इनसे प्राप्त होने वाले लाभ पर नीचे थे, सरकार ने यह सोचा कि जहाँ तक हो सके भारी उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में ही स्थापित करने चाहिए। केवल कुछ गिने चुने पूँजी स्थापना को छोड़कर निजी क्षेत्र अधःसंरचना (Infrastru tu e) स्थापित करने की इच्छुक नहीं था। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार द्वारा अर्थव्यवस्था के बाह्य सरकार के हाथों [illegible] और

यह अर्थव्यवस्था के विकास की दृष्टि से ठीक होगा। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र आय के पुनर्वितरण एवं एकाधिकारी स्वामित्व एवं शोषण को रोकने में सहायता देगा जो कि निजी क्षेत्र में अन्तर्निहित हैं। यही कारण था कि दूसरी योजना के आरम्भ के पश्चात् सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र का बड़े पैमाने पर विस्तार किया।

विकास रणनीति का औचित्य उद्योग बनाम कृषि

दूसरी योजना और उत्तरोत्तर योजनाओं में अपनाए गए नेहरू महलनोबिस मॉडल की काफी आलोचना की गयी। आलोचना का एक मुख्य आधार यह था कि कृषि की तुलना में उद्योगों पर अत्यधिक बल दिया गया। आयोजकों ने उद्योगों को उच्च प्राथमिकता देने की नीति को कई दृष्टियों से उचित ठहराया।

(क) राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय की तीव्र वृद्धि केवल तीव्र औद्योगीकरण द्वारा ही सम्भव हो सकती।

(ख) उद्योगों में विकास दर कृषि की तुलना में कहीं अधिक था।

(ग) औद्योगिक वस्तुओं की माँग की आय लोच (Income elasticity) बहुत अधिक है और निर्मित वस्तुओं में निर्यात के अवसर भी बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध हो सकते हैं।

इस प्रकार तीव्र आर्थिक विकास के लिए तीव्र औद्योगीकरण एक उपाय के रूप में कल्पित किया गया। यह सोचा गया कि देश के दुर्लभ साधनों का प्रयोग कृषि की अपेक्षा उद्योगों के विकास की ओर होना चाहिए। उद्योगों को प्राथमिकता देने का एक और कारण भी था। भारतीय कृषि पहले ही जनसंख्या के अत्यधिक दबाव और निम्न उत्पादिता (Low product vity) से पीड़ित था। भूमि पर दबाव को कम करने और कृषि उत्पादिता को बढ़ाने का एक उपाय अतिरिक्त जनसंख्या को उद्योगों की ओर परिवर्तित करना था। उद्योगों में रोजगार की वृद्धि और ऊँची उत्पादिता के फलस्वरूप राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय की अधिक वृद्धि होगी, यदि आय के अधिक उद्योगों में अधिक विनियोग किया गया।

ब्रिटिश शासन के दौरान, भारत को कृषि तथा कृषि पर आधारित उद्योगों तक सीमित रहने के लिए मजबूर किया गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत मूलतः एक कृषि प्रधान देश था, चाहे उसके विस्तृत प्राकृतिक एवं मानवीय साधनों के आधार पर यह औद्योगीकरण के लिए अत्यन्त उपयुक्त था। आयोजकों ने सोचा कि रोजगार, आयात एवं प्रतिरक्षा की दृष्टि से, संरचना के प्रकार का विविधीकरण (Diversifi a tion) देश के हित में होगा। इन तर्कों के आधार पर आयोजकों ने दूसरी योजना से औद्योगीकरण पर बल दिया।

6 *Ibid* p 63

क्या कृषि की वास्तव मे उपेक्षा की गयी ?

यह तो ठीक है कि भारी उद्योगो द्वारा औद्योगीकरण को प्राथमिकता दी गयी परन्तु यह कहना कि कृषि की उपेक्षा की गयी ठीक नही है। कृषि और उद्योग की पूरकता (Complementarity) के सम्बन्ध मे नेहरू का नजरिया बिल्कुल साफ था। नेहरू ने लिखा हमे यह बात समझनी होगी कि कृषि की उन्नति एव प्रगति के बिना औद्योगिक प्रगति प्राप्त नहीं की जा सकती। वस्तु स्थिति तो यह है कि इन दोनो को अलग नहीं किया जा सकता। इनमे गहरा सम्बन्ध है क्योंकि कृषि की प्रगति उद्योग की प्रगति के बिना सम्भव नहीं। कारण यह है कि इसके लिए नये औजार, नयी विधिया और नयी तकनीके चाहिए।"

अत नेहरू पर यह दोष लगाना कि वह राष्ट्रीय विकास *के सन्दर्भ मे कृषि के कार्यभाग के बारे मे जागरूक नहीं था* ठीक नहीं। न ही यह दोष देश के आयोजको पर लगाया जा सकता है। नेहरू *इस बात को पूरी तरह समझता था कि कृषि* को विकसित करने में विफलता 'औद्योगिक प्रगति पर एक सामाबन्धन बन जाएगी।

तब भी उद्योग पर बल को सामान्यत कृषि की उपेक्षा के रूप मे समझा गया और यह आरोप लगाया गया कि कृषि की ओर कम ध्यान दिया गया। अन्यथा हम इस बात की व्याख्या किस प्रकार कर सकते हैं कि कृषि तथा सम्बन्धित व्यवसाय जो राष्ट्रीय आय मे 42 से 52 प्रतिशत तक योगदान देते हैं पर पहली पाच योजनाओ मे लगभग 20 प्रतिशत ससाधन (Resources) व्यय किए गये जबकि उद्योग जो कि राष्ट्रीय आय का केवल 18 से 20 प्रतिशत उपलब्ध कराते हैं को कुल ससाधनो का 24 प्रतिशत विनियोग के रूप मे उपलब्ध कराया गया। जाहिर है कि व्यवहार मे उद्योगो को कहीं अधिक ऊँची प्राथमिकता दी गयी और इस प्रकार कृषि की उपेक्षा की गयी। चरणसिह जो नेहरू की औद्योगीकरण की धारणा के कटु-आलोचक थे ने लिखा भारत के भविष्य के निर्माण के आयोजको का 'बुनियादी गुनाह यह था कि उन्होंने कृषि की उपेक्षा की।[7] साम्यवादी मार्ग को अपनाते हुए, कृषि की उपेक्षा करके भारी उद्योग का विकास किया गया। व्यापार-शर्त (*Terms of trade*) कृषि के विरुद्ध परिवर्तित किए गए और खाद्यान्न एव कच्चे माल के रूप मे कृषि अतिरेक (Agricultural surplus) का प्रयोग अध सरचना (Infrastructure) विनियोग मे वित्त जुटाने के लिए किया गया। चरणसिह ने लिखा 'साम्यवादी भाषा मे किसान वर्गो को गैर कृषि क्षेत्र के पोषक आधार (Nutrient base) का काम करना अनिवार्य है या आर्थिक विकास के लिए कीमत अदा करनी है।[8]

इस विरोधाभास को सुलझाने के लिए तीन तर्क दिए जाते हैं। प्रथम, आयोजको ने यह महसूस किया कि पहली योजना की सफलता के साथ भारत कृषि में आत्मनिर्भर हो गया और भारतीय कृषि की स्वावलम्बिता बनाए रखने के लिए इस पर कुल व्यय का कम प्रतिशत आबटन ही पर्याप्त हो। दूसरे, यह सोचा गया कि अध सरचना सुविधाओ (Infrastructural facilities) जैसे सचालन शक्ति परिवहन आदि और उद्योगों एव उनके विकास के परिणामस्वरूप बिजली औजारो उर्वरको आदि की व्यवस्था से कृषि का विकास होगा। तीसरे, कुछ ऐसे ससाधनो के लिए जिनकी किसानो को आवश्यकता पड़ती है के सम्बन्ध मे कृषि एव उद्योगो मे कोई वास्तविक प्रतियोगिता नहीं। उदाहरणार्थ कृषि मे स्थानीय माल और मानव शक्ति की आवश्यकता पडती है जबकि उद्योगो मे पूजी तकनीकी ज्ञान और प्रशिक्षित श्रम की जरूरत होती है। यह स्वाभाविक है कि ससाधनो के उच्च आबटन (Allocation) और उद्योगो की अपेक्षाकृत उच्च प्राथमिकता का अनिवार्य रूप मे यह अर्थ नहीं कि कृषि को नीची प्राथमिकता देनी चाहिए या यह प्राथमिकता कृषि की कीमत पर दी जाए।

भारी उद्योग बनाम हल्के उद्योग (Heavy Industries versus Light Industries)

विनियोग रणनीति का दूसरा पक्ष जिस पर काफी आलोचना हुई है भारी उद्योगो (अर्थात् भारी मशीनो एव आधारभूत धातुओं) पर बल देना है और हल्के उद्योगो की उपेक्षा करना है। योजना आयोग ने इस विकास रणनीति का दो कारणो के आधार पर समर्थन किया है। पहला, भारी उद्योग क्षेत्र मे विनियोग की सहायता से भारतीय अर्थव्यवस्था मे पूजी स्टाक की एक भारी मात्रा निर्माण करने मे सहायता मिलती है और यह तेजी से किया जाता है। दूसरे, भारी उद्योगो की सहायता से एक मजबूत स्वय स्फूर्त अर्थव्यवस्था की नींव रखी जा सकती है, ऐसा एक ओर तो अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रो के तीव्र विस्तार से होता है और दूसरी ओर देश की अनिवार्य मशीनरी एव उपकरणो के लिए आयात पर निर्भरता को कम करके। योजना आयोग ने हल्के उद्योगो द्वारा उपभोग वस्तुए उत्पन्न करने की दूसरी विकास रणनीति रद्द कर दी। इसमे सन्देह नहीं कि वैकल्पिक विकास रणनीति के कारण

7 Charan Singh *India s Economic Policy* p 90

8 तत्रैव, पृ 40

अर्थव्यवस्था को उपभोग वस्तुओ की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा उत्पन्न करने मे सहायता मिल सकती है और इसके फलस्वरूप अल्पकाल मे लोगो को ऊचा जीवन स्तर उपलब्ध कराया जा सकता है और इससे स्फीतिकारी दबावो को भी कम किया जा सकता है। परन्तु यह देश मे पूजी सचयन की उपेक्षा करके किया जा सकता है। परन्तु योजना आयोग ने अल्पकाल मे उपभोग वस्तुओ की कम उपलब्धि को स्वीकार कर लिया और पूजी वस्तुओ के उत्पादन को बढाने की रणनीति अपनायी जिसके फलस्वरूप यह आशा की गयी कि एक विशेष क्रान्तिक अवस्था के पश्चात उपभोग वस्तुओ की अधिक मात्रा प्राप्त करने म सहायता मिलेगी। रूसी अनुभव के आधार पर पूजी वस्तु प्रधान विकास ने जनता रणनीति जनता से यह आशा की कि वह एक सुन्दर और खुशहाल दीर्घकाल के लिए अल्पकाल का परित्याग करे। इसके अतिरिक्त इस रणनीति के फलस्वरूप अल्पकाल मे पूजी वस्तुओ की अधिक मात्रा उपलब्ध होगी और दीर्घकाल मे भी पूजी और उपभोग वस्तुओ की अधिक मात्रा प्राप्त होगी।

भारी और हल्के उद्योगो के सम्बन्धो मे भारत मे बडा तीखा विवाद रहा है। जबकि नेहरू भारी उद्योगो को ही औद्योगीकरण के पर्यायवाची समझता था और इसलिए नेहरू युग मे हल्के उद्योगो लघु उद्योगो लघु स्तर एव कुटीर उद्योगो को कम महत्त्व दिया गया आलोचको ने इस विकास रणनीति की कुछ कमजोरिया बतायी ह आर भारतीय परिस्थितियो मे इस विकास रणनीति की अनुपयुक्ता का उल्लेख किया है। पहली भारी उद्योगो के कारण विनियोग के ऐसे ढाचे की आवश्यकता अनुभव हुई जिसके परिणामस्वरूप मशीनरी और तकनीक की उपलब्धि के लिए विदेशो पर निर्भरता बढ गयी। इससे भुगतान शेष (Balance of Payments) भारी मात्रा मे प्रतिकूल हो गया और परिणामस्वरूप योजना परिव्यय को कुछ हद तक काटना पडा। दूसरे भारत को जनसख्या के बढते हुए दबाव का सामना करना हे जिसके परिणामस्वरूप देश मे भारी बेरोजगारी उत्पन्न होती है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि श्रम प्रधान उद्योगो मे विनियोग किया जाए। जबकि भारी तथा मूल उद्योगो के महत्त्व को कम करके आकना उपयुक्त नहीं किन्तु वस्तु स्थिति यह ह कि चूकि ये उद्योग पूजी प्रधान होते हे इसलिए ये पर्याप्त मात्रा मे रोजगार कायम नही कर पाते। परिणामत हम उपभोग वस्तु उद्योगो का विकसित करने के लिए मजबूर हो जाते ह विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रा म ताकि रोजगार के अधिक अवसर कायम किए जाए। तीसरी बात यह है कि आयोजन प्रक्रिया (Planning process) बहुत असतुलित रही यह उत्पादन प्रेरित (Production oriented) तो बनी परन्तु रोजगार प्रेरित (Employment oriented) न बन सकी। राष्टीय एव प्रति व्यक्ति आय मे कुछ वद्धि हुई आर भारत विश्व का दसवा औद्योगिक देश बन गया ह परन्तु इसके साथ साथ देश मे बेरोजगारी मे वद्धि हुई है अधिक जनसख्या निर्धनता स्तर के नीचे बनी रही आर आय की असमानताए बढा यह अन्याय के साथ विकास की स्थिति कायम रही।

भारी उद्योग रणनीति के समर्थको के अनुसार भारत को अधिकतर कठिनाइया कृषि मे विफलता के कारण उत्पन्न हुई। उनका कहना ह कि कृषि मे वृद्धि दर उतनी नही हुई जितनी कि प्रत्याशा थी और इस विफलता के कारण जनता को खाद्यान्नो की उपलब्धि कम हो गयी जिसके परिणामस्वरूप स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न हो गए। वे वर्तमान स्थिति के लिए कृषि मे विफलता को उत्तरदायी मानते ह न कि भारी उद्योग विधि के चुनाव को।

इसक अतिरिक्त ध्यान देने योग्य बात यह है कि भारी उद्योग विकास रणनीति के समर्थक लघु स्तर एव कुटीर उद्योगो के विरूद्ध नही ह। परन्तु उनका कहना है कि उपभोग वस्तु उद्योग एव श्रम प्रधान लघु स्तर एव कुटीर उद्योग तब तक विकसित नहीं किए जा सकते जब तक कि परिवहन एव सचार बिजली आदि के रूप मे सामाजिक उपरिव्यय (Social overheads) स्थापित नहीं किए जाते। अत सामाजिक एव आर्थिक उपरिव्यय म विनियोग रोजगार अवसरो के सफल विस्तार की शर्त है।

सतुलित विकास (Balanced growth) भारत का लक्ष्य

ऊपर दिए गए विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था मे विकास के लिए जो उद्देश्य स्वीकार किया गया एव अपनाया गया वह सतुलित विकास (Balanced growth) और व्यापक आयोजन (Comprehensive planning) का था न कि किसी विशेष क्षेत्र के विस्तार का। पहली योजना मे विकास रणनीति को स्पष्ट करते हुए यह उल्लेख किया गया कृषि जिसमे सिचाई शामिल है आर सचालन शक्ति को सर्वोच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए। परन्तु खाद्यानो के उत्पादन और उद्योग के लिए आवश्यक कच्चे माल के उत्पादन मे काफी वृद्धि किए बिना औद्योगिक विकास की तीव्र गति कायम रखनी सभव नहीं होगी। इनम से कोई एक दूसरे के बिना बहुत आगे नहीं बढ सकता। किन्तु यह आर्थिक एव अन्य कारणो के आधार पर भी आवश्यक ह सबसे पहले अर्थव्यवस्था क आधार को मजबूत बनाना होगा और खाद्यान्नो एव कच्चे माल के सम्बन्ध मे

स्वावलम्बिता को ही नहीं बल्कि प्रचुरता की स्थिति पदा करनी होगी। भारत के विविध ससाधनो के परिप्रेक्ष्य मे विकास का सतुलित ढाचा प्राप्त करने की अनुकूल परिस्थितियाँ विद्यमान हैं।[9]

दूसरी योजना मे पूजी वस्तु क्षेत्र को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए यह उल्लेख किया गया भारत मे सार्वजनिक नीति और राष्ट्रीय प्रयास का केन्द्रीय उद्देश्य द्रुत एव सतुलित आर्थिक विकास प्रोन्नत करना है।[10] इसमे यह भी कहा गया 'राष्ट्रीय आय तथा रोजगार के निरन्तर विकास के लिए यह आवश्यक है कि समस्त अर्थव्यवस्था का एक साथ विकास हो।[11] परन्तु आयोजको की यह कल्पना सही सिद्ध नहीं हुई। इसका यह अर्थ नही कि सतुलित विकास का उद्देश्य ही मूलत दोषपूर्ण है बल्कि इसका अर्थ यह है कि मोटे तौर पर क्षेत्रीय प्राथमिकताओ (Sectoral priorities) को निर्धारित करने के पश्चात् प्रत्येक क्षेत्र के भीतर गम्भीर रूप मे प्राथमिकताए तय नहीं की गयीं। भारत जैसी बढी अर्थव्यवस्था के लिए जिसने सार्वजनिक एव निजी क्षेत्र के सह-अस्तित्व के साथ आशिक आयोजन (Partial planning) और लोकतत्रीय राजनीतिक ढाचा स्वीकार किया गया हो, सतुलित विकास को ही अपनाना अनिवार्य है। जैसा कि प्रोफेसर ल्यूइस ने लिखा है 'विकास योजनाओ मे अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रो का एक साथ विकास होना चाहिए ताकि कृषि एव उद्योग के बीच अभिदृश्य उपभोग (Conspicuous consumption) एव निर्यात के लिए उत्पादन के बीच सन्तुलन कायम हो सके। सत्य तो यह है कि सभी क्षेत्रो का एक साथ विकास होना चाहिए, यह धारणा जितनी सरल है उतनी ही युक्तिपूर्ण है और इसे झुठलाया नहीं जा सकता।[12]

विकास का गाधीवादी बनाम नेहरूवादी मॉडल (Models of Development Gandhian vs Nehruvian)

जनता पार्टी के सत्ता में आने से पूर्व 1977 तक भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास का आधार नहरू का विनियोग रणनीति (*Investment strategy*) *थी और इसी कारण इसे* विकास का नेहरू माडल कहा जाता है। नेहरू माडल मे भारी उद्योग को अर्थव्यवस्था का आधार माना गया और नेहरू यह चाहते थे कि अर्थव्यवस्था को बुनियाद मजबूत की जाए ताकि विदेशी सहायता पर निर्भरता कम की जा सके। एक मजबूत बुनियाद प्रतिरक्षा की दृष्टि से भी महत्त्व रखती है *क्योंकि इसके बिना आर्थिक विकास का प्रश्न ही नहीं उठता।* नेहरू की विकास रणनीति के फलस्वरूप भारत विश्व के औद्योगीकृत राष्ट्रो में दसवा स्थान प्राप्त कर सका। हमारी पहली पाच योजनाओ के दौरान हुई प्रगति के बारे मे छठी योजना के प्रारूप ने लिखा 'यह वस्तुत बडे राष्ट्रीय गर्व की बात है कि इस काल के दौरान, एक अवरुद्ध एव पराश्रित अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण किया गया और इसे अधिक आत्मनिर्भर बनाया गया।[13] नेहरू *विकास माडल की अन्य* विशिष्ट उपलब्धिया निम्नलिखित हैं

(क) बीज खाद तकनालाजी के प्रयोग से कृषि उत्पादिता (Agricultural productivity) मे भारी वृद्धि जिसके फलस्वरूप देश खाद्यान्नो के बारे मे आत्मनिर्भर हो गया और खाद्यान्नो के भारी रक्षित भडार इकट्ठे हो गए,

(ख) पूजी वस्तु क्षेत्र मे *कारगार औद्योगीकरण और* इसके लिए सार्वजनिक क्षेत्र को प्रमुख *कार्यभाग* अदा करना पडा। इससे भारत की औद्योगिक क्षमता का विस्तार एव विशाखन हुआ। भारत अब उपभोग वस्तुओ मे और मूल वस्तुओ अर्थात् इस्पात, सीमेंट मे आत्मनिर्भर है जबकि नये उद्योगो अर्थात् उर्वरको की क्षमता का तेजी से विस्तार हो रहा है

(ग) सिचाई, सचालन शक्ति परिवहन एव सचार आदि के रूप मे आर्थिक अध सरचना का विकास जो कि द्रुत आर्थिक विकास के लिए *आधार मुहय्या कर सकता है और*

(घ) एक आधुनिक औद्योगिक ढाचे को चलाने के लिए विज्ञान एव तकनालाजी का विकास और *तकनीकी एव प्रबन्धकीय सवर्गों (Technical and managerial cadres) की स्थापना एव विकास।*

नेहरू विकास माडल की कमजोरिया

भारी उद्योग पर आधारित नेहरू विकास माडल मे कई कमजोरिया अनुभव की गयीं। लगभग तीन दशको के आयोजन के बावजूद, यह राष्ट्रीय न्यूनतम जीवन स्तर उपलब्ध कराने मे असफल रहा। 40 प्रतिशत से अधिक जनसख्या अब भी निर्धनता स्तर के नीचे रह रही है। बेरोजगार और अल्परोजगार व्यक्तियो की सख्या बहुत ज्यादा है और यह लगातार बढ रही है। आय तथा सम्पत्ति की असमानताए और गम्भीर होती जा रही हैं और कुछ लोगो के हाथो मे *आर्थिक* शक्ति का सकेन्द्रण बढता जा रहा है। भू सुधारो को सही ढग से लागू *नहीं किया गया और इस कारण ग्रामीण क्षेत्रो मे बहुत अधिक*

---

9 Planning Commission *The First Five Year Plan* p 1

10 Planning Commission *The Second Five Year Plan* p 1

11 *Ibid* p 2

12 W A Lewis *The Theory of Economic Growth* p 283

13 Planning Commission *Draft Five Year Plan (1978 83) p 1*

असतोष है। इन सबके अतिरिक्त देश मे कभी एक और कभी दूसरी वस्तु का अभाव बना रहता है और इसके परिणामस्वरूप देश मे एक भयकर स्फीतिकारी दबाव पैदा हो गया है। इन परिस्थितियों को देखते हुए *श्री चरण सिह जैसे कुछ राजनीतिज्ञो* ने तथाकथित 'आर्थिक विकास के गाधीवादी माडल के प्रयोग का समर्थन किया।

विकास का गांधीवादी मॉडल

महात्मा गाधी कोई प्रशिक्षित अर्थशास्त्री नहीं थे और इसलिए उन्होंने विकास का कोई माडल तैयार नहीं किया। परन्तु उन्होंने भारतीय कृषि उद्योग आदि के विकास के लिए कुछ नीतियों का समर्थन अवश्य किया। आचार्य श्रीमन नारायण ने 1944 मे गाधीवादी योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की और बाद मे 1948 मे उसकी पुष्टि की। ये प्रकाशन गाधीवादी आयोजन या विकास के गाधीवादी ढाचे का आधार हैं।

गाधीवादी योजना का मूल उद्देश्य यह है कि भारतीय जनता के भौतिक एव सास्कृतिक स्तर को उन्नत किया जाए ताकि 10 वर्षों के अन्दर न्यूनतम जीवनस्तर प्राप्त किया जा सके। गाधीवादी योजना सबसे पहले भारत के 5 लाख गावो की आर्थिक दशा उन्नत करना चाहती है और इसलिए कृषि के वैज्ञानिक विकास और कुटीर उद्योगो के विस्तार पर बल देती है।

कृषि

गाधीवादी योजना का सबसे महत्त्वपूर्ण लक्ष्य भारतीय आर्थिक आयोजन मे कृषि सुधार को बढावा देना है। कृषि विकास का मुख्य लक्ष्य खाद्यान्नो मे राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता और खाद्य पदार्थों में अधिकतम क्षेत्रीय स्वावलम्बिता प्राप्त करना है। इसकी प्राप्ति के लिए न केवल बडी मात्रा मे अच्छे कृषि-आदानो का प्रयोग आवश्यक है बल्कि भू सुधारो का प्रयोग भी करना होगा। इसके लिए काश्तकारी प्रणाली मे परिवर्तन भू स्वामित्व अधिकारो का उन्मूलन जोतो की चकबन्दी *सहकारी समितियो का गठन* आदि उपाय इस्तेमाल करने होगे। महाजन व्यवस्था को समाप्त करना होगा और किसानो को अधिक मात्रा मे ऋण सुविधाए प्रदान करनी होगी। गाधीवादी योजना मे डेरी उद्योग (Dairy farming) पर विशेष बल दिया गया और इसे कृषि का एक सहायक व्यवसाय माना गया।

कुटीर उद्योग

गाधीवादी योजना का मुख्य उद्देश्य ग्राम समाज मे अधिकतम आत्मनिर्भरता प्राप्त करना है। इसलिए इस योजना मे *कुटीर उद्योगो के पुन स्थापन विकास एव विस्तार* की समस्याओं का कृषि के साथ साथ सविस्तार वर्णन किया गया। कताई एव बुनाई को प्रथम स्थान दिया गया। यह उल्लेख किया गया कि खादी के उत्पादन को उतना ही महत्त्व दिया जाना चाहिए जितना कि चावल और गेहू के उत्पादन को *दिया जाता है। 'जैसे गावो के लोग अपनी रोटी* और चावल बनाते हैं उसी प्रकार उन्हें अपने निजी प्रयोग के लिए खादी तैयार करनी चाहिए। यदि वे अपनी आवश्यक्ता से अधिक पैदा करते है तो इस अतिरेक को बेच सकते है। गाधीवादी योजना मे प्रत्येक गाव को कपडे के उत्पादन मे स्वावलम्बी बनाने की योजना दी गई है। इसके लिए प्रत्येक ग्रामवासी से यह आशा की जाती है कि वह ग्राम उद्योगो के विकास एव *गठन मे सक्रिय भाग अदा करे*। इसके साथ साथ गाधीवादी योजना राज्य से यह अपेक्षा करती है कि वह ग्रामीण कुटीर उद्योगो के पुनरुत्थान एवं विकास को औद्योगिक आयोजन का मुख्य केन्द्र बनाए। इसे दस्तकारो को हस्तशिल्पो के सम्बन्ध मे तकनीकी प्रशिक्षण की सुविधाए उपलब्ध करानी होगी कच्चे माल के क्रय और तैयार माल के विक्रय के लिए सहकारी समितिया कायम करनी होगी कुटीर उद्योगो को बडे पैमाने की इकाइयो की अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा के विरुद्ध सुरक्षा देनी होगी और कुछ ऐसे कुटीर उद्योगो को सहाय्य *(Subsidies)* देने होगे जो इसके *बिना विकसित ही नहीं* हो सकते और साथ ही दस्तकारो एव सहकारी समितियो को सस्ती दर पर वित्त उपलब्ध कराना होगा।

मूल उद्योग (Basic Industries)

गाधीजी के बारे मे एक मिथ्या धारणा बनी हुई है कि वे बडे पैमाने के उद्योगो के विरुद्ध थे। इसके विरुद्ध गाधीवादी योजना मे कुछ चुने हुए मूल एव कुजी उद्योगो की आवश्यकता एव महत्त्व को स्वीकार किया गया है। इनमे उल्लेखनीय हैं—प्रतिरक्षा उद्योग जल विद्युत एव तापीय सचालन शक्ति *प्रजनन खाने तथा आधुनिक मशीनरी एव मशीनी औजार* भारी इंजीनियरिग और भारी रसायन। गाधीवादी योजना यह चाहती है कि मूल उद्योगो का विकास कुटीर उद्योगो के विकास मे हस्तक्षेप न करे या इनमे बाधा न बने। गाधीवादी योजना का सबसे अधिक वैज्ञानिक पहलू यह है कि *मूल तथा कुजी उद्योगो का स्वामित्व एव प्रबन्ध राज्य के हाथ मे होना* चाहिए या दूसरे शब्दो मे ये उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र मे *स्थपित होना चाहिए।*

गाधीजी की मशीनरी की धारणा के बारे मे काफी गलतफहमी है। साधारणतया लोग यह समझते हैं कि गाधीजी का कुटीर उद्योगो एव हस्तशिल्पो पर बल देना उनके आधुनिक मशीनरी के प्रति विरोध का सकेत है। यह गलत है। गाधीजी *सभी प्रकार की मशीनरी के विरुद्ध नहीं थे क्योंकि चरखा भी* एक प्रकार की मशीन है। किन्तु गाधीजी मशीनरी की सनक

और इसके अन्धाधुन्ध विस्तार के विरुद्ध थे। उनका विश्वास था कि कारखाना पद्धति, मशीनरी का विस्तृत प्रयोग करके, कुछ पूजीपतियो द्वारा श्रम के शोषण का साधन बन गयी है। वे मशीनरी और आधुनिक सुविधाओ का स्वागत करते थे परन्तु शर्त यह है कि इनके प्रयोग से ग्रामीणों का भार हल्का होना चाहिए और मानवीय श्रम का विस्थापन नहीं होना चाहिए। मशीनरी अच्छी है यदि यह सबके हित को प्रोन्नत करती है, यह एक अभिशाप है यदि यह कुछ लोगों के हित को बढाती है।

यदि हम गाधीवादी योजना का ध्यानपूर्वक विश्लेषण करे, तो हमे पता चलता है कि इसका उद्देश्य कृषि एव उद्योगो का साथ-साथ विकास करना है और इनमें समन्वय स्थापित करना है। हस्तशिल्पो और कुटीर उद्योगो पर बल देने का उद्देश्य उत्पादन के साथ-साथ रोजगार का भी विस्तार करना है। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् भारतीय समाज पर नेहरूजी छा गये थे और गाधीजी तथा उनके आर्थिक विचार भुला दिए गए। इनकी अपेक्षा रूसी अनुभव के आधार पर भारतीय आयोजन का मॉडल लागू कर दिया गया। 25 वर्षों के बाद जब देश 1973 और 1975 के बीच आर्थिक सकट मे ग्रस्त हो गया तो लोगो ने विकास के नेहरू-मॉडल की अपेक्षा गाधीवादी योजना को एक सम्भव विकल्प के रूप में सोचना शुरू किया। जनता पार्टी शासन के छोटे से काल के दौरान इनमे से कुछ विचार छठी योजना के प्रारूप मे सम्मिलित किए गए। भारतीय सन्दर्भ मे विकास की गाधीवादी योजना एक हद तक अवश्य ही लाभदायक हो सकती है और इसलिए इसकी सिफारिश की जा सकती है। ठोस रूप मे विकास के गाधीवादी मॉडल के लिए आयोजन की वर्तमान प्रणाली मे निम्नलिखित परिवर्तन करने होंगे–

(क) उत्पादन-प्रेरित आयोजन की अपेक्षा रोजगार-प्रेरित आयोजन की स्थापना– यहा मूल बात यह है कि बेरोजगारी हमारी सबसे बडी शत्रु है और इसके समाधान मे ही निर्धनता एव असमानताओ की समस्याओं का समाधान निहित है। इसलिए यह जरूरी है कि उत्पादन प्रेरित आयोजन का प्रतिस्थापन रोजगार प्रेरित आयोजन (Employment oriented planning) द्वारा किया जाए। इसके लिए ऐसे क्षेत्र निर्धारित करने आवश्यक है जो अधिक रोजगार क्षमता रखते हो और जिनमें अधिक एव कुशल उत्पादन भी सम्भव हो। "मोटे तोर पर पूजी की अपेक्षा श्रम का अधिक प्रयोग करना चाहिए और किसी भी हालत मे सरकार को भविष्य मे किसी पूजी प्रधान परियोजना की अनुमति नहीं देनी चाहिए जहां कहीं भी श्रम-प्रधान विकल्प उपलब्ध हो।"[14]

(ख) कृषि एवं रोजगार क्षमता–कृषि के जिन क्षेत्रो मे अधिक रोजगार कायम करने की अधिक क्षमता है वे हैं (क) खेती जिसमे पशु पालन, कम्पोस्ट तैयार करना सफाई और गोबर गैस (ख) ग्राम निर्माण कार्य अर्थात् सिचाई परियोजनाएं, भू-रक्षण (Soil conservation) भू-उद्धरण (Soil reclamation) वनरोपण आदि और (ग) ग्राम तथा कुटीर उद्योग। गहन खेती के आधीन भूमि पर अपेक्षाकृत कहीं अधिक श्रमिकों को रोजगार दिलाया जा सकता है। यह अनुमान लगाया गया है कि भारत मे 1971 मे प्रति 100 एकड पर 39 श्रमिक लगे हुए थे और इस दृष्टि से भारत एक निम्न निष्पादन (Low performance) वाला देश माना जाता है परन्तु इसकी तुलना मे 1965 मे जापान, दक्षिण कोरिया, ताइवान और मिश्र मे 1965 के दौरान प्रति 100 एकड पर क्रमश 87 79 और 71 श्रमिक कार्य करते थे। ये देश उच्च निष्पादन वाले राष्ट्र हैं जिनमें छोटी तथा अधिक श्रम-प्रधान फार्मों के आधार पर खेती की जाती है। इन देशों के अनुभव से पता चलता है कि कृषि मे कुल उत्पादन की वृद्धि के साथ-साथ 500 से 600 लाख अतिरिक्त व्यक्तियो को रोजगार दिलाया जा सकता है। नये सिचाई प्राप्त क्षेत्रो मे रोजगार क्षमता (Employment potential) को 60 प्रतिशत बढाया जा सकता है यदि यन्त्रीकरण (Mechanisation) सीमित रखा जाए अर्थात् केवल ऐसी मशीनो का प्रयोग किया जाए जो मानवीय प्रयास मे सहायक हो या इसको दबाने की अपेक्षा इसके बोझ को हल्का करे. जापानी किस्म की फार्म-मशीनरी।"

(ग) बड़े बनाम छोटे उद्योग–विकास का गाधीवादी मॉडल कुटीर तथा लघु स्तर के उद्योगो के पक्ष मे है और यह ऐसे बडे पैमाने के उद्योगो के विरूद्ध है जो उपभोग वस्तुए उत्पन्न करते हैं। चरणसिह ने लिखा, "भविष्य मे किसी मध्यम या बडे पैमाने के उद्यम की स्थापना की अनुमति नहीं दी जाएगी यदि वह ऐसी वस्तुए या सेवाए उत्पन्न करता है जो कुटीर या लघु स्तर के उद्यमो द्वारा उत्पन्न की जा सकती हैं और किसी लघु स्तर उद्योग की स्थापना की इजाजत नहीं दी जाएगी जो ऐसी वस्तुए एव सेवाए उत्पन्न करेगा जो कुटीर उद्योगो द्वारा उत्पन्न की जा सकती हैं।" चरणसिह तो उपभोग-वस्तुए उत्पन्न करने वाले बडे पैमाने के उद्योगो के इतने अधिक विरूद्ध थे कि उनका कहना था कि ऐसी उत्पादन इकाइया या तो अपने सारे उत्पादन का निर्यात करे या वे बन्द कर देनी चाहिए।

(घ) न्यायपूर्ण वितरण (Equitable distribution) भले ही हम समाजवाद की रट लगाए हुए हैं परन्तु कुछ हाथो मे आर्थिक शक्ति का बढता हुआ सकेन्द्रण और आय की असमानता भारतीय अर्थव्यवस्था की दो प्रमुख बुराइया

14 Charan Singh *India's Economic Policy* p 102

हैं। गाधीजी वितरण की इस समस्या के सम्बन्ध मे सम्भवत सबसे उत्तम एव स्वाभाविक समाधान प्रस्तुत करते हैं। सम्पत्ति का सचयन एव आर्थिक शक्ति का सकेन्द्रण प्रत्यक्ष रूप मे उत्पादन के साधनो के केन्द्रीकरण एव बडे पैमाने के उत्पादन के केन्द्रीकरण का परिणाम है और जब कभी भी बडे पैमाने का उत्पादन अनिवार्य हो जाए (जैसा कि मूल एव कुजी उद्योगो में) तो इसे सरकारी स्वामित्व एव प्रबन्ध के आधीन करना चाहिए। गाधीवादी मॉडल मे वितरण की समस्या को उत्पाद के स्तर पर हल करने की चेष्टा की गई है न कि उपभोग के स्तर पर।

गाधीवादी मॉडल मे राष्ट्रीय न्यूनतम जीवन-स्तर को कम से कम समय मे प्राप्त करने की आशा व्यक्त की गई है। इसमे स्थिरता के साथ विकास और आय एव सम्पत्ति के सकेन्द्रण को समाप्त करने का लक्ष्य भी रखा गया है। दूसरे शब्दो मे, इसमे यह प्रयास किया गया है कि नेहरू महलनोबिस माडल की कमजोरियाँ दूर की जा सके।

4. नेहरूवादी और गांधीवादी मॉडलों का समन्वय—एकमात्र समाधान

जहा पर नेहरू मॉडल मे भारी उद्योगो को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया, वहाँ गाधीवादी मॉडल मे कृषि को प्राथमिकता देने के साथ हस्तकलाओ और कुटीर उद्योगो को अधिक महत्त्व दिया गया। भारी उद्योगों पर आधारित नेहरू माडल ही 1950-60 और 1960 70 की अवधि मे भारत के लिए उपयुक्त था क्योंकि भारी उद्योग का विकास देश को सैनिक दृष्टि से मजबूत बनाने के लिए आवश्यक था ताकि कोई भी विदेशी ताकत भारत पर आक्रमण न कर सके। इसके अतिरिक्त भारी उद्योगो के विकास द्वारा औद्योगिक आधार कायम किया गया ताकि औद्योगिक विस्तार हो सके और देश को विदेशी निर्भरता से मुक्त किया जा सके। अब जबकि प्रतिरक्षा के बारे मे काफी प्रगति कर ली गई है और स्वय-स्फूर्त विकास के लिए एक मजबूत बुनियाद कायम की जा चुकी है तो यह अब सभव है कि आयोजन का बल भारी उद्योगो से हटाकर लघु एव कुटीर उद्योगो पर किया जाए जो कि हल्के पूजी उपभोग वस्तु उद्योगो की श्रेणी मे आते है। जाहिर है कि विकास के गाधीवादी माडल को लागू करना अब उचित होगा क्योंकि नेहरू द्वारा निर्धारित विनियोग रणनीति से आर्थिक विकास की मजबूत बुनियाद कायम कर दी गई है।

सच तो यह है कि लघु स्तर एव कुटीर उद्योग उत्पादन एव रोजगार को दृष्टि से भारत में बहुत उपयोगी कार्यभाग अदा कर सकते हैं। परन्तु भविष्य मे भारी उद्योगा के विकास की उपेक्षा करना बुद्धिमत्तापूर्ण नहा होगा। चाहे भारत ने 1951 के पश्चात् उत्साहवर्द्धक प्रगति का है और यह भा ठीक है कि अब औद्योगीकृत देशो मे इसका दसवा स्थान है परन्तु फिर भी इस्पात और बिजली के उत्पादन मे भारत ने प्रति व्यक्ति उत्पादन की दृष्टि से बहुत ऊचा स्तर प्राप्त नहीं किया हे। ये दोनो वस्तुए लघु एव कुटीर उद्योगो के विस्तार के लिए आवश्यक है। 1974 मे भारत ने प्रति व्यक्ति 11 किलोग्राम इस्पात उत्पन्न किया जबकि यू एस एस आर ने 541 किलोग्राम और यू एस ए ने 623 किलोग्राम। इस्पात और बिजली पदा करने मे भारत अभी काफी पीछे है और इसलिए भारी उद्योगो मे विनियोग मे तेजी से कटौती करनी उचित नहीं होगी। इसके अतिरिक्त आत्मनिर्भरता तथा प्रतिरक्षा प्रबन्ध भी उतने ही महत्त्वपूर्ण उद्देश्य ह यदि अधिक महत्वपूर्ण नहीं जितने कि गरीबी को हटाना बढती हुई असमानताओ को दूर करना। गाधीवादी मॉडल के नाम पर भारी उद्योग मे विनियोग की उपेक्षा करना या इसको गति को धीमा करना देश के लिए घातक होगा। परन्तु जैसा कि पहले भी स्पष्ट किया गया है गाधीजी सभी बडे पैमाने के उद्योगो के विरूद्ध नहीं थे वास्तव में गाधीजी योजना (1944) मे कुछ चुने हुए आधारभूत उद्योगो अर्थात् सचालन शक्ति लोह एव इस्पात मशीनरी एव मशीनी औजार, भारी इजीनियरिंग एव भारी रसायन के महत्त्व को स्वीकार किया।

इसमे सन्देह नहीं कि ऐसे मध्यम तथा बडे पैमाने के उद्यमो से जो उपभोग वस्तुए उत्पन्न करते है कुटीर तथा लघु-स्तर उद्योगो की ओर विनियोग को मोडने के लिए तर्क दिए जा सकते ह। मध्यम और बडे पैमाने के उद्यमो को और लाइसस नहीं देने चाहिए और उत्पादन एव रोजगार दोनो की दृष्टि से यह देश के लिए हितकर न होगा। नेहरू महलनोबिस मॉडल मे लघु एव कुटीर इकाइयो को भी महत्व दिया गया था। अधिक लागत के प्रश्न पर यह तर्क दिया गया कि देश मे सस्ती बिजली की उपलब्धि होने के पश्चात् कोई कारण नजर नहीं आता कि छोटे पैमाने की इकाइयो की लागत बडे पैमाने की इकाइयो से अधिक क्यों हो। परन्तु नेहरू-महलनोबिस मॉडल के कार्यान्वियन के दौरान लघु स्तर एव कुटीर उद्योगो के प्रति सौतेली मा का व्यवहार किया गया और बडे तथा मध्यम स्तर के उद्योगो को छोटी इकाइयो का गला दबाने की इजाजत दी गई। 1977 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव मे सरकार इस भूल का सुधार करना चाहती थी। इसी कारण औद्योगिक नीति वक्तव्य मे यह साफ कहा गया "अभी तक औद्योगिक नीति का बल मुख्यत बडे उद्योगो पर रहा है कुटीर उद्योग तो पूर्णतया उपेक्षित है और छोटे उद्योगो का कार्यभार मामूली रहा है। नई औद्योगिक नीति का मुख्य बल लघु तथा कुटीर उद्योगो को प्रभावा रूप मे प्रोन्नत करना है ताकि वे ग्रामीण क्षेत्रो और छोटे कस्बो मे बहुत अधिक फैल जाए।"

कुटीर तथा लघु उद्योगो को सक्रिय समर्थन एव प्रोत्साहन देने का यह अर्थ नहीं कि उपभोग वस्तु क्षेत्र मे वर्तमान बडे एव मध्यम स्तर की इकाइया या तो बन्द कर दी जाए या वे केवल इस शर्त पर चलने दी जाए कि वे अपने सारे उत्पादन का निर्यात करेगी। ये सुझाव अविवेकपूर्ण एव अवास्तविक हैं। ऐसी इकाइया जो कि बहुत साल पहले लगाई गईं और जो वर्षो से बाजार के लिए (अन्तर्देशीय एव अन्तर्राष्ट्रीय) उत्पादन कर रही हैं बन्द नहीं कर देनी चाहिए। परन्तु इन उत्पादन इकाइयो को अन्य नए क्षेत्रो मे उत्पादन करने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए और इन्हे जितना वे अधिक निर्यात बढा सके बढने की सलाह देनी चाहिए। इसके साथ यह भी जरूरी है कि लघु क्षेत्र को अपने उत्पादन की किस्म को बढिया बनाने के लिए सहायता देनी चाहिए, इसका उत्पादन लागत कम करनी चाहिए ताकि ये प्रतिस्पर्द्धी दरो (Competitive rates) पर वस्तुए उपलब्ध करा सके। यह उल्लेख करना रुचिकर होगा कि गाधीवादी योजना (1944) मे 'निजी स्वामित्व के आधीन उद्योगो पर निर्मित वस्तुओ की कीमतो लाभ एव श्रम की दशाओं पर सरकारी नियन्त्रण की सामान्य नीति निर्धारण पर बल दिया गया है। इसमे सरकार द्वारा विदेशी परिसम्पत् (Foreign assets) के क्रय और कुटीर तथा बडे पैमाने के उद्योगो मे स्पर्धा का नियमन करने का भी उल्लेख किया गया है।

चरणसिंह ने विकास के चीनी माडल की प्रशसा की है क्योंकि साम्यवादी चीन ने गाधीवादी मार्ग अपनाया और भारत की तुलना मे अपनी जनता को अच्छा भोजन एव वस्त्र उपलब्ध कराए हैं। चरणसिंह लिखते हैं अकाटय स्रोतो से प्राप्त विभिन्न रिपोर्टो से यह सकेत मिलता है कि 1962 के पश्चात् माओ त्से तुग ने कृषि को न केवल सर्वोच्च प्राथमिकता दी बल्कि अपने देश के निर्माण मे बडे पैमाने के यत्रीकृत प्रोजेक्टो एव उद्योगो की तुलना मे मानवीय श्रम एव विकेन्द्रीकृत श्रमप्रधान उद्यमो पर अधिक विश्वास रखा। यह अत्यन्त सरलीकृत विश्लेषण है। यह इस बात की उपेक्षा करता है कि 1962 से पहले चीन ने कृषि की अपेक्षा भारी उद्योगो को प्रथम स्थान दिया। उदाहरणार्थ पहली पचवर्षीय योजना (1953 57) मे चीन ने अपने कुल विनियोग का 50 प्रतिशत से भी कुछ अधिक विनियोग भारी उद्योगो पर किया। केवल बाद मे चीन ने कृषि तथा उद्योगो के साथ साथ विकास को आरम्भ किया। चीनियो ने इसे 'दो टागो पर चलने का सिद्धान्त' कहा। इसके अतिरिक्त, ध्यान देने योग्य बात यह है कि चीन ने भारी उद्योगो के महत्व की उपेक्षा नहीं की भले ही उसने कृषि को प्रथम स्थान दिया। यह भी सत्य है कि भारी उद्योग के कायभाग को प्रतिरक्षा एव अध सरचना (Infrastructure) के आधार के रूप मे कभी भी कम महत्त्वपूर्ण नही समझा गया। इस कारण चीन प्रथम श्रेणी की एक महान सैनिक शक्ति बन गया है जो कि दुनिया के बड़े स बडे साम्राज्य को चुनौती दे सकता है उसने रूसी सहायता और रूसी तकनीकी विशेषज्ञो पर अपनी निर्भरता समाप्त कर दी है और इससे उसकी विकास प्रक्रिया पर कोई दुष्प्रभाव भी नहीं पडा। चीन की सफलता का राज इस बात मे है कि उसने रूसी माडल और गाधीवादी माडल मे समन्वय किया। भारतीय आयोजकों का दोष यह नहीं था कि उन्होंने नेहरू महलनोबिस विकास रणनीति का निर्माण किया बल्कि उनकी कमजोरी इसके कार्यान्वयन मे विफलता थी। इसमे बहुत हद तक भारी उद्योग के रूप मे आधार कायम करने को तो कार्यान्वित किया गया परन्तु कृषि तथा कुटीर एव लघु स्तर क्षेत्र के सम्बन्ध मे बनाई गई योजनाओ को सफलतापूर्वक लागू करने मे निराशा हुई।

विकास की वर्तमान अवस्था मे रोजगार उद्देश्य पर बल देने की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि विकास की प्रक्रिया को त्वरित करने की। रोजगार प्रधान आयोजन के समर्थन में बहुत प्रभावी तर्क है। किन्तु नेहरू महलनोबिस मॉडल की भर्त्सना इस आधार पर करनी अनुचित है कि इसने कृषि एव लघु क्षेत्र की उपेक्षा की और इस कारण देश को सभी आर्थिक समस्याओ का सामना करना पडा अर्थात् कीमतो की स्फीतिकारी वद्धि, वस्तुओ के तीव्र अभाव औद्योगिक रुग्णता (Industrial sickness) बढती हुई असमानताए और फैलती हुई गरीबी आदि। भारी उद्योग की उपेक्षा करके समग्र बल कृषि एव लघु क्षेत्र पर देना भी अनुचित होगा। यह बात भूलनी चाहिए कि सचालन शक्ति विकास प्रोग्रामो में अपर्याप्त विनियोग और सचालन शक्ति के अपर्याप्त जनन एव वितरण के कारण कृषि क्षेत्र मे विफलता हुई। वास्तव मे मानवीय एव भौतिक ससाधनो (Human and material resources) के प्रयोग की दृष्टि से भारी उद्योग एव कृषि क्षेत्र मे कोई झगडा नहीं। दोनो का एक साथ विकास किया जा सकता है। यदि सतुलित विकास की धारणा 1950 60 के दशकों मे ठीक थी तो वह बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक मे और भी उचित समझी जानी चाहिए।

5 विकास का राव मनमोहन मॉडल

विकास का राव मनमोहन माडल जो बडे जोर शोर से 1991 मे चालू किया गया का मुख्य उद्देश्य विकास के लिए एक नई रणनीति अपनाना था जिसमे निजीकरण (Privatisation) और विश्वीकरण (Globalisation) पर बल दिया जाए। देश के स्तर पर दो मुख्य परिवतन किए गए।

15 Charan S ngh, *I d a s Econom c Pol cy* p 59

प्रथम सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योग निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए गए। चाहे सरकार हानि उठाने वाले सार्वजनिक उद्यमो को निजी क्षेत्र को सौपना चाहती थी किन्तु वह इस लक्ष्य मे विफल रही क्योंकि इन्हे लेने वाले उद्यमो मे अनिवेश (Disinvestment) *आरम्भ कर दिया और इससे प्राप्त राशि* को राजकोषीय घाटे (Fiscal deficits) को कम करने के लिए इस्तेमाल किया। अत विभिन्न सामाजिक सीमाबन्धनो के कारण सरकार अपने निजीकरण के प्रोग्राम को लागू न कर पायी चाहे यह अर्थव्यवस्था को निजी क्षेत्र देशीय एव विदेशी के प्रति उदार बनाने मे सफल हुई।

दूसरे बिना लाइसेस प्राप्त किए निजी क्षेत्र को औद्योगिक इकाइया लगाने की इजाजत देकर सरकार ने वे बहुत सी बेडिया जो निजी क्षेत्र के निवेश मे रुकावट थीं या इसके निवेश मे विलम्ब का कारण थीं काट दीं।

तीसरे, एम आर टी पी कम्पनियो के सदर्भ मे सरकार ने परिसम्पत्तियो (Assets) की सीमा को समाप्त करके *व्यापारिक घरानो (Business houses) को स्वतत्र कर दिया* कि वे एकाधिकार आयोग की अनुमति लिए बिना निवेश कर सकते हैं। जाहिर है कि विकास को प्रोन्नत करने का विचार सरकार के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण था और साम्यता (Equity) के प्रश्न की अभी अनदेखी की जा सकती थी।

चौथे प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग (Foreign investment) को सुविधाजनक बनाने के लिए सरकार ने उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रो मे प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग को 51 प्रतिशत तक कर लेने की स्वीकृति का निर्णय किया। सरकार 51 प्रतिशत से अधिक विदेशी विनियोग के प्रस्तावो पर भी विचार कर सकती है परन्तु ऐसे प्रस्तावो के लिए सरकार से पहले स्वीकृति प्राप्त करनी होगी। विदेशी तकनीशियनो देश मे *विकसित तकनालाजी के विदेशी परीक्षण के लिए कोई स्वीकृति लेने की जरूरत नहीं होगी भले इनके लिए मुआवजा* दिया जाए।

पाचवे जीर्ण रूप मे बीमार सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो को औद्योगिक और वित्तीय पुर्ननिर्माण बोर्ड (Board of *Industrial and Financial Reconstruction) के हवाले* किया जाएगा ताकि वह इनके पुनरस्थान/पुनर्वास सम्बन्धी योजनाए तैयार करे। श्रमिको के हितो की रक्षा के लिए एक सामाजिक सुरक्षा प्रणाली कायम की जाएगी ताकि पुनर्वास के उपायो द्वारा प्रभावित श्रमिकों को इनके दुष्प्रभाव से बचाया *जा सके।*

छठे सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो के निष्पादन को उन्नत करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबन्धको और सरकारी कम्पनियो को बोर्डों को अधिक स्वायत्तता दी जाएगी ओर इन्हे अधिक व्यावसायिक (Professional) बनाया जाएगा।

अन्तिम अन्य देशो से निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिए अर्थव्यवस्था को खोल दिया जाएगा। विदेशी पूजी तकनालाजी और अन्य सम्बन्धित आयात को सुविधाजनक बनाने के लिए आयात शुल्क तथा अन्य अवरोधक (Barri*ers) घटाए जाएगे।*

पूर्व प्रधानमत्री पी वी नरसिम्हा राव और पूर्व वित्त मत्री डा मनमोहन सिह द्वारा चालू किए गए विकास के राव मनमोहन माडल मे निजी क्षेत्र को एक बडा कार्य भाग अदा करने पर बल दिया गया है। इसमे हमारी विकास प्रक्रिया मे विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग की कहीं बडी मात्रा द्वारा पूर्ति की कल्पना की गयी है। इसमे निर्यात प्रेरित विकास (Export led growth) की रणनीति अपनायी जाएगी और पहले चल रही आयात प्रतिस्थापन रणनीति (Import substitution) का परित्याग किया जाएगा। इसमे सरकार के कार्यभाग को महत्त्वपूर्ण रूप मे कम किया जाएगा और इस प्रकार बुनियादी रूप मे आयोजन (Planning) का परित्याग करके अधिक *उदार और बाजार प्रेरित विकास का ढाचा कायम किया* जाएगा।

आलोचको ने राव मनमोहन विकास माडल मे कुछ बुनियादी कमजोरियो का सकेत दिया है।

पहला इसका केन्द्र बहुत सकुचित है क्योकि यह मुख्यत निगम क्षेत्र (Corporate sector) तक सीमित है जो कि कुल देशीय उत्पाद मे केवल 10 प्रतिशत का योगदान देता है। दूसरे, इस माडल मे कृषि तथा अन्य कृषि आधारित उद्योगो की उपेक्षा की गयी है जो कि जनता के लिए रोजगार जनन का मुख्य स्रोत है। तीसरे उपभोग वस्तु क्षेत्र मे बहुराष्ट्रीय निगमो (Multinationals) के प्रवेश की स्वीकृति देकर इस माडल ने लघु क्षेत्र मे उपभोग वस्तुओ का उत्पादन *करने वाले छोटे उद्यमियो के हितो पर करारी चोट की है। यदि बहुराष्ट्रीय निगमो का बेरोक टोक प्रवेश जारी रहता है* तो इससे लघु क्षेत्र मे श्रम विस्थापन (Labour displacement) का खतरा उत्पन्न हो जाएगा। चौथे इसमे सन्देह नहीं कि निर्यात प्रोन्नत हुए है परन्तु आयात को सुविधाजनक *बनाने की नीति के अधीन सरकार ने आयात खिडकी को* बहुत ही ज्यादा खोल दिया है और इसके नतीजे के तौर पर बढते हुए निर्यात के लाभ अपेक्षाकृत ओर तेज रफ्तार से बढते आयात से निष्प्रभावी हो गए और इस प्रकार व्यापार घाटा बढ गया है। अब इस बात पर लगभग सहमति प्राप्त हो गयी है *कि बहुराष्ट्रीय निगमो के अन्धाधुन्ध प्रवेश को रोकना* चाहिए, विशेषकर उपभोग वस्तु क्षेत्र मे ओर ऐसे क्षेत्रो मे जिनमे देशीय सामर्थ्य विकसित हो चुकी है अन्तिम इस माडल मे विकास के पूजी प्रधान ढाचे की कल्पना की गयी है और इसके रोजगार क्षमता बढाने के बारे मे गभीर सन्देह

है यह कहा जा रहा है कि इसके कारण अल्पकाल मे बेरोजगारी हो जाएगी परन्तु दीर्घकाल मे यह इस समस्या का समाधान कर लेगा। परन्तु दीर्घकाल की अवधि कितनी लम्बी होगी इसका कोई सकेत नहीं दिया गया।

निष्कर्ष रूप मे कहना अनुचित होगा कि राव मनमोहन मॉडल ने पूर्व एशियाई चमत्कार (East Asian miracle) का अनुसरण किया है जिसका प्रदर्शन जापान दक्षिण कोरिया ताईवान और कुछ हद तक इन्डोनेशिया और चीन ने किया। जापान ने स्वतन्त्र बाजार अर्थव्यवस्था पर आधारित पश्चिमी मॉडल का अनुसरण नहीं किया, और इस प्रकार खुलेद्वार और उदारीकरण की नीति को नहीं अपनाया। जापान ने वस्तुत बाजार प्रक्रिया का सीमित रूप मे प्रयोग किया और इसके साथ सरकार ने समाज के कल्याण के लिए राज्य के सक्रिय कार्यभाग द्वारा अर्थव्यवस्था का मार्गदर्शन किया। जापान द्वारा अपनाए गए स्वतत्र मार्ग का अनुसरण दक्षिण कोरिया ताईवान ने भी किया। मलेशिया और इन्डोनेशिया ने भी एक उचित प्रकार के अधिकारी तन्त्र (Bureaucracy) की सहायता से इस मार्ग पर चलकर सफलता प्राप्त की।

चीनी विकास मॉडल अपनी ही परम्पराओ मे जडीकृत है और इसके द्वारा विश्वीकरण (Globalisation) का निर्णय विदेशी विनियोग का प्रयोग करके अपनी बहुत सी आन्तरिक समस्याओ का समाधान करने से प्रेरित है। चीन अभी भी 'आत्मनिर्भरता (Self reliance) के पथ पर चल रहा है। चाहे चान अब एक सवृत अर्थव्यवस्था (Closed economy) नहीं। चीन ने आत्मनिर्भरता' को विकास का प्रेरक (Motor of growth) बनाया है और एक साधारण दो तरफे सन्तुलित मॉडल का प्रयोग किया हे जिसमे विश्व के अन्य देशो के साथ वस्तुओ और सेवाओं का प्रयोग किया है जिसमे विश्व के अन्य देशों के साथ वस्तुओ और सेवाओ और पूजी के प्रवाह का प्रयोग किया गया। अत चीनी मॉडल को नव प्रतिष्ठित उदारीकरण मॉडल (Neoclassical liberalisation model) मे वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। यह अपनी ही प्रकार का मॉडल है जिसमें खुली अर्थव्यवस्था के साथ आत्मनिर्भरता को जोडा गया है और अत्यधिक विदेशी निर्भरता से परहेज करता है। आई एम एफ-विश्व बैंक के नव प्रतिष्ठित उदारीकरण मॉडल के प्रयोग से सफलता न प्राप्त कर सकने पर अधिकाधिक देश विदेश की नयी पद्धति के बारे मे पुनर्विचार कर रहे हैं। अब विकास के जापानी माडल की ओर झुकाव बढ रहा है और प्रत्येक देश अपनी सास्कृतिक विरासत के साथ कुछ सशोधन कर इसे अपना रहा है। राव मनमोहन मॉडल जिसने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष एव विश्व बैंक के स्थिरीकरण (Stabilisation) और सरचनात्मक समायोजन (Structrural Adjustment) के उपचार का अनुसरण किया है लोगो के मन मे सन्देह पैदा करता है कि क्या हम विकास का सही मार्ग अपना रहे हैं विशेषकर जब हम इसका विश्लेषण लेटिन अमरीका अफ्रीका और पूर्वएशियाई देशो के अनुभव को ध्यान मे रखकर करते हैं।

डडले सीरज (Dudley Seers) ने सही कहा है किसी देश के विकास की अवस्था को नापने की तीन कसौटिया हैं वे हैं कि परिणामस्वरूप निर्धनता, बेरोजगारी और असमानता पर क्या प्रभाव पडा है ? पाच वर्षों के राव मनमोहन मॉडल के अनुभव से इन कसौटियो मे महत्त्वपूर्ण उन्नति के निर्णायक प्रमाण प्राप्त नहीं होते। बल्कि इनमे से कुछ में तो गिरावट आयी है।

□□□

10

औद्योगिक नीति
(INDUSTRIAL POLICY)

1 औद्योगिक नीति, 1948

15 अगस्त 1947 को देश के स्वतंत्र होने पर औद्योगिक क्षेत्र मे विशाल परिवर्तन आरभ हुआ। अब भारत अपनी अर्थव्यवस्था को मनचाहा रूप देने मे पूर्ण स्वतन्त्र था। स्वदेशी उद्यम (Domestic enterprise) को अब विदेशी हितो के आधीन कार्य करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। औद्योगिक वातावरण को साफ करने के लिए 6 अप्रैल 1948 को राष्ट्रीय सरकार ने औद्योगिक नीति की घोषणा मे **मिश्रित अर्थव्यवस्था** (Mixed economy) कायम करने का सुझाव दिया। सरकार ने स्पष्ट किया कि आगामी कुछ वर्षों मे राज्य विद्यमान उत्पादन इकाइयो का राष्ट्रीयकरण करने के स्थान पर अपने कार्यक्षेत्रो मे नई उत्पादन इकाइया (Production units) स्थापित करेगा। इस प्रकार औद्योगिक नीति के अनुसार निजी क्षेत्र (Private sector) तथा सरकारी क्षेत्र (Government sector) साथ साथ कार्य करेंगे। उल्लेखनीय बात यह है कि निजी क्षेत्र को देश की सामान्य औद्योगिक नीति के आधीन कार्य करना होगा।

विदेशी पूजी के प्रति दृष्टिकोण—सरकार ने भारतीय अर्थव्यवस्था मे औद्योगीकरण की गति बढाने एवं बेहतर औद्योगिक तकनीक तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिए विदेशी पूजी और उद्यम की सहायता प्राप्त करनी आवश्यक समझी। परन्तु विदेशी पूजी के भाग लेने पर भारतीय हितो की दृष्टि से सावधानीपूर्वक नियमन रखना चाहिए। प्रस्ताव मे इस बात को स्पष्ट कर दिया गया 'साधारणतया स्वामित्व तथा प्रभावी नियत्रण (Ownership and effective control) के क्षेत्र मे प्रमुख अधिकार भारतीय हाथो मे ही रहना चाहिए। पर सभी हालतो मे इस बात पर बल दिया जाएगा कि उपयुक्त भारतीय कर्मचारियो को प्रशिक्षण दिया जाए ताकि अन्तत वे विदेशी कर्मचारियों का स्थान ले सके। इस प्रकार अर्थव्यवस्था के लिए विदेशी पूजी की आवश्यकता स्वीकार करते हुए सरकार ने विदेशी फर्मों के अधिकाधिक भारतीयकरण (Indianisation) पर बल दिया।

सक्षेप मे औद्योगिक नीति प्रस्ताव ने धुधले वातावरण को स्पष्ट करके विनियोजन (देशी और विदेशी दोनों) की प्रक्रिया मे सहायता दी और औद्योगिक विवाद भी कम किया। कुछ भी हो 1948 की औद्योगिक नीति की मुख्य सफलता इस बात मे है कि इसके आधीन मिश्रित एव नियंत्रित अर्थव्यवस्था (Mixed and controlled economy) की नींव रखी गई जिसमे निजी व सरकारी उद्यम मिलकर कार्य कर सके ताकि औद्योगिक विकास तीव्र गति से आगे बढ सके।

2 1956 की औद्योगिक नीति
(Industrial Policy of 1956)

1948 के प्रस्ताव के स्थान पर ससद् ने 30 अप्रैल 1956 को दूसरा औद्योगिक नीति प्रस्ताव स्वीकार किया। इन आठ वर्षों मे राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति मे काफी परिवर्तन आ गया था और विकास कार्य भी आगे बढ गया था। ससद् 'समाजवादी ढग के समाज (Socialist Pattern of Society) को आधारभूत सामाजिक और आर्थिक नीतियो के रूप मे स्वीकार कर चुकी थी। इसके औद्योगिक आधार के लिए 1956 का प्रस्ताव पास किया गया जिसकी मुख्य धाराए निम्नलिखित हे

(1) **उद्योगो का वर्गीकरण** प्रस्ताव मे उद्योगो को तीन वर्गों मे विभाजित किया गया जो पहले के वर्गीकरण से मिलते जुलते थे किन्तु ये वर्ग अधिक स्पष्ट रूप से निर्धारित किए गए। राज्य ने किसी भी प्रकार के औद्योगिक उत्पादन को अपने हाथ मे लेने के सहज अधिकार को अपने लिए सुरक्षित रखा। उद्योगो के तीन वर्ग निम्नलिखित थे

(क) वे जिनका पूर्ण दायित्व राज्य पर हो। प्रथम वर्ग मे 17 उद्योगों का उल्लेख किया गया जो कि प्रस्ताव की 'क' अनुसूची (Schedule) में दिए गए। ये थे अस्त्र शस्त्र और सैन्य सामग्री परमाणु शक्ति लौह और इस्पात भारी ढलाई भारी मशीनें भारी बिजली सामान उद्योग कोयला तेल लौह धातुएं तथा ताबा सीसा और जस्ता आदि, अन्य महत्त्वपूर्ण

खनिज, विमान, वायु परिवाहन, रेल परिवहन टेलीफोन तार और रेडियो उपकरण, विद्युत का जनन (Generation) और वितरण। 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव मे इस वर्ग का बहुत अधिक विस्तार किया गया।

(ख) वे जिन पर राज्य का अधिकार बढता जाएगा और जिनमे साधारणत राज्य नए उद्यमों (Enterprises) की स्थापना करेगा किन्तु निजी क्षेत्र से यह आशा की जायेगी कि वह उनके चलाने मे राज्य की सहायता करेगा। द्वितीय वर्ग जो प्रस्ताव की 'ख अनुसूची में दिया गया के अन्तर्गत 12 उद्योगो को शामिल किया गया। वे थे अन्य खनिज उद्योग ऐल्यूमीनियम और अन्य अलौह धातुए (Non ferrous met als) जिन्हे प्रथम वर्ग मे नहीं रखा गया मशीनी औजार, लौह मिश्र धातुए और ओजारी इस्पात (Tools steels) रसायन उद्योग एण्टिबाइटिक्स (Antibiotics) और अन्य आवश्यक औषधिया उर्वरक संश्लिष्ट रबड (Synthetic rubber) कोयले का कार्बनीकरण (Carbonisation) रासायनिक गूदा, सडक परिवहन ओर समुद्री परिवहन।

(ग) शेष सभी उद्योगो और उनके भावी विकास को सामान्यत निजी क्षेत्र के आधीन छोड दिया गया।

अन्तिम वर्ग को भी राज्य की सामाजिक ओर आर्थिक नीति के ढाचे के अनुकूल कार्य करने ओर औद्योगिक (विकास तथा विनियमन) अधिनियम तथा अन्य सम्बद्ध विधान के नियत्रण मे रखने की चेतावनी दी गई।

(2) औद्योगिक वर्ग पृथक खण्ड नहीं है 1956 की नीति को प्रस्तावित करते हुए सरकार ने यह स्पष्ट किया कि विभिन्न वर्ग पथक खण्ड नहीं हैं बल्कि एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। इसके अतिरिक्त सरकारी क्षेत्र के आधीन भारी उद्योग अपने हल्के सघटकों (Light components) के लिए निजी क्षेत्र पर निर्भर हो सकता है जब कि निजी क्षेत्र अपनी बहुत सी आवश्यकताएं सरकारी क्षेत्र से पूरी कर सकता है। फिर जब ऐसा करना आवश्यक हो तब राज्य पूजी मे प्रमुख भागीदार बनकर अथवा अन्य उपाय से यह सुनिश्चित करेगा कि इसके पास औद्योगिक इकाइयों की नीति का मार्गदर्शन करने और उनका सचालन करने के लिए आवश्यक अधिकार उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त राज्य साधारणतया निजी क्षेत्र के लिए सुरक्षित 'ग वर्ग मे कभी भी योजना की दृष्टि से या अन्य महत्त्वपूर्ण कारणो से यह आवश्यक हो, प्रवेश कर सकता है। यद्यपि 1948 की नीति की अपेक्षा अब सरकारी क्षेत्र कहीं अधिक वरिष्ठ भागीदार (Senior partner) माना गया, तथापि सरकारी और निजी क्षेत्रो से मिलकर काम करने आशा की गई। इसका मूल उद्देश्य भारत मे मिश्रित अर्थव्यवस्था कायम करना था।

(3) निजी क्षेत्र के प्रति न्यायपूर्ण और भेदभाव रहित व्यवहार निजी क्षेत्र को आश्वस्त करने और इसे कुशल ढग से कार्य करने के लिए आवश्यक समझा गया कि राज्य पचवर्षीय योजनाओ द्वारा निर्धारित प्रोग्राम के अनुसार परिवहन बिजली और अन्य सेवाओ तथा राजकोषीय एव अन्य उपायो द्वारा उद्योगो के विकास की सुविधाए एवं प्रोत्साहन प्रदान करे। राज्य इन उद्योगों को वित्तीय सहायता देने वाली सस्थाओ का विकास करे ओर औद्योगिक तथा कृषि क्रियाओ के लिए सरकारी उद्यमो (Public undertak ings) को विशेष सहायता प्रदान करे। दूसरी ओर, निजी क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयो को राज्य की सामाजिक और आर्थिक नीति के अनुरूप कार्य करने का परामर्श दिया गया। यदि किसी उद्योग मे निजी और सरकारी दोनो प्रकार की इकाइया विद्यमान हों तो राज्य की नीति दोनो के साथ न्यायपूर्ण और भेदभाव रहित व्यवहार रखने की होगी।

(4) ग्रामीण और लघु उद्योगो को प्रोत्साहन राज्य बडे पैमाने के उत्पादन का परिणाम सीमित करके विभेदक कर (Differential taxes) लगाकर या प्रत्यक्ष साहाय्य (Direct subsidies) प्रदान करके कुटीर और लघु उद्योगो को निरन्तर सहायता प्रदान करने का प्रयास करेगा। राज्य का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना होगा कि विकेन्द्रीकत क्षेत्र (Decentralised Sector) आत्मनिर्भर होने के योग्य बन सके और उसका विकास बडे पैमाने के उद्योगा से सम्बन्धित हो।

(5) प्रादेशिक विषमताए (Regional disparities) दूर करने की आवश्यकता प्रस्तावना मे इस विचार का पूर्ण समर्थन किया गया कि प्रत्येक प्रदेश मे ओद्योगिक एव कषि क्षेत्रों का सन्तुलित एव समन्वित विकास (Balanced and coordinated development) करके सम्पूर्ण देश को उच्च जीवन स्तर उपलब्ध कराया जा सकता है।

(6) श्रम की सुविधाए प्रस्ताव मे मजदूरो के रहने और काम करने की दशाओ को सुधारने तथा उनकी कार्यकुशलता का स्तर उन्नत करने पर बल दिया गया। उद्योगो के सचालन मे सयुक्त परामर्श (Joint Consultation) किया जाना चाहिए और जहा कहीं सम्भव हो श्रमिको ओर तकनीशियनो (Tech nicians) को प्रबन्ध मे अधिकाधिक भाग मिलना चाहिए। प्रस्ताव में यह आशा की गई कि सरकारी क्षेत्र के उद्यम इस सम्बन्ध मे आदर्श प्रस्तुत करेंगे।

1956 के प्रस्ताव का मूल्याकन

1956 का औद्योगिक नीति प्रस्ताव राजनीतिक संविधान की भांति भारत का आर्थिक संविधान (Economic Consti tution) माना गया। समाजवादी ढाचे के उद्देश्य को प्रस्ताव मे औद्योगिक विकास के रूप मे अभिव्यक्त किया गया।

निजी क्षेत्र के समर्थको ने यह आलोचना की कि सरकारी क्षेत्र दैत्याकार बनकर निजी क्षेत्र को हडप कर जाएगा। यह आशका प्रस्ताव के गलत अध्ययन के कारण उत्पन्न हुई है। *नीति सम्बन्धी वक्तव्य में अर्थव्यवस्था मे निजी क्षेत्र को* स्थायी स्थान प्रदान करने का उल्लेख किया गया। सरकारी क्षेत्र निजी क्षेत्र के प्रतिद्वन्द्वी के रूप मे विकसित नहीं होगा अपितु उसका विकास उन अनुकूल दशाओ और अध सरचना (Infrastructure) के निर्माण के लिए होगा जिसमे निजी क्षेत्र *के विकास मे सहायता मिल सके। परन्तु यह स्पष्ट किया* गया कि आयोजनबद्ध अर्थव्यवस्था (Planned economy) की गति तीव्र करने के उद्देश्य से सरकारी क्षेत्र को वरिष्ठ भागीदार (Senior partner) का कार्य करना ही पडता है।

1948 55 के दौरान निजी क्षेत्र की असन्तोषपूर्ण कार्यप्रगति ने सरकार को मजबूर कर दिया कि वह सावजनिक क्षेत्र (Public sector) के विस्तार पर अधिक बल दे। किन्तु प्रस्ताव मे निजी क्षेत्र के विस्तार के लिए भी काफी गुजाइश रखी गयी। डा डी के रगनेकर ने इस सम्बन्ध मे ठीक ही कहा "1956 के औद्योगिक नाति प्रस्ताव मे नेहरू दर्शन के कुछ सिद्धातो को प्रतिपादित किया गया चाहे इसमे निष्पक्ष तत्त्वो को सन्तुष्ट करने के लिए काफी स्थान था।" जैसा कि *बाद की घटनाओ से व्यक्त हुआ कि इस प्रस्ताव के छिद्रो* और अपवादो का प्रशासको व्यापारियो एव उद्योगपतियो द्वारा आसानी से लाभ उठाया गया। निजी क्षेत्र को ऐसे क्षेत्रो में *लाइसेन्स जारी किए गए जो सरकारी क्षेत्र के लिए रिजर्व* किए गए थे। इनमे कोयला तेल उर्वरक रसायन इजीनियरिग आदि शामिल थे। इसी प्रकार पाश्चात्य कम्पनियो को परिष्करणशालाए (Refineries) स्थापित करने की स्वीकृति दी गयी। सरकार ने तेल की खोज के लिए स्टेनवाक (Stanvac) जो बाद मे इसो (ESSO) कहलायी। के साथ *समझौता कर लिया जिसमे भारत सरकार का अल्पसख्यक* सहयोग (Minority participation) रखा गया। प्रधानमत्री नेहरू ने विदेशी पूजी और बहुराष्ट्रीय निगमो (Multinationals) की इस चाल को भाप लिया और सरकारी क्षेत्र के इस्पात कारखानों की योजना को आगे बढाया। इसमे सन्देह नहीं कि इस नीति के फलस्वरूप मूल तथा भारी उद्योगो मे सार्वजनिक क्षेत्र का तेजी से विस्तार हुआ परन्तु जैसाकि रगनेकर ने ठीक ही लिखा है "सरकारी क्षेत्र के साथ साथ निजी क्षेत्र का विनियोग भी एकदम बढ गया।'

3. जनता सरकार की औद्योगिक नीति (1977)
(Industrial Policy of Janta Government-1977)

23 दिसम्बर 1977 को जनता सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति की घोषणा की। नीति वक्तव्य मे यह कहा गया कि पिछले 20 वर्षो मे सरकार की उद्योग के सम्बन्ध मे नीति का आधार 1956 का औद्योगिक नीति प्रस्ताव था। इस औद्योगिक नीति मे चाहे कुछ वाछनीय अश थे परन्तु इसके कार्यन्वयन मे कुछ विकृतिया निम्नलिखित रूप मे प्रकट हुई 'बेरोजगारी मे वृद्धि हो गयी ग्राम तथा नगर मे असमानता को खाई चौडी *हो गई और वास्तविक विनियोग का दर अवरूद्ध हो गया* औद्योगिक उत्पादन की दर औसत 3 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष से *बढ नहीं पायी। औद्योगिक रुग्णता (Industrial sickness)* का आपत विस्तृत हो गया और मुख्य उद्योगो पर बहुत ही बुरा असर पडा। औद्योगिक लागतो एव कीमतो के ढाचे मे भी विकृति आयी और बडे नगरो से दूर औद्योगिक नीति क्रिया का प्रसार बहुत ही धीमा रहा।' नयी औद्योगिक नीति का उद्देश्य इन विकृतियो को दूर करना था। इस नाति के मुख्य अग निम्नलिखित थे-

1 छोटे पैमाने के क्षेत्र का विकास-नीति का प्रधान उद्देश्य- इन विकृतियो को दूर करने के लिए जनता सरकार की नीति का प्रधान उपाय छोटे पैमाने के क्षेत्र का विकास था। नीति वक्तव्य मे साफ कहा गया अभी तक औद्योगिक नीति का बल मुख्यत बडे उद्योगो पर रहा है कुटार उद्योग *तो पूर्णतया उपेक्षित रहे हे और छोटे उद्योगो का कार्यभार* मामूली रहा है।' नयी औद्योगिक नीति का मुख्य बल लघु तथा कुटीर उद्योगो को प्रभावी रूप मे प्रोन्नत करना है ताकि *वे ग्रामीण क्षेत्रो और छोटे कस्बो मे बहुत अधिक फैल जाए।* सरकार की नीति यह है कि जो कुछ भी लघु एव कुटीर उद्योगो द्वारा उत्पन्न हो सकता हे निश्चय ही उनके द्वारा बनाया जाना चाहिए। लघु क्षेत्र को फिर तीन वर्गों मे बाटा गया

(क) कुटीर तथा घरेलू उद्योग बडे पमाने पर स्वरोजगार *उपलब्ध कराते हैं (ख) पिद्दी क्षेत्र (Tiny sector) जिसमे* ऐसी औद्योगिक इकाइया शामिल का गयीं जिनमे मशीनरी तथा अन्य साज सज्जा पर एक लाख रुपये से कम विनियोग हुआ हो और जो 1971 की जनगणना के अनुसार 50000 से कम आबादी वाले कस्बो मे स्थित हो और (ग) लघु उद्योग जिनमे ऐसी औद्योगिक इकाइया जिनमे 10 लाख रुपए तक विनियोग हुआ हो और अनुषगा इकाइया (Ancillary units) जिनमे 15 लाख रुपये तक का विनियोग हुआ हो।

औद्योगिक नीति मे इन तीनो वर्गो की औद्योगिक इकाइयो को एक साथ विकसित करने के लिए निम्नलिखित उपाय किये गये

(i) आरक्षित सूची मे जहा पहले 180 मदे थी नयी औद्योगिक नीति मे इसका विस्तार कर इसमे मार्च 1978 तक 807 मदे शामिल की गयीं।

(ii) पिछड़े क्षेत्र और कुटीर एवं घरेलू उद्योगों को सरकार सीमांत मौद्रिक सहायता (Margin money assistance) के रूप में विशेष सहायता देना चाहती थी।

(iii) जनता सरकार ने प्रत्येक जिले में एक जिला उद्योग केन्द्र (District Industries Centre) कायम करने का प्रस्ताव रखा जो लघु तथा कुटीर उद्योगों के विकास का केन्द्र बिन्दु बन सके। इस अभिकरण का उद्देश्य एक ही छत के नीचे वे सभी सेवाएं और सुविधाएं उपलब्ध कराना था जो लघु तथा ग्राम उद्यमकर्त्ताओं को चाहिए। जिला विकास केन्द्र विकास खण्डों (Development Blocks) और लघु उद्योग सेवा संस्थानों जैसे विशेष संस्थानों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध कायम करेंगे। औद्योगिक विकास बैंक, अन्य बैंक तथा विभिन्न वित्तीय संस्थान छोटे तथा कुटीर उद्योगों को उधार देने की विशेष व्यवस्था करेंगे।

(iv) **खादी तथा ग्राम उद्योग आयोग को पुन. व्यवस्थित करना**-जनता सरकार ने आयोग के क्षेत्र का विस्तार करने का प्रस्ताव रखा। जूतों तथा साबुन के उत्पादन को लघु क्षेत्र में अधिकाधिक बढ़ाने के लिए विशेष प्रोग्राम चलाने की ठानी गयी। ग्राम उद्योगों के विकास प्रोग्राम में सरकार खादी को विशेष स्थान देना चाहती थी। इस सम्बन्ध में पोलिएस्टर खादी (Polyester Khadi) या नयी खादी का प्रोग्राम विशेष रूप में उल्लेखनीय है जिसके परिणामस्वरूप खादी कातने तथा बुनने वालों की उत्पादिता और आय में वृद्धि हो। इसके लिए खादी तथा ग्राम उद्योग कानून में संशोधन कर नयी खादी का प्रोग्राम बड़े पैमाने पर लागू किया गया।

(v) **लघु तथा उद्योगों के लिए उचित तकनॉलाजी का विकास**-ग्राम तथा लघु उद्योगों की उत्पादिता तथा अर्जन-क्षमता (Earning capacity) बढ़ाने के लिए छोटी तथा साधारण मशीनें विकसित करने का प्रस्ताव किया गया। सरकार द्वारा उत्पादन की इस उचित तकनालाजी (Appropriate technology) का सर्वांगीण ग्राम विकास के विस्तृत प्रोग्राम के साथ एकीकरण करने का निश्चय किया गया।

2 **बड़े पैमाने के उद्योगों के लिए क्षेत्र**-औद्योगिक नीति में इस बात पर बल दिया गया कि "सरकार बड़े पैमाने के उद्योगों को परिमार्जित कौशल (Sophisticated skills) या असम्बन्धित विदेशी तकनालाजी के स्तूपों के रूप में प्रदर्शित नहीं करना चाहेगी। बड़े पैमाने के उद्योगों को जनसंख्या की मूल न्यूनतम आवश्यकताओं के प्रोग्राम के साथ जोड़ना चाहिए ताकि वे लघु तथा ग्राम उद्योगों के विस्तृत फैलाव को बढ़ावा दे सकें और कृषि क्षेत्र को मजबूत बना सकें। इसलिए नयी औद्योगिक नीति में बड़े पैमाने के लिए निम्नलिखित क्षेत्र निर्धारित किए गए

(क) आधारभूत उद्योग जो अध संरचना (Infrastructure) एवं लघु स्तर एवं ग्राम उद्योगों के लिए आवश्यक अर्थात् इस्पात, अलौह धातुएं, सीमेंट तथा तेल शोधन कारखाने

(ख) पूंजी वस्तु उद्योग जो आधारभूत उद्योगों तथा छोटे पैमाने के उद्योगों की मशीनरी सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए चाहिए।

(ग) उच्च तकनॉलाजी उद्योग जो बड़े पैमाने के उत्पादन के लिए आवश्यक है और जो कृषि तथा लघु स्तर औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक है अर्थात् उर्वरक कीटनाशक एवं पेट्रो रसायन आदि और

(घ) अन्य उद्योग जो आरक्षित मदों की सूची से बाहर है और जो अर्थव्यवस्था के विकास के लिए आवश्यक है अर्थात् मशीनी औजार, कार्बनिक तथा अकार्बनिक रसायन।

3 **बड़े व्यापारिक घरानों के प्रति दृष्टिकोण**-औद्योगिक नीति में बिल्कुल साफ कहा गया "बड़े घरानों का विकास उनके द्वारा आन्तरिक रूप में जनित संसाधनों की तुलना में कहीं अधिक हुआ है और इसका मुख्य आधार सार्वजनिक संस्थानों एवं बैंकों से लिया गया उधार है। इस प्रवृत्ति को प्रधान अथवा एकाधिकारी बनने से रोकने के लिए नीति रूपी दो उपायों का सुझाव दिया गया

(क) बड़े व्यापारिक घरानों को अपने नए प्रोजेक्टों अथवा वर्तमान परियोजनाओं के विस्तार के लिए आन्तरिक रूप में जनित संसाधनों से वित्त जुटाना होगा।

(ख) लघु स्तर क्षेत्र को आरक्षित क्षेत्रों (Reserved Areas) में लाइसेन्स प्रदान करते समय बड़े पैमाने की इकाइयों (चाहे वे बड़े घरानों से सम्बन्धित हों या नहीं) उनकी क्षमता में कोई विस्तार नहीं होगा। इसके विरूद्ध, इन मदों की कुल क्षमता में इन इकाइयों का भाग धीरे धीरे कम किया जायेगा और लघु स्तर तथा कुटीर उद्योग का भाग बढ़ाया जायेगा।

4 **सार्वजनिक क्षेत्र का बढ़ता हुआ कार्यभार**-औद्योगिक नीति में यह विशेष रूप से उल्लेख किया गया कि सार्वजनिक क्षेत्र में न केवल महत्त्वपूर्ण और मूल दृष्टि से सामाजिक महत्त्व की वस्तुओं का उत्पादन होगा बल्कि इसका प्रयोग उपभोक्ताओं को अनिवार्य वस्तुओं के निरन्तर सम्भरण कायम करने में एक स्थायीकरण शक्ति (Stabilising force) के रूप में किया जाएगा। सार्वजनिक क्षेत्र को यह भी जिम्मेदारी सौंपा जायेगी कि वह बहुत से अनुषंगी उद्योगों (Ancillary Industries) के विकास को प्रोत्साहन दे ताकि विकेन्द्रीकृत उत्पादन (Decentralised Production) को तकनीकी विशेषज्ञता का लाभ हो सके और लघु एवं कुटीर उद्योगों को अच्छे प्रबन्ध का।

5 **तकनीकी आत्मनिर्भरता को प्रोन्नत करना**-तकनीकी आत्मनिर्भरता को प्रोन्नत करने के लिये सरकार परिमार्जित एवं उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में जहां भारतीय

तकनीय पर्याप्त रूप मे विकसित नहीं है विदेशी सहायता के अन्तर्प्रवाह को जरूरी मानती है। ऐसे क्षेत्रो मे सरकार सर्वोत्तम तकनीक को सीधा खरीदने पर बल देगी और फिर इस नीक के देशीकरण पर बल देगी।

6 विदेशी सहयोग के प्रति दृष्टिकोण-विदेशी सहयोग के बारे मे औद्योगिक नीति मे यह स्पष्ट किया गया- "ऐसे क्षेत्रो मे जहा विदेशी तकनीक की जरूरत नहीं है वर्तमान सहयोगी फर्मों को नवीकृत नहीं किया जायेगा और इन क्षेत्रो मे कार्य कर रही फर्मों को विदेशी मुद्रा विनियमन कानून के अन्तर्गत अपनी क्रियाओ को राष्ट्रीय प्राथमिकताओ के अनुसार ढालना होगा। नीति व्यक्तव्य मे और स्पष्ट करते हुए यह कहा गया सिद्धान्त रूप मे स्वामित्व एव प्रभावी नियत्रण मे भारतीयो का भाग अधिक होना चाहिये जहा सरकार बहुत अधिक निर्यात प्रेरित या परिमार्जित तकनालाजी के क्षेत्र मे कुछ अपवाद कर सकती है। शत प्रतिशत निर्यात प्रेरित कम्पनियो के सदर्भ मे सरकार एक पूर्ण विदेशी स्वामित्व वाली कम्पनी के बारे मे विचार कर सकती है।"

7 बीमार इकाइयों के प्रति दृष्टिकोण- नीति मे बीमार इकाइयो (Sick units) के प्रति चयनात्मक दृष्टिकोण (Selective approach) अपनाने का सुझाव दिया गया। रोजगार को सुरक्षित रखने के लिए सरकार को कपडे पटसन या चीनी की बहुत सी बीमार इकाइयो का स्वामित्व अपने हाथ मे लेना पडा। बहुत सी परिस्थितियो मे बहुत सी सरकारी धनराशि ऐसी बीमार इकाइयो मे लगानी पडी जिन्हे सरकार के स्वामित्वाधीन लगाया गया परन्तु वे अभी भी घाटे मे चल रही है और इस घाटे को सरकारी खजाने से पूरा किया जा रहा है। यह प्रक्रिया अनिश्चित काल तक नहीं चल सकती। भविष्य मे इकाइयो के प्रबन्ध का सरकारीकरण (Take-over) चयनात्मक रूप मे किया जायेगा। ऐसे प्रबन्धको या मालिको को जो इन इकाइयो की रुग्णता के लिए जिम्मेवार है इनके प्रबन्ध एव सचालन मे भाग लेने की इजाजत नही दी जाएगी।

जनता सरकार की औद्योगिक नीति की आलोचना

जनता सरकार की औद्योगिक नीति का मुख्य बल बडे पैमाने के उद्योगो जिन पर बडे व्यापारिक एव औद्योगिक घराने और बहु राष्ट्रीय निगम (Multinationals) छाये हुए है के विरूद्ध छोटे तथा लघु उद्योगो को प्रोत्साहन देना था। इस नीति के पीछे मुख्य तर्क यह था कि ऐसी नीति से एक ओर तो लघु उद्योगो के विकास के कारण रोजगार का विस्तार होगा और दूसरी ओर आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रण मे कमी होगी।

औद्योगिक नीति (1977) के आलोचको का मत है कि यह 1956 की औद्योगिक नीति का विस्तार-मात्र ही है क्योकि जैसा कि जनता सरकार के व्यक्तव्य मे कहा गया नयी नीति का उद्देश्य उन विकृतियो को दूर करना है जो 1956 की औद्योगिक नीति के कार्यान्वयन मे उत्पन्न हो गयीं। इस दृष्टि से जनता सरकार की औद्योगिक नीति कांग्रेस द्वारा तय की गई नीति को ही चलाना चाहती थी और इसमे थोडा फेर बदल भले ही किया गया। अत मूल रूप मे नयी नीति मे अनिवार्यत वही अश विद्यमान थे।

छोटे पैमाने के उद्योगो को विकसित करने के प्रश्न पर विचार करे तो हमे पता चलता है कि इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित उपायो का सुझाव दिया गया 1 उत्पादन क्षेत्रो का निर्धारण अथवा आरक्षण (Reservations) 2 बडे पैमाने के उद्योगो की क्षमता का विस्तार न करने देना 3 बडे पैमाने के उद्योग पर कर लगाना। ये सभी उपाय 1956 की औद्योगिक नीति मे दिए गए थे। जनता सरकार ने केवल यह तय किया कि आरक्षण आधान वस्तुओ की सूची 180 से बढाकर 807 कर दी। परन्तु आलोचको का मत है कि आरक्षित मदो की मात्रा बढाने भर को लघु स्तर क्षेत्र के बढते कार्यभाग का सूचक मान लेना भी उचित नहीं होगा।

1956 की औद्योगिक नीति को दस वर्ष के पश्चात यह पता चला कि बहु चर्चित आरक्षण बडे पैमाने के क्षेत्र को कम करने मे सफल नहीं हुए। नीति मे छिद्र होने के कारण बडे उद्योग कभी विदेशी सहयोग कभी व्यापार चलाने के नाम पर और कभी निर्यात प्रोत्साहन के नाम पर लाइसेन्स प्राप्त करते रहे। प्रश्न उठता है क्या नयी औद्योगिक नीति ने कुछ ऐसे छिद्र नहीं छोडे जिनका लाभ बडे पूजीपति उठा सकते थे।

जनता सरकार की औद्योगिक नीति में बहु-राष्ट्रीय निगमों या भारतीय बडे व्यापारिक घरानो पर साधारण वस्तुएं अर्थात् डबल रोटी बिस्कुट टाफी जूते चमडे का सामान, बुनाई आदि पर प्रतिबन्ध लगाने का कोई प्रस्ताव नहीं था।

बडे पैमाने के उद्यमो की शोषणात्मक प्रवृत्ति का दमन करने के लिए कोई उपाय सुझाए नहीं गए जो छोटी तथा अनुषगी इकाइयो को अपने आधीन अनुबद्ध कर लेते। इस बात पर बल देने की आवश्यकता नहीं कि लघु तथा अनुषगी इकाइयो का उत्पादन बहुत से बडे पैमाने की इकाइयो के लिए आदान (Input) है और इन तकनीकी सम्बन्धो के आधार पर बडे पैमाने के उद्यम छोटे पैमाने की इकाइयो को अपना उत्पादन कम मूल्य पर बेचने के लिए मजबूर करते है। इस प्रकार छोटे उद्यम ऊर्ध्व समाकलन (Vertical integration) के नाम पर बडे पूजीपतियो की कठपुतलियां मात्र बन कर रह जाते हैं।

जनता पार्टी की आर्थिक नीति के वक्तव्य मे यह कहा गया—"सिद्धात रूप मे स्वामित्व एव प्रभावी नियत्रण मे भारतीयो का भाग अधिक होना चाहिए, चाहे सरकार बहुत अधिक निर्यात प्रेरित या परिमार्जित तकनालॉजी के क्षेत्रो मे कुछ अपवाद कर सकती है। शत प्रतिशत निर्यात प्रेरित कम्पनियो के सन्दर्भ मे सरकार एक पूर्ण विदेशी स्वामित्व वाली कम्पनी के बारे मे भी विचार कर सकती है।" जाहिर है कि जनता सरकार ने विदेशी फर्मों या बहु राष्ट्रीय निगमो के बारे मे अपनी नीति म पूरी कालाबाजारी लगा दी। यह बात समझ मे नहीं आती कि निर्यात प्रेरित उत्पादन या परिमार्जित तकनालाजी मे शत प्रतिशत विदेशी स्वामित्व की इजाजत देने के पीछे तर्क क्या है।

1977 की औद्योगिक नीति के बहुत से प्रस्तावो का विवेकशील आलोचको ने स्वागत किया। इनमे उल्लेखनीय है कुटीर तथा लघु क्षेत्र पर अधिक बल एकाधिकार पूजी की वृद्धि को रोकने के उपाय स्वामित्व एव प्रबन्ध मे श्रमिको का सहयोग सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यभाग का विस्तार और इसके निष्पादन को उन्नत करना आदि। किन्तु इस नीति का उद्योगपतियो एव मजदूर सघ के नेताओ दोनो द्वारा विरोध हुआ और यह जनता पार्टी के विघटन का एक महत्त्वपूर्ण कारण था।

4 औद्योगिक नीति, 1980
(Industrial Policy, 1980)

जनवरी 1980 मे सरकार मे परिवर्तन के पश्चात् यह आशा के अनुकूल ही था कि काग्रेस (इ) की सरकार अपनी औद्योगिक नीति की घोषणा करेगी। जुलाई 23 1980 को उद्योग मत्री श्री चरनजीत चानना ने 1956 की औद्योगिक नीति को आधार मानते हुए, छोटे, मध्यम तथा बडे पैमाने के उद्योगो के विकास को प्रोन्नत करने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण ढील और रियायतो की घोषणा की। इस नीति के तीन उद्देश्य थे अर्थात् आधुनिकीकरण विस्तार और पिछडे क्षेत्रो का विकास। रियायतो का मुख्य बल इस बात पर था कि पिद्दी छोटे तथा सहायक क्षेत्रो के विनियोग की सीमा दुगुना कर दा जाए, अतिरिक्त क्षमता को नियमित घोषित कर दिया जाए और प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रो मे बडे पैमाने की इकाइयो को स्वत विस्तार (Automatic expansion) की सुविधा की इजाजत दी जाए और पिछडे क्षेत्रो में बहुत से केन्द्रक औद्योगिक केन्द्र (Nucleus Industrial Centres) कायम किए जाए। परिस्थिति को सामान्य बनाने और अर्थव्यवस्था को पुन अपने पावो पर खडा करने के लिए निम्नलिखित नाति सम्बन्धी उपायो का प्रस्ताव किया गया

(i) सरकारी क्षेत्र का प्रभावी सकार्य प्रबन्ध (Operational management) औद्योगिक नीति वक्तव्य मे इस बात का विशेष रूप मे उल्लेख किया गया कि हाल ही के वर्षों मे सरकारी क्षेत्र मे विश्वास समाप्त होता जा रहा है। सरकारी क्षेत्र के उद्यमो की क्षमता को पुन बढाने के लिए अभियान चलाया जाए।"

(ii) आर्थिक सघवाद (Economic federalism) की धारणा को प्रोन्नत करके निजी क्षेत्र का औद्योगिक विकास म समन्वय कायम करना नीति वक्तव्य मे स्पष्ट रूप से कहा गया— 'सरकार का यह प्रयास होगा कि पिछले तीन वर्षों की वे प्रवृतिया उलट दी जाए जो छोटे तथा बडे पैमाने के उद्योगो के बीच इस मिथ्या धारणा के कारण कृत्रिम भेद पैदा करती हैं कि उनके हितो मे अनिवार्यत एक टक्कर है। समन्वित औद्योगिक विकास की ओर सभी प्रकार के प्रयास करते हुए यह प्रस्ताव किया गया कि प्रत्येक जिले मे जिसे औद्योगिक दृष्टि से पिछडा करार दिया गया हो कुछ केन्द्रक सयन्त्र (Nucleus plants) स्थापित किए जाएंगे जिनका उद्देश्य सहायक छोटी तथा कुटीर इकाइया को जितना भी सभव हो सके कायम करना होगा।

(iii) छोटी इकाइयो की पुन परिभाषा छोटे पैमाने के उद्योगो के विकास को प्रोत्साहित करने और उनके तीव्र विकास को निश्चित करने के लिए सरकार ने यह निर्णय किया कि—

(1) पिद्दी इकाइयो (Tiny units) के लिए विनियोग की सीमा 1 लाख रु से बढाकर 2 लाख रु कर दी जाए,

(2) छोटे पैमाने की इकाइयो के लिए विनियोग की सीमा 10 लाख रु से बढाकर 20 लाख रु कर दा जाए, और

(3) सहायक इकाइयो (Ancillaries) के लिए विनियाग की सीमा 15 लाख रु से बढाकर 25 लाख रु कर दी जाए।

(iv) ग्राम क्षेत्रो मे उद्योगों की प्रोन्नति–औद्योगिक नीति वक्तव्य में इस प्रकार के औद्योगीकरण को प्रोन्नत करने पर बल दिया गया जो 'हमारे ग्रामो को आर्थिक दृष्टि से विकासक्षम बनाए। परिवेश सतुलन (Ecological balance) को बिगाडे बिना ग्राम क्षेत्रो मे उचित उद्योग प्रोन्नत करने होगे ताकि देश की ग्रामीण जनता के लिए अधिक रोजगार एव अधिक प्रति व्यक्ति आय तेजी से उपलब्ध करायी जा सके। हस्तकरघो हस्तशिल्पो और खादी एव अन्य ग्राम उद्योगो की ओर अधिक ध्यान दिया जाएगा ताकि ग्रामो मे तीव्र वृद्धि दर प्राप्त की जा सके।

(v) क्षेत्रीय असतुलनो को दूर करना—औद्योगिक नीति प्रस्ताव मे उल्लेख किया गया— औद्योगीकरण क्षेत्रीय असतुलन (Regional imbalances) को दूर करने म महत्त्वपूर्ण कार्यभाग अदा कर सकता है। इस उद्देश्य के लिए उद्योगो के क्षेत्रीय फेलाव को प्रोत्साहित किया जाए ताकि औद्योगिक

दृष्टि से पिछडे क्षेत्रो मे इकाइया कायम की जाएं।

(i) गैर-सरकारी क्षेत्र मे अवैध अतिरिक्त क्षमता को कानूनी घोषित करना—1975 के निर्णय के अनुकरण करते हुए औद्योगिक नीति वक्तव्य मे अतिरिक्त क्षमता को कानूनी घोषित करने की बात की गयी। लाइसेन्स प्राप्त क्षमता से *अधिक स्थापित क्षमता को कानूनी घोषित करते हुए* FERA और MRTP कम्पनियो के सम्बन्ध मे भी चयनात्मक आधार पर विचार किया जाएगा। यह सुविधा उन वस्तुओ के लिए नही दी जाएगी जो लघु क्षेत्र के लिए आरक्षित हैं।

सामान्यत स्वीकृत अधिकृत क्षमता से 25 प्रतिशत अधिक क्षमता विस्तार के रूप मे स्वत उपलब्ध होगी। क्षमता का विस्तार कुछ स्थापित क्षमता जिसमे कानूनी घोषित की गयी अतिरिक्त क्षमता शामिल होगी के अतिरिक्त होगा।

(ii) स्वत विस्तार (Automatic expansion)—बडे पैमाने के क्षेत्र को एक और महत्त्वपूर्ण रियायत स्वत विस्तार की सुविधा को लागू करना और इसकी कार्यविधि को सरल बनाना है। अभी तक यह सुविधा 15 उद्योगो को उपलब्ध थी। क्षमता के पूर्ण विस्तार के नाम पर 1951 के उद्योग (विकास एव विनियमन) कानून की प्रथम सूची मे उल्लिखित सभी उद्योगो को यह सुविधा दी जाएगी।

(iii) औद्योगिक रुग्णता (Industrial sickness) और सरकार की विलयन एव सरकारीकरण की नीति—वक्तव्य मे साफ कहा गया कि ऐसी औद्योगिक इकाइया जिनके बारे मे यह निश्चित हो जाता है कि वे *जानबूझकर कुप्रबन्ध और वित्तीय गोलमाल के लिए जिम्मेदार* है के विरुद्ध कडी कार्यवाही की जाएगी।

ऐसा रुग्ण फर्मों जिनके सम्बन्ध मे पुनरुत्थान की पर्याप्त सभावना हो सरकार की नीति यह होगी कि इनका ऐसी स्वस्थ इकाइयो के साथ विलयन (Merger) कर दिया जाए जिनमे इन बीमार इकाइयो के प्रबन्ध की योग्यता हो और जो इनकी विकास क्षमता को पुन स्थापित कर सके। इसके लिए आयकर के भाग 72 A के आधीन उपलब्ध कर रियायतो (Tax concessions) को विलयन प्रस्तावो के सम्बन्ध मे और उदार बनाना होगा ताकि बीमार इकाइयो का पुनरुत्थान हो सके।

औद्योगिक नीति (1980) की समीक्षा

प्रथम औद्योगिक नीति (1980) इस मिथ्या धारणा को समाप्त करना चाहती थी जिसके अधीन छोटे तथा बडे पैमाने के उद्योगो के बीच कृत्रिम भेद कायम कर यह कहा जाता है कि इनके हितो मे अनिवार्यत एक टक्कर है। इस प्रकार यह नीति जनता सरकार के तीन वर्षो के शासन के दौरान उत्पन्न प्रवृत्तियो को उलटना चाहती थी। इस सदर्भ मे 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव मे उल्लेख किया गया— 'सरकार की यह नीति रही है कि कुटीर, ग्रामीण एव लघु स्तर के उद्योगो को बढावा देने के लिए बडे पैमाने के क्षेत्र के उत्पादन की मात्रा को सीमित करे इनके लिए साहाय्य (Subsidies) दे'। जाहिर है कि 1956 की औद्योगिक नीति जिसको कि कांग्रेस *(इ) की सरकार आधार मानती है* उसमे छोटे और बडे पैमाने के क्षेत्र मे हितो की टक्कर को स्वीकार किया गया। इसी कारण तो इसमे बडे पैमाने के उत्पादन को सीमित करने की बात की गयी। यह कहना कि इन दोनो के हितो मे टक्कर नहीं है अपनी आखे वास्तविकता के प्रति मूद लेना है। आरक्षण विभेदात्मक कराधान और साहाय्य की नीति का मूल उद्देश्य अर्थव्यवस्था के इस श्रम प्रधान क्षेत्र को प्रोत्साहित करना था ताकि उत्पादन को अधिकतम करने के उद्देश्य और रोजगार को अधिकतम करने के उद्देश्य मे *तालमेल बिठाया* जा सके। भारत जैसी पूजी न्यून (Capital scarce) और श्रम प्रचुर (Labour surplus) अर्थव्यवस्था मे आयोजको द्वारा उत्पादन और रोजगार के उद्देश्यो की ओर बहुत अधिक ध्यान दिया गया और पिछे ग्रामीण तथा लघु उद्योगो के विकास के लिए एक विशेष नीति के आधार पर उपाय किए गए। यह कहीं अच्छा होता यदि इस प्रवृत्ति को सबल बनाने की बात की जाती परन्तु इस प्रवृत्ति को उलटने की बात करना तर्कसगत नहीं था।

अन्तिम औद्योगिक नीति का मुख्य बल लाइसेस प्राप्त क्षमता की सीमा से अधिक अतिरिक्त स्थापित क्षमता (*Installed capacity*) *को कानूनी घोषित करना है।* न केवल यह सरकार द्वारा सभी उद्योगो जो भारतीय उद्योग (विकास एव विनियमन) कानून की प्रथम अनुसूची मे हैं को स्वत *विस्तार का अधिकार* देने का प्रस्ताव है *बल्कि इन सभी बातो* को क्षमता के पूर्ण प्रयोग और उत्पादन को अधिकतम करने के नाम पर न्यायोचित ठहराया जा रहा है। बडे व्यापारिक घरानो ने 1980 की औद्योगिक नीति मे क्षमता के विस्तार सम्बन्धी उदारता का स्वागत किया। इससे पहले इसी प्रकार की उदारता 1975 मे दिखायी गयी। मूल प्रश्न यह है यदि हर वर्ष सरकार न गैर कानूनी रूप मे स्थापित क्षमता को कानूनी घोषित करते चले जाना है जो आर्थिक क्रिया के नियत्रण के लिए बनाए गए राजकीय विधान जिसके द्वारा एकाधिकार पूजी के विकास को रोका जा सके का कोई औचित्य ही नहीं रह जाता। जाहिर है कि सरकार आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रण के सामाजार्थिक उद्देश्य के प्रति उत्पादन बढाने की व्यावहारिक नीति के पक्ष मे आंखे मूद लेना चाहती है।

निष्कर्ष यह है कि औद्योगिक नीति (1980) केवल विकास की दृष्टि से प्रेरित थी। यह बडे व्यापारिक घरानो के

लिए लाइसेस प्रदान करने मे उदार थी परन्तु ऐसा करने के लिए इसने छोटे तथा बडे पैमाने के उद्योगो मे भेद को धुधला कर दिया यह बडे पैमाने की इकाइयो को छोटी इकाइयो की कीमत पर बढावा देना चाहती थी। मोटे तौर पर इस औद्योगिक नीति विकास के पूजी प्रधान पथ का चयन किया और रोजगार उद्देश्य को गौण बना दिया।

5 औद्योगिक लाइसेस प्रणाली (Industrial Licensing)

उद्योग (विकास तथा नियमन) अधिनियम 1951

उद्योग (विकास तथा नियमन) अधिनियम (Industries Development and Regulation Act) जो अक्टूबर, 1951 को पारित किया गया, 8 मई 1952 से लागू किया गया। इसका उद्देश्य केन्द्र सरकार को 1948 की औद्योगिक नीति क्रियान्वित करने के लिए अधिकार प्रदान करना था। इस अधिनियम की मुख्य धाराए निम्नलिखित है—

(1) केन्द्र सरकार से लाइसेस लिए बिना किसी भी नई औद्योगिक इकाई की स्थापना अथवा वर्तमान सयत्रो (Plants) का बहुत अधिक विस्तार नहीं किया जा सकता। नई फर्मों को लाइसेस देते समय सरकार यदि आवश्यक समझे तो स्थान निश्चयन (Location) और न्यूनतम आकार (Minimum size) आदि के विषय मे शर्तें निर्धारित कर सकती है।

(2) सरकार कुछ विशेष उद्योगो अथवा फर्मों की जाच कर सकती है। यह जाच उन उद्योगो या फर्मों के सम्बन्ध मे आरभ की जाएगी (क) जिनके उत्पादन मे कमी आ जाए, या उत्पादन की किस्म खराब होती जाए, या कीमत बढती जाए या इन्हीं दिशाओ मे प्रवृत्तिया विकसित हो जाए, (ख) या उद्योग राष्ट्रीय महत्त्व के ससाधनो (Resources) का प्रयोग करते है और (ग) जिनके प्रबन्ध के कारण हिस्सेदारो या उपभोक्ताओं के हितो को हानि पहुचने की सभावना है। सरकार इन दोषो को दूर करने के लिए उचित निर्देश जारी कर सकती है।

(3) सरकार उन फर्मों या औद्योगिक इकाइयो को अपने प्रबन्ध के आधीन कर सकती है जो प्रबन्ध और नीतियो म सुधार के विषय मे सरकारी निर्देशो का पालन करने मे असफल रही हो।

यह अधिनियम सरकार को उत्पादन की कीमते उत्पादन की मात्रा निश्चित करने एव वितरण के मार्ग तय करने का अधिकार भी प्रदान करता है। इस अधिनियम के आधीन विकास परिषदे (Development Councils) कायम की गई। इन परिषदो मे उद्योग श्रम वर्ग प्रबन्धको और उपभोक्ताओ के प्रतिनिधियो को शामिल किया गया।

औद्योगिक (विकास एव विनियमन) अधिनियम 1951 को लगभग एक दशाब्दी के ऊपर लागू करने के पश्चात् यह महसूस किया जाने लगा कि यह अधिनियमन अपने उद्देश्यो मे पूर्ण रूप मे सफल नहीं हुआ। 1966 मे इस बात की जाच करने के लिए प्रोफेसर आर के हजारी को नियुक्त किया गया। हजारी रिपोर्ट ने कुछ महत्वपूर्ण तथ्यो का रहस्योद्घाटन किया।

6 हजारी रिपोर्ट की मुख्य बाते

कुछ औद्योगिक घरानो के सम्बन्ध म यह व्यवहार पाया गया कि ये प्रत्येक वस्तु के लिए बहुत से आवेदन पत्र दे देते है। एक ही वस्तु के लिए बहुत से आवेदन पत्र डालने का उद्देश्य लाइसेन्स सामर्थ्य (Licensed capacity) को अन्य फर्मों के लिए बन्द करना था। यह बात विशेषकर बिडला घराने के लिए सही मालूम हुई।

हजारी रिपोर्ट ने स्पष्ट रूप से यह सकेत किया कि जिन फर्मों की ओर से लाइसेन्सो के लिए आवेदन पत्र दिए गए, वे आवश्यक रूप मे कुशल एव सुप्रबन्धित नहीं थीं। कई बार केवल आवेदन पत्र देने के लिए फर्मे कायम की गयीं।

लाइसेस प्रदान करने की दृष्टि से कालक्रम प्रवरण (Chronological selection) के सिद्धान्त को अपनाया गया अर्थात् पहले आवेदन पत्र देने वाला को पहले लाइसेस दिए गए। इसके परिणामस्वरूप बडे बड़े औद्योगिक घराने दिल्ली मे अपने दफ्तर कायम करते और जैसे ही उन्हे पता चलता वे तुरन्त आवेदन पत्र दे देते ताकि कतार मे सबसे आगे खडे हो जाए। इस तरीके से बडे बडे औद्योगिक घराने अन्य फर्मो को सामर्थ्य कायम करने से रोक देते। उदाहरणार्थ जितनी लाइसेन्स सामर्थ्य (Licensed capacity) की स्वीकृति बिडला को दी गयी उसके केवल 50 प्रतिशत का प्रयोग किया गया।

अत लाइसेन्स नीति मुख्यत चार प्रकार से विफल हुई

(क) औद्योगिक घरानो को प्राथमिकता देने के कारण लाइसेन्स नीति छोटे एव मध्यम उद्यमकर्त्ताओ को लाइसेन्स प्रदान करने मे विफल रही। (ख) औद्योगिक लाइसेन्स नीति के फलस्वरूप सन्तुलित क्षेत्रीय विकास नहीं हो सका। (ग) औद्योगिक लाइसेन्स पद्धति लागू करने का उद्देश्य उच्च प्राथमिकता वाले उद्यमो मे विनियोग को प्रोत्साहित करना था किन्तु औद्योगिक लाइसेन्स को एक प्रकार का पासपोर्ट समझा गया जिसके द्वारा विभिन्न सरकारी प्राधिकारो से अन्य लाइसेन्स एव सुविधाए प्राप्त की गयीं। परिणामत लाइसेन्स नीति अपने उद्देश्य मे विफल रहा। (घ) लाइसेन्स प्रदान करने के पश्चात् लाइसेन्स विभाग ने इस बात का ध्यान नहीं रखा कि क्या जारी लाइसेन्सो का प्रयोग भी किया गया।

प्रोफेसर हजारी के अनुसार लाइसेन्स नीति महत्त्व की दृष्टि से द्वितीयक श्रेणी का उपाय है जबकि और औद्योगिक प्रोग्रामो का निर्धारण मूल

इस तरह भी इस रिपोर्ट द्वारा लाइसेन्स प्रणाली को बनाए रखने का आग्रह किया गया परन्तु लाइसेन्स प्रणाली का क्षेत्र केवल नई उत्पादन इकाइयों तक सीमित करने का सुझाव दिया गया। और हजारी रिपोर्ट में यह सिफारिश की गई कि नई उत्पादन इकाइयों की छूट की सीमा 25 लाख रुपये के वर्तमान स्तर से बढ़ाकर एक करोड़ रुपये कर देनी चाहिए।

हजारी रिपोर्ट की सिफारिशों पर लोक सभा में बहस के दौरान ये निर्णय किया गया कि पिछले दस वर्षों (अर्थात् 1956 से 1966 के बीच) में औद्योगिक लाइसेन्स प्रणाली के क्रियान्वयन सम्बन्धी जांच की जाए। इस उद्देश्य से 22 जुलाई 1966 को श्री सुबिमल दत्त की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गयी जिसने अपनी रिपोर्ट 17 जुलाई 1969 को प्रस्तुत की।

7 औद्योगिक लाइसेन्स नीति पर दत्त समिति की रिपोर्ट (1969)

दत्त समिति ने एकाधिकार जांच आयोग द्वारा दी गयी बड़े औद्योगिक घराने (Large Industrial House) की धारणा को स्वीकार कर लिया। *धारणा में केन्द्रीय महत्त्व इस* बात का है कि नियंत्रण की जिम्मेदारी निश्चित की जाए। बड़े औद्योगिक घराने में वे सभी व्यावसायिक फर्में (Business firms) शामिल की जानी चाहिएं जिन पर एक साझे प्राधिकार का नियंत्रण हो। ये व्यावसायिक फर्में चाहें कानून या संविधान की दृष्टि से पृथक होंगी, किन्तु वे एक साझे संगठन के अंगों की भांति एक साथ कार्य करती हैं जो कि कुछ व्यक्तियों के मार्ग दर्शन और आलम्बन पर आधारित होता है। चाहे फर्मों के दैनिक कार्यों में वही निर्णय करते हैं जिनके आधीन कानूनी तौर पर स्वतंत्र रूप में अधिकार सौंप दिए गए हों परन्तु मुख्य नीतियों के नियमन का अन्तिम स्रोत एक साझा प्राधिकरण होता है। छानबीन करने के पश्चात् दत्त समिति ने 73 *औद्योगिक घरानों की सूची तैयार की।* इसमें से 20 *बहुत बड़े औद्योगिक घराने निश्चित किए गए।* प्रत्येक बहुत बड़े औद्योगिक घराने की कुल परिसम्पत 1964 में 35 करोड़ से अधिक थी

समिति ने प्रभावी हिस्सा पूंजी (Effective equity) की धारणा का प्रयोग करते हुए यह कहा कि यदि कुल *हिस्सा पूंजी की एक तिहाई किसी एक व्यक्ति या व्यक्ति समूह* के अधिकार में हो तो वह प्रभावी रूप में फर्म का नियंत्रण कर सकता है।

प्रभावी हिस्सा पूंजी = (कुल हिस्सा पूंजी) (सरकारी संस्थाओं द्वारा हिस्सा पूंजी में योगदान) (अन्यत्रवासी हिस्सेदारों का योगदान)

चूंकि ये दोनो प्रकार के हिस्सेदार निष्क्रिय हिस्सेदार होते हैं अतः प्रभावी हिस्सा पूंजी प्राप्त करने के लिए उन्हें हिस्सा पूंजी से निकाल देना ही उचित है।

औद्योगिक लाइसेन्स सम्बन्धी आंकड़ों से दत्त समिति ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले हैं

1 विभिन्न लाइसेन्सधारी वर्गों (Licensee categories) में प्रस्तावित विनियोग और पूंजी वस्तुओं के आयात का भाग समिति ने स्पष्ट किया कि कुल गैरसरकारी निगम क्षेत्र द्वारा मशीनरी पर प्रस्तावित विनियोग में 73 बड़े *औद्योगिक घरानों का भाग 56 प्रतिशत था। इसी प्रकार इन्हीं* औद्योगिक घरानों का पूंजी वस्तुओं के आयात मूल्य में भाग 60 प्रतिशत था। इनमें से सबसे बड़े 20 औद्योगिक घरानों का *मशीनरी पर प्रस्तावित विनियोग में भाग 41 प्रतिशत था और* पूंजी वस्तुओं के स्वीकृत आयात का 40 प्रतिशत था। जाहिर है कि इस काल में बड़े औद्योगिक घरानों ने अपनी स्थिति मजबूत कर ली।

2 लाइसेन्सों का वस्तुवार विश्लेषण (Product wise Analysis) दत्त समिति ने वस्तुओं का विश्लेषण करने के पश्चात् देश में औद्योगिक लाइसेन्स नीति पर तीखा प्रकाश किया है निस्सन्देह कुछ परिस्थितियां ऐसी थीं जिनमें *विशिष्ट तकनीकी कारणों के आधार पर किसी बड़ी फर्म को* सामर्थ्य के महत्त्वपूर्ण भाग की स्वीकृति ठीक समझी जा सकती है। इसका उदाहरण आई सी आई को आरम्भ में *पालीएस्टर के सामर्थ्य की स्वीकृति है। कुछ अन्य परिस्थितियों* में सरकार के पास इसके सिवाय और कोई विकल्प नहीं था कि वह दिलचस्पी व्यक्त करने वाला को सामर्थ्य सम्बन्धी लाइसेन्स दे दे और प्रार्थियों में से बड़े घराने इनके कार्यान्वयन के लिए सबसे अधिक योग्य या सबसे कम अयोग्य समझे गए। उर्वरक उद्योग इसका एक उदाहरण है। किन्तु एक ही उद्योग में उसी घराने (House) को अनेक लाइसेन्स प्रदान *करना आवश्यक नहीं था। कुछ परिस्थितियों में ऐसा प्रतीत होता है जैसे सरकार ने पहले ही तय कर रखा है कि कुछ* विशेष उत्पादकों जिनमें सामान्यत बड़े औद्योगिक क्षेत्र के उत्पादक शामिल हैं को ही सामर्थ्य कायम करने की इजाजत दी जाए। लाइसेन्स नीति ने इस रास्ते को अपनाया एकाधिकार को रोकने की भावना इन निर्णयों में बिल्कुल दाखिल नहीं हुई है।

3 कार्यान्वयन और पूर्वाधिकार ग्रहण करना (Implementation and pre emption) समिति ने यह स्पष्ट *किया कि जारी लाइसेन्सों की तुलना में अप्रयुक्त लाइसेन्सों*

रिपोर्ट आफ दि इण्डस्ट्रियल लाइसेंसिंग पालिसी इन्क्वायरी कमेटी मेन रिपोर्ट, जुलाई 1969 पृष्ठ।

तत्रैव पृष्ठ 53

(Unimplemented licences) का प्रतिशत बडी स्वतत्र कम्पनियों एव अन्य विदेशी कम्पनियो मे सबसे अधिक था किन्तु 20 बडे औद्योगिक घरानो म इस सम्बन्ध मे काफी अन्तर पाए जाते हैं। अप्रयुक्त लाइसेन्सो की सबसे अधिक सख्या बिडला घराने (166 लाइसेन्सों) की थी और इसके बाद टाटा (47 लाइसेन्स) का नम्बर था।

पूर्वाधिकार के प्रश्न पर समिति ने यह बताया कि कुछ औद्योगिक घराने बहुत से लाइसेन्स प्राप्त कर लेते है किन्तु इनमें कुछ का ही प्रयोग करते हैं। वे अधिकत सामर्थ्य (Authorised capacity) से अधिक सामर्थ्य स्थापित कर लेते हैं और अधिकृत सीमा से अधिक वस्तुए उत्पन्न करते हैं। पूर्वाधिकार (Pre emption) के अपराध मे समिति ने बिडला घराने को सबसे बडा अपराधी ठहराया।

क्षमता के पूर्वाधिकार के अनुमान से पता चलता है कि बहुत सी वस्तुओं के सम्बन्ध मे स्थापित क्षमता वास्तविक उत्पादन से कहीं अधिक है और इस अन्तर की व्याख्या सामान्य कारणतत्त्वा द्वारा नहीं की जा सकती। उदाहरणार्थ यह कहा जा सकता है कि व्यावहारिक क्षमता (Practical capacity) स्थापित क्षमता से कम ही होती है और सामान्य रुकावटो के लिए छूट देनी होगी। इस प्रकार बाजार मे मन्दी आ जाने से भी वास्तविक उत्पादन कम हो सकता है। ये दोनो कारण सीमेंट मशीनरी टैक्टर, चीनी मशीनरी कागज मशीनरी और उर्वरको के सम्बन्ध मे इस अन्तर की व्याख्या करने मे असमर्थ है। वस्तुत ऐसा जान पडता है कि अन्य उद्यमकर्त्तओ के प्रवेश को रोकने क लिए क्षमता पर पूर्वाधिकार प्राप्त किया गया। यही नहीं 1 अप्रेल, 1966 को वास्तविक लाइसेन्स प्राप्त क्षमता स्थापित क्षमता (Installed capacity) से भी अधिक थी। लाइसेन्स क्षमता (Licensed capacity) को वास्तविक उत्पादन के प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाए तो इसमें 200 से लेकर 900 प्रतिशत तक की सीमा का अन्तर मिलता है।

4 सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्र और लाइसेन्स नीति इसी प्रकार औद्योगिक नाति प्रस्ताव 1956 द्वारा सरकारी क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगो को एक नहीं तो दूसरे बहाने की आड मे गैर सरकारी क्षेत्रो को खोल दिया गया। उदाहरणार्थ जबकि ऐल्युमिनियम को 'क' अनुसूची मे रखा गया और इसका विकास सरकारी क्षेत्र का दायित्व था वास्तव मे इसका समग्र विकास गैर सरकारी क्षेत्र को सौंप दिया गया। इसी प्रकार मशीनी औजार उद्योगो मे जहा हिन्दुस्तान मशीन टूल्ज को 9 लाइसेन्स दिए गए, वहा गैर सरकारी क्षेत्र को 226 लाइसेन्स दिए गए। उवरक उद्योग मे गैर सरकारी क्षेत्र को दिए गए 42 लाइसेन्सो की तुलना मे सरकारी क्षेत्र को केवल 12 लाइसेन्स क्षेत्र को प्राप्त हुए। इसी प्रकार औषधियो के सम्बन्ध मे गैर सरकारी क्षेत्र को प्राप्त 148 लाइसेन्सो के विरुद्ध सरकारी क्षेत्र ने केवल 12 लाइसेन्स प्राप्त किए। दत्त समिति ने घोषित सरकारी क्षेत्र के विस्तार के विरुद्ध व्यवहार मे नीति परिवर्तन की भर्त्सना की।

5 औद्योगिक लाइसेन्स नीति और सन्तुलित क्षेत्रीय विकास औद्योगिक लाइसेन्सों के राज्यवार वितरण के आधार पर दत्त समिति ने यह ज्ञात किया कि औद्योगिक दृष्टि से उन्नत चार राज्यो अर्थात् महाराष्ट्र, पश्चिमी बगाल गुजरात, और तमिलनाडू द्वारा कुल लाइसेन्सो का 62 प्रतिशत प्राप्त किया गया। जाहिर है कि लाइसेन्स प्रणाली औद्योगिक दृष्टि से पिछडे हुए राज्यो की सहायता देने मे असमर्थ रही।

6 औद्योगिक लाइसेन्स नीति और विदेशी सहयोग विदेशी सहयोग (Foreign collaborations) के आधीन लाइसेन्स जारी करने की नीति का सबसे असन्तोषजनक पहलू अनावश्यक उपभोग वस्तुओ में साझी फर्मों को लाइसेन्स देना है। चूंकि कुछ विदेशी फर्मों के नाम के साथ जुड जाने से भारतीय फर्मों को एक प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है भारत सरकार इन्हे साँझी फर्मे स्थापित करने की इजाजत दे देती है। परन्तु सभी प्रकार की उपभोग वस्तुओ में लाइसेन्स जारी करना खेदजनक बात है। विदेशी सहयोग व्यवस्था के अन्तर्गत जिन अनावश्यक उपभोग वस्तुओ मे अनुमति दी गई उनमे रेफ्रीजरेटर, रेडियो रिसीवर, कैमरे, टासमाटर, रिकार्ड चेजर, थर्मामीटर, श्रृगार साबुन सीने का धागा बाल पॉयण्ट पैन, लाउडस्पीकर आदि शामिल हैं।

ऊपर दिए गए विश्लेषण से स्पष्ट है कि औद्योगिक लाइसेन्स पद्धति आयोजित आर्थिक विकास (Planned economic development) प्राप्त करने और आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रण के लक्ष्यों को रोकने मे विफल हुई। आयोजित आर्थिक विकास मे विफलता का प्रमाण इस बात से मिलता है कि आयोजन प्राधिकार विभिन्न उद्योगो में प्राथमिकताओं को निर्धारित करने में विफल रहा। न ही तो अनावश्यक उद्योगो मे क्षमता की अन्धाधुन्ध वृद्धि को रोका जा सका और न ही उत्पादन के लक्ष्यों के अनुकूल स्थापित क्षमता ही कायम की गयी।

दत्त समिति ने इस बात को स्वीकार किया कि औद्योगिक लाइसेन्स नीति एक नकारात्मक उपाय है और इस कारण यह एक सीमित भाग ही अदा कर सकती है अर्थात् नई उत्पादन इकाई चालू करने या वर्तमान क्षमता का विस्तार करने के लिए लाइसेन्स दे सकती है या मना कर सकती है। इस बात को स्वीकार करते हुए कि मौद्रिक एव उद्योग रक्षण उपायो को औद्योगिक विकास के लिए कार्यान्वित किया जाना चाहिए,

दत्त समिति ने औद्योगिक लाइसेन्स नीति को औद्योगिक विकास का सकारात्मक उपाय बनाने का सुझाव दिया जो सरकार द्वारा निर्धारित औद्योगिक प्राथमिकताओ को अनुसरण करे। भारत सरकार की 1970 औद्योगिक लाइसेन्स नीति थोडे से रद्दोबदल के पश्चात् दत्त समिति की सिफारिशो के अनुकूल ही थी।

8 औद्योगिक लाइसेन्स नीति (1970)

18 फरवरी 1970 को भारत सरकार ने नयी औद्योगिक लाइसेन्स नीति की घोषणा करके दत्त समिति की बहुत सी सिफारिशो को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार आन्तरक उद्योगो (*Core Industries*) की सूची तैयार की जिनमे मूल महत्त्वपूर्ण और सामरिक उद्योगो को शामिल किया गया। इन उद्योगो के लिए अनिवार्य आदान (Essential inputs) प्राथमिकता के आधार पर उपलब्ध कराने का निर्णय किया गया।

आन्तरक उद्योगो की सूची (List of Core Industries)

कृषि प्रधान (1) उर्वरक (*i*) नाइट्रोजन (*ii*) फास्फोरस (2) कीटनाशक (केवल मूल रसायन) (3) ट्रैक्टर और पावर टिल्लर, (4) राक फासफेट और पाइराइद, (5) लौह और इस्पात (*i*) लौह अयस्क (*ii*) कच्चा लोहा और इस्पात (*iii*) मिश्रधातु और विशेष इस्पात (6) अलौह धातुए पैट्रोलियम (*i*) तेल की खोज और उत्पादन (*ii*) पैट्रोल परिष्कृत करना (*iii*) चुने हुए पैट्रोलियम सम्बन्धी रसायन कोकिग कोयला (Coking Coal) भारी औद्योगिक मशीनरी जहाज निर्माण और ड्रेजर, अखबारी कागज और इलैक्ट्रोनिक्स। जो उद्योग औद्योगिक नीति 1956 की 'क अनुसूची के आधीन सरकारी क्षेत्र के लिए प्रारक्षित किए गए थे वे भी आन्तरक उद्योग की सूची मे रखे गये।

आन्तरक क्षेत्र (Core Sector) के अतिरिक्त जिन नए औद्योगिक प्रस्तावो की राशि 5 करोड रुपये से अधिक होगी उन्हे भारी विनियोग क्षेत्र मे रखा गया। 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव मे दिए गए उद्योग जिनका विकास सरकारी क्षेत्र की जिम्मेदारी है को छोडकर बडे औद्योगिक घरानो विदेशी कम्पनियो और उनके अनुषगियो को आन्तरक एव भारी विनियोग क्षेत्र मे उत्पादन इकाइया कायम करने की इजाजत दी गयी। इस प्रकार अन्य उद्यमकर्त्ता वर्गों को शेष क्षेत्रो मे विनियोग करने के अवसर दिए गए।

दत्त समिति द्वारा प्रस्तावित 'साझे क्षेत्र (Joint Sector) की धारणा को भी सिद्धान्त रूप मे स्वीकार कर लिया गया। सरकार का यह प्रयास था कि गैर सरकारी क्षेत्र की मुख्य प्रायोजनाओ मे इन दो क्षेत्रो मे इसे लागू करे। मध्यम क्षेत्र मे जहा एक करोड रुपये के विनियोग का प्रस्ताव हो बडे औद्योगिक घरानो को छोडे अन्य उद्यमकर्त्ताओ को लाइसेन्सो के लिए आवेदन पत्र देने होगे। केवल सावधानी इस बात में बर्तनी होगी कि दुर्लभ विदेशी मुद्रा (Scarce foreign ex change) का अपव्यय न हो।

लघु क्षेत्र-लघु क्षेत्र के लिए आरक्षण (Reservation) की वर्तमान नीति जारी रखी जाएगी और इस आरक्षण को उन क्षेत्रो मे बढाया जाए, जहा इस क्षेत्र की उत्पादन से माग को पर्याप्त मात्रा मे पूरा करने की आशा हो।

सहकारी क्षेत्र-कषि उद्योगो विशेषकर गन्ना पटसन और अन्य कृषि वस्तुओ का विधायन (Processing) करने वाले उद्यमो मे सहकारी क्षेत्र के प्रार्थियो को लाइसेन्स जारी करने मे प्राथमिकता देने का निर्णय किया गया।

छूट की सीमा (Exemption Limit) -वर्तमान उद्यमो के महत्त्वपूर्ण विस्तार और नए उद्यमो की स्थापना के लिए लाइसेन्स की छूट सीमा 25 लाख रुपए से बढाकर 1 करोड रुपए कर दी गयी। इस राशि का अर्थ भूमि बिल्डिंग और मशीनरी मे अचल परिसम्पत (Fixed assets) से है। इसके अतिरिक्त (*i*) उत्पादन इकाई ऐसी होनी चाहिए जो अधिक बडे और औद्योगिक घरानो से सम्बन्धित न हो। (*ii*) उत्पादन इकाई ऐसी होनी चाहिए जिसे मशीनरी और सामान के लिए *10 लाख रुपये से अधिक या कुल विनियोग के 10 प्रतिशत* से अधिक (जो भी कम हो) की विदेशी मुद्रा की आवश्यकता न पडे।

सरकारी वित्तीय संस्थान साझे क्षेत्र की धारणा को सिद्धान्त रूप मे स्वीकार किए जाने के पश्चात् भविष्य मे इस बात का आश्वासन देना होगा कि ऐसी मुख्य प्रायोजनाओ जिनमे सरकारी वित्त सस्थानो से काफी मात्रा मे वित्तीय सहायता प्राप्त हो मे प्रबन्ध स्तर पर, सहभागिता की अधिक मात्रा का प्रबन्ध किया जाएगा। सरकारी वित्तीय सस्थान भी अपनी वित्तीय सहायता की शर्त के रूप मे भविष्य मे दिए गए ऋण और जारी किए गए ऋणपत्रो पूर्ण या आंशिक रूप मे एक विशेष अवधि मे हिस्सा पूजी मे बदलने का अधिकार रखेगे। जहा तक भूतकाल मे दिए गए ऋणो एव ऋण पत्रो का सम्बन्ध है सरकारी वित्त सस्थानो को दोषी फर्मों के साथ सन्धि कर इन्हे हिस्सा पूजी (Equity capital) मे बदलने का अधिकार होगा।

9 औद्योगिक लाइसेस प्रणाली मे उदारीकरण की लहर

(Liberalisation Wave in Industrial Licensing)

सरकार ने 2 फरवरी 1973 को औद्योगिक लाइसेस नीति प्रस्ताव की घोषणा की जिसमे लाइसेस नीति मे कई

संशोधन किए गए। इसकी मुख्य बाते निम्नलिखित हैं

(क) राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए महत्त्वपूर्ण आन्तरक उद्योगो (Core Industries) और आन्तरक उद्योगों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखने वाले उद्योगो और ऐसे उद्योगो को जिनमे निर्यात सामर्थ्य (Export potential) बहुत अधिक है क्रान्तिक एव अत्यन्त महत्त्व के उद्योग माना गया। इन उद्योगो को 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव के अनुसार 'क' अनुसूची में रखा गया। इन उद्योगो को सरकारी क्षेत्र में प्रारक्षित करना होगा।

बडे औद्योगिक घरानो (जिनकी परिसम्पत्ति 20 करोड रुपए से कम न हो) को अन्य प्रार्थियो के साथ परिशिष्ट 1 मे शामिल किए गए उद्योगो मे भाग लेने और उन्हे स्थापित करने की अनुमति होगी।

(ख) विदेशी फर्मों, उनके अनुषंगियो और उनकी शाखाओं को अन्य प्रार्थियो के साथ परिशिष्ट 1 मे शामिल किए गए उद्योगो मे भाग लेने की अनुमति होगी।

(ग) सहकारी समितियों, छोटे एव मध्यम उद्यमकर्त्ताओ को जनोपभोग की वस्तुओ (Mass consumption goods) के उत्पादन मे भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जायेगा। इस क्षेत्र को भी अधिकाधिक दायित्व लेना होगा।

(घ) सरकार प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रो मे मिश्रित क्षेत्र (Joint Sector) को प्रोन्नति उपाय (Promotional instrument) के रूप मे विकसित करेगी।

1975 की औद्योगिक लाइसेंस नीति

25 अक्टूबर, 1975 को सरकार ने औद्योगिक लाइसेन्स नीति में मुख्य परिवर्तन कर इसे और अधिक उदार बना दिया। सरकार ने 21 उद्योगो को लाइसेन्स प्राप्त करने से छूट दे दी। इसके अतिरिक्त 30 अन्य महत्त्वपूर्ण उद्योगो मे विदेशी फर्मों और एकाधिकारी घरानों (Monopoly houses) को लाइसेन्स प्राप्त क्षमता के ऊपर असीमित विस्तार करने की इजाजत दे दी।

5 नवम्बर, 1975 को सरकार ने एकाधिकारी घरानो तथा विदेशी फर्मों द्वारा स्थापित अनधिकृत क्षमता (Unauthorised capacity) को कानूनी बनाने की विधि की घोषणा कर दी।

जाहिर है कि नयी परिस्थिति मे औद्योगिक लाइसेन्स प्रणाली अर्थहीन हो गयी। 1972 मे 65 औद्योगिक घरानो की अनधिकृत क्षमता को कानूनी घोषित कर दिया गया। 1973 मे विशाखन (Diversification) की आड मे 100 प्रतिशत क्षमता विस्तार की इजाजत दे दी गयी। 1975 मे पहले 25 प्रतिशत अतिरिक्त क्षमता को सामान्य विस्तार के अधीन कानूनी घोषित किया गया, बाद मे 25 प्रतिशत और अतिरिक्त क्षमता को स्वत लाइसेन्स प्राप्ति (Automatic licensing) के आधीन कानूनी मान लिया गया। मध्यम और लघु क्षेत्र मे तो पहले ही लाइसेन्स नीति कार्य नहीं कर रही थी बडे पैमाने के क्षेत्र मे चाहे इसे औपचारिक रूप से हटाया नहीं गया परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि विदेशी फर्में और बडे औद्योगिक घराने पहले अनधिकृत रूप मे अपनी क्षमता का विस्तार कर लेते हैं और सरकार बाद मे इसे वैध घोषित कर देती है। जाहिर है कि सरकार के सामने उत्पादन बढाना प्रधान लक्ष्य बन गया है और औद्योगिक घरानो और विदेशी फर्मों की आर्थिक शक्ति को सीमित करना गौण उद्देश्य होता जा रहा है।

उदारीकरण सम्बन्धी उपाय (1985)

1985 मे सत्ता सभालने के फौरन बाद प्रधानमत्री श्री राजीव गाधी की सरकार ने लाइसेन्स नीति को उदार बनाने की दिशा मे भारी परिवर्तन किए ताकि बडे औद्योगिक घरानो को विशेष रूप मे एकाधिकार तथा प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार और विदेशी मुद्रा विनियमन कानून (Foreign Exchange Regulation Act) के सीमाबन्धनो से मुक्त किया जाए। इन परिवर्तनो का साधारणतया बल इस बात पर था कि सरकारी नियत्रण को कम किया जाए। औद्योगिक नीति मे निम्नलिखित मुख्य परिवर्तन किए गए।

1 मात्रा सम्बन्धी मितव्ययताओ और आधुनिकीकरण के नाम पर लाइसेन्स प्राप्त क्षमता मे उदारता 1985 मे नीति सम्बन्धी परिवर्तनों मे उद्योग के तीव्र गति से विकास की कल्पना की गयी इसके द्वारा मात्रा सम्बन्धी मितव्ययताए (Economies of scale) और आधुनिकीकरण प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया जिसका अर्थ अद्यतन तकनालाजी का प्रयोग था। इस उद्देश्य से लाइसेन्स प्राप्त क्षमता में उदारता लायी गयी जो इकाइया मात्रा सम्बन्धी मितव्ययताए प्राप्त करना चाहती थी उनकी क्षमता के स्वत विस्तार की स्वीकृति दी गयी और आधुनिकीकरण के लिए क्षमता मे 49 प्रतिशत की वृद्धि की इजाजत दी गयी।

जनवरी 30 1986 को सरकार ने 23 उद्योगो मे एम आर टी पी और FERA कम्पनियों को लाइसेन्स से मुक्त कर दिया बशर्ते कि वे केन्द्र द्वारा घोषित किसी भी पिछडे क्षेत्र मे स्थित हो।

2 विस्तृत वर्गीकरण की अवधारणा (Concept of Broad banding) को लागू करना उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए और विनिर्माताओ को अपने उत्पाद मिश्रण (Product mix) मे लोचशीलता उपलब्ध कराने के लिए ताकि वे बाजार माग के अनुसार उत्पादन को ढाल सके बहुत सी मदो मे विस्तृत वर्गीकरण की धारणा लागू की गयी

है। इनमे उल्लेखनीय हैं मशीनी औजार, मोटर चालित दो पहियो की गाडिया, मोटर चालित चार पहियो की गाडिया कागज और कागज का गुद्दा रसायन औषध पेटो रसायन उर्वरक मशीनरी के आधार पर कोई भी विनिर्माता किसी भी मद का उत्पादन कर सकता है जब कि कुल उत्पादन कुल लाइसेन्स प्राप्त क्षमता से नहीं बढ जाता।

3 एम आर टी पी कम्पनियो की परिसम्पत् की सीमा को बढाना एम आर टी पी कम्पनियो की परिसम्पत् की सीमा (Asset limit) 20 करोड रुपये से बढाकर 100 करोड रुपये कर दी गयी। परिणामत 112 कम्पनिया इस अधिनियम के प्रभाव क्षेत्र से मुक्त हो गयी।

इसके अतिरिक्त, सरकार ने मई 1985 मे 27 उद्योगो को MRTP अधिनियम की धारा 27 से छूट देने के अपने निर्णय की घोषणा की और फिर दिसम्बर, 1985 मे इनमे से 22 उद्योगो मे MRTP और FERA कम्पनियो को लाइसेन्स प्राप्त करने से छूट दे दी।

साथ ही केवल ऐसे औद्योगिक लाइसेन्स सम्बन्धी प्रस्ताव जिनमे 50 करोड रुपये से अधिक विनियोग होगा आर्थिक मामलो पर मत्रिमण्डल समिति की स्वीकृत के लिए भेजे जाएगे जबकि पहले यह सीमा 20 करोड रुपये थी।

4 लघुस्तर की इकाइयो सम्बन्धी रियायते लघु स्तर इकाइयो की विनियोग की सीमा 20 लाख रुपये से बढाकर 35 लाख रुपये कर दी गयी और अनुषगियो (Ancillaries) की 35 लाख रुपये से 45 लाख रुपये। किन्तु 200 मदे जो पहले आरक्षण सूची (Reservation list) पर थीं इस सूची से हटा दी गयीं और मध्यम तथा बडे पैमाने के क्षेत्र को खोल दी गयीं।

औद्योगिक लाइसेस व्यवस्था का उदारीकरण (1988)

केन्द्र सरकार ने जून 1988 मे औद्योगिक लाइसेस प्रणाली के और अधिक उदारीकरण की घोषणा की और इसके साथ साथ पिछडे क्षेत्रो के औद्योगीकरण के लिए प्रोत्साहनो की भी घोषणा की

गैर एम आर टी पी और गैर फैरा कम्पनियो को ऐसी परियोजनाओ के लिए लाइसेस लेने की जरूरत नहीं जिनमे अचल परिसम्पत मे विनियोग 50 करोड रुपये तक हो यदि वे ऐसे क्षेत्रो मे स्थित हैं जो केन्द्र द्वारा पिछडे क्षेत्र घोषित किए जा चुके है और यह सीमा गैर पिछडे क्षेत्र मे स्थित परियोजनाओ के लिए 15 करोड रुपये होगी। ऐसी उद्योगो की सख्या जिनकी स्थापना के लिए लाइसेस लेना अनिवार्य है 56 से घटाकर 26 कर दी गयी। इस नयी नीति के आधीन गैर लाइसेसी क्षेत्र का विस्तार उन इकाइयो तक कर दिया गया है जो अपने आदानो (Inputs) के 30 प्रतिशत तक आयात करती हैं जबकि इसके विरुद्ध पहले यह सीमा 15 प्रतिशत थी।

पिछडे क्षेत्रो मे औद्योगीकरण को प्रोन्नत करने के लिए, जो नये ओद्योगिक उद्यम पिछडे क्षेत्रो मे स्थापित किए जाएगे उन्हे आय कर अधिनियम की धारा 80 HH के आधीन अपने लाभ के 20 प्रतिशत तक 10 वर्षों की अवधि के लिए आयकर से राहत प्राप्त होगी। इसके अतिरिक्त आयकर अधिनियम की धारा 80 I के आधीन सभी नये उद्यमो को आयकर मे राहत के रूप मे 8 वर्षों की अवधि के लिए अपने लाभ के 20 प्रतिशत की कटौती का अधिकार होगा। इन दोनो धाराओ के लाभ अनुसूचित पिछडे क्षेत्रो मे सचयी रूप मे औद्योगिक उद्यमो को प्राप्त होगे।

10 औद्योगिक नीति (1990)
(Industrial Policy, 1990)

उद्योग मत्री श्री अजीत सिह ने 31 मई 1990 को जनता दल सरकार की उद्योग नीति की घोषणा की। नीति मे इस बात पर बल दिया गया कि रोजगार जनन (Employment generation) उद्योग के ग्रामीण क्षेत्रो मे फैलाव और छोटे उद्योगो के निर्यात मे भाग को बढाया जाए। इसके लिए औद्योगिक नीति मे निम्नलिखित उपाय करने का निर्णय किया गया

लघु स्तर उद्योगो सम्बन्धी उपाय

(*i*) प्लान्ट और मशीनरी मे विनियोग के लिए 1985 मे निश्चित की गयी अधिकतम सीमा लघु स्तर उद्योगो के लिए वर्तमान 35 लाख रुपये से बढा कर 60 लाख रुपये कर दी गयी है और अनुषगी इकाइयो (Ancillary units) के लिए यह 45 लाख से बढा कर 75 लाख रुपये कर दी गयी है।

(*ii*) पिद्दी क्षेत्र (Tiny sector) के विनियोग की अधिकतम सीमा 2 लाख रुपये से बढाकर 5 लाख रुपये होगी।

(*iii*) लघु स्तर क्षेत्र मे तैयार की जाने वाली वस्तुओ की स्पर्द्धाशक्ति को उन्नत करने के लिए आधुनिकीकरण और तकनालाजी उन्नति (Technological upgradation) के प्रोग्राम लागू करने होगे। लघु स्तर विकास सस्था की छत्रछाया में एक उच्च तकनालाजी विकास केन्द्र कायम किया जाएगा जिसके आधीन बहुत से तकनालाजी केन्द्र, टूल कक्ष प्रक्रिया एव उत्पाद विकास केन्द्र, परीक्षण केन्द्र आदि स्थापित किए जाएगे।

(*iv*) लघु स्तर उद्योगो को पर्याप्त और उचित समय पर उधार उपलब्ध कराने के लिए एक नया शिखर बैंक (Apex Bank) जिसका नाम भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (Small Industries Development Bank of India) रखा गया है

पहले ही स्थापित किया जा चुका है। इसका एव अन्य वाणिज्य बेको का एक मुख्य कार्य पिछड़े एव ग्रामीण उद्योगो के लिए सावधि ऋणो (Term loans) ओर कायकारी पूजी दोनो के रूप मे इनकी आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुए अधिक उधार उपलब्ध कराना ह।

(1) खादी एव ग्राम उद्योग आयोग ओर खादी एव ग्राम उद्योग बोर्डो की क्रियाओ का विस्तार किया जाएगा और इन सस्थाओ को ओर मजबूत बनाया जाएगा ताकि वे ग्राम तथा कुटीर उद्योगो म काम करने वाले कारीगरा को अधिक सहायता कर सक।

कृषि विधायन उद्योग (Agro processing industries)

कषि विधायन उद्योगो मे जहा भारी सफलता प्राप्त हुई वहा उत्पादक और विधायन कर्त्ताओ का एकीकरण किया गया, जैसे कि चानी उद्योग मे। अन्य कषि आधारित उद्योगो के लिए भी यह आवश्यक हे कि उत्पादन एव विधायन इकाइयो मे घनिष्ठ सम्बन्ध कायम किया जाए। अत औद्योगिक नाति मे ऐसी परियोजनाओ की प्रोन्नति पर विशेष बल दिया जाएगा जो साझे स्वामित्व के आधार पर गठित की जाएगा। उत्पादकों को सहकारी समितियो के ढाचे या इससे मिलते जुलते सस्थानात्मक ढाचे की परिधि मे विधायन इकाइया स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। इससे कषि उत्पादन बढाने के लिए बेहतर तकनालाजी को पहुचाना भी निश्चित हो सकेगा। जिन क्षेत्रो मे इकाइया को लाइसेंस प्राप्त करने की जरूरत हे उनमे भी नाति यह होगी कि विधायन इकाइया ग्राम क्षेत्रो मे लगाई जाए जहा उत्पादन केन्द्रित ह। कच्चे माल की समीपता के लाभ के अतिरिक्त इससे उद्योग के विकेन्द्रीकरण मे मदद मिलेगा और ग्राम क्षेत्रा मे रोजगार बढेगा।

कषि विधायन उद्योग को उधार-आवण्टन (Cred t al location) में वित्तीय सस्थानो से उच्च प्राथमकता प्राप्त होगी।

औद्योगिक स्वीकृतियो (Industrial approvals) के लिए कार्य पद्धति

भारतीय उद्योग को अन्तर्राष्टाय दृष्टि से अधिक प्रतिस्पर्द्धी बनाना होगा। इसे अनावश्यक अफसरशाही जजारो से भी मुक्त कराने की जरूरत हे ओर इसके लिए सरकार से प्राप्त करने वाली स्वीकतियों को सख्या घटानी होगी। जबकि सरकार ससाधनो के सीमाबन्धन को दृष्टि मे रखते हुए बडी परियोजनाओ का परीक्षण करती रहेगी मध्यम स्तर के विनियोग सम्बन्धा निर्णय उद्यमकत्ताओ पर हा छोड दिए जाएगे। इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित निणय किये गये ह

लाइसेंस हटाना गेर पिछडे क्षेत्रो मे 25 करोड रुपये तक अचल परिसम्पत मे विनियोग और केन्द्र सरकार द्वारा अनुसूचित पिछडे क्षेत्रो मे 75 करोड रुपये तक विनियोग के लिए सभी इकाइयो को लाइसेस प्राप्त करने या पजीकरण करने से छूट होगी।

पूजी वस्तुओ का आयात पूजी वस्तुओ के आयात के लिए किसी भी उद्यमकर्त्ता को इकाई के लिए आवश्यक प्लान्ट एव मशानरी के कुल मूल्य के 30 प्रतिशत उतार मूल्य (Landed value) तक आयात करने का अधिकार होगा।

कच्चे माल और हिस्से कच्चे माल आर हिस्सा के आयात के लिए वार्षिक उत्पादन के फेक्टी द्वारा मूल्य (Ex factory value) के 30 प्रतिशत मूल्य तक आयात की इजाजत होगी। उत्पादन के फेक्टी द्वार मूल्य मे उत्पादन की मद पर उत्पादन शुल्क को शामिल नहीं किया जाएगा। खुले सामान्य लाइसेस (Open General Licence) पर उपलब्ध कच्चे माल एव हिस्सो पर भी 30 प्रतिशत का सीमा लागू होगी।

विदेशी सहयोग (Foreign Collaboration) तकनालाजी हस्तातरण (Transfer of technology) के सम्बन्ध मे यदि उद्यमकत्ता तकनालाजी का आयात करना आवश्यक समझता हे जो वह विदेशी सहयोगी से सन्धि कर सकता हे बशर्ते कि रायल्टा भुगतान (Royalty payment) कुल [illegible] विक्रय के 5 प्रतिशत से अधिक आर नियात के 8 प्रतिशत से अधिक न हो।

विदेशी विनियोग (Foreign investment) तकनालाजा के प्रभावी अन्तर्प्रवाह को ध्यान म रखत हुए हिस्सा पूजी मे 40 प्रतिशत तक विनियोग स्वचालित रूप मे करने की इजाजत होगी। ऐसे प्रस्तावो मे भा आयातित माल की उतार लागत (Landed value) प्लान्ट एव मशानरा के मूल्य के 30 प्रतिशत से बढना चाहिए।

निर्यात प्रेरित इकाइया (Export Oriented Units) शत प्रतिशत नियात इकाइया ओर नियात विधायन क्षेत्रो (Ex port Processing Zones) को भी 75 करोड की विनियोग सीमा तक लाइसेंस प्राप्त करने स छट होगी।

औद्योगिक नीति (1990) का मूल्यांकन

नहा उद्योग नाति (1990) का उद्देश्य लघु स्तर के उद्योगो एव कषि पर आधारित उद्योगा को प्रोन्नत करना हे इन्हे बडे उद्योगो की घुसपठ के विरूद्ध सुरक्षित करना होगा अन्यथा लघु उद्योगा को उन्नत करने का उद्देश्य नाममात्र बन कर ही रह जाएगा। बडे व्यापारिक घराना आर बहुराष्ट्राय निगमो का आक्रमण जिसके द्वारा ये लघु क्षेत्र के जनोपभोग की वस्तुओ मे बाजार भाग को हथियाना चाहते ह एक गम्भार रूप धारण कर गया है। उ [illegible] राज्य सरकार [illegible]

शक्ति लघु क्षेत्र के आरक्षण को प्रभावी रूप मे सरक्षित नहीं करती लघु स्तर क्षेत्र की रोजगार जनन प्रक्रिया पर बडे व्यापारिक घरानो की ग्रसनशील क्रियाओ का गम्भीर दुष्प्रभाव पडेगा।

औद्योगिक नीति जहा तक उदारीकरण और लाइसेस हटाने का सम्बन्ध है राजीव गाधी के आधीन चलायी जा रही काग्रेस (इ) की नीति को आगे बढाती है। अन्धा धुन्ध और अविनियमित उदारीकरण के फलस्वरूप लघु स्तर इकाइयो को बाजार से बाहर निकालने के रूप मे गम्भीर विकृतिया पैदा हो सकती है इसी प्रकार अनावश्यक मदो के आयात की स्वीकति देने से या पूजी वस्तुओ के *आयात की इजाजत* देने से जबकि देशीय क्षमताओ का अल्प प्रयोग हो रहा हो सरकार ने *अन्धा धुन्ध उदारीकरण के कुप्रयोग या दुरुपयोग* के विरुद्ध किसी प्रकार के सरक्षण की व्यवस्था नहीं की। विदेशी *सहयोग को अप्रतिबन्धित स्वतत्रता देने* का परिणाम भूतकाल मे भी यह हुआ था कि ऐसी फर्मे जनोपभोग वस्तुओ के क्षेत्र मे प्रवेश कर गयीं और तकनालाजी के हस्तातरण की अपेक्षा विदेशी सहयोग द्वारा आर्थिक विकास की प्रक्रिया आरम्भ हो गयी। उद्योग नीति आठवीं योजना के दिशा निर्देश पत्र मे निर्धारित लक्ष्यो को पूरा करने की दृष्टि से बहुत कमजोर जान पडती है। यह सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यभाग की पूर्णतया उपेक्षा करती है। यह कहीं अधिक बेहतर होगा कि आद्योगिक नीति मे सशोधन किया जाए ओर एक विनियामक प्रक्रिया (Regulatory mechanism) की व्यवस्था की जाए जो विनियोग की दिशा निर्देश करे इसकी बजाए कि बाजार प्रक्रिया की प्रभाविता मे पूर्ण विश्वास रखा जाए। जनता दल सरकार के गिरने के पश्चात् इस नीति को अमल मे नहीं लाया गया।

11 नयी औद्योगिक नीति (1991) (New Industrial Policy, 1991)

श्री नरसिम्हा राव के नेतृत्व मे स्थापित काग्रेस (इ) की सरकार ने जुलाई 24 1991 को नयी औद्योगिक नीति की घोषणा की। इस औद्योगिक नीति का मुख्य उद्देश्य भारतीय औद्योगिक अर्थव्यवस्था को अनावश्यक नोकरशाही नियन्त्रण की जकड से मुक्त करना था भारतीय अर्थव्यवस्था मे उदारीकरण चालू करना था ताकि विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण किया जा सके प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग पर लगे हुए प्रतिबन्धो को हटाना था और देशी उद्यमकर्त्ताओं को एकाधिकार एव प्रतिबन्धात्मक व्यापार कानून द्वारा लगायी गयी रुकावटो से मुक्त करना था। इसके अतिरिक्त ऐसे सार्वजनिक उद्यम जिनमे प्रत्याय दर (Rate of return) बहुत *थोडी थी या जो कई वर्षो से घाटे पर चल रहे थे* उनके भार से मुक्त होना था। इन सभी सुधारो को दृष्टि मे रखते हुए नयी औद्योगिक नीति निम्नलिखित क्षेत्रो मे पहल करना चाहती था (*i*) औद्योगिक लाइसेस प्रणाली (*ii*) विदेशी विनियोग (*iii*) विदेशी तकनालाजी नीति (*iv*) सार्वजनिक क्षेत्र सम्बन्धी नीति ओर (*v*) एम आर टी पी कानून।

औद्योगिक लाइसेस नीति (Industrial Licensing Policy) तत्पश्चात् औद्योगिक लाइसेस कुछ विशेष उद्योगों को छोड विनियोग स्तर का ध्यान किए बिना सभी उद्योगों के लिए हटा लिए जाएगे। इस नीति के मुख्य पहलू निम्नलिखित थे

(*i*) कुछ उद्योगा की छोटी सी सूची को छोड अन्य सभी औद्योगिक प्रोजैक्टो के लिए औद्योगिक लाइसेस हटा लिए जाएंगे। परिशिष्ठ 2 की सूची मे ऐसे उद्योग शामिल किए गए जो *सुरक्षा एव सामरिक महत्त्व से सम्बन्धित हैं जो सामाजिक* कारणो खतरनाक रसायन और पर्यावरण सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण *कारणो और सर्वोत्कृष्ट उपभोग (Elite consumption)* की मदो से जुडे हुए हैं।

(*ii*) ऐसे क्षेत्र जिनमे *सुरक्षा एव सामरिक महत्त्व* का प्रभुत्व है सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सरक्षित रहेगे। (परिशिष्ट 1)

(*iii*) ऐसे *प्राजैक्ट जिनमे आयातित पूजी वस्तुओ* की आवश्यकता है उन्हे एक दम स्वीकृति दे दी जायेगी।

(*iv*) *ऐसे शहर जिनकी जनसख्या 10 लाख से कम है* उनमे केन्द्र सरकार से औद्योगिक इकाइया स्थापित करने के *लिए स्वीकृति लेने की कोई जरूरत नहीं होगी* (केवल अनिवार्य लाइसेस वाले उद्योगो को छोडकर)। 10 लाख से *अधिक जनसख्या वाले शहरो मे केवल प्रदूषण मुक्त उद्योगो* जैसे इलैक्टोनिक्स साफ्टवेयर और मुद्रण को छोड अन्य सभी उद्योग शहर की हद से 25 किलोमीटर की दूरी पर लगाये जाएंगे।

(*v*) औद्योगिक लासेस से छूट वर्तमान इकाइयो के सभी *महत्त्वपूर्ण विस्तार सम्बन्धी प्रस्तावो पर भी लागू होगी।*

परिशिष्ट 1 सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सरक्षित उद्योगो की प्रस्तावित सूची

1 अस्त्र शस्त्र और सम्बन्धित सेन्य सामग्री प्रतिरक्षा हवाई जहाज और जगी जहाज 2 परमाणु शक्ति 3 कोयला और लिग्नाइट, 4 खनिज तेल 5 लौह अयस्क मैंगनीज अयस्क क्रोम अयस्क जिपसम गन्धक सोने और हीरो का खनन 6 ताबा सीसा जस्ता टिन मोलबडिनम एव वोलफ्रैम का खनन 7 परमाणु शक्ति की अनुसूची मे दिए गए खनिज 8 रेलवे परिवहन।

परिशिष्ट 2 उन उद्योगो की सूची जिनके बारे मे औद्योगिक लाइसेस अनिवार्य होगे।

1 कोयला और लिग्नाइट 2 (रूक्ष को छोड) पेट्रोलियम आर इसके आसव उत्पाद (Distillate products) 3

अल्कोहल पेय पदार्थों से मद्य बनाना एव इसका क्षरण, 4 चीनी 5 पशुओ की चरबी एव तेल 6 सिगार और तम्बाकू के सिगरेट और तम्बाकू की स्थानापत्ति निर्मित वस्तुए, 7 एसबेस्टास और एसबेस्टास पर आधारित वस्तुए, 8 प्लाई वुड सजावटी लकडी और अन्य लकडी पर आधारित वस्तुए जैसे अणु बोर्ड, मध्यम अणु वाले फाइबर बोर्ड ब्लाक बोर्ड 9 कच्ची खाले चमडा और कमाया हुआ चमडा 10 कमाये हुये पशुलोम (Furskins) 11 मोटर कारे, 12 कागज एव अखबारी कागज, 13 इलेक्टोनिक्स एरोस्पेस एव प्रतिरक्षा सामग्री, 14 औद्योगिक विस्फोटक (Industural explosives) 15 खतरनाक रसायन 16 औषध निर्माण, 17 मनोरजन इलैक्टानिक्स (वी सी आर., रगीन टी वी., केसेट प्लेयर, टेपरिकार्डर) 18 श्वेत वस्तुए (White goods) जैसे रेफ्रिजरेटर, घरेलू बर्तन, कपडा धोने की मशीने माइक्रोवेव ओवन, एयर कडीशनर)।

नोट—अनिवार्य लाइसेस के प्रावधान लघु स्तर के उद्योगों पर लागू नहीं होगे चाहे वे ऊपर दी गई सूची मे से किसी भी मद का उत्पादन करे।

विदेशी विनियोग (Foreign Investment)—उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रो मे विदेशी विनियोग को आमन्त्रित करने के लिए जिनमें भारी विनियोग और उन्नत तकनालाजी की आवश्यकता है ऐसे उद्योगो मे प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग (Direct foreign investment) के सम्बन्ध मे यह निर्णय किया गया है कि 51 प्रतिशत तक विदेशी हिस्सा पूजी की स्वीकृति दे दी जाए।

विश्व बाजारो मे भारतीय वस्तुओ के निर्यात को प्रोन्नत करने के लिए सरकार विदेशी व्यापार कम्पनियो (Foreign Trading Companies) को प्रोत्साहित करेगी ताकि वे भारतीय निर्यातको की निर्यात सम्बन्धी क्रियाओ मे सहायता करे।

सरकार एक विशेष सत्तायुक्त बोर्ड स्थापित करेगी जो बडी अर्न्तराष्ट्रीय फर्मों के साथ बातचीत करेगा ताकि कुछ चुने हुए देशो मे प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग के प्रस्ताव स्वीकृत किये जा सके।

विदेशी तकनॉलाजी (Foreign Technology)—भारतीय उद्योग मे इच्छित तकनालाजीय गतिवाद (Technological dynamism) लाने के लिए सरकार उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगो मे तकनालाजी सन्धियो के लिए स्वत स्वीकृति (Automatic approval) प्रदान करेगी।

यह सुविधा अन्य उद्योगो को भी प्राप्त होगी यदि ऐसी संधियों मे विदेशी मुद्रा की आवश्यकता न हो। भारतीय कम्पनियो को अपने विदेशी सहयोगियों के साथ अपनी वाणिज्यिक सूझ बूझ के अनुसार तकनालाजी हस्तातरण (Technology transfer) की शर्ते तय करने की इजाजत होगी।

सार्वजनिक क्षेत्र सम्बन्धी नीति (Public Sector Policy)—सार्वजनिक क्षेत्र के बारे मे प्रारम्भिक जोश जिसके बल पर यह नये औद्योगिक एव तकनालाजीय योग्यता वाले क्षेत्रो मे दाखिल हुआ, अब समाप्त हो गया है। सार्वजनिक क्षेत्र के निष्पादन सम्बन्धी बहुत सी समस्याए उत्पन्न हो गई हैं—उत्पादिता मे अपर्याप्त वद्धि, घटिया प्राजक्ट प्रबन्ध स्टाफ का आवश्यकता से अधिक होना, लगातार तकनालाजीय उन्नयन (Technological upgradation) की कमी एव मानवीय ससाधन विकास की ओर अपेक्षाकृत कम ध्यान देना आदि। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक उद्यमो मे विनियुक्त पूजी पर प्रत्याय दर (Rate of Return) भी कम ही रही है। परिणामत बहुत से सार्वजनिक उद्यम सरकार के लिए सम्पत्ति न बनकर एक बोझ बन गये है। अत अब सरकार के लिए यह अनिवार्य हो गया है कि वह सार्वजनिक उद्यमो के बारे मे क्या नीति अपनाये। ऐसी इकाइया जो इस समय कुछ हद तक दोषपूर्ण ढग से चल रही हैं परन्तु जिनको जीवनक्षम बनाया जा सकता है उनमे सरचनात्मक सुधार किए जाने चाहिएं ताकि उनको नया जीवन प्राप्त हो सके। भविष्य मे सावजनिक क्षेत्र के विकास मे प्राथमिकता क्षेत्र (Priority areas) निम्नलिखित होगे—

(क) अनिवार्य अध सरचना वस्तुए (Infrastructure goods) एव सेवाए।

(ख) तेल एव खनिज ससाधनो की खोज एव विदोहन।

(ग) ऐसे क्षेत्रो मे तकनालाजीय विकास और निमाण सामर्थ्य को परिपोषित करना जो अर्थव्यवस्था के दीर्घकालीन विकास की दृष्टि से क्रान्तिक महत्त्व रखते है ओर जिनमे निजी क्षेत्र द्वारा विनियोग अपर्याप्त है।

(घ) ऐसी वस्तुओ का निमाण जिनमे सामरिक कारणतत्त्व प्रधान स्थान रखते हैं जैसे प्रतिरक्षा सामग्री।

इन बातो को ध्यान मे रखते हुए सरकार ने निम्नलिखित निर्णय किये—

(*i*) सार्वजनिक क्षेत्र के आधीन विनियोग क्षेत्र की समीक्षा की जाएगी ताकि सार्वजनिक क्षेत्र को अध सरचना हाई टेक (Hi tech) और सामरिक महत्त्व के उद्योगो तक सीमित रखा जा सके। भले ही सार्वजनिक क्षेत्र के लिए कुछ क्षेत्र सरक्षित रखे जाए किन्तु कई अन्य क्षेत्र जो अभी तक सार्वजनिक क्षेत्र के लिए रिजर्व थे, निजी क्षेत्र के लिए चयनात्मक रूप मे खोल दिये जाएगे। इसी प्रकार सावजनिक क्षेत्र को भी ऐसे क्षेत्रो मे प्रवेश करने की स्वाकति दी जाएगी जो इसके लिए सरक्षित नहीं हैं।

(*ii*) ऐसे सार्वजनिक उद्यम जो जीर्ण रूप मे बीमार हैं और जिनके सक्षम बनने की कोई सभावना नहीं उन्हे

पुनरुत्थान/पुन स्थापना के लिए औद्योगिक एव वित्तीय पुन निर्माण बोर्ड (Board of Industrial and Financial Re construction) को सौंप दिया जाएगा। श्रमिको के हितो की रक्षा के लिए *सामाजिक सुरक्षा प्रक्रिया* (Social Security Mechanism) कायम की जाएगी ताकि विस्थापित श्रमिको को राहत पहुचाई जा सके।

(*iii*) ससाधन गतिमान करने एव सार्वजनिक सहयोग को बढावा देने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र मे सरकारी हिस्सा पूजी के एक भाग को पारस्परिक निधियो (Mutual funds) *वित्तीय सस्थानो सामान्य जनता को बेचा जाएगा।*

(*iv*) सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियो के बार्डों को अधिक व्यवसायिक (Professional) बनाया जायेगा और उन्हे और अधिक अधिकार दिए जाएगे।

(*v*) सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो के निष्पादन मे उन्नति लाने के लिए बोधज्ञापन (Memorandum of understand ing) की पद्धति द्वारा प्रबन्धको को अधिक स्वायत्तता दी जाएगी और उन्हे अधिक दायित्वपूर्ण भी बनाया जाएगा।

एकाधिकार एव प्रतिबन्धात्मक व्यापार अधिनियम— एम आर टी पी अधिनियम जून 1970 मे लागू किया गया। छठी योजना मे उत्पादिता पर अधिक बल देने के कारण इस *अधिनियम मे 1982 और 1984 मे मुख्य सशोधन किए गए* ताकि औद्योगिक विकास एव विस्तार के मार्ग मे आने वाली अडचने हटाई जा सके। परिवर्तन की इस प्रक्रिया को 1985 म और अधिक गति तब प्राप्त हुई जब औद्योगिक घरानो के आधीन परिसम्पत की सीमा (Asset limit) बढा दी गयी।

औद्योगिक ढाचे मे बढती हुई जटिलता और उच्च उत्पादिता प्राप्त करने के लिए मात्रा सम्बन्धी मितव्ययताओ (Economies of scale) का लाभ उठाने के लिए तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे प्रतिस्पर्धा का लाभ उठाने की दृष्टि से यह अनुभव किया गया कि सरकार द्वारा बडी कम्पनियो के *विनियोग सम्बन्धी निर्णयो मे एम आर टी पी अधिनियम* (MRTP Act) के माध्यम से हस्तक्षेप हानिकारक है। अत सरकार ने यह निर्णय किया है कि इन कम्पनियो को अपने विनियोग निर्णयो के लिए एम आर टी पी आयोग से स्वीकृति नहीं लेनी पडेगी। इसकी अपेक्षा अब एकाधिकार, प्रतिबन्धात्मक एव अनुचित व्यापार व्यवहार के नियन्त्रण एव विनियमन पर बल रहेगा न कि एकाधिकारी घरानो को अपनी विस्तार योजनाओं, नये उद्यम स्थापित करने विलयन और स्वामित्वहरण (Takeover) या निदेशको की नियुक्ति के लिए सरकार से इजाजत लेने पर। *नीति का मुख्य केन्द्र अनुचित या प्रतिबन्धात्मक* व्यापार व्यवहार (Restrictive trade practices) पर अकुश लगाना होगा।

अनारक्षण (De-reservation) द्वारा और उदारीकरण

14 अप्रैल 1993 को सरकार ने तीन और मदो को अनिवार्य लाइसेंस प्राप्ति के लिए आरक्षित 18 उद्योगो की सूची से हटा लिया। ये तीन मदे हैं मोटर कारे, श्वेत वस्तुए *और कच्ची खाले एव चमडा और पेटेन्ट चमडा।* इन मदो को अनारक्षित करने का मूल उद्देश्य इन उद्योगो मे विनियोग के प्रवाह को बढाना था। 10 से 12 करोड की सीमा के बीच बढ गए विशाल मध्यम वर्ग के विकास के परिणामस्वरूप श्वेत वस्तुओ अर्थात् कपडे धोने की मशीनो रेफ्रीजिरेटरो वातानुकूलको आदि की माग बढती जा रही है और ये वस्तुए अब विलास वस्तुए नहीं समझी जातीं। इसी प्रकार उच्च मध्यम वर्ग और समृद्ध वर्गों द्वारा मोटर कारो की माग भी बढ रही है विशेषकर उस परिस्थिति मे जब सरकार वरिष्ठ अधिकारियो और प्रबन्धको को कारे खरीदने के लिए ऋण भी देती है। जहा तक कच्ची खालो और चमडे की बात है इसके *अनारक्षण का उद्देश्य निर्यात को बढावा देना है।*

विदेशी विनियोग के प्रति उदारीकरण की नीति का अनुसरण करते हुए सयुक्त मोर्चा सरकार ने दिसम्बर 1996 मे उद्योगो के 16 वर्गों को उस सूची मे शामिल कर लिया जिनमे विदेशी हिस्सा पूजी की 51 प्रतिशत तक सहभागिता के *लिए स्वत स्वीकृति* (Automatic Approval) *होगी।* अतिरिक्त सूची में पूजी वस्तुओ और धातुकर्म उद्योग, मनोरजन इलेक्टोनिक्स खाद्य विधायन उद्योग खनन और ऐसे उद्योग शामिल किए गए हैं जिनकी निर्यात क्षमता महत्त्वपूर्ण है।

सरकार ने 9 उद्योगो की एक और सूची तैयार की है *जिसमे 74 प्रतिशत तक स्वत स्वीकृति की इजाजत होगी।* इन मे हैं *तेल और गेस क्षेत्र से सम्बन्धित खनन सेवाए,* धातु एव श्रत धातु उद्योग गेर पारम्परिक ऊर्जा के स्रोत नौपरिवहन मौसम विज्ञान, भू भौतिकी के उपकरण एव औजार, बिजलीजनन एव सचारण सडको का निर्माण एव रख रखाव रज्जुमार्ग बन्दरगाहे और पावर प्लान्टो का निर्माण एव रख *रखाव।* भू परिवहन के *अतिरिक्त जल परिवहन और गोदाम एव* भाण्डागार सेवाए भी शामिल की गयी है। इन प्रस्तावो का मूल उद्देश्य यह है कि सरकार प्रत्येक प्रस्ताव की जाच करने की नीति अपनाना नहीं चाहती।

इन नीति *सम्बन्धी उपायो का मुख्य उद्देश्य यह* है कि आधारसरचना, आतरिक और प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों, निर्यात प्रेरित उद्योगो कृषि तथा फार्म क्षेत्र से सम्बन्धित उद्योगो मे विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग का प्रवेश सुविधाजनक बनाया जाए।

नयी औद्योगिक नीति की समीक्षा

सरकार द्वारा 24 जुलाई 1991 को घोषित नयी औद्योगिक नीति ने भारतीय उद्योग को लम्बे समय से चल रही लाइसेंस

राज प्रणाली को समाप्त करने की माग को पूरा कर दिया। (यहा शब्द उद्योग निगम क्षेत्र का पर्यायवाची ही मानना चाहिए) इस नीति मे यह बात साफ शब्दो मे कही गयी है कि केवल 15 उद्योगो को छोड जिनमे कोयला पेट्रोलियम चीनी सिग्रेट, खतरनाक रसायन औषध और कुछ विलासी वस्तुए शामिल हैं अन्य सभी उद्योगो मे लाइसेंस समाप्त कर दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त औद्योगिक नीति मे एम आर टी पी कम्पनियो और प्रधान उद्यमो (Dominant undertakings) के लिए परिसम्पत सीमा (Asset limit) हटाने की घोषणा की है। सरकार के इस महत्त्वपूर्ण निर्णय के कारण सरकारी अफसरशाही द्वारा उत्पन्न की जाने वाला अनेक रुकावटे काट दी गयीं। इस दृष्टि से औद्योगिक नीति का स्वागत किया जाना चाहिए क्योंकि इसने लाइसेस परमिट राज को समाप्त करने का साहस पूर्ण निर्णय किया है और उद्यमकर्त्ताओ को सरकारी अफसरो से उद्यम चलाने या क्षमता का विस्तार करने के लिए इजाजत लेने की परेशानी से मुक्त कर दिया। सरकार के बदलते हुए दृष्टिकोण मे एम आर टी पी आयोग अब असगत हो गया है। इस निर्णय के परिणामस्वरूप अब एम.आर.टी.पी. कम्पनिया नये उद्यम स्थापित कर सकेंगी वे अपने विस्तार, विलयन (Merger) समामेलन (Amalgamation) और स्वामित्वहरण की योजनाओ को बिना सरकारी स्वीकृति प्राप्त किए लागू कर सकेंगी। उन्हे निदेशक नियुक्त करने का भी अधिकार होगा। दूसरे शब्दो मे, नई औद्योगिक नीति ने बहुत सी ऐसी अडचनो को हटा दिया है जो बडे निजी निगम क्षेत्र के विकास के मार्ग मे रुकावट बनी हुई थीं। व्यापारी हल्को मे इन सब प्रावधानो का स्वागत ही हुआ। औद्योगिक लाइसेस प्रणाली और नियन्त्रणो के शासन को तोडने के कारण सभी क्षेत्रो मे राहत महसूस हुई है।

किन्तु औद्योगिक नीति के बहुत से ऐसे पहलू हैं जिनकी कडी आलोचना हुई है उनमे उल्लेखनीय पर विचार करना रुचिकर होगा।

विदेशी पूजी सम्बन्धी नीति—प्रथम नई औद्योगिक नीति विदेशी पूजी को आकर्षित करने के लिए भरसक प्रयास करती है इसमे उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगो मे प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग के रूप मे 51% तक हिस्सा पूजी की स्वीकृति देने का निर्णय किया गया हैं सरकार ने यह बात भी स्पष्ट की है कि यदि समग्र उत्पादन का निर्यात किया जाता है तो 100 प्रतिशत तक विदेशी हिस्सा पूजी की भी इजाजत होगी। यह सब इसी विश्वास के आधार पर किया जा रहा है कि प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग हमारे विकास के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह नेहरु माडल के ठीक विपरीत हैं जिसमे विकास की अन्तर्वर्ती अवस्था (Transitional phase) में विदेशी पूजी के आयात की इजाजत दी गई ताकि हम आत्म निर्भर एव स्वयस्फूर्त अर्थव्यवस्था (Self generating economy) के लक्ष्य को प्राप्त कर सके। परन्तु घटनाचक्र की दिशा ऐसी नहीं रही जैसी नेहरू ने कल्पना की थी। विदेशी पूजी के मुक्त प्रवाह के विचार को इस आधार पर आगे बढाया जा रहा है कि इससे हमे अत्यन्त आवश्यक विदेशी मुद्रा प्राप्त होगी और दूसरे इसके द्वारा हमे उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगो के लिए विनियोग की भारी मात्रा प्राप्त हो सकेगी। किन्तु भय यह है कि विदेशी पूजी का स्वागत करने के जोश मे हम कहीं अपनी स्वायत्तता बहुराष्ट्रीय निगमो को तो बेच नहीं रहे हैं। जो विचारक इस नीति का समर्थन करते हैं उनका कहना है कि भारत के पास बहुत थोडी विदेशी पूजी है—1989 में केवल 42 5 करोड डालर जबकि कई छोटे देशो अर्थात इन्डोनेशिया (73 5 करोड डालर) अर्जनटाइना (102 8 करोड डालर) थाईलैंड (165 करोड डालर) मलेशिया (184 6 करोड डालर) और मेक्सिको (224 1 करोड डालर) के पास विदेशी विनियोग की कहीं अधिक राशि उपलब्ध है। साम्यवादी चीन के पास भी 140 करोड डालर की विदेशी पूजी उपलब्ध है। इसी कारण भारत के तत्कालीन वित्त मन्त्री डा मनमोहन सिह ने कहा कि भारत को विदेशी पूजी अन्तर्प्रवाह से अनावश्यक रूप मे भयभीत नहीं होना चाहिए और न ही इसे भारत को स्वायत्तता पर प्रहार मानना चाहिए।

किन्तु आलोचको के मत का आधार हमारा भूतकाल का अनुभव है। एक बार विदेशी पूजी को बेरोक टोक प्रवेश मिल जाए, तो समय के साथ साथ उच्च प्राथमिकता एव निम्न प्राथमिकता वाले उद्योगो मे भेद धीरे धीरे समाप्त हो जाएगा और विदेशी विनियोग को सफल बनाने के लिए उत्पादन के सभी क्षेत्रो के द्वार विनियोग के लिए खोल दिये जाएगे। पेप्सी कोला का हाल का अनुभव इस बात का साफ प्रमाण है कि सरकार ने इसकी स्वीकृति न्यूनतम प्राथमिकता वाले क्षेत्र मे प्रदान की। न ही तो इस प्रोजेक्ट के कारण महत्त्वपूर्ण रूप मे निर्मित कृषि उत्पाद का निर्यात किया गया और न ही यह महत्त्वपूर्ण रूप मे रोजगार को प्रोत्साहन दे सका। परन्तु इस प्रोजेक्ट को स्वीकार करते समय सरकार ने इस बात पर विशेष रूप मे बल दिया था कि इससे राज्य मे कृषि क्रान्ति आ जाएगी। इन सभी मिथ्या धारणाओ के कारण आम लोगो मे विदेशी पूजी के लाभो के बारे मे विश्वास कायम नहीं होता। अत सरकार को आने वाले वर्षों मे विदेशी मुद्रा की वापसी के प्रवाह के गुह्यार्थो के बारे मे सावधानी बरतनी होगी। विदेशी पूजीपति देश मे अपने निगम

कि सरकार बीमार इकाइयो को केवल बडे घरानो को सौंपने के लिए ही आतुर क्यो है? पूजीपति वर्ग इन उद्यमो को वास्तविक जायदाद (Real estate) के मूल्य के लिए खरीदने को तैयार है क्योंकि सरकार परिसम्पत को कोडी के दामो पर बेचने के लिए तैयार हैं जिस प्रकार उत्तर प्रदेश सरकार ने सजय डालमिया को 306 करोड रुपये के मूल्य की परिसम्पत 26 करोड रुपये म हस्तातरित करने का निर्णय किया उससे यह आशका पुष्ट हो जाती है कि सरकारी अफसर तथा राजनीतिज्ञ की मिली भगत से निजीकरण की लहर के लाभो को बडे पूजीपतियो तक पहुचाने के लिए भरसक प्रयास किए जाते हैं। सरकार पूर्ण कर्मचारा स्वामित्व (Employee ownership) के विकल्प को क्यो नहीं अपनाती क्योंकि कमानी ट्यूब के प्रयोग ने यह सिद्ध कर दिया है कि कर्मचारी स्वामित्व के जादू द्वारा एक बामार इकाई को जोकि घाटे मे चल रही थी स्वस्थ कार एक मुनाफा कमाने वाला इकाई बनाया जा सकता हैं। इससे श्रमिको मे काम के प्रति एक नई जागरूकता पेदा होगी क्योंकि उनके निजा हित को फर्म के साथ जोड़ दिया जाता हे। भारत सरकार घाटे वाले उद्यमो का भार बडी आसानी से घटा सकती है यदि वह इस बात के लिए तैयार हो जाए कि इनका स्वामित्व कर्मचारी वग को साप देगा। सरकार को केवल वित्ताय एव तकनाकी सहायता का प्रबन्ध करना होगा। इससे निजीकरण (Privatization) के विरुद्ध मजदूर सघो का विरोध भी कम हो सकता है।

अन्तिम सरकार ने एकाधिकार एव प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार आयोग के कार्यक्षेत्र को केवल एकाधिकारी प्रतिबन्धात्मक एव अनुचित व्यापार व्यवहार तक सामित कर दिया ह। यह भी कहा गया है कि एम आर टी पी आयोग को स्वय (Suo moto) जाच आरभ करने का अधिकार होगा या वह वेयक्तिक उपभोक्ता या उपभोक्ता वर्ग की शिकायत पर भी जाच शुरू कर सकता हे। भूतकाल का अनुभव यह बताता है कि इस दिशा मे आयोग असफल ही हुआ हे ओर भारताय बाजार के एकाधिकारी या अल्पजनाधिकारा (Oligopolist) स्वरूप को तोडने मे कामयाव नहीं हो पाया हे। मूल सत्य यह हे कि निजीकरण के बावजूद सीमेन्ट आर कागज की कीमतें गगनचुम्बी रूप से बढती जा रहा हे यह इस बात का प्रमाण हे कि प्रतिस्पर्द्धा का प्रयोग निजीकरण के नारे मात्र के लिए किया जा रहा हैं परन्तु वस्तु स्थिति यह हे कि एक क्रमबद्ध रूप मे प्रतिस्पर्द्धा को समाप्त किया जा रहा है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता हे कि नइ औद्योगिक नीति विदेशी विनियोग को आकर्षित करने म सफल हो सकती हे आर इस प्रकार देशा विनियोग को बढावा दे सकता है किन्तु क्या यह अधिक उत्पादन के साथ अधिक रोजगार को भी कायम करेगा इसके बारे मे सन्देह हे। दूसरे, विदेशा पूजी को अत्यधिक स्वतन्त्रता देने से हमारा आर्थिक स्वायत्तता के लिए खतरा उत्पन्न हो सकता हे आर इससे देश ऋण जाल (Debt trap) मे और अधिक ग्रस्त हा सकता है। यह निराशावादी भविष्यवाणी ह परन्त यह कठोर सत्य है।

□□□

11

सरकारी क्षेत्र और भारतीय आयोजन

(PUBLIC SECTOR AND INDIAN PLANNING)

1 भारत मे सरकारी क्षेत्र का विकास
(The Evolution of Public Sector in India)

1947 से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत वास्तव मे 'सरकारी क्षेत्र' था ही नहीं। केवल उल्लेखनीय सरकारी उद्यम (Public undertakings) थे रेल डाक तार, पोर्ट ट्रस्ट (*Port trusts*) *युद्ध सामग्री और विमान कारखाने और* कुछ राजकीय प्रबन्ध वाले कारखाने तथा सरकारी नमक कारखाना कुनीन बनाने का कारखाना इत्यादि। किन्तु स्वतत्रता उपरान्त काल मे सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार को औद्योगिक (1956) के अनिवार्य अग के रूप मे विकसित किया गया।

तालिका 1 केन्द्र सरकार के उद्यमो मे विनियोग की वृद्धि

वर्ष	इकाइयों की संख्या	कुल विनियोग करोड़ रुपए
1951	5	29
1961	47	948
1980	179	18 150
1985	215	42,673
1990	244	99 329
1992	246	1 35 445
1993	245	1 47 587
1994	246	1 64 332
1996	243	1 78 628

मार्च 1996 के अन्त तक 1 78 628 करोड रुपये के कुल विनियोग मे से वस्तुए उत्पन्न करने वाले उद्यमो का भाग 1 22 776 करोड रुपये (कुल का 68 7 प्रतिशत) था और सेवा उद्यमो (Service entprises) का 53 272 करोड रुपए था (अर्थात 29 8 प्रतिशत)। शेष 2 580 करोड रुपए (अर्थात् 1 4 प्रतिशत) का विनियोग ऐसी कम्पनियो मे था जो निर्माण की विभिन्न अवस्थाओ मे थी। (देखिए तालिका 2)

तालिका 2 1995-96 मे केन्द्र सरकार के उद्यमो मे विनियोग

	कुल विनियोग (करोड रुपये)	कुल का प्रतिशत
(क) निर्माणाधीन कम्पनियाँ	2,580	1 4
(ख) वस्तुएं उत्पादन करने वाले उद्यम	1 22,776	68 7
(*i*) सचालन शक्ति	33 522	18 8
(*ii*) इस्पात	23 028	12 9
(*iii*) पैट्रोलियम	20 796	11 6
(*iv*) कोयला	15 582	8 7
(*v*) खनिज एव धातु	5 804	3 2
(*vi*) उर्वरक	6 663	3 7
(*vii*) इजीनियरिंग	5 022	2 8
(*viii*) परिवहन सामान	2 526	1 4
(*ix*) उपभोक्ता वस्तुए	3 302	1 9
(*x*) सूती वस्त्र	3413	1 9
(*xi*) रसायन एव औषधियाँ	3 052	1 7
(*xii*) कृषि-आधारित उद्यम	66	0 04
(ग) सेवाएं उत्पन्न करने वाले उद्यम	53 272	29 8
(*i*) वित्तीय सेवाए	22 274	12 5
(*ii*) परिवहन सेवाएं	10 155	5 7
(*iii*) टेली सचार सेवाए	7 427	4 2
(*iv*) व्यापार एव विपणन सेवाएं	2 582	1 4
(*v*) अन्य सेवाएँ	10 834	6 0
कुल (क+ख+ग)	1 78 628	100 0

स्रोत भारत सरकार, लोक उद्यम सर्वेक्षण (1995 1996) से सकलित।

1995 96 मे सचालन शक्ति का विनियोग मे भाग सबसे अधिक था अर्थात् 33 522 करोड रुपये (18 8 प्रतिशत) इसके बाद इस्पात का नम्बर था जिसमे 23 028 करोड रुपए (12 9 प्रतिशत) का विनियोग किया गया। इसके पश्चात् महत्त्व की दृष्टि से हैं पैट्रोलियम 20 796 करोड रुपये *(11 6 प्रतिशत) कोयला 15 582 करोड रुपये (8 7 प्रतिशत)* खनिज एव धातुए 5 804 करोड़ रुपये (3 2 प्रतिशत) उर्वरक 6 663 करोड रुपये (3 7 प्रतिशत) इजीनियरिंग 5 022 करोड

रुपये (2 8 प्रतिशत) उपयोग वस्तुए 3 302 करोड रुपए (1 9 प्रतिशत) सूतीवस्त्र 3413 करोड रुपये (1 9 प्रतिशत) रसायन एव औषधिया 3 052 करोड रुपये (1 7 प्रतिशत) और परिवहन सामान 2,526 करोड रुपये (1 4 प्रतिशत)।

पण्यवस्तु क्षेत्र (Commodity sector) मे विनियोग का अधिकतर भाग मूल एवं भारी उद्योगो में किया गया जोकि कुल विनियोग का लगभग 69 प्रतिशत था। सवा क्षेत्र मे सबसे महत्त्वपूर्ण वित्ताय सेवाए हैं और उनके बाद हैं परिवहन सेवाए टेली सचार सेवाए और व्यापार एव विपणन सेवाए।

सरकार की जानबूझकर सावर्जनिक क्षेत्र को प्रोत्साहित करने की नीति के परिणाम स्वरूप सरकारी क्षेत्र मे भारी विनियोग किया गया ताकि भारी तथा मूल उद्योगो की स्थापना और सचालन शक्ति, बिजली और परिवहन के रूप मे अध सरचना (Infrastructure) के निमाण द्वारा देश मे औद्योगीकरण की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाया जा सके। 1968 69 से 1973 74 की अवधि को छोड सरकारी क्षेत्र मे विनियोग की औसत वद्धि दर 19 प्रतिशत प्रति वर्ष थी। 1980 81 स 1995 96 के बाच विनियोग की ओसत वद्धि दर भी 16 5% थी।

तालिका 3 **केन्द्रीय सार्वजनिक उद्यमो मे विनियोग की वृद्धि दर**

	औसत वृद्धि दर
1960-61 से 1968 69	19 3%
1968-69 से 1973 74	9 9%
1973 74 से 1980-81	16.5%
1980-81 से 1995 96	16 5%

राज्याय स्तर के सावजनिक उद्यमो के बारे मे बहुत कम सूचना उपलब्ध हे परन्तु योजना द्वारा सकलित सूचना के अनुसार मार्च 31 1986 पर राज्याय सरकारी उद्यमो (State Level Public Enterprises) मे कुल विनियोग 25 000 करोड था। इनमे मुख्य योगदान बिजली बोर्डों एव राज्यीय परिवहन निगमो का था।

ऊपर दिए गए आकडो केन्द्र एव राज्यीय सरकार के गैर विभागीय उद्यमो मे विनियोग का सकेत करते हे। इनमे विभागीय उद्यमों (Departmental undertakings) जैसे रेलवे, डाक तार और अन्य विभागो को शामिल नहा किया गया जिनमे लगभग 25 000 करोड रुपये का विनियोग किया जा चुका है। यदि इन सबको शामिल कर लिया जाए, तो सारे देश मे सभी प्रकार के सरकारी उद्यमों (विभागीय एव गैर विभागीय) केन्द्र, राज्य या स्थानाय मे कुल विनियोग 2,30 000 करोड रुपए होगा।

सगठनात्मक दृष्टि से सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम चार प्रकार के हे (1) वे जिनका प्रबन्ध सरकारी विभागो के आधीन हैं (2) वे जिनका प्रबन्ध स्वायत्त बोर्डों (Independent boards) के आधीन है (3) वे जो सार्वजनिक निगमो के रूप मे चलाए जाते हैं और (4) वे जो कम्पनियो के रूप में व्यवस्थित किए गए हैं। व्यवस्था का कम्पनी रूप सबसे अधिक लोकप्रिय है।

2 भारतीय अर्थव्यवस्था मे सरकारी क्षेत्र का कार्यभाग
(Role of the Public Sector in the Indian Economy)

स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् सरकारी क्षेत्र के कार्यभाग मे लगातार विस्तार हुआ है। 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव ओर समाजवादी ढग के समाज का लक्ष्य निधारित करने के पश्चात् सरकारी क्षेत्र के कार्यभाग को जान बूझकर एक नीति के रूप मे और प्रोत्साहन दिया गया। सरकारी क्षेत्र के कार्यभाग को समझने के लिए सबसे पहले हमे इसके आकार के बारे मे जानकारी होनी आवश्यक हे। इसके लिए केन्द्र, राज्यीय एव स्थानीय स्तर के सभी उद्यमो को, चाहे वे विभागीय ह या गैर विभागीय शामिल करना होगा।

दूसरे, सरकारी क्षेत्र के आकार का अनुमान लगाते समय किसी एक कसौटी को आधार मानना सही नहीं होगा बल्कि यह कहीं अधिक वाछनाय होगा कि इसके लिए कुछ सकेतक अर्थात् रोजगार, विनियोग उत्पादन का मूल्य जनित राष्ट्राय आय बचत पूजी निमाण एव पूजी स्टाक इस्तेमाल किए जाए।

सरकारी क्षेत्र का रोजगार मे भाग

सरकारी क्षेत्र के रोजगार के दो महत्त्वपूर्ण वर्ग ह (क) सरकारी प्रशासन और प्रशिक्षा एव अन्य सरकारी सेवाए जैसे स्वास्थ्य शिक्षा, अनुसन्धान और आर्थिक विकास प्रोन्नत करने की विभिन्न क्रियाए और (ख) विशेष रूप से सार्वजनिक क्षेत्र अर्थात् केन्द्र, राज्य एव स्थानीय सरकार के स्वामित्वाधीन आर्थिक उद्यम। 1971 मे सरकारी क्षेत्र मे कुल 107 लाख श्रमिक कार्य करते थे परन्तु मार्च 1995 मे उनका सख्या बढकर 195 लाख हो गई। कुल श्रम शक्ति के अनुपात के रूप मे यह केवल 6 6 प्रतिशत है। परन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि श्रम शक्ति का 90 प्रतिशत तो असगठित क्षेत्र (Unorganised sector) मे लगा हुआ है और केवल 10 प्रतिशत सगठित क्षेत्र मे। चूंकि सावजनिक क्षेत्र का रोजगार

केवल सगठित क्षेत्र तक ही सीमित है इसलिए यह कहना अधिक उचित होगा कि भारतीय अर्थव्यवस्था के सगठित क्षेत्र मे काम करने वाले श्रमिको मे से 71 प्रतिशत सरकारी क्षेत्र मे लगे हुए हैं।

तालिका 4 से पता चलता है कि कुल रोजगार का 49 प्रतिशत (अर्थात् 93 लाख) सार्वजनिक क्षेत्राधीन सरकारी प्रशासन एव सेवाओ मे लगा हुआ है और शेष केन्द्र, राज्य एव स्थानीय सरकारो के अन्य आर्थिक उद्यमो मे कार्यरत है। आर्थिक उद्यमो मे रोजगार का सबसे बडा भाग परिवहन सग्रहण एव सचार मे (लगभग 31 लाख व्यक्ति) लगा हुआ है और इसके बाद महत्त्व की दृष्टि से विनिर्माण (Manu facturing) का स्थान है। किन्तु कृषि तथा अन्य सम्बन्धित क्रियाओ मे लगे हुए 5 4 लाख व्यक्ति सामान्य दृष्टि से किसी उत्पादक क्रिया की अपेक्षा रोजगार गारन्टी योजना (Employment Guarantee Scheme) के आधीन कार्य कर रहे है।

सगठित क्षेत्र (सरकारी क्षेत्र जमा गेर सरकारी क्षेत्र) मे कुल रोजगार मे सरकारी क्षेत्र के भाग से पता चलता है कि परिवहन एव सचार बिजली गेस और पानी एव निर्माण मे सार्वजनिक क्षेत्र का भाग 95 98 प्रतिशत की सीमा मे है अत इसका प्रभुत्व है। सार्वजनिक क्षेत्र के कुछ पारपरिक क्षेत्र है जिनमे ब्रिटिश शासनकाल से ही सार्वजनिक क्षेत्र का एकाधिकार रहा है। किन्तु विनिर्माण मे सार्वजनिक क्षेत्र का भाग कुल का केवल 27 प्रतिशत है क्योकि इस क्षेत्र मे हाल ही के वर्षों म प्रवेश किया गया है। कोयले की खानो के राष्ट्रीयकरण और 20 बडे बेको को सरकार के आधीन लाने के पश्चात् सार्वजनिक क्षेत्र की स्थिति मे महत्त्वपूर्ण उन्नति हुई है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि सरकारी क्षेत्र जहा तक भारतीय अर्थव्यवस्था के सगठित क्षेत्र का सम्बन्ध है एक बडा नियोजक (Employer) है।

शुद्ध देशीय उत्पादन मे सरकारी क्षेत्र का भाग

पिछले तीन दशको के दोरान शुद्ध देशीय उत्पाद (Net domestic product) मे सरकारी क्षेत्र के भाग मे लगातार उन्नति हुई है। चालू कीमतो पर सरकारी क्षेत्र का भाग 1950 51 मे शुद्ध देशीय उत्पाद का 7 5 प्रतिशत था जो 1992 93 मे बढकर 21 6 प्रतिशत हो गया। अत सरकारी क्षेत्र राष्ट्रीय उत्पाद के लगभग पाचवे भाग के बराबर योगदान देता है। इस बात मे सन्देह नही कि शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद मे सरकारी क्षेत्र के भाग मे महत्त्वपूर्ण उन्नति हुई है। इसका मुख्य श्रेय सरकारी क्षेत्र के उद्यमो के तीव्र विस्तार को है।

तालिका 4 मार्च 1995 मे सरकारी क्षेत्र मे रोजगार

क्षेत्र	सरकारी क्षेत्र (लाखो)	सरकारी क्षेत्र कुल का प्रतिशत	सरकारी एवं गैर सरकारी क्षेत्र में कुल रोजगार का सरकारी क्षेत्र में प्रतिशत
1 कृषि आखेट, वन एव मत्स्य	5 39	2 8	37 6
2 खनन एव खदान	10 16	5 ?	90 8
3 विनिर्माण	17 56	9 0	27 2
4 बिजली गैस और पानी	9 35	4 8	95 9
5 निर्माण (Construction)	11 64	6 0	95 6
6 थोक एव खुदरा व्यापार रैस्तोरान एवं होटल	1 62	0 8	34 5
7 परिवहन सग्रहण एव संचार	31 06	16 0	98 2
8 वित्त बीमा वास्तविक जायदाद एव व्यापारिक सेवाए	12 83	6 6	81 4
9 सरकारी प्रशासन सामाजिक एव वैयक्तिक सेवाए	95 04	48 8	85 6
कुल	194 66	100 0	70 7

स्रोत भारत सरकार, आर्थिक समीक्षा (1994 95)

1950 51 और 1992 93 के बीच सार्वजनिक प्रशासन एव प्रतिरक्षा का भाग 4 5 प्रतिशत से बढकर 8 7 प्रतिशत हो गया। इसके विरुद्ध सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो का भाग 1950 51 मे 3 प्रतिशत से बढकर 1992 93 मे 13 प्रतिशत हो गया। इसके बावजूद, अर्थव्यवस्था मे गेर सरकारी क्षेत्र का प्रभुत्व अभी भी बना हुआ है। कृषि एव लघु स्तर उद्यम कुछ ऐसे क्षेत्र हे जिनमे सरकारी क्षेत्र का भाग लगभग शून्य है। किन्तु बीमा नागरिक विमान परिवहन प्रतिरक्षा सामान देशीय रूक्ष तेल उत्पादन आदि मे सरकारी स्वामित्व शत प्रतिशत है। सामरिक एव राष्ट्रीय महत्त्व के उद्योगो को अधिकाधिक राजकीय स्वामित्वाधीन लाया जा रहा है।

अर्थव्यवस्था मे बचत और पूजी निर्माण का भाग

सार्वजनिक क्षेत्र का भाग जो 1950 51 से 1954 55 की अवधि मे 3 5 प्रतिशत था बढकर सातवी योजना (1985 90) की अवधि मे 10 7 प्रतिशत हो गया। सार्वजनिक क्षेत्र और गेर सरकारी क्षेत्र का पूंजीनिर्माण मे सापेक्ष भाग 33 67 से 47 53 हो गया। दूसरे शब्दो मे सार्वजनिक क्षेत्र का भाग जो एक तिहाई था बढकर लगभग आधा हो गया। परन्तु 1990 91 और 1995 96 के दौरान सकल देशी पूजी निर्माण मे सार्वजनिक क्षेत्र का भाग कम होकर 37 प्रतिशत रह गया जो कुल देशाय उत्पाद का केवल 9 4 प्रतिशत था।

किन्तु सरकारी क्षेत्र की बचत के भाग मे ऐसा परिवर्तन नहीं हुआ है। कुल देशीय बचत में सार्वजनिक क्षेत्र का भाग जो 1950-51 से 1954-55 की अवधि के दौरान लगभग 17 प्रतिशत था, थोड़ा-सा उन्नत होकर 1980 85 की अवधि मे 36 प्रतिशत हो गया। कुल राष्ट्रीय उत्पादन के प्रतिशत के रूप में सार्वजनिक क्षेत्र की बचत 17 प्रतिशत से बढ़कर 1980 85 मे 18 प्रतिशत हो गयी। सातवीं योजना के दौरान, सार्वजनिक क्षेत्र का बचत मे भाग गिरकर 11 प्रतिशत हो गया। 1990 91 से 1995-96 के दौरान कुल बचत मे सार्वजनिक क्षेत्र का भाग एकदम गिरकर 63 प्रतिशत के निम्न स्तर पर पहुच गया। यह एक अस्वस्थ प्रवृत्ति है।

इस विफलता के दो मुख्य कारण हैं (1) सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो की अकुशलता और परिणामत अपने पूँजी-स्टॉक में वृद्धि के अनुपात मे *आन्तरिक अतिरेक* (Internal surplus) जनित करने मे विफलता। (2) बैंकिंग क्षेत्र से अत्यधिक उधार द्वारा ससाधनो की कमी को सरकार के स्वय-पराजित होने वाले प्रयास, जिसे आमतौर पर न्यून वित्त प्रबन्ध (Deficit financing) कहा जाता है द्वारा पूरा करना।

इसमे सन्देह नहीं कि गैर-सरकारी क्षेत्र की बचत को सरकारी क्षेत्र की ओर मोडना होगा ताकि कुल पूजी निर्माण मे सरकारी क्षेत्र के भाग में वृद्धि हो जिससे वह विकास प्रक्रिया मे अपने बढते हुए दायित्वो को पूरा कर सके परन्तु इससे सरकारी क्षेत्र को यह छूट नहीं मिल जाती कि वह अपनी कुशलता को बढाकर पर्याप्त मात्रा में आन्तरिक अतिरेक पैदा कर सके।

पूजी स्टॉक (Capital stock) में सार्वजनिक क्षेत्र का भाग

पूजी स्टाक में किसी समय-विशेष पर प्लान्ट एव मशीनरी साज सज्जा और औजार एव अन्य पूजी वस्तुओ को शामिल किया जाता है, जो अधिक उत्पादन मे सहायता देती हैं किन्तु शब्द विनियोग (या कुल पूजी-निर्माण) का अर्थ पूजी वस्तुओ की स्थापना के वार्षिक प्रवाह से है जो अशत पूजी स्टाक के मूल्यह्रास की (Depreciation) की आवश्यकता को पूरी करता है और अशत शुद्ध रूप में कुल पूँजी-स्टॉक के आकार मे वृद्धि करता है।

परन्तु सरकारी क्षेत्र मे उत्पादन की प्रति इकाई के लिए प्रयुक्त पूजी गैर-सरकारी क्षेत्र से कहीं अधिक है। इसका मुख्य कारण सार्वजनिक क्षेत्र मे विनियोग के रूप मे अन्तर है। मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं--

(*i*) सार्वजनिक क्षेत्र के विनियोग का बडा भाग आर्थिक अध सरचना (Economic Infrastructure) पर खर्च किया जाता है अर्थात् सडक निर्माण सिचाई योजनाए आदि जोकि आर्थिक विकास के लिए आवश्यक तो है परन्तु उत्पादन के सामान्य अर्थ मे योगदान नहीं देते।

(*ii*) सावजनिक क्षेत्र ने अर्थव्यवस्था के कुजी क्षेत्रो (Key sectors) का *विकास करने मे महत्त्वपूर्ण कार्यभाग* अदा किया है उदाहरणार्थ, रेलवे लोह तथा इस्पात सचालन शक्ति तेल की खोज सिचाई आदि। अपने स्वभाव से ही ये क्षेत्र अधिक पूजी-गहनता (Capital intensity) वाले हैं।

(*iii*) सरकारी क्षेत्र की परियोजनाओ की परिपाक-अवधि (Gestation period) लम्बी होती है। इसका एक कारण तो भारी तथा मूल उद्योगो मे विनियोग की तकनालाजीय प्रकृति है और दूसरा कारण इन परियोजनाओं की स्थापना मे सार्वजनिक एजेन्सियो की अकुशलताए हैं।

(*iv*) सार्वजनिक क्षेत्र मे क्षमता प्रयोग (Capacity utilisation) के स्तर नीचे हैं और ये भी एक हद तक निम्न उत्पाद-पूँजी अनुपात (Output capital ratio) के लिए जिम्मेदार हैं।

(*v*) उच्च उत्पाद-पूजी अनुपात के क्षेत्र अधिकतर या पूर्णत गैर-सरकारी क्षेत्र मे ही हैं। इनमे उपभोग वस्तु उद्योग लघु-स्तर एव कुटीर उद्योग और कृषि शामिल किए जाते है।

तालिका 5 कुल अचल पूंजी निर्माण में 1980-81 की कीमतो पर सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान

	मूल्य (करोड रुपए)	चक्र वृद्धि दर वार्षिक
1950-51	1642	
1960-61	5165	12.1
1970-71	6,331	2 0
1980-81	11767	6 3
1987 88	17734	6 1
1993-94	21254	3 1

तालिका 5 मे दिए गए आकडो से पता चलता है कि 1950 51 से 1960 61 के दौरान सकल अचल पूजी निर्माण की वृद्धि दर 12 1 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही। इसका मुख्य कारण द्वितीय योजना मे भारी तथा मूल उद्योगो के तीव्र विकास के सम्बन्ध मे जोश था। यह प्रक्रिया 1965 66 तक बदस्तूर बनी रही और सकल अचल पूजी निर्माण 7,866 करोड रुपये के शिखर पर पहुच गया परन्तु 1965-66 के सूखे और इसके बाद 1966-67 में वर्तमान प्रतिसार ने इस प्रवृत्ति को पलट दिया और पूजी निर्माण 6161 करोड रुपये के निम्न स्तर पर पहुच गया। तत्पश्चात् यह बढना आरम्भ हुआ और 1960-61 और 1970-71 के दौरान इसकी वार्षिक वृद्धि-दर गिर कर केवल 2 प्रतिशत हो गयी। 1970 71 ओर 1980-81

के दशक मे इसमे पुन बढोतरी हुई और वार्षिक वृद्धि दर 63 प्रतिशत तक पहुच गयी। यह प्रवृत्ति 1980 81 और 1987 88 के दौरान बनी रही और इन 7-वर्षो की अवधि मे वार्षिक वृद्धि दर थोडी बढकर 61 प्रतिशत हो गयी। जाहिर है कि सार्वजनिक क्षेत्र ने सकल अचल पूजी निर्माण मे उन्नति लाने मे महान योगदान दिया है विशेषकर पूजी वस्तु क्षेत्र मे और इस प्रकार भारत मे सबल औद्योगिक आधार की नींव डाली गयी है। किन्तु 1987-88 और 1993-94 के दौरान सकल पूजी निर्माण तेजो से गिर कर 31 प्रतिशत हो गया।

सरकारी क्षेत्र को बिक्री/आय की मात्रा

अर्थव्यवस्था मे सार्वजनिक क्षेत्र मे बिक्री की मात्रा इनके द्वारा वस्तुओ तथा सेवाओ के प्रवाह मे योगदान को सूचक है। 1970 71 से 1987 88 के दौरान बिक्री की वृद्धि-दर 18 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही है। विभागीय उद्यमो की वार्षिक वृद्धि दर उनकी बिक्री के आधार पर लगभग 14 प्रतिशत रही है जबकि गैर विभागीय गैर-वित्तीय उद्यमो (Non departmental non financial enterprises) की *193 प्रतिशत रही है (देखिए तालिका 6)।* समीक्षाधीन अवधि के दौरान राजकीय नीति ने गैर विभागीय उद्यमो को प्रोत्साहन दिया है। यह इनके सन्दर्भ मे उच्च वृद्धि दर का मूल कारण है किन्तु परम रूप मे सार्वजनिक उद्यमों को प्रोत्साहन दिया है। यह इनके सन्दर्भ मे उच्च वृद्धि दर का मूल कारण है किन्तु परम रूप मे सार्वजनिक उद्यमो की बिक्री 1970 71 मे 7025 करोड रुपये से बढकर 1987 88 मे 120380 करोड रुपए हो गयी अर्थात् इसमे 17 गुना वृद्धि हुई। यह भारत मे सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार का प्रबल प्रमाण है।

तालिका 6 **सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो की बिक्री/आय**

वर्ष	रेलवे समेत सभी विभागीय उद्यम	गैर विभागीय गैर वित्तीय उद्यम	कुल
1	2	3	4 = 2 + 3
1970 71	1956	5069	7025
1980 81	6416	38169	44575
1987 88	17846	102534	120380
1970 71 से 1987 88 के बीच वृद्धि			
सूचकांक (1970 71 – 100)	*912*	*2072*	*1713*
वार्षिक चक्रवृद्धि दर (%)	139	193	182

स्रोत केन्द्रीय सांख्यिकी सगठन द्वारा प्रकाशित आकडों से संकलित

सरकारी क्षेत्र द्वारा अध सरचना का विकास (Infrastructural Development)

भारत जैसी पिछडी हुई परन्तु विकासमान अर्थव्यवस्था का तेज औद्योगीकरण अध सरचना या सामाजिक उपरिपूजी (Social overheads) अर्थात् परिवहन सचार, सचालन शक्ति विकास मूल तथा कुजी उद्योगो के विकास आदि पर निर्भर है। जब तक सामाजिक उपरिपूजी कायम न की जाये अन्य उद्योगो का कायम होना या काफी तेजी से बढना सभव नहीं। परन्तु मूल और पूजी-वस्तु उद्योगो के विकास और अध सरचना की स्थापना के लिए भारी विनियोग करना पडता है जिससे लाभ प्राप्ति दर कम होती है परन्तु परिपाक अवधि (Gesta tion period) लम्बी होती है। अत ये उद्योग गैर सरकारी क्षेत्र के लिए आकर्षक नहीं बन सकते। स्वाभाविकत इनका विकास सरकार पर ही छोडा गया और इन उद्योगो म *सरकारी उद्यम स्थापित किए गए।* गैर सरकारी क्षेत्र ने इन उद्यमो के विकास के लिए सरकारी विनियोग का स्वागत किया क्योकि इससे प्रत्यक्ष लाभ होता था। ध्यान देने योग्य बात यह है कि सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्र मे इस दृष्टि से कोई अन्तर्द्वन्द्व नहीं।

वस्तुत सरकारी उद्यमो की मूल प्रेरणा का कारण अध सरचना की स्थापना है और बहुत हद तक इस कार्य मे ये सफल हुए है। अत भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास मे योगदान को इस दृष्टि से आकना चाहिए, न कि केवल लाभ प्राप्ति की दृष्टि से।

भारत मे मजबूत औद्योगिक आधार

सरकारी उद्यमो के विरुद्ध बहुत सी आलोचनाओ के बावजूद इस बात मे सन्देह नहीं कि 1951 75 के काल मे हुए द्रुत औद्योगीकरण का मुख्य श्रेय सरकारी क्षेत्र को ही है सरकार के औद्योगिक नीति प्रस्तावो मे कुछ उद्योग अणुशक्ति अस्त्रशस्त्र एव विस्फोटास्त्र वायुयान आदि राष्टीय सुरक्षा के हित मे सरकार के लिए रिजर्व कर दिए गए। सरकार ने कुजी उद्योग अर्थात् कोयला, लोह एव इस्पात, वायुयान, पोत निर्माण आदि के विकास की भी जिम्मेदारी ली शेष उद्योगो को गैर सरकारी क्षेत्र के लिए छोड दिया गया। परन्तु चार योजनाओ के अनुभव से साफ जाहिर होता है कि गैर सरकारी क्षेत्र मे कुछ अन्तर्निहित कठिनाइया हैं और यह तेज औद्योगिक विकास भारतीय अर्थव्यवस्था को स्वय स्फूर्त बनाने के लिए आवश्यक है। इसी कारण तो सरकार को मूल एव सामरिक उद्योगो पूजी *उद्योगों और कुछ हद तक उपभोग वस्तुओ के* विकास के लिए एक भारी कार्यक्रम तैयार करना पडा। इस प्रकार एक मजबूत औद्योगिक आधार कायम किया जा चुका है चाहे देश के ढाचे मे कुछ कमजोरिया अभी भी हैं। किन्तु भारत में आर्थिक विकास की ऊची दर प्राप्त करने के लिए और देश मे बेरोजगार श्रम-शक्ति को कार्य दिलाने के लिए

अभी पर्याप्त औद्योगिक दर प्राप्त नहीं हो सकी है।

महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो मे सरकारी क्षेत्र की प्रभावशालिता

सरकारी क्षेत्र बहुत से विभिन्न प्रकार के उद्योगों एव वस्तुओं में प्रवेश कर गया है। इसकी क्रियाए एक ओर तो मूल तथा पूजी वस्तु उद्योगों अर्थात् इस्पात कोयला, ताबा, जस्ता एव अन्य खनिजो तथा भारी मशीनरी तक फैली हुई हैं और दूसरी ओर इसका कार्यक्षेत्र है औषधिया एव रसायन, खाद उपभोग वस्तुए जैसे सूती वस्त्र, होटल सेवाए, घडिया, डबल रोटी आदि। इनमे से अधिकतर उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए क्रांतिक महत्त्व रखते हैं क्योंकि उनके अन्य उद्योगो के साथ गहरे सम्बन्ध है। कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो जैसे ताबा, सीसा, कोयला, पेटोलियम उत्पाद, जल एव भाप टरबाइन, इजन, रेलवे कोच आदि मे सरकारी क्षेत्र का भाग 100 प्रतिशत है। बहुत सी अन्य वस्तुओं मे यह भाग 50 से 95 प्रतिशत के बीच है।

सरकारी क्षेत्र द्वारा राष्ट्रीय कोष मे योगदान

सरकारी उद्यम राष्ट्रीय कोष को कई प्रकार से योगदान देते हैं।-(*i*) लाभाश (*ii*) उत्पादन शुल्क (*iii*) निगम कर, (*iv*) सीमा शुल्क आदि। इस प्रकार वे देश के आयोजित विकास मे ससाधन गतिमान करने मे सहायता देते हैं। तालिका 7 से पता चलता है कि सार्वजनिक उद्यमों द्वारा छठी योजना के दौरान सरकारी खजाने को 27,570 करोड रुपये का योगदान दिया गया। ध्यान देने योग्य बात यह है कि समय के साथ साथ इनका योगदान 1980 81 मे 3302 करोड रुपये से बढकर 1984 85 मे 7600 करोड रुपये हो गया। सातवीं योजना के दौरान इनका योगदान 70893 करोड रुपये के उच्च स्तर पर पहुच गया। 1990-91 से 1995 96 के दौरान मे यह योगदान और बढकर 105005 करोड रुपये हो गया। उत्पादन शुल्क का भाग अधिकतम था। महत्त्व के आधार पर इसके बाद क्रमश हैं सीमा शुल्क और निगम कर। किन्तु लाभाश का योगदान नाममात्र था अर्थात 2 3 प्रतिशत।

निर्यात प्रोत्साहन (*Export Promotion*)

कुछ सरकारी उद्यमो ने भारत के निर्यात को प्रोन्नत करने मे काफी योगदान दिया है। राजकीय व्यापार निगम और खनिज एव धातु व्यापारिक निगम ने विश्व के सभी भागो मे निर्यात प्रोत्साहन कार्य किया है। हमारे निर्यात मे कच्ची धातुओं द्वारा द्वितीय स्थान प्राप्त करने का कारण इन्हीं सस्थाओं का मार्गदर्शक प्रयास है। भारतीय हस्तशिल्प की वस्तुओ हल्की इजीनियरिंग वस्तुओ और निर्यात की गई मदो को बढाने मे काफी सफलता प्राप्त हुई है। हिन्दुस्तान स्टील लि0 भारत इलेक्टोनिक्स लि0 हिन्दुस्तान मशीन टूल्ज लि0 कुछ ऐसे सरकारी उद्यम हैं जो अपने उत्पादन का अधिकाधिक भाग निर्यात कर विदेशी मुद्रा अर्जित करते हैं।

सरकारी उद्यमों द्वारा मुद्रा प्राप्ति की राशि, जो 1965-66 मे 35 करोड रुपये थी बढकर 1969 70 मे 170 करोड रुपये हो गयी। 1984 85 मे सरकारी उद्यमो ने 5831 करोड रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त की। इसमें सन्देह नहीं कि निर्यात प्रोत्साहन और विदेशी मुद्रा प्राप्ति के क्षेत्र मे और भी अधिक सफलता प्राप्त की जा सकती थी किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि हाल ही के वर्षों में सरकारी उद्यमों

तालिका 7 सरकारी क्षेत्र द्वारा राष्ट्रीय कोष मे योगदान

करोड रुपये

वर्ष	लाभांश	निगमकर	उत्पादन शुल्क	सीमा शुल्क एवं अन्य शुल्क	कुल
छठी योजना	617	4159	14194	8600	27,570
(1980-85)	(2.2)	(15 1)	(51.5)	(31 0)	(100 0)
सातवीं योजना					
1985 86 से	1484	6409	31051	31949	70893
1989 90	(2 1)	(9 0)	(43 8)	(45 1)	(100 0)
1990-91	365	1,300	9075	8726	19466
1992-93	792	2,160	8,200	11,297	22,449
1993-94	1028	2,348	9861	9751	22,988
1994 95	1436	2,720	12,256	11060	27477
1995-96	2,705	3998	11908	13985	32,902
कुल 1990-91 से	5461	16,266	42,225	46,093	105005
1995-96	(5.2)	(10 7)	(40.2)	(43 9)	(100 0)

नोट. ब्रैकट मे दिए गए आकडे कुल के प्रतिशत के समान हैं।

स्रोत भारत सरकार, लोक उद्यम सर्वेक्षण (1996-97)

का निर्यात निष्पादन (Export performance) काफी सराहनीय रहा है। किन्तु 1995 96 में सरकारा क्षेत्र का विदेशी मुद्रा प्राप्ति बढकर 15 211 करोड रूपये हो गयी। यह बात बडी उत्साहवर्धक है कि सेवा उद्यमो का कुल निर्यात आय मे भाग 6 999 करोड रुपये था (कुल का 40%) ओर विनिर्माण उद्यमो का 15 211 करोड रुपये (54%)।

आयात प्रतिस्थापन (Import substitution) और विदेशी मुद्रा की बचत

सरकारी क्षेत्र मे कुछ उद्यम चालू करने का विशेष उद्देश्य यह था कि पहले आयात की जाने वाली वस्तुओ का देश मे उत्पादन किया जाए ताकि विदेशी मुद्रा की बचत हो सके। हिन्दुस्तान एण्टीबायोटिक्स लि0 और इण्डियन ड्रग्ज ओर फार्मेस्यूटिकल्ज लि० के ओषधि निर्माण मे प्रवेश के कारण बहुत सी विदेशी फर्मों का एकाधिकारी शिक्जा समाप्त हो गया हे ओर इस प्रकार विदेशी मुद्रा की बचत हुई हे। इसी भांति तेल ओर प्राकृतिक गेस आयोग और इण्डियन आयल कार्पोरेशन कुछ ऐसे सरकारी उद्यम हैं जो देश की आत्मनिर्भरता बढाने मे प्रत्यक्ष प्रयास करते है और हमारी विदेशी आयात पर निर्भरता को कम करते हैं वर्तमान परिस्थितियो मे पूर्ण स्वावलम्बिता तो सम्भव नहीं किन्तु कम से कम समय म इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए दृढ प्रयास होना चाहिए।

आन्तरिक ससाधन (Internal Resources)

आन्तारक ससाधनो मे मूल्यहास (Depreciation) ओर प्रतिधत लाभ शामिल किए जाते हे। छठी योजना के दोरान 11 721 करोड रुपये के आन्तरिक ससाधन पैदा किए गए अथात 2,344 करोड रुपये प्रति वष। 1985 86 से 1989 90 के दोरान 37 678 करोड के आन्तरिक ससाधन पेदा किए गए। 1990 91 ओर 1995 96 के दौरान 1 00 070 करोड रुपये के आन्तरिक ससाधन उपलब्ध कराए गए। यह एक अभिनन्दनाय स्थिति हे।

3 सरकारी उद्यमो के विस्तार के पक्ष मे तर्क

भारत जेसी विकासमान अर्थव्यवस्था (Developing Economy) मे कुछ उद्योगो को सरकारा स्वामित्व ओर नियत्रण के अन्तगत लाना ही पडेगा अन्यथा अर्थव्यवस्था का द्रुतगति से विकास सम्भव नहीं हो पायेगा। कुछ ओद्योगिक बेको और बीमा कम्पनियो का राष्टीयकरण ओर नई इकाइयो को आरम्भ करने से आर्थिक विकास की गति तात्र करने मे सहायता मिलेगी। इसलिए सरकारी उद्यम भारत के आर्थिक कायक्रम का आवश्यक अग हे।

(1) आर्थिक विकास की दर और सरकारी उद्यम भारत म सरकारा उद्यम का इस आधार पर समर्थन किया जाता हे कि अकेला निजी क्षेत्र सरकार द्वारा निर्धारित गति से आर्थिक विकास नहीं कर सकता। दूसरे शब्दो मे सरकार ने जान बूझकर विकास की ऊची दर का जो लक्ष्य निर्धारित किया है उसे प्राप्त करने के लिए सरकारी क्षेत्र अनिवार्य हे। इस उच्च लक्ष्य की पूर्ति के लिए बचत की उच्च दर प्राप्त करनी अनिवार्य थी। स्वेच्छिक बचत (Voluntary saving) को प्रोत्साहन देकर उसे औद्योगिक विकास के लिए प्रेरित किया जा सकता हे। यदि यह उपाय अपर्याप्त जान पडे तो सरकार को एक दूसरे उपाय का सहारा लेना होगा अर्थात कर लगा कर अनिवार्य बचत (Compulsory saving) करनी होगी। अत निष्कर्ष यह कि तीव्र आर्थिक विकास के लिए बचत की उच्च दर आवश्यक होती हे जिसका एक बडा भाग कर के माध्यम से अनिवार्य बचत के रूप मे प्राप्त किया जाएगा। प्रोफेसर रामानाधम् के शब्दो म "साधन इकटठे कर चुकने पर सरकार तथा योजना आयोग जैसी नीति निमार्ण करने वाली अन्य महत्त्वपूर्ण सस्थाए स्वाभाविक मानवीय लालसा के आधीन यह चाहेगी कि इस धन का सरकार अपनी छत्रछाया मे प्रयोग करे। प्रशासन के लिए इस मुसाबत से दूर रहना ही ठीक प्रतीत होता है कि पहले तो वह निजी उद्यम को रुपये दे और फिर इस रुपये की सुरक्षा और उचित उपयोग का निश्चय करने के लिए आवश्यक प्रतिबन्ध तथा सन्तुलन (Checks and balances) लागू करे। ससद तथा प्रशासनिक सस्थाओ के लिए यही स्थिति श्रेयस्कर जान पडती है कि सरकारी क्षेत्र म ओद्योगिक उद्यम स्थापित किए जाए।[1]

(2) साधनो के बण्टन का ढाचा और सरकारी क्षेत्र प्रोफेसर रामानाधम् के शब्दो मे 'सरकारी क्षेत्र के विस्तार का मुख्य कारण योजनाओ के आधीन निर्धारित साधनो के बण्टन के ढाचे मे निहित है। प्रथम योजना मे कषि पर बल दिया गया किन्तु द्वितय योजना मे उद्योगो ओर खनन क्रियाओ पर मुख्यत मूल ओर पूजी वस्तु उद्योगो (Basic and capital goods industries) को प्रेत्साहित किया गया। इन परिस्थितियो मे 'यह अनिवार्य है कि सरकारी क्षेत्र ने केवल कुल रूप मे अपितु निजी क्षेत्र की सापेक्षता मे भी विकसित हो।[2] '

(3) सरकारी उद्यमो द्वारा क्षेत्रीय असमानताओ को दूर करना सरकारी क्षेत्र के विस्तार का एक और महत्वपूर्ण कारण यह हे कि देश के विभिन्न क्षेत्रो (Regions) का सन्तुलित विकास (Balanced Development) होना चाहिए ओर इसीलिए यह चेष्टा की जाती हे कि क्षेत्रीय अन्तर गम्भार रूप मे धारण न कर ले। केन्द्र सरकार के स्वामित्वाधान

1 V V Ramanadham *The Structure of Public Enterprises in India* p 5

2 *Second Five Year Plan*, p 23

सरकारी उद्यम उन प्रदेशो मे स्थापित किए जाने चाहिए जो अल्पविकसित हैं और जिनमे स्थानीय साधन पर्याप्त नहीं हैं। इनका एक अच्छा उदाहरण भिलाई, राऊरकेला और दुर्गापुर मे कायम किए गए इस्पात के तीन कारखाने और मद्रास मे नेवेली परियोजना (Neyveli project) है जिसका उद्देश्य इन परियोजनाओं के इर्द गिर्द औद्योगिक क्षेत्रो का विकास करना है। कई बार यह अनुभव किया गया कि राज्यीय सरकार (State Government) के पास अपने प्रदेश के विकास के लिए उचित साधन न हो, ऐसी हालत मे यही उचित समझा गया कि केन्द्र सरकार ऐसे प्रदेशो मे परियोजना स्थापित करे और उनके लिए वित्त प्रबन्ध भी करे।

(4) आर्थिक विकास के लिए धन का स्रोत-आर्थिक विकास के लिए भारी मात्रा मे धन की आवश्यकता होती है। सरकारी क्षेत्र आर्थिक विकास के लिए धन प्राप्त करने का महत्त्वपूर्ण स्रोत है। सरकारी उद्यमा से लाभ को या तो उन्हीं उद्योगो के विस्तार के लिए या अन्य उद्योगों की स्थापना एव विकास के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि निजी उद्यम के आधीन कार्य करने वाले उद्योग भी अपने लाभ का पुन विनियोजन (Re invest ment) कर सकते हैं। या अपने लाभ के अधिकतर भाग को विस्तार योजनाओ मे प्रयुक्त कर सकते है। किन्तु निजी उद्यमो मे लाभ हिस्सेदारो के लाभाश के रूप मे घोषित किया जाता है। इससे जो जनता मे आर्थिक असमानताए ही उत्पन्न होती है। परन्तु सरकारी उद्यमों से प्राप्त अतिरेक (Surplus) को राशि पूजी सचयन (Capital accumulation) के लिए प्रत्यक्ष रूप मे इस्तेमाल की जा सकती है।

(5) समाजवादी ढग का समाज (Socialist pat tern of society) समाजवादी ढग के समाज मे सरकारी क्षेत्र का विस्तार दो प्रकार से किया जाएगा। जहा तक उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओ उनकी मात्रा और इस बात का सम्बन्ध है कि वे कब उत्पन्न की जाये केन्द्र द्वारा उत्पादन का आयोजन किया जाएगा। इस लक्ष्य को निजी क्षेत्र की अपेक्षा सरकारी क्षेत्रो मे आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। इस सम्बन्ध मे द्वितीय पचवर्षीय योजना मे स्पष्ट किया गया 'समाजवादी ढग के समाज को राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप मे अपनाने और आयोजित तेज विकास की आवश्यकता को पूरा करने के लिए यह अनिवार्य है कि मूल तथा केन्द्रीय महत्त्व के सभी उद्योगो या सावजनिक उपयोगी सेवाए (Public Utility Services) सरकारी क्षेत्र मे कायम हो। अन्य उद्यम भी जिनका विकास अनिवार्य है और जिन पर भारी मात्रा मे विनियोग वर्तमान परिस्थितियो मे केवल राज्य द्वारा ही किया जा सकता है सरकारी क्षेत्र मे होने चाहिए।

भारतीय संविधान के निदेशक सिद्धान्तों (Directive Principles) मे एक लक्ष्य यह है कि आय तथा सम्पत्ति की असमानताओ को कम किया जाए ताकि समसमाज (Egalitarian Society) की स्थापना हो सके। पचवर्षीय योजनाओ मे इसे आयोजन का मुख्य उद्देश्य समझा गया है। सरकारी उद्यमो का प्रयोग आय तथा सम्पत्ति के पुन वितरण के लिए किया जा सकता है। इसके लिए निम्नलिखित उपाय प्रयोग मे लाये जा सकते है (क) निजी उद्यम के आधीन इकाइयो से प्राप्त लाभ तो निजी उद्यमकर्त्ताओ की जेबो मे जाता है जबकि सरकारी उद्यमो का लाभ राज्य को प्राप्त होता है (ख) उच्चस्तरीय प्रबन्ध कौशल (Managerial efficiency) को कायम रखते हुए सरकारी उद्यमो मे उच्च पदाधिकारी (Top executives) को प्राप्त होने वाली आय विनियमित की जा सकती है। (ग) सरकारी उद्यमा को ऐसी विभेदक कीमत नीति (Discriminating price policy) अपनाने का निर्देश दिया जा सकता है जिससे कि निम्न आय वर्ग के उपभोक्ताओ को लाभ हो। (घ) सरकारी उद्यम मे सामान्यत कम आय प्राप्त करने वाले कर्मचारियो की आय आसानी से उन्नत की जा सकती है। (ड) सरकारी उद्यम सम्पत्ति से प्राप्त होने वाली आय को कम करने मे सहायक हो सकते है।

(6) गैर सरकारी क्षेत्र की बुराइया और सीमाएं

गैर सरकारी क्षेत्र का व्यवहार और दृष्टिकोण स्वय देश मे सरकारी क्षेत्र के विस्तार मे एक महत्त्वपूर्ण कारणतत्त्व रहा है। जब अमरीका सरकार ने भारत मे बोकारो इस्पात कारखाने को गैर सरकारी क्षेत्र मे लगाने पर जोर दिया तो श्री जे आर डी टाटा ने, जो देश मे गैर सरकारी क्षेत्र के प्रबुद्ध उद्योगपतियो में माने जाते है खुले रूप मे यह स्वीकार किया कि गैर सरकारी क्षेत्र इस कार्य के लिए 700 करोड रूपये का पूजी जुटाने मे असमर्थ है। सत्य यह है कि गैर सरकारी क्षेत्र कुछ उत्पादन क्षेत्रो मे प्रवेश नहीं करना चाहता अथवा यदि वह प्रवेश करना चाहे तो इसके पास पर्याप्त साधन न होने के कारण वह अपने आप को असमर्थ पाता है। यह तो ठीक है परन्तु गैर सरकारी क्षेत्र की सामान्य व्यापार जोखिम उठाने सम्बन्धी अनिच्छा का क्या कारण है? दूसरी योजना और उसके बाद के काल मे खाद कारखाने कायम करने के लिए जारी किए गए कई लाइसेन्स गैर सरकारी क्षेत्र ने लौटा दिए जबकि देश मे उर्वरक उद्योग की सख्त जरूरत थी एक तो उत्पादन को एक दम बढाने के लिए और दूसरे उर्वरक आयात मे प्रयुक्त होने वाली विदेशी मुद्रा की बचत के लिए। 1966 67 मे व्यक्त हुए व्यापार प्रतिसार (Business recession) ने गैर सरकारी क्षेत्र को सीमेंट उद्योग का विस्तार करने का वचन दिया था। भारतीय अर्थव्यवस्था के दीर्घकालीन हित को दृष्टि मे रखते हुए सरकार ने सीमेंट कार्पोरेशन आफ इण्डिया की स्थापना की जिसके आधीन सीमेंट के

उत्पादन को बढाया गया। औषधि उद्योग द्वारा गैर सरकारी क्षेत्र मे एण्टीबायोटिक्स बनाने मे विफलता और उपभोक्ताओ के निर्दयी शोषण के कारण सरकारी क्षेत्र को औषधि उद्योग मे प्रयोग करना पडा।

बहुत सी हालतो मे सरकार निजी क्षेत्र के उद्योगो या गैर सरकारी उद्यमो को श्रमिको के हित मे या उपभोक्ताओ को शोषण से बचाने के लिए अपने स्वामित्व मे कर लेती है। भारत सरकार ने जीवन बीमा कम्पनियो का राष्टीकरण बीमा करवाने वाले व्यक्तियो को गैर सरकारी शोषको की लोलुपता एव शोषण से बचाने के लिए किया। भारत के 20 बडे बैको के राष्ट्रीयकरण का उद्देश्य बैको की पूजी द्वारा गैर सरकारी औद्योगिक एव वाणिज्यिक साम्राज्य स्थापित करने से रोकना था। रुग्ण सूती वस्त्र कारखानो को राजकीय स्वामित्व मे लाने का कारण भी गैर सरकारी क्षेत्र की विफलता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि गैर सरकारी क्षेत्र न तो जनता के प्रति अपने दायित्व को समझता है न ही न्यायोचित रूप मे व्यापार चलाता है। भारत मे निजी क्षेत्र के दोषपूर्ण व्यवहार का कारण यह है कि सूदखोर महाजन हाल ही के वर्षों मे उद्यमकर्त्ता बन गए है और वे औद्योगिक विकास का लक्ष्य रुपया बटोरने के सिवा और कुछ नहीं समझते।

निष्कर्ष यह कि सरकारी क्षेत्र के विस्तार द्वारा हम अपने राष्ट्रीय उद्देश्यो की पूर्ति करना चाहते है। ये मुख्य उद्देश्य है गरीबी को दूर करना आत्मनिर्भरता की प्रगति आय की असमानताओ मे कमी रोजगार के अवसरो का विस्तार, क्षेत्रीय असमानातओ को दूर करना कृषि तथा औद्योगिक विकास की गति को त्वरित करना स्वामित्व के सकेन्द्रण (Concentration of ownership) को कम करना और निजी क्षेत्र के विरुद्ध प्रभावी प्रतिकारी शक्ति (Countervailing power) के रूप मे क्रियाशील होकर एकाधिकारी प्रवृत्तियो को समाप्त करना आधुनिक तकनालाजी द्वारा देश को स्वावलम्बी बनाना और व्यावसायिक तकनीकी एव प्रबन्धकीय कुशल श्रमिको को तैयार करना ताकि देश को अन्ततोगत्वा विदेशी सहायता पर निर्भरता से मुक्त किया जा सके।

4 सरकारी उद्यमो का निष्पादन (Performance of Public Sector Undertakings)

जबकि पिछले कुछ वर्षो मे भारत सरकार की यह नीति रही है कि सरकारी क्षेत्र का विस्तार किया जाए, वहा इस काल मे सरकारी क्षेत्र के उद्यमो की विफलता और दोषपूर्ण कार्यों की बडी आलोचना हुई है। हमारे देश मे एक विवाद चल रहा है कि *क्या लाभ को सरकारी उद्यमो के निष्पादन की कसौटी के रूप मे इस्तेमाल किया जाना चाहिए।* चूकि कीमतो के निर्धारण मे सरकारी उद्यमो के सामने बहुत सी बाते रहती है इसलिए लाभ को उनकी कुशलता की कसौटी *(Criterion of efficiency) बनाना उचित नहीं होगा।* यह बात विशेषकर सार्वजनिक उपयोगी सेवाओ अर्थात् रेलवे डाक एव तार, जल सभरण बिजली आदि के लिए सत्य है। यह सम्भव है कि सरकार इनकी कीमतो को न बढाए, भले ही इनकी लागतो मे वृद्धि हो चुकी हो। इसी प्रकार सरकारी उद्यमो के विनियोग का अधिकतर भाग भारी तथा मूल उद्यमो मे है। ऐसे उद्यमो की परिपाक अवधि (Gestation period) लम्बी होती है और उनके विनियोग का एक भाग निर्माण की अवस्था मे हो सकता है। अत इनकी प्रत्याय दर (Rate of return) प्रभावी प्रयुक्त पूजी (Effective capital employed) पर निकालनी चाहिए और इसमे निर्माण की अवस्था मे चल रही पूजी को शामिल नहा करना चाहिए। दूसरे शब्दो मे चालू फर्मों की लाभदायकता इनके निष्पादन की सूचक (Index of performance) होनी चाहिए।

सरकारी उद्यमो के सन्दर्भ मे लाभदायकता शब्द का प्रयोग शुद्ध व्यापारिक दृष्टि से नहीं होना चाहिए। उन्हे अधिक प्रत्याय दर घोषित करने के लिए मूल्यह्रास (Depreciation) या अन्य अदायगियो मे हेर फेर करने की इजाजत नहीं होती। इसके अतिरिक्त निजी क्षेत्र की तुलना म वे अपने श्रमिको को मजदूरी एव वेतन ओर अन्य सुविधाआ के रूप मे कहीं अधिक प्रतिफल देते है। इनके निष्पादन का ठीक प्रकार अनुमान लगाने के लिए इनकी ऊची सामाजिक प्रत्याय दर (Social rate of return) का भी समायोजन करना चाहिए। अत सरकारी उद्यमो के सदर्भ मे कुल जनित अतिरेक (Total generated surplus) की धारणा जिसमे घोषित लाभ प्रतिधृत लाभ (Retained profits) और मूल्यह्रास शामिल हैं अधिक उपयोगी है। इसका अर्थ नही कि लाभदायकता (Profitability) को सूचक नहीं मानना चाहिए बल्कि समस्या को एक उचित परिप्रेक्ष्य मे देखना चाहिए।

चाहे लाभ अधिकतम करने (Profit maximization) या सरकारी उद्यमो के सन्दर्भ मे अतिरेक उत्पन्न करना निष्पादन की एकमात्र कसाटी नही किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इसकी उपेक्षा करना भी एक भारी भूल होगी। यह ठीक ही कहा है कि लाभ अधिकतम करने को एक सकारात्मक गुण नहीं समझा जा सकता है परन्तु यह एक ऐसा चाबुक ह जिससे सरकारी उद्यमो को कुव्यवहार करने से रोका जा सकता ह। अत लाभ अधिकतम करने के सिद्धान्त का एक नकारात्मक गुण यह हे कि इसके प्रभावाधीन सरकारी उद्यमा को ससाधनो के अपव्यय को कम करने और इससे उत्पन्न होने वाली अकुशलता को दूर करने के लिए

मजबूर किया जा सकता है। इस दृष्टि से सरकारी उद्यमो द्वारा आर्थिक विकास के लिए अतिरेक उत्पन्न करने वाले तर्क मे बहुत वजन मालूम होता है।

सरकारी उद्यमों का निष्पादन

तालिका 8 से पता चलता है कि चौथी योजना के दौरान कुल विनियुक्त पूजी पर प्रत्याय (Rate of return) 4 6 से 6.2 प्रतिशत रही। पाचवीं योजना के काल में प्रत्याय दर मे स्पष्ट वद्धि हुई और यह 7.5 से 9 4 प्रतिशत के बीच रही। 1978 79 मे कोल इण्डिया लि0 और इसके चार अनुर्षगियो के निष्पादन मे गिरावट आने के कारण सरकारी उद्यमों की लाभदायकता (Profitability) पर दुष्प्रभाव पडा। इसके अतिरिक्त इस काल के दौरान खानो और सूती वस्त्र मिलो आदि के राष्ट्रीयकरण या इनके सरकारीकरण के कारण घाटे मे काम करने वाली इकाइयो और इनके घाटे की मात्रा मे भी वद्धि हुई। जबकि 1968 69 मे 32 इकाइयों का कुल घाटा 94 करोड रुपए था 1978 79 मे इनकी सख्या 69 हो गयी और घाटे की मात्रा बढकर 517 रुपये हो गयी।

सरकारी क्षेत्र के निष्पादन मे नया मोड

विनियुक्त पूजी के अनुपात के रूप मे सकल लाभ जो 1980 81 मे 7 8 प्रतिशत था बढकर 1982 83 मे 13 1

तालिका 8 सरकारी उद्यमो मे वित्तीय निष्पादन की प्रवृत्ति

(बीमा कम्पनियो को छोडकर चालू उद्यम) करोड रुपये

वर्ष	इकाइयों की संख्या	विनियुक्त पूजी	कर पूर्व कुल लाभ	कर पूर्व शुद्ध लाभ	कर पश्चात पूजी शुद्ध लाभ पर प्रत्याय दर	कुल विनियुक्त पूंजी पर प्रत्याय दर	कुल विनियुक्त पूजी पर शुद्ध प्रत्याय दर
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7) 4 3	(8)
1974 75	120	6 627	559	312	184	8 4	+2.8
1975 76	121	8 8?4	668	306	129	7 6	+1.5
1976 77	149	10 887	1 078	421	184	9 4	+1 7
1977 78	155	22,130	915	160	92	7.5	+0 8
1978 89	159	13 969	1 071	185	40	7 7	−0.3
1979 80	169	16,182	1 229	255	−47	7 6	−0.3
छठी योजना							
1980–81	168	18,207	1 418	19	203	7 8	1 1
1981 82	188	21 935	2,654	1 025	446	12 1	+2 0
1982 83	193	26,590	3 469	1,547	618	13 1	+2.3
1983 84	210	29 856	3,565	1 480	?40	11 9	+0 8
1984 85	207	36,382	4 628	2,099	909	12 7	+2.5
सातवीं योजना							
1985 86	211	42,965	5 287	2,173	1 172	12.3	+2.8
1986 87	214	51 835	6,521	3 101	1771	12 6	+3 4
1987 88	220	55 617	6 940	3 353	2,030	12.5	+3 6
1988 89	226	67 629	8,572	4 404	2,993	12.7	+4 4
1989–90	233	84 760	10 622	5,293	3789	12.5	+4.5
1990–91	236	102,089	11 102	3,501	2,272	10 9	+2.3
1991 92	237	1 17991	13 675	4 003	2,355	11 6	+2 0
199? 93	239	1 40 110	15 957	5 076	3 271	11 4	+2.3
1993 94	240	1,59,307	18 438	6,544	4 435	11 6	+2.8
1994–95	241	1 62,451	22,630	9 768	7 187	13 9	+4 4
1995 96	239	1 73 874	27 988	14 065	9 878	16 1	+5 6

नोट कर पूर्व कुल लाभ (शुद्ध लाभ + ब्याज + अन लिखा गया निगम कर)

कुल विनियुक्त पूजी (अचल परिसम्पत घटा मूल्यह्रास जमा चल पूजी)

स्रोत भारत सरकार, लोक उद्यम सर्वेक्षण, (1995–96)

प्रतिशत हो गया। इसके पश्चात् यह 12-13 प्रतिशत की अभिसीमा मे ही रहा है। 1986-87 मे विनियुक्त पूजी पर सकल प्रत्याय-दर (Gross rate of return) 12 6 प्रतिशत थी। यह एक अभिनन्दनीय स्थिति है। 1989-90 मे यह 12 6 प्रतिशत थी। परिस्थिति की समीक्षा करते हुए लोक उद्यम सर्वेक्षण (1989 90) मे यह उल्लेख किया गया "परम रूप मे (कर पश्चात्) शुद्ध लाभ जो 1988-89 मे 2 993 करोड रुपए था बढकर 1989 90 मे 3 789 करोड रुपए हो गया। विनियुक्त पूजी पर शुद्ध लाभ के रूप मे प्रत्याय दर बढकर 1989 90 मे 4 5 प्रतिशत हो गयी जोकि दशाक मे सबसे ऊची प्रत्याय दर थी। किन्तु गत वर्षों की भाति पेट्रोलियम क्षेत्र के उद्यमो ने इस लाभ मे सर्वाधिक योगदान दिया अर्थात् 1989 90 के दौरान 3 782 करोड रुपए की कुल राशि मे इनका भाग 2 899 करोड रुपए था (कुल का 76 6%)। अत 200 गैर-पेटोलियम उद्यमो ने कुल लाभ मे केवल 883 करोड रुपये का योगदान दिया। भले ही यह 1988 89 के 431 करोड रुपए के कुल लाभ की तुलना मे सुधार प्रतीत होता है किन्तु यदि इसे विनियोजित पूजी पर शुद्ध लाभ के अनुपात के रूप मे आका जाए तो गैर पेट्रोलियम क्षेत्र के लिए यह केवल 1 3 प्रतिशत था।' जाहिर है कि केन्द्र सरकार के गैर-पेटोलियम क्षेत्र मे सुधार की काफी गुजाइश है।

किन्तु 1989 90 की तुलना मे 1990 91 के दौरान विनियुक्त पूजी पर कुल लाभ 12 5 प्रतिशत से कम होकर 11 2 प्रतिशत हो गया। 239 उद्यमो का शुद्ध लाभ जो 1989 90 मे 3 789 करोड रुपए था कम होकर 1990 91 मे 2 368 करोड रुपए रह गया। शुद्ध प्रत्याय दर (Net rate of return) जो 1989-90 मे 4 5 प्रतिशत थी कम होकर 1990 91 मे 2 2 प्रतिशत हो गयी अर्थात् 1984 85 के पश्चात् यह सबसे नीची थी। पहले वर्षों की भाति शुद्ध लाभ का अधिकतर भाग पेट्रोलियम क्षेत्र द्वारा जुटाया गया अर्थात् 2 475 करोड रुपये की कुल राशि मे 1 779 करोड रुपये-अर्थात कुल का 72 प्रतिशत। परन्तु चूकि 1991-92 विदेशी मुद्रा सकट, ससाधन न्यूनता और औद्योगिक उत्पादन मे सामान्य ढील का वर्ष था सार्वजनिक क्षेत्र पर भी समग्र आर्थिक विमन्दन (Economic deceleration) का प्रभाव हुआ। 1992 93 के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो मे 3 271 करोड रुपये का लाभ प्राप्त किया और इस प्रकार सकल प्रत्याय दर 11 4 प्रतिशत थी परन्तु शुद्ध प्रत्याय दर केवल 2 3 प्रतिशत थी। 1993 94 मे इसमे मामूली वृद्धि हुई और सकल प्रत्याय दर 11 6 प्रतिशत हो गयी।

केन्द्र सरकार के उद्यमो के निष्पादन की इस उज्ज्वल तस्वीर के बारे मे दो बातो का उल्लेख करना रुचिकर होगा। प्रथम कुल लाभ का लगभग 70 प्रतिशत पेट्रोलियम उद्यमो से प्राप्त होता है भले ही किसी वर्ष थोडा कम या अधिक रहा हो। इससे जाहिर होता है कि यदि इस ग्रुप को छोड दिया जाए तो सार्वजनिक क्षेत्र के अन्य उद्यमो का निष्पादन बहुत ही निराशाजनक प्रतीत होता है। दूसरे, सरकार ऊचा लाभदायकता-अनुपात (Profitability ratio) प्राप्त करने के लिए या लागत कम करने कुशलता उन्नत करने या क्षमता-उपयोग बढाने के उपायो की अपेक्षा उन वस्तुओ की प्रशासित कीमते (Administered prices) बढा देती है जो सरकारी क्षेत्र मे उत्पन्न की जाती है। सरकारी उद्यमों की अकुशलताओ पर परदा डालने के लिए प्रशासित कीमतो का प्रयोग एक अस्वस्थ प्रवृत्ति है विशेषकर इसलिए भी इसके कुछ सामाजिक गुह्यार्थ है—एक तो इससे जनता पर अधिक बोझ पडता है और दूसरे सरकारी अफसरो को परिस्थितियो से बचने का आसान रास्ता मिल जाता है।

किन्तु यदि विनियुक्त पूजी पर कर पश्चात् लाभ का परिकलन किया जाए, तो यह चित्र निराशाजनक प्रतीत होने लगता है 1977-78 से 1980 81 के चार वर्षों की अवधि मे सचयी शुद्ध घाटा 388 करोड रुपये था। 1980 81 मे विशेष रूप मे परिस्थिति खराब थी जबकि शुद्ध घाटा 203 करोड रुपये हुआ। 1981-82 मे परिस्थिति ने करवट ली और 590 करोड रुपये का आयकर अदा करने के बाद 446 करोड रुपये का कर-पश्चात् शुद्ध लाभ प्राप्त हुआ। 1984-85 के पश्चात् स्थिति उन्नत होती गयी और कर पश्चात् शुद्ध लाभ 909 करोड रुपये हुआ। 1987 88 और 1988-89 मे स्थिति मे और सुधार हुआ है और कर पश्चात् लाभ बढकर क्रमश 2 030 करोड रुपये और 2 993 करोड रुपये हो गया। कुल विनियुक्त पूजी पर प्रतिशत के रूप मे कर-पश्चात् शुद्ध लाभ जो 1985-86 मे 0 8 प्रतिशत था बढकर 1987 88 मे 3 6 प्रतिशत और 1989-90 मे 4 5 प्रतिशत हो गया। यह एक अभिनन्दनीय स्थिति थी परन्तु 1990 91 से 1993 94 के दौरान इसमे गिरावट आई है। परन्तु 1995-96 मे इसमे सुधार हुआ और शुद्ध लाभ की दर 5 6 प्रतिशत के शिखर पर पहुच गयी।

सरकारी उद्यमों मे कर्मचारी कल्याण

सरकारी क्षेत्र का मुख्य लाभ काम करने वाले कर्मचारियो को हुआ जिनके वेतन, मकानो चिकित्सा एव शिक्षा सम्बन्धी

तालिका 9 **सरकारी उद्यमों में वेतन की प्रवृत्ति**

	1986 87	1995 96
सरकारी क्षेत्र के कर्मचारियो का औसत वेतन (चालू कीमतो मे रुपये प्रति वर्ष)	28 820	105 879
औद्योगिक श्रमिको का उपभोक्ता कीमत सूचकांक (1982 = 100)	137	337
औसत वास्तविक वेतन (1982 की कीमतो को आधार मानते हुए)	28 820	43 043
वेतन में वृद्धि का सूचकांक	100	149

सुविधाओ मे लगातार उन्नति हुई। तालिका 9 से साफ जाहिर होता है कि सरकारी क्षेत्र के कर्मचारियो की वास्तविक मजदूरी जो 1996 97 मे 28 820 रुपये थी (1982 की कीमतो में) बढकर 1995 96 में 43 043 रुपये हो गई। वास्तविक मजदूरी में वार्षिक वृद्धि दर 4 5 प्रतिशत बैठती है। इससे श्रम वर्ग के मजदूरी स्तर की उन्नति के रूप मे प्राप्त सामाजिक लाभ का सकेत मिलता है। 1995 96 मे मकानो, शिक्षा एव स्वास्थ्य सम्बन्धी कल्याणकारी क्रियाओ पर 2,645 करोड खर्च किए गए।

31 मार्च 1996 को सरकारी क्षेत्र द्वारा श्रमिको के लिए गृह निर्माण पर 6613 करोड रुपये खर्च किए गए और इस प्रकार 9 11 लाख मकान श्रमिको के लिए बनाए गए। दूसरे शब्दो मे 44 प्रतिशत श्रमिको के लिए मकानो की व्यवस्था की गयी। इस दृष्टि से सरकारी क्षेत्र श्रमिको के लिए सुविधाए उपलब्ध कराने मे मार्गदर्शक का कार्य करता हैं। इस प्रवत्ति को मजबूत बनाना होगा।

सरकारी क्षेत्र का चित्र उज्ज्वल होता जा रहा है। यदि सरकारी क्षेत्र को निजी क्षेत्र के बीमार कारखानो (Sick mills) विशेषकर सूता वस्त्र मिलो के लिए अनाथालय का कार्य न करना पडता तो इसका निष्पादन और भी अच्छा होता। इन बीमार कारखानो का पुन स्थापित करने का दायित्व अपने ऊपर लेकर इसने 1 6 लाख कर्मचारियो को बेरोजगारी के भयकर भूत से छुडाया है। इस सामाजिक दायित्व के कारण लाभ की मात्रा मे तो निश्चित रूप मे कमी होगी। इस कारण यह बात साफ हो जाती है कि सरकारी क्षेत्र की कुशलता को नापने के लिए लाभदायकता की अकेली कसोटी को आधार मानना उचित नहीं।

5 सरकारी उद्यमो की कमजोरिया

यह कहना अनुचित होगा कि सरकारी उद्यमो मे सभी काय भली प्रकार चल रहे है। सरकारी उद्यमो की क्षमता आर कार्यपद्धति को सुधारने की काफी गुजाइश हैं मुख्य बाते जिनकी और ध्यान दिया जाना चाहिए, निम्नलिखित हे

1 **बढती हुई हानिया**—सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो के निष्पादन की समीक्षा से पता चलता हे कि या तो इनमे लाभ की मात्रा बहुत ही कम हे या वे घाटे मे ही चल रहे है। परिणामत घाटे हर वर्ष बढते हो जा रहे ह। सार्वजनिक क्षेत्र के मुख्य वर्गो से प्राप्त होने वाले लाभ/घाटे का सारांश तालिका 10 मे दिया गया हे

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो के लाभ/घाटे सम्बन्धी आकडो से पता चलता हं कि भारी घाट वाले उद्यमो में राज्यीय बिजली बोर्ड और सिचाई परियोजनाए हैं। यह बात आम विश्वास के विरुद्ध हे कि केन्द्र सरकार के आधीन कार्य करने वाले उद्यम ही घाटे मे चल रहे हैं। वस्तुस्थिति यह है कि राज्यीय सरकारो के आधीन उद्यम साल दर साल घाटे मे चल रहे हे। इस परिस्थिति का वर्णन भी नरोत्तम शाह ने इस प्रकार किया है 'केन्द्र सरकार के उद्यमो के घाटे की आमतोर पर अधिकतम निन्दा हुई है। किन्तु इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता कि इस सम्बन्ध मे सबसे बडे अपराधी राज्याय सरकारे मे हैं। इनमे राज्यीय बिजली बोर्ड सिचाई परियोजनाए, सडक परिवहन निगम और अन्य राज्यीय सरकारो के स्वामित्वाधीन उद्यम है जिनका घाटे के बारे मे अत्यन्त निन्दनीय रिकार्ड है।

जहा तक केन्द्र सरकार के उद्यमो का सम्बन्ध है इन्होंने 1980 81 मे 203 करोड रुपये के घाटे के विरुद्ध 1994 95 मे 7 217 करोड रुपये का लाभ कमाया। इससे समग्र रूप मे उन्नति का सकेत मिलता है। परन्तु कुल लाभ का 38 प्रतिशत पेटोलियम कम्पनियो द्वारा केवल तेल का कीमता मे वृद्धि करके कमाया गया। इसलिए सरकार को घाटा उठाने वाले उद्यमो का एक एक करके अध्ययन करना चाहिए ओर उनका उपचार ढूढना चाहिए। चाहे 1987 88 मे रेलवे ने 84 करोड रुपये का अतिरेक प्राप्त किया डाक एव टेलासचार विभाग ने 263 करोड रुपये का अतिरेक दिखाया। 1995 96 मे परिस्थिति मे सुधार हुआ है ओर रेलवे ने 2 318 करोड रुपये का अतिरेक कमाया है।

राज्यों म लगातार घाटे दिखान वालो मे सिचाइ एव बहुउद्देशीय परियोजनाओ मे हानि की मात्रा आर बढकर 1989 90 मे 1 917 करोड रुपये हो गया बिजला बोर्डो की 4 104 करोड रुपये आर राज्य सडक परिवहन की 359 करोड रुपये। राज्याय सरकारों के उद्यमो का समग्र घाटा जो 1987 88 मे 2 493 करोड रुपये था बढकर 1989 90 मे 6 174 करोड रुपये हो गया। इसके विरुद्ध केन्द्राय सरकार के उद्यमो (विभागीय एव गेर विभागीय) का अतिरेक जो 1984 85 मे 2,299 करोड रुपय था, बढकर 1989 90 म 4 717 करोड रुपय हो गया। यह परिस्थिति बहुत अच्छी नहा ह ओर इस कारण देशभर म सावजनिक क्षेत्र के निष्पादन की समाक्षा होनी चाहिए।

2 **स्थिति निश्चयन को प्रभावित करने वाले प्रबल कारण**—बहुत सी परिस्थितियो मे यह स्वीकार किया गया है कि राजनीतिक कारणतत्त्व परियोजनाओ के स्थिति निश्चयन को प्रभावित करते हे। सत्तारूढ दल के शक्तिशाला मत्रा कइ बार किसी राज्य मे किसी परियोजना के भावी स्थिति निश्चयन (Location) की घोषणा कर देते ह आर इस बात का परवाह नहीं करते कि लागत की दृष्टि से क्या यह स्थान व्यवहार्य है इस कारण पूनी ससाधनो का भारी अपव्यय होता हे। इस अविवेकशील राजनातिक दृष्टि का प्रखर उदाहरण केन्द्र

सरकार का यह निर्णय है जिसके आधीन एम आई जी एयरक्राफ्ट को दो भागो मे दो राज्यो मे स्थापित करने का निर्णय किया गया। ये दो स्थान नासिक और कोरापुट एक-दूसरे से 900 किलोमीटर दूर हैं। इसका मुख्य उद्देश्य दो राज्यो मे दो शक्तिशाली राजनीतिज्ञो को तुष्ट करना था।

3 इन परियोजनाओं की पूर्ति में अधिक समय लगना—इन परियोजनाओ की पूर्ति पर आरंभिक अनुमान की अपेक्षा अधिक समय लगा। कुछ परियोजनाओ को पूर्ण रूप मे उत्पादन आरभ करने मे दस वर्ष या इससे भी अधिक समय लग गया। यह बात केन्द्र सरकार द्वारा चालू किए गए बहुत से उद्यमो पर लागू होती है। परिपाक अवधि (Gestation Period) मे इस विलम्ब के अनेक प्रतिकूल परिणाम व्यक्त हुए हैं। प्रथम इसके परिणामस्वरूप निर्माण की लागत अधिक हो गई है। द्वितीय इन उद्यमो की कार्यान्विति मे विलम्ब के कारण इनसे प्राप्त होने वाले प्रत्याशित लाभ समय पर प्राप्त न हो सके। अन्तिम इन परियोजनाओ पर प्राप्त प्रत्याय (Return) उस प्रत्याशित स्तर पर पहुच न सकी जिसकी स्वीकृति के समय आशा की जाती थी।

सरकारी क्षेत्र के बहुत से प्रौजेक्ट ऐसे समय स्थापित किए गए जब इन परियोजनाओ का परिकल्पन आयोजन एव कार्यान्वियन करने की हमारी तकनीकी योग्यता अपर्याप्त थी। इनमे कुछ उद्योग पहली बार कायम किए गए। जब ये प्रौजेक्ट चालू किए गए, जो उस समय इन उद्योगो मे न ही प्रशिक्षित मानवशक्ति (Trained manpower) उपलब्ध थी और न ही आवश्यक तकनीकी जानकारी।

4 अधिपूंजीयन (Over-capitalisation)—सरकारी उद्यमो पर यह आरोप लगाया जाता है कि उनमे अधिपूंजीयन विद्यमान है। दूसरे शब्दो में बहुत सी परियोजनाओ में अदा प्रदा अनुपात (Input output ratio) प्रतिकूल है। स्टडी टीम ने बहुत सी सरकारी फर्मों हैवी इजीनियरिंग कार्पोरेशन, हिन्दुस्तान एरोनॉटिक्स फर्टिलाइजर कार्पोरेशन (ट्राम्बे प्रौजेक्ट) आदि मे अधिपूजीयन की ओर सकेत किया। स्टडी टीम के अनुसार अधिपूजीयन के मुख्य कारण हैं अपर्याप्त आयोजन विनिर्माण के दौरान विलम्ब ओर अनावश्यक व्यय को कम न करना अतिरिक्त मशीनी क्षमता बाध्य विदेशी सहायता के कारण अप्रतियोगिता के आधार पर आयातित सामान खरीदना परियोजनाओ का अलाभकर स्थिति निश्चयन (Location) उदार ढग से मकान तथा अन्य सुविधाओ को उपलब्ध कराना आदि।

5 आवश्यकता से अधिक मानव-शक्ति का प्रयोग—सरकारी उद्यमो मे मानव शक्ति का प्रयोग वास्तविक आवश्यकता से अधिक मात्रा मे किया जाता है। मानव-शक्ति आयोजन घटिया किसम का है और श्रमिको की शिक्षा एव प्रशिक्षण के ढग पुराने है। एक तो वेतन तथा मजदूरी के असन्तोषजनक होने के कारण और दूसरे श्रमिको को प्रोत्साहन उपलब्ध न होने के परिणामस्वरूप बहुत से कर्मचारी सरकारी उद्यमो को छोडकर निजी उद्यमो मे नौकरियां स्वीकार कर लेते हैं। अत यह सुझाव दिया गया कि सरकारी उद्यमों में उच्च पदो पर नियुक्ति का अधिकार इसमे काम करने वाले कर्मचारियों का होना चाहिए। इसके अतिरिक्त श्रमिको की व्यावसायिक एव तकनीकी शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए ताकि इन्हे प्रबन्ध कार्य मे स्थान दिया जा सके।

तालिका 10 भारत मे सार्वजनिक क्षेत्र के मुख्य अंगों में लाभ/घाटा

करोड़ रुपये

	लाभ (+) घाटा (—)					
		1987-88		1988 89		19989-90
केन्द्र सरकार						
1 केन्द्रीय गैर विभागीय उद्यम	+	2 060	+	2 994	+	3789
2 रेलवे	+	84	+	28	+	140
3 डाक तार एवं संचार	+	263	+	684	+	788
राज्यीय सरकारें						
4 विभागीय उद्यम	+	396	+	347	+	241
5 सिंचाई एवं बहुउद्देशीय परियोजनाएं		1 345		1841		1 917
6 पावर प्रौजैक्ट		116		84		35
7 राज्यीय बिजली बोर्ड		2,264		2 705		4 104
8 राज्यीय सड़क परिवहन		164		251		359
(क) उपयोग (4 से 8)		2 493		4 534		6 174
(ख) उपयोग (1 से 3)	+	2,407	+	3706	+	4 717

स्रोत लोक उद्यम सर्वेक्षण (1988 89) और आर्थिक समीक्षा (1991 92)

2. कीमत नीति—पिछले कुछ वर्षों से सरकार सार्वजनिक उद्यमो द्वारा उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओ और सेवाओ की कीमतों को बढाती जा रही है। सरकार का उद्देश्य इस सम्बन्ध मे एकाधिकारी स्थिति का प्रयोग कर अधिक लाभ कमाना है। आलोचको का मत है कि सरकार कुशलता एव उत्पादिता को बढाकर लागत को कम करने के उपाय का प्रयोग न करके प्रशासित कीमतो को बढाने का सरल मार्ग अपना रही है। अत यह जनता पर एक प्रकार का अप्रत्यक्ष कराधान ही है। सरकार के लिए अधिक उचित यह होगा कि तकनालाजीय उन्नति द्वारा उत्पादन लागत को कम करके कुछ हद तक आदानो की लागत वृद्धि को समो ले और प्रशासित कीमतो (Administered Prices) को बढाने के उपाय का कम प्रयोग करे क्योंकि इससे जनकल्याण पर दुष्प्रभाव पडता है।

7 सरकारी क्षेत्र के उद्यमो में श्रम अनुशासनहीनता—इसकी दोषपूर्ण प्रगति के लिए उत्तरदायी है। श्रमिको मे अनुशासनहीनता और श्रम प्रबन्ध सम्बन्ध (Labour management relations) अच्छे न होने के कारण बहुत बडे बडे सरकारी उद्यमो मे पर्यवेक्षण (Supervision) और प्रशिक्षण भी बहुत कठिन है। सरकार को औद्योगिक सम्बन्ध उन्नत करने के लिए दृढ प्रयास करना होगा।

8 सामर्थ्य उपयोग (Capacity utilisation)—1995 96 के दौरान लगभग 22 प्रतिशत सरकारी उद्यम सामर्थ्य उपयोग की दृष्टि से 50 से 75 प्रतिशत की सीमा के बीच कार्य करते थे और 22 प्रतिशत 50 प्रतिशत से भी नीचे स्तर पर कार्य कर रहे थे। यह एक अनुकूल परिस्थिति नहीं है। अत यह आवश्यक है कि निम्न सामर्थ्य उपयोग के कारण ढूढे जाए और इस परिस्थिति को उचित उपायो द्वारा ठीक किया जाए। इस सम्बन्ध मे सरकारी क्षेत्र के उद्यमो पर यह दोष लगाया जाता है कि वे ससाधनो का अपव्यय करते हैं। यह कहा जाता है कि वे दुर्लभ एव न्यून कच्चे मालो का व्यर्थ करते हैं क्योंकि इनके प्रयोग के आधार निश्चित नहीं हैं। इसके अतिरिक्त, बहुत से सरकारी क्षेत्र के उद्यमो मे भारी माल तालिकाए (Inventories) पाई जाती हैं जिनके कारण इनकी लागत अधिक बढ जाती है और लाभ की मात्रा कम हो जाती है।

9 दोषपूर्ण नियंत्रण—प्राय यह कहा जाता है कि बहुत से सरकारी क्षेत्र के उद्यमो के घटिया निष्पादन का कारण इन पर लगाए गए वित्तीय एव अन्य नियत्रण हैं। आज स्थिति यह है कि इन पर वित्त मत्रालय और प्रत्येक उद्यम से सम्बद्ध मत्री और लोकसभा का नियत्रण होता है। वित्त मत्रालय इन पर अत्यधिक वित्तीय नियत्रण द्वारा इन्हे सरकारी विभागो की भांति काम करने के लिए मजबूर करता है। आडिटर जनरल के अकेक्षण के कारण इन उद्यमो मे पहल की भावना समाप्त हो जाती है।

10 अकुशल प्रबन्ध—व्यापार एव उद्योग की कुशलता के लिए यह आवश्यक है कि व्यापार सम्बन्धी निर्णय शीघ्र लिए जाये। इसके लिए सरकारी उद्यमो के कार्यकलापो मे भारी मात्रा मे स्वायत्तता एव लोचशीलता होनी आवश्यक है। उद्यम के भीतर अधिकार सौंपने (Delegation) और काम मे लोचशीलता की बहुत भारी जरूरत है। इस प्रकार उच्च प्रबन्ध से निम्न स्तर के प्रबन्ध को अधिकार सौंपना कार्यकुशलता बढाने की दूसरी अनिवार्य शर्त है। प्रत्येक अफसर को यह पता होना चाहिए कि उसे क्या करना है और उससे किस परिणाम की प्रत्याशा की जा सकती हैं अन्तिम सरकारी उद्यमो की कार्यात्मक सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उनमे उच्च पदो पर कितने अनुभवी व्यक्ति लगे हुए हैं। व्याग रूप में सरकारी उद्यमो को 'नौकरशाही की रियासतों' (*Colonies for bureaucrats*) की सज्ञा दी जाती है। आरंभिक अवस्था मे वित्त मत्रालय के अफसरो ने जो इन परियोजनाओ के लिए धनराशि उपलब्ध कराते थे प्रबन्ध का अधिकार भी अपने हाथ ही ले लिया। इस प्रकार उन्होंने इस व्यवस्था मे "नौकरशाही रक्त" डाल दिया। इस प्रकार सरकारी अफसरो को अध्यक्ष प्रबन्ध निदेशक और प्रबन्धक नियुक्त करने की रीति चल पडी। इनमे से बहुत से ऐसे हैं जो औद्योगिक उद्यमो को चलाने की योग्यता नहीं रखते। एक और गलत प्रथा यह रही है कि ऐसे राजनीतिज्ञ (विशेषकर जो चुनाव मे हार गए हो) सरकारी उद्यमो के प्रबन्ध के लिए नियुक्त किए जाए। सरकार ने इस बात को स्वीकार करते हुए अब इन उद्यमो मे व्यावसायिक प्रबन्ध (Professionalised management) का प्रयोग करना प्रारभ कर दिया है।

11 अधिक पूजीगहन विनियोग के कारण रोजगार का कम विस्तार—चूंकि अधिकतर सरकारी उद्यम मूल एव भारी उद्योगो मे विनियोग कर रहे थे इस कारण इनकी पूजी गहनता (Capital intensity) बहुत अधिक थी।

नयी प्राथमिकताओ के सन्दर्भ मे जो रोजगार जनन (Employment generation) और लघु उद्योगो को प्रोत्साहन पर बल देती हैं इस बात की जरूरत है कि वर्तमान उद्योगो मे ऐसे क्षेत्र ढूढे जाए जो कम पूजी विनियोग द्वारा उत्पादन की मात्रा एव गुणवत्ता का परित्याग किए बिना रोजगार का विस्तार कर सकते हो। दूसरे, सरकारी उद्यम अपनी कुछ क्रियाए सहायक उद्यमो (Ancillaries) और लघु स्तर की इकाइयो को सोप सकते हैं। विकास की पहली अवस्था के दौरान हमारा बल इस बात पर रहा है कि उन्नत देशों के साथ सहयोग करके आधुनिक तकनालाजी को देश मे बढावा दिया

जाए परन्तु इसके परिणामस्वरूप उत्पादन क्रिया में मानवशक्ति के प्रयोग (Manpower utilisation) का स्तर नीचा रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि अब हम इस मार्ग का परित्याग करें और ऐसी साज-सज्जा, तकनालाजी एव सामग्री का प्रयोग करें जिससे मानव शक्ति को उज्ज्वल करने मे सहायता मिले। ऐसा करना जरूरी है यदि सरकार सार्वजनिक क्षेत्र और छोटे पैमाने का इकाइयो मे समन्वय करने का प्रयास करना चाहती है। इस दिशा मे उठाये गये कदम और सबल बनाने चाहिए।

निष्कर्ष के रूप म यह कहा जा सकता है कि फेडरेशन आफ इण्डियन चैम्बर आफ कामर्स, फोरम ऑफ फ्री एन्टरप्राइज तथा अन्य ऐसी सस्थाओ द्वारा सरकारी क्षेत्र का बहुत काला चित्र प्रस्तुत किया जाता है। साथ ही यह बात भी ठीक है कि सरकारी क्षेत्र के उद्यम उचित ढग से कार्य नहीं करते रहे हैं। दोनो क्षेत्रों मे कुशलता को उन्नत करने के लिए निजी तथा सावजनिक क्षेत्र मे प्रतियोगिता की प्रोत्साहन प्रक्रिया का प्रयोग किया जाना चाहिए।

6. सार्वजनिक क्षेत्र की नीति के भावी दिशा-निर्देश

सावजनिक क्षेत्र के विस्तार का आधार 1956 का औद्योगिक नीति प्रस्ताव था। इस प्रस्ताव मे सावजनिक क्षेत्र को एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। परिणामत सावजनिक क्षेत्र का मुख्य काय भारी तथा मूल उद्योगो और अध सरचना (Infrastructure) का विकास करना था। इसम सन्देह नहीं कि सावजनिक क्षेत्र ने अथव्यवस्था का औद्योगिक आधार कायम किया है जिसके परिणामस्वरूप निजी क्षेत्र अन्य क्षेत्रो म विनियोग कर पाया है क्योंकि इसे सावजनिक क्षेत्र द्वारा अध सरचना सम्बन्धी सुविधाएं उपलब्ध कराया गयीं। परन्तु लोक उद्यम सर्वेक्षण (1992 93) म उल्लेख किया गया "किन्तु आरभ म भले ही सावजनिक-क्षेत्र-विनियोग क्रान्तिक आधार-सरचना तक केन्द्रित रहा, पर बाद में यह अथव्यवस्था के अन्य क्षेत्रो मे भी फैलने लगा जिन मे गैर-अध सरचना और गैर-क्रान्तिक (Non-core) क्षेत्र भी शामिल थे। इसके परिणामस्वरूप, सावजनिक क्षेत्र के समग्र निष्पादन पर दुष्प्रभाव पडा जिसकी अभिव्यक्ति निम्न या नकारात्मक प्रत्याय दर के रूप म हुई।"

इस निष्पादन को उन्नत करने के लिए भारत सरकार ने जुलाई 1991 को नया औद्योगिक नीति का घोषणा का जिसम सावजनिक क्षेत्र के सम्बन्ध म निम्नलिखित निणय किए गए —

(*i*) सावजनिक क्षेत्र के आधीन उद्योगो का समीक्षा की जाएगी ताकि सार्वजनिक क्षेत्र को अध सरचना (Infrastructure), हाईटैक (Hightech) और सामरिक महत्त्व के उद्योगो तक सीमित रखा जा सके। भले ही सार्वजनिक क्षेत्र के लिए कुछ क्षेत्र सरक्षित रखे जाए किन्तु कई अन्य क्षेत्र जो अभी तक सार्वजनिक क्षेत्र के लिए रिजर्व थे निजी क्षेत्र के लिए चयनात्मक रूप मे खोल दिए जाएगे। इस प्रकार, सार्वजनिक क्षेत्र को भी ऐसे क्षेत्रो मे प्रवेश करने की स्वीकृति दी जाएगी, जो इसके लिए सरक्षित नहीं थे।

(*ii*) ऐसे सावजनिक उद्यम जो जीर्ण रूप में बीमार हैं और जिनके सक्षम बनने की कोई सभावना नहीं, उन्हे पुनरुत्थान/पुन स्थापना के लिए औद्योगिक एव वित्तीय निर्माण बोड (Board of Industrial and Financial Reconstruction) को सौंप दिया जाएगा। श्रमिको के हितो की रक्षा के लिए सामाजिक सुरक्षा प्रक्रिया (Social security mechanism) कायम की जाएगी ताकि विस्थापित श्रमिको को राहत पहुचाई जा सके।

(*iii*) ससाधन गतिमान करने एव सार्वजनिक सहयोग को बढ़ावा देने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में सरकारी हिस्सा-पूजी के एक भाग को पारस्परिक निधियो (Mutual funds), वित्तीय सस्थानो और सामान्य जनता को बेचा जाएगा।

(*iv*) सावजनिक क्षेत्र की कम्पनियो के बोर्डों को अधिक व्यावसायिक (Professional) बनाया जाएगा और उन्हे अधिकार दिए जाएंगे।

(v) सावजनिक क्षेत्र के निष्पादन को उन्नत करने के लिए बोध-ज्ञापन (Memorandum of Understanding) की पद्धति द्वारा प्रबन्धको को अधिक स्वायत्तता दी जाएगी और उन्हे अधिक उत्तरदायी भी बनाया जाएगा।

1991 की नीति की घोषणा के पश्चात् सरकार ने अक्टूबर 1993 तक 46 सावजनिक उद्यमो को बी आई एफ आर (BIFR) के निर्देश के लिए सौप दिया। सरकार महत्त्वपूर्ण एव सामरिक क्षेत्रो को निजी क्षेत्र के विनियोग के लिए खोल रही है। सचालन शक्ति क्षेत्र को विदेशी कम्पनियो के लिए खोल दिया गया है। इसी प्रकार, सरकार ने टेली सचार क्षेत्र मे बहुराष्ट्रीय निगमो को आमंत्रित करने का निणय लिया है। सरकार बैंकों तथा बीमा कम्पनियो के निजीकरण के बारे मे भी सोच रही है परन्तु मजदूर सघो के कड़े विरोध के कारण सरकार अस्थायी रूप मे पीछे हट गयी है पर यह रिजर्व क्षेत्रो को निजी क्षेत्र-देशी या विदेशी-को खोलने का नीति को फिर लागू करने का प्रयास करेगी।

अतिरिक्त श्रमिकों का भार कम करने के लिए स्वैच्छिक सेवा-निवृत्ति योजना

दूसरे, सरकार सावजनिक क्षेत्र मे अतिरिक्त श्रमिकों के

भार को कम करने का भी प्रयास करती रही है। आरंभ मे तो यह निकासी-नीति (Exit Policy) के विचार को लागू करना चाहती थी परन्तु मजदूर संघो के कडे विरोध के कारण इस विचार का परित्याग कर दिया। इसकी अपेक्षा सरकार ने स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना (Voluntary Retirement Scheme) अपनायी और इसमे सफल हो गयी है। इसके परिणामस्वरूप, केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों मे काम करने वाले कर्मचारियो की संख्या जो 1990 91 मे 22 19 लाख थी घटा कर 1994-95 मे 20 41 लाख कर दी गयी है। स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के आधीन 1993-94 और 1995-96 के दौरान 1 011 करोड रुपये राष्ट्रीय नवीकरण निधि (National Renewal Fund) मे उपलब्ध कराए गए जिससे 87 800 श्रमिको को इस अवधि के दौरान सहायता उपलब्ध करायी गयी।

सार्वजनिक क्षेत्र की हिस्सा-पूंजी का अविनियोग

तीसरे, सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो की हिस्सा-पूजी (Equity) के अविनियोग (Disinvestment) का प्रोग्राम बनाया है। 1991 मे अपने बजट भाषण मे वित्त मत्री ने उल्लेख किया ससाधन गतिमान करने और सार्वजनिक सहयोग को बढावा देने के लिए और इन्हे अधिक दायित्वपूर्ण बनाने के लिए, सरकार चुने हुए उद्यमो की 20% तक हिस्सा पूजी पारस्परिक निधियो, वित्तीय/विनियोग संस्थानो श्रमिको तथा आम जनता को बेचेगी। इस निणय को लागू करने के लिए सरकार ने 1991-92 और 1992 93 में 31 ऐसे सरकारी उद्यमो जिनका निष्पादन रिकार्ड अच्छा था बेचकर क्रमश 3 038 करोड रुपये और 1 912 करोड रुपये प्राप्त किए।

चाहे मार्च 1993 तक ने सावजनिक क्षेत्र के उद्यमो की हिस्सा पूजी बेचकर 4 950 करोड रुपये प्राप्त किए किन्तु लेखा समिति (Public Accounts Committee) ने वित्त मत्री डा. मनमोहन सिह और तब कार्य कर रहे उद्योग सचिव सुरेश कुमार को सरकारी उद्यमों की हिस्सा पूजी के विक्रय मे अनिवेश प्रक्रिया मे थोडी कामत प्राप्त करने के लिए जिम्मेदार ठहराया है। समिति के विचार मे 1991 92 के दौरान हिस्सा-पूजी के विक्रय मे 3 000 करोड रुपये की अल्प-प्राप्ति (Under realization) की गयी। लोक लेखा समिति ने सकेत किया कि इस सारे कार्य को इस ढग से कार्यान्वित किया गया कि इसमे पारदर्शिता नहीं थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि अपने बजट-घाटे को कम करने की प्रबल इच्छा के कारण वित्त मत्रालय ने अनिवेश कार्यक्रम मे अनुचित तेजी दिखलायी। इसी कारण कुछ आलोचकों ने अनिवेश प्रोग्राम (Disinvestment Programme) को घाटापूर्ति निजीकरण (Deficit privatization) की सज्ञा दी है।

लोक लेखा समिति की इस तीखी आलोचना के परिणामस्वरूप सरकार ने खुली नीलामी (Open bidding) का फैसला किया है और जैसा कि उपलब्ध सूचनाओ से पता चलता है कि चार साल पूर्व इन्हीं हिस्सो से उपलब्ध कीमत प्राप्ति की तुलना मे अब कहीं अधिक कीमत प्राप्त की गयी है। इन कम्पनियो मे शामिल हैं महानगर टेलीफोन निगम लि., भारत हैवी इलेक्ट्रोकल्ज लि., नेशनल एल्यूमिनियम कम्पनी लि., हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कार्पोरेशन लि। यदि यह प्रक्रिया पारदर्शी रूप मे चलती रही तो अविनियोग (Disinvestment) से कीमत प्राप्ति मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि होने की सभावना है।

आर्थिक समीक्षा (1996-97) मे उपलब्ध कराया गया सूचना के आधार पर 12 455 करोड रुपये का अनिवेश 1996 97 तक किया जा चुका है जिसके लिए सरकारी क्षेत्र के वित्तीय सस्थानो पारस्परिक निधियो और आम जनता ने राशि उपलब्ध करायी। अनिवेश (Disinvestment) द्वारा 1991 92 मे 3 038 करोड रुपये, 1992 93 मे 1 961 करोड रुपये 1993-94 मे केवल 48 करोड रुपये का अनिवेश किया गया। किन्तु 1994 95 मे 5 607 करोड रुपये का अनिवेश किया गया परन्तु 1995 96 मे इसम गिरावट आयी और अनिवेश की मात्रा केवल 1 397 करोड रुपये हो गया। 1996-97 मे केवल 500 करोड रुपये के अनिवेश का अनुमान है।

बोध-ज्ञापन (Memorandum of Understanding)

सरकार ने लोक उद्यम नीति समीक्षा समिति (Committee to Review the Policy for the Public Enterprises) अथात् अर्जुन सेनगुप्त समिति (1985) की सिफारिश के आधार पर बहुत से सार्वजनिक लोक उद्यमो के साथ बोध ज्ञापन के रूप म समझाने कर लिए हैं। बोध ज्ञापन का मुख्य उद्देश्य स्वायत्तता और उत्तरदायित्व म सन्तुलन स्थापित करना हैं। उन लोक उद्यमो को छोड जो निर्देश के लिए औद्योगिक एव वित्तीय निर्माण बोर्ड को सौंपे गए, नयी औद्योगिक नीति (1991) के आधीन सभी सावजनिक क्षेत्र के उद्यमो के साथ बोध ज्ञापन किए गए। बोध ज्ञापन नीति का मुख्य उद्देश्य "नियत्रण की मात्रा" को कम करना और "उत्तरदायित्व का गुणवत्ता" को बढाना है। जहा प्रत्येक लोक उद्यम के उद्देश्यो को स्पष्ट रूप मे परिभाषा करनी चाहिए, वहा यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए प्रत्येक लोक उद्यम को कार्यात्मक स्वायत्तता (Operational autonomy) दी जाए। बोध-ज्ञापन का वास्तविक उद्देश्य 'लोक उद्यमों का व्यवस्था' 'नियत्रण द्वारा प्रबन्ध' का

अपेक्षा 'उद्देश्यो द्वारा प्रबन्ध (Management by objectives) के आधार पर करना है।

इसमे सन्देह नहीं कि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम केवल एक उद्देश्य के लिए कार्य नहीं कर सकते। साथ ही यह भी अनुचित होगा कि उनके निष्पादन की समीक्षा के लिए लाभ की कसौटी की उपेक्षा की जाए। इसमे सन्देह नहीं कि बहुत से उद्देश्यो के कारण विशेषकर ऐसी परिस्थिति मे जब कि इन उद्देश्यो मे अन्तर्विरोध हो लाभ की दर नीची ही रहेगी। इसमे सन्तुलन प्राप्त करने के लिए यह बेहतर होगा कि लाभ-उद्देश्य को अधिक महत्त्व प्रदान किया जाए। सार्वजनिक उद्यमो के उद्देश्यो की पुन परिभाषा करनी चाहिए, विभिन्न उद्देश्यो की स्पष्ट जानकारी होनी चाहिए। प्रत्येक उद्देश्य के महत्त्व के बारे मे स्पष्ट निर्णय होना चाहिए ताकि इनके निष्पादन की कसौटियो का विकास हो सके।

1992-93 मे 98 सार्वजनिक उद्यमो ने बोध-ज्ञापनो पर हस्ताक्षर किए और 1993-94 मे 101 उद्यमो ने। इस प्रकार सार्वजनिक उद्यम बोध-ज्ञापन प्रणाली के आधीन आ गए हैं इनका मुख्य उद्देश्य उन्हे मत्रालयो के नियत्रण से मुक्त करना है और एक स्पर्द्धात्मक पर्यावरण मे स्वायत्त रूप मे कार्य करने की इजाजत देना है। 1995-96 के दौरान जिन 104 सरकारी क्षेत्र के उद्यमो ने बोध ज्ञापनो पर हस्ताक्षर किए, उनके मूल्याकन से पता चलता है कि इनमे से 51 'अति उत्तम आके गए और 31 'बहुत अच्छे' आके गए और केवल 2 को बहुत ही घटिया समझा गया। इसका तात्पर्य यह है कि बोध ज्ञापनो के आधीन कार्य कर रहे लगभग 79 प्रतिशत उद्यमो ने अपनी स्थिति उन्नत कर ली है यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है और इस पद्धति को और मजबूत और दोषरहित बनाना चाहिए।

12

भारत में पहली छः योजनाओं की समीक्षा

(REVIEW OF FIRST SIX PLANS IN INDIA)

इस अध्याय मे हम भारत की विकास योजनाओ का *अध्ययन करेंगे और यह जानने की चेष्टा करेगे कि क्या* आयोजन के आधीन आर्थिक विकास की दर पर्याप्त है और *क्या आर्थिक विकास उचित दिशा मे हो रहा है।*

1 प्रथम पचवर्षीय योजना
(1950-51—1955-56)

प्रथम पचवर्षीय योजना का प्रारूप जुलाई 1951 मे *प्रस्तुत किया गया।* इस योजना *की अन्तिम रिपोर्ट दिसम्बर,* 1952 मे प्रकाशित की गई। प्रथम योजना के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थे—

(1) द्वितीय विश्वयुद्ध और फिर देश के विभाजन से बरबाद हुई *अर्थव्यवस्था का पुनरुत्थान करना (2)* खाद्यान्न सकट का समाधान करना और कच्चे मालों की स्थिति विशेषकर पटसन और रूई को सुधारना (3) स्फीतिकारी प्रवृत्तियो (Inflationary tendencies) को रोकना (4) आर्थिक *उपरिव्यय अर्थात्* सडके बनाना रेलो के इजन *तथा अन्य* सामान का प्रतिस्थापन करना सिचाई तथा जलविद्युत परियोजनाओ का निर्माण करना (5) ऐसे *विकास कार्यक्रम* को निर्मित एव कार्यान्वित करना जिससे कि आगामी वर्षों में *विशाल विकास योजनाओ की नींव डाली जा सके* और (6) ऐसी प्रशासनिक एव अन्य सस्थानो (Institutions) का निर्माण करना जो कि भारत के विकास कार्यक्रमो को लागू करने के लिए आवश्यक हो।

प्रथम योजना काल में सार्वजनिक क्षेत्र मे 1 960 करोड *रुपये व्यय किए गए। योजना व्यय की बाट (देखिए तालिका* 1) स्पष्टत यह सकेत करती है कि इस योजना मे कृषि को उच्चतम प्राथमिकता (Highest priority) दी गयी। प्रथम योजना मे यह ठीक ही उल्लेख किया गया—"पहले पाच वर्षों के लिए हमारे विचार से कृषि जिसमे सिचाई तथा सचालन शक्ति भी समाविष्ट है को सर्वोच्च प्राथमिकता दी *जानी चाहिए। इसे महत्त्व देने का उद्देश्य चालू परियोजनाओ* (Projects) को पूरा करना है इसके अतिरिक्त हमारा यह दृढ निश्चय है कि उद्योगो के लिए आवश्यक कच्चे माल तथा खाद्यान्न के उत्पादन मे भारी वृद्धि किए बिना आद्योगिक विकास की तीव्र गति को कायम रखना सभव नहीं होगा।"[1] इस उद्देश्य के लिए योजना में कुल परिव्यय (Outlay) का 31 प्रतिशत कृषि पर *खर्च किया गया।* योजना का उद्देश्य कृषि मे उत्पादन को बढाना था ताकि आर्थिक विकास के लिए आवश्यक कृषि-अतिरेक (Agricultural surplus) प्राप्त किया जा सके।

सार्वजनिक क्षेत्र मे कृषि *सम्बन्धी विनियोग* को दी गई उच्च प्राथमिकता वास्तव मे उद्योगो, विशेषकर बडे पैमानो के उद्योगो, को दी गई निम्न प्राथमिकता से सभव हुई। पूजी की सीमितता के कारण बडे पैमाने के उपभोग वस्तु उद्योगों का विकास गैर सरकारी क्षेत्र (Private sector) पर छोड दिया *गया।* विकास प्रक्रिया *(Process of development)* को सुविधाजनक बनाने के लिए राज्य सरकार द्वारा 523 करोड रुपये *अर्थात्* कुल *परिव्यय* का 27 प्रतिशत परिवहन *तथा* सचार पर व्यय किया गया। इसके अतिरिक्त मानव पूजी (Human capital) को उन्नत करने के लिए सामाजिक सेवाओ अर्थात् शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण (Technical training) स्वास्थ्य शरणार्थी पुनर्वास *(Refugee rehabilitation)* आदि पर 459 करोड रुपये व्यय करने उचित समझे गए।

सार्वजनिक क्षेत्र (Public sector) के प्रोग्रामो के अतिरिक्त, *1951 56 के काल मे गैर सरकारी क्षेत्र मे 1 800 करोड* रुपये का विनियोग किया गया। सरकारी क्षेत्र के 1960 करोड रुपये के परिव्यय मे विनियोग का भाग 1 560 करोड रुपये था। इस प्रकार सरकारी तथा निजी क्षेत्रो को मिलाकर 3 360 करोड *रुपए का विनियोग हुआ।*

1 Planning Commission *First Five Year Plan* p 44

प्रथम योजना की उपलब्धियाँ

परिणाम की दृष्टि से प्राप्ति लक्ष्य से अधिक थी। कृषि-उत्पादन में वृद्धि के लक्ष्य को न केवल प्राप्त ही किया गया बल्कि उत्पादन इससे भी बढ गया। राष्ट्रीय आय में 18 प्रतिशत वृद्धि प्रति व्यक्ति आय में 11 प्रतिशत वृद्धि और प्रति व्यक्ति उपभोग (Per capita consumption) में 9 प्रतिशत वृद्धि हुई।

इसके अतिरिक्त खाद्यान्न उत्पादन में 20 प्रतिशत वृद्धि हुई। सिंचाई सुविधाएं 160 लाख एकड़ भूमि को उपलब्ध करायी गयीं। इनमें से बडी सिंचाई परियोजनाओं द्वारा 60 लाख एकड भूमि और छोटी तथा मध्यम सिंचाई परियोजनाओं द्वारा 100 लाख एकड भूमि को लाभ हुआ। औद्योगिक उत्पादन का सूचकांक (1950 51 100) 139 हो गया अत वार्षिक वृद्धि दर 8 प्रतिशत हुई। इसी प्रकार कपड़े का प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष उपभोग 8 5 मीटर से बढकर 14 3 *मीटर हो गया।*

इसके अतिरिक्त अर्थव्यवस्था को सुदृढ बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण संस्थान कायम किए गए। कृषि उत्पादन की क्षमता को बढाने और ग्रामीण जनता के जीवन स्तर को उन्नत करने के लिए देश भर में सामुदायिक विकास योजना (Community Development Scheme) चालू की गई। इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामों में निवास करने वाले 650 लाख परिवारों के दृष्टिकोण में परिवर्तन करना था। प्रथम योजना *के अन्त तक सामुदायिक विकास आन्दोलन लगभग 1 20 000* ग्रामों में फैल चुका था। इस प्रकार ग्रामीण जनसंख्या का लगभग एक चौथाई भाग इस आन्दोलन के प्रभावाधीन आ चुका था। कुटीर तथा लघु उद्योगों के प्रसार के लिए विशिष्ट स्वतन्त्र बोर्ड प्रथम योजनाकाल में स्थापित किए गए। बड़ी तथा मध्यम सिंचाई परियोजनाएं चालू की गयीं और ग्रामीण विद्युतीकरण (Rural electricification) के कार्यक्रम को त्वरित किया गया।

इसमें सन्देह नहीं कि कृषि सिंचाई तथा सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र में प्रथम योजना सफल हुई। योजना का परिकल्पन जल्दी में किया गया। इसके अतिरिक्त योजना अविश्वसनीय आकड़ों पर आधारित थी। देश में आयोजन का कोई अनुभव न था और परिणामत योजना व्यापक रूप में न बनाई गई। चाहे प्रथम योजना एक विनम्र प्रयास ही था परन्तु इसकी सफलता के कारण देश में दरिद्रता दूर करने के लिए आयोजन पद्धति अपनाने की एक लहर दौड़ गयी और यह विश्वास परिदृढ हो गया कि द्रुत आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए आयोजन ही एकमात्र साधन है। अनिवार्य रूप में प्रथम योजना एक पुनर्स्थापन *योजना (Rehabilitation plan) थी जिसका उद्देश्य भारतीय* अर्थव्यवस्था को जोकि द्वितीय विश्वयुद्ध और देश के विभाजन के कारण बरबाद हो चुकी थी आगामी वर्षों में तीव्र आर्थिक *विकास के लिए तैयार करना था। योजना को अपने उद्देश्यों* में वास्तविक सफलता प्राप्त हुई। अर्थव्यवस्था में विद्यमान न्यूनता (Shortage) दूर हो गईं। योजना के अन्त में आरम्भिक वर्ष की तुलना में सामान्य कीमत स्तर 13 प्रतिशत कम हो गया। खाद्यान्नों की कीमतों में कमी हुई। निर्वाह लागत (Cost of living) का सूचकांक भी कम हो गया। इस प्रकार द्वितीय पंचवर्षीय योजना का निर्माण एक प्रफुल्लित वातावरण में हुआ जिसका मुख्य लक्षण उत्पादन में सर्वांगीण वृद्धि और कीमत स्तर में कमी थी।

2 द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1955-56—1960-61)

द्वितीय पंचवर्षीय योजना का परिकल्पन आर्थिक स्थायित्व (Economic stability) के वातावरण में हुआ। कृषि लक्ष्य प्राप्त हो चुके थे। कीमत स्तर कम हो चुका था और परिणामत यह अनुभव किया गया कि अर्थव्यवस्था एक ऐसी अवस्था पर पहुँच चुकी थी कि इसमें कृषि को निम्न प्राथमिकता (Low priority) दी जाए और देश के औद्योगिक आधार को भविष्य में अधिक तीव्र विकास के लिए सुदृढ बनाने के लिए भारी तथा मूल उद्योगों (Heavy and basic industries) को *आगे बढाने की ठानी जाए।*

इसके अतिरिक्त 1956 की औद्योगिक नीति की घोषणा में समाजवादी ढग के समाज (Socialistic pattern of society) की स्थापना को स्वीकार किया गया। इस आर्थिक नीति में कुछ ऐसे परिवर्तन करने आवश्यक हो गए जिनसे कल्याणकारी राज्य (Welfare state) और 'समाजवादी अर्थव्यवस्था (Socialist economy) के राष्ट्रीय लक्ष्य को साकार किया जा सके। इन उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर *द्वितीय पंचवर्षीय योजना में निम्नलिखित लक्ष्य सूत्रपात किए* गए।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य (Objective of the Second Plan)

(1) राष्ट्रीय आय में तीव्र वृद्धि ताकि देश में जीवन-स्तर उन्नत हो सके—*द्वितीय योजना में उल्लेख* किया मुख्य कार्य पांच वर्षों में राष्ट्रीय आय में 25 प्रतिशत वृद्धि प्राप्त करना था।

(2) द्रुत औद्योगीकरण (Rapid Industrialisation) को प्रोत्साहित करना जिसमें विशेष बल मूल तथा भारी उद्योगों पर हो—देश के तेज औद्योगीकरण के लिए आवश्यक है कि आर्थिक प्रगति को त्वरित करने वाली मशीनें बनायी जाएं। इन मूल महत्त्व के उद्योगों अर्थात् लोहा तथा इस्पात अलौह धातुओं कोयला सीमेंट, भारी रसायन आदि को उन्न

प्राथमिकता दी जानी चाहिए। चूँकि पूजी वस्तु उद्योगो (Capital goods industries) मे भारी मात्रा में विनियोग करना पडता है इसलिए योजना व्यय का काफी अधिक भाग इनके विकास के लिए प्रयुक्त किया गया। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उपभोग वस्तुओ की उपेक्षा की जानी चाहिए। द्वितीय योजना ने स्पष्टतया यह कहा—"मूल उद्योगो में विनियोग से उपभोक्ता वस्तुओ का सभरण (Supply) नहीं बढता, न ही इससे श्रम की बडी मात्रा प्रत्यक्ष रूप मे रोजगार प्राप्त कर सकती है। अत औद्योगीकरण के सतुलित ढाचे के लिए आवश्यक है कि अनिवार्य उपभोग वस्तुओ का सभरण इस प्रकार बढाया जाए कि इससे व्यवस्थित रूप में श्रम का उपयोग (Utilisation of labour) हो और पूजी का मितव्ययी रूप मे इस्तेमाल किया जाए।"

(3) रोजगार के अवसरो का भारी विस्तार—जनता को तो समाजवाद और आयोजन का महत्त्व तभी पता चल सकता है यदि बेरोजगारी और अल्परोजगार (Unemployment and under employment) को समाप्त किया जा सके। रोजगार के अवसरो का निर्माण अर्थव्यवस्था मे विनियोग की मात्रा और ढाचे पर निर्भर करता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जहा श्रम प्रधान उद्योगो (Labour intensive industries) का विकास अनिवार्य है वहा औद्योगिक ढाचे मे विविधता (Diversification) लाना भी आवश्यक है बल्कि औद्योगीकरण का विकेन्द्रीकरण भी आवश्यक है। न केवल नगरीय क्षेत्रो को औद्योगिक घेरो (Industrial enclaves) के रूप मे विकसित करना आवश्यक है बल्कि औद्योगीकरण का विकेन्द्रीकरण भी आवश्यक है ताकि कुटीर एव लघु उद्योगो का विकास हो सके।

(4) आय तथा सम्पत्ति की असमानताओ को कम करना और आर्थिक शक्ति का अधिक समान वितरण करना—आर्थिक विकास की प्रक्रिया मे आय तथा सम्पत्ति का अधिक समान वितरण होना चाहिए। इसके लिए एक ओर तो सामान्य जनता के जीवन स्तर को ऊचा उठाना अनिवार्य है और दूसरी ओर कुछ लोगो के हाथ मे आय तथा सम्पत्ति के सकेन्द्रण (Concentration) को रोकना अनिवार्य है। इतना ही नहीं समाजवादी अर्थव्यवस्था में एकाधिकारी शक्ति (Monopoly power) जिसके द्वारा विभिन्न तराको से जनता के शोषण मे सहायता मिलती है के लिए कोई स्थान नहीं अत आर्थिक क्रिया का निर्देशन इस प्रकार होना चाहिए कि इससे निम्न स्तर पर तो आय तथा रोजगार मे वृद्धि हो और उच्च स्तर पर सम्पत्ति तथा विशेषाधिकार (Privileges) मे कमी होना चाहिए।

विनियोग का बटन (Allocation of Investment)

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे सरकारी क्षेत्र (Public sector) मे वास्तविक व्यय 4 600 करोड रुपये हुआ जिसमे से 3 600 करोड रुपये सरकारी विनियोग और 950 करोड रुपये सरकारी परिव्यय था। इसके अतिरिक्त निजी क्षेत्र मे 3 100 करोड रुपये के विनियोग का अनुमान लगाया गया। अत कुल मिलाकर (निजी तथा सरकारी क्षेत्र मे) पाच वर्षो मे विनियोग की राशि 6 750 करोड रुपये रखी गई।

तालिका 1 से स्पष्ट है कि कृषि को इस योजना मे निम्न प्राथमिकता (Lower priority) दी गई क्योंकि जहां प्रथम योजना मे कृषि तथा सिचाई पर कुल व्यय का 31 प्रतिशत खर्च किया गया वहा द्वितीय योजना मे इन मदो पर कुल 20 प्रतिशत खर्च किया गया। परन्तु उद्योगो एव खनिजो को उच्च प्राथमिकता (High priority) दी गई और इनका सापेक्ष भाग प्रथम योजना म 4 प्रतिशत से बढकर द्वितीय योजना में 20 प्रतिशत हो गया। परिवहन तथा सचार को इन दोनो योजनाओ मे कुल व्यय का लगभग उतना ही भाग मिला।

तालिका 1 सरकारी क्षेत्र मे परिव्यय का वितरण

करोड रुपये

	प्रथम योजना		द्वितीय योजना	
	परिव्यय	प्रतिशत	परिव्यय	प्रतिशत
1 कृषि तथा सामुदायिक विकास	91	15	530	11
2 बडी तथा मध्यम सिचाई	310	16	4 0	9
3 संचालन शक्ति (Power)	260	13	445	10
4 ग्राम तथा लघु उद्योग	43	2	175	4
5 उद्योग एव खनिज	74	4	900	20
6 परिवहन तथा सचार	523	27	1 200	28
7 सामाजिक सेवाए तथा विविध	459	3	830	18
कुल	1 960	100	4 600	100

सामाजिक सेवाओ (Social services) और विविध कार्यो पर प्रथम योजना मे जब कि कुल व्यय का 23 प्रतिशत रखा गया था इस योजना मे यह कम करके 18 प्रतिशत कर दिया गया। परन्तु एक बात स्पष्ट रूप से व्यक्त होता है—प्रथम योजना की तुलना मे द्वितीय योजना मे प्रत्येक मद पर कुल परिव्यय अधिक था। इसका कारण यह था कि द्वितीय योजना का आकार प्रथम योजना के आकार की तुलना मे दुगुने से भी अधिक था। इस प्रकार यह एक उच्चाकाक्षी योजना (Ambitious plan) थी।

द्वितीय योजना की उपलब्धिया (Achievements of the Second Plan)

1960 61 की कीमतो पर राष्ट्रीय आय मे 19.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई परन्तु प्रति व्यक्ति आय (Per capita income) मे 8 प्रतिशत वृद्धि हुई। राष्ट्रीय आय मे 25 प्रतिशत वृद्धि के लक्ष्य की प्राप्ति न होने का आंशिक कारण योजना में परिकल्पित आशावादी पूजी उत्पाद अनुपात (Capital out

put ratio) था। जबकि महलनोबिस माडल (Mahalanobis model) मे पूजी उत्पाद अनुपात 2 1 कल्पित किया गया वस्तुत योजनाकाल मे पूजी उत्पाद अनुपात 3 86 1 आका गया। मुख्य कारण यह था कि द्वितीय योजना मे अर्थव्यवस्था के श्रम प्रधान क्षेत्रो को कम महत्त्व दिया गया और लम्बी परिपाक अवधि (Long gestation period) की पूजी प्रधान परियोजनाओ (Capital intensive projects) पर कहीं अधिक बल दिया गया।

विकास के विशिष्ट प्रोग्रामो मे निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण थे कृषि तथा सामुदायिक विकास मे कृषि उत्पादन को बढाने पर बल दिया गया। खाद्यान्न को बढा कर 750 लाख टन करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया जो बाद मे बढाकर 1960 61 के लिए 800 लाख टन कर दिया गया। गन्ने तिलहन पटसन और रुई के सम्बन्ध मे उत्पादन वृद्धि के लक्ष्य 22 प्रतिशत और 31 प्रतिशत के बीच रखे गए। 210 लाख एकड अतिरिक्त भूमि को सिचाई सुविधाए उपलब्ध करायी गयीं। रासायनिक उर्वरको बीजो भूमि कृष्यकरण (Land reclamation) योजनाओ आदि मे भी प्रगति की गई। सामुदायिक विकास तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा (National Extension Service) के प्रोग्रामो को भी आगे बढाया गया और ग्राम पचायतो का विकास किया गया। औद्योगिक क्षेत्र मे लगभग सारा व्यय मूल उद्योगो अर्थात् लोहे तथा इस्पात कोयला उर्वरक भारी इजीनियरी और बिजली के सामान पर करने की व्यवस्था की गई। दुर्गापुर, भिलाई और राउरकेला के तीन कारखाने चितरजन के रेल इजन बनाने के कारखाने का विस्तार और इण्टीग्रल कोच फैक्टी कुछ मुख्य परियोजनाए थीं। अन्य महत्त्वपूर्ण परियोजनाओ मे ग्राम तथा लघु उद्योगो का विकास कोयले तथा खनिजो का और अधिक उत्पादन रेल सडक परिवहन तथा बन्दरगाहो का विकास एव विस्तार शामिल है।

द्वितीय योजना की कठिनाइया

द्वितीय योजना चाहे उच्चाकाक्षी योजना थी परन्तु यह एक अभागी योजना सिद्ध हुई क्योंकि इस बीच अर्थव्यवस्था विभिन्न दबावो तथा कठिनाइयो के काल से गुजरी। इस योजना की मुख्य कठिनाई कीमतो तथा विदेशी मुद्रा (Foreign exchange) की स्थिति से सम्बन्धित थी। अर्थव्यवस्था मे असन्तुलन का मुख्य कारण चावल के उत्पादन मे कमी के कारण कृषि उत्पादन की अपर्याप्तता था। देशभर मे खाद्यान्न की कीमतो मे वृद्धि हुई। इस काल मे विश्व मे फैली हुई स्फीतिकारी प्रवृत्तियों (Inflationary tendencies) ने विकास परियोजनाओ के लिए आवश्यक मशीनो तथा अन्य सामान की कीमतो को बढा दिया। स्वेज नहर सकट ने अल्पकाल के लिए अन्तर्राष्ट्रीय माल के आयात को रोक दिया और परिणामत कीमते और ऊपर उठीं। एक ओर तो हमारी परियोजनाओ की लागत बढ गई और दूसरी ओर खाद्य आयात अनिवार्य हो गया परिणामत भारत की विदेशी मुद्रा निधि (Foreign exchange reserve) जो 1955 56 मे 700 करोड रुपये थी कम होकर योजना के अन्त मे 100 करोड रुपये रह गई।

कृषि क्षेत्र मे भी काफी असफलता हुई। उन्नत बीजो की मात्रा बढाने उर्वरको के प्रयोग और सिचाई तथा भू रक्षण (Soil conservation) के प्रोग्रामो की गति धीमी रही।। 1957 58 और 1959 60 के मानसून के असफल हो जाने से भी कृषि उत्पादन कम ही रहा। मोटे तौर पर कृषि मे प्रगति असन्तोषजनक रही परन्तु चीनी और चाय को छोडकर खाद्यान्नो पटसन रुई और तिलहन के उत्पादन मे लक्ष्य प्राप्त न हो सके। औद्योगिक क्षेत्र मे भी लक्ष्य प्राप्त न होने से कई कठिनाइया उत्पन्न हुईं। चाहे इस्पात के तीनो कारखाने तो कायम कर दिए गए परन्तु उनका उत्पादन निर्धारित लक्ष्य से कम ही रहा। बहुत से उद्योगो की यही हालत थी। कोयले के लिए रेल व्यवस्था न होने के कारण कोयले का उत्पादन कम कर दिया गया। योजना की एक मुख्य कमी प्रत्येक राज्य मे सचालन शक्ति (Power) की कमी थी।

योजना के पहले दो वर्षों मे प्रकट हुई भुगतान शेष (Balance of payments) की कठिनाइयो के कारण इस पर पुन विचार करके 1958 मे विनियोग के लक्ष्य को कुछ कम करने का निर्णय किया गया। योजना दो भागो मे विभक्त की गई (क) याजना के प्रथम भाग मे 'केन्द्रीय परियोजनाएं' (Core projects) शामिल की गईं। यह निर्णय किया गया कि कुछ भी हो 'केन्द्रीय परियोजनाओं' को तो पूरा करना ही होगा। इस प्रकार द्वितीय योजना पर कुल 4600 करोड रुपये व्यय किए गए और इसमे 1090 करोड रुपये की विदेशी सहायता (Foreign assistance) प्राप्त हुई जोकि कुल व्यय के 24 प्रतिशत के समान थी।

3 तृतीय पचवर्षीय योजना (1960-61—1965-66)

आयोजन, आर्थिक विकास की एक निरन्तर प्रक्रिया है और इस बात को अनुभव करते हुए तीसरी पचवर्षीय योजना का मुख्य लक्ष्य द्वितीय योजना के कार्य को आगे बढाना था। द्वितीय योजना की प्रगति से यह पता चल गया था कि भारतीय आर्थिक विकास मे सबसे बडी बाधा कृषि उत्पादन का धीमी गति से बढ़ना है। अत पहली दो योजनाओ का अनुभव यह बताता था कि कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाए। परिणामत तृतीय योजना मे इस बात पर बल दिया गया कि जहां तक सभव हो सके कृषि उत्पादन का विस्तार

किया जाए और कृषि पर से जनसख्या का दबाव कम करने के लिए ग्रामीण अर्थव्यवस्था (Rural economy) का बहुविध विकास किया जाए। कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए तृतीय योजना में मूल उद्योगों (Basic industries) जैसे इस्पात, ईंधन, सचालन शक्ति, मशीन निर्माण और रसायन पदार्थों पर जो आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त महत्त्वशील हैं पर्याप्त बल दिया गया। वास्तव मे द्वितीय योजना के अन्त पर यह अनुभव किया गया कि अर्थव्यवस्था उठान-अवस्था (Take off stage) मे प्रवेश कर गई है और इन दोनो योजनाओं के फलस्वरूप एक ऐसे सस्थानात्मक ढाचे (Institutional structure) का निर्माण हुआ है जिससे तेज आर्थिक विकास सभव हो सकेगा। इसलिए तृतीय योजना का लक्ष्य आत्मनिर्भर एव स्वय स्फूर्त अर्थव्यवस्था (Self reliant and self generating economy) रखा गया। तृतीय योजना के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थे—

(1) राष्ट्रीय आय मे 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त करना और विनियोग का ऐसा ढाचा निर्मित करना कि आगामी योजनाओ मे भी इस विकास दर को कायम रखा जा सके

(2) खाद्यान्नो मे आत्मनिर्भरता प्राप्त करना और उद्योग तथा निर्यात की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए कृषि उत्पादन को बढाना*

(3) मूल उद्योगो अर्थात् इस्पात, रासायनिक उद्योगो ईंधन तथा सचालन शक्ति का विस्तार करना और मशीन निर्माण की क्षमता बढाना ताकि भावी औद्योगीकरण की आवश्यकताओं को आगामी दस वर्षों मे देश के आन्तरिक साधनो द्वारा पूरा किया जा सके

(4) देश की मानव शक्ति का अधिकतम सभव सीमा तक इस्तेमाल करना और रोजगार के अवसरो का बहुत काफी विस्तार करना

(5) समय के साथ साथ अधिकाधिक मात्रा मे जनता मे समान अवसर (Equal opportunity) उपलब्ध कराए जाए, आय तथा सम्पत्ति का असमानताओ को कम किया जाए और आर्थिक शक्ति का अधिक समान वितरण किया जाए।

ऊपर दिए गए उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए, द्वितीय योजना के आकार मे बडी योजना ही अनिवार्य थी। तृतीय योजना मे इस सम्बन्ध मे स्पष्ट किया गया— 'पाच प्रतिशत वार्षिक विकास दर प्राप्त करने के लिए वर्तमान विनियोग के लगभग 11 5 प्रतिशत स्तर की अपेक्षा राष्ट्रीय आय का 14 प्रतिशत से अधिक विनियोग करना अनिवार्य होगा।"[2]

व्यय और बटन (Expenditure and allocation)

तृतीय योजना मे सरकारी क्षेत्र मे 7 00 करोड के ... व्यय की व्यवस्था की गई, जिसमे से 6300 करोड रुपये पूजी खाते पर विनियोग (Investment on capital account) था और शेष चालू परिव्यय (Current outlay) था। सरकारी क्षेत्र में 6,300 करोड रुपये के विनियोग के अतिरिक्त, निजी क्षेत्र में 10 400 करोड रुपये के कुल विनियोग का लक्ष्य रखा गया।

तालिका 2 तृतीय योजना मे वित्तीय परिव्यय

करोड रुपयों में

मदे	व्यय का लक्ष्य		वास्तविक व्यय	
	कुल व्यय	प्रतिशत	कुल व्यय	प्रतिशत
1 कृषि तथा सामुदायिक विकास	1 068	14	1 089	12.7
2 बडी तथा मध्यम सिचाई	650	9	664	7 7
3 सचालन शक्ति	1 012	13	1,252	14 6
4 ग्राम तथा लघु उद्योग	264	4	241	2.8
5 सगठित उद्योग तथा खनिज	1,520	20	1 726	20 1
6 परिवहन तथा सचार	1 486	20	2,112	24 7
7 सामाजिक सेवाए तथा विविध	1,500	20	1 493	17 4
कुल	7,500	100	8,577	100 0

परिव्यय के विभाजन से पता चलता है कि तृतीय योजना मे कृषि, सिचाई और सचालन शक्ति पर कुल व्यय के 36 प्रतिशत की व्यवस्था की गई जबकि इसकी तुलना मे द्वितीय योना मे इन मदो पर 30 प्रतिशत की व्यवस्था की गई थी। अत कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। परिवहन तथा सचार (Transport and communication) को तृतीय योजना मे अपेक्षाकृत कम अनुपात अर्थात् 20 प्रतिशत प्राप्त हुआ। अन्य मदो पर द्वितीय योजना की तरह उतना ही प्रतिशत व्यय किया गया। अत यह स्पष्ट हो जाता है कि तृतीय योजना मे चाहे कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई परन्तु ऐसा उद्योग की कीमत पर नहीं किया गया। मूल उद्योगों के विस्तार को आर्थिक विकास की दृष्टि से अनिवार्य समझा गया।

तीसरा योजना के दौरान कृषि उत्पादन मे 6 प्रतिशत औसत वार्षिक वृद्धि और औद्योगिक उत्पादन मे औसत 14 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य रखा गया।

तृतीय योजना की प्रगति का पुनर्विलोकन

प्रगति की वास्तविक स्थिति की जाच से पता चलता है कि योजना इन लक्ष्यो को पूरा करने मे सफल नहीं हो सकी है। दो मुख्य कारण अर्थात् भारत पर चीन द्वारा 1962 मे किए गए आक्रमण और 1965 मे पाकिस्तान से युद्ध छिड जाने के परिणामस्वरूप विकास पर दुष्प्रभाव पडा। उत्पादन की

2 *Planning Commission Third Five Year Plan* p 51

प्राथमिकताओं को युद्ध की आवश्यकताओं के अनुकूल परिवर्तित करना पडा। 1964 65 को छोडकर तृतीय योजना के अन्य सभी वर्षों मे भारत के एक या दूसरे क्षेत्र मे सूखा पडा। 1965 66 तो वर्षा की दृष्टि से अत्यन्त निराशाजनक वर्ष रहा।

योजना के पाच वर्षों मे राष्टीय आय की वृद्धि कल्पित लक्ष्य अर्थात् 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की तुलना मे आधी हुई। 1965 66 मे तो राष्ट्रीय आय मे बढने की अपेक्षा वस्तुत 4 2 प्रतिशत की कमी व्यक्त हुई। योजना के पहले चार वर्षों मे प्रति व्यक्ति आय की कुल वृद्धि 7 प्रतिशत हुई। इस सम्बन्ध मे यह सकेत करना अनिवार्य है कि 1960 61 और *1964 65 के बीच वस्तु क्षेत्र (Commodity sector) का* उत्पादन 2 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष के हिसाब से बढा किन्तु 1960 61 और 1965 66 के दौरान सेवा क्षेत्र (Service sector) मे 6 5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि कुल सामाजिक व्यय सभरण की तुलना मे अधिक बढा। परिणामत तीसरी योजना के दौरान थोक कीमतो मे 36 4 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

1960 61 मे खाद्य उत्पादन 820 लाख टन था जो 1964 65 मे अपने शिखर (अर्थात 890 लाख टन) पर पहुच गया किन्तु 1965 66 मे भारी सूखा पडने के कारण खाद्यान्न उत्पादन कम होकर 720 लाख टन हो गया। इस प्रकार, तीसरी योजना मे खाद्य उत्पादन मे 2 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई जबकि लक्ष्य 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष था। कुल रूप मे कृषि उत्पादन मे योजना के पहले चार वर्षों मे 2 6 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई जबकि *पिछले दशक (अर्थात् 1950 51* से 1960 61) मे कृषि उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर 4 प्रतिशत थी। कुछ हद तक कषि उत्पादन की असन्तोषजनक वृद्धि के लिए मानसून को विफलता को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है किन्तु इसका दूसरा मुख्य कारण भू सुधार उपायो को लागू न करना और किसानो को कृषि आदानो (Agricultural inputs) की अनुपलब्धता था।

औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि भी इस काल मे सन्तोषजनक नहीं रही। जबकि योजनाकाल मे औद्योगिक उत्पादन के सम्बन्ध मे 14 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य रखा गया वास्तविक वद्धि केवल 5 7 प्रतिशत प्रति वर्ष हुई। औद्योगिक उत्पादन मे धीमी प्रगति की आंशिक व्याख्या उपभोग वस्तु उद्योगो की अपेक्षा पूजी वस्तु उद्योगों तथा मूल अन्तर्वर्ती वस्तु (Basic intermediate goods) उद्योगो के उत्पादन पर अधिक बल देने के रूप मे की जा सकती है। औद्योगिक उत्पादन के सामान्य सूचकाक की तुलना मे पूंजी वस्तु उद्योगो के उत्पादन का सूचकाक तीव्र गति से बढा परन्तु इसके विरुद्ध उपभोग वस्तु उद्योगो (Consumer goods industries) का सूचकाक अपेक्षाकृत कम दर से बढा। परिणामत औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि के कारण सामान्य जनता द्वारा प्रयोग की जाने वाली उपभोग वस्तुओ की खपत मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि नहीं हुई।

तृतीय योजना का एक और असन्तोषजनक लक्षण कीमतों और विशेषकर खाद्यान्नो और अनिवार्य उपभोग वस्तुओं (Essential consumer goods) की कीमतो मे वृद्धि है। पाच वर्षों के दौरान खाद्य पदार्थों के कीमत सूचकाक मे 48 4 प्रतिशत की वृद्धि हुई। कीमतो की वृद्धि के कारण उत्पादन के उन्हीं भौतिक लक्ष्यो के लिए अधिक मात्रा मे वित्तीय विनियोग करना पडा।

तीसरी योजना की पूर्णावधि मे सार्वजनिक क्षेत्र मे कुल वास्तविक व्यय 8 577 करोड रुपये आका गया। इसका मुख्य कारण कीमतो मे भारी वृद्धि था। इस व्यय का ढाचा लगभग मूल योजना की भाति ही था। केवल परिवहन एव सचार पर वास्तविक व्यय 20 प्रतिशत की अपेक्षा कुल व्यय का 24 7 प्रतिशत किया गया। इसके लिए सामाजिक सेवाओ पर व्यय करना पडा। जबकि योजना के अन्त पर कर-आय कुल राष्ट्रीय आय के 14 प्रतिशत तक पहुच गई बचत-आय अनुपात केवल 10 5 प्रतिशत तक ही बढ सका। इसके अतिरिक्त तीसरी योजना के अन्त तक 90 से 100 लाख *व्यक्ति बेरोजगार पाए गए।*

4 वार्षिक योजनाए (1966-67 से 1968-69)

तीसरी योजना के दौरान आर्थिक स्थिति के बहुत अधिक बिगड जाने के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था पर बहुत दबाव पडा। 1962 मे चीन के आक्रमण और 1965 मे पाकिस्तान से युद्ध छिड जाने के कारण प्रतिरक्षा पर भारी व्यय करना पडा। इसके साथ ही 1965 66 मे सूखा पडने के कारण विदेशो से खाद्यान्नो का भारी आयात करना पडा। फसलो की विफलता के कारण ऐसे उद्योगो के उत्पादन मे कमी व्यक्त हुई जो अपने कच्चे माल के लिए कृषि पर निर्भर थे। इन सभी कारणो के परिणामस्वरूप कीमते तीव्र गति से चढने लगीं। इस प्रकार देशभर मे सरकारी कर्मचारियो द्वारा अधिक महगाई भत्ते की माग की गयी। प्रतिरक्षा और विकास के युगल उद्देश्यो की पूर्ति के लिए चौथी योजना का पुनर्गठन आवश्यक हो गया। इसमे समय लगना अनिवार्य था। इस *कारण यह उचित समझा गया कि जब तक चौथी योजना* तैयार नहीं हो जाती तब तक वार्षिक योजनाए (Annual Plans) तैयार की जाए। इन तीन वर्षों मे कुल रूप मे 6 626 करोड रुपये व्यय किए गए। वार्षिक योजनाओ के व्यय का ब्यौरा तालिका 3 मे दिया गया है।

तालिका 3 · वार्षिक योजनाओं में व्यय का विवरण

मद	1966-69 कुल	कुल का प्रतिशत
1 कृषि, सामुदायिक विकास एव सहकारिता	976	14 6
2 सिंचाई एव बाढ नियत्रण	471	7 1
3 सचालन शक्ति	1 213	18.3
4 सगठित उद्योग	1,511	22 8
5 ग्राम तथा लघु उद्योग	126	1 9
6 परिवहन तथा सचार	1 222	18 4
7 सामाजिक सेवाए आदि	976	14 7
8 खाद्यान्नों के बफर स्टाक	140	2 1
कुल	6 626	100 0

1966-67 मे भारी सूखा पडने के कारण खाद्यान्न उत्पादन 760 लाख टन तक ही पहुच सका (चाहे यह 1965-66 के स्तर से थोडा ऊचा था) परन्तु 1964-65 के 890 लाख टन की तुलना मे कहीं कम था। कृषि उत्पादन मे समग्र रूप मे कमी का औद्योगिक उत्पादन पर भी प्रभाव पडा। बचत-आय अनुपात जो कि 1965-66 मे 10.3 प्रतिशत था, कम होकर 1966-67 मे 8 2 प्रतिशत हो गया। इसका प्रभाव औद्योगिक उत्पादन पर भी पडा जिसमे 0.3 प्रतिशत की नाममात्र वृद्धि हुई। 1966-67 मे स्थापित क्षमता मे 20 लाख किलोवाट के लक्ष्य की तुलना मे 12 लाख किलोवाट की वृद्धि हुई। इन सभी का परिवहन क्षेत्र पर भी असर पडा। रेल परिवहन के 20.3 करोड टन से 21 6 करोड टन तक बढ जाने के लक्ष्य मे सफलता प्राप्त न हो सकी।

मार्च 1965 के पश्चात् कीमतो मे अभूतपूर्व वृद्धि हुई। 1966 67 मे थोक कीमत सूचकाक 14 प्रतिशत बढ गया और 1967-68 मे इसमे 11 प्रतिशत की अतिरिक्त वृद्धि हुई। अत इन वर्षों मे देश तीव्र स्फीतिकारी प्रवृत्तियो मे ग्रस्त था। सौभाग्यवश 1967-68 की भरपूर फसल ने स्थिति सुधार ली और कीमतों की स्फीतिकारी वृद्धि रुक गयी। 1968-69 मे 1 प्रतिशत की कमी हुई। अत चौथी योजना के आरभ मे यह अत्यन्त सन्तोषजनक बात थी और चौथी योजना मे एक भारी धक्का लगाकर विकास प्रक्रिया को पुन त्वरित किया जा सकता था।

5 चौथी पचवर्षीय योजना (1969-70 से 1973-74)

श्री अशोक मेहता के नेतृत्व मे अगस्त 1966 मे चौथी योजना की रूपरेखा तैयार की गई। परन्तु 1965 66 और 1967 68 के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था के सूखे एव मदी मे ग्रस्त हो जाने के कारण सरकार ने चौथी योजना को स्थगित कर दिया। इसके पश्चात् तीन वार्षिक योजनाए तैयार की गयीं। इस बीच मे योजना आयोग का पुनर्गठन किया गया और प्रोफेसर डी आर. गाडगिल को इसका नया उपाध्यक्ष नियुक्त किया गया। अत. योजना आयोग द्वारा 1969-70 से 1973-74 की अवधि के लिए नई चौथी योजना तैयार की गयी।

चौथी योजना का दार्शनिक आधार

नयी चौथी योजना मे दो मुख्य लक्ष्य रखे गए **'स्थिरता के साथ विकास'** (Growth with stability) और **'आत्मनिर्भरता'** (Self reliance) की अधिकाधिक प्राप्ति। इन मुख्य उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित कार्य करने का निर्णय किया गया—

(i) राष्ट्रीय आय की 5.5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि-दर प्राप्त करना—नीति की दृष्टि से कृषि-उत्पादन, विशेषकर खाद्य उत्पादन की वृद्धि केन्द्रीय महत्त्व रखती है। अत यह अनुमान लगाया गया कि योजना काल मे राष्ट्रीय आय की वार्षिक वृद्धि दर 5.5 प्रतिशत होनी चाहिए। पाच वर्षों (अर्थात् 1969-74) की सम्पूर्ण अवधि मे खाद्य उत्पादन को 31 प्रतिशत बढाने का लक्ष्य रखा गया।

(ii) आर्थिक स्थिरता कायम करना—इस उद्देश्य के लिए खाद्यान्नो की कीमतो और सामान्य कीमत-सतर को स्थिर रखने की दिशा मे प्रयास किया गया। खाद्य कीमतो (Food prices) को स्थिर करने के लिए हरित क्रांति (Green revolution) पर बल दिया गया और इस प्रकार पर्याप्त मात्रा मे बफर स्टॉक (Buffer stock) कायम करने की नीति अपनायी गई। दूसरी ओर योजना का वित्त-प्रबन्ध इस प्रकार किया गया कि अतिरिक्त कराधान (Additional taxation) द्वारा साधन जुटाए जाए ताकि स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न न हो।

(iii) आत्मनिर्भरता (Self-sufficiency) प्राप्त करना—आत्मनिर्भरता की दृष्टि से चौथी योजना मे 1971 तक पी एल 480 के आधीन खाद्य-आयात को पूर्णतया बन्द करने का लक्ष्य रखा गया। वर्तमान स्तर की तुलना मे विदेशी सहायता की मात्रा भी चौथी योजना के अन्त तक काटकर आधा करने का लक्ष्य रखा गया।

(iv) रोजगार तथा राष्ट्रीय न्यूनतम (Employment and National Minimum)—योजना का एक और लक्ष्य यह था कि समस्त श्रमशक्ति के लिए रोजगार के अवसर स्थापित किए जाए। ग्रामीण क्षेत्रो मे यह लक्ष्य श्रम-प्रधान योजनाओ अर्थात् छोटी सिंचाई, भू क्षरण, आयकट (Ayacut) तथा अन्य क्षेत्र विकास योजनाओ और गैर-सरकारी भवन निर्माण द्वारा पूरा करने का निणय किया गया। इसके अतिरिक्त

उद्योग तथा खनिज मे योजना विनियोग की मात्रा बढाकर राष्ट्रीय आय और रोजगार मे वृद्धि की प्रत्याशा की गयी। कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन का स्तर ऊचा उठने के परिणामस्वरूप तृतीयक क्षेत्र मे और अधिक रोजगार काम करने की आशा की गयी।

चौथी योजना की रूपरेखा

चौथी योजना मे 24 882 करोड रुपये के कुल परिव्यय (Outlay) की व्यवस्था की गयी जिसमे 15 902 करोड रुपये सरकारी क्षेत्र का भाग था और शेष 8 980 करोड रुपये गैर सरकारी क्षेत्र मे विनियोग के रूप मे रखे गए। सरकारी क्षेत्र के परिव्यय मे 13 655 करोड रुपये विनियोग के रूप मे आर 2 247 करोड रुपये चालू परिव्यय (Current outlay) के रूप म रखे गये। इस प्रकार सरकारी या गैर सरकारी क्षेत्र को मिलाकर कुल 22 635 रुपये के विनियोग की व्यवस्था की गयी।

तालिका 4 से स्पष्ट है कि सरकारी क्षेत्र के कुल परिव्यय का 23 प्रतिशत कृषि को दिया गया। इसके विरुद्ध उद्योग तथा खनिज पदार्थों को कुल व्यय का 18 2 प्रतिशत प्राप्त हुआ। यह बहुत ही अजीब बात है कि उद्योगो का

तालिका 4 **चौथी योजना में विकास-परिव्यय की विभिन्न मदे**

करोड़ रुपये

मदें	आयोजित व्यय	प्रतिशत	वास्तविक परिव्यय	प्रतिशत
1 कृषि तथा सम्बन्धित क्षेत्र	2 728	17 2	2 320	14 7
2 सिचाई तथा बाढ नियत्रण	1 087	6 8	1 354	8 6
3 सचालन शक्ति	2,448	15 4	2 932	18 6
4 ग्राम तथा लघु उद्योग	293	1 8	243	1 5
5 उद्योग तथा खनिज	3 338	21 0	2 864	18 2
6 परिवहन तथा सचार	3 237	20 4	3 080	19 5
7 सामाजिक सेवा तथा विविध	2 771	17.4	2 986	18 9
कुल (1 से 7)	15 902	100 0	15 779	100 0

भाग कम रखा गया। इसी प्रकार ग्राम तथा लघु उद्योगों का भाग घटाकर केवल 1 5 प्रतिशत कर दिया गया। सामाजिक सेवा क्षेत्र को 18 9 प्रतिशत मिला। यहा यह सकेत करना होगा कि शिक्षा एव अनुसधान को कुल व्यय का 5 7 प्रतिशत प्राप्त हुआ। परिवार नियोजन प्रोग्राम के लिए 278 करोड रुपये की व्यवस्था की गयी जबकि तीसरी योजना में इसके लिए केवल 25 करोड रुपये रखे गये थे। परिवहन तथा सचार पर योजना व्यय के 19 5 प्रतिशत परिव्यय की व्यवस्था की गयी।

योजना के लक्ष्य के रूप मे राष्ट्रीय आय मे 5 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि और प्रति व्यक्ति आय की 3 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए विनियोग दर को 1968 69 के 11 3 प्रतिशत के स्तर से उठाकर चौथी योजना के अन्त तक 14 5 प्रतिशत करने की ठानी गयी। विनियोग मे देशीय बचत (Domestic saving) का भाग 1968 69 मे उपलब्ध 9 प्रतिशत से 1973 74 मे 13 2 प्रतिशत तक बढाने का लक्ष्य रखा गया। साथ ही खाद्य भिन्न आयात (Non food imports) मे 5 प्रतिशत की कमी लाने का लक्ष्य रखा गया। इसके परिणामस्वरूप विदेशी सहायता को वर्तमान स्तर के आधे पर लाने का लक्ष्य तय किया गया।

चौथी योजना की प्रगति की समीक्षा

चाहे मूल मे चौथी योजना मे 15 902 करोड रुपये के व्यय की व्यवस्था की गयी परन्तु वर्तमान कीमतो पर चौथी योजना के दौरान 15 779 करोड रुपये का वास्तविक व्यय हुआ। भले ही मौद्रिक रूप मे यह केवल 123 रुपये की मौद्रिक कमी को व्यक्त करता है परन्तु वास्तविक रूप मे यह 15 902 करोड रुपये के मौलिक व्यय से कहीं कम है। इसका मुख्य कारण चौथी योजना के दौरान हुई कीमत वृद्धि है।

चौथी योजना की प्रगति के रिकार्ड से स्पष्ट है कि 1960 61 की कीमतो पर राष्ट्रीय आय की औसत वार्षिक वृद्धि दर 3 3 प्रतिशत रही जो कि 5 5 प्रतिशत वार्षिक विकास दर के लक्ष्य के नीचे थी। खाद्यान्नों के सम्बन्ध में स्थिति असन्तोषजनक हो रही क्योंकि उनका औसत वार्षिक उत्पादन केवल 2 7 प्रतिशत की दर से बढा। बहुचर्चित हरी क्रान्ति का प्रभाव भी धीरे धीरे समाप्त हो गया। जबकि गेहूँ के उत्पादन मे तीव्र वृद्धि का प्रमाण तो मिलता है चावल में अधिक उपजाऊ किस्म के बीजो मे नाममात्र सफलता ही प्राप्त हुई है। पटसन तथा रुई और दालो के सम्बन्ध में भी सफलता प्राप्त नहीं हो पाईं।

औद्योगिक उत्पादन का रिकार्ड एक निराशाजनक चित्र प्रस्तुत करता है। विकास दर की लगभग 8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर के विरुद्ध 4 2 प्रतिशत की वास्तविक प्राप्ति कहीं कम है। दो प्रकार के कारण इस परिस्थिति के लिए उत्तरदायी हैं—(क) वे जो क्षमता उपयोग (Capacity utilisation) के अवरोधक हैं और (ख) वे जो क्षमता वृद्धि में रुकावट हैं। क्षमता मे अल्पप्रयोग के लिए उत्तरदायी कारणो में शामिल हैं—(i) अपर्याप्त माग (ii) कच्चे माल सघटकों स्टोर और फालतू पुर्जों (Spares) का अभाव और अनियमित सभरण (iii) सचालन शक्ति का अभाव या अस्थिर सभरण (iv)

परिवहन सम्बन्धी अडचने (v) अशान्त औद्योगिक सम्बन्ध और (vi) सरकारी उद्यमो के प्रबन्ध सम्बन्धी समस्याए। चौथी योजना की मध्यकालीन समीक्षा ने वर्तमान स्थिति के लिए हमारी औद्योगिक लाइसेस नीति को दोषी ठहराया। लाइसेंस नीति के अतिरिक्त लागत मे वृद्धि के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली वित्तीय कठिनाइयो, इस्पात का अभाव देशी एव विदेशी सयत्र एव उपकरण प्राप्त करने मे होने वाले विलम्ब के कारण नयी क्षमता के निर्माण मे बाधा रही है। परिणामत औद्योगिक उत्पादन लक्षित दर पर बढ नहीं पाया और अच्छी फसल के वर्षो के दौरान औद्योगिक उत्पादन के विस्तार के विशाल अवसर खोए गए। पर्याप्त मात्रा मे सचालन शक्ति की उपलब्धि का अभाव औद्योगिक उत्पादन को गति धीमी करने वाला एक प्रमुख कारण है।

6 पाचवी पचवर्षीय योजना (1974 75—1978-79)

योजना आयोग ने अपना प्रलेख 'पाचवीं योजना का दाशनिक आधार' राष्ट्रीय विकास परिषद के सामने 30 मई 1972 को पेश किया जिसमे विस्तत योनना के निर्माण के लिए मार्गदर्शी सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए। इसके कुछ समय बाद श्री सी सुब्रह्मण्यम की बजाय श्री डी पी धर आयोजन मत्री नियुक्त हुए और उन्होंने इस विषय पर पुनर्विचार आरभ करवाया। श्री धर के नेतत्व मे एक नया प्रलेख "*Approach to the Fifth Plan* तैयार किया गया जिसे लोक सभा ने स्वीकार कर लिया। और एक नया प्रलेख **पाचवी पचवर्षीय योजना 1974 79 (प्रारूप)** स्वीकत किया।

पाचवीं योजना के मूल उद्देश्य

पाचवीं योजना के दो मुख्य उद्देश्य थे "गरीबी का उन्मूलन और आत्मनिर्भरता" जिन्हे पूरा करने का देश ने सकल्प किया। इसके अनिवार्य उपलक्ष्यो के रूप मे ऊची विकास दर, आय का अधिक अच्छा वितरण और बचत की अन्तर्देशीय दर मे महत्त्वपूर्ण वद्धि प्राप्त करनी आवश्यक है।

इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए पाचवीं योजना की विकास रणनीति के मुख्य तत्त्व निम्नलिखित थे—

1 कुल राष्ट्रीय उत्पाद मे 5 5 प्रतिशत का सामान्य वार्षिक वद्धि
2 उत्पादन रोजगार के अवसरो का विस्तार,
3 न्यूनतम आवश्यकताओ का राष्ट्रीय प्रोग्राम जिसमे प्राथमिक शिक्षा, पीने का पानी ग्राम क्षेत्रो मे चिकित्सा पाष्टिक भोजन भूमिहीन श्रमिको के मकानो के लिए जमीन ग्राम सडकें ग्रामो का बिजलीकरण और गन्दी बस्तियो की उन्नति और सफाई शामिल है
4 सामाजिक कल्याण का विस्तत कार्यक्रम
5 कषि, कुजी तथा मूल उद्योगो और जनोपभोग (Mass consumption) के लिए वस्तुए उत्पन्न करने वाले उद्योगों पर बल
6 कम से कम निर्धन वर्गो को उचित स्थिर मूल्यो पर अनिवार्य उपभोग की वस्तुए उपलब्ध कराने के लिए पर्याप्त सरकारी वसूली एव वितरण प्रणाली
7 तीव्र निर्यात प्रोत्साहन (Export promotion) और आयात प्रतिस्थापन (Import substitution)
8 अनावश्यक उपभोग कडा प्रतिबन्ध
9 एक न्यायपूर्ण कीमत मजदूरी-आय नाति, और
10 सामाजक आर्थिक और क्षेत्रीय असमानताओ (Regional inequalities) को कम करने के सस्थानात्मक राजकोषीय ओर अन्य उपाय।

दार्शनिक आधार के प्रलेख मे उल्लेख किया गया—"निर्धनता के युगल कारण हे अल्पविकास और असमानता एक ही दिशा मे प्रयत्न करने से इस समस्या पर निकट भविष्य मे काबू नहीं पाया जा सकता। व्यापक निर्धनता पर सफल प्रहार करने के लिए विकास मे वद्धि आर असमानता मे कमी दोनो अनिवार्य हे। निर्धनता को दूर करने की विधि के दो मुख्य तत्त्व है—अन्तर्देशीय उत्पाद (Domestic product) की बढती हुई दर और जनसख्या की घटती हुई वद्धि दर।" इस बात का ध्यान रखते हुए कि आयोजन के पहले दशक (अर्थात् 1951 60) मे 3 8 प्रतिशत औसत वार्षिक वद्धि दर प्राप्त की गई और दूसरे दशक (1961 70) मे 3 7 प्रतिशत की वार्षिक वद्धि दर कायम रखी जा सकी पाचवीं योजना मे कुल राष्ट्रीय उत्पाद में 5 5 प्रतिशत की वार्षिक वद्धि के लक्ष्य को व्यावहारिक समझा गया।

रोजगार मे विस्तार (Expansion of Employment)

त्वरित विकास ओर कम असमानता प्राप्त करने के लिए उत्पादक रोजगार (*Productive employment*) के अवसरो का विस्तार महत्त्वपूर्ण है। रोजगार ही एक ऐसा विश्वसनीय उपाय हे जिससे निर्धनता स्तर के नाचे रहने वाली भारी जनसख्या को ऊचा उठाया जा सकता है आय के पुनर्वितरण के पारम्परिक उपाय अपने आप मे इस समस्या पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकते। अधिक नौकरियाँ कायम करने की आवश्यकता को अनुभव करते हुए भी आयोजको ने न तो जनित अतिरिक्त रोजगार का कोई अनुमान तैयार किया और न ही ग्राम क्षेत्र मे कायम किए गए रोजगार के श्रम दिनो

3 *Draft F f h Year Plan* (1974 79) p 1

4 *Toward an Approach to he F fth Plan* p 1

(Man days) की मात्रा का।

ग्राम निर्धनता को दूर करने के लिए आयोजको द्वारा बडा मध्यम या छोटी सिचाई उर्वरको कीटनाशको अनुसधान और विस्तार एव नयी तकनीक को अपनाने के लिए उधार की उपलब्धि की पर्याप्त व्यवस्था की गई। आयोजको का कहना था कि ग्राम निर्धनता को निकट भविष्य मे समाप्त करना एक व्यवहार्य उद्देश्य है। किन्तु आयोजको ने दबी जुबान मे यह भी स्वीकार किया कि 'हरी क्रांति (Green revolution) के फलस्वरूप किए गए यत्रीकरण (Mechanisation) से काफी मात्रा मे रोजगार कायम नहीं हुआ। वास्तव म इससे श्रम का विस्थापन हुआ है। परिणामत आयोजको ने चेतावनी दी है कि 'कृषि मे रोजगार का विस्तार करने के लिए यह जरूरी है कि अधाधुन्ध यत्रीकरण न किया जाए। ऐसा यत्रीकरण जो भूमि की प्रति इकाई उपज को बढाए परन्तु श्रम की बचत न करे, प्रोत्साहित करना होगा।[5] लक्ष्य के रूप मे इस विचारधारा का स्वागत किया जा सकता है परन्तु इसको लागू करने की विधि क्या होगी इसका कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया। यदि आयोजक इसे प्राप्त करने के लिए भूमि की अधिकतम जोत की नीची सीमा निर्धारित करने का सुझाव देते तो भू सुधार प्रोग्राम को फौरी रूप मे लागू करना अनिवार्य हो जाता ताकि आगामी दो या तीन वर्षों म इसे पूरा करने का और एक दम बल लगाया जाए। नि सदेह आयोजको ने ठीक ही कहा 'प्रति इकाई उच्च भू उत्पादिता प्राप्त करने के लिए छोटे आकार की जोतो के मार्ग म कोई तकनीकी रुकावट (Technological barriers) नहीं हैं। विश्व मे कुछ परिस्थितियो मे अधिकतम भू उत्पादिता ऐसी खेती से प्राप्त की गई है जिसका मूल लक्षण छोटे आकार वाली जोत थी जैसे जापान मे चावल और मिश्र मे रुइ।[6] इस दृष्टि से आयोजको की धारणा अच्छे इरादे से प्रेरित थी किन्तु भू सुधार सम्बन्धी किए गए उपाय विफल हुए, और भूमियो का बडे पैमाने पर बेनामी स्वामित्वान्तरण हुआ, मुजारो की बेदखलिया हुई और जोतो की गैर कानूनी बाट की गई। अतिरिक्त भूमि की प्राप्ति के रूप म बहुत अच्छे परिणाम प्राप्त न हो सके ताकि इसे सामात और छोटे किसान म बाटा जा सके

सामाजिक उपभोग के अन्य प्रोग्राम

निर्धन वर्गों के लिए अधिक रोजगार एव आय की व्यवस्था करने के प्रोग्रामो की सहायता के लिए सामाजिक उपभोग (Social consumption) के विस्तार का राष्ट्रीय योजना तैयार की गई ताकि शिक्षा स्वास्थ्य पोषण पान के पानी का प्रबन्ध, मकान सचार एव बिजली का एक न्यूनतम स्तर सबको उपलब्ध कराया जा सके।

पाचवीं योजना में यह प्रस्ताव रखा गया कि 1975 तक 6 11 आयु वर्ग के सभी बच्चो के लिए स्कूलो मे व्यवस्था की जाएगी परन्तु 11 14 आयु वर्गों मे 50 प्रतिशत की सीमा पार करना सभव न होगा।

योजना की पूर्व सध्या पर हमारे देश मे प्रत्येक ऐसे ब्लाक मे जिनकी जनसख्या 80000 से 100000 है एक सार्वजनिक स्वास्थ्य केन्द्र और 8 से 10 उपकेन्द्र थे। इन केन्द्रों में कर्मचारियो आवश्यक उपकरणो एव औषधियों और भवन निर्माण आदि की उचित व्यवस्था करने का निर्णय किया गया। परिवार नियोजन प्रोग्राम को जारी किन्तु स्वास्थ्य एव पोषण सुविधाओ के विकास प्रोग्राम के साथ समन्वित करना जरूरी समझा गया।

5 67 लाख ग्रामो मे 1 5 लाख ग्राम ऐसे हैं जिनमे पीने के अच्छे पानी की कमी है। परन्तु बहुत से ग्रामो में हरिजनों और पिछडे वर्गों के इलाको मे पीने के पानी का सभरण अपर्याप्त है। पाचवी योजना में इसके प्रबन्ध को एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य माना गया। इसके अतिरिक्त भूमिहीन श्रमिको के लिए मकानों की जगह उपलब्ध कराने का विस्तृत प्रोग्राम तैयार किया गया।

ऐसे सभी ग्रामो के लिए, जिनकी न्यूनतम जनसख्या 1500 व्यक्तियो से अधिक है सभी मौसमो म काम आने वाली सडको की व्यवस्था करने की ठानी गयी। इसी प्रकार सभी राज्यो म बिजली का इतना विस्तार करने का निर्णय किया गया कि प्रत्येक राज्य की कम से कम 30 40 प्रतिशत जनसख्या को ये सुविधा प्राप्त हो जाए।

आत्मनिर्भरता (Self reliance)

नए दार्शनिक आधार के प्रलेख मे 1978 79 क अन्तिम वर्ष तक 'शुद्ध विदेशी सहायता का शून्य स्तर पर लाने के उद्देश्य का पाचवीं योजना का व्यवहार्य लक्ष्य नहीं माना गया। इस उद्देश्य का परित्याग करने के लिए प्रारूप मे 1972 73 के दौरान खाद्यान्नो के आयात की आवश्यकता और इस्पात लौह धातुओ उर्वरको और अखबारी कागज के सम्बन्ध में विश्व कीमतो (World prices) म वृद्धि को कारण बताया गया है। रूक्ष तेल के सम्बन्ध म कीमत वृद्धि आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को और भी पीछे धकेल सकती है। यह बात पाचवी योजना के निम्न कथन से साफ जाहिर हो जाती है "इसमे यह कल्पना की गई है कि 1985 86 तक ऋण सेवा (Debt service) खर्च सहित हम अपने साधनो से अपनी विदेशी मुद्रा की अधिकतम आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकेंगे और किसी प्रकार की रियायती सहायता (Concessional aid) की आवश्यकता नही रहेगी।

संशोधित (Revised) पाचवी योजना मे विकास परिव्यय

पाचवी योजना के प्रारूप मे 53411 करोड रुपये का कुल विकास परिव्यय (Outlay) परिकल्पित किया गया जिसमे से 37,250 करोड रुपये सरकारी क्षेत्र के व्यय के रूप में और 16161 करोड रुपये गैर सरकारी व्यय के रूप मे रखे गए। व्यय का परिकलन 1972 73 की कीमतो पर किया गया।

पाचवी योजना मे 37250 करोड रुपये के मौलिक प्रस्ताव के विरुद्ध संशोधित योजना मे 39322 करोड़ रुपये के परिव्यय का लक्ष्य रखा गया। परन्तु चालू कीमतो पर वास्तविक परिव्यय 39426 करोड रुपये हुआ। वास्तविक परिव्यय से पता चलता है कि मूल परिकल्पना की अपेक्षा सिचाई तथा बाढ नियत्रण पर 7 2 प्रतिशत के विरुद्ध 9 8 प्रतिशत व्यय किया गया। इसी प्रकार सचालन शक्ति पर 16 6 प्रतिशत के प्रस्तावित परिव्यय के विरुद्ध 18 8 प्रतिशत व्यय हुआ। जाहिर है कि योजना मे अध सरचना (Infra structure) सम्बन्धी कठिनाइयो को दूर करने के लिए इन मदों पर व्यय बढाया गया।

सरकारी और गैर सरकारी क्षेत्र का भाग

सरकारी क्षेत्र के 39,322 करोड रूपये के कुल परिव्यय में से 5700 करोड रुपये चालू विकास व्यय के रूप मे हैं। इस प्रकार 33622 करोड रूपये विनियोग के रूप मे शेष रह जाते हैं। इसमे यदि मालतालिकाओ (Inventories) के रूप में अनुमानित 3000 करोड रुपये ओर सरकारी वित्तीय सस्थानों (Public financial institutions) द्वारा अपनी अचल परिसम्पत् (Fixed assets) के रूप मे विनियोग को जोड दिया जाए तो सरकारी क्षेत्र का कुल विनियोग 36722 करोड रूपए आका जा सकता है। योजना काल के दौरान गैर सरकारी क्षेत्र का विनियोग 27048 करोड रूपए आका गया है। इस प्रकार पाचवी योजना मे कुल विनियोग 63770 करोड रूपये रखा गया। सरकारी और गैर सरकारी क्षेत्रो के भाग का अनुपात 58 42 तय किया गया।

यदि स्थिर कीमतो पर विनियोग आका जाए तो इससे दो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं (क) वास्तविक रूप मे, पाचवी योजना का आकार 15 प्रतिशत छोटा हो गया हो और (ख) सरकारी क्षेत्र का भाग जो योजना प्रारूप मे 66 प्रतिशत था कम होकर 58 प्रतिशत हो गया। चूंकि सरकारी क्षेत्र के भाग को सदा ही अर्थव्यवस्था के समाजीकरण के सूचक (Index of socialization) के रूप मे कल्पित किया गया, इसलिए इससे स्पष्ट हो जाता है कि सरकारी क्षेत्र पर बल कम अवश्य हुआ।

परिव्यय का क्षेत्रानुसार वितरण (*Sectoral distribution of outlay*)

तालिका 5 मे दिए गए कुल परिव्यय के क्षेत्रानुसार वितरण से पता चलता है कि अकेले क्षेत्र के रूप मे उद्योग एव खनिज को कुल सरकारी परिव्यय का 26 प्रतिशत प्राप्त हुआ किन्तु आयोजक कुटीर तथा लघु स्तर के उद्योगो को इस क्षेत्र मे शामिल करते हैं और इसका कुल योजना परिव्यय मे भाग 1.36 प्रतिशत है। कृषि सिचाई और बाढ नियत्रण का भाग 21 प्रतिशत रखा गया। परिवहन एव सचार का भाग

तालिका 5 पाचवी पचवर्षीय योजना के परिव्यय का क्षेत्रानुसार वितरण

करोड रुपये

	1974 75 से संशोधित योजना 1978 79 के लिए			
	प्रारूप[1]		वास्तविक व्यय[2]	
	कुल	प्रतिशत	कुल	प्रतिशत
1 कृषि तथा सबधित क्षेत्र	4766	12.1	4865	12.3
2. सिचाई तथा बाढ नियत्रण	3434	8 7	3877	9 8
3 सचालन शक्ति	7016	17 8	7400	18 8
4 उद्योग खनिज	10701	25 9	9,581	24 3
5 परिवहन सचार	6915	17 6	6,870	17 4
6 सामाजिक तथा सामुदायिक सेवाए	6988	17 8	6833	17 3
कुल	39,322	100 0	39426	100 0

नोट. 1 1972 73 की कीमतो पर।

2. इसमें चालू कीमतों पर वास्तविक व्यय दिया गया है

3 उद्योग तथा खनिज में ग्राम तथा छोटे उद्योगों पर व्यय शामिल है।

स्रोत पांचवी पंचवर्षीय योजना (1974 79) और पंचवर्षीय योजना का प्रारूप (1978 83) से सकलित

संशोधित योजना मे कुल सार्वजनिक क्षेत्रीय व्यय का 17 6 प्रतिशत तय किया गया। सामाजिक सेवाओ के भाग को भी जो योजना प्रारूप मे 17 8 प्रतिशत रखा गया।

1977 78 की आर्थिक समीक्षा द्वारा यह ज्ञात हुआ कि 1977 78 मे अन्त होने वाले चार वर्षों के दौरान औसत वृद्धि दर 3 9 प्रतिशत रही। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि संशोधित पाचवी योजना का 4 4 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य पूरा न हो सका। चूंकि जनता सरकार ने पाचवी योजना को चार वर्ष पूरा हो जाने पर 31 मार्च 1978 को समाप्त करने का निर्णय किया इसलिए यह उचित होगा कि 4 वर्षों की उपलब्धियो की संशोधित पाचवी योजना के लक्ष्यो के साथ तुलना की जाए।

तालिका 6 मे दिए गए आकडो से पता चलता है कि संशोधित पाचवी योजना के लक्ष्य केवल खाद्यान्नो ओर कपडे (विशेषकर विकेन्द्रीकृत क्षेत्र में) के ही पूरे हो सके। इसके विरुद्ध रूई, कागज, और गत्ते, कपडा (कारखाना क्षेत्र) ओर सीमेंट मे निष्पादन (Perfor nce) पाचवी योजना के लक्ष्य

तालिका 6 संशोधित पाचवी योजना में उत्पादन के लक्ष्य और उपलब्धियां

मद	इकाई	आधार स्तर 1973 74	1978-79	प्राप्ति 1977 78	चक्रवृद्धि दर वार्षिक लक्ष्य	चक्रवृद्धि दर वास्तविक 1974-75 से 1977 78
1 खाद्यान्न	लाख टन	1047	1250	1210	3 5	3 7
2 गन्ना	लाख टन	1443	1605	1569	2 7	2 2
3 रूई	लाख गटठे	63 1	80 0	64 3	3 9	0 5
4 कोयला	लाख टन	790	1240	1032	9 4	6 9
5 रूक्ष पैट्रोलियम	लाखटन	72	142	108	14 5	10 5
6 सूती कपडा	करोड मीटर	794	950	960	3 5	4 8
(i) कारखाना क्षेत्र	करोड मीटर	408	480	420	3 3	0 7
(ii) विकेन्द्रीकृत क्षेत्र	करोड मीटर	386	470	540	4 0	8 8
7 कागज और गत्ता	हजार टन	776	1050	900	6 0	3 8
8 नाइट्रोजन उर्वरक	हजार टन	1058	2900	2060	22 3	18 1
9 सीमेंट	लाख टन	147	208	192	7 1	6 9
10 नरम इस्पात	लाख टन	49	88	77	12 4	12 1
11 बिजली जनन	अरब कि0 वाट	72	116 117	100	10 2	8 5

स्रोत पांचवी पंचवर्षीय योजना (1974 79) और पंचवर्षीय योजना (1978 83) से संकलित

के स्तर से बहुत नीचा था। अन्य महत्त्वपूर्ण वस्तुओ अर्थात् गन्ना कोयला पैटोलियम उर्वरक नरम इस्पात और बिजली के सम्बन्ध मे उपलब्धि लक्षित स्तर से नीचे थी चाहे यह कमी बहुत अधिक नहीं थी। समग्र रूप मे यह कहा जा सकता है कि सशोधित पाचवी योजना के लक्ष्य चाहे वे पाचवी योजना के प्रारूप की तुलना मे बहुत कम कर दिए गए, प्राप्त न हो सके।

रहन-सहन के स्तर को उन्नत करना और रोजगार कायम करना

चाहे पाचवी योजना के प्रलेख मे बेरोजगारी का समस्या के प्रति चिन्ता तो व्यक्त की गयी परन्तु इसके बारे मे पुरे आकडे तो पेश करने की बात दूर रही एक रूक्ष अनुमान भी तैयार न किया गया। छठी पचवर्षीय योजना (1978 83) मे यह रहस्य उदघाटन हुआ कि यदि यह कल्पना की जाए कि इस काल मे व्यक्ति-दिन बेरोजगारी (Person day unemployment) की दर उतनी ही है जितनी कि 1973 मे थी तो मार्च 1978 मे बेरोजगारी 206 लाख व्यक्ति वर्ष थी 165 लाख ग्राम क्षेत्रो मे और 41 लाख व्यक्ति शहरी क्षेत्रो मे। अत बेरोजगारी की कुल मात्रा (206 लाख व्यक्ति वर्ष) आश्चयजनक रूप मे अधिक है और यह विश्व के किसी भी देश जिसके बारे मे आकडे उपलब्ध हैं से ज्यादा है। 1978 मे अवशिष्ट बेरोजगारी की इतनी मात्रा उपलब्ध होने के कारण यह निष्कर्ष निकालना ठीक ही होगा कि पाचवी योजना बेरोजगारी की समस्या पर कोई करारी चोट नहीं कर पायी।

मजदूरी-वस्तु क्षेत्र एव भारतीय निर्धनता

गत तीन योजनाओ मे आयोजको ने भारी वस्तु क्षेत्र (Heavy goods sector) पर बल दिया है और इससे भारतीय अर्थव्यवस्था को औद्योगिक आधार कायम करने मे सहायता मिली है। किन्तु अत्यधिक पूजी-प्रधान होने के कारण इससे एक ऐसा विनियोग ढाचा कायम हुआ जो पूजी प्रधान (Capital intensive) ही कहा जा सकता है । इस दिशा मे काफी प्रगति हो जाने के बाद यह जरूरी था कि ससाधनो का प्रयोग मजदूरी वस्तु क्षेत्र (Wage goods sector) के उत्पादन को बढाने के लिए किया जाए ताकि गरीबी की समस्या पर साधा प्रहार किया जा सके। इससे सामाजिक और आर्थिक न्याय भी प्राप्त हो सकेगा। प्रोफेसर पी आर ब्रह्मानन्द ने इस तर्क को संक्षिप्त रूप म इस प्रकार पेश किया है "मजदूरी वस्तुओ का अतिरिक्त सम्भरण जिसके द्वारा मजदूरी वस्तुओ और/या वास्तविक मजदूरी दर के रूप मे प्रति व्यक्ति वास्तविक आय मे उन्नति होती है वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बेरोजगारी को दूर किया जा सकता है। गरीबी जो मजदूरी वस्तुओ के अपर्याप्त सभरण के रूप मे व्यक्त होती है पूण रोजगार या पूर्णतर रोजगार (Fuller employment) के रास्ते मे रुकावट है। वास्तव मे गरीबी और बेरोजगारी दो समस्याए नहीं है बल्कि समस्या तो एक ही है मजदूरी वस्तुओ का अपर्याप्त

सम्भरण।[7]

पाचवीं योजना के पहले तीन वर्षों (1973 74 से 1976 77) सम्बन्धी आकडों से सकेत मिलता है कि खाद्यान्नों मे वृद्धि-दर केवल 2.25 प्रतिशत थी जोकि 1961-62 से 1973 74 की अवधि के दौरान 2.72 प्रतिशत वृद्धि दर से भी नीची है। अनाज के सम्बन्ध मे वृद्धि-दर लगभग 2 प्रतिशत थी। मुख्य समस्या यह है कि चावल और दालो के उत्पादन मे वृद्धि-दर मन्द रही है।

पाचवी योजना के पहले तीन वर्षों के लिए चुनी हुई मजदूरी वस्तुओ सम्बन्धी आकडो से पता चलता है कि चीनी चाय वनस्पति तेल को छोडकर अन्य वस्तुओ मे 1973-76 के दौरान वृद्धि-दरे 1960 73 की अवधि की तुलना मे नीची हैं। इससे यह सकेत मिलता है कि पाचवी योजना का विनियोग ढाचा मजदूरी वस्तुओ के उत्पादन मे तीव्र वृद्धि लाने मे सफल नहीं हुआ।

पाचवी योजना की समग्र रूप मे समीक्षा करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि इसमे राष्ट्रीय आय की 3.9 प्रतिशत की दर से औसत वार्षिक वृद्धि हुई परन्तु खाद्यान्नों एव अन्य मजदूरी वस्तुओ का सभरण इसी अनुपात म नहीं बढा। चार वर्षों (1973-74 से 1977 78) की अवधि मे सामान्य कीमत-स्तर मे 34.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई और इसी अवधि मे उपभोक्ता कीमत सूचकाक (Consumer price index) 35.2 प्रतिशत बढ गया। जाहिर है कि गरीब वर्गों की आय मे वृद्धि नहीं हुई। न ही बेरोजगारी मे कमी हुई। अत कमजोर वर्गो के कल्याण के रूप मे पाचवी योजना अपनी उपलब्धियो पर गर्व नहीं कर सकती।

7. छठी पचवर्षीय योजना (1980-85)

मार्च 1977 में सत्ता सभालने के फौरन बाद, जनता सरकार ने पाचवीं योजना को चार वर्षो के पूरा होने पर ही 1978 मे समाप्त कर दिया। जनता सरकार ने 1978-83 की अवधि के लिए परिभ्रामक योजना (Rolling Plan) बनायी जिसे बाद मे छठी योजना कहा गया। परन्तु जनता सरकार के गिरने के पश्चात्, कांग्रेस (इ) की सरकार ने जनता सरकार की छठी योजना को समाप्त कर दिया और 1980-85 की अवधि के लिए अपनी छठी योजना चालू की।

छठी पचवर्षीय योजना कठिन परिस्थितियो मे आरभ की गयी। मार्च 1979 के पश्चात् अत्यधिक स्फीतिकारी दबावो के विद्यमान होने पिछले तीन वर्षो के दौरान ऐसे क्रांतिक क्षेत्रो (Critical sectors) अर्थात् सचालन शक्ति, कोयला, रेलवे और इस्पात की लगातार बिगडती हुई स्थिति और पैट्रोलियम उत्पादो की कीमत मे तीव्र वृद्धि-जो आयात लागतो (Import costs) मे वृद्धि का अपरिहार्य उप परिणाम है- ने अर्थव्यवस्था के समग्र विकास की सभावनाओ पर और इसके अविरत विकास के लिए अतिरिक्त ससाधन गतिमान करने की गुजाइश पर दुष्प्रभाव डाला। पैट्रोलियम और अन्य आयातो की आयात लागतो मे अत्यधिक वृद्धि और विश्व अर्थव्यवस्था मे विद्यमान प्रतिसार की परिस्थितियो के कारण भारत के निर्यात मे अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न हो गयी जिसके परिणामस्वरूप भुगतान-शेष मे महत्त्वपूर्ण ह्रास होने की सभावना थी और देश को एक बार फिर विदेशी मुद्रा की बहुत कठिन स्थिति का सामना करना था। इस पृष्ठभूमि मे छठी योजना ने निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए।

छठी योजना के उद्देश्य, परिव्यय एवं लक्ष्य

(*i*) अर्थव्यवस्था की विकास दर में महत्त्वपूर्ण वृद्धि, ससाधनो के प्रयोग मे कुशलता को बढाना और उत्पादिता मे वृद्धि करना

(*ii*) आर्थिक एव तकनालाजीय आत्मनिर्भरता (Technological self reliance) प्राप्त करने के लिए आधुनिकीकरण (Modernisation) की गतिविधियो को मजबूत बनाना

(*iii*) गरीबी ओर बेरोजगारी के प्रभाव मे उत्तरोत्तर कमी लाना

(*iv*) ऊर्जा के देशीय ससाधनो का तेजो से विकास जिसमे ऊर्जा के उपभोग मे सरक्षण और कुशलता पर उचित बल हो

(*v*) न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम द्वारा आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से कमजोर जनसख्या के विशेष सन्दर्भ मे सामान्य जनता के जीवन स्तर मे सुधार करना अत न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (*Minimum Needs Programme*) द्वारा यह सुनिश्चित करना चाहिए कि देश के सभी भागो मे एक निर्धारित अवधि के अन्दर राष्ट्रीय दृष्टि से स्वाकृत स्तर प्राप्त किए जा सके

(*vi*) सार्वजनिक नीतियो एव सेवाओ के पुनर्वितरक आधार (Redistributive basis) की गरीबो के हित मे मजबूत बनाना जिससे आय और सम्पत्ति की असमानताओ मे कमी हो

(*vii*) विकास की गति और तकनालाजीय लाभो के प्रसार में क्षेत्रीय असमानताओ (Regional inequalities) मे उत्तरोत्तर कमी करना,

(*viii*) छोटे परिवार के मानक की स्वैच्छिक रूप मे स्वीकृति के जरिए जनसख्या की वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए नीतियो को बढावा देना

(*ix*) पारिस्थितिकीय और पर्यावरणीय परिसम्पत्तियों

7 P.R. Brahmananda, *The Falling Economy and How to Revive it* (1977) p 9

अर्थात् बचत की सीमान्त दर योजना काल मे 33 7 प्रतिशत कल्पित की गई है। विदेशी पूजी का शुद्ध अन्त प्रवाह सकल देशीय उत्पाद के केवल 0 6 प्रतिशत तक ही रहेगा।

1980 85 की अवधि के लिए कुल योजना विनियोग 1,58 710 करोड रुपये आका ग्या है। इसमे से सरकारी क्षेत्र का 74 710 करोड रुपये (47 प्रतिशत) अनुमानित किया गया। जाहिर है कि छठी योजना मे विनियोग की दृष्टि से बल सरकारी क्षेत्र का ओर है।

विकास-दर (Growth Rate)

इस बात को ध्यान मे रखते हुए कि विनियोग का महत्त्वपूर्ण भाग चालू परियोजनाओ की ओर निर्देशित होगा विनियोग के ढाचे मे परिवर्तन करने की गुजाइश बहुत सामित ही जान पडती है। यह बात छठी योजना मे स्वीकार की गयी है। इस सीमाबन्धन मे छठी योजना मे देशीय उत्पाद् में 5 2 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर कल्पित की गई है और प्रति व्यक्ति आय को 3 3 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर।

सरकारी क्षेत्र का परिव्यय

छठी योजना (1980 85) मे 1979 80 की कीमतो पर 97,500 करोड रुपये के कुल परिव्यय की व्यवस्था की गई। इसमे 13 500 करोड रुपये चालू परिव्यय होगा जो मुख्यत योजनाकाल के दौरान कायम की गयी सेवाओ के परिपोषण मे खर्च होगा। ये ऐसी सेवाए हैं जो परिसम्पत् कायम नहीं करतीं। कुल परिव्यय मे से चालू परिव्यय को घटा देने से योजना के लिए सरकारी क्षेत्र का विनियोग 84 000 करोड रुपये रह जाता है।

तालिका 7 मे दिए गए सरकारी क्षेत्र के परिव्यय के आबटन से पता चलता है कि ऊर्जा विज्ञान एव तकनालाजी को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई और इसके लिए कुल साधनो का 28 प्रतिशत रखा गया। यह इसलिए किया गया कि उत्पादन पर अध सरचना सम्बन्धी सीमाबन्धन (Infrastructural constraints) समाप्त किए जा सके। इसके बाद कृषि (जिसमे सिचाई एव बाढ नियत्रण भी शामिल हैं) का नम्बर आता है जिसे कुल परिव्यय का 26 प्रतिशत दिया गया। उद्योग एव खनिज का भाग 15 5 प्रतिशत था जिसमे से ग्राम तथा लघु उद्योगो के लिए केवल 1 8 प्रतिशत रखा गया। परिवहन एव सचार के लिए 16 प्रतिशत तय किया गया और सामाजिक सेवाओ पर लगभग 15 प्रतिशत खर्च किया गया।

छठी योजना की प्रगति की समाक्षा से पता चलता है कि कार्यान्वयन की प्रक्रिया के दौरान ऊर्जा क्षेत्र को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। ऊर्जा के लिए 27 प्रतिशत के मौलिक आबटन के विरुद्ध योजना के दौरान वास्तव मे 28 प्रतिशत व्यय किया गया। जबकि पैट्रोलियम पर 4 300 करोड रुपये खर्च करने का प्रस्ताव था वास्तविक व्यय 8 482 करोड रुपये (कुल योजना परिव्यय का 7 8 प्रतिशत) हुआ। इसी प्रकार कोयले पर व्यय 2,870 करोड रुपये से बढाकर 3 808 करोड रुपये (कुल का 3 5 प्रतिशत) कर दिया गया। अन्य क्षेत्रो मे आयोजको ने मौलिक योजना प्रलेख म निर्धारित परिव्यय के ढाचे का अनुसरण किया। इसमे केवल सिचाई और बाढ नियत्रण ही एक अपवाद था जिस पर कुल परिव्यय योजना काल मे कम करके 10 930 करोड रुपये (अर्थात् 10 प्रतिशत) कर दिया गया जबकि मौलिक योजना मे इस मद के लिए 12,160 करोड रुपये (कुल का 12 5 प्रतिशत) तय किया गया था।

छठी योजना मे रोजगार-जनन

छठी योजना मे रोजगार जनन (Employment generation) गरीबी हटाओ प्रोग्राम का एक प्रधान अग ही समझा गया है। रोजगार बढाने के मुख्य क्षेत्र ह कृषि ग्राम विकास ग्राम तथा लघु उद्योग भवन निमाण, सार्वजनिक प्रशासन एव सेवा। छठी योजना (1980 85) मे 343 लाख मानव वर्ष रोजगार कायम करने का निश्चय किया गया जो योजना काल के दौरान श्रम शक्ति मे वृद्धि के लगभग बराबर होगा। इस प्रकार रोजगार मे 4 17 प्रतिशत प्रतिवष की वद्धि की आशा की गयी जोकि श्रम शक्ति मे 2 54 प्रतिशत की इस काल मे वार्षिक वृद्धि से कहीं अधिक थी।

उत्पादन के भौतिक लक्ष्य

खाद्यान्नो का उत्पादन जो 1979 80 म 1 090 लाख टन था 1 490 से 1 540 लाख टन तक बढने का अनुमान था इस प्रकार खाद्यान्नो की वार्षिक वृद्धि दर 6 5 से 7 1 प्रतिशत होगी। इसी प्रकार चीनी का उत्पादन 39 लाख टन से बढकर योजना काल में 76 लाख टन रखा गया अथात् इसकी वार्षिक वृद्धि दर 14 3 प्रतिशत आकी गयी। विद्युत जनन का लक्ष्य 1984 85 के लिए 191 अरब किलोवाट घंटे रखा गया जबकि 1979 80 मे यह 112 लाख किलोवाट घंटे था। इस प्रकार बिजली जनन मे योजना काल के दौरान 71 प्रतिशत की वृद्धि की आशा की गयी। इसा तरह कोयले के उत्पादन में लगभग 59 प्रतिशत की वृद्धि और रूक्ष पैटोलियम मे लगभग 84 प्रतिशत की वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि विकास पर ऊर्जा सीमाबन्धन (Energy constraint) को समाप्त करने के लिए भरसक प्रयास किया गया। उवरको के उत्पादन मे भी लगभग 13 प्रतिशत की वृद्धि का लक्ष्य तय किया गया। चूंकि भवन निर्माण मे सीमेंट की कमा एक मुख्य बाधा है

के पास कम काम काज के मौसम मे आय का कोई स्रोत नहीं होता। इस प्रोग्राम के आधीन ग्राम निर्धनो के लिए रोजगार कायम करने वाली विकास परियोजनाए चालू करनी चाहिए। राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम (National Rural Employment Programme) को केन्द्र द्वारा चालित योजना के रूप में 50 50 की केन्द्र एव राज्यो के बीच सहभागिता के आधार पर चलाया गया।

छठी योजना की प्रगति की समीक्षा

छठी योजना ऐसे समय पर चालू की गयी जब भारतीय अर्थव्यवस्था एक कठिन दौर से गुजर रही है। मुख्य कठिनाई थी 1979 80 का भारी सूखा, मुद्रा स्फीति की उच्चदर जो कि लगभग 1974 75 की तेल स्फीति की भांति ही थी आयातित तेल एव तेल उत्पादन की कीमत मे तीव्र वृद्धि के कारण व्यापारार्थ (Terms of trade) मे एक सीधी और तेज गिरावट। उस समय भारत की अर्थव्यवस्था की स्थिरता मे ही सन्देह था, निरन्तर विकास को कायम रखने की सभावना का तो प्रश्न ही उठाना व्यर्थ था। ऐसे हालात मे यह बात सन्तोषजनक है कि देश छठी योजना को कार्यान्वित कर सका और वह भी सफलतापूर्वक ढग से। इसी कारण आयोजकों ने उल्लेख किया "कुल मिलाकर यदि छठी पचवर्षीय योजना पर विचार किया जाए, तो इसका देश की सवृद्धि (Growth) की गति को बनाए रखने और इसे सुदृढ करने, आधुनिकीकरण और सामाजिक न्याय मे बडा योगदान है।"[8]

तालिका 9 छठी योजना की वृद्धि दर (मूल्य वृद्धि)

	छठी योजना के लक्ष्य	प्रत्याशित वास्तविक
कृषि	3 8	4.3
खनन तथा विनिर्माण	6 9	3 7
अन्य क्षेत्र	5.5	6.6
कुल	5 2	5.2

स्रोत योजना आयोग सातवीं पचवर्षीय योजना (1985 90)

वृद्धिदर एव उत्पादन के प्रक्षेपणो को नीची दिशा मे संशोधित करना।

छठी योजना मे 5 2 प्रतिशत की औसत वृद्धि दर प्राप्त करने का जो लक्ष्य रखा गया था, यह प्राप्त कर लिया गया है। परन्तु सातवीं योजना मे उल्लेख किया गया है कि "छठी योजना में कुल वृद्धि दर के लक्ष्य मुख्यत अच्छे कृषि निष्पादन और सेवा क्षेत्र के तीव्र विकास के कारण प्राप्त हो पाये हैं। खनन एव विनिर्माण में आय जनन लक्ष्य से नीचा ही रहा है और यह छठी योजना के विकास रिकार्ड की एक कमजोरी है।" औद्योगिक क्षेत्र का निष्पादन छठी योजना के दौरान बहुत बुरा रहा और वास्तविक वृद्धि मौलिक लक्ष्य के लगभग आधे के बराबर रही।

किन्तु इन आकडो को ध्यानपूर्वक देखने से पता चलता है कि यह वृद्धि दर 1979 80 के निम्न आधार वर्ष को लेकर आकी गई है। इस आधार पर 1980 81 से 1982 83 के बीच वृद्धि दर 4.5 प्रतिशत बैठती है परन्तु यदि 3 वर्षीय चल औसत (Moving average) को आधार बनाया जाए जिससे उच्चावचन निष्प्रभाव हो जाते हैं तो औसत वृद्धि दर 3 85 प्रतिशत निकलती है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि 5 2 प्रतिशत की औसत वृद्धि दर का दावा अतिशयोक्ति है वास्तविक वृद्धि दर इससे कम है।

छठी योजना मे बचत और विनियोग

छठी योजना मे 1984 85 तक बचत दर के 24.5 प्रतिशत तक बढ जाने की प्रत्याशा थी किन्तु वास्तविक बचत दर केवल 23 3 प्रतिशत तक पहुच पायी। बचत दर म कमी का मुख्य कारण सार्वजनिक क्षेत्र की बचत का लक्ष्य से नीचे रहना था। केवल देशी गैर सरकारी बचत और अतिरिक्त कराधान द्वारा साधन गतिमान करके सरकार **सार्वजनिक** क्षेत्र में विनियोग का उच्च स्तर कायम रख पायी।

विभिन्न क्षेत्रों का निष्पादन

कृषि क्षेत्र--छठी योजना के दौरान कृषि क्षेत्र का निष्पादन बहुत अच्छा रहा और कुछ फसलो मे तो उत्पादन लक्ष्य से अधिक बढ गया। ऐसा पहली योजना के बाद प्रथम बार ही हुआ था। खाद्यान्न उत्पादन लगभग लक्ष्य तक ही पहुच पाया अर्थात् 1983 84 मे 1 520 लाख टन। यही बात चीनी के सदर्भ मे सत्य थी। योजना के अन्तिम वर्ष (1984 85) मे देश के बहुत से भागो मे सूखा पडने के कारण कृषि उत्पादन में कुछ गिरावट आयी। छठी योजना के दौरान खाद्यान्नों मे अधिक उपजाऊ किस्म के बीजो के आधीन क्षेत्रफल जो 1979 80 मे 352 लाख हैक्टेयर था बढकर 1984 85 मे 560 लाख हैक्टेयर हो गया जोकि छठी योजना का लक्ष्य था। सिचाई और जल प्रबन्ध के क्षेत्र मे छठी योजना में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हुई और सिचाई क्षमता मे 110 लाख हैक्टेयर की वृद्धि की गयी है।

इस सम्बन्ध मे कुछ असन्तोषजनक पहलू भी थे (क) चावल और गेहूं के बीच और अनाजो तथा दालों के बीच उत्पादन मे लगातार असन्तुलन बना रहना (ख) हरित क्रांति का लगातार क्षेत्रीय असन्तुलन बना रहना। इसका प्रभाव इस बात मे था कि हरित क्रांति के बाद के काल मे खाद्यान्नो के आधीन 15 प्रतिशत क्षेत्रफल मे खाद्यान्न वृद्धि का 50 प्रतिशत

8 योजना आयोग, सातवीं पचवर्षीय योजना (1985 90) खण्ड 1 पृ 1

की कीमतों में तीव्र वृद्धि के कारण शोचनीय थी। 1980 मे तेल की कीमतों मे और वद्धि होने के कारण भुगतान शेष की स्थिति और गभीर हो गयी। छठी योजना के दौरान व्यापार घाटा प्रत्याशित अनुमान से लगभग 18 प्रतिशत अधिक था परन्तु सौभाग्यवश, अदृश्य मदो से प्राप्त होने वाली शुद्ध आय प्रत्याशा से कहीं अधिक थी। इसके अतिरिक्त सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से 5 000 करोड रुपये का भारी ऋण प्राप्त कर लिया। इस प्रकार भारत सरकार न केवल भुगतान शेष के भारी घाटे को पूरा करने मे कामयाब हुई बल्कि छठी योजना के आखिरी तीन वर्षों मे पर्याप्त मात्रा मे विदेशी मुद्रा रिजर्व भी एकत्र कर पायी।

आत्मनिर्भरता की विकास रणनीति का एक महत्त्वपूर्ण पहलू देश मे तेल के उत्पादन मे तेजी से वद्धि लाकर तेल-आयात को काटना है। देशीय रूक्ष तेल के उत्पादन में तीव्र वद्धि के कारण तेल की कुल देशीय माग में आयात-अनुपात (Import ratio) जो 1979 80 मे 66 प्रतिशत था, कम होकर 1984 85 मे 31 प्रतिशत हो गया। इसके साथ साथ मशीनरी के देशीय उत्पादन ने भी हमारी आयात आवश्यकताओ को कम कर दिया।

किन्तु छठी योजना के दौरान निर्यात मे बहुत धीमी वृद्धि हुई और यह भुगतान शेष की मुख्य कमजोरी थी। भारत के निर्यात की धीमी वृद्धि के तीन मुख्य कारण थे (क) विश्व के विकसित देशो मे प्रतिसार (Recession) के कारण धीमी वद्धि, (ख) एक सक्षम दीर्घाकलीन निर्यात-आधार कायम करने मे धीमी प्रगति और (ग) देश मे बनने वाली वस्तुओ की ऊची उत्पादन लागत जिसके कारण वे अन्तर्राष्ट्रीय बाजारो मे प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर पातीं।

आत्मनिर्भरता की विकास रणनीति का एक ओर महत्त्वपूर्ण अंग विदेशी ऋण अनुपात को प्रबन्धकीय सीमाओ के बीच रखना है। छठी योजना इसमे कामयाब हुई। उदाहरणार्थ 1979 80 में विदेशी ऋण सेवा भार (Debt service burden) कुल निर्यात का 12 5 प्रतिशत था जो कि 1984 85 मे कम होकर 11 2 प्रतिशत हो गया। परन्तु इससे स्थिति का सही जायजा नहीं मिलता। इस सिलसिले में उल्लेखनीय बात यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय उधार एव सहायता के ढाचे मे भारी परिवर्तन हुए हैं। बहुत समय से भारत विश्व बेक तथा ई डी ए. से रियायती सहायता (Concessional aid) के रूप मे विदेशी सहायता का अधिकतर भाग प्राप्त करता था परन्तु छठी योजना के दौरान गैर रियायती सहायता (Concessional aid) के रूप मे विदेशी सहायता का अधिकतर भाग प्राप्त करता था परन्तु छठी योजना के दौरान गैर रियायती सहायता (Non concessional aid) के रूप मे भारत एव अन्य विकासशील देशो को यह सहायता प्राप्त होने लगी। इसके साथ वित्तीय सस्थाओ एव गैर सरकारी क्षेत्र से भी प्रत्यक्ष उधार लिया गया। उधार के इस नए ढाचे मे ब्याज दर अधिक होने के कारण ऋण सेवा भार मे भारी वद्धि हुई।

अत यह कहा जा सकता है कि छठी योजना ने देश के विकास आत्मनिर्भरता और सामाजिक न्याय के लक्ष्य को आगे बढाने में सहायता दी है। अर्थव्यवस्था ने 4 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त करके उसके उस अवरोधक को पार कर लिया है जिसे प्रोफेसर राजकृष्ण ने 3 5 प्रतिशत की हिन्दू वृद्धि दर कहा। यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है परन्तु गरीबी दूर करने और रोजगार विस्तार कार्यक्रम म प्रभावी रूप मे सफलता प्राप्त नहीं हुई। कीमत वद्धि को रोका नहीं जा सका। दालो का उत्पादन कोयला बिजली और इस्पात का उत्पादन लक्ष्य से कम ही रहा। अत सातवीं योजना मे इन समस्याओ की ओर अधिक ध्यान देना होगा।

□□□

13

वित्तीय साधन और योजनाएँ

(FINANCIAL RESOURCES AND THE PLANS)

1 वित्त के स्रोत
(Sources of Finance)

भारत मे और इस दृष्टि से दुनिया के किसी भी देश मे आयोजन का सबसे कठिन कार्य वित्तीय साधनो को गतिमान करना है। अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रो के लिए लक्ष्य निर्धारित करना और उनकी प्राथमिकताए तय करना तो आसान है किन्तु आयोजित परियोजनाओ (Planned projects) के लिए आवश्यक वित्त जुटाना बहुत कठिन है। भारत सरकार जनता पर कर लगा सकती है। यह जनता की बचत को भी कई प्रकार से एकत्र कर सकती है यह देश मे ऋण योजनाए चालू कर सकती है या विदेशी स्रोतो से पूजी उधार ले सकती है। यदि ये सभी स्रात अपर्याप्त हो तो यह न्यून वित्त व्यवस्था (Deficit financing) का सहारा ले सकती है या अपनी परियोजनाओ के लिए मुद्रा सृजन कर सकती है। सरकार को उपलब्ध वित्त के साधन मोटे तौर पर तीन वर्गो मे बाटे जाते हैं देशीय बजट के स्रोत विदेशी सहायता और न्यून वित्त व्यवस्था। देशीय बजट के स्रोतो से अभिप्राय उन सभी राशियो से है जो सरकार देश मे ही एकत्र करती है। इनमे निम्नलिखित शामिल है

(क) चालू राजस्व से अतिरेक (Surplus from current revenues) अर्थात् चालू राजस्व का चालू व्यय पर अतिरेक

(ख) सरकारी उद्यमो का योगदान

(ग) बाजार ऋणो (Market borrowings) छोटी बचत पूर्वोपायी कोष आदि द्वारा आन्तरिक गैर सरकारी बचत को गतिमान करना और

(घ) अतिरिक्त करो और सरकारी उद्यमो से अतिरिक्त राजस्व के रूप मे अतिरिक्त साधन गतिमान करना।

विदेशी सहायता मे विदेशो से प्राप्त ऋण तथा अनुदान (Grants) अन्तर्राष्ट्रीय ससाधनो अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund) विश्व बैंक कोष (World Bank) और अन्तर्राष्टीय विकास सस्था (International Development Association) आदि से प्राप्त ऋण शामिल किये जाते हैं।

यदि देशीय बचत स्रोत और विदेशी सहायता सभी विकास परियोजनाओ के लिए वित्त जुटाने के लिए नाकाफी हो, तो भी सरकार बिना आवश्यक वित्त प्रबन्ध किए अपनी विकास परियोजनाओ को कार्यान्वित करती है। राजस्व और व्यय मे इस अन्तर को न्यून वित्त प्रबन्ध (Deficit financing) कहा जाता है और राजस्व से अधिक व्यय की पूर्ति के लिए रिजर्व बैंक आफ इण्डिया से उधार प्राप्त कर या सचित रोक अधिशेष (Accumulated cash balances) का प्रयोग करके वित प्रबन्ध किया जाता है।

अभी तक हमने सरकारी क्षेत्र परियोजनाओ के लिए वित्त के स्रोतो का जिक्र किया। अब हम गैर सरकारी क्षेत्र को उपलब्ध वित्त स्रोतो का भी उल्लेख करेंगे। प्रथम व्यक्तियो एव कम्पनियो की बचत गैर सरकारी क्षेत्र को प्रत्यक्ष रूप मे या बैंक प्रणाली द्वारा उपलब्ध होती है। द्वितीय गैर सरकारी क्षेत्र सरकारी क्षेत्र के वित्तीय ससाधनो अर्थात् औद्योगिक वित निगमो (Industrial Finance Corporations) राज्यीय वित निगमो (State Finance Corporations) भारतीय औद्योगिक ऋण तथा विनियोग निगम भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (Industrial Development Bank of India) आदि से भी गैर सरकारी क्षेत्र राशिया प्राप्त कर सकता है। तृतीय गैर सरकारी क्षेत्र बाजार से हिस्से तथा ऋणपत्र (Debentures) जारी करके राशिया प्राप्त कर सकता है। अंतिम यह हिस्सा पूजी (Equity capital) के रूप मे या विदेशी सहयोग (Foreign collaboration) या प्रवासी भारतीयो द्वारा हिस्सा पूजी मे योगदान या अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगमो (विश्व बैक से सम्बन्धित सस्थानो) या विश्व बैक से ऋण आदि के रूप मे विदेशी साधन प्राप्त कर सकता है।

किन्तु पचवर्षीय योजनाओं के वित्त प्रबन्ध के लिए हम केवल सरकारी क्षेत्र के वित्त प्रबन्ध पर ही ध्यान केन्द्रित करेंगे।

2. पंचवर्षीय योजनाओं के वित्त-प्रबन्ध का ढांचा

(Pattern of Financing the Five-year Plans)

इस प्रभाग मे हम पहली छ योजनाओ मे वित्त-प्रबन्ध के स्रोतों की गतिमत्ता का विवेचन करेंगे। सातवीं योजना के वित्त-प्रबन्ध का सविस्तार विवेचन अगले प्रभाग में किया गया है।

तालिका 1 से स्पष्ट है कि विकास के लिए वित्त का सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत देशीय बजटीय साधन (Domestic budgetary resources) हैं। केवल द्वितीय और तृतीय योजना को छोड देशीय बजट साधनो द्वारा या तो योजना के 73 से 84 प्रतिशत तक वित्त जुटाया गया या यह प्रत्याशा की गयी कि इनसे इस मात्रा में वित्त उपलब्ध होगा। उदाहरणार्थ, प्रथम योजना में देशीय बजटीय साधनों द्वारा 73 प्रतिशत वित्त-प्रबन्ध *किया गया और शेष 27 प्रतिशत विदेशी सहायता (10* प्रतिशत) और न्यून वित्त प्रबन्ध (17 प्रतिशत) द्वारा उपलब्ध कराया गया।

विदेशी सहायता और न्यून-वित्त-प्रबन्ध के पक्ष में परिवर्तन

हमारे आयोजक प्रथम योजना को सफलता से आनन्द विभोर हो गए। साथ ही कुछ अन्य अनुकूल कारणतत्व भी इस परिस्थिति को उत्साहवर्धक बना रहे थे—खाद्यान्नों में सापेक्ष आत्मनिर्भरता सामान्य कीमतों और विशेषकर खाद्यान्नों *की कीमतों में स्थिरता चाहे न्यून वित्त-प्रबन्ध की मात्रा* **काफी बढ़ी** थी फिर भारत के आयोजित आर्थिक विकास में विदेशी सरकारें और *अन्तर्राष्ट्रीय* संस्थान (अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक) मदद देने के लिए इच्छुक ही नहीं बल्कि उत्साही थे। परिणामत हमारे आयोजको ने आकार में भारी वृद्धि करने का निश्चय किया और भारी वित्तीय साधन प्राप्त करने के लिए विदेशी सहायता का सहारा लेने का प्रस्ताव किया और दूसरी और तीसरी योजनाओ के साधनो की अपूरित रिक्ति (*Uncovered gap*) को न्यून-वित्त-प्रबन्ध द्वारा पाटने का निर्णय किया। उदाहरणार्थ पहली योजना में 10 प्रतिशत विदेशी सहायता के विरुद्ध दूसरी योजना मे 24 प्रतिशत और तीसरी योजना में 28 प्रतिशत साधन विदेशी सहायता से प्राप्त किए गए। न्यून-वित्त-प्रबन्ध को दूसरी योजना की कुल वित्तीय आवश्यकता के 20 प्रतिशत तक बढ़ाया गया परन्तु दूसरी योजना के पिछले भाग में स्फीतिकारी दबावों के उत्पन्न होने के कारण तीसरी योजना में न्यून-वित्त-प्रबन्ध (Deficit financing) की मात्रा घटाकर 13 प्रतिशत कर दी गयी। दूसरी और तीसरी योजनाओ के दौरान सरकार ने कुल वित्तीय साधनों का केवल 56 प्रतिशत और 69 प्रतिशत देशीय बजटीय स्रोतों से एकत्र किया।

चौथी योजना के पश्चात् साधन गतिमान करने मे फिर स्पष्ट परिवर्तन दिखाई देता है। चौथी योजना के अप्रैल 1969 में प्रारंभ होने से पूर्व भारत सरकार विदेशी सरकारें (विशेषकर *अमरीकी* एवं ब्रिटिश सरकार का 1965 में भारत-पाक युद्ध के दौरान भारत के विरुद्ध दबाव) पर निर्भरता के दुष्प्रभाव को *अनुभव कर चुकी थी और इसके साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय* वित्तीय संस्थानो के अनुचित दबाव (1966 मे रुपये के अवमूल्यन के लिए आई एम एफ के दबाव) को महसूस कर चुकी थी। परिणामत चौथी योजना मे आत्मनिर्भरता (Self reliance) को *आयोजन के एक मुख्य उद्देश्य के रूप में शामिल किया* गया। विदेशी सहायता जो तृतीय योजना में 28 प्रतिशत थी, को घटाकर चौथी योजना में 10 प्रतिशत किया गया और छठी योजना में इसे और कम करके 11 प्रतिशत करने का निश्चय किया गया।

साथ ही सरकार न्यून वित्त-प्रबन्ध के कीमत-स्तर पर

तालिका 1 पहली छः योजनाओं के वित्त प्रबन्ध के स्रोत

योजना	देशीय बजटीय साधन		विदेशी सहायता		न्यून वित्त व्यवस्था		कुल	
	करोड रु	%	करोड रु	%	करोड रु	%	करोड रु	%
प्रथम योजना	1 440	73	190	10	330	17	1 960	100
द्वितीय योजना	2,560	58	1 090	24	950	20	4 600	100
तृतीय योजना	5 090	59	2,390	28	1 150	13	8 630	100
चौथी योजना	12,010	74	2,090	13	2,060	13	16,160	100
पाचवीं योजना	32,120	82	5 830	15	5 830	3	38,300	100
छठी योजना (मौलिक अनुमान)	81,570	84	10 930	11	5 000	5	97,500	100
अद्यतन अनुमान	86,610	78	8,530	8	15 680	14	1,10,820	100

स्रोत भारत सरकार, विभिन्न योजना प्रलेख।

होने वाले दुष्प्रभावो के बारे मे पूर्णतया जागरूक थी। चाहे चौथी योजना मे न्यून वित्त व्यवस्था को 13 प्रतिशत तक रखा गया परन्तु इसे कम करके पाचवीं योजना मे 3 प्रतिशत और छठी योजना के दौरान 5 प्रतिशत रखा गया।

विदेशी सहायता पर कम निर्भरता और न्यून वित्त प्रबन्ध के कम प्रयोग ने सरकार को इस बात के लिए बाध्य कर दिया कि वह देशीय साधनो पर अधिकाधिक निर्भर हो जाए। परिणामत जबकि देशीय बजटीय स्रोतो से तीसरी योजना के दौरान 59 प्रतिशत साधन प्राप्त किए गए, इनका योगदान चौथी योजना मे 74 प्रतिशत पाचवीं योजना मे 82 प्रतिशत और छठी योजना मे 84 प्रतिशत तय किया गया (चाहे छठी योजना के दौरान वास्तविक योगदान 78 प्रतिशत था)।

देशीय बजटीय साधन (Domestic Budgetary Resources)

देशीय बजटीय स्रोतो मे निम्नलिखित मदे शामिल की जाती हैं चालू राजस्व के अतिरेक सरकारी उद्यमों का योगदान बाजार ऋण छोटी बचते पूर्वोपायी कोष से योगदान वित्तीय सस्थानो (Financial institutions) से सावधि ऋण विविध पूजी परिसम्पत् और अतिरिक्त साधन गतिमान करना (ये करो के रूप मे प्राप्त किए जा सकते है या सार्वजनिक उद्यमो से अतिरिक्त योगदान का रूप धारण कर सकते हैं)। देशीय बजटीय स्रोतो के इन अगो का सापेक्ष महत्व तालिका 2 मे दिया गया है

चालू राजस्व से अधिशेष—पारम्परिक विचार सदैव इस बात पर बल देता रहा है कि चालू राजस्व का प्रयोग चालू व्यय को पूरा करने के लिए किया जाना चाहिए। किन्तु कराधान जाच आयोग (Taxation Enquiry Commission) ने यह सिफारिश की कि सरकार के चालू राजस्व का प्रयोग कुछ हद तक आर्थिक विकास के वित्त प्रबन्ध के लिए किया जा सकता है एव किया जाना चाहिए और सरकार ने इसे स्वीकार कर लिया। इसका उद्देश्य चालू राजस्व को सीमित रखकर चालू राजस्व से कुछ अतिरेक उपलब्ध कराना था ताकि अतिरेक का प्रयोग आर्थिक विकास के लिए किया जा सके। सिद्धान्त रूप मे यह एक सराहनीय विचार है और योजना आयोग ने कर्तव्य रूप मे चालू राजस्व से अतिरेक को विकास के लिए कुछ हद तक वित्त जुटाने के लिए इस्तेमाल किया। वास्तव मे पहली योजना मे इस मद से 25 प्रतिशत की सीमा तक वित्तीय साधन जुटाए गए। परन्तु अगली तीन योजनाओ (दूसरी तीसरी और चौथी) मे इस मद से उपलब्धि नकारात्मक थी जो यह जाहिर करती है कि चालू व्यय को सीमित करने की अपेक्षा और चालू खाते मे अतिरेक कायम करने की बजाय सरकार शुद्ध घाटे के बजट बनाने लगी। अपनी प्रबल इच्छा होने पर केन्द्र एव राज्यीय सरकारे अपने चालू व्यय को सीमित नहीं कर पायीं। इसके कारण थे कीमतो की स्फीतिकारी वृद्धि और इसके परिणामस्वरूप महगाई भत्ते और अन्य भुगतानो मे वृद्धि। केन्द्र सरकार के सन्दर्भ मे चालू राजस्व मे वृद्धि का एक और महत्वपूर्ण कारण प्रतिरक्षा व्यय और ब्याज भुगतान मे वृद्धि था। पाचवीं योजना मे दर्शाया गया अतिरेक वास्तविक अतिरेक नहीं था बल्कि एक प्रत्याशित अतिरेक था। छठी योना मे चालू राजस्व से 14480 करोड रुपये (14 9 प्रतिशत) प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया परन्तु इस स्रोत से केवल 1 890 करोड रुपये (अर्थात् कुल साधनो का 1 7 प्रतिशत) प्राप्त हो सका। वास्तव में योजना आयोग को देशीय बजटीय स्रोतो मे से चालू राजस्व से अतिरेक को छोड ही देना चाहिए।

सरकारी उद्यमो का योगदान (Contribution from public enterprises)—चाहे इस मद से अधिक साधन प्राप्त नहीं हुए परन्तु समय के साथ साथ सरकारी उद्यमो का योगदान बढता ही गया। दूसरी योजना मे सरकारी उद्यमों का योगदान 3 प्रतिशत था चौथी योजना मे यह बढकर 9 प्रतिशत हो गया और छठी योजना मे लगभग 10 प्रतिशत तक पहुच गया। वास्तव मे सरकारी उद्यमो का योगदान योजना लक्ष्यो से सदैव बहुत कम ही रहा है। बहुत से सरकारी उद्यम घाटे पर चल रहे हैं और रेलवे डाक एव तार जैसे विभागीय

तालिका 2 विभिन्न योजनाओ मे देशीय बजटीय स्रोतो के अंगो का सापेक्ष महत्त्व

देशीय बजटीय स्रोत	कुल योजना साधनों का प्रतिशत					
	प्रथम योजना	द्वितीय योजना	तृतीय योजना	चौथी योजना	पांचवीं योजना	छठी योजना
(क) चालू राजस्व से अधिशेष	25	1	5	2	13	15
(ख) सरकारी उद्यमों का योगदान		3	5	9	4	10
(ग) गैर सरकारी देशीय बचत	35	31	25	40	28	37
(घ) अतिरिक्त साधन गतिमान	13	23	34	27	37	22
कुल	73	56	59	74	82	84

उद्यमों (Departmental enterprises) का योगदान भी नाममात्र ही रहा। उज्ज्वल बिन्दुओ म रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया और अन्य बैंकिंग तथा वित्तीय सस्थान शामिल हैं और कुछ वाणिज्यक उद्यम (Commercial enterprises) जैसे इण्डियन आयल कार्पोरेशन है जो लगातार सरकार को मुनाफा देते रहे हैं। जहा तक राज्यीय उद्यमो का सम्बन्ध है वे समग्र आयोजन की अवधि मे घाटे पर चलते रहे हैं। उदाहरणार्थ राज्य बिजली बोर्ड एवं राज्य परिवहन निगम जो कि मुख्य राज्यीय उद्यम हैं पूरे योजना काल के दौरान घाटे पर चलते रहे हैं और समय के साथ साथ इनमें भारी सचयी घाटे (Accumulated losses) एकत्र हो गए हैं। इनके घटिया निष्पादन के बावजूद आयोजक प्रत्येक योजना मे इनसे अपेक्षाकृत अधिक योगदान की प्रत्याशा करते रहे हैं।

गैर-सरकारी देशीय बचत (Domestic private saving)—गैर सरकारी बचत के दो अगो बाजार ऋणो (Market Borrowings) और छोटी बचत के बारे मे हमारा पिछली छ योजनाओं का अनुभव बहुत अच्छा है और वास्तव मे ये दो स्रोत हमारे विकास के वित्त प्रबन्ध मे महत्त्वपूर्ण योगदान देने लगे हैं। पहली योजना के दौरान, गैर सरकारी देशीय बचत द्वारा कुल साधनो का एक तिहाई जुटाया गया परन्तु अगली दो योजनाओं में इनका महत्व थोडा सा कम हो गया और आयोजको ने विदेशी सहायता और न्यून वित्त प्रबन्ध (Deficit financing) पर अधिक भरोसा रखा। चौथी योजना मे इस स्रोत से कुल साधनों का 40 प्रतिशत प्राप्त किया गया। इस अवधि में सरकारी आत्म निर्भरता और विदेशी सहायता पर निर्भरता को कम करने के बारे में इतनी चिन्तित थी कि इसने देश में ही साधन गतिमान करने का भारी प्रयास किया। यहा यह उल्लेख करना उचित होगा कि चौथी योजना के दौरान कुल वित्तीय आवश्यकताओ का 40 प्रतिशत गैर सरकारी देशीय बचत से उपलब्ध कराया गया। छठी योजना के दौरान, मौलिक अनुमान के अनुसार, गैर सरकारी देशीय बचत द्वारा कुल आयोजित विनियोग का 37 प्रतिशत (36400 करोड रुपये) उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया। वर्तमान अनुमान के अनुसार, सरकार 45930 करोड रुपये या कुल विनियोग का 41 प्रतिशत इस मद से प्राप्त करने मे सफल हुई। आने वाले वर्षों मे योजना वित्त के इस स्रोत का महत्त्व दो कारणों से बने रहने की प्रत्याशा है

(क) सरकार के पास राष्ट्रीयकृत बैंकों, सार्वजनिक क्षेत्र के वित्तीय सस्थानो, सार्वजनिक पूर्वोपायी कोषो आदि के रूप मे एक अच्छा एव विस्तृत बन्दी बाजार (Captive market) उपलब्ध है जो सरकार द्वारा राशियो की किसी भी हद तक पूर्ति कर सकता है।

(ख) राष्ट्रीय एव प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि के साथ जनता सभी वर्गों विशेषकर मध्यम वर्गों मे बचत की सामर्थ्य एव इच्छा मे वृद्धि हुई है और सरकार भी उचित कर प्रोत्साहन (Tax incentives) एव अन्य उपायो द्वारा बचत प्रवृत्ति को बढावा देती है। (उदाहरणार्थ ब्याज रूपी आय एव लाभाश रूपी आय (Dividend income) को 10000 रुपये तक आय कर से छूट दी गयी है)

अत मे हम यह कहना उचित समझते हैं कि यदि देशीय बचत मे वृद्धि न होता तो अपूरित रिक्ति (Uncovered gap) और भी अधिक होती।

अतिरिक्त साधन गतिमान (Additional Resource Mobilisation)—इस मद के आधीन हम विकास के लिए वित्त जुटाने के दो स्रोतों को मानते हैं। पहला तो अतिरिक्त कराधान (Additional taxation) है जो सभी योजनाओ मे सबसे महत्वपूर्ण स्रोत रहा हैं दूसरा, सरकारी क्षेत्र के उद्यमो द्वारा उनकी कीमते बढाकर (जिन्हे अब वस्तुओं की प्रशासित कीमतें कहते हैं) अतिरिक्त साधन गतिमान किए जाते हैं। अतिरिक्त कराधान विकास वित्त (Development finance) का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन चुका है इस बात से प्रमाणित किया जाता है कि इसका योगदान पहली योजना मे 13 प्रतिशत था, चौथी योजना मे 23 प्रतिशत और छठी योजना में 30 प्रतिशत (मौलिक अनुमान के 22 प्रतिशत के विरुद्ध)। जबकि शहरी उपभोक्ताओ पर कर भार चरम सीमा तक पहुच गया है वहा ग्राम-आय पर अभी अतिरिक्त कराधान काफी गुजाइश है। किसानों में हरित क्रांति के कारण काफी खुशहाली है और किसानो की अतिरिक्त आय का कुछ भाग विकास कार्यों के लिए करों के रूप मे अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिए। सरकार ने सावजनिक क्षेत्र द्वारा उत्पन्न एव विक्रय की जाने वाली वस्तुओं (जैसे पैटोल कोयला, इस्पात आदि) तथा सेवाओ की प्रशासित कीमतो (Administered prices) को बढाने का आसान तरीका अपनाया है। परन्तु 1986 के आरभ मे कीमत वृद्धि के विरोध में जनता द्वारा प्रदर्शित गुस्से ने सरकार की आखे खोल दी है ओर भविष्य म इस स्रोत के माध्यम से अतिरिक्त साधन उपलब्ध कराने के बारे मे सरकार अवश्य पुनर्विचार करेगी।

चूंकि विदेशी सहायता और न्यून वित्त व्यवस्था पर निर्भरता से देश के लिए गभीर दुष्परिणाम हो सकते हें इसलिए सरकार देशीय बजटीय स्रोतो पर अधिकाधिक निर्भर होती गई है। देशीय बजटीय स्रोतों के विभिन्न अगो, विशेषकर अतिरिक्त कराधान, बाजार ऋणों और छोटी बचतो ओर सरकारी क्षेत्र के उद्यमो के योगदान का अपना पूरा महत्व है। जिस हद

तक देशीय साधनों का प्रयोग योजना आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए किया जाएगा उस सीमा तक हमारी विदेशी सहायता एवं न्यून वित्त प्रबन्ध निर्भरता कम हो जाएगी।

3 सातवी योजना मे सरकारी क्षेत्र परिव्यय के लिए वित्तीय-साधन

(Financial Resoures for the Public Sector in the Seventh Plan)

सातवीं योजना (1985 90) के लिए 1984 85 की कीमतो पर 180000 करोड रुपये के वित्तीय साधनों की आवश्यकता है। इसमे से 148000 करोड रुपये (कुल का 82 2 प्रतिशत) बजट स्रोतों से प्राप्त किया जाएगा जिसमें सरकारी उद्यम एव देशीय उधार भी शामिल हैं। विदेशी सहायता के रूप मे 18000 करोड रुपये या कुल योजना परिव्यय का 10 प्रतिशत प्राप्त किया जाएगा। योजना के लिए आवश्यक शेष 14000 करोड़ रुपये न्यून वित्त प्रबन्ध द्वारा प्राप्त किए जाएगे। तालिका 3 में मोटे तौर पर सातवीं योजना के वित्त प्रबन्ध सम्बन्धी अनुमान दिए गए है।

अब हम वित्त प्रबन्ध के विभिन्न स्रोतो का सविस्तार अध्ययन करेगे।

चालू राजस्व से अधिशेष

पहली बार सातवीं योजना के दौरान चालू राजस्व से अधिशेष प्राप्त होने की अपेक्षा इसम 5249 करोड रुपये के घाटे का अनुमान लगाया गया। इस घाटे का मुख्य कारण केन्द्र सरकार का बढता हुआ घाटा था। सातवीं योजना के दौरान चालू राजस्व से 12011 करोड रुपये के घाटे का अनुमान लगाया गया। चाहे राज्यीय सरकारों के बजट में 6762 करोड रुपये के अधिशेष का अनुमान था परन्तु मद से समग्र रूप में 5249 करोड रुपये के घाटे की प्रत्याशा की गयी।

केन्द्र के चालू राजस्व से घाटे का अनुमान लगाते समय निम्नलिखित मान्यताए की गयी हैं—

(*i*) मुख्य करो अर्थात् आयकर, सघीय उत्पादन शुल्कों एव सीमा शुल्को से राजस्व का अनुमान आठवे वित्त आयोग द्वारा लगाए गए 1984 85 की वृद्धि दरो पर ही लगाया गया है।

(*ii*) बाजार से उधार का आगामी पाच वर्षों के लिए अनुमान लगाते समय विभिन्न वर्गों के ऋणों की वर्तमान दरों को आधार बनाया गया है। इसमे सातवीं योजना अवधि मे जो नया ऋण लिया जायेगा तथा बकाया ऋण/अदायगिया हैं उनको भी शामिल किया गया है।

(*iii*) इस अनुमान म उर्वरको खाद्य और निर्यात प्रोत्साहन के लिए दिए गए साहाय्य (Subsidies) भी शामिल किए गए है।

(*iv*) इन अनुमानो में 1984 85 के अन्त तक केन्द्र सरकार द्वारा अतिरिक्त महगाई भत्ते की किश्तों के लिए किया गया प्रावधान भी शामिल है। इस सम्बन्ध मे चौथे वेतन आयोग की सिफारिशो के कारण जो बोझ पडेगा वह शामिल नहीं किया गया है क्योंकि यह पता नहीं कि उसकी राशि कितनी होगी।

सरकारी उद्यमों का योगदान

सरकारी उद्यमों के कुल अतिरेक (प्रतिधृत लाभ जमा मूल्यह्रास) का अनुमान 1984 85 के टैरिफ भाडों एव उत्पाद मूल्य को आधार मानकर 35485 करोड रुपये लगाया गया। इसमें सबसे महत्वपूर्ण मद अन्य केन्द्रीय उद्यम है जिनमें बन्दरगाह और दामोदर घाटी निगम शामिल हैं और

तालिका 3 सातवीं योजना में सरकारी क्षेत्र परिव्यय का वित्त प्रबन्ध

		सातवीं योजना मौलिक अनुमान (1985 86 से 1989-90)	कुल का प्रतिशत	1985 86 से 1989 90 के दौरान अद्यतन अनुमान	कुल का प्रतिशत
I	देशीय बजटीय स्रोत	74938	41 6	35988	19 7
	(क) चालू राजस्व से अधिशेष	5249	2 9	14261	7 8
	(ख) सरकारी उद्यमों का योगदान	35485	19 7	13246	7 2
	(ग) अतिरिक्त साधन गतिमान	44702	24 8	37002	20.3
II	पूंजी प्राप्तियां (शुद्ध)	73062	40 6	103232	56.5
III	विदेशों से प्राप्त शुद्ध अन्तर्प्रवाह	18000	10 0	15139	8 3
IV	न्यून वित्त प्रबन्ध	14000	7 8	28457	15 5
	कुल साधन	180000	100 0	182816	100 0

नोट ये सभी आंकडे चालू कीमतों पर हैं।

स्रोत योजना आयोग आठवीं योजना (1992 97)

जिनके द्वारा 31,500 करोड रुपये का योगदान प्राप्त होने का अनुमान है। यह अनुमान लगाते समय मान्यता की गयी है कि क्षमता का अधिक उपयोग किया जाएगा, सचालन कुशलता (Operational efficiency) में वृद्धि होगी और उत्पादकता भी बढेगी क्योंकि सातवीं योजना मे मूलत इन्हीं बातो पर बल दिया गया।

तालिका 4 सरकारी उद्यमो का योगदान (1985-90)

1984 85 की कीमतों पर करोड रुपये

उद्यम	राशि
1 रेलवे	4,225
2 डाक एव तार	1 729
3 अन्य केन्द्रीय उद्यम	31,500
4 राज्य बिजली बोर्ड	( ) 1,569
5 राज्य सडक परिवहन निगम	( ) 415
6 अन्य राज्यीय उद्यम	15
योड	35,485

बाजार ऋण (Market Borrowing)

सातवीं योजना के दौरान बाजार ऋण के रूप मे 36 108 करोड रुपये प्राप्त करने का अनुमान लगाया गया। बैंकों की नयी शाखाए खुलने से वाणिज्यिक बैंको मे जमा की जो वृद्धि होगी और जो अन्य उपाय किए जाएगे और अन्य अशदाताओं जैसे जीवन बीमा निगम ओर कर्मचारी पूर्वोपायी कोष से जो अदृश्य ससाधन बढेगे वे अनुमान मे शामिल नहीं किए गए हैं।

छोटी बचते (Small Savings) पिछले वर्षों से छोटी बचतो के रूप में अधिक राशि प्राप्त होने लगी है। यह बचत 1980 81 के 1 121 करोड रुपये स बढकर 1984 85 मे 3,300 करोड रुपये होने की सभावना है। छोटी बचत के रूप में परिवार क्षेत्र के योगदान का वृद्धि तथा अन्य अभिकरणो जैसे कामचारी पूर्वोपायी कोष तथा गैर सरकारी क्षेत्र मे अन्य भविष्य निधियो को मिलाकर 17 916 करोड रुपये प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया।

राज्य पूर्वोपायी कोष—सातवीं योजना के दौरान इस मद में केन्द्र से 2,300 करोड रुपये ओर राज्यों से 5 027 करोड रुपये प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया।

विविध पूजी प्राप्तिया (Miscellaneous capital receipts)—पूजीगत प्राप्तियो मे कपर्को, सरकारी कर्मचारियो, स्थानीय निकायो आदि से प्राप्त होने वाले ऋण तथा अग्रिम गैर सरकारी पूर्वोपायी कोष से प्राप्त होने वाली राशिया शामिल हे। इस मद से कुल मिलाकर 12,618 करोड रुपये प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया।

वित्तीय सस्थानो से सावधि ऋण (Term loans)—वित्तीय सस्थानो से सावधि ऋणो के रूप मे 4 639 करोड रुपये प्राप्त होने का अनुमान है। इनमे से जीवन बीमा निगम एव सामान्य बीमा निगम से 2 335 करोड रुपये राज्य विद्युतीकरण निगमो (State Electrification Corporations) से 982 करोड रुपये भारतीय औद्योगिक विकास बैंक से 1 100 करोड रुपये भारतीय औद्योगिक विकास बैंक से 1 100 करोड रुपये और अन्य वित्तीय सस्थानो में 222 करोड प्राप्त होंगे।

अतिरिक्त साधन गतिमान करना

केन्द्र तथा राज्यीय सरकारो द्वारा (जिसमे इनके आधीन सरकारी उद्यम भी शामिल हैं) 44 702 करोड रुपये के अतिरिक्त साधन गतिमान करने का अनुमान लगाया गया। केन्द्र तथा राज्यीय सरकारे जिन विशष उपायो का प्रयोग करेंगी उनका निर्णय प्रत्येक वर्ष मे विद्यमान आर्थिक स्थिति के अनुसार किया जाएगा। इस सम्बन्ध मे यह ध्यान रखना होगा कि ये उपाय स्फीतिकारी प्रभाव न रखते हो बल्कि वे विकास उत्पादिता और बचत को प्रोत्साहन देने वाले हो।

प्रत्यक्ष करों का जहा तक सम्बन्ध हे उनका ठीक प्रकार से कर पालन, करो की चोरी को रोकने और कर परिहार (Tax avoidance) को कम करने के लिए समुचित कार्यवाही करनी होगी। हाल ही म कर ओर सम्पत्ति कर की दरो मे जो कटोती की गइ हे उससे प्रत्यक्ष करो को कठारता से लागू करने मे सहायता मिलेगी। निगम कर का जहा तक सम्बन्ध है इसके सरलीकरण के लिए हाल ही म अनेक परिवर्तन किए गए है।

अप्रत्यक्ष करो का जहा तक सम्बन्ध है मुख्यरूप कर दरों के समायोजन और उन्हे युक्तियुक्त बनाने पर बल देना होगा। इसके अतिरिक्त सघीय उत्पादन शुल्को (Union excise duties) की लाच में सुधार करना होगा और इसके लिए विशिष्ट एव यथामूल्य शुल्क (Specificcum ad valorem duties) का प्रतिस्थापन यथा मूल्य शुल्को द्वारा करना होगा। विकल्प के रूप मे विशिष्ट दरों का समय समय पर स्फीति की दर को ध्यान मे रखते हुए समायोजन करना होगा। ऐसी कर रियायतो (Tax concessions) को छोड जो प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रो में उत्पादन को प्रत्साहित करती हैं अन्य कर रियायतों की समीक्षा की जाएगी और जहा वे न्यायसगत नहीं होगी वे हटा दी जाएगी।

सावजनिक क्षेत्र द्वारा किए गए भारी विनियोग से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे ग्राम क्षेत्रो को सामान्यतया आर कृषि क्षेत्रों को विशेषत लाभ हुआ है। अत अब आवश्यकता इस बात की है कि ग्रामीण आय मे राजस्व प्राप्त करने के और अधिक उपाय ढूढे जाए।

सरकारी क्षेत्र के उद्यमो द्वारा अतिरिक्त ससाधन गतिमान करने के लिए भाडे और किराए आदि मे सशोधन कर 2 500 करोड रुपये के अतिरिक्त साधन गतिमान करने की प्रत्याशा है। दूर सचार कार्यक्रमो का विस्तार और डाक सचालन मे होने वाले घाटे को कम करके इस विभाग द्वारा 250 करोड रुपये के अतिरिक्त साधन जुटाए जाएंगे।

केन्द्रीय सरकारी उद्यमो मे 11 490 करोड़ रुपये के अतिरिक्त साधन प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया। अत इन्हे अपनी कीमत नीति का युक्तिकरण और अन्य उपाय जैसे क्षमता उपयोग मे उन्नति उत्पादिता स्तर को ऊचा उठाना और मालतालिकाओ (Inventories) को कम करना होगा।

सरकार केन्द्रीय बजट मे दिए जाने वाले साहाय्यो (Sub sidies) मे से कुछ बहुत ही अनिवार्य साहाय्यो को छोड अन्य को कम करने का प्रयास करेगी ताकि योजना के लिए बचत राशि बढायी जा सके।

राज्यीय सरकारो के उद्यमो द्वारा राज्य बिजली बोर्ड के घाटे टैरिफ की वर्तमान दरो पर सातवीं योजना के दौरान 11 757 करोड रुपये आके गए। इन घाटो को कम करने के प्रयास किए जाएगे। इनकी टैरिफ दरो मे कुछ वृद्धि करके बिजली बोर्डो द्वारा 7 000 करोड रुपये के अतिरिक्त ससाधन जुटाए जाएगे।

सातवीं योजना के दौरान राज्य परिवहन निगमो के निष्पादन को उन्नत करने का प्रयास किया जाएगा। इस दृष्टि से बसो के किराए मे वृद्धि, स्टाफ बस अनुपात मे सुधार और कुशलता को उन्नत करके योजना के दौरान इन उद्यमो द्वारा 2 200 करोड रुपये जुटाए जाएगे।

सातवीं योजना के दौरान बहु उद्देश्यीय मुख्य तथा मध्यम सिचाई योजनाओ द्वारा 966 करोड रुपये का घाटा होने की सभावना है। इसे पूरा करने के लिए पानी की दरो मे वृद्धि करनी जरूरी है।

वित्त प्रबन्ध के ढाचे के राजकोषीय गुढार्थ

सातवीं योजना ने इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को बेनकाब किया कि गैर कृषि कुल देशीय उत्पाद (G D P) के प्रतिशत *के रूप मे प्रत्यक्ष करो के अनुपात मे पिछले दशक के दौरान* लगातार गिरावट होती रही और यह 1975 76 मे 5 8 *प्रतिशत की तुलना मे 1983 84 मे 4 4 प्रतिशत हो गया है।* प्रत्याशा के विपरीत कि आर्थिक विकास के साथ प्रत्यक्ष करों की तुलना में यह अनुपात बढना चाहिए था सरकार अधिकाधिक रूप मे *अप्रत्यक्ष करो पर निर्भर होती गई है* और कुल देशीय उत्पाद मे अप्रत्यक्ष करो का भाग जो 1975 76 मे 11 7 प्रतिशत था बढकर 1948 85 मे 14 प्रतिशत हो गया जबकि प्रत्यक्ष करों का अनुपात इसी काल के दौरान 3 4 प्रतिशत से कम होकर 2 3 प्रतिशत हो गया।

प्रत्यक्ष करो के अनुपात मे गिरावट से यह स्पष्ट सकेत प्राप्त होता है कि कर प्रणाली का पुनर्गठन होना चाहिए और प्रशासन को इसे दृढता से लागू करना चाहिए। सातवीं योजना के ससाधन सम्बन्धी अनुमान इस कल्पना के आधार पर तैयार किए गए हैं कि स्वचालित वद्धि एव नीति सम्बन्धी उपायो के परिणामस्वरूप कुल कर अनुपात जो 1984 85 मे 16 3 प्रतिशत था बढकर 18 3 प्रतिशत हो जायेगा। योजना की सफलता इस लक्ष्य की प्राप्ति पर महत्वपूर्ण रूप मे निर्भर करती है।

तालिका 5 गैर कृषि कुल देशीय उत्पाद (साधन लागत पर) के प्रतिशत के रूप मे प्रत्यक्ष कर 1975 76 से 1983 84

कर का रूप	1975 76	1980 81	1983 84
1 निगम कर	2 24	1 84	2 32
2 आय पर कर	3 15	2 11	1 51
3 धन कर	0 14	0 09	0 08
4 भू राजस्व एवं कृषि आयकर	0 68	0 28	0 27
5 अन्य प्रत्यक्ष कर	0 26	0 25	0 27
6 कल प्रत्यक्ष कर	*6 47*	*4.57*	*4 45*

स्रोत योजना आयोग सातवीं पचवर्षीय योजना (1985 90)

सातवीं योजना के वित्ततीय ढाँचे की प्रगति की समीक्षा

सातवीं योजना के वित्तीय ढाचे की समीक्षा के लिए आकडो के आधार पर कुछ महत्त्वपूर्ण सकेत मिलते हैं। *(देखिए तालिका 3)*

पहला जहा पर सातवीं योजना के देशीय बजट के स्रोतो से 41 6 प्रतिशत साधन जुटाने का निश्चय किया गया था *वहा वास्तविक* रूप मे *1985 86* से *1989 90* के दौरान केवल 19 7 प्रतिशत साधन इस स्रोत से जुटाए जा सके। इसके लिए जो भी लक्ष्य विभिन्न उप क्षेत्रो मे निर्धारित किए गए पूरे न हो सके। उदाहरणार्थ जहा चालू राजस्व मे अधिशेष के रूप मे 5 249 करोड रुपये के घाटे की व्यवस्था की गई वहा यह घटा बढकर 14 261 करोड रपये हो गया। इस प्रकार 2 9 प्रतिशत के *अनुमानित* घाटे *की अपेक्षा यह घाटा* बढकर 7 8 प्रतिशत हो गया। दूसरे सरकारी उद्यमो से योगदान के रूप मे 35 485 करोड रुपये प्राप्त करने का प्रस्ताव था अर्थात् कुल साधनो का 19 7 प्रतिशत परन्तु प्राप्ति लक्ष्य से कम ही रही अर्थात् 13 246 करोड रुपये या कुल का केवल 7 2 प्रतिशत। अत इस मद से भी लक्ष्य प्राप्त होने की कोई सभावना नहीं। तीसरे, अतिरिक्त साधन गतिमान करने के रूप मे 44 702 करोड रुपये अर्थात् 24 8 प्रतिशत का लक्ष्य रखा गया परन्तु इस मद से केवल 37 003 करोड

रुपये अर्थात कुल का 20.3 प्रतिशत ही जुटाया गया। अत इस दृष्टि से भी योजना का लक्ष्य पूरा न हो सका।

परन्तु बाजार उधार एव अन्य विविध पूजी प्राप्तियो (Miscellaneous capital receipts) के रूप में जहा समग्र योजना काल मे सातवीं योजना मे 73 062 करोड रुपये प्राप्त करने की ठानी गई वहा 1 03 232 करोड रुपये के आन्तरिक उधार प्राप्त किए गए। अत इस मद से 40 6 प्रतिशत प्राप्त करने की अपेक्षा 56.5 प्रतिशत साधन उपलब्ध कराए गए। यह एक सुगम रास्ता है जिसका प्रयोग सरकार बार बार करती है परन्तु इसके कारण ब्याज अदायगी के रूप मे सामान्य बजट पर अत्यधिक भार पडता है।

विदेशी शुद्ध अन्तर्प्रवाह (Foreign net inflow) के रूप मे 10 प्रतिशत के प्रस्ताव के विरुद्ध केवल 8 3 प्रतिशत साधन उपलब्ध कराए गए। जाहिर है कि सरकार ने विदेशी निर्भरता की दृष्टि से योजना की सीमा मे ही कार्य किया है।

किन्तु न्यून वित्त प्रबन्ध के रूप मे 14000 करोड रुपये के 5 वर्षों के लक्ष्य के विरुद्ध 28 457 करोड रुपये का न्यून वित्त किया गया। अत 7 8 प्रतिशत के न्यून वित्त (Deficit finance) के लक्ष्य के विरुद्ध यह अनुपात 15 5 प्रतिशत रहा है। जाहिर है कि सातवीं योना मे लक्ष्य से दुगुनी मात्रा मे न्यून वित्त प्रबन्ध करना पडा।

वित्तीय ढाचे के विश्लेषण से साफ जाहिर है कि सातवीं योजना के वास्तविक वित्तीय प्रबन्ध मे भारी विकृतिया पैदा हो गयीं। योजना चालू राजस्व मे अधिशेष के लक्ष्य प्राप्त करने मे असफल रही है। सरकारी उद्यमों के निष्पादन को उन्नत करने मे भी सरकार सफल नहीं हो पायी। इस प्रकार सरकार प्रस्ताव से कहीं अधिक न्यून वित्त प्रबन्ध का सहारा ले रही है जिसके परिणामस्वरूप स्फीतिकारी प्रवत्तियो को ही बढावा मिला है। इसी प्रकार सरकार बाजार उधार (Market borrowing) पर अत्यधिक निर्भर हो गई है जो एक सुगम रास्ता अवश्य है परन्तु एक कटकाकीर्ण मार्ग है। कारण यह है कि इससे ब्याज भुगतान की राशि बहुत बढ जाती है जो कि बजट मे घाटे का कारण बन जाती है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि सरकार वित्त के गैर स्फातिकारी ढाचे (Non inflationary pattern) के विकास म सफल नहीं हो पायी है। इसी के फलस्वरूप योजना के दौरान 46 प्रतिशत की कीमत वद्धि हुई है या आसतन 6 7 प्रतिशत प्रतिवर्ष जोकि एक शोचनीय परिस्थिति है।

❑❑❑

14

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–90)

(SEVENTH FIVE-YEAR PLAN, 1985-90)

1. सातवी योजना की रूपरेखा

उद्देश्य और विकास-रणनीति

सातवीं पचवर्षीय योजना का प्रारूप 9 नवम्बर, 1985 को राष्ट्रीय विकास परिषद् (National Development Council) द्वारा स्वीकृत किया गया। यह बात स्वीकार की गयी कि आयोजन के आरभ के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था ने अपने मूल उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर लगातार प्रगति की है। ये उद्देश्य है एक स्वतत्र, आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था की स्थापना साम्य एव न्याय पर आधारित सामाजिक प्रणाली की स्थापना सामाजिक तथा आर्थिक असमानताओ को प्रभावी रूप में कम करना और देशीय तकनालाजीय विकास के लिए सुदृढ आधार तैयार करना। सातवीं योजना में ऐसी नीतियो एव प्रोग्रामो पर बल देने का निश्चय किया गया जो खाद्यान्नो की वृद्धि दर को बढाती है रोजगार का विस्तार करती है और उत्पादिता को उन्नत करती है। विकास की वर्तमान अवस्था मे सातवीं योजना के भावी लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए ये तीन बहुत महत्वपूर्ण फौरी उद्देश्य माने गए।

निर्धनता एवं रोजगार (Poverty and employment)

सातवीं योजना के लिए अपनाई गई विकास रणनीति मे निर्धनता बेरोजगारी और क्षेत्रीय असन्तुलन (Reginoal im balances) की समस्या पर सीधा प्रहार करने का सकल्प किया गया। सातवीं योजना के दौरान यह आशा की गयी कि कुल रूप मे निर्धनों की सख्या जो 1984 85 में 27 3 करोड थी कम होकर 1989 90 मे 21 1 करोड हो जायेगी और इसमे अधिकतर उन्नति ग्राम क्षेत्रो मे ही होगी। इस प्रकार *निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली जनसख्या का अनुपात* जो 1984 85 मे 36 9 प्रतिशत था कम होकर 25 8 प्रतिशत हो जायेगा।

सातवीं योजना मे इस बात पर बल देना आवश्यक है कि निर्धनता विरोधी कार्यक्रम अपने आप में स्थाई आधार पर निर्धनता को समाप्त नहीं कर सकते। निर्धनता और अल्प रोजगार की समस्याओं पर एक चिरस्थायी प्रभाव डालने के लिए एक विस्तारी अर्थव्यवस्था (*Expanding economy*) और गत्यात्मक कृषि क्षेत्र का ढाचा होना अनिवार्य है।

रोजगार के क्षेत्र मे योजना का मुख्य उद्देश्य यह है कि *रोजगार के अवसरो का विस्तार श्रमशक्ति की वृद्धि की* अपेक्षा तेज गति से होना चाहिए। सातवीं योजना की अवधि के दौरान *400 लाख मानक व्यक्ति वर्षों (Person years)* की रोजगार क्षमता में वृद्धि होगी जबकि इसके विरुद्ध श्रमशक्ति में लगभग 390 लाख व्यक्तियो की वृद्धि होगी। रोजगार क्षमता में 4 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि होगी जबकि इसकी तुलना मे श्रमशक्ति की प्रत्याशित वृद्धि दर 2 6 प्रतिशत होगी। *कृषि क्षेत्र मे रोजगार की वृद्धि दर 3 5 प्रतिशत* रहने की सभावना है और गैर कृषि क्षेत्र मे 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष।

उत्पादक रोजगार (Productive employment) का जनन सातवीं योजना की विकास रणनीति मे केन्द्रीय महत्व रखता है। विकास विधि में खाद्यान्नो खाद्य तेलों चीनी *वस्त्रो पकाने के ईधन ओर जनोपभोग की अन्य वस्तुओ* के उत्पादन को बढाने और मकानो का तेजी से विस्तार करने की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इन वस्तुओं मे विनियोग की तीव्र वृद्धि से गरीब जनता के लिए उत्पादक रोजगार कायम करने के प्रयासो को और अधिक बल मिलेगा।

उत्पादिता एव कुशलता की उन्नति

भारतीय अर्थव्यवस्था की एक मुख्य कमजोरी निम्न उत्पादता (Low Productivity) रही है जोकि बहुत से परस्पर सम्बन्धित कारणतत्त्वो का परिणाम है। *निम्न उत्पादिता* का एक प्रधान कारण पूजी के प्रयोग की अकुशलता है। बहुत से क्षेत्रो में उत्पादन में वृद्धि विनियोग की मात्रा में वृद्धि के अनुकूल नहीं हुई। सातवीं योजना में इस बात पर विशेष बल दिया गया कि योजनाकाल के दौरान जो परिसम्पत् कायम किए जा चुके हैं उनसे अधिक *उत्पादन प्राप्त किया जाए।* वर्तमान विनियोग के अल्प प्रयोग से होने वाले उत्पादन में

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90)

तालिका 1 : सातवीं योजना के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र के परिव्यय

	1985-90 के दौरान प्रस्तावित व्यय		वास्तविक परिव्यय (1985-90)	
	करोड़ रुपये	प्रतिशत	करोड़ रुपये	प्रतिशत
1 कृषि तथा ग्राम विकास	22,333	12 4	30 317	13 6
(क) कृषि तथा सम्बद्ध क्रियाएं	10,524	5 8	12,686	5 7
(ख) ग्राम विकास	8 906	5 0	14 195	6 4
(ग) विशेष क्षेत्र कार्यक्रम	2,803	1 6	3 436	1.5
2. सिंचाई तथा बाढ नियत्रण	16 979	9 4	16 719	7 5
3 ऊर्जा	55 129	30 6	63 615	28 6
4 उद्योग एवं खनिज	22,108	12 3	30 052	13.5
5 परिवहन	22,645	12 6	30,140	13 6
6 संचार	4 474	2.5	8 664	3 9
7 तकनालाजी एव पर्यावरण	2,463	1 4	3 086	1 4
8 सामान्य आर्थिक सेवाएं	1,396	0 8	2,862	1 3
9 सामाजिक सेवाए	31,545	17.5	35 037	15 8
10 सामान्य सेवाए	1 028	0 6	1 677	0 8
कुल (1 से 10)	1,80,000	100 0	2,22,169	100 0

नोट: 1985-86, 1986-87 और 1987-88 के आकडे वास्तविक परिव्यय हैं 1988-89 के आकडे सशोधित अनुमान हैं और 1989-90 के वार्षिक योजना परिव्यय हैं।

स्रोत: आर्थिक समीक्षा (1989-90)

कमी को विनियोग द्वारा नयी क्षमता कायम करके पूरा करना न्यायोचित नीति नहीं है। अत: उद्योग मे आयोजन का केन्द्र नयी सुविधाओं पर भारी विनियोग की अपेक्षा वर्तमान सुविधाओं में सुधार करके क्षमता और उत्पादिता को उन्नत करना है। इसके लिए क्षमता उपयोग (Capacity utilisation) में सुधार और सभी क्षेत्रों में प्रौजैक्टों के कुशल कार्यान्वयन पर बल देना सातवीं योजना का मूल उद्देश्य है और ऐसा विशेषकर सिंचाई, संचालनशक्ति, परिवहन और उद्योग में करना होगा। तभी भारतीय अर्थव्यवस्था उच्च विकास-पथ पर डाली जा सकती है।

सातवीं योजना में कल्पित बचत, विनियोग और वृद्धि दर

सातवीं योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में 1,80,000 करोड़ रुपये के (1984-85 की कीमतों पर) परिव्यय की व्यवस्था की गयी है। इसमें चालू परिव्यय (Current outlay) अर्थात् योजनाकाल के दौरान सेवाओ के अनुरक्षण पर व्यय शामिल किया जाता है जो 25,872 करोड़ रुपये तक परिसम्पतों का निर्माण नहीं करता। अत. सार्वजनिक क्षेत्र में विनियोग 154,218 करोड़ रुपये होगा। इसके अतिरिक्त गैर-सरकारी क्षेत्र में 1,68,148 करोड़ रुपये का विनियोग होगा। इस प्रकार सातवीं योजना मे 3,22,366 करोड़ रुपये के विनियोग का प्रस्ताव किया गया। अत: सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्र के विनियोग का अनुपात 48 : 52 होगा।

इन विनियोग-कार्यक्रमो के परिणामस्वरूप यह आशा की गयी कि विनियोग जो 1984 85 मे 24 5 प्रतिशत (बाजार कीमतों पर कुल देशीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप में) था, बढकर 1989 90 मे 25 9 प्रतिशत हो जाएगा। तद्नुरूप बचत दर 23 3 प्रतिशत थी बढ़कर 24 5 प्रतिशत हो जाएगी।

विनियोग-प्रोग्रामों के परिणामस्वरूप, सातवीं योजना में औसत रूप में 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि-दर प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया। आयोजकों के अनुसार यह वृद्धि दर (Growth rate) छठी योजना के दौरान प्राप्त वृद्धि दर के अनुरूप ही ही थी, चाहे यह पिछले दशक की औसत वृद्धि दर से कुछ ऊंची है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि वर्द्धमान पूंजी-उत्पाद अनुपात (Incremental capital-output ratio) सातवीं योजना मे लगभग 5 रहेगा जबकि यह छठी योजना मे 5 5 था। वर्द्धमान पूंजी-उत्पाद अनुपात का अर्थ योजना काल के दौरान कुल विनियोग की मात्रा के फलस्वरूप कुल देशीय उत्पाद में वृद्धि के अनुपात से है। चूंकि सातवीं योजना की विकास-रणनीति में कुशलता पर बल इसका एक अनिवार्य अंग था, इसलिए पूंजी-उत्पाद अनुपात को अपेक्षाकृत नीची मात्रा प्राप्त करने की प्रत्याशा

की गयी।

क्षेत्रीय परिव्यय और लक्ष्य (Sectoral Outlays and Targets)

सार्वजनिक क्षेत्र मे योजना परिव्यय के क्षेत्रीय आबटन तालिका 1 मे दिए गए है। सबसे बडी अकेली मद ऊर्जा है जिस पर कुल परिव्यय का 30 6 प्रतिशत खर्च करने का प्रावधान किया गया। ऊर्जा को सर्वोच्च प्राथमिकता देने का उद्देश्य ऊर्जा सम्बन्धी सीमाबन्धन को हटाना था जोकि आधुनिकीकरण एव तकनालाजी उन्नति की प्रगति मे मुख्य रुकावट है। सामाजिक सेवा कार्यक्रमो जिनमे अनुसूचित जातियो एव जनजातियो और समाज के अन्य कमजोर वर्गों पर अधिक बल देने के लिए कुल योजना परिव्यय का 17 5 प्रतिशत लगाने का निश्चय किया गया। परिवहन पर 22 645 करोड रुपये के परिव्यय का लक्ष्य (12 6 प्रतिशत) रेलवे सडक तथा सडक परिवहन और परिवहन के अन्य साधनो को उन्नत करना है जो कि आर्थिक विकास के लिए बहुत जरूरी है।

कृषि तथा ग्राम विकास के लिए 22 333 करोड रुपये (कुल परिव्यय के 12 4 प्रतिशत) की व्यवस्था की गयी। इसके परिणामस्वरूप यह आशा की गयी कि कृषि क्षेत्र मे औसत वद्धि दर 4 प्रतिशत रहेगी।

योजना मे औद्योगिक क्षेत्र मे 8 प्रतिशत की औसत वार्षिक वद्धि दर प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया। सरकारी क्षेत्र मे औद्योगिक एव खनिज विकास कार्यक्रमो के लिए 22 108 करोड रुपये की व्यवस्था की गयी। इसका अधिकतर भाग चालू परियोजनाओ एव प्रौजेक्टो पर खर्च होगा। नयी परियोजनाओ के लिए बहुत ही चयनात्मक नीति अपनाई गई। कुल मिलाकर 70 प्रतिशत परिव्यय इस्पात उर्वरको अलौह धातुओ पैटो रसायन और सीमेट के लिए रखा गया जोकि आतरिक क्षेत्र (Core sector) मे है।

योजना मानवीय ससाधन विकास (Human Resources Development) शिक्षा स्वास्थ्य रक्षा परिवार नियोजन जल सभरण एव सफाई और कमजोर वर्गों की सहायता के लिए 31 545 करोड रुपये खर्च करने का प्रोग्राम बनाया गया।

योजना का उद्देश्य ग्राम तथा नगर क्षेत्रो की समग्र जनसख्या के लिए पर्याप्त मात्रा मे पीने के पानी की सुविधा उपलब्ध कराना है। सफाई सुविधाए 80 प्रतिशत नगर जनसख्या को और 25 प्रतिशत ग्राम जनसख्या को उपलब्ध करायी जाएगी।

उत्पादन के लक्ष्य

सातवीं योजना की क्षेत्रीय वृद्धि दरे तालिका 2 में दी गई है। इसमे उत्पादन के मूल्य वद्धि (Value added) की वृद्धि दरे दी गई हैं। इनसे पता चलता है कि कृषि का उत्पादन लगभग 4 प्रतिशत की वद्धि दर से बढेगा। यह आय मे वृद्धि और निर्धनता एव बेरोजगारी को समाप्त करने के प्रोग्रामो के अनुकूल है। औद्योगिक एव खनिज वस्तुओ के उत्पादन मे 8 3 प्रतिशत की औसत वृद्धि दर की प्रत्याशा है गैस और जलसभरण मे 12 प्रतिशत और परिवहन में 8 प्रतिशत।

तालिका 2 **सातवीं योजना के दौरान परिकल्पित वृद्धि दरें**

क्षेत्र	प्रतिशत प्रतिवर्ष कुल मूल्य वृद्धि	कुल उत्पादन का मूल्य
1 कृषि	2 5	4 0
2 खनन एव विनिर्माण	6 8	8 3
(क) खनन	11 7	13 0
(ख) विनिर्माण	5 5	8 0
3 बिजली, गैस और जल सभरण	7 9	12 0
4 भवन निर्माण (Construction)	4 8	4 8
5 परिवहन	7 1	8 0
6 सेवाएं	6 1	6 6
कुल	5 0	6 6

स्रोत योजना आयोग सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985 90)

कृषि विकास

सातवीं योजना के दौरान कुल उत्पादन की औसत वार्षिक वृद्धि दर 4 प्रतिशत और मूल्य वृद्धि दर 2 5 प्रतिशत रहने की सभावना है। कृषि उत्पादन के लक्ष्यो का निरीक्षण करने से पता चलता है कि योजना के अन्त तक खाद्यान्न का उत्पादन जो 1984 85 मे 1 500 लाख टन था बढकर 1 780 1,830 लाख टन हो जाएगा। इसमे चावल का उत्पादन 1984 85 में 600 लाख टन से बढकर 1989 90 में 730 750 लाख टन हो जाएगा अर्थात् इसमे 4 0 4 6 प्रतिशत की वार्षिक वद्धि होगी। इस प्रकार गेहू का उत्पादन 450 लाख टन से 560 लाख टन तक बढ जाने की सभावना है अर्थात् 4 5 4 8 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर।

जहा तक वाणिज्यिक फसलो का सम्बन्ध है तिलहनो के उत्पादन की वृद्धि दर 9 7 प्रतिशत रूई एव पटसन मे यह 4 8 प्रतिशत और गन्ने मे यह 3 8 प्रतिशत होगी। योजना के सम्बन्ध मे एक सतोषजनक बात यह है कि दूध का उत्पादन 388 लाख टन से बढकर 509 लाख टन करने का लक्ष्य है अर्थात् 5 6 प्रतिशत की वद्धि दर और अण्डो के उत्पादन की औसत वार्षिक वृद्धि दर 8 1 प्रतिशत रहेगी। जाहिर कि ये दोनो वस्तुए एक पौष्टिक एव सन्तुलित भोजन उपलब्ध कराने मे महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है।

कृषि विकास विधि में सिचाई सुविधाओ के विस्तार को

केन्द्रीय महत्व दिया गया। सूखा प्रेरित क्षेत्रो जनजातीय एव पिछडे क्षेत्रों मे मध्यम सिचाई योजनाओ या छोटी सिचाई योजनाओं तक ही नयी परियोजनाओ को सीमित रखा जाएगा। छोटी सिचाई योजनाओ के आधीन पूर्वीय एव उत्तर पूर्वीय राज्यो मे भू गर्भ जल (Ground water) के विकास पर बल दिया जाएगा। इससे इन क्षेत्रो मे उन्नत जल प्रबन्ध द्वारा चावल के उत्पादन को बढाने मे सहायता मिलेगी।

योजना में सिचाई क्षमता के आधीन 130 लाख हैक्टेयर अतिरिक्त क्षेत्र लाया जाएगा। इससे थोडे समय मे पकने वाली फसलो के आधीन क्षेत्रफल में उन्नत किस्म के बीजो द्वारा उत्पादन बढाया जा सकेगा। साथ ही फसल गहनता (Cropping intensity) को जो 1984 85 मे 1 26 थी बढाकर 1989 90 में 1.33 तक ले जाने का लक्ष्य रखा गया। अत फसल-आधीन कुल क्षेत्रफल जो 1984 85 मे 1800 लाख हैक्टेयर था, बढकर 1989 90 मे 1 900 लाख हैक्टेयर हो जायेगा। इसके साथ साथ उर्वरक उपभोग 1984 85 में 84 लाख टन से बढकर 1987 में 135 140 लाख टन हो जायेगा।

औद्योगिक उत्पादन के लक्ष्य

सातवीं योजना की औद्योगिक विकास रणनीति मे विशेष बल इन बातो पर है (*i*) अध सरचना सुविधाओ (*Infrastructural facilities*) विशेषकर सचालन शक्ति की उन्नति (*ii*) परिसम्पत्तों के आधुनिकीकरण एव परिपोषण पर अधिक ध्यान (*iii*) तकनालाजी की उन्नति (*iv*) उत्पादिता मे उन्नति (*v*) लागत मे कमी और अधिक प्रतिस्पर्धा (*vi*) नयी वस्तुओ को प्रारभ करना, और (*vii*) चुने हुए कुछ ऐसे उद्योगो जिनमें देश की तुलनात्मक लाभ प्राप्त हो, के त्वरित विकास के लिए विशेष प्रयास करना। इन सबके फलस्वरूप खनिजो एव विनिर्मित वस्तुओं के उत्पादन की वृद्धि दर सातवीं योजना के दौरान 8.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष रहने का अनुमान है। सातवीं योजना मे सचालन शक्ति का 12 6 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढाने का लक्ष्य रखा गया है।

औद्योगिक उत्पादन में वद्धि दर के लक्ष्यो की समीक्षा से पता चलता है कि जहा तक रूक्ष तेल का सम्बन्ध है इसके देशीय उत्पाद को जो 1984 85 मे 290 लाख टन था, बढाकर 1989 90 मे 345 लाख टन किया जाएगा। परन्तु चूँकि तेल की खपत में तेजी से वृद्धि हो रही है इस कारण कुल उपभोग मे शुद्ध आयात का भाग जो 1984 85 मे 31 प्रतिशत था, बढकर 35 प्रतिशत हो जायेगा। कोयले का उत्पादन 14 74 करोड टन से बढकर 1989 90 मे 22 6 करोड टन हो जाएगा। मानव निर्मित तन्तुओ के सम्बन्ध मे उत्पादन 1989 90 तक प्रत्याशित मांग के बराबर हो जायेगा अर्थात् इनके आयात की आवश्कता नही रहेगा। सामेंट का उत्पादन योजना काल के दौरान बढकर 1989 90 मे 490 लाख टन हो जायेगा जो कि देश की समग्र आवश्यकता के लिए पर्याप्त होगा। इसा प्रकार इस्पात का उत्पादन जो 1984 85 मे 86 9 लाख टन था को बढाकर 1989 90 मे 126.5 लाख टन करने का लक्ष्य रखा गया। इस प्रकार कुल उपभोग मे आयात का भाग 18 6 प्रतिशत से कम होकर 11 प्रतिशत हो जायेगा। जाहिर है कि देश बहुत सी महत्त्वपूण वस्तुओ मे आत्मनिर्भर हो जाएगा। यह अभिनन्दनीय प्रवत्ति है।

2 सातवी योजना के लिए वित्त प्रबन्ध (Financing the Seventh Plan)

विनियोग के लिए उपलब्ध कुल ससाधनो का आधार देशाय बचत ओर विदेशो से प्राप्त पूजी हैं। देशाय बचत (Domestic saving) का मात्रा जिसे गतिमान किया जा सकता है अर्थव्यवस्था मे भूतकालीन व्यवहार सम्बन्धी ढाचे और दीर्घकालीन प्रवत्तिया पर निर्भर करती है अर्थात् जनसख्या की बचत की प्रवति ओर कर प्रणाली की लोच इसके अतिरिक्त कराधान प्रोत्साहनो एव सस्थानात्मक और नीति सम्बन्धी परिवर्तनो द्वारा किए गए चेतन प्रयास बचत दर को बढाते हैं। बचत की दर भारतीय अर्थव्यवस्था मे छठी योजना के दौरान लगभग 23 प्रतिशत के इर्द गिर्द अवरुद्ध हो गई है। सातवीं योजना मे बचत की दर बढकर 1989 90 मे 24 3 प्रतिशत करने का लक्ष्य रखा गया हे।

सातवीं योजना के दोरान कुल देशीय बचत 3 02,366 करोड आकी गयी हं। इसके साथ 20 000 करोड रुपये के विदेशी पूजी अन्त प्रवाह की कल्पना की गयी है। इस प्रकार कुल प्रत्याशित साधनो को मात्रा 3,22,366 करोड रुपये होगी जो कि योजना मे प्रस्तावित विनियोग के बराबर हे।

कुल देशीय बचत का क्षेत्रवार विवरण तालिका 3 मे दिया गया हे। कुल देशी बचत मे सरकारी क्षेत्र का भाग 19 प्रतिशत है और गैर सरकारी क्षेत्र का 81 प्रतिशत। कुल रूप मे सरकारी क्षेत्र मे 57 422 करोड रुपये के साधन गतिमान किए जायेंगे जिसमे से सरकारा क्षेत्र के गर वित्तीय उद्यमा का योगदान 49 156 करोड रुपये ओर वित्तीय उद्यमों का 8,266 करोड रुपये होगा। गैर सरकारा क्षेत्र मे बचत का सबसे बडा स्रोत परिवार क्षेत्र है जिसमे 2,16 165 करोड रुपये प्राप्त होंगे अथात् कुल बचत का 71 5 प्रतिशत। परिवार क्षेत्र की वित्तीय बचत के वाणिज्य बका (जिनमे सहकारी समितिया भी शामिल हैं) मे जमा ओर पूर्वोपायी कोष (Provi dent fund) मुख्य स्रोत हैं। अन्य स्रोतो म करन्सी गेर बैंकिंग कम्पनियो मे जमा, जीवन बीमा निधियाँ निगम सहकारी क्षेत्र

मे हिस्से एव ऋणपत्र और भारतीय इकाई न्यास हैं। कुल वित्तीय बचत 102 253 करोड होगी जोकि अर्थव्यवस्था की समग्र बचत का 34 8 प्रतिशत होगी। परिवार क्षेत्र द्वारा भौतिक परिसम्पत्तो (Physical assets) के रूप मे सातवीं योजना के दौरान 113912 करोड रुपये की बचत का अनुमान है जोकि कुल बचत का 37 7 प्रतिशत है। इसके अलावा निगम क्षेत्र द्वारा 28 779 करोड रुपये की बचत का अनुमान है जो कुल बचत का 9 5 प्रतिशत होगी। जाहिर है कि बचत का सबसे बडा स्रोत परिवार क्षेत्र होगा उसके बाद सरकारी क्षेत्र का नम्बर आता है। निगम क्षेत्र का भाग बचत की दृष्टि से लगभग 10 प्रतिशत तक ही बढ पायेगा।

तालिका 3 सातवीं योजना के दौरान कुल देशीय बचत का क्षेत्रवार विवरण

(1984 85 की कीमतों पर)

क्षेत्र		राशि करोड रुपये		कुल का प्रतिशत
1 सरकारी क्षेत्र की बचत		57 422		19 0
(i) सरकार एवं सरकारी उद्यम (गैर वित्तीय)	49 156		16 3	
(ii) सरकारी उद्यम (वित्तीय)	8 266		2 7	
2 गैर सरकारी बचत (i+ii)		2,44 944		81 0
(i) परिवार क्षेत्र	2 16 165		71 5	
(क) वित्तीय बचत	102 253		34 8	
(ख) भौतिक परिसम्पत्	1 13912		37 7	
(ii) गैर सरकारी निगम क्षेत्र (सहकारी क्षेत्र समेत)	28 779		9 5	
3 कुल देशीय बचत (1+2)		302 366		100 0

स्रोत योजना आयोग सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985 90)

विनियोग के ढाचे से पता चलता है कि परिवार क्षेत्र से 102 253 करोड रुपये की बचत दूसरे दो देशीय क्षेत्रो को हस्तातरित की जायेगी। इसके अतिरिक्त विदेशो से पूंजी अन्तर्प्रवाह मे से 18 000 करोड रुपये सरकारी क्षेत्र को और 2 000 करोड रुपये गैर सरकारी निगम क्षेत्र को प्राप्त होगे।

3 सातवी योजना की प्रगति

सातवी योजना की प्रगति की समीक्षा से पता चलता है कि साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन मे 1984 85 और 1989 90 के दौरान 5 5 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि प्राप्त हुई। अत यह कहना उचित ही होगा कि सातवीं योजना का 5 प्रतिशत वृद्धि दर प्राप्त करने का लक्ष्य पूरा हो गया है। यह बात बडी उत्साहवर्धक है कि प्रति व्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Per Capita NNP) मे सातवीं योजना के दौरान औसतन 3 5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि प्राप्त हुई। दूसरे शब्दो मे *भारतीय अर्थव्यवस्था* ने प्रोफेसर *राजकृष्ण* द्वारा सकेत किए गए हिन्दू वृद्धि दर के अवरोधक को पार कर लिया है।

सातवीं योजना के दौरान क्षेत्रीय वृद्धि दरो से पता चलता है कि कृषि मे 2 5 प्रतिशत के लक्ष्य के विरुद्ध प्राप्त वृद्धि दर 3 0 प्रतिशत थी। विनिर्माण मे प्राप्त वृद्धि दर 7 5 प्रतिशत थी जबकि लक्ष्य 5 5 प्रतिशत था। परिवहन संचार *एव व्यापार में प्राप्त वृद्धि दर 6 4 प्रतिशत थी परन्तु सामुदायिक* एव वैयक्तिक सेवाओं मे यह 7 2 प्रतिशत थी। सभी क्षेत्रो की वृद्धि दर के 5% लक्ष्य के विरुद्ध 1984 85 से 1989 90

तालिका 4 सातवीं योजना की प्रगति के संकेतक

	1984 85	1989 90	सूचकांक (1984 85 = 100)	चक्रवृद्धि दर (1984 85 से 1989 90)
साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (करोड रुपये) (1980 81 की कीमतो पर)	1 33 972	1 74 798	130 3	5 5
प्रति व्यक्ति आय (रुपये)	1 804	2 142	118 8	3 5
औद्योगिक उत्पाद सूचकांक (1980 81 100)	130 1	196 4	152 9	8 6
कृषि उत्पादन सूचकांक (1969 70 100)	154 6	187 0	120 9	3 9
सकल देशीय पूंजी निर्माण (सकल देशीय उत्पाद का %)	20 1	24 1		
सकल देशीय बचत (सकल देशीय उत्पाद का %)	18 7	21 7		
खाद्यान्न उत्पादन (लाख टन)	1 455	1 710	117 5	3 3
निर्यात (चालू कीमतो पर करोड़ रुपये)	11 744	28[illegible] 9	240 4	15 7
आयात (चालू कीमतों पर करोड रुपये)	17 134	40 642	237 2	15 5
उपभोक्ता कीमत सूचकांक (1960 100)	582	951	157 2	9 4
थोक कीमत सूचकांक (1981 82 = 100)	120 1	165 7	138 0	6 6
कुल मौद्रिक संसाधन (करोड रुपये)	1 02 357	2 39 184	233 6	18 5

स्रोत आर्थिक समीक्षा (1991 92) से संकलित

के दौरान प्राप्त वृद्धि दर 5.5 प्रतिशत थी (देखिए तालिका 5) कुछ क्षेत्रों में वद्धि लक्ष्य से कुछ कम रही है परन्तु मुख्य क्षेत्रों मे समग्र वृद्धि दर सन्तोषजनक रही।

तालिका 5 सातवीं योजना के दौरान प्राप्त वृद्धि दरें

	सातवीं योजना का लक्ष्य	1984 85 से 1989-90 के दौरान प्राप्त वृद्धि दर
कृषि	25	30
खनन	117	81
विनिर्माण, निर्माण, बिजली गैस तथा जल समरण	55	75
परिवहन, सचार एव व्यापार	71	64
सामुदायिक एव वैयक्तिक सेवाए	61	60
सभी क्षेत्र	50	56

स्रोत आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992 97)

विनियोग के लक्ष्य को बनाए रखना

चालू कीमतो पर सातवीं योजना का सार्वजनिक क्षेत्र सम्बन्धी परिव्यय 2,18 730 करोड रुपये था। यदि इस योजना परिव्यय को 1984 85 की कीमतो पर परिवर्तित किया जाए, तो यह पता चलता है कि सार्वजनिक क्षेत्र मे 1 80 000 करोड रुपये के लक्ष्य के विरुद्ध वास्तविक परिव्यय 1 80 654 करोड रुपये था। दूसरे शब्दो मे यह कहना ठीक होगा कि सातवीं योजना मौलिक परिव्यय के वास्तविक रूप में बनाए रखने मे सफल हुई है।

बचत एव विनियोग दरे (Saving and Investment Rates)

सातवीं योजना के दौरान सकल देशीय पूजी निर्माण का दर जो 1984 85 मे 20 1% थी 1988 89 तक बढकर 23 9% हो गयी। इसी अवधि के दौरान, सकल देशीय बचत 18 7 प्रतिशत से बढकर 21 1 प्रतिशत हो गई। इस प्रकार 1984 85 मे शुद्ध विदेशी बचत जो 1 4 प्रतिशत थी का अन्त प्रवाह 1988 89 मे बढकर 2 9 प्रतिशत हो गया।

कृषि उत्पादन के लक्ष्य

सातवीं योजना के दौरान कृषि उत्पादन सूचकाक मे औसतन 4 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि हुई। तालिका 6 मे दिए गए आकडों से पता चलता है कि चाहे मध्यावधि समीक्षा मे मौलिक लक्ष्यो की तुलना में नजर नीची कर ली गयी फिर भी सभी मुख्य मदो मे लक्ष्य प्राप्त नहीं किए जा सके। जहा तक चावल का सम्बन्ध है लक्ष्य प्राप्त कर लिया गया है। गेहू के लक्ष्य की प्राप्ति में 40 लाख टन की कमी रही। दालो के उत्पादन का लक्ष्य भी प्राप्त न हो सका। खाद्यान्नो का सशोधित लक्ष्य जिसे घटाकर 1750 लाख टन कर दिया गया भी प्राप्त न हो सका। किन्तु मुख्य तिलहनो मे उत्पादन बढकर 169 लाख टन हो गया। इसी प्रकार चीनी मे उपलब्धि लक्ष्य से अधिक थी।

कृषि उत्पादन के लक्ष्यो की प्राप्ति मे कमी आने के लिए दो कारणतत्व उत्तरदायी हे। पहला सिचाई के लक्ष्य पूरे नहीं किए जा सके। आर्थिक समीक्षा (1989 90) म यह बात बहुत साफ शब्दो मे कही गई 'सातवीं योजना के पहले चार वर्षों म 86.3 लाख हेक्टेयर का अतिरिक्त सिचाई क्षमता निर्मित की गयी जबकि लक्ष्य 109 7 लाख हैक्टेयर का था। इस अवधि (1985 86 से 1988 89) के दौरान बडी तथा मध्यम सिचाई के अन्तर्गत 23 4 लाख हैक्टेयर अतिरिक्त सिचाई क्षमता कायम की गयी जबकि लक्ष्य 29 9 लाख हैक्टेयर था और छोटी सिचाई के अन्तर्गत 64 9 लाख हक्टेयर की अतिरिक्त सिचाई क्षमता कायम की गयी जबकि लक्ष्य 79 8 लाख हैक्टेयर का था।" जाहिर है कि बडी तथा मध्यम सिचाई और छोटी सिचाई दोनो के लक्ष्यो की प्राप्ति मे कमी रही है दूसरे, सातवीं योजना के दौरान अधिक उपजाऊ किस्म के बीजो द्वारा कृषि-आधीन क्षेत्रफल का लक्ष्य 700 लाख हैक्टेयर था, परन्तु वास्तविक उपलब्धि के 650 लाख हक्टेयर तक पहुच पायी। इन्हीं दो कारणो से कृषि सम्बन्धी लक्ष्य विशेषकर खाद्यान्न उत्पादन का लक्ष्य प्राप्त न किया जा सका।

औद्योगिक उत्पादन के लक्ष्य

सातवीं योजना के दौरान औद्योगिक उत्पादन की 8 3 प्रतिशत वद्धि दर के लक्ष्य के विरुद्ध, योजना के दौरान वास्तविक उपलब्धि 8 1 प्रतिशत प्रतिवर्ष था। समग्र रूप मे औद्योगिक उत्पादन के लक्ष्य पूरे हो जायेंगे। किन्तु बहुत सा महत्वपूर्ण मदो म लक्ष्यो का पूर्ति मे गभीर रूप में कमी रहेगी। उदाहरणार्थ रूक्ष तेल के उत्पादन का लक्ष्य 3 6 प्रतिशत था परन्तु उपलब्धि केवल 3 3 प्रतिशत था। वनस्पति मे, वद्धि दर के 26 प्रतिशत के लक्ष्य के विरुद्ध वास्तविक उपलब्धि केवल 0 4 प्रतिशत थी। कमी का अन्य महत्वपूर्ण मदे है लौह-अयस्क जूट की बनी वस्तुए, सामन्ट, इस्पात, बिजली की मोटरे, वाणिज्यिक गाडिया, जनित बिजली। परन्तु मानव निर्मित तन्तुओ, नाइट्रोजन उवरको, मशीनी औजारो मे उपलब्धि लक्ष्य से अधिक रही।

सातवीं योजना मे भुगतान शेष की स्थिति सन्तोषजनक नहीं

सातवीं योजना के दौरान व्यापार क्षेत्र का घाटा 54 204 करोड रुपये था या औसतन 10 841 करोड रुपये प्रति वर्ष। अदृश्य मदो (Invisibles) द्वारा इस घटे को कम करने में

तालिका 6 1985-86 से 1987 88 के दौरान भुगतान शेष

करोड रुपये

	1985 86	1986 87	1987 88	1988 89	1989 90
निर्यात	11 578	13 315	16 396	?0 646	?8 2?9
आयात	21 164	22 669	25 692	34 202	40 642
व्यापार शेष	9 586	9 354	9 296	13 556	12 413
अदृश्य मदें (शुद्ध)	+3 658	+3 524	+3 003	+1 976	+1 031
चालू खाते पर घाटा सकल	5 928	5 830	6 293	11 580	11 382
देशीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप में	2 5	2 3	2 1	3 3	3 2

स्रोत रिजर्व बैंक आफ इंडिया जनवरी 1993 और आर्थिक समीक्षा (1991 92) से सकलित

योगदान जो 1985 86 में 3 568 करोड रुपये था घटकर 1989 90 में केवल 1 031 करोड रुपये हो गया। व्यापार घाटे के अनुपात के रूप मे व्यापार घाटे को 1985 96 मे इस मद से 38 2 प्रतिशत कम किया गया परन्तु यह अनुपात 1989 90 में *गिरकर केवल 8 3 प्रतिशत रह गया। 1985 86 से* 1989 90 के दौरान चालू खाते पर कुल घाटा 41 013 करोड रुपये था। सातवीं योजना के भुगतान शेष का औसत वार्षिक घाटा 8 203 करोड रुपये था। सकल देशीय उत्पाद (GDP) के अनुपात के रूप मे चालू खाते पर घाटा 1985 86 में 2 5 प्रतिशत था परन्तु यह 1989 90 मे बढकर 3 2 प्रतिशत हो गया।

समग्र सातवीं योजना के दौरान कुल आयात का अनुमान 1 44 370 रुपये है परन्तु इसी काल के दौरान प्रत्याशित कुल निर्यात 90 165 करोड रुपये होंगे। इस प्रकार 54 205 करोड रुपये का व्यापार घाटा हुआ। इसका मुख्य कारण यह है कि 1985 86 से 1989 90 के दौरान कुल रूप मे आयात की वृद्धि निर्यात मे वृद्धि की अपेक्षा कहीं अधिक रही। जबकि इस अवधि में निर्यात में औसत वद्धि दर 18 7 प्रतिशत रही और आयात मे औसत वृद्धि 16 8 प्रतिशत प्रति वर्ष रही किन्तु कुल रूप मे घाटा बढता ही गया।

अत जहा तक भुगतान शेष का सम्बन्ध है देश एक कठिन काल से गुजर रहा है। इसका मुख्य कारण आयात के अन्धाधुन्ध उदारीकरण की नीति है। मध्यावधि समीक्षा मे इस सम्बन्ध मे तीन उपायो का सुझाव दिया गया (*i*) पैट्रोलियम उत्पाद की माग को सीमित करने की ओर प्रयास करना चाहिए, (*ii*) खाद्य तेलो और दालो के उत्पादन को बढाने की दिशा मे प्रयास करना चाहिए ताकि आयात को वर्तमान स्तर पर स्थिर किया जा सके और (*iii*) गैर अम्बारी आयात (Non bulk imports) की वद्धि मर्यादित करने के लिए क्रमिक विनिर्माण प्रोग्राम (Phased manufacturing programmes) लागू करने चाहिए।

व्यापार घाटे को पाटने के उपाय के रूप मे मध्यावधि समीक्षा मे एक ओर तो हाल ही के वर्षों मे सरकार द्वारा किए गए *निर्यात प्रोत्साहन (Export promotion)* के उपायो का स्वागत किया गया और दूसरी ओर आयात माग को सीमित *करने की इच्छा व्यक्त की गयी। किन्तु आयोजक* इस बात को समझने मे विफल रहे हैं कि एक या दूसरे बहाने से आयात मे लगातार उदारीकरण (Liberalisation) की नीति के परिणामस्वरूप आयात मे तीव्र वृद्धि हुई है जबकि इसके तदनुरूप निर्यात मे अपेक्षाकृत कम वृद्धि हुई। इसके अतिरिक्त आयात प्रतिस्थापन (Import substitution) नीतियो मे ढील आई है और विदेशी सहयोगो (Foreign collaborations) पर निर्भरता बढती गयी है। जब तक इन नीतियो मे पलटाव नहीं आता व्यापार घाटा और बढ जाएगा। चाहे आयोजक आयात के सीमाबन्धन की नीतियो का सुझाव निरन्तर देते रहे है परन्तु व्यवहार मे आयात की लगातार वद्धि का कहीं अधिक प्रमाण मिलता है।

न्यून वित्त प्रबन्ध की भारी मात्रा के कारण स्फीतिकारी दबाव

सातवीं योजना मे न्यून वित्त प्रबन्ध की सुरक्षित सीमा 14 000 करोड रुपये रखी गयी परन्तु योजना के दौरान वास्तविक न्यून वित्त प्रबन्ध 28 457 करोड रुपये तक पहुच गया। यह सार्वजनिक क्षेत्र के कुल योजना परिव्यय के 18 5 प्रतिशत के समान है। आलोचको ने सवाल उठाया है क्या यह न्यून वित्त प्रबन्ध की सुरक्षित सीमा है ? सरकारी अर्थशास्त्रियो का कहना है सातवीं योजना के बजटों मे प्रस्तावित न्यून वित्त का स्तर कीमतो पर कोई गभीर प्रभाव नहीं डालेगा। यह एक पूर्णतया मिथ्या धारणा है। सातवीं योजना के दौरान थोक कीमत सूचकाक मे 6 5 प्रतिशत प्रति वर्ष की औसत वद्धि हुई परन्तु उपभोक्ता कीमत सूचकाक *अपेक्षाकृत अधिक तेजी से 8 5 प्रति वर्ष की दर से बढा।*

जाहिर है कि थोक कीमत सूचकाक की तुलना मे उपभोक्ता कीमत सूचकाक का तेजी से बढना एक शोचनीय बात है क्योंकि इसका आर्थिक कल्याण की दृष्टि से कमजोर वर्गों पर दुष्प्रभाव पडना स्वाभाविक है।

सातवीं योजना के अनुभव से हमारी नीतियों की कमजोरी का बोध होता है। भावी नीतियो को इनके प्रकाश मे मोडने के लिए निम्नलिखित शिक्षाए प्राप्त होती हैं

1 कृषि की मन्द वृद्धि समग्र संवृद्धि दर (*Growth* Rate) की मन्द गति का मुख्य कारण है।

2 योजना को विनियोग के कल्पित स्तर को बनाए रखना होगा। इस उद्देश्य के लिए, आयोजको को गभीर रूप मे विचार कर कीमतो को रोकने की नीति तय करनी होगी और साथ ही योजना का वित्त प्रबन्ध अस्फीतिकारी ढग से करना होगा।

3 निजी तथा सार्वजनिक व्यय पर सीमाबन्धन देशीय बचत के स्तर को उन्नत करने और स्फीति पर नियत्रण प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है।

4 योजना भिन्न व्यय अतिरिक्त राजस्व का लगभग तीन चौथाई भाग हडप कर जाता है अत कुशलता पर दुष्प्रभाव डाले बिना योजना भिन्न व्यय पर कडी निगरानी रखनी होगी।

5 बाजार एव अन्य उधार के अधिक प्रयोग से आन्तरिक ऋण बढेगा जिसके परिणामस्वरूप बजटीय राजस्व का अतिरेक और भी समाप्त होता जाएगा।

6 न्यून वित्त प्रबन्ध को सुरक्षित सीमा के भीतर रखना।

7 अतिरिक्त साधन गतिमान करने के लिए जिन उपायो का अधिकाधिक प्रयोग किया जा रहा है वे हैं सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा उपलब्ध कराई गई वस्तुओ तथा सेवाओ की कीमतों एव दरो मे वृद्धि या अप्रत्यक्ष कराधान का प्रयोग। प्रत्यक्ष करो का कुल कर राजस्व मे भाग कम होता जा रहा है जिसका अर्थ यह है कि अधिक सम्पन्न वर्गों को करो का अधिक भाग सहन नहीं करना पडता। इस परिस्थिति का उचित उपचार होना चाहिए।

8 चालू खाते का घाटा सकल देशीय उत्पाद (Gross domestic product) का 3 प्रतिशत है। यदि आयात प्रतिस्थापन और आयात सीमाबन्धन की नीतियो से भुगतान शेष के घाटे को कम नहीं किया जाता तो देश विदेशी ऋणजाल (External debt trap) मे फस जाएगा। निर्यात प्रोत्साहन बाह्यजात कारणतत्वो पर निर्भर करता है और इसलिए इसे एक दीर्घकालीन विश्वसनीय उपाय नहीं माना जा सकता।

9 चाहे आधुनिकीकरण और उत्पादिता सवर्धन (Productivity upgradation) प्रशसनीय उद्देश्य है किन्तु बेरोजगारी को कम करने के रूप मे इसके प्रभाव को आकना चाहिए। दूसरे शब्दो मे विनियोग का ढाचा और तकनालाजी का चुनाव ऐसे करना होगा कि इससे पूर्ण रोजगार (*Full employment*) का लक्ष्य प्राप्त हो सके।

10 परिवार परिसीमन की ओर अधिक ध्यान देना होगा विशेषकर गरीब और पिछडे राज्यो मे और निर्धन एव पिछडे समुदायो मे इसे आगे बढाना होगा।

□□□

15
आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97)

आठवीं पचवर्षीय योजना कई राजनीतिक सरकारो द्वारा तैयार की गई। सबसे पहले काग्रेस (इ) की सरकार ने इसका दिशा निर्देश पत्र तैयार किया जिसे 1 सितम्बर, 1989 को योजना आयोग ने स्वीकति दी। परन्तु जनता दल सरकार की स्थापना के पश्चात् योजना आयोग का पुनर्गठन किया गया। योजना आयोग ने श्री आर के हेगडे के नेतृत्व मे जनता दल के घोषणापत्र के आधार पर प्राप्त जनादेश के अनुकूल एक नया प्रलेख आठवी पचवर्षीय योजना (1990 95) का दिशा निर्देश पत्र तैयार किया जिसे 19 जून 1990 की राष्टीय विकास परिषद ने अपनी स्वीकृति दे दी। नवम्बर 1990 के दौरान जनता दल सरकार के गिर जाने के कारण योजना आयोग का फिर पुनर्गठन किया गया और श्री मोहनधारिया को इसका उपाध्यक्ष नियुक्त किया गया। योजना के प्रारूप पर 31 मई 1991 को हस्ताक्षर किए गए परन्तु चन्द्रशेखर सरकार के गिर जाने के कारण यह प्रारूप भी सरकारी दस्तावेज मात्र ही बनकर रह गया।

जुलाई 1991 मे श्री पी वी नरसिम्हा राव के नेतृत्व मे काग्रेस (इ) की सरकार की स्थापना हुई और श्री प्रणव मुखर्जी योजना आयोग के उपाध्यक्ष नियुक्त हुए। योजना आयोग ने निर्णय किया कि आठवी पचवर्षीय योजना 1 अप्रैल 1992 से आरभ होगी और इसकी अवधि 1992 93 से 1996 97 के लिए होगी। अत 1990 91 और 1991 92 के दौरान किए गए कार्यक्रम वार्षिक योजनाओ के आधीन समझे जाएंगे।

योजना आयोग ने एक नए दिशा निर्देश पत्र का प्रतिपादन किया जिसे राष्ट्रीय विकास परिषद के सामने 24 25 दिसम्बर, 1991 को रखकर इसकी स्वीकति प्राप्त कर ली गयी। चूंकि कांग्रेस (इ) की सरकार इस योजना को लागू करेगी इसलिए इस योजना के उद्देश्यो प्राथमिकताओ और व्यष्टि आयामो (Macro dimensions) को समझना आवश्यक है।

1 आठवी पचवर्षीय योजना (1992-97)

आठवीं योजना का प्रतिपादन ऐसे समय किया जा रहा है जबकि देश पिछले दो वर्षों से कठिन परिस्थितियो मे से गुजर रहा है। राजकोषीय घाटे मे वृद्धि और विदेशी मुद्रा ससाधनो की आकस्मिक परिसमाप्ति ने हमारी अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव डाला जिसके परिणामस्वरूप आयात को कम करना पडा देश मे स्फीति दर बढ गयी ओर उद्योग मे प्रतिसार कायम हो गया। इसके परिणामस्वरूप 1991 92 मे वृद्धि दर एक दम गिरकर 2 5 प्रतिशत के निम्न स्तर पर पहुच गयी। अर्थव्यवस्था मे नई रूह फूकने के लिए सरकार ने राजकोषीय सुधारो के साथ आर्थिक सुधारो की प्रक्रिया आरभ की। आठवीं योजना को उच्च वृद्धि दर प्राप्त करने के लक्ष्य के साथ अन्य महत्त्वपूर्ण लक्ष्य अर्थात् जीवन स्तर को उन्नत करना जनता के स्वास्थ्य और शिक्षा मे उन्नति पूर्ण रोजगार, निर्धनता की समाप्ति और जनसख्या की आयोजित वृद्धि प्राप्त करने के लिए विकास के दिशा निर्देशो मे परिवर्तन करना होगा।

विकास के लिए नये दिशा निर्देशो मे सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यभाग और आयोजन प्रक्रिया की पुन परिभाषा करनी होगी।

आठवीं योजना में सरकारी क्षेत्र का कार्यभाग—सरकारी क्षेत्र की योजना का अपनी कियाओ के निर्धारण और विनियोग सम्बन्धा निर्णयो के बारे में अत्यन्त चयनात्मक रख अपनाना होगा और अपने उद्देश्यो की स्पष्ट परिभाषा करनी होगी। इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित सिद्धातो का अनुसरण करना होगा—

(i) सार्वजनिक क्षेत्र को केवल उन्हीं क्षेत्रो मे निवेश करना चाहिए जो स्वभावत अध सरचना (Infrastructure) से सम्बन्धित है ओर जिनसे समग्र विकास सुविधाजनक रूप मे हो सके।

(ii) सार्वजनिक क्षेत्र को ऐसे क्षेत्रो मे विनियोग करना चाहिए जिनसे देश के मूल ससाधनो का सरक्षण हो सके और उन्हे बढाया भी जा सके जैसे वन पानी एव परिवेश विज्ञान (Ecology) विज्ञान तथा तकनालाजी। सार्वजनिक क्षेत्र का यह दायित्व होगा कि वह सामाजिक आवश्यकताओ को पूरा

करे या समाज के दीर्घकालीन हितों जैसे जनसंख्या नियंत्रण, स्वास्थ्य शिक्षा आदि का निष्पादन करे।

(iii) सार्वजनिक क्षेत्र की अधिकतर क्रियाओं में जहां वस्तुओं या सेवाओं का उत्पादन और वितरण होता है जब तक कि समाज के निर्धनतम वर्ग को सुरक्षित करना आवश्यक न हो, बाजार अर्थव्यवस्था (Market economy) के सिद्धान्त को व्यवहार में स्वीकार करना होगा। इसका अर्थ यह है कि कीमत का निर्धारण लागत के आधार पर किया जाएगा और लागत का निर्धारण कार्यकलापों में पूर्ण कुशलता के आधार पर।

आठवीं योजना के दिशा निर्देश के चार केन्द्रीय लक्ष्य—(i) तीव्र विनियोग के लिए क्षेत्रों/प्रोजेक्टों को स्पष्ट रूप में प्राथमिकता देना ताकि इन्हें राजकोषीय व्यापार एवं औद्योगिक क्षेत्रों और मानवीय विकास सम्बन्धी नीतियों के कार्यान्वयन के लिए सुविधाजनक बनाया जा सके

(ii) इन प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों के लिए संसाधन उपलब्ध कराना और इन संसाधनों के प्रभावी प्रयोग का विश्वास दिलाना

(iii) देश भर में रोजगार जनन, उन्नत स्वास्थ्य रक्षा और विस्तृत शिक्षा सुविधाओं द्वारा सामाजिक सुरक्षा जाल (Social Security net) स्थापित करना और

(iv) उचित संगठन एवं वितरण प्रणाली (Delivery Systems) स्थापित करना ताकि सामाजिक क्षेत्रों में विनियोग के लाभ इच्छित व्यक्तियों तक पहुंच सकें।

आठवीं योजना के उद्देश्य (Objectives)—आठवीं योजना निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राथमिकता देगी—

(i) पर्याप्त मात्रा में रोजगार जनन (Employment generation) ताकि इस शताब्दी के अन्त तक लगभग पूर्ण रोजगार का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके

(ii) जनता के सक्रिय सहयोग और प्रोत्साहनों एवं अप्रोत्साहनों की प्रभावी योजना द्वारा जनसंख्या वृद्धि को सीमित करना

(iii) प्राथमिक शिक्षा को सर्वव्यापक बनाना और 15 से 35 वर्ष की आयु के लोगों में निरक्षरता को पूर्णतया समाप्त करना

(iv) सभी ग्रामों तथा समग्र जनसंख्या को पीने का साफ पानी और प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराना जिसमें रोगक्षमताकरण (Immunization) भी शामिल है और मेहतरों के काम को पूर्णतया समाप्त करना

(v) कृषि का विकास एवं विविधीकरण (Diversification) करना ताकि खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता प्राप्त की जा सके और निर्यात के लिए अतिरेक कायम किया जा सके और

(vi) अध: संरचना (Infrastructure)—ऊर्जा परिवहन संचार, सिंचाई को मजबूत बनाना ताकि विकास—प्रक्रिया को आत्मपोषित आधार प्राप्त हो सके।

2 आठवीं योजना के परिमाणात्मक समष्टि आयाम (Quantitative Macro Dimensions of the Eighth Plan)

आठवीं योजना के सभी परिकलन 1991 92 की कीमतों के आधार पर किए गए हैं। 1990 91 के लिए सकल देशीय उत्पाद (G D P) की वृद्धि दर 5 प्रतिशत आंकी गई है और 1991 92 के लिए इसका अनुमान 4 प्रतिशत लगाया गया है।

1980 90 के दशक के दौरान (साधन लागत पर सकल देशीय उत्पादन के रूप में) औसत वृद्धि दर 5.5 प्रतिशत रही जबकि सातवीं योजना के दौरान यह 5 6 प्रतिशत रही। सातवीं योजना में इस वृद्धि दर को प्राप्त करने के लिए सकल देशीय उत्पाद का 22 9 प्रतिशत देशीय बचत (Domestic saving) से और 2 4 प्रतिशत विदेशी बचत से उपलब्ध कराया गया। इस प्रकार निहित वर्द्धमान पूंजी उत्पाद-अनुपात (ICOR) 4 1 था।

इन सभी परिस्थितियों एवं वर्तमान आर्थिक संकट सम्बन्धी कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए आठवीं योजना के दौरान 5 6 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए विनियोग दर का स्तर सकल देशीय उत्पाद का 23 2 प्रतिशत रखना होगा जिसमें से 21 6 प्रतिशत देशीय बचत और 1 6 प्रतिशत विदेशी बचत से प्राप्त करने का निर्णय किया गया। अत: यह विनियोग एवं बचत ढांचा सातवीं योजना द्वारा प्राप्त विनियोग ढांचे के लगभग अनुकूल ही है।

तालिका 1 सातवीं और आठवीं योजना के मुख्य लक्ष्य

	सातवीं योजना	आठवीं योजना
1 सकल देशीय उत्पाद के रूप में वृद्धि दर	5 6	5 6
2 देशीय बचत	20 3	21 6
3 विदेशी बचत	2 4	1 6
4 कुल विनियोग	22 7	23 2
5 वर्द्धमान पूंजी उत्पाद अनुपात	4 1	4 1

आठवीं योजना के समष्टि योगों (Macro-economic aggregates) का परिकलन 1991 92 की कीमतों पर किया गया है जोकि इस योजना का आधार वर्ष है। इस परिकल्पना

मे स्फीति दर के कारण लागत वृद्धि के लिए प्रावधान नहीं किया गया। इसका यह अर्थ नहीं कि योजना काल के दौरान स्फीति नहीं होगी बल्कि इसका अभिप्राय यह है कि वास्तविक रूप मे ससाधनो में कटौती नहीं की जाएगी। आठवीं योजना में कीमत स्थिरता को बनाए रखने की आवश्यकता पर बल देते हुए उल्लेख किया गया—"भूतकाल म यह अनुभव किया गया कि कीमत में किसी भी वृद्धि के कारण सरकारी व्यय मे तद्नुरूप वृद्धि हुई परन्तु इसके साथ साथ राजस्व में तद्नुरूप वृद्धि सभव न हो सकी। परिणामत ससाधनों मे कमी की मात्रा बढती गई। सरकारी क्षेत्र मे निवचत (Dissaving) की प्रवृत्ति को पलटने के लिए कीमत स्थिरता अनिवार्य है और उसी हालत मे सरकारी व्यय के विकासीय भाग को सुरक्षित किया जा सकता है।"

आठवी योजना का आकार और आबटन ढाचा

देशीय बचत और विदेश से उपलब्ध ससाधनो (विदेशी बचत) की मात्रा को ध्यान मे रखते हुए (1991 92 की कीमतो पर) आठवीं योजना म 798 000 करोड रुपए के विनियोग की व्यवस्था की गई है जिससे सकल देशीय उत्पाद (Gross Domestic Product) मे 5 6 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त की जा सकेगी। इसका अर्थ यह है कि विनियोग दर 23.2 प्रतिशत होगी और वृद्धमान पूजी उत्पाद अनुपात 4 1 होगा।

अर्थव्यवस्था म कुल विनियोग को सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र म बाटा जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए 4,34 000 करोड रुपये के कुल परिव्यय (Outlay) का व्यवस्था की गई है जिसमे से 73 000 करोड रुपये के चालू परिव्यय का अनुमान है। इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र म 3 61 000 करोड रुपये का विनियोग शेष रह जाता है। इसके अतिरिक्त निजी क्षेत्र के लिए 4,37 000 करोड रुपये के विनियोग की परिकल्पना की गई है।

तालिका 2 आठवीं योजना का कुल परिव्यय एवं विनियोग

	करोड रुपए	कुल का प्रतिशत
1 सार्वजनिक क्षेत्र का कुल परिव्यय	4 34 000	
2 चालू परिव्यय	73 000	
3 सार्वजनिक क्षेत्र विनियोग (1 2)	3,61,000	45 [illegible]
4 निजी क्षेत्र विनियोग	4,37 000	54.8
कुल विनियोग	7 98,000	100.0

आठवीं योजना में यह प्रस्ताव किया गया है कि सार्वजनिक क्षेत्र म 45 प्रतिशत विनियोग किया जाएगा और निजी क्षेत्र द्वारा विनियोग म 55 प्रतिशत का योगदान किया जाएगा। जाहिर है कि सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति हमारे दृष्टिकोण म परिवर्तन के कारण कुल विनियोग म निजी क्षेत्र म विनियोग की ओर अधिक झुकाव हुआ है। तुलना की दृष्टि से यह उल्लेख करना रुचिकर होगा कि पाचवी योजना के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र मे विनियोग का भाग लगभग 58 प्रतिशत था जो छठी योजना मे 53 प्रतिशत, सातवीं योजना में लगभग 48 प्रतिशत था परन्तु आठवीं योजना मे केवल 45 प्रतिशत ही परिकल्पित किया गया जोकि अभी तक पचवर्षीय योजनाओ मे सबसे कम है।

केन्द्र और राज्यो के बीच परिव्यय के वितरण से पता चलता है कि केन्द्रीय परिव्यय (Central outlay) 2,54 115 करोड रुपये होगा अर्थात् कुल का 58 6 प्रतिशत और राज्यो का भाग 41 4 प्रतिशत होगा 1 79 985 करोड रुपये। पाचवीं, छठी और सातवीं योजना म, राज्यो का भाग लगभग 39 *प्रतिशत था और आठवीं योजना म इसे बढाकर 41 4 प्रतिशत* करने का प्रयास किया गया है अत अपने ससाधनो को बढाने *के लिए राज्यों को अपने व्यय म कटौती करना होगा और* अपने द्वारा चलाए जा रहे उद्यमो, विशेषकर बिजली बोर्डों *और परिवहन सेवाओ से सकारात्मक योगदान प्राप्त करना* होगा।

आठवीं योजना मे बचत और विनियोग एव राशियो का अत· क्षेत्रीय प्रवाह

तालिका 3 से पता चलता है कि सकल देशीय उत्पाद (G D P) के प्रतिशत के रूप म छठी योजना म कुल देशीय बचत 19 7% थी और यह सातवीं योजना म बढकर 20 4% हो गया। अस्सी के दशक म बचत म मन्द वृद्धि का दो कारण है परिवार क्षेत्र की बचत म पिछले दशक की तुलना म बहुत ही थोडी वृद्धि हुई है जिसके लिए एक ओर अधिक रूप म उपभोक्ता वस्तुओ चिरस्थायी एव गैर चिरस्थायी दोनो की उपलब्धि म वृद्धि जिम्मेदार है और दूसरी ओर सरकारी क्षेत्र की बचत म तेजी से हुई गिरावट।

तालिका 3 भारत में बचत की दर

	चालू कीमतों पर		1991-92 की कीमतों पर	
	छठी योजना	सातवीं योजना	आठवीं करोड रु	योजना प्रतिशत
1 सार्वजनिक क्षेत्र	3 69	2.33	68 900	2.00
क सरकारी क्षेत्र	1 10	1.36	83 66[illegible]	1 11
ख सरकारी उद्यम	2.59	3 69	152,5[illegible]4	3 11
2. निजी निगम क्षेत्र	1 63	2.0[illegible]	68 950	2.00
3 परिवार क्षेत्र	14.33	16 00	60[illegible]1 0	17.60
4 कुल देशीय बचत (1 + 2 + 3)	19.65	20.37	7[illegible]3 000	21 60

स्रोत आठवा पचवर्षीय योजना (1992-97) खण्ड 1 से सकलित

आठवीं योजना के दौरान, कुल देशीय बचत सकल देशीय उत्पाद के 21 6 प्रतिशत के समान होगी। इसमे परिवार क्षेत्र का योगदान 17 प्रतिशत, निजी निगम क्षेत्र का योगदान लगभग 2 प्रतिशत और सार्वजनिक क्षेत्र से 2 प्रतिशत योगदान किये जाने की प्रत्याशा है।

चूँकि कुल बचत मे परिवार क्षेत्र मुख्य अशदाता होगा, इसलिए प्रासंगिक प्रश्न उठता है कि क्या इस बचत का अधिकतर भाग भौतिक परिसम्पत (Physical assets) के रूप मे होगा या वित्तीय बचत के रूप मे। 1965 और 1975 के बाच, वित्तीय बचत मे तीव्र वृद्धि का कारण 1969 मे बैंक राष्ट्रीयकरण के परिणामस्वरूप ग्राम क्षेत्रो मे वाणिज्य बैंको की शाखाओ का तीव्र विस्तार था जिसके नतीजे के तौर पर वित्तीय बचत (Financial saving) मे तीव्र वद्धि हुई। हाल ही के वर्षों मे पूजी बाजार के आकार मे विस्तार के कारण परिवार क्षेत्र द्वारा वित्तीय परिसम्पतो मे अपनी बचत लगाने की प्रवृत्ति बढी है। आठवीं योजना मे इस प्रवृत्ति को और मजबूत बनाने का प्रयास किया जाएगा।

सार्वजनिक क्षेत्र की बचत के दो अग हैं अर्थात् सरकार की बचत और सरकारी उद्यमो की बचत। सरकारी क्षेत्र की बचत जो छठी योजना के दौरान सकारात्मक थी सातवीं योजना मे 1.36 प्रतिशत तक नकारात्मक हो गयी परन्तु इस परिस्थिति मे और अधिक गिरावट आयी और सरकारी क्षेत्र का निर्बचत (Dissaving) 1991 92 मे बढकर 2.37 प्रतिशत हो गया। इसका मुख्य कारण यह था कि जहा छठी और सातवीं योजना के दौरान सरकारी व्यय में 5 प्रतिशत की वृद्धि हुई (सकल देशीय उत्पाद के 16 5% से 21.5%) सरकारी राजस्व मे इसी अवधि के दौरान केवल 2 प्रतिशत की वृद्धि हुई (16.5% से 18.5%)। अत 1992 97 के दौरान राजस्व मे 3 प्रतिशत की वृद्धि प्राप्त करने के लिए भारी प्रयास करना होगा और इसके लिए प्रत्यक्ष करो एव उत्पाद शुल्को (Excise duties) का क्षेत्र विस्तार करना होगा। यह इसलिए भी जरूरी है क्योंकि आठवीं योजना के दौरान सीमा शुल्को (Custom duties) मे कमी लानी होगी ताकि देशीय उद्योगो को संरक्षण की मात्रा कम की जा सके। वित्त मत्री ने 1992 93 के बजट मे आनुमानिक कर (Presumptive Tax) लगाकर इस सम्बन्ध मे शुरूआत की है। चूँकि इस कर से प्राप्ति महत्वहीन थी इस कारण वित्त मत्री ने व्यवहार रूप मे इसका परित्याग कर दिया है। इसके अतिरिक्त, काले धन से भी साधन गतिमान करने की अत्यन्त आवश्यकता है जोकि कर वचन का प्रधान कारण है। इसके लिए कडे उपायो और राजनीतिक मनोबल की आवश्यकता है।

सार्वजनिक उद्यमो की बचत जो छठी योजना के दौरान 2.59 प्रतिशत थी बढकर सातवीं योजना के दौरान 3 69 प्रतिशत हो गयी। चाहे समग्र रूप मे यह प्रवत्ति उत्साहवर्धक है किन्तु सार्वजनिक उद्यमो की बचतो मे वृद्धि का महत्त्वपूर्ण भाग प्रशासनिक कीमतो (Administered prices) मे वद्धि के कारण सभव हुआ, न कि चालू व्यय मे कमी के कारण। सरकार द्वार आरभ किए गए आर्थिक सुधार इस बात पर बल देते हैं कि सरकारी उद्यमो को अपनी एकाधिकारी शक्ति का प्रयोग करने का अपेक्षा अपनी कार्य कुशलता मे उन्नति लानी होगी। इसके लिए उन्हें पूजी बाजार (Capital market) एव उत्पादन बाजार (Output Market) मे प्रतिस्पर्धा का सामना करना होगा। इस प्रतिस्पर्धा का न केवल देशीय

तालिका 4 **देशीय विनियोग और राशियो का अन्त क्षेत्रीय प्रवाह (1992 97)**

मद	1991-92 की कीमतो पर करोड रुपये			
	सार्वजनिक क्षेत्र	निजी निगम क्षेत्र	परिवार क्षेत्र	कुल
कुल विनियोग	3 61 000	1 49 000	2,88 000	7 98 000
वित्त का स्रोत	(10.5)	(4.33)	(8 37)	(23 20)
1 अपनी बचत	68 900	68 930	6 05 170	7 43 000
	(2 00)	(2 00)	(17.60)	(21 60)
क परिवार क्षेत्र से उधार	2,58 400	58 770	3 17 170	0
	(7.51)	(1 71)	(9 22)	(0 00)
ख शेष ससार से उधार	33 700	21,300	0	55 000
	(0 98)	(0 67)	(0 00)	(1 60)

नोट वैकेट में दिए गए आकडे बाजार की कीमत पर अनुमानित सकल देशीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप मे हैं।

बाजार बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे भी सामना करना होगा। इस कारण आठवीं योजना मे सार्वजनिक उद्यमो से कुल देशीय उत्पाद के 3 1 प्रतिशत तक बचत प्राप्त करने की प्रत्याशा है।

जहा तक देशीय विनियोग का सम्बन्ध है किसी एक क्षेत्र द्वारा जनित बचत का प्रयोग दूसरे क्षेत्र द्वारा किया जा सकता है। *प्रत्याशित अन्त क्षेत्रीय राशियो के प्रवाह* (Intersectoral flow of funds) का ब्यौरा तालिका 4 मे दिया गया है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि 798 000 करोड रुपये (सकल देशीय उत्पाद के 23 2%) के कुल विनियोग मे से सार्वजनिक क्षेत्र का विनियोग 361 000 करोड रुपये (10 5%) होगा निजी निगम क्षेत्र का विनियोग 149 000 करोड रुपये (4 3%) और परिवार क्षेत्र का 2,88 000 करोड रुपये (8 4%) होगा। परन्तु सार्वजनिक क्षेत्र अपने विनियोग के वित्त प्रबन्ध के लिए परिवार क्षेत्र की बचत से 7.5% उधार लेगा और विदेशी बचत से 1% प्राप्त करेगा क्योंकि इसकी अपनी बचत तो सकल देशीय उत्पाद का केवल 2 प्रतिशत है। इसी प्रकार निजी निगम क्षेत्र अपने 149 000 करोड रुपये (4 3%) के विनियोग के लिए परिवार क्षेत्र से 1 7 *प्रतिशत और विदेशी बचत से 0 6 प्रतिशत* उधार लेगा क्योंकि इसकी अपनी बचत केवल 2 प्रतिशत है। केवल परिवार क्षेत्र ही एक ऐसा क्षेत्र है जो अपनी 605 170 करोड रुपये (17 6%) की बचत मे से परिवार क्षेत्र के लिए 2,88 000 करोड रुपये (8 4%) का विनियोग करेगा और अपनी 9 2% शेष बचत सार्वजनिक क्षेत्र और निजी निगम क्षेत्र को उधार दे देगा। विदेशी बचत द्वारा 55 000 करोड रुपये (1 6%) प्राप्त किए जाएगे जिसका प्रयोग सार्वजनिक क्षेत्र और निजी निगम क्षेत्र द्वारा किया जाएगा।

आठवी योजना के भुगतान-शेष सम्बन्धी प्रक्षेपण (Projections)

भुगतान शेष की स्थिति पिछले कई वर्षों से *लगातार* दबाव में रही है। सातवीं योजना के दौरान चालू खाते पर घाटा (Current Account Deficit) औसतन 8 254 करोड रुपये रुपये प्रतिवर्ष था। इस स्थिति के मुख्य कारण भारी व्यापार घाटा और अदृश्य खाते पर अतिरेक मे गिरावट थे। खाडी युद्ध के परिणामस्वरूप 1990 मे तेल की कीमतों मे वृद्धि ने व्यापार शेष की वर्तमान कठिन स्थिति को और भी भयकर बना दिया।

व्यापार क्षेत्र की स्थिति मे तुरन्त सुधार लाने के लिए आयात मे भारी कटौती की गयी और विनिमय दर मे परिवर्तन निर्यात को बढाने का प्रयास किया गया। परिणामस्वरूप चालू खाते का घाटा जो सकल देशीय उत्पाद का 3 6 प्रतिशत था कम होकर 1 6 प्रतिशत हो गया। इससे व्यापार शेष की स्थिति को तो राहत प्राप्त हुई किन्तु आयात मे भारी कटौती ने आर्थिक विकास पर दुष्प्रभाव डाला विशेषकर 1991 92 मे औद्योगिक उत्पादन पर। इसमे खासतौर पर पूजी वस्तुओ के आयात मे 4 000 करोड रुपये की गिरावट उल्लेखनीय है आठवीं योजना मे पिछले दशक के दौरान भुगतान शेष (Balance of payments) की स्थिति की समीक्षा करते हुए स्पष्ट कहा गया—"यदि आर्थिक विकास को बरकरार रखना है तो भुगतान शेष की समस्या का समाधान *विदेशी व्यापार के परित्याग मे नहीं बल्कि सरचनात्मक* समायोजन नीति (Structural Adjustment Policy) को बढावा देने मे है जिससे निर्यात अधिक आकर्षक बन जाएँ और *आयात कीमत सकेतकों के प्रति अधिक सवेदनशील।*"

इस दिशा निर्देश का पालन करते हुए आठवीं योजना मे निर्यात की वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य 13 6 प्रतिशत रखा *गया है।* परम रूप में *निर्यात* जो *1991 1992* मे 44 292 करोड रुपये थे बढकर 1996 97 मे 83 869 करोड रुपये तक पहुचाए जा सकेगे। इसमे कोई सन्देह नहीं कि परिपोषण और *विकास (Maintenance and Development)* दोनो के लिए आयात आवश्यक है। परिणामत आयात मे वृद्धि दर का लक्ष्य 8 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष रखा गया है। परम रूप मे *आयात* जो *1991 92* में *62,345* करोड रुपये थे, बढकर 1996 97 मे 93 314 करोड रुपये हो जाएगे।

तालिका 5 आठवीं योजना (1992 97) के दौरान भुगतान शेष का प्रक्षेपण

(करोड रुपये)

	1991 92	1996-97	आठवीं योजना के लिए योग
1 निर्यात	44 292	83 869	330 153
2. आयात	62,345	93 314	399 650
3 व्यापार शेष (1 2)	18 053	9 445	−69 497
4 अदृश्य मदें	+3 494	+2,332	+14 634
5 चालू खाते पर घाटा	14 559	7 113	54 863

नोट—1991 92 असामान्य वर्ष होने के कारण वास्तविक आकडो को न लेकर सामान्य प्रक्षेपण के आधार पर आकडे लिए गए हैं।

स्रोत आठवीं पचवर्षीय योजना (1992-97) खण्ड 1

आठवीं योजना की 5 वर्षीय अवधि मे कुल व्यापार घाटा 69 497 करोड रुपये होने की सभावना है जिसमें 14 634 करोड रुपये की पूर्ति अदृश्य मदो (Invisible items) के अतिरेक द्वारा की जाएगी। इस प्रकार, चालू खाते पर भुगतान शेष का घाटा 54 863 करोड रुपये (अर्थात् लगभग 55 000 करोड रुपये) होगा। इसी कारण आठवें

योजना मे 55 000 करोड रुपये विदेशी ससाधनो से प्राप्त करने का प्रावधान किया गया है। इसकी पूर्ति के लिए 28700 करोड रुपये विदेशी सहायता के रूप मे 5 000 करोड रुपये वाणिज्यिक उधार (Commercial borrowing) 3 000 करोड रुपये प्रवासी भारतीयो की जमा के रूप मे और शेष 18,300 करोड रुपये विदेशी पूजी बाजार से प्राप्त किए जाएंगे। वास्तव मे आठवीं योजना वाणिज्यिक उधार के भाग को घटाना चाहती है क्योंकि इनका ब्याज रूपी भार बहुत ज्यादा है। इसकी अपेक्षा सरकार ने बहुत से उपाय किए हैं जिनसे प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग (Direct foreign investment) को बढावा दिया जा सके।

5 सार्वजनिक क्षेत्र की योजना (1992-97) का वित्त-प्रबन्ध

(Financing of the Public Sector *Plan 1992-97*)

798 000 करोड रुपये के विनियोग का वित्त प्रबन्ध और यदि इसमे 73 000 करोड रुपये का चालू परिव्यय भी शामिल कर लिया जाए, तो 871 000 करोड रुपये का वित्त प्रबन्ध एक महान् प्रयास है। चूँकि निजी क्षेत्र के 4,37 000 करोड रुपये के विनियोग के वित्त प्रबन्ध ढाचे को निश्चित करना सभव नहीं इसलिए सार्वजनिक क्षेत्र के 4,34 000 करोड रुपए के वित्त प्रबन्ध पर विचार करना चाहिए जोकि कुल परिव्यय (सार्वजनिक एव निजी क्षेत्र को मिलाकर) के 49.55 प्रतिशत के बराबर है।

तालिका 6 आठवीं योजना (1992-97) मे सार्वजनिक क्षेत्र परिव्यय का प्रक्षेपित वित्त प्रबन्ध ढाचा

1991-92 की कीमतो पर करोड रुपये

ससाधन	मौलिक योजना			आठवीं योजना का वास्तविक अनुमान		
	केन्द्र	राज्य	कुल	केन्द्र	राज्य	कुल
1 देशीय ससाधन						
क. चालू राजस्व से अतिरेक	22,020	12,985	35 005	37,554	2009	39,563
	(5 1)	(3 0)	(8 1)	(9 8)	(-0.5)	(10.3)
ख सार्वजनिक उद्यमो	144 140	4 000	148 140	1,34 172	2,723	1,31 449
का योगदान	(33 2)	(0 9)	(34 1)	(34 9)	(-0 7)	(34.2)
ग. उधार एव विविध	117755	84,500	202,255	1 65 148	75 067	2,+0,215
(शुद्ध) पूजी प्राप्तिया	(27 1)	(19.5)	(46 6)	(43 0)	(19.5)	(62.2)
उप योग (क + ख + ग)	283 915	101 485	385 400	2,61 766	70,335	3,32,101
	(65 4)	(23 4)	(88 8)	(68 1)	(18.3)	(86 4)
2 विदेशों से शुद्ध पूजी	28 700	0	28,700	19,234	0	19,234
अन्तर्प्रवाह	(6 6)		(6 6)	(5 0)	0	(5 0)
3 न्यून वित्त प्रबन्ध	20000	0	20000	ͻ3 037	0	33037
	(4 6)		(4 6)	(8 6)	0	(8 6)
4 कुल संसाधन	**332,615**	**101 485**	**434 100**	**3 14 037**	**70 335**	**384,372**
(1 + 2 + 3)	**(76 6)**	**(23 4)**	**(100 0)**	**(81 7)**	**(18.3)**	**(100 0)**
5 राज्यीय योजनाओ	78,500	78,500	(	75 750	757ͻ0	—
के लिए सहायता	(—18 1)	(18 1)		(19 7)	(19 7)	—
6 सार्वजनिक क्षेत्र के	254 115	179 985	434 100	2,38,287	1 46 085	384,372
लिए ससाधन (4 + 5)	(58.5)	(41.5)	(100 0)	(6? 0)	(38 0)	(100 0)

नोट. ब्रैकट में दिए गए आकडे कुल योजना परिव्यय (केन्द्र जमा राज्य) के प्रतिशत के रूप मे है।

*अतिरिक्त ससाधन गतिमान (Additional Resource Mobilisation) को शामिल करके।

स्रोत आठवीं पचवर्षीय योजना (1992-97) और नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997 2002) खण्ड 1

सार्वजनिक क्षेत्र परिव्यय का सहभाजन केन्द्र और राज्यो के बीच किया जाता है। चूँकि राज्यो को केन्द्र से 78,500 करोड रुपये की सहायता प्राप्त होगी इस कारण केन्द्र को 3,32,615 करोड रुपये के साधन जुटाने होंगे और राज्यो को 101 485 करोड रुपये के। सापेक्ष रूप मे, केन्द्र को कुल सार्वजनिक परिव्यय के 77% का वित्त प्रबन्ध करना होगा और राज्यो को केवल 23% का। जाहिर है कि आयोजन-प्रक्रिया के लिए केन्द्र द्वारा ससाधनो को गतिमान करने का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

तालिका 6 मे आठवीं योजना के वित्त-प्रबन्ध सम्बन्धी आकडे दिए गए है। समग्र दृष्टि से यह ज्ञात होता है कि सावजनिक क्षेत्र परिव्यय के लगभग 89 प्रतिशत का वित्त-प्रबन्ध देशीय ससाधनो (Domestic Resources) द्वारा किया गया है 6 6 प्रतिशत का विदेशी सहायता द्वारा और न्यून-वित्त प्रबन्ध (Deficit financing) द्वारा 4 6 प्रतिशत साधन जुटाने का प्रस्ताव है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वित्त-प्रबन्ध का ढाचा गैर स्फाति कारी (Non inflation-ary) है। आठवीं योजना मे उल्लेख किया गया है—"सातवीं योजना मे न्यून-वित्त प्रबन्ध को कुल परिव्यय के 8 प्रतिशत तक रखने का प्रस्ताव किया गया परन्तु इसके विरुद्ध वास्तविक न्यून-वित्त योजना-व्यय के 17 प्रतिशत तक पहुच गया। आठवीं योजना वित्त-प्रबन्ध के इस स्रोत से 5 प्रतिशत से भी कम प्राप्त करेगी ताकि स्फाति को नियन्त्रित किया जा सके।'

देशीय ससाधन जनन (Domestic resource genera-tion) की मुख्य समस्या चालू खाने पर अतिरेक (Balance from Current Revenues) है जिनका अनुमान 35 005 करोड रुपये लगाया गया है—कुल योजना परिव्यय का 8 प्रतिशत। सातवीं योजना के दौरान इस मद से लगभग 2 प्रतिशत साधन प्राप्त किए गए। इस दृष्टि से आठवीं योजना ने देशीय ससाधनो के गतिमान करने का उत्साहपूर्ण प्रयास किया है। इस प्रकार 35 005 करोड रुपये में से 22,020 करोड रुपये केन्द्र सरकार द्वारा एकत्र किए जाएगे और राज्यो से 12,985 करोड रुपये के योगदान की प्रत्याशा की गयी है। स्वाभाविकत इसके लिए बेहतर राजस्व सग्रहण अतिरिक्त कराधान द्वारा साधन गतिमान करने और गैर योजना व्यय की वृद्धि को रोकने सम्बन्धी उपाय करने होगे। आठवीं योजना मे प्रस्तावित कुछ उपाय इस प्रकार है—

1 कृषि से प्राप्त प्रत्यक्ष कर राजस्व (Direct Tax Revenue) जो 1950 51 मे 1 2 प्रतिशत था, कम होकर 1989 90 मे सकल देशीय उत्पाद का 0 7 प्रतिशत हो गया है। राज्यो को कृषि से राजस्व बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए ताकि यह 1950 51 के 1.2 प्रतिशत के स्तर पर पुन पहुच जाए। इससे 600 से 700 करोड रुपये का अतिरिक्त राजस्व प्राप्त होगा जबकि अभी इस मद से 750 करोड रुपये प्राप्त हो रहे हैं। इसके लिए कृषि पर कराधान के आधार का विस्तार करना अनिवार्य है। इसके लिए राष्ट्रीय विकास परिषद मे सहमत तैयार करना होगा। जिन राज्यो मे हरित क्रांति से लाभ हुआ है वहा कृषि-कराधान (Agricultural taxation) के रूप मे कहीं अधिक साधन जुटाने सभव हैं। इस सबध मे फार्म लाबियो (Farm lobbies) द्वारा इसका कडा विरोध किया जाता है परन्तु इस सम्बन्ध मे अधिक विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाना चाहिए क्योंकि इस स्रोत से अभी तक लाभ उठाया नहीं जा सका।

2 केन्द्रीय प्रत्यक्ष करो की बकाया-राशि की मात्रा अत्यधिक है। मार्च 1990 के अन्त तक यह बकाया राशि 5 000 करोड रुपये थी जिसमे से अधिकतर की उगाही की जा सकती है। जिन राज्यो मे बकाया-राशि (Arrears) बहुत अधिक हैं उनमे हैं उत्तर प्रदेश (रु 1250 करोड) आध्र प्रदेश (रु 461 करोड) उडीसा (रु 385 करोड) कर्नाटक (रु 272 करोड) तमिलनाडु (रु 253 करोड) गुजरात (रु 233 करोड) मध्य प्रदेश (रु 147 करोड) राजस्थान (रु 108 करोड) पजाब (रु 106 करोड) केरल (रु 105 करोड) हरियाणा (रु 90 करोड)। आठवीं योजना इस बात पर बल देती है—"राज्यो को यह प्रयास करना ही होगा कि वे वसूली योग्य बकाया-राशि का लगभग तीन चौथाई सरकारी खजाने के लिए वसूल करे, भले कानूनी मुकदमों का फेसला न हुआ हो।" अत बकाया राशि मे से लगभग 4 000 करोड रुपये जुटाए जा सकते हैं। इतना ही नहीं ऐसे कदम भी उठाने होगे कि कर दाता विशेषकर व्यापारियो को मजबूर होकर कर अदा करने पडे और भविष्य में बकाया राशि की मात्रा कम की जा सके।

3 ऋण एव अग्रिमों की वसूली मे भी भारी बकाया-राशिया हैं। सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में अत्यधिक ढाल इसके लिए जिम्मेदार है। अत इसके उपचार के लिए कायवाही करनी होगी।

4 करो की छूट विशेषकर उत्पादन शुल्क की छूट से बहुत-सा राजस्व छोड दिया जाता है। इन छिद्रो को कम करने के निश्चित रूप मे उपाय करने होगे।

5 व्यापारियो एव व्यवसायियो (Professionals) अर्थात् चारटर्ड एकाऊटेंट, वकील डाक्टर, आर्किटेक्ट, कलाकार, गायक अभिनेता आदि बहुत ही थोडा कर देते है। चाहे अनुमानिक करों (Presumptive Tax) के माध्यम से व्यापारियों को कर-जाल मे लाने का प्रयास तो किया गया है किन्तु व्यवसायियो (Professionals) को कर-जाल (Tax Net) मे लाने की दिशा मे कोई प्रभावी उपाय नहीं किए गए।

6 प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष करों के सदर्भ में ~र वचन (Tax-evasion) को प्रभावी रूप मे बन्द करने की आवश्यकता है। यह आशा करना कि केवल आयकर की दर घटाने से कर राजस्व प्राप्त करने मे इतनी लोच उत्पन्न हो जाएगी कि कर राजस्व मे तीव्र वृद्धि हो जाएगा स्थिति का सही जायजा नहीं है। करो की दरो मे कमी के साथ कर सग्रहण मशीनरी को भी मजबूत बनाना होगा। तभी हम यह आशा कर सकते हैं विशेषकर प्रत्यक्ष कर राजस्व के सदर्भ मे कि इनसे राजस्व प्राप्ति मे वृद्धि होगी।

7 व्यय पक्ष की ओर, गैर योजना व्यय (Non plan expenditure) को नियन्त्रित करने के प्रभावी उपाय खोजने होंगे। इस सम्बन्ध मे कई सुझाव दिए गए हैं—

(क) स्टाफ की वृद्धि और उन पर होने वाले व्यय को कम करना

(ख) व्यक्त एव अव्यक्त दोनो प्रकार के साहाय्यो (Subsidies) को कम करना। 1991 92 के बजट मे डा मनमोहन सिंह ने उर्वरक साहाय्य में 30% की कटौती की परन्तु 1992 93 के दौरान राजनीतिक दबाव के आधीन इस विचार का परित्याग कर दिया।

(ग) उच्चस्तरीय शिक्षा पर अत्यधिक साहाय्य प्राप्त है। इसे कुछ हद तक स्व वित्त प्रबन्धनीय (Self financing) बनाना होगा।

(घ) सिचाई दरों बिजली की दरो, सार्वजनिक परिवहन पर साहाय्यो को कम करना होगा ताकि इनके द्वारा सचालन व्यय (Operating expenses) की वसूली की जा सके।

केन्द्र एव राज्यो के स्तर पर यदि ये सभी उपाय किए जाए तो इनसे आठवीं योजना के दौरान 35 005 करोड रुपये का चालू राजस्व से अतिरेक प्राप्त हो सकता है।

सार्वजनिक उद्यमो के अतिरेक

केन्द्र सरकार के विभागीय एव गैर विभागाय सार्वजनिक उद्यमो द्वारा (अतिरिक्त साधन गतिमान को शामिल करते हुए) 1 44 140 करोड रुपये प्राप्त करने का अनुमान है। केन्द्र सरकार के सार्वजनिक उद्यमो (जिनमे रेलवे भी शामिल हैं) द्वारा आन्तरिक ससाधन जनन के रूप मे 1 07 000 करोड रुपए प्राप्त करने का अनुमान है अथात् सकल देशीय उत्पाद का 3 1 प्रतिशत परन्तु आठवीं योजना मे 1 44 140 करोड रुपये का प्रावधान किया गया है। 37 140 करोड रुपये के शेष भाग की पूर्ति अतिरिक्त संसाधन गतिमान (Additional Resource Mobilisation) के उपायो द्वारा की जाएगी। यदि इन उपायो का प्रयोग प्रशासित कीमतो (Administered prices) को बढाने के लिए किया जाता है तब ये लागत वृद्धि के कारण स्फातिकारी प्रवृत्तियो को बढावा देगे। भूतकाल का अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि सरकार प्रशासित कीमतो को बढाने के सुगम उपाय का प्रयोग क री रही है इसकी बजाए इसे सचालन लागत (Operational cost) को कम करने की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। आठवीं योजना ने सावधान किया है कि लागत वृद्धि को सीमित करना चाहिए, अन्यथा यह स्फीति की ज्वाला को और भडकाएगी।

राज्यीय सार्वजनिक उद्यमो विशेषकर राज्याय सिचाई विभाग राज्यीय बिजली बोर्ड राज्य सडक परिवहन लगातार घाटे वाले उद्यम ही रहे हैं। आठवीं योजना यह आशा करती है कि आर्थिक सुधारो के आरभ करने के परिणामस्वरूप राज्यीय सरकारें भी राज्याय उद्यमो की सचालन व्यवस्था की समीक्षा करेंगी और इन उद्यमो द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओ और आदानो मे साहाय्य (Subsidy) के अश को कम करेंगी। इनके न केवल घाटे ही समाप्त किए जाएगे बल्कि इनसे 4 000 करोड रुपये का मर्यादित लाभ भी प्राप्त किया जाएगा। यह एक कठिन कार्य अवश्य है परन्तु इसके सिवा और कोई चारा भा नहीं।

ससाधन जनन का सबसे महत्त्वपूर्ण उपाय विविध पूजी प्राप्तिया (Miscellaneous Capital Receipts) है जिनमे बाजार उधार, छोटी बचते, पूर्वोपायी कोष और वित्ताय सस्थानो से ऋण शामिल किए जाते हैं। पिछली योजनाओ का अनुभव यह बताता है कि जब कभी भी चालू खाते से अतिरेक या सार्वजनिक उद्यमो के योगदान मे कमी व्यक्त हुई, तो इसकी पूर्ति के लिए या तो अधिक बाजार उधार का प्रयोग किया गया या अधिक न्यून वित्त प्रबन्ध का। अत्यधिक बाजार उधार लेने मे भय यह है कि इसके परिणामस्वरूप ब्याज की राशि व्यय पक्ष की मद बन जाता है जो चालू खाते से अतिरेक को कम कर देती है। 1995 96 के बजट मे ब्याज भुगतान 52,000 करोड रुपये तक पहुच गया है। अधिक उदारीकरण (Liberalisation) के कारण सरकार को बाजार उधार मे निजी क्षेत्र से प्रतिस्पर्द्धा करना होगी। इससे उधार की लागत और बढ जाएगी। जाहिर है कि उधार और विविध पूजी प्राप्तियो मे आठवीं योजना द्वारा निर्धारित सीमाओ को पार नहीं करना चाहिए।

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक पचवर्षीय योजना वित्त प्रबन्ध के अस्फीतिकारी ढाचे का निर्माण करने का प्रण करती है परन्तु राजनीतिक लाबिया, विशेषकर किसान लाबी सरकार को कृषि कराधान के उपाय का प्रयोग करने या कृषि-आदानो (Agricultural inputs) पर साहाय्यो को कम करने से रोक देती हैं इस प्रकार मजदूर

सेवा क्षेत्रों में 0.42 से 0.70 तक कल्पित किए गए हैं। रोजगार-लोच में ये परिवर्तन अत्यन्त अनुचित रूप में अनुकूल जान पड़ते हैं क्योंकि आठवीं योजना में निजी क्षेत्र के लिए अपेक्षाकृत अधिक भाग का परिकल्पन किया गया है जोकि अत्यधिक पूंजी-प्रधान बनता जा रहा है। उदाहरणार्थ, विनिर्माण क्षेत्र *(Manufacturing sector)* को ही लीजिए जिसकी रोजगार लोच आठवीं योजना में दुगुनी हो जाने की प्रत्याशा है। किन्तु सार्वजनिक क्षेत्र में तो संचालन व्यय कम करने के लिए स्टाफ कम करने का भारी अभियान चल रहा है। परिणामतः सार्वजनिक क्षेत्र की रोजगार-लोच बढ़ने की कोई उम्मीद नहीं। विनिर्माण क्षेत्र में रोजगार-वृद्धि सम्बन्धी आंकड़ों से पता चलता है कि 1980-89 के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र में तो रोजगार में 2.78 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि हुई और निजी क्षेत्र में रोजगार-वृद्धि नकारात्मक थी—अर्थात् -0.10 प्रतिशत प्रतिवर्ष। चूंकि निजी क्षेत्र का महत्त्व विनिर्माण क्षेत्र के कुल रोजगार में बहुत अधिक था, इसलिए इस क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि 1980-89 के दौरान केवल 0.68 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही। अतः आठवीं योजना के दौरान इस क्षेत्र से 3.73 प्रतिशत की रोजगार-वृद्धि की आशा करना पूर्णतया अवास्तविक है।

इसी प्रकार 1980-89 के दौरान, परिवहन, संग्रहन एवं संचार में रोजगार की वृद्धि-दर 1.37 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही परन्तु आठवीं योजना इस क्षेत्र से 3.83 प्रतिशत प्रतिवर्ष की कल्पना करती है। सामुदायिक एवं सामाजिक सेवाओं के संदर्भ में भी रोजगार-वृद्धि की दर 1980-89 के दौरान 2.53 प्रतिशत रही, आठवीं योजना में 1992-97 के दौरान इसके 4.19 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो जाने का अनुमान है। कोई जादुई

तालिका 8 : आठवीं योजना (1992-97) में सार्वजनिक क्षेत्र परिव्यय का वितरण

करोड़ रुपये

	आठवीं योजना* (1992-97)		1992-93 से 1996-97**	
	कुल	प्रतिशत	कुल	प्रतिशत
1. कृषि तथा सम्बद्ध कियाएं	22,467	5.2	23,081	4.9
2. ग्राम विकास	34,425	7.9	35,263	7.4
3. विशेष क्षेत्र कार्यक्रम	6,750	1.6	5,837	1.2
4. सिंचाई एवं बाढ़ नियंत्रण	32,525	7.5	23,280	4.9
5. ऊर्जा	1,15,561	26.6	1,30,563	27.5
क. पावर	79,589	18.3	67,755	14.3
ख. पैट्रोलियम	24,000	5.5	49,038	10.3
ग. कोयला एवं लिगनाइट	10,507	2.4	12,009	2.5
घ. अ-पारम्परिक	1,465	0.3	1,741	0.4
6. उद्योग एवं खनिज	46,922	10.8	51,403	10.8
क. ग्राम तथा लघु उद्योग	6,334	1.5	6,228	1.3
ख. अन्य बड़े तथा मध्यम उद्योग	40,588	9.3	45,175	9.5
7. परिवहन	55,926	12.9	69,745	14.7
8. संचार	25,110	5.8	38,383	8.1
9. विज्ञान, तकनालाजी एवं परिवेश	9,042	2.1	6,875	1.5
10. सामाजिक सेवाएं	79,012	18.2	79,505	16.8
11. सामान्य आर्थिक सेवाएं	6,360	1.4	10,186	2.2
कुल	4,34,100	100.0	4,74,121	100.0

*1991-92 की कीमतों पर

**चालू कीमतों पर

स्रोत : योजना आयोग, आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) और आर्थिक समीक्षा (1996-97)

शक्ति ही रोजगार लोच मे ये कल्पित परिवर्तन ला सकती है। अत समग्र अर्थव्यवस्था के लिए रोजगार की 2 6 प्रतिशत की वद्धि दर की कल्पना करना न्यायोचित जान नहीं पडता।

नये आर्थिक सुधारो ने सभी ऐसी शक्तियो को जन्म दिया है जो *रोजगार मे आनुपातिक वद्धि किए बिना उत्पादन* मे वृद्धि लाने पर बल दे रही है। सुयुक्तिकरण (Rationalisation) पुन नियुक्ति पुन प्रशिक्षण और श्रम की छटनी (Retrenchment) के बारे मे बातचीत जो उदारीकरण की नीतियो का परिणाम है रोजगार की वृद्धि दर को काटती जा रही है। इसके साथ साथ तालाबन्दियो (Lockouts) और कारखानाबन्दियो (Closures) की प्रक्रिया के तेजी से बढने *के कारण पिछले कुछ वर्षों मे बडा सगठित क्षेत्र जोकि नयी* आर्थिक नीतियो का मुख्य लाभप्राप्तकर्त्ता रहा है मे रोजगार की वद्धि दर मे शोचनीय गिरावट आयी है। इसमे उम्मीद तो केवल लघु क्षेत्र तथा कषि से थी। किन्तु चूकि आठवीं योजना ने लघु क्षेत्र के लिए केवल 1 प्रतिशत साधन लगाने का प्रावधान किया है आयोजको की रोजगार लक्ष्य के प्रति *उदासीनता का प्रमाण है भले ही योजना मे रोजगार बढाने* सम्बन्धी लम्बी चौडी बाते की गयी है। आठवीं योजना के रोजगार लक्ष्य की समग्र परीक्षा से पता चलता है कि इसका अनुमान अतिशयोक्ति से परिपूर्ण है और वास्तविकता की कसौटी पर खरा नही उतरता।

5 आठवी योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र सम्बन्धी परिव्यय

(Public Sector Outlay in the Eighth Plan)

तालिका 8 मे आठवीं योजना के सार्वजनिक क्षेत्र परिव्यय के आबटन का ब्यौरा दिया गया हे। इससे पता चलता है कि आठवीं योजना मे यह प्रयास किया गया है कि सार्वजनिक क्षेत्र मे ऐसे आबटन ढाचे का प्रस्ताव किया जाए जो कमजोर वर्गों की आय अर्जन क्षमता को उन्नत करता है और सरकार के विकासात्मक व्यय के अपेक्षाकत अधिक भाग की कल्पना करता है। इसीलिए तो आठवीं योजना मे कषि ग्राम विकास और विशेष क्षेत्र कार्यक्रम एव सिचाई के लिए लगभग 22 प्रतिशत व्यय का प्रावधान किया गया है। अन्य मुख्य क्षेत्र जो *अध सरचना सीमा बन्धन (Infrastructure costraint)* को कम करता है ऊर्जा है जिसके लिए कुल योजना व्यय के 27 प्रतिशत की व्यवस्था की गई है। इस बात को ध्यान मे रखते हुए कि उद्योग एव खनिज मे बहुत से क्षेत्र निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए गए है इस क्षेत्र का आबटन अपेक्षाकत निम्न स्तर *पर रखा गया है अर्थात् 10 8 प्रतिशत। परन्तु आबटन ढाचे* का अत्यन्त निराशापूर्ण पहलू यह है कि ग्राम तथा लघु उद्योगो के लिए कुल योजना परिव्यय का केवल 1 प्रतिशत ही रखा गया है। इस बात को ध्यान मे रखते हुए कि आठवीं योजना मे रोजगार जनन को उच्च प्राथमिकता दी गयी है और इस बात को भ दृष्टि मे रखते हुए कि आर्थिक सरचनात्मक पुनर्गठन की नीति के कारण बडे तथा मध्यम *उद्योगो मे श्रम की अधिक मात्रा जज्ब नहीं हो सकेगी बल्कि* इसके विपरीत श्रम की छटनी (Retrenchment) हो सकती है लघु तथा ग्राम उद्योगो को निम्न प्राथमिकता देना वाछनीय नहीं है। आठवीं योजना मे सामाजिक सेवाओ पर 18 प्रतिशत व्यय करने से इस मद मे थोडा सुधार हुआ है जिससे यह विश्वास और बल प्राप्त करता है कि योजना 'मानवीय पूजी (Human capital) को विशेषकर इसमे साक्षरता मे उन्नति लाकर और मजबूत बनाना चाहती है।

6 आठवी योजना के उत्पादन लक्ष्य

आठवी योजना मे मुख्य क्षेत्रो अर्थात् कषि उद्योग और *अध सरचना (Infrastructure) से सम्बन्धित वस्तुओ आदानो* (Inputs) के लक्ष्य नीचे दिए गए हैं—

(i) कृषि उत्पादन—कषि विकास की दृष्टि से आठवीं योजना खाद्यान्नो में निर्यात के लिए अतिरेक कायम करना चाहती है और दालो एव तिलहनो मे आत्मनिर्भरता प्राप्त करना चाहती है। कषि क्षेत्र उत्पादन के सकल मूल्य (*Gross value of output*) की दृष्टि से 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष और सकल मूल्यवद्धि (Value added) की दृष्टि से 3 प्रतिशत प्रतिवर्ष की औसत वृद्धि दर प्राप्त करना चाहता है। विभिन्न फसलो के सम्बन्ध मे लक्ष्य तालिका 9 मे दिए गए है।

तालिका 9 आठवीं योजना मे कषि उत्पादन के लक्ष्य

फसल	इकाई	उत्पादन		उत्पादन की वार्षिक वृद्धि
		1991 92	1996 97	
चावल	लाख टन	725	890	3 95
गेहू		560	660	3 34
मोटे अनाज		300	390	5 40
दालें		140	170	3 96
सभी खाद्यान्न		1 723	2,100	4 01
तिलहन		175	230	5 61
गन्ना		2,350	2,750	3 19
रूई	लाख गट्ठे	105	140	5 92
पटसन एव मेस्ता	लाख गट्ठे	90	95	1 09
दूध	लाख टन	575	700	4 04

आठवीं योजना का मुख्य प्रयास चावल, दालों और तिलहनों के उत्पादन को बढ़ाना है। पहली बार देश ने खाद्यान्नों के निर्यात और दालो एवं तिलहनों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का लक्ष्य तय किया है।

कृषि-उत्पादन में वांछनीय वृद्धि प्राप्त करने की रणनीति के लिए आवश्यक है कि (*i*) शुष्क खेती (*Dry farming*) पर बल दिया जाए क्योंकि कृषि-आधीन क्षेत्र का दो-तिहाई भाग अभी भी सिंचाई-रहित है और प्रधानत: वर्षा पर निर्भर है। (*ii*) हरित क्रांति (Green Revolution) के लाभ देश के अन्य भागों, विशेषकर पूर्वीय क्षेत्र में पहुंचाने होंगे जिसमें पर्याप्त वर्षा होती है और जिसकी मिट्टी उपजाऊ है। (*iii*) कृषि-कुशलता को उन्नत करने के लिए अधिक ध्यान देना होगा ताकि पानी के व्यर्थ-प्रयोग को रोका जा सके और भूमि को क्षति से बचाया जा सके।

(*ii*) औद्योगिक उत्पादन और अधः संरचना विस्तार—खनन और विनिर्माण क्षेत्र का उत्पादन आठवीं योजना के दौरान 8 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ने का अनुमान है। महत्त्वपूर्ण वस्तुओं के उत्पादन के लक्ष्य तालिका 10 में दिए गए हैं—

तालिका 10 से पता चलता है कि बहुत-सी महत्त्वपूर्ण वस्तुओं का देशीय उत्पादन बढ़ाने का गंभीर रूप में प्रयास किया गया है ताकि इन वस्तुओं के आयात को महत्त्वपूर्ण रूप में कम किया जा सके। इस प्रकार के प्रभाव से ही हम आत्मनिर्भरता का लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं और विदेशी मुद्रा की आवश्यकताएं कम कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, 1996-97 तक रूक्ष तेल के आयात को 133 लाख टन तक कम किया गया जबकि यह अब 240 लाख टन है और इसके लिए देशीय उत्पादन को आठवीं योजना के दौरान 500 से 650 लाख टन करना होगा। परन्तु पैट्रोलियम उत्पादों के संदर्भ में चाहे उत्पादन जो 1991-92 में 490 लाख टन से बढ़कर 1196-97 में 620 लाख टन हो जाने की संभावना है, इनके आयात इसी अवधि के दौरान 94 लाख टन बढ़कर 229 लाख टन हो गये। इसका मुख्य कारण इन वस्तुओं की मांग का तीव्र विस्तार है। उर्वरकों के संबंध में भी ऐसी ही परिस्थिति देखने में जान पड़ती है। परन्तु तैयार इस्पात का उत्पादन 228 लाख टन तक बढ़ जाने से लगभग आत्मनिर्भरता प्राप्त हो जाएगी।

भारत में तांबे, जस्ता, अल्युमिनियम और सीसे के उत्पादन की कमी है। उत्पादन में आयोजित वृद्धि के बावजूद इन धातुओं का आयात जारी रखना होगा।

बिजली के उत्पादन में 7 6 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि-दर से बिजली के सभरण की कमी अपेक्षाकृत कम हो जाएगी जो

तालिका 10 : चुनी हुई वस्तुओं का उत्पादन

इकाई	उत्पादन		औसत वार्षिक	वास्तविक उत्पादन		औसत वार्षिक
	1991-92	1996-97	वृद्धि (%)	1991-92	19955-96	वृद्धि (%)
1 कोयला (लाख टन)	2,292	3,080	6 0	2,439	2,920	4 7
2. रूक्ष तेल (लाख टन)	303	500	10.5	304	351	3 6
3 कच्चा लोहा (लाख टन)	565	720	4 9	539	641	4 4
4 चीनी (लाख टन)	120	155	5.2	133	165	5 5
5 कपड़ा (अरब मीटर)	18.3	24 7	6.2	22 6	26 2	3 8
6 पैट्रोलियम उत्पाद (लाख टन)	492	616	4 6	478	545	3 3
7 उर्वरक (लाख टन)	98	128	5.5	99	117	4 2
8 सीमेंट (लाख टन)	530	760	7 4	517	693	7 6
9 तैयार इस्पात (लाख टन)	145	228	9 4	143	214	10 6
10 अल्यूमिनियम (हजार टन)	514.2	656 0	5 0	511.5	518 0	0.3
11 तांबा (संशोधित) (हजार टन)	45.5	55 0	3 9	45 1	45.3	0 3
12 बिजली (अरब किलोवाट घंटे)	311 2	448 0	7 6	315 6	415 2	7 1
13 रेलवे यातायात (लाख टन)	363 8	443 4	4 1	360	424 9	3 0

स्रोत : आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) से संकलित एवं परिकलित

तालिका 11 : सामाजिक विकास के कुछ सूचक

	1991	1996-97
1 जीवन प्रत्याशा पुरुष	57 7	61 1
स्त्री	58 7	61 1
2 शिशु मृत्यु-दर (प्रति 1000 जन्म)	78	68
3 मृत्यु-दर प्रति 1000	10 0	8 7
4 जन्मदर प्रति 1000	28 9	25 7
5 प्रजनन दर प्रति 1000	130 3	113 0
6 साक्षरता दर (%)		
15 से 35 वर्ष	56 0	90 0
7 वर्ष से ऊपर	52 0	75 0
8 खाद्यान्नो का प्रति व्यक्ति उपभोग (किलोग्राम)	182 0	193 6
8 (i) बिना पीने के पानी वाले ग्राम (हजार)	3 0	0
(ii) आंशिक रूप में सुविधा प्राप्त ग्राम (हजार)	150 0	0
9 रोशनी के रूप मे बिजली (घरो का प्रतिशत)		
ग्रामीण	27	50
शहरी	75	80

स्रोत: आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97), खण्ड 1

कि औद्योगिक उत्पादन पर एक मुख्य सीमाबन्धन है। परन्तु चूंकि बिजली की मांग कहीं अधिक तेजी से बढ रही है, मांग और पूर्ति मे कुछ अन्तर तो बना ही रहेगा।

इन सभी समस्याओ के बावजूद आठवीं योजना के दौरान औद्योगिक उत्पादन 8 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ेगा जो यदि एक महत्त्वाकांक्षी लक्ष्य नहीं, तो मर्यादित लक्ष्य भी नहीं कहा जा सकता।

7. सामाजिक विकास के कुछ सूचक (Some Indicators of Social Development)

आठवीं योजना में सामाजिक विकास के सूचकों सम्बन्धी कुछ लक्ष्य तय किए गए है ताकि जीवन की गुणवत्ता में उन्नति हो। (देखिए तालिका 11)

आठवीं योजना में इस बात का उल्लेख किया है कि भारतीय जनसंख्या 1991 की जनगणना के अनुसार 84 4 करोड़ हो गयी है। जनसंख्या की वृद्धि-दर, चाहे अस्सी के दशक में थोड़ी कम है, फिर भी यह लगभग 2 1 प्रतिशत प्रतिवर्ष है जोकि काफी ऊंची है। यदि यह प्रवृत्ति बनी रही, तो सन् 2001 तक भारत की जनसंख्या 100 करोड तक पहुंच जाएगी। आठवीं योजना ने इस कारण साफ शब्दों में लिखा है—"यदि इस प्रवृत्ति को रोका न गया, तो हमारे देश के करोड़ों व्यक्तियों को सामाजिक और आर्थिक न्याय देना संभव नहीं हो सकेगा।" इस वृद्धि को रोकने के लिए जन-आंदोलन कायम करना होगा। सामाजिक कारण-तत्त्व जैसे स्त्री-साक्षरता, विवाह के समय आयु, स्त्रियों के लिए रोजगार के अवसर शिशु मृत्यु-दर मे कमी जन्म-दर के मुख्य निर्धारक है। आठवीं योजना में शिशु मृत्यु-दर 1996-97 तक 78 से कम करके 68 पर लायी जाएगी, साक्षरता दर (Literacy rate) जो 1991-92 में 52 प्रतिशत थी, 1996-97 तक बढ़ाकर 75 प्रतिशत तक ले जायी जाएगी। इसके परिणामस्वरूप यह आशा की जाती है कि जन्मदर जो 1991-92 में 28 9 प्रति हजार थी कम होकर 1996-97 तक 25 7 हो जाएगी और सन् 2006-2007 तक और गिरकर 21 7 हो जाएगी।

साक्षरता (Literacy)

आठवीं योजना में 15 से 35 वर्ष के आयुवर्ग में 100 प्रतिशत साक्षरता सभी राज्यों में प्राप्त की जाएगी। इसके लिए 11 करोड़ वयस्कों (Adults) को साक्षर बनाना होगा। इस उद्देश्य के लिए साक्षरता की दृष्टि से पिछडे राज्यों अर्थात् राजस्थान, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और उड़ीसा मे भरसक प्रयास करना होगा।

पीने का पानी

आठवीं योजना में यह उल्लेख किया गया है कि सातवीं योजना के आरभ मे (1 अप्रैल 1985) मे 1 62 लाख गाँव ऐसे थे जहा पानी का कोई स्रोत नहीं था। इनमे से 1.54 लाख गाँव में पानी का स्रोत उपलब्ध कराया गया। अत केवल 8394 गाँव बिना पानी के स्रोत के शेष रह गए हैं। परन्तु सरकारी मानदण्ड के अनुसार 250 व्यक्तियो की जनसख्या को 1 6 किलोमीटर दूरी के अन्तर्गत पानी का स्रोत उपलब्ध होना चाहिए। यह थोडा कडा मानदण्ड है। इस बात का प्रयास करना चाहिए कि पानी अधिक सुविधाजनक रूप मे उपलब्ध हो सके। इसके अतिरिक्त, पानी की गुणवत्ता (Quality) को भी उन्नत करना चाहिए ताकि "सुरक्षित पीने का पानी" जनता को उपलब्ध हो। अत पीने के पानी की समस्या के समाधान की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए।

कमजोर वर्गों का सरक्षण

आठवीं योजना पिछडे क्षेत्रो और समाज के कमजोर वर्गों की ओर अधिक ध्यान देना चाहती है। पर्याप्त भोजन की उपलब्धि, स्फीति पर नियन्त्रण, सार्वजनिक वितरण प्रणाली का प्रभावी सचालन और ऐसे विकास कार्यक्रम जो अधिक रोजगार-जनन करते है गरीबो की दशा सुधारने की रणनीति का मुख्य अग हैं। इसके अतिरिक्त प्राथमिक शिक्षा में बालिकाओं के नामाकन (Enrolment) ओर इनमे से पढाई छोडने वाली लडकियो की सख्या कम करने की ओर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

आठवीं योजना बहुत से सराहनीय उद्देश्यो से आरभ की गयी है। इसमे उत्पादन एव रोजगार के लक्ष्य का समन्वय किया गया है। इसमे देश के पिछडे क्षेत्रो और कमजोर वर्गों की ओर भी ध्यान देने पर विशेष बल है। किन्तु योजना की सफलता इस बात से आकी जाएगी कि यह किस हद तक रोजगार का विस्तार करती है और कीमत की वृद्धि को नियंत्रित करती है। उत्पादन लक्ष्य महत्त्वपूर्ण है किंतु सामाजिक न्याय भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। आठवीं योजना को यह प्रमाणित करना है कि क्या यह सामाजिक न्याय के साथ विकास को प्रोन्नत कर सकती है।

8. आठवी योजना की प्रगति की समीक्षा

नौवीं पचवर्षीय योजना (*1997 2002*) में आठवीं पचवर्षीय योजना की समग्र प्रगति की समीक्षा करते हुए उल्लेख किया गया 'आठवीं योजना में बाजार कीमतो पर सकल देशीय उत्पाद के रूप मे औसत वृद्धिदर के 6.5 प्रतिशत तक रहने की सभावना है। इसके लिए सकल देशीय उत्पाद का 25 प्रतिशत विनियोग किया गया जिसके परिणामस्वरूप वर्द्धमान पूजी-उत्पाद (Incremental Capital-Output Ratio-ICOR) अनुपात 3 9 रहेगा जोकि आठवीं योजना में परिकल्पित 4 1 के आकडे से महत्त्वपूर्ण रूप मे कम है। *1980 के दशक के दौरान अनुभव किए गए अवशेष की दीर्घावधि के विरुद्ध आठवीं योजना की अवधि* के दौरान देशीय बचत दर महत्त्वपूर्ण रूप मे बढकर सकल देशीय उत्पाद के 24 प्रतिशत तक पहुच गयी जबकि आठवीं योजना के लिए बचत दर का लक्ष्य 21 6 प्रतिशत रखा गया था। यह एक सकारात्मक उपलब्धि है और इसका भावी विकास पर सद्प्रभाव पडेगा। दूसरी ओर, विकास दर मे प्रभावी उन्नति के परिणामस्वरूप समग्र वर्द्धमान पूजी उत्पाद अनुपात मे अधिक तीव्र कमी होनी चाहिए थी विशेषकर कृषि विकास मे वृद्धि के कारण, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। *चिन्ता का मुख्य विषय यह है कि आधारसरचना क्षेत्रो मे से* कुछ एक मे वर्द्धमान पूजी उत्पाद अनुपात मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है।"[1]

अत आठवीं योजना की प्रगति मे छिपी हुई कुछ कमजोरियो की छानबीन करना रुचिकर होगा।

1 सार्वजनिक क्षेत्र के भाग में तीव्र गिरावट—आठवीं योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र के विनियोग के आयोजित 45 2 प्रतिशत भाग के विरुद्ध सार्वजनिक क्षेत्र का विनियोग मे वास्तविक भाग केवल 33 6 प्रतिशत हो गया। अत आठवीं योजना के विनियोग ढाचे मे तीव्र विकृति उत्पन्न हो गयी। नौवीं योजना मे इस सम्बन्ध मे ठीक उल्लेख किया गया

तालिका 12 आठवीं योजना के समग्र-आर्थिक योग

	वास्तविक
1 बाजार कीमतो पर सकल देशीय उत्पाद	6.5%
बाजार कीमतो पर सकल देशीय उत्पाद के प्रतिशत रूप मे	
2 विनियोग दर	25 0%
3 देशीय बचत दर	24 1%
4 चालू खाते का घाटा	0 9%
5 वर्द्धमान पूजी-उत्पाद अनुपात	3 9
6 निर्यात वृद्धि दर (प्रतिशत प्रतिवर्ष)	10 3
7 आयात वृद्धि-दर (प्रतिशत प्रतिवर्ष)	14 1

स्रोत नौवीं पचवर्षीय योजना (*1997-2002*), खण्ड 1

"कुल विनियोग मे सार्वजनिक क्षेत्र के भाग में लगातार कटौती के परिणामस्वरूप अपने विनियोग व्यवहार द्वारा सरकार की अर्थव्यवस्था के ढाचे को सुनिश्चित करने की क्षमता महत्त्वपूर्ण रूप मे समाप्त हो गयी है।"[2] इसकी तुलना मे

1 Planning Commission (1998) *Ninth Five Year Plan (1997-2002), Vol I, p 35.*

2 तत्रैव

छठी योजना (1980 85) के दौरान सरकारी क्षेत्र के विनियोग का भाग 47 8 प्रतिशत था और यह सातवीं योजना (1985-90) मे 45 7 प्रतिशत था।

तालिका 13 कुल विनियोग मे सरकारी क्षेत्र-विनियोग का भाग

प्रतिशत

	आयोजित	वास्तविक
पाचवीं योजना (1974 79)	57 6	43 3
छठी योजना (1980 85)	52 9	47 8
सातवीं योजना (1985 90)	47 8	45 7
आठवीं योजना (1992 97)	45 2	33 6

स्रोत तत्रैव पृ 53

यह बात ध्यान देने योग्य है कि इसके विरुद्ध, सकल देशीय उत्पाद के 25 प्रतिशत के रूप मे कुल विनियोग आठवीं योजना द्वारा निर्धारित 23 प्रतिशत के लक्ष्य से महत्त्वपूर्ण रूप मे अधिक उपलब्धि है। यह बात भी दृष्टि मे रखनी होगी कि सकल देशीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप मे सार्वजनिक विनियोग मे 2 प्रतिशत की गिरावट आयी है और यह 10 4 प्रतिशत से घटकर 8 4 प्रतिशत रह गया है। इसकी 2 प्रतिशत गिरावट का प्रभाव अनानुपातिक रूप मे आधार सरचना—आर्थिक एव सामाजिक दोनों—पर पडा। सकारात्मक पक्ष मे निजी विनियोग को कुछ प्रोत्साहन मिला है और यह 12 6 प्रतिशत के लक्ष्य से बढकर 16 6 प्रतिशत हो गया।'

2 *आठवीं योजना मे वास्तविक विनियोग मे गिरावट*—वास्तविक रूप मे 1996 97 की कीमतो पर 5 00 000 करोड रुपये के आयोजित विनियोग के विरुद्ध, वास्तविक विनियोग 4 62 400 करोड रुपये होगा अर्थात् कुल आयोजित विनियोग का 92 प्रतिशत। दूसरे शब्दों मे वास्तविक विनियोग मे समग्र रूप मे 8 प्रतिशत की कमी रहेगी। तालिका 14 का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से पता चलता है कि कृषि की सबसे अधिक उपेक्षा हुई है और इस क्षेत्र मे वास्तविक विनियोग आयोजित विनियोग का केवल 59 प्रतिशत था। इसी प्रकार विनिर्माण क्षेत्र (अर्थात् उद्योग) मे यह आयोजित विनियोग का 57 प्रतिशत था। इसके पश्चात् वास्तविक विनियोग में तीव्र गिरावट परिवहन (आयोजित विनियोग का 76 प्रतिशत) मे हुई और इसके बाद बिजली और निर्माण का नम्बर आता है। अत आठवीं योजना की मुख्य कमजोरी कृषि तथा आधार सरचना क्षेत्रो के बचाव के लिए पर्याप्त साधन उपलब्ध न कराना थी। इन क्षेत्रो के विरुद्ध, खनन एव खदान और सचार क्षेत्रो मे अपेक्षाकृत अधिक विनियोग का मूल कारण तेल और टेलीसचार क्षेत्रों द्वारा समग्र रूप मे अधिक आन्तरिक संसाधन जुटाना था।

तालिका 14 सार्वजनिक क्षेत्र मे आयोजित और आठवीं योजना के दौरान वास्तविक विनियोग

1996-97 की कीमतो पर हजार करोड़ रुपये

क्षेत्र	आयोजित	वास्तविक	आयोजित का प्रतिशत
1 कृषि	64 9	38 3	59
2 खनन और खदान	40 7	59 5	146
3 विनिर्माण	58 2	33 2	57
4 बिजली आदि	141 6	123 4	87
5 निर्माण	4 4	3 9	89
6 परिवहन	69 6	53 0	76
7 सचार	37 3	43 5	117
8 सेवाए	83 3	107 6	129
कुल	500 0	462 4	92

स्रोत योजना आयोग नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997 2002) खण्ड I पृ 62

3 *आठवीं योजना मे क्षेत्रीय वृद्धि दरे*—*आठवीं* योजना मे प्राप्त क्षेत्रीय वृद्धि दरो का अध्ययन करने से पता चलता है कि चाहे कृषि तथा सम्बन्धित क्षेत्रो मे सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा किया गया वास्तविक विनियोग आयोजित विनियोग का 59 प्रतिशत था कृषि क्षेत्र मे 3 7 प्रतिशत की वृद्धि दर रिकार्ड की गयी जोकि 3 प्रतिशत के लक्षित स्तर से ऊँची थी। यदि अधिक विनियोग द्वारा सिचाई आधीन क्षेत्र का और विस्तार किया जाता और अपेक्षाकृत अधिक क्षेत्र को अधिक उपजाऊ बीजो के आधीन लाया जाता तो कृषि की वृद्धि दर और भी ऊँची हो सकती थी। परन्तु मानसून के पाचो अच्छे वर्ष होने के कारण कृषि की 3 7 प्रतिशत की उच्च वृद्धि दर प्राप्त हो सकी।

किन्तु खनन एव खदान मे 8 1 प्रतिशत के लक्ष्य के विरुद्ध 4 1 प्रतिशत की वृद्धि दर रिकार्ड की गयी और बिजली क्षेत्र मे 8 2 प्रतिशत के लक्ष्य के विरुद्ध 7 6 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त हुई। निर्माण क्षेत्र मे कुछ अभाव अनुभव किया गया। नौवीं योजना के दौरान इन क्षेत्रो में वृद्धि दर की कमी को दूर करना होगा।

अन्य क्षेत्रों मे आठवी योजना द्वारा लक्षित वृद्धि दरे प्राप्त कर ली गयीं। यह बडी संतोषजनक उपलब्धि है कि विनिर्माण

3 तत्रैव पृ 55

तालिका 15 आठवीं योजना मे क्षेत्रीय वृद्धि-दरों का स्वरूप

क्षेत्र	वृद्धि दर (प्रतिशत)	वर्द्धमान पूजी-उत्पाद अनुपात
1 कृषि एव सम्बन्धित क्षेत्र	3 7	2.3
2 खनन एव खदान	4 1	6 3
3 विनिर्माण	9 5	4 7
4 बिजली गैस और पानी	7 6	16.3
5 विनिर्माण	4 4	3 3
6 व्यापार	10 0	0 8
7 रेल परिवहन	2 4	14 0
8 अन्य परिवहन	7.5	7.5
9 सचार	13 9	7.3
10 वित्ताय सेवाए	8 9	0 8
11 सार्वजनिक प्रशासन	4 3	8 1
12 अन्य सेवाए	5.3	6 0
कुल	*6.5*	*3 9*

स्रोत तत्रैव पृ 74

क्षेत्र (Manufacturing sector) मे 9 5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त की गयी जबकि आठवीं योजना द्वारा इस क्षेत्र के लिए 7 5 प्रतिशत का लक्ष्य रखा गया था।

क्षेत्रीय वृद्धि-दरो की समीक्षा करते हुए नौवीं योजना मे उल्लेख किया गया "आठवीं योजना के दौरान सबसे तेज रफ्तार से वृद्धि-दर प्राप्त करने वाला क्षेत्र व्यापार है जिसमे 10 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि-दर से प्रगति हुई। यह बिल्कुल असामान्य स्थिति हे क्योंकि व्यापार क्षेत्र और व्यापार के लिए वस्तुओ का उत्पादन करने वाले क्षेत्रो अर्थात् कृषि खनन और विनिर्माण मे दीर्घकालीन सम्बन्ध लगभग समान वृद्धि दर के रूप मे रहा है। इस घटना चक्र का एक कारण यह हो सकता है कि आर्थिक सुधारो के परिणामस्वरूप लाभ को दरो मे महत्त्वपूर्ण रूप मे वृद्धि हुई है।"[4] यह सत्य ही जान पडता है क्योंकि आठवीं योजना के दौरान थोक कीमत सूचकाक मे 8 8 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि हुई ओर औद्योगिक श्रमिको के उपभोक्ता कीमत सूचकाक मे 9.3 प्रतिशत और कृषि-श्रमिको के उपभोक्ता कीमत सूचकाक मे 9 9 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

4 निर्धनता-अनुपात में गिरावट—नौवीं योजना मे 1996 97 के लिए निर्धनता-अनुपात के प्रक्षेपण (Projections) 1993 94 और इससे पूर्वकाल की प्रवृत्ति के आधार पर तैयार किए गए हैं और आठवीं योजना में 6.5 प्रतिशत की सामान्य वृद्धि दर ओर इसके साथ कृषि मे प्राप्त 3 7 प्रतिशत को वृद्धि के प्रभाव को आका गया है।

तालिका 16 राष्ट्रीय निर्धनता-अनुपात के प्रक्षेपण

प्रतिशत

क्षेत्र	1993 94	1996 97
ग्रामीण	37 3	30.55
नगरीय	32 4	25.58
कुल	36 0	29 18

स्रोत तत्रैव, पृ 35 और 39

"1993 94 और 1996-97 के बीच प्रतिव्यक्ति उपभोग की वृद्धि के परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्र में निर्धनता का *अनुपात घटकर 30.55 प्रतिशत, नगरीय क्षेत्र में 25.28 प्रतिशत* और समग्र देश के लिए 29 18 प्रतिशत हो गया।"[5] निर्धनता-अनुपात में 2 26 प्रतिशत की वार्षिक ओसत वृद्धि-दर देश के लिए अत्यन्त सन्तोष का विषय है क्योंकि 1973 74 और 1993 94 मे निर्धनता अनुपात 54 9% से कम होकर 36 0% हो गई अर्थात् निर्धनता मे कमी की ओसत वार्षिक दर 0 95 प्रतिशत थी।

3 कीमत क्षेत्र मे मिश्रित निष्पादन—कामतो के क्षेत्र मे *अर्थव्यवस्था का निष्पादन मिश्रित* रहा। स्थिरीकरण के उपायों के परिणामस्वरूप थोक कीमत सूचकाक की स्फीति दर (Rate of inflation) जो 1991 92 मे 13 7 प्रतिशत थी गिरकर 1992-93 मे 10 प्रतिशत और 1993 94 मे और गिरकर 8.3 प्रतिशत हो गयी। किन्तु 1994 95 मे स्फीति दर पुन बढकर 10 4 प्रतिशत हो गई। 1995 96 के दौरान स्फीति-दर गिरकर 7 8 प्रतिशत ओर 1996-97 मे 6 4 प्रतिशत के निम्न स्तर पर पहुच गयी। समग्र आठवीं योजना के लिए थोक कीमत सूचकाक की औसत वार्षिक वृद्धि-दर 8 8 प्रतिशत थी। परन्तु उपभोक्ता कीमत सूचकांक जो कि जन-कल्याण का बेहतर सूचक है की ओद्योगिक श्रमिकों के लिए वार्षिक वृद्धि दर 9.3 प्रतिशत ओर कृषि श्रमिको के लिए 9 9 प्रतिशत रही।

4 तत्रैव पृ 75

5 तत्रैव पृ 35

तालिका 17 **कीमतो मे वृद्धि की प्रवृत्ति**

	सातवीं योजना	आठवीं योजना
थोक कीमत सूचकाक	6 6	8 8
औद्योगिक श्रमिको के लिए उपभोक्ता कीमत सूचकाक	7 96	9 3
कषि मजदूरो के लिए उप की सूचकाक	7 49	9 9

5 विदेशी क्षेत्र सम्बन्धी काफी अच्छा निष्पादन— विदेशी क्षेत्र मे अर्थव्यवस्था ने अच्छा निष्पादन दिखाया है। विदेशी मुद्रा रिजर्व जो जुलाई 1991 मे एक दम गिरकर 1 1 अरब यू एस डालर हो गये थे मार्च 1997 तक बढकर 26 4 अरब डालर तक पहुच गए। चालू खाते का घाटा जो सातवीं योजना के दौरान सकल देशीय उत्पाद का औसतन 2 4 प्रतिशत था और 1990 91 मे 3 2 प्रतिशत के उच्च स्तर पर पहुच गया था आठवी योजना के दौरान औसतन 1 24 प्रतिशत रहा। यह योजना के दौरान निर्धारित लक्ष्य के अनुकूल ही था। इस उपलब्धि का एक बडी सीमा तक कारण हमारे निर्यात का यू एस डालरो के रूप मे आठवीं योजना के दौरान 13 1 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि-दर से प्रगति करना था, चाहे इसके विरुद्ध आयात की औसत वृद्धि दर 14 7 प्रतिशत थी। यह बात अत्यन्त निराशाजनक है कि 1996 97 के दौरान निर्यात की वृद्धि दर एकदम गिरकर 4 1 प्रतिशत और आयात की वृद्धि दर 5 1 प्रतिशत हो गयी। 1996 97 मे निर्यात की वृद्धि दर मे तीव्र गिरावट चिन्ता का विषय है।

तालिका 18 **विदेशी ससाधनों को समोने का सामर्थ्य**
सकल देशीय उत्पाद का प्रतिशत

	चालू खाते का घाटा	पूजी अर्न्तप्रवाह	विदेशी विनियोग	विदेशी मुद्रा रिजर्व (महीनो के आयात के रूप मे)
1992 93	1 81	1 79	0 12	4 8
1993 94	0 45	3 76	1 64	10 2
1994 95	1 11	3 01	1 58	8 4
1995 96	1 78	1 42	1 42	6 0
1996 97	1 05	2 97	1 51	6 9
आठवीं योजना की औसत	1 24	2 58	1 32	7 3

स्रोत तत्रैव पृ 92

नौवीं योजना ने भारतीय अर्थव्यवस्था की समग्र उपलब्ध विदेशी ससाधन न समो पाने की सामर्थ्य को रेखांकित किया हैं इसमे उल्लेख किया गया। 'वस्तुत कुल विदेशी पूजी अर्न्तप्रवाहो और चालू खाते के घाटे मे लगातार बना हुआ अन्तर एक काफी सवेदनशील माप है जो अतिरिक्त ससाधन उपलब्धि की मात्रा का सकेत देता है जिसके प्रयोग द्वारा विनियोग दर और वृद्धि दर उन्नत की जा सकती थी। आर्थिक सुधारो के आरभ और विदेशी विनियोग के उदारीकण के पश्चात् ऐसी परिस्थिति योजना काल की पूर्ण अवधि के दौरान लगातार बनी रहो यह देखा जा सकता है (तालिका 18) कि आठवीं योजना के दौरान अर्थव्यवस्था अपने विनियोग योग्य ससाधनो की सपूर्ण उपलब्ध राशि का उत्पादक रूप मे प्रयोग करने मे असमर्थ रही। वास्तव मे विदेशी विनियोग प्रवाह भी पूर्णतया भौतिक ससाधनो (Physical Resources) के रूप मे समोए न जा सके।'[6] अब विदेशी पूजी अर्न्तप्रवाहो को विदेशी मुद्रा रिजर्व बढाने के लिए प्रयुक्त करने की जरूरत नहीं है क्योंकि हमारे पास औसतन सात मास के आयात के लिए पर्याप्त विदेशी मुद्रा भण्डार उपलब्ध हैं। 27 फरवरी 1998 पर भारत के पास 27.36 अरब यू एस डालर का विदेशी मुद्रा रिजर्व उपलब्ध था जोकि 8 मास के आयात के लिए काफी है। आवश्यकता इस बात की है कि विदेशी पूजी अर्न्तप्रवाहो को भौतिक परिसम्पत्तियों मे परिवर्तित किया जाए और पावर, ऊर्जा और सिचाई के रूप मे आधा सरचना (Infrastructure) विकसित की जाए जोकि हमारे विकास पर मुख्य सीमाबन्धन है।

6 बेरोजगारी और अल्परोजगार की समस्या-आठवीं योजना के दौरान अनुभव की गयी उच्च वृद्धि दर का क्या प्रभाव पडा इस का गहन विश्लेषण जरूरी है क्योंकि अन्ततोगत्वा बेरोजगारी और अल्परोजगार की मात्रा गरीबी रेखा के नीचे रहने वाली जनसंख्या का निर्धारण करती हैं।

तालिका 19 **भारत मे रोजगार की वृद्धि दर**

अवधि	रोजगार की वृद्धि दर
1978 83	2 32
1983 94	2 31
1994 97	2 47

स्रोत तत्रैव पृ 204

यह एक अत्यन्त उत्साहवर्धक लक्षण है कि रोजगार की वृद्धि दर जो 1983 94 के दौरान 2 31 प्रतिशत थी 1994 97 के दौरान बढकर 2 47 प्रतिशत हो गयी है चाहे यह अभी

6 तत्रैव पृ 91 92

भी आठवीं योजना के 2.6 प्रतिशत के लक्ष्य से नीची है। परिणामत: खुली बेरोजगारी की मात्रा जो 1993-94 में 2.02 प्रतिशत थी, कम होकर 1996-97 में 1.92 प्रतिशत हो गयी है। वास्तविक समस्या तो अल्परोजगार की है क्योंकि गरीब बेरोजगार रहकर जी ही नहीं सकते और इसलिए वे कुछ न कुछ करना आरंभ कर देते हैं (अंश-कालीन या स्वरोजगार) ताकि वे कुछ तो कमा सकें। मुख्य प्रश्न अल्परोजगार को कम करना है और श्रम की समग्र मांग को बढ़ाना है ताकि अल्परोजगार व्यक्तियों को बेहतर मजदूरी प्राप्त हो सके। दूसरे शब्दों में, रोजगार की गुणवत्ता उन्नत करनी होगी। इसमें सन्देह नहीं कि जहां 1987-88 में अल्परोजगार की मात्रा 14.6 प्रतिशत थी, यह 1993-94 में कम होकर 8.6 प्रतिशत हो गयी। यदि बेरोजगारी और अल्परोजगार के प्रभाव को जोड़कर देखा जाए, तो यह कुल श्रम-शक्ति का 10.45 प्रतिशत था। इस दृष्टि से, चाहे आठवीं योजना के दौरान प्राप्त सफलता अभिनन्दनीय है किन्तु यह पर्याप्त नहीं।

7. आठवीं योजना के दौरान सामाजिक क्षेत्र कल्याण में गिरावट आयी—सामाजिक सेवाओं (शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के कल्याण आदि) का भाग कम होकर 16.7 प्रतिशत हो गया जबकि आठवीं योजना में इसके लिए 18.2 प्रतिशत का प्रावधान था। यह बात अत्यन्त निराशाजनक है कि आयोजक मानवीय संसाधन (Human Resource Development) विकास को उत्पादिता का स्तर उन्नत करने के लिए अनिवार्य तत्व नहीं मानते। नौवीं योजना के दिशा-निर्देश पत्र (Approach paper) में इस बात का निम्न शब्दों में उल्लेख किया गया: "सामाजिक क्षेत्रों अर्थात् शिक्षा, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण, स्त्री एवं बाल विकास, गृह-निर्माण, जल-संभरण और नगरीय विकास जो पूर्ण रूप में अपने योजना-परिव्यय के वित्त प्रबन्ध के लिए बजटीय साधनों पर निर्भर करते हैं, के निष्पादन में व्यय में गिरावट के कारण कमी व्यक्त हुई।"

8. आठवीं योजना के दौरान कृषि उत्पादन में 3.7 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि हुई—जहां तक खाद्यान्न उत्पादन का सम्बन्ध है, यह 1994-95 में बढ़कर 1,915 लाख टन के रिकार्ड स्तर पर पहुंच गया परन्तु 1995-96 में पुन: कम होकर 1,850 लाख टन हो गया किन्तु 1996-97 में यह पुन: फिर तेजी से बढ़कर 1,985 लाख टन पर पहुंच गया। समग्र योजनाकाल के दौरान खाद्यान्न-उत्पादन की वृद्धि-दर 3.37 रही। यह उपलब्धि आठवीं योजना द्वारा निर्धारित 4 प्रतिशत के लक्ष्य से कम है। खाद्यान्न के उत्पादन को 1996-97 तक 2,100 लाख टन तक बढ़ाने में आठवीं योजना विफल हुई। इस निम्न स्तर की उपलब्धि का श्रेय भी लगातार अच्छे आठ मानसून को देना होगा। नौवीं योजना के दिशा-निर्देश पत्र में यह चेतावनी दी गयी है।" भारतीय कृषि मौसम-सम्बन्धी झटकों के कारण दुर्बल बनी हुई है और इस दुर्बलता को दूर करने के लिए सुनिश्चित प्रयास करना होगा। इसकी प्राप्ति के लिए कृषि-विनियोग और उधार की उपलब्धि त्वरित करनी होगी जोकि लगभग अवरुद्ध हो रही है और 1980 के दशक के आरंभ के पश्चात् केवल 2.8 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से वास्तविक रूप में बढ़ी है। सार्वजनिक विनियोग, विशेषकर सिंचाई में विनियोग में तेजी से गिरावट आयी है।"

कृषि-उत्पादन, विशेषकर खाद्यान्नों के उत्पादन-की मन्द वृद्धि का एक अत्यन्त गंभीर प्रभाव यह हुआ है कि आठवीं योजना के दौरान खाद्यान्नों की कीमतों में तीव्र वृद्धि हुई। इसके साथ-साथ वसूली कीमतों में 13 से 14 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई। खाद्यान्नों की कीमतों और वसूली की कीमतों में वृद्धि से व्यापारार्थ (Terms of trade) कृषि के पक्ष में उन्नत होने में सहायता मिली है परन्तु इससे केवल बड़े किसानों को लाभ हुआ है। इसके साथ ही इसका गरीब वर्गों के जीवन-स्तर पर दुष्प्रभाव पड़ा हैं, विशेषकर भूमिहीन मजदूरों पर जो अन्न के शुद्ध क्रेता है। खाद्यान्नों की कीमतों में वृद्धि गंभीर चिन्ता का विषय है क्योंकि इसका जनकल्याण पर दुष्प्रभाव ही पड़ता है।

9. आठवीं योजना में बुनियादी आधार-संरचना सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए पर्याप्त साधन नहीं जुटाए गए-यह बात अत्यन्त निराशाजनक है कि आठवीं योजना न केवल लक्ष्यों को ही पूरा नहीं कर पायी, बल्कि इन क्षेत्रों में इसकी उपलब्धि सातवीं योजना से भी कम है।

आधार-संरचना की मन्द वृद्धि का मुख्य कारण निजी क्षेत्र और विदेशी विनियोग पर अधिक निर्भरता थी। वास्तव में, पैट्रोलियम और टेली संचार से अधिक विनियोग साधन मिले क्योंकि ये क्षेत्र अधिक आन्तरिक साधन भी जुटा पाए और वे विदेशी विनियोग भी आकर्षित कर पाए, परन्तु निजी क्षेत्र भारतीय या विदेशी ने आगे बढ़कर पर्याप्त मात्रा में इन क्षेत्रों में नया विनियोग करने की कोशिश नहीं की। बजट-घाटे को सीमित करने के लिए सरकार ने इन क्षेत्रों को बजट-समर्थन (Budgetary support) कम कर दिया। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि सरकार का पूंजी व्यय जो आठवीं योजना के आरंभ में कुल व्यय का 30 प्रतिशत था, कम होकर 24 प्रतिशत रह गया। पावर, परिवहन और सिंचाई में सरकारी विनियोग के धीमा हो जाने और इस रिक्ति को पाटने के लिए निजी क्षेत्र भारतीय और विदेशी दोनों के द्वारा ही विनियोज्य-साधन न जुटाने के कारण इन क्षेत्रों में निष्पादन

का स्तर नीचा रहा। सरकार ने आधार सरचना क्षेत्र मे अपनी विफलता स्वीकार कर ली है। जरूरत इस बात की है कि सार्वजनिक क्षेत्र आधार सरचना मे अधिक विनियोग की व्यवस्था करे क्योकि निजी क्षेत्र इन क्षेत्रो मे विनियोग करने मे प्रेरित नहीं हुआ है।

तालिका 20 **आधार सरचना का निष्पादन**

	सातवीं योजना	आठवीं योजना
1 सिचाई क्षमता (लाख हैक्टेयर)	113	106
2 राष्ट्रीय राजमार्ग (किलोमीटर)	1760	609
3 पावर जनन क्षमता	21401	17677

निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि आठवीं योजना मे सकल देशीय उत्पाद के 6 5 प्रतिशत तक की औसत वृद्धि-दर की प्राप्ति एक अभिनन्दनीय लक्षण हैं। यह बात भी उत्साहवर्धक है कि कृषि-वृद्धि-दर 3 7 प्रतिशत के स्तर पर पहुच गयी। यह बात भी सराहनीय है कि चालू खाते पर भुगतान शेष आठवीं योजना के दौरान सकल देशीय उत्पाद के औसतन 1 24 प्रतिशत तक ही सीमित रहा। 1996 97 मे निर्धनता अनुपात गिरकर 29 2 प्रतिशत हो गया जिसका मुख्य कारण उच्च वृद्धि-दर भी। यह भी एक सराहनीय उपलब्धि है।

किन्तु कुछ चिन्ता के विषय भी हैं सार्वजनिक क्षेत्र मे एकदम और तीव्र गति से वास्तविक विनियोग मे गिरावट हुई और यह 33 6 प्रतिशत के निम्न स्तर पर पहुच गया जिसके परिणामस्वरूप आधार सरचना क्षेत्र और सामाजिक क्षेत्र मे विनियोग कम कर दिया गया। चाहे यह परिकल्पना की गयी कि इस रिक्ति को निजी क्षेत्र के विनियोग द्वारा पूरा किया जाएगा किन्तु यह सभव नहीं हो सका। परन्तु सरकार ने पावर, ऊर्जा और सिचाई के आधार सरचना क्षेत्र से अपने हाथ खीच लिए। इससे आधार सरचना की वृद्धि दर मन्द पड गयी और यह हमारे विकास का सीमाबन्धन बन गया। गैर योजना व्यय पर बढते हुए दबाव ने भी योजना व्यय मे कुछ हद कटौती करने के लिए सरकार को मजबूर कर दिया। इसे साथ साथ सामाजिक क्षेत्र पर व्यय मे भी कटौती की गयी। इसके अतिरिक्त कृषि विनिर्माण बिजली और निर्माण मे वास्तविक योजना व्यय आयोजित योजना व्यय का 57 से 89 प्रतिशत था। इस कटौती का इन क्षेत्रो की वृद्धि दरो पर प्रतिकूल प्रभाव पडा। अन्तिम चाहे थोक कीमत सूचकाक मे गिरावट व्यक्त हुई किन्तु उपभोक्ता कीमत सूचकाक की वृद्धि दर 9 से 10 प्रतिशत के बाच रही। इसमे सन्देह नहीं कि रोजगार की वृद्धि-दर 1994-97 मे 2 47 प्रतिशत के स्तर पर पहुच गयी परन्तु यह 2 6 प्रतिशत के योजना लक्ष्य से नीचे थी। यदि बेरोजगारी और अल्परोजगार के प्रभाव को जोडकर देखा जाए, तो इसका आपात कुल श्रम-शक्ति का 10 45 प्रतिशत है। इस कारण रोजगार के क्षेत्र मे उपलब्धि अभी लक्ष्य से बहुत पीछे है। आठवीं योजना की इन कमजोरियो को नौवी योजना मे दूर करने का प्रयास करना होगा।

10 आठवीं योजना के वित्त-प्रबन्ध की समीक्षा-भारत मे आयोजन प्रक्रिया मे देश के आर्थिक विकास मे केन्द्र और राज्यो का साझा प्रयास अन्तर्निहित है। योजना का आकार तय करने के पश्चात् केन्द्र और राज्य योजना वित्त प्रबन्ध के वित्तीय ढाचे के बारे मे सहमति कर लेते हैं। इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने की आवश्यकता है कि जैसे-जेसे योजना कार्यान्वित की जाती है योजना वित्त प्रबन्ध के मोलिक ढाचे और वास्तविक ढाचे मे विकृतियां उत्पन्न हो जाती हे। योजना की गुणवत्ता की परीक्षा इस बात से की जानी चाहिए कि इन विकृतियो की मात्रा कितनी है। इसमे सन्देह नहीं कि कार्यान्वयन की प्रक्रिया मे कुछ विकृतिया तो पैदा होनी स्वाभाविक ह परन्तु यदि विकृतियो की मात्रा इतनी बढ जाए कि उसके परिणामस्वरूप वित्त-प्रबन्ध का मोलिक ढाचा अस्त-व्यस्त हो जाए, तो यह चिन्ता का विपय हे आर उन कारणतत्वो की जाच करनी होगी जो इसके लिए जिम्मेदार ह। इस उद्देश्य से योजना के वास्तविक वित्तीय ढाचे का परीक्षण किया गया है जो आठवीं योजना के पाच वर्षों (1992-93 से 1996 97) के दौरान उभरा और इसकी तुलना योजना मे कल्पित मौलिक ढाचे से की गयी हे। वित्त-प्रबन्ध के ढाचे के इस तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि जहा मोलिक योजना मे चालू राजस्व से अतिरेक के रूप मे 8 1 प्रतिशत के अतिरेक का प्रावधान किया गया किन्तु वास्तविक रूप मे इसमे 10 3 प्रतिशत का नकारात्मक योगदान हुआ। चालू राजस्व मे अतिरेक (Balance from current revenue) जिसमे अतिरिक्त साधन गतिमान करने के उपाय भी शामिल ह मोलिक और वास्तविक उपलब्धि मे 19 4 प्रतिशत का घाटा एक गभीर चिन्ता का विषय है जिसके परिणामस्वरूप किसी अन्य मद द्वारा साधन गतिमान करने होंगे। (देखिए तालिका 6)

मौलिक योजना मे सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो (public sector enterprises) से 34 1 प्रतिशत साधन जुटाने का निश्चय किया गया परन्तु वास्तविक योगदान लगभग 34 3 प्रतिशत रहा। अत यह लक्ष्य प्राप्त कर लिया गया।

चालू राजस्व के घाटे की पूर्ति के लिए उधार एव अन्य विविध पूजी प्राप्तियो (Miscellaneous capital receipts)

का और अधिक प्रयोग करना पडा। इस मद मे कल्पित 46 6 प्रतिशत की अपेक्षा 62 5 प्रतिशत साधन एव पूजी प्राप्तियों से जुटाए गए। यह बात ध्यान देने योग्य है कि आयोजकों ने बार बार यह चेतावनी दी है कि इस मार्ग को अपनाने से ब्याज के भुगतान के रूप मे अधिक भार पडेगा परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इस चेतावनी की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया और घाटे को पाटने के लिए उधार के उपाय का अधिकाधिक प्रयोग किया जा रहा है। यह एक खतरनाक प्रवृत्ति है।

चाहे आयोजक विदेशी पूजी के शुद्ध अन्तर्प्रवाह से 28 700 करोड रुपये प्राप्त करने चाहते थे वे इस उद्देश्य में विफल हुए और केवल 19 234 करोड रुपये ही प्राप्त कर पाए। अत इस मद से 6 6 प्रतिशत ससाधन के प्रावधान के विरुद्ध वास्तविक उपलब्धि केवल 5 प्रतिशत ही हुई। अत इस प्रकार इस मद मे 1 6 प्रतिशत की कमी रही। इसका मुख्य कारण यह था कि भुगतान का अनुपात जो योजना के आरंभिक वर्ष मे कुल विदेशी उधार का 45 प्रतिशत था बढकर आठवीं योजना के अन्तिम वर्ष मे लगभग 73 प्रतिशत हो गया। आठवीं योजना के दौरान रुपये के मूल्यह्रास (Depreciation) ने भी इस तीव्र गिरावट मे योगदान दिया। इन कारणतत्वों के परिणामस्वरूप कुल उधार मे से भूतकालीन उधार से सम्बन्धित उधार के मूलधन एव ब्याज के भुगतान का प्रावधान करने और रुपये कि विदेशी विनिमय दर मे गिरावट के लिए समायोजन के पश्चात शुद्ध उधार (Net external borrowing) का भाग घटता चला गया। इसी प्रकार घाटे के वित्त प्रबन्ध (Deficit financing) की मात्रा मौलिक योजना में कल्पित 4 6 प्रतिशत से बढाकर वास्तव मे 8 6 प्रतिशत कर ली गयी। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि जहा मौलिक योजना मे केन्द्र से राज्यो को 18 1 प्रतिशत साधन हस्तातरित करने का निर्णय किया गया, वहां वास्तव मे राज्यों को 19 5 प्रतिशत साधन हस्तातरित किए गए।

आठवीं योजना के परिव्यय के प्रक्षेपित वित्त प्रबन्ध के लिए 1991 92 की कीमतो पर 434 100 करोड रुपये जुटाने के लिए चालू राजस्व से अतिरेक (Balance from current revenues) के रूप मे 8 1 प्रतिशत सार्वजनिक उद्यमो के योगदान से 34 1 प्रतिशत ओर उधार एव विविध पूजी प्राप्तियो (Miscellaneous capital receipts) से 46 6 प्रतिशत का प्रावधान किया गया। दूसरे शब्दो मे वास्तविक देशीय ससाधनों से लगभग 89 प्रतिशत और शेष 11 प्रतिशत के लिए विदेशो से पूजी अन्तप्रवाह (Capital inflow) से 6 6 प्रतिशत और न्यून वित्त प्रबन्ध से 4 4 प्रतिशत की व्यवस्था की गयी। परन्तु वास्तविक उपलब्धि की समीक्षा करने से पता चलता है कि प्रक्षेपित ढाचे (Projected pattern) और वास्तविक रूप मे प्राप्त राशियो मे भारी अन्तर पाए गए।

चालू राजस्व से अतिरेक

जबकि आठवीं योजना मे चालू राजस्व से अतिरेक के रूप मे 35 005 करोड रुपये की प्राप्ति का अनुमान लगाया गया वास्तव मे इस मद मे 39 563 करोड रुपये का घाटा व्यक्त हुआ। सापेक्ष रूप मे इस मद मे 8 1 प्रतिशत का अतिरेक प्राप्त करने की अपेक्षा 10 3 प्रतिशत का घाटा व्यक्त हुआ। दूसरे शब्दो मे इस मद मे 18 4 प्रतिशत की कमी हुई।

नौवीं योजना के अनुसार 'केन्द्र के चालू राजस्व से *अतिरेक में गिरावट के दो मुख्य कारण थे* (i) अप्रत्यक्ष कर राजस्व (Indirect tax revenue) मे गिरावट और (ii) बढता हुआ ब्याज का भार। भारतीय उद्योग को अपनी उत्पादन लागत कम करने मे सहायता देने के लिए आयात शुल्क (Import duties) प्रतियोगिता का सामना कर सके। अत सीमा शुल्को से राजस्व की मात्रा जो 1992 93 मे सकल देशीय उत्पाद का 3.4 प्रतिशत थी घटकर 1993 94 मे 2 7 प्रतिशत हो गयी। किन्तु आयात वृद्धि ने सीमा शुल्को से प्राप्त राजस्व मे गिरावट की प्रवृति को पलट दिया और 1993 94 मे 2 7 प्रतिशत की अपेक्षा 1996 97 मे सकल देशीय उत्पाद के 3 5 प्रतिशत के स्तर पर पहुच गया जो 1992 93 मे वर्तमान स्तर से थोडा अधिक था।" दूसरे, जन उपभोग की वस्तुओ अर्थात श्वेत वस्तुओ (White goods) स्वचालित गाडियो ओर संश्लिष्ट तन्तुओ की दरो मे भी कमी की गयी। लघु स्तर क्षेत्र के लिए उत्पादन शुल्क से छूट जारी रखी गयी। इन छूटो के कारण बहुत से छिद्र उत्पन्न हो गये। इन सभी उपायों का शुद्ध प्रभाव यह हुआ कि उत्पादन शुल्क से राजस्व जो 1992 93 मे सकल देशीय उत्पाद का 4 4 प्रतिशत था गिरकर 1996 97 मे 3 7 प्रतिशत हो गया। चाहे सरकार ने प्रत्यक्ष करो से अधिक कर परिपालन (Tax compliance) द्वारा राजस्व बढाने का प्रयास किया परन्तु सकल देशीय उत्पाद के अनुपात के रूप मे प्रत्यक्ष करो की मात्रा जो 1992 93 मे 2 6 प्रतिशत थी 1996 97 तक बढकर 3 1 प्रतिशत हो गयी। किन्तु प्रत्यक्ष कर राजस्व मे यह उन्नति आयात ओर उत्पादन शुल्कों मे की गयी कमी के समूचे प्रभाव की क्षतिपूर्ति करने के लिए काफी नहीं थी।

इसके विरुद्ध, केन्द्र सरकार का गैर योजना व्यय (Non plan expenditure) लगातार बढता ही गया चाहे कुछ मदो मे कमी व्यक्त हुई। उदाहरणार्थ, गैर योजना राजस्व व्यय (Revenue expenditure) के अनुपात के रूप मे अर्थसाहाय्य

7 तत्रैव प 116

(Subsidies) 18 2 प्रतिशत से कम होकर 13 2 प्रतिशत हो गए। परन्तु ब्याज भुगतान का भार 39 6 प्रतिशत से बढकर 46 2 प्रतिशत हो गया। इसका मुख्य कारण सरकारी उधार मे भारी वृद्धि था। इसके अतिरिक्त चूंकि बाजार उधार (Mar ket borrowings) पर अधिक ब्याज दर अदा करनी पडी है इसलिए इस कारण भी ब्याज भार बढ गया। इस सभी कारणो का कुल रूप मे यह प्रभाव हुआ कि चालू राजस्व से 8 1 प्रतिशत का अतिरेक प्राप्त होने की अपेक्षा इस मद पर 10 3 प्रतिशत का घाटा व्यक्त हुआ।

राज्यों के चालू राजस्व का अतिरेक 12 985 रुपये तक सकारात्मक होने की अपेक्षा आठवीं योजना के दौरान (-) 2 009 करोड रुपये हो गया। इसका मुख्य कारण राज्य सरकारो द्वारा राजस्व सग्रहन (Revenue collection) मे 30 000 करोड रुपये की गिरावट थी। इसके अतिरिक्त छोटी बचतो के विरुद्ध प्राप्त ऋणो पर आठवीं योजना के दौरान ब्याज दर 14 5 से 15 प्रतिशत थी। इसी प्रकार योजना एव गैर योजना ऋण ऊची ब्याज दर पर प्राप्त किए गए। परिणामत ब्याज का भार जो 1991-92 मे 10 944 करोड रुपये था बढकर 1996 97 (बजट-अनुमान) मे 26 298 करोड रुपये हो गया।

सार्वजनिक उद्यमो के साधन

आठवीं योजना के लिए 1991 92 की कीमतो पर केन्द्र सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो का योगदान 1 44 140 करोड रुपये आका गया। इनसे 1 34 172 करोड रुपये की प्राप्ति की प्रत्याशा है जिसका अर्थ है 9 968 करोड रुपये की कमी। मुद्रा/पूजी बाजार मे वर्तमान प्रतिकूल परिस्थितियो के कारण केन्द्रीय सरकार के उद्यमो द्वारा बाडो के माध्यम से पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं किए जा सके। इसी प्रकार इन उद्यमो द्वारा अपने उत्पादो की कीमतो की लागत की तुलना मे न बढा पाने के कारण भी इनके निष्पादन पर बुरा प्रभाव पडा।

जहा तक राज्य स्तर के सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो का प्रश्न है इनके द्वारा 4 000 करोड रुपये के प्रक्षेपित योगदान की अपेक्षा 2 723 करोड रुपये का घाटा हुआ। इस प्रकार इस मद से कुल रूप मे 6 723 करोड रुपये हानि हुई। इसका मुख्य कारण राज्य बिजली बोर्डों का घटिया निष्पादन था क्योंकि वे अपने घरेलू और कृषि-उपभोक्ताओ की टैरिफ-दर (Tariff rate) बढाना नहीं चाहते थे। चाहे इन पर यह कानूनी दायित्व है कि वे 3 प्रतिशत प्रत्यायदर प्राप्त करे, परन्तु इनमे से अधिकतर ने इस कानूनी दायित्व का पालन नहीं किया। जब तक टैरिफ दरो को सशोधित नहीं किया जाता और बिजली की चोरी को रोका नही जाता तब तक राज्य बिजली बोर्डों के वाणिज्यिक घाटो की प्रवृत्ति को पलटने की कोई उम्मीद दिखाई नहीं देगी।

इस परिस्थिति को सुधारने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो को अपने कामकाज मे अधिक स्वायत्तता प्रदान करे और इन्हे बेहतर प्रत्याय (Returns) देने के लिए मजबूर करे। केन्द्र सरकार के उद्यमो को बोध ज्ञापन (Memorandum of understanding) के माध्यम से कुछ स्वायत्तता देने के परिणामस्वरूप उनका निष्पादन उन्नत हुआ है और उन्होंने 1995-96 मे प्रयुक्त पूजी पर 16 1 प्रतिशत सकल लाभ (Gross profit) प्राप्त किया यह प्रवृत्ति उत्साहवर्धक है और इसे और मजबूत बनाना चाहिए।

केन्द्र सरकार ने 26 अप्रैल 1998 को एक अध्यादेश जारी करके केन्द्रीय बिजली नियमन आयोग (Central Elec tricity Regulatary Authority) की स्थापना की ताकि आगामी तीन महीनो मे बिजली की दरे सशोधित की जाए ताकि बिजली की सभरण लागत (Supply cost) पर प्राप्त अर्थसाहाय्य (Subsidy) 50 प्रतिशत से अधिक न हो। अत बिजली-दर द्वारा लागत की कम-से कम 50 प्रतिशत वसूली की जाएगी। कृषि-उपभोक्ताओ के लिए बिजली की दरे अगले तीन वर्षो मे क्रमिक रूप से बढायी जाएगी ताकि वे अन्य क्षेत्रों के बराबर लायी जा सके। चाहे अध्यादेश मे घरेलू उपभोक्ताओ और कृषि उपभोक्ताओ के लिए बिजली की दरे सशोधित करने का सकेत है परन्तु इसमे बिजली की चोरी की समस्या की अनदेखी की गयी है जोकि भयकर रूप धारण कर चुकी है। विभिन्न राज्यो मे इसके कारण 10 से 50 प्रतिशत की हानि होती है।

बाजार उधार और विविध पूजी प्राप्तिया

तीसरा मुख्य ससाधन उधार एव विविध पूजी प्राप्तिया हैं। इनमे बहुत सी मदे शामिल हे जैसे दीर्घकालीन और मध्यकालीन ऋण बाजार ऋण छोटी बचते भविष्य निधिया वित्तीय सस्थानो या निगमो से प्राप्त होने वाले सर्वाधिक ऋण (Term loans) और विविध पूजी प्राप्तिया।

आठवीं योजना मे इस मद से 46 6 प्रतिशत साधन जुटाने का प्रावधान किया गया—27 1 प्रतिशत केन्द्र से और 19 5 प्रतिशत राज्यो से। जबकि राज्यीय सरकारो ने इस सम्बन्ध मे काफी सावधानी का परिचय दिया और इस स्रोत से 19 5 प्रतिशत साधन जुटाए, केन्द्र सरकार ने इसमे बहुत ही लापरवाही दिखायी और 27 प्रतिशत के प्रावधान के विरुद्ध 23 प्रतिशत साधन जुटाए। इसका कारण केन्द्र मे

8 तत्रैव पृ 166

विद्यमान राजनीति अस्थिरता थी जिसने केन्द्र सरकार को राजस्व बढाने के लिए कर और कर भिन्न उपायों का प्रयोग करने नहीं दिया। इस प्रकार न ही तो कर जाल के आधीन अधिक व्यक्ति/फर्में लायी गयीं और न ही कानूनी अथवा गैर कानूनी उपायो का प्रयोग कर-वचन करने वालो से अधिक मात्रा मे कर वसूल किया गया। चूँकि उधार और विविध पूजी-प्राप्तियों से सरकार पर ब्याज का भार बढ गया है योजना आयोग ने सरकार को इस उपाय के अधिक प्रयोग के बारे मे कई बार सलाह दी परन्तु सरकार ने इन चेतावनियो की अनदेखी की। परिणामत 1997-98 के बजट में ब्याज का भार (Interest burden) बढकर 68 000 करोड रुपये हो गया।

योजना के वित्त-प्रबन्ध सम्बन्धी कल्पित मौलिक ढाचे और जो योजना का वास्तविक वित्तीय ढाचा उभरा उससे साफ सकेत मिलता है कि आठवीं योजना के मौलिक ढाचे में गभीर विकृतिया उत्पन्न हो गयी और आठवीं योजना का मौलिक ढाचा अर्थहीन प्रतीत होता है। यह कहना उचित होगा कि वित्तीय ढाचा अस्त व्यस्त हो गया है। प्रत्येक योजना गैर-स्फीतिकारी ढाचे के (Non inflationary) विकास की बात करती है परन्तु इसे वास्तविक रूप देने मे विफल हो जाती है। योजना के निर्माण की प्रक्रिया मे केन्द्र और राज्यीय सरकारे भाग लेती हैं। प्रत्येक राज्य योजना आयोग के सामने अपने राज्य की आवश्यकताओ को पेश करता है और योजना का आकार राज्यो के साथ परामर्श करके तय किया जाता है। योजना का प्रलेख राष्ट्रीय विकास परिषद की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है और मुख्यमंत्रियो और प्रधानमत्री की सहमति के पश्चात् स्वीकृत किया जाता है। परन्तु जब इसके कार्यान्वयन और कठोर निर्णय करने की जरूरत पडती है तो सरकार के पाव ठण्डे पड जाते हैं और वे न्यूनतम विरोध का मार्ग अपनाती है। प्रत्येक योजना में यही कहानी दोहरायी जाती है। सातवीं योजना ने खेद प्रकट किया "प्रत्याशा के विपरीत कि आर्थिक विकास के साथ प्रत्यक्ष करों का अप्रत्यक्ष करो की तुलना मे अनुपात बढेगा, प्रत्यक्ष करो के घटिया निष्पादन के कारण सरकार अप्रत्यक्ष करों पर अधिकाधिक निर्भर होने के लिए मजबूर हो गयी है जिनकी मात्रा 1975 76 मे चालू कीमतो पर सकल देशीय उत्पाद के 11 7 प्रतिशत से बढकर 1984 85 में 14 प्रतिशत हो गयी जबकि प्रत्यक्ष करो का अनुपात इसी अवधि के दौरान 3 4 प्रतिशत से कम होकर 2 3 प्रतिशत हो गया।' अत आयोजको ने सुझाव दिया कि कर प्रणाली का पुनर्गठन अनिवार्य हो गया है ताकि कर ढाचे को अप्रत्यक्ष करो पर और अधिक निर्भर न होना पडे। चाहे सिद्धान्त रूप मे सरकार योजना आयोग के इस विचार से सहमत दिखायी पडती है परन्तु व्यवहार में वह इसका परित्याग कर देती है। यहा व्यावहारिकता का अर्थ विभिन्न लाबियो को तुष्ट करना है जैसे किसान-लाबी मध्यम वर्ग की लाबी व्यापार और उद्योगपतियो की लाबी। इन वर्गों को तुष्ट करने की केन्द्र की नीति के कारण सरकार कुछ करो की दरें तो बढा देती है परन्तु साथ ही इसमे कई प्रकार की रियायतो और छूटो का प्रावधान कर देती है। इस कारण शून्य कर देने वाली कम्पनियो (Zero tax companies) की श्रेणी कायम हो गयी है। चाहे प्रत्येक सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो की स्वायत्तता का वचन देती है परन्तु वास्तव में ये उद्यम राजनीतिज्ञो और सरकारी अफसरो की कालोनिया समझे जाते हैं। इस प्रकार सार्वजनिक उद्यमो के साथ बोध ज्ञापन (Memorandum of under standing) के रूप मे स्वायत्तता (Antonomy) प्रदान करने की सधि पर हस्ताक्षर तो कर दिए जाते हैं किन्तु इससे ऐच्छित लक्ष्य प्राप्त नहीं होते। केन्द्र सरकार जिसके पास भारत के संविधान के अनुसार वास्तव मे शक्ति प्राप्त है इसमे अग्रभागी भाग अदा कर सकती है। सशक्त केन्द्र और सक्षत राज्य जोकि आर्थिक सघवाद (Economic federalism) की धारणा का आधार है तभी मजबूत बन सकते है यदि दोनो उन मामलो पर सही ढग से अमल करने का प्रयत्न करे जिनमे सहमत प्राप्त हो चुका है केन्द्र सरकार राज्यीय सरकारो की तुलना में योजना वित्त प्रबन्धन के ढाचे मे विकृतियो के लिए अधिक जिम्मेदार है। अत केन्द्र के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वह पहले स्वय राजकोषीय अनुशासन (Fiscal discipline) का पालन करे। तभी उसे राज्यो को इस अनुशासन का पालन करने के लिए बाध्य करने के बारे मे नैतिक मनोबल प्राप्त हो सका। इसलिए अनिवार्य कि आठवीं योजना के अनुभव से सबक सीखा जाए ताकि नौंवी योजना के वित्तीय ढाचे को व्यावहारिकता की आड मे अस्त-व्यस्त होने से बचाया जा सके।

□□□

16

आयोजन के 50 वर्षों की समीक्षा

(REVIEW OF 50 YEARS OF PLANNING)

1 आयोजन की उपलब्धिया एव विफलताए (Achievements and Failures of Planning)

भारत मे आयोजन को आरभ हुए लगभग 50 वर्ष पूरे हो चुके है। अत यह रुचिकर होगा कि आयोजन के इस समग्रकाल की समीक्षा की जाए ताकि इसकी उपलब्धियो एव विफलताओ सम्बन्धी जानकारी प्राप्त हो सके।

आयोजन की उपलब्धिया (Achievements of Planning)

पिछले तीन दशको की उपलब्धियो की समीक्षा करते हुए छठी योजना ने यह उल्लेख किया यह राष्ट्रीय गर्व का उचित कारण है कि एक अवरुद्ध एव दूसरो पर निर्भर अर्थव्यवस्था को इस अवधि मे आधुनिक तथा और अधिक आत्मनिर्भर बना दिया गया है। जनसख्या की वृद्धि के बावजूद प्रति व्यक्ति आय की एक सामान्य वृद्धि दर कायम रखी गयी है। दूसरी ओर बेरोजगार और अल्प रोजगार व्यक्तियो की सख्या बहुत अधिक है और जनसख्या के 40 प्रतिशत से भी अधिक लोग गरीबी के स्तर के नीचे रह रहे हैं। [1] उक्त कथन मे विभिन्न योजनाओ के दौरान मूल तथा भारी उद्योगो को विकसित करने के लिए अपनायी गयी नीतियो का परिणाम दिया गया है। चाहे साथ ही कृषि उपभोग वस्तुओ कुटीर तथा लघु उद्योगो को विकसित करने के प्रयास किए गए किन्तु कृषि में अधिक विकास दर प्रोन्नत करने मे इनका प्रभाव पर्याप्त न था। न ही इनके द्वारा पर्याप्त मात्रा मे अनिवार्य उपभोग वस्तुओ के उत्पादन को बढाया जा सका और न ही रोजगार के विस्तार के पर्याप्त अवसर कायम किए जा सके।

प्रोफेसर डी टी लकडा वाला ने 40 वर्षों की प्रगति की समीक्षा करते हुए उल्लेख किया कई क्षेत्रो मे भारत की आर्थिक प्रगति सतोषजनक रही है—आर्थिक विकास की दर बढी है और इसमे विविधता आयी है बचत और विनियोग मे वृद्धि हुई है खाद्यान्न उत्पाद मे आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली गयी है कृषि के ढाचे मे काफी परिवर्तन हुआ है उच्चस्तर की कुशल मानव शक्ति के प्रशिक्षण की क्षमता बढी है और कुछ क्षेत्रो मे हम इसका निर्यात भी कर पाए है बहुत से बैंक विहीन इलाको एव क्षेत्रो मे अब बेक सुविधाओ का विस्तार हुआ है राजकीय अर्द्धराजकीय और सहकारी सस्थानो का अभूतपूर्व विस्तार हुआ है जो कि उत्पादन विपणन तकनीकी सहायता एव मार्गदर्शन आदि मे कार्य करते है। जीवन की गुणवत्ता के कुछ सूचको अर्थात् जन्म पर प्रत्याशित आयु, मृत्यु दर शिशु मृत्यु दर मे भी अभिनन्दनीय परिवर्तन हुआ है। [2]

हमारी मुख्य उपलब्धियो मे निम्नलिखित का वर्णन करना उचित होगा—

(1) 1950 51 और 1996 97 के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास प्रक्रिया को मोटे तौर पर दो अवधियों मे विभक्त किया जा सकता है—(i) 1950 51 से 1980 81 और (ii) 1980 81 से 1996 97। 1950 51 और 1980 81 के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था की शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product) की औसत वार्षिक वृद्धि दर 3 4 प्रतिशत रही और प्रतिव्यक्ति वृद्धि दर 1 2 प्रतिशत रही।

तालिका 1 **राष्ट्रीय और प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि (1980 81 की कीमतो पर)**

वर्ष	शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (करोड रुपये)	प्रतिव्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (रुपये)
1950 51	40 454	1 127
1960 61	58 602	1 350
1970 71	82 211	1 520
1980 81	110 685	1 630
1990 91	186 446	2 222
1996 97	252 599	2 710
वार्षिक औसत वृद्धि दरें		
1950 51 से 1980 81	3 4	1 2
1980 81 से 1996 97	5 3	3 2

स्रोत भारत सरकार, आर्थिक समीक्षा (1996 97)

1 योजना आयोग, पंचवर्षीय प्रारूप (1978 83) पृ0 1।

2 D T Lakdawala *Ind a the Soc al s Republ c* Yusuf Mehera y Memor al Lectu e Sep ember 27 1988 p 1

किन्तु 1980 81 से 1996 97 की दूसरी अवधि के दौरान् भारतीय अर्थव्यवस्था, प्रोफेसर राजकृष्ण के हिन्दू वद्धि दर के अवरोधक को पार कर गयी और इसमे औसत वार्षिक वद्धि दर 5.3 प्रतिशत और प्रति व्यक्ति वृद्धि दर 3 2 प्रतिशत रही।

प्रत्येक योजना के अनुसार वद्धि दरे तालिका 2 मे दी गयी हैं—

तालिका 2 पचवर्षीय योजनाओं में विकास निष्पादन

प्रतिशत प्रतिवर्ष

	लक्ष्य	वास्तविक
1 पहली योजना (1951 56)	? 1	3 61
2 दूसरी योजना (1956-61)	4.5	4 27
3 तीसरी योजना (1961-66)	5 6	2.84
4 चौथी योजना (1969 74)	5 7	3 30
5 पाचवी योजना (1974 79)	4 4	4 80
6. छठी योजना (1980 85)	5.2	5 66
7 सातवीं योजना (1985-90)	5 0	6 01
8 आठवीं योजना (1992-97)	5 6	6 50

नोट. 1 पहली तीन योजनाओं के वद्धि दर सम्बन्धी लक्ष्य राष्ट्रीय आय के रूप में निश्चित किए गए थे। चौथी योजना मे, यह शुद्ध देशीय उत्पाद के रूप मे था। इसके बाद की सभी योजनाओं में सकल देशीय उत्पाद का प्रयोग किया गया।

2 आठवीं योजना का वास्तविक अनुमान 1995 96 के शीघ्र अनुमान और 1996-97 के अग्र-अनुमान के पर आधारित है।

स्रोत योजना आयोग (1998) **नौवीं पचवर्षीय योजना (1997 2002)**

इन आकडो से यह बात साफ हो जाती है कि पाचवीं योजना तक वद्धि दर ? 8 से 4 8 प्रतिशत के बीच घटती बढती रही है परन्तु छठी योजना और इसके बाद वद्धि दर मे लगातार उन्नति हुई है और यह छठी योजना मे सकल देशीय उत्पाद के 5 66 प्रतिशत से बढकर सातवीं योजना मे 6 प्रतिशत और आठवीं योजना में और बढकर 6 5 प्रतिशत हो गयी। वस्तुत यह एक स्वस्थ्य लक्षण है।

(2) भारत मे सकल देशीय उत्पाद (G D P) के अनुपात के रूप मे बचत जो 1950 51 में 10 2 प्रतिशत थी बढ़कर 1995 96 मे 25 6 प्रतिशत के स्तर पर पहुच गयी है परन्तु इसके साथ साथ उपभोग मे भी थोडी वद्धि की इजाजत दी गई है। मत्यु दर के गिरने के कारण जनसख्या की वद्धि दर 2 1 प्रतिशत वार्षिक के स्तर पर आ गयी है परिणामत प्रति व्यक्ति उपभोग मे 1 4 प्रतिशत की मर्यादित वद्धि हुई है।

(3) प्रति व्यक्ति अनाज का उपभोग जो 1951 मे 334 ग्राम था, बढकर 1996 मे 464 ग्राम हो गया परन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि दालो का प्रति व्यक्ति उपभोग कम होकर 61 ग्राम से 34 ग्राम हो गया किन्तु खाद्यान्नो की कुल उपलब्धि मे उन्नति हुई है।

(4) खाद्य तेलो एव वनस्पति की औसत प्रति व्यक्ति उपलब्धि जो 1950 51 मे 3 1 किलोग्राम था 1995 96 मे बढकर 8 2 किलोग्राम हो गयी है।

(5) मछली का प्रति व्यक्ति उपभोग 1 5 किलोग्राम से बढकर 5 4 किलोग्राम हो गया है और सब्जियो का उपभोग 10 3 किलोग्राम से बढकर 30 किलोग्राम हो गया अर्थात् तिगुने के बराबर। दूध का उपभोग 1971 72 तक गिरने के पश्चात् फिर 1950 51 के 46 8 किलोग्राम के विरुद्ध बढकर 1995 96 मे 72 2 किलोग्राम हो गया।

(6) पेय पदार्थों के वर्ग मे चाय की प्रति व्यक्ति उपलब्धि जो 1953 54 मे 214 ग्राम थी बढकर 1990 91 मे 612 ग्राम हो गयी और इसी अवधि में काफी की उपलब्धि 61 ग्राम से बढकर 65 ग्राम हो गयी।

(7) कपडे का प्रति व्यक्ति उपभोग 1951 मे 11 मीटर से बढकर 1995 96 मे 28 मीटर हो गया। वास्तव मे यह वृद्धि बहुत ज्यादा है। इसका कारण उत्पादन शुल्क बचाने के लिए देशीय उत्पादन का अल्पाकन सहकारी और अधिक चिरस्थायी मानव निर्मित तन्तुओ का विस्तत प्रयाग है।

(8) जीवन की अन्य सुविधाओ मे भी उन्नति हुई है। इसका प्रमाण ड्राई बैटरी सैलो रेजर ब्लेडों इलैक्ट्रिक लेम्पों और बिजली के पखो के उत्पादन मे भारी वद्धि मे मिलता है।

(9) बाईसिकल सिलाई मशीनो रेफ्रीजिरेटरो सवारी गाडियो स्कूटरो एव मोपेडो का बढता हुआ प्रयोग समाज के कुछ वर्गों के बढते हुए जीवन स्तर का सूचक है।

वस्तुओ के प्रकार और उनके उपभोग मे वद्धि को देखते हुए तीन सभावित निष्कर्ष निकलते है—(क) साधारण व्यक्ति द्वारा अनिवार्य वस्तुओ के उपभोग मे कुछ वद्धि अवश्य हुई है भले ही यह वृद्धि सभी क्षेत्रो अथवा वर्गो मे समान रूप मे फैली हुई नहीं है भारत जैसे महाद्वीपीय आकार वाले देश के लिए यह बात भी झुठलायी नहीं जा सकती कि कुछ वर्गों के जीवन स्तर मे गिरावट आयी है। (ख) यह सीमित उन्नति लोगो के भोजन स्तर को पर्याप्त बनाने के लिए काफी नहीं पोषणात्मक स्तर प्राप्त करना तो दूर की बात रही। (ग) सुविधाओ एव सुखदायक वस्तुओ के स्तर मे तेजी से वद्धि हुई है और उनके अधिक प्रयोग के फलस्वरूप गरीब तथा अन्य वर्गों मे खाई बढ गयी है।

(10) **सार्वजनिक क्षेत्र के नेतृत्व के आधीन पूजी वस्तु क्षेत्र को बढावा देकर प्रभावशाली औद्योगीकरण**—छठी योजना मे औद्योगीकरण की प्रक्रिया को सराहना करते हुए यह उल्लेख किया गया है 'एक प्रमुख उपलब्धि रही है भारत की औद्योगिक क्षमता का विविधाकरण और विस्तार, जिसमे सरकारी क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। सभी उपभोक्ता वस्तुओ मे और इस्पात तथा सीमेन्ट जैसी मूल

वस्तुओ मे देश आत्मनिर्भर है और उर्वरक जैसे अन्य उद्योगो की क्षमता का तेजी से विस्तार हो रहा है पूजी वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि विशेष रूप से प्रभावी रही है और अब भारत अपने लिए आवश्यक पूजी वस्तुओ का (केवल सीमात आयात के साथ) आन्तरिक उत्पादन द्वारा ही अपने अधिकाश उद्योगो की सभावित वृद्धि को बनाए रख सकता है इसमे ये सभी उद्योग सम्मिलित किए जाते है—वस्त्र उद्योग खाद्य प्रक्रमण उद्योग सीमेन्ट उद्योग रसायन उद्योग धातुकर्मीय उद्योग इजीनियरी उद्योग परिवहन आदि। [3]

(11) आर्थिक आधार संरचना ऊर्जा सिंचाई एवं परिवहन का विकास—एक और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि आर्थिक आधार सरचना (Economic infrastructure) का विकास है जो कि औद्योगीकरण के प्रोग्राम का आधार है। सडक तथा सडक परिवहन के विस्तार से मण्डी का विकास हुआ है। सिचाई तथा जल विद्युत परियोजनाओ से कृषि को भारी प्रोत्साहन मिला है और इससे छोटे कस्बो एव शहरो मे कारखाने एव अन्य आधुनिक प्रतिष्ठान स्थापित कराने के लिए ऊर्जा उपलब्ध कराई गई है। आधार सरचना से अर्द्ध नगरीय एव ग्राम क्षेत्रो के आधुनिकीकरण का रास्ता खुला है। छठी योजना ने ठीक ही उल्लेख किया है 'इस महाद्वीपीय अर्थव्यवस्था को बनाए रखने के लिए एक बडी अध सरचना का निर्माण किया गया है—सिचाई सचयन गृहो और नहरो का जाल पन बिजली और तापीय बिजली का उत्पादन क्षेत्रीय बिजली ग्रिड व्यापक बिजली चालित रेल व्यवस्था तेजी से बढते हुए सडक परिवहन संचालन से युक्त राष्ट्रीय और राज्यो के राजमार्ग और अधिकाश शहरी केन्द्रो को सम्बद्ध करने वाली तथा भारत को ससार के दूसरे देशो से जोड देने वाली दूर सचार व्यवस्था"[4]

(12) निर्यात का विविधीकरण एव आयात प्रतिस्थापन—औद्योगीकरण की नीति के परिणामस्वरूप भारत की पूजी वस्तुओ के आयात के लिए विदेशो पर निर्भरता कम हो गई है। इसी प्रकार बहुत सी उपभोग वस्तुए जिनका पहले आयात किया जाता था अब देश मे ही उत्पन्न की जाने लगी है। इससे आयात प्रतिस्थापन (Import substitution) हुआ है। परिणामत भारत के निर्यात की वस्तु सरचना (Commodity composition) निर्मित वस्तुओ, कच्चे खनिजो एव इजीनियरी सामान के पक्ष मे हो गयी है।

(13) भारत के लोगो की जीवन प्रत्याशा मे वृद्धि जबकि 1951 मे एक भारतीय की औसत जीवन प्रत्याशा 32 वर्ष थी यह 1995 96 मे 61 वर्ष हो गयी। इसका मुख्य कारण चेचक उन्मूलन मलेरिया और हैजा के प्रभाव मे भारी कमी है। इसके अतिरिक्त अस्पतालो की अच्छी व्यवस्था के कारण शिशु मृत्यु दर (Infant mortal ty) मे भारी कमी व्यक्त हुई है। चाहे अल्पपोषण अधिकतर जनता के घटिया स्वास्थ्य के लिए जिम्मेदार है फिर भी जीवन प्रत्याशा (Life expectancy) मे वृद्धि एक सराहनीय उपलब्धि है।

(14) एक विशाल शिक्षा प्रणाली का विकास—आयोजन युग की एक और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि एक विशाल शिक्षा प्रणाली का विकास है। यह विश्व मे तीसरे नम्बर पर सबसे बड़ी शिक्षा प्रणाली है। 1950 51 मे 239 लाख के नामाकन (Enrolment) के विरुद्ध 1996 97 मे नामाकन 1 827 लाख था अर्थात् लगभग 8 गुना वृद्धि। प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियो की कुल सख्या 1950 51 मे 192 लाख से बढाकर 1996 97 मे 1 118 लाख हो गयी है। 6 11 के आयु वर्ग मे कुल जनसख्या के अनुपात के रूप मे, प्राथमिक स्तर पर नामाकन 31 प्रतिशत से बढकर 104 प्रतिशत हो गया। मिडिल स्तर पर कुल नामाकन 1950 51 और 1996 97 के दौरान 31 लाख से बढकर 400 लाख हो गया और 11 14 आयु वर्ग मे कुल जनसख्या के अनुपात के रूप मे यह 13 प्रतिशत से बढकर 68 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार, माध्यमिक स्तर पर कुल नामाकन 1950 51 मे 12 लाख से बढकर 1996 97 मे 249 लाख हो गया और 14 17 के आयु वर्ग मे कुल जनसख्या के अनुपात के रूप मे यह 5 3 प्रतिशत से बढकर 32 4 प्रतिशत हो गया। उच्चस्तरीय शिक्षा (विश्वविद्यालय एव कालिजों) मे विद्यार्थियो की सख्या 1950 51 मे 3 6 लाख से बढकर 1995 96 मे 43 1 लाख हो गयी। शिक्षा प्रणाली का विशाल विस्तार आयोजन युग की एक महान उपलब्धि है।

(15) विज्ञान एव तकनॉलाजी का विकास—एक और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि देश के आधुनिक औद्योगिक ढाचे के लिए विज्ञान एव तकनालाजी का विकास और इसके चलाने के लिए तकनीकी एव प्रबन्धकीय सवर्गों (Managerial cadres) का विकास है। इसके परिणामस्वरूप हमारी विदेशी विशेषज्ञो पर निर्भरता कम हो गयी है। अन्य अल्प विकसित देशो की तुलना मे अपेक्षाकृत अधिक उन्नति होने के कारण भारत ने विशेषज्ञो को निर्यात मध्यपूर्व और अफ्रीका के देशो को करना आरभ कर दिया है। यह बडे गर्व की बात है।

(16) आर्थिक प्रगति के मुख्य सूचक देश में औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि एवं सामाजिक विकास का संकेत देते है—आर्थिक विकास के कुछ चुने हुए सूचको से स्पष्ट है कि औद्योगिक उत्पादन का सूचकाक (1980 81 100) जो 1960 61 में केवल 36 2 था बढकर 1996 97 मे 304 हो

3 योजना आयोग पंचवर्षीय योजना प्रारूप (1978 83) पृ 4
4 तत्रैव पृ 1 2

गया अर्थात् इसमे 7 2 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई। तैयार इस्पात का उत्पादन जो 1950-51 मे 10 4 लाख टन था बढकर 1995 96 में 214 लाख टन हो गया। इसी प्रकार सीमेन्ट का उत्पादन 1950 51 और 1995 96 के दौरान 27 लाख टन से बढकर 693 लाख टन हो गया। इसी तरह कोयले का उत्पादन इसी काल में 328 लाख टन से बढकर 2,920 लाख टन हो गया। बिजली जनन (Electricity generation) का भारी विकास हुआ और यह 1960 61 के 169 अरब किलोवाट से बढकर 1995 96 मे 415 अरब किलोवाट हो गया। रूक्ष तेल जो औद्योगिक युग मे एक महत्त्वपूर्ण आदान है का उत्पादन 1950 51 मे केवल 2 6 लाख टन था, जो बढकर 1970 71 में 68 लाख टन हो गया और तेज गति से बढकर 1995 96 में 351 लाख टन हो गया।

यदि सामाजिक सकेतकों पर विचार किया जाए, तो ये भी प्रगति को दर्शाते हैं। भारत मे जन्म दर जो कि 1950 51 में 39 9 प्रति हजार थी थोडी कम होकर 1996 मे 27 4 प्रति हजार हो गयी। इसके विरुद्ध मृत्यु दर इसी काल के दौरान 27 4 प्रति हजार से कम होकर 8 9 प्रतिहजार के निम्न स्तर पर पहुच गयी। इसके साथ साथ प्रति 10 000 जनसख्या के लिए जहाँ 1950 51 में 1 7 पजीकृत चिकित्सक (Registered Medical Practitioners) उपलब्ध थे वहा उनकी सख्या 1991 92 मे 4 8 हो गयी। इस प्रकार अस्पतालो मे प्रति हजार जनसख्या के लिए उपलब्ध बिस्तरों की मात्रा 1950 51 मे 3 2 से बढकर 1990 91 में 9 4 हो गयी। जाहिर है कि औद्योगिक उत्पादन एव सामाजिक विकास के सूचक भारत की प्रगति का सकेत देते हैं।

आयोजन की मूल विफलताए (Fundamental failures of planning)

अब हम आयोजन की कुछ मूल विफलताओ की ओर ध्यान देंगे। लगभग चार दशको की अवधि मे सरकार भारत की जनता को लगातार इस बात से प्रभावित करती रही है कि भारत में विकासात्मक आयोजन का उद्देश्य 'समाजवादी ढग के समाज' की स्थापना करना है। किन्तु नारों या आकर्षक वाक्यो से तो मूल परिस्थितियो मे परिवर्तन नहीं हो सकता। जनसामान्य के लिए तो अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारतीय अर्थव्यवस्था का ढाचा किस प्रकार बदल रहा है क्योंकि इसके अध्ययन से हमे पता चल सकता है कि क्या हम समाजवाद की ओर बढ रहे हैं या इससे दूर हट रहे हैं। महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या निर्बल और कम सम्पन्न वर्गों की दशा में सुधार हो रहा है ? दूसरे शब्दो मे क्या आयोजन के लाभ भारतीय समाज की निचली तहो तक पहुच रहे हैं ? ऐसा नहीं हुआ है। अपने इस मत के पक्ष मे निम्नलिखित प्रमाण दिए जा सकते हैं।

1 **निर्धनता को समाप्त करने में विफलता**--समाजवादी आयोजन का मूल लक्ष्य देशभर मे न्यूनतम जीवन स्तर की व्यवस्था करना है। श्रीमती इंदिरा गाधी द्वारा **'गरीबी हटाओ'** के नारे का महत्त्व लोगो को तभी पता चल सकता है यदि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उपाय किए जाए। यह अनुभव किया गया कि केवल विकास दर मे वृद्धि द्वारा गरीबी को दूर नहीं किया जा सकता गरीबी दूर करने के लिए विशिष्ट उपाय करना अधिक वाछनीय होगा। अत गरीबी हटाओ कार्यक्रम को पाचवीं योजना का अभिन्न अग बनाया गया और यही दृष्टि बाद की योजनाओ मे भी बनी रही। प्रोफेसर डी टी लकडावाला की अध्यक्षमता में स्थापित विशेषज्ञ दल ने कैलारी उपभोग के आधार पर निर्धनों की सख्या का अनुमान लगाया। इस अध्ययन से पता चला कि 1973 74 मे कुल जनसख्या का लगभग 55 प्रतिशत निर्धनता रेखा के नीचे रह रहा था और 1987 88 म यह अनुपात कम होकर 39 3 प्रतिशत हो गया। इस विधि मे मामूली परिवर्तन कर, योजना आयोग ने यह अनुमान लगाया कि 1993 94 मे, जनसख्या का 36 प्रतिशत निर्धनता रेखा के नीचे था। कुल रूप मे जहा 1973 74 मे 32 2 करोड व्यक्ति गरीब थे वहा दो दशक बाद, 1993 94 मे गरीबो की सख्या 32 करोड थी। चूंकि इस अवधि के दौरान देश की जनसख्या मे काफी वृद्धि हो गयी इस कारण निर्धनो का कुल जनसख्या मे अनुपात कम हो गया। परन्तु 43 वर्षों के आयोजित विकास के पश्चात् अभी भी 1993 94 मे कुल जनसख्या का 36 प्रतिशत निर्धनता की परिस्थितियो मे जीवन व्यतीत कर रहा है हमारे आयोजन पर एक निराशाजनक टिप्पणी है कि चार दशको से भी अधिक समय के उपरान्त आयोजित विकास के बावजूद हम गरीबी की समस्या पर करारी चोट नहीं कर पाए। वास्तव मे देश पोषणीय रोजगार कायम करने म विफल रहा है और इसकी अपेक्षा स्वय समाप्त होने वाले रोजगार कायम करने पर बल दिया गया। इस दृष्टि की कटु आलोचना करते हुए प्रोफेसर पी आर ब्रह्मानन्द लिखते हैं 'निर्धनता की समस्या पर मजदूरी वस्तु मॉडल (Wage-goods model) द्वारा प्रहार करने की अपेक्षा आयोजको ने बहुत से निर्धनता विरोधी और सार्वजनिक वितरण सम्बन्धी उपाय आरभ करना उचित समझा जोकि एक प्रकार के अग्निशमन उपाय थे जिनमे बहुत अधिक छिद्र भी थे। अत इस कारण यह आश्चर्य की बात नहीं कि निर्धनता का आकार एक मर्यादित निर्धनता रेखा के आधार पर 1993 94 मे 40 प्रतिशत के निकट था। देश की मूल समस्या रक्त सचारण (Blood transfusion approach) द्वारा अस्थायी राहत उपलब्ध कराना है। यह कहीं बेहतर होता यदि रक्त जनन पद्धति (Blood generating approach) अपनायी जाती और पोषणीय रोजगार (Sustainable employment) पर बल दिया जाता।

2 सभी योग्य व्यक्तियो को रोजगार उपलब्ध कराना—आयोजन की प्रगति के साथ साथ बेरोजगारी भी बढ रही है। प्रथम योजना के अन्त मे अवशिष्ट बेरोजगार व्यक्तियो (Backlog of unemployed persons) की सख्या 53 लाख थी नौवीं पचवर्षीय योजना ने अवशिष्ट बेरोजगारो (Backlog of unemployed) को सख्या 75 लाख आकी है। योजना काल के दौरान 530 लाख व्यक्ति श्रम शक्ति मे और बढ जाएंगे। अत रोजगार तलाश करने वालो की कुल सख्या 600 लाख हो जाएगी। दूसरे शब्दो मे प्रत्येक वर्ष 120 लाख रोजगार कायम करने होगे। चाहे खुली बेरोजगारी (Open unemployment) की मात्रा 1997 मे लगभग 2 प्रतिशत आकी गयी है परन्तु इसके साथ अल्परोजगार की मात्रा 8 6 प्रतिशत रहने का अनुमान है। अत बेरोजगारी और अल्पबेरोजगार (under employment) का समूचा प्रभाव श्रमशक्ति के 10 5 प्रतिशत तक व्यक्त होगा। चाहे आठवीं योजना मे रोजगार की औसत वृद्धि दर 2 47 प्रतिशत रही जोकि अभिनन्दनीय है किन्तु यह उपलब्धि आठवीं योजना के लिए 2 6 प्रतिशत के निर्धारित लक्ष्य से नीची थी। जब तक देश रोजगार प्रेरित रणनीति (Employment oriented strategy) को नहीं अपनाता और उत्पादिता (Productivity) के अपेक्षाकृत उच्चस्तर पर रोजगार की 3 4 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य निश्चित नहीं करना तब तक पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त करना और अल्परोजगार की मात्रा को कम करने का उद्देश्य प्राप्त नहीं किया जा सकता।

3 आय की असमानताओ मे कमी—यह कहना बडा सन्देहात्मक है कि पिछले पांच दशकों मे आयोजित आर्थिक विकास के फलस्वरूप आय का पुनर्वितरण (Redistribution of income) अपेक्षाकृत कम समृद्ध वर्ग के पक्ष मे हुआ। इसके विरुद्ध आय तथा सम्पत्ति का सकेन्द्रण (Concentration of income and wealth) बढा ही है। 1950 51 और 1975 के बीच (1960 की कीमतो पर) प्रति व्यक्ति आय मे 306 रुपये से 366 रुपये तक की सीमान्त वद्धि हुई। इस प्रकार प्रति व्यक्ति आय की वार्षिक वृद्धि दर केवल 1 2 प्रतिशत थी। किन्तु यह थोडी सी वृद्धि भी असमान रूप मे वितरत हुई। प्रोफेसर वी एम डाडेकर और नीलकण्ठ रथ ने अपने 1971 के अध्ययन मे यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि इस काल मे विकास की थोडी सी उपलब्धि जनसख्या के सभी वर्गों में समान रूप मे नहीं बट पायी। निम्नतम 20 प्रतिशत जनसख्या की परिस्थिति तो निश्चय ही खराब हुई और इसके अतिरिक्त 20 प्रतिशत जनसख्या की हालत लगभग अवरुद्ध रही। अत जबकि ग्राम निर्धनता का स्वरूप लगभग यथावत ही रहा शहरी निर्धनता का स्वरूप गहरा हो गया। सम्पन्न वर्गों के हाथो में आय तथा सम्पत्ति के सन्केन्द्रण के बढने के प्रमाण मिलते हैं। चौथी योजना ने इस तथ्य को इस प्रकार स्वीकार किया 'एक और क्षेत्र जिसमे हमारा प्रयास कमजोर और अवरुद्ध रहा आय तथा सम्पत्ति के स्वामित्व की असमानताओ को कम करने से सम्बन्धित हैं।"

सामाजिक न्याय (Social Justice) को आकने का एक और ढग कीमत ढाचे मे वृद्धि का अध्ययन है। इस बात का काफी प्रमाण उपलब्ध है कि खाद्य पदार्थों और अनिवार्य उपभोग वस्तुओ की कीमतो मे विलास वस्तुओ (Luxuries) और अर्द्ध विलास वस्तुओ (Semi luxuries) की कीमतो मे वृद्धि की तुलना मे कहीं अधिक वृद्धि हुई है। 1990 91 और 1996 97 के बीच सामान्य कीमत सूचकाक (1980 81 100) मे 72 प्रतिशत वृद्धि हुई जब खाद्यान्नो का सूचकांक (Index of foodgrains) 87 प्रतिशत बढा। समृद्ध वर्गों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली वस्तुओ की तुलना मे जनसामान्य द्वारा प्रयोग मे लाई जाने वाली वस्तुओ अर्थात् चीनी मिट्टी के तेल कपडे सब्जियो आदि की कीमतो मे अपेक्षाकृत तीव्र गति से वृद्धि हुई। समाजवादी अर्थव्यवस्था मे खाद्य पदार्थों तथा अनिवार्य उपभोग वस्तुओ की कीमते नियंत्रित करने की असफलता जनता के प्रति आर्थिक अन्याय ही है।

4 आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण मे कमी—हमारे देश मे समाजवाद का ओर मुख्य स्वीकार्य सिद्धान्त आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रण को कम करना है। परन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि भारत मे एकाधिकारी नियत्रण (Monopoly control) मे वृद्धि हुई है चाहे जवाहरलाल नेहरु के अनुसार 'एकाधिकार समाजवाद का शत्रु है । यह बात निश्चित रूप मे समझ लेनी होगी कि निर्धनता को दूर करने के लिए विकास अनिवार्य है परन्तु विकास के कारण आय और सम्पत्ति की विपमताए अपने आप ही कम नहीं हो सकतीं। इस उद्देश्य के लिए कराधान और धन एव सम्पत्ति के स्वामित्व सम्बन्धी राष्ट्रीय नीतियो को बदलना होगा विलासपूर्ण उपभोग को कम करना होगा और अनिवार्य वस्तुओ पर साहाय्य (Subsidies) देने के उपाय करने होंगे। चाहे राजकोषीय उपाय (Fiscal measures) इस सम्बन्ध मे एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते है परन्तु एक सम्पत्तिहरणीय कर प्रणाली (Expropriatory tax structure) केवल दिखावा मात्र ही है। इसी प्रकार, विलासपूर्ण उपभोग की वस्तुओ पर भारी कराधान और सामाजिक न्याय से प्रेरित अनिवार्य वस्तुओ पर साहाय्य देने के प्रोग्राम को उत्साह एव ईमानदारी से लागू नहीं किया गया। इसी प्रकार भू वितरण प्रोग्राम से भी आशातीत परिणाम प्राप्त नहीं हो पाए हैं। 3 प्रतिशत उच्च वर्ग के परिवारो के पास कुल कृष्य भूमि (Agricultural land) का लगभग 50 प्रतिशत है जबकि 75 प्रतिशत परिवारो के पास केवल 10 प्रतिशत भूमि है।

तालिका 1 : भारत में आर्थिक विकास के चुने हुए संकेतक (1950-51 से 1990-91)

आर्थिक संकेतक	1950-51	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91	1994-95
1 प्रति व्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (1980-81 की कीमतों पर) रुपये	1,127	1,350	1,520	1627	2,222	2,449
2. औद्योगिक उत्पादन का सूचकांक (1980-81 = 100)	18.3	36 2	65.3	100 0	212 6	253 7
3 कृषि उत्पादन का सूचकांक (1981-82 को समाप्त होने वाले 3 वर्ष)	46.2	68 8	85 9	102 1	148 4	165 0
4 सकल देशीय पूंजी निर्माण (सकल देशीय उत्पादन के प्रतिशत के रूप में)	10.2	15 7	16 6	22.7	27 0	26 0
5 सकल देशीय बचत (सकल देशीय उत्पादन के प्रतिशत के रूप में)	10 4	12 7	15 7	21.2	24.3	24 9
6. उत्पादन						
1 खाद्यान्न (लाख टन)	*508*	*820*	*1084*	*1296*	*1764*	*1915*
2 तैयार इस्पात (लाख टन)	10 4	23 9	46 4	68.2	135.3	178 0
3 सीमेंट (लाख टन)	27	80	143	187	488	624
4 कोयला (लाख टन)	323	552	763	1190	2,255	2,731
5 रूक्ष तेल (लाख टन)	2.6	4.5	68	105	330	322
6. बिजली उत्पादित (केवल उपयोगी) (अरब किलोवाट)	5.3	16.9	55.8	110.8	264.3	351.98
7 थोक कीमत सूचकांक (1981-82 = 100)	16 9	19 6	35.5	91 1	182 7	272.7
8 उपभोक्ता कीमत सूचकांक (1981-82 = 100)	17	21	38	81	193	284
9 केन्द्र का बजट-घाटा (करोड़ रुपये)	(-)33	(-) 117	285	2,576	11,347	961
विदेशी व्यापार						
1 निर्यात (करोड रुपये)	606	660	1,535	6,711	32,553	82,674
2. आयात (करोड रुपये)	608	1122	1 634	12,549	43 198	89971
सामाजिक संकेतक						
1 जनसंख्या (करोड)	36 1	43 9	54 8	68 2	84 6	91 6
2 जन्मदर (प्रति हजार)	39 9	41 7	36 9	33 9	29.5	28 3
3 मृत्यु दर (प्रति हजार)	27 4	22.8	14 9	12.5	9 8	9 0
4 जन्म पर प्रत्याशित आयु (वर्षों में)	32.1	41.3	45 6	54 4	58 7	60 4
(क) पुरुष	32.4	41 9	46 4	54 1	59 0	61 2
(ख) स्त्री	31 7	40 6	44 7	54 7	58 7	60 8
5 साक्षरता दर (प्रतिशत)	18.3	28.3	34.5	43 6	52.2	
6 स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण						
(i) प्रति 10000 जनसंख्या के पंजीकृत चिकित्सक	1 7	1 8	2.8	3 9	4 7	
(ii) अस्पतालों मे बिस्तर प्रति दस हजार जनसंख्या	3 2	5 2	6 4	8 3	9 6	

अस्थायी 1994-95 के लिए

स्रोत: भारत सरकार, *आर्थिक समीक्षा (1996-97)*

5. असमानताओं और अनधिकृत मुद्रा को राजकोषीय उपायों (Fiscal measures) द्वारा ठीक करना-इसमें सन्देह नहीं कि सट्टेबाजी, ठेकेदारी एवं विभिन्न प्रकार के अनुचित उपायों द्वारा प्राप्त अवैध आय (Illegitimate income) संरक्षित बाजार (Protected markets) से प्राप्त आकस्मिक लाभ, आयात प्रतिबन्धों द्वारा स्थापित की गई अर्द्ध-एकाधिकारी परिस्थितियों और अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में अभ्यंश एवं लाइसेंस प्रणाली (Quota and Licence System) के कारण उच्च-आय वर्गों को अवैध आय प्राप्त हुई है। स्फीति, कंट्रोल तथा सरकारी क्षेत्र के विस्तार द्वारा भ्रष्टाचार, कर-वंचन (Tax evasion) और गैर-कानूनी सट्टेबाजी से प्राप्त लाभों में वृद्धि हुई है। इस प्रकार आर्थिक प्रगति से प्राप्त लाभ जनता को उपलब्ध होने की अपेक्षा व्यापारियों तथा उद्योगपतियों की जेबों में जा रहे हैं। उच्च-स्तर के सरकारी अधिकारी तथा राजनीतिज्ञ भी रुपया बनाने में ही लगे हुए हैं। दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनामिक्स के डॉ सूरजभान गुप्त ने अनुमान लगाया है कि 1987-88 में अनधिकृत मुद्रा लगभग 1,49,300 करोड़ रुपये के बराबर थी। कुछ लोग तो इस स्थिति का वर्णन यह कह कर करते हैं कि भारत में एक समानान्तर अर्थव्यवस्था (Parallel economy) विद्यमान है।

अनधिकृत मुद्रा (Unaccounted money) को ढूढ निकालने के विभिन्न उपाय असफल हो चुके हैं। इसके कारण मुद्रा को गहरा दबाने का प्रयास किया गया है। जबकि एक ओर सरकार छिपे धन (Black money) को बाहर निकालने का प्रयास करती है वहा इसके विरुद्ध पूजीपति व्यापारी और सट्टेबाज इसे पूजी का रूप देने का ढग खोजते रहते हैं। इस रस्साकशी में अभी तक तो पूजीपति वर्ग ही सरकार को धोखा देने मे सफल हुआ है। परन्तु अनधिकृत मुद्रा के कारण प्रतिष्ठा वस्तुओ (Prestige goods) अर्थात् स्कूटरो कारो कपडे धोने वाली मशीनों टेलाविजन ट्रांजिस्टर, रैफ्रीजरेटर आदि की माग को प्रोत्साहन मिला है। दूसरे शब्दो मे अवैध आय के एक बडे भाग का प्रयोग अभिदृश्य उपभोग (Conpicuous consumption) के लिए होता है।

6 भू-स्वामित्व का पुनर्वितरण और प्रगतिशील कृषि के विकास में विफलता—सरकार द्वारा मूल नीति विषयक निर्णय के आधार पर किसानो को भू स्वामित्व अधिकार सौंपने का कदम उठाया गया कि किन्तु 40 वर्षों के प्रयास के पश्चात् भी इस निर्णय को लागू न किया जा सका। अब यह बात राज्य सरकारो द्वारा भी स्वाकार कर ली गई है कि भू सुधारों की प्रगति बहुत मद रही है और विभिन्न राज्यीय सरकारे इन्हे लागू करने की इच्छुक नहीं हैं। इसलिए तो प्रगतिशील कृषि ओर समाज का विकास अवरुद्ध हो गया है।

इसके अतिरिक्त यह विश्वास किया जाता था कि सहकारी समितियो द्वारा लाभ प्रेरणा को बलहीन बनाया जा सकता है। परन्तु सहकारी समितियो का अनुभव भी देश मे दुखद ही है। सहकारी खेती को भू सुधारो से छुटकारा पाने का एक उपाय समझा जाने लगा है ओर इस प्रकार देश में मे यह सामन्तवादी अशो (Feudalistic elements) का पोषण करती है। शहरी क्षेत्रो मे पूजीपति राजनीतिज्ञ तथा व्यापारी सहकारी समितियो के आत्मपोषण और धन सग्रह का साधन समझते हैं। पीरणामत समितिया जिनसे यह आशा की जाती थी कि वे जनहितों को रक्षा करेगी समृद्ध वर्गों को और सम्पन्न बनाने का साधन बन गई है।

निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि अभी तक सरकार की कथनी और करनी मे बहुत भेद रहा है। सरकार की नीतियो का दार्शनिक आधार सबल है परन्तु देश मे भ्रष्ट और अकुशल प्रशासन के विद्यमान होने के कारण क्रियान्वयन का सकट (Crisis of implementation) विद्यमान है। हमारी आर्थिक नीति और व्यवस्था का यह पहलू हमारे सामाजिक ढाचे का मर्म केन्द्र है। भू सुधारो सहकारी समितियो पचायती राज या सार्वजनिक क्षेत्र के तीव्र विस्तार का उद्देश्य भारत मे विद्यमान नैतिक सकट से निष्फल बन जाता है। समाजवाद भारत मे नारा बनकर रह गया है।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि "आयोजन प्रक्रिया देश मे सामाजिक एव आर्थिक आधार सरचना कायम कर पायी है यह भारी तथा मूल उद्योगो के विकास को प्रोन्नत कर औद्योगिक आधार स्थापित कर सकी है ओर देश मे शिक्षा के अवसरों का विस्तार कर पायी है किन्तु यह प्रत्येक योग्य व्यक्ति को रोजगार उपलब्ध कराने मे विफल हुई है यह गरीबी को दूर करने मे सफल नहीं हुई और न ही यह आय तथा सम्पत्ति के सकेन्द्रण को कम करने मे कामयाब हुई है। इसके अतिरिक्त आर्थिक आधार पर सरचना के लाभ सापेक्ष दृष्टि से समृद्ध वर्गों को उपलब्ध हुए है। हमारा विनियोग का ढाचा विशेषकर सामाजिक आधार सरचना उपलब्ध कराने की दृष्टि से शहरी क्षेत्रो के पक्ष में ही विकसित हुआ है। जनसख्या के अनेक वर्गों को, जैसे अनुसूचित जातियो और जनजातियो को वृद्धि और विकास के लाभो मे पूरा भाग प्राप्त नहीं हुआ है। [5] आयोजन की ये मूल विफलताए इस बात की आवश्यकता पर बल देती है कि विकास रणनीति का पुन निरीक्षण होना चाहिए। छठी योजना मे सही उल्लेख किया गया "हमे इस तथ्य को स्वीकार करना होगा कि आयोजन के सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य प्राप्त नहीं हुए हैं सर्वाधिक अभिप्रेरित लक्ष्य आज भी प्राय उतने ही दूर दिखाई देते हैं जितने कि वे योजनाबद्ध विकास के मार्ग पर हमारी यात्रा आरभ करने के समय थे। ये उद्देश्य वैसे हैं हमारी योजनाओ मे निहित हैं परन्तु बाद मे हमारी विकास की नोति के विवरण मे बहुत स्पष्ट हो गए हैं ये उद्देश्य है—पूर्ण रोजगार की प्राप्ति गरीबी को दूर करना और समसमाज की स्थापना। [6]

17

निजीकरण और नए आर्थिक सुधार
(PRIVATISATION AND NEW ECONOMIC REFORMS)

1 सार्वजनिक क्षेत्र के निष्पादन-सम्बन्धी विश्लेषण
(Performance Analysis of Public Sector)

भारतीय अर्थव्यवस्था आज निर्णायक परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रही है। पिछले चार दशको से हम ऐसे मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं जिसमे सार्वजनिक क्षेत्र से यह अपेक्षा की थी कि वह विकास के लिए इजन का कार्य करेगा किन्तु 1970 के दशक के मध्य मे सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति भले ही मोहभग होना आरभ हो गया परन्तु विरोध की आवाजे अभी कमजोर, अनियमित एव अस्पष्ट थीं। सार्वजनिक क्षेत्र के निर्धारित कार्य भाग को पूरा करने मे इसकी असफलता के परिणामस्वरूप विरोध और सगठित हो गया। 1980 के दशक के आरभ में सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित क्षेत्रो मे से कुछ को निजी क्षेत्र के लिए खोलने की दिशा मे कुछ निर्णय किए गए परन्तु सरकार अभी भी कोई स्पष्ट वक्तव्य देने में हिचकिचाहट महसूस कर रही थी। 1984 मे प्रधानमत्री राजीव गाधी द्वारा राष्ट्र के प्रति अपने पहले प्रसारण मे पहली बार सार्वजनिक क्षेत्र की नीति मे परिवर्तन के विषय मे स्पष्ट घोषणा की गई और उन्होंने साफ कहा सार्वजनिक क्षेत्र का प्रसार "बहुत से क्षेत्रो मे हो गया है जोकि होना नहीं चाहिए था। हम अपने सार्वजनिक क्षेत्र का विकास केवल उन क्षेत्रो मे करें जिनमे निजी क्षेत्र अक्षम हैं। लेकिन हम निजी क्षेत्र के लिए अधिक क्षेत्र खोल देंगे ताकि इसका विस्तार हो सके और अर्थव्यवस्था का विकास अधिक उन्मुक्त रूप से हो सके।

सोवियत सघ और अन्य पूर्वीय योरोप के देशों मे हाल ही मे होने वाले परिवर्तनो ने निजी क्षेत्र के समर्थको को प्रोत्साहित किया कि वे सार्वजनिक क्षेत्र पर प्रत्यक्ष रूप में प्रहार करें। सोवियत ब्लाक की समाजवादी अर्थव्यवस्थाओ के धराशायी होने और चीन द्वारा मौन रूप मे ताइवानी माडल स्वीकार करने से जिसके आधार पर राजनीतिक दमन और राज्य द्वारा अर्थव्यवस्था का उदारीकरण किया गया (जिसमे कृषि क्षेत्र मे पहले से ही किया गया असमूहीकरण (Decollectivisation) भी शामिल था) निजीकरण की लाबी को एकदम आगे बढने का अवसर दिया-अर्थात् अविनियमन (Deregulation) से निजीकरण की ओर। भारत की बिगड़ती हुई भुगतान शेष की स्थिति के परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक से 570 करोड डालर का ऋण प्राप्त किया गया ताकि भारत को विदेशी मुद्रा सकट से राहत प्राप्त हो। इसने भी भारत को अपनी आर्थिक नीतियो का पुनर्गठन करने के लिए मजबूर कर दिया जोकि अविनियमन निजीकरण और बाजार मैत्री की विचारधारा पर आधारित थीं। इस प्रकार के सभी परिवतनो के सचयी प्रभाव के कारण नयी औद्योगिक नीति (1991) की घोषणा की गई।

सार्वजनिक क्षेत्र के विरुद्ध मुख्य आरोप

सार्वजनिक क्षेत्र के विरुद्ध मुख्य आरोप इस प्रकार हैं। विनियोग पर कम प्रत्याय दर राष्ट्रीय बचत के भाग मे गिरावट, अपर्याप्त क्षमता उपयोग आवश्यकता से अधिक कर्मचारियो की नियुक्ति तथा नौकरशाहीकरण (Bureaucratisation) के परिणामस्वरूप कार्य सम्पन्न होने मे अधिक विलम्ब और दुर्लभ साधनो का अपव्यय।

केन्द्र सरकार के उद्यमों में विनियोजित पूंजी पर प्रत्याय दर

निजी क्षेत्र से तुलना के आधार के रूप मे अर्थशास्त्रियो द्वारा कर पूर्व लाभ (Profit before tax) की अवधारणा का प्राय सिफारिश की जाती है। भिन्न भिन्न योजना सम्बन्धी प्रलेखो मे यह भी कहा गया है कि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो म प्रत्याय दर (Rate of Return) 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष होनी चाहिए। इस बात को ध्यान में रखना होगा कि 1969 70 से 1973 74 के दौरान विनियोजित पूजी के प्रतिशत के रूप मे सकल लाभ 4 से 6 प्रतिशत के निम्न स्तर पर था और इस बात मे बल था कि आलोचको ने सार्वजनिक क्षेत्र का एक काला चित्र प्रस्तुत किया। यह भी ठीक है कि पाचवीं योजना

के दौरान इस स्थिति मे अशमात्र सुधार हुआ और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो मे 1980 81 तक सकल प्रत्याय दर 7 से 8 प्रतिशत के बीच थी। 1981 82 के पश्चात् स्थिति मे निश्चयात्मक सुधार हुआ और सकल प्रत्याय दर 12 से 13 प्रतिशत के बीच हो गयी। जाहिर है कि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो की स्थिति काले से सफेद होने लगी अर्थात् उसमे सुधार आया और इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो में बेहतर निष्पादन का सकेत मिला।

वास्तव मे समस्त सातवीं योजना के दौरान विनियोजित पूजी पर समग्र सकल प्रत्याय दर लगभग 12 से 13 प्रतिशत रही। परन्तु हमे इससे ऐसा नहीं मान लेना चाहिए कि सार्वजनिक क्षेत्र के निष्पादन मे और सुधार लाने के लिए प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है। यह बडी उत्साहवर्धक बात है कि 1995 96 मे इन की प्रत्याय दर (Rate of *return*) बढ कर 16 1 प्रतिशत के रिकार्ड स्तर पर पहुच गयी। इसके गहन विश्लेषण से बडी रुचिकर जानकारी प्राप्त हुई है

1 पैट्रोलियम क्षेत्र जिसका विनियोजित पूजी मे भाग 17 2 प्रतिशत है से सभी सार्वजनिक उद्यमो द्वारा अर्जित कुल सकल लाभ का 32 2 प्रतिशत उपलब्ध होता है। स्पष्ट है कि पैट्रोलियम क्षेत्र का भाग इस क्षेत्र मे विनियोजित पूजी से कहीं अधिक है।

2 सरकारी स्वामित्वाधीन लाए गए क्षेत्र (अर्थात् वस्त्र उद्योग) का भाग कुल विनियोजित पूजी का 0 4 प्रतिशत है परन्तु इनका कुल सकल लाभ मे योगदान ( ) 3 0 प्रतिशत है। दूसरे शब्दो मे यह तर्क कि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो का अपेक्षाकृत निम्न निष्पादन का कारण निजी क्षेत्र द्वारा बीमार इकाइयो का भार सार्वजनिक क्षेत्र पर डाल देना अतिशयोक्ति है। इस क्षेत्र का कुल अतिरेक जनन (*Surplus generation*) मे अनुपात बहुत ही कम है।

3 गैर पैटोलियम विनिर्माण क्षेत्र उद्यमो और सेवा क्षेत्र उद्यमो का निष्पादन सकल प्रत्याय दर के लक्षित स्तर से नीचे रहा है। चूंकि इन दो क्षेत्रो मे विनियोजित पूजी का भाग कुल विनियोजित पूजी का 80 प्रतिशत है। इसलिए उपचार प्रक्रिया के लिए इनकी कमजोरियो को पहचानने के लिए गहन जाच की आवश्यकता है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो की विनियोजित पूजी पर प्रत्याय दर से यह बात स्पष्ट है कि ऐसे उद्यम जो 12 प्रतिशत से अधिक दर से सकल लाभ प्राप्त कर रहे हैं उनमे 1994 95 के दौरान 66 429 करोड रुपये विनियोजित किए गए हैं जो सभी केन्द्रीय सरकारी उद्यमो के कुल विनियोग का 41 2 प्रतिशत है। इस वर्ग मे पैटोलियम रसायन और औषधिया भारी मध्यम तथा हल्की इजीनियरिंग और दूर सचार आते है। 1 61 311 करोड रुपये के कुल विनियोग मे से ऐसे उद्योग जिनकी प्रत्याय दर 8 प्रतिशत से कम है के विनियोग का भाग 17 169 करोड रुपये अर्थात् विनियोजित पूजी का 8 प्रतिशत है। यह सार्वजनिक क्षेत्र का अपरिशोधनीय क्षेत्र (Non redeemable area) है। परन्तु 8 से 12 प्रतिशत *प्रत्याय दर के अन्तर्गत आने वाला क्षेत्र कुल विनियोग का* 78 983 करोड रुपये है अर्थात् कुल विनियोजित पूजी का 49 प्रतिशत। इस क्षेत्र में हैं—कोयला, ऊर्जा, यातायात उपकरण व्यापार एव विपणन यातायात सेवाए तथा वित्तीय सेवाओ के साथ साथ खनन एव धातुए। यह उद्यमो का एक ऐसा वर्ग है जोकि शोधनीय (Redeemable) है इसे बेहतर बना कर पुनर्जीवित भी किया जा सकता है अगर प्रबन्ध एव सचालन मे सरचनात्मक समायोजन (*Structural adjustment*) क्रियाशील बनाया जाए। दूसरे शब्दो मे आज की परिस्थिति से पता चलता है कि सार्वजनिक क्षेत्र के विनियोग का 85 प्रतिशत या तो योजना आयोग द्वारा निर्धारित मानदण्ड के ऊपर है या फिर पुनर्जीवित करने योग्य क्षेत्र के अन्तर्गत *आता है। इस समय आवश्यकता इस बात को है कि 8 से 12* प्रतिशत प्रत्याय दर वाले वर्ग को बचाने के लिए क्या उपाय किए जाए।

राज्यीय सरकारो के उद्यमो की परिचालन कुशलता

राज्यीय सरकारो के उद्यमो की परिचालन कुशलता (Operational efficiency) से स्पष्ट है कि वे लगातार घाटे मे चलने वाले उद्यम हैं। इनमे से मुख्य दोषी है। राज्यीय विद्युत बोर्ड सिचाई वर्क्स और सडक परिवहन निगम।

चार वर्षों की अवधि (1985 86 से 1988 89) के *दौरान इन राज्यीय सरकारी उद्यमो का कुल घाटा 14 000* करोड रुपये से अधिक था। यह स्थिति बडी ही निराशाजनक है और यह निम्न निष्पादन ओर इस स्थिति को दूर करने के *लिए किसी प्रकार की उपचारी कार्रवाई न करने का* सचयी परिणाम है। परिचालन अकुशलता के साथ साथ अनार्थिक कीमत (Uneconomic price) नीतियो फार्म लाबी के उभार तथा किसानो की राजनीतिक दलाली और वोट बैको को बनाए रखने का महत्व इन सभी कारणतत्वो ने मिलकर ऐसी लज्जाजनक स्थिति को जन्म दिया है।

एडम स्मिथ अध सरचना की व्यवस्था को सरकार का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व मानते थे। इस प्रकार की अध सरचना और सार्वजनिक वस्तुओ की लागत और वित्त प्रबन्ध के *सामाजिक तौर पर अनुकूलतम उपाय* ढूढने मे आधुनिक अर्थशास्त्रियो ने बडा प्रयास किया है। सेवाओ और अध सरचना को तैयार करने के कार्य को मार्शल ने 'बाह्य मितव्ययताओ (External economies) की सज्ञा दी है। निजी उत्पादकता को बढाने के लिए ऊर्जा जनन सिचाई ओर शहरी यातायात

(सूची निरन्तर बढ रही है) महत्त्वपूर्ण सामाजिक आदान हैं। हमारा अनुभव आस्टेलिया और अधिकतर योरोपीय देशों के समान ही है।

बचत के लिए निम्न अशदान

सेन्टर फार मानीटरिंग इंडियन इकानामी (Centre for Monitoring Indian Economy) द्वारा की गई समीक्षा ने राष्ट्रीय बचत में सार्वजनिक क्षेत्र के निम्न अशदान की भर्त्सना निम्नलिखित शब्दो मे की है-- 'बचत के रूप में सार्वजनिक क्षेत्र की असफलता प्रखर है। 39 वर्ष के आयोजन के पश्चात भी राष्ट्रीय बचत मे सार्वजनिक क्षेत्र का भाग केवल 8 प्रतिशत है और यह भी अशत भारी कराधान और रिजर्व बैंक के अर्द्ध-अवास्तविक (Semi Fictitious profits) का परिणाम है। राष्ट्रीय बचत का 92 प्रतिशत निजी क्षेत्र द्वारा प्राप्त होता है।"

आकडो से स्पष्ट है कि कुल देशीय बचत मे सार्वजनिक क्षेत्र के भाग मे गिरावट आयी है अर्थात् 1950 51 मे 17 प्रतिशत से गिरकर 1989 90 मे यह 8 प्रतिशत हो गयी है परन्तु निजी निगम क्षेत्र का लाभ लगभग स्थिर रहा है अर्थात् 39 वर्षो की अवधि मे लगभग 9 या 10 प्रतिशत के आस पास। निजी क्षेत्र का रिकार्ड भी सतोषजनक नहीं है भले ही कुल बचत मे सार्वजनिक क्षेत्र के भाग मे तेजी से गिरावट आयी है। पारिवारिक बचत का निजी क्षेत्र की उपलब्धियो के भाग के रूप मे दावा करना बिल्कुल गलत है। सी एम आई ई ने इसलिए उल्लेख किया है-- 'निजी निगम क्षेत्र ने अपने अतिरेक जनन के भाग में या दूसरे अन्य क्षेत्रों पर अपनी निर्भरता मे कोई परिवर्तन नहीं दिखाया।"

क्षमता उपयोग निष्पादन के सूचकाक के रूप मे

सार्वजनिक क्षेत्र के निष्पादन का एक बडा उपयोगी सूचकाक क्षमता उपयोग (Capacity utilisation) की मात्रा है। अगर इस कसौटा से परखा जाए, तो सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो मे मिश्रित रिकार्ड की छवि देखने का मिलती है।

इंडियन आयल कार्पोरेशन की परिष्करणशालाओ मे रूक्ष तेल की शुद्धि की मात्रा में लगातार वृद्धि हुई और यह 1980 81 के 258 लाख टन से बढकर 1990 91 मे 581 लाख टन तक पहुच गयी। क्षमता उपयोग जोकि 1985 86 मे 95 प्रतिशत था मे वृद्धि हुई और यह 1987 88 तक धारे धारे बढकर 100 प्रतिशत तक पहुच गया। असम की असामान्य स्थिति के परिणामस्वरूप इसे धक्का लगा और 1989 90 के दौरान क्षमता उपयोग मे गिरावट आयी और गिरकर 96 प्रतिशत हो गया। फिर भी तेल एव प्राकतिक गैस आयोग की उच्च सफलता ० ओर इंडियन आयल कार्पोरेशन के क्षमता उपयोग का शा करनी जरूरी है।

राष्ट्रीय वस्त्र निगम जिसने निजी क्षेत्र की बीमार कपडा मिलो को अपने अधिकार में लिया उनके निष्पादन में भी उन्नति हुई है। नियन्त्रण मे लेने के समय राष्ट्रीय वस्त्र निगम के कारखानो का क्षमता उपयोग 45 प्रतिशत था जो बढकर 1989 90 के दौरान कताई के क्षेत्र मे 95 प्रतिशत और बुनाई मे 85 प्रतिशत हो गया। राष्ट्रीय वस्त्र निगम समाज के कमजोर वर्गों द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले मोटे और मध्यम कपडे की कुल माग के 99 प्रतिशत का उत्पादन करता है। इसके अतिरिक्त यह विकेन्द्रीकृत क्षेत्र की सूत की कुल आवश्यकताओ के प्रमुख भाग को भी पूरा करता है।

अखबारी कागज मे समग्र क्षमता उपयोग 97 प्रतिशत था चाहे हिन्दुस्तान पेपर कोटायम (केरल) का रिकार्ड क्षमता उपयोग 108 प्रतिशत और मेसूर पेपर मिल्ज का 107 प्रतिशत था। नैशनल न्यूजप्रिन्ट एण्ड पेपर मिल्ज मे क्षमता उपयोग 76 प्रतिशत के निम्न स्तर पर रिकार्ड किया गया।

सार्वजनिक क्षेत्र मे 1988 89 मे नाइट्रोजन उर्वरको का क्षमता उपयोग 71 प्रतिशत था लेकिन निजी क्षेत्र मे यह 95 प्रतिशत तक ऊचा था और सहकारी क्षेत्र म इससे भी अधिक अर्थात् 104 प्रतिशत था। परन्तु फास्फैटिक उवरको मे सार्वजनिक क्षेत्र की क्षमता निजी क्षेत्र की अपेक्षा अधिक (82 प्रतिशत) थी। यहा भी साझे क्षेत्र का निष्पादन इससे बेहतर था अर्थात् 96 प्रतिशत क्षमता उपयोग।

सीमेन्ट के क्षेत्र मे 1988 मे सार्वजनिक क्षेत्र का क्षमता उपयोग केवल 54 प्रतिशत था जबकि निजी क्षेत्र में 76 प्रतिशत था। फिर भी सार्वजनिक क्षेत्र मे अधिक निष्पादन हो रहा था और इसका क्षमता उपयोग 86 प्रतिशत से अधिक था। सीमेंट कार्पोरेशन आफ इंडिया (मध्य प्रदेश) की मधार इकाई का क्षमता उपयोग 94 प्रतिशत राजबन (हिमाचल प्रदेश) 89.5 प्रतिशत, तमिलनाडु सीमेंट कार्पोरेशन 76 2 प्रतिशत था। इनके विपरीत यू पी स्टेट सीमेन्ट कार्पोरेशन मे क्षमता उपयाग केवल 47 7 प्रतिशत था।

हिन्दुस्तान कापर जोकि एक सार्वजनिक उद्यम है का क्षमता उपयोग 1985 86 के 65 प्रतिशत से बढकर 1989 90 मे 90 प्रतिशत हो गया।

हिन्दुस्तान मशीन टूल्ज सार्वजनिक क्षेत्र का एक अन्य उत्कृष्ट निष्पादन वाला उद्यम है जिसने विकसित तकनालाजी म कुशलता की दृष्टि से कार्तिमान स्थापित करने मे सराहनीय सफलता प्राप्त की है। क्षमता उपयोग मे इसका रिकार्ड बहुत बढिया है और यह तकनीकी एव प्रबन्धकीय कुशलता के विकास मे प्रभावशाली भडार की एक उत्तम मिसाल है। 1989 90 मे शुद्ध लाभ मे इसका भाग 42 करोड रुपये था।

सार्वजनिक क्षेत्र मे भारत हैवी इलेक्ट्रीकल्ज लिमिटेड एक अन्य उत्कृष्ट उत्पादक का उदाहरण है जिसके उत्पादन

के घेरे मे निम्नलिखित सम्मिलित है—भाप टरबाइन और जैनरेटर, हाइड्रो टरबाइन बायलर, टासफारमर, स्विचगियर इन्सुलेटर, बडे आकार की मोटर, कर्षण उपकरण टरबो सैट, कम्प्रैसर, औद्योगिक क्षेत्र के लिए वाल्व। छठी योजना मे भारत हैवी इलैक्ट्रीकल्ज लि का ऊर्जा-जनन क्षमता मे योगदान 89 प्रतिशत और सातवी योजना मे यह 80 प्रतिशत था। 1989-90 के दौरान 2,291 करोड रुपये की कुल बिक्री के कारण कर पूर्व-लाभ मे इसका योगदान 213 करोड रुपये था।

इसी प्रकार इलैक्ट्रोनिक्स कार्पोरेशन आफ इंडिया लि का उत्पादन एव क्षमता उपयोग मे असाधारण अच्छा रिकार्ड देखने मे आया है। 1989 90 मे इसकी बिक्री 268 करोड रुपए के रिकार्ड स्तर को छू गयी।

किन्तु दूर सचार एव हिन्दुस्तान टेली-प्रिन्टज लिमिटिड के क्षमता-उपयोग मे गिरावट आयी और यह 1988 89 के 60 प्रतिशत से कम होकर 1989 90 मे केवल 25 प्रतिशत रह गया। लेकिन भारतीय दूरभाष उद्योग ने बडा ही सराहनीय कार्य किया है और इसका क्षमता उपयोग 1988 89 मे दूरभाष के क्षेत्र मे 151 प्रतिशत स्ट्रोजर एक्सचेंज उपकरण मे 106 प्रतिशत और क्रासबार स्विचिग उपकरणो मे 86 प्रतिशत हो गया।

समस्त विश्लेषण का निष्कर्ष यह है कि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो के कार्यो पर काली स्याही पोत देना गलत होगा। निजी क्षेत्र के समान ही सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो मे उच्च निष्पादन वाले पाए जाते है जिनकी कुशलता, विकसित तकनीक को अपनाने और अतिरेक जनन (Surplus generation) के साथ साथ अपने कर्मचारियो के लिए बेहतर व्यवहार के लिए सराहना की जा सकती है। निस्संदेह इनमे सुस्त और निम्न निष्पादन वाले भी विद्यमान है। सार्वजनिक क्षेत्र को नयी दिशा देने के लिए ऐसी नीतियो की रूपरेखा तैयार करनी होगी जिससे सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यो के उचित एव वैज्ञानिक महत्व को समझा जा सके।

अनुसंधान और विकास

औद्योगिक विकास मे तकनीक को जज्ब करने एव अपनाने और अपनी आवश्यकता-अनुसार बेहतर तकनीक के विकास के लिए अनुसधान एव विकास का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। सार्वजनिक क्षेत्र ने 40 से अधिक राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं की स्थापना की है। भले हो निजी क्षेत्र के कितने हो गुणो का बखान क्यो न किया जाए, परन्तु इसके द्वारा अनुसधान एव विकास की उपेक्षा निन्दनीय है।

1989-90 मे अनुसधान एव विकास व्यय सकल देशीय उत्पाद का 1 प्रतिशत था जोकि विकसित देशो द्वारा प्राप्त स्तर अर्थात् सकल देशीय उत्पाद के 2 से 5 प्रतिशत से कहीं नीचा है। भारत इस सम्बन्ध मे काफी पीछे है। लेकिन इससे भी अधिक दु खदायी तथ्य यह है कि तथाकथित गत्यात्मक निजी क्षेत्र का भारत मे अनुसधान एव विकास पर कुल व्यय मे भाग केवल 11 प्रतिशत है।

2. सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में प्रत्याय दर की तुलना

सार्वजनिक क्षेत्र के विरुद्ध सबसे अधिक गभीर आलोचना इसकी निम्न प्रत्याय दर है। इसके अन्तर्गत बडी सख्या मे हानि उठाने वाली इकाइया हे जिनके भारी सचयी घाटे है और जिनका भुगतान अन्तत राज्य कोप के सामान्य राजस्व द्वारा पूरा किया जाता है। इस प्रकार की आलोचनाओ की छानबीन करनी होगी।

रिजर्व बैंक कम्पनी अध्ययनो मे विनिगोजित पूजी की जिस परिभाषा का प्रयोग करता है वह लोक उद्यम ब्यूरो द्वारा अपनायी गयी परिभाषा से भिन्न हे। सी एम आई ई ने रिजर्व बेंक की परिभाषा पर लोक उद्यमो का प्रयोग कर तुलनीय आकडे प्रस्तुत करने का प्रयास किया हे। (देखिए तालिका 1)

सी एम आई ई के अनुसार—"कुल शुद्ध परिसम्पत् की प्रत्याय दर के रूप मे सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो का निष्पादन (अर्थात् विनियोजित पूजी) निजी निगम क्षेत्र के निष्पादन की तुलना मे प्रभावशाली नहीं हे। जेसा कि तालिका 1 से पता चलता है कि 1989 90 के दोरान केन्द्र सरकार के उद्यमो मे कुल शुद्ध परिसम्पतो की प्रत्याय दर लगभग 6 5 प्रतिशत थी जोकि निजी क्षेत्र की चुनीदा कम्पनियो मे कुल विनियोग से प्राप्त 11 3 प्रतिशत प्रत्याय-दर की तुलना मे कही कम थी। किन्तु 1980 81 मे सी एम आई ई की चुनींदा निजी क्षेत्र की ओद्योगिक कम्पनियो की प्रत्याय दर 12 3 प्रतिशत थी जबकि केन्द्र सरकार के उद्यमो की 4 3 प्रतिशत की प्रत्याय दर तुलना मे बहुत ही कम थी।"

सी एम आई ई द्वारा निकाले गए निष्कर्ष दोषपूर्ण है क्योंकि ये 1980 81 और 1989 90 के दोरान केन्द्र सरकार के उद्यमो और सी एम आई ई की चुनादा निजी क्षेत्र की कम्पनियो को सर्वोत्तम वर्षो से तुलना करता है ओर परिणामस्वरूप इसमे अतिश्योक्ति विद्यमान है। सी एम आई ई द्वारा निकाले गए निष्कर्षो को मर्यादित करने की आवश्यकता है। इसी कारण हमने छठी योजना की अवधारणा (1980-81 से 1984 85) ओर सातवीं योजना को अवधारणा (1985 86 से 1989-90) के लिए औसत प्रत्याय-दर का परिकलन किया है। हमारे परिकलन से निम्नलिखित निष्कर्ष उभरते है—

1 सी एम आई ई की निजी क्षेत्र की चुनींदा कम्पनियो के विनियोग पर प्रत्याय दर मे निरन्तर गिरावट आयी है और

तालिका 1 सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र मे विनियोजित पूजी पर तुलनात्मक प्रत्याय दरे (1980 81 से 1988-89)

	विनियोजित पूजी (करोड रुपये)		सकल लाभ (करोड रुपये)		सकल लाभ विनियोजित पूजी पर प्रतिशत के रूप मे	
वर्ष	केन्द्र सरकार के उद्यम	CMIE द्वारा चुनींदा निजी क्षेत्र की कम्पनिया	केन्द्र सरकार के उद्यम	CMIE द्वारा चुनींदा निजी क्षेत्र की कम्पनिया	केन्द्र सरकार के उद्यम	CMIE द्वारा चुनींदा निजी क्षेत्र की कम्पनिया
1980 81	32,744	17 837	1418	2,203	4.3	12.3
1981 82	40 704	21,224	2,654	2,382	6.5	11.2
1982 83	50 518	25 184	3465	2,469	6 9	9 8
1983 84	59,366	30 162	3,565	2,847	6 0	9 4
1984 85	70 104	34 702	4628	3,336	6 6	9 6
1980 81 से 1984 85 के लिए विनियोग पर औसत प्रत्याय दर					6 1	10 5
1985 86	80 639	39810	5 287	3801	6 6	9.5
1986 87	98 818	46 762	6,521	3 840	6 6	8 2
1987 88	112,351	51 353	6940	4 169	6 2	8 1
1988 89	132 886	65 204	8,572	6 117	6 5	9 4
1989 90	162,434	64 610	10623	7284	6.5	11 3
1985 86 से 1989 90 के लिए विनियोग पर औसत प्रत्याय दर					6.5	9 3

स्रोत CMIE Public Sector in India (May 1991) से सकलित।

यह 1980 81 के 12 3 प्रतिशत से कम होकर 1987 88 मे 8 1 प्रतिशत हो गयी। किन्तु इसके पश्चात् प्रत्याय दर मे वृद्धि होने लगी और यह 1989 90 मे 11 3 प्रतिशत तक पहुच गयी। परन्तु 1980 81 के वर्ष को छोडकर जब केन्द्र सरकार के उद्यमो में विनियोग पर प्रत्याय दर मे कमी व्यक्त हुई (अर्थात् 4 3 प्रतिशत) 1981 82 से 1989 90 की अवधि मे प्रत्याय दर मे स्थिरता आयी और यह लगभग 6 और 7 प्रतिशत के बीच थी।

2 छठी योजना के दौरान सी एम आई ई का निजी कम्पनियो में विनियोग पर प्रत्याय दर 10 5 प्रतिशत थी और सातवीं योजना के दौरान यह गिरकर 9 3 प्रतिशत हो गयी। इसके विरुद्ध छठी योजना की अवधि मे इसके सार्वजनिक उद्यमो मे प्रत्याय दर 6 1 प्रतिशत थी सातवीं योजना के दौरान बढकर 6 5 प्रतिशत हो गयी।

3 फिर भी सी एम आई ई की निजी क्षेत्र की चुनींदा कम्पनियो की तुलना मे केन्द्र सरकार के उद्यमो मे प्रत्याय दर कम थी।

चूँकि सी एम आई ई सर्वेक्षण केवल 100 कम्पनियो तक ही सीमित था इसलिए इससे निजी क्षेत्र का सम्पूर्ण चित्र स्पष्ट नहीं होता। इस उद्देश्य की दृष्टि से इससे बेहतर तुलनात्मक स्पष्टीकरण के लिए हम 1953 सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनियो (गैर सरकारी गैर वित्तीय) के भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किए गए सर्वेक्षण को प्रस्तुत कर रहे हैं। भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार इस अध्ययन मे विभिन्न उद्योग वर्गो की कम्पनिया और आकार जिनमे छोटी कम्पनिया भी शामिल हे ली गयी हैं।

निजी क्षेत्र का रिकार्ड जो भारतीय रिजर्व बैंक सर्वेक्षण ने 1953 सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनियो के वित्त विषय मे प्रस्तुत किया है वह निजी क्षेत्र के लिए अपेक्षाकृत निराशाजनक चित्रण है। प्रथम लाभ कमाने वाली कम्पनियों की सख्या जो 1985 86 मे 1386 थी कम होकर 1987 88 मे 1 164 रह गयी। जिससे निजी क्षेत्र की कम्पनियो के वित्त में गिरावट का सकेत मिलता है।

हानि उठाने वाली कम्पनियो का अनुपात जो 1985 86 मे 30 प्रतिशत था, 1987 88 मे बढकर 40 प्रतिशत हो गया। यह एक अपेक्षाकृत असतोषजनक प्रवृत्ति थी। दूसरे,

कुल परिसम्पत के प्रतिशत के रूप मे सकल लाभ मे गिरावट की प्रवृत्ति देखने मे आयी और यह 1985 86 के 8 8 प्रतिशत से गिरकर 1987 88 मे 7 4 प्रतिशत हो गयी। तीसरे, बिक्री के प्रतिशत के रूप मे सक्ल लाभ मे गिरावट आयी और यह 1985 86 के 9 प्रतिशत से गिरकर 1987 88 मे 7 8 प्रतिशत हो गया।

अगर निजी क्षेत्र की कम्पनियो के वित्त के परिणामा की केन्द्र सरकार के उद्यमो से तुलना की जाए, तो स्पष्ट निष्कर्ष प्राप्त होता है कि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो की तुलना मे निजी क्षेत्र की कम्पनिया केवल अशमात्र बेहतर है। इसके अतिरिक्त अगर इस तथ्य को ध्यान मे रखा जाए कि जहा निजी क्षेत्र का कम्पनियों के समक्ष केवल एक ही उद्देश्य है—"अधिकतम लाभ कमाना वहा सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनिया कई उद्देश्यो को पूरा करने का प्रयास करती हे और बहुत से सीमाबन्धनो मे कार्य करतो है। प्रथम सार्वजनकि उद्यमो को बहुत से सामाजिक दायित्वा को पूरा करना होता है। उन्हे ऐसी मजदूरी और वेतन भी देना होता है जिसका निश्चयन बाजार शक्तियो द्वारा नहीं होता बल्कि राज्यीय नीतियो द्वारा निश्चित मानदण्डा के आधार पर होता है। वे उत्पादन की लागत मे वृद्धि हो जाने पर कीमतो मे परिवर्तन करने के लिए स्वतन्त्र नहीं है। अधिक कर्मचारियो की नियुक्ति के परिणामस्वरूप उन्हे हानि उठानी पडती है और निर्णय लेने के लिए उन्हे पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त नहीं है। इन सभी सीमाबन्धनो के साथ अगर निजी क्षेत्र की कम्पनियो की तुलना मे सार्वजनिक उद्यमा की विनियोग पर प्रत्याय दर कम है तो इससे केवल यह बात स्पष्ट होती है कि बेहतर सचालन कुशलता लाने के मार्ग मे बहुत सी अडचने रुकावट बन जाती हैं।

3 विश्व मे निजीकरण की लहर

1980 81 के दशक के दौरान समाजवादी अर्थव्यवस्थाओ के मायाजाल के टूटने के कारण विश्व में मिश्रित पूजीवादी अर्थव्यवस्थाओ मे सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति मोह भग होने की प्रक्रिया त्वरित हो गयी। परेस्त्रोइका (Perestroika) के आधान आर्थिक सुधार की जो लहर सोवियत सघ मे चालू हुई यह पूर्वीय योरोप में तेजी से फैल गई। चाहे साम्यवादी चीन ने अपने राज्यतन्त्र मे लोकतन्त्र चालू करने की लहर को सख्ती से कुचल दिया परन्तु इसने स्वयं आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया चालू कर दी क्योकि यह बात महसूस की जा रही थी कि सार्वजनिक क्षेत्र कुशलता और पूजी की उत्पादिता को अनुकूलतम रूप मे नहीं बढाता। समाजवादी अर्थव्यवस्थाए एकाधिकारी नियन्त्रण की प्रणाली के अधीन कार्य कर रही थीं और प्लान्ट प्रबन्धको (Plant managers) द्वारा प्रस्तावित मनाभ लागत कीमत निर्धारण (Cost plus pricing) की नीति पर अमल कर रही थीं। बाजार प्रक्रिया की अनुपस्थिति के कारण वे प्रतियोगात्मक पर्यावरण के उपलब्ध न होने के परिणामस्वरूप कुशल कीमत निर्धारण की प्रक्रिया का विकास नहीं कर पायीं। मिश्रित पूजीवादी अर्थव्यस्थाओ मे काफी बडी सख्या मे उद्यम एकाधिकार की परिस्थितियो के आधीन कार्य करते है और इस कारण वे अत्यधिक नौकरशाही और निर्णय के केन्द्रीकरण का शिकार बन जाते है जिसके परिणामस्वरूप अत्यधिक विलम्ब के नतीजे के तौर पर लागत मे वृद्धि हो जाती है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो को जिन मुख्य समस्याओ का सामना करना पड़ता है वे निम्नलिखित हैं—

1 समाजवादी अर्थव्यवस्थाए जो प्रबन्ध की कमान प्रणाली (Command system) के आधीन कार्य करतीं हैं उनमे सार्वजनिक उद्यमा के प्रबन्धका के पास पहल की बहुत ही थोडी गुजाइश है। भारत जसे विकासशील देश मे जहा सार्वजनिक क्षेत्र का आकार काफी बडा है प्रबन्ध निदेशको की निर्णय करने की स्वतन्त्रता अत्यन्त सीमित है। अत उन्हे मंत्रिया या मत्रालया पर निर्भर करना पडता है अर्थात् अपने राजनीतिक आकाओ पर। परिणामत इस कारण अत्यधिक विलम्ब क्षमता उपयोग का अभाव और निम्न उत्पादिता बने रहते हैं।

2 बहुत से सार्वजनिक उद्यमा में कीमत निर्धारण सम्बन्धी नीतिया विवेकपूर्ण आर्थिक आधार मे निर्देशित नहीं होती हैं। सार्वजनिक उद्यमो को सामाजिक एव राजनीतिक सीमाबन्धनो के कारण अनार्थिक कीमते (Uneconomic prices) वसूल करनी पडती हैं जिनके परिणामस्वरूप उन्हे घाटे होते है। यह परिस्थिति विशेषकर अध सरचना (Infrastructure) सम्बन्धी सार्वजनिक उद्यमा अर्थात् पावर, सिचाई सार्वजनिक परिवहन दूध के सभरण आदि मे पायी जाती है।

3 सार्वजनिक उद्यम नरम बजट विकल्पो (Soft bud get options) का वहन कर सकते है क्योकि उनके घाटो की पूर्ति सामान्य राजस्व से की जा सकती है। इनके विकल्प के उपलब्ध होने पर प्रतियोगिता की अनुपस्थिति के कारण सख्त निर्णय करन का दबाव लुप्त हो जाता है।

4 सार्वजनिक उद्यमा के प्रबन्धक कार्यविधि उन्मुख (Procedure oriented) हो जाते है न कि परिणाम उन्मुख और इसलिए वे कठिन निर्णय लेने मे कतराते हैं और साधारण निर्णयो को भी उच्च अधिकारियो की स्वीकृति के लिए भेज देते है ताकि घाटे की हालत मे जिम्मेदारी उन पर डाली न जा सके।

इन सभी कारणतत्वो के परिणामस्वरूप सार्वजनिक उद्यमो को अर्थसाहाय्य (Subsidies) उपलब्ध कराने का अश असहनीय अनुपात तक पहुच गया। उदाहरणार्थ पोलैंड

में राज्य स्वामित्वाधीन उद्यम क्षेत्र को बैंक प्रणाली के माध्यम से प्रत्यक्ष बजटीय हस्तातरण ओर अर्द्ध राजकोषीय साहाय्यो (Quasi fiscal subsidies) के रूप मे 1988 मे सकल देशीय उत्पाद के 5 5 प्रतिशत के समान राशि प्राप्त हुई और यह 1989 मे बढकर सकल देशीय उत्पाद के 9 2 प्रतिशत के समान हो गई। यूगोस्लाविया मे उद्यम क्षेत्र के सचयी घाटे 1988 मे सकल सामाजिक उत्पाद (Gross Social Product) के 5 7 प्रतिशत थे ओर ये 1989 मे बढकर 8 से 9 प्रतिशत तक पहुच गये।

एशिया ओर अफ्रीका के बहुत से विकासशील देशो मे सार्वजनिक उद्यमो मे होने वाले लगातार घाटो ने उनकी सरकारो को मजबूर कर दिया कि वे सावजनिक क्षेत्र के गुणों के राग अलापने बन्द कर दे।

राज्य स्वामित्वाधीन उद्यमो के अकुशल निष्पादन के विरुद्ध प्रतिक्रिया क रूप में, विश्वभर मे निजीकरण की लहर फैल गई। इन अर्थव्यवस्थाओ के समष्टि-आर्थिक सतुलन (Macro economic balance) मे असतुलन पैदा हो जाने के परिणामस्वरूप इनके भुगतान शेष म भी असतुलन उत्पन्न हो गया। इन अर्थव्यवस्थाओ को पश्चिम की उन्नत पूजीवादी अर्थव्यवस्थाओं विशेषकर सयुक्त राज्य अमेरिका पर निर्भरता के कारण इनमे आर्थिक सुधार की प्रक्रिया तेज हो गई। इन अर्थव्यवस्थाओं के द्वारा विश्व बैंक अन्तर्राष्टीय मुद्राकोष तथा अन्य वित्तीय सस्थानों पर निरन्तर दवाव के कारण कि उन्हे आर्थिक सकट से छुटकारा दिलाने के लिए सहायता दी जाए, इन्हे ओर भी मजबूर कर दिया हे कि वे निजीकरण को अपने पुनरुत्थान का नया दर्शन स्वीकार करे।

निजीकरण (Privatization) का अर्थ कई प्रकार से विस्तृत रूप मे लिया जाता है। सकुचित रूप मे निजीकरण का *अर्थ सार्वजनिक स्वामित्वाधीन उद्यमो मे निजी स्वामित्व* का प्रवेश है परन्तु विस्तृत रूप मे निजी स्वामित्व के अतिरिक्त (या स्वामित्व के परिवर्तन किए बिना भी) सार्वजनिक उद्यमों मे निजी प्रबन्ध एव नियन्त्रण को आरभ करना है। किन्तु निजीकरण को एक अधिक विस्तृत अवधारणा के रूप मे ही सोचना सही होगा। सार्वजनिक क्षेत्र से निजी क्षेत्र के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारो का हस्तातरण बिना विक्रय के भी किया जा सकता है और इसके महत्त्वपूर्ण प्रबन्धकीय गुह्यार्थ है। चीन की कृषि म सम्पत्ति अधिकारो के हस्तातरण का एक उदाहरण के रूप मे उल्लेख किया जाता है। *इसका अभिप्राय* निजी क्षेत्र को सार्वजनिक सेवाओं को उपलब्ध कराने सम्बन्धी अनुबन्ध के रूप मे हो सकता हे इसका अर्थ अविनियमन (Deregulation) के रूप मे हो सकता हे जिसका अर्थ यह हे कि जो क्षेत्र अब तक सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित थे वे निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए जाएँगे। दूसरे शब्दो मे निजीकरण समाज मे एक नयी सस्कृति के विकास का बोध कराता है *जिसमे विपणन प्रतिस्पर्द्धा ओर कुशलता आर्थिक* निर्णय करने के मार्गदर्शी सिद्धान्त बन जाते है। निजीकरण के क्षेत्र आधीन आने वाली क्रियाओ मे हैं पूर्ण अराष्ट्रीयकरण (Total denationalisation) परिसमापन (Liquidation) साझे उद्यमो की *स्थापना श्रमिक सहकारिताए,* निजी एजेन्सियो के अनुबन्ध पट्टेदारी (Leasing) वित्ताय पुनर्गठन (Financial restructuring)।

4 भारत मे निजीकरण के प्रयास

भारत म निजीकरण की लहर अस्सी के दशक मे विशेषकर श्री राजीव गाधी द्वारा सत्ता सभालने के बाद, उत्पन्न की गई किन्तु इसमें यू के के मारग्रेट थैचर द्वारा प्रतिबिम्बित दृढ सकल्प का अभाव था। भारत मे किसी भी राजनीतिक दल मे चाहे वह दक्षिण पथी है या मध्य मार्गी विचारधारा लिए हुए है इतना साहस नहीं कि वह निजीकरण का निष्ठा सिद्धान्त के रूप मे उल्लेख कर सके जेसा कि यू के मे 1987 मे कजरवेटिव पार्टी के घोषणापत्र मे किया गया। यह दावा किया गया कि नयी निजीकृत कपनियों मे उत्पादिता ओर लाभदायकता म तेजी से वृद्धि हुई है प्रतिस्पर्द्धा अर्थव्यवस्था को उपभोक्ताओ की आवश्यकताओ के प्रति सजग रहने के लिए बाध्य करती है यह कुशलता को प्रोन्नत करती है और लागतों को कम करने की ओर प्रेरणा देती है। रिडले रिपोर्ट (1987) के शब्दो मे "जब राष्टीयकृत उद्योग राष्ट को गर्दन को नस को ही दबा द तब एक ही विकल्प व्यवहार्य बन सकता है कि उन्हे बेच दिया जाए।" राजनीतिक दल सार्वजनिक क्षेत्र के सुधार की बात तो करते हे परन्तु सार्वजनिक क्षेत्र के विरुद्ध साधा प्रहार करने के लिए तेयार नहीं हैं।

नयी औद्योगिक नीति (1991) ने तो केवल काग्रेस पार्टी के इरादों का सूत्रपात किया है। इस नीति मे सार्वजनिक क्षेत्र के दायरे को सीमित करने और निजी क्षेत्र के दायरे के विस्तार का प्रयास किया गया है।

घोषणा और वास्तविकता

चाहे निजीकरण के बारे मे बडी बडी घोषणाए की जाती हैं परन्तु वास्तव मे निजीकरण के प्रस्तावो को कायरूप देना बहुत कठिन बनता जा रहा है।

पहला भारत मे सशक्त मजदूर सघो के विकास के कारण अराष्ट्रीयकरण के रूप मे निजीकरण को सभव नहीं समझा जाता। मत्रियो द्वारा बैको बीमा कम्पनियो पावर जनन कम्पनियो कोयले की खानो अक्षम सावजनिक इकाइयो डाक सेवाओ आदि के *अराष्ट्रीयकरण* (Denationalisation) सम्बन्धी वक्तव्य जनता की लिए

दिए जाते हैं परन्तु इनका तुरत और तीव्र विरोध मजदूर सघो द्वारा हुआ है जोकि बहुत अधिक सगठित है। इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन काग्रेस जोकि सत्तारूढ काग्रेस (इ) से जुडी हुई है वो भी अन्य मजदूर सघो (अर्थात भारतीय मजदूर सघ सेन्टर फॉर इण्डियन टेड यूनियन्स हिन्द मजदूर सभा और आल इण्डिया टेड यूनियन काग्रेस) के साथ अराष्ट्रीयकरण की सभी चालो का विरोध करना पडता है। परिणामत सरकार को घबराहट होनी आरभ हो जाती है और प्रधानमंत्री मज्दूर सघो की भावनाओ को दृष्टि मे रखते हुए यह घोषणा करते है कि सरकार किसी भी सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम के *अराष्ट्रीयकरण का विचार नहीं रखती।* दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि काग्रेस (इ) की वर्तमान अल्पसख्यक सरकार के सामने अराष्ट्रीयकरण या चिरकाल से हानि उठाने वाली सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयो के परिसमापन (Liquidation) का विकल्प तो लगभग बन्द सा ही है।

निजीकरण के मार्ग मे बहुत सी कठिनाइया हैं पहली लोकतत्रीय ढाचे मे श्रमिको के हितो को साफ उपेक्षा कर *निजीकरण को कार्यान्वित करना सभव नहीं।* दूसरे, शुद्ध परिसम्पत के बहीखाता मूल्य का प्रयोग सरकार द्वारा धोखाधडी है। तीसरे क्या निजीकरण का उद्देश्य निगमीयकरण (Corporatization) को बढावा देना है या इसका उद्देश्य निजीकरण के अन्य रूप अर्थात् श्रमिक सहकारिताओ (Workers Cooperatives) की सभावना की खोज करना भी है। कमानी ट्यूब्स का उदाहरण जो कि एक हानि उठाने वाला *निजी क्षेत्र का उद्यम था सुव्यक्त करता है कि श्रमिक* सहकारिता का प्रयोग पुनरुत्थान ला सकता है और श्रम प्रबन्ध के आधीन एक बीमार इकाई को लाभ कमाने वाली कम्पनी बनाया जा सकता है। ऐसे प्रयोगो को उचित प्रोत्साहन देना चाहिए। श्रमिको को पूर्वक्रयाधिकार (Pre emption) होना चाहिए कि वे किसी बीमार इकाई को कर्मचारी स्वामित्वाधीन निगम के रूप मे चला सके। यदि श्रमिक इकार कर दे तब सरकार इसका स्वामित्व किसी बडे उद्योगपति को सोप सकती है। अन्तिम निजीकरण सम्बन्धी सौदे पूर्णतया पारदर्शी होने चाहिए।

निजीकरण के विरोध का एक मुख्य कारण यह है कि इन प्रस्तावो मे बडे सहज भाव से श्रमिको की छटनी (Retrenchment) का सकेत किया जाता है। कुछ अनुमानो से यह स्पष्ट होता है कि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो मे 25 30 प्रतिशत अत्यधिक स्टाफ है। इसलिए निजीकरण की कुल्हाडी का पहला वार अतिरिक्त श्रमिको पर होना चाहिए।

विश्व बेक के एक विशेषज्ञ पेकाय एम स्टोरी ने यह अनुमान लगाया कि 40 जीर्ण रूप मे बीमार सरकारी उद्यमो को जिनमे 3 17 000 कर्मचारी लगे हुए हे बन्द करना होगा। यदि छंटनी किए गए कर्मचारियो को 1 लाख रुपये प्रति कर्मचारी की क्षतिपूर्ति दी जाए तो इसके लिए 3 200 करोड रुपये के बजट की व्यवस्था करनी होगी।

50 000 से 1 00 000 रुपये की क्षतिपूर्ति देकर *श्रमिको* की छंटनी करना श्रमिको द्वारा इस समस्या का समाधान नहीं माना जाता। टैक्सटाइल उद्योग द्वारा श्रमिको को राहत की राशि के भुगतान के कटु अनुभव का श्री सनत मेहता ने स्पष्ट रूप मे उल्लेख करते हुए लिखा है— जिन श्रमिको की नौकरी कारखाने बन्द होने के कारण छूट गयी उनके पास अपने गुजारे के लिए कुछ भी नहीं था उनको तो वह कानूनी भुगतान भी पूरा न दिया गया जो उनका वाजिब हक था। चाहे भारत सरकार ने सितम्बर 1986 मे टैक्सटाइल श्रमिक पुनर्वास कोष कायम किया किन्तु इस योजना से पहले तो काफी राहत उपलब्ध न करायी जा सकी क्योंकि बन्द इकाई की परिभाषा दोषपूर्ण थी। बाद मे मई 1989 मे इस योजना मे सशोधन किया गया और परिसमापन (*Liquidation*) के आधीन श्रमिको को कानूनी रूप मे ग्राह्य माना गया। सशोधन के बाद भी यह देखा गया कि अधिकतर मामलो मे श्रमिको को राहत प्राप्त करने के लिए 1 5 से 4 वर्ष तक इन्तजार करना पडा। प्रतीक्षा की अवधि इतनी लम्बी होने से इस योजना का वह उद्देश्य पराजित हो गया जिसके लिए इसका निर्माण किया गया था अर्थात् श्रमिको को सक्रमण काल के दौरान गुजारा करने के लिए साधन उपलब्ध कराए जाए इससे पहले कि वे विकल्प रोजगार ढूंढ सके।

विकसित देशो मे सुगठित *सामाजिक सुरक्षा प्रणालियो* के विरुद्ध भारत मे सामाजिक सुरक्षा प्रणाली का अभाव एक और सशक्त कारण है जो मजदूर सघो को छटनी या स्वेच्छापूर्ण सेवानिवृत्ति (Voluntary retirement) की योजनाओ के विरोध के लिए बाध्य करता है। नियोजक श्रमिको को दी जानी वाली क्षतिपूर्ति को एक बोझ मानते हैं और इस प्रकार वे सभी कानूनी एव गैर कानूनी उपायो का प्रयोग करते हे जिनसे इसके भुगतान को *अधिक से अधिक समय के लिए टाला जा* सके। नियोजको की इस प्रवृत्ति और सरकारी स्वामित्वाधीन उद्यमो मे दफ्तरशाही विलम्ब के कारण श्रमिको मे यह विश्वास पैदा नहीं हो सका कि उन्होने जिस एकमुश्त भुगतान का वायदा किया गया है वह प्राप्त भी हो सकेगा।

इस सारे विरोध के बावजूद, सरकार सार्वजनिक क्षेत्र की कुछ इकाइयो का स्वामित्व निजी क्षेत्र को हस्तातरित कर सकी है। *निजीकरण के इन प्रयासो मे उल्लेखनीय है* आलविन निसार आध्र प्रदेश की सार्वजनिक क्षेत्र की फर्म का महेन्द्रा को स्वामित्वान्तरण कर्नाटक *सरकार द्वारा चलायी* जाने वाली मेगलोर कैमिकल्स और फर्टिलाइजरज का यू बी गुप को सोपना और महाराष्ट्र स्कूटरस का बजाज आटो

(इण्डिया) को स्वामित्वान्तरण।

5 निजीकरण के विकल्प माडल (Alternative Models to Privatization)

टैक्सटाइल उद्योग मे कर्मचारी क्षतिपूर्ति के लिए 550 करोड रुपये की राशि और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो के लिए 3200 करोड रुपये की क्षति पूर्ति राशि अतिरिक्त श्रमिको की छटनी के लिए उपलब्ध होने के कारण यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या यह अधिक वाछनीय नहीं होगा कि इन सभी बीमार टैक्सटाइल एव अन्य सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो को कर्मचारी निगमो (Employee corporations) मे परिवर्तित का दिया जाए और कर्मचारी क्षतिपूर्ति के लिए उपलब्ध राशि इन निगमो को इस शर्त पर दी जाए कि वे बिना किसी कर्मचारी की छटनी किए इन कारखानो का आधुनिकीकरण करेगी। इस प्रकार का प्रयोग निजीकरण के सक्रमण की क्रिया को सुविधाजनक बना सकता है और साथ मे कर्मचारी हितो को निगम के हितो के साथ जोड सकता हैं यदि श्रमिक इन उद्यमो का क्षमता उपयोग (Capacity utilisation) उन्नत कर सकते हैं तो वे न केवल इनमे घाटो को ही समाप्त कर पाएंगे बल्कि वे इनमे लाभ भी पैदा कर सकेगे। कम्पनी के हिस्सों को धारे धीरे सरकार और कर्मचारी निगम के प्रतिनिधियो के बीच तय शर्तों के अनुसार कर्मचारियो को हस्तातरित कर देना होगा। यदि कर्मचारी निगम इस राशि के साथ एक नया उद्यम स्थापित करना चाहता है तो इसे इसकी इजाजत होनी चाहिए क्योंकि पूजी-श्रम अनुपात से सकेत मिलता है कि 80000 से 100000 रुपये एक व्यक्ति के लिए रोजगार जनित करने के लिए काफी हैं। अत बल इस बात पर नहीं होना चाहिए कि एक झटके मे फालतू श्रमिको की छटनी कर दी जाए, बल्कि इस बात पर बल देना चाहिए कि रोजगार के अधिक उत्पादक क्षेत्र ढूढे जा सके या वर्तमान इकाइयो के क्षमता उपयोग को उन्नत किया जा सके ताकि श्रमिको का रोजगार बना रहे। दूसरे शब्दो मे रोजगार नीति को छटनी नीति पर तरजीह देनी चाहिए।

श्री आर गणपति भूतपूर्व अध्यक्ष औद्योगिक एव वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड का विचार है-- 'यदि कई और प्रबन्धको को उनकी कम्पनियो के नियत्रण से हटा लिया जाए और उनके स्थान पर कर्मचारी सहकारिताए स्थापित कर दी जाए तो प्रवर्तको (Promoters) को बीमार इकाइयो के पुनरुत्थान के लिए प्रेरित किया जा सकता है।" ऐसी योजनाए कमानी टयूब्स न्यू सेन्ट्रल जूट एण्ड मेवाड टेक्सटाइल्ज मे चालू हैं और बोर्ड ऐसी ही पुन स्थापन योजनाओ को अन्य कम्पनियो मफतलाल इजानियरिंग, आई ई सी इण्डिया, हायस्ट और मैक और कलकत्ता कैमिकल्ज मे आरभ करने पर विचार कर रहा है। पूर्व प्रधानमत्री श्री नरसिम्हा राव ने श्री गोपेश्वर, महासचिव इण्डियन नेशनल टेड यूनियन काग्रेस के प्रतिनिधि मण्डल से बातचीत करते हुए यह उल्लेख किया था कि बीमार इकाइयो के पुनरुत्थान के लिए श्रमिक सहकारिताओ (Workers Co operatives) के प्रस्ताव को कार्यरूप देने की चेष्टा करनी चाहिए और इसके लिए इकाइयो का वित्तीय पुनर्गठन करना चाहिए।

रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने औद्योगिक रुग्णता के कारणो के बारे मे एक अध्ययन किया है। 378 बडी बीमार इकाइयो के सम्बन्ध मे उपलब्ध कराए गए आकडो से पता चलता है कि 66 प्रतिशत औद्योगिक रुग्णता (Industrial sickness) का कारण कुप्रबन्ध (Mismanagement) है। श्रमिको को केवल 2 प्रतिशत कम्पनियो मे इसके लिए जिम्मेदार ठहराया गया। ऐसी परिस्थिति मे क्या यह उचित है कि छटनी या बेरोजगारी के रूप मे दण्ड देने के लिए कर्मचारियो को मुख्य निशाना बनाया जाए, इसकी तुलना मे कि अकुशल प्रबन्ध की अपेक्षा अधिक सक्षम और कुशल प्रबन्ध से इसका प्रतिस्थापन होना चाहिए। फालतू श्रमिको से छुटकारा पाने का उपचार सामाजिक दृष्टि से अनुचित एव अन्यायपूर्ण है।

श्री आर. गणपति 1 दिसम्बर, 1991 को इकनामिक टाइम्स से एक साक्षात्कार मे उल्लेख किया— श्रम कर्मचारी सहकारी समितिया बनाने के लिए बहुत इच्छुक है। बहुत सी परिस्थितियो मे ऐसा करना सभव है। किंतु एक या दो छोडकर अन्य राज्यीय सरकारे कर्मचारी सहकारिताओ के समर्थन के लिए उत्साही नहीं हैं।"

जब भी औद्योगिक एव वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (BIFR) सहकारी समिति बनाने की योजना तैयार करता हे तो बैंक वित्तीय सस्थान और राज्यीय सरकारे धनराशि उपलब्ध कराने मे विलम्ब कर देती हैं। न्यू सेन्ट्रल जूट कम्पनी के बारे मे बैंक ने स्वीकृत योजना को 9 महीने तक कार्यान्वित नहीं किया। इस बीच कर्मचारियो ने अपने निजी ससाधनो से 10.5 करोड रुपये एकत्र किए जो कि मुख्यत उनके पूर्वोपायी कोष से प्राप्त किए गए ताकि इकाई को चालू रखा जा सके। हमे बैंको तथा वित्तीय सस्थानो के अध्यक्षो को धमकी देनी पडी कि उनके खिलाफ आपराधिक कार्रवाई करनी पडेगी यदि वे धनराशि उपलब्ध नहीं कराते।"

श्री गणपति ने इस दु खद तथ्य पर भी प्रकाश डाला 'यदि कर्मचारी सहकारी समिति कम्पनी को अपने स्वामित्वाधीन लेती है तो उसे भूतकाल के दायित्वो को भी साथ ही लेना पडता है। परन्तु मुझे इसका कोई कारण नजर नहीं आता कि कर्मचारी सहकारी समिति पर पिछले प्रबन्ध के गुनाहो का बोझ क्यो डाला जाए।"

प्रधानमत्री कुछ भी घोषणाए करते रहे किन्तु सत्य यह है कि सरकार द्वारा कर्मचारी सहकारिताओ को सफल बनाने के लिए उचित परिस्थितिया कायम करने की दिशा मे कोई गभीर प्रयास नहीं किया गया।

घाटे वाली या लाभ कमाने वाली इकाइयो का निजीकरण

प्रश्न उठता है कि कौन सी इकाइयो का निजीकरण किया जाए घाटे वाली या लाभ कमाने वाली। इस तर्क मे अधिक बल दिखायी नहीं देता कि लाभ कमाने वाली इकाइयो का निजीकरण किया जाए क्योकि पूरा तर्क इकाई के वित्तीय स्वास्थ्य पर निर्भर करता है जिसे प्रत्याय दर के रूप मे मापा जाता है। परतु सरकार ऐसी इकाइयो की 20 प्रतिशत हिस्सा पूजी पारस्परिक निधियो अथवा वित्तीय सस्थाओ को हस्तातरित करना चाहती है ताकि बजट घाटे को कम करने के लिए 2 500 करोड रुपये की राशि प्राप्त की जा सके। जहा तक इसका सम्बन्ध है यह तो ठीक है। परन्तु मजदूर सघो के मन मे एक सन्देह है कि वित्तीय सस्थान इसे बाद मे पब्लिक को बेच देगे (जिसका अर्थ है बडे व्यापारिक घरानो को)। अत यह सरकार की एक बहुत ही बडी चाल है जिसमे दो चरणो में निजी क्षेत्र को चोर दरवाजे से प्रवेश कराने की याजना बनायी गयी है। इसके परिहार की आवश्यकता है।

परन्तु एक **और प्रश्न** उठाया जा सकता है कि निजी क्षेत्र घाटे वाली बीमार इकाइयो को लेने के लिए क्यो तैयार हो जाएगा ? निजी क्षेत्र बीमार इकाई मे कोई दिलचस्पी नहीं रखता। वह तो इस बहाने से इन इकाइयो के साथ जुडी हुई वास्तविक जायदाद (Real Estate) और अन्य भौतिक परिसम्पत्तियो को हथियाना चाहता है ताकि उस स्थान का प्रयोग करके बहुत कम कीमत पर नयी व्यापारिक इकाई कायम कर सके। इसका अभिप्राय यह है कि निजी क्षेत्र का मुख्य उद्देश्य तो सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो मे वाणिज्यिक रूह फूकना है परन्तु ये उद्देश्य प्राप्त ही न हो सके क्योकि निजी क्षेत्र की प्राथमिकता बीमार इकाइयो का पुनरुत्थान करने की न हो। इसी कारण तो फालतू श्रमिको के बोझ को कम करने के लिए एकमुश्त भुगतान द्वारा श्रमिको को स्वैच्छिक रूप मे सेवा निवृत करने या उनकी छटनी करने पर बल दिया जाता है। कुछ परिस्थितियो मे यह योजना कामयाब भी हो सकती है यदि श्रमिको को एक मुश्त क्षतिपूर्ति के रूप मे वेतन तथा भत्ते के 5 वर्ष के बराबर राशि प्रदान की जाए। इसके अतिरिक्त श्रम के लिए सुरक्षा जाल (Safety net) उपलब्ध हो सकता है जिसके आधार पर श्रमिक या तो वैकल्पिक नोकरी ढूढ सकता है या उत्पादन की छोटे पैमाने की इकाई स्थापित करके आजीविका कमा सकता है। परन्तु इस सक्राति की सेवा के प्रत्येक पूरे वर्ष के बदले केवल 1 मास के वेतन के आधार पर स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति क्षतिपूर्ति देकर सुविधाजनक नहीं बनाया जा सकता इसके लिए श्रमिको की 5 वर्ष की कुल आय को आधार बनाना न्यायोचित होगा। इसी कारण कम आयु वाले कर्मचारी स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति का विरोध करते है।

किन्तु कुछ बडे सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम है जैसे दिल्ली परिवहन निगम राज्यीय बिजली बोर्ड सडक परिवहन एव राज्यीय सिचाई परियोजनाए जिनका सरकार के लिए निजीकरण करना बहुत मुश्किल होगा। दिल्ली परिवहन निगम लम्बे समय से घाटे पर चल रहा है और इसका एक मुख्य कारण बहुत कम भाडा है। परन्तु सरकार की राजनीतिक मजबूरिया इसे किराए मे वृद्धि करने से रोकती हैं परन्तु इस सम्बन्ध मे सरकार ने निजीकरण को प्रोत्साहन देने के लिए एक नयी नीति अपनायी है। सरकार निजी वाहनो को परमिट द्वारा विभिन्न मार्गों पर कार्य करने की इजाजत दे रही है और उन्हे सरकार को इस अधिकार देने के लिए एक दातव्य (Charge) अदा करना पडता है। इस प्रकार निजी वाहनो की सख्या बढाकर एक ओर तो सरकार पैसा वसूल कर रही है और दूसरी ओर स्थानीय परिवहन का बेडा बढा रही है। निजी बसे अधिक किराया वसूल करती है और इस प्रकार किराया बढाने मे भी सरकार सफल हो गयी है। साथ साथ जो दिल्ली परिवहन निगम की बसे पुरानी हो रही है सरकार उनकी बजाए नयी बसे नहीं खरीद रही हैं। इस प्रकार दिल्ली परिवहन निगम के आधीन बसो की कुल सख्या कम हो रही है और निजी क्षेत्र के आधीन चलने वाली बसो की सख्या बढ रही है। अत सरकार ने बडी चतुराई से और धीरे धीरे अपना बोझ हल्का कर लिया है। इसे धीमी गति से लाया गया निजीकरण ही कहा जा सकता है।

साझे उद्यम (Joint Ventures)

सरकार साझे उद्यम बनाकर भी स्वामित्व का हस्तातरण कर रही है। यह हिस्सा पूजी के विक्रय द्वारा किया जा सकता है। मोटेतौर पर तीन प्रकार के प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए है—

1 निजी क्षेत्र के लिए 25 प्रतिशत स्वामित्व। इसमे बैक पारस्परिक निधिया (Mutual funds) निगम या व्यक्ति और कर्मचारियो को भी 5% की सीमा तक हिस्से हस्तातरित किए जा सकते हैं। इसमें सार्वजनिक क्षेत्र का निजी क्षेत्र पर वीटो बना रहता है।

2 सरकार 51 प्रतिशत हिस्सा पूजी अपने पास रखती है और 49 प्रतिशत निजी क्षेत्र को बेच देती है। सार्वजनिक क्षेत्र के अनिवार्य स्वरूप को कायम रखते हुए यह निजी क्षेत्र

के स्वामित्व को बहुत बडा हिस्सा दे देती है।

3 74 *प्रतिशत हिस्सा-पूंजी निजी क्षेत्र को हस्तांतरित* कर दी जाती है और सरकार 26 प्रतिशत भाग अपने पास रखती है परन्तु इसके साथ सरकार को यह वीटो अधिकार प्राप्त होगा कि वह मुख्य निगमीय निर्णयो को अल्पसख्यक होते हुए भी नियन्त्रित कर सकेगी।

निजीकरण के ये तीन रूप सार्वजनिक क्षेत्र से निजी क्षेत्र के स्वामित्व हस्तातरण की तीन विभिन्न मात्राओ को व्यक्त करते हैं। इन माडलों की मूल मान्यता यह है कि स्वामित्वान्तरण से नयी शक्तिया उत्पन्न होगी जो साझे उद्यमो को उनकी परिसम्पतो की उत्पादिता बढाने मे सहायक होगी और वे *अधिक लाभदायक बन जाएगे। इनमें से 75 प्रतिशत राजकीय* स्वामित्व वाले प्रकार के बारे में सन्देह किया जाता है कि वह इच्छित परिणाम उपलब्ध करा सकेगा। कारण यह है कि भले ही निजी क्षेत्र के अल्पसख्यक सहयोग से कुछ ससाधन तो प्राप्त हो सकेगे परन्तु कार्यात्मक कुशलता के रूप मे परिवर्तन लाने के लिए परिस्थितियो मे कोई तबदीली नहीं होगी।

किन्तु दूसरे रूप मे चूँकि स्वामित्व का महत्त्वपूर्ण भाग अर्थात् 49% स्वामित्व निजी क्षेत्र को सौंप दिया जाएगा, निजी क्षेत्र का निर्णय शक्ति पर प्रभाव निर्णायक हो सकता है।

तीसरा रूप ही ऐसा है जिसमे उद्यम का बुनियादी पुनर्गठन हो जाता है और 74% स्वामित्व निजी क्षेत्र को हस्तातरित हो जाता है। दूसरे शब्दो मे यह सभी नीति सम्बन्धी मामलो मे निर्णय-अधिकार ओर कार्यात्मक नियत्रण निजी क्षेत्र को सोप देता हे परन्तु मुख्य नीति सम्बन्धी निर्णयो मे वीटो अधिकार सरकार के पास रहता हे। अत व्यष्टि निर्णयो का पूर्णतया निजीकरण कर दिया जाता हे अर्थव्यवस्था के समष्टि-आथिक लक्ष्यो के अनुरूप विनियमन का अधिकार राज्यो के पास रहता हे।

अभी तक सारी बहस सिद्धान्त् के स्तर पर हो रही है और स्वामित्व हस्तातरण किया नहीं गया है। दूसरे और तीसरे रूप का प्रयोग किया जाना चाहिए ओर इस प्रकार राजकीय हस्तक्षेप की गुणवत्ता परिवर्तन की गुणवत्ता को निर्धारित करेगी। क्या सरकार (अल्पसख्यक हिस्सेदार होते हुए) अपने नोकरशाही नियत्रण का परित्याग कर सकेगी जबकि इसके पास वीटो अधिकार हे या जब इसके पास बहुसख्यक हिस्सेदारी है इसकी ईमानदारी की कसौटी यह होगी कि यह किस हद तक इन उद्यमो को स्वायत्तता दे सकती है।

किन्तु स्वामित्व मे परिवतन मात्र से ही उत्पादिता (Pro ductivity) मे इच्छित परिणाम प्राप्त नहीं हो सकेंगे। इसके साथ मजदूरी को उत्पादिता से जोडने जेसे समर्थनीय उपाय करने होगे, ऐसे उपाय भी करने पडेगे जो प्रतिस्पर्द्धी पर्यावरण को प्रोन्नत करें ताकि कुशल कीमत निर्धारण एक मानदण्ड बन जाए।

6. सार्वजनिक बनाम निजी क्षेत्र विवाद-एक निरर्थक बहस

सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र के निष्पादन के बारे मे अनुभवजन्य प्रमाणो के आधार पर यह कहना ठीक नहीं होगा कि निजी क्षेत्र निष्पादन की दृष्टि से सार्वजनिक क्षेत्र से निश्चित रूप मे श्रेष्ठ हे। कटु सत्य तो यह हे कि दिसम्बर 1988 के अत तक निजी क्षेत्र के आधीन कार्य कर रही 2 42 लाख इकाइया बीमार थीं जिनमे से 2 40 लाख इकाइया लघु क्षेत्र मे थीं और 2011 इकाइया गैर लघु क्षेत्र मे थीं। इन इकाइयो मे 7705 करोड रुपये का बक उधार फसा हुआ था। इसी प्रसग मे यह बताना उचित होगा कि दिसम्बर 1980 मे 24550 इकाइया बीमार थीं और उनमे 1826 करोड रुपये का बैंक उधार ग्रस्त था। जाहिर है कि सापेक्ष आर निरपेक्ष दोनो रूप मे निजी क्षेत्र मे *औद्योगिक रुग्णता* (Industrial sickness) मे वृद्धि हुई हे। जिन उद्योगो मे औद्योगिक रुग्णता विद्यमान है वे हैं इजीनियरिंग लौह तथा इस्पात सूती वस्त्र रसायन चीनी पटसन टैक्सटाइल रबड सामेंट, कागज और इलैक्ट्रिकल मशीनरी। सरकार के लिए यह अच्छा होगा कि वह सार्वजनिक क्षेत्र को अकुशलता के सूचक के रूप मे प्रस्तुत न करे ओर निजी क्षेत्र को कुशलता के परिचायक के रूप मे। स्वय निजीकरण की प्रभाविता के बारे मे न्यायोचित सन्देह है चाहे निजीकरण के समर्थक इसे समाज मे विद्यमान सभी बुराइयो के लिए रामबाण मानते हैं।

सामान्यतया यह माना जाता है कि सार्वजनिक क्षेत्र सामाजिक कल्याण की दृष्टि से कार्य करता है। सार्वजनिक क्षेत्र मे काम करने वाले अनेक श्रमिको एव अन्य कर्मचारियों को बेहतर वेतनमान, बेहतर अन्य लाभ, अधिक मात्रा मे अवकाश और सेवा निवृत्ति लाभ प्राप्त होते हैं। इसके विरूद्ध, निजी क्षेत्र शोषणात्मक कुशलता का प्रतीक है। निजी क्षेत्र मे बहुत ही थोडी फर्में काम की अच्छी परिस्थितिया विश्वस्त एव उचित वेतन एव सेवा निवृत्ति लाभ उपलब्ध कराती हैं। जाहिर है कि कर्मचारी निजीकरण के विचार से ही कापने लगते हैं। इसके विरुद्ध यह बात भी सत्य हे कि सार्वजनिक क्षेत्र मे काम करने की प्रवृत्ति बहुत ही नीचे स्तर पर पहुच गयी है ओर कर्मचारी उपलब्ध सेवा सुरक्षा (Security of service) का अनुचित लाभ उठाते हैं। पदोन्नति सम्बन्धी नीति मे योग्यता एव वरीयता के सिद्धान्त को तो केवल शाब्दिक सहानुभूति दी जाती हे परन्तु वास्तव मे यह केवल

वरीयता के सिद्धान्त पर आधारित है। इसमे उद्यम को बढ़ावा देने के लिए उत्साह मन्द पड जाता है और श्रमिको मे प्रतिस्पर्द्धा की भावना नष्ट हो जाती है। चाहे मजदूर सघ सार्वजनिक क्षेत्र के निजीकरण का विरोध करते हैं किन्तु वे कुशल श्रमिको के लिए प्रोत्साहनो की नीति और कामचोरो के लिए दण्ड देने की नीति को न चालू करने देने के लिए दोषी हैं। इसलिए दोनो क्षेत्र अपने स्वभाव में अन्तर होने के कारण अलग-अलग किस्म की कमजोरियो से ग्रस्त हैं। निजी क्षेत्र को अधिक मानवीय बनाना होगा और सार्वजनिक क्षेत्र जो अधिक मानवीय है, को अधिक कुशल बनाना होगा।

विकास की आरंभिक अवस्था मे निजी क्षेत्र अध सरचना और भारी उद्योग मे विनियोग करने की स्थिति मे नहीं था तब सार्वजनिक क्षेत्र ने अग्र-क्षेत्र (Leading sector) का काय किया। सावजनिक क्षेत्र के साथ जुड़ी हुई सभी अकुशलताओं के बावजूद इसने साहाय्यित दरो (Subsidised rates) पर सिचाई, ऊर्जा और सचालन शक्ति उपलब्ध कराया। इसके लिए सावजनिक उपयोगिताओ की सेवाओ की अल्प कीमत निश्चित करनी पडी और सावजनिक क्षेत्र द्वारा उत्पन्न मध्यवर्ती वस्तुए भी सस्ती दरो पर निजी क्षेत्र को उपलब्ध करायीं। इस दृष्टि से सावजनिक क्षेत्र ने निजी क्षेत्र के तीव्र विकास मे योगदान किया है। विकास के चार दशको के परिणामस्वरूप, निजी क्षेत्र अब प्रौढ अवस्था मे पहुच गया ह और इसने तकनालॉजीय एव प्रबन्धकीय योग्यता विकसित कर ली है और अब यह बेहतर स्थिति मे है कि ऐसे क्षेत्र जो अभी तक सावजनिक क्षेत्र के विनियोग के लिए आरक्षित थे मे अब यह भी प्रवेश कर ले। जाहिर है कि पिछले चार दशको के दौरान सावजनिक क्षेत्र ने जो श्रेष्ठ भागीदार का कायभाग अदा किया ह उसमे परिवतन हो और सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित क्षेत्र निजी क्षेत्र के लिए खोले जाए। इससे इन दो क्षेत्रो के बाच प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न होगी जिसका अथव्यवस्था की समग्र कुशलता को बढाने पर सद्प्रभाव पडेगा।

इस बात पर बल देना आवश्यक ह कि नव-औद्योगीकृत देशो, जो औद्योगीकरण के सफल उदाहरण माने जाते हैं ने भी अपने औद्योगिक विकास को प्रोन्नत करने के लिए राजकीय हस्तक्षेप के मुख्य उपकरण का प्रयोग किया। इस सम्बन्ध में इफान-उल हक लिखते हैं—"सिद्धान्त और प्रमाण के वजन के बावजूद, युद्धोत्तर काल मे औद्योगीकरण के सबसे सफल उदाहरण, विशेषकर जापान और कोरिया ही नहीं बल्कि अन्य नव-औद्योगीकृत अर्थव्यवस्थाओ ने विशिष्टीकरण के पारपरिक माडल का अनुकरण नहीं किया और निश्चय ही वे नीतिया नहीं अपनायीं, जो इसके द्वारा निर्देशित की गयीं। औद्योगीकरण के पहले चरण मे बल आयात-प्रतिस्थापन (Import substitution) पर था जिसके समर्थन के लिए सभी प्रकार का सरकारी हस्तक्षेप किया गया जिसमे वाणिज्य नीति, राजकोषीय प्रोत्साहन, उधार आवटन आदि का प्रयोग किया गया। जापान के बारे मे यह कहा जाता है कि इसने अपनी सफलता के लिए वह सब कुछ किया जो *मानक सिद्धान्त के अनुसार गलत समझा जाता है।* इससे यह बात साफ हो जाती है कि यदि भारत ने आरंभिक अवस्था मे औद्योगीकरण के लिए अधिक सचेत और जानबूझकर सरकारी हस्तक्षेप का इस्तेमाल किया, तो यह किसी भी प्रकार से अनुचित नहीं था। उद्योग का सरक्षण आरभिक अवस्था मे सरकारी नीति का प्रधान उपकरण था परन्तु जापान अच्छे समय पर उच्च स्तर पर पहुंच गया तिस पर भी, फर्मों मे *आपसी सहयोग और सरकारी एव निजी फर्मो मे सहयोग* जापान का एक विशेष लक्षण है जिसे स्वय सरकार ने विकसित किया।" अत, सावजनिक एव निजी क्षेत्र की समस्या को इन दो क्षेत्रो की साझेदारी के प्रबन्ध का समस्या के रूप मे कल्पित करना चाहिए, न कि दो शत्रुओ के बीच बुनियादी सघर्ष के समाधान की समस्या के रूप में। जिस बात पर बल देना आवश्यक ह वह यह है कि सावजनिक एव निजी क्षेत्र दोनो *का सह-अस्तित्व बना रहेगा। यह बिल्कुल सभव है* कि निजी क्षेत्र के लिए कइ और क्षेत्र खोले जाए परन्तु यह तभी सभव हुआ है क्योंकि निजी क्षेत्र ने अब योग्यताए विकसित कर ली है और इसलिए अब वह नयी जिम्मेदारियो को सभालने के लिए अधिक योग्य बन गया है। परन्तु भारतीय अथव्यवस्था के सदभ मे महत्त्वपूर्ण मुद्दा यह है कि अथव्यवस्था को कैसे अधिक कुशल बनाया जाए। पंजाब, *हरियाणा और दिल्ली* चैम्बर ऑफ कामर्स एण्ड इडस्ट्री ने इस समस्या को सही परिप्रेक्ष्य मे रखा है—"मुख्य बात यह है कि सावजनिक एव निजी क्षेत्र दोनो मे ही प्रबन्ध का गभीर सकट घातक रूप धारण कर गया है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो का निजीकरण इसमे तब तक कोइ सहायता नहीं कर सकता जब तक कि अच्छे *प्रबन्ध का सकट बना रहता है।* और यदि यह एक कुशल प्रबन्ध सस्कृति और व्यवहार को प्रोन्नत करने मे सफल हो जाते है, तो सभवत निजीकरण का मुद्दा अप्रासंगिक बन जाएगा क्योंकि ऐसे पर्यावरण में सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र दोनो ही कुशल रूप से कार्य कर सकेंगे।"

अत हमारे लिए दो मुद्दे महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं। हम निजी क्षेत्र को अत्यधिक राजकीय नियन्त्रण से कैसे मुक्त कर सकते है दूसरे शब्दो में, हम किस प्रकार अधिकारीतन्त्रीकरण (Bureaucratization) से मुक्त हो सकते हैं। इसका अथ यह है कि हम नियमो और कार्यविधि को सरल बनाएं और स्वीकृतियां अधिक तेज गति से दें और जहा कहीं भी

नियन्त्रण अनिवार्य नहीं हैं उन्हे हटा दे। नये पर्यावरण मे, जो अधिकारीतन्त्रीकरण से मुक्त हो, निजी क्षेत्र अपने निष्पादन को उन्नत कर सकेगा।

डॉ सी एच हनुमत राव ने यह सकेत किया है कि हमारा मुख्य दोष यह है कि हम उदारीकरण के नाम पर बाजारीकरण (Marketisation) की नीति पर बल दे रहे हैं और अधिकारीतन्त्रीकरण को समाप्त करने की ओर बहुत कम ध्यान दे रहे हैं। डा राव इस सम्बन्ध मे लिखते हैं—'चूंकि हम पहले ही एक बाजार अर्थव्यवस्था हैं जहा वर्तमान आय के असाम्य वितरण से उत्पन्न होने वाली माग का आर्थिक ढाचे पर मुख्य प्रभाव पडता है वहा अधिक बाजारीकरण के पक्ष मे कोई तर्क सही नहीं है।

"आश्चर्यजनक बात यह है कि हम बाजारीकरण को अधिकारीतन्त्रीकरण समाप्त करने की तुलना मे अधिक आगे बढाने का प्रयास करते रहे है। पिछले दशक के दौरान उदारीकरण के उपायो ने औद्योगिक ढाचे में विकृति पैदा की है और इसके फलस्वरूप उत्कृष्ट वर्ग के लिए चिरस्थायी उपभोक्ता वस्तुओ के उपभोग को बढावा मिला है। आयात के उदारीकरण और कर भार मे कटौती के परिणामस्वरूप भुगतान शेष का संकट ओर राजकोषीय सकट पैदा हो गए हैं। इसके विरुद्ध, इसी अवधि के दौरान प्रबन्धकीय प्रक्रियाओ मे अधिकारीतन्त्रीकरण समाप्त करने के उपाय द्वारा सार्वजनिक उद्यमों की कार्यपद्धति को कुशल बनाने की दृष्टि से बहुत ही थोडा कार्य किया गया है।" इसके लिए यह महत्त्वपूर्ण होगा कि सार्वजनिक उद्यमो के उच्च प्रबन्धको के साथ हस्ताक्षर किए गए बोध ज्ञापन (Memorandum of Understanding) उपकरणो को ईमानदारी से लागू किया जाए। चाहे बोध ज्ञापनो का अनुभव बहुत सीमित है परन्तु विश्व बैंक के फ्रैंकाय एम इटोरी द्वारा तीन वर्षों अर्थात् 1986 87 से 1988 89 से सम्बन्धित आंकडो से पता चलता है कि बोधज्ञापन वाले सार्वजनिक उद्यमो और बिना चलाए जाने वाले उद्यमो के निष्पादन की तुलना नहीं की जा सकती क्योंकि बोध ज्ञापन के लिए चुने गए पहले सार्वजनिक उद्यम सर्वोत्तम रूप मे प्रबन्धित और सबसे अधिक लाभदायक थे। परन्तु निष्पादन सकेतको की प्रवृत्ति की तुलना करने से पता चलता है कि बोध ज्ञापन वाले उद्यमो की तुलना मे कहीं बेहतर रहा है।

भारत मे निजीकरण को अर्थव्यवस्था की वर्तमान बुराइयो के लिए रामबाण नहीं समझा जाता। न ही लोगो का बाजार शक्तियो मे अधिक विश्वास है। हमारे समाज का एक महत्त्वपूर्ण वर्ग बहुत से कारणो से निजीकरण के विरुद्ध है। डा वी वी रामनाथन ने इस विषय को सार रूप मे इस प्रकार प्रस्तुत किया है— भारत मे सार्वजनिक उद्यम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को ध्यान मे रखते हुए, इस बात की कल्पना नहीं की जा सकती कि इस दिशा में निजीकरण को स्वय एक ध्येय के रूप मे स्वीकार कर लिया जाएगा क्यो न तो बाजार रूपी समाधानो और सम्पत्ति अधिकारो के बारे मे कोई मतैक्य है न ही ये अति-आवश्यक सामाजिक एव आर्थिक परिवर्तन के प्रधान उपाय की समझे जाते हैं। वास्तविक मुद्दे जो केन्द्रीय महत्त्व रखते हैं वे गरीबी को दूर करने और महाद्वीपीय आकार वाली अत्यधिक वर्ग विभाजित समाज में तकनालाजी के उन्नयन से सम्बन्धित हैं। इसका अर्थ यह है कि निजीकरण को अनिवार्यत पूर्वनिर्धारित ध्येयो की प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम सभव उपाय के रूप मे कल्पित करना होगा और यह निश्चित करना होगा कि यह इन ध्येयो के रूप मे विकृति पैदा न कर दे।"

7 नए आर्थिक सुधार
(New Economic Reforms)

राजीव गांधी के शासन काल के दौरान आर्थिक सुधार (1985 90)

1985 मे श्री राजीव गाधी ने प्रधानमत्री बनने के फौरन बाद सरकार की आर्थिक नीति मे नयी प्रवृत्तियो की रूपरेखा खींची। प्रधानमत्री ने इस सम्बन्ध मे जिस अकसीर का सुझाव दिया, वह थी उत्पादिता मे सुधार, आधुनिक तकनालाजी को आत्मसात करना (Absorption of modern technology) और क्षमता के पूर्णतर प्रयोग को एक राष्ट्रीय अभियान का रूप देना।

नयी आर्थिक नीति का मूल बल निजी क्षेत्र के लिए अधिक कार्यभाग का प्रावधान करना है। श्री राजीव गाधी ने साफ शब्दो मे कहा— 'सार्वजनिक क्षेत्र बहुत से ऐसे क्षेत्रो म फैल गया है जहा इसे नहीं होना चाहिए, हम अपने सार्वजनिक क्षेत्र को ऐसे कार्यों मे लगाना चाहेंगे जो निजी क्षेत्र द्वारा नहीं किए जा सकते। परन्तु हम निजी क्षेत्र के लिए बहुत से द्वार खोल देंगे ताकि वह अपना विस्तार कर सके और अर्थव्यवस्था अधिक स्वतत्र रूप मे विकसित हो सके।"

निजी क्षेत्र के लिए अधिक विस्तृत क्षेत्र उपलब्ध करने के लिए बहुत से नीति सम्बन्धी परिवर्तन किए गए जिनका सम्बन्ध औद्योगिक लाइसेस नीति, निर्यात-आयात नीति तकनालाजीय उन्नति (*Technological upgradation*) प्रतिबन्धो को हटाने और राजकोषीय एव प्रशासनिक नियमन प्रणाली के सरलीकरण से था। ये सब परिवर्तन इस दिशा निर्देश के आधीन किए जा रहे थे कि निजी क्षेत्र के लिए एक अबाध वातावरण कायम किया जाए ताकि अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण के लिए निजी क्षेत्र के विनियोग को एक जबरदस्त प्रोत्साहन प्राप्त हो सके जिसके फलस्वरूप देश मे

तीव्र आर्थिक विकास हो सके। प्रोफेसर के एन राज नयी आर्थिक नीति का सार इन शब्दो मे प्रस्तुत करते हैं—"किन्तु इस बात पर एक आम सहमति प्राप्त हो गयी है कि इन नीति सम्बन्धी परिवर्तनों का कुल मिलाकर एक प्रमुख लक्षण निजी क्षेत्र के अप्रतिबन्धित विकास के लिए अधिक क्षेत्र-विस्तार करना है ऐसा विशेषकर विनिर्माण उद्योग के निगम क्षेत्र के लिए किया जा रहा है और बहुराष्ट्रीय निगमो (Multinational Corporations) के लिए बहुत से अवसर खोले जा रहे हैं।[1]

इस स्थिति को सुधारने के लिए नयी आर्थिक नीति ने नियन्त्रणो की शासन प्रणाली को तोडने की ओर ध्यान केन्द्रित किया ताकि लाइसेंस प्राप्त करने में अनावश्यक अडचने दूर की जा सकें उत्पादन का समायोजन प्रशासित कीमतो (Administered prices) द्वारा न करना पडे और एम आर टी पी कम्पनियो को औद्योगिक लाइसेंस से इन्कार करने के प्रतिबन्ध हटाए जा सकें।

इस सम्बन्ध में सरकार ने कई उपाय किए—

(*i*) सीमेन्ट पर से नियत्रण हटा लिया गया और बहुत सी इकाइयो को निजी क्षेत्र मे अतिरिक्त लाइसेंस क्षमता की स्वीकृति दे दी गई।

(*ii*) चीनी मे खुले रूप मे बेचे जाने वाली चीनी की मात्रा बढा दी गई।

(*iii*) जनवरी 1985 से लाइससो के 'विस्तृत वर्गीकरण' (Broadbanding) की योजना चालू की गयी जिसके आधीन दो पहियों की गाडियो के निर्माताओ को कुल लाइसेस-प्राप्त क्षमता के भीतर 350 सी सी इजन क्षमता तक किसी भी प्रकार की दो पहिए की गाडी स्कूटर, मोटर साइकिल मोपेड आदि बनाने की इजाजत दी गई।

इसी योजना को बाद म चार पहिया वाली गाडियो पर लागू किया गया और निर्माताओ को सडक पर चलने वाली सभी गाडियों वाणिज्यिक गाडियो जीपो एव सवारी कारो के उत्पादन की स्वीकृति दी गयी। बाद मे फरवरी 1985 मे यह योजना रसायनो एव औषधो पर और पैट्रो-रसायन एवं उवरक-मशीनरी उद्योगो पर लागू की गई। जून 21 1985 को यह योजना सभी प्रकार के टाइपराइटरो-हस्त-चालित इलैक्ट्रिक एवं इलैक्ट्रोनिक्स पर भी विस्तृत की गई।

इस प्रकार 'विस्तृत वर्गीकरण' की प्रक्रिया को लगातार बढाया जा रहा है ताकि उत्पादको को समूह में प्रत्येक नयी वस्तु के उत्पादन के लिए नया लाइसेंस प्राप्त न करना पड़े। हाल ही के वर्षों में उद्योगो के 25 समूहो का विस्तृत-वर्गीकरण (Broadbanding) किया गया 94 औषधो पर से लाइसेस हटाए गए और 27 उद्योगो को एम आर टी पी कानून की जकड से बाहर कर दिया गया। इन सब परिवर्तनों का उद्देश्य उत्पादिता को बढाना था और अधिक उदारीकरण (Liberalisation) के वातावरण में समग्र-आर्थिक क्रिया को त्वरित करना था।

(*v*) नयी वस्त्र नीति (1985) ने लाइसेस उद्देश्यो के लिए कारखाना पावर-लूम और हस्त-करघा क्षेत्रो मे भेद को लगभग समाप्त कर दिया और इसके साथ साथ प्राकृतिक एवं संश्लिष्ट तन्तुओ (Synthetic fibres) में भेद भी समाप्त कर दिया।

(*vi*) इलेक्ट्रोनिक्स उद्योग को एम आर टी पी कानून से मुक्त कर दिया गया। इस क्षेत्र मे विदेशी मुद्रा कानून के आधीन काम कर रही फैरा कम्पनियो (FERA Companies) के प्रवेश का भी स्वागत किया गया है।

(*vii*) बडे व्यापारिक घरानो पर परिसम्पत की अधिकतम सीमा 20 करोड रुपये से बढाकर 100 करोड रुपये कर दी गयी।

(*viii*) सरकार ने 12 अप्रैल 1985 को नयी निर्यात-आयात नीति की घोषणा की। नयी नीति के मुख्य उद्देश्य थे—(क) आयात के लिए आसान और शीघ्र पहुच द्वारा उत्पादन को सुविधाजनक बनाना, (ख) निर्यात आयात नीति मे आयात-निरन्तरता एव स्थायित्व कायम करना (ग) निर्यात-उत्पादन के आधार को मजबूत बनाना और (घ) तकनालाजीय उन्नति को बढावा देना।

(*ix*) सरकार ने सातवा योजना के सफलतापूर्वक कार्यान्वयन के लिए दीर्घकालीन राजकोषीय नीति (1985) की घोषणा की।

8. आर्थिक सुधारों की दूसरी लहर

चाहे आर्थिक सुधार राजीव गाधी के शासनकाल में चालू किए गए परन्तु उनके इच्छित परिणाम प्राप्त नहीं हुए। व्यापार-घाटा कम होने की बजाय बढ गया। जबकि छठी योजना 1980 81 से 1984-85 के दौरान व्यापार शेष का औसत घाटा 5933 करोड़ रुपये था यह सातवीं योजना (1985-86 से 1989-90) के दौरान छलाग लगाकर 10841 करोड रुपये हो गया। इसके अतिरिक्त अदृश्य मदों से कुल शुद्ध प्राप्ति (*Total net receipts*) 19072 करोड़ रुपये थी सातवीं योजना में अदृश्य मदों से प्राप्ति गिरकर 15891 करोड रुपये हो गयी। परिणामत देश को एक गभीर भुगतान-शेष की स्थिति का सामना करना पडा। अत भारत ने विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय कोष को 7 अरब डालर का भारी ऋण देने के लिए प्रार्थना पत्र भेजा ताकि देश इस सकट से मुक्त हो सके। विश्व बैंक एवं आई एम एफ ने भारत को सहायता देना तो स्वीकार कर लिया किन्तु यह शर्त

---

1 K N Raj New Economic Policy—Engine of Growth? *Economic Times* December 24 1985

लगायी कि वह अपनी अर्थव्यवस्था मे स्थिरता कायम करने का प्रयास करेगा। वित्त मंत्रा डा मनमोहन सिंह ने आई एम ए के प्रबध निदेशक माइकल कैमडिसस को अपने 27 अगस्त 1991 के पत्र मे यह वचन दिया कि भारत सरकार समष्टि आर्थिक लक्ष्यो (Macro economic objectives) को पूरा करेगी और अर्थव्यवस्था मे सरचनात्मक समायोजन (Structural adjustment) लाने के लिए बहुत से नीति सबध उपाय करेगी।

पी वी नरसिंह राव की सरकार के आधीन आर्थिक सुधार दूसरी लहर

काग्रस (इ) की आयी सरकार ने 21 जून 1991 को सत्ता सभालने के पश्चात् बहुत से स्थायीकरण सबधी उपायो की घोषणा की ताकि आन्तरिक एव विदेशी विश्वास प्राप्त किया जा सके। ब्याज दर को बढाकर मौद्रिक नीति को और मजबूत बनाया गया, रुपये की विनिमय दर (Exchange rate) का 22 प्रतिशत अवमूल्यन किया गया और व्यापार प्रणाली मे भारी सरलीकरण और उदारीकरण (Liberalisation) की घोषणा का गयी। आर्थिक रणनीति के केंद्र के रूप मे सरकार ने राजकोषीय असतुलन (Fiscal imbalance) को कम करने का प्रोग्राम बनाया जिसके समर्थन के लिए आर्थिक नीति मे सुधार किये गये जो कि अर्थव्यवस्था की विकास प्रक्रिया को एक नयी गति प्रदान करने के लिए अनिवार्य थे। इनका मुख्य बल औद्योगिक उत्पादन की कुशलता एव अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धा को बढाना भूतकाल की तुलना मे विदेशी विनियोग एव तकनालोजी का कहीं अधिक मात्रा मे प्रयोग सावजनिक क्षेत्र के निष्पादन को उन्नत करना तथा इस क्षेत्र को सुव्यवस्था करना और वित्तीय क्षेत्र का सुधार एव आधुनिकीकरण था ताकि यह अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओ को अधिक कुशलता से पूरा कर सके।

मुख्य समष्टि–आर्थिक लक्ष्य निम्नलिखित तय किए गए

दूसरी लहर के आर्थिक सुधारो के मुख्य क्षेत्र है (1) राजकोषीय नीति (2) मौद्रिक नीति (3) कीमत निर्धारण नीति (4) विदेश खाते सम्बन्धी नीति (5) औद्योगिक नीति (6) विदेशी विनियोग नीति (7) व्यापार नीति और (8) सावजनिक क्षेत्र नीति।

राजकोषीय नीति (Fisal Policy)

हमारा मध्यमकलान लक्ष्य समग्र सावजनिक क्षेत्र के घाटे को जो सकल देशीय उत्पाद के 12 5 प्रतिशत तक पहुच गया है कम करके 1990 के दशक के मध्य तक सकल देशी उत्पाद के 7 प्रतिशत तक लाना है। इसी प्रकार सघीय सरकार के घाटे को जो 1990 91 मे सकल देशी उत्पाद के 9 प्रतिशत तक पहुच गया था कम करके 1991 92 मे 6.5 प्रतिशत और 1992 93 मे 5 प्रतिशत तक लाना है।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार सार्वजनिक व्यय को सख्ती से नियंत्रित करना चाहती थी और कर एव कर भिन्न राजस्व को बढाने का लक्ष्य रखती थी। सरकार यह भी चाहती थी कि केन्द्र सरकार एव राज्यीय सरकारो दोनो पर राजकोषीय अनुशासन (Fiscal discipline) लागू करे। साहाय्यो (Subsidies) मे कटोती की क्रिया जो 1991 92 मे आरभ की गयी को और आगे बढाया जायेगा और एक निरपेक्ष प्रशासनिक कीमतो (Administered prices) की प्रणाली जिसके लिए बाजार की परिस्थितियो मे परिवर्तन और देशीय सभरण की स्थिति को ध्यान मे रखना होगा। सरकार एक अधिक कुशल व्यय प्रणाली का विकास करने का सुनिश्चित प्रयास करेगी।

इसके अतिरिक्त केन्द्र सरकार राज्यीय सरकारो को अपने सार्वजनिक उद्यमो, विशेषकर राज्यीय बिजली बोर्डो एव सडक परिवहन निगमो की स्थिति सुधारने के लिए प्रोत्साहन देगी। केद्रीय सावजनिक उद्यमो को मिलने वाले बजट समर्थन (Budgetary support) हटा लिए जाएगे आर उन्हे अपनी कुशलता एव लाभदायकता को उन्नत करने के लिए मजबूत बनाया जायेगा।

मौद्रिक नीति (Monetary Policy)

स्फीतिकारी दबावो को कम करने ओर लक्षित भुगतान शेष मे सुधार लाने के लिए प्रतिबधात्मक मौद्रिक नीति चलायी जायेगी। उदाहरणार्थ 1991 92 के लिए विस्तृत मुद्रा (Broad Money) अर्थात् M_3 की वद्धि 13 प्रतिशत तय की गयी जो कि उत्पादन एव स्फीति सबधी लक्ष्यो से युक्तिसगत थी। नयी वर्द्धमान नकद रिजर्व आवश्यकताओ (Incremental cash reserve requirements) के प्रभाव को ध्यान मे रखते हुए, रिजर्व मुद्रा मे 5 5 प्रतिशत वद्धि का लक्ष्य रखा गया। 1992 93 मे विस्तत एव रिजर्व मुद्रा की वद्धि दर मे और मन्द गति प्राप्त की जायेगी।

कीमत नीति (Price Policy)

बजटीय साहाय्यो (Budgetary subsidies) को कम करने और अधिक लोचशील कीमत ढाचे को प्रोन्नत करने की दृष्टि से सरकार ने बहुत सी वस्तुओ जिनमे महत्त्वपूर्ण आदान (Inputs)—पेट्रोलियम उत्पाद ओर उर्वरक शामिल है की प्रशासित कीमतो मे वद्धि की घोषणा की। इसी प्रकार रेलवे के किरायो बसो के किरायो ओर कषि वस्तुओं जैसे चीनी की कीमतो मे भी वद्धि कर दी। इसके अतिरिक्त कीमत नीतिया सभी क्षेत्रो मे अधिक लोचशीलता कायम करने के उद्देश्य से कार्य करेगी ओर सार्वजनिक उद्यमो को

बाजार-शक्तियो के अनुसार कीमते तय करने की अधिक स्वतत्रता दी जायेगी।

विदेशी खाते संबंधी नीति

सरकार के स्थायीकरण (Stabilisation) और आयात-सकुचन उपायो से यह प्रत्याशा की जा सकती है कि वे विदेशी खाते के घाटे को कम करके 1991 92 मे सकल देशीय उत्पाद के 2 1 प्रतिशत पर ला देगे। परन्तु विश्व बाजारो मे आर्थिक पुनरुत्थान (Recovery) के कारण 1992-93 मे निर्यात की मात्रा की दृष्टि से 11 प्रतिशत की वृद्धि होगी। किन्तु आयात जिनका 1991 92 मे 5 प्रतिशत का सकुचन हुआ है मे भी 1992-93 के दौरान 7 प्रतिशत की वद्धि होगी। परिणामत 1991-92 मे चालू खाते का घाटा सकल देशीय उत्पाद के 2 प्रतिशत के आस पास ही रहेगा लगभग 1991-92 के स्तर पर ही।

सामाजिक नीतियां (Social Policies)

सरकार का मत है कि जहा समष्टि-आर्थिक समायोजन (Macro-economic adjustment) की क्रिया तो कष्टपूर्ण ही होगी परन्तु सरकार इस क्रिया को मानवीय रूप देना चाहती है और इस कारण निर्धनता दूर करने के उद्देश्य को यह समायोजन क्रिया का अभिन्न अग मानती है। इस सिद्धात को दृष्टि मे रखते हुए सरकार ने प्राथमिक शिक्षा ग्रामीण पीने के पानी की उपलब्धि छोटे एव सीमात किसानो को सहायता स्त्रियो एव बच्चो के प्रोग्रामो अनुसूचित एव जनजातियो और समाज के अन्य कमजोर वर्गों के कल्याण के प्रोग्रामो के लिए अधिक व्यय का प्रावधान किया है। इसके साथ-साथ सरकार अध सरचना और ग्राम क्षेत्रो मे रोजगार जनन प्रोजैक्टों पर भी *अधिक व्यय करना चाहती है।*

औद्योगिक नीति सुधार (*Industrial Policy Reforms*)

वह विनियामक ढाचा (Regulatory Framework) जो उद्यमकर्त्ता के प्रवेश और विकास क मार्ग मे रुकावट था जुलाई 24 1991 को *घोषित नीति द्वारा बुनियादी रूप मे* परिवर्तित किया गया। इस क्षेत्र मे अन्य आर्थिक सुधारो के साथ चालू किये गये उपाय निम्नलिखित हैं—

(*i*) 15 उद्योगो की सूची को छोड अन्य सभी औद्योगिक प्रोजैक्टो के लिए औद्योगिक लाइसेस हटा लिये गये हैं। इस सूची मे ऐसे उद्योग शामिल किए गए हैं जो सुरक्षा एव सामरिक महत्व से सबंधित हैं जो सामाजिक कारणो, खतरनाक रसायन और पर्यावरण सबधी महत्त्वपूर्ण कारणो से जुडे हैं।

(*ii*) *एम आर टी पी कम्पनियो को अपने विनियोग* निर्णयो के लिए एम आर टी पी आयोग से स्वीकृति नहीं लेनी पडेगी। न ही एकाधिकारी घरानो को अपनी विस्तार योजनाओ नये उद्यम स्थापित करने विलयन एव स्वामित्वहरण (*Takeover*) *के लिए सरकार से इजाजत लेनी होगी।*

(*iii*) क्रमिक विनिर्माण प्रोग्राम की प्रणाली जिसमे कुछ विशेष प्रोजैक्टो मे समय के साथ साथ आयात के अश को *क्रमिक रूप मे घटाना जरूरी है भी अब हटा ली गयी है।*

(*iv*) सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित क्रियाओ का दायरा अब पहले से बहुत तग है और शेष आरक्षित क्षेत्रो (*Reserved areas*) *को निजी क्षेत्र को खोलने पर अब कोई* पाबदी नहीं है।

विदेशी विनियोग नीति (Foreign Investment Policy)

औद्योगिक नीति (1991) विदेशी विनियोग के लिए *अधिक अवसर भी प्रदान करती है ताकि तकनालाजी हस्तातरण* विपणन विशेषज्ञता और आधुनिक प्रबधकीय तकनीको के प्रयोग का लाभ उठाया जा सके। इसका यह भी इरादा है कि *विदेशी निजी पूजी अन्तर्प्रवाहो की सरचना मे अत्यन्त आवश्यक* परिवर्तन किया जाए ताकि ऋण उत्पन्न करने वाले प्रवाहो की अपेक्षा हिस्सा पूजी (Equity) की अधिक मात्रा प्राप्त *की जा सके। इस सबध मे निम्नलिखित उपायो की घोषणा* की गयी है—

(*i*) बहुत से उद्योगो मे 51 प्रतिशत विदेशी हिस्सा पूजी के स्वामित्व *की सीमा तक प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग (Direct* foreign investment) की स्वत स्वीकृति दी जायेगी। इससे पूर्व सभी विदेशी विनियोग सामान्यत 40 प्रतिशत तक *सीमित था।*

(*ii*) अन्तर्राष्ट्रीय बाजारो तक पहुचने के लिए बहुसख्यक विदेशी हिस्सा पूजी को 51 प्रतिशत तक ऐसी व्यापार *कम्पनियो मे लगाने की इजाजत होगी जो निर्यात* क्रियाओ मे लगी हुई है।

(*iii*) सरकार उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगो मे तकनालाजी *संधियो के लिए स्वत* स्वीकृति (Automatic approval) प्रदान करेगी। यह सुविधा अन्य उद्योगो को भी प्राप्त होगी यदि ऐसी सधियो मे विदेशी मुद्रा की आवश्यकता न हो।

व्यापार नीति (Trade Policy)

हमारी अर्थव्यवस्था के अन्तर्राष्ट्रीय एकीकरण को प्रोन्नत करने की हमारी रणनीति के अग के रूप मे यह आवश्यक है कि उद्योग को प्राप्त अत्यधिक और प्राय अविवेकपूर्ण सरक्षण धीरे धीरे समाप्त किया जाये क्योकि इससे एक सबल निर्यात क्षेत्र के विकास के लिए प्रोत्साहन कमजोर हुआ। *है। इस रणनीति का एक महत्त्वपूर्ण अग परिमाणात्मक प्रतिबधो* (Quantitative restrictions) की शासन प्रणाली का कीमत-आधारित प्रणाली से सक्रमण है। हमारा मध्यकालीन

उद्देश्य लाइसेसो एव परिमाणात्मक प्रतिबधो विशेषकर पूजी वस्तुओ और कच्चे मालो पर को क्रमिक रूप में हटाना है ताकि ये मदे खुले सामान्य लाइसेस (Open general licence) की श्रेणी मे अधिकाधिक रूप मे आ सके। यह परिवर्तन तीन से पाच वर्षों की अवधि के अदर लाया जायेगा।

पिछले कई वर्षो से आयात एव निर्यात की बहुत सी मदो का मार्गीकरण (Canalisation) विशिष्ट सार्वजनिक क्षेत्र की एजेंसियो द्वारा ही किया जाता था। अब यह निर्णय किया गया है कि इस सबध मे सावजनिक क्षेत्र के एकाधिकार को तेजी से कम किया जाए।

सार्वजनिक क्षेत्र सबधी नीति (Public Sector Policy)

सरकार का मत है कि सार्वजनिक क्षेत्र ने बडे पैमाने पर आन्तरिक अतिरेक (Internal surpluses) पैदा नहीं किये हैं क्योंकि इसके लिए पर्याप्त प्रतिस्पर्द्धा का अभाव रहा है। इसने उच्च लागत ढाचे को प्रोन्नत किया है। सार्वजनिक क्षेत्र की समस्याओ के समाधान के लिए सरकार ने एक नया दृष्टिकोण अपनाया है जिसके मुख्य अग निम्नलिखित हैं—

(i) सार्वजनिक विनियोग के वर्तमान पोर्टफोलियो के यथार्थवाद की कसौटी के आधार पर समीक्षा की जायेगी ताकि उन क्षेत्रो को इससे दूर रखा जाये जिनमे सामाजिक धारणाए महत्त्वपूर्ण नहीं है और जहा निजी क्षेत्र अधिक कुशल हैं

(ii) ऐसे क्षेत्र मे कार्य करने वाले उद्यमो जिनमे सार्वजनिक क्षेत्र को जारी रखना उचित हे को अपेक्षाकृत बहुत अधिक प्रबधकाय स्वायत्तता (Managerial autonomy) प्राप्त होगी

(iii) सार्वजनिक उद्यमो का प्राप्त होने वाला बजटीय समर्थन क्रमिक रूप मे घटाया जायेगा।

(iv) सार्वजनिक उद्यमो मे बाजार-अनुशासन (Market discipline) लाने के लिए, निजी क्षेत्र से स्पर्द्धा को बढावा दिया जायेगा और कुछ चुने हुए उद्यमो मे हिस्सा पूजा का अविनियोग (Disinvestment) किया जायेगा।

(v) जीर्ण रूप मे बीमार सार्वजनिक उद्यमो को भारी हानिया करने की इजाजत नहीं दी जाएगी।

इस नीति के पालन के लिए कई उपाय किए जाएंगे (1) सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगो की सख्या को 17 से कम करके 8 कर दिया गया है। इन क्षेत्रो मे भी चयनात्मक रूप मे निजी क्षेत्र के सहयोग की इजाजत दी जायेगी। विदेशी कम्पनियो के साथ साझे उद्यम अब सभव हो सकेंगे। (2) ऐसे सावजनिक उद्यम जो जीर्ण रूप मे बीमार है और जिनके सक्षम बनने की कोइ सभावना नहीं उन्हे पुनरुत्थान/पुन स्थापना के लिए औद्योगिक एव वित्तीय पुन निर्माण बोर्ड (Board of Industrial and Financial Reconstruction) को सौप दिया जायेगा। (3) सावजनिक क्षेत्र के उद्यमो के निष्पादन मे उन्नति के लिए बोध ज्ञापन (Memorandum of Understanding) के माध्यम द्वारा लाभदायकता और प्रत्याय दर (Rate of Return) पर मूल बल देते हुए इन्हे मजबूत किया जायेगा। (4) सरकार की 20 प्रतिशत तक हिस्सा पूजी (Equity) पारस्परिक निधियो (Mutual Funds) द्वारा चुने हुए निजी उद्यमो मे विनियोजित की जायेगी।

निकासी नीतियो (Exit policies) के दुष्प्रभावो से श्रमिको को अधिकतम सभव सीमा तक सुरक्षित करने का प्रयास किया जायेगा। अतिरिक्त श्रमिको की मात्रा को कम करने के लिए स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति योजनाए (Voluntary retirement schemes) आरभ की गयी है। स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति क्षतिपूर्ति के अतिरिक्त राष्ट्रीय नवीकरण निधि (National Renewal Fund) कायम की गयी है ताकि श्रमिको के प्रशिक्षण एव पुन रोजगार की व्यवस्था की जा सके।

9 नए आर्थिक सुधारो का मूल्याकन (Assessment of New Economic Reforms)

चाहे निजीकरण और विश्वीकरण (Globalisation) की नीतिया श्री राजीव गाधी द्वारा 1985 मे चालू की गयीं परन्तु इन नीतियो को 1991 मे श्री पी वी नरसिम्हा राव की सरकार ने त्वरित कर दिया है। सयुक्त मोर्चा सरकार ने भी सुधार प्रक्रिया का लगभग कांग्रेस सरकार द्वारा चलाए गए ढर्रे पर ही आगे बढाया। सात वर्ष पर्याप्त रूप मे इतना लम्बा समय नहीं है जिसमे इन नीतियो के प्रभाव का मूल्याकन किया जा सके परन्तु फिर भी यह समझ लेना उचित ही होगा कि क्या उदारीकरण विश्वीकरण बाजारीकरण (Marketisation) और निजीकरण (Privatization) द्वारा विकास प्रक्रिया त्वरित हुई है और क्या अन्ततोगत्वा ये नीतिया हमारे सविधान मे दिए गए और हमारे योजना प्रलेखो में बार बार दोहराए गए आर्थिक एव सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त कर सकेगी।

आर्थिक समीक्षा (1996 97) मे उल्लेख किया गया "1995 96 मे सकल देशीय उत्पाद मे 7 1 प्रतिशत की वृद्धि दर बहुत ही सतोषजनक उपलब्धि है। विकास की यह गति 1996 97 मे भी जारी रहेगी और इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि विकास सामर्थ्य 1991 मे आरभ किए गए सुधारो के परिणामस्वरूप उन्नत हुई है। केन्द्रीय सांख्यिकीय सस्थान के अनुमान के अनुसार 1996 97 मे आर्थिक विकास की वृद्धि दर सकल देशीय उत्पाद के लगभग 6 8 प्रतिशत के समान रहेगी। आठवीं योजना (1992 97) मे इस प्रकार औसत वार्षिक वृद्धि दर 6 5 प्रतिशत रहने की सभावना है जोकि 5 6 प्रतिशत के लक्ष्य से 0 9 प्रतिशत अधिक है और

यह सातवीं योजना की उपलब्धि से भी 0 5 प्रतिशत अधिक होगी। इसमे सन्देह नहीं कि यदि 1991 92 के वर्ष को छोड दिया जाए, तो आठवीं योजना के दौरान अर्थव्यवस्था की वद्धि दर 6 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष होगी और यदि *1991 92* को शामिल कर लिया जाए, तो यह आर्थिक सुधारो के छ वर्षो (1991 92 से 1996 97) की अवधि के लिए 5 5 प्रतिशत होगी। किन्तु यह बात बिल्कुल साफ है कि 199? 93 के बाद अर्थव्यवस्था मे पुनरुत्थान हुआ है और 1994 95 से

तालिका 1 **भारतीय अर्थव्यवस्था के समष्टि–आर्थिक सकेतक**

गत वर्ष की तुलना मे प्रतिवर्ष परिवर्तन (बिन्दु से बिन्दु)

	1990 91	1991 92	1992 93	1993 94	1994 95	1995 96	औसत वार्षिक वृद्धि दर (1991 96)
थोक कीमत सूचकाक (1981 82 100)							
सभी वस्तुए	12 1	13 7	10 1	8 8	10 8	7 7	10 1
प्राथमिक वस्तुए	*8*	*17 8*	*7 8*	*6 8*	*12 7*	*7 4*	*10 4*
(क) खाद्य वस्तुए	18 9	19 9	12 4	4 8	10 2	? 3	10 8
(ख) खाद्य भिन्न वस्तुए	*19 3*	*18 0*	*0 0*	*8 7*	*20 1*	*7 6*	*10 7*
विनिर्माण वस्तुए	8 9	10 9	11 3	7 5	10 7	8 9	9 9
रहन सहन की लागत का सूचकाक							
औद्योगिक श्रमिक (1981 82 100)	*13 6*	*13 9*	*6 1*	*9 8*	*9 7*	*8 9*	*9 7*
कपि श्रमिक (1960 61 100)	16 6	21 9	0 6	11 6	10 6	7 3	10 3
सकल देशीय उत्पाद (1980 81 की कीमतो पर)	4 9	0 8	5 3	6 0	7 2	7 1	5 2
कपि उत्पादन सूचकाक (1981 82) की समाप्ति के साथ तीन वर्ष 100)	3 0	2 0	4 1	3 5	4 9	0 2	2 1
खाद्यान्न उत्पादन सूचकाक (लाख टन)	3 2	4 5	6 5	2 7	3 9	3 5	1 0
औद्योगिक उत्पादन							
सामान्य सूचकाक	8 4	0 6	2 3	5 6	9 3	11 7	5 9
विदेशी व्यापार (करोड डालर)							
निर्यात	1 814	1 787	1 854	2 223	2 633	3 198	11 8
	(9 1)	(1 6)	(3 7)	(20 0)	(18 4)	(20 7)	
आयात	2 407	1 941	2 188	2 331	2 865	3 679	
	(13 2)	(19 4)	(12 7)	(6 5)	(22 9)	(27 0)	8 7
व्यापार शेष	593	154	334	107	232	488	
मुद्रा सभरण (M)	15 1	18 1	15 5	19 3	17 3	9 6	16 8
विनिमय दर रुपये प्रति डालर	17 94	24 65	28 96	31 37	31 40	33 45	13 2

नोट ब्रैकट मे दिए गए आकडे गत वर्ष पर प्रतिशत परिवर्तन को व्यक्त करते हैं

1 अस्थायी 2 नवम्बर 1995 तक

स्रोत आर्थिक समीक्षा (1996 97)

1996 97 तक के तीन वर्षों के दौरान औसत वार्षिक वृद्धि-दर 7 प्रतिशत तक पहुच गयी है। यह आर्थिक सुधारो की सकारात्मक उपलब्धि ही है। मुख्य प्रश्न यह है कि इस उच्च वृद्धि-दर को बरकरार रखा जाए और आर्थिक विकास के ढाचे मे ऐसा परिवर्तन किया जाए कि इसका गरीबी और बेरोजगारी दूर करने पर निश्चित प्रभाव पडे।

सुधार उपरान्त काल के दौरान एक और उपलब्धि जिसका दावा वित्त मत्री द्वारा किया गया व्यापार-घाटे में कमी है और दिसम्बर 30 1994 तक विदेशी मुद्रा रिजर्व का सचयन बढकर 19 4 अरब डालर हो गया है जिसके कारण भारत की अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे साख बहाल हो गयी है। विदेशी व्यापार के आकडो की बारीकी से छानबीन करने से पता चलता है कि 1991 92 के दौरान निर्यात मे 1.5 प्रतिशत की नकारात्मक वृद्धि हुई, 1992-93 के दौरान इनमे 3 7 प्रतिशत की मामूली वृद्धि हुई, 1992-93 के दौरान इनमे 19 6 प्रतिशत की भारी वृद्धि व्यक्त हुई। 1994 95 के दौरान भी निर्यात मे 18 3 प्रतिशत की उत्साहवर्धक वृद्धि हुई, भले ही यह सरकार द्वारा निश्चित 20 प्रतिशत के लक्ष्य से थोडी कम थी। किन्तु 1991-92 के दौरान व्यापार सतुलन मे 1545 करोड डालर की कमी आयात-सकुचन (Import compression) का परिणाम थी। 1992 93 के दौरान व्यापार शेष मे 3345 करोड डालर का बढता हुआ घाटा आयात में तीव्र वृद्धि का नतीजा था। किन्तु 1993 94 के दौरान आयात की मन्द वृद्धि और निर्यात मे 19 6 प्रतिशत की तीव्र वृद्धि के कारण व्यापार-घाटा कम होकर केवल 1039 करोड डालकर हो गया। 1994-95 में स्थिति फिर बिगड गयी। उदारीकरण की नीतियो-विशेषकर आयात शुल्कों मे कमी के कारण आयात में 1994 95 के दौरान 21 7 प्रतिशत को वृद्धि हुई। इसके विरुद्ध, निर्यात मे 18 4 प्रतिशत की वृद्धि हुई और इस प्रकार 1993 94 को तुलना मे 1994-95 के दौरान व्यापार घाटा लगभग दुगुना होकर 201 8 करोड डालर हो गया। इसके अतिरिक्त, यह भी ध्यान रखना होगा कि आयात मे वृद्धि गैर पैट्रोलियम आयात के 1993 94 मे 1745 6 करोड डालर से बढकर 2,253 8 करोड डालर हो जाने के कारण हुई। अत इनकी वृद्धि दर 29 1 प्रतिशत थी। इसके विरुद्ध, पैट्रोलियम तेल और स्नेहको का आयात 1994 95 मे केवल 571.3 करोड डालर था जब कि यह 1993 94 मे 575 6 करोड डालर था-अर्थात् इसमे 0 7 प्रतिशत की कमी हुई। जाहिर है कि आयात-उदारीकरण के कारण व्यापार-घाटे मे वृद्धि हुई है बावजूद इसके कि निर्यात प्रोत्साहन के उपायो के परिणामस्वरूप निर्यात मे उच्च वृद्धि दर की प्रवृत्ति व्यक्त हुई।

दूसरे, सुधार-पूर्व काल में व्यापार घाटे के एक भाग का निराकरण अदृश्य खाते पर सकारात्मक अधिशेष द्वारा किया जाता था। सातवीं योजना (1985 90) के दौरान व्यापार का कुल घाटा 54 204 करोड रुपये था, परन्तु अदृश्य खाते मे 13 157 करोड रुपये के अधिशेष ने चालू खाते पर भुगतान शेष को घटाकर 41 047 करोड रुपये कर दिया। दूसरे शब्दो मे अदृश्य मदो से शुद्ध प्राप्तियो द्वारा व्यापार घाटा 24 3 प्रतिशत की सीमा तक निष्प्रभाव कर दिया गया। परिस्थिति 1990-91 मे पलट गयी और अदृश्य मदो मे अतिरेक की अपेक्षा घाटा उत्पन्न हो गया। इस स्थिति को 1991-92 के दौरान 9 419 करोड रुपये के एक-पक्षीय हस्तातरण (Unilateral transfers) की भारी मात्रा द्वारा सुधारा गया और इस प्रकार अदृश्य खाते मे 4 258 करोड रुपये का अतिरेक उत्पन्न हो गया और इसके परिणामस्वरूप व्यापार-घाटे के 65 6 प्रतिशत को निष्प्रभाव कर दिया गया। इस प्रकार भारत अपने 9 938 करोड रुपये के ऋण भुगतान दायित्व को पूरा कर सका। परन्तु 1992 93 के दौरान स्थिति फिर बिगड गयी और अदृश्य खाते पर अतिरेक घट कर केवल 1 337 करोड रुपये रह गया जोकि व्यापार घाटे के मात्र 9.5 प्रतिशत के समान था। अत विदेशी मुद्रा रिजर्व मे तीव्र वृद्धि चालू खाते पर अनुकूल अधिशेष का परिणाम नहीं बल्कि विदेशी सहायता के रूप मे विश्व बैंक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष आदि या वाणिज्यक उधार या अनिवासी जमा आदि के रूप मे एकपक्षी प्रवाहो का परिणाम है। इन अन्तप्रवाहो ने एक आलम्बन कायम कर दिया है और यह कहा जा रहा है कि 1994 मे विदेशी मुद्रा रिर्जव 9 महीने के आयात के लिए पर्याप्त हैं जबकि ये 1991 के दौरान केवल तीन सप्ताह के लिए काफी थे। इससे अर्थव्यवस्था की वास्तविक शक्ति का सकेत नहीं मिलता बल्कि यह हमारी विदेशी मुद्रा स्थिति मे गिरावट का ही चिन्ह है।

तालिका 2 **औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि**
(सुधार-पूर्व काल की तुलना सुधार-उपरान्त काल से)

	प्रतिशत प्रतिवर्ष (चक्रवृद्धि)			
	सामान्य	विनिर्माण	खनन	बिजली
	(100 0)	(77 11)	(11 64)	(11 43)
(1980 81 से 1990-91)	7 8	7 6	8 3	9 0
(1980 81 से 1985 86)	7.3	6.5	10 7	8 8
(1985 86 से 1990-91)	8 4	8 7	5 7	4.2
सुधार उपरान्त (1990 91 से 1993 94)	2 0	1.2	1 1	7 0
सुधार पूर्व (1983 84 से 1990 91)	8.5	8 7	5 9	9.5

स्रोतः फाईनेन्शल एक्सप्रैस, 17 अक्टूबर, 1994

नये आर्थिक सुधारो की एक और उपलब्धि का दावा इनके कीमतो की स्फीतिकारी वृद्धि पर सद्प्रभाव के रूप मे किया जाता है परन्तु तथ्यो से इस बात की पुष्टि नहीं होती। जहां पर यह सही है कि 1992 93 के दौरान थोक कीमत सूचकांक मे केवल 7 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि इसके विरुद्ध 1991 92 मे 13 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी परन्तु 1993 94 मे स्थिति बिगड गयी और कीमत सूचकाक मे 10 8 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 1994 95 के दौरान थोक कीमत सूचकाक मे फिर 10 8 प्रतिशत की वृद्धि हुई। जैसा कि गत वर्ष के अनुभव से पता चलता है इन अस्थायी अनुमानो का परिशोधन ऊपर की ओर ही किया जाता है। अत यह सभावना सही जान पडती है कि 1994 95 के अन्तिम अनुमान के रूप मे थोक कीमत सूचकाक के आधार पर स्फीति दर *10 8 प्रतिशत हुई परन्तु 1995 96 में यह* थोडी कम होकर 7 7 प्रतिशत हो गयी। 1995 96 और *1996 97 के दौरान थोक कीमत सूचकाक की औसत वृद्धि दर* 10 1 प्रतिशत थी जो कि असतोषजनक है। यह बात बडी असतोषजनक है कि खाद्य पदार्थों की कीमतो के सूचकाक मे औसत 10 8 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसके समाज के कमजोर वर्गो के कल्याण पर दुष्प्रभाव पडने निश्चित ही हैं।

इन सब तथ्यो के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि आर्थिक सुधारो पर पुनर्विचार करने की जरूरत है ताकि इन्हे राष्ट्रीय हितो की ओर मोडा जा सके।

विदेशी सहयोग
(Foreign Collaborations)

1991 के औद्योगिक नीति वक्व्य मे यह स्पष्ट रूप मे कहा गया **'उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्र** मे विदेशी विनियोग और उन्नत तकनालाजी की आवश्यकता है और ऐसे उद्योगों मे प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग के सम्बन्ध मे यह निर्णय किया गया है कि 51 प्रतिशत तक विदेशी हिस्सा पूजी की स्वीकृत दे दी जाए। परन्तु 1991 92 से दिसम्बर 1993 के दौरान स्वीकृति प्राप्त विदेशी सहयोगो के उद्योगानुसार वर्गीकरण से पता चलता है कि उच्च प्राथमिकता वाले क्षत्रो अर्थात् धातुकर्म पावर तेल परिशोधन बिजली के सामान परिवहन और रसायन में लगभग 61 प्रतिशत विदेशी सहयोग की स्वीकृति दी गयी और गैर प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रो अर्थात् खाद्य परिसाधन (Food processing) सेवा क्षेत्र, होटल और पर्यटन आदि को विदेशी सहयोग का लगभग 39 प्रतिशत प्राप्त हुआ। इससे साफ जाहिर है कि गैर प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रो मे विदेशी विनियोग का एक महत्त्वपूर्ण अनुपात लगभग 40 प्रतिशत प्रवाहित हुआ। अत आवश्यकता इस बात की है कि विदेशी सहयोग स्वीकृतियो का पुन निरीक्षण किया जाए क्योंकि गैर प्राथमिकता वाले क्षेत्रो मे प्रत्याय दर बहुत ऊची है और इसके परिणामस्वरूप विदेशी मुद्रा उत्प्रवाहों (foreign exchange outflows) के रूप मे कहीं अधिक भार उत्पन्न हो जाएगा। अत इस कारण नेहरू-महलनोबिस के सिद्धान्त पर ही वापिस आना सही जान पडता है और इस प्रकार विदेशी विनियोग की अधिक चयनात्मक रूप मे इजाजत देनी होगी। सरकार इस सम्बन्ध मे खुले द्वार की नीति (Open door policy) अपनाए हुए है जिस पर पुन विचार करना चाहिए।

आर्थिक समीक्षा (1993 94) मे यह दावा किया गया कि विदेशी विनियोक्ता दोनो क्षेत्रो में सकेन्द्रित है पावर जनन और तेल निकास परिशोधन एव तेल उत्पाद। जैसा कि श्री अरुण घोष ने सकेत किया है "यहा यह समस्या दोहरी है। प्रथम पावर जनन के सम्बन्ध मे जहा इसके बारे मे सूचना सार्वजनिक प्राधिकार मे है यह पता चला है कि विनियोग के *प्रस्ताव मे (1) विदेशी विनियोग पर 16 प्रतिशत की प्रत्याय* दर की गारटी है और यह कर मुक्त है (2) प्राजैक्ट की पूजी लागत 4 4 करोड रुपये प्रति मेगावाट पावर क्षमता के लिए है जबकि भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्ज लि इसके लिए 2 करोड रुपये प्रति मैगावाट पर क्षमता कायम करने के लिए तैयार है। इससे यह आलोचना को भारी बल मिलता है। चूकि समस्त प्लान्ट का आयात किया जा रहा है विदेशी विनियोग पर वास्तविक प्रत्याय गारटीकृत 16 प्रत्याय दर से कई गुना अधिक है। दूसरे तेल बेधन (Oil drilling) उपलब्धि और ससाधन (Processing) पर विनियोग केवल प्रमाणित तेल क्षेत्रो मे किया जाएगा जो भूतकाल मे तेल और प्राकतिक गैस आयोग द्वारा स्थापित किए जा चुके है। इनकी खोज की लागत तेल और प्राकृतिक गैस आयोग द्वारा वहन की गयी है। प्रमाणित रिजर्व विदेशी विनियोक्ताओ को सौपे जाएगे जो रूक्ष तेल (या तेल उत्पादो) को आयातित कीमतो पर बेचेगे जबकि तेल और प्राकतिक गैस आयोग की लागत चालू आयात कीमतो के लगभग आधे के बराबर है। जाहिर है कि लाभ की मात्रा कहीं ज्यादा होगी और यह बात वास्तव मे देख सकते हैं कि किस प्रकार बहुराष्ट्रीय महानिगम जैसे एकसान (EXXON) विश्व मे भारी लाभ कमा रहे हैं और इस प्रकार वे सारे विश्व की सबसे अधिक लाभ कमाने वाली कम्पनिया है।

अत हमे प्राथमिकता क्षेत्र मे बहुराष्ट्रीय निगमो से विदेशी विनियोग प्राप्त करने की काल्पनिक तुष्टि तो मिल सकती है परन्तु इसमे कई प्रकार के खतरे है (1) हम चुपचाप अत्यन्त ऊची कीमत पर सधि कर सकते है (2) मानकीकरण (Standardisation) के पूर्ण अभाव के कारण बाद मे विक्रय सम्बन्धी अनेक समस्याए उत्पन्न हो सकती हैं

और इस प्रकार हमे फालतू पुर्जों की भारी मालतालिका रखनी होगी जिस पर दुर्लभ विदेशी मुद्रा का प्रयोग होगा (3) देश में पूर्व स्थापित सामर्थ्य का अल्प प्रयोग होगा।

इन कारणो को ध्यान मे रखते हुए यह बात समझ नहीं आती कि भारत सरकार विदेशी विनियोग को 100 प्रतिशत हिस्सा पूजी के आधार पर और 16 प्रतिशत गारटीकत लाभ के आधार पर क्यो आमंत्रित कर रही है। ऐसी नीति के नतीजे क तौर पर भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लि तो आदेश न मिलने के कारण बन्द ही हो जाएगी। इस सम्बन्ध मे विनय भरत राम ने ठीक ही लिखा है "वास्तव मे प्रत्याय दर के सरक्षण से अकुशलता को हा प्रोत्साहन मिलता हे दरअसल सरक्षण के कारण सच्ची प्रतियोगिता करने की शक्ति कमजोर पड जाती है।" ब्रिटिश काल के दौरान जब रेल निर्माण किया गया तब भारत मे आम राय इस नीति के विरुद्ध थी क्योंकि इसके कारण अकुशलता और व्यथव्यय को प्रोत्साहन मिला। यदि यह नीति ब्रिटिश काल मे गलत थी तो अब इसे कैसे न्यायोचित ठहराया जा सकता हे विशेषकर वतमान सदर्भ मे जब उदारीकरण का मूलाधार प्रतियोगिता को समझा जाता है। इस सदभ मे हमे शक्तिशाली बहुराष्ट्रीय फर्मों के विरुद्ध स्वदेशी पर बल देना चाहिए। प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग को देशाय योग्यताओ (Domestic capabilities) का प्रयोग करते हुए आमंत्रित करना एक बात हे परन्तु विदेशी विनियोग को अत्यन्त ऊचा कीमत पर देशी योग्यताओ की कीमत पर आमंत्रित करना दूसरी बात हे। यह विशेषकर ऐसा परिस्थितियो में जबकि विकसित देशो मे प्रतिसार (Recession) वर्तमान हे परन्तु इनमें कार्य कर रहे पावर सयत्र निर्माता और उनके विश्व बेक जेसे समर्थक हम पर दबाव डालते ह कि हम उनका शर्तो को फौरन मान ल। एक ओर तो विदेशी मुद्रा के रूप मे इनकी लागत अधिक होगी और भारत की गरीब जनता पर इसका बोझ पडेगा परन्तु दूसरी ओर ये हमारी देशीय योग्यताओ को समाप्त कर देगे।

बावजूद इसके कि औद्योगिक नीति (1991) ने स्पष्ट रूप मे प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग और तकनालाजी के आयात के लिए प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को निधारित कर दिया था सरकार विदेशी विनियोग लाबियों और बहुराष्ट्रीय निगमो के दबाव के आधीन खुले द्वार की नीति अपना रही है। परिणामत हमने सर्वोत्कृष्ट वर्गों द्वारा उपयोग म लाए जाने वाला उपभोग वस्तओ के लिए बहुराष्ट्राय निगमो के द्वार खोल दिए हैं। पहले पेप्साकोला को स्थान दी गयी और इसके बाद केलाग उत्पाद मे केलाग को। हाल हा मे पार्ले और अमेरिका बहुराष्ट्राय निगम कोका कोला मे गठबन्धन हुआ। रमेश चौहान क पास कोका कोला को पार्ले को बेच देने के सिवाय और कोई विकल्प ही नहीं था। हान्स ने ग्लैक्सो को अपने स्वामित्वाधीन कर लिया। अत उपभोग वस्तुओ मे भारतीय फर्मों को हडप करने की प्रक्रिया पूरे जोश से जारी है। हाल ही मे शराब के उत्पादन मे कार्य कर रही बहुत सी फर्मों को देश मे आने की स्वाकति दी गयी है।

विश्व व्यापी विनियोक्ता ऐसे क्षेत्रो मे प्रवेश करने के बहुत इच्छुक हैं जिनमे शीघ्रातिशीघ्र प्रत्याय ओर अल्प परिपाक अवधि के साथ अधिक लाभ प्राप्त होता हो। इसी कारण इन क्षेत्रा की ओर सभी बहुराष्ट्रीय निगम दोड रहे हे क्योंकि कुल विनियोग को 1 2 वर्ष के भातर लोटाया जा सकता हे। यदि यही प्रवति कायम रहा तो बहुत शीघ्र ही निरमा और टाटा के हमाम पर भी हमला होगा और बहुराष्ट्राय निगम उन्हे भी अपने वश मे कर लेगे। गोदरेज को तो पहले हा प्राक्टर एण्ड गैम्बल द्वारा जोर का झटका दिया जा चुका है।

दूसरे, विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग उच्च मध्य और समद्ध वर्गों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता हे और इस प्रकार वह भारतीय अथव्यवस्था के 18 करोड उपभोक्ताओ तक केन्द्रित है। इस प्रकार एक नया उपभोग सस्कति कायम हो रही हे जिसमें कोला, जेम आइसक्रीम परिसाधित खाद्य पदार्थ और चिरस्थायी उपभोग वस्तुओ को प्राप्त करने पर बल दिया जा रहा है। परिणामत मजदूरी वस्तु क्षेत्र की नितान्त उपेक्षा की जा रही है। 1980 81 से 1992 93 के दौरान, चिरस्थाया उपभोग वस्तुओ के उत्पादन की वार्षिक औसत वद्धि दर 10 प्रतिशत थी जबकि मजदूरा वस्तुओ की 4 5 प्रतिशत के निम्न स्तर पर थी। दूसरे शब्दो मे उत्पादन का लाभ सामान्य जनता को पहुचने का अपेक्षा उच्च वर्गों की तुष्टि के लिए हो रहा है। इस प्रकार बहुराष्ट्रीय निगमो द्वारा आलू के चिप्स वेफर, बेकरी उत्पाद, खाद्य परिसाधन आदि के उत्पादन मे प्रवेश करने से लघु स्तर उद्योगा म काम करने वाले श्रमिको का विस्थापन हो रहा है क्योंकि ये इकाइया बहुराष्ट्रीय निगमो से प्रतियोगिता करने की सामर्थ्य नहीं रखतीं और परिणामस्वरूप उन्हें तो बन्द होने का निराशाजनक भविष्य साफ दिखायी देने लगा है। अत उत्पाद एव रोजगार दोनो के ढाचे को दृष्टि मे रखते हुए यह कहना सहा होगा कि नरम क्षेत्रो मे बहुराष्ट्रीय निगम के प्रवेश के भयानक गूढ़ार्थ हैं।

तीसरे, विदेशी विनियोग का 43 प्रतिशत पोटफोलियो विनियोग (Portfolio investment) अथात् वित्ताय विनियोग के रूप में है जिसके परिणामस्वरूप हिस्सो मे सट्टेबाजी को ही बल मिलता है। हिस्सा बाजार के व्यापार मे विदेशी कम्पनियो को इजाजत देने का बुद्धिमत्ता पर प्रश्न चिन्ह ही लगा हुआ है। इसके कारण हिस्सा बाजार मे कत्रिम तेजी उत्पन्न हुई और 18 जून 1994 को बाम्बे स्टाक एक्सचेज

का सुग्राही सूचकाक (Sensitive Index) 4 202 के उच्च स्तर पर पहुच गया। इससे पहले जब हिस्सा बाजार मे तेजी के बाद विस्फोट हुआ तो बाजार धडाम से गिरा और लाखो छोटे हिस्सेदारो को जिन्होंने हिस्सा बाजार मे तुरन्त लाभ के लिए प्रवेश किया था भारी नुकसान हुआ परन्तु बडे बडे सटोरियो ने बाजार का प्रयोग अपने लाभ के लिए कर भारी राशिया हथिया लीं। प्रतिभूति तेजी का परिणाम घोटाले के रूप मे हुआ जिससे राष्ट्र को 5 000 करोड रुपये की हानि हुई। आलोचको का कहना है कि चाहे हम हिस्सा बाजार की मजबूती पर बेहद खुशी महसूस करते हैं परन्तु हम इस तथ्य के प्रति अनभिज्ञ हो जाते हैं कि हम कहीं ज्वालामुखी के कगार पर तो नहीं बैठे हुए हैं।

चौथे भारत मे किया गया पोर्टफोलियो विनियोग क्षुब्ध मुद्रा (Hot money) है और यदि बाजार सकेतक प्रतिकूल प्रवत्तियो का सकेत दे, तो यह एक दम पलायन कर सकती है। अत पोर्टफोलियो विनियोग को हमारे विकास मे स्थायीकारक समझ लेना एक भूल होगी। मैक्सिको का एकाएक पतन भुगतान शेष के सकट के कारण हुआ। इसके साथ साथ क्षुब्ध मुद्रा का तेजी से पलायन हुआ। यह सोचना ठीक नहीं कि भारत मक्सिको की भाँति सकट ग्रस्त नहीं हो सकता। मैक्सिको के अनुभव से शिक्षा प्राप्त करने की जरूरत है।

पाचवे विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग का विशेषकर वित्तीय क्षेत्र मे अत्यधिक अन्तर्प्रवाह होने से विदेशी मुद्रा रिजर्व मे भारी वृद्धि होती हे जिसके परिणामस्वरूप देशीय मुद्रा सभरण का विस्तार होता है। इसके नतीजे के तौर पर कीमतो की स्फातिकारी प्रवृत्ति को बढावा मिलता है। इसके अतिरिक्त देश मे एक बडे गर बैंकिग वित्तीय एव मध्यवर्ती क्षेत्र का विकास हुआ है जिसमे विदेशी वित्तीय कम्पनिया और पारस्परिक निधिया (Mutual funds) शामिल ह। यदि यह क्षेत्र बहुत तेजी से विकसित होता हे जैसा कि भारत म हो रहा है तो इसके परिणामस्वरूप रिजर्व बैंक आफ इंडिया द्वारा मौद्रिक प्रवन्ध के किसी भी प्रयास को निष्प्रभावी बनाया जा सकता है।

छठे बहुराष्ट्रीय निगम भारत मे प्रवेश करने के पश्चात् भारतीय कम्पनियो मे अपनी हिस्सा पूजी तेजी से बढा लेते ह आर इस प्रकार भारतीय कम्पनिया को हडप कर लेते हैं। इस प्रकार बहुत सी भारतीय कम्पनियो का स्वामित्वहरण किया जा रहा है। परिणामत जवाहरलाल नेहरू द्वारा निगम क्षेत्र के भारतीयकरण (Indianisation) की प्रक्रिया पूरी तरह उलट दी गयी है। इससे भारतीय निजी क्षेत्र को भारी धक्का लगा हे। यहा कारण ह कि बाम्बे क्लब एव दिल्ली क्लब के प्रमुख उद्योगपतियो और अखिल भारतीय विनिर्माता सगठन ने भारत सरकार की विदेशी पूजी को आकर्षित करने वाली विभेदकारी नीति के खिलाफ आवाज उठायी है। भारतीय उद्योगपति एक हमवार खेल के मैदान की माग कर रहे हैं।

श्री एम ए. ऊमन ने बडे साफ शब्दो मे निष्कर्ष रूप मे उल्लेख किया है 'विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग और पोर्टफोलियो अन्तर्प्रवाह की तीव्र वृद्धि से बहुराष्ट्रीय निगमो और विदेशी सस्थानात्मक विनियोक्ताओ (Foreign Institutional Investors) के लिए निकट भविष्य मे एक बडा खजाना खुल गया है परन्तु वे भारत मे सहायता नहीं देंगे। तकनालाजी स्वतन्त्रता की आशा अब तेजी से क्षितिज की भाँति पीछे हटती चली जा रही है। आइसक्रीम या आलू के वेफर या पेचकस तकनालाजी (Screwdriver technology) द्वारा जेनकार या आई बी एम के वैयक्तिक कम्प्यूटर जोड लेने से देश की तकनालाजीय योग्यता के निर्माण मे कोई योगदान नहीं होता। कोई भी देश अपनी जनता के कल्याण को अस्थिर और चचल विदेशी पूजी के सहारे नहीं छोड सकता।

यह बात हमारी समझ से बाहर है कि किस प्रकार भारत सरकार ने विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग को आकर्षित करने के जोश मे सयुक्त राज्य अमेरिका की कोची परियोजना को केरल मे अमेरिका से लाए गए कूडे से बिजली पैदा करने की स्वीकति दे दी। 25 करोड डालर की परियोजना जिससे गेजल प्राजैक्ट (Gazel Project) कह कर सम्बोधित किया जाता है मे 75 लाख टन कूडा (Garbage) अमेरिका से आयात किया जाएगा। इस सदर्भ मे दो प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण है क्या भारत मे कूडे कचरे की कमी है कि इसका आयात एक कच्चे माल के रूप म बिजली के उत्पादन के लिए करना होगा ? दूसरे, क्या भारत अमेरिकी कूडे कचरे के लिए एक बडे कूडेदान का कायभाग अदा करेगा ? क्या अमेरिका भारत के लिए पर्यावरण और स्वास्थ्य की समस्याए पदा नहीं कर रहा है जब कि विश्व व्यापार सघ (World Trade Organisation) मे बैठकर भारत को पयावरण के मानदण्ड रखने के लिए बाध्य करना चाहता है। श्री के एस रामचन्द्रण ने सही और पुरजोर ढग से कहा है जबकि विदेशी विनियोग और उन्नत तकनालाजी की निश्चित रूप म जरूरत है हम इसे अपनी शर्तों पर स्वीकार करना चाहिए ताकि भारतीय अर्थव्यवस्था को अल्पकाल और दीर्घकाल दोना मे लाभ हो।

इस सारी चर्चा का सार यह है कि विदेशी क्षेत्र म उदारीकरण को आन्तरिक क्षेत्र मे उदारीकरण से पहले चालू कर दिया गया है। बहुत से नव औद्योगिकत देशा म यह क्रम नहीं रखा गया। बहुत से ऐसे देश जैसे जापान और दक्षिण

कोरिया ने सरक्षण के आधीन प्रगति की। उन्होंने राजकीय हस्तक्षेप की नीतियो से अपनी अर्थव्यवस्थाओ को आन्तरिक दृष्टि से मजबूत बनाया फर्मो को देश के भीतर बढने दिया और जब वे प्रौढ हो गयीं तो उन्होंने अपनी अर्थव्यवस्थाओ को विदेशी प्रतिस्पर्द्धा के लिए खोल दिया। भारत मे बहुत से अर्थशास्त्रियो का विश्वास है कि हमारा क्रम गलत है। बाहरी उदारीकरण (External Liberalisation) जिसे आन्तरिक उदारीकरण (*Internal Liberalisation*) के बाद आना चाहिए था, वह उसके साथ साथ चल रहा है और कई दृष्टियो से उससे आगे चल रहा है। इसी कारण भारत के बहुत से उद्योगपति जो निजी क्षेत्र से सम्बन्धित हैं ने इसका विरोध करने के लिए बाम्बे क्लब या दिल्ली क्लब कायम की है।

उद्योग पर लोकसभा की स्थायी समिति ने यह चेतावनी दी है कि यदि बहुराष्ट्रीय निगमो के अन्धाधुन्ध प्रवेश को रोका नहीं जाता, तो ये बहुराष्ट्रीय निगम भारत के उच्च व्यापारिक घरानें को विस्थापित कर अर्थव्यवस्था की बागडोर अपने हाथ मे ले लेगे। स्थायी समिति ने उल्लेख किया है "चालू आर्थिक सुधारो का शुद्ध प्रभाव यह हो सकता है कि भारतीय उद्योग का नियन्त्रण जो इस समय पारम्परिक अल्पाधिकारी ढाचे (Oligopolistic structure) के अधीन कुछ भारतीय व्यापारिक घरानो तक सीमित है परिवर्तित होकर राष्ट्रपारीय निगमो, (Transnational corporations) की कमान के आधीन आ सकता है। समिति ने आगे चलकर कहा है 'चाहे प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग का आकार सीमित है किन्तु विदेशी निगमीय विनियोक्ताओ द्वारा हिस्सा बाजार में विनियोग के बारे मे रणनीति मे बदलाव के चिन्ह दिखाई पडते हे जिनके परिसम्पत्तो पर नियत्रण और बाजारो पर प्रभुत्व कायम करने के रूप मे महत्त्वपूर्ण गुह्यार्थ हैं। विदेशी विनियोक्ता विदेश नियंत्रित रुपया कम्पनियो पर दबाव डालते रहे है कि वे अपने हिस्सो का "प्राथमिकतापूर्ण आबटन" वार्षिक साधारण सभा द्वारा पारित प्रस्ताव के आधार पर करे, इसकी बजाए कि वे जनक फर्म (Parent firm) को अतिरिक्त हिस्से वतमान हिस्सेदारो से खरीदने के लिए कहे।" रिपोर्ट मे कई उदाहरण दिए गए हे जिनमे यह उल्लेख किया गया है कि बहुराष्ट्रीय निगम किस प्रकार नाममात्र कीमतों पर फर्मों के हिस्से हथियान मे सफल हुए हैं। उदाहरणार्थ भारतीय सहायक कम्पनियों जैसे प्राक्टर एण्ड गैम्बल, कालगेट, पामोलिव और पोड्स इण्डिया लिमिटेड अपनी हिस्सा पूजी को 40 से 51 प्रतिशत करने के लिए 10 रुपये के हिस्से को 50 रुपये के तुच्छ प्रीमियम पर खरीद सकी हैं जबकि इनकी उस समय प्रचलित बाजार कीमत 600 रुपये प्रति हिस्से से अधिक थी। ग्लैक्सो लिमिटेड ने 110 रुपये की कीमत पर हिस्सा पूजी प्राप्त की जब कि इसकी प्रचलित बाजार कीमत 1000 रुपये प्रति हिस्से से अधिक थी।

विदेशी इजीनियरिंग फर्म के सदर्भ मे बट्टा दर (Discount Rate) 80 प्रतिशत तक रही है। यूनाइटिड डिस्टलरीज ने केवल 6 करोड रुपया लगाकर 70 प्रतिशत बट्टा प्राप्त किया जबकि फिलिप्स ने 80 प्रतिशत बट्टा हासिल किया।

अत भारतीय फर्मों के अभारतीयकरण की प्रक्रिया जारी है और जिस प्रकार भारत सरकार बडे सहज रूप मे विदेशी कम्पनियो को भारतीय कम्पनियो की परिसम्पत पर नियंत्रण की इजाजत दे रही है उसके परिणामस्वरूप भारत मे शीघ्र ही बहुराष्ट्रीय कम्पनियो का प्रभुत्व कायम हो जाएगा। इसे भारत मे नव साम्राज्यवाद के अष्टभुज के विकास की सज्ञा दी जा सकती है।

निजीकरण की दिशा और प्रगति
(Direction and Progress of Privatization)

सार्वजनिक क्षेत्र से मोह भग हो जाने के कारण विश्व मे एक प्रबल एहसास पैदा हुआ कि अकुशल सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइया जो साल दर साल घाटे दिखा रही है बन्द कर देनी चाहिए और ऐसी इकाइया को राजकोष से अर्थसाहाय्य देकर जीवित नहीं रखना चाहिए। सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयो की अकुशलता के मुख्य कारण अधिकारितन्त्रवाद (Bureaucratisation) और राजनैतिक हस्तक्षेप हे। एक दूसरा कारण जिसने अकुशलता को बढावा दिया है वह यह है कि सार्वजनिक क्षेत्र मे काम करने की प्रवत्ति बहुत ही नीचे स्तर पर पहुच गयी है और कर्मचारी उपलब्ध सेवा सुरक्षा का अनुचित लाभ उठाते हैं।

इस स्थिति को उन्नत करने के लिए सरकार ने बोध ज्ञापन (Memorandum of Understanding) की धारणा के आधार पर बहुत सी सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयो से संधिया कीं। ये बोध ज्ञापन 1992 93 मे 98 इकाइयो से किए गए और 1993 94 मे इनका विस्तार 104 इकाइयो पर किया गया। बोध ज्ञापन का मूल उद्देश्य "नियत्रण की मात्रा" को कम करना और 'दायित्व की गुणवत्ता को बढाना हे। 1992 93 के दौरान किए गए 97 बोध ज्ञापनो की समीक्षा से पता चला कि उनमे से 37 को "अति उत्तम" की श्रेणी मे रखा गया और 35 को 'बहुत अच्छे समझा गया। अत 72 सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयो के निष्पादन स्तर मे महत्त्वपूर्ण उन्नति हुई। बोध ज्ञापनो के बारे मे मूल आलोचना यह हे कि सरकार इन इकाइयो के मुख्य प्रबन्धको को स्वायत्तता देने के बारे मे ईमानदारी नहीं दिखा रही है चूंकि वे सरकारी अफसरो के माध्यम से कार्य कर रही राजनीतिज्ञो की कालोनिया बन गए हैं। राजनीतिज्ञो और सरकारी अफसरो के भी इस गठबन्धन को तोडने के लिए इनके प्रबन्ध के लिए व्यावसायिक प्रबन्धक

(Professional Managers) नियुक्त करना चाहिए। अनेक सरकारी उद्यम इस कारण बीमार हो जाते हैं क्योंकि सरकार उनकी समय के लिए उच्च मुख्य प्रबन्धक नियुक्त नहीं करती उनका बिना मुखिया के कार्य करते हैं और इसलिए अनिर्णय और अकुशलता का शिकार बन जाते हैं। जिनका ज्ञात हो सुझाव दिया है कि सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए संघ लोक सेवा आयोग द्वारा भर्ती करने की पद्धति काफी प्रभावी मानी गयी है। यह पद्धति राजनीतिक दबाव से भी मुक्त है। इसी प्रकार की व्यवस्था द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के मुख्य प्रबन्धकों की नियुक्ति होनी चाहिए। एक नयी संस्था जिसका सार्वजनिक क्षेत्र संघ लोक सेवा आयोग जैसा ही हो गठन की जानी चाहिए और मुख्य प्रबन्धकों की नियुक्ति के बारे में इसकी सिफारिशों को अन्तिम माना जाना चाहिए। मुख्य प्रबन्धक की कार्यावधि या इसका उद्यम के निष्पादन पर होना चाहिए न कि किसी व्यक्ति विशेष की राय के आधार पर।

कुशलता बढ़ाने के लिए कर्मचारी स्वामित्व का उचित प्रयोग

दूसरा मुख्य सुझाव कर्मचारियों के उत्तरदायित्व को बढ़ाना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह बेहतर होगा कि कर्मचारियों की हिस्सा पूँजी की धारणा विकसित की जाए। इससे कर्मचारियों और संस्थाओं के बीच आपस में जुड़ाव आएगा। कर्मचारी स्वामित्व (Employee ownership) को श्रमिकों की काम करने की प्रवृत्ति को बढ़ाने का प्रभावी उपाय माना गया है। विश्व के विभिन्न भागों में किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि ऐसी कम्पनियां जो कार्य कर प्रतिफल करने में स्वामित्व व कर्मचारी सहयोग के साथ होती है वे अन्य कम्पनियों की अपेक्षा जो ऐसा नहीं करतीं कहीं अधिक विकास दर प्राप्त कर पाती हैं। यदि भारत सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के अविनियोग का प्रोग्राम चला रही है इसमें कर्मचारी स्वामित्व की योजना के विकास की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। ताकि उत्पादिता में वृद्धि के साथ श्रमिक न केवल वेतन के भागीदार ही बनें बल्कि हिस्सा पूँजी के स्वामी होने के नाते लाभांश के हिस्सेदार भी बन सकें। सरकार ने कर्मचारियों को हिस्सा पूँजी खरीदने की मामूली पेशकश तो की है परन्तु इस सम्बन्ध में कोई ठोस योजना प्रतिपादित नहीं की। कुछ देशों में कर्मचारी स्वामित्व का भाग निगम की कुल हिस्सा पूँजी के 20-25 प्रतिशत के बीच रहा है। कर्मचारी स्वामित्व का अनुपात निश्चित करने के लिए कोई विशिष्ट मार्गदर्शी सिद्धान्त निर्धारित करना तो बहुत कठिन है क्योंकि इसमें बहुत से कारण शामिल होते है। परन्तु यह बात काफी विश्वास के साथ कही जा सकती है कि जितना अधिक भाग कर्मचारी स्वामित्व का कुल हिस्सा पूँजी में होगा उतना ही अधिक श्रमिकों का तुष्टिकरण होगा और उतनी ही अधिक उनकी कम्पनी के प्रति निष्ठा होगी।

अविनियोग नीति (Disinvestment Policy)

तीसरा महत्त्वपूर्ण प्रश्न सार्वजनिक उपक्रमों की हिस्सा पूँजी का अविनियोग है। सामान्यतया यह तर्क दिया जाता है कि घाटे वाली इकाइयों का निजीकरण (Privatization) होना चाहिए। सरकार जो करती वह पता चलता है कि यह उसमें विश्वास नहीं रखती। सरकार तो एक प्रकार से घाटा निजीकरण (Deficit privatization) को अपना रही है ताकि अपने बजट घाटे को कम कर सके। सत्य तो यह है कि स्वस्थ और अच्छे लाभ कमाने वाली सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों की हिस्सा पूँजी का अविनियोग किया जा रहा है। कम्पट्रोलर और ऑडिटर जनरल ने 7 मई 1993 को लोकसभा को दी गयी अपनी रिपोर्ट में सरकार की सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों की हिस्सा पूँजी के विक्रय की दोषपूर्ण कार्यवाही की आलोचना करते हुए यह उल्लेख किया है कि इससे सरकार को भारी हानि हुई है। 1991-92 के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र के जिन हिस्सों का अविनियोग किया गया उनका मूल्य 6480 करोड़ रुपये आंका गया परन्तु सरकार को केवल 3038 करोड़ रुपये प्राप्त हुए—3442 करोड़ रुपये की भारी हानि। इस घोटाले का अभिप्राय तो यह है कि सरकारी क्षेत्र की बहुमूल्य सम्पत्ति को निजी क्षेत्र की जेबों में डाल दिया गया जिसे न तो आर्थिक तर्क के आधार पर और न सामाजिक न्याय के आधार पर न्यायोचित समझा जा सकता है। वास्तव में कार्यविधि तय करने में अनुचित विलम्ब और जब तेजी की परिस्थितियाँ विद्यमान थीं तब हिस्सा बेचने के बारे में सरकार द्वारा समय पर कार्यवाही करने में विफलता के कारण सरकार अधिक लाभ प्राप्त न कर सकी। यह यू.एन.डी.पी. विशेषज्ञ डॉ. महबूब उल हक द्वारा दी गयी चेतावनी को दृष्टि में न रख सकी कि स्वेच्छापूर्ण एवं अपारदर्शी कार्यविधि के अनुसार मत बेचो क्योंकि ऐसा करना भ्रष्टाचार और पक्षपात के आरोपों को निमंत्रण देना है। इस सम्बन्ध में इसी विशेषज्ञ की यह सलाह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि इनके विक्रय से प्राप्त राशि द्वारा बजट घाटे के लिए धन मत जुटाओ—राष्ट्रीय ऋण को कम करो। सरकार को इन दोनों कसौटियों के आधार पर दोषी ही माना जा सकता है। सरकार द्वारा दिखायी गयी ढील से राष्ट्र को भारी लागत अदा करनी पड़ी है और 33 प्रतिशत की सीमा तक बीमा बसूल कर जो राशि प्राप्त हुई उसका प्रयोग केन्द्र सरकार के घाटे को कम करने के लिए किया गया।

अतिरिक्त श्रम और राष्ट्रीय नवीकरण कोष का दुरुपयोग

एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र के ऐसे

उद्यमो को जो घाटे पर चल रहे थे उपचारात्मक कार्यवाही करनी थी वह अत्यधिक कर्मचारियो के रूप मे कई वर्षों के दौरान इन पर इकट्ठी हुई चरबी को कम करना था। इस उद्देश्य को ध्यान मे रखते हुए सरकार ने राष्ट्रीय नवीनकरण कोष (National Renewal Fund) कायम किया ताकि श्रमिको को स्वेच्छापूर्वक सेनानिवृत्ति (Voluntary retirement) का अवसर प्राप्त हो सके। दूसरे, उभरते हुए उच्च तकनॉलाजी क्षेत्रो मे श्रमिको के प्रशिक्षण और पुन प्रशिक्षण का प्रबन्ध भी करना था ताकि वे किसी वैकल्पिक उत्पादक व्यवसाय मे रोजगार प्राप्त कर सके। परन्तु राष्ट्रीय नवीकरण कोष की समीक्षा से पता चलता है कि इसके सम्बन्ध में सरकार की नीति विवेकशून्य ही रही है और इस कारण इसके कार्यक्षेत्र को स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति योजना तक ही सीमित कर दिया गया और अन्य उद्देश्यो को पूर्णतया उपेक्षा की गयी चाहे वे एक निर्विघ्न सक्रमण के लिए समान महत्व रखते थे।

स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति योजना (Voluntary Retirement Scheme) के रूप मे इस योजना को सामान्यकृत बना दिया गया और सार्वजनिक क्षेत्र के किसी भी उद्यम में एक क्रमबद्ध अध्ययन द्वारा उन क्षेत्रो का निर्धारण नहीं किया गया जिनमे श्रमिक फालतू थे और न ही यह अनुमान लगाया गया कि कितने श्रमिक अतिरिक्त माने जा सकते हैं। अत इसकी बजाए कि सरकार सार्वजनिक उद्यमो मे बेकार श्रमिको से छुटकारा पाने की अपेक्षा योग्य एव प्रतिभावान श्रमिको एव अधिकारियों ने स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति योजना का लाभ उठाया। श्री के अशोक राव जो अधिकारी सगठन के राष्ट्रीय महासघ के प्रधान हैं ने ठीक ही कहा कि सरकार की नीति की विवेकशून्यता इस बात से स्पष्ट हो जाती है कि इसने सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो के योग्य कर्मचारियो को स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति योजना के रूप म दहेज देना आरभ कर दिया ताकि वे निजी क्षेत्र मे प्रवश कर सकें। उदाहरणार्थ आई डी पी एल के 1100 कर्मचारी इस योजना का लाभ उठाकर इसे छोड गए और उनमे अधिकतर प्रबन्ध वर्ग से थे। इसी प्रकार भारतीय पर्यटन विकास निगम से सभी योग्य एव कुशल रसोइए एव प्रबन्धक विकास निगम से सभी योग्य एव प्रबन्धक तीन मास की छोटी सी अवधि मे ही स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति योजना का लाभ उठाकर चले गए और निगम को चलाने के लिए केवल बैरे छोड गए। यही कहानी राज्य व्यापार निगम मे दोहराई गयी जिसने अपने समग्र स्टाफ को इस योजना का लाभ उठाने का खुला निमत्रण दे दिया। परिणामत इसके नौजवान और अत्यन्त कुशल प्रबन्धको ने निगम को छोड निजी क्षेत्र के आयात निर्यात घरानो मे उच्च पदों पर नौकरियां प्राप्त कर लीं। निचले स्तर पर अतिरिक्त कर्मचारी जू के तू बने रहे। इस कारण राज्य व्यापार निगम ने मजबूर हो इस योजना को समाप्त कर दिया।

भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्ज लिमिटेड मे लगभग 1000 अत्यन्त योग्य इजीनियर एव प्रबन्धक स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति योजना का लाभ उठाकर कम्पनी से 10 करोड रुपये की क्षतिपूर्ति लेकर इसे छोड गए। इसी प्रकार भारत इलेक्ट्रानिक्स लि को अपने सबसे कुशल इजीनियरो से हाथ धोना पडा और इसने योजना का परित्याग कर दिया। परन्तु सरकार के निर्णय भी अजाब हैं। न जाने वे कौन से कारण थे जिन्होंने सरकार को मजबूर किया कि उनके दबाव के आधीन स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति योजना पुन लागू कर दी गयी।

सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयो से तकनीकी श्रमिको का पलायन विशेषकर नौजवान और योग्य प्रबन्धको का पलायन इतनी तेजी से होने लगा कि बहुत से सार्वजनिक उद्यमो मे स्वैच्छिक निवृत्ति योजना को इसके आरभ होने के कुछ महीनो में ही बन्द करना पडा। इस प्रकार इस योजना को अन्धाधुन्ध लागू करने के नतीजे के तौर पर सार्वजनिक उद्यमो मे तकनीकी और प्रबन्धकीय वर्ग तेजी स समाप्त होने लगा। इस प्रकार सार्वजनिक उद्यमो की क्रीम निजी क्षेत्र द्वारा खींच ली गयी और सार्वजनिक क्षेत्र मे ऐसे कर्मचारी रह गए जिनकी अवसर लागत (Opportunity cost) श्रम बाजार मे उनकी वर्तमान मजदूरी दर से कम थी।

प्रत्येक सार्वजनिक उद्यम म उन क्षेत्रो या विभागों की पहचान करने के लिए जिनमें अतिरिक्त श्रमिक भर्ती थे कोई प्रारंभिक अध्ययन भी न किया गया। यदि राष्ट्रीय नवीकरण कोष का चयनात्मक प्रयोग अतिरिक्त श्रमिको के लिए सीमित कर दिया जाता तो इस योजना द्वारा अनुपयोगी श्रमिको को प्रभावी एव मितव्ययी रूप मे हटाया जा सकता था। परन्तु जिस विवेकशून्य ढग से सरकार ने इस योजना को लागू किया उससे स्वैच्छिक निवृत्ति योजना का कुल लागत बहुत ही ज्यादा बढ गयी। सत्य तो यह है कि समस्त राष्ट्रीय नवीकरण कोष का प्रयोग केवल स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति योजना के वित्त प्रबन्ध के लिए किया गया और तब भी इसका उत्पादिता एव कुशलता पर नकारात्मक प्रभाव ही पडा।

ऐसी परिस्थिति मे यह स्वाभाविक ही था कि राष्ट्रीय नवीकरण कोष को मजदूर सघ शक को नजर से ही देखे क्योंकि इस योजना ने अपने कार्य क्षेत्र से रोजगार जनन और रोजगार बीमा के अशो को तो छोड दिया और केवल सेवा निवृत्ति के बदले मे क्षतिपूर्ति को सुविधा को ही बने रहने दिया।

नयी आर्थिक नीति और रोजगार-विहीन विकास

यदि रोजगार लोच (Employment elasticity) का

विभिन्न क्षेत्रो मे व्यक्त वृद्धि-दरो के साथ गुना करके देश मे अतिरिक्त रोजगार के अनुमान लगाए जाए और फिर यह देखा जाए कि क्या ये अवशिष्ट बेरोजगारी और श्रमशक्ति वृद्धि के लिए रोजगार उपलब्ध करा सकेगे तो यह पता चलता है कि 1990 91 मे बेरोजगारो की जो सख्या 110 लाख थी वह बढकर 1991 92 मे 170 लाख और 1993-94 मे 210 लाख तक पहुच जाएगी। बेरोजगारी की दर इस प्रकार 1990 91 मे 3 1 प्रतिशत से बढकर 1993-94 मे 5 5 प्रतिशत हो जाएगी। यह अर्थव्यवस्था के लिए चिन्ता का विषय है।

अत रोजगार की दृष्टि से *सरचनात्मक सुधारो* (Structural reforms) के प्रभाव के परिणामस्वरूप निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं —

1 *उदारीकरण की प्रक्रिया के साथ प्रत्यक्ष विदेशी* विनियोगो मे वृद्धि के फलस्वरूप विकास का पूजी प्रधान ढाचा विकसित हुआ है और इसके नतीजे के तौर पर सगठित उद्योग मे रोजगार विहीन वृद्धि (*Jobless growth*) प्रोन्नत होगी।

2 सार्वजनिक क्षेत्र को कुछ हद तक अपनी कुछ चरबी कम करने के लिए कुछ छटनी (Retrenchment) तो अनिवार्यत करनी ही होगी भले ही इससे स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति का नाम दिया जाए या सार्वजनिक क्षेत्र की बीमार इकाइयो मे प्रत्यक्ष छटनी का।

3 निजी क्षेत्र मे ऐच्छिक एव वास्तविक रोजगार मे गभीर अतर विद्यमान है।

4 उत्पादिता मे वृद्धि के लाभ का पूरा हस्तातरण श्रम को नहीं किया जाता।

5 सार्वजनिक उद्योग मे उत्पादन की तुलना मे रोजगार की लोच निजी विनिर्माण क्षेत्र की अपेक्षा तीन गुना है।

इस सारे विश्लेषण से यह सकेत मिलता है कि निजी क्षेत्र ने शोषणात्मक रूप मे कार्य किया है और इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि वास्तविक रोजगार किसी आधुनिक *सभ्य लोकतात्रिक समाज के मानदण्डो के आधार पर वाछनीय* रोजगार से कम है और दूसरे, निजी क्षेत्र उत्पादिता मे वृद्धि के लाभ का अधिकतर भाग स्वय हडप कर जाता है और श्रमिको को बहुत ही कम लाभ प्राप्त होता है। इसके विरुद्ध यह भी सही है कि सार्वजनिक क्षेत्र श्रम के प्रयोग मे अत्यधिक उदारता दिखाता हे और इसी कारण इसमे श्रम की लोच निजी क्षेत्र की तुलना मे तीन गुना है। निष्कर्ष यह है कि निजी क्षेत्र को अधिक मानवीय बनाना होगा और सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक लागत कुशल। श्रम-आधिक्य वाली अर्थव्यवस्था मे बाजार प्रक्रिया के कार्यान्वयन से निजी क्षेत्र को मानवीय बनाना सभव नहीं। इसके लिए तो राज्य सरकार को सकारात्मक कार्यभाग अदा करना होगा। रोजगार के विस्तार के लिए निगम क्षेत्र को सगठित बडे या मध्यम पैमाने के क्षेत्र पर निर्भर करना वाछनीय नहीं होगा। इसके लिए तो लघु स्तर उद्योग क्षेत्र और सेवा-क्षेत्र पर बल देना होगा।

विकास एव साम्य दोनो के आधार पर नये आर्थिक सुधारो की विफलता

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि नये आर्थिक सुधार 1991 की औद्योगिक नीति मे प्रतिपादित लक्ष्यो को प्राप्त करने मे अभी तक सफल नहीं हुए हैं। इन्हीं ने अन्तर्राष्ट्रीय खिडकी को बहुत अधिक खोल दिया और उच्च तकनॉलाजी क्षेत्रो की प्राथमिकता का ध्यान रखे बिना बहुर्राष्टीय निगमो को सभी क्षेत्रो मे प्रवेश करने की इजाजत दे दी। दूसरे बहुराष्ट्रीय निगमो ने भारतीय फर्मों को हडप करने की प्रक्रिया चालू कर दी और अब यह भय गभीर रूप धारण कर गया है कि बहुराष्ट्रीय निगम भारतीय पूजी पर अपना आधिपत्य जमा लेंगे। इस सदर्भ मे भारतीय उद्योगपतियो को अपनी कुशलता एव उत्पादिता उन्नत करने का अवसर देने की अपेक्षा बहुराष्ट्रीय निगम भारतीय उद्योगपतियो का विस्थापन कर देगे। यह प्रवृत्ति हमारे आत्मनिर्भरता के लक्ष्य के विरुद्ध हे।

पावर क्षेत्र मे बहुराष्ट्रीय निगमो को अपनी विनियुक्त पूजी पर 16 प्रतिशत प्रत्याय दर की गारटी देकर आमंत्रित किया गया। भले ही भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्ज लि द्वारा विकसित देशीय योग्यताओ का अल्पप्रयोग ही हो रहा है। परन्तु भारतीय उद्योग के महासघ द्वारा सरकार को प्रस्तुत की गयी रिपोर्ट मे यह उल्लेख किया गया कि बहुराष्ट्रीय निगम हिस्सा पूजी पर 16 प्रतिशत प्रत्याय दर की गारटी से सतुष्ट नहीं है। विदेशी पूजीपति 25 प्रतिशत से *कम आन्तरिक* प्रत्याय दर नहीं चाहते। वह तो 27 28 प्रतिशत प्रत्याय दर चाहते है। यह भारत के लिए बहुत ही महगा प्रस्ताव है। *विश्व बैंक ने भी यह सलाह दी है कि जो बहुराष्ट्रीय निगम* विकासशील देशो मे विनियोग करना चाहते हैं उन्हे प्रत्याय दर की गारटी न दी जाए।

इसके अतिरिक्त, आर्थिक सुधारो ने रोजगार विहीन विकास की प्रक्रिया को प्रोत्साहन दिया हे। निकासी नीति (Exit policy) चुपचाप कार्यान्वित की जा रही है और इसके आधीन स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति जो कि छटनी का दूसरा नाम है को पूरे जोर से लागू किया जा रहा हे। इसके फलस्वरूप श्रम का अनियतीकरण (Casualisation) हो रहा है जबकि इससे पहले बेहत्तर सामाजिक सुरक्षा प्राप्त थी। विकास का

पूंजी प्रधान मार्ग चाहे यह भारतीय निगम क्षेत्र या बहुराष्ट्रीय निगमो द्वारा प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग द्वारा चलाया जाए, रोजगार विहीन विकास की प्रक्रिया के लिए जिम्मेदार है। यह तर्क दिया जाता है कि विकास की इस रणनीति द्वारा रोजगार को "मध्यकाल मे बढाना सभव हो सकेगा, परन्तु जिस गति से श्रम का विस्थापन किया जा रहा है या इसे अनियत श्रम मे परिवर्तित किया जा रहा है उससे इस सन्देह को बल मिलता है कि रोजगार विहीन विकास की प्रक्रिया देश मे लगातार बनी रहेगी।

नये आर्थिक सुधार कृषि को एक तरफ छोड गए हैं और परिणामत कृषि जो कि आर्थिक स्थायीकरण का मुख्य-आधार है मे वृद्धि दर बहुत कम रही है। बडे विनिर्माण क्षेत्र मे भी पिछले तीन वर्षों (1991 92 से 1993 94) के दौरान वृद्धि दर मन्द ही रही है। पूजी वस्तु क्षेत्र मे भारी गिरावट आयी है और इस कारण अर्थव्यवस्था का मूलाधार कमजोर हो गया है।

आर्थिक सुधारो की प्रक्रिया राजकोषीय घाटे को कम करने मे सफल नहीं हुई है और राजकोषीय घाटा 1992 93 मे सकल देशीय उत्पाद के 5 7 प्रतिशत तक कम होने के पश्चात् 1993 94 मे पुन बढकर 7 6 प्रतिशत हो गया। अत जाहिर कि नयी आर्थिक नीति का प्रभाव थाडी देर के लिए ही हुआ और नये आर्थिक सुधार एक ओर तो सरकारी-अपव्यय को कम करने मे सफल नहीं हुए और दूसरी ओर सीमा शुल्को ओर उत्पादन शुल्को मे कटोती के परिणामस्वरूप सरकारी राजस्व को बढाने मे सफल नहीं हुए। सक्षेप मे यह कहा जा सकता हे कि नये आर्थिक सुधारो की अन्तर्निहित मान्यताए व्यवहार मे सही सिद्ध नहीं हो सकीं। राजस्व घाटे को कम करने की अपेक्षा, बाजार उधार पर निर्भरता की प्रवृत्ति बल पकड गयी जोकि चिन्ता का विषय है। इस बढती हुई प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप ॠण सेवा भार द्वारा 1994 95 के दौरान कुछ राजस्व का 53 प्रतिशत हडप कर लिया जाएगा। यह एक खतरनाक प्रवृत्ति है जिसे पलटना चाहिए। चाहे भारत को सात लगातार अच्छे मानसून वर्ष प्राप्त होने का सुनहरा अवसर प्राप्त हुआ, फिर भी 1994 95 के दौरान थोक कीमत सूचकाक मे 10 प्रतिशत की वद्धि हुई जो राष्ट के लिए चिन्ता का विषय है।

आर्थिक सुधारो के समथको द्वारा यह दावा किया जाता ह कि विदेशी मुद्रा रिजर्व बढकर 18 अरब डालर हो गए हैं और 1992 93 मे जबकि व्यापार घाटा 350 करोड डालर था, घटकर 1993 94 मे 100 करोड डालर रह गया है। इस प्रकार रुपये की विनिमय दर स्थिर हो गयी है और अन्तर्राष्टीय विश्वास बहाल हो गया है। ये अच्छी उपलब्धियो है। परन्तु विदेशी मुद्रा रिजर्व मे वृद्धि मात्र को अर्थव्यवस्था के बेहत्तर स्वास्थ्य का सूचक मानना उचित नहीं परन्तु जब अन्य नकारात्मक सूचक जैसे कीमतों मे वृद्धि थोक एव उपभोक्ता कीमत सूचकाक रोजगार की वृद्धि दर में अवरोध कृषि एव औद्योगिक उत्पादन मे गतिरोध पर भी विचार करे, तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हम साम्यता और आत्मनिर्भरता के दोनो लक्ष्य प्राप्त करने मे बिल्कुल विफल हुए हैं।

विश्व बैंक ने अपने हाल ही के अध्ययन **"पूर्व एशियाई चमत्कार"** में यह बात स्पष्ट की कि अर्थव्यवस्था के उदारीकरण से पूर्व इसके मूलाधार को मजबूत करने का कोई संक्षिप्त उपाय नहीं है। एशिया में तीव्र आर्थिक विकास करने वाले देशो मे अधिकतर ऐसे थे जिनमे बाहरी उदारीकरण आन्तरिक प्रतियोगिता और उत्पादिता मे स्थायी वृद्धि से पहले नहीं बल्कि कि बाद मे किया गया और व्यापक सरकारी हस्तक्षेप की अपेक्षा चयनात्मक हस्तक्षेप (Selective intervention) का प्रयोग वद्धि दर एव साम्यता दानों को बढाने के लिए किया गया विशेषकर साम्यता (Equity) को। भारत द्वारा इस शिक्षा को ग्रहण करने की आवश्यकता है।

विश्व बैंक के आठ उच्च निष्पादन वाली अर्थव्यवस्थाओं-जापान चार टाइगर हागकाग कोरिया का गणतन्त्र सिगापुर और ताईवान चीन और तीन दक्षिण पूर्वीय एशिया की नव-औद्योगीकृत अर्थव्यवस्थाओ इण्डोनेशिया मलेशिया और थाईलैण्ड के अध्ययन से पता चलता हे कि ये अर्थव्यवस्थाए विश्व के अन्य क्षेत्रों की तुलना मे तेजगति से विकास कर पायीं। "मोटे तोर पर उच्च निष्पादन वाली अर्थव्यवस्थाए ऊची वृद्धि दर प्राप्त कर पायीं क्योंकि उन्होंने अपने बुनियादी ढाचे को सही किया। गैर सरकारी देशीय विनियोग आर तीव्र दर से बढ रही मानवीय पूजी (Human capital) विकास के मुख्य इजन थे। देशीय वित्तीय बचत की ऊची दर द्वारा इन अर्थव्यवस्थाओ मे विनियोग का ऊचा स्तर कायम रखा जा सका। कषि, चाहे सापेक्ष दृष्टि से इसका महत्व कम हो रहा था, मे विकास दर ओर उत्पादिता मे तीव्र वृद्धि अनुभव का गयी। विश्व के अन्य विकासशील देशों की तुलना मे जनसख्या की वृद्धि दर मे तेजी से गिरावट आयी और इनमे से कुछ अर्थव्यवस्थाओ मे विकास मार्ग पर अग्र गति प्राप्त करने मे इस कारण सफलता प्राप्त हुई क्योंकि उनका श्रम शक्ति बेहतर रूप मे शिक्षित थी और इनमे सार्वजनिक प्रशासन की प्रणाली अधिक प्रभावी थी। इस दृष्टि से अगर विचार किया जाए तो इन उच्च निष्पादन वाली अर्थव्यवस्थाओ के विकास के बेहतर रिकार्ड के लिए कुछ भी "चमत्कारी" नहीं है यह बहुत हद तक भौतिक एव मानवीय पूजी के श्रेष्ठतर सग्रहण का परिणाम है।"

परन्तु ये बुनियादी आधार पूरी कहानी नहीं बताते। इनमे बहुत सी अर्थव्यवस्थाओ मे सरकार ने एक या दूसरे रूप मे क्रमबद्ध रूप मे हस्तक्षेप किया और यह हस्तक्षेप विभिन्न दिशाओ मे किया गया ताकि विकास की गति त्वरित हो सके और कुछ परिस्थितियो मे विशेष उद्योगो का विकास हो सके।

नये आर्थिक सुधारो का समग्र तर्क इस बात पर आधारित है कि अर्थव्यवस्था राज्य सरकार के निर्देश के आधीन कुशल रूप मे कार्य नहीं करती और इस कारण वे राज्य के कार्यभाग को न्यूनतम करने को न्यायोचित मानते है। परन्तु जैसा कि पाल स्ट्रीटन का कहना है न्यूनतम राजकीय हस्तक्षेप के समर्थको के तर्क मे अन्तर्विरोध है। उन्होंने यह बात तो ठीक ही कही है कि बाजार विफलता अपने आप मे राजकीय हस्तक्षेप के लिए तर्क नहीं है क्योकि इस प्रकार और भी बदतर परिणाम प्राप्त हो सकते है परन्तु वे भूल जाते है कि सरकारी या अधिकारितन्त्रीय या राजकीय हस्तक्षेप अनिवार्यत निजी बाजारो के पक्ष मे तर्क नहीं है कम से कम तब तक नहीं जब तक कि और अधिक अनुभवजन्य प्रमाण प्रस्तुत नहीं किए जाते कि राजकीय कार्यवाही के किसी विशेष क्षेत्र मे *परिणाम बाजारो की तुलना मे अनिवार्यत बदतर है।*

दूसरे शब्दो मे यह कहना सही होगा कि राष्ट्रीयकरण एव निजिकरण दोनो ही कुछ उद्देश्यो को प्राप्त करने के उपाय है। दोनो ही व्यवस्थाओ के समर्थको की मूल गलती यह है कि वे उपायो को उद्देश्य मानना आरभ कर देते है। उदाहरणार्थ इस बात के बहुत अधिक प्रमाण मिलते है कि अध सरचना मे सार्वजनिक विनियोग निजी विनियोग को प्रोत्साहन देता है। सरकार का कार्य यह है कि वह सार्वजनिक एव निजी क्षेत्र मे विनियोग की उत्पादिता बढाए। इस प्रकार स्वास्थ्य एव शिक्षा का प्रबन्ध विशेषकर गरीब वर्गों के स्वास्थ्य एव शिक्षा की जिम्मेदारी सरकार पर ही होनी चाहिए क्योंकि बाजार प्रक्रिया यह कार्य नही कर सकती।

पाल स्ट्रीटन के अनुसार मुख्य सवाल यह है विश्व बैंक ने बाजार मैत्रीपूर्ण राजकीय हस्तक्षेप की सिफारिश की है। परन्तु स्वतत्र बाजार तटस्थ सस्थान है जो अच्छे या बुरे दोनो कार्य कर सकते है। उनकी कुशलता के बारे मे कुछ भी कहा जाए, परन्तु वे अपने शिकारो के बारे मे कोमल हृदय नहीं रखते। जोन राबिन्सन ने कहा है कि अदृश्य हाथ (Invisible hand) गला भी घोट सकता है। राष्ट्रपति क्लिन्टन की शैली मे कि जनसामान्य को प्रथम स्थान मिलना चाहिए, जो प्रश्न उठाया जा रहा है वह यह है कि वे कौन सी शर्तें है जो बाजारो को जन मैत्रीपूर्ण बना सकती है। कुछ शर्तें तो ऐसी है जो बाजारो को कुशल रूप से कार्य करने के लिए पूरी करनी जरूरी है और कुछ शर्तें ऐसी भी होगी जिन्हे पूरा करके इन्हे जनता के कल्याण के लिए कार्य करने के लिए मजबूर किया जा सकता है। नये आर्थिक सुधारो के सभी प्रतिपादको को इस शिक्षा को समझना ही होगा। ❏❏❏

18

भारत में पूंजी-निर्माण की समस्या

(THE PROBLEM OF CAPITAL FORMATION IN INDIA)

1 अल्पविकसित अर्थव्यवस्था मे पूजी-निर्माण

प्रोफेसर नर्क्से (Nurkse) के अनुसार, "पूजी निर्माण का अर्थ यह है कि समाज अपनी समस्त वर्तमान उत्पादन क्षमता को उपभोग की तत्कालीन आवश्यकताओ की तुष्टि के लिए नहीं लगाता, अपितु इसका एक भाग पूजी वस्तुओ अर्थात् यत्र तथा उपकरण, मशीने तथा परिवहन सुविधाए, सयत्र तथा सामान बनाने के लिए प्रयुक्त करता है ये वास्तविक पूजी के तमाम विभिन्न रूप हैं जो उत्पादन क्षमता की प्रभाविता को *बहुत बढा सकते हैं। अत प्रक्रिया का सार इस बात में है* कि समाज द्वारा वतमान मे उपलब्ध ससाधनो के एक भाग का प्रयोग पूजी वस्तुओ का स्टाक बढाने के लिए किया जाता है ताकि भविष्य मे उपभोग योग्य उत्पाद मे वद्धि हो सके।" पूजा निर्माण की ऊपर दी गयी परिभाषा वास्तविक अथवा भौतिक पूजी निर्माण के रूप मे दी गई है।

अल्पविकसित देश के सदर्भ मे पूजी निमाण के अर्थ का विस्तार कर इसमे बहुत सी अदृश्य पूजी (Invisible Capital) जो मानवीय स्वास्थ्य कौशल (Skill) और खाद्यान्न के रूप मे उपलब्ध होती है को भी शामिल किया जाता है। दूसरे शब्दो मे वे सभी वस्तुए तथा सेवाए, जिनकी उपलब्धि आर्थिक विकास के लिए अनिवार्य है और जिनकी अनुपस्थिति आर्थिक विकास के मार्ग मे रुकावट है पूजी का अग समझी *जानी चाहिए। भारत जैसे देश म खाद्यान्न की कमी के कारण* आर्थिक विकास प्रोन्नत करना कठिन हो जाता है परिणामत खाद्य अतिरेक (Food surplus) पूजी का कार्यभाग अदा करता है और इस प्रकार विकास प्रोन्नत करता है। इसी तरह किसी अल्पविकसित देश के आर्थिक विकास मे मानवीय कौशल (Human skill) का अभाव एक गभीर अडचन है। उदाहरणार्थ, भारत अपने आर्थिक विकास के लिए और भौतिक सामग्री अर्थात् मशीने, औजार और उपकरण तो किसी अन्य देश से प्राप्त कर सकता है। परन्तु हो सकता है कि इन मशीनो तथा औजारो के प्रयाग के लिए भारत मे आवश्यक कौशल उपलब्ध न हो। अत "पूजी निर्माण" की धारणा मे मकान मशीनरी परिवहन तथा सचार प्रतिष्ठान कच्चे माल, श्रम प्रशिक्षण और सबसे उत्तम कुछ हद तक मजदूरी वस्तुओ (Wage good) को भी शामिल करना चाहिए।

चाहे पूजी निर्माण के शब्द को अधिक अर्थपूर्ण बनाने के लिए उसका विस्तृत प्रयोग वाछनीय है परन्तु पूजी निर्माण *सबधी बहुत से वास्तविक अनुमानो मे इसका अर्थ भौतिक* पूजी वस्तुओ के स्टाक से अर्थात् मशीनो, औजारो उपकरणा परिवहन सुविधाओ आदि के रूप मे लिया गया। इसमे सन्देह नहीं कि पूजी निर्माण के अर्थ को सामित करने का विचार, *जिसमे वस्तुओ के स्टाक मे वद्धि का अनुमान लगाया जाता* है माप की दृष्टि से व्यवहार्य है। इसलिए अर्थशास्त्रियो द्वारा यह उचित समझा गया कि पूजी निर्माण की ऐसी परिभाषा स्वीकार की जाय कि पूजी के स्टाक का अनुमान लगाना सभव हो।

2 पूजी निर्माण की प्रक्रिया
(The Process of Capital Formation)

सारे ससार में अर्थशास्त्रियो मे इस बात पर सहमति प्राप्त हो गयी है कि आर्थिक विकास और पूजी निमाण में घनिष्ठ सबध है। पूजी निर्माण के अधिकतर सिद्धान्ता में एक मौन कल्पना पाई जाती है अर्थात किसी देश मे किसी समय विशेष पर उत्पादन की मात्रा पूजी के स्टाक से सामिल हो जाती है चाहे श्रम प्रचुर हो या नही। परन्तु इस बात पर *बल देना आवश्यक है कि पूजी निर्माण की दर मे वद्धि के* साथ साधारणतया उत्पादिता तथा आय मे तीव्र वद्धि होती है परन्तु इस एक कारणतत्व मे पूर्ण विश्वास केन्द्रित करना मूर्खता होगी। प्रोफेसर नर्क्से ने ठीक ही कहा है "पूजी विकास की अनिवार्य शर्त अवश्य है परन्तु इसे पर्याप्त शर्त माना नहीं जा सकता।" चूंकि पूजी निर्माण आर्थिक विकास का अनिवार्य निर्धारक है इसलिए पूजी निर्माण की वाछनीय दर एव पूजी निमाण की प्रक्रिया का निधारण अनिवार्य हो

1 Nurkse R *Problems of Capital Formation in Underdeveloped Countries* p 2

2 Nurkse R *op cit* p 1

जाता है। पूजी-सचयन (Capital accumulation) के अधिकतर सिद्धान्त पूजी-निर्माण की दर को अल्पकाल मे बढाने मे विश्वास रखते हैं। इस विचारधारा का उद्देश्य आर्थिक विकास प्रक्रिया को अल्पकाल मे सकेन्द्रित करना है। प्रोफेसर पी एन रोजैनस्टीन रोडन (Rosenstein Rodan) ने महान् प्रयास सिद्धान्त (*Theory of the Big Push*) को प्रतिपादित करते हुए इस बात पर बल दिया कि आर्थिक विकास मे धीरे धीरे शक्ति लगाने का सिद्धान्त सफल नहीं हो सकता अर्थव्यवस्था को तो जोर का धक्का लगाने की आवश्यकता होती है। **विनियोग की इकाइयां थोड़ी-थोड़ी बढ़ाने से समग्र अर्थव्यवस्था को ऊंचा उठाने के लिए संचयी प्रभाव नहीं होगा। विनियोग की एक न्यूनतम मात्रा सफलता की अनिवार्य शर्त है (चाहे पर्याप्त नहीं)। संक्षेप में महान् प्रयास सिद्धांत का सार यही है।**

कोई समाज पूजी-निर्माण अथवा विनियोग की ऊची दर कैसे प्राप्त कर सकता है ? पूजी निर्माण की प्रक्रिया तीन चलो पर निर्भर है

(1) वास्तविक राष्ट्रीय बचत की मात्रा मे वृद्धि होनी चाहिए ताकि जो ससाधन उपभोग के लिए प्रयुक्त होते है विनियोग के लिए उपलब्ध हो सके।

(2) समाज की बचत को गतिमान (Mobilise) करने के लिए उचित बैक एव वित्तीय सस्थान (Financial institutions) कायम करने चाहिए।

(3) *उद्यमकर्त्ता वर्ग (Entrepreneurial class)* का विकास जो समाज की बचत को उत्पादक विनियोग (Productive investment) मे लगा सके।

विभिन्न अर्थव्यवस्थाओ मे बचत की दर को बढाने के लिए विभिन्न उपाय इस्तेमाल किए गए। साम्यवादी रूस तथा *अन्य केन्द्रीय रूप मे आयोजित अर्थव्यवस्थाओ मे स्वसिद्ध विकास पद्धति (Bootstrap approach to development)* को अपनाया गया ओर राष्टीय बचत दर को बढाने के लिए उपभोग पर प्रतिबध लगाए गए। इस प्रकार ब्रिटिश अर्थव्यवस्था मे यही उद्देश्य मजदूरी को कम रखकर और व्यापारिक एव औद्योगिक लाभ का आर्थिक विस्तार के लिए पुनर्विनियोजन (Reinvestment) करके प्राप्त किया गया। ये दोनो पद्धतिया भारत मे लागू करनी सभव नही। भारत मे लोकतत्रीय राज्य के निर्माण और वर्ग चेतन श्रम शक्ति (Class conscious labour force) के विकास के कारण न ही तो अधिकारतत्रीय उपायो (Totalitarian methods) का प्रयोग किया जा सकता है और न ही मजदूरी स्तर काफी समय के लिए सामाजिक दबाव के अधीन *कम रखा जा सकता है। परिणामत आयोजित* विनियोग के लिए आन्तरिक बचत ही पर्याप्त नहीं। इसलिए विनियोग का कुछ भाग विदेशी पूजी के रूप मे प्राप्त किया जा सकता है। विदेशी सहायता एक अल्पकालीन उपाय है क्योंकि अन्तिम विश्लेषण मे आर्थिक विकास का समग्र भार अर्थव्यवस्था को ही सहन करना होगा।

भारतीय *अर्थव्यवस्था* ने अपने *विकास के लिए* पूजी-सचयन (Capital accumulation) की ऐसी नीति अपनाई है जिसमे आर्थिक विकास के लिए आवश्यक ससाधनो का अधिकतर भाग वास्तविक देशीय बचत (Real domestic saving) द्वारा उपलब्ध कराया जाएगा और इसका कुछ *भाग विदेशी पूजी के अन्त प्रवाह द्वारा प्राप्त होगा। उठान* अवस्था (Take-off-stage) मे प्रवेश करने के लिए द्वितीय एव तृतीय योजना मे विदेशी पूजी की अधिक मात्रा की सहायता लेने का निश्चय किया गया परन्तु चौथी योजना और उसके बाद के काल मे भारतीय अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर करने के लिए विदेशी सहायता की कम मात्रा प्राप्त करने का सकल्प किया गया। हाल ही के वर्षो मे तकनॉलाजीय उन्नति और भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से जोडने की दृष्टि से विदेशी पूजी की अधिक मात्रा का प्रयोग किया जा रहा है।

3. भारतीय अर्थव्यवस्था सम्बन्धी भौतिक पूजी-निर्माण के विभिन्न अनुमान

स्वतत्रता-उपरान्त काल मे भौतिक पूजी निर्माण के अनुमान मुख्यत दो सस्थाओ द्वारा तैयार किए गए। वे है—रिजर्व बैंक *ऑफ इण्डिया और केन्द्रीय साख्यिकी सगठन (Central* Statistical Organisation)।

किसी अनुमान को तैयार करते समय सामान्यत अर्थव्यवस्था को तीन क्षेत्रो मे विभक्त कर लिया जाता है (*i*) **परिवार क्षेत्र** (Household sector) जिसमे ऐसी उत्पादक *आर्थिक इकाइया शामिल की जाती है जो वैयक्तिक साझेदारी* या अनिगमित व्यापार (Unincorporated business) के आधार पर चलाई जा रही हो (*ii*) **निगम क्षेत्र** (Corporate sector) म सयुक्त पूजी कम्पनियाँ शामिल की जाती है और (*iii*) **सरकारी क्षेत्र** मे सरकार की परिसपत और सरकार के *नियत्रण मे चल रहे उद्यमो की परिसम्पत् शामिल की जाती* है। यदि हम किसी निश्चित अवधि मे इन क्षेत्रों मे परिसम्पत (Assets) के मूल्य मे शुद्ध परिवर्तन को जोड ले तो हमे शुद्ध देशीय पूजी निर्माण (Net domestic capital formation) प्राप्त हो जाता है। यदि इसमें पूजी का शुद्ध अन्त प्रवाह *(Net inflow of capital) जमा कर दिया जाय तो अर्थव्यवस्था* मे शुद्ध राष्टीय पूजी निर्माण प्राप्त हो जाता है।

केन्द्रीय साख्यिकी सगठन (C S O) अपने अनुमान उत्पाद प्रणाली द्वारा तैयार करता है। इस उद्देश्य के लिए अनुमान पूंजी वस्तुओ के प्रकार अर्थात् भवन निर्माण (Con-

struction) मशीनरी तथा उपकरण (Machinery and equipment) के रूप मे तैयार किया जाता है। अनुमान के इस भाग को अचल पूजी निर्माण (Fixed capital formation) कहते है। कुल पूजी निर्माण (Gross capital formation) प्राप्त करने के लिए इसमे स्टाक मे परिवर्तन (Changes in stock) अर्थात् कार्यकारी पूजी (Working capital) के अनुमान जमा किए जाते हैं।

4 भारतीय अर्थव्यवस्था मे देशीय बचत एव पूजी-निर्माण की प्रवृत्ति (Trend of Domestic Saving and Capital Formation in the Indian Economy)

केन्द्रीय सांख्यिकीय सगठन (C S O) और रिजर्व बैंक आफ इण्डिया द्वारा बचत एव विनियोग (पूजी निर्माण) के अनुमानो में काफी अन्तर विद्यमान था। बचत पर नियुक्त प्रोफेसर के एन राज के अध्ययन दल ने अपनी रिपोर्ट फरवरी 1988 में प्रस्तुत की। अध्ययन दल द्वारा जिन मुख्य सैद्धांतिक एव अनुमान सम्बन्धी समस्याओ की पहचान की गयी वे थीं (i) पूंजी उपभोग (Capital consumption) की मात्रा का अनुमान लगाना (ii) पूजी विनाश (Capital destruction) एव हानियो का अनुमान लगाना और (iii) उत्पादन की अल्प सूचना के कारण सकल देशीय उत्पाद (Gross domestic Product) के अल्पानुमान का अन्दाजा लगाना और इसके परिणामस्वरूप सकल अचल पूजी निर्माण (Gross Fixed Capital Formation) मे अत्यनुमान (या अल्पानुमान) की सभावना को आकना।

राज अध्ययन दल के सुझाव के आधार पर यह महसूस किया गया कि सी एस ओ और रिजर्व बैंक द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था के बचत एव विनियोग सम्बन्धी अनुमानो में तालमेल लाना अत्यन्त आवश्यक है। हाल ही के वर्षो मे इन दोनो सस्थाओ के विशेषज्ञो म सयुक्त बैठके आयोजित की गयीं ताकि इन दोनों सस्थाओ के अनुमानो मे अन्तर कम किया जा सके। उदाहरणार्थ रिजर्व बैंक आफ इंडिया ने बचत के अनुमान के लिए सी एस ओ के भौतिक परिसम्पत् (Physical Assets) के अनुमान को स्वीकार कर लिया है। सी एस ओ के पूजी उपयोग सम्बन्धी अनुमान अधिक वास्तविक है। 1975 76 से 1979 80 की अवधि के दौरान प्रत्येक क्षेत्र मे सकल बचत के अनुपात के रूप मे पूजी उपभोग परिवार क्षेत्र म 70 से 74 प्रतिशत के बीच था यह निजी क्षेत्र मे कुल बचत के 66 से 74 प्रतिशत के बीच और सार्वजनिक क्षेत्र मे 20 से 40 प्रतिशत के बीच था।

इसी प्रकार, अर्थव्यवस्था के पूजी निर्माण सम्बन्धी अनुमान मे बाह्य कारणो अर्थात् बाढो तूफानो (Cyclones) आग भूकम्प आदि के कारण हुए पूजी विनाश का प्रावधान नहीं किया गया। कई वर्षों मे तो यह हानि शुद्ध अचल पूजी निर्माण के 10 प्रतिशत के उच्च स्तर तक पहुच जाती है।

कुल राष्ट्रीय उत्पाद के आकडो में विभिन्न कारणो के परिणामस्वरूप अल्पसूचना की त्रुटि विद्यमान है और इसका मुख्य कारण भारत मे समानान्तर अर्थव्यवस्था (Parallel economy) का विद्यमान होना है। इस सबंध मे अध्ययन दल ने उल्लेख किया है 'बही खातो मे हेरफेर करने की विभिन्न क्रियाओ के रूप मे प्राय उत्पादन की अल्पसूचना दी जाती है कई बार बेची गयी वस्तु की अल्प कीमत आकी जाती है ताकि प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष कराधान से बचा जा सके (विशेषकर विनिर्मित वस्तुओ पर उत्पाद शुल्क से)। ऐसी अल्पसूचना का प्रयोग सापेक्ष दृष्टि से छोटे अनिगमित उद्यमो (Unincorporated enterprises) द्वारा भी किया जाता है जिन पर प्रत्यक्ष कराधान लागू नहीं है ऐसा विशेषकर औद्योगिक विधायन, व्यापार एव होटल तथा रेस्टोरान जैसे सेवा उद्योगो मे लगे हुए उद्यमकर्ताओ द्वारा किया जाता है।'[3] उत्पादन की अल्प सूचना के परिणामस्वरूप सकल देशीय उत्पाद का अल्पानुमान लगाया जाता है। यदि इस अल्प सूचना को ठीक कर लिया जाए तो अर्थव्यवस्था के विनियोग एव बचत सबधी अनुमान कुछ हद तक कम हो जाएगे।

आकडो को ठीक करने एव सी एस ओ और रिजर्व बैंक के सयुक्त प्रयास के फलस्वरूप अत्यनुमान एव अल्पानुमान की त्रुटियो मे काफी सुधार किया गया है। इसी कारण अब सी एस ओ और रिजर्व बैंक के अनुमानो मे पाया जाने वाला अन्तर छठी योजना और उसके बाद के काल मे कम हो गया है।

हम 1950 51 और 1992 93 की अवधि के लिए सी एस ओ द्वारा पूजी निर्माण एव बचत के लिए तैयार किए गए अनुमान प्रस्तुत करते हैं ताकि पूजी निर्माण एव बचत की वृद्धि दर और इसके विभिन्न अगो सबधी जानकारी प्राप्त हो सके।

सकल देशीय पूजी निर्माण (Gross domestic capital formation) के दो अग है—सकल देशीय बचत और विदेशो से पूजी अन्त प्रवाह (Capital inflow) तालिका 1 से पता चलता है कि चालू कीमतो पर सकल देशीय बचत 1950-51 में सकल देशीय उत्पाद क 10.4 प्रतिशत के समान था यह 1960 61 मे बढकर 12 7 प्रतिशत हो गयी और 1970 71 मे और बढकर 15 7 प्रतिशत हो गया। इसके पश्चात् देशीय बचत म तीव्र वृद्धि हुई और यह 1980 81

3 Reserve bank of India, Capital Formation and Saving in India (1950 51 to 1979-80) *Report of the Working Group on Savings* February 1982 pp 41-42

रहा है। परिणामतः एक चेतन नीति के रूप में विदेशी पूंजी के शुद्ध अन्तःप्रवाह को बढ़ाया जा रहा है ताकि भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था के साथ जोड़ा जाए। विदेशी पूंजी की ओर उदारीकरण की नीति के परिणामस्वरूप विदेशी अन्तःप्रवाह 1992-93 में सकल देशीय उत्पाद का लगभग 2.0 प्रतिशत था और जैसे जैसे अधिक प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग प्राप्त किया जाएगा, इसमे और वृद्धि हो जाने की प्रत्याशा है। अतः विश्वीकरण (Globalisation) के नये दर्शन के कारण आगामी वर्षों में विदेशी विनियोग का भाग बढ़ जाएगा।

सकल देशीय पूंजी-निर्माण अर्थव्यवस्था में विनियोग स्तर का सूचक है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि जहां 1950-51 में सकल देशीय उत्पाद का 10.2 प्रतिशत विनियोग में लगा हुआ था, वहां यह अनुपात 1980-81 में बढ़कर 22.7 प्रतिशत हो गया और फिर और उन्नत होकर 1990-91 में 27.3 प्रतिशत के उच्च स्तर तक पहुंच गया। परन्तु विदेशी पूंजी के अन्त प्रवाह में गिरावट के परिणामस्वरूप 1994-95 में यह गिरकर 25.9 प्रतिशत हो गया। अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डों के आधार पर भारत यह उचित दावा कर सकता है कि इसने देशीय बचत एवं विनियोग का काफी ऊंचा स्तर प्राप्त कर लिया है।

देशीय बचत (Domestic Saving) का क्षेत्रवार योगदान

देशीय बचत तीन क्षेत्रों से प्राप्त की जाती है। : (क) परिवार क्षेत्र (*Household Sector*), (ख) निजी निगम क्षेत्र (Private Corporate Sector) और (ग) सार्वजनिक क्षेत्र। परिवार क्षेत्र की बचत को मोटे तौर पर वित्तीय बचत (Financial saving) और भौतिक परिसम्पत (*Physical assets*) के रूप में विभक्त किया जाता है। वित्तीय बचत करेन्सी एवं जमा (Deposits), हिस्सा पूंजी तथा ऋण-पत्रों, सरकार पर शुद्ध दावों, जीवन बीमा निधियों, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया की इकाइयों और पूर्वोपायी एवं पेन्शन निधियों के रूप में रखी जाती है। भौतिक परिसम्पत में बचत वास्तविक जायदाद, जेवर, जवाहरात आदि के रूप में रखी जाती है।

तालिका 2 : सकल देशीय बचत के स्रोत

वर्ष	परिवार क्षेत्र			निजी निगम क्षेत्र	सार्वजनिक क्षेत्र	कुल
	वित्तीय बचत	भौतिक परिसम्पत	उपयोग			
	(1)	(2)	3 = 1 + 2	4	5	6=3+4+5
सकल देशीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप में						
1960-61	2.8	2.0	4.8	0.9	0.8	6.4
1970-71	3.2	4.6	7.8	0.5	0.3	8.6
1980-81	6.3	9.7	15.1	1.7	3.4	21.2
1990-91	9.3	11.2	20.5	2.8	1.0	24.3
1991-92	10.1	7.7	17.8	3.2	1.9	22.9
1994-95	11.4	7.8	19.2	4.0	1.7	24.9
कुल सकल बचत के प्रतिशत के रूप में						
1960-61	43.8	30.6	74.4	13.4	12.2	100.0
1970-71	36.8	54.2	91.0	5.4	3.6	100.0
1980-81	29.9	46.0	75.9	7.9	16.2	100.0
1990-91	38.3	46.1	84.4	11.5	4.1	100.0
1991-92	44.1	33.6	77.7	14.0	8.3	100.0
1994-95	45.8	31.3	77.1	16.1	6.8	100.0

नोट : 1960-61 और 1970-71 के लिए कुल शुद्ध बचत के आंकडे हाल ही मे संशोधित कर 7.5 प्रतिशत और 9.6 प्रतिशत कर दिए गए हैं क्योंकि परिवार क्षेत्र की वित्तीय बचत का अनुमान बढ गया है, परन्तु इनका वर्गीकरण अभी उपलब्ध नहीं।

स्रोत: RBI *Report on Currency and Finance* (1995-96)

चालू कीमतो पर सकल देशीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप मे 1994 95 के दौरान परिवार क्षेत्र ने कुल बचत मे 20 प्रतिशत का योगदान दिया निजी निगम क्षेत्र ने 4 2 प्रतिशत का और सार्वजनिक क्षेत्र ने केवल 1 8 प्रतिशत का।

परन्तु यह जरूरी नहीं कि परिवार क्षेत्र की बचत का प्रयोग भी केवल इसी क्षेत्र द्वारा किया जायेगा। वास्तव मे सार्वजनिक क्षेत्र एव निजी निगम क्षेत्र दोनो ही अपने विनियोग स्तर को उन्नत करने के लिए परिवार क्षेत्र से उधार लेते है।

तालिका 3 मे सकल देशीय पूजी निर्माण मे सार्वजनिक क्षेत्र एव निजी क्षेत्र के भाग के बारे मे सूचना उपलब्ध हैं। सकल देशीय उत्पाद (GDP) के प्रतिशत के रूप मे सार्वजनिक क्षेत्र का भाग जो 1960 61 मे ? 8 प्रतिशत के निम्न स्तर पर था उन्नत होकर 1985 86 मे 11 8 प्रतिशत हो गयी। इसका मुख्य कारण सरकार की वह नीति थी जिसके अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र का सोच समझकर आधारिक सरचना क्षेत्र (infrastructure) अर्थात् सडक निर्माण रेलवे सचार सचालन शक्ति जनन और भारी उद्योगो मे विस्तार किया गया। निजी क्षेत्र का विनियोग भी जो 1960 61 मे 7 4 प्रतिशत था बढकर 1985 86 मे 9 5 प्रतिशत हो गया दूसरे शब्दो मे सकल देशीय पूजी निर्माण मे सार्वजनिक क्षेत्र एव निजी क्षेत्र का भाग 55 45 के अनुपात हो गया। तत्पश्चात् नीतियो का झुकाव निजीकरण (Privatization) के पक्ष मे किया गया और जो क्षेत्र अभी तक सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित थे, निजी क्षेत्र के विनियोग के लिए खोल दिए गए। परिणामत सकल देशीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप मे सार्वजनिक क्षेत्र का भाग गिरकर 1993 94 मे 8 5 प्रतिशत हो गया। सार्वजनिक क्षेत्र का कुल विनियोग मे भाग जो 1985 86 में 55 प्रतिशत था कम होकर 1994 95 मे 31 प्रतिशत हो गया और निजी क्षेत्र का भाग इन 9 वर्षों की अल्पावधि मे 69 प्रतिशत से बढकर 58 प्रतिशत हो गया।

उद्योगानुसार प्रयोग के रूप मे सकल देशीय पूजी निर्माण

अर्थव्यवस्था का मोटे तौर पर वस्तु क्षेत्र (Commodity sector) और वस्तु भिन्न क्षेत्र मे वर्गीकरण किया जाता है। वस्तु क्षेत्र के दो मुख्य अग हैं (क) कृषि वन विकास मत्स्य आदि और (ख) खनन एव विनिर्माण जिसमें भवन निर्माण, बिजली गैस और जल पूर्ति शामिल हैं। वस्तु भिन्न क्षेत्र मे (क) परिवहन सचार एव व्यापार, वित्त एव वास्तविक जायदाद और (ग) सामुदायिक एव वैयक्तिक सेवाए शामिल की जाती है। तालिका 4 मे दिए गए आकडो से पता चलता है कि वस्तु क्षेत्र का सकल देशीय पूजी निर्माण मे भाग जो 1980 81 मे 56 प्रतिशत था बढकर 1994 95 मे लगभग 59 6 प्रतिशत हो गया और इसी काल के दौरान वस्तु भिन्न क्षेत्र का भाग 44 प्रतिशत से कम हो कर 40 4 प्रतिशत हो गया वस्तु क्षेत्र के अन्तर्गत, खनन एव विनिर्माण का भाग जो 1980 81 मे 37.5 प्रतिशत था 1994 95 तक तेजी से बढकर 49 प्रतिशत हो गया। यह पूजी निर्माण मे खनन एव विनिर्माण के बढते हुए महत्व का सूचक है। किन्तु पूजी निर्माण मे कृषि का भाग जो 1980 81 में लगभग 19 प्रतिशत था गिरकर 1994 95 मे 10 8 प्रतिशत हो गया।

वस्तु भिन्न क्षेत्र मे, विभिन्न उप क्षेत्रो के भागों मे नाममात्र

तालिका 4 उद्योगानुसार प्रयोग के रूप मे सकल देशीय पूजी निर्माण
(1980 81 कीमतो पर)

आर्थिक क्रिया	1980 81		1994 95	
	सकल देशीय पूजी निर्माण करोड रुपये	कुल का प्रतिशत	सकल देशीय पूजी निर्माण करोड रुपये	कुल का प्रतिशत
1 कृषि वन एव मत्स्य	4864	18 9	6427	10 8
खनिज एव विनिर्माण	9672	37.5	28837	48 7
3 परिवहन, सचार एव व्यापार	5?32	20.3	11653	19 7
4 वित्त एव वास्तविक जायदाद	?311	12 8	7986	13.5
5 सामुदायिक एव वैयक्तिक सेवाए	2,715	10.5	4,308	7.3
क वस्तु क्षेत्र (1+2)	14,536	56 4	35?64	59 6
ख वस्तु भिन्न क्षेत्र (3+4+5)	11 258	43 6	23947	40 4
कुल (क+ख)	25794	100 0	59211	100 0

तालिका 6 सार्वजनिक क्षेत्र एवं निजी क्षेत्र में वास्तविक सकल देशीय पूंजी-निर्माण (1980-81 की कीमतों पर)

	करोड रुपयों मे			*वास्तविक पूंजी-निर्माण, सकल देशीय* तत्पाद के प्रतिशत के रूप मे		
	सार्वजनिक क्षेत्र	निजी क्षेत्र	कुल	सार्वजनिक क्षेत्र	निजी क्षेत्र	कुल
1960 61	4805	7543	12,348	7 0	11 1	18 1
	(38 9)	(61 1)	(100 0)			
1970 71	6984	11944	18928	6 9	11 8	18 7
	(36 9)	(63 1)	(100 0)			
1980 81	11767	19113	30880	8 6	14 1	22 7
	(38 1)	(61 9)	(100 0)			
1990 91	21613	36577	58190	8 8	14 8	23 6
	(37 1)	(61 9)	(100 0)			
1994 95	21254	32309	53363	9 0	13 7	22 7
	(39 7)	(60 3)	(100 0)			
चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि-दर						
1960 61 और 1970 71				3 8	4 7	4 4
1970 71 और 1980 81				5 4	4 8	5 0
1980 81 और 1992 93				6 3	6 7	6 5
1960 61 और 1992 93				5 0	4 8	4 9

नोट . (*i*) इन आकडो मे त्रुटियो एव भूलो का समायोजन कर लिया गया है।

(*ii*) ब्रैक्ट मे दिए गए आकडे कुल के प्रतिशत के रूप मे हैं।

स्रोत CMIE *Basic Statistics Relating to the Indian Economy Vol 1 August 1994* मे दिए गए आंकडो मे सकलित एव परिकल्पित।

फलस्वरूप कुछ हद तक साधन गैर सरकारी क्षेत्र से सरकारी क्षेत्र को सौंप दिए जाए और विलोम क्रम भी। यदि बचत कम प्राथमिकता वाले क्षेत्रो की तुलना मे प्रथमिकता प्राप्त क्षेत्रो मे भी प्रयुक्त की जाती है तो बचत के इस परिवर्तित प्रयोग से भी आर्थिक विकास मे सहायता मिलेगी। परन्तु बचत गतिमान करने की प्रक्रिया का उद्देश्य राष्ट्रीय आय मे बचत के कुल एव सापेक्ष दोनो भागों को बढाना है ताकि इसे विनियोग की ऐसी उत्पादक आर्थिक क्रियाओं मे इस्तेमाल किया जाए जिससे आर्थिक विकास त्वरित हो। अत यह आवश्यक है कि बचत को तीनो क्षेत्रो अर्थात् सरकारी क्षेत्र निजी निगम क्षेत्र और परिवार क्षेत्र मे गतिमान किया जाए और इसके लिए उचित नीतियां बनानी चाहिए।

सरकारी क्षेत्र की बचत मुख्यत करो सरकारी उद्यमो (Public Enterprises) के अतिरेक और आन्तरिक ऋणों एव जमा (Deposits) को गतिमत्ता से प्राप्त होतीं है। सरकारी क्षेत्र को इन स्रोतो से प्राप्त हो सकने वाले साधनो की सभावना की जाच करनी होगी। यहा इस बात का सकेत करना होगा कि कीमतो मे वृद्धि के कारण सरकार को अपने कर्मचारियो के वेतन में वृद्धि करनी पडती है। इसी प्रकार सरकारी क्षेत्र द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली वस्तुओ को कीमतो मे वृद्धि हुई है। इन दोनो कारणतत्वो के परिणामस्वरूप राजकीय व्यय मे वृद्धि हुई है और इस प्रकार सरकारी उद्यमो के अतिरेक समाप्त हो गए हैं। जब तक बढती हुई कीमतों की वृद्धि-दर कम नहीं की जाती सरकारी क्षेत्र की बचत प्रत्याशित दर पर नहीं पहुच सकेगी। दूसरे, सार्वजनिक उद्यमो की कुशलता और लाभदायिकता मे उन्नति करके सार्वजनिक क्षेत्र की बचत को बढाया जा सकता है। इसके लिए सार्वजनिक सुधार अनिवार्य है।

तालिका 7 सकल राष्ट्रीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप मे कर राजस्व

देश	प्रत्यक्ष कर (1)	अप्रत्यक्ष कर (2)	कुल (3)	1 से 2 का प्रतिशत
यू एस ए	9 9	8 1	18 0	5 5
आस्ट्रेलिया	18 0	7 0	25 0	72
कनाडा	11 2	7 8	19 0	59
यू के	14 6	19 4	34 0	43
जर्मनी	4 9	24 1	29 0	17
भारत (1994 95)	3 6	12 1	15 7	23

स्रोत UNDP *Human Development Report* (1994)

अतिरिक्त कराधान (Additional Taxation)— सकल राष्टीय उत्पाद (GNP) के अनुपात के रूप मे कर राजस्व तो 1950 51 मे 6 9 प्रतिशत था बढकर 1970 71 मे 12 4 प्रतिशत और फिर और बढकर 1994 95 मे 15 7 प्रतिशत हो गया।

सरकार ने कडे परिपालन के साथ नीची प्रत्यक्ष कर दर की नीति अपनाने का निर्णय लिया है। इसी प्रकार अप्रत्यक्ष करो को भी कडाई से वसूल करने के लिए कदम उठाए गए है। इस नीति के परिणामो पर निगाह रखनी होगी।

कर मुख्यत दो श्रेणियो मे बाटे जाते है—प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष कर। हमारे देश मे केवल 5 प्रतिशत परिवार कर योग्य आय ब्रैक्ट (Taxable income bracket) मे हैं अर्थात् 40 000 रु से अधिक वार्षिक आय प्राप्त करते हैं। जहा पर भी आय कर की दरो को ऊचा उठाने के प्रयास किए गए हैं इनके बारे मे यह कहा जा सकता है कि भारतीय आयकर प्रणाली मे कराधान की बहुत ऊची दरे लगायी गयी हैं परन्तु इनसे प्राप्ति उसी अनुपात मे नहीं बढी। इसका मुख्य कारण उद्योगपतियो एव व्यापारियो द्वारा बडे पैमाने पर किए जाने वाला कर वचन (Tax evasion) है। वेतन प्राप्त करने वाला वर्ग ही एक ऐसा वर्ग है जो ईमानदारी से कर देता है क्योकि वह अपनी आय को छिपा नहीं सकता। छोटे व्यापारियो एव उद्योगपतियो की एक बहुत बडी सख्या [जो आयकर की अभिसीमा (Income tax range) मे आ जाती है] या तो बहुत ही थोडा कर देती है या बिना कर दिए छूट जाती है।

परन्तु कुल कर राजस्व (Tax Revenue) का अधिकतर भाग अप्रत्यक्ष करो (Indirect Taxes) से प्राप्त होता है। भारत सरकार अप्रत्यक्ष करो के क्षेत्र का विस्तार करती रही है। परन्तु अप्रत्यक्ष करो से कीमतो की वृद्धि होती है। अत कर राजस्व बढाने के उद्देश्य का मत स्थायित्व के उद्देश्य के साथ समन्वय करना होगा। अत प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष करो के विस्तार की सीमाओ का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना अनिवार्य है। अप्रत्यक्ष करो मे कर वचन भी भारी मात्रा मे होने लगा है और इसीलिए *प्रशासनिक मशीनरी को सबल बनाना* और भी जरूरी हो जाता है।

1997 98 के बजट मे वित्तमत्री ने आयकर की उच्चतम दर घटाकर 30 प्रतिशत कर दी है। यह आशा की जा रही है कि अधिक पूजीपति इसका लाभ उठाएगे और कर वचन कम हो जाएगा।

भारतीय कर ढाचे के विश्लेषण से पता चलता है कि इसमे 1994 95 मे अप्रत्यक्ष करो (Ind rect taxes) से 12 1 प्रतिशत राजस्व प्राप्त होता था और प्रत्यक्ष करो से केवल 3 6 प्रतिशत। इसके विरुद्ध अन्य देशो के आकडे यह व्यक्त करते हैं कि राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप मे प्रत्यक्ष करो का योगदान कहीं अधिक है। जाहिर है कि भारतीय कर प्रणाली प्रतिगामी (Regressive) है। इसे सुधारने के लिए समृद्ध वर्गों पर अधिक कर लगाने चाहिए और उनकी कडाई से वसूली करनी चाहिए।

कृषि आय का कराधान (Taxation of Agricul tural Income)—कराधान का एक स्रोत जिसका अभी तक पूर्ण प्रयोग नहीं हो सका कृषि क्षेत्र है। सामान्यतया यह बात देश मे स्वीकार की जाती है कि जहा कृषि क्षेत्र कुल राष्ट्रीय आय का 33 प्रतिशत उत्पन्न करता है इसके द्वारा भू राजस्व और कृषि आय कर के रूप मे 1992 93 मे 617 करोड रुपये का योगदान दिया गया है अर्थात् कृषि से प्राप्त कुल उत्पाद का 0 36 प्रतिशत। यह अपर्याप्त समझा जाता है किन्तु इस बात की ओर सकेत करना होगा कि समस्त कृषि आय कराधान के आधीन नहीं लायी जा सकती। उदाहरणार्थ खेती से प्राप्त होने वाली आय का 50 प्रतिशत पारिवारिक

उपभोग के लिए रख लिया जाता है। स्पष्टतया कराधान द्वारा 'अमुद्रीकृत क्षेत्र' (Non monetized sector) से अतिरिक्त राजस्व गतिमान करना कठिन है। परिणामत कर आधार (Tax base) छोटा हो जाता है। इसके अतिरिक्त शहरी क्षेत्र को तुलना मे ग्राम क्षेत्र मे आय का वितरण अपेक्षाकृत अधिक समान है। उदाहरणार्थ 3 प्रतिशत कृषि परिवार आय कर अभिसीमा (अर्थात् 40 000 रुपये प्रतिवर्ष और इससे अधिक) मे आते हैं और इनके पास कुल ग्राम आय का लगभग 12 प्रतिशत है। इससे यह सिद्ध होता है कि ग्राम क्षेत्र में कर योग्य आय का आधार बहुत निम्न है।

भारतीय कृषि में हरी क्रांति और पूजीवादी खेती (Capital farming) के प्रचलन के फलस्वरूप सामान्यतया यह विश्वास किया जाता है कि ग्रामीण भारत मे समृद्ध किसानो के वर्ग का विकास हो रहा है। कृषि कराधान के प्रस्तावो का उद्देश्य समृद्ध नये किसानो के वर्ग—भद्र किसानो से कर प्राप्त करना है। इस सबध मे कुछ कठिनाइया भी हैं। कृषि कराधान एक राज्यीय विषय है और राज्य इन करो को लगाने से आमतौर पर हिचकिचाते हैं। ग्राम क्षेत्र राजनीतिक दलो के गढ माने जाते हैं और समृद्ध किसान एक प्रकार के वोट बैंक समझे जाते हैं। इस कारण राज्याय सरकारे इस वर्ग पर कर लगाना नहीं चाहतीं। दूसरी समस्या प्रशासनिक है। इन प्रशुल्को को लगाने के लिए फार्म-आयं (Farm income) का निर्धारण आवश्यक है। और इसमें 'वैद्य फार्म व्यय' घटाना होगा। इसके परिणामस्वरूप प्रशासनिक मशीनरी पर काफी दबाव पड़ेगा। सन्देह यह है कि कराधान के सुविख्यात प्रनियम अर्थात् 'मितव्ययिता' की पालना को जा सके।

स्वैच्छिक बचत (Voluntary Saving) को प्रोन्नत करना

अल्पविकसित देशो मे कराधान के उपाय समपहारी (Confiscatory) समझे जाते हे क्योंकि अधिकतर जनता का आय स्तर पहले ही नाचा है और जनता इसमे से सरकार को कर देने का विरोध करती है। इसके विरुद्ध स्वैच्छिक बचत को बढाने के उपाय अपेक्षाकृत अधिक स्वाकार्य एव सफल बन सकते हैं। इस उद्देश्य के लिए सरकार समाज के विभिन्न वर्गो को अपनी बचत उधार एजेंसियो (Credit agencies) को सौंपने के लिए प्रोत्साहित कर सकती है। बचत को प्रोत्साहित करने के उपायो का निर्माण करते समय पारिवारिक क्षेत्र पर विशेष रूप से बल देना चाहिए क्योंकि यह भारतीय अर्थव्यवस्था मे बचत का प्रमुख स्रोत है। बचत को बढाने की दृष्टि से नीति सबधी निम्नलिखित उपाय बहुत सहायक हो सकते हैं—

1 **पूर्वोपायी कोष** (Provident fund) के विस्तार या इसके योगदान की दर मे वृद्धि से ससाधन बढाए जा सकते हैं। भारत मे इस स्रोत का क्षेत्र सीमित है। देश की दृष्टि से यह वाछनीय है कि पूर्वोपायी कोष योजना का बडे तथा छोटे पैमाने के उद्यमो मे विस्तार किया जाए।

2 **जीवन बीमा** योजना जनता की बचत को एकत्र करने का एक और उपाय है। सभी सेवा क्षेत्रो मे अनिवार्य बीमा योजनालागू करने से इस स्रोत द्वारा उपलब्ध कराये जाने वाले साधन निश्चित रूप मे बढाये जा सकते हैं। कर मे अन्तर्निहित अनिवार्यता और अनिवार्य बचत योजना मे एक मूल भेद है। पूर्वोक्त मे कोई तत् प्रति तत् (Quid pro quo) प्राप्त नहीं होता जबकि उपरोक्त मे ब्याज के रूप मे प्रत्याग की प्रत्याशा होती है। इसके अतिरिक्त, जीवन के जोखिम और अन्य असमर्थताओ का बीमा भी हो जाता है। अत यह कहीं लाभदायक है कि पूर्वोपायी कोष और जीवन बीमे का अधिकाधिक औद्योगिक और अन्य उद्यमो मे विस्तार किया जाये।

3 **ग्राम क्षेत्रो मे बैंक-जमा को गतिमान करना**—बैंक जमा (Bank Deposits) बचत का महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इसमे महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई। परन्तु पारिवारिक क्षेत्र मे ग्राम क्षेत्र का भाग कम ही रहा है। वास्तव मे 1950 51 के पश्चात् ग्रामीण परिवारो का बचत-आय अनुपात लगभग 2 3 प्रतिशत ही रहा है। ग्राम-क्षेत्रा मे उत्पन्न अतिरिक्त आय का एक बहुत बडा भाग या तो अनुत्पादक कार्यों मे विनियुक्त किया जाता है या अधिदृश्य उपभोग (Conspicuous consumption) मे नष्ट हो जाता है या इसका आसचय (Hoarding) किया जाता है। इस विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्राम क्षेत्र मे बचत को गतिमान करने का काफी गुजाइश है। 1969 मे 14 बडे बैंको के राष्ट्रायकरण से परिस्थिति बदल गयी है। जून 1969 और दिसम्बर 1975 के बीच वाणिज्य बैंको की ग्रामाण शाखाओ की सख्या 1832 से बढकर 7736 हो गयी और यह जून 1991 में बढकर 38 190 हो गयी। ग्रामीण शाखाओं का कारोबार, जमा रकमा को जुटाने तथा अग्रिम देने, दोनो ही के सबध मे सामूहिक बैंक प्रणाली के कारोबार की तुलना मे बहुत ज्यादा प्रभावशाली रहा है। जून 1969 और मार्च 1991 के बीच बैंको की ग्रामीण शाखाआ की बैंक जमा 145 करोड रुपये से बढकर 30 682 करोड रुपये हो गयी जबकि सभी शाखाओ (ग्रामीण एव नगराय) की जमा 4 665 करोड रुपये से बढकर 2,00 036 करोड रुपये तक पहुच गयी। इस प्रकार, कुल बैंक जमा में ग्रामीण जमा का भाग जो जून 1969 मे 3 1 प्रतिशत था

बढकर मार्च 1991 मे 15 3 प्रतिशत हो गया। यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

निगम क्षेत्र की बचत (Saving of the Corporate Sector)

उन्नत देशों की तुलना मे निगम क्षेत्र का भारत की कुल बचत मे भाग बहुत थोडा है। निगम क्षेत्र द्वारा बचत के रूप मे राष्ट्रीय आय मे योगदान 2 प्रतिशत से भी कम किया जाता है। इसके मुख्य कारण राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे निगम क्षेत्र का भाग बहुत छोटा होना ही है। औद्योगीकरण की प्रक्रिया मे यह आशा की जाती है कि निगम क्षेत्र के भाग का परम एव सापेक्ष दोनो रूप मे–अर्थव्यवस्था के किसी भी अन्य क्षेत्र की तुलना मे अधिक तीव्र दर से विस्तार होगा। निगम क्षेत्र की अधिकतर बचत चाहे यह मूल्यह्रास के रूप मे होती है या प्रतिधृत लाभ (Retained profits) या विकास निधि (Development fund) के रूप मे सामान्यतया अपने ही विस्तार के लिए इस्तेमाल की जाती है। चूकि मिश्रित अर्थव्यवस्था म गैर सरकारी एव सरकारी क्षेत्र साथ साथ रहेगे निगम क्षेत्र की बचत अधिकतर अपने ही विस्तार मे इस्तेमाल होगी बशर्ते कि लाइसेस एव अन्य विनियामक उपकरण (Regulatory devices) इस बचत को विकास की दृष्टि से प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रो मे इस्तेमाल करने के लिए बाध्य कर दें। निगम क्षेत्र मे साधारणतया विनियोग को उच्च लाभ वाले उद्योगा म निर्देशित करने की प्रवृत्ति रहती है। चाहे लाभ निगम क्षेत्र के विनियोग का मार्गदर्शन करता रहेगा किन्तु इसे सामाजिक उद्देश्यो के अनुकूल ढालना होगा।

निष्कर्ष यह कि भारतीय अर्थव्यवस्था मे 1992 93 में सकल बचत की दर 23 0 प्रतिशत हो गयी। अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता ह कि इस स्तर पर पहुचने के पश्चात् सकल बचत दर (Gross saving rate) मे वद्धि की बहुत ही कम गुनाइश रहती है। अत बचत दर को बढाने की सभावना बहुत सीमित हो जाती पडती है किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि विकास का भार लाभ प्राप्तकर्त्ताओ पर डाला जाए। इस दृष्टि से कर ढाचे का प्रगतिवादी बनाना अत्यन्त आवश्यक है ताकि समृद्ध वर्ग ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रो मे विकास की प्रक्रिया मे न्यायपूर्ण ढग से योगदान दे। दूसरे, 2? 23 प्रतिशत की बचत दर से 5 6 प्रतिशत की विकास दर प्राप्त करना सभव होना चाहिए। इसके लिए विनियोग की प्राथमिकताओ का पुन निरीक्षण करना होगा आर ऐसे अनावश्यक विलासपूर्ण उपभोग के विनियोग के अपनिर्देशन को रोकना होगा जो कि पूजी प्रधान तकनीक पर आधारित है। अत भविष्य मे बचत और विनियोग के ऐसे न्यायपूर्ण ढाचे का विकास करना होगा जो राष्ट्रीय उद्देश्य के अनुकूल हो।

❑❑❑

19

विदेशी सहायता और भारत का आर्थिक विकास

(EXTERNAL ASSISTANCE AND INDIA'S ECONOMIC DEVELOPMENT)

1. विदेशी पूजी की आवश्यकता

विश्व मे औद्योगिक विकास मे अग्रणी इगलैंड को छोडकर आर्थिक विकास के लिए अग्रसर सभी देशो को *किसी न किसी सीमा तक विदेशी सहायता पर निर्भर रहना* पडा है। देशीय साधनो को गतिमान करने (Mobilisation of domestic resources) की सीमा तकनीकी प्रगति की दृष्टि से देशीय *अर्थव्यवस्था की स्थिति* और अपनी-अपनी सरकारो के रवैये के कारण विदेशी सहायता पर निर्भरता की मात्रा भिन्न भिन्न रही है। फिर भी इस बात से इन्कार नहीं *किया जा सकता कि विदेशी पूजी ने आर्थिक* विकास और औद्योगीकरण मे महत्वपूर्ण भाग अदा किया है।

भारत जैसे अल्पविकसित देश मे पूजी की कमी रही है। *विकास की गति तीव्र करने के लिए पूजी की आवश्यकता मे* वृद्धि हुई है और चूंकि आय की वृद्धि के साथ बचत मे तदनुरूप वृद्धि नहीं होती इसलिए विदेशी पूजी इस कमी की पूर्ति कर सकती है। इस कमी के दो रूप हैं एक का सबध आन्तरिक बचत का कमी से है और दूसरी का सबध भुगतान शेष (Balance of payments) के घाटे से। पहली प्रकार की कमी अथव्यवस्था के विकास की आयोजित दर पर निर्भर करती है। यदि विनियोग की आयोजित दर के अनुरूप आवश्यक आन्तरिक बचत न हो तो उसे पूजी की कमी कहा जा सकता है। इस कमी को पूरा करने के लिए इस सीमा तक विदेशो से *ऋण और अनुदान (Loans and grants)* लेना आवश्यक हो जाता है। उत्पादन की विकास दर के आधार पर निर्यात और आयात मे सम्भावित वृद्धि का अनुमान लगाया जाता है। इससे दूसरे प्रकार की कमी उत्पन्न होती है। इस प्रकार इसका स्वरूप भुगतान शेष का घाटा *होता है जिसकी पूर्ति भी ऋणो और अनुदानो से होती है।* उक्त दोनो प्रकार की कमी का पूर्णतया एक साथ होना आवश्यक नहीं है क्योंकि विदेशी मुद्रा कोष से धन निकालकर इस कमी को पूरा *किया जा सकता है।*

केवल विदेशी पूजी की उपलब्धि से आर्थिक विकास सभव *नहीं हो सकता।* इसके लिए यह आवश्यक है कि विकास की बढती हुई आवश्यकताओ के साथ साथ देशीय बचत मे वृद्धि हो। सभव है कि अपेक्षाकृत विकसित देश अनिश्चित काल के लिए अनुदान के रूप मे साधनो का एक तरफा हस्तान्तरण (Unilateral transfer) पसन्द न करे और दूसरी ओर कम उन्नत देशो को भी विदेशी देनदारियो (Foreign obligations) की सचयी वृद्धि (Cumulative increase) उचित न जान पडे *यदि किसी अवस्था में* विकास काय मे सफलता प्राप्त करनी हो तो पूजी की आवश्यकताओ के मुकाबले देशीय बचत बढनी चाहिए ताकि पूजी का हस्तान्तरण (Transfer of capital) हो सके।

इस प्रकार किसी अल्पविकसित देश के आर्थिक विकास को तीव्र करने मे विदेशी पूजी महत्वपूर्ण योगदान प्रदान कर सकती है। किन्तु *अन्तत इस पूजी को ब्याज सहित लौटाना* पडता है और यही कारण है कि कोई भी देश जो आर्थिक विकास के लिए देशीय साधन जुटा सकता है विदेशी पूजी पर निर्भर *नहीं रहना चाहता।* विदेशी पूजी के *आगमन* के परिणामस्वरूप विदेशी ऋण का बोझ बढ जाता है और इस कारण देश की विदेशी मुद्रा की भावी प्राप्ति हो मानो गिरवी *रख दी जाती है। जिस अल्पविकसित देश का निर्यात* कुछ ही वस्तुओ पर निर्भर हो और जिसके आयात की माग की आय लोच (Income elasticity of demand) अत्यधिक हो, वह देश बहुत अधिक मात्रा मे विदेशी ऋण लेने का साहस नहीं कर सकता। किसी अल्पविकसित देश की विदेशी ऋण प्राप्त करने की नीति का आधार निम्नलिखित तर्क है

(क) इसके कारण केवल देशीय बचतो (Domestic savings) के आधार पर जितना विनियोग सभव है उसकी अपेक्षा अधिक विनियोग किया जा सकता है। अल्पविकसित *अर्थव्यवस्था मे निहित बचते* (Latent savings) होती हैं

जिन्हे आर्थिक क्रिया के उच्च स्तर पर जुटाया जा सकता है। इस प्रकार की देशीय बचतो के प्रोत्साहन के लिए विदेशो से ऋण प्राप्ति को उचित ठहराया जा सकता है।

(ख) आर्थिक विकास के लिए अत्यावश्यक परियोजनाओ (*Projects*) के लिए वित्त प्रबन्ध करने के उद्देश्य से घरेलू बचतें जुटानी कठिन हो जाती है। विकास की प्रारम्भिक अवस्था म स्वयं पूजी बाजार ही अल्पविकसित होता है। इस अवधि मे जबकि पूजी बाजार म सुधार हो रहा हो अस्थाई उपाय के रूप मे विदेशी पूजी अत्यावश्यक होती है।

(ग) विदेशी पूजी के साथ कई आय दुर्लभ उत्पादक तत्व अर्थात् तकनीकी जानकारी व्यापारिक अनुभव और ज्ञान भी प्राप्त होते है जो आर्थिक विकास मे महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते है।

2 बहु-राष्ट्रीय निगम और उद्योग मे विदेशी सहयोग

(Multinational Corporations and Foreign Collaboration in Industry)

बहु राष्ट्रीय निगम विशाल फर्में होती है जिनके प्रधान कार्यालय एक देश में स्थित होते हैं परन्तु वे अपनी व्यापारिक क्रियाओ को बहुत से अन्य देशो मे फैला लेती हैं। इन्हे कई बार राष्ट्र पारीय निगम (Transnational corporations) के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है जिसका अर्थ यह है कि इनकी क्रियाएं मौलिक देश मे आरभ होने के पश्चात् उसकी सीमाओ के बाहर भी फैली हुई हैं।

बहु राष्ट्रीय निगमो की पद्धति नई नहीं है। ये वणिकवादी काल का एक प्रमुख लक्षण थी। इस काल के कुछ मुख्य उदाहरण है एडवन्चरर्स दी रायल अफरीकन कं दी ईस्ट इण्डिया कम्पनी जो अपने देश द्वारा उत्पन्न वस्तुओ को बेचने के लिए मण्डियो की खोज में दूर दराज देशों मे पहुंची या अपने देश की मशीनो की कच्चे माल की भूख को सन्तुष्ट करने के लिए अन्य देशो मे गयी। बहु राष्ट्रीय निगमो के उदय के कारण विश्व मे उपनिवेशवाद (Colonialism) का जन्म एव विकास हुआ।

परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् साम्राज्यवादी ताकतों के आधीन बहुत से उपनिवेशो ने स्वशासन प्राप्त कर लिया। इसके साथ ही विश्व मे सयुक्त राज्य अमेरिका सबसे बडी औद्योगिक शक्ति बन गया। इन निगमों ने अपने अनुषंगियो की सहायता से विकासमान देशो को पूंजी निर्यात करने की योजना बनाई। *प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग (Direct foreign investment)* के रूप मे पूजी के निर्यात करने वाले देशों में सयुक्त राज्य अमेरिका सबसे अधिक प्रभावशाली देश के रूप मे उभरा।

स्वतत्रता उपरान्त काल मे विश्व के विभिन्न देशो के बहु राष्ट्रीय निगमो विशेषकर सयुक्त राज्य अमेरिका के निगमो ने विभिन्न रूपों मे विदेशी सहयोग किया। इन बहु राष्ट्रीय निगमो के भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव के बारे मे एक तीखा विवाद चल रहा है। इसके समर्थको का मत है कि इस नयी प्रक्रिया से हमारी विकासमान अर्थव्यवस्था को तकनालाजी हस्तान्तरण (Transfer of Technology) *किया गया है। आलोचकों का मत है कि यह* उन्नत देशो की विकासमान अर्थव्यवस्थाओ मे विभिन्न प्रकार से घुसने की एक चाल है जिसके द्वारा वे इनके सगठित उत्पादन के महत्वपूर्ण क्षेत्रो पर नियंत्रण प्राप्त करना चाहते हैं। बहु राष्ट्रीय निगम लाभ अधिकतम करने के एकमात्र उद्देश्य से कार्य करते रहे है और वे लाभ रॉयल्टी भुगतान कमीशन और तकनीकी परामर्श शुल्क (Technical consultancy fees) को साधन चूसने के एक उपकरण के रूप मे इस्तेमाल करते रहे हैं। बहु राष्ट्रीय निगमो के उद् विकास को एक प्रकार के नव साम्राज्यवाद की संज्ञा दी जाती है। अत भारतीय *अर्थव्यवस्था पर बहु राष्ट्रीय निगमो के प्रभाव का परीक्षण* करना रुचिकर होगा।

तीन प्रकार के विदेशी सहयोग पनपे हैं—विदेशी अनुषगी कम्पनियां (Subsidiaries) अल्पसख्यक सहयोग कम्पनिया (Minority participations) और शुद्ध तकनीकी सहयोग (Pure technical collaborations)। विदेशी सहयोग के विश्लेषण से पता चलता है कि विदेशी सहयोग मे विदेशी अनुषंगी कम्पनियो को प्राथमिकता दी जाती है। इसका मुख्य कारण यह है कि सहयोगी सामान्यत शुद्ध तकनीकी सहयोग सन्धियों के अधीन तकनीकी हस्तातरण के लिए कम इच्छुक होते हैं। अनुषगियो के अधीन तकनालाजी हस्तांतरण के साथ साथ बहुत हद तक इनका प्रबध एवं स्वामित्व पर नियत्रण हो जाता है। यही कारण है कि बहु राष्ट्रीय निगम सहयोग की इस पद्धति को पसन्द करते है। विकासमान देशों द्वारा विदेशी पूजी के प्रभुत्व का विरोध किये जाने के कारण दूसरे विकल्प अर्थात् अल्पसख्यक सहयोग वाली कम्पनियां को तरजीह दी जाती है।

तकनालाजी हस्तातरण (Technology transfer) के लिए विदेशी सहयोग का एक महत्वपूर्ण रूप शुद्ध तकनीकी *सहयोग (Pure technical collaboration) है जिसका उद्देश्य* पेटेन्टों परिमार्जित मशीनरी विशेषज्ञो तकनीशियनों आदि के रूप मे तकनालाजी का आयात करना है। शुद्ध तकनीकी *सहयोग के आधीन आयात की गई तकनालाजी का रॉयल्टी* (Royalty) के रूप में भुगतान किया जाता है विशेषज्ञो के लिए तकनीकी शुल्क दिए जाते हैं और विदेशी तकनीशियन *अपने वेतन का अधिकतर भाग रुपये के रूप में प्राप्त करते*

है और कुछ भाग विदेशी मुद्राओ मे। ध्यान देने योग्य बात यह है कि शुद्ध तकनीकी सहयोग की अधिकतर संधिया गैर सरकारी क्षेत्र मे अनुषंगियो एव अल्पसख्यक सहयोग वाली कम्पनियो द्वारा की जाती है। अत इस क्षेत्र मे वास्तविक नियत्रण बहु-राष्ट्रीय निगमों द्वारा किया जाता है।

1973 74 से 1978 79 के बीच शाखाओ एव अनुषगी कम्पनियो की प्रवृत्तियो एव निष्पादन से निम्नलिखित बाते सिद्ध होती है—

1 अपनी क्रियाओ को छिपाने की दृष्टि से बहु-राष्ट्रीय निगम अपनी शाखाओ को अनुषगी कम्पनियो के रूप मे तेजी से बदल रहे हैं।
2 बहु राष्ट्रीय निगमो की शाखाओं की तुलना मे अनुषगी कम्पनियो का लाभदायकता अनुपात कहीं अधिक है। दूसरे शब्दो मे भारतीय मुखौटा पहने हुए ये कम्पनिया विदेशी हितों को भी प्रोन्नत करती रहती हैं।
3 विदेशी मुद्रा प्राप्तियो के रूप मे इनके लाभकारी प्रभाव इतने नाममात्र हैं कि उन्हे किसी प्रकार से महत्वपूण नहीं समझा जा सकता।
4 यू के और यू एस ए पर आधारित शाखाओ एव अनुषगा कम्पनियो मे परिसम्पत की दृष्टि से सकेन्द्रण की अत्यधिक मात्रा पाई गई।
5 चूँकि बहु-राष्ट्रीय निगमो की शाखाओ में से अत्यधिक वाणिज्य व्यापार एव वित्त और चाय के निर्यात मे लगी हुई है इसलिए तकनॉलाजी के हस्तान्तरण के सबध मे कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता।
6 तीन मुख्य उद्योगो अर्थात् सुगन्धि सौन्दर्य प्रसाधन की वस्तुए एव नहाने के साबुन ओषधो और मोटरगाडियो के सबध मे लाभदायकता अनुपात समग्र औसत लाभदायकता अनुपात से कहीं अधिक था।

गैर-सरकारी विदेशी पूजी के दोष

निजी विदेशी पूजी मे बहुत से दोष हैं। सर्वप्रथम विदेशी पूजी कुछ सीमित क्षेत्रों मे प्रवेश करना चाहती है और यदि इसे इनमे प्रवेश की इजाजत न दी जाए, तो यह आना ही नहीं चाहती। पश्चिम के उद्योगपति भारत में सरकारी क्षेत्र के साथ सहयोग करने के लिए विशेष रूप से अनिच्छुक हैं। इसका मुख्य कारण वैचारिक मतभेद है।

दूसरे, विदेशी तकनीक पर अत्यधिक निर्भरता का स्थानीय पहल पर बुरा प्रभाव पडता है। यह बात उन क्षेत्रो में विशेष रूप से लागू होती है जिनमे देशी सामर्थ्य पूर्णतया विकसित है। इसका स्वाभाविक परिणाम तकनीक का अनावश्यक दोहराव है।

तीसरे, बहुत से उदाहरण मिलते हैं जब विदेशी सहयोगियों ने अपने भारतीय हिस्सेदारो को घिसी पिटी मशीनरी या अप्रचलित तकनीक (Obsolete technique) हस्तान्तरित कर दी। कई बार, सामान्य आवश्यकता की तुलना मे विदेशी सहयोग के कारण कहीं अधिक पूजी उपकरणो का आयात किया गया यह बुराई विशेषकर सरकारी क्षेत्र की इकाइयो मे पाई गई जिन्होंने समाजवादी देशो से सहायता प्राप्त की। कुछ सहयोग सन्धियो के कारण ऐसी तकनीक का आयात भी किया गया जो भारतीय परिस्थितियों के लिए उचित नहीं थी। इसके कारण भारतीय उद्योग बहुत हद तक अन्तर्वर्ती वस्तुओ एव फालतू पुर्जों के लिए विदेशों पर निर्भर हो गए।

चौथे, अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों के अधिकतर विदेशी विनियोग का रूप सम्बन्धित प्रोजेक्ट की प्रारंभिक विदेशी मुद्रा की आवश्यकताओ के लिए वित्तीय सहयोग प्रदान करना है। शेष आवश्यक पूजी आन्तरिक स्रोतो या ऋण के रूप मे जुटायी जाती है। डा के एन राज के अनुसार प्रारंभिक विनियोग पर प्रत्याय दर साधारणतया बहुत ऊची होती है ताकि सारी राशि बहुत ही थोडे काल मे वापस प्राप्त की जा सके। इसके अतिरिक्त प्रधान कम्पनी द्वारा उपलब्ध कराई गई तकनीकी सेवाओ के लिए या रायल्टी के रूप मे बहुत सी राशि हर वर्ष विदेश भेजी जाती है। अत पी आर ब्रह्मानन्द ओर के एन राज का तर्क यह है कि जब तक इन सहयोगी फर्मों द्वारा किए गए विनियोग के फलस्वरूप निर्यात मे वृद्धि न हो या आयात मे निर्भरता कम न की जा सके तब तक ऐसे विनियोग से प्रारंभिक लाभ की तुलना में बाद मे विदेशी मुद्रा का कहीं अधिक उत्प्रवाह होगा।

पाचवे विदेशी विनियोग, भले ही अपने लाभ को पूरी राशि विदेश न भेजे परन्तु यह आरंभिक अवस्था मे बहुत ही ऊचे लाभाश की माग करता है। लाभ का बहुत बडा भाग अपने पास रख फर्म अपना तीव्र विस्तार करती है। रॉयल्टी सबधी भुगतान, तकनीकी सेवाओं के लिए शुल्क आदि दुर्लभ विदेशी मुद्रा साधना पर विदेशी पूजी के दावे हैं। इस प्रकार देश से निकास के रूप मे अधिक राशि बाहर जाती है। इस सबध में दो अमरीकी कम्पनियो ऐसो (ESSO) और कालटैक्स (Caltex) का उदाहरण रुचिकर होगा। ऐसो ने भारत मे किए गए 29 6 करोड रुपये के विनियोग के विरुद्ध 1968-70 के दौरान 83 करोड रुपये लाभ के रूप मे विदेशी भेजे। इसी काल में कालटैक्स जो पूर्णतया अमरीकन स्वामित्व वाली कम्पनी थी ने 43 करोड रुपये विदेश भेजे। इसका अर्थ आर्थिक निकास (Economic drain) नहीं तो ओर क्या है।

औद्योगिक विकास पर अध्ययन सस्थान दिल्ली ने अपने शोधपत्र मे 100 सर्वोच्च बहुराष्ट्रीय निगमो के विकास

का विश्लेषण किया है। आकडो से पता चलता है कि सुधार उपरान्त काल के दौरान इन निगमो का उत्पादन 1991 92 मे 20018 करोड रुपये से बढकर 38 162 करोड रुपये हो गया अर्थात् इसमे लगभग 91 प्रतिशत की वृद्धि हुई। परन्तु इसकी तुलना में कर पूर्व लाभ अधिक तेजी से बढकर 1 604 करोड रुपये से 3 772 करोड रुपये हो गया अर्थात् 135 प्रतिशत की वृद्धि। अध्ययन से यह तथ्य सामने आया है कि न केवल इन निगमो ने भारी लाभ कमाया उनका भारत के भुगतान शेष पर अत्यन्त प्रतिकूल प्रभाव पडा। (देखिए तालिका 1) अत जहा निर्यात के प्रति उत्पादन के अनुपात मे 8 1 प्रतिशत से 8 9 प्रतिशत हो जाने से मामूली वृद्धि हुई आयात 6 9 प्रतिशत से एकदम बढकर 12 9 प्रतिशत हो गए। इस सम्बन्ध मे उल्लेख करना आवश्यक है कि इन आकडो मे रायल्टी लाभाश एव अन्य प्रेषण शामिल नही किए गए। जाहिर है कि बहुराष्ट्रीय निगमो के कारण भुगतान शेष की समस्या और गहरी हो गयी।

तालिका 1 **100 सर्वोच्च बहुराष्ट्रीय निगमो की शुद्ध *विदेशी मुद्रा प्राप्तियां***

करोड़ रुपये

	1991-92	1995 96
शुद्ध आय प्राप्तियां	271	1 587
निर्यात/उत्पादन अनुपात	8 1%	8.6%
आयात/उत्पादन अनुपात	6 9%	12 9%

तकनालाजी हस्तान्तरण के नाम पर कई बार अनुपात से कहीं अधिक तकनीशन भर दिए जाते है। कई बार प्रोजैक्ट पूरा होने पर यह पता लगा कि काम को जिस पूर्णता के साथ करना चाहिए था नहीं किया गया और प्राय काम ऐसे व्यक्तियों को सौपा गया जो इसके लिए पूर्णतया योग्य नहीं थे। बहुत सी परिस्थितियो मे विदेशी सहयोग अपने देश का डिजाइन या ढाचा थोपने की कोशिश करते थे जिसका भारत के सदर्भ मे या तो कोई लाभ नहीं था या बहुत ही थोडा लाभ था। अनुषगी फर्मे इसके लिए विशेष रूप से दोषी थीं।

बहु-राष्ट्रीय कम्पनियों के भारतीयकरण (Indianisation) की मिथ्या धारणा

प्रोफेसर दलीप एस स्वामी ने बहु राष्ट्रीय निगमो के भारतीयकरण की नीति के असली रूप का विश्लेषण किया है। विदेशी मुद्रा विनियमन कानून की धारा 29 (1) के *आधीन सभी विदेशी कम्पनियो को हिस्सा पूजी मे अपने भाग* को 74% तक काम करने का निर्देश दिया गया और इसी अधिनियम की धारा 29 (2) के आधीन विदेशी कम्पनियो की भारतीय शाखाओ को भारतीय कम्पनियो मे परिवर्तित करने के लिए यह शर्त लगा दी गई है कि इनका हिस्सा पूजी मे गैर निवासी हितो का भाग 40% से अधिक नहीं होना चाहिए।

इन कम्पनियो द्वारा प्राप्त लाभ की अत्यधिक दर यह सकेत करती है कि हिस्सा पूजी मे 100 से 74 प्रतिशत (या 100 से 40 प्रतिशत) तक कमी करने से भारत मे अन्य देशो को धनराशि निकास पर कोई अन्तर नहीं पडा। ये राशिया तो उसी प्रकार बहु राष्ट्रीय निगमो के प्रधान कार्यालय स्थित देशो को भेजी जा रही है। उदाहरणार्थ पौण्डस और वारेन टी लि तो *अपनी कम्पनी की शुद्ध परिसम्पत के समान राशि हर* दूसरे वर्ष भेज देती है परन्तु कोलगेट पामोलिव 89 प्रतिशत लाभ दर प्राप्त कर अत्यधिक लाभ की सीमाओ तक पहुच गयी है। दूसरे शब्दो मे कुल शुद्ध परिसम्पत 14 महीनो मे निर्यात की गई। इतनी अत्यधिक लाभदायकता के कारण इन *कम्पनियो के नए जारी किए गए हिस्सो के लिए लोगो* ने पागलो की तरह प्रार्थना पत्र भेजे। अत अपनी हिस्सा पूजी को विस्तृत करने के बहाने ये कम्पनिया भारी मात्रा मे स्थानीय पूजी एकत्र करने मे सफल हो गयीं। परन्तु इस नीति का अप्रत्यक्ष लाभ यह होगा कि ये हिस्सेदार अपने हित मे इन बहु राष्ट्रीय निगमो के व्यापार का समर्थन करेगे।

तालिका 2 **1977 मे कुछ चुने हुए बहु-राष्ट्रीय निगमों की लाभदायकता**

	शुद्ध परिसम्पत (1)	ब्याज रहित ऋण (2)	कर पश्चात् लाभ (3)	शुद्ध परिसम्पत्ति पर प्रत्याय दर 4=(3/1×100)
वारेन टी लि	4 41	2.00	2 14	48%
मैकलियड रसल लि	2 39	1 90	1 58	66%
पौण्डस लि	1 24	0 82	0 63	61%
केसन्ट डाइज एण्ड केमिकल्ज लि (पहले आई सी आई थी)	1 60	1 44	0 51	32%
कोलगेट पामोलिव लि	2 75	2 95	2 44	89%

स्रोत Dal p S Swamy *Mult nat onal Corporat ons and the World Economy* p 38

दूसरे, भारतीयकरण को मिथ्या धारणा का अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि जनक कम्पनी (Parent company) को भारतीय कम्पनी के अध्यक्ष और प्रबध निदेशक नियुक्त करने का अधिकार होगा और यह अधिकार कम्पनी के पास तब भी रहेगा जबकि हिस्सा पूजी मे विदेशियो का भाग कम करके 25 प्रतिशत के निम्न स्तर तक धकेल दिया जायेगा। इस प्रकार अल्पसख्यक सहयोग के फलस्वरूप जनक कम्पनी द्वारा नियत्रण करने की स्थिति मे कोई अन्तर नहीं आया। दलीप स्वामी ने पोड्स लि के प्रास्पेक्टस से उद्धृत करते हुए स्थिति स्पष्ट की है 'तीस सफल वर्षो के बाद चीजबो पोंडस कम्पनी का अध्याय समाप्त हो गया है और एक नया अध्याय खुल गया है पोंडस (इण्डिया) लि का जन्म। नाम और सहयोग के ढाचे के अतिरिक्त, कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ।"

तीसरे, विदेशी नियत्रणाधीन कम्पनियों और भारतीय नियत्रणाधीन कम्पनियों की तुलना करने से पता चलता है कि पूर्वोक्त की लाभदायकता उपरोक्त की अपेक्षा कहीं अधिक है। विदेशी नियत्रणाधीन कम्पनियो मे सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनियो मे लाभदायकता की दर 24 प्रतिशत था परन्तु इसके विरुद्ध भारतीय नियत्रणाधीन कम्पनियो मे यह दर केवल 15 प्रतिशत थी। निजी लि कम्पनियो मे यह अन्तर और भी अधिक था। निजी लि कम्पनियो में जो विदेशी नियत्रणाधीन कम्पनियो म एक तिहाई अथात् 11.5 प्रतिशत थी।

निष्कर्ष यह कि ऊपर दिए गए विश्लेषण से पता चलता है कि विदेशी नियत्रणाधीन कम्पनियो मे भारतीयकरण का प्रयोग केवल एक धूम्रावरण के रूप मे किया गया है ताकि तीसरी दुनिया के लोगो द्वारा इनके विरोध को नरम किया जा सके। 1970 80 के दशक के दौरान बहु राष्ट्रीय निगमो का तीसरी दुनिया में विरोध हुआ। यह कहा गया है कि तकनालाजी हस्तान्तरण के रूप मे बहु चर्चित लाभ बहुत कम कीमत पर प्राप्त किए जा सकते हैं यदि बहु राष्ट्रीय निगम तकनालाजी हस्तातरण के उपकरण के रूप मे इस्तेमाल न किए जाए। विदेशी कम्पनियो के भारतीयकरण से केवल भारतीय बुर्जुआ वर्ग बहु राष्ट्रीय निगमो के घेरे मे आ गया। इसके कारण भारत से विदेशो को अतिरिक्त उत्पाद के विकास को रोकने मे सहायता नहीं मिली।

3 विदेशी विनियोग नीति (Foreign Investment Policy)

34 उद्योगो मे 51 प्रतिशत इक्विटी (Equity) तक के विदेशी विनियोग के लिए स्वत स्वीकृति (Automatic approval) के लिए 1991 का औद्योगिक नीति म विदेशी विनियोग को उदार बनाने का निर्णय किया गया। विदेशी विनियोग सवर्धन बोर्ड (Foreign Investment Promotion Board) स्थापित किया गया ताकि स्वत स्वीकृति के आधीन न आने वाले आवेदनो की स्वीकृति की क्रिया त्वरित की जा सके। 1992 93 के दौरान प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग (Direct foreign investment) पोर्टफोलियो विनियोग (Port folio Investment) अनिवासी भारतीयो द्वारा विनियोग को प्रोत्साहित करने के लिए निम्नलिखित उपाय किए गए

1 उपभोक्ता वस्तु उद्योगो की अपेक्षा, 51 प्रतिशत इक्विटी तक विदेशी विनियोग के लिए पहले से लागू लाभाश सतुलन शर्त लागू नहीं होगी।

2 कुछ निर्धारित दिशा निर्देशों (Guidelines) के आधीन विदेशी इक्विटी वाली कम्पनिया अपनी इक्विटी को 51 प्रतिशत तक बढा सकती हैं। प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग के लिए भी तेल अन्वेषण उत्पादन और शोधन तथा गैस के विपणन के क्षेत्र मे अनुमति दी गयी है।

3 अनिवासी भारतीयो और उनके आधिपत्याधीन समुद्रपारीय निगमित निकायो (Overseas Corporate Bodies) को उच्च प्राथमिकता प्राप्त उद्योगो मे शत प्रतिशत इक्विटी तक निवेश करने की इजाजत दी गई है। उन्हे अपनी पूजी एव आय के प्रत्यावर्तन (Repatriation) की भी अनुमति होगी। अनिवासी भारतीयो (Non resident Indians) को निर्यात गृहो, व्यापार गृहो, स्टार व्यापार गृहो (Star Trading Houses) रुग्ण उद्योगो, होटलो, निर्यातोन्मुख इकाइयो (Export-oriented Units) अस्पतालो, पर्यटन उद्योगो, वास्तविक जायदाद, आवास और अद्य सरचना (Infrastructure) ढाचे म शत प्रतिशत तक निवेश की इजाजत दी गयी है। भारतीय मूल के विदेशी नागरिको को भारतीय रिजर्व बैंक की अनुमति बिना आवासीय सम्पत्ति (Housing property) अधिग्रहीत करने को अनुमति दी गई है।

4 भारत ने 13 अप्रैल 1992 को विदेशी निवेशको के सरक्षण के लिए बहुपक्षीय निवेश गारटी एजेन्सी (Multilateral Investment Guarantee Agency) प्रोटोकोल पर हस्ताक्षर कर दिए हैं।

5 विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम (Foreign Exchange Regulation Act) के उपबन्धो को जनवरी 1993 के एक अध्यादेश द्वारा उदार बनाया गया है जिसके परिणामस्वरूप 40 प्रतिशत से अधिक विदेशी इक्विटी वाली कम्पनियो को पूर्णत स्वामित्व वाली भारतीय कम्पनियो के बराबर समझा जाएगा।

6 विदेशी कम्पनियो को 14 मई 1992 से देशी बिक्री सबध मे अपने टेड मार्क का प्रयोग करने की अनुमति दी गयी है।

अत सरकार ने विदेशी विनियोग को प्रोत्साहित करने के लिए सभी प्रकार के प्रोत्साहन एव आकर्षण दिए है ताकि विदेशी निवेश बढे। नीति मे यह पलटाव नयी औद्योगिक नीति मे विदेशी पूजी के अन्तर्प्रवाह को सुगम बनाने के प्रस्ताव के अनुकूल ही है।

4 भारतीय अर्थव्यवस्था मे बढता हुआ विदेशी सहयोग (Growing Foreign Collaboration in the Indian Economy)

आयोजन के प्रारंभिक चरण मे विदेशी पूजी के प्रति राष्ट्रीय नीति ने विदेशी पूजी की आवश्यकता को तो स्वीकार किया किन्तु इसे प्रभावी स्थान न देने का निर्णय किया गया। परिणामत विदेशी पूजी को अपनी इक्विटी 49 प्रतिशत की अधिकतम सीमा के भीतर ही रखने का निर्देश दिया गया और भारतीय सहभागी को अधिकाश भाग रखने की इजाजत दी गयी। इसके अतिरिक्त विदेशी सहयोगी फर्मों को प्राथमिकता क्षेत्रो मे प्रवेश करने की इजाजत दी गयी विशेषकर ऐसे क्षेत्रो मे जिनमे देश ने अपनी सामर्थ्य का विकास नहीं किया हुआ था। परन्तु समग्र रूप मे विदेशी सहयोग के बारे मे हमारी नीति प्रतिबन्धात्मक एव चयनात्मक रही। परिणामत 1961 और 1970 के दौरान 2475 विदेशी सहयोगो को स्वीकृति प्रदान की गयी और अगले दशक (1971 80) के दौरान 3041 अतिरिक्त सहयोगो फर्मो को स्वीकति दी गयी। 1981 90 के दशक के दौरान 7436 सहयोगी फर्मों को जिनमे 1842 करोड रुपये का विनियोग अन्तर्निहित था स्वीकृति दी गयी।

तालिका 3 भारत मे विदेशी सहयोगो की स्वीकृतिया (1948 से 1990)

अवधि	विदेशी सहयोगों की कुल संख्या	ऐसे सहयोग जिनमें वित्तीय विनियोग अन्तर्निहित
1961 70	2475	800
1971 80	3041	418
1981 90	7436	1842

अस्सी के दशक के दौरान सरकार ने विदेशी सहयोगो के प्रति अपनी नीति मे ढील दी। यह विशेषकर तेल निर्यातक विकासशील देशो के सदर्भ मे किया गया और छूटका एक सुनिश्चित पैकेज तैयार किया गया—

(i) तकनालाजी हस्तातरण के साथ सम्बन्ध कायम किए बिना तेल निर्यातक विकासशील देशो के विनियोक्ताओ को नये उद्यमो मे 40% इक्विटी तक के निवेश की सुनिश्चित क्षेत्रो मे इजाजत दी गयी।

(ii) सरकार द्वारा निर्धारित शर्तों के ढाचे के अन्तर्गत अनिवासी भारतीयो को भारतीय औद्योगिक इकाइयो मे निर्धारित परियोजना मे निवेश की इजाजत दी गयी।

इसके बाद जनवरी 1983 मे तकनालाजी नीति वक्तव्य (**Technology Policy Statement**) पेश किया गया। इस नीति का उद्देश्य आयातित तकनालाजी प्राप्त करना था और इस बात का विश्वास दिलाना था कि वह अद्यतन तकनालाजी हो और देश की आवश्यकताओ और ससाधनो के लिए उचित हो। लाइसेस प्रणाली को उदार बनाने के लिए नीति सम्बन्धी बहुत से उपायों की घोषणा की गयी—

1 26 उद्योगो को छोड अन्य सभी उद्योगो को लाइसेस प्राप्त करने मे छूट दे दी गयी और गैर एम आर टी पी और गैर फैरा कम्पनियो (Non FERA Companies) को भी छूट दी गयी।

2 निजी क्षेत्र को टेली सचार उपकरणो के निर्माण मे भाग लेने की स्वीकति दी गयी।

3 बहुत सी इलेक्टानिक मदो को एकाधिकारी प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार कानून से छूट दे दी गयी।

4 विदेशी कम्पनियो को इलेक्टानिक हिस्सो के निर्माण की इजाजत दी गयी।

5 एम आर टी पी इकाइयो को जिन उद्योगो मे उत्पादन की इजाजत दी गयी उनमे बहुत सी नई मदो को शामिल किया गया।

7 बहुत से उद्योगो मे लाइसेस के विस्तत वर्गीकरण (Broad banding) की इजाजत दी गयी ओर

8 एम आर टी पी कम्पनिया अपने अनुसधान एव विकास के परिणामो का वाणिज्यीकरण (Commercial ization) कर सकती हैं। ये राष्ट्रीय प्रयोगशालाओ के अनुसधान का भी वाणिज्यीकरण कर सकती हैं।

तकनीकी सहयोगी निगमो (Technical Collabora tions) को वित्तीय कसौटियो अर्थात् रायल्टी या एक मुश्त भुगतान या दोनो के सम्मिश्रण के आधार पर कार्य करने की इजाजत दी गयी और परिणामत 1981 90 के दशक के दौरान स्वीकृतियो की सख्या 7436 के रिकार्ड स्तर पर पहुच गयी जिसमे 1274 करोड रुपये का कुल विनियोग भी अन्तर्निहित था।

1981 90 के दौरान विदेशी सहयोगी निगमो के देशानुसार विश्लेषण से पता चलता है कि यू एस ए को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है और इसने 322 7 करोड रुपये का निवेश किया है। यह कुल विदेशी सहयोग स्वीकृतियो का एक चोथाई है। इसके बाद क्रमश आते है पश्चिमी जर्मनी जापान यू के इटली फ्रास और स्विट्जरलैण्ड। पाच देशो अर्थात् यू एस

ए पश्चिमी जर्मनी जापान, यू के और इटली द्वारा कुल स्वीकत विनियोग का लगभग 63 प्रतिशत उपलब्ध कराया गया। अनिवासी भारतीयों (Non resident Indians) ने लगभग 113 करोड रुपये जुटाए जो कुल विनियोग का 8 9 प्रतिशत था।

तालिका 4 1981 90 के दौरान विदेशी विनियोग स्वीकृतियो का देशानुसार विवरण

देश	विनियोग स्वीकृतिया (करोड रुपये)	कुल विनियोग में भाग
यू एस ए	3? 7	25 3
पश्चिम जर्मना	218 5	17 2
जापान	107 4	8 4
यू के	90 3	7 1
इटला	59 8	4 7
फ्रास	44 1	3 4
स्विट्जरलैण्ड	40 3	3 2
अनिवासी भारतीय	113 4	8 9
अन्य	? 7 5	21 8
कुल	1,274 0	100 0

विदेशी सहयोग निगमो (Foreign Collaborations) के उद्योगवार विश्लेषण से पता चलना हे कि इलेक्ट्रिकल्ज एव इलेक्ट्रानिक्स (जिसमे टेला सचार भी शामिल है को कुल स्वाकृतिया का 2? प्रतिशत प्राप्त हुआ जिससे यह सकेत *मिलता हे कि इस क्षेत्र को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी।* इसके बाद ओद्योगिक मशानरा का नम्बर हे (15 5 प्रतिशत)। रसायन मे विदेशा विनियोग (उवरको को छोडकर) महत्त्व का दृष्टि से तीसरे नम्बर पर हे। कुल मिलाकर यह कहना उचित होगा कि प्राथमिकता क्षत्र को कुल स्वाकतियों का लगभग 70 प्रातशत प्राप्त हुआ। इसका तात्पर्य यह कि *विदेशा विनियोग स्वाकातया देश मे इस समय विदेशा पूजी* के बारे म वतमान वातावरण के मोटे तौर पर अनुकूल थीं।

विदेशी विनियोग स्वीकृतिया और वास्तविक अन्तर्प्रवाह

1991 का आद्योगिक नाति का घोषणा के पश्चात् भारत मे विदेशा पूजा के अन्तप्रवाह में तेजा आया हे। आर्थिक समीक्षा (1996 97) द्वारा उपलब्ध कराए गए आकडो के अनुसार 1991 9? ओर 1995 96 के दौरान (देखिए तालिका 5) कुल विदेशा विनियोग के रूप मे 13 9 अरब डालर प्राप्त किए गए जिसमे से 4 6 अरब डालर (3? 7 प्रतिशत) प्रत्यक्ष विदेशा विनियोग (Direct foreign investment) के रूप मे थे ओर शेष 9 3 अरब डालर (67.3 प्रतिशत) पोर्टफोलियो विनियोग (Portfolio investment) के रूप में। इससे साफ जाहर हे कि विदेशा फ़र्मों की प्राथमिकता पोर्टफोलियो विनियोग के रूप में अधिक थी और प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग के रूप मे कहीं कम। इसके अतिरिक्त 4 6 अरब डालर के कुल प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग मे से लगभग एक तिहाई (1.5 अरब डालर) अनिवासी भारतीयो (Non resident Indians) का योगदान था। अत विदेशा फर्मों का कुल विदेशी विनियोग के प्रवाह में प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग के रूप मे योगदान केवल 20 प्रतिशत था।

तालिका 5 वर्गानुसार विदेशी विनियोग

करोड यू एस. डालर

	प्रत्यक्ष विनियोग	पोर्टफोलियो विनियोग	कुल
1991-92	15 0	0 8	15 8
1992-93	34 1	9 ?	43.3
1993-94	62 0	349 3	411.3
1994-95	131 4	351 8	489.5
1995-96	213.3	221 4	434 7
कुल (1991-9? से 1995-96)	455 8	938 8	1,394 6
कुल का प्रतिशत	(32.7)	(67.3)	(100 0)

*अस्थायी

स्रोत आर्थिक समीक्षा (1996 97) से सकलित

उदारीकरण की नातियो का अनुक्रिया के कारण विदेशा पोर्टफोलियो जिसमे विश्व जमा प्राप्तिया (Global depository receipts) भा शामिल हैं के रूप में विनियोग करने के अधिक इच्छुक थे। इस प्रकार विदेशी सस्थानात्मक विनियोग (Foreign Institutional Investment) और यूरो हिस्सा पूजी (Euro-equity) आदि मे विनियोग जो 1992 93 मे 10 करोड डालर था तेजी से बढकर 1995 96 म 215 4 करोड डालर हो गयी।

तालिका 6 मे दिए गए आकडा से पता चलता है कि 1995 के दौरान 1 125 करोड डालर (37 489 करोड रुपये) के प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग के प्रस्ताव स्वाकत किए गए जबकि 1991 मे यह राशि केवल 32.5 करोड डालर (739 करोड रुपये) था। 1991 स 1996 के दौरान प्रत्यक्ष विदेशा विनियोग (Direct foreign Investment) के रूप मे 2,961 करोड डालर (97 777 करोड रुपये) के कुल प्रस्तावा को स्वाकति दी गयी जबकि इसके विरुद्ध पिछले पूरे दशक (1981 90) के दौरान केवल 1 0 अरब डालर (1,274 करोड रुपये) के विदेशी विनियोग का स्वाकृति दा गया। इसमें सन्देह नहीं कि इन सब प्रस्तावा को वास्तविक अन्तप्रवाहों (Actual inflows) का रूप धारण करने मे समय लगता हे परन्तु तालिका 6 मे दिए गए आकडा से पता चलता है कि दुर्भाग्यवश, कुल स्वाकतिया के प्रतिशत के रूप मे वास्तविक

अन्तर्प्रवाह 13 से 21 प्रतिशत के बीच रहे हैं। यह आकडा बहुत ही निम्न है। इसका मुख्य कारण देश मे राजनीतिक अस्थिरता की परिस्थिति है।

तालिका 6 प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग वास्तविक बनाम स्वीकृतियाँ

	स्वीकृतियाँ		वास्तविक अन्तर्प्रवाह		कुल का
	करोड रुपये	यू एस करोड डालर	करोड़ रुपयें	यू एस करोड डालर	प्रतिशत
1991	739	32.5	32 5	15 5	47 5
1992	5 256	178 1	675	23 3	12 8
1993	11 189	355 8	1 786	57 4	16 0
1994	13 591	433 2	2,972	95 8	21 9
1995	37 489	1 124 5	6 720	210 0	17 9
1996*	29 513	836 7	5 877	167 0	19 9
कुल	97 777	29 608	18 418	569 0	18 8

*सितम्बर 1996 तक

स्रोत भारत सरकार, आर्थिक समीक्षा (1996 97)

तालिका 7 मे दिए गए उद्योगवार आकडो से प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग की स्वीकृतियो का पता चलता है। इनके अनुसार प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग का लगभग 72 प्रतिशत प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रो (Priority sectors) जैसे पावर, ईंधन धातुकर्म उद्योग बिजली का सामान साफ्टवेयर, रसायन एव उर्वरक परिवहन औद्योगिक मशीनरी एव टेली सचार मे लगा हुआ था। इसके विरुद्ध, विनियोग स्वीकृतियो का 28 प्रतिशत गैर प्राथमिकता वाले क्षेत्रो अर्थात् खाद्य ससाधन उद्योगो सेवा क्षेत्र और व्यापार, दवाइयो एव औषधो आदि मे लगा हुआ था।

तालिका 7 विभिन्न क्षेत्रो का विदेशी स्वीकृत विनियोग में भाग

(अगस्त 1991 से जुलाई 1997)

उद्योग/क्षेत्र	स्वीकृतियों की संख्या	स्वीकृत विनियोग (करोड़ रुपये)	कुल विनियोग में भाग (प्रतिशत)
क प्राथमिकता क्षेत्र			
पावर एवं ईंधन	242	32 691	25 5
टेली संचार	277	27 370	21 3
रसायन (उर्वरकों को छोडकर)	531	8 064	6 3
परिवहन क्षेत्र	309	8 012	6 2
बिजली सयत्र (जिसमें साफ्टवेयर भी शामिल हैं)	1 138	7 566	5 9
धातुकर्म उद्योग	191	7 154	5 6
औद्योगिक मशीनरी	361	1 797	1 4
उप योग	3 049	92,654	72.2
ख गैर प्राथमिकता क्षेत्र			
सेवा क्षेत्र	428	9 367	7 3
खाद्य विधायन उद्योग	482	7 490	5 8
होटल और पर्यटन	163	2 938	2 3
वस्त्र उद्योग	325	2 227	1 7
कागज और गुदा (जिसमें कागज उत्पाद भी शामिल हैं)	63	1 597	1 2
किण्वन उद्योग	38	1 104	0 9
चीनी	6	1 001	0 8
अन्य	2,019	9 957	7 8
उप योग	3 524	35 601	27 8
कुल योग	6 573	1 28 335	100 0

यह बात बडी अजीब है कि औद्योगिक मशीनरी कुल स्वीकृत विनियोग का केवल 1 4 प्रतिशत थी। इस परिस्थिति की व्याख्या करते हुए औद्योगिक विकास अध्ययन सस्थान ने यह उल्लेख किया 'पूजी वस्तु क्षेत्र के लिए सीमा शुल्कों मे तीव्र कटौती के कारण विदेशी विनियोक्ता भारत को मशीनरी का निर्यात करना अपेक्षाकृत अधिक लाभदायक समझते होगे इसकी बजाए कि देश मे मशीनरी का निर्माण किया जाए। यह भी देखा गया है कि इस क्षेत्र की ओर तकनीकी सहयोगों (Technical collaborations) मे भी अधिक ध्यान नहीं दिया गया।

किन्तु ये आकडे पूरी कहानी नहीं बताते। आर्थिक समीक्षा (1996 97) मे यह अनुमान लगाया गया कि प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग (Direct foreign investment) की अगस्त 1991 से अक्टूबर 1996 के दौरान प्राप्त स्वीकृतियो मे उपभोग वस्तु क्षेत्र का भाग 15 3 प्रतिशत और पूजी वस्तुओ एव मशीनरी का 13 1 प्रतिशत और आधार सरचना (Infra structure) का 49 1 प्रतिशत था। इससे यह आभास होता है कि उपभोग वस्तु क्षेत्र का भाग सापेक्षत छोटा था परन्तु वास्तव मे ऐसा नहीं है। इसका कारण यह हे कि चाहे खाद्य विधायन (Food processing) का कुल स्वीकृत विनियोग मे भाग केवल 6 5 प्रतिशत था अर्थात् 7 500 करोड रुपये किन्तु केवल कोका कोला को 2 700 करोड रुपये और पेप्सी को 1 000 करोड रुपये के विनियोग की स्वीकृति दी गयी। अत साफ्ट ड्रिंक मे ये दोनो *भीमकाय* फर्मे उदारीकरण के पश्चात् बाजार पर छा गयीं। चूंकि बहुत सी उपभोग वस्तु कम्पनिया नियत्रक कम्पनिया (Hold ng companies) और अनुषगी कम्पनिया (Subsidiaries) स्थापित कर रही हैं और इनमें विनियोग को स्वीकृत विनियोग (*Approved invest*

ment) मे शामिल नहीं किया जाता, स्वीकत विनियोग के आकडे इन कम्पनियो की बाजार परिस्थितियो को प्रभावित करने की शक्ति का अल्पानुमान हैं। उदाहरणार्थ हिन्दुस्तान लावर ने हाल ही मे बहुत सी भारतीय कम्पनियो को अपने स्वामित्वाधीन कर लिया है (ब्रुक बाड लिप्टन) टाटा, आयल मिल्स और कई अन्य फर्मों को मिलाकर यूनीलीवर नाम की एक अनुषगी फर्म (Subsidiary) कायम कर दी है। चूँकि अनुषगियो मे विनियोग को स्वीकत विनियोग मे शामिल नहीं किया जाता ये आकडे इस फर्म की भारतीय बाजार ढाचे को प्रभावित करने की शक्ति का पूर्ण अनुमान नहीं हैं।

स्वीकृतियो का आकार वितरण (Size Distribution)

चूँकि अधिकतर स्वीकतिया पावर एव ईंधन और आधार सरचना क्षेत्रो मे थीं इससे विनियोग स्वीकतियो का आकार बढ गया। उदाहरणार्थ 39 प्रस्ताव (कुल का 0 6 प्रतिशत) जो 500 करोड रुपये से अधिक की अभिसीमा मे थे, कुल स्वीकत विनियोग के 34 प्रतिशत के लिए हैं। यदि हम इसमे वे सभी प्रस्ताव भी जोड दे जो 100 करोड रुपये स अधिक हैं तो ये कुल स्वीकत विनियोग के 71 प्रतिशत तक पहुच जाते हैं। अत विदेशी विनियोग मे बडे आकार वाले विनियोग प्रस्तावो का प्रभुत्व रहेगा और विदशी सहयोगो की सफलता बडे आकार वाले प्रस्तावो से आकी जाएगी।

विदेशी स्वामित्व की सीमा

विदेशी विनिमय विनियमन कानून (Foreign Exchange Regulation Act) के आधार, विदेशियो को हिस्सा पूजी स्वामित्व 40 प्रतिशत तक रखने की इजाजत था और इसने विदेशा फर्मों का प्रधान स्थान प्राप्त करने के विरुद्ध प्रतिरोधक का कार्य कया। 1991 की औद्योगिक नीति की घोषणा के पश्चात् विदेशी कम्पनियो को स्वचालित स्वाकति (Automatic approval) के रूप मे 51 प्रतिशत तक बहुसख्य भाग की इजाजत दे दा गयी परन्तु इस सीमा को बढाकर जनवरी 1997 मे 74 प्रतिशत कर दिया गया और प्रवासी भारतीयो (Non Resident Indians) के लिए यह सीमा 100 प्रतिशत कर दी गयी। सरकार उच्च तकनालाजी और निर्यातोन्मुख विदेशी कम्पनियो मे 100 प्रतिशत स्वामित्व की इजाजत दे सकती थी।

तालिका 8 मे दिए गए आकडो से पता चलता है कि

(i) उदारीकरण से पूर्व 1981 83 के दौरान विदेशी स्वामित्व का वितरण अत्यधिक 40 प्रतिशत तक के पक्ष मे था। कुल स्वामित्व का 89 प्रतिशत ऐसा फर्मों के पास था जिनका हिस्सा पूजी मे भाग 40 प्रतिशत से कम था।

(ii) उदारीकरण के पश्चात् 100 प्रतिशत विदेशी स्वामित्व वाली कम्पनियो का भाग अनुषगी कम्पनियो मे 33 प्रतिशत था। 40 प्रतिशत से कम स्वामित्व वाली अनुषगी कम्पनियों का भाग गिरकर 15 प्रतिशत हो गया और 40 से 99 9 प्रतिशत की अभिसीमा का भाग उन्नत होकर 52 प्रतिशत हो गया। अत विदेशी अनुषगियो (Foreign Subsidiaries) के स्वामित्व ढाचे मे सरचनात्मक परिवर्तन हुआ है बहुसख्य स्वामित्व (50 प्रतिशत से अधिक) वाली कम्पनियो का भाग कुल का 56 प्रतिशत था।

तालिका 8 विदेशी भाग के अनुसार स्वीकृत विनियोग का वितरण

विदेशी भाग	स्वीकृतियों की संख्या	स्वीकृत राशि (करोड रुपये)	कुल का प्रतिशत
क 1981 से 1983			
25 प्रतिशत से कम	79	26 4	12.1
25 से 40 प्रतिशत	160	168 3	77 1
40 से 50 प्रतिशत	9	10 6	4 9
50 से 74 प्रतिशत	22	11 2	5 1
74 से 99 9 प्रतिशत	5	0 4	0 2
100 प्रतिशत	2	1 4	0 6
कुल	277	218.3	100 0
ख अगस्त 1991 से मई 1997			
25 प्रतिशत से कम	1 077	4946 3	4 7
25 से 40 प्रतिशत	689	10,548.5	10 1
40 से 50 प्रतिशत	1 746	30,581 9	29
50 से 74 प्रतिशत	1,218	14 909 3	14.3
74 से 99 9 प्रतिशत	507	9 260.0	8 9
100 प्रतिशत	800	3 43,34.2	32 8
कुल	6,037	1045 80.2	100 0

वित्तीय और तकनीकी सहयोग (Financial and Technical Collaborations)

विदेशी सहयोग दो प्रकार के हैं (i) तकनीकी स्वीकतिया जिनमे तकनालाजी के लिए भुगतान करना पडता है और (ii) वित्तीय सहयोग जिनमें किसी वर्तमान या नई फर्म की हिस्सा पूजी के लिए भुगतान करना पडता है। 600 करोड रुपये तक उद्योग मत्रालय विदेशी विनियोग प्रोन्नति बोड (Foreign Investment Promotion Board) के परामर्श पर स्वाकति प्रदान करता है परन्तु इस सामा स बडे प्रोजैक्ट विदेशी विनियोग पर मत्रीमडल समिति (Cabinet Committee on Foreign Investment) स्वीकति देती है।

तालिका 9 वित्तीय और तकनीकी सहयोग

वर्ष	स्वीकृत सहयोगों की संख्या			वित्तीय सहयोग का प्रतिशत भाग	स्वीकृत विनियोग
	वित्तीय	तकनीकी	कुल		
1981 85	688	2 740	3 428	20 1	3 747
1986 90	1 154	2 853	4 007	28 8	8 994
1991	289	661	950	30.4	534
1992	*692*	*828*	*1,520*	*45.5*	*3,879*
1993	785	691	1,476	53.2	8,862
1994	1,062	792	1,854	57.3	14 190
1995	1,355	982	2,337	58.0	32,070
1996	1,559	744	2,303	67 7	36,150
1997 (जुलाई तक)	918	371	1,289	71.2	32,740
1991 जुलाई 1997	6 660	5 069	11 729	56 8	1 28 425

स्रोत भारत सरकार, उद्योग मंत्रालय

तालिका 9 मे दिए गए आकडो से पता चलता है कि (i) 1981 85 के दौरान वित्तीय सहयोग केवल 20 1 प्रतिशत थे परन्तु 1991 97 के दौरान ये तेजी के बढकर 56 8 प्रतिशत हो गए।

(ii) स्वीकृति की राशि भी जो 1985 90 के दौरान 899 करोड रुपये थी तेजी से बढकर 1991 97 के दौरान 1 28 425 करोड रुपये हो गयी।

देशानुसार विदेशी विनियोग स्वीकृतिया

तालिका 10 1992 से 1996 के दौरान देशानुसार स्वीकृत विदेशी विनियोग

	करोड रुपये	कुल का प्रतिशत
1 सयुक्त राज्य अमेरिका	25,292	26.0
2 यू के	5,291	5.4
3 प्रवासी भारतीय	18,507	19 1
4 मारिशस	4,802	4.9
5 जापान	4,270	4.4
6 इस्राइल	4 164	4.3
7 जर्मनी	3 708	3.8
8 आस्ट्रेलिया	2,834	2.9
9 नीदरलण्डस	2,641	2.7
1 थाईलैण्ड	2,426	2.5
11 सिगापुर	1 704	1.8
12 मलेशिया	1,536	1.6
13 चीन	684	0.7
14 अन्य	19 243	19.8
कुल	97 102	100 0

नोट भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा प्रवासी भारतीयों के स्वीकृत विदेशी विनियोग की 13 633 करोड रुपये की राशि को उद्योग मत्रालय द्वारा स्वीकृत राशियो के साथ जोड लिया गया है

स्रोत रिजर्व बैंक आफ इण्डिया करेन्सी एवं वित्त की रिपोर्ट (1996–97)

जाहिर है कि उदारीकरण के बाद के काल म तकनीकी स्वीकृतियो से वित्तीय स्वीकृतियो की ओर परिवतन हुआ ह किन्तु सरकार अधिक विदेशी विनियोग को पहले की अपेक्षा आकर्षित करने मे सफल हुइ है।

1992 से 1996 के दौरान स्वीकृत विदेशी विनियोग के देशानुसार आकडों से पता चलता है कि सयुक्त राज्य अमेरिका का कुल विनियोग म योगदान 26 0 प्रतिशत यू के 5 4 प्रतिशत मारीशस 4 9 प्रतिशत जापान 4 4 प्रतिशत आर इस्राईल का 4 3 प्रतिशत था। अत इन पाच देशो ने कुल विनियोग मे 45 प्रतिशत योगदान किया। वास्तव मे मारीशस एक कर-आश्रय (Tax Shelter) होने के कारण अन्य विकसित देशो के विनियोक्ताओ के लिए एक मार्ग ह जिससे वे कुछ कर बचा सक्ते ह। परन्तु प्रवासी भारतीया का योगदान *19 1 प्रतिशत ह। रिजर्व बक की करेन्सी और वित्त रिपोर्ट* (1996 97) ने सकेत दिया ह कि इसमे रिजर्व बक द्वारा स्वीकृत विनियोग को शामिल नही किया गया। इस रिपोर्ट के अनुसार 1992 से 1996 की 5 वर्षीय अवधि मे प्रवासी भारतीयो के स्वीकृत विनियोग की राशि 18 507 करोड रुपये थी। इससे पता चलता है कि रिजर्व बक के आकडो मे 13 633 करोड रुपये की राशि शामिल नही की गयी क्योकि इसमे केवल 4 874 करोड रुपये ही दिखाए गए ह। यदि इस राशि को शामिल कर लिया जाए, तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रवासी भारतीयो का कुल स्वीकृत विनियोग मे भाग 19 1 प्रतिशत था। अत प्रवासी भारतीय (NRIs) दूसरा सबसे उत्तम स्रोत ह जिसका भारत को विदोहन करना चाहिए क्योकि इसके साथ कोई राजनीतिक शर्तें भी जुडी हुई नहा है। प्रवासी भारतीय तकनालाजी हस्तातरण (Technology Transfer) भी कर सकते ह क्योकि विकसित देशो मे स्थित होने के कारण वे अद्यतन तकनालाजियो से अधिक परिचित हैं।

स्वामित्वान्तरण और विदेशी विनियोगो का कार्यान्वियन

ऐसा प्रतीत होता ह कि भारतीय उद्यमकर्त्ता अपनी सौदा शक्ति खो बठे ह आर बहुराष्ट्रीय निगम विख्यात ब्रडो का स्वामित्व अपने आधीन करते चले जा रहे ह। इस बात पर बल देना आवश्यक है कि स्वामित्वान्तरण (Take over) से नई उत्पादन सामर्थ्य मे वृद्धि नहीं होती। इसके विरुद्ध, इनके कारण विदेशी मुद्रा का अधिक बहिगमन होता ह। *विदेशी सहयोगो मे बेहत्तर तकनॉलाजी का हस्तातरण मुख्य* कारण नहा था।

हाल ही मे हुए कुछ स्वामित्वान्तरण

—आई सी आई (यू के) ने एशियन पेटस के स्वामित्वान्तरण का प्रयास किया।

—हिन्दुस्तान लीवर ने टोमको का स्वामित्व अपने हाथ में लिया।

—प्रीमियर आटोमोबाइल ने अपने दो प्लान्ट पीजीओ (Pengeot) को स्वामित्वान्तरित किए।

—लेक्मे ब्रैंड एक 50 50 के आधार पर स्थापित सयुक्त उद्यम द्वारा लीवर को सौंपे गए।

—टी वी एस सुजुकी ने हीरो हाडा का स्वामित्वान्तरण किया।

—व्हर्लपूल ने टी वी एस व्हर्लपूल का स्वामित्व अपने हाथ मे लिया।

—सुजुकी ने मारुति उद्योग मे बहुसख्य निय त्रण अपने हाथ मे लेने का प्रयास किया।

—ब्रिजस्टोन ने ए सी सी के साथ सयुक्त उद्यम (Joint Venture) में अपना भाग 51 से 74 प्रतिशत तक बढाया।

—बाश एण्ड लाम्ब ने भारतीय उद्यम मे अपना भाग 69 प्रतिशत करने का प्रयास किया।

—हैनकल ने अपना भाग 70 प्रतिशत किया।

—ब्लू स्टार को मोटरोला ब्लू स्टार और ह्यूलैट पैकर्ड इण्डिया से बाहर निकाला गया।

—श्री राम का भाग श्रीराम हाडा पावर मे कम कर दिया गया।

एक भारतीय साझादार यदि अपनी इकाइया हस्तातरित कर देता है तो उसके पास न ही तो पैसा रह जाता है और न ही बाजार त त्र।

बहुराष्ट्रीय निगम और निर्यात

डा एस के गोयल द्वारा किए गए हाल ही के एक अध्ययन से पता चला है कि 1991 92 से 1995 96 के दौरान 100 सबसे बडो बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा अपनी विक्रम राशि का निर्यात 8 07 प्रतिशत से बढाकर 8 64 प्रतिशत किया गया जब कि इनकी आयात निर्भरता इसी अवधि के दौरान बढकर दुगुनी हो गया अर्थात् 6 86 प्रतिशत से 12 94 प्रतिशत। इसके नतीजे के तौर पर, ये कम्पनिया शुद्ध रूप मे विदेशी मुद्रा खोने वाली कम्पनियां बन गयीं और 270 करोड रुपये के सकारात्मक अतिरेक को बजाए इनका विदेशी मुद्रा सम्बन्धी घाटा 1 600 करोड रुपये हो गया। इसी प्रकार तकनालाजी लाभाश, यात्रा आदि के लिए भी विदेशी मुद्रा मे तीव्र वद्धि होकर यह 120 करोड रुपये से बढकर 500 करोड रुपये हो गयी। अत विदेशी विनियोग के आकार और निर्यात मे कोई प्रत्यक्ष और सकारात्मक सम्बन्ध नहीं है। इससे एक बात साफ हो जाती है कि यदि निर्यात बढाना मुख्य उद्देश्य है तो विदेशी विनियोग अधिक चयनात्मक (Selective) होना चाहिए।

स्टॉक मार्किट और प्रत्यक्ष विदेश विनियोग

स्टॉक मार्किट एक आदर्श सस्था है जिसके द्वारा सुगम तरलता (Easy Liquidity) उपलब्ध करा करके आम जनता को विनियोग के लिए प्रोत्साहित किया जाता है और इस प्रकार अर्थव्यवस्था में छिपा हुआ अतिरेक बाहर निकाला जाता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अच्छी उदीयमान कम्पनियो के हिस्से स्टॉक मार्किट मे अनुसूचित होने चाहिए। 1970 और 1980 के दशको के दौरान, बहुत से विश्वसनीय बहुराष्ट्रीय निगमो के पावती पत्र (Blue chip TNC Scrips) अनुसूचित किए गए। जनता को बहुराष्ट्रीय फर्मों की सहायक फर्मों द्वारा हिस्से बेचने का उद्देश्य जनता से ताजा पूजी एकत्र करना नहीं हो सकता, बल्कि यह एक प्रकार की रणनीति थी *जिसके द्वारा अपने विदेशी जनक (Foreign parent) का* विनियोग कम किए बिना विदेशी पूजी का अनुपात कम किया गया।

उदारीकरण के बाद के काल मे यह नीति पलट दी गयी और बहुत सी विदेशी कम्पनियों ने प्रथम अवसर प्राप्त करते ही हिस्सा पूजी मे अपना भाग बहुसख्य कर लिया। ऐसा करते समय अधिकतर विदेशी फर्मों ने स्टाक मार्किट का परिहार किया। बहुराष्ट्रीय निगम स्टाक मार्किट को एक तरफ रखकर वर्तमान इकाइयो को स्थानीय लोगो को बेचते हैं और इस प्रकार सम्पूर्ण स्वामित्व वाली अनुषगी कम्पनिया (Wholly owned subsidiaries) प्रोन्नत करते हैं या जनक कम्पनी को सम्पूर्ण स्वामित्व वाली अनुषगी कम्पनी को कुछ विभाग/उत्पाद हस्तातरित कर देती हैं।

तकनीकी सहयोगो (Technical collaborations) की सख्या जो 1995 में 982 थी गिरकर 1996 मे 744 हो गयी। शुद्ध रूप में तकनालाजीय सहयोगो को हस्तातरण उपायो द्वारा फर्मों की हिस्सा पूजी खरीद कर वित्तीय सहयोगो मे परिवर्तित करने की प्रवृति पायी गयी। 1991 और 1995 के दौरान तकनालाजी के क्रय के लिए किए गए एकमुश्त भुगतान मे सात गुना से भी अधिक वृद्धि हुई और यह बहुत तेजी से 1991 मे 980 करोड रुपये से बढकर 7 198 करोड रुपये हो गया। तालिका 11

तालिका 11 तकनालाजी क्रय के लिए स्वीकृत एकमुश्त भुगतान

वर्ष	करोड रुपये
1991	980
1992	2,281
1993	3 690
1994	2,300
1995	7 198

विदेशी सहयोगों सम्बन्धी नीतियों का मूल्यांकन

उदारीकरण के समर्थकों ने विदेशी सहयोगी निगमों द्वारा अधिकाधिक मात्रा मे विनियोग की स्वीकृति देने के पक्ष में मुख्यत. ये तर्क दिए हैं—ईस्ट इंडिया कम्पनी के दिन अब लद गए हैं। विदेशी सहयोग द्वारा बहुराष्ट्रीय निगमों या उनके अनुषंगियों द्वारा विनियोग का अर्थ उनकी दासता था। विश्व के प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग में भारत के भाग की तुलना जब चीन, ब्राजील मैक्सिको आदि से की जाती है, तो यह पता चलता है कि भारत का भाग बहुत ही कम है। दूसरे, भारत में तकनालाजी हस्तान्तरण तभी किया जा सकता है यदि तकनीकी दृष्टि से उन्नत देश बहुराष्ट्रीय निगमो के माध्यम द्वारा अधिक प्रत्यक्ष विनियोग करें। इन लाभो से तो आलोचक भी इकार नहीं करते परन्तु वस्तु-स्थिति यह है कि प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग के कुछ पहलू ऐसे हैं जिनका प्रभाव जनकल्याण एव राष्ट्रीय प्रभुसत्ता पर गभीर रूप मे पड़ता है। इन पहलुओं पर गभीरता से विचार करना होगा।

पहला, विदेशी विनियोग का 67 प्रतिशत भाग पोर्टफोलियो विनियोग (वित्तीय विनियोग) के रूप में है जो केवल हिस्सो के सट्टा-व्यापार को प्रोत्साहन देता है। विदेशी कम्पनियो को हिस्सा बाजार में व्यापार करने देने की स्वीकृति पर आलोचको ने प्रश्न-चिन्ह लगाया है। इससे हिस्सा-बाजार मे कृत्रिम तेजी उत्पन्न हुई है और 6 सितम्बर 1994 को बाम्बे स्टाक एक्सचेंज का सवेदनशील सूचकाक 4,510 तक पहुच गया। पहले भी जब हिस्सा-बाजार की तेजी का भडाफोड हुआ, तो हिस्सा-बाजार धडाम से नीचे गिर गया और लाखो छोटे हिस्सेदार जो इस बाजार में शीघ्र मुनाफा कमाने के उद्देश्य से दाखिल हुए थे, को भारी नुक्सान हुआ, परन्तु बडे-बडे हिस्सेदारों ने बाजार को अपने पक्ष मे घुमा कर करोड़ों रुपये हथिया लिए। प्रतिभूति घोटाले में 5 000 करोड रुपये हथियाने का अनुमान है आलोचको का कहना है कि हम भले ही हिस्सा-बाजार में तेजी पर अत्यधिक खुशी जाहिर करें परन्तु हम इस बात को ध्यान में नहीं रखते कि हम ज्वालामुखी पर तो बैठे हुए नहीं हैं।

दूसरे, प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग द्वारा उच्च-मध्यम एव समृद्ध वर्गों की आवश्यकताओं की तुष्टि की जा रही है और इस प्रकार इस विनियोग का केन्द्र भारतीय अर्थव्यवस्था के 18 करोड उपभोक्ता हैं। इस दृष्टि से, एक नयी उपभोक्ता सस्कृति पनप रही है जिसमें कोला, जैम, आइसक्रीम, तैयार खाद्यों और चिरस्थायी उपभोग वस्तुओ के उत्पादन पर बल दिया जा रहा है। परिणामत मजदूरी-वस्तु क्षेत्र की एकदम उपेक्षा की जा रही है। 1980-81 और 1992-93 के दौरान, चिरस्थायी उपभोग वस्तुओ के उत्पादन की वार्षिक औसत वृद्धि-दर 10 प्रतिशत थी, जबकि मजदूरी-वस्तुओं की 4.5 प्रतिशत के निम्न स्तर पर ही रही। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उत्पादन द्वारा जन-कल्याण के लाभ की अपेक्षा उच्च-वर्गों की तुच्छ आवश्यकताओ की तुष्टि की जा रही है। इस दृष्टि से, बहुराष्ट्रीय निगमों का आलू के चिप्स, वेफर, बेकरी उत्पादन, तैयार खाद्य-पदार्थों आदि में प्रवेश लघु स्तर उद्योगों में कार्यरत श्रम के विस्थापन का कारण बन गया है क्योंकि ये छोटी इकाइयां बहुराष्ट्रीय निगमों के विरुद्ध प्रतियोगिता मे टिक नहीं सकती और सिवाए बन्द करने के इनके पास कोई चारा नहीं रह जाता। अत. उत्पादन एव रोजगार दोनों की दृष्टि से, बहुराष्ट्रीय निगमों के नरम क्षेत्रों में अप्रतिबन्धित प्रवेश के भयानक परिणाम ही हैं।

तीसरे, भारत में किया गया पोर्टफोलियो विनियोग एक प्रकार की क्षुब्ध मुद्रा (Hot money) है जो यदि बाजार से कोई प्रतिकूल संकेत मिलता है, तो फौरन पलायन कर सकता है। अत पोर्टफोलियो विनियोग को अपने विकास में एक स्थिर कारणतत्त्व मान लेना भूल होगी।

चौथे, प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग के भारी अन्तर्प्रवाह से, विशेषकर वित्तीय क्षेत्र में, हमारे विदेशी मुद्रा रिजर्व बढ जाएंगे जिनके आधार पर देशीय मुद्रा-सभरण का विस्तार होगा। इस प्रक्रिया में कीमतो की स्फीतिकारी प्रवृत्ति को बल प्राप्त होगा। इसके अतिरिक्त, देश में एक बहुत बड़ा गैर-बैंकिंग वित्तीय एव अन्तर्वर्ती क्षेत्र पनप रहा है जिसमे विदेशी वित्तीय कम्पनियां और पारस्परिक निधियां भी शामिल हो सकती हैं। यदि इस क्षेत्र का तेजी से विकास होता है जैसा कि भारत मे हो रहा है, तो इसके परिणामस्वरूप रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा मौद्रिक प्रबन्ध का कोई भी कदम प्रभावहीन बन जाएगा।

पांचवें, बहुराष्ट्रीय निगम भारतीय कम्पनियों में प्रवेश के पश्चात् इनमें अपनी हिस्सा-पूजी बढाती जाती हैं और इस प्रकार वे भारतीय कम्पनियों को निगलकर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेती हैं। इस प्रकार बहुत-सी भारतीय कम्पनियो पर बहुराष्ट्रीय निगमों ने अपना कब्जा जमा लिया है और निगम क्षेत्र के भारतीयकरण की जो प्रक्रिया जवाहरलाल नेहरू ने आरम की थी पूर्णतया उलट दी गयी है। इससे भारतीय निजी क्षेत्र को भारी झटका मिला है। यही कारण है कि भारत के बडे उद्योगपतियो ने बाम्बे क्लब या अखिल-भारतीय विनिर्माता सघ में सरकार की उन भेदभावपूर्ण नीतियों के खिलाफ आवाज उठायी जिनके द्वारा विदेशी पूंजी को देशी पूजी की कीमत पर आकर्षित किया जा रहा है।

हाल ही मे यह तथ्य उभर कर सामने आया है कि बहुत से बहुराष्ट्रीय निगमो ने पूर्ण स्वामित्वाधीन (100%) अनुषगी मार्ग (Subsidiary route) के आधार पर भारत मे अपने व्यापार का विस्तार करने का फैसला किया है। यह वर्तमान स्थापित एवं अनुसूचित अनुषगी कम्पनियो की कीमत पर किया जा रहा है। इस प्रकार हजारो भारतीय अल्पसख्यक हिस्सेदार जो इन कम्पनियो (साझे उद्यमों) से सम्बन्धित थे ऐसा महसूस करते हैं कि उनके साथ धोखा हुआ है। पिछले कुछ वर्षों में अधिकतर बहुराष्ट्रीय निगमो ने इन अनुषगी कम्पनियो में प्रचलित बाजार कीमतो की तुलना मे भारी बट्टे (Discounts) के आधार पर अपनी हिस्सा पूजी बढा ली। इसके लिए उन्होंने कम्पनियों से हिस्सो के प्राथमिकतापूर्ण आबंटन (Preferential allotment) की माग की और बदले मे बहुराष्ट्रीय निगमो ने यह आश्वासन दिया कि वे इनके लिए नया पूजी लाएंगे और इनमे अद्यतन तकनालाजी और विक्रय कौशल प्रयोग मे लाएंगे। साथ ही व भारतीय सम्बद्ध कम्पनी (Indian affiliate) को अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से अधिक प्रतिस्पर्द्धी बनाने में सहायता देंगे और इसकी वृद्धि दर को त्वरित करेंगे। भारतीय सम्बद्ध फर्मों को अपने कार्यक्षेत्र से बाहर रखने की चाल ने भारतीय हितो पर गहरी चोट की है परन्तु इससे भी गभीर बात यह है कि अधिक आकर्षक और लाभदायक व्यापार को तो पूर्णस्वामित्वाधीन एव नव स्थापित अनुषगी कम्पनियो मे हस्तातरित कर दिया गया है। अत पूर्ण स्वामित्वाधीन अनुषंगियो (Subsidiaries) और 51 प्रतिशत स्वामित्व वाली सम्बद्ध कम्पनियो के बीच हितों की टक्कर हो गयी हैं परन्तु चुंकि बहुराष्ट्रीय निगमो ने सम्बद्ध कम्पनियो (Affiliates) मे बहुसख्यक हिस्से प्राप्त कर लिए हैं भारतीय अल्पसख्यक विनियोक्ता किसी भी जवाबी कार्यवाही के लिए शक्तिहीन हो गया है। भारतीय उद्योगपति यह महसूस करते हैं कि यह नयी चाल दिन दहाडे डाका है क्योंकि बहुराष्ट्रीय निगम स्थापित ब्रैंड वाली वस्तुओ पर लाभ कमाना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त, इससे भारत में से विदेशी मुद्रा निकास (Forex drain) की प्रक्रिया त्वरित होगी। परन्तु जिस ढग से बहुराष्ट्रीय निगमो ने मिट्टी के भाव (Throw away prices) पर हिस्सों का प्राथमिकतापूर्ण आबटन प्राप्त किया, यह औद्योगिक नीति (1991) मे अनुज्ञात्मक धाराओं (Permissive clauses) का निर्लज्ज दुरुपयोग है। अत सरकार के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वह भारतीय प्रतिभूति एव विनियमन बोर्ड और भारतीय रिजर्व बैंक को इन कुरीतियो को फौरन बन्द कराने के लिए उपचारात्मक उपाय करने के लिए कहे।

निष्कर्ष के रूप मे कहा जा सकता है कि जहा बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा पूजी अन्तर्प्रवाहों की इजाजत दी जानी चाहिए, परन्तु ऐसा भारतीय राष्ट्रीय हितो की कीमत पर करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। अत सरकार को खुले द्वार की नीति को छोडकर चयनात्मक नीति अपनानी चाहिए।

5 विभिन्न योजनाओ मे अधिकृत और प्रयुक्त विदेशी सहायता
(Foreign Aid Authorised and Utilised in the Various Plans)

तालिका 12 मे विदेशी सहायता के आकडे प्रस्तुत किए गए हैं। आकडो के अध्ययन से स्पष्ट है कि विदेशी सहायता को तीन श्रेणियो में विभाजित किया गया है—(क) ऋण, (ख) अनुदान और (ग) सार्वजनिक अधिनियम सहायता (Public Law Assistance)। चौथी योजना के अन्त तक 11 922 करोड रुपये की विदेशी सहायता का उपयोग किया गया, जिसमे से 72 प्रतिशत ऋण के रूप मे, 6 प्रतिशत अनुदान के रूप में और 22 प्रतिशत पी एल 480/665 के आधीन सहायता के रूप में थे। परन्तु चौथी योजना के दौरान जैसे भारत खाद्यान्न के उत्पादन को बढाने में सफल हो गया, पी एल 480/665 का कुल विदेशी सहायता मे अनुपात कम होकर केवल 9 प्रतिशत हो गया। पाचवीं योजना के दौरान यह और भी कम होकर केवल 3 प्रतिशत हो गया और 1978 79 में 1984 85 में यह शून्य था। किन्तु पाचवीं योजना मे कुल विदेशी सहायता मे अनुदान का भाग उन्नत होकर लगभग 15 प्रतिशत हो गया। चूँकि पी एल 480 665 का विदेशी सहायता मे अनुपात गिर गया है इस कारण पाचवीं योजना में ऋण का भाग लगभग 82 प्रतिशत हो गया।

छठी योजना (1980 81 से 1984 85) के दौरान, ऋण कुल विदेशी सहायता के लगभग 84 प्रतिशत के समान थे अनुदान का भाग कम होकर 16 प्रतिशत रह गया। किन्तु परम रूप मे 10 903 करोड रुपये की विदेशी सहायता का उपयोग किया गया। ध्यान देने योग्य बात यह है कि विदेशी सहायता का औसत वार्षिक उपयोग पाचवीं योजना के दौरान 1,511 करोड रुपये था जो छठी योजना के दौरान और बढकर 2,180 करोड रुपये हो गया। सातवीं योजना के दौरान विदेशी सहायता का औसत वार्षिक अन्तर्प्रवाह और बढकर 4,540 रुपये हो गया। 1990 91 और 1995 96 के दौरान, भारत ने 57 787 करोड रुपये की कुल विदेशी सहायता का उपयोग किया जिसमे अनुदान का भाग केवल 8 प्रतिशत था। जाहिर है कि विदेशी सहायता पर भारत की निर्भरता बढी है। यह एक शोचनीय विषय है क्योंकि इसके कारण विदेशी सहायता का ऋण भार भी बढता है।

तालिका 12 विदेशी सहायता का उपयोग

(करोड़ रुपये)

	ऋण	अनुदान	पी एल 480/665	कुल योग
चौथी योजना के अन्त तक	8 572	713	2,637	11 922
	(71 9)	(6 0)	(22 1)	(100 0)
पाँचवीं योजना	4 978	884	182	6 044
(1974 75 से 1977 78)	(82 4)	(14 6)	(3 0)	(100 0)
1978 79 से 1979 80	1 931	578		2,509
	(77 5)	(22 5)		(100 0)
छठी योजना	9 123	1 780		10 903
(1980 81 से 1984 85)	(83 7)	(16 3)		(100 0)
सातवीं योजना	20 120	2,580		22 700
(1985 86 से 1989 90)	(88 6)	(11.4)		(100 0)
1990 91 और 1995 96	57 787	5 198		63985
	(91 8)	(8 2)		(100 0)

नोट : ब्रैकेट में दिये गये आंकड़े कुल का प्रतिशत हैं।
स्रोत भारत सरकार, आर्थिक समीक्षा 1985 86 और 1996 97

विदेशी सहायता की समूह-अनुसार प्राप्ति

1990 91 से 1995-96 के दौरान भारत में विभिन्न समूहों में कन्सौरटियम सदस्यों से कुल सहायता का लगभग 86 प्रतिशत प्राप्त किया गया। यू एस एस आर या रूसी महासंघ और अन्य पूर्वी यूरोप के समाजवादी देशों से 1 प्रतिशत सहायता और अन्य सभी देशों से लगभग 13 प्रतिशत सहायता प्राप्त की गयी। (देखिए तालिका 13)

चौथी योजना के अन्त तक यू एस ए. द्वारा विदेशी सहायता में सबसे अधिक योगदान दिया गया परन्तु इसके पश्चात् इसका भाग गिरता गया और 1979 80 से 1984 85 की अवधि में यू एस ए. का भाग गिरकर केवल 3 प्रतिशत हो गया। किन्तु समग्र काल (1951 52 से 1989 90 में यू एस ए. द्वारा 6 409 करोड़ रुपये या कुल सहायता का 12 प्रतिशत उपलब्ध कराया गया और वह अब भी प्रमुख सहायता प्रदान करने वाला देश है। अब वह अप्रत्यक्ष रूप में पुनर्निर्माण और विकास के अन्तर्राष्ट्रीय बैंक (International Bank of Reconstruction and Development—IBRD) और अन्तर्राष्ट्रीय विकास संस्था (International Development Association—IDA) द्वारा सहायता प्रदान करने लगा है जिसका भाग बढ़कर कुल सहायता का 52 प्रतिशत (अर्थात् 13 302 करोड़ रुपये) हो गया है। जाहिर है कि भारत भी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं अर्थात् आई बी आर डी आई डी ए आई एम एफ और एशियन विकास बैंक से सम्बन्ध रखना चाहेगा। जापान और जर्मनी महत्त्व की दृष्टि से इसके बाद आते हैं और इसके पश्चात् यू के का नम्बर है। 1990 91 और 1995 96 के दौरान विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय विकास संस्था ने कुल सहायता का 50% उपलब्ध कराया। इसके अतिरिक्त एशियन विकास बैंक ने 11 प्रतिशत और जुटाया। अतः अन्तर्राष्ट्रीय वित्त संस्थाओं का भाग बढ़कर 61 प्रतिशत हो गया।

अधिकरण और उपयोग (Authorisation and utilisation)

तालिका 14 सहायता अधिकरण और उपयोग

करोड़ रुपये

	अधिकृत सहायता	प्रयुक्त सहायता	प्रतिशत उपयोग
मार्च 1985 के अन्त तक	40 927	30 906	75 5
सातवीं योजना (1986 90)	44 972	22 700	50 5
1990 91 से 1994 95	62419	52 0 4	83 3
1995 96 और 1996 97*	29 223	21003	78 7

*अस्थायी

स्रोत रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया करेन्सी और वित्त की रिपोर्ट (1996 97) से संकलित एवं परिकलित

मार्च 1985 के अन्त तक 40 927 करोड़ रुपये की कुल अधिकृत सहायता में से 30 906 करोड़ रुपये का उपयोग किया गया। उपयोग की मात्रा 75 5 प्रतिशत थी। सातवीं योजना में परिस्थिति बिगड़ गयी और प्रतिशत उपयोग

तालिका 13 : विदेशी सहायता-देशानुसार उपयोग

करोड़ रुपये

	चौथी योजना के अन्त तक	पांचवीं योजना (1974-78)	1978-79 और 1979-80	छठी योजना (1980-81 से 1984-85)	सातवीं योजना (1985-86 से 1989-90)	1990-91 और 1995-96
1 कन्सौरटियम सदस्य	10918 (92)	4469 (74)	2,281 (89)	9893 (91)	20,352 (90)	54238 (86)
2 यू.एस.एस.आर./रूसी महासंघ और अन्य पूर्वी यूरोप के देश	869 (7)	349 (6)	57 (2)	278 (2)	1,018 (4)	484 (1)
3 अन्य	135 (1)	1226 (20)	231 (9)	732 (7)	1,330 (6)	8263 (13)
कुल	11,922 (100)	6,044 (100)	2,569 (100)	10,903 (100)	22,700 (100)	63,985 (100)
सहायता देने वाले मुख्य देश						
यू.एस.ए.	5,321 (45)	292 (5)	64 (3)	309 (3)	423 (2)	323 (0.5)
यू.के.	1034 (9)	568 (9)	422 (16)	869 (8)	806 (4)	1604 (2.5)
जर्मनी	909 (8)	470 (8)	251 (1)	650 (6)	1,226 (5)	4,237 (6.7)
यू.एस.एस.आर.	703 (6)	228 (4)	56 (2)	278 (3)	984 (4)	467 (0.7)
जापान	539 (5)	391 (7)	162 (6)	462 (4)	2,069 (9)	12,605 (26.0)
आई.बी.आर.डी. एवं आई.डी.ए.	1786 (15)	1786 (30)	986 (38)	5812 (53)	13,202 (58)	15015 (23.8)
एशियन विकास बैंक					234 (1)	6882 (10.9)

1 कन्सौरटियम सदस्यों में आस्ट्रिया, बेल्जियम, कनाडा, डेनमार्क, फ्रांस, प. जर्मनी, इटली, जापान, नीदरलैण्ड्स, स्वीडन, यू.के., यू.एस.ए., आई.बी.आर.डी. और आई.डी.ए. शामिल हैं।

2 यू.एस.एस. आर. और पूर्वी यूरोप के देशों में बल्गेरिया, चेकोस्लोवाकिया, हंगरी, पोलैण्ड, यू.एस.एस.आर. और यूगोस्लाविया शामिल हैं। रूसी महासंघ (Russian Federation) में रूस और स्वतंत्र राज्यों का राष्ट्रमण्डल शामिल है।

3 अन्य देशों में आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, स्पेन, स्विट्ज़रलैंड, ईराक, यूरोपीय आर्थिक समुदाय, पेट्रोलियम निर्यात करने वाले देशों का कोष, एशियन विकास बैंक आदि शामिल हैं।

स्रोत: आर्थिक समीक्षा (1996-97) और पहले वर्षों की समीक्षाओं से संकलित।

गिरकर लगभग 51 प्रतिशत हो गया। परिस्थिति मे फिर सुधार हुआ है और 1990 91 से 1995-96 के बीच उपयोग का अनुपात फिर बढ़कर 83 प्रतिशत हो गया। यह परिस्थिति संतोषजनक है और इसे बनाए रखना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि अधिकृत सहायता का उपयोग करने में कुछ समय तो लगेगा परन्तु इस अन्तराल को कम करने के लिए यदि कुछ पूर्व-प्रयास किया जाए और प्रशासनिक अड़चने कम कर दी जाए तो उपयोग की सीमा को उन्नत करना संभव है।

6. आर्थिक विकास पर विदेशी सहायता का प्रभाव

विदेशी सहायता देश की उत्पादन क्षमता का किस सीमा तक विकास करने मे सहायक हो सकती है, यह विदेशी सहायता के विवेकपूर्ण उपयोग तथा प्रापक देश (recipient country) के प्रयास और कुछ विनियोज्य साधनों (Investible resources) पर निर्भर करता है। विदेशी सहायता बड़े पैमाने पर विकास संभावनाएं भी उत्पन्न करती हैं। उपभोक्ता वस्तुओं के रूप में प्राप्त सहायता के परिणामस्वरूप पूंजी निर्माण के लिए अन्तर्देशीय साधनों के मोचन में सहायता मिल सकती है। अतः सहायता के प्रभाव का ठीक-ठीक अनुमान लगाना कठिन है। फलतः हम देश की उत्पादन क्षमता की वृद्धि में विदेशी सहायता के योगदान के महत्त्व का विवेचन करेंगे।

1. विदेशी सहायता से विनियोग का स्तर उन्नत करने में सहायता मिली है—पहली योजना के आरंभ में वार्षिक विनियोग-दर राष्ट्रीय आय का 5 प्रतिशत थी किन्तु यह बढ़कर लगभग 25 प्रतिशत हो गई। विनियोग में उक्त वृद्धि के साथ-साथ विदेशी मुद्रा के विनियोग मे भी वृद्धि करनी पड़ी जो देश के साधनों के सामर्थ्य से बाहर थी।

1972-73 से ही देश विदेशी मुद्रा के भीषण संकट का सामना कर रहा है। विदेशी सहायता के अभाव में देश के लिए उक्त सकट से पार हो सकना करीब-करीब असभव था।

2. खाद्य कीमतों को स्थिर करने तथा कच्चे माल के आयात के लिए सहायता का उपयोग—प्रयुक्त कुल सहायता में से आधे से कुछ कम सहायता वस्तु या खाद्य के रूप में थी जिसके अधिकांश भाग का उपयोग खाद्यान्न के आयात के लिए किया गया है। इस आयात ने खाद्यान्न की कीमतो को स्थिर करने में महत्त्वपूर्ण सहायता दी है और अकाल का सामना करने की क्षमता प्रदान की। सहायता का एक अश कच्चे माल और अतिरिक्त पुर्जों (Spare Parts) के आयात के लिए जिनकी देश म कमी थी, प्रयुक्त किया गया है। इसके परिणामस्वरूप देश के उत्पादन मे वृद्धि हुई है।

3 सिंचाई और बिजली क्षमता के विस्तार के लिए सहायता का उपयोग—देश की सिचाई क्षमता का विस्तार करके विदेशी सहायता ने कृषि-उत्पादन की वृद्धि मे बहुत अधिक योगदान दिया। डेरी और मत्स्यपालन के क्षेत्र मे उत्पादन तकनीको के आधुनिकीकरण (Modernization) में विदेशी सहायता से लाभ हुआ है। विदेशी सहायता ने देश की बिजली क्षमता मे भी काफी वृद्धि की है। यह सहायता विभिन्न स्रोतों से प्राप्त हुई है। इसके कारण हमारा देश मशीनों और उपकरणों का आयात कर सका है जिनके प्रयोग से 1950-51 में 23 लाख किलोवाट की स्थापित क्षमता (Installed capacity) 1991-92 तक बढकर 786 लाख किलोवाट हो गई।

4 परिवहन, विशेषकर रेलवे के विकास के लिए सहायता—कुल प्रयुक्त सहायता का काफी बडा भाग अर्थात् 14 प्रतिशत परिवहन के विकास पर व्यय हुआ जिसमे से अकेले रेलवे पर 12 प्रतिशत भाग व्यय किया गया। इसके कारण प्रारंभिक वर्षों में रेलवे परिवहन को पुन स्थापित करने तथा रेल के डिब्बों में वृद्धि करने और वर्द्धित परिवहन इन्जनो की मरम्मत आदि में महत्वपूर्ण सहायता मिली है।

5. इस्पात उद्योग के निर्माण के लिए सहायता का उपयोग—विदेशी सहायता ने देश मे इस्पात जैसे मूलभूत उद्योग की उत्पादन क्षमता का निर्माण करने का महत्त्वपूर्ण काय किया है। निर्माण उद्योग मे प्रयुक्त विदेशी सहायता का 80 प्रतिशत से कुछ अधिक भाग इस्पात उद्योग की क्षमता के विस्तार और निमाण पर व्यय हुआ है। 1951 के मुकाबले इस्पात उत्पादन दस गुना बढ़ गया है। इसके लिए आवश्यक विदेशी सहायता पश्चिमी जर्मनी, सोवियत रूस और यू.के से प्राप्त की गया।

6. तकनीकी साधनों के विकास के लिए सहायता का उपयोग—विदेशी सहायता के कारण निम्नलिखित तीन उपायों में तकनीकी साधनों के विस्तार में सहायता मिली है (क) विशेषज्ञ सेवाओं (Expert services) की व्यवस्था करके (ख) भारतीय कर्मचारियों को प्रशिक्षण देकर, तथा (ग) देश में नई शिक्षण गवेषण और प्रशिक्षण सस्थाओं (Research and training institutions) की स्थापना करके या विद्यमान सस्थाओं का विकास करके।

7. विदेशी सहायता की समस्याएं

1. राजनीतिक दबाव—हमारी विदेशी सहायता प्राप्त करने के संबध मे बहुत-सी कठिनाइया एवं सीमाबन्धन हैं। इनमें से सबसे अधिक शोचनीय कठिनाई भारत का अन्य देशो, विशेषकर यू.एस.ए. पर भारी मात्रा मे तथा लगातार निभर रहना है। देश के इतिहास मे ऐसे कई अवसर आए हैं जब भारत सरकार अपनी आर्थिक एव राजनीतिक नीतियो में विदेशी दबाव के आधीन निर्णय करती रही है। अमरीकी दबाव के आधीन कई निर्णय किए गए। उदाहरणार्थ पूजी वस्तुओ पर बल देने की अपेक्षा उपभोग वस्तुओं पर बल देना, औद्योगिक विस्तार के लिए गैर-सरकारी क्षेत्र पर अपेक्षाकृत अधिक विश्वास, सरकारी क्षेत्र में प्रस्तावित परियोजनाओ के लिए विदेशी सहायता की मनाही, 1966 में रुपये के अवमूल्यन के लिए अत्यधिक बल देना। भारत-पाक युद्ध के दौरान दिसम्बर 1971 में सयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार ने भारत पर दबाव डालने के लिए विदेशी सहायता बन्द करने की धमकी दी। इसी प्रकार यू.एस.ए. की सरकार ने 1978 में यह निर्णय किया कि वह तारापुर अणुशक्ति प्लान्ट के लिए न्यूक्लियर ईंधन देने का वचन पूरा नहीं करेगी।

2 विदेशी सहायता और अनिश्चितता की समस्या—वास्तविक कठिनाई एक अवधि के दौरान प्राप्त होने वाले विदेशी सहायता के स्वरूप और परिणाम की अनिश्चितता से उत्पन्न होती है। कुशल आयोजन के माग मे यह अनिश्चितता बाधक सिद्ध होती है। अत विदेशी सहायता से प्राप्त हो सकने वाले सभावित साधनो का अग्रिम ज्ञान आवश्यक होता है। यदि दाता देश (Donor countries) पाच पाच वर्ष की अवधि के लिए सहायता के स्वरूप और परिमाण का निर्देश कर दें, तो आयोजन मे भारी सुविधा हो जाती है। अमेरिका ने अग्रिम वचन (Advanced commitments) देने के सम्बन्ध में जो तथाकथित 'तुल्यता प्रनियम' (Matching principle) प्रचलित किया है, उससे एक प्रकार की अनिश्चितता उत्पन्न हो गई। अत इस कारण न केवल एक नए प्रकार की अनिश्चितता ही उत्पन्न हुई है अपितु एक सामा तक तनाव

और गलतफहमी उत्पन्न हुई।

विदेशी सहायता का कुल और शुद्ध अन्तर्प्रवाह (Net inflow)

यदि किसी अवधि-विशेष में प्राप्त कुल वितरित विदेशी सहायता मे से ऋण सेवा भार को घटा दे, तो शेष विदेशी सहायता का शुद्ध अन्तर्प्रवाह रह जाता है। यदि ऋण-सेवा भार का सचयी प्रभाव बढता जाए, तो अर्थव्यवस्था के विकास के लिए कुल सहायता का अपेक्षाकृत छोटा भाग उपलब्ध होता है।

तालिका 15 विदेशी सहायता का अन्तर्प्रवाह

(करोड़ रुपये)

	कुल प्राप्त सहायता	ऋण-सेवा (ब्याज भुगतान मिलाकर)	सहायता का शुद्ध अन्तर्प्रवाह
1985 86 से	22,699	12,652	10,047
1989-90	(100 0)	(55 7)	(44.3)
	(100 0)	(55 7)	(44.3)
1990-91 से	52,024	39880	12,044
1994-95	(100 0)	(76 8)	(23.2)
1995-96	11 023	12,649	1 626
	(100 0)	(114 8)	(14 8)
1996-97	11980	11845	135
	(100 0)	(98 9)	(1 1)

स्रोत रिजर्व बैंक आफ इंडिया, करेन्सी और वित्त की रिपोर्ट (1996-97)

तालिका 15 मे दिए गए आकडो से पता चलता है कि सातवीं योजना (1985-86 से 1989-90) के दौरान 22,699 करोड रुपये की कुल सहायता प्राप्त की गयी परन्तु योजना मे 12,652 करोड रुपये (अर्थात् कुल का 55 7%) ऋण सेवा के लिए उपलब्ध कराये गये। इस प्रकार 10,047 करोड रुपये (अर्थात कुल का 44.3 प्रतिशत) शुद्ध अन्तर्प्रवाह के रूप मे शेष रह गए। 1990 91 और 1994 95 के पांच वर्षों के दौरान परिस्थिति बिगड गयी है जबकि 52,024 करोड रुपये की कुल प्राप्त सहायता मे से 23 प्रतिशत शुद्ध अन्तर्प्रवाह के रूप में प्रयुक्त की गयी और शेष 77 प्रतिशत का प्रयोग ऋण-सेवा के लिए किया गया। कारण यह है कि साल दर साल सहायता लेते जाने से ऋण का सचयी भार बढ़ता जा रहा है। इस के परिणामस्वरूप 1995-96 मे शुद्ध प्राप्त सहायता नकारात्मक हो गयी और 1996-97 मे समग्र प्राप्त सहायता ऋणभार के भुगतान मे ही इस्तेमाल हो गयी। यह स्थिति देश के लिए शोचनीय है।

3 विदेशी सहायता को खपा सकने की समस्या— विदेशी सहायता सम्बन्धी तीसरी समस्या विकासशील देश द्वारा इसे खपा सकने की क्षमता है। किसी देश के उपयोग क्षमता (Absorptive Capacity) अनेक तत्वों पर निर्भर करती है। सहायता के अनुकूलतम उपयोग के लिए परियोजनाओ का कुशलतापूर्वक क्रियान्वयन आवश्यक है। बचत से देशो मे मूलत पूजी की कमी के कारण औद्योगिक विकास की गति अवरुद्ध नहीं रहती अपितु उत्तम और सुविकसित परियोजनाओ की कमी के कारण बहुत-सी स्थितियो में आर्थिक विकास रुक जाता है यदि सहायता कार्यक्रमो का विशाल जनता से सीधा सबध हो, (अर्थात् कृषि और सामुदायिक विकास कार्यक्रमो का) तो उनकी सफलता बहुत कुछ लोगो को मनोवृत्ति और सहयोग पर निर्भर रहेगी। कार्यान्वयन सबधी मशीनरी की सीमाओ का भी कम महत्व नहीं है।

उपयोग क्षमता (Capacity utilisation) को सीमित करने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण कारण देश द्वारा वर्तमान मे लिए ऋणो के भविष्य में भुगतान कर सकने की क्षमता है। ऋण की अदायगी की आसान शर्तों से अस्थाई रूप से हमारी सहायता का उपयोग करने की क्षमता का विस्तार हो सकता है किन्तु यह समस्या का सही समाधान नहीं है। जब तक देश 'उठान अवस्था' (Take off stage) तक नहीं पहुच पाता, बडे परिमाण में आयात करने की इसकी आवश्यकता निरन्तर बढती जायेगी। इस तथ्य को दृष्टि मे रखने पर कि देश ने विशाल निर्यात-क्षमता निर्माण नहीं की है समस्या और भी गभीर हो जाती है। अत भुगतान दायित्वो (Repayment obligations) का बोझ और भी विषम हो जाता है।

4 विदेशी सहायता के भुगतान का ऋण-भार— छठी योजना के (1980-81 से 1984-85) के दौरान कुल ऋण-सेवा भार 4809 करोड रुपये था जिसमें से 60 प्रतिशत ऋण परशोधन (Amortization) और 40 प्रतिशत ब्याज के रूप मे अदा किया गया। अधिकाधिक विदेशी सहायता लिए जाने का सचयी प्रभाव सातवीं योजना (1985-86 से 1989-90) के दौरान व्यक्त हुआ जब ऋण सेवा भार बढ़कर 12,652 करोड रुपये हो गया। इसके बाद के पाच वर्षों (1990-91 से (1994-95) मे ऋण सेवा भार और तेजी से बढकर 39980 करोड रुपये हो गया, जिसमे से 55 प्रतिशत ऋण परिशोधन और 45 प्रतिशत ब्याज के रूप मे थे। 1995 96 और 1996-97 मे ऋण सेवा भार 24494 करोड रुपये के उच्च स्तर पर पहुच गया।

विदेशी सहायता के भुगतान का भार कम करने के लिए दोहरा प्रयास करना होगा। प्रथम, सहायता लेते समय भारत को उन देशो से सधिया करनी चाहिए जो ब्याज की कम दर

लेनी स्वीकार करें और ऋण-भुगतान को सुविधाजनक बनाने के लिए अपने व्यापार में उदारता की नीति अपनाने के लिए तैयार हों। दूसरे, विदेशी सहायता की मात्रा उत्तरोत्तर काल में कम करनी चाहिए।

तालिका 16 : ऋण सेवा भुगतान

करोड़ रुपये

	ऋण-परिशोधन	ब्याज	कुल ऋण-सेवा भार
छठी योजना	2906	1903	4809
(1980-81 से 1984-85)	(60 4)	(39 4)	(100 0)
सातवीं योजना	7166	5486	12652
(1985-86 से 1989-90)	(56 6)	(43 4)	(100 0)
1990-91 से 1994-95	21873	18107	39980
	(54 7)	(45 3)	(100 0)
1995-96 से 1996-97*	14639	9855	24494
	(59 8)	(40 2)	(100 0)

*अस्थायी

स्रोत रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया **करेन्सी और वित्त की रिपोर्ट** (1996-97) से संकलित और परिकलित।

विदेशी सहायता के प्रयोग के लिए सुझाव

निम्नलिखित सुझावो पर कार्य करने से विदेशी सहायता के उपयोग मे उन्नति हो सकती है :

(*i*) विदेशी सहायता के उपयोग को अनुकूलतम बनाने और इसमें लोचशीलता लाने के लिए यह आवश्यक है कि सहायता को प्रोग्रामो के साथ सम्बद्ध किया जाए, न कि विशेष प्रोजैक्टो के साथ। यदि कोई प्रोग्राम स्वीकार कर लिया जाता है, तो बाद मे इसमे शामिल किए जाने वाले प्रत्येक प्रोजैक्ट के बारे मे समझौता किया जा सकता है। इस प्रकार उपलब्ध विदेशी मुद्रा का उपयोग विभिन्न आर्थिक क्रियाओं मे सभव हो सकता है। यदि बन्धन मुक्त सहायता (Uncommitted aid) बड़े पैमाने पर उपलब्ध हो, तो इससे वर्तमान औद्योगिक क्षमता का अधिक परिपूर्ण प्रयोग किया जा सकता है। न ही तो सहायता कुछ विशेष प्रोजैक्टों से बंधी होनी चाहिए और न ही सहायता प्रदान करने वाले देश से क्रय अनिवार्य होना चाहिए, अत· सहायता अधिकाधिक रूप में अबद्ध सहायता (Untied aid) होनी चाहिए, न की बद्ध सहायता।

(*ii*) सहायता सबधी समझौते लम्बे समय के लिए होने चाहिए। एक-एक वर्ष के समझौते करने से अनिश्चितता की मात्रा बढ़ती है और इस प्रकार पूर्वायोजन (Advanced Planning) संभव नहीं हो पाता। इसमें सन्देह नहीं कि लोकतंत्रीय संसदीय प्रणाली वाले ऋणदाता देशों को इस प्रकार के समझौते करने में कठिनाइयां हो सकती हैं परन्तु इन्हें दूर करने के लिए सहायता प्रदान करने के लिए मुख्य देश कन्सौरटियम बनाकर सहायता का वचन दे सकते हैं।

(*iii*) जहां तक सभव हो सके तकनीकी सहायता के लिए भारत में तकनीकी सस्थान (Technical institutions) कायम किये जाने चाहिएं और विदेशो मे प्रशिक्षण के लिए भेजने के प्रोग्रामों को सीमित करना चाहिए।

विदेशी सहायता की प्राप्ति के मार्ग में आने वाली अड़चनों को दूर करने के लिए प्रशासनिक विधियो में सुधार करने चाहिए। इसके साथ-साथ यह भी अनिवार्य है कि आयात-प्रतिस्थापन उद्योगो (Import substitution industries) को बढ़ावा देने के लिए अधिकतम प्रयास किए जाएं ताकि देश में आत्मनिर्भर एवं स्वयस्फूर्त अर्थव्यवस्था की स्थापना की जा सके।

8. भारत का विदेशी ऋण और ऋण जाल

देश में एक विवाद चल रहा है कि विदेशी ऋण के बारे में भारत की आर्थिक समीक्षा में जो आंकड़े उपलब्ध कराए जाते हैं, वे विश्व बैंक द्वारा उपलब्ध कराए गए आकडों से काफी भिन्न हैं। इसी प्रकार विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियों अर्थात्, आर्थिक सहयोग एवं विकास सगठन (Organisation for Economic Co-operation and Development) अन्तर्राष्ट्रीय परिशोधन बैंक, (Bank of International Settlement) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और अन्तर्राष्ट्रीय वित्त सस्थान (Institute of International Finance) द्वारा उपलब्ध कराए गए आंकडों की तुलना में इनमें काफी अन्तर हैं। ऋण सम्बन्धी आंकड़ों में अन्तर का मुख्य कारण विभिन्न एजेन्सियो द्वारा अपनायी गयी परिभाषाओं में भिन्नता है। भारत सरकार और रिजर्व बैंक द्वारा तैयार किए आंकडो में काफी अन्तर है।

ऋण सम्बन्धी आंकड़ो का युक्तिकरण करने के उद्देश्य से भारतीय रिजर्व बैंक ने भारत के विदेशी ऋण के आकडों से सम्बन्धित विशेष कार्यदल (Task force) और नीतिदल की स्थापना की। इस कार्य को निरपेक्ष रूप मे करने के भारतीय रिजर्व बैंक के प्रयास की सराहना करनी चाहिए क्योंकि इससे विदेशी ऋण की समस्या को पारदर्शी बनाया जा सकता है। भारतीय रिजर्व बैक बुलेटिन के नवम्बर 1992 के परिशिष्ट में नीतिदल एवं कार्यदल की रिपोर्ट प्रकाशित

की गयी। 1992 93 की आर्थिक समीक्षा मे भारतीय रिजर्व बैंक की कार्य पद्धति के आधार पर विदेशी ऋण सम्बन्धी आकडे प्रकाशित किए गए और इस प्रकार इन आकडो को एक वैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत करने की कार्यविधि तय की गयी।

विदेशी ऋण का आकार (Extent of External Debt)

तालिका 17 मे विदेशी ऋण एव ऋण सेवा सम्बन्धी आकडो दिए गए हैं। 1988 89 के पहले के काल के आकडे 1988 89 के बाद के काल के आकडो के साथ तुलनीय नहीं हैं। 1988 89 से पूर्व इन आकडो मे केवल मध्यम और दीर्घकालीन ऋणो को शामिल किया गया और अल्पकालीन ऋण इनसे बाहर रखे गए। आलोचको का मत है कि ऋणों का भुगतान अल्पकाल मे करना पडे तो क्या वे ऋण नहीं रहते। अत तर्क का तकाजा है कि इन ऋणों को शामिल *करना चाहिए, क्योंकि ये अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व (International obligations)* हैं और दीर्घकालीन ऋणो की भांति देश को इन ऋणो पर भी ब्याज देना पडता है। अत कार्यदल ने कुल विदशी ऋण के अनुमान मे अल्पकालीन ऋणो को शामिल करने का निर्णय किया। दूसरे अनिवासी भारतीयो (Non Resident Indians) की जमा को भी इसमें शामिल नहीं किया गया। चूंकि इस जमा का भुगतान भी विदेशी मुद्रा मे करना पडता है इसे भी अन्य किसी भी प्रकार के विदेशी ऋण की तरह ही समझना चाहिए, विशेषकर उस परिस्थिति मे जब इन पर 100 करोड डालर का ब्याज रूपी भार भी है।

आर्थिक समीक्षा (1992 93) ने अल्पकालीन ऋणो ओर अनिवासी भारतीयो की जमाराशियों को शामिल करके विदेशी ऋण की स्थिति को अधिक वास्तविक रूप म प्रस्तुत किया। 1980 81 मे भारत का विदेशी ऋण जिसमे अनिवासी भारतीयो की जमा राशिया और अल्पकालीन ऋण शामिल नहीं थे 19470 करोड रुपये था और यह 1985 86 तक बढकर 45961 करोड रुपये हो गया परन्तु भारतीय रिजर्व बैंक के कार्यदल द्वारा प्रस्तावित सशोधित परिभाषा के आधार पर विदेशी ऋण का पुन वर्गीकरण करने पर 1988 89 मे यह ऋण 84492 करोड रुपये हो गया और यह आकडा बढकर 1990 91 मे 130278 करोड रुपये और फिर बहुत तेजी से बढकर 1992 93 मे 2,80746 करोड रुपये पर पहुच गया। 1994 95 मे विदेशी ऋण 311685 करोड रुपये ओर 1995 96 मे 315435 करोड रुपये हो गया।

विदशी ऋण के सशोधित अनुमान मे अनिवासी भारतीयों और विदेशी मुद्रा (बैंक एव अन्य) जमाराशिया (Foreign

तालिका 17 विदेशी ऋण और ऋण-सेवा-भार

	विदेशी ऋण करोड रुपये	अरब अमरीकी डालर	ऋण सकल देशीय उत्पाद का प्रतिशत	ऋण सेवा, चालू प्राप्तियों के प्रतिशत के रूप में
1980-81	19470	23.50	137	9.3
1985 86	45961	37.35	174	167
1989 90	*130278*	*75 90*	*28.5*	*309*
1990-91	163,301	83 80	30 4	35 3
1991-92	252,910	85 28	41 0	30 2
1992-93	280,746	90 02	39 8	28 6
1993 94	290,416	92.69	35.9	26.9
1994-95	311685	99 01	32 7	27.5
1995 96	315435	92.20	28 7	24.3
1996-97	328,349	91.38	26 0	25 4

स्रोत भारत सरकार, आर्थिक समीक्षा (1997 98) और पहले के अंक।

Currency (Bank and Other) Deposits) जो पहले शामिल नहीं की जाती अब शामिल कर ली गयी हैं। चूंकि ये राशिया काफी बडी हैं ये कुल ऋण का लगभग 12 से 13 प्रतिशत हैं।

दूसरे, पहले अनुमानो मे रक्षा ऋण (Defence debt) शामिल नहीं किया जाता था क्योंकि इसके आकडे सरकार द्वारा उपलब्ध नहीं कराए जाते थे। सशोधित अनुमानों मे रक्षा ऋण सम्बन्धी आकडे शामिल कर लिए गए हैं। इसके अतिरिक्त सोवियत सघ को देय असैनिक ऋण (Civil debt) भी शामिल कर लिया गया है। विदेशी ऋण के इन आकडों को रुपया ऋण (Rupee debt) के अन्तर्गत रखा गया।

रिजर्व बैंक ने अल्पकालीन ऋण के आकडो को भी सशोधित कर दिया है और इनमे अनिवासी भारतीयो के एक वर्ष की परिपक्वता (One year maturity) वाले ऋण और एक वर्ष की परिपक्वता वाली ही विदेशी मुद्रा जमा और छ मास की अवधि वाले व्यापार सम्बन्धी अल्पकालीन ऋण (Short term loans) शामिल किए गए हैं। ऋण के वर्गीकरण में किए गए सशोधनो के परिणामस्वरूप और अनिवासी भारतीयो एव विदेशी मुद्रा जमा को शामिल करने के नतीजे के तौर पर ऋण-अनुमान अधिक व्यापक बन गए हैं। इसके बढते हुए विदेशी ऋण के रूप मे गुह्यार्य भी हैं।

चूंकि विदेशी ऋण के आकडो को संशोधित कर दिया गया है इसलिए ऋण सेवा भार (Debt service burden) के अनुमानों में भी वृद्धि हुई है। परिणामत सकल देशीय उत्पाद (Gross domestic product) के अनुपात के रूप मे विदेशी ऋण 1991 92 मे 41 1% ओर 1992 93 मे 39

तालिका 18 भारत के विदेशी ऋण का वर्गीकरण

करोड रुपये

	1990 91	1991 92	1993 94	1995 96	1996 97
1 विदेशी सहायता	67764	115865	136779	162012	166398
	(41 6)	(45 8)	(47 1)	(51 4)	(50 7)
(क) बहुपक्षीय	40386	68262	82199	98020	104324
	(24 8)	(27 0)	(28 3)	(31 1)	(31 8)
(ख) द्विपक्षीय	27378	47603	54580	63992	62074
	(16 8)	(18 8)	(18 8)	(20 3)	(18 9)
2 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष	5132	8934	15812	8152	4714
	(3 1)	(3 5)	(5 4)	(2 6)	(1 4)
3 निर्यात उधार	8374	12418	16307	18940	19163
	(5 1)	*(4 9)*	*(5 6)*	*(6 0)*	*(5 8)*
4 वाणिज्यिक उधार	19727	35711	38782	43742	48542
	(12 1)	(14 1)	(13 3)	(13 9)	(14 8)
5 अनिवासी भारतीय एव	20030	27384	39729	37802	39969
विदेशी मुद्रा जमा	(12 3)	(10 8)	(13 7)	(12 0)	(12 2)
6 रुपया ऋण*	25199	31956	31634	28150	25410
	(15 5)	(12 6)	(10 9)	(8 9)	(7 7)
7 कुल दीर्घकालीन ऋण	146226	2 32,268	2,79 043	298798	304196
	(89 7)	(91 8)	(96 1)	(94 7)	(92 6)
8 अल्पकालीन ऋण	16775	20642	11375	16637	24153
	(10 3)	(8 2)	(3 9)	(5 3)	(7 4)
9 कुल योग (7 + 8)	163001	2 52,910	290418	3 15435	3 28,349
	(100 0)	(100 0)	(100 0)	(100 0)	(100 0)
10 सरकारी उधार	61493	104158	121004	1 41,506	143479
	(37 7)	(41 2)	(41 7)	*(44 9)*	*(43 6)*
11 रियायती ऋण	74627	114245	128724	143741	140459
	(45 8)	(44 2)	(44 3)	(45 6)	(42 8)

* रूस के प्रति ऋण जो रुपयों के रूप में है और निर्यात द्वारा अदा करना है।

स्रोत रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया **करेन्सी और वित्त की रिपोर्ट** (1996 97) से सकलित एव परिकलित।

8% हो गया। इसी प्रकार चालू प्राप्तियो (Current receipts) (निर्यात जमा अदृश्य मदों) के प्रतिशत के रूप मे ऋण सेवा भार 1989 90 मे 30 9 प्रतिशत और 1991 92 मे 30 2 प्रतिशत आका गया।

तालिका 18 मे विदेशी ऋण का वर्गीकरण किया गया है। इससे पता चलता है कि 1996 97 मे *विदेशी सहायता* कुल ऋण के लगभग 51 प्रतिशत के समान थी—166398 करोड रुपये। इसमे बहुपक्षीय सहायता (Multi lateral aid) 32 प्रतिशत और द्विपक्षीय सहायता (Bilateral aid) 19 प्रतिशत थी। अन्तराष्टीय मुद्रा कोष द्वारा ऋण केवल 1 4 प्रतिशत था। चाहे कुल रूप मे वाणिज्यिक उधार (Commercial borrowing) जो 1990 91 म 19727 करोड रुपये था बढकर 1996 97 मे 48572 करोड रुपये हो गया किन्तु सापेक्ष रूप मे यह 12 से 15 प्रतिशत की सीमा मे रहा। निर्यात उधार (Export credit) जो 1990 91 मे 5 1 प्रतिशत था 1996 97 मे भी 5 8 प्रतिशत तक ही मामूली रूप मे बढा। *अनिवासी भारतीयो (Non resident Indians)* एव विदेशी मुद्रा जमा जो 1990 91 म 20030 करोड थी बढकर 1996 97 मे 39969 करोड रुपये हो गयी परन्तु सापेक्ष रूप मे यह 12 प्रतिशत के इद गिर्द ही रही। यह बात ध्यान देने योग्य हे कि वाणिज्यिक उधार पर अपेक्षाकृत अधिक ब्याज देना पडता ह और इसलिए इन के कारण ऋण सेवाभार (Debt service burden) अधिक हो जाता

है। यह बात अनिवासी भारतीयो की जमा के बारे मे सत्य है कि जो एक प्रकार की क्षुब्ध मुद्रा (Hot money) है और अनिवासी भारत मे वर्तमान ब्याज को ऊची दर का लाभ उठाना चाहते हैं क्योंकि विकसित देशो मे ब्याज की दर नीची है। रुपया-ऋण (Rupee debt) जो 1990-91 मे 25 199 करोड रुपये था, 1996-97 मे 25 410 करोड रुपये हो गया। इस प्रकार इस अवधि के दौरान यह 15.5 प्रतिशत से कम होकर 7 7 प्रतिशत हो गया।

इन सभी अगो को एक साथ लेकर यह कहा जा सकता है कि कुल दीर्घकालीन ऋण (Long term debt) में बढने की प्रवृत्ति 1990-91 से 1993 94 तक व्यक्त हुई और यह 89 7 प्रतिशत से बढ कर 96 1 प्रतिशत हो गया परन्तु इसके पश्चात् इसका सापेक्ष अनुपात गिरकर 1996 97 मे 92 6 प्रतिशत हो गया। इसका अर्थ यह हुआ कि अल्पकालीन ऋण (Short-term debt) मे गिरने की प्रवृत्ति पायी गयी और वह 1990 91 में 10.3 प्रतिशत से गिरकर 1996 97 में 7 4 प्रतिशत हो गया।

विदेशी ऋण का मुख्य भाग सरकारी उधार के रूप में है जो 1990-91 मे 41 4 प्रतिशत था और वह बढकर 1996-97 में 50 7 प्रतिशत हो गया। परन्तु इसका सराहनीय लक्षण यह है कि इसमे रियायती ऋण (Concessional debt) 1990 91 मे 45 8 प्रतिशत था, और इसका अनुपात थोडा कम होकर 42 8 प्रतिशत हो गया। वस्तु स्थिति यह है कि विदेशी ऋण का इतना बडा भाग कम ब्याज दर पर उपलब्ध होने के परिणामस्वरूप इसका ऋण सेवाभार को कम करने के रूप में प्रभार पडता है।

तालिका 17 मे भारत के विदेशी ऋण सम्बन्धी आकडे 1990 91 से 1996-97 के लिए दिए गए हैं। इन आकडो से पता चलता है कि भारत का विदेशी ऋण, डालरो के रूप में 1990 91 में 83 8 यू एस अरब डालर से बढ़कर 1996-97 मे 91.38 अरब डालर हो गया अर्थात इसमे 1.5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई। परन्तु डालरो के रूप में आकडे हमारे ऋण-भार को छिपाते हैं क्योंकि यू एस डालर और रुपये के बीच विनिमय दर जो 1990-91 मे 17 94 रुपये थी गिरकर 1996-97 मे 35.50 रुपये हो गयी। परिणामत रुपये के रूप मे भारत का विदेशी ऋण जो 1990-91 में 1 63 000 करोड रुपये था बढकर 1996 97 मे 3,28,349 करोड रुपये हो गया अर्थात् इसमे 12 1 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि हुई। भारत के विदेशी ऋण की डालर और रुपये के रूप मे वृद्धि दर मे भारी अन्तर होने से ऋण के वास्तविक भार का पता चलता है। जबकि डालर रूप मे भारत के विदेशी ऋण मे 1990 91 और 1996-97 की अवधि मे 9 प्रतिशत की वृद्धि हुई यह वृद्धि रुपये के रूप मे ऋण मे 101 4 प्रतिशत थी।

सकल देशीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप मे भारत का विदेशी ऋण जो 1989-90 मे 28.5 प्रतिशत था, तेजी से बढकर 1993-94 मे 41 0 प्रतिशत हो गया और फिर यह गिरकर 1995-96 मे 28 7 प्रतिशत हो गया है। यह एक स्वस्थ प्रवृत्ति है परन्तु अभी भी यह कई देशो के ऋण सकल देशीय उत्पाद (Debt-GDP Ratio) से ऊचा है। उदाहरणार्थ चीन का अनुपात 21 4 प्रतिशत, दक्षिण कोरिया का 14 4 प्रतिशत और ब्राजील का 21 4 प्रतिशत था। अत इसे और नीचा करने की जरूरत है।

चालू प्राप्तियो (Current receipts) जिनमे निर्यात एव अदृश्य मदे शामिल हैं के रूप मे ऋण-सेवा अनुपात के परिकलन से पता चलता है कि 1990 91 मे भारतीय अर्थव्यवस्था का ऋण सेवा अनुपात 30 4 प्रतिशत था और यह कम होकर 1995-96 मे 24 3 प्रतिशत हो गया परन्तु 1996 97 मे 25 4 प्रतिशत था। अत आवश्यकता इस बात की है कि इस अनुपात को और घटाया जाए ताकि हम ऋण जाल (Debt trap) के खतरे के निशान से नीचे ही रहे।

इसमे सन्देह नहीं कि ऋणभार को कम करने मे अर्थव्यवस्था पिछले कुछ वर्षों मे सफल हुई है। यह भी एक स्वस्थ प्रवृत्ति है कि भारत के विदेशी ऋण की वृद्धि दर कम हुई है परन्तु यदि हम विदेशी विनिमय दर (Exchange Rate) को स्थिर नहीं कर पाए, जैसा कि 1997-98 मे हुआ है और डालर अब लगभग 40 रुपये के बराबर हो गया है तो इससे हमारा ऋण-सेवा भार बढ जाएगा। अत जरूरत इस बात की है कि निर्यात बढ़ाए जाए परन्तु 1997 98 मे निर्यात वृद्धि केवल 4 प्रतिशत रही जो कि चिन्ता का विषय है। जब कि चीन ने चालू खाते पर अतिरेक की स्थिति कायम कर ली है भारत मे आर्थिक सुधारों के छ साल बाद भी घाटे की स्थिति बनी हुई है चाहे यह कहना ठीक होगा कि चालू खाते का घाटा (Current Account Deficit) कम हुआ है। अत विदेशी ऋण, ऋण सेवाभार और विनिमय दर में परिवर्तन पर कडी निगरानी की आवश्यकता है।

❑❑❑

20

आत्मनिर्भरता और भारत का आर्थिक विकास

(SELF-RELIANCE AND ECONOMIC DEVELOPMENT IN INDIA)

1 आत्मनिर्भरता की धारणा

चाहे आत्मनिर्भरता (Self reliance) भारत में आर्थिक विकास का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण उद्देश्य बन गया है किन्तु *इस धारणा को उचित और स्पष्ट रूप मे समझा नहीं* गया। प्राय इसको अन्त पर्याप्तता (Self sufficiency) से सम्भ्रमित किया जाता है। हनन एजकिल (Hanan Ezekiel) इसकी ओर सकेत करते हुए लिखता है योजना आयोग के प्रलेखो मे कई ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें एक वाक्य मे आत्मनिर्भरता को लक्ष्य घोषित करने के पश्चात् अगले और कुछ आगामी वाक्यो मे यह स्पष्ट किया जाता है कि किस *प्रकार अन्त पर्याप्तता प्राप्त की जा सकती है।*

आत्मनिर्भरता (Self reliance) और अन्त पर्याप्तता (Self sufficiency) मे भेद

अन्त पर्याप्तता का अर्थ यह है कि देश वे सभी वस्तुए एव सेवाएं अपने देश के अन्दर ही उत्पन्न करता है जो इसे चाहिएं और इनके बारे मे दूसरो पर निर्भर नहीं करता। अन्त पर्याप्तता मे आयात की कोई गुजाइश नहीं होती। इसके विरुद्ध आत्मनिर्भरता का अर्थ यह है कि देश अपनी आवश्यकताओ को खरीदने के लिए पर्याप्त मात्रा में अतिरेक उत्पन्न करता है और परिणामत उसे अन्य देशों से निधि (Fund) प्राप्त करने के लिए निर्भर नहीं करना पडता। जब अन्त पर्याप्तता मे आयात की अनुमति तो है बशर्ते कि देश के पास उनके भुगतान के लिए क्षमता हो।

कोई भी देश पूर्णतया अन्त पर्याप्त या स्वावलम्बी नही हो सकता और सभी प्रकार के आयात का परित्याग नहीं कर सकता। ऐसा सभव नहीं क्योकि प्रकृति ने प्राकृतिक संसाधनों की बाट के समय वर्तमान राजनीतिक वर्गीकरण जिन्हें देश कहा जाता है का ध्यान नहीं रखा। परन्तु कोई देश जो कुछ भी यह आयात करता है का भुगतान करके आत्म निर्भर बन सकता है। अधिकतर विकसित देश ऐसी स्थिति मे है कि वे अपने उत्पादन का निर्यात करके अपने समग्र आयात का भुगतान करते हैं। और इस प्रकार वे आत्मनिर्भर है। किन्तु विकासशील देश सामान्यत आत्मनिर्भर नहीं है क्योकि उनके निर्यात उनके आयात का भुगतान करने के लिए नाकाफी हैं। आत्मनिर्भरता की धारणा मूलत विदेशी सहायता से स्वतन्त्रता प्राप्त करने पर बल देती है। इस दृष्टिकोण से भारत के संदर्भ मे आत्मनिर्भरता की धारणा मे निम्नलिखित को शामिल किया जाना चाहिए—

(*i*) भुगतान शेष मे दीर्घकालीन संतुलन (*ii*) खाद्य एव अनिवार्य कच्चे मालो मे आत्मनिर्भरता (*iii*) प्रतिरक्षा मे आत्मनिर्भरता (*iv*) उच्च स्तरीय तकनीकी जनशक्ति (Technical manpower) मे आत्मनिर्भरता तथा (*v*) पूजी वस्तु क्षेत्र मे आत्मनिर्भरता।

किन्तु आत्मनिर्भरता की धारणा को आर्थिक विकास के पूरे सन्दर्भ मे सोचना चाहिए। भारत मे आर्थिक विकास का मूल उद्देश्य निर्धन जनता को ऊंचा जीवन स्तर उपलब्ध कराना है। जहा एक आर हमारे लिए आवश्यक है कि हम कम से कम महत्त्वपूर्ण और सामरिक दृष्टि से अनिवार्य क्षेत्रो मे आत्मनिर्भर हो जाए, वहां दूसरी ओर जनसाधारण का जीवन स्तर उन्नत करने के लिए विकास की ऊंची दर प्राप्त करनी आवश्यक है। इसी बात की व्याख्या करते हुए चौथी पचवर्षीय योजना की रूपरेखा (1966) मे उल्लेख किया गया— आत्मनिर्भरता का अर्थ न केवल विदेशी सहायता पर निर्भरता से स्वतन्त्रता प्राप्त करना है अपितु इसमे जनसामान्य के लिए एव स्वीकार्य न्यूनतम जीवन स्तर (Minimum standard of living) और इसमें लगातार वृद्धि की व्यवस्था करना भी समाविष्ट है। आत्मनिर्भरता की यह परिभाषा निम्नलिखित बातो पर बल देती है—

1 आत्मनिर्भरता का अर्थ सभी प्रकार के आयात की परिसमाप्ति नहीं अपितु इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि

1 H a Ezekiel Self reliance and Self sufficiency *Econ c T s* September 17 1982

भुगतान शेष मे घाटे का लगातार विद्यमान होना आत्म निर्भरता की धारणा में मेल नहीं खाता। परिणामत देश को विदेशी ऋणो अथवा अनुदानो से अल्पकाल मे ही मुक्ति प्राप्त करनी होगी ताकि अर्थव्यवस्था एक ऐसी अवस्था में प्रवेश कर सके जिसके आधीन आयात के भुगतान के लिए निर्यात अतिरेक (Export surplus) कायम करना होगा। अत इस धारणा मे तुलनात्मक लागत (Comparative cost) की दृष्टि से आयात की आवश्यकता को स्वीकार किया गया परन्तु इस बात पर विशेष बल दिया गया कि महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो में अपनी समस्त आवश्यकता को आन्तरिक उत्पादन में पूरित किया जाए।

2 **आत्मनिर्भरता को जब एक स्वयस्फूर्त अर्थव्यवस्था की घोषणा के साथ कल्पित किया जाए जो 6–7 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि-दर से विकसित हो,** तो इसका अर्थ यह है कि विनियोग दर को 24 26 प्रतिशत तक बढाना होगा। जब इच्छित विनियोग स्तर के लिए आन्तरिक बचत पर्याप्त नहीं होती, तो विदेशी बचत प्राप्त कर विनियोग स्तर देशी बचत से ऊचा रखा जाता है। अत आन्तरिक बचत का स्तर लगातार बढना चाहिए ताकि विकास की ऊची दर के लिए एक ओर तो पर्याप्त बचत हो सके और दूसरी ओर विदेशी बचत पर निर्भरता कम की जा सके।

3 **आत्मनिर्भरता का अर्थ भारी आयात वाले क्षेत्रों मे क्षमता-निर्माण** (Capacity creation) **करना है** ताकि विदेशी ताकतें इन वस्तुओं को पूरा न करने की धमकी देकर हमे घुटने टेकने पर मजबूर न कर दे। इसका तात्पर्य यह है कि देश को विदेशी सहायता से मुक्ति प्राप्त करने के लिए आयात प्रतिस्थापन (Import substitution) के उपायो को महत्त्व देना पडेगा।

4 **आत्मनिर्भरता का अर्थ उच्च स्तर की तकनीकी जनशक्ति का निर्माण करना है।** बहुत से अल्पविकसित देशों का अनुभव यह बताता है कि विदेशी शक्तिया कई बार अपने विशेषज्ञो को वापस बुलाने का एकतरफा निर्णय कर लेती हैं ताकि इस बडी लाठी (Big Stick) के प्रयोग से दाता देश (Donor country) की नीतियो को स्वीकार करने के लिए निर्भर देश को मजबूर किया जा सके। यदि देश मे भौतिक साधन उपलब्ध हो और राष्ट्र बचत के लिए आवश्यक परित्याग करने के लिए तैयार हो, तब भी आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए तकनीकी श्रमिको के प्रशिक्षित वर्गों की अनुपस्थिति एक गभीर रुकावट बन सकी है। आत्मनिर्भरता की धारणा का सार इस बात मे है कि तकनीकी एव प्रबन्धकीय दोनों दृष्टियो से अर्थव्यवस्था की बागडोर देशवासियों के हाथ मे होनी चाहिए।

2. आत्मनिर्भरता के प्रश्न पर दो विचारधाराए

आत्मनिर्भरता के प्रश्न पर देश में दो विचारधाराए हैं। विदेशी सहायता को जारी रखने का समर्थन करने वाले सम्प्रदाय को यह सन्देह है कि तीव्र विकास दर और आत्मनिर्भरता मे एक द्वन्द्व है। अत आत्मनिर्भरता का अर्थ अनिवार्यत विकास की नाची दर है। यह तर्क इस प्रकार से है राष्ट्रीय आय की वृद्धि की ऊची दर प्राप्त करने के लिए भारत जैसी अर्थव्यवस्था को आयात की अधिक मात्रा की अवश्यकता पडती है। आयात की इस अधिक मात्रा के भुगतान के लिए निर्यात के स्तर को ऊचा उठाना अधिक सभव नहीं। इस कारण विदेशी मुद्रा की कमी महसूस होती है और परिणामत विदेशी सहायता को जारी रखना अनिवार्य हो जाता है। सन्देहवादी यह विश्वास भी रखते हैं कि आत्मनिर्भरता का सारा ढोंग युद्ध के समय की एक रीत है। चूंकि विदेशी सहायता हमारी सस्कृति का एक अग बन गयी है इसे एकदम काट देना सभव नहीं।

आत्मनिर्भरता के समर्थक यह कहते है कि विदेशी सहायता देश के आतरिक प्रयास की क्षमता पर दुष्प्रभाव डालती है। प्रोफेसर डी टी लकडावाला के शब्दो मे विदेशी सहायता विकास विरोधी एव बचत विरोधी है परन्तु यह उपभोग को उत्तेजित करती है। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओं से प्राप्त सहायता की अपेक्षा सभी प्रकार की सहायता प्रतिबद्ध सहायता (Tied Aid) है। इसी कारण प्रो वी के आर वी राव के अनुसार विदेशी सहायता की लागत इन्हीं वस्तुओं की अन्तर्राष्ट्रीय कीमतो से 10 20 प्रतिशत अधिक है। यदि इसमे ब्याज की मात्रा भी शामिल कर ली जाए, तो विदेशी सहायता का भार और भी अधिक बढ जाएगा। इसके अतिरिक्त, आयोजन के दौरान कार्यान्वयन की कमियो और अन्य प्राकृतिक एव सस्थानात्मक रुकावटो (Institutional bottlenecks) के बावजूद देश मे मशीन वस्तु उद्योगो की स्थापना द्वारा हमारा देश अपनी प्रतिरक्षा आवश्यकताओ के एक महत्त्वपूर्ण भाग को आन्तरिक उत्पाद से पूरा करने लगा है। कृषि मे हमने खाद्यान्नो मे न केवल अन्त पर्याप्तता प्राप्त कर ली है बल्कि नीति के रूप मे हम कृषि उत्पाद के निर्यात की योजना बना रहे हैं। अत आत्मनिर्भरता के समर्थका का मत है कि देश ने पहले ही स्वावलम्बिता का रास्ता चुन लिया है और सरकार को आत्मनिर्भरता के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भरसक प्रयास करना चाहिए।

1980 90 के दशक में आत्मनिर्भरता की धारणा

1980 90 के दशक मे आत्मनिर्भरता के अर्थ और महत्व मे परिवर्तन हुआ है। विश्व विकास रणनीति के रूप मे यह तर्क दिया जाता है कि भारत जैसे निर्धन देश के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह जानबूझकर आत्मनिर्भरता की

योजना बनाए और इसके विरुद्ध वह समृद्ध एव विकसित देशों से आय का हस्तातरण (Transfer of incomes) स्वीकार कर सकता है। इसके अतिरिक्त चूकि विकासशील देशो मे विनियोज्य ससाधनों (Investible resources) की भारी कमी महसूस की जा रही है वे अपने ससाधनो की विदेशी सहायता पूरकता के लिए विदेशी सहायता का प्रयोग कर सकते हे।

जबकि विकसित देशो मे विकासशील देशो की ओर विदेशी सहायता विशेषकर विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय विकास सस्था (International Development Association) से रियायती सहायता का प्रवाह चलता रहा है फिर भी सहायता देने वाले दाता देशो और सहायता प्राप्त करने वाले देशो मे सघर्ष भी गभीर रूप धारण कर गया है। सहायता प्राप्त करने वाले देश विदेशी सहायता पर अपनी अत्यधिक निर्भरता के कारण नाखुश है क्योंकि इसके कारण उनकी निर्णय करने की स्वायत्तता पर दुष्प्रभाव पडता है। इसके विरुद्ध, चाहे सहायता से जनित सम्बन्ध से दाता देशो को उच्च स्थापन प्राप्त हो जाता है फिर भी अधिकतर विकसित देशो मे रियायती सहायता (Concessional aid) दिए जाने के प्रति विरोध बढता जा रहा है। दाता देश आई डी ए. द्वारा विकासशील देशो को सहायता देने के भी विरुद्ध हैं। इसके विरुद्ध वे निर्धन देशो को द्विपक्षीय सहायता (Bilateral aid) देने के पक्ष मे हैं ताकि उनके राष्ट्रीय वाणिज्यिक और राजनीतिक हित प्रोन्नत हो सके।

रियायती सहायता के प्रवाह के दो सभव विकल्प हैं। पहला रियायती सहायता का वाणिज्यिक सहायता से प्रतिस्थापन करना है। बहुत से दक्षिण अमेरिका के देशो विशेषकर ब्राजील अर्जेनटायना मैक्सिको आदि ने अपने विकास की गति बढाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय पूजी बाजार का प्रयोग किया परन्तु रियायती सहायता की बजाय वाणिज्यिक सहायता का इस्तेमाल करने की भी सीमाए हैं। (*i*) बहुत सी विकास परियोजनाओ को लम्बी परिपाक अवधि (Gestation period) के विरुद्ध वाणिज्यिक ऋण अल्पकालीन परिपक्वता (Short maturities) वाले है। (*ii*) अन्तर्राष्ट्रीय पूजी बाजार मे ब्याज की दरे बहुत ऊची हैं। (*iii*) वाणिज्यिक ऋणो से जुटाए वित्त द्वारा चलाए गए प्रोजेक्टो की लाभदायकता सापेक्ष रूप मे नीची है और (*iv*) विदेशी ऋण पर विश्व की सबसे प्रबल करेन्सी यू एस डालर का प्रभुत्व है। दक्षिण अमेरिका के देशो का अनुभव यह बताता है कि वे इस कारण ऋण जाल में फस गए और फिर उन्हें बडी कठिनाई से इस ऋण जाल से बाहर निकालने का प्रयास किया गया। इसलिए भारत जैसे विकासशील देश रियायती सहायता की अपेक्षा वाणिज्यिक सहायता का प्रयोग बहुत ही संकुचित सीमाओ के बीच ही कर सकते हैं।

दूसरा विकल्प प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग (Direct foreign investment) है। चाहे इस प्रकार के विनियोग की काफी गुजाइश है परन्तु व्यवहार में रियायती सहायता की रिक्ति को भरने का यह उचित उपाय नहीं। इसका मुख्य कारण विनिमय दरों और ब्याज दरो में भारी उच्चावचन है जो इस विनियोग को प्रभावित करते है। अत योजना आयोग के भूतपूर्व उपाध्यक्ष डॉ मनमोहन सिह का यह मत है— विकासशील देश अपने विकास की गति बरकरार रखने के लिए रियायती सहायता के प्रवाहो मे अधिकाधिक वृद्धि पर अब निर्भर नहीं रह सकते। आज उनके समक्ष आत्मनिर्भरता पर पहले की अपेक्षा और अधिक गभीर दृष्टिकोण अपनाने के अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता नहीं आत्मनिर्भरता का अर्थ किसी देश द्वारा आर्थिक वृद्धि की उचित दर एव ढांचे को कायम रखने की क्षमता से है जो रियायती शर्तों पर विदेशी संसाधनो के सभरण पर अत्यधिक निर्भरता बिना प्राप्त की गई हो।

3 आत्मनिर्भरता एव पचवर्षीय योजनाए

स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात्, पंचवर्षीय योजनाओ का मूल दर्शन यह रहा है कि आत्मनिर्भरता प्राप्त की जाए। उदाहरणार्थ प्रथम पचवर्षीय योजना ने कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी ताकि खाद्य उत्पादन में स्वावलम्बिता प्राप्त हो सके। इसमे कुछ हद तक सफलता भी मिली और 1954 मे खाद्यान्न का आयात केवल 6 लाख टन रह गया जबकि योजना के शुरू मे यह 30 लाख टन था। इसके अतिरिक्त आयोजन के प्रारंभिक काल में यह निर्णय किया गया कि आर्थिक अध सरचना (Infrastructure) का निर्माण किया जाए। इस उद्देश्य से जल विद्युत योजनाओ पर बल दिया गया ताकि आयोजन की अगली अवस्था मे तीव्र औद्योगीकरण के प्रोग्राम बढाए जा सके।

दूसरी योजना में तीव्र औद्योगीकरण विशेषकर पूजी वस्तु क्षेत्र (Capital goods sector) पर बल दिया गया। इसी उद्देश्य से सरकारी क्षेत्र को इन उद्योगों मे 1956 की औद्योगिक नीति के प्रस्ताव के आधीन विकसित करने का दृढ सकल्प किया गया ताकि लौह तथा इस्पात प्रतिरक्षा उद्योग खानें तथा खनिज विकास वायुयान वायु परिवहन जहाज निर्माण और बिजली के जनन एवं वितरण से उद्योगों को विकसित किया जा सके। अत द्वितीय योजना का लक्ष्य यह था कि भारतीय अर्थव्यवस्था जो ब्रिटिश काल में पूंजी वस्तु क्षेत्र की अनुपस्थिति में औपनिवेशिक प्रणाली का उपांग रही है थोडे ही समय मे आत्मनिर्भर बनकर एक प्रौढ अर्थव्यवस्था का रूप धारण करे।

तीसरी योजना और आत्मनिर्भरता

आत्मनिर्भरता के लक्ष्य की स्पष्ट घोषणा पहली बार तृतीय पचवर्षीय योजना मे इन शब्दो मे की गई—"तीसरी योजना काल गहन विकास के दशक या कुछ अधिक समय की प्रथम अवस्था है जिसका उद्देश्य आत्मनिभर और स्वयस्फूर्त अर्थव्यवस्था की स्थापना है। आत्मपोषित अर्थव्यवस्था के विकास की रणनीति का वणन करते हुए तीसरी योजना मे उल्लेख किया गया— 'दूसरी योजना की भाँति तीसरी योजना मे मूल उद्योगो जैसे इस्पात, इधन और सचालन शक्ति, मशीन निमाण और रासायनिक उद्योग तीव्र आर्थिक विकास के लिए मूलत अनिवाय है। इन उद्योगों की प्रगति की रफ्तार द्वारा मुख्यत अर्थव्यवस्था की आत्मनिर्भरता ओर स्फूर्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। आत्मनिर्भरता की विकास रणनीत म केवल सक्रान्तिकाल के दौरान विदेशी सहायता को स्वीकार किया गया। उत्तरोत्तर योजनाओ मे विदेशी सहायता पर लगातार कम निभरता का लक्ष्य रखा गया ताकि अन्ततोगत्वा इस निर्भरता को पूर्णतया समाप्त किया जा सके।

चौथी योजना (1966) और आत्मनिर्भरता

चौथी योजना के प्रलेखा मे आत्मनिर्भरता की धारणा निखरकर उभरी। 1966 मे श्री अशोक मेहता के निर्देशन मे तैयार की गइ चौथी योजना की रूपरेखा मे आत्मनिर्भरता का अर्थ दो तत्वो पर आधारित किया गया--(क) विदेशी सहायता से स्वतन्त्रता प्राप्त करना ओर (ख) एक न्यूनतम जीवन स्तर उपलब्ध कराना ओर इसके साथ जीवन स्तर में लगातार वृद्धि की प्रतिज्ञा करना। इसके लिए तीन दिशाओ में प्रयास अनिवार्य समझा गया प्रथम जितनी जल्दी हो सके भुगतान शेष के घाटे को समाप्त करना और देश के अविरत आर्थिक विकास के लिए विदेशी सहायता पर निर्भरता का अन्त करना द्वितीय देश के पूजी निमाण एव पर्याप्त उपभोग के लिए देश की क्षमता का तेजी से विकास करना और तृतीय इन उद्देश्यो को कीमतो की स्थिरता तथा बिना स्फीतिकारी वित्त (Inflationary finance) जुटाए प्राप्त करना। अत चौथी योजना का रूपरेखा मे आत्मनिर्भरता के निम्नलिखित प्रोग्राम का सकेत किया गया—

(i) कृषि उत्पादन को इस सीमा तक बढाना कि देश खाद्य-आयात पूर्णतया बन्द कर सके और कृषि पर आधारित वस्तुओ का नियात बढा सके। अन इसमे देश की जनता के जीवन स्तर म उन्नति होनी चाहिए और देश के बढते हुए उद्योगो के लिए आवश्यक कच्चा माल उपलब्ध कराया जाना चाहिए

(ii) देश मे मशीन निर्माण उद्योगों के लिए पूजी सचयन (Capital accumulation) इस हद तक करना कि देश मे तैयार की जाने वाली मशीनो द्वारा ही हमारे उद्योगो की क्षमता निमाण की सभी आवश्यकताए प्राप्त हो सके

(iii) देश मे परामर्श एव डिजाइन सेवाओ का विस्तार एव विशाखन

(iv) निर्यात प्रोत्साहन और आयात प्रतिस्थापन के लिए उचित नीतिया तैयार करना ओर सम्बन्धित उपायो को लागू करना

(v) आत्मनिर्भरता के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा को विकास एव जनशक्ति की आवश्यकताओ से प्रत्यक्षत सम्बन्धित किया जाए ताकि देश मे एक विस्तृत और विविध ओद्योगिक ढाचे का निर्माण हो सके

(vi) आत्मनिर्भरता का अर्थ साधनो को इस ढग से गतिमान करना है कि न्यून वित्त (Deficit financing) को न्यूनतम स्तर पर रखा जा सके ओर कर प्रणाली की कमजोरियो को ऐसे दूर किया जाए कि कर वचन (Tax evasion) की मात्रा बहुत हद तक कम हो सके। इसके अतिरिक्त, कर प्रणाली शहरी भूमि के मूल्यो मे वृद्धि, एकाधिकारी एव आय के रान्तिया तत्वो (Rentier elements) सट्टेबाजी तथा अन्य कत्य भिन्न आय का एक भाग कर के रूप में समेट ले

(vii) मूल वैज्ञानिक एव तकनीकी अनुसधान का समन्वय एव सवृद्धि ताकि कृषि एव ओद्योगिक विकास को बढावा मिले

(viii) एक प्रगतिवादी आय नीति निर्धारित करना जिसमे अधिकतम एव न्यूनतम वैयक्तिक आय की सीमाए निश्चित की जाए ताकि अभिदृश्य उपभोग (Conspicuous consumption) को कम करके प्राथमिकता प्राप्त उत्पादन मे विनियोग के लिए साधन जुटाए जा सके और

(ix) परिवार नियोजन का विशाल कार्यक्रम तैयार करना। इसके बिना हमारे आत्मनिर्भरता के प्रयासो को काफी धक्का लगेगा।

पाचवीं योजना मे आत्मनिर्भरता

पाचवीं योजना मे उल्लेख किया है—"निर्धनता का समाप्ति और आत्मनिर्भरता की प्राप्ति दो ऐसे मुख्य उद्देश्य हैं जिन्हे पाचवी योजना के दौरान देश को पूरा करना है। इसके आवश्यक उपलक्ष्यो के रूप मे विकास की ऊची दर, आय का अच्छा वितरण और घरेलू बचत की दर म बहुत महत्त्वपूर्ण वृद्धि प्राप्त करना आवश्यक है।" इसी कारण पाचवीं योजना मे अर्थव्यवस्था के समग्र विकास की 5.5 प्रतिशत वृद्धि दर, न्यूनतम आवश्यकताओ का राष्ट्रीय प्रोग्राम निर्यात प्रोत्साहन एव आयात प्रतिस्थापन (Import substitution) का भारी

अभियान और अनावश्यक उपभोग पर सख्त प्रतिबन्ध के रूप मे कार्यक्रम तय किया गया।

छठी योजना (1980 85) मे आत्मनिर्भरता

छठी योजना (1980 85) मे निर्धनता की परिसमाप्ति और आत्मनिर्भरता की प्राप्ति के दो मुख्य उद्देश्य माने गए। छठी योजना मे बहुत से क्षेत्रो मे आयात प्रतिस्थापन (Import substitution) की कल्पना की गई इनमे उल्लेखनीय हैं—इस्पात सीमेट, उर्वरक रूक्ष तेल और सभी प्रकार के पूजी उपकरण जिनमे विज्ञान गहन क्षेत्र जैसे इलैक्टिोनिक्स भी शामिल है। योजना अन्धाधुन्ध आयात प्रतिस्थापन के विरुद्ध थी क्योंकि ऐसी नीति प्रति उत्पादक (Counterproductive) ही सिद्ध हो सकती थी। योजना मे कुशल आयात प्रतिस्थापन पर बल दिया गया ताकि भारत का भुगतान शेष और राष्टीय आय उन्नत हो सके। इस बात का आश्वासन देने के लिए कि निर्यात लगातार बने रहे और देश की प्रतिस्पर्द्धा क्षमता उन्नत हो सके यह परिवर्तन लाना जरूरी है कि उत्पादन पूर्णतया देशीय बाजार के लिए ही न होकर देशीय एव अन्तर्राष्टीय दोनो बाजारो के लिए हो ताकि देश के लिए विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सके और देश की अर्थव्यवस्था को लागत मे कटौती और गुणवत्ता (Quality) मे उन्नति द्वारा लाभ हो सके।

सातवीं और आठवीं योजना मे आत्मनिर्भरता

सातवीं योजना मे साफ तौर पर उल्लेख किया गया है कि आयोजन के मार्गदर्शी सिद्धान्त होंगे विकास आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भरता और सामाजिक न्याय। सातवीं योजना के शब्दो मे आत्मनिर्भरता की धारणा को केवल विदेशी सहायता पर कम निर्भरता के रूप मे परिकल्पित नहीं किया गया बल्कि इसके साथ साथ देशीय क्षमताओं के निर्माण और महत्त्वपूर्ण वस्तुओ मे आयात पर कम निर्भरता के रूप में भी विचारा गया है। गत तीन योजनाओ विशेषकर छठी योजना मे आत्मनिर्भरता के इन्ही उद्देश्यो की पालना की गई। सातवीं योजना इन्हीं उद्देश्यो मे और प्रगति करने का प्रयास करेगी अर्थात् विदेशी सहायता पर कम निर्भरता और देशीय क्षमताओं का निर्माण करना।

आत्मनिर्भरता के दर्शन की व्याख्या करते हुए आठवीं पचवर्षीय योजना के दिशा निर्देश पत्र में उल्लेख किया गया— 'वद्धि दर की स्थापित प्रवृत्ति को ही बनाए रखने के लिए जिसके साथ विदेशी ससाधनो पर कम निर्भरता हो यह आवश्यक है कि बचत के वर्तमान स्तर (जो कि सकल देशीय उत्पाद के 20 5 प्रतिशत के आस पास हैं) मे उन्नति हो और निर्यात की मात्रा मे न्यूनतम वृद्धि 12 प्रतिशत हो।

नौवीं योजना मे आत्मनिर्भरता

नौवीं योजना (1997 2002) में यह उल्लेख किया गया कि आत्मनिर्भरता राज्य नीति के चार महत्त्वपूर्ण आयामो मे से एक है। योजना मे स्पष्ट किया गया भारत ने व्यापार और विनियोग मे नए अवसरो का लाभ उठाने के लिए अपनी अर्थव्यवस्था को धीरे धीरे और क्रमिक रूप मे खोलने की प्रक्रिया चालू की है। जबकि इस प्रक्रिया को जारी रखने की आवश्यकता है और आगे बढाने की भी यह कार्य अपने बल की स्थिति से होना चाहिए, न कि किसी बाहरी मजबूरी के कारण या विकल्पो के अभाव के कारण। इस दृष्टि से आत्मनिर्भरता विकास नीति और रणनीति का एक महत्त्वपूर्ण अग होनी चाहिए।

आर्थिक आत्मनिर्भरता (Economic self reliance) की व्याख्या करते हुए, नौवीं योजना ने उल्लेख किया है आत्मनिर्भरता का सर्वप्रथम और सभवत सबसे महत्त्वपूर्ण अग भुगतान शेष की पोषणीयता (Sustainability of balance of payments) का आश्वासन देना है ताकि अत्यधिक विदेशी ऋण से बचा जा सके। बाजार आधारित व्यवस्था मे गैर सरकारी एजेन्टो द्वारा व्यष्टि स्तर (Micro level) के निर्णयो के सचयी प्रभाव के परिणामस्वरूप देश के विदेशी मुद्रा ससाधनों और बढते हुए विदेशी ऋण पर अत्यधिक दबाव पैदा हो सकते हैं। सरकार का यह दायित्व है कि वह ऐसी परिस्थितिया कायम करे जिससे ऐसी प्रवृत्तिया स्वय उन्हीं एजेन्टो द्वारा ठीक की जा सके। विवेकपूर्ण समष्टि प्रबन्ध (Macro management) के ढाचे और गैर ऋण कायम करने वाले विदेशी अन्तर्प्रवाहो (Non debt creating external flows) का अधिकाधिक सहारा लेकर भुगतान शेष की जरूरतो के लिए वित्त प्रबन्ध किया जा सकता है और ये सब इन परिस्थितियो के पहलू हैं।

विकास के वित्त पोषण के लिए विदेशी सहायता के प्रयोग के बारे मे नीति स्पष्ट करते हुए, नौवीं योजना ने साफ शब्दो मे उल्लेख किया है अर्थव्यवस्था के विकास को त्वरित करने के लिए विनियोग योग्य ससाधनो की उपलब्धि को महत्त्वपूर्ण रूप मे बढाना होगा।

आत्मनिर्भरता का तकाजा है कि ये अधिकतर ससाधन देश के अन्दर ही जनित किए जाए और विदेशी स्रोतो का प्रयोग केवल उसी सीमा तक किया जाए जिसकी इजाजत विदेशी दायित्वों (External liabilities) का पोषणीय अनुपात देता है। पुन इसमे कहा गया है 'खाद्य मे स्वावलम्बिता आत्मनिर्भरता की किसी भी रणनीति का मूल अग है।

तकनालाजीय आत्मनिर्भरता के प्रश्न पर नौवीं योजना मे बहुत ही स्पष्ट शब्दों मे उल्लेख किया गया आत्मनिर्भरता का एक क्रान्तिक अग तकनालाजी जहा से भी उपलब्ध हो

सके प्राप्त करनी चाहिए, दीर्घकाल को ध्यान मे रखते हुए यह अनिवार्य है कि देश के लिए आवश्यक सभी क्रान्तिक तकनालाजियो मे देशीय क्षमता विकसित की जाए।"

4. आत्मनिर्भरता की प्रगति

आत्मनिर्भरता एक सापेक्ष धारणा है। इसका अर्थ आर्थिक प्रथक्करण नहीं। न हो इसका अर्थ विदेशी सहायता से पूर्ण स्वतन्त्रता है। किन्तु इसका अर्थ बहुत-सी वस्तुओ एव क्षेत्रो मे अपेक्षाकृत अधिक स्वावलम्बिता प्राप्त करना है। अत इस बात का विश्लेषण करना उचित होगा कि भारतीय अर्थव्यवस्था लगभग पाच दशको के आर्थिक आयोजन के फलस्वरूप स्वावलम्बिता की ओर बढी है।

खाद्य आयात से मुक्ति

आयोजन के प्रारम से ही खाद्यान्नो मे आत्मनिर्भरता हमारी नीति का लक्ष्य रहा है। 1956 मे हमारे खाद्य आयात कुल उपलब्धि का 2 2 प्रतिशत थे परन्तु इसके पश्चात् वे बढकर 1966 में 14 1 प्रतिशत की चरम सीमा पर पहुच गए। किन्तु अधिक उपजाऊ किस्म के बीजो के प्रोग्राम और अच्छी वर्षा के लगातार चार वर्षों (1968-71) के कारण खाद्यान्नो का देशी उत्पादन बढ गया। 1971 में खाद्यान्न *आयात (Food Imports) कुल उपलब्धि का केवल 2 2* प्रतिशत था और 1972 में खाद्यान्न आयात वस्तुत बन्द कर दिया गया। 1973 और 1976 में भारत सरकार द्वारा नीति मे परिवर्तन ने अधिक उपजाऊ किस्म के बीजो के आधीन फसलो और क्षेत्रो को बढाने की आवश्यकता को और तीव्र बना दिया ताकि आत्मनिर्भरता की स्थायी परिस्थितियाँ कायम की जा सकें। इस बात की ओर भी ध्यान केन्द्रित हुआ है कि जन्म दर को कम करने के लिए बडे पैमाने पर परिवार नियोजन अभियान चलाना चाहिए।

मोटेतौर पर भारत खाद्यान्नो के बारे मे स्वावलम्बी हो गया है। 1996 97 में भारत का खाद्यान्न-उत्पादन 1 990 लाख टन के रिकार्ड स्तर पर पहुच गया। खाद्यान्न आयात जो 1983 में 3.5 प्रतिशत थे पूर्णतया बन्द कर दिए गए।

किन्तु देश खाद्य तेलो (Edible oils) के उत्पादन को बढाने में विफल रहा है और खाद्य तेलो का आयात 1986 87 मे कुल उपलब्धि का 11 प्रतिशत था। भारत ने 1995-96 में 10 6 लाख टन खाद्य-तेल का आयात किया। जिसका मूल्य 3260 करोड रुपये था। इस क्षेत्र मे हमारे उत्पादन को बढाने का प्रयास करना चाहिए ताकि हमारी आयात पर निर्भरता कम की जा सके।

आत्मनिर्भरता और राष्ट्रीय प्रतिरक्षा

स्वतन्त्रता उपरान्त काल मे हुए तीन युद्धों (1962, 1965 और दिसम्बर 1971) की शिक्षा के रूप मे भारत सरकार के लिए यह अनिवार्य हो गया है कि वह प्रतिरक्षा उत्पादन मे आत्मनिर्भरता की नीति अपनाए। इसका मुख्य कारण यह था कि विश्व की बडी बडी ताकतें अपने गठजोडो मे शक्ति-सतुलन कायम रखने की दृष्टि से निर्णय लेती है। अमेरिका और साम्यवादी चीन मे हाल ही मे हुआ गठजोड भारत के हित के विरुद्ध है। इसके अतिरिक्त प्रतिरक्षा व्यय की मात्रा निधारित करने के लिए अपने सबसे बडे शत्रु की सैनिक शक्ति को ध्यान मे रखना पडता है। चूँकि भारत की सीमाओ को सबसे बडा खतरा चीन के कारण हो सकता है इसलिए भारत को अपनी सैनिक तैयारी करते समय चीन के बराबर होने के लिए प्रयास करना होगा। चूँकि भारत अन्तर्राष्ट्रीय मामलो मे एक स्वतन्त्र नीति अपनाता है इसलिए अपनी सेना के लिए अपने प्रतिरक्षा उद्योगो का आधुनिकीकरण करना होगा और सैन्य उत्पादन को बढाना होगा। साथ ही सैन्य उद्योगो मे उत्तम तकनॉलाजी का प्रयोग करना होगा। भारत ने पिछले कुछ वर्षों मे सैन्य उत्पादन मे बडी उन्नति की है।

1970 80 मे, भारत ने प्रतिरक्षा उद्योग पर 3 010 करोड रुपये व्यय किए। यह प्रचलित कीमत पर कुल राष्ट्रीय उत्पाद का 3 6 प्रतिशत है। यह भी सम्भव है कि यदि बडी ताकते और भी डराने धमकाने लगे, तो भारत को स्वय एक बडी सैनिक शक्ति बनने का प्रोग्राम बनाना होगा। अमेरिका और साम्यवादी चीन की सँधि से प्रतिरक्षा आयोजन मे आत्मनिर्भरता का महत्व और भी बढ गया है। हाल ही मे अमेरिका ने पाकिस्तान को बहुत अधिक आधुनिक शस्त्रो से लैस कर दिया है और पाकिस्तान अपनी राष्ट्रीय आय का लगभग 7 प्रतिशत प्रतिरक्षा पर खर्च करता है। इन परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिए भारत ने भी अपना प्रतिरक्षा का व्यय बढाकर 1997-98 मे 27,716 करोड रुपये कर दिया। अत भारत भी अपनी सैन्य शक्ति बढाने के लिए प्रयत्नशील है। यदि हम अपनी सैनिक आवश्यकताओ के लिए देशीय उत्पादन को विकसित कर लेते हैं तो हम आत्मनिर्भरता की ओर प्रगति कर पाएगे।

भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व मे सरकार ने अपने राष्ट्रीय एजेन्डा में राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए निम्नलिखित नीति अपनायी

"सैन्य बलो के बीच तत्परता चुस्ती और मनोबल बहाल करने पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। साथ ही एक राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद (National Security Council) का गठन किया जाएगा जो देश पर मडराते सैन्य आर्थिक एव राजनीति खतरो का विश्लेषण करेगी तथा सरकार को उचित सलाह देगी। सुरक्षा, भौगोलिक अखंडता और राष्ट्रीय एकता को सुनिश्चित करने के लिए परमाणुविक नीति का पुनर्मूल्याकन

कर इसमे परमाणु शस्त्रो (Nuclear weapons) के निर्माण के विकल्प का प्रयोग भी किया जा सकता है।

इस नीति का अनुसरण करते हुए, भारत ने चीन और पाकिस्तान के परमाणुविक खतरे का सामना करने के लिए 11 और 13 मई 1998 को 5 परमाणु परीक्षण किए। इन परीक्षणो ने भारत के वैज्ञानिको की तकनालाजीय योग्यता को प्रमाणित कर दिया कि भारत अब किसी भी प्रकार के परमाणु शस्त्रो का निर्माण कर सकता है। अत भारत अब परमाणुविक हथियार बन्द राज्य (Nuclear weapon state) बन गया है। परमाणुविक योग्यता (Nuclear capability) मे तकनालाजी आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का लाभ यह होगा कि यह चीन और पाकिस्तान को भारत के विरुद्ध परमाणुविक शस्त्रो के प्रयोग से प्रभावी रूप मे रोकेगी। भारत सरकार प्रतिरक्षा यन्त्रो के देशीय उत्पादन पर बल देना चाहती है ताकि निकट भविष्य मे हम इस क्षेत्र मे आत्मनिर्भर हो जाए।

आत्मनिर्भरता और भुगतान शेष मे घाटा

आत्मनिर्भरता के सूचक के रूप मे निर्यात के मूल्य को आयात के मूल्य के प्रतिशत के रूप मे व्यक्त किया जाता है। हाल ही के वर्षों मे निर्यात के मूल्य मे इतनी वृद्धि हुई है कि 1970 71 मे स्वतत्रता उपरान्त काल मे पहली बार निर्यात आयात का 94 प्रतिशत थे। 1972 73 के दोरान यह अनुपात बढकर 109 प्रतिशत हो गया। विश्व की मंडियो मे रूक्ष तेल रासायनिक खादो और खाद्यान्नो की कीमतो मे वृद्धि के कारण स्थिति फिर खराब हो गई। रूक्ष तेल की कीमतो मे लगातार वृद्धि के कारण, 1979 80 मे व्यापार शेष का घाटा और बढकर 2,449 करोड रुपये हो गया। 1980 81 मे व्यापार शेष का घाटा 5 838 करोड रुपए के उच्च स्तर पर पहुच गया। चाहे तेल की कीमतों मे वद्धि रुक गई है परन्तु उदार आयात नीति के कारण 1984 85 मे व्यापार शेष का घाटा 6 721 करोड रुपये आका गया है। 1985 86 मे नयी उदार आयात निर्यात नीति के प्रभावाधीन जहा आयात बढकर 21 164 करोड रुपये हो गए, निर्यात गत वर्ष की तुलना मे कम होकर 11 578 करोड रुपये हो गए। परिणामत व्यापार शेष का घाटा बढकर 9,586 करोड रुपये के रिकार्ड स्तर पर पहुच गया। अत निर्यात फिर आयात के मूल्य के केवल 55 प्रतिशत ही रह गए। इससे आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को भारी धक्का लगा। 1990 91 मे निर्यात आयात के पतिशत के रूप मे 76 प्रतिशत के स्तर पर पहुच गए और इस प्रकार परिस्थिति मे थोडा सुधार हुआ। निर्यात प्रोत्साहन की नीति के परिणामस्वरूप निर्यात का तेजी से विस्तार हुआ है और नतीजन 1994 95 मे आयात के प्रतिशत के रूप मे निर्यात 92 प्रतिशत के उच्च स्तर पर पहुच गए।

भुगतान शेष के घाटे को समाप्त करने के लिए दो रणनीतियो पर बहस होती रही है—निर्यात प्रोत्साहन और आयात प्रतिस्थापन। दूसरी और तीसरी योजना मे आयात प्रतिस्थापन (Import substitution) पर अधिक बल दिया गया क्योंकि निर्यात प्रोत्साहन के बारे मे निराशा की सामान्य भावना वर्तमान थी। 1950 51 ओर 1960 61 के दौरान निर्यात मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि नहीं हुई परन्तु वे नाममात्र ही उन्नत हुए। इसका मुख्य कारण यह था कि जैसे जैसे विश्व की आय बढती है पारम्परिक वस्तुओ (*Traditional goods*) की माग उसी अनुपात मे नहीं बढती ओर भारत केवल पारम्परिक वस्तुओ का निर्यात ही कर सकता था चूंकि विकास की आरंभिक अवस्था मे पूजी वस्तुओ की माग तेजी से बढती है व्यापार शेष का घाटा दूसरी और तीसरी योजना मे बढता ही गया। कषि उत्पादन मे तीव्र कमी के कारण पारपरिक वस्तुओ मे भी निर्यात-अतिरेक (Exportable surplus) का काफी बडा भाग समाप्त हो गया। इसके विरुद्ध खाद्यान्नो और अनिवार्य कच्चे माल की माग मे वृद्धि हुई। निर्यात न बढ सकने और आयात के बढते चले जाने के कारण व्यापार शेष का घाटा बढ गया। इस परिस्थिति मे सरकार ने मजबूर होकर ऐसी व्यापार नीति अपनाई जिसका उद्देश्य (क) ऐसे उद्योगो को प्रोत्साहन देना था जो आयात प्रतिस्थापन को बढाए और (ख) निर्यात प्रोत्साहन की योजनाओ को बढाना ताकि निर्यात का विशाखन (Diversification of exports) हो सके और विदेशी व्यापार मे अपारम्परिक वस्तुओ (Non traditional items) का भाग बढ सके।

तालिका 1 भारत मे आयात और निर्यात की प्रवृत्ति
करोड रुपयो मे–अवमूल्यन उपरान्त दरो पर

वर्ष	निर्यात	आयात	निर्यात, आयात के प्रतिशत के रूप में
1951 52	1 390	1 110	80
1960-61	1 770	1 000	56
1970-71	1 630	1 500	94
1980-81	12,574	6,710	54
1984 85	11 959	18 690	64 0
1985 86	11 578	21 164	54 7
1990-91	32,553	43 193	75 7
1991 92	44 042	47 851	9_0
1992-93	53 668	63,375	84 7
1993-94	69 751	73 101	95 4
1994-95	82,674	89 971	91 9
1995 96*	106,353	122,678	86.7
1996 97*	117,525	136,844	85 9

*अस्थायी

सातवीं योजना ने यह संकेत दिया कि ऋण सेवा अनुपात (Debt service ratio) की सुरक्षित सीमा 20% के नीचे होनी चाहिए किन्तु ऋण सेवा अनुपात तो पहले ही 20 प्रतिशत के खतरे के निशान को पार कर गया है और 1988-89 मे यह 26 प्रतिशत के स्तर पर पहुच गया है। यदि विदेशी सहायता पर निर्भरता की बढती हुई वर्तमान प्रवृत्ति को रोका नहीं जाता तो ऋण-सेवा अनुपात शीघ्र ही 30 प्रतिशत के स्तर पर पहुच जाएगा। ऐसी नीति हमारी आत्मनिर्भरता के दीर्घकालीन लक्ष्य के विरुद्ध है क्योंकि यह हमे "ऋण जाल" (Debt trap) मे धकेल देगी।

आर्थिक समीक्षा (1997 98) के अनुसार भारत का विदेशी ऋण 31 मार्च 1997 को 91.38 अरब डालर था (3 28 349 करोड रुपये) जबकि यह मार्च 1989 के अन्त तक 53 9 अरब डालर था। सकल देशीय उत्पाद (Gross domestic product) के प्रतिशत के रूप मे विदेशी ऋण 1988 89 के 19 7 प्रतिशत के स्तर से बढकर 1996-97 में 26 प्रतिशत हो गया। स्थिति वस्तुत गभीर हो गयी और सरकार को विवश होकर उधार का प्रतिस्थापन गैर ऋण कायम करने वाले अन्तर्प्रवाहो (Non debt creating flows) से करना पडा जैसे प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग और पोर्टफोलियो विनियोग। इस रणनीति से अतिरिक्त ऋण की वृद्धि दर कम करने मे सहायता मिली है। किन्तु अभी भी विदेशी ऋण का आकार भयानक है और हमारे आत्मनिर्भरता के लक्ष्य के प्रतिकूल है। सरकार को भुगतान-शेष की स्थिति सुधारने के लिए फौरन उपाय करने चाहिएं।

आयात-प्रतिस्थापन (Import Substitution)

आयात-प्रतिस्थापन की प्रगति आत्मनिर्भरता की महत्त्वपूर्ण सूचक है। पिछले दो दशकों से अधिक काल के औद्योगिकरण मे कुल उपलब्ध उत्पादन में आयात का भाग काफी हद तक कम हो गया है। किन्तु यदि आन्तरिक उत्पादन मे वृद्धि के बावजूद आयात मे वृद्धि हुई तो इसका कारण एक विकासमान अर्थव्यवस्था मे कच्चे माल जटिल मशीनरी पुर्जो तथा फालतू हिस्सो की बढती हुई माग है। तालिका 2 से पता चलता है कि लौह तथा इस्पात, एल्यूमिनियम, पेटोलियम आदि आधारभूत उद्योगो मे आन्तरिक उत्पाद मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि होने के कारण कुल उपलब्धि में आयात का भाग कम हो गया है। चिरस्थायी उपभोग वस्तुओं अर्थात् साइकिलो, बिजली के पखो आदि मे देश नियात अतिरेक भी कायम कर सकता है। मनुष्यकृत तन्तुओ (Man made fibres) के उत्पादन मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि होने के कारण उनके आयात लगभग समाप्त कर दिए गए हैं। अनिवार्य कच्चे माला अथात् कच्ची रूई कच्ची पटसन कास्टिक सोडा और सोडा एश में भी आन्तरिक उत्पादन के बढने से आयात कम हुए हैं। चाहे भारत कागज और गत्ते के उत्पादन मे आत्मनिर्भर हो गया है किन्तु अखबारी कागज के सम्बन्ध मे देशी उत्पादन को और अधिक बढाने की जरूरत है। मूल पूजी वस्तुओ और औद्योगिक कच्चे माल के उत्पादन मे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि के बावजूद अभी भी आयात पर निर्भरता को और कम करने की काफी गुजाइश है।

आठवीं पचवर्षीय योजना मे चुनी हुई वस्तुओं सम्बन्धी भौतिक सतुलन (Material balances) दिए गए हैं जिनमे 1991 92 के दौरान देशीय उत्पादन, आयात, निर्यात और उपभोग का सकेत किया गया है। 1996-97 के लिए जोकि आठवीं योजना का अन्तिम वर्ष होगा लक्ष्य भी दिए गए हैं इस विश्लेषण से पता चलता है कि 1991-92 के दौरान देशीय उत्पादन बहुत-सी वस्तुओ अर्थात् खाद्यान्नो, तिलहनो, रूई, दूध चीनी कपडा, सीमेट, एल्युमिनियम और बिजली के उपभोग की आवश्यकता के लिए पर्याप्त है। किन्तु रूक्ष तेल मे अभाव जान पडता है और 1991-92 के दौरान 240 लाख टन रूक्ष तेल के आयात द्वारा कुल उपभोग के लगभग 47 प्रतिशत की पूर्ति की गई। पेट्रोलियम उत्पाद के सदर्भ मे, 1991 92 के दौरान हमारी आवश्यकता के 16 6 प्रतिशत की पूति आयात द्वारा की गई। भारत ने पोटाश खाद की आवश्यकता के लिए शत-प्रतिशत आयात किया। इसके विरुद्ध नाइट्रोजन उर्वरक के उपभोग का 86 प्रतिशत देशीय उत्पादन से जुटाया गया और फासफोरस उर्वरक का इसी प्रकार 69 प्रतिशत आन्तरिक उत्पादन द्वारा उपलब्ध कराया गया। तैयार इस्पात के बारे मे हमारी आवश्यकता का 95 प्रतिशत देशीय उत्पादन से प्राप्त किया जाता है। भारत ताबे सीसे और जस्ते के सम्बन्ध मे भाग्यशाली नहीं है और इनके लिए अन्य देशो पर निर्भर होना ही पडेगा। आठवीं योजना ने यह लक्ष्य निश्चित किया है कि 1996-97 तक भारत अपनी जस्ते की आवश्यकता के 86 प्रतिशत और सीसे की आवश्यकता के 96 प्रतिशत की पूर्ति देशीय उत्पादन द्वारा कर सकेगा परन्तु 1996-97 में ताबे की आवश्यकता के केवल 28 प्रतिशत की पूर्ति ही देशीय उत्पादन से कर सकेगा। कोयले के सदर्भ मे भारत लगभग स्वावलम्बी है और 1996-97 तक अपनी देशीय आवश्यकताओ को पूर्णतया उपलब्ध करा सकेगा।

गत्यात्मक परिस्थिति में किसी वस्तु-विशेष की माग की वृद्धि दर बहुत से कारणतत्वो पर निर्भर करती है अर्थात् जनसख्या की वृद्धि, जनसख्या की आय-वृद्धि का ढाचा, किसी विशेष वस्तु के तकनीकी प्रयोग की परिस्थिति और किसी देश की वस्तु की माग को बढावा देने की नीति। उदाहरणार्थ सरकार द्वारा वैयक्तिक वाहनो के क्रय के लिए

ऋण प्रदान करने में उदारता के कारण रूक्ष तेल की माग मे तेजी आई। इसी प्रकार, यदि जनसख्या की तीव्र वृद्धि को रोका न गया, तो यह हमारी आत्मनिर्भरता की ओर प्रगति को धीमी कर देगी विशेषकर खाद्यान्नों खाद्य तेलों चीनी दूध कोयला, ऊर्जा और अन्य बहुत सी वस्तुओं के सदर्भ में परन्तु यदि देश अपने आप को विदेशी प्रभुत्व से स्वतन्त्र करना चाहता है तो इसे आत्मनिर्भरता के साथ साथ तकनालॉजीय आत्मनिर्भरता (Technological self reliance) दोनों ही प्राप्त करने होंगे।

आयात-प्रतिस्थापन और तकनीकी कौशल (Technical Skills)

तकनीकी कौशल का विकास आत्मनिर्भरता का महत्त्वपूर्ण अग है। अल्प विकसित देश किसी न किसी तरह विकास के लिए वित्तीय साधन तो गतिमान कर लेते हैं परन्तु पर्याप्त तकनीकी जनशक्ति (Technical manpower) के अभाव मे वे विदेशी विशेषज्ञों पर निर्भर रहते हैं। भारत मे इस्पात उर्वरकों, तेल पर्यवेक्षण एव परिष्करण सचालन शक्ति जनन (Power generation) और पेटो रसायन के उद्योगो के लिए *पर्याप्त मात्रा में भारतीय विशेषज्ञ तैयार हो गए हैं।* इसके अतिरिक्त गैर सरकारी क्षेत्र मे भी तकनीशियनो एव इजीनियरो का एक सग्रह बन गया है। परिणामत भारतीय विशेषज्ञो ने विदेशियों का स्थान ले लिया है किन्तु नई वस्तुओ और नई प्रक्रियाओ को अपनाने के सम्बन्ध मे भारत अभी बहुत पीछे है। इसका मुख्य कारण अनुसधान और विकास को विकसित करना है ताकि आत्मनिर्भरता के लिए तकनाकी श्रम की कमी को दूर *किया जा सके।*

आयात प्रतिस्थान के अन्य क्षेत्र

आत्मनिर्भरता की दृष्टि से आयात प्रतिस्थापन के कई और क्षेत्र भी हैं। *प्रथम कच्ची रूई तेला और चरबी के सबध* मे आयात मे बचत की काफी गुजाइश है। इस दिशा मे लम्बे तन्तु की मिस्त्री रूई के उत्पादन मे काफी वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त सस्ते तेला का प्रयोग वनस्पति घी तैयार करने मे किया जा सकता है जिसके परिणामस्वरूप मूगफली आदि को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार के लिए बचाया जा सकता है। दूसरे, यह बहुत जरूरी है कि इस्पात और औद्योगिक मशीनरी मे *कायम की गई अप्रयुक्त क्षमता (Unutilised capacity)* का प्रयोग किया जाए। उदाहरणार्थ, भारत ने 1990 91 से 1995 96 के छ वर्षों के दारान 7 980 करोड रुपये के कच्चे लोहे का निर्यात किया परन्तु इसके अपने इस्पात के कारखानो मे उत्पादन क्षमता का पूर्ण प्रयोग न किया गया। यदि इस्पात के उत्पादन को तेजी से बढाया जाए, तो यह आयात प्रतिस्थापन का अच्छा स्रोत बन सकता है। तीसरे, आयात प्रतिस्थापन को बढावा देने के लिए पारपरिक वस्तुओं की अपेक्षा नयी वस्तुओ का प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरणार्थ ताबे के लिए बिजली के तारों मे एल्युमिनियम और लोह तथा इस्पात और अन्य अलौह धातुओ के लिए प्लास्टिक। चौथे, देश में उर्वरकों के उत्पादन को बढाने के लिए कोयले पर आधारित उर्वरक कारखाने लगाने चाहिए। अन्तिम रसायन और औषधि मे स्वावलम्बिता प्राप्त करने के लिए भी भरसक प्रयास करना चाहिए।

इन सभी उपायो से आयात प्रतिस्थापन को बढाया जा सकता है। यदि निर्यात प्रोत्साहन और आयात प्रतिस्थापन के बीच चुनाव करना हो तो आयात प्रतिस्थापन पर बल देना अपेक्षाकृत अधिक वाछनीय होगा क्योंकि आय और रोजगार के गुणक प्रभाव (Multiplier effect) के रूप मे आयात प्रतिस्थापन निश्चय ही नियात प्रोत्साहन की तुलना में *अधिक लाभकारी है।*

निर्यात प्रोत्साहन और आत्मनिर्भरता

बहुत से कारणो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि काफी समय के लिए हमारे आयात *अधिक ही रहेंगे।* इनमें मुख्य ये हैं—(*i*) हमारी अर्थव्यवस्था मे उद्योगो के बढते हुए विशाखन के फलस्वरूप पूजी वस्तुआ और अन्य सामान के आयात की आवश्यकता होगी (*ii*) ऋण सेवा का भार जिसमे ब्याज एव ऋण परिशोधन (Amortization) शामिल है के भुगतान के लिए निर्यात अतिरेक की आवश्यकता होगी (*iii*) आधुनिक तकनीक का बहुत से क्षेत्रो म प्रयोग करने के लिए देश को मशीनों एव *यत्रो और तकनीकी विशेषज्ञों* के रूप मे आयात करना *होगा* एव (*iv*) *व्यापार घाटे अभी तक* बने हुए हैं।

इस सम्बन्ध मे यह उल्लेख किया जा सकता है कि विदेशी मुद्रा के प्रेषण (Remittances) के रूप मे भारी अन्तर्प्रवाह के कारण अपना भुगतान शेष का घाटा कम करने मे काफी सहायता मिली है परन्तु खाडी सकट के कारण प्रेषण की गति बने रहने के बारे मे *विश्वास से कोई बात* कहनी कठिन है। स्वाभाविक है कि व्यापार घाटे को कम करने के लिए तीव्र निर्यात अभियान का सहारा लेना होगा। परन्तु निर्यात-अभियान पर काफी दुष्प्रभाव पडा है। 1980 81 और 1988 89 के दौरान निर्यात की वृद्धि दर लगभग 8 प्रतिशत थी जोकि वर्तमान परिस्थिति से निबटने के लिए नाकाफी है। इजीनियरिंग उद्योग, हस्तशिल्पो, हीरे तथा जवाहरात आदि ने जो *गत्यात्मकता और प्रभावी निष्पादन दिखाया था* अब वह लोप होता जा रहा है। अत नयी वस्तुओं और नयी

मण्डियो की खोज करनी होगी ताकि निर्यात बढाए जा सके और साथ ही साथ निर्यात की उत्पादन लागत कम करके इन्हे अन्तर्राष्टीय बाजार मे प्रतियोगी बनाना होगा।

निर्यात प्रेरक विकास नीति (Export led growth) का समथन नहीं किया जा सकता क्योंकि यह आर्थिक विकास पर दुष्प्रभाव डालेगी और चूंकि इसके परिणामस्वरूप रोजगार की वद्धि दर मन्द हो जाएगी यह आम जनता के जीवन स्तर को उन्नत करने मे बाधक होगी। उदाहरणार्थ, इस नीति के कारण इस्पात, सीमेट और ऐल्युमिनियम का निर्यात करना जोकि हमारे अपने उद्योग की क्षमता का पूरा प्रयोग न करने का परिणाम है। इसी प्रकार दैनिक आवश्यकता की कुछ वस्तुओ अर्थात् चीनी का निर्यात बढाया गया जिसके कारण देश की आन्तरिक मण्डियो मे इसकी कमी हुई और कीमतों मे वृद्धि हुई।

ऊर्जा के आयातित स्रोतो पर निर्भरता

1973 मे रूक्ष तेल की कीमतों मे भारी वद्धि के कारण भारत के आत्मनिर्भरता के प्रयास को भारी धक्का लगा। 1980-90 के दशक के दौरान भारत अपने आत्मनिर्भरता के लक्ष्य के लिए ऊर्जा के आयातित स्रोतो पर निर्भरता के दृढ सकल्प के लिए निश्चित कार्यवाही कर रहा है। इस सम्बन्ध में तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग और आयल इण्डिया लिमिटेड ने देश मे तेल के आन्तरिक उत्पादन को बढ़ाने में भारी प्रगति प्राप्त की है। देश मे परिष्करण क्षमता (*Refining capacity*) का भी विस्तार किया गया है और इस प्रकार तेल आयात का मूल्य जो हमारे कुल आयात बिल में 1980-81 मे 43 प्रतिशत था, कम होकर 1985 86 मे 25 प्रतिशत हो गया है और 1995-96 मे 20.5 प्रतिशत हो गया। जबकि देश मे तेल के उत्पादन को बढाने को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जा रही है सरकार कोयले और बिजली के उत्पादन को भी तेजी से बढाना चाहती है। कोयले के उत्पादन मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है। बिजली की जनन क्षमता जो 1984 85 मे 157 अरब किलोवाट घंटे थी बढकर 380 अरब किलोवाट घंटे हो गई है--यह एक सराहनीय उपलब्धि है।

आत्मनिर्भरता की ओर प्रगति की समीक्षा से पता चलता है कि आयोजन के विभिन्न उद्देश्यो अर्थात् निर्धनता की समाप्ति, पूर्ण रोजगार प्राप्त करना,आय तथा सम्पत्ति की असमानताए कम करना और आत्मनिर्भरता प्राप्त करने मे से सबसे अधिक सफलता आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त हुई है। इससे हमारी निर्यात माग पर भी प्रभाव पडा है। चूंकि बहुत से देशों को अब अपनी निर्यात से प्राप्तियों का अधिकतर भाग तेल के आयात पर खर्च करना पडता है वे अपने आयात की अन्य मदो मे कटौती करते हैं। इसी प्रकार विदेश मे रहने वाले भारतीयो से भविष्य मे प्रेषण पूर्व वित्त मत्री डा, मनमोहन सिह ने अपने बजट भाषण (1992 93) मे साफ शब्दो मे कहा—"हमारी आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था की दृष्टि ऐसी अर्थव्यवस्था की होनी चाहिए जो अपनी समग्र आयात आवश्यकताओं का भुगतान निर्यात द्वारा कर सके। इसके लिए इसे कृत्रिम बाह्य आलम्बनों अर्थात् विदेशी सहायता पर निर्भर नहीं होना चाहिए।"

□□□

21

निर्धनता, असमानता और भारत में आयोजन प्रक्रिया
(POVERTY, INEQUALITY AND THE PLANNING PROCESS IN INDIA)

1 निर्धनता की धारणा
(Concept of Poverty)

निर्धनता का अर्थ उस सामाजिक क्रिया से है जिसमे समाज का एक भाग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओ को भी पूरा नहीं कर सकता। जब समाज का एक बहुत बडा अग न्यूनतम जीवन स्तर से वचित रहता है और केवल निर्वाह स्तर (Subsistence level) पर गुजारा करता है तो यह कहा जाता है कि समाज मे व्यापक निर्धनता (Mass Poverty) विद्यमान है। तीसरी दुनिया के देशो मे व्यापक निर्धनता पायी जाती है चाहे यूरोप और अमेरिका के कुछ भागों मे निर्धनता वर्तमान है।

सभी समाजो मे निर्धनता की परिभाषा करने के प्रयास किए गए परन्तु इन सबका आधार न्यूनतम या अच्छे जीवन स्तर की कल्पना है। उदाहरणार्थ सयुक्त राज्य अमरिका मे निर्धनता की धारणा भारत से बिल्कुल ही भिन्न होगी क्योंकि अमेरिका मे आम नागरिक कहीं अधिक ऊचे जीवन स्तर पर रह रहा है। *निर्धनता की सभी परिभाषाओ मे यह चेष्टा की जाती है* कि वे समाज के औसत जीवन स्तर के निकट हो और इस *कारण ये परिभाषाए समाज मे विद्यमान असमानताओ को* दर्शाती हैं और उस सीमा का बोध कराती हैं जिस तक कोई समाज इन्हे सहन करने के लिए तैयार है। उदाहरणार्थ भारत में निर्धनता की सामान्यत स्वीकत परिभाषा उचित जीवन स्तर की अपेक्षा न्यूनतम जीवन स्तर पर बल देती है। यह धारणा इस तथ्य पर आधारित है कि आने वाले कई दशको तक बुनियादी आवश्यकताओ की न्यूनतम मात्रा उपलब्ध कराना भी सभव नहीं इसलिए विकास के इस चरण मे उचित जीवन स्तर या अच्छे जीवन स्तर की बात करना कपोल कल्पना है। सारे तर्क का सार यह है कि निर्धनता के परम स्तर (Absolute levels of poverty) जिन्हे अनाज दालो दूध सब्जियो मक्खन कपडे या कैलोरी प्राप्ति के रूप मे अभिव्यक्त किया जाता है किसी देश मे वर्तमान जीवन के सापेक्ष स्तर (Relative level) से मिश्रित हो जाते हैं। उच्च वर्गों के विलासपूर्ण जीवन की तुलना मे समाज के एक काफी बडे भाग को बुनियादी जरूरतो के कुछ क्षेत्र विद्यमान हैं परन्तु अल्पविकसित देशो के लिए व्यापक निर्धनता (Mass poverty) का विद्यमान होना चिन्ता का विषय है।

2 भारत मे निर्धनता के अध्ययन
(Studies of Poverty in India)

बहुत से अर्थशास्त्रियो एव सस्थाओ ने निर्धनता के निर्धारण के लिए अपने-अपने प्रमाप बनाए है। इन सभी *अध्ययनो का आधार 2250 कैलौरी के बराबर खाद्य का* मूल्य है। चूकि गावो के लोग स्वय खाद्यान्नो के उत्पादक है इसलिए *शहरी लोगों की तुलना मे ग्रामीण लोगो का प्रतिव्यक्ति* खाद्य व्यय रहन सहन की लागत मे अन्तर होने के कारण कम होता है। श्री बी एस मिन्हास ही एक ऐसे *अर्थशास्त्री* है जिन्होने 1956 57 और 1967 68 के बीच ग्रामो में निर्धनो के प्रतिशत मे कमी का सकेत किया है। इसके विरुद्ध पी डी ओझा आर प्रणव के बर्धन ने ग्रामीण निर्धनो (Rural poor) के अनुपात में वद्धि का सकेत किया है। उनके विचार मे परिवर्तन की यह दिशा देश के बढते हुए दरिद्रीकरण (Pauperisation) की सूचक है। डाडेकर और रथ ने 1960 61 और 1967 68 के दौरान ग्रामीण तथा नगरीय दोनो निर्धन वर्गों मे स्थिर अनुपात बताया है। किन्तु इनके अनुमान मे ग्रामीण निर्धनो की सख्या 13 5 करोड से बढकर 16 6 करोड और नगरीय निर्धनों मे 4 2 करोड से बढकर 4 9 करोड हो गई।

मनटेक आहलूवालिया का मत है कि भारत के पिछले दो दशको के अनुभव से निर्धनता की प्रवृत्ति में वृद्धि का सकेत नहीं मिलता। सामान्यतया यह देखा गया है कि ग्रामीण निर्धनता का आपात कृषि के अच्छे कार्यकाल के दौरान कम

होता जाता है और कृषि की दृष्टि से बुरे वर्षों में बढ़ जाता है। सातवें वित्त आयोग के अनुसार 1970-71 में 27.7 करोड़ व्यक्ति निर्धनता-रेखा के नीचे रह रहे थे। इनमें से 22.5 करोड़ ग्रामीण क्षेत्रों और 5.2 करोड़ शहरी क्षेत्रों से थे।

डॉ कोस्टा ने अपने अनुमान में निर्धनता के तीन स्तर बताये हैं, अर्थात् अतिदीन, दीन और निर्धन। उनके अनुमान के अनुसार 1963-64 में 6.2 करोड़ व्यक्ति अतिदीन जीवन व्यतीत करते थे, 10.4 करोड़ दीन और 16.2 करोड़ व्यक्ति निर्धनता का जीवन व्यतीत करते थे। अतिदीनता का जीवन गुजारने वाले लोगों का अनुपात 13.2 प्रतिशत था और निर्धनता में रहने वालों का 34.0 प्रतिशत था।

अर्थशास्त्रियों के इन अनुमानों को तैयार करने की विधि के बारे में मतभेद हो सकता है और इस कारण उनके अनुमानों में अन्तर हो सकते हैं। परन्तु दो बातों पर सहमति प्राप्त हो चुकी है : प्रथम, निर्धनता-रेखा (Poverty line) से नीची रहने वाली जनसंख्या का प्रतिशत कम नहीं हुआ है। चाहे डांडेकर एवं रथ जैसे अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि यह बढ़ा नहीं है। इस स्थिति के मुख्य तत्व इस प्रकार हैं—

1. निर्धनों की बहुसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। इनमें दो मुख्य वर्ग हैं—छोटे किसान और भूमिहीन मजदूर। ग्राम निर्धनों का आधे से कुछ कम भाग भूमिहीन मजदूर है और आधे से कुछ अधिक भाग छोटे तथा सीमान्त किसान हैं। दोनों वर्ग कुछ हद तक मिश्रित हैं क्योंकि छोटे किसान कृषि-श्रम के रूप में कार्य करते हैं।

2. ग्रामीण-भारत में निर्बल वर्गों की मुख्य आर्थिक समस्या खुली बेरोजगारी नहीं बल्कि निम्न उत्पादिता-रोजगार (Low productivity employment) है।

3. शहरी क्षेत्रों में निर्धनता की समस्या ग्राम-निर्धनता का

तालिका 1 : भारत में निर्धनता के विभिन्न अनुमान

(करोड़ व्यक्ति)

अनुमाता	वर्ष	ग्रामीण		नगरीय		कुल	
डॉ कोस्टा	1963-64					16.1	(34.5)
पी. के वर्धन	1960-61	13.1	(38.0)				
	1967-68	22.0	(53.0)				
बी एस मिन्हास	1956-57	21.5	(65.0)				
	1963-64	22.1	(57.8)				
	1969-70	21.0	(50.6)				
मनटेक अहलूवालिया	1956-57	18.1	(54.1)				
	1963-64	17.1	(44.5)				
	1967-68	23.5	(56.5)				
	1973-74	24.1	(46.1)				
डांडेकर एव रथ	1960-61	13.5	(40.0)	4.2	(50.0)	17.7	(41.0)
	1969-70	16.6	(40.4)	4.9	(50.0)	21.5	(41.0)
सातवां वित्त आयोग	1970-71	22.5	(53.0)	5.2	(51.0)	27.7	(52.0)
छठी योजना (1978-83)	1977-78	23.9	(47.9)	5.5	(40.7)	29.4	(46.3)
छठी योजना (1980-85)	1979-80	26.0	(50.7)	5.7	(40.0)	31.7	(48.2)
बी एम डांडेकर	1977-78	28.4	(49.5)				
	1983-84	28.6	(44.4)				
विश्व बैंक	1970	23.7	(53.0)	5.1	(45.5)	28.7	(52.4)
	1983	25.2	(44.9)	6.5	(36.4)	31.7	(42.5)
	1988	25.2	(41.7)	7.0	(33.6)	32.2	(39.6)
मिन्हास जैन एव तदूलकर	1987-88	28.4	(44.8)	7.7	(35.5)	36.1	(42.7)
योजना आयोग विशेषज्ञ ग्रुप (1993)	1987-88	22.9	(39.1)	8.3	(40.2)	31.2	(39.1)
योजना आयोग	1996-97	21.1	(30.6)	6.6	(25.6)	27.7	(29.2)

नोट : बैकट में दिये गये आंकडे कुल जनसख्या के प्रतिशत के रूप में हैं। ग्रामीण तथा नगरीय निर्धनता के अनुमान कुल ग्राम जनसंख्या और कुल नगरीय जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में है।

उत्प्रवाह है। अधिकतर निर्धन जो स्वरोजगार प्राप्त (Self employed) है या अर्थव्यवस्था के असगठित विनिर्माण या सेवा क्षेत्र मे कार्य करते है। यहा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि *मजदूरी रूपी रोजगार (W age employment) की परिस्थिति* मे इनकी नौकरी कम वेतन या मजदूरी वाली है और स्व रोजगार की स्थिति मे इनके पास ससाधनो का आधार (Re *source base) बहुत ही निम्न है।*

भारत की गरीबी पर विश्व बैंक के *अनुमान (World* Bank Estimate of Poverty)

विश्व बैंक ने अपने देश सम्बन्धी अध्ययन 'भारत निर्धनता रोजगार एव सामाजिक सेवाए" (1989) मे गरीबी रेखा निर्धारित करने के लिए वही विधि अपनाई है जो योजना आयोग ने अपनाई थी। 1973 74 मे योजना आयोग ने ग्रामीण एव शहरी क्षेत्रो के लिए क्रमश 49 1 रुपये और *56 6 रुपये प्रति व्यक्ति प्रति मास की निर्धनता रेखाए परिभाषित* की थीं। विश्व बैंक ने राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण और भारतीय सांख्यिकीय सस्थान द्वारा विकसित विधि के आधार पर *निर्धनता अनुपात का अनुमान लगाने की वैकल्पिक विधि* का प्रयोग किया। इसके अनुसार 1977 78 के लिए (वर्तमान कीमतो पर) ग्रामीण क्षेत्रो के लिए 55 2 रुपये और शहरी *क्षेत्रो के लिए 68 6 रुपये और 1983 के लिए ग्रामीण क्षेत्रों के* लिए 89 0 रुपये और शहरी क्षेत्रो के लिए 111 2 रुपये निर्धनता रेखा निर्धारित की गई। विश्व बैंक ने भी अति निर्धन *व्यक्तियो के अनुमान गरीबी रेखा के व्यय के 75 प्रतिशत* अनुपात को आधार बनाकर लगाए ह। इस आधार पर 1970 *1983 और 1988 के लिए गरीबी रेखा के नीचे रहने वाली* जनसख्या के लिए तैयार किए गए अनुमानों से निम्नलिखित *परिणाम निकाले है—*

1 ग्रामीण क्षेत्रो मे निर्धनता रेखा के नीचे जनसख्या का अनुपात 1970 मे 53 प्रतिशत से गिरकर 1983 मे 44 9 *प्रतिशत हो गया और 1988 मे यह लगभग 42 प्रतिशत* हो गया। किन्तु कुल रूप मे ग्रामीण निर्धनो की सख्या जो 1970 मे 23 7 करोड थी बढकर 1983 मे 25 2 करोड हो गई और *1988 मे यह लगभग इतनी ही रही।* (देखिए तालिका 2)

2 गरीबी रेखा के नीचे रहने वाली शहरी जनसख्या का अनुपात जो 1970 मे 45 5 प्रतिशत था तेजी से गिरकर *1983 मे 36 4 प्रतिशत और फिर 1988* मे और गिरकर 33 6 प्रतिशत हो गया। फिर भी शहरी क्षेत्रो मे निर्धनो का कुल जनसख्या मे भाग जो 1970 मे 18 प्रतिशत था बढकर 1988 मे 22 प्रतिशत हो गया। कुल रूप मे शहरी निर्धन व्यक्तियो की सख्या जो 1970 मे 5 05 करोड थी बढकर 1983 मे 6 46 करोड हो गई अर्थात् इस अवधि मे इसमे लगभग 26 प्रतिशत की वृद्धि हुई और यह मात्रा और बढकर 1988 मे 7 करोड हो गई। लगभग 8 प्रतिशत की वृद्धि।

3 गरीबो का कुल अनुपात जो 1970 मे 52 4 प्रतिशत *था गिरकर 1988 मे 40 प्रतिशत हो गया।* किन्तु कुल रूप मे उनकी सख्या जो 1970 मे 28 7 करोड थी बढकर 1988 मे 32 2 करोड हो गई अर्थात् इसमे लगभग 12 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

4 भारत मे अति निर्धन व्यक्तिया का अनुपात जो 1970 मे 30 प्रतिशत था भी गिरकर 1988 मे लगभग 19 प्रतिशत रह गया। किन्तु ग्रामीण क्षेत्रो मे अति निर्धनो का अनुपात 20 4 प्रतिशत था जबकि शहरी क्षेत्रो मे यह 15 8 प्रतिशत *था। यह एक विरोधाभास सा प्रतीत होता है कि ग्रामीण अति निर्धन जिनकी सख्या 1970 में* 13 46 करोड थी

तालिका 2 विश्व बैंक के अनुसार निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली जनसख्या के अनुपात

	निर्धनता रेखा के नीचे जनसंख्या करोड व्यक्ति			निर्धन जनसंख्या का प्रतिशत		
	1970	*1983*	*1988*	*1970*	*1983*	*1988*
ग्रामीण	3 6	25 2	25 2	53 0	44 9	41 7
नगरीय	5 1	6 5	7 0	45.5	36 4	33 6
कुल	28 7	31 7	32.2	52.4	42.5	39 6
	अति निर्धनता रेखा के नीचे जनसंख्या (करोड व्यक्ति)			अतिनिर्धन जनसख्या का अनुपात		
ग्रामीण	13 9	17 8	12.3	30 1	22 8	20 4
नगरीय	2 8	3 1	3.3	25 6	17 7	15 8
कुल	6 1	5 0	15 6	29 8	21 8	19 2

गिरकर 1988 मे 12 36 करोड रह गई परन्तु इसके विरुद्ध शहरी अति निर्धनो की सख्या जो 1970 मे 2 84 करोड थी बढकर 1988 मे 3 29 करोड हो गई।

5 अनुसूचित जातियो एव जनजातियो का ग्राम क्षेत्रो मे निर्धनो मे अनुपात एक-तिहाई था और अति-निर्धनो का 38 प्रतिशत, परन्तु शहरी क्षेत्रो मे निर्धनो मे इनका अनुपात 13 प्रतिशत था और अति निर्धनों में 15 प्रतिशत।

6 मजदूरी पर आश्रित परिवारो के व्यक्तियो का ग्राम-क्षेत्रों के निर्धनो मे अनुपात 1983 मे लगभग 46 प्रतिशत था। इनमें वे व्यक्ति भी शामिल हैं जो कृषि-भिन्न कार्यों मे काम कर रहे हैं। ऐसी इकाइयो का आन्ध्र-प्रदेश, उडीसा और महाराष्ट्र जैसे राज्यो मे निर्धनो मे भाग 50 प्रतिशत से अधिक था। कृषि-श्रम परिवारो मे 1983 मे लगभग 64 प्रतिशत परिवार गरीबी रेखा के नीचे रह रहे थे। यह अनुपात बिहार और मध्य प्रदेश मे 70 प्रतिशत से भी अधिक था। स्व-रोजगार प्राप्त परिवार ग्रामण निर्धनो का दूसरा बडा खण्ड था। स्व रोजगार प्राप्त परिवारो मे लगभग 38 प्रतिशत गरीबी-रेखा के नीचे थे।

इसमे सन्देह नहीं कि विश्व बैंक रिपोर्ट ने पिछले अठारह वर्षों की अवधि में निर्धनता का चित्र प्रस्तुत किया है और इस दृष्टि से यह हमे गत दो दशको मे गरीबी की प्रवृत्ति का बोध कराती है परन्तु 1988 के आकडे विभिन्न राज्यो एव समग्र भारत की वृद्धि दरो के आधार पर तैयार किए गए हैं और यह कल्पना की गई है कि जहा तक वितरण का प्रश्न है वृद्धि इस सम्बन्ध मे तटस्थ है। जाहिर है कि 1988 के आकडे कम विश्वसनीय समझे जा सकते हैं।

निर्धनता की स्थिति का एक बहुत ही निराशाजनक पहलू यह है कि जहा समग्र भारत के लिए ग्रामीण निर्धनता जो 1970 मे 53 प्रतिशत थी कम होकर 1988 मे 41 7 प्रतिशत हो गई और शहरी निधनता 45 5 प्रतिशत से कम होकर 33 6 प्रतिशत हो गई, वहा इसी अवधि के दौरान अति निधनता ग्रामीण क्षेत्रो मे 20 4 प्रतिशत के स्तर तक शहरी क्षेत्रों मे 15 8 प्रतिशत के स्तर तक कम हुई। जाहिर है कि निधनता स्तर मे शहरी और ग्रामीण क्षेत्रो मे लगभग 8 प्रतिशत की गिरावट आई किन्तु अति निर्धनता स्तर मे सापेक्ष दृष्टि से कम गिरावट आई 4 प्रतिशत से थोडी अधिक। इससे स्पष्ट सकेत मिलता है कि विकास प्रक्रिया के लाभ अति निर्धनो तक अपेक्षाकृत कम पहुच पाए हैं और ये निर्धनता की ऊपरी सतहो तक हो सीमित रहे।

बा एस मिन्हास एल आर. जैन आर एस डी तदूलकर ने अपने अध्ययन मे यह रहस्योद्घाटन किया है कि 1987 88 मे ग्रामीण एव नगरीय भारत मे निर्धनता का आपात अखिल भारतीय स्तर पर क्रमश 44 8 और 36 5 प्रतिशत है न कि जैसा कि योजना आयोग ने अनुमान लगाया 32 7 और 19 4 प्रतिशत। समग्र भारत के स्तर पर यह 1987-88 के लिए 42 7 प्रतिशत है जबकि योजना आयोग ने इसे 29 2 प्रतिशत आका है।

ग्रामीण निर्धनो की कुल सख्या जो 1970-71 मे 25 8 करोड थी बढकर 1987 88 मे 28 4 करोड हो गई। नगरीय भारत मे यह सख्या इस काल के दौरान 5 करोट से बढकर 7 7 करोड हो गई। समग्र भारत के लिए निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली जनसख्या जो 1970 71 मे 30 8 करोड थी बढकर 1987-88 मे 36 1 करोड हो गई। जाहिर है कि समग्र भारत के लिए निर्धनो की जनसख्या की वृद्धि दर 0 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष है जबकि 1970-71 और 1987 88 के बीच कुल जनसख्या की वार्षिक वृद्धि दर 2 2 प्रतिशत रही। इसका तात्पर्य यह है कि विकास एव गरीबी हटाओ कार्यक्रमो का निर्धन जनसख्या की वृद्धि दर को कम करने पर सद्प्रभाव पडा है।

योजना आयोग के विशेषज्ञ ग्रुप (1993) की रिपोर्ट

योजना आयोग ने सितम्बर 1989 मे एक 'विशेषज्ञ ग्रुप' नियुक्त किया ताकि भारत मे निर्धनो की सख्या और अनुपात के अनुमान की कार्यविधि एव परिकलन के विभिन्न पहलुओ पर विचार कर सके। प्रोफेसर डी टी लकडावाला इसके अध्यक्ष थे और इसने अपनी रिपोर्ट जुलाई 1993 मे प्रस्तुत की।

विशेषज्ञ ग्रुप ने निर्धनता रेखा (*Poverty line*) निर्धारित करने के लिए निम्नलिखित कसौटियो की सिफारिश की—

1 न्यूनतम आवश्यकताओ एव प्रभावी उपभोग माग के पूर्वानुमान पर कार्यदल द्वारा निर्धनता रेखा (*Poverty line*) को आधार रेखा (Base line) मानने की सिफारिश की जिसके अनुसार ग्रामीण क्षेत्रो मे 49 09 रुपये और शहरी क्षेत्रो मे 56 64 रुपये के मासिक प्रति व्यक्ति कुल व्यय को 1973 74 की कीमतो पर गरीबी का आधार माना गया। इसका मूलाधार 1973 74 मे वर्तमान उपभोग ढाचे के आधार पर प्रति व्यक्ति दैनिक 2,400 कैलोरी उपभोग था। विशेषज्ञ ग्रुप ने यह सिफारिश की कि इस मानदण्ड को सभी राज्यो के लिए समान रूप मे स्वीकार किया जाए।

2 आधार वर्ष के चुनाव के लिए विशेषज्ञ ग्रुप का यह मत था कि चूंकि 1973 74 के आधार वर्ष पर बहुत अधिक सुव्यवस्थित कार्य हो चुका है इसलिए इस वर्ष को ही गरीबी रेखा के अनुमान के लिए जारी रखना चाहिए।

3 राज्यीय विशेष निर्धनता रेखा (State Specific Poverty Lines) का अनुमान लगाने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर निर्धनता रेखा के अनरूप मानवाकृत वस्तु समूह

(Standardised commodity basket) का प्रत्येक राज्य मे आधार वर्ष (अर्थात् 1973 74) मे वर्तमान कीमतो के अनुसार मूल्य प्राप्त करना होगा।

4 समसूचक (Deflator) के चुनाव के लिए, विशेषज्ञ ग्रुप इस नतीजे पर पहुचा कि ग्रामीण निर्धनता रेखा को अद्यतन बनाने के लिए कृषि श्रमिक के उपभोक्ता कीमत सूचकांक (Consumer price index for agricultural labourers) का प्रयोग किया जाए और नगरीय निर्धनता रेखा के लिए औद्योगिक श्रमिकों के उपभोक्ता कीमत सूचकांक (Consumer price index for industrial workers) और गैर शारीरिक कर्मचारियो के उपभोक्ता कीमत सूचकांक (Consumer price index for non manual employees) की साधारण औसत का प्रयोग करना चाहिए।

विशेषज्ञ ग्रुप ने 1973 74 से 1987 88 की 14 वर्षीय अवधि के लिए चार बिन्दुओ पर निर्धनता रेखा निर्धारित कर गरीबों की सख्या और अनुपात का अनुमान लगाया है। विभिन्न बिन्दुओ पर गरीबी रेखा निर्धारित करने के मानदण्ड निम्नलिखित हैं—

तालिका 3 **1973 74 के आधार पर गरीबी रेखा**
प्रति व्यक्ति प्रतिमास व्यय (रुपय)

वर्ष	ग्रामीण	नगरीय
1973 74	49 09	56 96
1977 78	56 84	72 50
1983	89 45	117 64
1987 88	115 43	165 58

चूकि 14 वर्षों की अवधि के लिए तैयार किए ये अनुमान एक ही कार्यविधि पर आधारित हैं वे तुलनीय समझे जा सकते हैं। इन अनुमानो से पता चलता है कि ग्रामीण निर्धनता अनुपात (Rural Poverty ratio) जो 1973 74 मे 56 4 प्रतिशत था कम होकर 1987 88 में 39 1 प्रतिशत हो गया। इसी काल में नगरीय निर्धनता अनुपात (Urban poverty ratio) में अपेक्षाकृत कम कमी हुई और यह अनुपात 1973 74 में 49 2 प्रतिशत से कम होकर 1987 88 मे 40 1 प्रतिशत हो गया। अत समग्र निर्धनता अनुपात जो 1973 74 में 54 9 प्रतिशत था कम होकर 1987 88 मे 39 3 प्रतिशत हो गया। इसका अभिप्राय यह कि 14 वर्षों की अवधि में निर्धनता अनुपात मे 15 6 प्रतिशत की गिरावट आयी या निर्धनता में 1 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की औसत कमी व्यक्त हुई।

दूसरे, इस अध्ययन ने पहली बार यह रहस्योद्घाटन किया कि नगरीय निर्धनता अनुपात तुलनीय रूप मे ग्रामीण निर्धनता अनुपात से ऊचा था। कुल रूप में नगरों में निर्धनो की सख्या जो 1973 74 मे 603 लाख थी बढकर 1987 88 मे 833 लाख हो गयी अर्थात् इसमे 200 लाख की वद्धि हुई। यह देश म बढते हुए नगरीयकरण का सकेत है। इससे यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि ग्राम क्षेत्र मे रोजगार के अपर्याप्त विस्तार के कारण रोजगार की अनुपलब्धि के परिणामस्वरूप गरीब रोजगार की तलाश में शहरी क्षेत्रो की ओर धकेले जाते हैं। जाहिर है कि ग्राम निर्धनो का शहरी क्षेत्रों में उत्प्रवाह बढते हुए नगरीयकरण के साथ नगरीय निर्धनता मे वद्धि का प्रधान कारणतत्त्व है।

तीसरे, ग्रामीण निर्धनो की सख्या जो 1973 74 में 2613 लाख थी बढकर 1977 78 म 2643 लाख हो गयी परन्तु इसके बाद इनकी सख्या मे कमी हुई और यह 1987 88 मे कम होकर 2294 लाख हो गयी। यह एक स्वस्थ परिवर्तन है।

तालिका 4 **निर्धनता रेखा के नीचे जनसख्या**

	लाखों मे			कुल जनसख्या का प्रतिशत		
	ग्रामीण	नगरीय	कुल	ग्रामीण	नगरीय	कुल
1973 74	2613	603	3216	56 4	49 2	54 9
1977 78	2,643	677	3320	53 1	47 4	51 8
1983	2517	753	3270	45 6	42 2	44 8
1987 88	2,294	833	3,127	39 1	40 1	39 3

स्रोत *Report of the Expert Group on Est mat on of Populat on and Number of Poo (1993)*

चौथे 1987 88 मे पाच राज्यो अर्थात् उत्तर प्रदेश बिहार महाराष्ट्र पश्चिम बगाल और मध्य प्रदेश मे 1814 लाख गरीब निवास करते थे। सापेक्ष रूप मे इन पाच राज्यो मे देश की कुल गरीब जनसख्या का 58 प्रतिशत रहता है इससे जाहिर ह कि इन राज्यो मे गरीबो का अधिकतर भाग सकेन्द्रित है।

पाचवे चाहे सामान्यत 1973 74 और 1987 88 के दौरान गरीबो की सख्या मे कमी हुई परन्तु परम रूप मे उडीसा बिहार, महाराष्ट्र असम और उत्तर प्रदेश मे गरीबो की सख्या मे वृद्धि हुई। एक बहुत ही निराशाजनक बात यह है कि इन 14 वर्षों मे बिहार मे गरीबो की सख्या 370 लाख से बढकर 440 लाख हो गयी अर्थात् इसमे 70 लाख की वृद्धि हुई। यह बिहार मे बढते हुए दरिद्रीकरण (Pauperisation) का सकेत और गभीर चिन्ता का विषय है।

छठे वे राज्य जिनमे निर्धनता अनुपात अखिल भारतीय आकडे से ऊचा है इनमे हैं उडीसा (55 6%) बिहार (53 4%) तमिलनाडु (45 1%) पश्चिम बगाल (44%) मध्य प्रदेश (43 4%) और उत्तर प्रदेश (42%)। इनके विरुद्ध वे राज्य जिनमे निर्धनता में भारी कमी प्राप्त की जा चुकी है

उनमे हैं : गुजरात, केरल, आंध्र प्रदेश, हरियाणा और पंजाब।

अन्तिम, भारत के विभिन्न राज्यो में 1973-74 और 1987-88 के दौरान निर्धनता-अनुपात मे कमी के आकड़ों से पता चलता है कि जहां अखिल भारतीय स्तर पर निर्धनता मे 15.6 प्रतिशत की कमी 14 वर्षों मे प्राप्त की गयी, विभिन्न राज्यो मे भारी अन्तर पाए गए। एक ओर हम देखते हैं बिहार जैसे राज्य को जिसमें गरीबी में केवल 8.4 प्रतिशत की कमी प्राप्त की गयी और दूसरी ओर है केरल जिसमें 27.6 प्रतिशत की निर्धनता मे कमी प्राप्त की गयी। जाहिर है कि गरीबी हटाओ प्रोग्रामों और विभिन्न राज्यों मे हुए सामान्य आर्थिक विकास का विभिन्न राज्यों में गरीबी दूर करने पर भिन्न भिन्न प्रभाव हुआ।

3. वैयक्तिक आय वितरण की असमानता (Inequality of Personal Income Distribution)

छठी योजना (1980-85) मे उपभोग व्यय के वितरण सम्बन्धी अनुमान राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 32वे रौंद के आधार पर तैयार किए गए। राष्ट्रीय नमूने सर्वेक्षण (1992) मे उपभोग व्यय एवं रोजगार के बारे मे 1987 88 के लिए और सूचना उपलब्ध करायी गयी।

तालिका 5 : दशमकों के अनुसार कुल निजी उपभोग व्यय का वितरण

प्रतिशत वितरण

दशमक	1977-78*		1987-88**	
	ग्रामीण	नगरीय	ग्रामीण	नगरीय
0-10	3.7	3.4	4.0	3.4
10-20	5.1	4.7	5.3	4.6
20-30	6.2	5.6	6.3	5.3
उप-योग	15.3	13.7	15.6	13.3
30-40	6.6	6.5	6.9	6.1
40-50	8.0	7.4	7.8	7.1
50-60	8.7	8.7	8.8	8.3
60-70	9.8	9.8	9.8	9.6
उप योग	33.1	32.4	33.3	31.1
70-80	11.8	12.3	11.6	11.6
80-90	14.5	14.2	14.2	15.1
90-100	25.6	27.4	25.3	28.9
उप योग	51.9	53.9	51.1	55.6

स्रोत : *छठी योजना (1980-85)**उपभोक्ता व्यय एवं रोजगार सर्वेक्षण, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (1992)

तालिका 5 मे दिए गए आंकड़े 10 वर्षों की अवधि 1977-78 से 1987-88 में कुल निजी उपभोग मे वितरण मे परिवर्तन की जानकारी उपलब्ध कराते हैं। इनसे पता चलता है कि निम्नतम 30 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या के भाग में 15 प्रतिशत से 15.6 प्रतिशत की मामूली वृद्धि हुई है। इसी प्रकार उच्चतम 30 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या के उपभोग व्यय मे 51.9 प्रतिशत से 51.1 प्रतिशत हो जाने से थोड़ी सी गिरावट आयी है। मध्यम 40 प्रतिशत ग्रामीण जनसख्या का भाग 33 प्रतिशत के इर्दगिर्द स्थिर रहा है।

परन्तु इसके विरुद्ध निम्नतम 30 प्रतिशत नगरीय जनसख्या का भाग 10 वर्षीय अवधि के दौरान 13.7 प्रतिशत से गिरकर 13.3 प्रतिशत हो गया। ध्यान देने योग्य बात यह है कि उच्चतम 30 प्रतिशत नगरीय जनसख्या का भाग 53.9 प्रतिशत से उन्नत होकर 55.6 प्रतिशत हो गया। मध्यम 40 प्रतिशत नगरीय जनसख्या का भाग भी 32.4 प्रतिशत से गिरकर 31.1 प्रतिशत हो गया।

निष्कर्ष यह कि जहां पर निजी उपभोग व्यय के ढाचे में ग्राम क्षेत्रो मे कोई परिवर्तन नहीं हुआ, नगरीय क्षेत्रों में उच्चतम 30 प्रतिशत जनसंख्या के भाग में काफी उन्नति हुई है। दूसरे शब्दो में यह कहा जा सकता है कि 1977-78 से 1987-88 की 10 वर्षीय अवधि मे नगरीय असमानता मे निश्चित रूप मे वृद्धि हुई है।

4. पंचवर्षीय योजनाएं और गरीबी हटाओ प्रोग्राम (Five-Year Plans and Anti-Poverty Programme)

पचवर्षीय योजनाओ के अध्ययन से पता चलता है कि जनसाधारण के जीवनस्तर को उन्नत करना आयोजन के लक्ष्यों मे एक प्रमुख लक्ष्य माना गया है। द्वितीय योजना ने अपने भावात्मक विवरण मे ऐसा वातावरण कायम करने की ठानी जिसमे 'छोटे लोगों' की उन्नति हो सके। चौथी योजना मे जनसामान्य और निबल वर्गों की दशा को प्रोन्नत करने की बात की गई और इस उद्देश्य के लिए 'रोजगार तथा शिक्षा' उपलब्ध कराने पर विशेष बल दिया गया। 'निम्न आय वर्गों' की दशा सुधारने के लिए यह अनिवार्य समझा गया कि देश मे सभी को 'राष्ट्रीय न्यूनतम आय' (National Minimum Income) प्राप्त हो। यह स्वीकार किया गया कि छोटे किसान और भूमिहीन मजदूर कृषि-परोलतारी वर्ग (Agricultural Proletariat) का मुख्य भाग हैं परन्तु इनके पास कोई उत्पादक आधार (Productive base) नहीं और वे अपनी आजीविका के लिए मजदूरी रोजगार (Wage employment) पर निर्भर

करते हे। निदेशात्मक सिद्धान्त के रूप मे चौथी योजना ने स्पष्ट लिखा—"प्रोग्रामो के कार्यान्वयन मे सबसे निर्बल का पहले ध्यान रखा जाता है और विकास के लाभो को आयोजित विनियोग (Planned investment) द्वारा इस प्रकार प्रवाहित किया जाता है कि वे अल्पविकसित प्रदेशो और समाज के अधिक पिछडे हुए वर्गों के पास पहुचे।"

पांचवीं योजना और निर्धनता

परन्तु *निर्बल वर्गों के लिए इन सभी पवित्र भावनाओ के बावजूद,* देश मे गरीबो की सख्या बढती ही जा रही है। 1971 में ससदीय चुनाव मे 'गरीबी हटाओ' के नारे ने इस समस्या की ओर ध्यान केन्द्रित किया। पाचवीं योजना ने 20 रुपये प्रति व्यक्ति प्रतिमास (1960-61 की कीमतो पर) को न्यूनतम उपभोग-स्तर मानते हुए अनुमान लगाया है कि "आज 22 करोड से अधिक लोग निर्धनता रेखा से नीचे जीवन व्यतीत कर रहे है।"

यह बडे खेद की बान है कि 'राष्टीय न्यूनतम' की धारणा वर्तमान कीमतो पर 40 रुपये मासिक (1970 71 की कीमतो पर) को आधार-स्तर मानती है। यह तो वस्तुत दीनावस्था (Degradation) है। 22 करोड व्यक्ति इस अतिदीन एव अध पतन की दशाओ मे रहते है क्योंकि 40 रुपये मे तो इनके निर्वाह के लिए भोजन ही मुश्किल से मिल पाता है थोडा कपडा एक छोटा सा झोपडा उपलब्ध कराने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अत यह कहना उचित ही है कि *पाचवीं योजना मे तो अतिदीनता और अध पतन की अवस्था दूर करने का प्रस्ताव था क्योंकि अभी 22 करोड लोगो को दीनता से उन्नत कर निर्धनता मे प्रवेश पाना था।*

निर्धनता के विश्लेषण की स्पष्टतम अभिव्यक्ति पाचवीं योजना द्वारा इन शब्दो मे की गई—"बेरोजगारी अल्परोजगार और अनेक उत्पादको विशेषकर कृषि मे का निम्न ससाधन आधार (Low resource base) निर्धनता के मुख्य कारण है घोर निर्धनता की समाप्ति अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर मे एक निश्चित त्वरण के उपलक्ष्य के रूप मे प्राप्त नहीं की जा सकती। पाचवीं योजना में, यह अनिवार्य होगा कि बेरोजगारी अल्परोजगार और विशाल निम्नस्तरीय निर्धनता पर सीधा प्रहार किया जाए।"[1]

छठी योजना और निर्धनता

छठी योजना (1978 83) मे उल्लेख किया गया कि "1977-78 मे ग्रामीण क्षेत्रो मे कुल जनसख्या का 48 प्रतिशत और नगरीय क्षेत्रो मे 41 प्रतिशत निर्धनता-रेखा (Poverty line) के नीचे था। कुल रूप मे, निर्धनो की सख्या 29 करोड थी। इनमे से लगभग 16 करोड निर्धनता रेखा के 75 प्रतिशत के नीचे रह रहे थे।" आयोजको का मत है कि निर्धनता बेरोजगारी एव अल्परोजगार की समस्या का प्रतिबिम्ब है। इसलिए उन्होंने यह मत व्यक्त किया है—"ग्रामीण एव नगरीय क्षेत्रो मे निर्धनता की पहचान विद्यमान निम्न उत्पादकता (Low productivity) निम्न मजदूरी सविराम रोजगार (Intermittent employment) और जीर्ण बेरोजगारी के रूप मे की जा सकती है। [2]

छठी योजना मे निर्धनता की परिभाषा पोषण की आवश्यकताओ के आधार पर की गई है—यह ग्रामीण क्षेत्रों के लिए 2400 कैलौरी प्रति व्यक्ति प्रतिदिन है और नगरीय क्षेत्रों के लिए 2100 कैलोरी।

तालिका 5 **निर्धनता-स्तर के नीचे जनसख्या**

(लाखों में)

क्षेत्र	1979 80	1984-85
ग्रामीण	2596 (50 7)	16[illegible]0 (30 0)
शहरी	572 (40 3)	492 (30 0)
कुल	3168 (48 4)	2152 (30 0)

नोट बैक्ट मे दिए गए आकडे तदनुरूप क्षेत्र में कुल जनसख्या का प्रतिशत है।

स्रोत योजना आयोग छठी पचवर्षीय योजना (1980 85)

कैलोरी उपभोग (Calories intake) की इन्ही आवश्यकताओ के आधार पर नयी छठी योजना (1980 85) मे निर्धनता रेखा की परिभाषा 1979 80 की कीमतो पर की गई है। इसके लिए ग्राम क्षेत्रो मे 76 रुपये प्रति व्यक्ति *मासिक व्यय और शहरी क्षेत्रो मे 88 रुपये को आधार माना गया है। इस प्रकार छठी योजना (1980 85) ने अनुमान लगाया है कि 1979 80 मे 31 7 करोड व्यक्ति निर्धनता रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहे थे।* यह हमारी कुल जनसख्या का 48 4% है। इसमे 26 करोड (ग्राम जनसख्या का 50 7%) ग्राम क्षेत्रो मे और 5 7 करोड (नगरीय जनसख्या का 40 4%) शहरी क्षेत्रो मे रहते ह।

छठी योजना मे यह अनुमान लगाया गया है कि विकास प्रक्रिया के अपने प्रभाव के कारण ही निर्धनता के नीचे रहने वाली जनसख्या का अनुपात 48 4 प्रतिशत से कम होकर 38 9 प्रतिशत हो जाएगा। परन्तु यदि छठी योजना मे कमजोर वर्गों हरिजनो एव जन जातियो और ग्रामीण निर्धनो के लिए विशेष रूप से तैयार किए गए प्रोग्रामो के प्रभाव को

1 Planning Commission *Towards an Approach to the Fifth Plan* July 1972 p 7

2 Planning Commission *Draft Five year Plan* (1978 83)

भी आका जाए तो 1984-85 तक इनके प्रभावस्वरूप निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली जनसंख्या ग्राम तथा शहरी दोनो क्षेत्रों मे 30 प्रतिशत तक कम हो जाएगी।

सातवीं योजना और निर्धनता

सातवीं योजना ने गरीबी हटाओ प्रोग्रामो के प्रभाव की समीक्षा के आधार पर उल्लेख किया है—"अब इस बात के प्रमाण उपलब्ध हैं कि आर्थिक विकास और निर्धनता विरोधी कार्यक्रमो ने निर्धनता की समस्या पर करारी चोट की है।" राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण द्वारा तैयार किए गए अनुमानो से जाहिर है कि 1977-78 और 1983-84 के दौरान 340 लाख व्यक्ति निर्धनता रेखा (Poverty line) पार कर गए हैं। इस प्रकार निर्धनता रेखा के नीचे रहने वाली जनसख्या का अनुपात 51.2 प्रतिशत से कम होकर 40 4 प्रतिशत हो गया है। सातवीं योजना के दौरान यह आशा की जाती है कि कुल रूप मे निर्धनो की सख्या जो 1984-85 मे 27.3 करोड थी कम होकर 1989-90 मे 21 1 करोड हो जाएगी और इसमें अधिकतर उन्नति ग्राम क्षेत्रो मे होगी। इस प्रकार निधनता रेखा के नीचे रहने वाली जनसख्या का अनुपात जो 1984-85 में 36 9 प्रतिशत था कम होकर 25 8 प्रतिशत हो जाएगा।

तालिका 7 **छठी एवं सातवीं योजना में निर्धनता पर प्रभाव**

	ग्रामीण	शहरी	कुल
1977 78*	25.3 (51.2)	5 4 (38.2)	30 7 (48.3)
1984 85*	22.2 (39 9)	5 1 (27 7)	27.3 (36 9)
1989-90	16.9 (28.2)	4.2 (19.3)	21 1 (25.8)

*राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 32वे रौंद के उपभोक्ता व्यय वितरण पर आधारित अनुमान।

**राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 38वें रौंद (अस्थायी) के उपभोक्ता व्यय वितरण पर आधारित

स्रोत योजना आयोग, सातवीं पंचवर्षीय योजना, खण्ड 1

इसमें सन्देह नहीं कि गरीबी हटाओ कार्यक्रमों को त्वरित करने के नतीजे के तौर पर निर्धनता रेखा नीचे की ओर सरकने लगी है। इसका आंशिक कारण 1980-84 के चार वर्षों के दौरान श्रेष्ठ कृषि निष्पादन हो परन्तु इस बात में कोई औचित्य नहीं कि निधनता रेखा इतनी तेजी से गिरने लगी है कि पाच वर्षों (1985-90) के दौरान इसमे 11 प्रतिशत की कमी होगी और यह 26 प्रतिशत के स्तर पर पहुच जाएगी।

योजना आयोग के विशेषग्य ग्रुप ने जुलाई 1993 मे प्रस्तुत की गयी अपनी रिपोर्ट मे इस बात की पुष्टि की है कि गरीबी-रेखा के नीचे रहने वाली जनसख्या के अनुपात में लगातार कमी हुई है, चाहे जनसख्या के अनुपात के बारे में काफी मतभेद हैं। जबकि सातवीं योजना द्वारा दिए गए अनुमान मे 1987-88 में 29 9 प्रतिशत जनसख्या को गरीब दिखाया गया, विशेषज्ञ ग्रुप ने इसका अनुपात 39.3 प्रतिशत बताया जो एक महत्त्वपूर्ण अन्तर का सकेत देता है। बडे खेद की बात है कि सरकार ने विशेषज्ञ ग्रुप की रिपोर्ट को स्वीकार नहीं किया और अभी भी सरकारी दस्तावेजो मे निर्धनता-अनुपात सम्बन्धी वही आकडे दिए जा रहे है जो विशेषज्ञ ग्रुप द्वारा अस्वीकार कर दिए गए।

5. नौवीं योजना और निर्धनता प्रक्षेपण (Ninth Plan and Poverty Projections)

नौवीं पंचवर्षीय योजना मे विश्व बैंक द्वारा निर्धनता-अन्तराल (Poverty gap) की धारणा का प्रयोग कर गरीबी की तीव्रता का माप तैयार किया गया है। नौवीं योजना ने इस बात पर बल देते हुए कि *"व्यक्तिगणना"* (Head count) अनुपात गरीबी की तीव्रता व्यक्त करने मे असमर्थ है उल्लेख किया "भारत मे गरीबी को मापने का सामान्य तरीका *निर्धनता अनुपात या व्यक्ति-गणना अनुपात* (Head count ratio) है जो कि कुल जनसख्या की तुलना मे गरीबी-रेखा के नीचे रह रहे व्यक्तियो की सख्या का अनुपात है। किन्तु यह गरीबो के इस बडे वर्ग मे उपभोग के वास्तविक स्तरों और जीवन सुविधाओं के अभाव मे कोई भेद नहीं करता। परिणामत निर्धनता-अनुपात गरीबो की तीव्रता और इसकी *गहरायी को सही रूप मे व्यक्त करने मे विफल ही रहता है।* गरीबी की गहरायी को मापने का मानदण्ड निधनता-अन्तराल सूचकाक (Poverty gap index) है जिसमे निधन वर्ग के प्रति व्यक्ति उपभोग स्तर और गरीबी रेखा मे अन्तर को गरीबी रेखा के प्रतिशत के रूप मे व्यक्त किया जाता है। निर्धनता की तीव्रता को मापने का और भी व्यापक माप वर्गीकृत निर्धनता अन्तराल (*Squared poverty gap*) है जिसमें न केवल निर्धनता अनुपात और निर्धनता अन्तराल शामिल होते हैं, बल्कि गरीबो का उपभोग-वितरण भी जिसे विचरण गुणाक (*Co-efficient of variation*) से मापा जाता है। इस आधार पर नौवीं योजना ने 20 वर्षों (1973-74 से 1993-94) की अवधि के लिए निर्धनता की तीव्रता को आका है।

गरीबी के इन तीनो मानदण्डों पर टिप्पणी करते हुए नौवीं योजना ने उल्लेख किया यह देखा गया है कि (तालिका 8) कि निर्धनता-अनुपात की गिरावट की औसत

तालिका 8 निर्धनता के सूचक

वर्ष	निर्धनता-अनुपात			निर्धनता-अन्तराल			वर्गीकृत निर्धनता अन्तराल		
	ग्रामीण	नगरीय	कुल	ग्रामीण	नगरीय	कुल	ग्रामीण	नगरीय	कुल
1973 74	56 4	49 0	54 9	16 56	13 64	15 95	6 81	5 26	6 48
1977 78	53 1	45 2	51 3	15 73	13 13	15 15	6 48	5 25	6 21
1983 84	45 7	40 8	44 5	12 32	10 61	11 96	4 78	4 07	4 61
1987 88	39 1	38 2	38 9	9 11	9 94	9 32	3 15	3 60	3 26
1993 94	37 3	32 4	36 3	8 45	7 88	8 30	2 78	2 82	2 79
औसत वार्षिक गिरावट	2 05	2 05	2 09	3 31	2 71	3 21	4 38	3 07	4 13

स्रोत योजना आयोग (1998) नौवीं पचवर्षीय योजना (1997 2002) खण्ड I

वार्षिक दर 1973 74 से 1993 94 की अवधि के लिए ग्रामीण एव नगरीय दोनो क्षेत्रो मे 2 05 प्रतिशत रही और समग्र देश के लिए 2 9 प्रतिशत। इसी अवधि के दौरान निर्धनता अन्तराल अनुपात (Poverty gap ratio) ग्रामीण क्षेत्रों मे 3 31 प्रतिशत प्रति वर्ष नगरीय क्षेत्रो मे 2 71 प्रतिशत प्रति वर्ष और पूरे देश के लिए 3 21 प्रतिशत की दर से गिरा। *वर्गीकत निर्धनता अन्तराल* (Squared poverty gap) इससे भी तेजी से गिरा ग्रामीण क्षेत्र मे 4 38 प्रतिशत नगरीय क्षेत्रो मे 3 07 प्रतिशत और समग्र देश क लिए 4 13 प्रतिशत। इससे नौवीं योजना ने नीति सम्बन्धी यह निष्कर्ष निकाला

'यह बात कि निर्धनता के अधिक वितरण सवेदनशील प्रमाप (Distribution sensitive measure) पिछले 20 वर्षों मे अपेक्षाकृत अधिक तेजी के साथ गिरे हैं से आशावाद की झलक मिलती है। इससे जाहिर है कि निर्धनता के आयात (Incidence) की तुलना मे निधिनता की गहरायी और तीव्रता मे अधिक तेज गति से कमी हुई है ओर समय के साथ गरीब वर्ग गरीबी रेखा के आस पास बहुत अधिक मात्रा मे जमा हाने लगा है और एक ऐसी परिस्थिति पैदा हो गयी है जिसमे आर्थिक वृद्धि का पहले की अपेक्षा निर्धनता को कम करने मे कहीं अधिक प्रभाव होगा।

अत नौवीं योजना मे 1996 97 के लिए निर्धनता के अनुमान 1993 94 आर 1996 97 के दौरान अनुभव की गयी वृद्धि दर के आधार पर तैयार किए गए हं और यह अनुमान लगाथा गया है कि पिछले तीन वर्षों के दौरान 6 5 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि दर के परिमाणस्वरूप 1996 97 में ग्रामीण क्षेत्रो मे निर्धनता अनुपात कम होकर 30 55 प्रतिशत नगरीय क्षेत्रा मे 25 58 प्रतिशत और सिमग्र देश मे गिरकर 29 18 प्रतिशत हो गया।

तालिका 9 भारत मे राष्ट्रीय निर्धनता अनुपात के पक्षेपण

प्रतिशत

क्षेत्र	1996 97	2001 02	2006 07	2011 12
ग्रामीण	30.55	18 61	9 64	4 31
नगरीय	25.58	16 46	9 28	4 49
कल	29 18	17 98	9 53	4 37

स्रोत योजना आयोग, **नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997 2002)**

आगामी 15 वर्षों के लिए निर्धनता के प्रक्षेपण तैयार करते समय आयोजको के निम्नलिखित मान्यताए की हैं—

नौवीं योजना (1997 2002) मे 7 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर, दसवा योजना (2002 2007) मे 7 5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर और ग्यारहवीं योजना (2007 2012) मे 8 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर की कल्पना को गयी है और इसके साथ प्रतिव्यक्ति पारिवारिक उपभोग मे इन तीनो अवधियो मे 4 3 प्रतिशत, 4 8 प्रतिशत और 5 3 प्रतिशत की क्रमश वार्षिक वृद्धि होगी।

इन मान्यताओ के आधार पर यह प्रत्याशा की जाती है कि निर्धनता अनुपात जो 1996 97 मे 29.2 प्रतिशत था कम होकर 2001 2002 मे लगभग 18 प्रतिशत 2006 2007 मे और गिरकर 9 5 प्रतिशत और 2011 2012 मे गिरकर 4 4 प्रतिशत के निम्न स्तर पर पहुच जाएगा। आयोजको ने दो और मान्यताए भी की हैं। उनका मत है कि दो प्रधान पैरामीटर स्थिर रहेंगे (क) लोरेन्ज अनुपात और (ख) नगर ग्रामाण प्रति व्यक्ति उपभोग मे अन्तर।

नौवीं योजना का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से पता चलता है कि अति निर्धन (Ultra poor) (विश्व बैक की अवधारणा के अनुसार वे व्यक्ति तो निर्धनता रेखा के 75 प्रतिशत व्यय से नीच स्तर पर रह रहे ह) वर्ग मे प्रभावी रूप

मे कमी हुई है चाहे य अभी गरीबी रेखा को पार नहीं कर पाए हे परन्तु ये गरीबी रेखा के आस पास अधिक मात्रा मे जमा होने लगे हैं ओर इससे नौवीं योजना इस नतीजे पर पहुचा हे कि उच्च वद्धि दर का पहले की अपेक्षा गरीबी कम करने पर अधिक प्रभाव होने की सभावना है।

इसके अतिरिक्त, निर्धनता अन्तराल ओर वर्गीकृत निर्धनता अन्तराल जेसे अप्रत्यक्ष सूचको के आधार पर इस नतीजे पर पहुचे हे कि अति निर्धनता कम हो गया है परन्तु इसको राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (National Sample Survey) के आकडों के आधार पर परखना चाहिए था ताकि दोहरा प्रमाण मिल जाता। इसके अतिरिक्त यह मान लेना कि यह सभी राज्यो के लिए समान हे एक सन्देहात्मक निष्कर्ष ही है। यह कहीं बेहतर होगा यदि राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के आकडो के आधार पर निर्धनता के अलग-अलग चक्रों का विश्लेषण किया जाता ताकि बेहतर नीति निर्माण हो सके।

मूल प्रश्न यह हे कि वद्धि दर बढाने की रणनीति द्वारा नौवीं योजना मे 11 2 प्रतिशत की सीमा तक गरीबी नौवीं योजना 8.5 प्रतिशत तक दसवीं योजना और 5 2 प्रतिशत ग्यारहवा योजना मे कम हो जाता है तो क्या निर्धनता विरोधी कार्यक्रम (Anti poverty programmes) या गरीबो की सहायता के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली जारी रखने की जरूरत है। नौवीं योजना का मत है कि निर्धनता विरोधी प्रोग्राम जारी रहने चाहिए ओर प्राकृतिक विपदाओ जसे अकाल मे सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा गरीबो को सुरक्षा की जानी चाहिए। इस सम्बन्ध म तर्क के रूप मे नौवीं योजना मे उल्लेख किया गया 'प्रक्षेपित अवधि के दौरान निर्धनता मे सभव कटौती के ये प्रक्षेपण, चाहे काफी प्रभावशाली हैं परन्तु इनके आधार पर आत्मसतुष्ट हो जाना ठीक नहीं। विशेषकर, आज निर्धनता विरोधी प्रोग्रामो की उपयोगिता या आकार पर प्रश्न चिन्ह लगाने का कोई कारण नहीं। ये प्रोग्राम याद रहे कि न केवल गरीबो के फौरी अभाव को कम करते हे बल्कि उत्पादक परिसम्पत (Productive assets) कायम करने मे महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं—समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम म निजी परिसम्पत के रूप मे ओर जवाहर रोजगार योजना ओर रोजगार आश्वासन योजना मे सामूहिक परिसम्पत के रूप म। अत इन योजनाओ के प्रभाव ऊपर दिए गए विश्लेषण के अनुसार इनमे अन्तर्निहित हे—एक तो गरीबो के उपभोग पर प्रत्यक्ष रूप मे प्रभाव डालकर और दूसरे अप्रत्यक्ष रूप मे कायम किए परिसम्पतो से जनित आय के प्रभाव के रूप मे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि समय-श्रेणी विश्लेषण से यह सकेत मिलता है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली के साथ इन योजनाओ के चालू रहने से निर्धनता के वितरण सवेदनशील सूचकांक जसे निर्धनता-अन्तराल और वर्गीकृत निर्धनता-अन्तराल प्राकृतिक विपदाओ जैसे अकालो के समय खराब होने से रुक जाते हैं। इन कार्यक्रमों के बन्द हो जाने से निर्धनता रेखा के नीचे या इर्द गिर्द रहने वाली जनसख्या की बहुत सी दुर्बलताए सामने आ जाएगी जोकि भारतीय अर्थव्यवस्था मे विद्यमान है।" इस कारण आयोजको ने निर्धनता विरोधी कार्यक्रमो ओर साथ साथ सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा गरीबो की कठिनाई कम करने के उपायों को जारी रखने की सिफारिश की है। किन्तु यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन कार्यक्रमो की प्रभाविता को बढाया जाए और इनका लक्ष्य सीधे गरीब वर्गों को लाभ पहुचाना होना चाहिए।

नौवीं योजना के निर्धनता प्रक्षेपणो (Poverty projections) की समीक्षा करने से पता चलता है कि ये अत्यन्त आशावादी हैं और सन् 2012 तक गरीबी को लगभग समाप्त कर देना चाहते हे। इसके लिए जरूरी हे कि उच्चतम 10 प्रतिशत जनसख्या के उपभोग व्यय का हस्तातरण निम्नतम 10 प्रतिशत जनसख्या को होना चाहिए। चाहे नौवीं योजना ने उपभोग व्यय के हस्तातरण की वाछनीयता की ओर सकेत किया है किन्तु इस हस्तातरण के लिए कोई विशेष प्रक्रिया कायम करने का सुझाव नहीं दिया। इस सम्बन्ध मे सबसे अच्छी प्रक्रिया तो रोजगार का विस्तार हे विशेषकर कृषि ओर लघु उद्योगो को जीवन्त बनाकर। ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन दो क्षेत्रों द्वारा कुल रोजगार का 80 प्रतिशत उपलब्ध कराया जाता हे। इन क्षेत्रो म निम्न स्तरीय रोजगार, गुप्त बेरोजगारी और अल्परोजगार विद्यमान हैं जिनके कारण लोग कम आय अर्जित करते हे। जब तक इन क्षेत्रो को पुन जीवित नहीं किया जाता, निर्धनता मे कमी लाना बहुत ही कठिन होगा।

दूसरे, निर्धनता के प्रक्षेपण, विशेषकर उच्च निर्धनता अनुपात वाले राज्यो अर्थात् बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के सम्बन्ध मे महत्त्वाकाक्षा प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ, बिहार मे 15 वर्षों की अवधि मे निर्धनता अनुपात को 1996 97 मे 44 1 प्रतिशत से कम करके 2012 तक 6.5 प्रतिशत तक लाना, यदि असभव नहीं तो अत्यन्त कठिन है। ऐसा राज्य जिसमे भारी राजनीतिक अस्थिरता है उसके द्वारा 7 प्रतिशत की औसत वार्षिक वद्धि दर प्राप्त करना पूर्णतया अवास्तविक है। जिस राज्य मे 1973 74 से 1993 94 का 20 वर्षो की अवधि मे निर्धनता 0 6 प्रतिशत की दर से घटी हो, यह उम्मीद करना कि 1997 2012 के दौरान निर्धनता की गिरावट की औसत वार्षिक दर 1 88 प्रतिशत (अर्थात् तिगुनी से भी अधिक) हो जाएगी कपोल कल्पना प्रतीत होता है। इसी प्रकार, उड़ीसा के सदर्भ मे

निर्धनता अनुपात को 15 वर्षों की अवधि मे 40 2 प्रतिशत से घटाकर 4 2 प्रतिशत करना बडे शौर्य का कार्य होगा। यदि *समग्र देश के लिए निर्धनता अनुपात आगामी 15 वर्षों मे* घटाकर 4 4 प्रतिशत तक लाया जा सकता हे तो यह एक प्रकार का चमत्कार ही होगा। इस विश्लेषण मे निर्धनता विरोधी कार्यक्रमो मे विद्यमान छिद्रो ओर अन्य समाजार्थिक कारण तत्वो को दृष्टि मे नही रखा गया जो राज्यो मे निर्धनता मे कमी लाने के प्रोग्रामो मे रुकावटे उत्पन्न करते हैं और इन विश्लेषणो मे इनका ध्यान रखना होगा।

तालिका 10 **राज्यानुसार प्रक्षेपित अवधि मे निर्धनता अनुपात के प्रक्षेपण**

क्र सख्या	राज्य	1996 97	2001 2002	2006 2007	2011 2012
1	पजाब	80	30	0)	02
2	गुजरात	171	91	39	13
3	आध्र प्रदेश	174	111	54	24
4	हरियाणा	184	102	50	26
5	राजस्थान	203	109	47	15
6	केरल	212	114	48	14
7	हिमाचल प्रदेश	224	140	73	31
8	पश्चिम बगाल	251	135	63	29
9	असम	65	107	38	21
10	कर्नाटक	307	179	87	35
11	तमिलनाडु	307	181	90	36
12	उत्तर प्रदेश	325	219	179	69
13	महाराष्ट्र	327	207	114	54
14	मध्य प्रदेश	334	220	128	68
15	उडीसा	402	229	108	46
16	बिहार	441	275	141	65
अखिल भारत		**292**	**180**	**9.5**	**4.4**

नोट 1 राज्य 1996 97 में निर्धनता अनुपात के बढते हुए क्रमानुसार दिखाए गए है।

2 आकडो को एक दशमलव बिन्दु तक पूरा कर दिया गया है।

स्रोत योजना आयोग (1998) **नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997 2002)**

तीसरे, ऐसा महसूस होता है कि आयोजको का आर्थिक वृद्धि के रिसाव प्रभाव (Trickle down effect) पर अत्यधिक विश्वास है। आर्थिक सुधारो के आधीन विकास पूजी प्रधान *तकनालाजी के प्रतिस्थापन द्वारा प्राप्त किया जा रहा है और* इसके परिणामस्वरूप सगठित क्षेत्र मे श्रम का विस्थापन हो रहा है। जब तक अर्थव्यवस्था रोजगार में 3 4 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त नहीं करती तब तक निर्धनता की समस्या पर करारी चोट करने की सभावना उज्ज्वल दिखायी नहीं देती जैसा कि नावीं योजना के प्रक्षेपणो मे कल्पित किया गया है।

अन्तिम यह कल्पना करना कि 7 8 प्रतिशत की *ओसत वृद्धि दर 15 वर्षों की पूरी अवधि मे बनी रहे* इसे वास्तविक स्वरूप देने मे कठिनाइया भी उत्पन्न हो सकती हे और यह भी हो सकता ह कि ऐसा न भी हो सके। पहले ही 1997 98 मे सकल देशीय उत्पाद की 5 प्रतिशत वृद्धि दर रहने की सभावना है और ओद्योगिक उत्पादन की 4 2 प्रतिशत। 1998 99 मे भी सभावना उज्ज्वल दिखायी नहीं देती विशेषकर इस कारण कि सयुक्त राज्य अमेरिका ने मई 1998 मे किए गए परमाणु परीक्षणो के विरोध मे विदेशी पूजी अन्तर्प्रवाह पर प्रतिबन्ध लगा दिए है और इस कारण 7 *प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि दर को बनाए रखना कठिन* लगता हे।

इन सबके बावजूद यह उल्लेख करना उचित होगा कि यदि विकास प्रक्रिया को त्वरित करके 7 8 प्रतिशत की *ओसत वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त की जा सकती ह* और इसके साथ साथ पिछडे हुए राज्यो अर्थात् बिहार उत्तर प्रदेश कर्नाटक मध्य प्रदेश महाराष्ट्र और तमिलनाडु के लिए विशेष उपाय किए जा सकते ह तो आगामी 15 वर्षों *(1997 2012)* मे *निर्धनता की समस्या पर निश्चित ओर* करारी चोट की जा सकती है।

6 गरीबी दूर करने मे विफलता के कारण

परन्तु प्रश्न यह है कि भारत की योजनाए अभी तक अतिदीनता की अवस्था को ही दूर नहीं कर पाई गरीबी हटाने की तो बात ही दूर रही। इसका मुख्य कारण यह है कि आयोजको ने यह मान लिया कि विकास *विधि द्वारा राष्ट्रीय* आय में वृद्धि होगी और इसके साथ प्रगामी कराधान (Progressive taxation) और सार्वजनिक कल्याण नीतियो के *परिणामस्वरूप गरीबो का जीवन स्तर उन्नत हो जाएगा। आयोजन की उत्पादन प्रेरक पद्धति (Production oriented approach)* जिसमे उत्पादन के ढग को परिवर्तित न किया जाए, का इसके सिवाय और क्या परिणाम हो सकता ह कि विकास के लाभ उत्पादन के ससाधनो के स्वामी ही हडप कर जाए। इस बात को स्वीकार करते हुए *पाचवीं योजना* ने अपने पहले ड्राफ्ट मे लिखा— पहली योजनाओ म विकास की विधि की व्याख्या करते हुए हमने यह कल्पना की कि राष्ट्रीय आय की तीव्र वृद्धि दर स्वय अधिक और पूर्ण *रोजगार कायम करेगी जिससे गरीबो का रहन सहन का स्तर* ऊचा उठ जाएगा। हमने यह भी कल्पना की कि आय तथा सम्पत्ति की असमानताओ को कम करने के लिए पुनर्वितरण

5 Pla g Con n ss on *To ards an Approach to the F f l Plan* (1974 79) July 1972 p 3

नीतियो (Redistributive Policies) का क्षेत्र बहुत ही सीमित है।"[5] उत्पादन मे वृद्धि के परिणामस्वरूप होने वाले लाभो का छोटे किसानो, भूमिहीन मजदूरो या कारखाना मजदूरों में (बिना सम्पत्ति धारणाधिकार (Tenurial rights) में तबदीली किए) स्वचालित रूप मे परिवर्तित होने का सिद्धान्त निश्चय ही विफल होना था। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि घोर निर्धनता में रहने वाले व्यक्ति हमारी कुल जनसख्या का 40 से 50 प्रतिशत है।

जिन आयोजको ने छठी योजना तैयार की उनके आत्मविश्वास मे कमी का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उन्होंने निर्धनता-रेखा की धारणा को और भी नीचे कर इसे दीनता (Destitution) के स्तर पर लाने का प्रयत्न किया। इस प्रकार गरीबी की नयी परिभाषा देकर उसे दूर करने का प्रयास एक पराजयवादी दृष्टिकोण है। परन्तु योजना आयोग ने नम्र निर्धनता स्तर की धारणा को क्यो अपनाया ? इसका मुख्य कारण इसके द्वारा दो दुश्चक्रो अर्थात् निर्धनता के दुश्चक्र (*Vicious circle of poverty*) और समृद्धि के दुश्चक्र (Vicious circle of affluence) पर सीधा और एक साथ प्रहार करने मे हिचकिचाहट है। जहा पर आयोजकों ने निर्धनता को दूर करने के लिए सिचाई और छोटे उद्योगो द्वारा रोजगार बढाने के लिए विनियोग प्रोग्राम निश्चित किए हैं, वहा वे समृद्धि के दुश्चक्र को तोडने के लिए प्रभावी उपचार निर्धारित करने में विफल रहे हैं।

अत आयोजक इस मूल तथ्य को समझ नहीं पाए हैं कि विकास और असमानता में कमी दोनो की व्यापक निर्धनता को सफलतापूर्वक दूर करने के लिए अनिवार्य हैं। इस बात पर बल देते हुए श्रीमती कमला सूरी एव एम गगाधर लिखते हैं—"ये सब इस बात की ओर सकेत करते हैं कि भारत मे निर्धनता देश मे चिरस्थापित आर्थिक ढाचे का परिणाम है जिसमे आय प्रदान करने वाली परिसम्पतो (Assets) का असमान वितरण विद्यमान है। दीर्घकाल के लिए गरीबी को दूर करने को संस्थानात्मक बीमारी का उपचार करना होगा अत बिना समृद्धि के दुश्चक्र को तोडे गरीबी के दुश्चक्र को तोडने का प्रयास संचयी प्रक्रिया पर प्रभाव नहीं डाल सकता, न ही यह गरीबो और अमीरो में बढती हुई खाई को पाट सकता है। इस सदर्भ मे "गरीबी हटाओ" कार्यक्रम गरीबी दूर करने के लिए अपूर्ण है। दूसरे शब्दों में इसकी सहायता के लिए "अमीरी हटाओ" कार्यक्रम चलाना होगा।"

छठी योजना में उत्पादन और वितरण अलग-अलग क्रियाए समझी गई है। किन्तु उत्पादन की शक्तिया वितरण के ढाचे को निर्धारित करती है। और इस कारण उत्पादन कुशलता (Productive efficiency) और वितरण सम्बन्धी न्याय को विकास के दो स्वतन्त्र चल (Independent variables) मानना उचित नहीं। उत्पादन और वितरण बुनियादी तौर पर एक-दूसरे से जुडे हुए हैं और आय-वितरण ढाचा उत्पादन के ढाचे को निर्धारित करता है। जब तक आय वितरण के ढाचे मे परिवर्तन नहीं किया जाता, तब गरीबी को दूर करने के लिए भृति वस्तुओ (Wage goods) के उत्पादन को पर्याप्त मात्रा मे बढाने का लक्ष्य विकृत हो जाएगा। इसके लिए यह जरूरी है कि ग्रामीण तथा शहरी दोनो क्षेत्रो मे परिसम्पतो के कुवितरण (maldistribution of assets) को ठीक करने के लिए सीधा प्रहार किया जाए। यह निर्णय अर्थशास्त्र की अपेक्षा राजनीति शास्त्र के क्षेत्र का है। छठी योजना मे भू-सुधार या शहरी सम्पत्ति पर अधिकतम सीमा लगाकर आय प्रदान करने वाली परिसम्पदो के वितरण को सुधारने के लिए जो मनोबल दिखाना चाहिए था वह व्यक्त नहीं किया गया। इसी कारण इसमे सस्थानात्मक परिवर्तनो (Institutional changes) की बात अधमने ढग से की गई है। परिणामत निर्धनता की दर कम करने का लक्ष्य बिना सस्थानात्मक परिवर्तन के एक मृगतृष्णा है।

7. गरीबी हटाओ कार्यक्रम
(Poverty Eradication Programme)

निर्धनता हराने के कार्यक्रम की दो मूल शर्ते है। प्रथम कृषि सम्बन्धों में परिवर्तन ताकि भूमि का स्वामित्व जनसख्या के अधिकतर भाग मे बट सके। इसके अतिरिक्त भू-धारणाधिकार (*Tenancy rights*) काश्तकारी वर्गो को सुरक्षा प्रदान करते हैं। दुर्भाग्यवश पाचवीं योजना के गरीबी हटाओ कार्यक्रम में इस पहलू का जिक्र नहीं था। फार्म-लाबी (Farm Lobby) के दबाव के आधीन आयोजको ने यह बात स्वीकार कर ली है कि भू सम्बन्धो का पुनर्गठन राजनीतिक दृष्टि से लाभकारी नहीं है। यह विचार रूढ बन जाता है तो छोटे किसान या सीमान्त किसान के बारे मे चिन्ता अर्थहीन हो जाती है क्योंकि लाखो छोटे एव सीमान्त किसानो के लिए भूमि ही मुख्य ससाधन आधार है। अत योजना आयोग ने उल्लेख किया है—"छोटी जोतो के लिए ऊची प्रति भू इकाई उत्पादिता (Productivity per unit of land) प्राप्त करने के मार्ग में कोई तकनालॉजीय अवरोध (Technological barriers) नहीं है। दुनिया मे कृषि मे छोटी जोतो से अधिकतम उत्पादिता प्राप्त करने के बहुत से उदाहरण हैं जैसे जापान मे चावल से और मिश्र मे रूई से।"[6] यदि एक बार छोटे किसानो को अपेक्षाकृत मजबूत ससाधन आधार (Resource base) प्राप्त हो जाए, तो इसे ऋण एव बेहतर आदानो (Inputs) द्वारा मजबूत करना होगा ताकि गरीब किसानो को घोर निर्धनता के

6 Planning Commission, *Approach to the Fifth Plan (1974 79) January 1973* p 5

चगुल से बाहर निकाला जा सके। अतिरिक्त भूमियो को प्राप्त करने मे कानूनी कठिनाइयो के कारण देर लग सकती है इसलिए पहले कदम के रूप मे यह जरूरी है कि सभी फसल सहभाजको (Share croppers) या अस्थायी मुजारो को स्थायी मुजारो में परिवर्तित कर दिया जाए।

दूसरे गरीबी हटाओ का कोई भी कार्यक्रम किसी भी ऐसी अर्थव्यवस्था मे सफल नही हो सकता जो स्फीति और चढती हुई कीमतो मे जकडी हो। स्फीति (Inflation) अपने स्वभाव से ही असमानताओ को बढाती है यह निर्धन वर्गो की आय को हडप जाती है और उनकी आर्थिक दशा को और खराब करती है। गरीबी हटाओ कार्यक्रम के लिए इस कारण यह अनिवार्य हो जाता है कि उच्च वर्गों (भू स्वामियो महाजनो व्यापारियो टासपोर्टरो और पूजीपतियों) को उपलब्ध अतिरेक (Surplus) को समाप्त करना चाहिए। चूँकि अधिकतर अतिरेक छिपे धन (Black money) के रूप मे है इसलिए यह जरूरी है कि कडे उपायो का प्रयोग किया जाए ताकि ससाधनो का विलासपूर्ण उपयोग मे अपनिर्देशन न हो।

ये दो शर्तें तभी पूरी हो सकती है यदि राष्ट्रीय नेतत्व अत्यावश्यक सरचनात्मक सुधारो (Structural reforms) को चालू करने के लिए राजनीतिक मनोबल रखता है। यहा इस बात का सकेत करना होगा कि पूजीवादी लोकतन्त्रो मे भी इस सरचनात्मक सुधारो को गरीबी हटाओ प्रोग्राम का अनिवार्य अग समझा जाता हे परन्तु योजना प्रलेखो का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि इस सम्बन्ध मे आवश्यक नैतिक मनोबल कमजोर पडता जा रहा है।

समस्या रोजगार उपलब्ध कराने और उत्पादिता का स्तर ऊचा उठाने की है। इस सम्बन्ध मे मूल बात यह है कि रोजगार को आयोजन का केन्द्र बनाना चाहिए और उत्पादन की नीतिया इस केन्द्रीय उद्देश्य के गिर्द बुनी जानी चाहिए। योजना प्रलेख मे स्पष्ट कहा गया—'रोजगार वह सबसे विश्वसनीय उपाय है जिसके द्वारा निर्धनता रेखा से नीचे रहने वाले लाखों व्यक्तियो को ऊपर उठाया जा सकता है। आय पुनर्वितरण के पारपरिक राजकोषीय उपाय (Conventional fiscal measures) अपने आप मे इस समस्या पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं डाल सकते।

निम्नलिखित उपायो द्वारा रोजगार बढाकर निर्धनता दूर की जा सकती है—

1 10 17 एकड़ की अधिकतम जोत (Ceiling) तय करने के पश्चात् प्राप्त अतिरिक्त भूमि का छोटे तथा सीमान्त किसानो मे पुनर्वितरण।

2 फसल सहभाजको एव अस्थाई मुजारो को भू धारण की सुरक्षा प्रदान करना।

3 56 3 लाख परिवारो को अकषि योग्य भूमियो परती भूमियो और कषि योग्य बजर भूमियो पर रोजगार उपलब्ध कराने का प्रोग्राम तैयार करना चाहिए।

भू वितरण और बस्ती निर्माण योजनाओ को अपने आप मे ग्राम निर्धनता की समस्या के लिए पर्याप्त नही समझा जा सकता चाहे वे इस दिशा मे समाधान का एक महत्त्वपूर्ण अंग हैं। अत ग्राम भारत मे श्रम प्रधान तकनीको द्वारा औद्योगीकरण के साथ साथ यदि भूमि का समतावादी वितरण (Egalitarian distribution) हो जाए तो ग्राम निर्धनता की समस्या मे सुधार हो सकता है।

4 विशेष कार्यक्रम अर्थात् छोटे किसानो की विकास एजेन्सी सीमान्त किसानो और कषि मजदूरो की एजेन्सिया, ग्राम रोजगार के लिए महाभियान और सूखाग्रस्त क्षेत्र प्रोग्राम आदि विकास के स्थायी कार्यक्रम बना देने चाहिए। गरीबी हटाओ कार्यक्रम की आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुए 100 से 150 लाख श्रम वर्षो की नौकरियो की जरूरत होगी। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन प्रोग्रामो को स्थायी बनाया जाए और योजना मे इनके लिए अधिक साधनो की व्यवस्था की जाए।

इसके अतिरिक्त इन योजनाओ की मुख्य समस्या यह है कि सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रमो की व्यवस्था के लिए ठेकेदारो को चिरस्थायी परिसम्पत (Durable assets) कायम करने का काम सौपा जाता है। इस प्रकार की योजना मे कई कठिनाइया है। इसमे चीन की ग्राम कम्यून (Village communes) की भाति कोई स्थायी मशीनरी स्थापित होनी चाहिए जो इन प्रोग्रामों को लगातार चलाती रहे। यह अनुभव किया गया है कि ठेकेदार एकदम भर्ती करके प्रोग्राम को थोडे समय मे समाप्त कर देते हैं। इसके अतिरिक्त ठेकेदार ऊची मजदूरी देना नहीं चाहते बल्कि अपने लाभ को अधिकतम करने मे रुचि रखते हैं। तर्क का सार यह है कि ठेकेदारी प्रणाली मे प्रेरणा में अन्तर होने के कारण प्रोग्राम का उद्देश्य विफल हो जाता है। अत यह जरूरी है कि ऐसा सस्थानात्मक ढाचा कायम किया जाए जिसमे ग्रामो के लोगो विशेषकर छोटे किसानों और भूमिहीन कषि मजदूरो को इस प्रोग्राम को लागू करने के लिए जिम्मेदारी देनी चाहिए तभी एक वर्ष मे 10 मास रोजगार उपलब्ध कराने का उद्देश्य सफल हो सकता है।

5 20 हजार जनसख्या वाले नगरो का विकास केन्द्रो (Growth centres) के रूप मे स्थानीय श्रम और उपलब्ध कच्चे माल के प्रयोग से विकास करना चाहिए। इसके लिए

---

7 Pl n g C n n Approa o c F fl Plan (1974 79) p

जिला स्तर पर विस्तारपूर्वक योजनाएं बनानी चाहिएं। इन विकास केन्द्रों में भूमिहीन श्रमिकों या अन्य अकृषि-श्रमिकों को रोजगार उपलब्ध कराया जा सकता है और इस प्रकार उन्हें अपने जीवन के ढर्रे को बदलने की भी आवश्यकता नहीं।

6 नये विकास केन्द्रों में दुग्धशालाओं और पशुपालन, मुर्गीपालन, मछली पकड़ने, वन, लघु-स्तर उद्योगों आदि में विनियोग किया जा सकता है।

7. पिछड़े हुए क्षेत्रों और पिछड़े हुए वर्गों के स्कूलों के लिए अधिक अनुदान उपलब्ध कराए जाएं ताकि अवसर की असमानता कम की जा सके। शिक्षा लक्ष्यों की प्राप्ति के सूचक के रूप में विभिन्न स्तरों पर स्कूलों में भर्ती के आंकड़े देने की अपेक्षा शिक्षा स्तरों पर ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि समाज में गैर-सम्पन्न वर्गों के बच्चों के लिए निश्चित जगहें उपलब्ध हों। पिछड़े वर्गों के सम्बन्ध में पढ़ाई छोड़ देने वाले (*Dropouts*) की समस्या का विश्लेषण करके उपचार का आयोजन करना चाहिए।

गरीबी हटाने की बहुत-सी योजनाएं कार्यान्वयन के दौरान विकृत रूप धारण कर लेती हैं। या तो इन्हें छोड़ दिया जाता है या इनके बारे में ढुलमुल नीति अपनाई जाती है। अतः यह अनिवार्य है कि ग्राम विकास के प्रोग्राम पंचायतों के आधीन न रखे जाएं। इसकी बजाय विशेष परिषदें स्थापित करनी चाहिएं जिनमें बहुसंख्यक प्रतिनिधित्व छोटे तथा सीमान्त किसानों, कारीगरों तथा भूमिहीन श्रमिकों को देना चाहिए। जब तक विकास परिषदों के ढांचे में आमूल परिवर्तन नहीं किया जाता तब तक गरीबों के लिए बनाई गई नीतियों का पालन करना संभव नहीं। सरकारी अफसरों, भूपतियों एवं पूंजीपतियों और राजनीतिज्ञों के बीच वर्तमान गठबन्धन को तोड़ने के लिए जन-विकास परिषदें (*People's Development Councils*) कायम होनी चाहिएं। उसी हालत में गरीबी हटाओ प्रोग्राम के सफल होने की संभावना है।

□□□

22

भारत में बेरोजगारी

(UNEMPLOYMENT IN INDIA)

1 भारत मे बेरोजगारी का स्वरूप (Nature of Unemployment in India)

भारत एक विकासशील किन्तु अल्पविकसित देश है। इस कारण यहा बेरोजगारी का स्वरूप औद्योगिक दृष्टि से उन्नत देशों की अपेक्षा भिन्न है। लार्ड केन्स के विश्लेषण के *अनुसार विकसित देशो में बेरोजगारी का मूल कारण समर्थ* माग का अभाव (Lack of effective demand) है। इसका अर्थ यह है कि ऐसी अर्थव्यवस्थाओ मे मशीने बेकार हो जाती हैं और श्रम की माग उद्योगो के उत्पादन की माग कम जाने के कारण गिर जाती हैं। इस कारण केन्स (Keynes) ने बेरोजगारी को दूर करने के उपचारो मे इस बात पर बल दिया कि देश मे मन्दी को रोकने के लिए समर्थ माग को पर्याप्त स्तर पर ऊचा रखना होगा।

आर्थिक उच्चावचन (Economic fluctuation) के कारण भारत मे 1929 की घोर मन्दी (Great Depression) के फलस्वरूप बेरोजगारी उत्पन्न हुई जिससे देश में भारी *विपत्ति आई। परन्तु केन्स के उपचारों के फलस्वरूप चक्रिक* बेरोजगारी (Cyclical unemployment) को तो कम करना सभव है। इसी प्रकार दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात् जब युद्धकालीन उद्योग बन्द कर दिए गए, तो इससे भी सेना मे छटनी अस्त्र शस्त्र के कारखानो मे कम उत्पादन आदि के कारण काफी हद तक सघर्षी बेरोजगारी (Frictional unemployment) पैदा हो गई। इन श्रमिको को शांतिकालीन उद्योगो में *रोजगार उपलब्ध कराना था। इसी प्रकार 1950 के पश्चात्* आरभ की गई सुव्यवस्थीकरण (Rationalisation) की प्रक्रिया के कारण भी कुछ श्रम का प्रतिस्थापन किया गया। जिससे बेरोजगारी उत्पन्न हुई। किसी अर्थव्यवस्था की लोचशीलता का अनुमान इस बात से लगाया जाता है कि वह किस गति से सघर्षी बेरोजगारी को समाप्त करती है।

1 कछ लेखकों के अनुसार अस्थायी बेरोजगारी को पूर्णतया दूर करना असभव है औद्योगिक श्रमिकों मे दो से तीन प्रतिशत तक बेरोजगारी का विद्यमान होना स्वाभाविक एव अनिवार्य है

किन्तु चक्रिक बेरोजगारी (Cyclical unemployment) या सघर्षी बेरोजगारी की अपेक्षा अल्पविकसित देशो में ग्रामीण क्षेत्र में तो अल्परोजगार (Under employment) या अदृश्य बेरोजगारी (Disguised unemployment) की विद्यमानता और नगरीय क्षेत्र मे शिक्षित वर्गों मे बेरोजगारी की समस्या अधिक शोचनीय है। *यहा यह उल्लेख करना युक्तियुक्त होगा* कि अल्पविकसित देशो मे केन्स के विचारो के अनुसार बेरोजगारी समर्थ माग के अभाव से उत्पन्न नहीं होती बल्कि यह पूजी या अन्य अनुपूरक साधनो (Complementary factors) के अभाव का परिणाम होती है। अत भारत जैसे अल्पविकसित देशो मे बेरोजगारी का समाधान करने के लिए *पूजी वस्तुओ के स्टाक को बढाना अनिवार्य है ताकि उत्पादन* की नई इकाइया कायम की जाए। इस प्रकार अतिरिक्त नौकरियां कायम कर अतिरिक्त जनसख्या को लाभपूर्ण रोजगार (Gainful employment) उपलब्ध कराया जा सकता है।

2 भारत मे रोजगार की प्रवृत्ति

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण द्वारा हर पाच वर्षों के लिए एकत्रित किए गए आकडो के आधार पर *1972 73 से 1987 88 को 15 वर्षों की अवधि के लिए रोजगार मे वद्धि* के आकडे तैयार किए जाते हैं। तालिका 1 मे दिए गए आकडों से पता चलता है कि समग्र 15 वर्षों की अवधि के दौरान रोजगार में 2 21 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से वृद्धि हुई है। ग्रामीण रोजगार 1 75 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढा है जबकि शहरी रोजगार मे अपेक्षाकृत अधिक तेजी से वृद्धि हुई है और यह लगभग 4 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढा है। परिणामत कुल शहरी क्षेत्रो का भाग 1972 73 से 1987 88 की अवधि के दौरान 16 प्रतिशत से बढकर 22 *प्रतिशत हो गया है।*

तालिका 1 भारत मे रोजगार* की वृद्धि (प्रतिशत)

	1972 73 से 1977 78	1977–78 से 1983	1983 से 1987–88	1972 73 से 1987 88
ग्रामीण	2.52	1 74	0.95	1 75
शहरी	4.31	4 10	3 79	4 00
पुरुष	2.61	2.15	1.81	2.19
स्त्रियां	3.23	2.36	1 04	2.24
कुल	2 82	2 22	1 55	2 21

*सामान्य मुख्य एव अनुषगी स्थिति (Subsidiary status)

स्रोत NSSO and Expert Comm tee on Population Projections

किन्तु पुरुष और स्त्री रोजगार मे लगभग एक ही गति से अर्थात् 2.2 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से वृद्धि हुई है और कुल रोजगार में इनका सापेक्ष भाग लगभग स्थिर रहा है अर्थात् समग्र अवधि के दौरान 2 1 के अनुपात में।

परन्तु तीन अवधियो के दौरान, रोजगार मे वृद्धि की दर जो 1973 78 के दौरान 2 82 प्रतिशत थी गिरकर 1978 83 के दौरान 2.22 प्रतिशत हो गई और फिर और गिरकर 1983 88 के दौरान 1.55 प्रतिशत हो गई। जाहिर है कि पिछले 15 वर्षों के दौरान रोजगार की वृद्धि दर श्रम शक्ति की वृद्धि दर की अपेक्षा कम रही है।

मुख्य क्षेत्रों मे रोजगार की वृद्धि दरे

रोजगार की क्षेत्रीय प्रवृतियो से पता चलता है कि कृषि जिसमे कुल रोजगार का दो तिहाई उत्पन्न होता है ने रोजगार की वृद्धि दर मे गिरावट अनुभव की और यह 1973 78 के दौरान 2 32% से कम होकर 1983 88 के दौरान 0 65% के निम्न स्तर पर पहुच गई। समग्र काल (1973 88) के दौरान कृषि मे रोजगार की वृद्धि दर केवल 1.37 प्रतिशत रही। इसके विरुद्ध निर्माण, परिवहन तथा सेवाओ मे वृद्धि दर काफी ऊंची थी चाहे इनमे भी रोजगार की वृद्धि दर मे गिरावट आई।

सगठित और असगठित क्षेत्रों के बीच रोजगार की वृद्धि दरों की प्रवृत्ति के अध्ययन से पता चलता है कि इन दोनो क्षेत्रो मे रोजगार को वृद्धि दर मे अवनति हुई। जबकि सगठित क्षेत्र में रोजगार को दीर्घकालीन वद्धि दर 2 प्रतिशत के आस पास रही यह 1978 83 मे 2 42 प्रतिशत से गिर कर 1983 88 के दौरान 1.36 प्रतिशत हो गई। चाहे सभी क्षेत्रो मे सामान्यत वद्धि दर मे कमी व्यक्त हुई है परन्तु यह विनिर्माण (Manufacturing) में सबसे अधिक है। (1973 78 मे 2 42 प्रतिशत से 1987 88 मे केवल 0 6 प्रतिशत) जोकि सगठित क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि की लगभग एक चौथाई है।

रोजगार सम्बन्धी चित्र का एक और ध्यान देने योग्य लक्षण यह है कि सगठित क्षेत्र मे रोजगार मे जो भी वृद्धि हुई है वह मुख्यत सार्वजनिक क्षेत्र मे हुई है। अत जबकि 1973 88 के दौरान सगठित क्षेत्र मे रोजगार मे लगभग 3 प्रतिशत की वृद्धि हुई और गैर सरकारी क्षेत्र मे रोजगार मे केवल 0.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि हुई। हाल ही के वर्षों मे (1983 88) मे गैर सरकारी क्षेत्र में रोजगार में 0 18 प्रतिशत प्रति वर्ष की कमी हुई जबकि सार्वजनिक क्षेत्र मे रोजगार मे 2 13 प्रतिशत प्रति वर्ष से वृद्धि हुई। यह कारणतत्व 1990 2000 के दशक के लिए रोजगार रणनीति के विकास दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। औद्योगिक नीति के आधीन चलाई जा रही उदारीकरण (Liberalisation) की नीतिया बाजार शक्तियो (Market forces) की निभरता पर बल देती हैं परन्तु बाजार पर इतना अधिक विश्वास करने से यह तो

तालिका 2 मुख्य क्षेत्रो मे रोजगार को वृद्धि दरे

क्षेत्र	1972 73 से 1977 78	1977 78 से 1983	1983 से 1987 88	1972 73 से 1987 88
1 कृषि	2 32	1.20	0 65	1 37
2 खनन	4 68	5 85	6.16	5 47
3 विनिर्माण	5 10	3 75	2.10	3 61
4 निर्माण	1.59	7 45	13 69	7.23
5 बिजली गैस तथा जल सभरण	12 23	5 07	4 04	7 06
6 परिवहन, गोदाम एव सचार	4 85	6 35	2 65	4 65
7 सेवाएं	3 67	4 69	1 50	3 05
कुल	2.82	2.22	1.55	2.17

स्रोत तदैव

सम्भव है कि उत्पादन की उच्च वृद्धि-दरे प्राप्त की जा सकें परन्तु ये वृद्धि-दरे रोजगार मे बिना किसी वृद्धि या नाममात्र वृद्धि के भी सम्भव हो सकती हैं।

तालिका 3 **संगठित एवं असंगठित क्षेत्र में रोजगार में वृद्धि**

अवधि	वार्षिक वृद्धि दर	
	संगठित क्षेत्र	असंगठित क्षेत्र
1973 77	2.48	2.84
1977 78	2.42	2.20
1983 87	1.36	1.55
1973 87	2.11	2.20

स्रोत योजना आयोग।

असंगठित क्षेत्र में भी रोजगार की वृद्धि दर जो 1973 78 में लगभग 2.84 प्रतिशत थी कम होकर 1983 88 मे 1.55 प्रतिशत हो गई है चाहे 1973 88 तक की दीर्घकालीन वृद्धि दर 2.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही है। यह बात भी देखने मे आयी है कि निर्माण परिवहन और सेवाओ मे असंगठित क्षेत्रों मे एक साथ रोजगार की उच्च दरे ही व्यक्त हुई हैं।

रोजगार स्थिति का एक और ध्यान देने योग्य लक्षण यह है कि *संगठित क्षेत्र मे रोजगार मुख्यत शहरी रोजगार है* और शहरी रोजगार में सापेक्षत उच्च वृद्धि दर मुख्यत शहरी अनौपचारिक क्षेत्र (Urban informal sector) में वृद्धि का परिणाम है। दूसरे शब्दो में यह कहा जा सकता है कि बडे पैमाने के निजी संगठित क्षेत्र में श्रम प्रतिस्थापन (Labour substitution) का मार्ग अपनाया गया है और परिणामत पिछले दशक के दौरान इसका योगदान नाममात्र था। रोजगार वृद्धि का मुख्य स्रोत अनौपचारिक शहरी क्षेत्र (Informal urban sector) है जिसकी ओर नीति निर्धारकों को अधिक ध्यान देना चाहिए।

तालिका 4 **शिक्षितों में रोजगार की वार्षिक वृद्धि दर**

लिंग/निवास (1)	1977 78 से 1983 (2)	1983 से 1987 88 (3)	1977 78 से 1987 88 (4)
ग्रामीण	7.8	8.5	8.1
शहरी	6.8	7.4	7.1
पुरुष	7.2	7.5	7.3
स्त्रियां	8.1	11.7	9.7
कुल	7.2	7.8	7.5

नोट सामान्य मुख्य स्थिति (आयु वर्ग 15)

स्रोत राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण 32वां 38वां और 43वां दौर।

शिक्षितो में रोजगार की वृद्धि

कुल रूप में मन्द एवं गिरती हुई रोजगार वृद्धि की दर के बावजूद, शिक्षितों में रोजगार में सापेक्षत अधिक और बढती हुई वृद्धि दर पाई गई *और यह विशेषकर स्त्रियों में।* पिछले दशक (1977 78 से 1987 88) के दौरान शिक्षित रोजगार की वृद्धि दर 7.5 प्रतिशत प्रति वर्ष थी जबकि पुरुषो मे रोजगार की वृद्धि दर 7.3 प्रतिशत प्रति वर्ष और स्त्रियों में यह 9.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी।

3 रोजगार का ढाचा
(Employment Structure)

पिछले 15 वर्षों मे रोजगार के क्षेत्रीय ढांचे में परिवर्तन हुआ है। जबकि 1972 73 के दौरान कुल श्रम शक्ति का 74 प्रतिशत कृषि मे कार्य करता था वहा 1987 88 में इसका भाग कम होकर 66 प्रतिशत रह गया है। तदनुरूप द्वितीयक एव तृतीयक क्षेत्र के भाग उन्नत होकर क्रमश 15 प्रतिशत और 19 प्रतिशत हो गए हैं।

दूसरे, चाहे कुल रोजगार मे *संगठित एवं असंगठित* क्षेत्रो के भाग क्रमश 10 प्रतिशत और 90 प्रतिशत पर स्थिर रहे हैं परन्तु विभिन्न क्षेत्रो मे असंगठित क्षेत्र के भाग मे महत्वपूर्ण उन्नति हुई है। *उदाहरणार्थ विनिर्माण (Manufacturing) मे* असंगठित क्षेत्र का भाग जो 1972 73 मे 67 प्रतिशत था बढकर 1987 88 मे 76 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार निर्माण (Construction) में असंगठित क्षेत्र का भाग 86 प्रतिशत है। परिवहन गोदाम एवं संचार मे यह अनुपात 1972 73 मे 24 प्रतिशत से बढकर 1987 88 मे 51 प्रतिशत हो गया।

तीसरे, 15 वर्षों की अवधि के दौरान स्व रोजगार प्राप्त व्यक्तियो का भाग जो 1972 73 में 61.4 प्रतिशत था गिरकर 1987 88 मे 56.3 प्रतिशत हो गया। नियमित वेतन प्राप्त रोजगार में भी थोडी सी कमी हुई है और यह 1972 73 में 15.3 प्रतिशत से कम होकर 13.7 प्रतिशत हो गया है परन्तु बदली मजदूरो (Casual labour) के रोजगार में वृद्धि हुई है और यह 1972 73 में 23.3 प्रतिशत से बढकर 1987 88 मे 29.9 प्रतिशत हो गया है। बदली मजदूरों (Casual labour) के अनुपात में वृद्धि के साथ ग्राम क्षेत्रो में स्व रोजगार व्यक्तियो के अनुपात में कमी हुई है। बदली मजदूर लगाने की प्रक्रिया पुरुष श्रमिकों में स्त्री श्रमिकों की तुलना मे तेजी से बढी है चाहे बदली मजदूरों का अनुपात लगातार पुरुष श्रमिको की अपेक्षा स्त्री श्रमिको मे ऊंचा रहा है।

तालिका 5 रोजगार वर्ग के आधार पर श्रमिको का प्रतिशत विवरण

	1972 73	1977 78	1983	1987 88
1 स्व रोजगार प्राप्त श्रमिक	61 4	59.3	57.3	56.3
2 नियमित वैतनिक रोजगार	15.3	13.2	13 7	13 7
3 कच्ची मजदूर रोजगार	23.3	27.5	28 9	29 9

स्रोत राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण, 37वा 38वा एव 43वा दौर

4 भारत मे बेरोजगारी के अनुमान (Estimates of Unemployment in India)

बेरोजगारी की समस्या के बहुत विश्वसनीय अनुमान हमारे पास नहीं हैं फिर भी बेरोजगारी के आकार सम्बन्धी कुछ अनुमान उपलब्ध हैं। हमे इन आकडो पर पूर्णतया विश्वास नहीं करना चाहिए।

तालिका 6 से स्पष्ट है कि पचवर्षीय योजनाए पूर्ण रोजगार का उद्देश्य प्राप्त करने में असमर्थ रही है। इसके विरुद्ध, प्रत्येक उत्तरोत्तर योजना के साथ बेरोजगारी बढती गई है। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि प्रथम योजना के अन्त तक कुल श्रम शक्ति मे से केवल 2 9 प्रतिशत व्यक्ति बेरोजगार थे तीसरी योजना के अन्त तक बेरोजगारी की मात्रा बढकर 4.5 प्रतिशत हो गई और मार्च 1969 के अन्त तक यह बढकर 9 6 प्रतिशत के आश्चयजनक आकड़े तक पहुच गइ। प्रतिसार (Recession) दो सूखे के वर्षों और वार्षिक योजनाओ की मात्रा मे वद्धि हुई। कारण चाहे कुछ भी हो इतनी भारी मात्रा मे बेरोजगारी का विद्यमान होना देश की सामाजिक स्थिरता के लिए भारी खतरा है।

बेरोजगारी पर विशेषज्ञो की समिति (1973) (जिसके अध्यक्ष श्री बी भगवती थे) मे दिए गए आकडो के अनुसार 1971 मे बेरोजगार व्यक्तियो की सख्या 187 लाख आकी गई। इनमे से 90 लाख तो ऐसे व्यक्ति थे जिनके पास कोई रोजगार नहीं और 97 लाख ऐसे थे जिनके पास 14 घण्टे प्रति सप्ताह का कार्य उपलब्ध था ओर जिन्हे लगभग बेरोजगार ही माना जा सकता था। इनमे से 161 लाख बेरोजगार व्यक्ति ग्राम क्षेत्रों से थे और 26 लाख नगरीय क्षेत्रो से। कुल श्रमशक्ति के प्रतिशत के रूप मे बेरोजगार व्यक्तियो की मात्रा 10 4 प्रतिशत थी। ग्राम क्षेत्रो मे बेरोजगारी की मात्रा 10 9 प्रतिशत और नगरीय क्षेत्रो मे यह 8 1 प्रतिशत थी। (देखिए तालिका 7) कुल बेरोजगारो के ग्रामीण क्षेत्र का भाग 86 प्रतिशत था और नगरीय क्षेत्र का 14 प्रतिशत।

तालिका 7 1971 मे भारत मे बेरोजगार श्रमिक (लाखो मे)

	कुल	ग्रामीण	नगरीय
कुल बेरोजगार व्यक्तियों की सख्या	187	161	26
	100 0	(86 1)	(13 9)
कुल श्रम शक्ति	180 4	148 3	32
	(100 0)	(8 2)	(17 8)
बेरोजगार श्रम शक्ति के प्रतिशत के रूप मे	10 4	10 9	8 1

स्रोत Comm e of Expe s on Unemploymen (1973)

शिक्षित वर्ग मे बेरोजगारी

जैसा कि तालिका 8 से स्पष्ट है शिक्षित बेरोजगारो की सख्या 1971 और 1991 के बीच 23 लाख से बढकर 224 लाख हो गई। एक ओर बात जो इन आकडो से जाहिर होती है यह है कि स्नातक एव स्नातकोपरान्त (Graduates and Postgraduates) शिक्षितो मे बेरोजगारी की मात्रा न केवल

तालिका 6 भारत मे बेरोजगार और बेरोजगारी के अनुमान

	प्रथम योजना (1951 56)	द्वितीय योजना (1956 61)	तृतीय योजना (1961–66)	वार्षिक योजनाएं (1966 69)
1 योजना के आरभ में श्रम शक्ति	1 857	1 970	2,150	2,200
2 योजना काल के दौरान श्रम शक्ति मे वद्धि	90	118	170	140
3 योजना के आरम के समय अवशिष्ट बेरोजगारी	33	53	71	96
4 कुल (2 + 3)	1 3	171	41	236
5 अतिरिक्त स्थापित नौकरिया	70	100	145	4 से 14
6 योजना के अन्त मे अवशिष्ट बेरोजगारी	53	71	96	2 से 23?
7 बेरोजगारी, कुल श्रम शक्ति के प्रतिशत के रूप में	29	36	45	96

तालिका 8 · भारत में रोजगार कार्यालय में पंजीकृत नौकरियां तलाश करने वालों की संख्या

दिसम्बर अंत	*1961*	*1971*	*1981*	*1991*
1 मैट्रिक	4 63	12.97	58 08	131 11
	(78 5)	(56 5)	(55 5)	(58 4)
2 हायर सैकण्डरी इण्टर आदि	0 71	6 05	23 25	55 16
	(12 0)	(26 3)	(25 8)	(24 6)
3 स्नातक एव स्नातकोत्तर	0.56	3 94	16 85	38 07
	(9 5)	(17 1)	(18 7)	(17 0)
4 जोड (1 से 3)	5 90	22.96	90.18	224 34
	(100 0)	(100 0)	(100 0)	(100 0)
5 अकुशल श्रमिक एव अन्य	12.43	28 04	75 66	138 6
6 कुल (4 + 5)	*18 33*	*51 00*	*165 84*	*363 0*

नोट ब्रैक्ट में दिए गए आकडे कुल शिक्षित बेरोजगारों के प्रतिशत को व्यक्त करते हैं।

कुल रूप में अपितु सापेक्ष रूप मे भी बढी है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय समाज मे अत्यधिक शिक्षा प्राप्त करने की प्रवृत्ति विद्यमान है। मैट्रिक और सैकण्डरी के पश्चात् नौकरी न मिलने के कारण लोग ग्रेजुएट बनना चाहते है।

परिवार का आय-स्तर एवं बेरोजगारी

बेरोजगारो का तीन चौथाई भाग ऐसे परिवारो से है जिनकी आय 200 रुपये प्रति मास से कम है। मोटे तौर पर ये सब परिवार निर्धनता रेखा के नीचे हैं। जाहिर है कि बेरोजगारी गरीब परिवारों मे विस्तृत रूप से फैली हुई है और जैसे आय स्तर उन्नत होते हैं कुल बेरोजगारो में बेरोजगारी का अनुपात कम होता जाता है। अत उच्च आय वर्ग अपने परिवार के सदस्यो के लिए नौकरी का प्रबन्ध कर लेते हैं। इस परिस्थिति के लिए कई कारणतत्व जिम्मेदार हैं—बेहतर शिक्षा और प्रशिक्षण होने के कारण बेहतर स्पर्द्धा-क्षमता और परिवार एव रिश्तेदारो का ऊंचा सामाजिक स्तर।

5. छठी योजना (1980-85) मे बेरोजगारी

रोजगार नीति के बारे में छठी योजना ने साफ तौर पर स्वीकार किया है—"रोजगार के क्षेत्र मे स्थिति बहुत ही अधिक असतोषजनक है।' पिछले दशक के दौरान बेरोजगार और अल्परोजगार व्यक्तियो की सख्या में महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है। इस सदर्भ मे इस कारण हमारी रोजगार नीति के दो मुख्य लक्ष्य होने चाहिए—

अल्परोजगार को कम करने के लिए लाभपूर्ण रोजगार प्राप्त व्यक्तियो की वृद्धि दर को बढाना और सामान्य स्थिति (Usual Status) के आधार पर जिसे आमतौर पर खुली बेरोजगारी (Open unemployment) कहा जाता है बेरोजगारी को कम करना।"[2]

बेरोजगारी के अनुमान

एक व्यक्ति को 8 घंटे प्रतिदिन के आधार पर यदि वर्ष में 273 दिन का रोजगार प्राप्त हो, तो यह एक मानक मानव वर्ष (Standard person year) कहलाएगा। योजना आयोग द्वारा नियुक्त बेरोजगारी के अनुमान तैयार करने के लिए विशेषज्ञों की समिति की सिफारिशो के आधार पर राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 27वे राँद मे बेरोजगारी के तीन अनुमान तैयार किए गए हैं।

(i) **चिरकालिक बेरोजगारी (Chronic unemployment) या सामान्य स्थिति (Usual status)**—बेरोजगारी व्यक्तियो की सख्या के रूप मे मापी जाती है अर्थात् ऐसे व्यक्ति जो पूरे वर्ष के दौरान बेरोजगार ही हो यह प्रमाप उन व्यक्तियो के लिए अधिक महत्त्व रखता है जो नियमित रोजगार की तलाश मे रहते हैं उदाहरणार्थ शिक्षित एव कुशल व्यक्ति)। वे लोग आकस्मिक काम (Casual work) स्वीकार नहीं करते। इसी कारण इस बेरोजगारी को खुली बेरोजगारी (Open unremployment) भी कहा जाता है।

(ii) साप्ताहिक स्थिति बेरोजगारी (Weekly status unemployment)—यह भी व्यक्तियो की सख्या के रूप में मापी जाती है अर्थात् ऐसे व्यक्ति जिन्हे सर्वेक्षण सप्ताह (Survey Week) के दौरान एक घंटे का भी रोजगार नहीं मिला।

(iii) **दैनिक स्थिति बेरोजगारी (Daily status unemployment)**—इसे व्यक्ति दिनो या व्यक्ति वर्षों (Per

2 Planning Commission *Sixth F ve Year Plan (1980 85)* p 53

son years) के रूप मे मापा जाता है अर्थात् वे व्यक्ति जिन्हे सर्वेक्षण सप्ताह के दौरान या एक दिन या कुछ दिन रोजगार प्राप्त न हुआ हो। साप्ताहिक स्थिति बेरोजगारी और अल्परोजगार के मौसमी या अशकालीन स्वरूप का पता चलता है।

सामान्य स्थिति बेरोजगारी दर को सदर्भ वर्ष मे आमतौर पर खुली बेरोजगारी का माप मानते हैं साप्ताहिक स्थिति बेरोजगारी भी चिरकालिक बेरोजगारी को मापती है परन्तु इसकी सदर्भ-अवधि एक सप्ताह होती है। दैनिक स्थिति बेरोजगारी बेरोजगारी की व्यापक माप है जिसमें चिरकालिक बेरोजगारी और अल्परोजगार दोनो शामिल होते हैं।

तालिका 9 मे दिए गए आकडो से जाहिर है कि बेरोजगारी की समस्या पर कोई गहरी चोट नहीं हुई है लगभग 120 लाख व्यक्ति सामान्य स्थिति या खुली बेरोजगारी की श्रेणी मे हैं। आयु वर्गों के अनुसार और विश्लेषण से पता चलता है कि खुली बेरोजगारी वाले व्यक्तियो का तीन चौथाई श्रम शक्ति मे नव प्रवेशको (15 से 29 आयु वर्ग) मे से है। जबकि सामान्य स्थिति या खुली बेरोजगारी की मात्रा ग्राम क्षेत्रो मे केवल 3 26 प्रतिशत थी यह शहरी क्षेत्रो मे कहीं अधिक थी अथात् 8 77 प्रतिशत। समग्र देश के लिए सामान्य स्थिति बेरोजगारी जो 1977 78 मे 4 23 प्रतिशत थी जो बढकर 1980 म 4 48 प्रतिशत हो गई।

तालिका 9 भारत मे बेरोजगारी का आकार एव दर

	1980		1977 78
	लाख	प्रतिशत	प्रतिशत
सामान्य स्थिति	1?0.0	4 48	4.23
साप्ताहिक स्थिति	121.8	4.54	4 48
दैनिक स्थिति	07.4	7 74	8.18
कुल श्रमशक्ति	680.5		

नोट—बेरोजगारी की दर बेरोजगार व्यक्तियों की सख्या के कुल श्रम शक्ति के अनुपात के रूप मे आकी गई।

6 सातवी योजना का रोजगार परिप्रेक्ष्य (Employment Perspective in the Seventh Plan)

सातवीं योजना की पूर्वसध्या पर प्राप्त चित्र के अनुसार सातवीं योजना के प्रादुर्भाव पर हो पाच वर्ष की आयु से ऊपर के लोगो में अवशिष्ट बेरोजगारों के 92 लाख होने का अनुमान है। यह भी देखा गया है कि इस आयु वर्ग मे श्रम शक्ति की कुल वद्धि 394 लाख होगी। इस प्रकार सातवीं योजना मे 476 लाख व्यक्तियो को रोजगार उपलब्ध कराने की आवश्यकता होगी।

यदि सातवीं योजना का लेखा जोखा ठीक है तो 476 लाख मानक मानव वर्षो की कुल रोजगार माग मे से 404 लाख मानव वर्ष की आवश्यकता को पूरा किया जाने की आशा है। इस प्रकार भी सातवीं योजना के अन्त तक 72 लाख मानक मानव वर्ष की अवशिष्ट बेरोजगारी बनी रहेगी। चाहे मार्च 1990 मे कुल श्रमशक्ति, 3 448 लाख होने का अनुमान है तो भी बेरोजगारी की दर केवल 2 1 प्रतिशत ही होगी।

सातवीं योजना की रोजगार रणनीति (Employment Strategy) की व्याख्या करते हुए सातवीं योजना ने उल्लेख किया—"बेरोजगारी और इसके साथ जुडी हुई गरीबी की समस्या का समाधान तो अन्ततोगत्वा समग्र आर्थिक विकास की ऊची दर मे ही खोजना होगा।"[3] चूंकि विकास प्रेरित रणनीति आवश्यक रोजगार अवसर जनित करने के लिए पर्याप्त नहीं योजना इन प्रयासो की अनुपूर्ति के लिए समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम ग्राम भूमिहीन रोजगार गारटी कार्यक्रम और स्वरोजगार के लिए ग्राम युवक प्रशिक्षण योजना जैसे प्रत्यक्ष रोजगार प्रोग्रामो से करेगी।

किन्तु सातवीं योजना ने यह बात बिल्कुल साफ कर दी है—"रोजगार जनन के उद्देश्य का अर्थ स्थैतिक तकनालाजी (Static technology) अपनाना नहीं। अर्थव्यवस्था को विश्व मे होने वाले तकनालाजीय परिवर्तनो से अलग थलग कर देना वाछनीय नहीं है। तकनालाजी उन्नयन, आधुनिकीकरण और उत्पादन प्रक्रिया मे वैज्ञानिक उन्नति मे ही उत्पादिता की वद्धि का सार है चाहे इसका क्षेत्र सगठित उद्योग कृषि या लघु उद्योग हो।"

7 आठवी योजना का रोजगार परिप्रेक्ष्य

योजना आयोग ने राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 43वे रोद के आधार पर 1987 88 के लिए बेरोजगारा के अनुमान लगाए है। इस अनुमान के अनुसार, सामान्य मुख्य स्थिति (Usual Principal Status) के आधार पर बेरोजगारी की मात्रा 124.3 लाख, साप्ताहिक स्थिति (Weekly status) के आधार पर 153 लाख और दैनिक स्थिति (Daily status) के आधार पर 189.5 लाख आकी गई। श्रमशक्ति के प्रतिशत के रूप में 1987 88 मे इन तीन अवधारणाओ के अनुसार बेरोजगारी की दर क्रमश 3 77 4 80 ओर 6 09 थी। शहरी क्षेत्रो के लिए बेरोजगारी की दरें ग्रामीण क्षेत्रो की तुलना मे कहीं अधिक हैं आर पुरुषो की तुलना मे स्त्रियो मे भी बेरोजगारी अधिक है। उदाहरणार्थ, सामान्य मुख्य स्थिति बेरोजगारी की दर शहरी क्षेत्रो के लिए 6.56 प्रतिशत है जबकि ग्रामीण क्षेत्रो

3 तत्रैव, पृ 112

तालिका 10 बेरोजगारी-श्रम शक्ति के प्रतिशत के रूप मे

		ग्रामीण (1)			शहरी (2)			कुल
	वर्ष	पुरुष	स्त्री	कुल	पुरुष	स्त्री	कुल	(1 + 2)
सामान्य मुख्य स्थिति	1983	2 12	1 41	1 91	5 8[illegible]	6 90	6 04	2 77
	1987 88	2 87	3 52	3 07	6 07	8 77	6 56	3 77
साप्ताहिक स्थिति	1983	3 72	4 26	3 88	[illegible]	7 4[illegible]	6 81	4 51
	1987 88	4 16	4 27	4 1[illegible]	6 71	8 93	7 12	4 80
दैनिक स्थिति	1983	7 52	8 98	7 94	9 23	10 [illegible]	9 52	8 25
	1987 88	4 58	6 91	5 25	8 79	12 00	9 26	6 09

के लिए यह केवल 3 07 प्रतिशत है। इसी प्रकार यह दर ग्रामीण स्त्रियो के लिए 3 52 प्रतिशत है जबकि ग्रामीण पुरुषो के लिए यह 2 87 प्रतिशत है।

चूकि 1980 90 के दशक के दौरान श्रमशक्ति की वृद्धि दर 2 2 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से होती रही है किन्तु रोजगार की वृद्धि दर 1 55 प्रतिशत प्रति वर्ष रही है इसलिए इसके परिणामस्वरूप बेरोजगारी की मात्रा का बढना स्वाभाविक है। तालिका 10 मे दिए गए आकडो से पता चलता है कि सामान्य मुख्य स्थिति कसौटी के आधार पर बेरोजगारी की दर 1983 मे 2 77 प्रतिशत से बढकर 1987 88 मे 3 77 प्रतिशत हो गई और साप्ताहिक स्थिति के अनुसार 4 51 प्रतिशत से बढकर 4 80 प्रतिशत हो गई परन्तु दैनिक स्थिति कसौटी के अनुसार बेरोजगारी दर 8 25 प्रतिशत से गिरकर इस काल के दौरान 6 09 प्रतिशत हो गई। इन प्रवृत्तियो से यह सकेत मिलता है कि चाहे दैनिक स्थिति अवधारणा के अनुसार बेरोजगारी मे श्रमशक्ति के प्रतिशत के रूप मे कमी हुई है बेरोजगार श्रमिको की मात्रा मे वृद्धि हुई है। दूसरे शब्दो मे बेरोजगारी का स्वरूप अल्प रोजगार की प्रधानता से बदल कर खुली बेरोजगारी (Open unemployment) का रूप धारण करता जा रहा है।

तालिका 10 का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से बेरोजगारी की स्थिति के निम्नलिखित लक्षण स्पष्ट हो जाते है—

1 खुली बेरोजगारी (Open unemployment)— 1983 मे ग्रामीण क्षेत्रो मे लगभग 1 91 प्रतिशत थी और यह 1987 88 तक बढकर 3 07 प्रतिशत हो गई परन्तु दैनिक स्थिति बेरोजगारी इसी अवधि के दौरान 7 94 प्रतिशत से कम होकर 5 25 प्रतिशत हो गई। शहरी क्षेत्रो मे खुली बेरोजगारी मे बहुत थोडा सा अन्तर ही आया और यह (सामान्य स्थिति बेरोजगारी) 6 04 प्रतिशत से बढकर 6 56 प्रतिशत हो गई और दैनिक स्थिति बेरोजगारी 9 52 प्रतिशत से कम होकर 9 2[illegible] प्रतिशत हो गई।

2 शहरी और ग्रामीण दोनो क्षेत्रो मे खुली बेरोजगारी (सामान्य स्थिति) मे वृद्धि हुई। जाहिर है कि ग्रामीण क्षेत्रो मे स्त्रियो मे खुली बेरोजगारी जो 1983 मे 1 41 प्रतिशत थी बढकर 1987 88 मे 3 52 प्रतिशत हो गई और शहरी क्षेत्रो मे यह 6 90 प्रतिशत से बढकर इस अवधि के दौरान 8 77 प्रतिशत हो गई।

3 सामान्य स्थिति एव दैनिक स्थिति बेरोजगारी के सम्बन्ध मे अन्तर पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो मे कही अधिक थे। इसका अर्थ यह है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियो मे कुल बेरोजगारी मे अल्प रोजगार का अनुपात कही अधिक है।

4 बेरोजगारी का सबसे व्यापक माप दैनिक स्थिति बेरोजगारी है जिसमे खुली बेरोजगारी ओर अल्प रोजगार भी शामिल होते हैं। 1987 88 मे कुल बेरोजगारी 514 3 करोड व्यक्ति दिन थी या 1 895 करोड व्यक्ति वर्ष (person years)। (एक व्यक्ति वर्ष 273 व्यक्ति दिनो के समान मानते हुए)।

आठवीं योजना के दौरान बेरोजगारी के अनुमान

बेरोजगारी का अनुमान लगाने के लिए हमारे पास देश मे सूचना के दो स्रोत है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार साप्ताहिक स्थिति बेरोजगारी (Weekly Status Unemployment) के आधार पर देश मे 1990 के आरभ मे 160 लाख व्यक्ति खुली बेरोजगारी के रूप मे बेरोजगार माने जा सकते हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के पहले दौर के आधार पर 1990 के आरभ मे 120 लाख व्यक्ति अत्यन्त अल्प रोजगार की स्थिति मे थे। इन्हे भी बेरोजगार ही माना जा सकता है। अत आठवीं योजना के आरभ मे अवशिष्ट बेरोजगारी की मात्रा लगभग 280 लाख मानी जा सकती है।

सूचना का दूसरा स्रोत रोजगार कार्यालयो से प्राप्त आकडे हैं। 1983 मे राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण द्वारा एकत्रित सूचना के

अनुसार बेरोजगारो का केवल 28 64 प्रतिशत अपने आपको पजीकृत करता है। साथ में यह तथ्य भी सामने आया है कि जीवित रजिस्टर (Live register) पर प्रार्थियो का केवल 25 27 प्रतिशत बेरोजगार है। रोजगार कार्यालयो मे सितम्बर 1989 मे प्राप्त सूचना के आधार पर 320 लाख व्यक्ति पजीकृत थे और यदि पजीकत व्यक्तियो और अपजीकृत बेरोजगारी सम्बन्धी जानकारी के आधार पर इन आकडो मे सुधार किया जाए तो 1990 के आरभ मे 290 लाख व्यक्ति बेरोजगार आके जा सकते हैं।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के आकडे रोजगार कार्यालयो के आकडो से बेरोजगारी को थोडा कम बताते थे। योजना आयोग ने 1990 2000 के दशक के लिए बेरोजगारी का पूर्वानुमान तैयार करते समय राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के आकडो को तरजीह दी है। (देखिए तालिका 11)

तालिका 11 **1990-2000 के लिए बेरोजगारी के प्रक्षेपण**

(लाख बेरोजगार व्यक्ति)

1	1990 के आरभ में अवशिष्ट बेरोजगार	280
2	1990-95 के दौरान श्रमशक्ति में नव प्रवेशक	370
	आठवीं योजना के लिए कुल बेरोजगार (1+2)	650
3	1995 2000 के दौरान श्रमशक्ति में नव प्रवेशक	410
4	नवीं योजना के लिए कुल बेरोजगार (2+3)	1 060

1990 मे 280 लाख अवशिष्ट बेरोजगारो के साथ 1990 95 के दौरान श्रमशक्ति मे 370 लाख व्यक्ति नव प्रवेशक के रूप मे शामिल हो जाएगे। अत आठवीं योजना के दौरान रोजगार के लिए इच्छुक कुल व्यक्तियो की सख्या 650 लाख होगी। 1995 2000 की अवधि के दौरान यह आशा की जाती है कि 410 लाख अतिरिक्त व्यक्ति श्रमशक्ति मे नव प्रवेशको के रूप मे शामिल हो जाएगे। अत सन् 2000 तक रोजगार के इच्छुक व्यक्तियो की सख्या बढकर 1060 लाख हो जाएगी। अत योजना आयोग इस नतीजे पर पहुचता है— 1990 मे कुल 3 000 लाख अनुमानित रोजगार मे यदि 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वद्धि की जाए तो सभी को रोजगार उपलब्ध कराने का लक्ष्य आठवीं योजना के अन्त तक प्राप्त किया जा सकता है और यदि इस लक्ष्य को सन् 2000 तक प्राप्त करना हो, तो रोजगार मे 3 प्रतिशत से थोडी अधिक वद्धि करनी होगी। आठवीं योजना के दिशा निर्देश पत्र मे 1990 95 के लिए रोजगार मे 3 प्रतिशत की वद्धि दर का लक्ष्य स्वीकार किया है। यदि उचित रोजगार प्रेरित विकास रणनीति अपनाई जाए, तो इस लक्ष्य को पूरा करना बिल्कुल सभव है।

8 बेरोजगारी और अल्प-रोजगार को कम करने की विभिन्न योजनाए

प्रत्येक पचवर्षीय योजना मे अतिरिक्त विनियोग द्वारा अतिरिक्त रोजगार कायम करने के मुख्य उद्देश्य को पूरा करने का प्रयत्न किया गया। रोजगार के अवसरो की व्यवस्था करना केवल कल्याणकारी उपाय (Welfare measure) ही नहीं यह एक निर्धन देश मे विकास की विधि का अनिवार्य अग है क्योंकि ऐसा देश अपने मानवीय साधनो का अल्पप्रयोग या कम प्रयोग सहन नहीं कर सकता। सदेव यह कल्पना की जाती रही है कि आर्थिक विकास के फलस्वरूप उत्पादन मे वृद्धि होगी और इस कारण रोजगार बढेगा। किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ (International Labour Organisation) द्वारा सकलित आकडे यह स्पष्ट करते हैं कि उत्पादन ओर रोजगार की वृद्धि मे सह सम्बन्ध (Correlation) का अभाव है। हाल ही मे प्राप्त हुए प्रमाण से यह पता चलता हे कि कम से कम विकसित देशो मे आर्थिक विकास आर रोजगार मे महत्वपूर्ण सकारात्मक सह सम्बन्ध (Positive correlation) विद्यमान नहीं है। विकसित देशो में विद्यमान इस परिस्थिति का मुख्य कारण तकनालाजीय परिवर्तन (Technological change) है। नयी तकनीको के कारण उत्पादन मे वद्धि हुई है परन्तु इससे रोजगार के प्रत्यक्ष विस्तार पर कोइ प्रभाव नहीं हुआ बल्कि इसके विरुद्ध चूंकि कई प्रकार के उपलब्ध कौशल नयी तकनीक के लिए अनुचित हैं इस कारण इससे बेरोजगारी की समस्याए उत्पन्न हो गई ह।

चूंकि तीव्र आर्थिक विकास का अनिवार्य रूप म अर्थ कम से कम अल्पकाल मे अधिक रोजगार नहीं होता ओर चूंकि जन्म दर मे कमी का प्रभाव तो केवल दीर्घकाल मे ही व्यक्त हो सकता है बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए विशिष्ट प्रोग्राम बनाने की जरूरत है। नगरीय ओर ग्रामीण क्षेत्रो के लिए एक से उपाय लागू नहा किए जा सकते। जबकि प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था ग्रामो का बिजलीकरण सडक निर्माण गह निर्माण सिचाई योजनाओ और ग्राम उद्योगो द्वारा ग्रामीण बेरोजगारी को कम करने मे सहायता मिलती है किन्तु नगरीय क्षेत्र मे इस उद्देश्य के लिए भिन्न प्रकार के उपाया की आवश्यकता है। सूक्ष्म तकनीकी परिवर्तन के कारण चूंकि रोजगार के विस्तार पर दुष्प्रभाव पडता है इसलिए नीति निर्धारको को प्रतितुलना की दृष्टि से उद्योगो का विकेन्द्रीकरण और बडे पैमाने के उद्योगो को छोटे पैमाने की पूरक इकाइयो क साथ सम्बद्ध करने के उपायो का प्रयोग करना होगा। उद्योगो के विकेन्द्रीयकरण का उद्देश्य नौकरी ढूढने वालो का ग्रामो से शहरो मे उत्प्रवास

अप्रोत्साहित करना है और बडे एवं छोटे उद्योगों के समन्वय का उद्देश्य रोजगार के विस्तार को और अधिक बढाना है। इसी प्रकार तृतीयक क्षेत्र में नौकरिया कायम करने के लिए नगरीय वर्गों द्वारा अधिकाधिक मात्रा मे मागी जाने वाली सेवाओं के लिए तकनीकी प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी होगी।

रोजगार बढाने के प्रोग्राम

ग्राम-निर्माण प्रोग्राम (Rural Works Programme) इसमें ऐसी परियोजनाए शामिल की गईं जिनमें एक ओर अधिक रोजगार सामर्थ्य उपलब्ध है और दूसरी ओर भूमि और श्रम की उत्पादिता की वृद्धि की प्रत्याशा है। इन प्रोग्रामों में कृषि श्रमिको को राहत देने का लक्ष्य रखा गया। इस प्रोग्राम मे स्थायी रूप की नगर निर्माण परियोजनाओं पर बल दिया गया ताकि वे इन क्षेत्रो में अभाव की स्थिति को दूर कर सके।

छोटे किसानो के विकास की एजेन्सियां (Small Farmers Development Agencies) चौथी योजना का उद्देश्य छोटे किसानो को उधार उपलब्ध कराना था ताकि वे अद्यतन तकनीक का प्रयोग कर सके सघन खेती को अपना सके और अपनी क्रियाओं का विशाखन कर सकें। इन एजेन्सियो द्वारा ऐसी सस्थाओ की भी सहायता की गई जो आदानो (Inputs) के वितरण विपणन विधायन एव सग्रहण का कार्य करती हैं।

समन्वित खुश्क भूमि विकास (Integrated Dry Land Development) इसके अधीन भूमि सरक्षण भूमि विकास कार्यक्रम सम्मिलित किए गए। ये श्रम प्रधान कार्यक्रम थे और प्रत्येक एक करोड रुपये के व्यय के लिए लगभग 15 000 व्यक्तियो को रोजगार उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया।

कृषि सेवा केन्द्र (Agro Service Centres) इस योजना मे बेरोजगार ग्रेजुएटो और डिप्लोमाधारियों (Diploma Holders) को सहायता प्रदान की जाती है। इस योजना के मुख्य उद्देश्य हैं—(i) तकनीकी श्रमिक को स्व रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना (ii) फार्म के ऊपर कृषि मशीनरी और औजारों के लिए अनुरक्षण (Maintenance) और मरम्मत की सुविधाए उपलब्ध कराना (iii) फालतू पुर्जों ईंधन, तेल स्नेहक तेल और अन्य इजीनियरिग सेवाओं के लिए आसानी से प्राप्त होने वाले केन्द्र खोलना, और (iv) उर्वरकों कीटनाशकों आदि जैसे आदान उपलब्ध कराना।

क्षेत्र विकास योजनाएं (Area Development Schemes) इन योजनाओ मे अध सरचना सुविधाए (Infrastructuaral facilities) जैसे सडकें बाजार आदि कायम करने का प्रोग्राम रखा गया।

ग्राम रोजगार के लिए भारी प्रोग्राम—प्रोग्राम का उद्देश्य विभिन्न श्रम प्रधान एव उत्पादक ग्राम प्रोजेक्टो द्वारा अतिरिक्त रोजगार कायम करना है। इस योजना के दो उद्देश्य थे प्रथम प्रत्येक प्रोजेक्ट मे औसतन 1 000 व्यक्तियों के लिए प्रत्येक जिले में एक वर्ष में लगभग 10 मास का लगातार रोजगार उपलब्ध कराना चाहिए। द्वितीय प्रत्येक प्रोजेक्ट द्वारा स्थानीय विकास योजनाओ के अनुकूल निर्माण कार्य या चिरस्थायी ढग की परिसम्पत् कायम करनी चाहिए।

इस योजना मे जो विभिन्न प्रकार के प्रोजैक्ट शामिल किए गए हैं वे हैं छोटी सिचाई, भू सरक्षण एव भू उद्धरण बाढ से बचाव और जलरोध विरोधी (Antiwaterlogging) उपाय मत्स्यपालन (Pisciculture) पीने के पानी और सडक निर्माण की योजनाए।

चौथी योजना के आधीन चालू की गई बहुत सी रोजगार जनन योजनाए ग्रामीण बेरोजगारी और अल्प रोजगार को दूर करने में सफल नहीं हो सकीं क्योंकि ग्रामीण बेरोजगारों की सेना को उचित सभरण शिविरो (Supply camps) में सगठित किया गया ताकि उन्हें वाछनीय न्यूनतम मजदूरी देकर माग के स्थानो तक पहुचाया जा सकता है। आडिटर जनरल ने अगस्त 1974 मे लोक सभा को अपनी रिपोर्ट मे यह दु खद उल्लेख किया कि विभिन्न महान् और ग्राम रोजगार प्रोग्राम जिन पर केन्द्र सरकार ने चौथी योजना के दौरान 170 करोड रुपये खर्च किए पूर्णतया विफल हो गए।

9 महाराष्ट्र की रोजगार गारण्टी योजना

1972 73 मे महाराष्ट्र सरकार ने रोजगार गारण्टी योजना (Employment Guarantee Scheme) चालू की। यह अपनी प्रकार की पहली योजना थी जिसमे संविधान में दिए गए 'काम के अधिकार (Right to work) को स्वीकार किया गया। इसके आधीन यदि कोई व्यक्ति काम करने की माग करता है तो राज्य सरकार का यह दायित्व है कि उसे काम उपलब्ध कराए।

इस योजना के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(क) किसी व्यक्ति को स्वीकृत ग्राम परियोजनाओं में जो अर्थव्यवस्था की उत्पादिता बढाने वाली हो लाभकारी एव उत्पादक रोजगार उपलब्ध कराना।

(ख) इन परियोजनाओं द्वारा क्षेत्र मे चिरस्थायी सामुदायिक परिसम्पत कायम करनी चाहिए।

(ग) श्रम प्रधान उत्पादक परियोजनाओ अर्थात् छोटी सिचाई जल एव भू सरक्षण नालो पर बाध लगाना नहरें खोदना, भूमि विकास नव रोपण को कार्यान्वित करना चाहिए।

(घ) इन योजनाओं को ठेकेदारों की अपेक्षा विभागो द्वारा

लागू करना चाहिए ताकि इनका कम-से-कम 60 प्रतिशत व्यय मजदूरी पर और 40 प्रतिशत सामग्री, पूजी उपकरणो, पर्यवेक्षण एवं प्रशासनिक सेवाओं के लिए खर्च हो।

यह योजना ग्रामो के बालिग पुरुषों एव स्त्रियो जिनकी आयु 18 वर्ष से अधिक हो, के लिए तैयार की गई। इसके आधीन आरभ में 3 रुपये प्रतिदिन की मजदूरी की गारटी दी गई। इस योजना का उद्देश्य ग्राम-समाज के आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गों, विशेषकर भूमिहीन मजदूरों और सामान्य किसानों की सहायता करना है।

उपस्थिति के आधार पर रोजगार-जनन के बारे में निम्नलिखित मुख्य लक्षणो का पता चला—

(*i*) फरवरी और जून के बीच रोजगार गारटी योजना में भाग लेने वाले श्रमिकों की सख्या बहुत अधिक हो जाती है जो किसी एक महीने में प्राप्त न्यूनतम स्तर से दो या तीन गुना होती है, और

(*ii*) खरीफ फसल और रबी बुआई के मौसम अर्थात् नवम्बर मे सबसे कम सख्या रिकार्ड की गई।

इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग्राम समाज के कमजोर वर्गों की विशेष रूप में सहायता करना था। इन वर्गों द्वारा ही *रोजगार गारटी योजना के आधीन रोजगार की माग होनी थी।*

(*iii*) आरभ में बहुत कम स्त्रियों ने इसमे भाग लिया परन्तु जनवरी-मार्च 1979 मे इस योजना के आधीन उपलब्ध कराए गए श्रमिको में स्त्रियो का भाग 43 प्रतिशत हो गया।

1972-73 से 1982-83 के 10 वर्षों के दौरान योजना की प्रगति से पता चलता है कि जहां पर रोजगार गारटी योजना के आधीन विभिन्न कार्यक्रमो पर व्यय बढता ही गया, वहा पर इन प्रोग्रामो के फलस्वरूप मानव दिनो के रूप मे जनित रोजगार पिछले चार वर्षों मे लगातार घटता गया। *पहले 7 वर्षों में योजना की प्रगति अच्छी थी क्योंकि 1972-73* में 45 लाख मानव दिनों के रोजगार-जनन के विरुद्ध 1979-80 में 2,054 लाख मानव-दिन रोजगार कायम किया गया जबकि इस योजना पर व्यय 1972-73 मे 1 89 करोड रुपये से बढकर 1979 80 में 109 2 करोड रुपये हो गया। किन्तु 1980-81 के पश्चात् व्यय मे वृद्धि के बावजूद जनित रोजगार के मानव दिनों में गिरावट की प्रवृत्ति व्यक्त हुई। 1979-80 मे एक मानव दिन रोजगार के लिए 5.3 रुपये खर्च किए गए और यह आकडा बढकर 1982-83 में 10.2 रुपये हो गया।

चूंकि एक अकुशल श्रमिक की औसत दैनिक मजदूरी बढाकर 6 रुपये प्रतिदिन कर दी है इसलिए जनित रोजगार के मानव दिनों मे गिरावट की एक हद तक व्याख्या इस बात से होती है। व्याख्या का दूसरा कारण कीमतो की वृद्धि है। कुछ हद तक प्रति मानव दिन रोजगार पर व्यय मे वृद्धि का कारण भ्रष्टाचार एव अपव्यय हैं जो हमारी प्रशासनिक सस्कृति का अग बन गए हैं।

पिछले चार वर्षों (1979-80 से 1982-83) के दौरान श्रम की उपस्थिति मे लगातार गिरावट आई, चाहे इस काल के दौरान राज्य प्राकृतिक विपत्तियो अर्थात् सूखे और बाढ के प्रकोप से ग्रस्त रहा। श्रम की उपस्थिति 1981-82 मे गिरकर 62 लाख हो गई और 1982-83 मे और गिरकर 57 लाख हो गई।

महाराष्ट्र रोजगार गारटी मे केवल ऐसे उत्पादक प्रोजेक्ट लिए जाते हैं जिनमे *अकुशल मजदूरी का भाग 60 प्रतिशत से* अधिक हो। इस योजना मे हाल ही में किए गए सशोधनो द्वारा छोटे तथा सीमान्त किसानो को अपनी भूमि पर व्यक्तिगत परियोजनाए चलाने की स्वीकृति दी गई है। ऐसी परिस्थिति मे कुल व्यय का 50 प्रतिशत सबंधित किसान या लाभ प्राप्तकर्ता को *वहन करना होगा।* इसके *अतिरिक्त बागवानी* कार्यक्रम जोकि 10 लाख हेक्टेयर तक फेला होगा आठवीं योजना (*1992 97*) के दौरान अनुसूचित जातियो एव जनजातियों/छोटे किसानो की भूमियो पर सरकारी खर्च पर लागूकिया जाएगा। अन्य भूमियो पर सरकारी खर्च को सरकार *और लाभ प्राप्तकर्ता के बीच 75 25 के अनुपात मे बाटा* जाएगा।

इस योजना के लिए *राज्यीय सरकारो द्वारा साधन जुटाए* जाते हैं और इस उद्देश्य से वे (*i*) बहुत से कर/अधिभार (surcharges) लगाती है जैसे व्यवसाय कर, व्यापार-कर, मोटर गाडी कर, बिक्री कर, सिचाई प्राप्त भूमि पर कर, भू राजस्व और गैर-रिहायशी भूमि पर कर और (*ii*) इन करो से एकत्रित राशि के समतुल्य योगदान राज्यीय सरकार द्वारा उपलब्ध कराया जाता है।

पिछले 5 वर्षों (1987- 88 से 1991-92) के दौरान रोजगार गारटी योजना पर व्यय 1987-88 मे 288 करोड रुपये और 1991-92 में 200 करोड रुपये के बीच रहा है और इससे जनित रोजगार 18 95 करोड मानव दिन और प्रत्याशित 7.5 करोड मानव दिन के बीच रहा। इस योजना का एक अत्यन्त सतोषजनक लक्षण यह है कि इसके आधीन दी जाने वाली मजदूरी अकुशल कृषि श्रम को दी जानेवाली न्यूनतम मजदूरी से कम नहीं है।

आठवीं योजना के अनुसार, "इस योजना के परिणामस्वरूप *ग्राम क्षेत्रो मे बेरोजगारी के आपात मे महत्वपूर्ण कमी हुई है।* ग्रामीण महाराष्ट्र में औसत दैनिक बेरोजगारी की दर जो 1977 78 मे 7 2 प्रतिशत थी कम होकर 1987 88 मे 3 17 प्रतिशत हो गई है। इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण निर्धनता की मात्रा जो 1977 78 मे 60 4 प्रतिशत थी कम होकर 1987-88 मे 36 7 प्रतिशत हो गई है। इस योजना के कारण

ग्रामीण क्षेत्रो मे मजदूरी मे वृद्धि का दबाव बना रहता है। इस योजना से बहुत सी स्त्रियो को भी लाभ हुआ है क्योकि रोजगार गारटी योजना मे काम करने वाले श्रमिको में 60 प्रतिशत स्त्रिया थी।

प्रोफेसर वी एम डाडेकर का मत है कि यह योजना सही दिशा मे एक कदम था किन्तु रोजगार गारटी योजना एक योजना ही नही बल्कि विकास की एक विधि है। यह अपनी प्रकार की पहली योजना है जिसमे 'काम के अधिकार (Right to work) को मान्यता दी गई है। अत इस योजना का महाराष्ट्र के ग्रामीण लोगो के जीवन स्तर और उनकी *आय को उन्नत करने की दिशा मे सकारात्मक प्रभाव पडा* था। इस योजना की अब बहुत सराहना होने लगी है और अन्य राज्यो मे महाराष्ट्र द्वारा दिखाए गए मार्ग पर चलने की बात की जा रही है ताकि भारत के प्रत्येक नागरिक को न्यूनतम जीवन स्तर की गारटी दी जा सके। किन्तु यह बात स्वीकार करनी होगी कि यह योजना केवल निर्वाह मजदूरी उपलब्ध कराती है। अच्छे जीवन स्तर को प्राप्त करने के लिए *ग्राम औद्योगीकरण करना आवश्यक है।*

10 समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम, निर्धनता एव रोजगार

ग्राम रोजगार उपलब्ध कराने का कार्य बहुत सी एजेन्सिया करती रही है। इनमे शामिल हैं—*रोजगार गारटी योजना* रोजगार के लिए खाद्य कार्यक्रम छोटे किसानो के विकास की एजेन्सी सीमान्त किसान और कृषि मजदूर कार्यक्रम सूखाप्रवृत्त क्षेत्र प्रोग्राम (Drought Prone Area Programme) रेगिस्तान विकास कार्यक्रम (Desert Development Programme) कमान क्षेत्र प्रोग्राम (Command Area Programme) आदि। छठी योजना ने यह सुझाव दिया 'इस प्रकार बहुत से प्रोग्राम जो *ग्राम निर्धनो के लिए बहु विध एजेन्सियो द्वारा चलाए* जाते हैं समाप्त करने चाहिए और उनका प्रतिस्थापन समग्र देश के लिए एक समन्वित प्रोग्राम द्वारा किया जाना चाहिए। इस प्रोग्राम को समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम (Integrated Rural Development Programme—IRDP) कहा गया।

छठी योजना मे दो महत्त्वपूर्ण प्रोग्रामो का परिकल्पन किया गया—समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम (IRDP) और राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम (NREP)। समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम द्वारा मूल रूप मे गरीब परिवारों में स्व रोजगार (Self employment) को प्रोन्नत करने की विधि अपनाई गई ताकि उत्पादक परिसम्पदो के हस्तातरण से वे इतनी आय कमा सके कि निर्धनता रेखा को पार कर ले। राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम का उद्देश्य मौसमी तथा *अल्परोजगार* के काल के दौरान भृति रोजगार (Wage employment) उपलब्ध कराना है। इसका उद्देश्य यह भी था कि ग्रामीण क्षेत्रो मे कृषि भिन्न व्यवसायो मे श्रम नियोजन क्षमता (Absorptive capacity) बढाई जाए ताकि अध सरचनाओ सामाजिक एव आर्थिक के निर्माण द्वारा अर्थव्यवस्था की उत्पादक क्षमता को बढाया जा सके। राष्ट्रीय ग्राम रोजगार को और बढावा देने के लिए भूमिहीन श्रमिको के लिए ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारटी कार्यक्रम (Rural Landless Employment Guarantee Programme) 1983 मे चालू किया गया। इन तीनो प्रोग्रामो का उद्देश्य ग्राम विकास प्रोन्नत *करना और ग्राम रोजगार विस्तार करना था।*

(क) राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम (National Rural Employment Programme)

रोजगार के लिए *खाद्य कार्यक्रम* (Food for work programme) को पुनर्गठित करके इसका नाम राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम रखा गया और इसे अक्टूबर 1980 से चालू किया गया था। इसे भी केन्द्र द्वारा चालू की गई योजना के रूप मे जिसे 50 प्रतिशत सहायता प्राप्त थी कार्यान्वित किया गया। 3 000 से 4 000 लाख मानव दिन का अतिरिक्त प्रतिवर्ष रोजगार कायम करने का सकल्प किया गया ताकि बेरोजगारी एव *अल्परोजगार* को दूर किया जा सके। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण अध सरचना को मजबूत करने के लिए सामुदायिक परिसम्पदो (Community assets) का निर्माण करना था। इनमे शामिल थे—पीने के पानी के कुए, सामुदायिक सिचाई कुए, ग्राम तालाब छोटी सिचाई परियोजनाएं, ग्रामीण सडके स्कूल बालवाडी भवन पचायत घर आदि।

इस *प्रोग्राम के आधीन चलाई गई परियोजनाओ की* आलोचनात्मक समीक्षा को गई और इनकी निम्नलिखित कमजोरिया बताईं गईं—

(*i*) मध्यावधि समीक्षा मे उल्लेख किया— राष्ट्रीय ग्राम विकास कार्यक्रम द्वारा कार्यान्वित परियोजनाओ का प्राय उन परिवारो की आवश्यकताओ के साथ तालमेल अथवा समन्वय नहीं किया गया जिनकी पहचान सहायता के लिए समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के आधीन की गई। राष्ट्रीय ग्राम विकास कार्य सम्बन्धी राशि उसके कुल खर्च के 50% से कम नहीं होनी चाहिए। इस कार्यक्रम के आधीन ठेकेदारो को रखने की अनुमति नहीं दी गयी। कुल निर्धारित राशि का 10 प्रतिशत भाग अनुसूचित जातियो/जनजातियो के लिए व्यय करना अनिवार्य है इस प्रोग्राम के अन्तर्गत *सामाजिक वानिकी*

(Social forestry) इंदिरा आवास योजना और दस लाख कुओं की योजना के लिए राशि निधारित की जाती थी।

तालिका 12 राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम की प्रगति

	व्यय (करोड़ रुपये)	जनित रोजगार (लाख मानव दिन)	प्रतिमानव दिन लागत (रुपए)
छठी योजना			
(1980-85)	18 4	17 750	10.3
सातवीं योजना			
1985 86	53	3 160	16 8
1986 87	718	3 950	18 1
1987 88	788	3 710	21 3
1988 89	907	3 950	2 8
कुल	**2 940**	**14 770**	**19 9**

इस कार्यक्रम के आधीन छठी योजना के दौरान 17 750 लाख मानव दिन रोजगार कायम किया गया जबकि इसका लक्ष्य 15 000 लाख मानव दिन रोजगार कायम करना था।

सातवीं योजना मे इसके लिए 2 487 करोड रुपये के कुल परिव्यय का प्रस्ताव रखा गया—1 251 करोड रुपये केन्द्र द्वारा और 1 236 करोड रुपये राज्यीय सरकारो द्वारा। पहले उद्देश्य के अतिरिक्त इसमे सामाजिक वानिकी (Social forestry) के उद्देश्य को इस कार्यक्रम का अग बनाया गया ताकि परिस्थितिकाय सतुलन (Ecolo॰ cal bal ance) कायम रखा जा सके। इस योजना मे 14 450 लाख मानव दिन कुल रोजगार जनित करने का लक्ष्य तय किया गया।

सशोधित मार्गदर्शी नियमो मे 25% परिव्यय सामाजिक वानिकी पर, 10 प्रतिशत ऐसी परियोजनाओ पर जो अनुसचित जातियो एव जनजातियो को प्रत्यक्ष लाभ पहुचाए। परिसम्पतो के टिकाऊपन को निश्चित करने के लिए यह तय किया गया कि मजदूरी एव गैर मजदूरी व्यय (Non wage expendi ture) मे 50 50 का अनुपात रखा जाएगा।

राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कायक्रम की समाक्षा से पता चलता है कि सातवीं योजना के पहले चार वर्षो (1985 86 से 1988 89) के दौरान इस कार्यक्रम पर 2 940 करोड रुपये खच किए गए परन्तु इसके विरुद्ध 14 770 लाख मानव दिन रोजगार कायम किया जा सका। दूसर शब्दो मे चाहे इस प्रोग्राम मे अपेक्षाकृत अधिक राशि झोकी गई, किन्तु इसका तुलना में अपेक्षाकत कम रोजगार कायम हुआ। इसके अतिरिक्त, गाधी श्रम सस्थान के अध्ययन से यह पता चलता है कि 'इस प्रोग्राम के आधीन उपलब्ध कराया गया प्रोग्राम बहुत ही थोडे समय के लिए था और इस कारण यह ग्रामाण लोगो के जावन स्तर पर प्रभाव नहीं डाल सका। इस कार्यक्रम के आधीन बाजार दर की तुलना मे कम मजदूरी दी जाती थी। लाभ प्राप्तकर्त्ताओ का चयन भी उचित रूप मे नहीं किया गया और निधनो मे सबसे अधिक निर्धन जिनके लिए यह कार्यक्रम बनाया गया था बिल्कुल छोड ही दिए जाते थे।

इसमे सन्देह नहीं कि राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम सही दिशा म एक कदम है। इसकी सहायता के लिए, ग्रामाण भूमिहीन रोजगार गारटी कार्यक्रम भा हाल ही मे चालू किया गया। परन्तु जब तक रोजगार जनन को आयोजन का प्रधान लक्ष्य नहा बनाया जाता आर अन्य उद्देश्य इस मुख्य उद्देश्य के इर्द गिर्द बुने नहीं जाते तब तक बेरोजगारी एव अल्प रोजगार की समस्या का समाधान होना सभव नहीं।

(ख) समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम
(Integrated Rural Development Programme)

बहुत से अथ विशेषज्ञो ने अपने अध्ययनो मे यह बात साफ कर दी कि जहा आर्थिक सवद्धि द्वारा विकासशील देशो मे प्रति व्यक्ति आय को उन्नत किया जा सकता हे उसके साथ यह जरूरी नहीं कि निर्धनता कम हो जाए और बेरोजगारी तथा अल्प रोजगार को समाप्त किया जा सके। इसके विरुद्ध, ततीय विश्व के देशो मे विकास प्रक्रिया ने (भारत इसमे कोई अपवाद नहीं) सापेक्षत विकसित क्षेत्रो और आर्थिक दृष्टि से उन्नत लोगों को लाभ पहुचाया है। दूसरे शब्दो मे आर्थिक विकास के लाभ पिछडे क्षेत्रे एव गरीब व्यक्तियो तक नहीं पहुच पाए हे।

इस परिस्थिति के उपचार के रूप मे यह आवश्यक समझा गया कि निर्धनता पर सीधा प्रहार किया जाए। इसके लिए यह जरूरी था कि ग्राम निर्धनता को कम करने के लिए ऐसे प्रोग्राम चलाए जाए जो गरीबो को उत्पादक परिसम्पत्तों (Productive assets) से या कौशल (Skills) से सम्पन्न कर सके ताकि वे इनका प्रयोग लाभदायक ढग से अधिक आय कमाने के लिए कर सकें और परिणामत वे निर्धनता रेखा को पार कर सकें। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए छठा योजना में ग्राम विकास के समन्वित कार्यक्रम का कल्पना की गइ। 'समन्वित' यहा चार आयामो को शामिल करता है—क्षेत्रीय प्रोग्रामो का समन्वय भौगोलिक समन्वय सामाजिक एव आर्थिक प्रक्रियाओ का समन्वय और इन सबसे ऊपर उन सभी नीतियो का समन्वय करना होगा जो विकास निर्धनता की समाप्ति और रोजगार जनन के बीच बेहतर तालमेल बिठाना चाहती है। और अधिक स्पष्ट रूप म इसमे उन लक्षित समूहो (Target groups) पर ध्यान केन्द्रित किया गया है जिनमें छोटे एव सामात किसान कृषि मजदूर एव

ग्राम कारीगर शामिल है और जिनके लिए ग्राम क्षेत्रो मे बहुत स्थिति चयन विशिष्ट आयोजन (Location specific plan ning) की आवश्यकता है। इस प्रकार, समग्र विकास रणनीति के आधीन 'समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम की कल्पना अनिवार्यत एक निर्धनता विरोधी प्रोग्राम के रूप में की गई है।

समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम-लक्ष्य एवं उपलब्धि

समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम देश के 5011 ब्लाको मे 2 *अक्टूबर, 1980 को चालू किया गया। 5 वर्षों (1980 85)* की अवधि के दौरान प्रत्येक ब्लाक मे 600 गरीब परिवारो की सहायत्ता करने का निश्चय किया गया। इस प्रकार 150 लाख परिवारो जिनमे 750 लाख व्यक्ति निर्धनता रेखा के नीचे थे को लाभ पहुचाने का लक्ष्य रखा गया। प्रत्येक ब्लाक मे 35 लाख रुपय की समरूप राशि इस कार्य के लिए व्यय करने का निर्णय किया गया जिसे 50 50 के आधार पर केन्द्र और राज्यो के बीच बाटा जाना था।

यह प्रोग्राम साहाय्यो (Subsidies) की एक क्रमिक योजना पर आधारित था जिसके आधीन पूजी लागत (Capi tal cost) को 25 प्रतिशत छोटे किसानो को 33 3 प्रतिशत सीमान्त किसानो कृषि मजदूरो और ग्रामीण कारीगरो को और 50 प्रतिशत जनजातीय लाभ प्राप्तकर्त्ताओ को साहाय्य के रूप मे प्रदान *किया जाना था। अन्त्योदय सिद्धान्त* का अनुसरण करते हुए, प्रोग्राम का लक्ष्य सबसे पहले गरीब (परिवारो तक लाभ पहुचाना था और बाद में एक ऊर्ध्वक्रम मे *अन्य गरीब वर्गों तक लाभ पहुचाना था।*)

सामुदायिक योजनाए 50 प्रतिशत साहाय्य के लिए हक्दार होती हैं। कुल परिव्यय के लगभग 20 प्रतिशत का प्रयोग प्रशासनिक एव अध सरचना सम्बन्धी व्यवस्था पर खर्च किया जाना था और शष 80 प्रतिशत लाभ प्राप्तकर्त्ताओ को *परिसम्पद ग्रहण करने के लिए साहाय्य के रूप मे दिया जाना* था।

छठी योजना (1980 81 से 1984 85) के दौरान 1661 करोड रुपये साहाय्य (subsidy) के रूप मे उपलब्ध कराए गए और 3102 करोड रुपये सावधि ऋण के रूप मे। इस *प्रकार कुल मिलाकर 4762 करोड रुपये का विनियोग किया* गया। इसके परिणामस्वरूप 165 6 लाख लाभ प्राप्तकर्त्ताओ को जिनमे 39 प्रतिशत अनुसूचित एव जनजातियो से थे सहायता प्राप्त हुई। प्रोग्रामो का सराहनीय लक्ष्य यह रहा कि प्रति परिवार विनियोग जो 1980 81 मे 1642 रुपये था बढकर होकर 1984 85 मे 3339 रुपये हो गया।

सातवीं योजना मे समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के आधीन 200 लाख परिवारो को सहायता प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया। इसके लिए केन्द्र द्वारा 2643 करोड रुपये का प्रावधान किया गया। यद्यपि गरीबी रेखा (Poverty line) के नीचे वाले परिवार की परिभाषा मे वही परिवार लिए जाते है जिनकी वार्षिक आय 6400 रुपये से कम है किन्तु इस कार्यक्रम मे गरीबी की रेखा का मापदण्ड 4800 रुपये से कम आमदनी वाले परिवार रखा गया। यह बात भी निश्चय की गई कि सबसे पहले ऐसे परिवारो को सहायता दी जाएगी *जिनकी आय 1500 रुपये से कम है।*

समन्वित ग्राम विकास प्रोग्राम की सातवीं योजना के दौरान हुई प्रगति की समीक्षा से पता चलता है कि इससे 182 लाख परिवारो को सहायता प्राप्त हुई ओर इस पर 3316 करोड रुपये का व्यय किया गया। इसके अतिरिक्त वित्तीय सस्थानो द्वारा 5372 करोड रुपये का सावधि उधार (Term credit) उपलब्ध कराया गया। इस प्रकार कुल मिलाकर 182 लाख परिवारो के लिए 8688 करोड रुपये के कुल *विनियोग की व्यवस्था की गई। इनमे से 45 प्रतिशत परिवार* अनुसूचित एव जनजातियो से थे। प्रति लाभ प्राप्तकर्त्ता पर 4780 रुपये का विनियोग किया गया जिसमे से 38 प्रतिशत *साहाय्य (Subsidy) और 62 प्रतिशत सावधि ऋण था।*

1990 91 और 1991 92 के दो वर्षो के दौरान इस प्रोग्राम पर 3920 करोड का विनियोग किया गया और 54 लाख परिवारो को लाभ पहुचाया गया। प्रति परिवार विनियोग में तीव्र वृद्धि हुई और 1991 92 मे यह बढकर 7568 रुपये हो गया।

प्रोग्राम की मुख्य कमजोरिया निम्नलिखित हैं

1 चाहे सरकार यह दावा करती है कि केवल 8 *प्रतिशत परिवार ऐसे थे जो सहायता प्रदान करने की कसौटी* पर खरे नहीं उतरे परन्तु वास्तव मे इनकी सख्या कहीं अधिक है।

2 72% मामलो मे रिकार्ड के अन्तर्गत परिसम्पत की कीमत और लाभ प्राप्तकर्त्ता के विचार से इसके मूल्य मे कोई *अन्तर नहीं था। 18% मामलो मे यह अन्तर 500 रुपये तक* थे जिससे कुप्रथाओ और रिसावो का पता चलता है।

3 लाभ प्राप्तकर्त्ताओ की बहुसख्या को कोई प्रशिक्षण नहीं दिया गया।

4 22% मामलो मे कोई अतिरिक्त आय जनित नहीं हुई।

5 लाभ प्राप्तकर्त्ताओं को पर्याप्त अध सरचना सुविधाए (Infrastructural facilities) उपलब्ध नहीं थीं। आदान (In put) सुविधा केवल 40% को विपणन सुविधा 14% को और मरम्मत की सुविधा केवल 5% लाभ प्राप्तकर्त्ताओ को उपलब्ध *थी।*

आठवीं योजना के पहले दो वर्षों में प्रति व्यक्ति विनियोग को बढाने के लिए कई कदम उठाए गए, ताकि समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के आधीन कायम की गयी परिसम्पत द्वारा परिवारों को निर्धनता रेखा पार करने मे सहायता दी जा सके। आठवीं योजना (1992-93 से 1996-97) के दौरान, इस प्रोग्राम के आधीन 11,541 करोड रुपये के विनियोग द्वारा 108.2 लाख परिवारों को सहायता दी गयी। इस प्रकार प्रति परिवार विनियोग 10 666 रुपये हुआ। प्रोग्राम द्वारा कुल रूप मे 108 लाख परिवारो को सहायता दी गयी, जिसमे से 50 प्रतिशत अनुसूचित/जनजातियो से सम्बन्धित थी और इस प्रकार योजना द्वारा निर्धारित लक्ष्य पूरा किया गया। परन्तु लाभ प्राप्त करने वाली स्त्रियों की मात्रा केवल 34 प्रतिशत थी जोकि 40 प्रतिशत के निश्चित लक्ष्य से नीचे थी। सरकार ने प्रति परिवार 12,000 रुपये का विनियोग-स्तर प्राप्त करने का लक्ष्य रखा था, जिसे 1996-97 मे 15 036 रुपये प्रति परिवार का विनियोग प्राप्त करके पार कर लिया गया।

इसके अतिरिक्त, सरकार ने परिवार उधार योजना (Family credit plan) के आकार का विस्तार करने का निश्चय किया। इस योजना के आधीन परिवार के एक से अधिक सदस्य को कई परिसम्पत (Assets) दिए जाएगे, ताकि परिवार गरीबी रेखा को पार कर सकें। इस योजना के आधीन प्रति परिवार विनियोग के स्तर का लक्ष्य 20 000 25 000 रुपये रखा गया है। यह योजना जो कि एक मार्गदर्शी प्रोजैक्ट (Pilot Project) के रूप मे चुने हुए जिलो मे आरभ की गयी थी अब देश के 213 जिलो मे लागू की जाएगी। प्रति परिवार विनियोग के उच्च स्तर को प्रोत्साहित करने के लिए समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के प्रतिभूति मानदण्ड (Security norms) बढा दिए गए हैं। बैंको को यह निर्देश दिया गया था कि 2,000 रुपये के ऋण पहले के लिए भूमि को बन्धक के रूप में रखें, अब यह सीमा बढाकर 5 000 रुपये कर दी गयी है। इसके अतिरिक्त, बैंको को 15 000 रुपये की चल सम्पत्ति (Moveable assets) पर रेहन-प्रतिभूति (Collateral security) प्राप्त नहीं करनी होगी (पहले यह सीमा 10 000 रुपये थी)।

11. समन्वित ग्राम विकास प्रोग्राम की आलोचनात्मक समीक्षा

प्रोग्राम के मूल्यांकन सम्बन्धी बहुत से अध्ययनों से पता चलता है कि प्रोग्राम का पारच्यवन प्रभाव (Percolation effect) गरीबी हटाओ के रूप में कहीं कम था जबकि सरकार अपने प्रतिवेदनो मे साहाय्यो (Subsidies), बैंक उधार और निर्धनता रेखा पार करने वालो के प्रभावशाली आकडे पेश कर रही थी।

सबसे पहले लाभ प्राप्तकर्त्ताओं मे निर्धनों का कुवर्गीकरण (Misclassification) किया गया। अत 165 6 लाख लाभ प्राप्तकर्त्ताओ को निर्धन मान लेना उचित न होगा। समन्वित ग्राम-विकास कार्यक्रम (IRBD) के नेबार्ड सर्वेक्षण (NABARD Survey) के आधार पर प्रोफेसर नीलकण्ठ रथ यह निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं—"नेबार्ड सर्वेक्षण (1984) के अनुसार गलत ढग से वर्गीकृत लाभ प्राप्तकर्त्ताओ का अनुमान असम मे 42 प्रतिशत, हरियाणा में 17 76 प्रतिशत, पजाब मे 35 प्रतिशत, मध्य प्रदेश में 19 प्रतिशत और महाराष्ट्र में 13 प्रतिशत था। इनके विरुद्ध, इस सर्वेक्षण के अनुसार कुवर्गीकरण का अनुपात तमिलनाडु और कर्नाटक के सर्वेक्षित जिलो मे 11 प्रतिशत, आध्र प्रदेश में 7 प्रतिशत और उडीसा, बिहार और उत्तर प्रदेश में 2 प्रतिशत से भी कम था।...कुल मिलाकर यह कहना अनुचित न होगा कि कम-से-कम 15 प्रतिशत ऐसे व्यक्ति जिनकी पहचान "गरीबों" के रूप मे की गई और जिन्हें समन्वित ग्राम-विकास कार्यक्रम से सहायता दी गई, वास्तव में गरीब वर्गों से नहीं थे।"

श्री ए. सी कुट्टी कृष्णन अपने केरल के अध्ययन से इस नतीजे पर पहुचे हैं—"लाभ प्राप्तकर्त्ताओ की बहुसख्या 80 प्रतिशत की सीमा तक (3,500 रुपये से कम वार्षिक पारिवारिक आय पर आधारित) और 63.25 प्रतिशत (76 रुपये से कम प्रति व्यक्ति मासिक आय पर आधारित) इस प्रोग्राम से सहायता प्राप्त करने के हकदार नहीं थे। किसी विशेष क्षेत्र मे निर्धनता के आकार को वास्तविक रूप से समझे बिना लक्ष्य निश्चित कर दिए जाते हैं जिसके नतीजे के तौर पर लाभ उदार रूप मे समृद्धि वर्गों को पहुचते चले जाते हैं।" इसी प्रकार प्रोफेसर इन्दिरा हीरावे गाधी लेबर इन्सटीट्यूट, अहमदाबाद, गुजरात में चार चुने हुए ग्रामो के अध्ययन के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुचे —"प्रथम, गैर-निर्धन परिवारो का प्रोग्राम में भाग लेने वालो मे प्रभुत्व था। इन ग्रामो मे गैर-निर्धनो का भाग लेने वालो मे अनुपात 55 से 75 प्रतिशत था। और दूसरे, न भाग लेने वालो मे मुख्यत ऐसे व्यक्ति थे जो उपभोग-स्तर के निम्नतम तीन दशाशो (Deciles) से सम्बन्ध रखने वाले थे।" इन्दिरा हीरावे ने यह भी अनुभव किया कि भौगोलिक दृष्टि से समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम और लाभ प्राप्तकर्त्ताओं की योजनाए केवल विकसित गावो तक ही पहुच पाई है। अध्ययन से व्यक्त हुआ कि "चाहे विशेष कार्यक्रम 5 वर्षो से भी अधिक समय से चल रहे हैं सिचाई प्राप्त और कृषि की दृष्टि से समृद्ध ग्रामो मे परिवारों के उपभोग स्तर मे वर्षा पर आधारित ग्रामो का तुलना मे अपेक्षाकृत अधिक असमानता थी जो यह जाहिर करती है कि विकास के साथ असमानताओ की जडे सभवत इन ग्राम

अर्थव्यवस्थाओ मे और मजबूत बन गई है।

दूसरे, समन्वित ग्राम विकास कायक्रम के अपारच्यवन प्रभाव (Non percolation effect) के लिए दो कारणतत्व उत्तरदायी थे—(*i*) लाभ प्राप्तकर्ता परिवारो को दिए जाने वाले ऋणो एव साहाय्यो मे छिद्र हो सकते हैं (*ii*) ऋण का दुष्प्रयोग भी हो सकता है। समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के आधीन सबसे मुख्य परिसम्पद् जिसके निर्माण के लिए ऋण (एव साहाय्य) दिए जाते हैं पशुधन के रूप मे है जिसमे दुग्ध पशु, बकरिया भेडे गौए, बैल गाडिया ऊट एव ऊट गाडिया शामिल है। नेबार्ड सर्वेक्षण ने यह व्यक्त किया कि 40 से 50 प्रतिशत विनियोग डेरी बकरियो एव भेडो पर किया गया। बेल ऊट (गाडियो सहित या उनके बिना) पर 20 प्रतिशत अतिरिक्त विनियोग किया गया छोटी सिंचाई पर 13 से 14 प्रतिशत विनियोग किया गया। दूसरे शब्दो मे ऋण (एव साहाय्यों) का लगभग दो तिहाई पशुधन के रूप मे था।

समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम को लागू करने वाले तीन अगो अर्थात् विकास प्रशासन ऋण सस्थानो एव पचायती राज सस्थानो की कार्यपद्धति मे कमजोरिया के कारण गैर निर्धन (Non poor) इन ऋणो (एव साहाय्यों) को हथियाने मे सफल हो गए। इसके लिए वे या तो अपनी पहचान गरीबो के रूप मे करवाते या गरीब व्यक्तियो को कुछ रुपया देकर परिसम्पत प्राप्त करने के लिए इस्तेमाल करते। इन क्षरणो (Leakages) का अनुपात इन्दिरा हीरावे के अनुसार कुल भागीदारो (Participants) का 25 से 30 प्रतिशत था। नेबार्ड सर्वेक्षण (1984) से वयक्त हुआ कि पशुपालन के लिए दिये गए ऋणो मे 26 प्रतिशत क्षरण का उच्च अनुपात था जिसका *लगभग आधा ऋणो के दुष्प्रयोग के कारण और दूसरा आधा भाग जानवरों के विक्रय के कारण था।* गैर निर्धनो द्वारा ऋणो को हथियाने के लिए बहुत से अवेध तरीको का प्रयोग किया गया। इनमे मुख्य ये थे—(*i*) परिवार के एक सदस्य को कागज पर किसान ओर बाकी सभी सदस्या को भूमिहीन मजदूर के रूप में दिखाना (*ii*) छोटे आर सीमान्त किसान के रूप मे वर्गीकृत होने के लिए भूमि को परिवार के सभी सदस्यो मे विभक्त करना ओर (*iii*) किसी वास्तविक निर्धन व्यक्ति के नाम मे परिसम्पत् खरीद लेना और फिर गरीब *व्यक्ति को कुछ धनराशि देकर इन परिसम्पतो (पशु और/या गाडियाँ)* को हथिया लेना। नेबार्ड के आधीन किए गए जयपुर अध्ययन ने यह रहस्योद्घाटन किया है कि ऋण प्राप्तकर्त्ताओ मे से केवल 46 प्रतिशत के पास ही दो वर्षों के बाद परिसम्पत् बच पाए थे अन्य व्यक्तिया ने या तो इन्हे बेच दिया था या पशु मर गया था। कृषि श्रम परिवारो का बहुत ही छोटा अनुपात अथात् 34 प्रतिशत ही ऐसा था जिसके पास पशु बच पाये थे। अध्ययन मे इस असतोषजनक स्थिति की व्याख्या करते हुए यह उल्लेख किया गया—'*वास्तविक समस्या साझी चारागाहो की घटिया उपलब्धि चारे अथवा भोजन के अपर्याप्त सभरण विशेषकर भूमिहीन श्रमिको के सदर्भ मे और खुश्क मासम के दौरान पशुओ का पालन पोषण की ऊची लागत है।*

तीसरे, चाहे समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम में यह शर्त है कि लाभ प्राप्तकर्त्ताओ का चयन निर्धनता रेखा के नाचे निर्धनतम वर्गों से होना चाहिए, वहा वस्तुस्थिति यह ह कि कइ एक राज्यो मे लाभ प्राप्तकर्त्ताओ की काफी बडी सख्या का चयन छोटे तथा सीमान्त किसानो मे से किया गया। ऐसे लाभ प्राप्तकत्ताओ का अनुपात भिन्न भिन्न राज्यों मे भिन्न भिन्न है और कुछ परिस्थितियो मे 30 प्रतिशत तक ऊचा है। इसका मुख्य कारण उधार की दृष्टि से छोटे तथा सामान्त किसान की बेहतर क्षमता ह आर इसी कारण ब्लाक *अधिकारी एव उधार एजेन्सिया इन्हे सहायता देने मे प्राथमिकता दिखलाती ह। दूसरे शब्दो म इस प्रोग्राम के लाभ निर्धन* वर्गों की ऊची सतहा (Upper layers) द्वारा हथिया लिए जाते ह। इस विकति को सुधारना होगा यदि अन्त्योदय की मूल भावना गरीबो म सबसे गरीब तक पहुचाना के कायान्वयन की प्रक्रिया को सबसे अधिक महत्त्व प्रदान करना ह।

चाथे उत्पादक परिसम्पदा के निर्माण के लिए व्यक्तियो को दिए जाने वाले साहाय्यो (Subsid es) के अध्ययन से इस बात का पता चलता ह कि इसमे दलाला की पद्धति और वडे पमाने पर भ्रष्टाचार उत्पन्न हो गया हे। ग्राम समाज के प्रभावशाली सदस्य नाकरशाही एव सहकारी विभाग के *अफसरा एव उधार सस्थाओ के साथ मिलकर गरीब देहातियो को साहाय्य एव उधार की स्वीकृति प्रदान करने के लिए* दलाली वसूल करते ह। बहुत सी परिस्थितिया मे एक ही पशु को विभिन्न लाभ प्राप्तकर्त्ताआ मे घुमाने का कहानी सुनने मे आती ह आर इनमे 'शुद्ध लाभ साहाय्य ही ह। ग्राम समाज के ढाचे मे जहा गरीब ऋणो एव साहाय्यो की स्वीकति के लिए गर निर्धनो पर बहुत हद तक निर्भर हो गए ह गेर निर्धन इन विकास कार्यक्रमो के लाभो को हथियाने मे नाकामयाब हो गए ह। इसके परिणामस्वरूप गरोबो मे *अपारच्यवन (Non percolation) और निर्धनो की गर सहभागिता के कारण समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम* का उद्देश्य ही पराजित हो जाता ह।

अन्तिम इस सम्बन्ध मे सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह ह कि समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के आधीन परिसम्पदो के हस्तातरण के नतीजे के तार पर कितने निर्धन लाभ प्राप्तकत्ताआ को निर्धनता रेखा के ऊपर खींचा गया ? प्राफेसर नीलकण्ठ

रथ नेबार्ड सर्वेक्षण के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं—"लाभ प्राप्तकर्त्ताओं की मात्रा जिनकी आय 3 500 रुपये की निर्धनता रेखा से अधिक बढ पाई कुल वाछनीय लाभ प्राप्तकर्त्ताओं का 47 प्रतिशत थी (यदि 15 प्रतिशत गैर निर्धन लाभ प्राप्तकर्त्ताओं को छोड दिया जाए) या सभी लाभ प्राप्तकर्त्ताओं का 40 प्रतिशत। भिन्न भिन्न राज्यो मे इस सम्बन्ध मे काफी भिन्नता पाई गई है परन्तु ये चालू कीमतो पर हैं यदि 1979 80 और सर्वेक्षण अवधि के दौरान कीमतो मे परिवर्तन का समायोजन किया जाए तो यह पता चलता है कि वाछनीय लाभ प्राप्तकर्त्ताओं का केवल 22 प्रतिशत या कुल लाभ प्राप्तकर्त्ताओं का 18 7 प्रतिशत निर्धनता रेखा को पार कर पाया।"

प्रोफेसर रथ निर्धनता रेखा को पार करने वाले सभी लाभ प्राप्तकर्त्ताओं के 18 7 प्रतिशत के आकडे को भी अत्यानुमान मानते हैं। उनके अनुसार इसका कारण यह है कि विनियोग पश्चात् आय का परिकलन करते समय वार्षिक भुगतान की किस्ते लागत के रूप मे घटायी नहीं गईं। अत रथ लिखते हैं—"यदि इस उचित व्यय को परिकलन मे शामिल कर लिया जाए, तो लाभ प्राप्तकर्त्ताओं का वह प्रतिशत जो निर्धनता रेखा को पार कर गया है बहुत बडी मात्रा मे कम हो जाएगा।" यदि इसका समायोजन कर लिया जाए तो निर्धनता रेखा को पार करने वाले लाभ प्राप्तकर्त्ताओं का अनुपात गिरकर 10 प्रतिशत से भी कम रह जाएगा। इस प्रकार यह अनुमान लगाना गलत नहीं होगा कि समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के 2 वर्षों के कार्यान्वयन के पश्चात् ग्रामीण भारत के लगभग 3 प्रतिशत निर्धन परिवार निर्धनता रेखा के ऊपर रहने मे समर्थ हो पाए, चाहे थोड़ी देर के लिए ही।

समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के सचालन के विश्लेषण से प्रोफेसर नीलकण्ठ रथ इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं—"समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के अनुभव की इस लम्बी समीक्षा से एक बात बिल्कुल साफ हो जाती है—ग्राम समाज मे निर्धनो की सहायता के लिए परिसम्पत् प्रदान करने की नीति द्वारा गरीबी हटाने की नीति बहुत हद तक मिथ्या धारणा है। इस ढग से बहुत ही थोडे अनुपात को सहायता की जा सकती है। इस नीति पर अधिक बल देने से प्रहार की धार के कुन्द हो जाने का भय है इससे अपव्यय भ्रष्टाचार पैदा होगा और अन्ततोगत्वा निराशा ही मिलेगी। ग्रामाण निर्धनता पर एक बहु दिशा के प्रहार मे इस नीति का उचित स्थान अवश्य है किन्तु यह इस प्रोग्राम का मुख्य आधार नहीं बन सकता।' प्रोफेसर रथ का मत है कि गरीब के लिए परिसम्पद् जरूरी नहीं बल्कि आय आवश्यक है। इस विचार के अनुसार गाय भेडें या बकरियो का झुण्ड या बैलगाडा या कुआ या पम्पसेट आय जनन के साधन है परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि परिसम्पद्-निर्माण (Asset creation) नीति अपने आय जनन उद्देश्य मे विफल हो गई है और इसी कारण प्रोफेसर रथ महाराष्ट्र रोजगार गारटी योजना या राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के दिखाए मार्ग पर बडे पैमाने पर भृति रोजगार (Wage employment) प्रोग्राम को बढावा देने का समर्थन करते हैं। अत प्रोफेसर रथ के अनुसार केवल भृति रोजगार की नीति ही प्रोग्राम का मुख्य आधार होनी चाहिए।

प्रोफेसर इन्दिरा हीरावे प्रोफेसर रथ के दृष्टिकोण को सन्तुलित नहीं मानते। यह भृति-रोजगार के कार्यभाग पर अत्यधिक बल देता है और ग्राम समाज मे स्व-रोजगार (Self-employment) के कार्यभाग की उपेक्षा करता है। प्रोफेसर हीरावे निर्धनो का दो वर्गों मे भेद करते हैं—(i) वे जिनके पास कम-से कम कुछ परिसम्पद्, कुछ कौशल शिक्षा या उद्यम है जिससे ये स्व-रोजगार कायम कर सकते हैं, (ii) वे जिनके पास न तो कोई परिसम्पद् है न ही कौशल शिक्षा या उद्यम जिससे वे स्वतन्त्र रूप से कोई कार्य कर सके। पहली प्रकार के गरीबों के लिए समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के आधीन स्व रोजगार प्रणाली के द्वारा सहायता प्रदान करनी चाहिए और दूसरी प्रकार के गरीबो के लिए राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम या रोजगार गारटी योजना प्रणाली के आधीन लाभ पहुचना चाहिए। अत यह तर्क दिया जाता है कि स्व रोजगार या मजदूरी रूपी रोजगार गरीबो को उनके औचित्य एव स्वीकार्यता के आधार पर उपलब्ध कराना चाहिए। प्रोफेसर इन्दिरा हीरावे का विचार सही है क्योंकि भारतीय ग्राम समाज मे ग्रामीण श्रम शक्ति का लगभग 63 प्रतिशत स्व-रोजगार प्राप्त है। इतनी बडी ग्रामीण कार्यकारी जनसंख्या को मजदूरी रूपी रोजगार (Wage employment) उपलब्ध कराना असभव है भले ही राष्टीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम या रोजगार गारटी कार्यक्रम के आधीन देश अगले दो दशको के दौरान कितना ही बडा प्रोग्राम क्यो ने चालू करे। जाहिर है कि मजदूरी रूपी रोजगार का विस्तार करना चाहिए ताकि भारतीय ग्राम अर्थव्यवस्था की श्रम को समेटने की शक्ति उन्नत हो सके। स्व-रोजगार और भृति रोजगार के कार्यक्रम एक दूसरे के पूरक समझने चाहिए जिनके अर्थव्यवस्था की श्रम प्रयोग क्षमता बढती है। सामाजिक तथा आर्थिक अध सरचना के निमाण के द्वारा मजदूरी रूपी रोजगार बढाकर वस्तुओं तथा सेवाओ की माग उसी प्रकार बढती है जैसे समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम द्वारा स्व रोजगार बढाकर।

इसलिए प्रोफेसर रथ राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम के आधीन अधिक मजदूरी रूपी रोजगार कायम करने के लिए अधिक बजट साधनों के आबटन की सिफारिश करते हैं। परन्तु महाराष्ट से प्राप्त होने वाले प्रमाण के आधार पर के

डी डाडेकर (1993) यह सकेत देता है कि ग्रामीण महाराष्ट्र के कमजोर वर्गों या गरीब परिवारो मे कुल कार्यकारी आयु वाले कम से कम 10 प्रतिशत व्यक्तियो को पूर्णकालीन भृति रोजगार के समान काम उपलब्ध कराया गया। इसके लिए राज्यीय प्रशासन के पास तैयार परियोजनाओ की एक श्रखला होनी चाहिए ताकि जो गरीब प्रशासन के पास अपना नाम पजीकृत करवाते है उन्हे रोजगार उपलब्ध कराया जा सके। समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम को इस काम को पूरा करने के लिए रोजगार गारटी योजना से सीख लेनी होगी।

विकास प्रशासन के अधिकारी तत्र उधार ससाधनो और पचायती राज सस्थानों के नेताओ में गठबन्धन समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम जैसे विशेष प्रोग्रामो की गैर सहभागिता और अपारच्यवन (Non percolation) के लिए जिम्मेदार हैं। उच्च स्तर पर उधार में जो रियायतें स्वीकार की गईं वे गरीबों के पक्ष मे व्यष्टि स्तर पर लागू नहीं की गईं। प्रोफेसर इन्दिरा हीरावे के अनुसार, 'ग्राम पचायते केवल एक ही वर्ग के हितो का प्रतिनिधित्व करती हैं और वह है ग्रामीण समृद्ध वर्ग। अन्य सदस्य इस वर्ग द्वारा नामजद किए जाते हैं और इनका जनता से चुनाव नहीं होता। विकास प्रशासन भी स्थानीय राजनीतिक नेताओं की लीक पर ही चलता है और इस प्रकार ग्राम समाज का ढांचा ग्रामीण निर्धनो के लिए निर्धनता विरोधी एव भृति रोजगार (Wage employment) प्रोग्रामो के बल को बहुत हद तक कमजोर कर देता है। राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम के बारे मे किए गए कई अध्ययनो में भ्रष्टाचार के सकेत मिले हैं जिनमे सामग्री का दुरुपयोग घटिया सामान का प्रयोग, झूठे हाजिरी के रजिस्टर तैयार करना और निर्धारित मजदूरी से कम भुगतान करना, शामिल हैं।

अत सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम और राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम मे गरीबो की भागिता को उन्नत करने के लिए क्या किया जाना चाहिए ताकि इन प्रोग्रामो के पारच्यवन प्रभाव (Percolation effects) अधिक महत्वपूर्ण बन जाए।

श्री डी आर मेहता, उप गवर्नर, भारतीय रिजर्व बैक की अध्यक्षता मे सितम्बर, 1993 में स्थापित की गयी विशेषज्ञ समिति ने इस प्रोग्राम को उन्नत करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए—

1 **लाभ प्राप्तकर्त्ताओं की पहचान**—गरीब वर्ग के जिन सदस्यों के पास उधार पर आधारित परिसम्पतो का प्रयोग करने के लिए उचित कौशल और अनुभव नहीं है उन्हे एक पृथक वर्ग मे रखकर केन्द्र एव राज्य सरकारो की विभिन्न योजनाओ के आधीन आरंभिक अवस्था म भृति रोजगार (Wage employment) उपलब्ध कराया जाना चाहिए। जिन परिवारो के पास उचित कौशल और अनुभव है उन्हें समन्वित ग्राम विकास प्रोग्राम से सीधी सहायता देनी चाहिए।

2 **आधार संरचना पर व्यय की सीमा**—आधार सरचना (Infrastructure) विकास पर कुल व्यय का 4 प्रतिशत खर्च किया जाता है समिति ने सिफारिश की है कि इस सीमा को बढाकर बजट आबटन के 20 प्रतिशत तक कर देना चाहिए।

3 50 000 रुपये के उधार तक बन्धक सुरक्षा (Collateral Security) की आवश्यकता पर बल नहीं देना चाहिए। सम्पति को गिरवी न प्राप्त करने की सीमा 25 000 रुपये निश्चित की जानी चाहिए।

4 जो परिवार आरंभिक सहायता से गरीबी रेखा पार नहीं कर पाए, उन्हे और पूरक सहायता (Supplementary assistance) दी जानी चाहिए। प्रति परिवार सहायता का स्तर अधिक उधार और अर्थ साहाय्य (Subsidy) की अधिक मात्रा उपलब्ध करा करके बढाना चाहिए।

5 गैर फार्म पिछी लघु उद्यमो एव सेवाओं को और अधिक प्रोन्नत करना चाहिए।

6 इस कार्यक्रम के लोकतांत्रिक स्वरूप को पुन बहाल करना चाहिए और पचायतो एव ग्राम जनसख्या को शामिल करके इसे मजबूत बनाना चाहिए।

बुनियादी प्रश्न यह है कि जब तक प्रोग्राम के कार्यान्वियन को उन्नत नहीं किया जाता, इस प्रोग्राम के रिसाव प्रभाव (Percolation effects) निर्धनो को गरीबी रेखा पार करने मे महत्त्वपूर्ण परिणाम नहीं दिखा सकते।

12 जवाहर रोजगार योजना

प्रधानमत्री श्री राजीव गाधी ने 28 अप्रैल 1989 को जवाहर रोजगार योजना चालू करने की घोषणा की। उस समय चल रही सभी भृति रोजगार योजनाओं (Wage employment schemes) का विलयन जवाहर रोजगार योजना मे कर दिया गया है। इसका अर्थ यह है कि राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारटी कार्यक्रम को मिलाकर एक बडे छत्र के आधीन कर दिया गया है जिसे जवाहर रोजगार योजना का नाम दिया गया है।

योजना के मुख्य लक्षण

(*i*) राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारटी कार्यक्रम के आठ वर्षों (1980 81 से 1988 89) तक लगातार चलाए जाने के कारण ग्राम रोजगार प्रोग्राम देश भर मे 55 प्रतिशत पचायतो तक ही पहुच पाए। जवाहर रोजगार योजना का लक्ष्य प्रत्येक पचायत तक पहुचना था।

(*ii*) इस योजना का प्रशासन ग्राम पचायतो के अधीन

होगा और इस प्रकार भारत मे रहने वाले 440 लाख परिवार जो निर्धनता रेखा से नीचे हैं ग्राम रोजगार कार्यक्रम से लाभ उठा सकेंगे।

(iii) जबकि पहले चल रहे ग्राम रोजगार कार्यक्रमो मे केन्द्र एव राज्यीय सरकारो द्वारा दी गई सहायता का आधार 50 50 था, वहा जवाहर रोजगार योजना मे यह तय किया गया कि केन्द्रीय सहायता द्वारा 80 प्रतिशत वित्त जुटाया जाएगा और राज्यीय सरकारों का भाग केवल 20 प्रतिशत होगा।

जवाहर रोजगार योजना के लक्ष्य

प्राथमिक लक्ष्य—ग्राम क्षेत्रो मे रहने वाले बेराजगार और अल्परोजगार पुरुषो एव स्त्रियो के लिए लाभकारी रोजगार कायम करना।

द्वितीयक लक्ष्य—इस योजना के कई द्वितीयक लक्ष्य हैं

(i) ग्रामीण अध सरचना (*Infrastructure*) को मजबूत बनाकर स्थायी रोजगार कायम करना

(ii) सामुदायिक एव सामाजिक परिसम्पतो (Assets) का निर्माण

(iii) गरीबों के प्रत्यक्ष एव निरन्तर लाभ के लिए परिसम्पत का निर्माण करना

(iv) मजदूरी स्तर पर सकारात्मक प्रभाव डालना और

(v) ग्राम क्षेत्रो मे जावन की गुणवत्ता (Quality of life) मे समग्र रूप मे सुधार करना।

लक्षित समूह एव विशेष सुरक्षा उपाय (Target groups and special safeguards)

जवाहर रोजगार योजना का लक्ष्य विशेष रूप मे निर्धनता स्तर से नीचे रहने वाली जनसख्या की सहायता करना है। इसमे अनुसूचित जातियो और जनजातियो और मुक्त कराये गये बधुआ मजदूरो (*Bonded labour*) को प्राथमिकता दी जाएगी। इस योजना के आधीन कम से कम 30 प्रतिशत स्त्रियो को सहायता उपलब्ध करायी जाएगी।

जवाहर रोजगार योजना के अधीन सशोधन

जवाहर रोजगार योजना के कार्यान्वियन से प्राप्त अनुभव के आधार पर और पिछडे जिलो मे प्रति व्यक्ति 90 से 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराने के उद्देश्य से 1993 94 में इस योजना मे सशोधन किया गया और अब इस योजना को तान धाराओ मे कार्यान्वित किया जा रहा है

प्रथम धारा—दो उप योजनाओं अर्थात् इंदिरा आवास योजना और दस लाख कुओ की योजना के ढाचे पर।

द्वितीय धारा—पहचान किए गए 120 पिछडे जिलो मे अतिरिक्त आबटन से जवाहर रोजगार योजना को और अधिक तीव्र बनाना।

तृतीय धारा—विशेष और नयी प्रकार के प्रोजैक्ट।

जवाहर रोजगार योजना की प्रथम धारा

इस धारा के आधीन किसी राज्य को उस राज्य में ग्रामीण निर्धनो के देश भर मे कुल ग्रामीण निर्धनो के अनुपात के आधार पर ससाधन वितरित किए गए हैं। इसके आधीन दो उपयोजनाए लागू की जा रही हैं इंदिरा आवास योजना और दस लाख कुओं की योजना। जवाहर रोजगार योजना की 10 प्रतिशत राशि इंदिरा आवास योजना और 30 प्रतिशत दस लाख कुओ की योजना के लिए निश्चित की गयी है। इन योजनाओं का कार्य सचालन जिला ग्राम विकास एजेन्सियों/जिला परिषदो द्वारा किया जाएगा।

इन दो योजनाओं के लिए साधन उपलब्ध कराने के पश्चात् शेष राशि का कम से कम 80 प्रतिशत जिलों मे विभिन्न ग्राम पचायतों मे बांटा जाएगा।

जिला ग्राम विकास एजेन्सियों/जिला परिषदों को प्राप्त राशि को विभिन्न प्रोग्रामों में इस्तेमाल करने के लिए निम्नलिखित मार्गदर्शी सिद्धान्त तय किए गए हैं—

(क) आर्थिक दृष्टि से उत्पादक परिसम्पत 35%

(ख) सामाजिक वाणिकी 25%

(ग) अनुसूचित/जनजातियों के लिए वैयक्तिक लाभकारी योजनाए 22.5%

(घ) अन्य निर्माण कार्य जैसे सडकें और बिल्डिंग 17.5%

इस प्रोग्राम मे यह निर्णय किया गया है कि 22.5% साधन जो अनुसूचित जातियो एव जनजातियों के लिए आरक्षित किए गए हैं केवल उनके कल्याण के लिए ही खर्च किए जाएंगे। इसमे किसी परिवर्तन की इजाजत नहीं दी गयी किन्तु अन्य क्षेत्रो के लिए आबंटित साधनो में कुछ फेर बदल की इजाजत दी गयी है।

जवाहर रोजगार योजना की प्रथम धारा के आधीन निर्माण कार्य

1 सरकारी एव सामुदायिक भूमियो पर जो पचायतों आदि की मलकियत हैं सामाजिक वाणिकी (Social forestry) सडकों के किनारो पर वृक्ष रोपण, नहरो के किनारों पर वक्ष रोपण या बजर भूमियो या रेलवे लाइनो आदि के दोनों ओर पेड़ लगाना।

2. भूमि तथा जल सरक्षण कार्य

3 छोटी सिचाई योजनाए जैसे सामुदायिक सिचाई के कुए, नालिया और खेतों को पानी देने को कुल्याए (field channels)

4 सिचाई एव पीने का पानी उपलब्ध कराने के लिए ग्रामो के तालाबों का निर्माण या मरम्मत

5 सामुदायिक शौचालयो (Communal latrines) का निर्माण

6 अनुसूचित जातियो/जनजातियो और मुक्त कराए गए बधुआ मजदूरो के लिए मकान बनाना

7 ग्रामीण सडको का निर्माण

8 व्यर्थ भूमियो का उद्धरण एव भूमि विकास

9 सामुदायिक भवनो पचायत घरो महिला मण्डलो मण्डियो, औषधालयो आगनवाडियो बालवाडियो आदि का निर्माण।

10 स्कूलो की इमारतो आदि का निर्माण।

जवाहर रोजगार योजना के आधीन मजदूरी

न्यूनतम मजदूरी कानून के आधीन निश्चित की गयी मजदूरी जवाहर रोजगार योजना के आधीन दी जाती है। यह आंशिक रूप मे खाद्यान्नो और आंशिक रूप मे नकदी के रूप मे भी दी जा सकती है। खाद्यान्नो के वितरण की दर 2 किलोग्राम प्रति श्रमिक दिन निश्चित की गयी। किन्तु सितम्बर 1993 से खाद्यान्नो के रूप मे मजदूरी का भुगतान वैकल्पिक बना दिया गया।

दस लाख कुओ की योजना (Million Wells Scheme)

दस लाख कुओ की योजना को जो 1988 89 से राष्टीय ग्राम रोजगार योजना के आधीन कार्य कर रही थी के आधीन खुले सिचाई के कुए, गरीब छोटे तथा सीमान्त किसानो को जो अनुसूचित जातियो/जनजातियो या मुक्त बन्धुआ मजदूरो को बिना किसी लागत के उपलब्ध कराए गये। 1 अप्रैल 1989 से यह योजना जवाहर रोजगार योजना के आधीन हो गयी और इसके लिए कुल राशि का 30 प्रतिशत निश्चित किया गया। 1993 94 से यह योजना गैर-अनुसूचित जनजातियो के गरीब छोटे एव सीमान्त किसानो (*Marginal farmers*) को भी उपलब्ध करायी गई।

1988 89 मे प्रोग्राम के आरभ होने से मार्च 1997 तक कुल 11 0 लाख कुए तैयार किए गए थे और जिन पर 4021 करोड रुपये खर्च किए गए।

इंदिरा आवास योजना (Indira Awaas Yojana)

इंदिरा आवास योजना का उद्देश्य अनुसूचित/जनजातियो के सदस्यो और मुक्त कराए गए बधुआ मजदूरो को बिना लागत के मकान उपलब्ध कराना है। यह योजना 1985 86 से ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारटी योजना (Rural Landless Employment Guarantee Scheme) के आधीन कार्यान्वित की गयी। 1989 90 से यह जवाहर रोजगार योजना के आधीन चलायी जा रही है। 1993-94 से यह योजना अन्य गरीब वर्गों को भी उपलब्ध करायी गयी है। इस योजना के आधीन प्रत्येक मकान पर अनुज्ञेय व्यय (Permissible expenditure) इस प्रकार है

मकान का निर्माण	रु 9000
बिना धुए का चूल्हा	रु 1500
अध सरचना एव सामान्य सुविधाओ की लागत	रु 3500
कुल	**14000**

मकान बनाने की जिम्मेदारी लाभप्राप्तकर्त्ता पर है और मकान के निर्माण एव डिजाइन के बारे मे पूर्ण स्वतत्रता है।

1985 86 से 1988 89 के दौरान जब यह योजना ग्राम भूमिहीन रोजगार गारटी प्रोग्राम के आधीन चलायी जा रही थी कुल 5 2 लाख मकान बनाए गए जिन पर 592 करोड रुपये खर्च हुए। मकान बनाने की औसत लागत 11388 रुपये थी।

जवाहर रोजगार योजना के आधीन 1989 90 से मार्च 1997 तक 37 2 लाख मकान 5038 करोड रुपये की लागत से तैयार किए गए। एक मकान बनाने की औसत लागत 13543 रुपये थी। चूंकि मकान बनाने के सामान की कीमते कहीं अधिक तेजी से बढती रही हैं इसके नतीजे के तौर पर मकानो की गुणवत्ता पर बुरा प्रभाव पडा है। अत अब यह जरूरी हो गया है कि मकान बनाने के लिए जवाहर रोजगार योजना के आधीन सहायता के मानदण्डो पर पुनर्विचार किया जाए।

तीसरी धारा नवक्रिया और विशेष रोजगार योजना

जवाहर रोजगार योजना की तीसरी धारा के आधीन विशेष एव नयी प्रकार के प्रोग्राम चलाये जाएगे जिनका उद्देश्य स्थायी रोजगार कायम करना है। इनमे उल्लेखनीय है श्रम के प्रवासन को रोकना स्त्रियो के रोजगार को बढावा देना स्वय सेवी सस्थाओ द्वारा सूखे के प्रबन्ध एव जलविभाजन का विकास करना बजर भूमि विकास को प्रोन्नत करना। इसके अतिरिक्त आप्रेशन ब्लैक बोर्ड (Operation Black Board) द्वारा कक्षाओ के लिए कमरे और स्कूलो की इमारतो के बनाने के लिए सहायता दी गयी। 1989 90 से 1993 94 के 5 वर्षों के दौरान 4332 करोड मानव दिन रोजगार के लक्ष्य के विरुद्ध 4293 करोड मानव दिन रोजगार कायम किया गया अर्थात् लक्ष्य का लगभग 97 प्रतिशत। 428.3 करोड मानव दिन के रोजगार जनन मे अनुसूचित जातियो का भाग 1605 करोड मानव दिन (कुल का 37 5%) और जनजातियो का भाग 77 6 करोड मानव दिन (कुल का 19 7 प्रतिशत) था। यदि इन दोनो को जोड ले तो अनुसूचित

एव जनजातियो का कुल रोजगार मे भाग 55 6 प्रतिशत था यह एक स्वस्थ प्रवत्ति है। जवाहर रोजगार योजना का एक और महत्त्वपूर्ण पहलू स्त्रियो के लिए 103 6 करोड मानव दिन का रोजगार कायम करना था जो कि कुल रोजगार जनन का 24 2 प्रतिशत है।

रोजगार आश्वासन योजना (Employment Assurance Scheme)

महाराष्ट्र की रोजगार गारटी योजना के माडल के अनुसार सरकार द्वारा 2 अक्टूबर, 1993 को 261 जिलो के 1778 ब्लाको मे ग्राम क्षेत्रो मे रोजगार आश्वासन योजना चालू की गयी। इस योजना का उद्देश्य ऐसे ग्रामीण निर्धनो को जो रोजगार की तलाश मे है 100 दिन का अकुशल शारीरिक कार्य उपलब्ध कराना है। 100 दिन के रोजगार का आश्वासन 18 से 60 वर्ष तक के सभी पुरुषो एव स्त्रियो को दिया गया। इस योजना के आधीन एक परिवार के अधिक से-अधिक दो बालिगो को रोजगार उपलब्ध कराया जाएगा।

रोजगार आश्वासन योजना 1993 मे चालू की गयी। चार वर्षो (1993 94 से 1996 97) के दौरान 106 86 करोड मानव दिन रोजगार कायम किया गया जिस पर 5 278 करोड रुपये खर्च हुए और 259 लाख व्यक्तियो को राहत प्राप्त हुई। एक वर्ष के दौरान प्रति व्यक्ति 41 2 दिन का रोजगार उपलब्ध कराया गया जबकि 100 दिन के रोजगार का लक्ष्य रखा गया था। इस योजना को और अधिक चिरस्थायी बनाने के लिए यह जरूरी है कि एक वर्ष मे 100 दिन का रोजगार मुहैय्या कराने का लक्ष्य प्राप्त किया जाए ताकि अधिक मात्रा में लाभ प्राप्तकर्ता गरीबी रेखा को पार कर सके।

जवाहर रोजगार योजना के व्यय का ढाचा

1989 90 से 1993 94 की पाच वर्षो की अवधि के दौरान जवाहर रोजगार योजना के विभिन्न मदों पर व्यय के वितरण से पता चलता है कि 11 072 करोड रुपये के कुल व्यय मे से 2,478 करोड रुपये ग्रामीण सडको पर (22 4%) छोटी सिचाई जिसमे बाढ नियत्रण कुओ से सिचाई ग्रामो के तालाब और सडके शामिल है 2 786 करोड रुपये (25 2%) मकानों पर 1 660 करोड रुपये (15%) स्कूल और सामुदायिक भवनो पर 868 करोड रुपये (7 8%) सामाजिक वाणिकी पर 480 करोड रुपये (4.3%) और अन्य मदों पर जैसे भूमि सरक्षण, भूमि विकास कार्यक्रम पीने के पानी के कुए, तालाब आदि पर 2,800 करोड रुपये (25 2%) खर्च किए गए। इसके परिणामस्वरूप दस लाख कुओ की योजना के आधीन 4 47 लाख कुए और इंदिरा आवास योजना के आधीन 14 8 लाख मकान बनवाए गए। इसके अतिरिक्त 1 68 993 स्कूल भवनो मे अतिरिक्त कमरे बनाए गए या उनकी मरम्मत करवायी गयीं। ग्रामो मे 6 74 लाख किलोमीटर लम्बी सडके बनवायी गया और 4 9 लाख पीने के पानी के कुए तैयार करवाए गए। इसके अलावा, 3.3 लाख ग्राम तालाब बनवाए गए और 6.55 लाख हैक्टेयर भूमि को सामाजिक वाणिकी के आधीन लाया गया।

जवाहर रोजगार योजना का मूल्याकन

पिछले कुछ वर्षो मे जवाहर रोजगार योजना के बारे मे कई अध्ययन किए गए हैं।

1991 92 मे जवाहर रोजगार योजना का शीघ्र अध्ययन—योजना आयोग की प्रोग्राम मूल्याकन सस्था द्वारा 1991 92 मे जवाहर रोजगार योजना का मूल्याकन 10 राज्यो मे किया गया। इस अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए—

1 जबकि अनुसूचित जातियो/जनजातियो का रोजगार मे भाग 50 प्रतिशत से अधिक था स्त्रियो का रोजगार जनन मे जिला स्तर पर भाग केवल 22 35 प्रतिशत था और ग्राम पचायत स्तर पर 15 से 18 प्रतिशत।

2 जवाहर रोजगार योजना प्रत्याशित सीमा तक रोजगार उपलब्ध न करा सकी क्योंकि 1989 90 के दौरान प्रति व्यक्ति औसत रोजगार 11 44 दिन था, 1990 91 मे यह 15 68 दिन और 1991 92 मे केवल 12 81 दिन था।

3 चुने हुए लाभप्राप्तकर्त्ताओ (Beneficiaries) मे 89 प्रतिशत ने कायम की गयी परिसम्पत को उपयोगी बताया।

4 कुछ परियोजनाओ के कार्यान्वयन के लिए ग्राम पचायतो ने ठेकेदारों का प्रयोग किया।

5 परिसम्पत के रख रखाव (Maintenance) की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया।

इंदिरा आवास योजना का शीघ्र अध्ययन

प्रोग्राम मूल्याकन सस्था ने 14 राज्यो मे इंदिरा आवास योजना का शाघ्र अध्ययन (Quick study) किया। इस अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष इस प्रकार है—

1 मकान बनाने की औसत लागत 9 000 रुपये थी।

2 निर्धनता स्तर के नाचे रहने वाले अनुसूचित जाति/जनजातियो के सदस्यो मे मकानो की बाट के लिए परिवारो को चुनने के लिए सभी चुने हुए ग्रामो मे कसौटियो का पालन किया गया।

3 गुणवत्ता के आधार पर 50 प्रतिशत मकानो को अच्छा समझा गया।

4 लगभग 84 प्रतिशत परिवारो ने उनको दिए गए

मकानो के बारे में पूर्ण/आंशिक रूप मे अपना सतोष व्यक्त किया।

5 कुछ ग्रामो मे इस कार्य के लिए ठेकेदारो के इस्तेमाल की भी सूचना प्राप्त हुई।

6 स्वयसेवी सस्थाओ का मकानो के निर्माण में कोई सम्बन्ध नहीं था विशेषकर साफ सुथरे शौचालय या बिना धुए के चूल्हे बनाने मे।

जवाहर रोजगार योजना का समकालीन मूल्याकन *(Concurrent Evaluation)*

1992 मे भारत सरकार ने जवाहर रोजगार योजना का प्रसिद्ध अनुसन्धान सस्थानो द्वारा देश के सभी जिलो में समकालीन मूल्याकन करवाया। इस जाच के मुख्य परिणाम निम्नलिखित हैं—

1 ग्राम पचायतो द्वारा उपलब्ध राशियो के लगभग 73 प्रतिशत का प्रयोग किया गया।

2 सभी राज्यो मे अकुशल श्रमिको को दी गयी प्रतिदिन मजदूरी न्यूनतम मजदूरी कानून के आधान निश्चित न्यूनतम मजदूरी के लगभग बराबर थी।

3 जवाहर रोजगार योजना के विभिन्न कार्यों मे जो ग्राम पचायतो द्वारा किए गए, व्यय मे मजदूरी और गैर मजदूरी भुगतान (Wage and non wage payment) का भाग 53 47 था।

4 लगभग 84 प्रतिशत कार्यों मे उपस्थिति नामावली (Muster rolls) रखी गयी।

5 निर्मित परिसम्पतो मे लगभग 74 प्रतिशत अच्छे सतोषजनक 8 प्रतिशत घटिया और शेष 18 प्रतिशत या तो अपूर्ण थे या निर्धारित मानदण्डो के अनुरूप नहीं थे।

6 अखिल भारतीय स्तर पर, सर्वेक्षण के अन्तिम 30 दिनो के दौरान जवाहर रोजगार योजना में एक श्रमिक को 4 दिन का रोजगार और उसके परिवार के अन्य सदस्यो को एक दिन का रोजगार प्राप्त हुआ।

7 17 5 प्रतिशत परिस्थितियो मे निर्मित परिसम्पत रख रखाव किसी भी एजेन्सी द्वारा न किया गया।

रिपोर्ट द्वारा चिन्ता के क्षेत्र निम्नलिखित बताए गए—

1 अधिकतर पचायतो के अध्यक्षो को जवाहर रोजगार योजना के कार्यों को करने का प्रशिक्षण नहीं दिया गया।

2 कुछ राज्यो मे वार्षिक कार्य योजनाओं की ग्राम सभा की सभाओ मे चर्चा नहीं की गयी।

3 कुछ राज्यो अर्थात् आध्र प्रदेश केरल महाराष्ट तमिलनाडु ओर पाण्डिचेरी मे पुरुष एव स्त्री अकुशल श्रमिकों को दी गयी प्रतिदिन मजदूरी मे अन्तर विद्यमान था।

4 ऐसे श्रमिक जो इस प्रोग्राम के लिए हकदार नहीं थे उन्होंने भी इस प्रोग्राम का लाभ उठाया।

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि जवाहर रोजगार योजना का परिकल्पन बडे उत्तम उद्देश्यो को दृष्टि मे रख कर किया गया। इसका केन्द्र अनुसूचित जातियो/जनजातियो मुक्त कराए गए बन्धुआ मजदूरो और अन्य ऐसे व्यक्तियो पर था जो निर्धनता रेखा के नीचे जीवन व्यतीत करते थे। इससे साफ जाहिर है कि योजना का लक्ष्य समाज के कमजोर वर्गों की सहायता करना था। चाहे रोजगार उपलब्ध कराने मे थोडी प्रगति हुई है परन्तु प्रत्येक पजीकृत व्यक्ति के लिए 90 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराने का लक्ष्य अभी एक दूरस्थ स्वप्न ही प्रतीत होता है यदि इस योजना द्वारा प्राप्त अभी तक की उपलब्धिया दृष्टि मे रखी जाए। अत जवाहर रोजगार योजना के लिए अधिक वित्तीय साधनो की जरूरत है और इसके कार्यान्वयन मे और तेजी लानी आवश्यक है। स्वैच्छिक सस्थाओ की इसके कार्यान्वयन में पूर्ण अनुपस्थिति जवाहर रोजगार योजना की एक गभीर कमजोरी है। मकानो के निर्माण की गुणवत्ता को उन्नत करने के लिए प्रति मकान और अधिक उदार राशि की व्यवस्था करनी होगी जिसके अभाव के कारण मकानो की घटिया गुणवत्ता होने के परिणामस्वरूप कुछ ही वर्षो मे भारी मरम्मत की जरूरत पडेगी। मकानो के लिए धन राशि और बढानी चाहिए। इसके अतिरिक्त, जहा परिसम्पतो का निर्माण महत्त्वपूर्ण है वहा इनके रख रखाव की ओर भी पर्याप्त ध्यान देना चाहिए।

रोजगार जनन की दृष्टि से जवाहर रोजगार योजना का समग्र प्रभाव लक्ष्य से बहुत कम हो रहा है। जवाहर रोजगार द्वारा कमजोर वर्गों के सदस्य मकान प्राप्त कर पाए है या उन्हे पीने का पानी उपलब्ध हो गया है उनके इलाके की सफाई उन्नत तो हुई है परन्तु अभी बहुत कुछ करना बाकी है ताकि *गरीब जनता के जीवन की गुणवत्ता मे महत्त्वपूर्ण सुधार लाया* जा सके। जाहिर है कि इसके लिए अधिक ससाधन चाहिए—वित्तीय एव मानवीय दोनो ही।

13 नौवी योजना मे रोजगार-नीति

नौवीं पचवर्षीय योजना के दिशा निर्देश पत्र (Approach Paper) में जो राष्टीय विकास परिषद के सामने रखा गया, रोजगार परिप्रेक्ष्य को इस प्रकार पेश किया है "1987 88 और 1993 94 के बीच रोजगार एव बेरोजगारी की सरचना में हुए कुछ परिवर्तनो की ओर ध्यान देना आवश्यक है। तालिका 13 से पता चलता है कि स्त्री रोजगार की वद्धि दर में गिरावट आयी और यह गिरावट विशेष रूप मे ग्रामीण क्षेत्रो मे प्रखर थी। इसके अतिरिक्त, ग्रामीण क्षेत्रो मे स्त्री एव पुरुष दोनो के सम्बन्ध मे रोजगार की वद्धि दर नगरीय क्षेत्रों की तुलना में महत्त्वपूर्ण रूप मे कम थी।"

तालिका 13 रोजगार परिदृश्य

	1987 88			1993 94		
	पुरुष	स्त्री	कुल	पुरुष	स्त्री	कुल
1 रोजगार की वार्षिक वृद्धि दर						
ग्रामीण	1 43	1 52	1 46	2 25	0 87	1 84
नगरीय	2 97	2 95	2 97	3 57	3 64	3 59
कुल	1 80	1 71	1 77	2 59	1 27	2 23
2 बेरोजगारी दर						
सामान्य प्रधान स्थिति	3 60	4 19	3 77	2 60	2 44	2 56
वर्तमान दैनिक स्थिति	5 54	7 61	6 09	5 91	6 33	6 03

स्रोत Planning Commission Approach Paper to the Ninth Five Year Plan (1997 2002)

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (National Sample Survey) के 50वे रौंद के अनुसार 1993 94 मे खुली बेरोजगारी (Open employment) की दर 1987 88 की तुलना मे 3 77 प्रतिशत से घटकर 2.56 प्रतिशत हो गयी परन्तु अल्प रोजगार (Under employment) की दर लगभग 6 प्रतिशत पर स्थिर रही।

अनियमित मजदूरी रोजगार (Casual wage employment) जो 1987 88 मे 31 2 प्रतिशत था बढकर 1993 94 मे 33 5 प्रतिशत हो गया जबकि स्व रोजगार (Self employment) 53 6 प्रतिशत से घटकर 51 9 प्रतिशत हो गया। नियमित वेतनिक रोजगार मे 15 2 प्रतिशत से 14 7 प्रतिशत तक हो जाने की मामूली गिरावट आयी।

नौवीं योजना 'रोजगार' को अपने केन्द्रीय लक्ष्य के रूप मे कल्पित नहीं करती बल्कि इसे एक उप परिणाम (Corollary) मानती है। इस कारण योजना मे उल्लेख किया गया *"कृषि तथा ग्राम विकास को प्राथमिकता देना ताकि उत्पादक रोजगार कायम किया जा सके और गरीबी को समाप्त किया जा सके।"*

नौवीं योजना के दिशा निर्देश पत्र मे रोजगार के सम्बन्ध मे निम्नलिखित नीति प्रतिपादित की गयी 'नौवीं योजना का एक प्रमुख उद्देश्य विकास प्रक्रिया मे ही अधिक उत्पादक रोजगार (Productive employment) उत्पन्न करना है और इसके लिए ऐसे क्षेत्रो उपक्षेत्रो और तकनालाजी पर बल देना होगा जो श्रम प्रधान हो और इसका प्रयोग ऐसे क्षेत्रो मे करना होगा जिसमे बेरोजगारी एव अल्परोजगार की उच्च दरे विद्यमान हो।

रोजगार की गुणवत्ता (Quality) मे उन्नति प्राप्त करने के लिए ऐसी परिस्थिति कायम करनी होगी जिसमे उत्पादिता तीव्र रूप से बढे ताकि श्रम न्यायोचित रूप मे इसमे भाग प्राप्त करने का दावा कर सके। इस उद्देश्य की दृष्टि में ऐसे रोजगार के लिए शिक्षा और कौशल का विकास अनिवार्य अग हैं। बच्चो की निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा जिसके साथ स्कूलो मे दोपहर का भोजन भी उपलब्ध हो, इस दिशा मे पहला कदम है।

अल्परोजगार की व्यापक अभिव्यक्ति और श्रम के अनियमितीकरण (Casualisation of labour) को स्वीकार करते हुए गरीबो के लिए रोजगार के अवसर बढाने की जरूरत है। इस सदर्भ मे नौवीं योजना एक राष्ट्रीय रोजगार आश्वासन योजना (Employment Assurance Scheme) को कार्यान्वित करेगी।

रोजगार और बेरोजगारी का परिदृश्य

श्रमशक्ति की वृद्धि, जनसख्या की वृद्धि दर आयु ढाचे मे परिवर्तन और श्रमशक्ति की भागिता दर (Labour force participation rate) पर निर्भर करती है। *श्रमशक्ति की* वृद्धि, रोजगार और बेरोजगारी का अन्दाजा तालिका 14 मे दिए गए आकडा मे लगाया जा सकता है—

तालिका 14 जनसख्या, श्रमशक्ति और रोजगार

लाखों में

	1978	1983	1994	1997	2002
जनसख्या	6,376	7,258	8,937	9 499	10,276
		(2.92)	(2.00)	(1 89)	(1.59)
श्रमशक्ति	2,626	2,891	3,674	3,992	4,502
		(2.16)	(2.31)	(2.43)	(2.54)
रोजगार	2,555	2,832	3,600	3,897	4 436
		(2.32)	(2.31)	(2.47)	(2.62)
बेरोजगारी	71	59	74	75	66
	(2.7)*	(2 0)*	(2.0)*	(1 9)*	(1.5)*

नोट 1 श्रमशक्ति और रोजगार के अनुमान सामान्य स्थिति अवधारणा (Usual status concept) पर आधारित है और ये 15 वर्ष और उससे ऊपर की आयु के लिए हैं।

2 ब्रैकेट मे दिए गए आकडें पिछले काल में चक्रवृद्धि दर के रूप में हैं।

* ब्रैकेट मे दिए गए आकडे खुली बेरोजगारी के प्रतिशत के रूप में हैं और इनका परिकलन बेरोजगार व्यक्तियों का कुल श्रमशक्ति के प्रतिशत रूप मे किया गया है।

स्रोत योजना आयोग, नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997 2002) के लिए सकलित एव परिकलित।

तालिका 14 मे सामान्य स्थिति बेरोजगारी (खुली बेरोजगारी) सम्बन्धी आकडे 1978 से 1997 तक दिए गए है। इन आकडों से पता चलता है कि 1978 मे खुली बेरोजगारी 2 7 प्रतिशत थी यह 1983 मे गिरकर 2 प्रतिशत हो गयी और 1997 मे थोडी और कम होकर 1 9 प्रतिशत हो गयी। इसका मुख्य कारण यह था कि रोजगार की वृद्धि दर श्रम शक्ति की वृद्धि दर से थोडा अधिक थी। यह बात बडी उत्साहवर्धक है कि रोजगार की वृद्धि दर 1994 97

के दारान बढकर 2 47 प्रतिशत तक पहुच गयी। आशा है कि 2002 मे खुली बेरोजगारी 1 5 प्रतिशत होगी।

बेरोजगारी और अल्परोजगार का सयुक्त आपात

भारतीय अर्थव्यवस्था को मूल समस्या खुली बेरेंजगारी नहीं बल्कि अल्परोजगार (Under employment) है जो दृश्य भी हो सकती है और अदृश्य थी। दृश्य अल्परोजगार (Visible under employment) तब पाया जाता है जब किसी भी व्यक्ति के लिए चाहे वह रोजगार प्राप्त या बेरोजगार वर्गीकृत किया जाए, छोटी छोटी कुछ बेरोजगारी की अवधियां भी विद्यमान होती है। इसका अर्थ यह है कि जो रोजगार व्यक्ति को उपलब्ध था वह उसके श्रम समय (Labour time) के पूर्ण उपयोग के लिए नाकाफी था। इसके विरुद्ध, ऐसा भी प्रतीत होता है कि कुछ बेरोजगार व्यक्ति विशेषकर स्वरोजगार प्राप्त व्यक्ति सारा वर्ष काम मे लगे रहते है परन्तु उत्पादिता या आय के रूप मे जो कार्य वे कर रहे है उससे उन्हे पर्याप्त आय प्राप्त नहीं होती। अत वे अपनी आय को बढाने के कुछ अतिरिक्त कार्य और या विकल्प रोजगार चाहते है। ऐसे अल्परोजगार को अदृश्य अल्परोजगार (Invisible under employment) कहा जाता है और इस कारण इसे मापा नहीं जा सकता। इसे गुप्त बेरोजगारी (Disguised unemployment) भी कहते है।

नौवीं पंचवर्षीय योजना ने बेरोजगारी और अल्परोजगार के सयुक्त आपात (Combined incidence) का अनुमान लगाया है। (देखिए तालिका 15) चाहे 1993 94 मे खुली बेरोजगारी केवल 2 प्रतिशत थी किन्तु अल्परोजगार की मात्रा 8 43 प्रति थी। इस प्रकार बेरोजगारी और अल्परोजगार का सयुक्त आपात (incidence) 10 45 प्रतिशत था।

तालिका 15 **बेरोजगारी और अल्परोजगार का सयुक्त आपात (1993-94)**

		श्रमशक्ति का अनुपात
1	श्रमशक्ति	100 00
2	रोजगार प्राप्त	89 55
3	बेरोजगार	2.02
4	अल्परोजगार प्राप्त	8 43
5	बेरोजगार और अल्परोजगार (3 + 4)	10 45

स्रोत योजना आयोग, तत्रैव

नौवीं योजना के रोजगार प्रक्षेपण (Employment projections)

1997 मे अवशिष्ट बेरोजगार व्यक्ति की सख्या सामान्य स्थिति अवधारणा के आधार पर 75 लाख आकी गयी। इसमे नौवा योजना के दौरान 530 लाख की अतिरिक्त वृद्धि होगी। अत नौवीं योजना को कुल 605 लाख रोजगार अवसर उपलब्ध कराने पडेगे। विभिन्न क्षेत्रो की रोजगार-लोच (Employment elasticities) और प्रत्याशित वृद्धि-दर के आधार पर, 7 प्रतिशत औसत समग्र वृद्धि द्वारा 539 लाख अतिरिक्त रोजगार अवसर कायम किए जाएगे। नौवी योजना के अन्त पर सन् 2002 मे अवशिष्ट बेरोजगारो (Backlog of unemployed) के थोडा व म होकर 66 लाख हो जाने को प्रत्याशा है। इस प्रकार सामान्य स्थिति बेरोजगारी कम होकर 1 5 प्रतिशत हो जाएगा। यह लगभग पूर्ण रोजगार (Near full employment) का परिदृश्य है।

अतिरिक्त रोजगार अवसरो का परिकलन करने के लिए

तालिका 16 **रोजगार अवसरो का प्रक्षेपण (1997-2002)**

लाख

क्षेत्र	रोजगार सकल लोच	देशीय उत्पाद की वार्षिक वृद्धि दर (1)	1997 (2)	रोजगार अवसर 2002 (3)	अतिरिक्त रोजगार 4=(3 2)
कृषि	50	4 5	2,373 1	652 4	279 3 (51 8)
खनन एवं खनन	0 60	7 7	8)	36.2	7 3 (1 4)
3 विनिर्माण	0 25	9 7	436.0	491 5	55 5 (10.3)
4 बिजली	0 5	10.6	15.	19 7	4 5 (0 8)
5 निर्माण	0 60	5 7	143 5	167 8	26.3 (4 9)
6 व्यापार एवं परिवहन	0 55	7 1	468.0	566 8	98 8 (18 3)
7 वित्त, वास्तविक जायदाद, बीमा और व्यापारिक सेवाएं	0 53	10 1	42 5	55.2	12 7 (7 4)
8 सामुदायिक सामाजिक और वैयक्तिक सेवाएं	0 80	5 7	390.1	444.6	54 5 (0 1)
9 सभी क्षेत्रों में रोजगार	1 38	7 0	3807 3	4436 2	538) (1 00)
10 श्रमशक्ति			3972 2	4502 3	
11 बेरोजगार व्यक्ति (10 9)			74)	66 1	

नोट रोजगार लोच और सकल देशाय उत्पाद की वृद्धि दर नौवीं पचवर्षीय योजना के लिए 1997 2000 से सम्बन्धित हैं।

स्रोत योजना आयोग, नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997 2002) खण्ड I से सकलित दो चलो (Variables) का प्रयोग किया गया है—विशेष क्षेत्र मे रोजगार लोच और नौवी योजना के दौरान प्रक्षेपित सकल देशाय उत्पाद की वृद्धि दर। तालिका 16 से कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यो का बोध होता है

1 नौवा योजना के दौरान श्रम शक्ति मे 530 लाख की शुद्ध वृद्धि के लिए रोजगार उपलब्ध कराने की प्रत्याशा है।

इसमे लगभग 9 लाख अतिरिक्त रोजगार-अवसर उपलब्ध कराने के परिणामस्वरूप अवशिष्ट बेरोजगार व्यक्तियों की सख्या कम होकर 66 लाख हो जाएगी।

2 कृषि से लगभग 52 प्रतिशत (279 3 लाख) अतिरिक्त रोजगार अवसर प्राप्त होने की आशा है।

3 व्यापार एव परिवहन से 99 लाख रोजगार अवसरो का योगदान (अर्थात् 18 3 प्रतिशत) प्राप्त होगा।

4 विनिर्माण जिससे 55.5 लाख अतिरिक्त रोजगार प्राप्त होगे इनमें मुख्य योगदान लघु उद्योगो से प्राप्त होगा। बडे पैमाने के उद्योगो द्वारा हाई टेक चालू करने के परिणामस्वरूप श्रम विस्थापन (*Labour displacement*) की प्रक्रिया जारी है और इस कारण इस क्षेत्र में अधिक श्रमिको को समोने की प्रत्याशा नहीं।

5 सेवा क्षेत्र रोजगार जनन (Employment generation) का एक और मुख्य क्षेत्र है। इसका एक कारण तो सामाजिक क्षेत्र का विस्तार है या छोटी बक्रशायो का बढ जाना या सूचना क्रान्ति (Information revolution) के लिए सेवा क्षेत्र में रोजगार अवसरों मे वृद्धि भी हो सकता है। इस प्रकार सेवा क्षेत्र मे 54 5 लाख अतिरिक्त रोजगार अवसर कायम होने की प्रत्याशा है।

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि रोजगार जनन के पारपरिक क्षेत्र ही अतिरिक्त रोजगार के मुख्य स्रोत हैं न कि वे क्षेत्र जिन पर आर्थिक सुधारो मे अधिक बल दिया जा रहा है—निगम क्षेत्र (भारताय या विदेशी)

नौवीं योजना मे बिल्कुल साफ शब्दो मे उल्लेख किया गया है कि रोजगार की गुणवत्ता (Quality) को उन्नत करने की समस्या का एकमात्र समाधान कृषि की उत्पादिता को बढाना है और इसके साथ श्रमिको के शिक्षा स्तर आर कौशल विकास मे सुधार करना होगा। परिस्थिति मे सुधार हो रहा है परन्तु इसे व्यापक रूप धारण करने मे समय लगेगा और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मानवीय पूजी निर्माण में भारी विनियोग करना होगा।

चूंकि आकस्मिक श्रम (Casual labour) का अनुपात जो 1972 73 मे 23 प्रतिशत था बढकर 1993 94 मे लगभग 32 प्रतिशत हो गया और इसके कारण अर्थव्यवस्था मे नियमित रोजगार (Regular employment) मे गिरावट आयी है। नौवीं योजना मे यह बात स्वीकार की गयी है कि श्रमशक्ति के इस बडे भाग को देश उचित जीवन स्तर उपलब्ध कराने मे विफल रहा है। योजना के अनुसार, "आकस्मिक श्रम की मजदूरी मे परिवर्तन की दिशा से रोजगार से प्राप्त लाभ मे उन्नति जान पडती है परन्तु 1993 94 की कीमतो पर ग्रामीण क्षेत्रो मे 15 रुपये प्रतिदिन ओर शहरी क्षेत्रो मे 22 रुपये प्रतिदिन की कुल मजदूरी से अच्छा जीवन स्तर उपलब्ध नहीं कराया जा सकता, औसत श्रमिक को सामाजिक सुरक्षा (Social security) उचित रूप मे उपलब्ध कराने की बात तो दूर रही।" जाहिर है कि नौवीं योजना मे चाहे रोजगार तो उपलब्ध करा दिया जाएगा परन्तु चूंकि अल्परोजगार हमारी मुख्य समस्या बनी हुई है रोजगार की गुणवत्ता के कारण श्रमिको की गरीबी दूर नहीं की जा सकेगी।

किन्तु यहा इस बात का उल्लेख करना उचित होगा कि नौवीं योजना रोजगार की नीति का केन्द्रीय लक्ष्य स्वीकार नहीं करती चाहे यह इसे विकास प्रक्रिया मे कायम करने के रूप मे एक उप परिणाम मानती है। योजना के समष्टि-आयाम (Macro dimensions) पारपरिक प्रतिमान के रूप मे बचत विनियोग सकल देशीय उत्पाद की वृद्धि दरों के रूप मे अभिव्यक्त किए गए हैं। इस सम्बन्ध मे, मानवीय विकास रिपोर्ट (1996) द्वारा दी गयी सलाह की ओर ध्यान देना प्रासंगिक होगा जिसमे यह कहा गया है कि विकास की अनिवार्य शर्त के रूप मे पूर्ण रोजगार के रूप मे स्पष्ट राजनीतिक प्रतिबद्धता होनी चाहिए। रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है 'जहा रोजगार जनन सबसे अधिक सफल हुआ है यह एक सकल्पित रणनीति का परिणाम रहा है। इसकी बजाए यदि यह कल्पना की जाए कि रोजगार अपने-आप कायम हो जाएगा राजनैतिक नेताओ ने इसकी पहचान एक केन्द्रीय नीति लक्ष्य के रूप मे की।" यहा इस पर और बल देते हुए रिपोर्ट उल्लेख करती है 'आर्थिक प्रबन्ध की सर्वोच्च नीति चिन्ताओ के रूप मे रोजगार को इसका उचित स्थान देना होगा। सरकारो और ब्रैटनवुड्स सस्थानो (Bretton Woods Institutions) के बीच सहमत प्राप्त समष्टि-आर्थिक ढाचे मे रोजगार पर ध्यान आकर्षित करने पर बल दिया गया—न कि स्फीति सकल देशीय उत्पाद की वृद्धि, अल्पकालीन ओर मध्यमकालीन सुधारो और अल्पकालीन राजकोषीय एव बजट लक्ष्यो पर। उन्हे निश्चित रोजगार लक्ष्य करने चाहिए जो कि मानवीय विकास और पोषणीय भावी विकास के लिए अनिवार्य है।"[4]

14 रोजगार प्रेरित विकास रणनीति (Employment oriented Development Strategy)

आयोजन के लक्ष्यों मे बल दिया गया कि कुल देशीय उत्पाद मे 5 6 प्रतिशत की निरन्तर वृद्धि प्राप्त करनी चाहिए, निकट भविष्य मे जीवन स्तर मे लगातार एव महत्त्वपूर्ण उन्नति होनी चाहिए, देश मे आय तथा सम्पत्ति का अधिक न्यायपूर्ण वितरण प्राप्त करना चाहिए, क्षेत्रीय विकास का सतुलित ढाचा विकसित करना चाहिए, देश के अन्दर

4 United Nations Development Programme (1996) *Human Development Report* p 1992 93

औद्योगिक आधार कायम करने के उद्देश्य से मूल भारी तथा प्रतिरक्षा उद्योगों का विस्तार करना चाहिए और इनके साथ साथ निर्यात प्रोत्साहन एवं आयात प्रतिस्थान (Import substitution) को बढ़ावा देकर विदेशी सहायता पर निर्भरता कम करनी चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि विकास की एक न्यायपूर्ण एवं युक्तिसंगत प्रक्रिया में इन उद्देश्यों में संतुलन स्थापित करना आवश्यक है। अधिकाधिक विशेषज्ञों की राय अब इस विचार के इर्दगिर्द केन्द्रित होती जा रही है कि भारत जैसे *अल्पविकसित देश के लिए बेरोजगारी एवं अल्प-रोजगार* की चुनौती का सामना करने के लिए औद्योगिक विकास की रोजगार प्रेरित रणनीति का निर्माण इसका सर्वोत्तम उत्तर है। ऐसी परिस्थिति में रोजगार प्रेरित रणनीति की रूपरेखा तैयार करना अत्यन्त लाभदायक है।

किन्तु इस तथ्य को स्वीकार करना होगा कि 'सिद्धान्तत भारतीय अनुभव मे अल्पकाल के दौरान उत्पादन की वृद्धि दर और रोजगार की वृद्धि दर के बीच कोई साधारण या अद्वितीय सम्बन्ध है चाहे हमेशा ही यह मान्यता की गई कि आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप उत्पादन में वृद्धि होगी और उसके फलस्वरूप रोजगार में वृद्धि होगी। किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के आकडे दर्शाते हैं कि उत्पादन और रोजगार में वृद्धि के बीच सह सम्बन्ध (Correlation) का अभाव है। जाहिर है कि विनियोग की दर और तकनालाजी का चुनाव रोज़गार की वृद्धि दर निर्धारित करते हैं।

ऐसा होने की स्थिति में विनियोग दर और ढांचे में परिवर्तन के साथ तकनालाजी के चुनाव में परिवर्तन के परिणामस्वरूप रोजगार की वृद्धि दर में भी परिवर्तन होता है।

अत यह आवश्यक है कि निम्नलिखित दिशाओं में *विकास प्रक्रिया* को मोडा जाए *ताकि* देश में रोजगार के अवसरों का तेजी से विस्तार हो और सकल देशीय उत्पाद में 7 प्रतिशत की वृद्धि दर के साथ देश सन् 2000 तक पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त कर सके। योजना आयोग ने सुझाव *दिया है*—

(1) आर्थिक संवृद्धि मुख्यत उन क्षेत्रों में प्राप्त की जानी चाहिए जिनमें अधिक रोजगार क्षमता विद्यमान है और भविष्य में भी अधिक रोजगार क्षमता बनी रहने की सभावना है।

(2) समग्र सभरण एवं मांग के सतुलन (जिसमें निर्यात भी शामिल है) के सीमाबन्धन को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक मुख्य क्षेत्र में ऐसी वस्तुओं और उत्पादन प्रणालियों को उच्च प्राथमिकता देनी होगी जिनमें रोजगार तीव्रता (Employment intensity) *अधिक है।*

(3) विभिन्न उत्पादन प्रणालियों में जहां कहीं भी संभव हो ऐसी उत्पादन तकनीकों को प्रोत्साहन देना होगा जिनमें पूंजी की प्रति इकाई के लिए अधिक रोजगार प्राप्त हो और *पूंजी गहनता में अन्धाधुन्ध और प्राय* अनावश्यक वृद्धि को निरुत्साहित करना होगा।

(4) सार्वजनिक क्षेत्र के विनियोग को रोजगार प्रोत्साहन क्षेत्रों में प्रेरित करने के अतिरिक्त राजकोषीय एवं उधार नीतियों का प्रयोग गैर-सरकारी क्षेत्र के विनियोग को इस प्रकार प्रभावित करने के लिए करना होगा कि इससे ऐसे क्षेत्रों एव तकनालाजी को बढ़ावा मिले जिससे रोजगार क्षमता तेजी से बढ़े।

इस समग्र ढांचे के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों में रणनीति के *मुख्य अग इस प्रकार होने चाहिए।*

(*i*) कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्र

विकास की जो रणनीति पिछड़े निर्धन क्षेत्रों की वृद्धि दर को त्वरित करना चाहती है उसे कृषि में श्रम की खपत में समग्र गिरावट की प्रवृत्ति को पलटना होगा और इसके साथ साथ निम्न क्षेत्रों में ग्रामीण-श्रमिकों के औसत-आय स्तर को उन्नत करना होगा। ये आठ राज्य हैं—आध्र प्रदेश बिहार, *मध्य प्रदेश, उड़ीसा तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी* बंगाल। इन राज्यों में गरीबी रेखा के नीचे 80 प्रतिशत जनसंख्या रहती है और देश के कुल बेरोजगारो का इनमें 70 प्रतिशत है।

यह देखा गया है कि सिंचित क्षेत्र में 1 प्रतिशत की वृद्धि के परिणामस्वरूप रोजगार में 0.38 प्रतिशत की वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त कृषि में किए गए अध्ययनो से पता चलता है कि आध्र प्रदेश एव कर्नाटक में बोए गए एक हैक्टेयर सिंचित क्षेत्र द्वारा विसिंचित क्षेत्र (Unirrigated area) की तुलना में 50 से 150 प्रतिशत अतिरिक्त श्रम का प्रयोग होता है। अत रोजगार के साथ विकास की रणनीति की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि देश के मन्द वृद्धि वाले क्षेत्रों में सिंचाई का विस्तार किया जाए, विशेषकर छोटी सिंचाई परियोजनाओं की सहायता द्वारा।

अधिक मूल्य और अधिक श्रम प्रयोग वाली फसलों अर्थात् सब्जियों एव फलों को प्रोत्साहन देना चाहिए। सब्जियां फसलों में सबसे अधिक श्रम प्रधान मानी गई हैं। हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश के पहाडी इलाकों में किए गए अध्ययनों द्वारा तैयार अनुमानों से ज्ञात हुआ है कि सेबो पर प्रति हेक्टेयर 180 और 170 मानव दिन और आमों पर गुजरात में 335 महाराष्ट्र में 124 उत्तर प्रदेश में 91 और कर्नाटक में 85 मानव-दिन और इसकी समग्र औसत के रूप में 140 मानव दिन का प्रति हेक्टेयर प्रयोग होता है। इन अनुमानों में इन फलों के लिए विपणन एवं विधायन के दौरान जनित रोजगार को शामिल नहीं किया गया।

अन्य सम्बन्धित कृषि क्रियाएं जिनमे अधिक रोजगार—जनन होता है पशुपालन एवं मत्स्य पालन हैं। कृषि पर राष्ट्रीय आयोग द्वारा इस्तेमाल किए गए मानदण्ड के आधार पर परन्तु विपणन एवं विधायन में रोजगार को न

शामिल करते हुए, यह अनुमान लगाया गया है कि पशु पालन एव मत्स्य क्षेत्रों मे 1990-95 की अवधि के दौरान 615 लाख व्यक्ति वर्ष रोजगार कायम किया जाएगा।

इस कारण योजना आयोग का कहना है कि "यदि क्षेत्रीय दृष्टि से विस्तृत लगभग 4 प्रतिशत की वृद्धि दर के साथ अधिक मूल्य वाली फसलों अर्थात् फलो, सब्जियों एवं अन्य नकद फसलों के पक्ष में खेती को बढावा दिया जाए और इसके अतिरिक्त पशु पालन मे 5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य रखा जाए, तो कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों में रोजगार की 2.5 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त की जा सकती है।"

(ii) ग्रामीण औद्योगीकरण (Rural Industrialisation)

ग्रामीण क्षेत्रो मे बेरोजगारी और अल्प रोजगार दूर करने के लिए ग्रामीण औद्योगीकरण का प्रोग्राम चालू करना चाहिए। इस सम्बन्ध मे मूल प्रश्न ऐसे उद्योगो को निर्धारित करने का है जो रोजगार की दृष्टि से चालू किए जाने चाहिए, इनका स्थिति निश्चयन क्या हो और उन्हें सगठन की दृष्टि से कैसे अर्थ क्षम (Viable) बनाया जाए आदि। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ग्रामीण क्षेत्रो के टेक्नोआर्थिक सर्वेक्षण किए जाने चाहिए ताकि विभिन्न क्षेत्रो की आवश्यकताओ एवं क्षमताओ का अनुमान लगाया जा सके। भूतकाल मे कृषि द्वारा उत्पन्न वस्तुओ के मुख्य भाग का विधायन नगर-आधारित उद्योगों द्वारा किया जाता रहा है। ग्रामीण औद्योगीकरण के प्रोग्राम में कृषि उत्पाद की उत्पादक केन्द्र के पास विधायन करने का विचार है ताकि इस प्रकार ग्रामीण श्रम को रोजगार मिले। न केवल यह बल्कि अनुषंगिक (Ancillary) और पोषक उद्योग भी ग्राम क्षेत्रो या उनके आस पास ही कायम किए जाने चाहिए। ग्रामीण औद्योगीकरण के ऐसे प्रोग्राम के लिए बहुत से प्रशासनिक तकनीकी वित्तीय एव सगठनात्मक सहायक उपाय करने जरूरी हैं।

ग्राम औद्योगीकरण के प्रोग्राम को निम्नलिखित प्रकार के उद्योगो की स्थापना करने की व्यावहारिकता पर विचार करना चाहिए—

(1) कृषि उत्पाद का विधायन—बहुत से लोगो को पूर्णकालीन रोजगार दिलाने के लिए बहुत सी औद्योगिक इकाइया कायम की जा सकती हैं। ये किसानो और उनके परिवारो को अनुपूरक अशकालीन रोजगार भी उपलब्ध करा सकते हैं। इस प्रकार के उद्योगो के कुछ उदाहरण हैं चावल का विधायन रुई से बिनौले निकालना, दूध एव दूध से बनी वस्तुओ को तैयार करना, पटसन की निर्मित वस्तुए और चीनी का उत्पादन।

(2) फलों एवं सब्जियों का विधायन—बहुत से व्यक्तियों को फलो एव सब्जियो के पैकिंग डिब्बाबन्दी एव सरक्षण, मुरब्बे अचार एव अन्य खाद्य पदार्थों के बनाने के लिए रोजगार दिया जा सकता है।

(3) कृषि उप-उत्पाद के प्रयोग के लिए उद्योग—बहुत से कृषि उप उत्पादों (Agricultural by products) की विनिर्माण उद्योगों के लिए कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल करने की तकनीकी सभावनाओ की छानबीन करने की काफी गुजाइश है। इस प्रकार के उप उत्पादों के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं—शीरा और खोई (Bagasse) से एल्कोहल चावल की भूसी का ईंधन के रूप में प्रयोग, शराब बनाने के लिए चावल का इस्तेमाल और चावल के चोकर से तेल बनाना, आदि। ऐसे उद्योग ग्राम उद्योगों में रोजगार कायम करने के लिए उपयुक्त हैं और इनके विकास की काफी गुंजाइश है।

(4) ग्रामीण हस्तशिल्पो और कुटीर उद्योगों का विकास—कुटीर तथा ग्रामीण हस्तशिल्पो के विकास के लिए भारी क्षेत्र विद्यमान है। अब भी ग्रामीण हस्तशिल्प से तैयार की गई वस्तुए विदेशी मुद्रा कमाने लगी हैं इसे ओर बढावा देना चाहिए। इन ग्रामीण उद्योगो द्वारा केवल वही उपभोक्ता वस्तुए नहीं बनाई जानी चाहिए जिनकी हमारे किसानों को जरूरत है जैसे हल गैंती बेलचा एकपहिया, ठेला आदि, इसके अतिरिक्त बचत से अनुषगी एव पोषक उद्योग ऐसी वस्तुओं का निर्माण भी कर सकते हैं जो अन्ततोगत्वा बडे पैमाने के क्षेत्र में उत्पन्न की जाती हैं। कृषि मशीनरी के कुछ हिस्से या अन्य साज सामान निश्चित मानदण्ड के अनुसार ग्राम क्षेत्रो मे उत्पन्न किए जा सकते हैं।

(iii) औद्योगिक क्षेत्र

भारत मे औद्योगीकरण की क्रिया दूसरी पचवर्षीय योजना मे प्रारंभ की गई और इस योजना द्वारा निधारित पथ पर देश लगभग तीन दशक तक चलता रहा है। प्रश्न उठता है कि क्या इस प्रक्रिया से उत्पादन की तीव्र वृद्धि के साथ रोजगार की भी उतनी ही तीव्र वृद्धि हुई है ? विनिर्माण उद्योगो के उत्पादन एवं रोजगार की प्रवृत्ति का विश्लेशण करने से निम्नलिखित बातें पता चलती हैं—

पहली विनिर्माण क्षेत्र मे उत्पादन, रोजगार की तुलना में तीव्र गति से बढा है। दूसरी हल्के उद्योगा की तुलना मे विनियोग का ढाचा भारी उद्योगो के पक्ष मे परिवर्तित हुआ है। परिणामत भारी उद्योग क्षेत्र अर्थात् धातु उत्पाद उद्योगो धातु भिन्न खनिज उत्पाद, मूल धातु उद्योगो रसायन और पैट्रो रसायन उद्योग की वृद्धि हल्के उद्योगो की तुलना मे कहीं तेज गति से हुई है। हल्के उद्योग अथात् सूती वस्त्र, जूता उद्योग लकडी की वस्तुए, खाद्य और तम्बाकू निर्माण उद्योग अपेक्षाकृत अवरुद्ध रहे हैं। तीसरी भारी उद्योग जिसमे अतिरिक्त पूजी विनियोग का मुख्य भाग लगाया गया, अधिक पूजी प्रधान होने के कारण, हल्के उद्योगो की तुलना मे रोजगार के विस्तार की बहुत कम गुजाइश रखते हैं।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि विनिमाण क्षेत्र मे

कुटीर तथा लघु उद्योगो द्वारा मूल्य वृद्धि (Value added) में योगदान 42 प्रतिशत था किन्तु इनका रोजगार मे भाग 80 प्रतिशत था। जाहिर है कि रोजगार प्रेरित रणनीति (Em ployment oriented strategy) के लिए यह वाछनीय होगा कि 1990 2000 के दशक के दौरान उत्पादन का अधिकतर भाग इस क्षेत्र से प्राप्त किया जाए। इस क्षेत्र की उत्पादिता बढाने के लिए यह अनिवार्य है कि तकनालाजीय उन्नति (Technological upgradation) के प्रोग्राम चलाए जाए भले ही इनके कारण प्रति इकाई उत्पाद के लिए रोजगार मे कुछ गिरावट आए।

इससे यह निष्कर्ष निकालना सही नहीं होगा कि सभी लघु स्तर इकाइया श्रम प्रधान होती हैं और सभी बृहद स्तर इकाइया पूजी प्रधान (Capital intensive) होती हैं। यह मान्यता सत्य प्रमाणित नहीं हुई। पूजी या श्रम की तीव्रता विनियुक्त पूजी (Invested capital) के आकार पर निर्भर नहीं करती। इसी प्रकार सगठित क्षेत्र में बहुत से उद्योग समूहो की रोजगार क्षमता काफी अधिक है।

योजना आयोग ने हाल ही मे निम्नलिखित उद्योग समूहो की पहचान की है जिनमे रोजगार क्षमता अधिक है किन्तु वर्द्धमान पूजी उत्पाद अनुपात (ICOR) कम है। वे हैं—मछली की डिब्बाबन्दी और सरक्षण बेकरी चीनी और खाडसारी का उत्पादन तम्बाकू उत्पादन रुई से बिनौले निकालना छपाई एव रगाई खादी हथकरघा सूती वस्त्र पावरलूम ऊन कताई एव बुनाई (कारखानो को छोडकर अन्य इकाइयो में) ऊनी वस्त्रो की रगाई और विरजन (Bleaching) चमडे की वस्तुए दियासलाई सूती वस्त्र फलो तथा सब्जियो की डिब्बाबन्दी पटसन एव मेस्ता की वस्तुए शीशा एव शीशे की वस्तुए। सरचनात्मक चिकनी मिट्टी बाइसिकल धातु पदार्थों पेट एव वार्निश डेरी उत्पादो सँश्लिष्ट वस्त्रो की छपाई एव रगाई शराब औषधि एव दवाइया और बैटीज मे भी उत्पादन के साथ रोजगार का अश काफी ऊचा है और इनमे भी वर्द्धमान पूजी उत्पाद का अनुपात इतना अधिक नहीं पाया गया।

इस सारे तर्क का सार यह है कि विनियोग के ढाचे को प्रोत्साहनो की योजना के अनुसार इस प्रकार मोडा जाना चाहिए कि इससे अधिक रोजगार क्षमता वाले एव कम पूजी उत्पाद अनुपात वाले उद्योगो से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जाए और यह नीति सगठित एव असंगठित दोनो क्षेत्रो मे लागू होनी चाहिए।

(iv) अन्य क्षेत्र

सेवा क्षेत्र मे अधिक रोजगार क्षमता वाले दो क्षेत्र हैं—सडक निर्माण एव गृह निर्माण। आज देश के 31 प्रतिशत गाव जिनकी जनसख्या 1 000 से 1 500 के बीच है और 10 प्रतिशत बडे ग्राम ऐसे हे जो फीडर रोड (Feeder road) से मिले हुए नहीं हैं। यदि 8 लाख किलोमीटर सडक निर्माण को प्रोग्राम चलाया जाता हे तो इसके परिणामस्वरूप 228 लाख व्यक्ति वर्ष रोजगार कायम हो सकेगा।

ग्रामीण और शहरी गरीबो के लिए गृह विनिर्माण का भारी कार्यक्रम तैयार करना चाहिए। इसके लिए गरीबो को न केवल भूमि के रूप मे जगहे देनी होगी बल्कि उन्हे गृह निर्माण के लिए पर्याप्त ससाधन भी उपलब्ध कराने चाहिए। गरीबो के लिए उधार की उदार रूप मे व्यवस्था करने से भी बहुत बडी मात्रा मे रोजगार कायम किया जा सकता है।

प्राथमिक स्तर पर एक अध्यापक वाले स्कूलो को 3 4 अध्यापको वाले स्कूलो मे परिवर्तित करने से रोजगार मे वृद्धि को भी सहायता मिलेगी। पाचवे अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण (1986) के अनुसार लगभग 28 प्रतिशत प्राथमिक स्कूल जिनकी सख्या 1 48 000 थी मे केवल एक अध्यापक था। इनमे अध्यापको की व्यवस्था करने से 3 लाख अतिरक्त नौकरिया कायम हो सकेगी।

डिस्पेसरियो और हस्पतालो की सख्या बढाकर और उन्हे आधुनिक सुविधाओ से लैस करके ग्राम स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास द्वारा 2 7 लाख अतिरिक्त नौकरिया कायम की जा सकती हैं। इनमे 10 000 डाक्टर और शेष 2 6 लाख पैरा चिकित्सक (Para medicos) हैं। इस प्रकार ग्राम स्वास्थ्य अध सरचना द्वारा रोजगार मे और अतिरिक्त विस्तार की गुजाइश है।

निष्कर्ष यह कि अधिक उत्पादन एव अधिक रोजगार के लक्ष्यो का समन्वय करने के लिए यह आवश्यक है कि औद्योगीकरण के पूजी तीव्रता (Capital intensity) कम करनी होगी। इसके लिए एक अधिक श्रम प्रधान तकनालाजी मिश्रण (Technology mix) की ओर अर्थव्यवस्था को जान बूझकर परिवर्तित करना होगा। औद्योगीकरण का ऐसा ढाचा व्यवहार्य है और यह कुशलता की दृष्टि से युक्तिसगत भी है। हमारे पास एक ओर बहुत अधिक पूजी तकनालाजी है और दूसरी ओर बहुत अधिक श्रम प्रधान तकनालाजी भी है। इन दो सीमाओ के बीच बहुत सी अन्तर्वर्ती तकनालाजी (Inter mediate technology) विद्यमान है जिसमे उत्पादन प्रक्रिया मे कई साधन-अनुपात तकनालाजी की विभिन्न किस्मे एक ओर तो आधुनिकीकरण के लिए बडा क्षेत्र प्रस्तुत करती हैं और दूसरी ओर औद्योगीकरण के प्रभाव से अधिकतम लाभ उठाने का उपाय है। औद्योगीकरण के ऐसे ढाचे के लिए श्रम प्रधान तकनीकों का चयन आवश्यक हे। जो प्रति श्रमिक कम पूजी और प्रति उत्पादन इकाई के लिए कम पूजी से सयुक्त लाभ प्राप्त कर सकता है।

23

बड़े औद्योगिक घराने और भारत में आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण

(LARGE INDUSTRIAL HOUSES AND CONCENTRATION OF ECONOMIC POWER IN INDIA)

1 स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् बड़े औद्योगिक घरानो का विकास

1948 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव मे सरकार ने मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा को स्वाकार कर लिया जिसमे सार्वजनिक और निजी दोनो क्षेत्रो के कार्यभाग स्पष्ट कर दिए गए थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् निजी क्षेत्र के विकास का एक महत्त्वपूर्ण पहलू देश मे कुछ औद्योगिक घरानो (Industrial houses) का आश्चर्यजनक विकास था जिसे एकाधिकार पूजी (Monopoly capital) कहकर भी सम्बोधित किया जाता था। शब्द एकाधिकार पूजी से अभिप्राय किसी देश मे पूजा बाजार की वर्तमान आर्थिक स्थिति से है जिसमे उत्पादन की कुछ इकाइया (बडे निगम या बडे औद्योगिक घराने) औद्योगिक पूजी के स्वामित्व एव नियन्त्रण पर अपना प्रभुत्व कायम कर लेते हैं। एकाधिकार पूजी की विद्यमानता एव विकास का राज्य के स्वरूप पर गहरा प्रभाव पडता है। परिणामत सामाजिक एव आर्थिक विधान भी इसी परिस्थिति का प्रतिबिम्ब होता है। भारत मे एकाधिकार पूजी के बारे में कई अध्ययनो से सकेत मिलता है।

बडी कम्पनियो का विकास

तालिका 1 मे 1 690 गैर सरकारी क्षेत्र की कम्पनियो की शुद्ध परिसम्पत सम्बन्धी आकडे प्रस्तुत किए गए हैं। आकडो से यह बात साफ हो जाती है कि 26 कम्पनिया (1 6 प्रतिशत) जिनकी शुद्ध परिसम्पत 700 करोड रुपये से अधिक है के पास कुल परिसम्पत का लगभग 27 प्रतिशत है। इस समूह मे भी 13 कम्पनिया (0 8 प्रतिशत) के स्वामित्वाधीन कुल परिसम्पत का 18 4 प्रतिशत है। इसके विरुद्ध 1 415 कम्पनिया (83 7%) जिनकी शुद्ध परिसम्पत 100 करोड रुपये से कम है के पास कुल परिसम्पत का 30 प्रतिशत है। जाहिर है कि परिसम्पत स्वामित्व (*Asset ownership*) मे बडी कम्पनियो का प्रभुत्व है। बडी कम्पनियों मे भी ऐसी कम्पनिया जिनकी परिसम्पत 400 करोड रुपये से अधिक है के पास कुल परिसम्पत का 39 1 प्रतिशत है। इन आकडों से साफ सकेत मिलता है कि भारत के गैर सरकारी क्षेत्र में एकाधिकारी पूजी (*Monopoly capital*) के विकास की प्रवृत्ति बल पकड रही है।

तालिका 1 भारत में 1 690 गैर सरकारी क्षेत्र की कम्पनियो की शुद्ध परिसम्पत का आकार-अनुसार वितरण (1990 91)

आकार सीमा (करोड रुपये)	कम्पनियों की सख्या		कुल परिसम्पत (करोड रुपये)		औसत आकार (करोड रुपये)
100 से कम	1 415	(83 7)	38,530	(29 9)	27 2
100–200	148	(8 8)	20 788	(16 1)	140 4
200–300	48	(2.8)	11 707	(9 1)	243 9
300–400	22	(1.3)	7,380	(5 7)	335 4
(i) उपयोग	1 633	(96 6)	78,405	(60 9)	
400–500	19	(1 1)	8,637	(6 7)	454 6
500–600	7	(0 4)	3 904	(3 0)	557 7
600–700	5	(0.3)	3 232	(2.5)	646.4
(ii) उपयोग	31	(1 8)	15 773	(12.2)	
700–800	6	(0 4)	4,532	(3.50	755 3
800–900	3	(0 2)	2,529	(2.0)	843.0
900–1000	4	(0.2)	3,848	(3 0)	962.0
1000 और अधिक	13	(0 8)	23 706	(18 4)	1823.5
(iii) उपयोग	26	(1 6)	34 615	(26 9)	
कुल	1 690	(100 0)	128 793	(100 0)	

नोट ब्रैक्ट में दिए गए आकडे कुल के प्रतिशत के रूप में हैं।

स्रोत Centre for Monitoring Indian Economy Basic Statistics Relating to the Indian Economy August 1992

इकोनॉमिक टाइम्स के रिसर्च ब्यूरो के अनुसार गैर-सरकारी निगम क्षेत्र मे सर्वोच्च 51 विशाल कम्पनियो की कुल परिसम्पत् जो 1960 61 मे 1000 करोड रुपये थी बढकर 1983-84 में 11693 करोड रुपये हो गई। इस प्रकार 23 वर्षों के दौरान इन कम्पनियो की परिसम्पदो की वृद्धि दर 36 प्रतिशत प्रतिवर्ष बैठती है। टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी इन दोनो वर्षों मे सर्वोच्च शिखर पर रही है। नव प्रवेशकों मे रिलायन्स इण्डस्टीज (Reliance Industries) है जो 1960-61 मे कायम नहीं हुई थी किन्तु 1983 84 मे तीसरे नम्बर पर थी। चाहे इन 51 कम्पनियो में से प्रत्येक स्वतन्त्र है किन्तु इनमे से कुछ का प्रबन्ध एक ही व्यापारिक घराने के आधीन है। उदाहरणार्थ टाटा आयरन एण्ड स्टील TELCO टाटा पावर, वोल्टास आदि टाटा ग्रुप से है।

भारत मे बड़े व्यापारिक घरानो की वृद्धि

एकाधिकार जाच आयोग (1965) ने यह रहस्योद्घाटन किया कि 75 बड़े व्यापारिक घरानो (Business Houses) के नियन्त्राधीन 1536 कम्पनिया है। व्यापारिक घराने या व्यापारिक समूह (Business Group) की परिभाषा मे वे सभी कम्पनिया शामिल की गई जिनका निर्णायक निर्णय सम्बन्धी अधिकार समूह मे एक नियन्त्रक शक्ति के पास हो। औद्योगिक लाइसेस नीति जाच समिति ने 'बडे औद्योगिक घराने की धारणा को स्वीकार किया जिसमे वे सभी व्यापारिक फर्मे शामिल होनी चाहिए जिन पर एक साझी शक्ति का अधिकार हो। ये व्यापारिक फर्मे भले ही कानून की दृष्टि मे या कराधान के उद्देश्य से अलग अलग है परन्तु वे एक साझी व्यवस्था के अगो के रूप मे एक ही नीति के अनुसार कार्य करती है। उनका मार्ग दर्शन निर्देशन एव समर्थन एक बहुत ही निकट समूह के व्यक्तियो द्वारा किया जाता है बल्कि फर्मो के दैनिक मामलो मे वे स्वतन्त्र रूप से उन व्यक्तियो के आधीन कार्य करती है जिन्हे कानूनी दृष्टि मे अधिकार प्राप्त है परन्तु समग्र नीतियो के विनियमन का अन्ततोगत्वा स्रोत एक साझा प्राधिकार (Common authority) होता है।" दत्त समिति ने 1963 64 मे ऐसे 20 बडे औद्योगिक घरानो की सूची तैयार की जिनमे प्रत्येक की कुल परिसम्पत 35 करोड रुपये से अधिक थी। क्षमता पर पूर्वाधिकार प्राप्त करने के लिए अनेक आवेदन पत्रो की प्रणाली की सहायता लेकर और लाइसेस नीति मे उदारता का लाभ उठाकर अपने कार्य को बहुत से उद्योगो मे फैला लिया। औद्योगिक घरानो की वृद्धि तालिका 2 मे दी गई है।

तालिका 2 में दिए गए आकडों से पता चलता है कि 1972 में बीस बडे औद्योगिक घरानो की कुल परिसम्पत 2511 करोड रुपये थी जो 1981 तक बढकर 7857 करोड रुपये हो गई और फिर 1989 90 तक तेजी से बढती हुई 41522 करोड रुपये के उच्च शिखर पर जा पहुची। 1972 से 1989-90 के दौरान 20 बडे औद्योगिक घरानों की परिसम्पत मे 16 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि हुई।

1989 90 मे टाटा घराने का प्रथम स्थान था और उसकी कुल परिसम्पत 8531 करोड रुपये थी इसके तुरन्त बाद बिडला घराने का नम्बर था और उसकी परिसम्पत 8471 करोड रुपये थी। 20 उच्चतम घरानो मे से पांच सर्वोच्च घरानों अर्थात् टाटा, बिडला, रिलायन्स सिघानिया और थापर की कुल परिसम्पत् 1989 90 मे 24930 करोड रुपये थी अर्थात 20 औद्योगिक घरानो की कुल परिसम्पत का 60 प्रतिशत। इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि यह अनुपात 1981 मे 60 3 प्रतिशत था। अत इस बात का ठोस प्रमाण मिलता है कि 20 उच्च व्यापारिक घरानो मे भी 5 सर्वोच्च घरानो मे परिसम्पत का अत्यधिक सकेन्द्रण विद्यमान है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि 1981 और 1989 90 के बीच रिलायन्स ग्रुप की परिसम्पत् मे चमत्कारी वृद्धि हुई और इसकी परिसम्पत् जो 1981 मे 271 करोड रुपये थी बढकर 1989 90 मे 3000 करोड रुपये हो गई अर्थात् इसमे औसत चक्रवृद्धि दर 33 3 प्रतिशत प्रति वर्ष थी। इस प्रकार 20 व्यापारिक घरो मे इसका स्थान उन्नत होकर तीसरा हो गया जबकि 1972 मे यह इस सूची मे कोई स्थान नहीं रखता था और 1981 मे इसका स्थान छठा था। एक और व्यापारिक घराने एम ए चिदम्बरम ने 1980 मे 44 करोड रुपये की परिसम्पत से 1989 90 मे 1273 करोड रुपये कर ली और परिणामत यह अपने 47वे स्थान से छलाग लगाकर 1989 90 मे दसवे स्थान पर पहुच गया। अधिक उदारीकरण एव एम आर टी पी एव फेरा प्रतिबन्धो के हटाए जाने के पश्चात् 20 बडे व्यापारिक घरानो मे बहुत ऊँची वृद्धि दर प्राप्त करने के सकेत मिले हैं।

बड़े व्यापारिक घरानो के परिवारो की हिस्सेदारी (Family shareholding)

सभी बडे औद्योगिक घरानो के परिवार के हिस्सेदारो के बारे में पर्याप्त सूचना उपलब्ध नहीं है परन्तु कुछ उच्च औद्योगिक घरानो के बारे मे सरकार ने कुछ सूचना उपलब्ध कराई है।

तालिका 2   20 बड़े औद्योगिक घरानों की परिसम्पत् में वृद्धि

करोड रुपये

		1972	1981	1989-90	1972 और 1989-90 के बीच औसत चक्रवृद्धि दर
1	टाटा	642	1840	8,531	15.5
2.	बिडला	589	1692	8473	16 0
3	रिलायन्स		271	3600	33 3
4	थापर	136	430	2,177	16 7
5	जे के. सिंघानिया	121	520	2,139	17 3
6	लारसेन एवं टूब्रो	79	220	1682	18.5
7	मोदी	58	242	1,399	19.3
8	बजाज	63	215	1,391	18.8
9	मफतलाल	184	535	1,344	11 7
10.	एम ए चिदम्बरम			1,273	10.5
11	हिन्दुस्तान लीवर	78	247	1,209	16.4
12.	यूनाइटेड ब्रिवृरीज	36		1189	21.4
13	टी वी एस आयगार	51	227	1177	19 1
14	आईटीसी	75		965	15.2
15	श्री राम	121	269	934	12.0
16.	ए.सी सी	134	343	903	11.2
17	ओसवाल एग्रो			870	
18.	महेन्द्रा एव महेन्द्रा	58	408	774	15.5
19	ईसार			756	173.0
20.	किरलोस्कर	86	398	736	12.7
	कुल	**2,511**	**7 857**	**41 522**	**16 9**

स्रोत : Centre for monitoring Indian Economy Basic Statistics *Relating to* the Indian Economy August 1993

तालिका 3   बड़े व्यापारिक घरानों में पारिवारिक हिस्सेदारी (1981)

	कुल चुकती पूंजी (करोड़ रुपये)	पारिवारिक हिस्सेदारी (करोड रुपये)	पारिवारिक हिस्सेदारी चुकती पूंजी के प्रतिशत के रूप में
टाटा	191 83	6.69	3.5
बिडला	169.66	3.00	1.8
मफतलाल	80.85	5.30	6.6
जे. के सिंघानिया	47.90	3.40	7 1
थापर	55.21	0.70	1.3
श्रीराम	30.96	0.13	0.5
कुल	**576 96**	**19.22**	**3.3**

तालिका 3 से पता चलता है कि 577 करोड रुपये की कुल चुकती पूंजी मे परिवार के हिस्सेदारी का भाग 1981 के अन्त तक केवल 19 करोड रुपये था अर्थात् कुल चुकती पूंजी का 3.3 प्रतिशत। जे के सिंघानिया परिवार का 7 1 प्रतिशत भाग सबसे अधिक था परन्तु श्रीराम का केवल 0 5 प्रतिशत था।

औद्योगिक घरानों के पारिवारिक हिस्सेदारी के ढांचे के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं—

(क) जबकि सरकार और सरकारी क्षेत्र के वित्तीय संस्थानों द्वारा पूंजी का अधिकतर भाग उपलब्ध कराया गया, व्यापारिक घराने बिना अधिक जोखिम सहन किए इन कम्पनियों के मामलों पर नियन्त्रण करते रहे हैं।

(ख) चुकती पूंजी में पारिवारिक हिस्सेदारी के बहुत ही कम भाग का विद्यमान होना प्रत्याशित ही है। आयकर और धनकर की वर्तमान प्रणाली के अधीन जो मिलकर स्वामित्वहरणीय (Expropriatory) बन जाती है किसी व्यक्ति

ट्यूब तथा अन्य सम्बन्धित सामान की विभिन्न मदो में सकेन्द्रण की मात्रा अधिक ही थी।

देशानुसार या अन्त उद्योग सकेन्द्रण

दूसरे प्रकार का सकेन्द्रण देशानुसार या अन्त उद्योग (Inter industry) सकेन्द्रण है। इसके अध्ययन के लिए विभिन्न फर्मों को 'व्यापारिक समूहों' मे बाटा गया है। व्यापारिक समूह से अभिप्राय उन सभी फर्मो से है जिनके सम्बन्ध मे अन्तिम एव निश्चयात्मक निर्णय करने का अधिकार समूह स्वामी (G oup master) मे केन्द्रित होता है। आयोग ने 75 समूहों द्वारा नियत्रित 1 536 कम्पनियो, उनकी कुल चुकती पूजी परिसम्पत् एव कुल बिक्री सम्बन्धी आकडे प्रस्तुत किए।

यदि राजकीय क्षेत्र के आधीन कम्पनियों तथा बैंकिग कम्पनियों को छोड दिया जाए, तो शेष निगम क्षेत्र (Corpo rate Sector) के आधीन कार्य करने वाली कम्पनियो की 1963 64 मे कुल चुकती पूजी 1 465 करोड रुपये और परिसम्पत् 5,552 करोड रुपये थी। 75 समूहो के नियन्त्रणाधान कार्य करने वाली 1,536 कम्पनियो की कुल चुकती पूजी (Paid up capital) 646 करोड रुपये और परिसम्पत् (As sets) 2,606 करोड रुपये थी। इस प्रकार कुल गैर सरकारी और कुल गैर बैंकिंग कम्पनियो की परिसम्पत् का 47 प्रतिशत और चुकती पूजी का 44 प्रतिशत इन 75 व्यापारिक समूहो के पास था।

एकाधिकार तथा प्रतिबन्धात्मक व्यवहार

एकाधिकार का सार इस बात मे है कि एकाधिकारी उत्पादन अथवा कीमत का नियत्रण कर सके। जहा कहीं भी सकेन्द्रण की मात्रा अधिक होगी एकाधिकारी कीमत का नेतत्व करेगा और इस प्रकार बाजार मे वही कीमत विद्यमान होगी जो वह चाहता है। इसके लिए विभिन्न प्रकार के एकाधिकारी व्यवहारो और प्रतिबन्धात्मक व्यवहारो का प्रयोग किया जाता है। एकाधिकार आयोग ने एकाधिकारी व्यवहार और प्रतिबन्धात्मक व्यवहार मे भेद को व्यक्त किया है। एकाधिकारी व्यवहार (Monopolistic practice) से अभिप्राय किसी भी ऐसी क्रिया समझौते या संधि से है (जो चाहे औपचारिक हो या अनौपचारिक) जिसका उद्देश्य एकाधिकारी शक्ति का सरक्षण वद्धि या समेकन होता है। प्रतिबन्धात्मक व्यवहार (Restrictive practice) से हमारा अभिप्राय ऐसी क्रियाओं से है जो प्रतिस्पर्धी शक्तियो के निर्बल प्रवाह को रोकती हैं या पूजी एव ससाधनो के उत्पादन प्रक्रिया में निर्बाध प्रवाह के मार्ग मे रुकावट डालती हैं। इसमे सदेह नहीं कि एकाधिकारी व्यवहारो और प्रतिबन्धात्मक व्यवहारो मे सूक्ष्म भेद सभव नही। भारतीय अर्थव्यवस्था मे अन्य अर्थव्यवस्थाओ की भाँति वर्तमान मुख्य प्रतिबन्धात्मक क्रियाए निम्नलिखित हैं—

(क) कीमतो पर समस्तर निश्चयन (Horizontal fixa tion) (ख) कीमतो का उदग्र निश्चयन और पुन विक्रय कीमत (Resale price) कायम रखना (ग) विभिन्न उत्पादको के बीच बाजारो की बाट, (घ) विक्रेताओ के बीच भेदभाव (ड) बहिष्कार (Boycott) (च) एकान्तिक व्यापार सन्धि (Exclusive dealing contracts) (छ) श्रृखला बद्ध प्रबन्ध (Tie up arrangements)।

3 एकाधिकार पूजी की सवृद्धि को बढाने वाले कारण

एकाधिकार पूजी द्वारा अपने नियत्रण को विभिन्न उद्योगो पर बढाने और आर्थिक शक्ति का अधिकाधिक सकेन्द्रण प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित मुख्य कारण उत्तरदायी है—

(i) वित्तीय सस्थानों पर नियत्रण—बेक राष्टीयकरण से पूर्व बैक प्रणाली पर बडे औद्योगिक घरानो का नियत्रण था। सामान्य जनता से एकत्र की गई बैंक जमा का प्रयोग मुख्यत बडे औद्योगिक घरानो के स्वामित्व एव नियत्रणाधीन को वित्त जुटाने के लिए किया गया। लघु स्तर ओद्योगिक इकाइयो एव कषि क्षेत्र की पूर्णतया उपेक्षा की गई। यह एक स्वीकार्य तथ्य था कि व्यापारिक बैंको ने औद्योगिक साम्राज्यो (Industrial empires) की स्थापना मे महत्त्वपूर्ण भाग अदा किया। बैक राष्टीयकरण के पश्चात् भी इस परिस्थिति मे परिवर्तन नहीं हुआ है।

(ii) विशाखन तथा तकनीकी समन्वयन द्वारा नियन्त्रण—विभिन्न औद्योगिक वर्गों मे औद्योगिक इकाइयो का फैलाव विशाखन (Diversification) कहलाता है। इसके विरुद्ध एक स्वामित्व एव नियत्रण के अधीन उत्पादन की विभिन्न अवस्थाओ को सम्बद्ध करना तकनीकी समन्वय (Technological integration) कहलाता है। अधिकतर बडे औद्योगिक घराने अपनी एकाधिकार शक्ति को बढाने के लिए दोनो उपायो का प्रयोग करते हैं। उदाहरणार्थ टाटा का मुख्य उत्पादन 'इस्पात है किन्तु इसके साथ वे कच्चे लोह कोयले अन्य खनिजो मशीनी औजार, रसायन आदि का भी उत्पादन करते हैं। अपने मुख्य उत्पादन की व्यवस्था के लिए टाटा घराने ने कोयला खदान मशीनरी ड्रिलिग यत्र (Drilling equipment) और रासायनिक मशीनरी का उत्पादन भी आरभ कर दिया है। इसी प्रकार बिडला मोटर गाडियो के उत्पादन मे विशेषता रखते हैं परन्तु ऊर्ध्व समन्वय (Vertical integration) प्राप्त करने के लिए वे बहुत से हिस्सो एव

उपसाधनो (Accessories) का उत्पादन भी करते हैं। इसी कारण बिडला उद्योगो मे गन्धक का तेजाब कैल्सियम कार्बाइड सूती वस्त्र मशीनरी रेयन सूत, सूती वस्त्र चीनी मशीनरी का भी उत्पादन होता है।

1964 मे चुनी हुई वस्तुओ मे विभिन्न औद्योगिक घरानो मे कुल बाजार उत्पादन मे भाग को जानने से पता चलता है कि बहुत सी वस्तुओ मे कुछ ही बडे औद्योगिक घरानो का प्रभुत्व था। उदाहरणार्थ बिडला घराने का भाग कारो के उत्पादन मे 66 प्रतिशत सूती वस्त्र मशीनरी मे 75 प्रतिशत, बिजली के पखो मे 27 प्रतिशत रेलवे वैगनो मे 24 प्रतिशत और वातानुकूलको (Air conditioners) मे 16 प्रतिशत था। इसी प्रकार टाटा घराने ने इस्पात के डलो, विशेष औजारो औद्योगिक मशीनरी तेल और साबुन आदि मे अपना जाल फैलाया हुआ है। इसी तरह चाय बनाने की मशीनरी मे एण्ड्रयू यूल कम्पनी का भाग 54 प्रतिशत और चीनी कारखानो की मशीनरी मे वालचन्द्र का भाग 61 8 प्रतिशत था।

***(iii)* सरकारी नीति**—सम्पत्ति के बढते हुए सकेन्द्रण के लिए सबसे अधिक सरकार को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। जैसा कि दत्त समिति ने व्यक्त किया—सरकार ने लाइसेस प्राधिकरण को आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रण को रोकने के लिए स्पष्ट रूप से निर्देश न दिया। यहा तक कि कुछ औद्योगिक घराने एक ही वस्तु के लिए कई कई लाइसेस प्राप्त कर गए। इसके अतिरिक्त, सरकार ने गैर सरकारी उद्योगो को बढाने के लिए बहुत से कर प्रोत्साहन (Tax incentives) दिए और इन सबका लाभ बडे औद्योगिक घरानो ने उठाया आयात के सम्बन्ध मे भी बडे औद्योगिक घराने कानूनी एव गैर कानूनी उपायो द्वारा विदेशी मुद्रा के प्रयोग की स्वीकृति प्राप्त कर सके ताकि वे योजनाओ मे कम प्राथमिकता वाले क्षेत्रो मे उद्योग स्थापित कर सके या पहले स्थापित इकाइयो का विस्तार कर सके।

***(iv)* सरकारी क्षेत्र के वित्तीय सस्थानो का कार्यभाग**—सरकारी क्षेत्र के वित्तीय सस्थानो ने भी सम्पत्ति एव आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रण को बढावा दिया है। औद्योगिक लाइसेस जाच समिति ने स्पष्ट रूप मे बताया कि विशेष वित्तीय सस्थानो जैसे औद्योगिक वित्त निगम, औद्योगिक विकास बैंक आदि ने अपनी कुल वित्तीय सहायता मे से 56 औद्योगिक घरानो को प्रदान की। 20 बडे औद्योगिक घरानो को दी जाने वाली कुल सहायता म से 25% बिडला को प्राप्त हुई। जीवन बीमा निगम के 80% दीर्घकालीन ऋण और स्टेट बैंक आफ इण्डिया के 6% ऋण भी बडे औद्योगिक घरानो को दिए गए। बहुत सी औद्योगिक फर्मे ऐसी थीं जिन्होंने अपनी वित्तीय आवश्यकताओ का 60 से 75% इन सरकारी वित्तीय सस्थानो से प्राप्त किया। इसके विरुद्ध इन फर्मों के प्रवर्तकों (Promoters) और सहयोगियो (Collaborators) का भाग औसत रूप मे 13.5 प्रतिशत था चाहे यह अधिकतर फर्मों मे 6 से 24 प्रतिशत तक था। वे सभी प्राजैक्ट बडे औद्योगिक घरानो से सम्बद्ध थे।

***(v)* बडे औद्योगिक घरानो द्वारा व्यापारिक एव औद्योगिक अवसरो को छीन लेना**—जब द्वितीय पचवर्षीय योजना के अधीन 1956 मे तीव्र औद्योगिक विकास का प्रोग्राम तैयार किया गया तो उन औद्योगिक घरानो ने, जो पहले ही इन क्षेत्रो मे कार्य कर रहे थे विकास एव विस्तार के इन विशाल अवसरो को एकदम झपट लिया। उनके पास आवश्यक वित्त एव कर्मचारी थे। सरकार द्वारा उपलब्ध कराई गई वित्तीय सुविधाओ और कर प्रोत्साहनो (Tax incentives) का इन्होंने लाभ उठाया। पूजीवादी प्रेरणा के प्रभावाधीन उन्होंने एकाधिकार कायम कर लिए और इस प्रकार उन्होंने औद्योगिक क्षेत्र मे नव प्रवेशक को अन्दर आने से रोक दिया। देश मे विक्रेता बाजार (Seller s markets) विद्यमान होने के कारण वे उपभोक्ताओ से अधिक कीमत वसूलकर अपने लाभान्तर (Profit margin) को बढाने लगे। कम्पनी अधिनियम की कमजोरियों का अनुचित लाभ उठाकर वे बोनस हिस्से (Bonus shares) जारी करके अपनी पूंजी की मात्रा को बढाते रहे।

आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रण और एकाधिकार पूजी के लिए उत्तरदायी अन्य कारणो मे मात्रा सम्बन्धी मितव्ययिताओं (Economies of scale) अन्तर्ग्रथित सचालक मण्डल (Interlocking directorates) अन्त निगम विनियोग बैंक बीमा कम्पनियो और समाचार पत्रो पर एकाधिकार पूजी का नियन्त्रण, विदेशी सहयोग आदि का उल्लेख भी किया जा सकता है।

4 एकाधिकार एव प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम (1970)

एकाधिकार जाच आयोग की सिफारिशो के फलस्वरूप 1970 मे एकाधिकार एव प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम बनाया गया। इस कानून मे एकाधिकार और प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार मे भेद किया गया है एकाधिकारी व्यापार व्यवहार (Monopolistic trad practice) मे 'प्रधान फर्म के व्यवहार' का वर्णन किया जा सकता है। इसमे फर्म के वैयक्तिक व्यवहार या तीन फर्मों तक के समूह तक के अल्पजनाधिकार (Oligopoly) का सकेत होता है क्योंकि इस फर्म का या फर्म समूह का बाजार उत्पादन मे श्रेष्ठ भाग होता है। प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार मे दो से

अधिक फर्मों द्वारा एक समझौता किया जाता है जिसके अनुसार आपसी प्रतियोगिता समाप्त की जाती है। ऐसे समझौते मे किसी फर्म का बाजार उत्पादन में प्रधान भाग होना अनिवार्य शर्त नहीं। एकाधिकारी व्यवहार और प्रतिबन्धात्मक व्यवहार में पारिभाषिक भेद बहुत थोडा है। इसके अतिरिक्त एकाधिकारी व्यवहार मे एकाधिकार आयोग को केवल सिफारिश करने के अधिकार दिए गए हैं और यह बात सरकार पर निर्भर है कि वह इसकी सिफारिशो को स्वीकार करे अथवा न करे। अभी तक जो प्रधान मामले इस आयोग को सौंपे गए हैं आयोग के सदस्यो मे मतभेद होने के कारण किसी एक पर भी एकमत प्राप्त नहीं हो सका। दूसरे शब्दो मे बड़े औद्योगिक घराने एकाधिकार आयोग के कार्य की प्रगति को रोकने के लिए छिपकर कार्यवाही करते हैं।

प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार के सम्बन्ध मे एकाधिकार आयोग को न्यायालय के अधिकार दिए गए परन्तु इसे प्रतिबन्धात्मक व्यवहारो मे ऐसे प्रत्येक मामले की अलग-अलग जांच करनी होगी। अत बिल्कुल सभव है कि एक प्रतिबन्धात्मक व्यवहार एक उद्योग मे तो कानून रूप से बन्द कर दिया जाए परन्तु वह किसी दूसरे उद्योग मे चलता रहे क्योंकि रजिस्ट्रार ने इस मामले को आयोग के पास न भेजा हो। इस सम्बन्ध मे एकाधिकार सम्बन्धी कानून ने ब्रिटिश अनुभव से कोई शिक्षा प्राप्त नहीं की। ब्रिटिश सरकार के आयोग ने 1948 और 1955 के बीच भेजे गए विभिन्न प्रकार के मामलो पर एक सामान्य रिपोर्ट तैयार की और बहुत से साझे व्यवहारो को गैर कानूनी करार दे दिया (और इसमे छूट की बहुत थोडी गुजाइश रख दी)। अत यह आवश्यक है कि ब्रिटिश विधि को अपनाया जाए ताकि आयोग पर बार बार एक ही प्रकार के कार्य का भार न पडे।

औद्योगिक लाइसेस नीति (1970) के आधीन भारत सरकार ने किसी 'बडे व्यापारिक घराने (Large Business House) को निश्चित करने के लिए 20 करोड रुपये की कुल परिसम्पत् (Aggregate assets) की सीमा निधारित की जबकि दत्त समिति ने डा आर के हजारी का अनुसरण करते हुए 35 करोड रुपये को राशि का सुझाव दिया था। इसके परिणामस्वरूप सरकार के लगभग दो दर्जन अतिरिक्त व्यापारिक घरानो को 'बडे घरानों' के अन्तर्गत बाध लिया। चाहे ऊपरी तौर पर यह अधिक प्रगतिशील कदम लगता है परन्तु इस सम्बन्ध मे सरकार अब काफी पीछे हट गई है। इस तथ्य को पूर्णतया समझने के लिए 'व्यापारिक घराने' की परिभाषा का परीक्षण करना होगा। एकाधिकार एव प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक क्रियाओं सम्बन्धी अधिनियम मे व्यापारिक घराने की परिभाषा 'परस्पर सम्बद्ध' फर्मों के रूप में की गई है। यह निर्धारित करने के लिए कि क्या एक कम्पनी 'बडे' घराने का अग है या नहीं लाईसेंस प्राधिकार (Licensing authority) को यह स्थापित करना होगा कि (i) यह फर्म बडे औद्योगिक घरानो से सम्बद्ध है या नहीं और (ii) इस फर्म की परिसम्पत् और औद्योगिक घराने के आधीन अन्य फर्मों को कुल परिसम्पत् का मूल्य 20 करोड रुपये या इससे अधिक है या नहीं।

सरकार और दत्त समिति की विचारधारा मे मूल अन्तर यह है कि जहा दत्त समिति ने प्रार्थी कम्पनी पर इस बात को सिद्ध करने का दायित्व डाला कि वह 'बडे घराने' का अग है या नहीं वहा एकाधिकार एव प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम मे यह दायित्व अपने ऊपर ले लिया गया। इसका स्पष्ट परिणाम यह हुआ कि जहा बिडला घराने ने दत्त समिति के वर्गीकरण को चुपचाप स्वीकार कर लिया था और 185 कम्पनियो की सूची के विरुद्ध कोई आपत्ति न उठाई, वहा MRTP अधिनियम के आधीन उन्होंने केवल 40 कम्पनियों को परस्पर सम्बद्ध कम्पनियो के आधीन पजीकृत करवाया। व्यापारिक घरानों के अधिनियम के छिद्रो का लाभ उठाकर कागजात मे परस्पर सम्बद्ध कम्पनियो को छोटे छोटे स्वतत्र समूहो मे बाट लिया ताकि वे कानून की पकड़ म न आ सके चाहे वास्तव मे ये सभी समूह एक ही व्यापारिक घराने से सम्बन्धित थे। उदाहरणार्थ, बिडला घराने ने यह घोषित किया कि इण्डिया लाइनोलियम केवल चार अन्य बिडला कम्पनियों से सम्बन्धित है। इसके विरुद्ध ग्वालियर रेयन (Gwalior Rayon) एक अन्य बिडला कम्पनी ने यह दावा किया है कि उसका बिडला घराने से कोई पारस्परिक सम्बन्ध नहीं।

सरकारी नीति मे परिवर्तन का दूसरा मुख्य तत्व यह है कि इनमे 'आन्तरक क्षेत्र (Core Sector) की अधिक उदार परिभाषा दी गई और इसमे वे सभी क्षेत्र शामिल कर लिए गए हैं जिनमे बडे घराने दिलचस्पी रखते हैं। चाहे यह एक प्रकार का विरोधाभास ही है क्योंकि नीची प्राथमिकता और अधिक लाभ देने वाला उद्योग मनुष्यकृत तन्तु (Man made fibres) और संश्लिष्ट साबुन (Synthetic detergent) भी आन्तरक उद्योगो की सूची मे शामिल किए गए। सरकार के इस व्यवहार से साफ निष्कर्ष निकलता है कि बडे औद्योगिक घरानो के विस्तार और आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रण को रोकने का उद्देश्य अनिवार्यत प्राथमिकताओ की सूची मे निम्न स्थान पर ही रखा गया।

एकाधिकार तथा प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार कानून को पास हुए दो दशक से अधिक समय हो चुका है और इस कारण इस आयोग के कार्य की समीक्षा करना उचित होगा। औद्योगिक विकास एव विनियमन कानून के अन्तर्गत प्राप्त

आवेदनो को स्वीकति प्राप्त हो जाती है।

आयोग का दूसरा कार्य बडे व्यापारिक घरानो या इनके गठजोडो को तोडना है। उद्योग एव नागरिक आपूर्ति मत्रालय द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण से पता चला कि 1975 मे 203 ऐसी मदे थीं जिनमे एक फर्म एकाधिकार विद्यमान था। ऐसी फर्मो के सम्बन्ध मे न तो एकाधिकार आयोग और न ही सरकार को MRTP कानून के आधीन प्रभावी नियत्रण अधिकार दिए गए है। आयाग तो तभी हस्तक्षेप कर सकता है यदि ये फर्मे प्रतिबन्धात्मक या एकाधिकार व्यवहार करने का प्रमाण दे। परन्तु यदि प्रतियोगी फर्मे ही नही है तो यह बात असगत बन जाती है। इस परिस्थिति का उपचार होना चाहिए और सरकार इसके बारे मे *आख मूदकर बैठ नहीं सकती।*

प्रतिबन्धात्मक व्यवहार के बारे मे MRTP आयोग एक अर्द्ध न्यायिक टिब्यूनल (Quasi Judicial Tribunal) है ओर इस प्रकार आयोग द्वारा दिए गए आदेशो के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय मे अपील की जा सकता है परिणामत प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार उस समय तक जारी रखा जा सकता है जब तक कि आयोग अपनी जाच पूरी नही कर लेता। आयोग को कोई हर्जाना लगाने का भी अधिकार नहीं। न ही आयोग को अन्तरिम निषेधाज्ञा (Interim injunction) जारी करने का अधिकार है।

आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रण को कम करने के उपायो की *समीक्षा करते हुए श्री एच के परानपे भूतपूर्व सदस्य* एकाधिकार आयोग लिखते है— 'स्वतत्रता प्राप्ति के बाद के इतिहास से राजनीतिक दलो एव इनके नेतत्व विशेषकर सत्तारूढ दल के साथ बडे व्यापारिक घराना के लगातार गठबन्धन के प्रमाण मिलते ह और इस कारण इस सकेन्द्रण के बने रहने का खतरा भा कायम रहता है। यही कारण हे कि सरकार एकाधिकारी प्रतिबन्धात्मक व्यापार आयोग की सिफारिशो को अधमने भाव से स्वाकार करती है आर फिर इन्हे लागू करने मे ढाल छोड देती है। पराजपे यह बात स्वाकार करता ह कि धारा 27 जिस पर बडे घरानो को तोडने की बहुत आशा की जाती था का प्रयोग कानून लागू होने के पश्चात् किया ही नहा गया। जब भी आयोग ने व्यापारिक अन्त सम्बन्धो (Inter connect ons) की जाच करने का प्रयास किया तो व्यापारिक घरानो ने इसका डटकर विरोध किया ओर वे इसमे सफल हुए। यही कारण हे कि व्यापारिक घराने *यह चाहते हे कि उनके मामलो की जाच आयोग जैसी* विशेषज्ञ सस्था से न हो बल्कि यह सरकार द्वारा हो। इसका कारण स्पष्ट है। खुली जाच का सामना करने की अपेक्षा बडे व्यापारिक घराने सरकार से समझाता कर लेते हे ओर बेचारा *आयोग बेसहारा ताकता ही रह जाता है।*

एकाधिकारी एव प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार कानून के कार्य की समीक्षा से पता चलता है कि सरकार इस कानून के बारे मे वचनबद्ध प्रतीत नहीं होती। ऐसा जान पडता हे कि सरकार ने औद्योगिक नीति के भावी ढाचे के बारे मे कोई दृढ निश्चय नहीं किया। जाहिर है कि औद्योगिक विकास की सरकारी नीति मे आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रण और एकाधिकार को तोडने को नाची प्राथमिकता दी गई है।

5 एकाधिकार एव प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार के प्रति नीतियो मे पलटाव

MRTP कम्पनियो के प्रति नीति मे पलटाव सम्बन्धी *सबसे पहला कदम सरकार की यह घोषणा है कि देश के 90* 'शून्य उद्योग जिलो (Zero Industry Districts) मे बडे व्यापारिक घरानो को औद्योगिक इकाइया स्थापित करने की इजाजत होगी। शून्य उद्योग जिले से तात्पर्य किसी ऐसे जिले से है जो साधन सम्पन्न हे परन्तु जिसमे किसी प्रकार का कोई उद्योग स्थापित नहीं हुआ है। एक गहन अध्ययन से यह पता चलता हे कि ऐसे 90 जिले है। बडे व्यापारिक घरानो पर इस परिस्थिति म एम आर टी पी एक्ट की धाराए लागू नही होगी। पिछडे जिलो मे बडे व्यापारिक घरानो को इकाइया स्थापित करने मे सहायता देने के लिए केन्द्र एव राज्यीय सरकारे दोना और अधिक सुविधाओ की व्यवस्था करगी। इसके लिए *अध सरचना सुविधाओ (Infrastructural fa* cilities) को स्थापित करने मे प्राथमिकता दी जाएगी। सरकार यह भी विचार कर रही हे कि उत्पादन लागत को कम करने की दृष्टि से परिवहन साहाय्य (Transport Subsidy) मे वद्धि की जाए ताकि इस प्रकार दूर दराज के *इलाको तक* पहुचने की कठिनाइया दूर की जा सके

इसके अतिरिक्त औद्योगिक (विकास एव विनियमन) अधिनियमन के आधीन प्रस्तावित सशोधना के अनुसार सरकार MRTP कम्पनियो पर प्रतिबन्ध हटाना चाहती हे ताकि इनके द्वारा कुजी क्षेत्रो (Key sectors) के उत्पादन को बढाया जा सके। इसके अतिरिक्त सरकार MRTP कम्पनिया को आन्तरिक क्षेत्र (Core sector) जिसमे अधिक पूजी ओर पारमार्जित तकनालाजी (Sophisticated technology) की आवश्यकता होता हे मे बढावा देना चाहती है। इसका यह भी इरादा हे कि ऐसे क्षेत्र मे जहा लघु स्तर के उद्यमकर्ता ऐसी विशेष मदो को बढती हुई आवश्यकताओ की पूर्ति करने की स्थिति मे न हो और जिनकी समाज मे न्यूनता बनी रही ह MRTP कम्पनियो को उत्पादन करने की स्वीकति दे दा जाए। उदाहरणाथ यह सुझाव दिया गया ह कि दो पहिए वाले स्कूटरो भारा मोटर गाडियो, टको के निमाण म गर सरकारी

विनियोग को बढाना चाहिए।

अत विकास की उत्पादन प्रधान विचारधारा और पिछडे क्षेत्रा मे उद्योगो को प्रोन्नत करने के नाम पर, सरकार एकाधिकार एव प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम के कार्यान्वयन को पीछे डालती जा रही है। इससे साफ जाहिर है कि एकाधिकार एव आर्थिक शक्ति के सकेन्द्रण के प्रति बडे व्यापारिक घरानों के प्रभावाधीन सरकारी नीति मे पलटाव हुआ है।

1985 86 मे एम आर टी पी कम्पनियो की परिसम्पत् की सामा 20 करोड रुपये से बढाकर 100 कोड रुपये कर दी। स्वय MRTP कम्पनियो को भी इस बात की आशा नहीं थी कि सरकार एक ही झटके मे इन कम्पनियो की परिसम्पत् का सामा बढाकर 5 गुना कर देगी। इस उपाय का फौरी असर तो यह हुआ कि 101 बडे औद्योगिक घरानो मे से 49 एम आर टी पी अधिनियम की धारा 26 से मुक्त हो गए। जाहिर है कि इसका उद्देश्य यह नहीं था कि ऐसा विकास का ढाचा प्रोन्नत किया जाए जिसमे बडे मध्यम और छोटे क्षेत्रो मे विनियोग का न्यायोचित आबटन हो बल्कि निगम क्षेत्र पर अत्यधिक निर्भरता को बढाना।

सरकार ने नवम्बर 1981 मे प्रथम सशोधन और अगस्त 1982 मे द्वितीय सशोधन द्वारा एम आर टी पी अधिनियम मे कुछ परिवतन किए। सरकार का दावा है कि 1981 के सशोधन का उद्देश्य निर्यात-आय बढाने की फौरी आवश्यकता को पूरा करना था और द्वितीय सशोधन का उद्देश्य निर्यात को प्रोत्साहन देने के साथ साथ उच्च उत्पादिता एव उत्पादन प्राप्त करने के बारे मे सामावन्धना को दूर करना था।

एम आर टी पी सशोधन अधिनियम (1984) द्वारा सरकार ने सच्चर समिति की सिफारिशों के आधार पर कुछ परिभाषाओ का स्पष्टीकरण किया ताकि इस कानून की कमजोरिया दूर की जा सके और कुछ क्षेत्र जो छोड दिए गए थे उन्हे इसके आधीन लाया जाए। उदाहरणार्थ उद्यम की परिभाषा व्यापक बना कर इसमे सभी कम्पनिया जो वस्तुओ तथा सेवाओ का क्रय विक्रय करती हैं जो स्टाक और शेयर का काम करती हे और जो विनियोग कम्पनिया हैं शामिल का गई। यह एक अभिनन्दनीय परिवतन है। इसी प्रकार सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि यदि वह किसी मुख्य उद्यम के साथ किसी कम्पनी के सम्बन्ध को राष्ट्रीय हित के विरुद्ध समझता है तो वह इस अन्त सम्बन्ध (Inter connection) को काटने का आदेश दे सकती है।

खेद की बात यह है कि जहा सच्चर समिति (Sachaar Committee) ने यह सिफारिश की थी कि एम आर टी पी कानून को सरकारी उद्यमो पर भी लागू किया जाए, वहा सरकार ने न केवल इसे अस्वीकार कर दिया बल्कि इसके साथ सहकारी समितियो को इस अधिनियम से छूट दे दी है। यह एक प्रतिगामी कदम है क्योंकि कोई भी निजी कम्पनी अपने आपको सहकारी समिति मे परिवर्तित कर सकता है और इस प्रकार एम आर टी पी कानून की जकड से साफ बाहर निकल सकती है। न्यायमूर्ति श्री राजेन्द्र सच्चर सरकार के दृष्टिकोण को पूर्णतया अनुचित मानते हे। वे लिखते हे—"सशोधित कानून जिसके द्वारा सरकारी उद्यमो को अनुचित व्यापार से भी छूट दी गई हे नि सन्देह एक प्रतिगामी कदम है। उच्च स्तरीय समिति ने स्पष्ट रूप मे कहा था चूँकि सरकारी उद्यम जो उपभोग वस्तुओ और अन्य मदो के उत्पादन मे लगे हुए हे उनका सामान्य उपभोक्ता वस्तुओ तथा सेवाओ के प्रयोगकर्ताओ पर ठीक उसी प्रकार प्रभाव पडता हे चाहे वे वस्तुए या सेवाए सरकारी क्षेत्र या निजी क्षेत्र म उत्पन्न की जाए। अत सरकारी उद्यमो को न शामिल करने का कोई औचित्य नहा जान पडता। सहकारी समितियो को और छूट देने से स्थिति और भी बिगड गई है।

अनुचित व्यापार व्यवहार (Unfair trade practices) सच्चर समिति के सुझाव के अनुरूप हा 1984 के सशोधित अधिनियम के आधीन कुछ अनुचित व्यापार व्यवहार लाए गए ह जेसे गुमराह करने वाले विज्ञापन सौदाकारी विक्रय (Bargain selling) आदि। चाहे आयोग का मत था कि ये अनुचित व्यापार व्यवहार अपने आप हा आयोग के क्षेत्राधीन आत ह किन्तु 1977 मे टेलको (TELCO) के मामले मे सर्वोच्च न्यायालय ने यह निणय दिया कि वर्ग 33 के आधान अनुसचित व्यवहार कानूनी रूप से प्रतिबन्धात्मक व्यवहार के उदाहरण नहा ह बल्कि केवल उन व्यापार व्यवहारो का सकेत करते हे जिनका पजीकरण अनिवार्य है। इस कठिनाइ को दूर करने के लिए, सशोधित अधिनियम (1984) मे यह प्रस्ताव किया गया कि जो भा कोई समझाता किसी एक या कुछ उल्लिखित विशिष्ट वर्गों के आधान आता हे उसे प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक व्यवहार की समझा जाएगा। परन्तु धारा 38 मे सरकार ने भारत का रक्षा का आवश्यकताओ या राज्य की सुरक्षा के लिए कुछ प्रतिबन्धो को न्यायोचित माना ह जो समाज के लिए अनिवार्य वस्तुओ तथा सेवाओ के सभरण को बनाए रखेंगे। इस प्रावधान का आलोचना करते हुए एच के परानपे लिखता ह— "मौलिक अधिनियम की धारा 38 ऐसे द्वार (Gateways) का प्रावधान करता हे जिनमे से व्यापार व्यवहार आसाना से गुजर सकते हैं ताकि लोक हित पर दुष्प्रभाव डालने का दोष भा उन पर न लगे। सशोधन विधेयक कई और ऐसे द्वार कायम करने का प्रस्ताव करता है विशेषकर ऐसे क्षेत्रो मे जहा प्रतिबन्ध केन्द्र

सरकार द्वारा पूर्णतया अधिकृत एव स्वीकृत हैं।"

एकाधिकार आयोग और सरकार का कार्यभाग

सरकार द्वारा एम आर टी पी आयोग को सौंपे गए कार्यभाग के सम्बन्ध मे तीन आलोचनाए की गईं हैं—पहली आयोग को मामले सौंपने के बारे मे सरकार सामान्यतया हिचकिचाती रही है और इसमे विलम्ब भी करती रही है। चाहे सिद्धान्त रूप मे यह एक स्वायत्त सस्था है किन्तु आयोग न ही तो अपने-आप किसी एकाधिकारी और प्रतिबन्धात्मक व्यवहार की पहचान कर सकता है और न ही इसके बारे मे जाच की प्रक्रिया आरभ कर सकता है। जून 1970 और 3 दिसम्बर 1980 के बीच सरकार को प्राप्त 665 प्रतिवेदनो मे से 601 (अर्थात् 90 प्रतिशत) का निपटारा तो सरकार ने अपने आप बिना आयोग को निर्देश किए, कर दिया। अत यदि बाद मे ये फर्में एकाधिकारी या प्रतिबन्धात्मक क्रियाओ के लिए दोषी पाई जाए, तो इसके लिए एम आर टी पी आयोग पर दोष लगाना अनुचित होगा। सच्चर समिति ने यह सिफारिश की थी कि इसे यह अधिकार विशेष रूप मे देना चाहिए। दुर्भाग्य की बात है कि सरकार ने यह सिफारिश स्वीकार नहीं की। किन्तु संशोधन अधिनियम (1984) मे यह प्रावधान किया गया है कि आयोग सरकार से निर्देश (Reference) प्राप्त करने की प्रतीक्षा किए बिना जाच आरभ कर सकता है। यह बेहतर होता यदि एकाधिकारी और प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहारो के बारे मे इस प्रकार का सामान्य प्रावधान भी कर दिया जाता है।

दूसरे, सरकार ने आयोग को अधिदेश-प्राप्त सत्ता (Man datory power) प्रदान नहीं की है जिसके आधीन आयोग अन्तिम आदेश दे सके। सच्चर समिति ने यह सिफारिश की थी कि आयोग को पूर्ण न्यायिक अधिकार प्राप्त होने चाहिए। सरकार ने यह सिफारिश भी स्वीकार नहीं की परन्तु सरकार को यह अधिकार प्राप्त है कि वह आयोग की सिफारिश स्वीकार करे या न करे। सरकार की सीधी आलोचना करते हुए एच के पराजये लिखता है—"बहुत से प्रेक्षक ऐसा महसूस करते है कि व्यापारिक हित सरकारी प्राधिकारो से सीधा व्यवहार करने को प्राथमिकता देते हैं क्योंकि इस प्रकार वे सरकारी अफसरो से न केवल एक सहानुभूतिक सुनवाई प्राप्त कर सकते हैं बल्कि सत्ता मे रहने वाले राजनीतिज्ञो के साथ सौदा भी कर सकते हैं। जाहिर है कि ऐसे सौदे उस हालत में करने सही नहीं जबकि एक स्वतन्त्र और अर्द्ध-न्यायिक प्राधिकार मामले की जाच कर रहा हो और विशेषकर उस हालत में जबकि जाच सार्वजनिक हो।"

तीसरे, सरकार की अधिनियम के विभिन्न प्रावधानो को क्रियान्वित करने मे आनाकानी इस बात से भी जाहिर हो जाती है कि चाहे अधिनियम मे आयोग के नौ सदस्य नियुक्त करने का प्रावधान है किन्तु सरकार ने कभी भी एक अध्यक्ष और दो सदस्यो से अधिक नियुक्त नहीं किए। भारत जैसे विशाल देश मे यदि न्याय करना है तो आयोग की कई न्यायपीठे (Benches) स्थापित करनी होगी। इसके लिए योग्य एव विशिष्ट मानवशक्ति की आवश्यकता है किन्तु दुख इस बात का है कि सत्ता प्राप्त वर्ग बडे व्यापारियो के साथ घनिष्ट गठबन्धन मे है—यही कारण है कि सरकार एम आर टी पी आयोग को न तो स्वायत्त रूप मे जाच करने का अधिकार देना चाहती है और न ही इसे अर्द्ध न्यायिक स्थान (Quasi judicial status)। एम आर टी पी अधिनियम और इसके कार्यान्वयन के बारे मे कटु सत्य यही है।

हाल ही मे एसोशिएटिड चैम्बर ऑफ कामर्स एव इडस्ट्री (ASSOCHAM) ने अपने एक अध्ययनल मे यह प्रस्ताव किया है कि एम आर टी पी की कम्पनियो की परिसम्पत सीमा 100 करोड रुपये से बढाकर 500 करोड रुपये कर देनी चाहिए। यह भी तर्क दिया गया है कि चूंकि देशीय एव आयातित प्लान्ट व मशीनरी की लागत प्रतिवर्ष क्रमश 10 प्रतिशत और 15-20 प्रतिशत तक बढ रही है इसलिए MRTP कम्पनियो की परिसम्पत की सीमा बढानी जरूरी है। इसके अतिरिक्त एक सक्षम पैटो रसायन प्लान्ट लगाने की लागत 700 900 करोड रुपये के बीच है और उर्वरक प्लान्ट की लागत 500 1 000 करोड रुपये के बीच है। इसमे सन्देह नहीं कि परिसम्पत सीमा को बढाने के प्रस्ताव मे बल अवश्य है परन्तु इसका अर्थ यह है जहा तक एकाधिकार शक्ति के नियन्त्रण का प्रश्न हे अधिकतर औद्योगिक घराने एम आर टी पी आयोग के अधिकार क्षेत्र से बाहर हो जाएगे। सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति (1991) मे MRTP की परिसम्पत सीमा समाप्त कर दी है।

6. औद्योगिक नीति (1991) और एकाधिकार प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम (Industrial Policy of 1991 and MRTP Act)

औद्योगिक नीति (1991) मे एकाधिकार प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार के बारे में यह उल्लेख किया गया—"बडी कम्पनियो के विनियोग सम्बन्धी निर्णयो मे एम आर टी पी अधिनियम (MRTP Act) के माध्यम से हस्तक्षेप हानिकारक है। अत सरकार ने यह निर्णय किया है कि इन कम्पनियो को अपने विनियोग के लिए एम आर टी पी आयोग से स्वीकृति नही लेनी पडेगी। अत इसकी अपेक्षा अब

एकाधिकारी प्रतिबन्धात्मक एवं अनुचित व्यापार व्यवहार के नियन्त्रण एवं विनियमन (Regulation) पर बल रहेगा। इस प्रकार एकाधिकारी घरानों को अपनी विस्तार योजनाओं, नये उद्यम स्थापित करने, विलयन और स्वामित्वहरण (Take-over) या निदेशकों की नियुक्ति के लिए सरकार से इजाजत नहीं लेनी होगी। अतः निति का मुख्य केन्द्र अनुचित एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार (Restrictive trade practices) पर अंकुश लगाना होगा।

अतः नव-सत्ता प्राप्त एम आर टी पी आयोग को स्वयं या किसी एक उपभोक्ता या उपभोक्ता समूह से शिकायत प्राप्त होने पर कि कम्पनी विशेष एकाधिकारी, प्रतिबन्धात्मक और अनुचित व्यापार व्यवहार कर रही है, उसके खिलाफ जांच आरंभ करने का अधिकार होगा। सरकार इस सम्बन्ध में कानून में संशोधन करेगी।

सरकार अपनी नीति में इस बात पर बल दे रही है कि परिसम्पत की अधिकतम सीमा निश्चित करने की अपेक्षा व्यापारिक घरानो द्वारा विनियोग को सुविधाजनक बनाना है। इस बात में भी सन्देह ही प्रतीत होता है कि क्या सरकार एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक अनुचित व्यापार व्यवहारो को नियंत्रित करने मे सफल हो सकेगी। भूतकाल का अनुभव यह संकेत देता है कि सरकार एकाधिकारी एव प्रतिबन्धात्मक व्यवहारों को रोक नहीं पाई। व्यापारिक घरानो ने शक्तिशाली सगठन कायम कर लिए हैं जो संभरण को नियंत्रित कर सकते हैं, कृत्रिम दुर्लभता की स्थिति कायम करके और आपसी गठबधन द्वारा कीमतो को चढ़ा सकते हैं। सरकार की सफलता इस बात से आंकी जाएगी कि यह किस हद तक प्रतिस्पर्द्धा को प्रोत्साहित कर सकती है ताकि एकाधिकारी प्रवृत्तियो पर अंकुश लगाया जा सके।

❑❑❑

1967-68 तीव्र स्फीति के वर्ष थे, जिनमे थोक कीमतो के सूचकाक मे क्रमश 14 प्रतिशत और 11 प्रतिशत की वृद्धि हुई। उस समय देश एक भारी कीमत-स्फीति के किनारे पर खडा था। सौभाग्यवश 1967 68 की भरपूर फसल के कारण स्थिति मे सुधार हुआ और कीमतो मे स्फीतिकारी वृद्धि रुक गई।

1970-80 के दशक के दौरान कीमत-स्थिति

चाहे भारत मे आर्थिक आयोजन के आरभ से ही कीमत स्तर मे लगातार वृद्धि होती गई परन्तु चौथी योजना के पश्चात् कीमतो की ऊपर चढने की प्रवृत्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। चौथी योजना के आरभ में सामान्य कीमत-स्तर मे वृद्धि धीमी थी परन्तु बाद मे मे यह गति पकड गई। चौथी योजना के पहले वर्ष (1969-70) मे गत वर्ष की अपेक्षा 7 अक की वृद्धि हुई, दूसरे साल यह 9 अक से बढी तीसरे साल के दौरान इसमे 7 अक की वृद्धि हुई चौथे वर्ष मे कीमत स्तर 19 अक से बढा और योजना के अंतिम वर्ष (1973 74) मे कीमत स्तर मे 47 अक की वृद्धि हुई। 1974 75 के दौरान कीमतो मे भयकर वृद्धि हुई। चौथी योजना के बजट में भारी कराधान बगलादेश से भारी सख्या मे शरणार्थियो के भारत आने और दिसम्बर 1971 में भारत और पाकिस्तान मे युद्ध छिड जाने के कारण कीमते लगातार बढती गयीं चाहे इन वर्षों मे कृषि और औद्योगिक उत्पादन मे काफी वृद्धि हुई। इसके मुख्य कारण खरीफ की फसलों का बडे पैमाने पर विफल होना और गेहू के थोक व्यापार के सरकारीकरण में पूर्ण असफलता है। इस प्रकार 1973-74 मे स्फीतिकारी प्रवृत्तिया इतनी तेज हो गईं कि इनसे कीमत स्तर मे अभूतपूर्व वृद्धि हुई। रूक्ष तेल की कीमतो मे 1973 के अन्त मे चार गुनी वृद्धि होने के कारण स्थिति और बिगड गई। इस काल मे विश्वव्यापी स्फीति के विद्यमान होने और विश्व की अन्य करेन्सियो के मुकाबले रुपये के बाहरी मूल्य मे गिरावट होने के कारण आयात की लागत बढ गई जिससे कीमत स्फीति मे और वृद्धि हुई। इन सभी कारणो के सचयी प्रभाव के फलस्वरूप सितंबर 1974 मे सभी वस्तुओ का सूचकांक 331 (1961-62 100) के रिकार्ड स्तर तक पहुच गया।

स्फीति की तीव्र वृद्धि के कारण देश मे भारी सकट पैदा हो गया और यह महसूस किया जाने लगा कि सरकार कीमत स्थिति को काबू मे लाने की क्षमता नहीं रखती। कीमतो मे इस तीव्र वृद्धि के लिए चार मुख्य कारण जिम्मेदार थे—(क) मुद्रा सभरण (*Money supply*) का लगातार तीव्र विस्तार, (ख) कृषि एव औद्योगिक क्षेत्र मे उत्पादन की असन्तोषजनक परिस्थितिया (ग) बाहरी कारणतत्वो का पैट्रोलियम, अन्य मूल वस्तुओ, खाद्य और उर्वरको की आयात कीमतो मे वृद्धि के रूप मे प्रभाव, और (घ) उत्पादको एव उपभोक्ताओ मे सर्वांगीण एव स्फीतिकारी कीमत प्रत्याशाओं को बल प्रदान करना।

इस परिस्थिति का मुकाबला करने के लिए सरकार ने कई राजकोषीय एव मौद्रिक उपाय किए। आपातकाल के दौरान जो कड़े कदम उठाए गए, उनमे उल्लेखनीय थे-अतिरिक्त महगाई भत्ते की अदायगी पर रोक मजदूरी तथा वेतन मे वृद्धि की अदायगी पर रोक, लाभाश (Dividends) की घोषणा पर सीमाबन्धन और रिजर्व बैंक द्वारा उधार सम्पीडन (Credit squeeze)। साथ ही आन्तरिक सुरक्षा कानून (MISA) का तस्करो जमाखोरो और चोरबाजारी करने वालों के विरुद्ध प्रयोग करने से भी कीमत-स्थिति पर अनुकूल प्रभाव पडा। इस काल के दौरान कीमत सूचकाक जो सितम्बर 1974 मे अपने शिखर पर पहुचकर 331 हो गया था कम होकर मार्च 1975 मे 309 और मार्च 1976 मे 283 हो गया।

तालिका 1 **चौथी योजना तथा आपात काल में कीमतों की प्रवृत्ति**

	1961 62 100 सभी वस्तुओ का थोक कीमत सूचकाक
सितम्बर 1974	331
मार्च 1975	309
मार्च 1976	283

आपात काल के दौरान ही कीमतो मे गिरावट की प्रवृत्ति मार्च 1976 मे दुर्भाग्यवश रुक गई। मार्च 1976 और मार्च 1977 के बीच कीमतो मे लगभग 12 प्रतिशत की वृद्धि हुई और अप्रैल 1977 मे कीमते पुन सितम्बर 1974 के स्तर पर पहुच गईं। अत इस प्रकार की आपातस्थिति कीमतो को रोकने का एक प्रबल कारण थी भण्डा फोड हो गया।

जनता शासन के दौरान कीमत-स्थिति (1977-79)

1977 78 और 1978 79 के बीच कीमत-स्तर की गतिविधि से पता चलता है कि जनता सरकार वस्तुत कीमत स्तर को लगभग स्थिर रखने मे कामयाब हुई। वास्तव मे कीमत-स्तर को स्थिर रखना सरकार की अल्पकालीन माग एव सभरण प्रबन्ध नीतियो मे सफलता का प्रतिबिम्ब था। यह भी ठीक है कि 1979 के आरभ मे परिस्थितिया कीमत-स्थिरता कायम रखने के लिए अनुकूल थीं। खाद्यान्नो का बफर स्टाक (Buffer-stock) 200 लाख टन से भी

अधिक हो चुका था। अच्छी फसल की आशा के कारण भारी खाद्यान्नो का उत्पादन 1310 लाख टन हुआ। 1978 मे औद्योगिक उत्पादन मे गत वर्ष की तुलना मे 9 5 प्रतिशत की वृद्धि हुई। महत्त्वपूर्ण कच्चे मालो अर्थात् सीमेंट, स्टील अन्य धातुओ और कोयले की उपलब्धि अत्यन्त सन्तोषजनक थी। पिछले कुछ वर्षों मे इन्हीं की कमी के कारण उत्पादन की वृद्धि सीमित हो रही थी। इसके अतिरिक्त देश के पास 5 000 करोड रुपये से भी कुछ अधिक के विदेशी मुद्रा रिजर्व थे जिनका प्रयोग ऐसी वस्तुओ के आयात के लिए किया जा सकता था जिनकी देश मे कमी थी।

तालिका 2 जनता शासन के दौरान कीमत-स्थिति

	सभी वस्तुओ का थोक कीमत सूचकांक 1970 71 = 100
मार्च 1977	183
जनवरी 1978	184
जनवरी 1979	185

कीमत स्तर की स्थिरता को बडी लापरवाही से फरवरी *1979 मे तत्कालीन वित्त मन्त्री श्री चरणसिंह के स्फीतिकारी* बजट ने नष्ट कर दिया। यह बजट श्रम वर्ग और मध्यम वर्ग के विरुद्ध था। 600 करोड रुपये का अतिरिक्त कराधान लगाया गया। यह सारे का सारा कराधान वस्तु करो के रूप मे था जिनका भार कीमत वृद्धि द्वारा तुरन्त ही उपभोक्ताओ पर डाल दिया गया। भारी कराधान के अतिरिक्त बजट मे 1 365 करोड रुपये का घाटा था जिससे कीमतो की वृद्धि पर प्रभाव पडा। *बजट के लोकसभा मे पेश होने के तुरन्त बाद ही* कीमते बढनी आरम्भ हो। फरवरी 1979 मे कीमत सूचकाक 185 था। (1970 71 = 100) जो बढकर 1980 मे 224 हो गया।

1980 90 के दौरान कीमत स्थिति

इन्दिरा काग्रेस सरकार जो जनवरी 1980 में फिर से सत्ता मे आई स्फीति को अपनी सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या मानती थी और इसके समाधान के लिए इसने कई उपाय किए, विशेषकर माग और सभरण प्रबन्ध (Demand and supply management) की दृष्टि से ताकि बढती हुई कीमतो की प्रवृत्ति को रोका जा सके। आरभ मे स्थिति बहुत ही खराब थी। 1979 80 की खराब फसल और इसके परिणामस्वरूप औद्योगिक उत्पादन पर दुष्प्रभाव और केवल 1980 मे तेल की कीमतो मे 130 प्रतिशत वृद्धि के फलस्वरूप कीमत स्तर मे और वृद्धि हुई।

1980 81 के दौरान थोक कीमत सूचकांक मे 17 4 प्रतिशत वृद्धि हुई परन्तु 1982-83 के दौरान यह काफी हद तक स्थिर ही रहा, चाहे इसमे थोडी-सी वृद्धि हुई। इस कीमत स्थिरता की प्राप्ति के लिए एक ओर तो उधार को सीमित किया गया और दूसरी ओर सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा अनिवार्य वस्तुओ के संभरण को बढाया गया।

तालिका 3 छठी और सातवीं योजना के दौरान कीमत-स्थिति

वर्ष	सभी वस्तुओं का थोक कीमत सूचकांक	गत वर्ष पर प्रतिशत परिवर्तन
1979 80	218	
1980 81	256	17 4
1981 82	*281*	*9 8*
1982 83	289	2 9
1983 84	316	9 4
1984 85	339	7 0

दुर्भाग्यवश यह कीमत स्थिरता थोडे समय के लिए *कायम रही और जनवरी 1983 के पश्चात् कीमत-स्तर मे* पुन वृद्धि होने लगी। मार्च 1985 तक थोक कीमत सूचकांक 346 (1970 71 = 100) तक पहुंच गया। स्फीतिकारी दबाव का पुन बल पकडना मौसमी मदो अर्थात अनाजो दालो तिलहनो एव अन्य खाद्य पदार्थों की कीमतो मे वृद्धि *का परिणाम था। इसके साथ साथ बहुत सी वस्तुओ अर्थात्* कोयला बिजली सीमेंट, लौह एव इस्पात आदि की प्रशासित कीमतो (Administered prices) मे वृद्धि ने भी स्फीति को बढाया। ऐसी वस्तुए जिन्होंने कीमत-स्तर पर लगातार दबाव बनाए रखा वे थीं दाले चीनी खाद्य तेल और पटसन।

1983 84 के दौरान *मांग और सभरण दोनों* पक्षो के सम्बन्ध मे स्फीति विरोधी कदम तेजी से उठाए गए। मांग पक्ष की ओर सरकार ने वाणिज्य बेंको के रोक प्रारक्षण अनुपात (Cash reserve ratio) मे कई परिवर्तन किए ताकि बैंक प्रणाली की तरलता (Liquidity) मे वृद्धि को रोका जा सके। वाणिज्य बैंको को यह भी निर्देश दिया गया कि वे अपनी उधार को निश्चित सीमाओ के बीच ही रखे। जनवरी 1984 मे सरकार ने अपने सार्वजनिक व्यय को 3 से 5 प्रतिशत तक कम करने का निर्णय किया। इसके अतिरिक्त सरकारी क्षेत्र मे नौकरियो की भर्ती पर रोक लगा दी गई। सभरण पक्ष की दृष्टि से सरकार ने वस्तुओ तथा सेवाओ के सभरण को बढाने के लिए अल्पकालीन एव दीर्घकालीन उपाय किए। अल्पकालीन उपायो में शामिल हैं सार्वजनिक

वितरण प्रणाली द्वारा गेहू, चावल चीनी और खाद्य तेलो की अधिक मात्रा में उपलब्धि और देशीय उपलब्धि को बढाने के लिए खाद्यान्न एव खाद्य तेलो का आयात। दीर्घकालीन उपायों द्वारा क्रान्तिक क्षेत्रों मे उत्पादन बढाने के लिए कदम उठाए गए।

कुछ हद तक छठी योजना के दौरान किए गए माग और सभरण प्रबन्ध के परिणामस्वरूप कीमतों की वद्धि को सीमित करने मे काफी सफलता प्राप्त हुई। इस अवधि मे कीमतो की वृद्धि 8 प्रतिशत के इर्द गिर्द ही रही। (देखिए तालिका 3)

तालिका 4 सातवीं योजना 1985 90 के दौरान कीमतों में परिवर्तन

(1981 82 100)

अन्तिम सप्ताह	थोक कीमत सूचकांक	पिछले वर्ष पर परिवर्तन (प्रतिशत)
1984 85	120	6 0
1985 86	125	4 9
1986 87	133	4 7
1987 88	144	10 7
1988 89	154	5 7
1989-90	166	8 1

स्रोत आर्थिक समीक्षा (1989-90) और इसके पहले अक।

सातवीं योजना के पहले दो वर्षों के दौरान, स्फीतिकारी प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण कमी हुई (देखिए तालिका 4) उदाहरणार्थ, स्फीति की वार्षिक वृद्धि दर सातवीं योजना के पहले दो वर्षों मे कम होकर क्रमश 4 9 प्रतिशत और 4 7 प्रतिशत हो गई जबकि तुलना की दृष्टि से 1984 85 के दौरान यह 6 प्रतिशत थी। इसका मुख्य कारण इस अवधि के दौरान सभरण की संतोषजनक स्थिति थी।

किन्तु 1987 88 के दौरान विस्तृत सूखे के कारण कृषि उत्पादन को भारी धक्का लगा जिसके परिणामस्वरूप कीमतों पर भारी दबाव पडा। अनिवार्य कृषि वस्तुओं के उत्पादन मे कमी व्यक्त हुई। कीमतों मे सबसे अधिक वृद्धि मौसमी कृषि उत्पादों अर्थात् खाद्य तेलों और तिलहनों, दालो, रुई, आदि में अनुभव की गई। निर्मित वस्तुओं मे भी कीमत वद्धि का अधिकतर भाग ऐसे खाद्य पदार्थों में था जो कृषि से जुडे हुए थे।

1990 के पश्चात् कीमत स्थिति

सातवीं योजना के काल (1985 90) के दौरान कीमत स्तर की औसत वृद्धि 7 प्रतिशत प्रति वर्ष रही। यह वृद्धि महत्त्वहीन नहीं थी चाहे अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के लिए यह असामान्य नहीं थी। परन्तु 1990 के पश्चात् जो कीमत वद्धि हुई वह घोर स्फीति ही कही जा सकती है। आश्चर्यजनक बात यह है कि इस स्फीति को स्वय सरकार ने ही प्रोत्साहित किया प्रशासित कीमतो (Administered prices) की वद्धि और अप्रत्यक्ष करो की वद्धि द्वारा। राजनीतिक लाभ को दृष्टि मे रखते हुए खाद्यान्नो की कीमतो मे वद्धि आर खाडी सकट के कारण एक ही छलाग मे पेटोलियम उत्पाद की कीमतो मे वद्धि वर्तमान स्फीति के मुख्य कारण थे। कीमते 1990 91 और 1991 92 के दौरान तेजी से बढीं और स्फीति की औसत वार्षिक दर क्रमश 10 1 और 13 7 प्रतिशत थी। स्फीतिकारी दबाव (1990 के आरभ के पश्चात्) प्राथमिक वस्तुओ अर्थात् खाद्यान्नो, सब्जियो, चीनी आर खाद्य तेलो मे सकेन्द्रित था।

तालिका 5 1990 के पश्चात् कीमत स्थिति

(1981 82 100)

अवधि	थोक कीमत सूचकांक	वार्षिक वृद्धि दर
1990-91	180	10 1
1991-92	208	13 6
1992-93	229	10 1
1993-94	248	8 4
1994-95	275	10 9
1995-96	296	7.6
1996-97	314	6.9
1997-98	338	4 9

1992-93 के दौरान स्फीति की वद्धि दर कम होकर 10 प्रतिशत हो गई। दूसरे शब्दों मे कीमत स्थिति की दृष्टि से भारतीय अर्थव्यवस्था म स्पष्टत सुधार हुआ। स्फीति दर में कमी का श्रेय लगातार तीन वर्षों के दौरान बेहतर कषि निष्पादन को और सरकार द्वारा समष्टि-आर्थिक सुधारो (Macro-economic reforms) को दिया जा सकता है। इन सुधारो मे राजकोषीय घाटे (Fiscal deficit) मे कटौती और इसके परिणामस्वरूप मुद्रा सभरण (Money supply) के विस्तार में नियत्रण को शामिल किया जा सकता है।

कीमत स्थिति में उन्नति समाज के गरीब वर्गों के लिए विशेष रूप मे अभिनन्दनीय थी। वास्तव मे जनोपभोग की कुछ वस्तुओ अर्थात् अनाजो, दालो और खाद्य तेलो की कीमतो में 1992 93 और 1993 94 के दौरान गिरावट व्यक्त हुई।

किन्तु अगस्त 1993 के पश्चात् कीमतों की स्थिति में गभीर मोड आया। स्फीति की वार्षिक दर बढनी शुरू हो गयी। इसका मुख्य कारण भारी राजकोषीय घाटा था जिसके परिणामस्वरूप जनता के पास मुद्रा का सभरण बढ गया। इसके साथ साथ प्रशासनिक कीमतो (Administer prices)

मे वृद्धि के कारण स्फीति की दर बढ गयी। द्विअकीय स्फाति (Double digit inflation) 1994-95 मे जारी रही। स्फीतिकारी परिस्थिति मे 1995-96 मे राहत महसूस की गया। 1996-97 की 6 9 प्रतिशत की स्फीति-दर के विरुद्ध 1997-98 मे स्फीति दर 4 9 प्रतिशत रही। हाल ही के वर्षों म प्राथमिक खाद्य-पदार्थों और निर्मित खाद्य पदार्थों की कीमतों मे वृद्धि मे काफी गिरावट आयी है।

2. हाल ही मे हुई मूल्य वृद्धि के कारण

मूल्य की स्फातिकारी वृद्धि के कारण माग मे वृद्धि या सभरण मे वृद्धि का अभाव या दोनो ही हो सकते हैं। भारत मे उक्त सभी कारणतत्व थोडी बहुत मात्रा मे सक्रिय रूप मे क्रियाशील ह—

माग की शक्तियां (Demand forces)

वस्तुओ तथा सेवाओ की माग जिन मुख्य कारणा पर निर्भर करती है उनमे उल्लेखनीय है—जनसख्या का आकार और इसकी वार्षिक वृद्धि दर, राष्ट्रीय तथा प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि, जनता तथा सरकार का व्यय समाज की बचत और विनियोग व्यय और इसके प्रबन्ध का रूप।

1 जनसंख्या का बढ़ता हुआ दबाव—1951 के पश्चात् भारत की जनसख्या लगातार बढती ही गई। यह 1951 मे 36 1 करोड थी और 1981 मे 68 4 करोड हो गया अर्थात् 1951 और 1981 के बीच इसमे 32 3 करोड की वृद्धि हुई। 31 मार्च 1996 को भारत की जनसख्या 93 4 करोड हो गई। दूसरी योजना मे थोक कीमतो की लगातार वृद्धि का व्याख्या करते हुए यह उल्लेख किया गया कि इसका मुख्य कारण "निस्सन्देह जनसख्या और मौद्रिक आय (Money incomes) मे वृद्धि के कारण माग का बढता हुआ दवाव है। कोइ भी इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि बढती हुई जनसख्या से खाद्यान्नो की माग बढती है और परिणामत इससे मूल्यों मे वृद्धि होती है।'

2 अन्तवर्ती और पूजी वस्तु क्षेत्र मे विनियोग की ऊंची दर—भारत जैसे कृषि प्रधान देश मे आर्थिक विकास का विशाल कार्यक्रम आरभ करने पर भारी पूजी विनियोग करना पडता है जिमके परिणामस्वरूप अन्तर्वर्ती (Intermediate) एव पूजी वस्तुओ की माग मे अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। 1951 से 1961 के दशक मे कुल 10 100 करोड रुपये विनियोग किया गया। 1961 71 के दशक के दौरान सरकारी क्षेत्र मे 20 000 करोड रुपये का विनियोग हुआ। चौथी योजना काल (1969-74) के दौरान वार्षिक विनियोग 3 000 करोड रुपये से अधिक रहा 1974-78 के दौरान सार्वजनिक विनियोग की वार्षिक औसत 7 600 करोड रुपये थी। छटी योजना (1980-85) के दौरान वार्षिक विनियोग व्यय बढकर 32 000 करोड रुपये (सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र मिलाकर) हुआ। 1980-90 के दशक के दौरान वार्षिक विनियोग 80 000 करोड रुपये हुआ। इतनी भारी मात्रा मे विनियोग के परिणामस्वरूप पूजी वस्तुओ के मूल्यो मे वृद्धि होना स्वाभाविक था।

3 बढ़ता हुआ सरकारी व्यय—प्रत्येक वर्ष व्यय निरन्तर बढता जा रहा है। 1950-51 मे केन्द्र तथा राज्यीय सरकारा का कुल व्यय 740 करोड रुपये था जो 1980 81 मे बढकर 37 000 करोड रुपये से अधिक हो गया परन्तु यह बढकर 1997 98 मे 3 81,200 करोड रुपये तक पहुच गया है। उल्लेखनीय बात यह है कि न केवल विकास-व्यय मे वृद्धि हुई किन्तु विकास-भिन्न व्यय मे भी तीव्र वृद्धि हुई। अत कीमतो की हाल ही की वृद्धि का महत्त्वपूर्ण कारण बढता हुआ सरकारी व्यय है। इसके अतिरिक्त सरकारी व्यय मे लगातार वृद्धि, विशेषकर जब इसका वित्त प्रबन्ध कराधान द्वारा न किया जाए, जनता के हाथो भारी मात्रा मे मौद्रिक आय साप देती ह जिससे स्फीति की अग्नि आर प्रचड हो जाती है।

4 न्यून वित्त प्रबन्ध और मुद्रा-सभरण की वृद्धि—आर्थिक विकास के वित्त प्रबन्ध के लिए न्यून वित्त के उपाय का प्रयोग करने के लिए भारत सरकार ही जिम्मेदार ठहराई जा सकती है। यह नीति मुद्रा सम्भरण (Money supply) मे वृद्धि के लिए प्रत्यक्ष रूप मे उत्तरदायी है जिसके परिणामस्वरूप कीमतो मे वृद्धि होती है। जबकि पहली तीन योजनाओ मे न्यून वित्त प्रबन्ध (Deficit financing) की मात्रा मर्यादित थी इसका आकार चौथी योजना और इसके बाद म काल मे बहुत अधिक चढ गया। (330 करोड रुपए से बढकर 1 130 करोड रुपए) छठी योजना (1980 85) मे न्यून औसत वार्षिक न्यून वित्त की मात्रा 3 300 करोड रुपए थी। दसवे वित्त आयोग ने सरकारी राजस्व घाटे (Revenue deficit) और राजकोषीय घाटे (Fiscal Deficit) को सकल देशीय उत्पाद के रूप मे निम्नलिखित ढग से व्यक्त किया है।

सकल देशीय उत्पाद का प्रतिशत

वर्ष	राजस्व घाटा	राजकोषीय घाटा
1981 82	0 2	5 4
1990-91	3 5	8 4
1995-96	2 7	5 5
1997 98 (बजट)	2 1	4 5

जबकि राजस्व घाटे मे वृद्धि होती रही है राजकोषीय घाटा मे और भी अधिक तेज दर से वृद्धि हुई है। इसका असतोषजनक पहलू राजकोषीय घाटे का वित्त प्रबन्ध है जिसे

अशत भारतीय रिजर्व बैंक के उधार (मुद्रीकृत घाटा) और अशत· बाजार से बढती हुई ब्याज दर पर उधार प्राप्त कर पूरा किया गया।

5 मुद्रा संभरण (Money supply) में वृद्धि–बढता हुआ सरकारी व्यय जिसके कारण वित्त प्रबन्ध के लिए न्यून वित्त का प्रयोग किया जाता है सीधे ही देश मे मुद्रा सम्भरण भी बढाता है। तालिका 6 मे जनता के पास मुद्रा सम्भरण और कुछ मौद्रिक ससाधन (Aggregate Monetary Resources) दिए गए हे। जनता के पास मुद्रा सम्भरण (M) मे सिक्के एव करेन्सी नोट और वाणिज्य बैंको के पास जनता की माग जमा (Demand deposits) शामिल किए जाते ह। मुद्रा सभरण की मात्रा जो 1970 71 में 7320 करोड थी बढकर 1997 98 मे 7,98000 करोड रुपए हो गई।

तालिका 6 · जनता के पास मुद्रा सम्भरण और कुल मौद्रिक संसाधन

करोड रुपए

वर्ष	जनता के पास मुद्रा-सभरण (M_1)	कुल मौद्रिक ससाधन (M_3)
1970-71	7320	10960
1980-81	23120	[illegible]360
1990 91	92770	2[illegible]8810
1997 98	2,[illegible]0[illegible]00	[illegible]98000

कुल मौद्रिक ससाधनो (Aggregate Monetary Resources—M) मे जनता के पास मुद्रा-सभरण (M) और बैंको के पास सावधि जमा (Time deposits) शामिल होते हैं। कुल मौद्रिक ससाधन 1970 71 मे 10960 करोड रुपए थे जो बढकर 1997-98 मे 798000 करोड रुपए हो गए–अर्थात् इनमे 70 गुना वृद्धि हुई।

कीमतो मे तीव्र वृद्धि का कारण मुद्रा सभरण मे भारी वृद्धि है। यह बात सब देशो के लिए सत्य ह और भारत इसका अपवाद नहीं हो सकता। भारत सरकार अपनी न्यून वित्त की नीति के कारण देश मे स्फीति के लिए जिम्मेदार है और इस परिस्थिति के लिए राज्यीय सरकारो ने भी वित्तीय अनुशासनहीनता और व्यय मे बेहद लापरवाही द्वारा और अनधिकृत ओवरड्राफ्ट का प्रयोग कर योगदान दिया है। मुद्रा सभरण एव मौद्रिक ससाधनो मे वद्धि का प्रभावी माग पर प्रत्यक्ष प्रभाव पडता हे और परिणामस्वरूप कीमत स्तर मे वृद्धि होती है।

6 काले धन का कार्यभाग- यह बात सर्वविदित है कि आयकर वचको (Income tax evaders) और चोरबाजारी करने वालो के पास छिपे धन का बहुतभारी स्टॉक उपलब्ध है। इसके साथ साथ राजनीतिज्ञो और सरकारी अफसरो जो विशेषकर लाइसेंस प्रणाली, रजिस्ट्रेशन, आय तथा धन कर, उत्पादन शुल्क और बिक्री कर आदि से सम्बन्धित हैं, के पास भी बहुत अधिक काला धन उपलब्ध ह। इस धन के बहुत बडे भाग का प्रयोग खाद्यान्न व्यापार और वास्तविक जायदाद के क्रय विक्रय मे होता ह। इसके अतिरिक्त बहुत सी अनिवार्य वस्तुओ मे जमाखोरी और सटटेबाजी होती हे। सरकारी अनुमान के अनुसार 1983 84 मे काले धन की राशि 37000 करोड रुपए आकी गई ह। डॉ सूरज गुप्ता ने 1987 88 के लिए इसकी मात्रा 1,49000 करोड रुपये आकी है। 1997 98 मे इसकी मात्रा 500000 करोड रुपये आकी गयी ह। अत अर्थशास्त्री यह साधिकार कहते ह कि काले धन की *विद्यमानता और इसके दोषपूर्ण प्रभाव के कारण* हाल ही के वर्षो मे स्फीतिकारी प्रवृत्तिया मजबूत हो गइ ह।

सभरण शक्तियाँ (Supply forces)

यद्यपि देश के आर्थिक विकास के कारण वस्तुओ और उत्पादन के साधनो दोनो की माग मे वृद्धि होना निश्चित हे तथा इसके परिणामस्वरूप मूल्यो मे वृद्धि होना भी सभव हे तथापि यह आवश्यक नहीं कि मूल्य वास्तव मे बढे ही। यदि माग मे वृद्धि के अनुरूप ही वस्तुओ और सेवाओ के सभरण मे वृद्धि की जा सके तो मूल्यवृद्धि की सभावना नहीं रहती। पहली योजना मे मागवर्धक सम्मिकरण-जनसख्या वृद्धि विनियोग वृद्धि, सरकारी व्यय मे वृद्धि और काफी बडी मात्रा मे न्यून वित्तव्यवस्था विद्यमान थे किन्तु कृषि उत्पादन मे इतनी अधिक वृद्धि हुई कि मूल्य बढने की अपेक्षा कम हो गए। परन्तु जब भी खाद्यान्नो के उत्पादन मे कमी हुइ या खाद्यान्न उत्पादन स्थिर हो गया तो कीमत बढ गइ।

(i) उत्पादन और संभरण में उच्चावचन–इस प्रसग मे हमे खाद्यान्नो के उत्पादन मे तेजी से होने वाले उतार चढावो का भी उल्लेख करना चाहिए खाद्यान्नो का उत्पादन जो 1950 51 मे 550 लाख टन था बढकर 1964 65 म 890 लाख टन हो गया। इसके अगले वर्ष (1965 66) म उत्पादन तेजी से कम होकर 720 लाख टन हो गया अथात इसमे 20 प्रतिशत की कमी हुइ। फिर 1970 71 म 1080 लाख टन का रिकार्ड उत्पादन हुआ परन्तु 1972 73 मे गिरकर 970 लाख टन और 1973 74 मे 1010 लाख टन हो गया। 1975 76 मे खाद्यान्न उत्पादन बढकर 1160 लाख टन हो गया। खाद्यान्नो के उत्पादन मे ये उच्चावचन कीमत वृद्धि का एक प्रमुख कारण थे। 1983 84 खाद्यान्न उत्पादन यह 1524 लाख टन के रिकार्ड स्तर पर पहुच गया किन्तु 1987 88 मे भी सूखा पडने के कारण यह कम होकर 1384 लाख टन हो गया। 1996 97 मे यह पुन बढकर

1985 लाख टन के रिकार्ड स्तर पर पहुच गया। खाद्यान्न उत्पादन के उतार चढाव के कारण कीमत वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है। इसी प्रकार इस बात का उल्लेख करना जरूरी है कि निर्मित वस्तुओ का सभरण कुछ वर्षों मे पर्याप्त मात्रा मे नहीं बढा। सचालन शक्ति मे गडबड हडतालो एव तालाबंदियो और परिवहन सुविधाओ का अभाव निर्मित वस्तुओ के उत्पादन की कम वृद्धि दर के मुख्य कारण थे। वस्तुओ की माग के अत्यधिक होने के कारण उत्पादक कीमतो को बढाने मे बहुत हद तक सफल हो गए।

(ii) तेल की कीमतो मे वृद्धि और विश्वव्यापी स्फीति (Global inflation)—सितम्बर 1973 के पश्चात् पेटोलियम की कीमतो मे तीव्र वृद्धि भी स्फीतिकारी दबावो को बढावा देने का प्रमुख कारण समझी जाती है। इसके परिणामस्वरूप आयातित तेल पर आधारित वस्तुओ की कीमतो मे भी भारी वृद्धि हुई। खाडी युद्ध के कारण 1990 91 के दौरान एक ही झटके मे पेट्रोलियम उत्पाद की कीमतो मे वृद्धि हुई जो सामान्य कीमत वृद्धि का मुख्य कारण थी।

(iii) प्रशासित कीमतो मे वृद्धि—सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम भी अपने उत्पाद और सेवाओ की कीमते लगाकर बढाते रहे है। इनमे सामान्यत अन्य उद्योगो के लिए कच्चे माल शामिल होते है। इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण भारतीय रेलवे है जो पिछले कुछ वर्षों से लगातार अपने किराए एव भाडे बढाती जा रही है इस प्रकार बहुत सी अन्य वस्तुओ जैसे इस्पात सीमेंट, कोयला आदि की प्रशासित कीमते बढायी जा रही है जो सामान्य कीमत स्तर को ऊपर चढाती है। प्रशासित कीमतो की प्रत्येक वृद्धि देश मे स्फातिकारी शक्तियो को और प्रचण्ड करती है।

अन्य कारण—सरकार और राजकीय क्षेत्र देश मे कीमत स्तर को बढाने के लिए काफी हद तक जिम्मेदार थे। प्रत्येक बजट के साथ सरकार वस्तुओ की कीमते बढा देती थी और व्यापारी वर्ग इस अवसर का लाभ उठाकर लगाए गए करो से भी अधिक कीमते बढा लेते थे। इसी प्रकार 1973 मे सरकार ने गेहू के थोक व्यापार का राष्ट्रीयकरण किया और चावल पर भी इसे लागू करने की धमकी दी। इस उपाय से सामान्य व्यापार पूर्णतया अस्त व्यस्त हो गया और गेहू की खुले बाजार मे कीमत एकदम बढ गई। साथ ही सरकार सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public distribution system) के लिए पर्याप्त मात्रा मे खाद्यान्न वसूल करने मे विफल हुई। सरकार विदेशो से भी अनाज प्राप्त करने मे सफल न हुई। यह भी कहना ठीक ही होगा कि सरकार *वसूली की कीमते (Procurement prices) निश्चित करने मे* किसान विरोधी और ढील की नीति चलाती रही। यही बात अनिवार्य वस्तुओ अर्थात चीनी वनस्पति साबुन कपडा आदि की कीमतो को नियन्त्रित करने के बारे मे भी सत्य है। न ही *नियन्त्रण कडाई से लागू किए गए जिसके परिणामस्वरूप* व्यापारियो को काले बाजार का अवसर मिला।

सच तो यह है कि देश मे स्फीति की एक लहर दौड पडी जिसमे दुकानदार *बिना किसी कारण के कीमते बढाते* जाते और उपभोक्ता चुपचाप इन कीमतो को अदा करते रहे। इस प्रकार की स्थिति देश की आर्थिक स्थिरता के लिए खतरा है।

3 भारत मे कीमतो पर नियन्त्रण

सरकार मूल्यो को नियन्त्रित तथा नियमित करने के उपाय कर रही है। स्थिति को स्थिर रखने तथा सट्टेबाजो को दुर्लभता की स्थिति का दुरुपयोग करने से रोकने के लिए व्यापक उपाय अपनाए गए। चूकि मूल्य वृद्धि की समस्या मूल आवश्यकताओ की वस्तुओ के सभरण मे कमी तथा मुद्रा सभरण (Money supply) और बैंक ऋण मे तीव्र वृद्धि का परिणाम थी अत मुद्रा सभरण तथा वस्तुओ का मूल्य नियत करने और उसके वितरण से सम्बन्धित विभिन्न उपायो का प्रयोग किया गया है।

मांग की व्यवस्था (Demand management)

1973 74 के पश्चात् कीमत नीति का बल माग को सीमित करने वाले राजकोषीय (Fiscal) एव मौद्रिक उपायो पर रहा है। परन्तु सघीय एव राज्यीय सरकारे दोनो ही अपने व्यय को नियंत्रित करने मे विफल रही।

(1) राजकोषीय उपाय (Fiscal measures)—जुलाई 1974 में भारत सरकार ने तीन अध्यादेश जारी करके उपभोक्ताओ के हाथ मे निर्वर्त्य मौद्रिक आय (Disposable money incomes) को कम करने का प्रयास किया। अतिरिक्त वेतन (अनिवार्य जमा) अध्यादेश (1974) के आधीन मजदूरी मे सभी प्रकार की वृद्धि एक वर्ष के लिए रोक दी गई। जनवरी 1984 मे भारत सरकार ने सार्वजनिक व्यय को कम करने के एकमुश्त कार्यक्रम की घोषणा की जिसके आधीन सरकारी क्षेत्र मे नयी भर्ती पर रोक लगा दी गई और सरकारी क्षेत्र मे किए जाने वाले बहुत से व्यर्थ व्यय को काट दिया गया। किन्तु व्यवहार मे सरकार करदाताओ के पैसे को बडी लापरवाही से खर्च कर रही है और इसके परिणामस्वरूप कीमतो मे वृद्धि को रोकने की अपेक्षा इनमे तेजी से वृद्धि हुई है।

1990 91 के पश्चात् सरकार ने यह महसूस किया है कि राजकोषीय घाटे को कम करना चाहिए ताकि स्फीति नियन्त्रित की जा सके। 1991 92 के बजट मे पहला कदम

उठाया गया और बजट घाटे को जो 1990 91 में सकल देशीय उत्पाद का 8 4 प्रतिशत था, कम करके 1991 92 मे 6 2 प्रतिशत और 1992 93 मे कम करके 4 9 प्रतिशत पर लाया गया। इसके पश्चात् सरकार राजकोषीय घाटे को कम करने में विफल हुई और यह सकल देशीय उत्पाद के 7 प्रतिशत के इर्द गिर्द रहा। किन्तु सरकार ने तदर्थ राजकोषीय पत्रो (Adhoc treasury bills) जारी कर रिजर्व बैंक द्वारा उधार प्राप्त करने की सीमा 6 000 करोड रुपये कर दी है और इस प्रकार नयी करेन्सी जारी करने की प्रवत्ति कम कर दी है।

इन उपायो के साथ मौद्रिक उपायों की सहायता से सरकार मुद्रा सभरण की मात्रा कम करके 1995 96 के पश्चात् स्फीतिकारी दबाव को कम कर पायी है।

2 **मौद्रिक उपाय**—भारतीय रिजर्व बैंको की मौद्रिक नीति सामान्य और चयनात्मक उधार नियत्रण उपायो (Selective credit control measures) को लागू करने का रही है। इसका मुख्य लक्ष्य वाणिज्य बैंको के उधार को उपलब्धि और लागत को प्रभावित करना था ताकि बैंक उधार फैलाव के कारण वस्तुओ की कीमतो मे वृद्धि न हो। 1957 के पश्चात् रिजर्व बैक ने चयनात्मक उधार नियत्रण पर ही विशेष बल दिया है ताकि सट्टापूर्ण जमाखोरी (Speculative hoarding) को (खास तोर पर खाद्यान्नो रूई, तिलहनो तेल चीनी और सूता वस्त्र) निरुत्साहित किया जा सके।

अस्सी और नब्बे के दशक के दौरान भारत सरकार की मौद्रिक नीति अनिवार्यत अत्यधिक तरलता (Liquidity) को रोकने की रही है। साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा गया कि उत्पादक एव प्राथमिकता वाले क्षेत्रो की वास्तविक आवश्यकताओ की पूर्ति की जाए। मुद्रा एव उधार के विस्तार पर कडा नियन्त्रण करने के उद्देश्य से सितम्बर 1981 म रोक आरक्षण अनुपात (Cash reserve ratio) 6 प्रतिशत से बढाकर धीरे धारे 15 प्रतिशत के अधिकतम स्तर पर कर दिया गया। इन उपायो के परिणामस्वरूप अथव्यवस्था मे अतिरिक्त तरलता (Liquidity) को समेटा गया ओर इसके फलस्वरूप मौद्रिक एव उधार विस्तार मर्यादित हो गया। अत रिजर्व बक ने ऐसी मौद्रिक नीति अपनायी जिससे मुद्रा सभरण की वद्धि मन्द हो जाए और अथव्यवस्थाओ मे तरलता की मात्रा कम की जा सके।

सामान्यतया भारतीय रिजर्व बक अपना मौद्रिक नीति का प्रयोग उत्पादन मे वद्धि ओर सामान्य कीमत स्तर के नियत्रण के बीच सतुलन बनाने के लिए करता हे चूंकि 1995 96 मे सकल देशीय उत्पाद मे 5 5 प्रतिशत वद्धि की प्रत्याशा की गयी भारतीय रिजर्व बैक ने विस्तत मुद्रा (M) के विस्तार को 15 5 प्रतिशत की सीमा के अन्दर रखने का प्रयास किया और इस प्रकार स्फीति दर को 8 प्रतिशत तक सीमित करने का लक्ष्य रखा। इस अवधि म भारतीय रिजर्व बैंक ने मौद्रिक वद्धि दर को प्रतिबन्धित करने के लिए रोक-आरक्षण-अनुपात (Cash Reserve Ratio) ओर रिजर्व बैंक द्वारा सरकारी प्रतिभूतियो के विक्रय का प्रयोग किया।

सभरण व्यवस्था (*Supply management*)

संभरण व्यवस्था का सम्बन्ध सभरण की मात्रा और इसकी वितरण प्रणाली से होता है। वस्तुओ के स्तर पर सरकार ने चावल गेहू, चीनी गुड और जनोपभोग (Mass consumption) की अन्य वस्तुओ के मूल्य नियन्त्रित करने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार ने जो उपाय किए वे हैं—

(1) **अधिकतम मूल्य नियत करना**—जमाखोरी ओर सट्टेबाजी (*Hoarding and speculation*) की प्रवृत्ति को हतोत्साहित करने के लिए सरकार ने राज्यीय सरकारो (State governments) से खाद्यान्न के थोक और परचून मूल्य नियत करने को कहा। इसके अतिरिक्त सरकार कृषि कीमत आयोग को सिफारिशो के आधार पर मुख्य फसलो की वसूली के न्यूनतम मूल्य भी नियत करती है। साथ ही अन्य महत्त्वपूर्ण वस्तुओ अर्थात् कपडा चीनी वनस्पति आदि की कीमते भी नियन्त्रित की गई।

(2) **द्वैध कीमत प्रणाली**—सरकार ने चीनी सीमेट और कागज जेसी वस्तुओ के लिए द्वैध कीमत प्रणाली (Dual pricing system) लागू की ताकि कमजोर वर्गो को इन वस्तुओ का एक निश्चित मात्रा नियन्त्रित कीमतो पर उपलब्ध कराई जा सके। अन्य वर्ग इन वस्तुओ को खुले बाजार मे ऊची कीमत पर क्रय कर सकते हे। द्वैध कीमत प्रणाली अपने उद्देश्य मे विफल रही इससे बाजार मे भ्रम पैदा हुआ और कीमत की गतिविधि में खलबली पेदा हो गई।

(3) **खाद्यान्नो के सभरण में वृद्धि**—सरकार खाद्यान्नो की कमी के वर्षो मे खाद्यान्न आयात द्वारा इनके सभरण को बढाने का प्रयास करती है। 1970 80 और 1980 90 के दशक के दौरान केन्द्र सरकार ने हरित क्रांति की सफलता का लाभ उठाया ओर खाद्यान्नो के सकट निरोधक स्टाक (Buffer stockes) कायम किए। एक समय पर तो यह स्टाक बढकर 300 लाख टन हो गया। सरकार का दृढ़ विश्वास था कि यदि वसूली की मात्रा बढा तो इसके फलस्वरूप जमाखोरो तथा सट्टेबाजो का क्रियाओ के प्रभाव को कम करने मे सहायता ि ऐसा होने पर ही कीमतो की वद्धि को रोक है।

(4) तिलहनों और दालों की समस्या हाल ही के वर्षों में—खाद्य तेलों, दालों, चाय और चीनी की कीमत में वृद्धि के कारण सामान्य कीमत-स्तर में वृद्धि हुई। सरकार ने देश में तिलहनों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए मध्यम एवं दीर्घकालीन योजनाएं तैयार की हैं। सरकार ने मूंगफली, सोयाबीन एवं सूर्यमुखी की ऊंची आलम्बन कीमतें (Support prices) भी घोषित की हैं। सोयाबीन और सूर्यमुखी की फसलों को बढ़ाने से देश में खाद्य तेलों के उत्पादन में अधिकतम वृद्धि संभव है। अल्पकाल में सरकार खाद्य-तेलों के आयात का सहारा लेती रही है, चाहे अब यह बात विदित हो गई है कि आयात से यह जरूरी नहीं है कि देशीय उपभोक्ताओं के लिए कीमतें कम हो जाएं।

इस सम्बन्ध में हमें सरकार द्वारा अन्य सभी कृषि पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए किए गए उपायों को भी दृष्टि में रखना होगा।

(5) सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System)—सरकार की नीति का एक महत्वपूर्ण पहलू सार्वजनिक वितरण प्रणाली को मजबूत बनाना था। इस उद्देश्य से सरकार ने सस्ते मूल्य की दुकानों (Fair price shops) का जाल बिछा दिया। इसकी कुल संख्या 4 लाख हो गई और ये 50 करोड़ जनसंख्या को खाद्यान्न और चीनी का वितरण करती है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली से दो लाभ प्राप्त होते हैं—प्रथम, इससे कीमतों को नीचे स्तर पर रखने में सहायता मिलती है, और द्वितीय, ये निम्न आय वर्गों को अपेक्षाकृत कम कीमतों पर अनिवार्य वस्तुएं उपलब्ध कराती थीं। सरकारी वितरण प्रणाली का मुख्य दोष यह है कि सरकार ने इनका प्रयोग एक अन्तरिम उपाय के रूप में किया और जब कभी आन्तरिक उत्पादन में गिरावट आ जाती या कीमतें बढ़ जातीं तो इसका महत्व समझ आता है। इस प्रणाली को और मजबूत बनाया गया है और इसका विस्तार ग्रामीण क्षेत्रों में किया गया है।

(6) निजी व्यापार पर नियन्त्रण (Control of Private Trade)—मूल्यों की रोकथाम और खाद्यान्न की जमाखोरी तथा सट्टेबाजी का अन्त करने के उद्देश्य से सरकार ने अनेक राज्यों में खाद्यान्न व्यापारी संघों से भी सहायता ली जो स्वेच्छा से अपनी क्रियाओं को नियन्त्रित तथा व्यापार आचरण को सुधारने को तत्पर थे। मुनाफे की सीमा निर्धारित करके व्यापारियों की मुनाफाखोरी को रोकने का प्रयत्न किया गया। व्यापारियों तथा उत्पादकों द्वारा बिना घोषणा किए एक निश्चित सीमा से अधिक खाद्यान्न रखने पर रोक लगा दी गई। भारतीय खाद्य निगम (Food Corporation of India) बड़े पैमाने पर अतिरेक-क्षेत्र में क्रय करके न्यूनता-ग्रस्त क्षेत्रों में खाद्यान्न बेच रहा है। सितम्बर 1977 के अन्त में, दालें एवं खाद्य-तेल (भण्डार नियन्त्रण) आदेश जारी किया गया जिसके अधीन अनिवार्य वस्तु नियन्त्रण कानून की धाराओं के अनुसार थोक एवं परचून विक्रेताओं के लिए स्टॉक की अधिकतम सीमा तय की गई। इसका उद्देश्य व्यापारियों में *मुनाफाखोरी को कम करना था।*

(7) अन्य प्रासंगिक उपाय—पिछले दो वर्षों में सरकार ने स्फीति के नियन्त्रण के लिए निम्नलिखित उपाय किए हैं—

(i) चीनी, दालों आदि के आयात के लिए खुले सामान्य लाइसेंस (Open General licence) के अधीन आयात की नीति।

(ii) केन्द्र सरकार के बजट में व्यापार और टैरिफ नीतियों द्वारा यह सुनिश्चित करना कि औद्योगिक पदार्थों की देशीय कीमतें प्रतियोगी बनी रहें।

(iii) बहुत-सी मदों पर उत्पाद शुल्क (Excise duty) में कटौती द्वारा औद्योगिक पुनरुत्थान की रफ्तार को तेज कर औद्योगिक वृद्धि को बढ़ावा देना।

भारत की साधारण जनता के लिए बढ़ती हुई स्फीति पिछले कई वर्षों से सबसे अधिक महत्वपूर्ण समस्या बनी हुई है। स्फीति पर वर्तमान संदर्भ में काबू पाने के लिए एक ओर राजकोषीय घाटे को कम करना होगा और दूसरी ओर मौद्रिक विस्तार पर नियंत्रण करना होगा। इन मूल उपायों के अतिरिक्त, यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि औद्योगिक उत्पादन का पुनरुत्थान एवं विस्तार हो और इस प्रकार खाद्यान्नों एवं अन्य अनिवार्य वस्तुओं जैसे तेल और चीनी के संभरण का प्रबन्ध किया जा सकता है। इन नीतियों के प्रभावी परिपालन पर स्फीति नियंत्रण की सफलता निर्भर करती है।

4. हाल के वर्षों में भारत में थोक एवं उपभोक्ता कीमतों में हुए परिवर्तन का अध्ययन

भारत में थोक कीमत सूचकांक (Wholesale Price Index) केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन द्वारा तैयार किया जाता है और इसमें वे सभी वस्तुएं शामिल की जाती हैं जो महत्वपूर्ण एवं कीमत संवेदनशील (Price sensitive) हैं और जिनका क्रय विक्रय भारत के थोक विक्रय की मण्डियों में होता है। थोक कीमत सूचकांक में मुख्य खाद्य पदार्थ, कच्चे माल, अर्द्धनिर्मित वस्तुएं और निर्मित वस्तुएं शामिल की जाती हैं। [illegible] थोक कीमत सूचकांक को [illegible] 1,000 अंक महत्व

(Weights) प्रदान किए जाते हे जो कि विभिन्न समूहो मे बाट दिए जाते है जिनमे से 800 महत्त्व अक कृषि से उत्पन्न होने वाली वस्तुओ अर्थात् खाद्यान्नो अन्य खाद्य पदार्थो कृषि से प्राप्त खाद्य भिन्न वस्तुआ पेय पदार्थो तम्बाकू ओर तम्बाकू उत्पाद, रूई पटसन ओर अन्य टेक्सटाइल को दिए जाते हे। परिणामत थोक कीमत सूचकाक म सामान्यतया मौसमी परिवतन होते हे जो कि खराफ फसल का कटाइ के इद गिर्द घूमते हे। भारत म थोक कामत सूचकाक का उद्देश्य रुपये की सामान्य क्रयशक्ति को मापना है।

परचून कीमतो (Retail prices) के सूचकाक का प्रयोग रुपये के मूल्य को अन्तिम उपभोक्ता वस्तुओ (Final con sumption goods) के सदर्भ मे मापना हे जो कि देश की परचून मण्डियो मे बेची या खरादी जाती ह। परचून कामत सूचकाक का उद्देश्य उपभोक्ताओ के सदभ म रुपये की क्रयशक्ति को मापना होता हे। इस सूचकाक के निमाण मे वास्तविक कठिनाई यह हे कि उन्हीं वस्तुओ की कीमत ओर बहुत लम्बे समय के लिए उपलब्ध न हो। इस प्रकार भारत सरकार तान प्रकार के उपभोक्ता कीमत सूचकाक (Con sumer Price Index) तैयार करता ह अथात् ओद्योगिक श्रमिको के लिए, नगराय गर कामगार कमचारयो (Urban non manual employees) के लिए ओर कृषि श्रमिको के लिए। पहले दो प्रकार के उपभोक्ता सूचकाक देश के महत्त्वपूर्ण नगरो के लिए ओर समग्र देश के लिए तैयार किए जाते ह ओर तीसरा अथात् कृषि श्रमिका का सूचकाक देश के सभा राज्यो ओर समग्र देश के लिए तैयार किया जाता ह इसम केवल वे वस्तुए ओर सवाए शामिल का जाता ह जिनका सामान्यत विशेष समूहो द्वारा उपभोग किया जाता ह ओर इन वस्तुओ तथा सेवाओं का कामते उन क्षेत्रो म इकट्ठा का जाता ह जिनम श्रमिक रहते ह ओर जिन दुकानो से व अकसर वस्तुए खरादते हे। उपभोक्ता कामत सूचकाक का उद्देश्य नगरीय तथा ग्रामाण क्षेत्रा म रहने वाले श्रामक वर्गो के लिए रुपये के मूल्य मे उस पारवतन को मापना हे जो कि उपभोक्ता कामतो मे परिवतन के कारण होता ह। इसा प्रकार ओद्योगिक श्रमिको एव नगरीय गर कामगार कमचारियो के उपभोक्ता कामत सूचकाको का भा बहुत व्यावहारिक महत्त्व हे क्योंकि वे श्रम वर्गो के निवाह लागत (Cost of living) के परिवतन को व्यक्त करते हे। देश मे मजदूरी का स्तर या महगाइ भत्ते को निवाह लागत सूचकाक से जोड दिया जाता हे और जब उपभोक्ता सूचकाको म एक निश्चित मात्रा म अका का वृद्धि होता हे तो श्रमिको का मजदूरी या महगाइ भत्ते म भा एक निश्चित वृद्धि का जाती ...

ओद्योगिक श्रमिको ओर गैर कामगार कमचारियो के उपभोक्ता सूचकाक का आधार वर्ष 1960 है जबकि कृषि श्रमिको के उपभोक्ता सूचकाक का आधार वष 1960 61 हे। देश मे तेजी से बदलते हुए उपभोग ढाचे को ध्यान मे रखते हुए भारत सरकार ने ओद्योगिक श्रमिको के लिए एक नया उपभोक्ता सूचकाक जारा किया ह जिसका आधार वष 1982 हे ओर इस प्रकार 1960 वाले पुराने आधार वष को बदल दिया गया था किन्तु नया उपभोक्ता कीमत सूचकाक अक्टूबर 1988 से उपलब्ध हे ओर उस महाने से पुराने सूचकाक को बन्द कर दिया गया। तुलना करने के लिए नये सूचकाक को 4 93 से गुणा करके पुराने उपभोक्ता सूचकाक के साथ देखा जा सकता हे।

थोक कीमत सूचकाक और उपभोक्ता कीमत सूचकाक की तुलना

थोक कामत सूचकाक ओर उपभोक्ता कामत सूचकाक का ठीक प्रकार से तुलना करना सभव नहीं क्योंकि ये अलग अलग वस्तुओ ओर भिन्न भिन्न महत्व (Weights) के आधार पर तयार किये जाते हे ओर इसके अतिरिक्त इनके आधार वष भा अलग अलग ह। अत हम थोक ओर परचून कामतो मे सापेक्ष मासिक एव वार्षिक परिवतनो की तुलना कर सकते हे।

थोक कामत सूचकाक ओर उपभोक्ता कामत सूचकाक दोनो एक मासमी प्रतिरूप के अनुसार परिवर्तित होते ह। मोटे तौर पर थोक कामतो म अप्रैल से अक्तूबर के बाच बढने का प्रवृत्ति पाया जाता ह। ओर नवम्बर से माच के अन्त तक कामतो के गिरने का प्रवृत्ति रहता ह। उपभोक्ता कामत सूचकाक भी इसा लोक का अनुसरण करते ह। उदाहरणार्थ अप्रैल से अक्तूबर तक उपभोक्ता कामतो मे ऊपर का ओर चढने का प्रवृत्ति होता ह नवम्बर ओर दिसम्बर मे वे गिरने लगता ह। यह प्रवृत्ति साल दर साल पाया जाता हे परन्तु कुछ महानो अथवा वर्षो म कुछ भिन्नता हो सकता ह क्योंकि सरकार कुछ विशिष्ट वस्तुओ के सभरण एव कामतो पर नियन्त्रण कर सकता ह।

मौसमी उच्चावचन के अतिरिक्त थोक कामत सूचकाक पर राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओ का भा प्रभाव पडता ह। हाल ही के वर्षो मे थोक कामत सूचकाक को प्रभावित करने वाले कारणतत्त्वो म उल्लेखनीय ह आयातित तेल एव पेट्रोलियम उत्पाद की कामत में वृद्धि, अनिवार्य कृषि वस्तुओ जैसे खाद्यान्नो दालो गन्ना और तिलहन के उत्पादन ... सरकार द्वारा ... पेट्रोलियम

तालिका 7 कीमत सूचकाको में तुलनात्मक परिवर्तन

प्रतिशत

		उपभोक्ता कीमत सूचकाक		
	थोक कीमत सूचकांक	औद्योगिक श्रमिकों के लिए	गैर कामगार कर्मचारियों के लिए	कृषि श्रमिकों के लिए
	1981 82=100	1982–100	1984 85=100	1986 87–100
1990–91	10 1	11 6	11.0	7.6
1991–92	13 6	13.5	13 7	19.3
1992–93	10 1	9 6	10 4	12.3
1993–94	8 4	7.5	6 9	3.5
1994 95	10 9	9 9	8 3	11.2
1995–96	7.8	9 7	9 9	11 1
1996–97	6 4	8 9	8 2	7 2
1997 98	4 8	10 0	10 2	10.5

स्रोत भारत सरकार, आर्थिक समीक्षा (1997 98)

उर्वरको, बिजली सीमेंट आदि की प्रशासित कीमतो (Ai ministered Prices) मे वृद्धि, भारी बजट घाटे और परिणाम जनता के पास मुद्रा सभरण (Money supply) मे वृ लगातार बढते हुए अप्रत्यक्ष कर और उनका वस्तुओ व कीमतो को बढाने के रूप मे प्रभाव।

तालिका 7 मे दिए गए आकडे विभिन्न वर्षों मे थो और उपभोक्ता कीमत सूचकाको मे परिवर्तन को व्यक्त कर हैं। कई वर्षों मे उपभोक्ता कीमत सूचकाको की वद्धि द थोक कीमत सूचकाको की वृद्धि दर से अधिक रही है जाहिर है कि 1997 98 मे जहा उपभोक्ता कीमत सूचका मे 10 प्रतिशत की दर से वद्धि हुई थोक कीमत सूचका की वृद्धि दर केवल 4 8 प्रतिशत थी। अत इसका आ जनता के जीवन स्तर पर दुष्प्रभाव पडा परन्तु व्यापारियो ने अधिक मुनाफा कमाया।

□□□

25

कृषि, उत्पादिता प्रवृत्तियाँ और फसल प्रतिरूप (AGRICULTURE, PRODUCTIVITY TRENDS AND CROP PATTERN)

1. राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कृषि का स्थान

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ है। पिछले दो दशको से अधिक अवधि मे औद्योगीकरण के सगठित प्रयास के बावजूद कृषि का गौरवपूर्ण स्थान बना हुआ है। देश का सबसे बडा उद्योग होने के कारण, कृषि देश की 70 प्रतिशत से अधिक जनता की जीविका का स्रोत है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कृषि के महत्त्व का मूल्याकन करने के लिए विभिन्न शीर्षको के अन्तर्गत इसके कार्यभाग का विवेचन करना उचित होगा।

(i) राष्ट्रीय आय मे कृषि का हिस्सा–राष्ट्रीय आय समिति तथा केन्द्रीय साख्यिकी सगठन (Central Statistical Organisation) के आकडो से स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय आय मे कृषि तथा सम्बद्ध व्यवसायो [यथा पशुपालन, वानिकी (Forestry) इत्यादि] का हिस्सा 1960-61 मे 52 प्रतिशत था परन्तु 1993-94 में यह कम होकर केवल 32 प्रतिशत हो गया। यहा दो बातो पर बल देना आवश्यक है–प्रथम, राष्ट्रीय आय मे कृषि तथा सम्बद्ध उद्योगो का हिस्सा काफी अधिक है और द्वितीय, राष्ट्रीय आय मे कृषि का हिस्सा धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। उल्लेखनीय बात यह है कि राष्ट्रीय आय सम्बन्धी अनुमानो से न केवल कृषि की प्रधानता का निर्देश होता है, अपितु उसमें क्रमिक गिरावट का सकेत भी मिलता है। ऐसा होना भी चाहिए।

अन्य देशो की तुलना मे भारत की राष्ट्रीय आय में कृषि के अनुपात की स्थिति के अध्ययन से पता चलता है कि भारत की राष्ट्रीय आय मे कृषि का भाग 1990-91 में 32 प्रतिशत था, जबकि इग्लैण्ड मे यह 2 प्रतिशत, स राज्य अमेरिका में 3 प्रतिशत, कनाडा मे 4 प्रतिशत और आस्ट्रेलिया मे 5 प्रतिशत था। जितना ही कोई देश समुन्नत है, कृषि का हिस्सा उतना ही कम है। भारत, जो उन्नत अर्थव्यवस्था की स्थिति तक नहीं पहुचा है, अभी कृषि प्रधान है।

(ii) भारतीय कृषि और देश मे रोजगार का ढाचा–कृषि की इतनी अधिक प्रधानता है कि भारतीय कार्यकारी जनसख्या (Working population) का बहुत बडा भाग रोजगार के लिए इस पर आश्रित है। भारत की जनगणना के आकडो के अनुसार, 67 से 69 प्रतिशत कार्यकारी जनसख्या कृषि पर रोजगार के लिए निर्भर है। परन्तु सयुक्त राज्य और सयुक्त राज्य अमेरिका मे केवल 2-3 प्रतिशत कार्यकारी जनसख्या कृषि मे लगी हुई थी, फ्रास मे यह अनुपात 7 प्रतिशत और आस्ट्रेलिया में 6 प्रतिशत था। केवल पिछडे हुए और अल्पविकसित देशो मे कृषि मे कार्यकारी जनसख्या का अनुपात काफी ऊचा होता है। उदाहरणार्थ, यह मिश्र मे 42 प्रतिशत, बर्मा में 50 प्रतिशत, इन्डोनेशिया मे 52 प्रतिशत और चीन मे 72 प्रतिशत है।

(iii) औद्योगिक विकास के लिए कृषि का महत्त्व–भारत मे कृषि के महत्व का कारण यह है कि इससे हमारे प्रमुख उद्योगो को कच्चा माल मिलता है। सूती और पटसन वस्त्र-उद्योग, चीनी, वनस्पति तथा बागान उद्योग (Plantation), ये सब सीधे कृषि पर निर्भर हैं और भी ऐसे अनेक उद्योग हैं जो कृषि पर अप्रत्यक्ष रूप में निर्भर हैं। हाथ करघा बुनाई, तेल निकालना, चावल कूटना आदि बहुत से लघु और कुटीर उद्योगो को भी कृषि से कच्चा माल मिलता है। विनिर्माण-क्षेत्र में उत्पन्न आय का 50 प्रतिशत इस क्षेत्र से प्राप्त होता है।

किन्तु इधर कुछ वर्षों से उद्योगो के लिए कृषि का महत्त्व कम होता जा रहा है क्योंकि अनेक ऐसे उद्योग विकसित हो गए हैं जो कृषि पर निर्भर नहीं है। पचवर्षीय योजना के आधीन लौह और इस्पात उद्योग, रसायन उद्योग, मशीनी-औजार और अन्य इजीनियरी उद्योग तथा विमान-निर्माण आदि आरम्भ किए गए हैं जो कृषि पर निर्भर पारम्परिक उद्योगो (Traditional industries) के मुकाबले अधिक महत्त्वपूर्ण माने जाने लगे हैं। इसके बावजूद कृषि द्वारा बहुत से उद्योगो अर्थात् चीनी, चाय, सूती वस्त्र और पटसन, वनस्पति तेल, खाद्य-पदार्थों, साबुन और अन्य कृषि पर आधारित उद्योगो के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराया जाता है।

(iv) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र मे कृषि का

महत्त्व—भारतीय कृषि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र मे भी महत्त्वपूर्ण है। भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुओ मे मुख्य कृषि वस्तुएँ ही है—चाय तम्बाकू तेल निकालने के बीज गर्म मसाले आदि। स्थूल रूप मे कुल निर्यात मे कृषि वस्तुओ का अनुपात लगभग 50 प्रतिशत है और कृषि से बनी वस्तुओ (यथा निर्मित पटसन और कपडा) का अनुपात लगभग 20 प्रतिशत है। इस प्रकार भारत के निर्यात मे कृषि और उससे सम्बन्धित वस्तुओ का कुल भाग लगभग 70 प्रतिशत है। पिछले कुछ वर्षों म भारत के निर्यात की मात्रा और मूल्य दोनो म ही वृद्धि हुई है। यह वृद्धि विकास के लिए अत्यन्त महत्त्वपूण है क्योकि इससे मशीनो और कच्चे माल के आयात की अदायगी मे सहायता मिलती है।

(v) आर्थिक आयोजन मे कृषि क्षेत्र का कार्यभाग—राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मे कृषि के महत्त्व के और भी अनेक कारण है। कृषि भारत की परिवहन-व्यवस्था का मुख्य अवलम्ब है क्योकि रेलवे और सडक मार्ग का अधिकाश व्यापार कृषि वस्तुओ को लाना ले जाना है। अन्तर्देशीय व्यापार की वस्तुएँ भी मुख्यत कृषि वस्तुएँ ही है। इसके अतिरिक्त अच्छी फसल के कारण किसानो की क्रय शक्ति बढ जाती है जिससे उद्योग निर्मित वस्तुओ की माग और कीमते बढ जाती हैं। परिणामत उद्योगो की प्रगति होने लगती है। इस प्रकार यदि फसल बुरी हुई तो व्यापार मे मन्दी आ जाती है। अन्त मे सरकार के विशेषतया राजकीय सरकारो के वित्त साधन बहुत कुछ कृषि की सम्पन्नता पर निर्भर करते है।

अत यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ है और कृषि की सम्पन्नता पर *भारतीय अर्थव्यवस्था की समृद्धि निर्भर करती है। इसके* साथ यह भी सत्य है कि कृषि म प्रति व्यक्ति उत्पादिता उद्योग की तुलना में कम है। परिणामत अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओ के अनेक विद्वानो का मत है कि भारतीय अर्थव्यवस्था म कृषि की प्रधानता ही भारत की प्रति व्यक्ति आय के बहुत कम होने का कारण है। उनके मतानुसार जब तक भारतीय अर्थव्यवस्था म कृषि की प्रधानता बनी रहेगी तब तक प्रति व्यक्ति आय वाछनीय स्तर तक नही उठ पाएगा।

सामान्य आर्थिक विकास के लिए कृषि विकास अनिवार्य

भारत म कृषि के महत्त्व का एक कारण यह भी है कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की प्रगति के लिए कृषि का विकास एक अनिवार्य शर्त है। रगनर नर्क्स (Ragnar Nurkse) का कहना है कि कृषि पर आधारित अतिरिक्त जनसख्या को वहाँ से हटाकर नए आरम्भ किए गए उद्योगो मे लगाया जाना चाहिए। नर्क्स का मत यह है कि इससे एक ओर कृषि उत्पादिता (Agricultural productivity) मे वृद्धि होगी और दूसरी ओर अतिरिक्त श्रम-शक्ति का उपयोग करके नई औद्योगिक इकाइयो (Industrial units) की स्थापना की जा सकेगी।

आजकल नर्क्स सिद्धान्त पर आलोचना के रूप मे यह कहा गया है कि औद्योगीकरण का अर्थ कृषि क्षेत्र से श्रमिको को हटाकर उद्योगो मे लगा देना नहीं है। औद्योगीकरण के लिए विशेष प्रकार की अभिप्रेरणाएँ और मूल्य (Motivations and values) आवश्यक हैं जिनका भारत जैसी कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था मे विकास नहीं हो सकता। उक्त प्रेरणाओ और मूल्यो के विकास के लिए पहले कृषि मे ही परिवर्तन किया जाना अनिवार्य है। दूसरे विपण्य अतिरेक (Marketable surplus) मे काफी वृद्धि करनी पडेगी ताकि बढती हुई शहरी आबादी की आवश्यकताओ को पूरा किया जा सके तथा उद्योगो को कच्चा माल उपलब्ध कराया जा सके। तीसरे नए उद्योग चाहे कितनी ही तीव्र गति से क्यो न विकसित हो भारत की लगातार बढ रही आबादी और श्रम शक्ति को रोजगार दिलाने मे पर्याप्त नहीं होगे। अत अतिरिक्त रोजगार नए उद्योगो मे नहीं अपितु स्वय कृषि मे ही अथवा ग्रामीण उद्योगो मे खोजना होगा। परिणामत कृषि की उन्नति आवश्यक होगी।

दूसरे शब्दो मे सामान्य आर्थिक प्रगति के लिए या तो कृषि का विकास पहले करना होगा या फिर साथ साथ। भारतीय आयोजको को दूसरी और तीसरी योजना में यह कटु अनुभव प्राप्त हुआ कि कृषि क्षेत्र से वस्तुओ की अपेक्षित मात्रा मे प्राप्ति न हो सकने के कारण कैसे सम्पूर्ण आयोजन प्रक्रिया (Planning process) ही अस्त व्यस्त *होने लगती है।*

यह उल्लेखनीय है कि भारत मे विकास की आरम्भिक *अवस्था म कृषि विकास पर अधिक बल दिया जाना* चाहिए। इसके कई उदाहरण हैं। सर्वप्रथम कृषि क्षेत्र में पूजी उत्पाद अनुपात *अधिक* उचा नहीं है परिणामत थोडी सी पूजी से लगातार भारी कृषि उत्पादन किया जा *सकता है। अत कम से कम आरम्भिक अवस्था में आय* मे तीव्र वृद्धि करने के उद्देश्य से कृषि मे अपेक्षाकृत अधिक *विनियोग करना होगा।* दूसरे देश मे बचत और विनियोजन की गति अधिक हो सकती है जबकि कृषि मे बचत और विनियोग की गति अधिक हो। तीसरे कृषि विकास के लिए विदेशी मुद्रा इतनी आवश्यक नहीं है जितनी कि औद्योगिक विकास के लिए। अत भारत को जिसे विदेशी मुद्रा के सकट का सामना करना पड रहा है कृषि विकास पर बल देना चाहिए।

इस विवरण से दो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं। (क) कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है और (ख) देश के सामान्य आर्थिक विकास के लिए कृषि का विकास अनिवार्य है।

2. 1950-51 के पश्चात् कृषि-विकास

चाहे स्वतन्त्रता-पूर्व काल के लिए कृषि सम्बन्धी आँकडे बहुत ही अविश्वसनीय और दोषपूर्ण हैं, फिर भी इनसे यह सकेत मिलता है कि 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे कृषि-उत्पादन में, जनसख्या की तुलना में नाममात्र वृद्धि हुई। उदाहरणार्थ, श्री जे पी भट्टाचार्य के अनुसार 1901 और 1946 के बीच जनसख्या मे 38 प्रतिशत की वृद्धि हुई किन्तु कृषि आधीन भूमि के क्षेत्रफल मे केवल 18 प्रतिशत की वृद्धि हुई। सभी फसलो की औसत उत्पादिता (Average productivity) मे 13 प्रतिशत की वृद्धि हुई और खाद्य-फसलो मे केवल 1 प्रतिशत की वृद्धि हुई। अत जनसख्या की वृद्धि खाद्य-उत्पादन की वृद्धि से काफी हद तक अधिक रही। उस समय यह विश्वास किया जाता था कि भूमि की उर्वरता मे गिरावट हो रही है और कृषि व्यवहारो (Agricultural practices) की कुशलता गिर रही है। इस विश्वास का प्रतिबिम्ब भारतीय कृषि अनुसधान परिषद और अधिक अन्न उगाओ जाँच समिति के निष्कर्षो में मिलता है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् कृषि-विकास

1950-51 के पश्चात् आर्थिक आयोजन आरम्भ करने के पश्चात् और कृषि विकास पर विशेष बल देने (खासकर 1962 के बाद) के कारण अवरुद्ध कृषि की प्रवृत्ति पलट दी गई।

(i) कृषि आधीन क्षेत्रफल मे लगातार वृद्धि हुई,

(ii) प्रति हैक्टेयर उत्पादन (अर्थात् कृषि उत्पादिता) मे भी लगातार वृद्धि हुई, और

(iii) क्षेत्रफल मे वृद्धि के साथ-साथ प्रति हैक्टेयर उत्पादन मे वृद्धि के परिणामस्वरूप, सभी फसलो के कुल उत्पादन मे वृद्धि की प्रवृत्ति पाई गई।

इस सम्बन्ध में दो बातो का ध्यान रखना होगा। पहली, भारत मे कृषि उत्पादन पर प्रकृति द्वारा निर्धारित वर्षा एव मौसम का भारी प्रभाव पडता है। कृषि-आधीन क्षेत्र, औसत प्रति हैक्टेयर उत्पादन और कुल उत्पादन मे साल-दर-साल उच्चावचन होता रहता है। मौसम-सम्बन्धी प्रभाव को अलग करना बहुत कठिन है जिससे कृषि-विकास पर केवल कृषि-आदानों (Agricultural inputs) और तकनालोजी के प्रभाव को आका जा सके। यह बात विशेषकर सरकारी दावो के सदर्भ मे महत्त्व रखती है जिनके अनुसार जीव रसायन तकनालाजी (Bio chemical technology) की कामयाबी को साधारणतया हरित क्रान्ति की सज्ञा दे दी जाती है।

तालिका 1 स्वतन्त्रता के पश्चात् मुख्य फसलो मे क्षेत्रफल मे वृद्धि

	लाख हैक्टेयर			वार्षिक वृद्धि-दर (%)	
	1949-50	1964 65	1993-94	1949-50 से 1964 65	1964-65 से 1993-94
1 सभी खाद्यान्न	990	1,180	1,220	1 4	0 1
जिसमें					
चावल	300	360	420	1 3	0 5
गेहू	100	130	250	1 7	2 2
मोटे अनाज	390	440	330	0 9	1 1
दालें	200	240	220	1 2	-0 3
2 सभी खाद्य भिन्न फसलें	230	330	400	2 5	0 7
जिसमें					
तिलहन	100	115	270	2 6	0 3
गन्ना	15	26	34	2 5	-0 4
रूई	49	84	73	3 3	1 5
आलू	2	4	11	4 4	3 9
3 सभी फसलें	1,220	1,510	1,620	1 6	0.3

स्रोत आर्थिक समीक्षा (1994-95)

दूसरे, जिस अवधि पर हम विचार कर रहे हैं उसे बड़ी सुविधा से दो अवधियों में विभाजित किया जा सकता है अर्थात् हरित-क्रान्ति से पूर्व काल (1960-65) और हरित-क्रान्ति के बाद का काल (1965-1995)।

1. 1949-50 के पश्चात् क्षेत्रफल की वृद्धि—तालिका 1 में 1949-50 के पश्चात् सभी फसलों के आधीन क्षेत्रफल में वृद्धि दी गई है। 1950-65 की हरित-क्रान्ति से पूर्व की अवधि के दौरान अतिरिक्त भूमि काश्त में लाई गई और सिंचाई सुविधाओं के विस्तार द्वारा बंजर भूमियों में भी खेती की जाने लगी। 1950-65 के दौरान सभी फसलों के आधीन क्षेत्रफल में महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई और क्षेत्रफल की वार्षिक वृद्धि-दर सभी फसलों में 1 6%, खाद्यान्नों में 1 4 प्रतिशत और खाद्य-भिन्न फसलों (Non food crops) में 2 5 प्रतिशत रही।

तालिका 1 से जाहिर है कि 1964 65 से पूर्व सभी फसलों में, बिना किसी अपवाद के, कृषि-आधीन क्षेत्रफल की वृद्धि हुई। इसका अभिप्राय यह कि खेती को सीमान्त एवं बंजर भूमियों में भी बढ़ाया गया और कुछ परिस्थितियों में तो इसे *व्यर्थ-भूमियों (Waste lands) और वन आधीन* भूमियों में भी बढ़ाया गया। आलू की खेती में इस अवधि में सबसे अधिक क्षेत्र वृद्धि (Area growth) हुई अर्थात् 4 4 प्रतिशत प्रति वर्ष की और इसके बाद नम्बर था गन्ने का—3 3 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि। खाद्यानों में, गेहूँ के आधीन क्षेत्रफल में 1 7 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि रिकार्ड की गई।

1967-68 के पश्चात् कृषि क्षेत्र में विस्तार की गुंजाइश धीरे धीरे घटती गई। हरित क्रांति के बाद के काल (1968 94) में, क्षेत्रफल में वार्षिक वृद्धि दर काफी कम थी—सभी फसलों में 0 3%, खाद्यान्नों में 0 1% और खाद्य-भिन्न फसलों में 0 7%।

1968-94 की अवधि के दौरान, केवल चावल की *फसल के आधीन क्षेत्रफल में 11 प्रतिशत की वृद्धि हुई* जबकि गेहूँ के आधीन क्षेत्रफल में 77 प्रतिशत वृद्धि हुई। परिणामत चावल के आधीन क्षेत्रफल की वार्षिक वृद्धि दर केवल 0 5 प्रतिशत थी जबकि गेहूँ के आधीन क्षेत्रफल में यह 2 2 प्रतिशत थी। गेहूँ के आधीन क्षेत्रफल में वृद्धि स्पष्टत जीव-रसायन तकनालाजी के कृषि में लागू करने का परिणाम थी परन्तु यह वृद्धि मोटे अनाजों और दालों की कीमत पर थी। इन दो अवधियों में फसलों के ढाँचे में परिवर्तन होता रहा है। कुल कृषि-आधीन क्षेत्रफल में गेहूँ का भाग 8 5 प्रतिशत से बढ़कर 13 7 प्रतिशत हो गया। सिंचाई-आधीन क्षेत्रफल में गेहूँ का भाग 15 प्रतिशत से बढ़कर 38 प्रतिशत हो गया।

खाद्य-भिन्न फसलों में आलू के आधीन क्षेत्रफल में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई (इस अवधि में 175 प्रतिशत की वृद्धि और वार्षिक वृद्धि-दर 3 9 प्रतिशत) और बागान-फसलों *(Plantation crops) में यह वृद्धि 67 प्रतिशत थी।*

2. प्रति हैक्टेयर उत्पादिता में वृद्धि—मोटे तौर पर स्वतन्त्रतापूर्व काल का मुख्य लक्षण सामान्य रूप में कृषि-उत्पादिता में गिरावट और विशेषकर खाद्यान्न-उत्पादिता में कमी था और यह प्रवृत्ति स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद के पहले तीन वर्षों में एक सीमा तक बनी रही जिसे 1950-51 में आयोजन द्वारा पलटा गया। सिंचाई में विस्तार और कृषि की सघन प्रणाली के उपयोग और साथ ही आधुनिक कृषि व्यवहारों जिसमें संकर बीज (Hybrid seeds) भी शामिल

तालिका 2 स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् मुख्य फसलों की उत्पादिता में वृद्धि

	प्रति हैक्टेयर उत्पादन			वार्षिक वृद्धि-दर (%)	
	1949 50	1964 65	1993 94	1949-50 से 1964-65	1964-65 से 1993-94
1 सभी खाद्यान्न	5 5	7 6	14 9	1 4	2 1
चावल (क्विन्टल)	7 1	10 8	16 8	2 1	2 1
गेहूँ (क्विन्टल)	6 6	9 1	23 7	1 3	3 6
मोटे अनाज (क्विन्टल)	4 3	5 1	10 0	1 3	2 3
दालें (क्विन्टल)	4 0	52	5 8	0 2	0 5
2 सभी खाद्य भिन्न फसलें जिसमें				0 9	1 6
तिलहन (क्विन्टल)	5 2	5 6	8 8	0 1	1 6
गन्ना (क्विन्टल)	34	47	67	1 0	1 2
रूई (किलोग्राम)	95	122	248	2 0	2 4
आलू (क्विन्टल)	66	84	160	1 6	3 0

थे, द्वारा सभी फसलों के प्रति हैक्टेयर उत्पादन मे धीरे-धीरे और लगातार वृद्धि प्राप्त की गई। तालिका 2 मे प्रति हैक्टेयर उत्पादन में वृद्धि सम्बन्धी आँकडे दिए गए हैं।

चूकि विभिन्न फसलो की उत्पादिता के आँकडो को "खाद्य-भिन्न फसलो" मे एक ही रूप में एकत्र करना व्यवहार्य नहीं, इसलिए कुछ चुनी हुई फसलो के लिए प्रति हैक्टेयर उत्पादिता के आँकडे दिए गए हैं। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, मौनसून और मौसम की परिस्थितियो का प्रति हैक्टेयर औसत उत्पादिता पर प्रभाव पडता है और परिणामत प्रति हैक्टेयर उत्पादिता मे उच्चावचन न केवल उन्नत कृषि-तकनीको के प्रभाव को व्यक्त करते हैं परन्तु प्राकृतिक कारणातत्वो के प्रभाव को भी जाहिर करते हैं।

हरित क्रांति से पूर्व की अवधि के दौरान चावल की उत्पादिता मे काफी प्रभावी वृद्धि-दरे रिकार्ड की गई-1949-50 मे 7 क्विन्टल प्रति हैक्टेयर से 1964-65 मे लगभग 11 क्विन्टल तक। वार्षिक वृद्धि-दर 2 1 प्रतिशत थी। चावल की तुलना मे गेहूँ की उत्पादिता मे वृद्धि-दर इस अवधि के दौरान मर्यादिति थी। उदाहरणार्थ गेहूँ के बारे में प्रति हैक्टेयर उत्पादिता 1949-50 मे 6 6 क्विन्टल से बढकर 1964-65 मे 9 1 क्विन्टल हो गई। खाद्य-भिन्न फसलो में, रूई एव गन्ने की उत्पादिता मे मर्यादित वृद्धि रिकार्ड की गई।

दूसरी अवधि के दौरान, गेहूँ मे सबसे अधिक आश्चर्यजनक वृद्धि-दर (3 6 प्रतिशत) और आलू मे 3 0 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि दर प्राप्त की गई। गेहूँ का प्रति हैक्टेयर उत्पादन अब 23 7 क्विन्टल है जबकि चावल का इसकी तुलना में केवल 18 8 क्विन्टल है। परन्तु चावल में भी इस अवधि के दौरान 2 1 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त की गई। अन्य सभी फसलो में प्रति हैक्टेयर उत्पादिता मे वृद्धि या तो मयादित थी, या बहुत ही कम थी। उदाहरणार्थ, मोटे अनाजो की उत्पादिता में 1 2 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि हुई। दूसरी ओर दालो की वृद्धि दर 0 5 प्रतिशत और तिलहनो की औसत वार्षिक वृद्धि दर केवल 1 7 प्रतिशत रिकार्ड की गई। इससे साफ जाहिर है कि नयी जीव-रसायन तकनालाजी गेहूँ के उत्पादन के लिए विशेष रूप मे उचित थी किन्तु यह अन्य फसलो के लिए प्रभावी न बन पाई।

तालिका 3 बडे रुचिकर ढग से कुछ तथ्य प्रस्तुत करती है। इसमे (क) भारत की मुख्य खाद्य एव खाद्य-भिन्न फसलो (Non food crops) की वास्तविक उत्पादिता दी गई है, और तुलना के उद्देश्य से (ख) प्रत्येक विशिष्ट फसल के लिए विश्व के सबसे बडे उत्पादक देश की वास्तविक उत्पादिता दी गई है और (ग) विश्व मे प्रति हैक्टेयर अधिकतम उत्पादिता दी गइ है।

चावल और गेहूँ दोनो के सदर्भ मे विश्व मे सबसे अधिक उत्पादिता 75 क्विन्टल प्रति हैक्टेयर क्रमश उत्तर कोरिया और आयरलैण्ड मे रिकार्ड की गई। चीन जो विश्व का सबसे बडा चावल और गेहूँ का उत्पादक है की औसत उत्पादिता क्रमश 55 क्विन्टल है। इसके विरुद्ध भारत की चावल और गेहूँ की वार्षिक औसत उत्पादिता तुलना को

तालिका 3 1993-94 मे प्रति हैक्टेयर वास्तविक उत्पादिता-क्विन्टलो मे

	भारत के अधिक उपजाऊ किस्म के बीजो की क्षमता	भारत में वास्तविक उत्पादिता	विश्व के सबसे बड़े उत्पादक की उत्पादिता	देश	विश्व की अधिकतम उत्पादिता	देश
खाद्य फसलें						
चावल	40 से 58	18 8	55 1	चीन	75 0	उत्तर कोरिया
गेहूँ	60 से 68	23 7	31.2	चीन	74 5	आयरलैण्ड
ज्वार	30 से 42	8 9	37 3	यू एस ए.	55 4	स्पेन
मक्की	60 से 80	15 8	68 4	यू एस ए.	85 0	ग्रीस
खाद्य भिन्न फसलें						
आलू	238 से 309	160	100	सोवियत सघ	443 2	बैल्जियम लग्जमबर्ग
मूगफली	20 से 30	9 3	9 2	भारत	64 5	इजराईल
तोरिया	15 से 20	8.6	12 1	चीन	35 7	नीदरलैण्ड
सोयाबीन	15 से 25	10 2	22 5	यू एस ए	31 9	इटली
पटसन	25 से 30	19 0	18 0	भारत	35 6	भूटान

स्रोत CMIE *Basic Statistics Relating to the Indian Economy* Vol I (1992) और आर्थिक समीक्षा (1994 95)

दृष्टि से बहुत कम है–चावल में 17 5 क्विन्टल और गेहूँ में केवल 22 7 क्विन्टल। चावल भारत की मुख्य फसल है और इसकी औसत उत्पादिता उत्तर कोरिया की तुलना में एक चौथाई (23%) और चीन की तुलना में एक तिहाई (31%) है। गेहूँ और आलू–ये दोनों फसलें जिनमें पिछले 30 वर्षों में अधिकतम वृद्धि रिकार्ड की गई–में भी भारत में औसत उत्पादिता इन फसलों की अधिकतम उत्पादिता की तुलना में बहुत कम है। आलू की भारत में प्रति हैक्टेयर औसत उत्पादिता 162 क्विन्टल है जबकि इसकी तुलना में बेल्जियम-लग्जमबर्ग में 443 क्विन्टल औसत उत्पादिता रिकार्ड की गई।

यदि हम भारत की प्रत्येक फसल की औसत उत्पादिता की तुलना विश्व की अधिकतम उत्पादिता के साथ करें तो यह ज्ञात होता है कि भारत में उत्पादिता विश्व के अधिकतम के 14 से 20 प्रतिशत की अभिसीमा में है। इससे जाहिर है कि वार्षिक उत्पादिता बढ़ाने की बहुत अधिक गुंजाइश है और यह भारत के लिए एक चुनौती भी है।

तालिका 2 और 3 से यह स्पष्ट होता है कि स्वतन्त्रता उपरान्त काल में भारत में विभिन्न फसलों की औसत उत्पादिता में महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है परन्तु अन्य देशों ने इससे भी अधिक वृद्धि का प्रमाण दिया है। उदाहरणार्थ चीन में 1965 और 1988 के दौरान चावल की प्रति हैक्टेयर उपज में 94 प्रतिशत वृद्धि रिकार्ड की गई जबकि भारत में यह वृद्धि केवल 50 प्रतिशत थी और इसी प्रकार गेहूँ की उत्पादिता में इस अवधि में चीन में 233 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि भारत में यह 150 प्रतिशत थी। इसी तरह रूई की उत्पादिता में चीन की 250 प्रतिशत की वृद्धि के विरुद्ध भारत में उत्पादिता में केवल 63 प्रतिशत की वृद्धि हुई। अतः यह बात साफ हो जाती है कि हरित क्रान्ति और आधुनिक तकनीकी अपनाने के परिणामस्वरूप केवल भारत में ही उत्पादिता में वृद्धि नहीं हुई बल्कि यह वृद्धि भारत में अन्य विकासशील देशों जैसे चीन की तुलना में बहुत कम थी।

तालिका 3 में भारत के अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों की विभिन्न फसलों में उत्पादिता क्षमता (Productivity Potential) दी गई है। जाहिर है कि वास्तविक उत्पादिता और विभिन्न फसलों में संभावित उत्पादिता क्षमता में अन्तर बहुत अधिक है। यदि भारत चीन द्वारा प्राप्त औसत उत्पादिता तक ही पहुंच जाए तो भारत प्रतिवर्ष 2 500 से 3 500 लाख टन खाद्यान्न उत्पन्न कर सकता है जबकि 1994 95 में इसका उत्पादन 1 850 लाख टन था। यह भारत के लिए एक अवसर भी है और चुनौती भी।

1949 50 के पश्चात् उत्पादन की वृद्धि दरें–किसी भी कृषि वस्तु का उत्पादन क्षेत्रफल एवं प्रति हैक्टेयर उत्पादन के संयुक्त प्रभाव को व्यक्त करता है।

तालिका 4 स्वतन्त्रता के पश्चात् मुख्य फसलों के उत्पादन की वृद्धि

	उत्पादन (लाख टन)			उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर (%)	
	1949 50	1964 65	1994 95	1949 50 से 1964 65	1967 68 से 1990 91
1 सभी खाद्यान्न	550	890	1 850	3 2	2 5
जिसमें					
चावल	240	390	800	3 5	2 4
गेहूँ	60	120	580	4 0	5 4
मोटे अनाज	170	250	320	2 2	0 4
दालें	80	120	150	1 4	0 4
2 सभी खाद्य भिन्न फसलें					
जिसमें				3 5	2 6
तिलहन	50	90	200	3 3	2 9
गन्ना	˚00	1 220	2 450	4 3	2 3
आलू	20	40	180	4 3	5 1
रूई (170 किग्रा के लाख गट्ठे)	30	60	120	4 6	2 3
3 सभी फसलें				3 1	2 6

(देखिए तालिका 4) और यह बात भारत के सदर्भ मे भी लागू होती है।

पहली अवधि (1950-65) के दौरान, खाद्यान्न के उत्पादन में 3 2 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त हुई। मुख्य अनाजो अर्थात् चावल और गेहूँ मे उच्च वृद्धि दरें रिकार्ड की गईं अर्थात् क्रमश 3 5 प्रतिशत और 4 प्रतिशत किन्तु मोटे अनाजो और दालो में सापेक्षत कम वृद्धि-दरें रिकार्ड की गईं। खाद्य-भिन्न फसलो के उत्पादन में 3 5 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि-दर प्रभावी ही मानी जा सकती है।

1962 के पश्चात् सरकार ने जीव-रसायन तकनालाजी कृषि में इस उम्मीद से चालू की और इसके परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन एव कृषि उत्पादिता मे उन्नति हुई। नयी तकनालाजी ने वास्तव मे कृषि-उत्पादन को बढाने मे कोई बहुत आश्चर्यजनक भूमिका नहीं निभाई, इसके सिवाए कि गेहूँ के उत्पादन में 5 3 प्रतिशत और आलू के उत्पादन मे 6 7 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई और अन्य सभी फसलो के उत्पादन मे वृद्धि दर निम्न ही रही। मोटे अनाजो और दालो में तो यह वृद्धि नाममात्र ही थी। इस अध्ययन से कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त होते हैं–

1 जबकि हरित-क्रान्ति से पूर्व के काल के दौरान, क्षेत्र विस्तार ने कृषि उत्पादन की उन्नति में काफी योगदान दिया, वहाँ 1965 के बाद के काल मे कृषि-उत्पादिता (Agricultural productivity) मे वृद्धि कृषि उत्पादन मे वृद्धि का मुख्य कारण थी।

2 गेहूँ को छोड, आधुनिक कृषि-तकनालाजी के अपनाने के बावजूद उत्पादन की वृद्धि-दर कायम न रखी जा सकी।

3 गेहूँ को छोड, दूसरी अवधि (1965-91) मे वृद्धि-दरें पहली अवधि (1950-65) की तुलना मे काफी नीची थीं। दूसरी अवधि में सामान्य वृद्धि-दर मे आश्चर्यजनक गिरावट होने के बावजूद, खाद्यान्नो में वृद्धि-दर को 2 5 प्रतिशत प्रति वर्ष पर कायम रखे जाने का मुख्य कारण गेहूँ की 5 4 प्रतिशत उच्च वृद्धि-दर था।

4 मुख्य खाद्यान्नो के उत्पादन में राज्यो के भाग मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। उदाहरणार्थ, देश के पूर्वी क्षेत्र (जिसमें पश्चिमी बगाल, उडीसा, बिहार, असम और उत्तर-पूर्वीय राज्य शामिल हैं) का चावल मे भाग इन दो अवधियो में 38 प्रतिशत से कम होकर 28 प्रतिशत हो गया। इसके विरुद्ध, उत्तरी-क्षेत्र (जिसमे पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश शामिल हैं) का भाग 10 प्रतिशत से बढकर 23 प्रतिशत हो गया। गेहूँ के बारे में, स्थिति-निरधयन मे मुख्य परिवर्तन पश्चिम क्षेत्र से उत्तरी-क्षेत्र की ओर हुआ।

5 आधुनिक तकनालाजी को विश्वस्त वर्षा वाले क्षेत्रो या अच्छी सिचाई सुविधाओ वाले क्षेत्रों में लागू करने के परिणामस्वरूप तिलहनो, मोटे अनाजो और दालो का उत्पादन घटिया भूमियो की ओर धकेल दिया गया। अत इन फसलो मे उत्पादिता या कुल उत्पादन मे अधिक वृद्धि प्राप्त न की जा सकी।

6 चाहे कृषि उत्पादन मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है किन्तु यह निरन्तर नहीं हुई बल्कि फसलो के उत्पादन मे साल-दर-साल लगातार उच्चावचन होते जा रहे हैं।

3. निम्न उत्पादिता के कारण
(Causes of Low Productivity)

हम यह विवेचन कर चुके हैं कि भारत मे विश्व के अन्य देशो के मुकाबले प्रति हैक्टर तथा प्रति श्रमिक कृषि उत्पादिता सबसे कम है। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों मे, विशेषताया योजनाओ के दौरान, स्थिति मे काफी उन्नति हुई है फिर भी अभी काफी प्रगति करने की गुजाइश है। कृषि के पिछडेपन के कारणो का विश्लेषण उपयोगी होगा क्योकि इससे सरकार द्वारा कृषि के सुधार के लिए अपनाए गए उपायो और नीतियो को समझने मे सहायता मिलेगी। ये कारण तीन वर्गों मे बाटे जा सकते हैं–(क) सामान्य कारण, (ख) सस्थानात्मक कारण, और (ग) तकनीकी कारण।

(क) सामान्य कारण (General factors)

1 कृषि मे लोगो की बहुत बड़ी सख्या का कार्यरत होना–भारतीय कृषि की असली समस्या इसमे बहुत अधिक लोगो का व्यस्त होना है। 1901 से कृषि पर निर्भर रहने वालो का अनुपात ज्यो का त्यो है अर्थात् लगभग 70 प्रतिशत है। यद्यपि कृषि मे लगी आबादी की प्रतिशत सख्या मे कोई परिवर्तन नहीं हुआ है किन्तु कुल सख्या की दृष्टि से इस शताब्दी के आरम्भ मे 1,630 लाख के मुकाबले 1991 मे यह 5,900 लाख हो गई। जनसख्या मे हुई स्वाभाविक वृद्धि को उद्योगो मे खपाया नहीं जा सका। यही नहीं, पारम्परिक दस्तकारियो (Traditional handicrafts) में लगे हुए व्यक्तियो ने भी उन्हे छोडकर कृषि को ही अपनी आजीविका का साधन बना लिया। इस प्रकार कृषि पर निर्भर अत्यधिक जनसख्या के परिणामस्वरूप खेत विकसित होकर छोटे-छोटे टुकडो में बट गए, प्रतिव्यक्ति भूमि की मात्रा कम हो गई और कृषि मे अदृश्य बेरोजगारी प्रकट हुई। भूमि पर जनसख्या के निरन्तर दबाव के कारण प्रति किसान कृषि भूमि की मात्रा (Cultivated area per cultivator) 1901 से 1991 तक कुल क्षेत्रफल मे वृद्धि के बावजूद 0 43 हैक्टर से कम होकर 0 20 हैक्टर हो गई। स्पष्ट है कि जब तक भूमि पर जनसख्या का यह दबाव कायम रहेगा, कृषि

के विकास मे अधिकतर सफलता प्राप्त होने को सभावना कम ही रहेगी।

2 निरुत्साहक ग्रामीण वातावरण–सामान्यत भारतीय कृषक अशिक्षित, अज्ञानी अन्धविश्वासी एव रूढिवादी है। इसके अतिरिक्त वह जाति प्रथा और सयुक्त परिवार प्रथा (Joint family system) जैसी पुरानी प्रथाओ से जकडा हुआ है। अन्धविश्वास और भाग्यवाद के कारण वह खेती के पुराने तरीको से ही पूर्णतया सन्तुष्ट है। आर्थिक प्रगति का विचार उसे प्रेरित नहीं करता। जब तक पिछडेपन को स्थायी रखने वाला वर्तमान वातावरण परिवर्तित नहीं हो जाता, तब तक कृषि की प्रगति की कोई सम्भावना नहीं। इस सम्बन्ध मे स्थिति मे धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा है।

3 अपर्याप्त फार्म-भिन्न सेवाएँ (Inadequate non-farm services)–भारतीय कृषि को फार्म-भिन्न सेवाओ यर्थात् वित्त और विपणन (Finance and marketing) की व्यवस्था आदि की अपर्याप्तता के कारण परेशानी उठानी पडी है। या तो ये सुविधाएँ सर्वथा विद्यमान ही नहीं या बहुत महगी हैं। उदाहरणतया, कुछ समय पहले तक कृषको को रुपया उधार लेने के लिए गाव के साहूकारो पर निर्भर रहना पडता था जो अत्यधिक ब्याज पर उधार देते थे। एक बार रुपया उधार लेने पर किसान को अपनी जमीन तक बेचनी पड जाती थी और वह भूमिहीन मजदूर (Landless labourer) बनकर रह जाता था। वित्त के अन्य साधन अर्थात् सरकारी समितियाँ और सरकार भी वित्त उपलब्ध कराते थे परन्तु वे महत्त्वहीन थे। इसी प्रकार कुछ समय पहले तक कृषको को माल-सग्रह करने और विपणन की सुविधाएँ प्राप्त नहीं थीं। बेचने के लिए माल मण्डी मे लाए जाने पर थोक व्यापारियो और दलालो द्वारा ठगा जाना निश्चित था। इस प्रकार भारत मे कृषि के पिछडेपन का महत्त्वपूर्ण कारण फार्म-भिन्न सेवाओ की अपर्याप्तता है।

(ख) सस्थानात्मक कारण (Institutional factors)

(1) जोत का आकार (*Size of holdings*)–भारत मे जोत का औसत आकार बहुत छोटा है अर्थात् पाच एकड से भी कम। ये जोते न केवल छोटी हैं, बल्कि छोटे-छोटे टुकडो में बटी हुई हैं। देश के कुछ भागो मे खेत इतने छोटे होते है कि उनमे साधारण हल भी नहीं चलाया जा सकता। खेतो के छोटा होने के कारण वैज्ञानिक विधि से खेतीबाडी सभव नहीं है। परिणामत समय, श्रम और पशुशक्ति का भारी अपव्यय होता है, सिचाई सुविधाओ के उचित उपयोग मे कठिनाई होती है। किसानो मे झगडे और मुकद्मेबाजी की दुष्प्रवृत्तियाँ पैदा होती हैं तथा बाड लगाने की कठिनाई के कारण फसल को क्षति पहुचती है। खेतो के छोटे-छोटे तथा खण्ड-खण्ड होने के कारण जनसख्या का दबाव और उत्तराधिकार की वर्तमान प्रणाली है जिसके अन्तर्गत पूर्वजो की सम्पत्ति मे सभी बेटो का (अब बेटियो का भी) बराबर हिस्सा रहता है। खेतो का छोटा आकार भारतीय कृषि की निम्न उत्पादिता का एक कारण है।

(2) भू-पट्टेदारी का ढांचा (Pattern of land tenure)–कृषि की कम उत्पादिता का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारण उचित प्रोत्साहन का अभाव रहा है। जमीदारी तथा भू-स्वामित्व की प्रणालियो के अन्तर्गत कृषक उस जमीन का स्वामी नहीं होता था जिसे वह जोतता था। जमीन का स्वामी उसे जमीन से निकाल सकता था। यद्यपि अब जमींदारी प्रथा का अन्त किया जा चुका है और विभिन्न राज्यो मे काश्तकारी-विधान (*Tenancy legislation*) लागू हो चुका है फिर भी काश्तकारो की स्थिति सतोषजनक नहीं है। काश्तकार भूमि का स्वामी नहीं है, उसे जमीन पर खेती करने के बदले भारी लगान देना पडता है और उसकी स्थिति सुरक्षित नही है क्योकि जमींदार जब चाहे उसे हटा सकता है। ऐसी कठिन परिस्थितियो मे किसान से कृषि उत्पादिता बढाने की आशा नहीं की जा सकती।

देश मे कुछ छोटे कृषक भू-स्वामी (Peasant proprietors) हैं जो कि कृषि उत्पादन का कुशलतापूर्वक सगठन कर सकते हैं, किन्तु खेतो के छोटे आकार और फार्म-भिन्न सेवाओ की अपर्याप्तता जैसी बाधाओ के कारण वे अपने उद्देश्य मे सफल नहीं हो पा रहे हैं।

(ग) तकनालाजीय कारण (Technological factors)

(1) उत्पादन की पिछड़ी तकनीक–भारतीय कृषक उत्पादन की पुरानी और अक्षम विधियो तथा तकनीको (Techniques) का प्रयोग करता चला आ रहा है। निर्धन एवं परम्परावादी होने के कारण, वह पश्चिमी देशो में और जापान मे बडे पैमाने पर अपनाई गई आधुनिक तकनीको (*modern techniques*) को नहीं अपना सका है। कुछ समय से केवल सीमित रूप में ही वह इस्पात का हल, गन्ना पीडने का कोल्हू, छोटे पम्पिग सेट, हथगाडी, कुदाल बीज-वपित्र (*Seed-drill*) और चारा काटने के यन्त्र आदि उन्नत उपकरणो का प्रयोग करने लगा है। किन्तु भारत में खेती के काम में आने वाले उपकरणो मे इन उन्नत उपकरणो (*Improved implements*) की कुल सख्या बहुत कम है।

उत्पादन मे वृद्धि केवल तभी हो सकती है जब उपर्युक्त और पर्याप्त खाद प्रयोग मे लाई जाए। भारत मे खाद के प्रयोग की आवश्यकता और भी अधिक है क्योकि *लगातार*

खेतीबाडी किए जाने के कारण भमि पूणत नि सत्व (Exhaust) हो चुकी है। उर्वरता को पुन उन्नत करने और परती भूमि (Fallow land) को उपोग मे लाने के लिए सभी प्रकार की खादो के प्रयोग की तुरन्त आवश्यकता है। किन्तु भारत मे गोबर की खाद और रासायनिक उर्वरक (Chemical fertilizers) दोनो की ही बहुत कमी है।

कृषि उत्पादिता मे वृद्धि के लिए अच्छी किस्म के बीजो की आवश्यकता महत्वपूर्ण है। अच्छे बीजो के उपयोग से उत्पादिता मे 10 से 20 प्रतिशत तक वृद्धि की जा सकती है। किन्तु भारतीय किसान के पास अच्छी किस्म के बीज खरीदने के साधन नहीं होते या सग्रह की बुरी दशाओ के कारण बुवाई के लिए अलग से रखे बीज खराब हो जाते हैं। कृषि-विभाग और पिछले कुछ वर्षों में बीजगुणन फार्म (Seed multiplication farms) सुधर बीजो के प्रयोग को लोकप्रिय बनाने की दिशा में बहुत काम कर रहे हैं। हाल ही मे राष्ट्रीय बीज निगम (National Seeds Corporation) स्थापित किया गया है ताकि पूरे देश के लिए अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों का उत्पादन एव वितरण कर।

तात्पर्य यह है कि भारत मे कृषि की निम्न उत्पादिता का एक महत्त्वपूर्ण कारण उत्पादन की घटिया तकनीकी का प्रयोग करना है। जब तक किसानो को सुधार उपकरणो के उपयोग की, सुधरे बीज बोने की, उपयुक्त और पर्याप्त खाद तथा उर्वरक के प्रयोग की और विनाशकारी कीडो तथा रोगो को प्रभावशाली ढग से मिटाने की प्रेरणा नहीं दी जाती तब तक उत्पादिता बढाने की आशा नहीं का जो सकता।

2 **अपर्याप्त सिचाई सुविधाए**–भूमि बीज, खाद और कृषि उत्पादन आदि मे सुधार का तब तक कोई लाभ नहीं नहीं जब तक इनके साथ-साथ सिचाई की उचित और नियमित व्यवस्था न हो जाए। भारतीय कृषि के पिछडेपन का एक मूल कारण यह है कि हमारे देश के अधिकाश किसानो को वर्षा पर निर्भर रहना पडता था और कृत्रिम सिचाई सुविधाएँ बहुत कम को उपलब्ध थीं। उदाहरणतया देश-विभाजन से पूव केवल 19 प्रतिशत भूमि म सिचाई होती थी। योजनाकाल मे बडी और छोटी सिचाई योजनाओ के प्रबल विकास के बावजूद कुल खेती योग्य भूमि के केवल 36 प्रतिशत में ही सिचाई होती है। इससे स्पष्ट है कि देश मे कृत्रिम सिचाई के लिए व्यापक क्षेत्र विद्यमान है।

इस विवेचन मे निम्न उत्पादिता के जिन कारणो का ऊपर उल्लेख किया गया है, उन्हे दूर करने के उपायो का सकेत भी मिलता है। कृषि उत्पादिता बढाने का प्रयास करते हुए उक्त कारणो को दृष्टि मे रखना उचित होगा। एक ओर इस बात का प्रयास किया जा रहा है कि ग्रामीण जनसख्या के लिए वैकल्पिक रोजगार उपलब्ध कराया जाए और व्यावसायिक ढाचे मे इस प्रकार परिवर्तन किया जाए कि केवल 60 प्रतिशत लोग ही कृषि पर निर्भर रह जाएँ। जहाँ तक तकनीकी कारणा का प्रश्न है, किसानो को उन्नत उपकरणो, बीजो, रासायनिक खादो आदि के लाभो से परिचित कराने तथा उनका उपयोग करने की दिशा मे उत्साहवर्द्धक कार्य किया जा रहा है। सिचाई सुविधाएँ तेजी से उपलब्ध कराई जा रही हैं। दोहरी फसल, अधिक श्रेष्ठ फसल चक्र (Crop rotation) पौधो को लगने वाले कीडो और बीमारियो को मिटाने आदि की ओर भी ध्यान दिया जा रहा है। अत आशा है कि समय आने पर कृषि की भू-उत्पादिता और श्रम-उत्पादिता मे वृद्धि हो जाएगी। जितनी जल्दी ऐसा हो सकेगा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का उतना ही अधिक हित हो सकेगा।

4 भारत मे फसल-प्रतिरूप
(Cropping Pattern in India)

फसल प्रतिरूप (Cropping pattern) से हमारा अभिप्राय किसी समय-विशेष पर विभिन्न फसलो के आधीन क्षेत्रफल के अनुपात से है। फसल-प्रतिरूप मे परिवर्तन का अर्थ विभिन्न फसलो के आधीन क्षेत्रफल मे फेर-बदल से है। फसलो को मोटे तौर पर दो भागो मे बाट लिया जाता है–खाद्य फसले और खाद्येतर फसले (Non food crops)। बीसवीं शताब्दी मे इन दानो प्रकार की फसलो क आधीन क्षेत्रफल का वितरण तालिका 5 में दिया गया है।

तालिका 5 **फसल-वितरण का स्वरूप**

प्रतिशत वितरण

फसल	1950 51	1970-71	1980-81	1990-91
(i) सभी फसले	100	100	100	100
(ii) खाद्य फसले	74	78	80	77
(iii) खाद्येतर फसलें	26	22	20	23

इस शताब्दी के आरम्भ मे खाद्य एव खाद्येतर फसलो के अधीन क्षेत्रफल का वितरण क्रमश 83 प्रतिशत और 17 प्रतिशत था जोकि 1950-51 तक परिवर्तित होकर 74 प्रतिशत और 26 प्रतिशत हो गया परन्तु 1960-61 के बाद क आकडे इस प्रवृत्ति के पलटाव को व्यक्त करते हैं और यह परिवर्तन निश्चय ही खाद्येतर फसलो से खाद्य-फसलो की ओर हुआ। 1990-91 तक, खाद्य एव खाद्येतर फसलो का अनुपात 77 23 हो गया। इसके दो मुख्य कारण थे, खाद्यान्नो की कीमतो म तीव्र वृद्धि क कारण किसान अनाज

का उत्पादन ठीक उसी प्रकार मण्डी के लिए करने लगे हैं जैसे वे तिलहनो, रूई या अन्य वाणिज्य फसलो का करते थे। *दूसरे शब्दो मे, वाणिज्य फसलो और खाद्य-फसलो मे* पारम्परिक भेद अब अपना महत्त्व खोता चला जा रहा है। दूसर, खाद्यान्न फसलो की खेती अब बहुत लाभदायक बन गई है और नयी तकनालाजी के प्रभावाधीन अधिक उत्पादक *भी हो गई है।*

भारत मे फसल-प्रतिरूप (Cropping pattern) को प्रभावित करने वाले कारणतत्व

किसी देश अथवा प्रदेश के फसलो के प्रतिरूप (Cropping pattern) मे परिवर्तन की सभावना के विषय में दो मत हैं। कुछ विद्वानो का मत है कि फसलो के *प्रतिरूप मे परिवर्तन नहीं किया जा सक्ता जबकि* दूसरे विद्वान् यह मानते हैं कि सुविचारित नीति के सहारे इसे बदला जा सकता है। श्री एस एन सिन्हा ने पहले प्रकार का विचार प्रकट किया है–"परम्परा-बद्ध तथा ज्ञान के *अत्यन्त निम्न स्तर वाले देश के किसान प्रयोग करने को* उद्यत नहीं होते। वे प्रत्येक बात को विरक्ति और भाग्यवाद की भावना से स्वीकार करते हैं। उनके लिए कृषि वाणिज्य-व्यापार की वस्तु न होकर जीवन की एक प्रणाली है–एक ऐसे *कृषि-प्रधान समाज मे जिसके सदस्य परम्परावद्ध और* अशिक्षित है, फसल मे परिवर्तन की अधिक सम्भावना नहीं रहती।"[1] अब इस मत को सही नहीं समझा जाता जैसा कि पजाब मे फसल-प्रतिरूप मे परिवर्तन से स्पष्ट हो गया है। *अब यह बात अधिकतर विद्वानो द्वारा स्वीकार कर ली गई है* कि भारत जैसे देश म भी फसल-प्रतिरूप बदला जा सकता है और इसे बदलना चाहिए।

फसलो के प्रतिरूप को निर्धारित करने वाले बहुत से *कारण हैं–भौतिक, तकनीकी, आर्थिक समाजशास्त्री,* प्रशासनिक और यहाँ तक कि राजनीतिक भी। इनम आर्थिक तत्वो का महत्त्व सबसे अधिक है।

भौतिक एव तकनीकी तत्व–किसी प्रदेश का फसल-प्रतिरूप उसकी *भौतिक विशिष्टताओ अर्थात्* मिट्टी, जलवायु, मौसम, वर्षा आदि पर निर्भर करता है। उदाहरणतया, एक एसे शुष्क क्षेत्र म, जिसमे थोडी वर्षा होती है तथा मानसून बहुत अनिश्चित होता है, ज्वार और बाजरा पर ही अधिक निर्भर रहना पडता है क्योकि यह खेती कम वर्षा म भी हो सकती है। देश के अधिकाश भागो मे यही किया जा सकता है। फसल चक्र (Crop rotation) *का निर्धारण भी भौतिक कारणा स हाता है।* किन्तु तकनीकी उपायो से फसल-चक्र बदला जा कता है। तो भी कुछ परिस्थितियो मे भौतिक बाधाएँ निर्णायक होती हैं। *उदाहरणतया, पजाब के संगरूर और लुधियाना जिलों के* कुछ भागो में जलरोध (Water-logging) के कारण चावल के उत्पादन क्षेत्र मे वृद्धि हो गई है क्योकि अन्य फसलों के मुकाबले चावल की खेती अतिरिक्त पानी को भली-भाति *सह सकती है। मध्य प्रदेश में जिस भूमि का हाल ही में* पुनरुद्धार (Reclamation) किया गया है, उसमे चावल उगाने से पहले कुछ वर्षों तक मोटा अनाज बोया जा रहा था।

मिट्टी एव जलवायु की परिस्थितियो के अतिरिक्त, किसी क्षेत्र की फसलो के प्रतिरूप पर सिचाई सुविधाओ के प्रकार और उनकी उपलब्धता का भी प्रभाव पडता है। जहाँ पानी उपलब्ध हो जाता है, वहाँ न केवल विभिन्न प्रकार की फसल बोई जा सकेगी, बल्कि दोहरी या तेहरी फसल सभव हो सकेगी। जब नयी सिचाई सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं, तो खेती का पूरा ढग ही बदल जाता है। एक बढिया फसल उगाई जा सकती है, एक नया फसल-चक्र कायम किया जा सकता है या एक अधिक श्रेष्ठ फसल-चक्र सम्भव हो सकता है। गन्ने और तम्बाकू आदि की खेती में वृद्धि का एक महत्त्वपूर्ण कारण सिचाई सुविधाओ का विस्तार किया जाना है। यह सम्भव है कि पूजी का अभाव, अच्छे औजारो, उन्नत बीजो और उर्वरको के लिए वित्त न मिलने के कारण, उचित प्रकार की फसल न उगाई गई हो। परन्तु जैसे ही ये सुविधाए उपलब्ध कराई जाती हैं, फसलों के ढाँचे मे परिवर्तन हो जाता है।

आर्थिक कारणतत्व (Economic factors)–देश की फसलो के प्रतिरूप का निर्धारण करने में आर्थिक कारणो का महत्त्व सबसे अधिक है। अतीत भारत मे स्थिति चाहे जो रही हो, अब यह स्पष्ट होता जा रहा है कि *भारतीय किसान अब आर्थिक तत्वो से प्रभावित हो रहा है।* आर्थिक तत्वो मे महत्त्वपूर्ण तत्व निम्न हैं–

(1) कीमत और आय को अधिकतम करना–अनेक व्यावहारिक अध्ययनों से कीमत मे परिवर्तनो और फसलो के ढाचे मे *परस्पर सम्बन्ध स्थापित होता है।* डॉ एन ए. मजुमदार ने कीमत-समता अनुपात (Price parity ratio) की गतियो और गन्ने के अखिल भारतीय क्षेत्रफल में परिवर्तन के बीच तथा पटसन एव चावल के *आधीन* क्षेत्रफल और इन वस्तुओ की सापेक्ष कीमतो (Relative prices) के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध को प्रमाणित किया है। खाद्य और कृषि मत्रालय के अध्ययन से पता चलता है कि *कीमतो म परिवतन का क्षेत्रफल के परिवर्तन* पर महत्त्वपूर्ण

1 S N Sinha Economics of Cropping Pattern *AICC Economic Review* Vol XV January 1964

प्रभाव पडता हैं। "ऐसा प्रतीत होता है कि कीमतो का फसलो के आधीन क्षेत्रफल पर दो रूपो मे प्रभाव पडता है। एक ओर तो अन्त कीमत समता (Inter price parity) से फसल-फसल के बीच, और दूसरी ओर ऊंची कीमतो की अपेक्षा कीमत-स्तर (Price level) को स्थिर रखने से उत्पादको को उत्पादन बढाने की कहीं अधिक प्रेरणा मिलती है बशर्ते कि इस स्तर को अनेक वर्षों तक कायम रखने मे अनिश्चितता न हो।"

कुछ विद्वानो के अनुसार अधिकतम आय की प्रेरणा भी फसलो का ढाँचा (Pattern of crops) बदलने पर और भी अधिक प्रभाव डालती है क्योंकि किसान उसी फसल को उगाना पसन्द करेगा जिससे उसे अधिकतम आय प्राप्त होगी। किन्तु डॉ राजकृष्ण का मत है कि फसलो के प्रतिरूप को प्रभावित करने वाला मुख्य कारण प्रति-एकड सापेक्ष लाभ (Relative profit) होता है। किसी भी परिस्थिति मे, फसल का चुनाव करने मे किसान पर जिन बातो का प्रभाव पडता है वे है-विभिन्न वस्तुओ के बीच कीमत-समता (Price parity), आय का अधिकतम होना और प्रति-एकड सापेक्ष लाभ।

(2) खेत का आकार (Size of Farms)–खेत के आकार और फसलो के ढाँचे के बीच भी सम्बन्ध रहता है। छोटे किसान बडे किसानो के मुकाबले व्यापारिक फसलो के लिए कम सापेक्ष क्षेत्रफल का उपयोग करते हैं। इसका कारण यह है कि छोटे किसान सबसे पहले अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए खाद्यान्न उत्पन्न करना चाहते हैं। अपनी आवश्यकताओ को पूर्ण कर चुकने पर ही वे व्यापारिक फसले उगाते हैं। परन्तु हाल ही मे उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के अध्ययन से स्पष्ट हुआ है कि लगभग सभी किसान बडे तथा छोटे, कुछ नकद फसले (Cash crops) उगाने का प्रयत्न करते हैं। वास्तव मे हाल ही के वर्षों मे बडे किसानों की अपेक्षा छोटे किसान गन्ने के आधीन क्षेत्रफल को बढाते रहे हैं।

यह सत्य है कि निवाह की आवश्यकता के कारण छोटे किसानो का फसलो का ढाचा परम्परा से प्रभावित होता आया है किन्तु उनकी मौद्रिक आय की सीमान्त आवश्यकता किसी भी प्रकार बडे किसान से अधिक नहीं हो सकता। अर्थव्यवस्था की प्रगति के साथ साथ छोटे किसानों द्वारा अपनी आय अधिकतम करन क उद्देश्य से अपने शस्य प्रतिरूप (Cropping pattern) म अत्यन्त महत्वपूर्ण सामान्त परिवतन हाने की सम्भावना है।

(3) जोखिम के विरुद्ध बीमा–फसल विफलता का जोखिम कम से कम करने की आवश्यकता का भी फसलो के ढाचे पर प्रभाव पडता है। उदाहरणतया, अनेक क्षेत्रो में ज्वार-बाजरा आदि मोटे अनाज की खेती के लगातार होने का कारण मुख्यत वर्षा की अनिश्चितता से बचने का प्रयत्न है।

(4) आदानो की उपलब्धता (Availability of inputs)–शस्य प्रतिरूप बीज, उर्वरक, पानी-सग्रह, विपणन (Marketing) और परिवहन आदि आदानो पर भी निर्भर रहता है। NCAER ने यह अनुमान लगाया कि यदि पजाब मे अतिरिक्त सिचाई सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएँ, तो 34 लाख एकड भूमि पर फसलो के ढाचे मे परिवर्तन हो सकता है जिसमे से चने के आधीन 16 लाख एकड भूमि को अन्य अधिक लाभकारी फसलो के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। मूँगफली के बीज की उपलब्धता के कारण मध्य प्रदेश मे अनेक कृषको को मूगफली की खेती अधिक विस्तृत क्षेत्र मे करने की प्रेरणा मिली। किसानों द्वारा रूई के मुकाबले मूगफली को श्रेष्ठ समझने का एक कारण यह भी है कि रूई की फसल विलम्ब से तैयार होती है जबकि मूगफली की फसल शीघ्र तैयार हो जाती है।

(5) भू-धारण (Tenure)–फसल-बटाई प्रणाली (Crop sharing system) के अन्तर्गत भू-स्वामी को फसलो के चुनाव का प्रमुख अधिकार प्राप्त होता है जिसके परिणामस्वरूप, आय को अधिक करने वाला फसलों का ढाचा अपनाया जाता है।

सरकारी कार्यवाही और फसलो का ढाचा

सरकार वैधानिक और प्रशासनिक उपायो से फसलो के ढाचे के निर्धारण पर प्रभाव डाल सकती है। किसानो को कृषिगत आदान (Agricultural inputs) और ज्ञान उपलब्ध करने मे सहायता (Subsidies) प्रदान कर सकती है। सरकार कुछ प्रकार की फसलो के लिए कुछ सुविधाएँ उपलब्ध करा सकती है। सिचाई सुविधाएँ, उर्वरक और बीज आदि उपलब्ध कराने की व्यवस्था को विशेष शस्य-प्रतिरूप (Crop pattern) से सम्बन्धित किया जा सकता है। यद्यपि खाद्य शस्य अधिनियम (Food Crops Acts), भू उपयोग अधिनियम (Land Use Acts) धान, कपास, तिलहन आदि की सघन खेती (Intensive cultivation) की योजनाएँ, उत्पादन-शुल्क (Excise duties) तथा निर्यात शुल्क (Export duties) आदि के प्रयोग से या इन विभिन्न उपायो के एक साथ प्रयोग से कल्पित दिशा म फसलो के ढाचे का प्रभावित किया जा सकता है, तथापि सम्भव है कि उक्त समस्त उपाया का सम्पूर्ण फसलो के ढाचे पर कुल प्रभाव ऐसा न पडे जो राष्ट्रीय आवश्यकताओ के अनुरूप हो।

व्यक्तिगत पूर्वधारणाओ और किसानों के वित्तीय एव अन्य ससाधनो के अपर्याप्त होने के अतिरिक्त, कई और कारण अर्थात् सूखे का बार-बार पडना या फसल पर टिड्डी-दल का आक्रमण भी उन्हे आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभकारी फसलो को अपनाने से रोकते हैं। यदि उन परिस्थितियो मे अधिक सिचाई, उर्वरक या कीटनाशक उपलब्ध कराए जाएँ, तो किसानो के लिए फसलो के ढाचे मे परिवर्तन करना सम्भव होगा ताकि वे भूमि से अधिक प्रत्याय प्राप्त कर सके। जिस हद तक किसान के लिए इन सुविधाओ को स्वय प्राप्त करना सम्भव न हो, सरकार को इन्हे प्राप्त करने मे उसकी सहायता करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त फसल-प्रतिरूप को उन्नत करने के सम्बन्ध मे किसान की सहायता करने का एक उपाय नयी सडको का निर्माण है ताकि वस्तुएँ आसानी से मण्डियो तक पहुचाई जा सकें, जहा उनके लिए अपेक्षाकृत अधिक कीमते प्राप्त हो सकती हो। इसी प्रकार उद्योगो की स्थापना या नये कस्बो के विकास से जो ग्रामो के निकट हो, किसानो को इस दिशा मे प्रभावित किया जा सकता है।

उन्नत फसल-प्रतिरूप प्रोत्साहित करने के लिए नीति

यदि योजना के लक्ष्यो के आधीन एक ऐसा फसल-प्रतिरूप स्थापित करना अनिवार्य हो जो सामान्यत किसान नहीं चाहते, तब सरकार को कृषि-क्षेत्र पर किसी न किसी प्रकार का नियन्त्रण लागू करना होगा। परन्तु भारत जैसी अर्थव्यवस्था मे जहाँ लाखो किसान स्वतन्त्र रूप मे खेती सम्बन्धी निर्णय करते हैं ऐसा करना यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य ही है। स्वाभाविक ही है कि सरकार इस परिस्थिति मे कीमतो मे फेर-बदल का हीं मुख्य रूप मे सहारा ले और नियन्त्रित आदानो (*Inputs*) जैसे बीज, पानी, उर्वरक आदि के सम्भरण मे कीमत-भेद नीति अपनाए। कुछ परिस्थितियो म करो एव साहाय्यो (Subsidies) का प्रयोग भी वाछनीय होगा।

श्रेष्ठतर फसल-प्रतिरूप के कार्यान्वयन सम्बन्धी आवश्यक प्रोग्राम के लिए NCAER ने निम्नलिखित सुझाव दिए हैं-

(i) व्यक्तिगत रूप मे किसानों द्वारा क्षेत्र की अनियमित रूप से बाट की वर्तमान पद्धति देश के सर्वोत्तम हित मे नहीं है। चूकि स्वैच्छिक प्रोग्राम मन्द गति के उपचार हैं और वे प्राय अधिक प्रभावी नहीं होते, NCAER का मत है कि विभिन्न क्षेत्रो मे इच्छित फसल-ढाचे की स्थापना को कानूनी रूप से बाध्य करना चाहिए। बहुत से ऐसे देश हैं, जैसे यू एस ए., सयुक्त अरब गणराज्य आदि, जहाँ कानून द्वारा फसलो को उगाने के लिए क्षेत्र-निर्धारण तय कर दिया गया है।

(ii) जिला आयोजन अधिकारी नियुक्त करने चाहिए जो प्रत्येक मौसम मे जलवायु एव अन्य कारणतत्वो अर्थात् कीमतो, उत्पादिता आदि को ध्यान मे रखकर फसलो की योजना बनाए। किसानो को कृषि सिचाई आदि विभागो से घनिष्ठ सहयोग करना चाहिए ताकि निर्धारित प्रोग्राम कार्यान्वित किए जा सके।

(iii) एक कृषि यत्रीकरण निगम (Agricultural Mechanisation Corporation) की स्थापना करनी चाहिए ताकि मध्य-प्रदेश जैसे राज्यो के लिए जहा जोत का आकार बहुत बडा है और औसत किसान भाडे पर श्रम से इसका प्रयोग करने मे असमर्थ हैं, निगम किसान को आवश्यक मशीनरी, अग्रिम के रूप मे दे दे। अच्छा तो यह होगा यदि यह मशीनरी ऋणो के रूप मे दी जाए और इसके मूल्य की अदायगी आसान किस्तो मे करने की इजाजत होनी चाहिए।

(iv) सरकार को परिवहन एव विपणन सुविधाओ और जोतो की चकबन्दी (Consolidation of holdings) की प्रोन्नति को सबसे अधिक महत्त्व देना चाहिए।

शस्य-प्रतिरूप (Cropping pattern) को प्रभावित करने वाले कारणो मे आर्थिक कारण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। भारत जैसे देश मे जहा किसान दरिद्र व रूढिग्रस्त हैं तथा जिनके पास भूमि के बहुत छोटे खण्ड ही हैं, आर्थिक अभिप्रेरणाओ (Economic incentives) द्वारा फसलो के ढाचे को बदला जा सकता है। हाल ही के वर्षों का अनुभव इस बात की पुष्टि करता है कि जब कभी किसान को शस्य-प्रतिरूप को बदलना युक्तिसगत लगता है, तो वह इस युक्ति को अवश्य स्वीकार करता है। अच्छे शस्य-प्रतिरूप को अपनाने मे वास्तविक कठिनाई यह है कि किसान के पास विनियोग के लिए आवश्यक पूजी नहीं होती या फसलो को बदलने के लिए आवश्यक तकनीकी ज्ञान नहीं होता। अत सरकार को इन कमियो को दूर करने मे किसान की सहायता करनी चाहिए।

26

कृषि आदान और विधियाँ
(AGRICULTURAL INPUTS AND METHODS)

कृषि दक्षता और उत्पादन बहुत कुछ कृषि आदानो और उत्पादन की विधियो पर निर्भर करते हैं। विकासशील कृषि के लिए अनुकूल सस्थानात्मक और सगठनात्मक सरचना (Institutional and organisational structure) आदि के अतिरिक्त कृषि आदानो एव विधिया म सुधार करना भी आवश्यक होता है। कृषि आदाना के जिन विभिन्न पहलुओ की यहाँ चर्चा की जाएगी, उनमे मुख्य हैं–भू-रक्षण (Soil conservation), पौधो की सुरक्षा, मशीनो का उपयोग, इत्यादि।

1. सिंचाई
(Irrigation)

खेती के लिए जल अनिवार्य तत्व है। यह वर्षा द्वारा अथवा कृत्रिम सिचाई से प्राप्त किया जाता है। जिन क्षेत्रो म वर्षा काफी और ठोक समय पर होती है, उनमे पानी की कोई समस्या नहीं है। किन्तु कुछ क्षेत्रो मे वर्षा न केवल कम होती है अपितु अनिश्चित भी है। आध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, पजाब और राजस्थान ऐसे प्रदेश हैं। इन क्षेत्रा म खेती क लिए कृत्रिम सिचाई नितात आवश्यक है क्योकि इसके बिना खती सम्भव हा नहीं। कुछ क्षेत्रो मे प्रचुर मात्रा होने पर भी वष भर म वर्षा क दिन बहुत थोडे होते हैं। परिणामत सार वष खती नहीं हो सकती। इन क्षेत्रो मे सिचाइ की सुविधा उपलब्ध हान से वर्ष म एक से अधिक फसल उगान म सहायता मिलेगी। अन्त म चावल और गन्ना आदि कुछ एसी खाद्य और व्यापारिक फसले हैं जिन्हे प्रचुर, नियमित और लगातार जल मिलना आवश्यक है। अधिक उपज क लिए कवल वषा पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। तात्पय यह है कि वषा काफी हाने पर भी सम्भव है कि सार वर्ष म समान और समुचित रूप से न हो तथा जहा वषा की मात्रा कम हो वहा पानी न मिल सकने के कारण अधिक उत्पादन म बाधा पड। सक्षेप मे पानी निरन्तर प्राप्त होता रहना आवश्यक है। दूसर शब्दा म, कृषि के लिए सिचाई अत्यावश्यक तत्व है। देश के विभिन्न भागो म वर्ष भर म एक न एक समय अकाल की-सी स्थिति वतमान रहती है। इन क्षेत्रा को अकाल से बचाना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त दुहरी और यदि सम्भव हो सके ता तिहरी

तालिका 1 · विभिन्न साधनों द्वारा सिंचाई आधीन क्षेत्र (लाख हेक्टेयर)

		1950-51	1970-71	1980-81	1990-91
1	नहरें	83	129	153	169
		(39 7)	(41 4)	(38 5)	(35)
2	तालाब	36	41	23	32
		(17 2)	(13 1)	(8 3)	(7)
3	कुए	60	119	177	241
		(28 7)	(38 1)	(45 5)	(51)
4	अन्य स्रोत	30	23	26	32
		(14 4)	(7 4)	(6 7)	(7)
	सिचाई आधीन शुद्ध क्षेत्रफल	209	312	358	474
		(100 0)	(100 0)	(100 0)	(100)

नोट ब्रैकट में दिए गए आकडे कुल सिचाई आधीन शुद्ध क्षेत्रफल का प्रतिशत है।

फसल उगाने तथा कृषि उपज मे वृद्धि करने के लिए भी पानी प्रचुर मात्रा मे निरन्तर उपलब्ध कराया जाना आवश्यक है।

भारत मे जहा 1950 51 मे 209 लाख हेक्टेयर भूमि को कृत्रिम सिचाई प्राप्त थी वहाँ 1994 95 मे 880 लाख हेक्टेयर भूमि को सिचाई प्राप्त है। जाहिर है कि 44 वर्षों के दौरान सिचाई आधीन क्षेत्र मे 321 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस प्रकार 1950 51 से 1994 95 के बीच सिचाई आधीन क्षेत्रफल की वार्षिक वृद्धि दर 2 7 प्रतिशत थी जो इस बात का सकेत करती है कि चाहे पचवर्षीय योजनाओ मे सिचाई को काफी महत्त्व दिया गया फिर भी प्रगति बहुत धीमी रही है।

भारत मे सिचाई के स्रोत

तालिका 1 से स्पष्ट है कि जबकि 1950 51 मे नहरें सिचाई का सबसे बड़ा स्रोत थी अब इनका महत्त्व सापेक्ष दृष्टि से कम हो गया है। कुएँ (जिनमे ट्यूबवैल भी शामिल हैं) 1990 91 मे कुए लगभग 51 प्रतिशत सिचाई उपलब्ध कराते है। इनमे ट्यूबवैल अधिक महत्त्वपूर्ण बनते जा रहे हैं और उनका भाग 30 प्रतिशत तक पहुच गया है। नहरें दूसरा सिचाई का प्रधान स्रोत है और उनके द्वारा लगभग 35 प्रतिशत भूमि की सिचाई की जाती है। सिचाई के स्रोतो मे तालाबो का महत्त्व गिर गया है और उनका भाग जो 1950 51 मे 17 2 प्रतिशत था कम होकर 1990 91 मे केवल 7 प्रतिशत हो गया है।

भारत मे सिचाई कार्यो को दो वर्गो मे विभक्त किया गया है–बडे सिचाई कार्य और छोटे सिचाई कार्य। 1978 79 से योजना आयोग ने सिचाई परियोजनाओ का नया वर्गीकरण चालू किया है।

(क) बड़ी सिचाई योजनाएँ–इनमे वे परियोजनाएँ शामिल की जाती है जिनके नियत्रण आधीन 10 000 हेक्टेयर से अधिक कृषि योग्य क्षेत्रफल हो।

(ख) मध्यम सिचाई योजनाएँ–इनमे वे परियोजनाएँ शामिल की जाती है जिनके नियत्रण आधीन 2 000 से 10 000 हेक्टर कृषियोग्य क्षेत्रफल हो।

(ग) छोटी सिचाई योजनाएँ–इनमे वे परियोजनाएँ शामिल की जाती है जिनके नियत्रण आधीन 2 000 हेक्टेयर तक क्षेत्रफल हो।

बडी सिचाई परियोजनाओ के निर्माण मे अनेक तकनीकी और प्रशासनिक कठिनाइयाँ विद्यमान रहती है किन्तु इन परियोजनाओ की क्षमता अधिक होती है यहाँ तक कि इनसे लाखो एकड भूमि सीची जा सकती है। इनके कारण अकाल का खतरा पूर्णतया टल सकता है। इसके अतिरिक्त बडी सिचाई परियोजनाएँ बहु-उद्देश्यीय परियोजनाएँ (*Multipurpose projects*) होती हैं जिनका उद्देश्य सिचाई के लिए पानी प्रदान करने के अतिरिक्त बाढ नियत्रण और नौचालन (Navigation) और जल-विद्युत का निर्माण करना भी होता है।

छोटी सिचाई परियोजनाओ के मुख्य गुण यह हैं कि इनके लिए कम धन की आवश्यकता पडती है। इनका निर्माण कम समय मे हो जाता है और कृषि उत्पादन पर इनका प्रभाव तुरन्त प्रकट हो जाता है। शीघ्र फल प्राप्त करने की दृष्टि से छोटी सिचाई परियोजनाएँ बहुत उपयोगी होती हैं। अत सरकार की वर्तमान नीति यह है कि बडी और छोटी दोनो प्रकार की सिचाई परियोजनाओ का सतुलित विकास (Balanced development) किया जाए। छोटी सिचाई योजनाओ द्वारा कुल सिचित क्षेत्र के लगभग 59 प्रतिशत को पानी उपलब्ध कराया जाता है।

तालिका 2 भारत मे सिचाई क्षमता का विकास

लाख हेक्टेयर

वर्ष	बड़ी तथा मध्यम सिंचाई	छोटी सिंचाई	कुल सिंचाई
1950 51	97 (42 9)	129 (57 1)	226 (100 0)
1980 81	273 (46 5)	313 (53 5)	587 (100 0)
1994 95	330 (37 5)	540 (62 5)	880 (100 0)
अन्तिम उपयोगत्मक क्षमता	585 (51 5)	550 (48 5)	1 135 (100 0)

नोट ब्रैकेट मे दिए गए आकडे कुल सिंचाई आधीन क्षेत्र का प्रतिशत हैं।

स्रोत आर्थिक समीक्षा (1992 93)।

जब भारत ने 1950 51 मे आयोजित आर्थिक विकास आरम्भ किया तो बडी तथा मध्यम सिचाई के आधीन 97 लाख हेक्टेयर भूमि थी और छोटी सिचाई के आधीन 129 लाख हेक्टेयर। इस प्रकार कुल मिलाकर 226 लाख हेक्टेयर भूमि को सिचाई प्राप्त थी।

1994 95 के अन्त तक बडी तथा मध्यम सिंचाई के आधीन कुल क्षेत्र बढकर 330 लाख हेक्टेयर हो गया और छोटी सिचाई के आधीन 550 लाख हेक्टेयर। कुल मिलाकर सिचाई आधीन क्षेत्रफल 880 लाख हेक्टेयर था। भारत सिचाई सुविधाओ की दृष्टि से विश्व मे प्रथम स्थान रखता है।

3 290 लाख हेक्टेयर कुल भौगोलिक क्षेत्र मे से कृषि योग्य केवल 1 660 लाख हेक्टेयर है किन्तु शुद्ध बोया गया क्षेत्र 1 360 लाख हेक्टेयर है। सभी सिंचाई परियोजनाओ से

अन्ततोगत्वा क्षमता (ultimate potential) 1,135 लाख हेक्टेयर आकी गयी है। दीर्घकालीन उद्देश्य के रूप मे इसे सन् 2010 तक प्राप्त किया जाएगा।

पचवर्षीय योजनाओ में सिचाई एव बाढ नियन्त्रण

सभी पचवर्षीय योजनाओ मे अतिरिक्त सिचाई निर्माण क्षमता को बहुत महत्त्व दिया गया। पहली योजना में सिचाई पर कुल योजना-परिव्यय का 25 प्रतिशत खर्च किया गया। किन्तु सामान्यत अन्य योजनाओ मे सिचाई क्षमता के निर्माण पर 10 से 12 प्रतिशत व्यय किया गया (देखिए तालिका 3)।

तालिका 3 योजनाओ मे सिचाई पर परिव्यय और जनित सिचाई क्षमता

	परिव्यय (करोड़ रुपए)	सचयी सिचाई क्षमता (लाख हेक्टेयर)	सिचाई उपयोग (लाख हेक्टेयर)
पहली योजना	450	260	250
दूसरी योजना	520	290	280
तीसरी योजना	910	340	320
चौथी योजना	1,750	440	420
पाचवी योजना (1974-78)	3 070	520	480
छठी योजना (1980-85)	9 320	680	610
सातवीं योजना	17 530	810	710
1994-95 (लक्ष्य)	--	880	780

तालिका 3 मे प्रत्येक योजना मे सिचाई पर परिव्यय और सिचाई क्षमता दी गई है।

आठवीं योजना (1992-97) म सिचाई क्षेत्र के लिए निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य रखे गए हैं–

(i) अधूरी पड़ी हुई परियोजनाओ को पूरा करने को प्राथमिकता देना, विशेषकर ऐसी परियोजनाओ को जिनसे जनजातीय क्षेत्रों, सूखा-प्रवृत्त क्षेत्रो और उन क्षेत्रो को लाभ पहुचे जहाँ अनुसूचित जातियो के लोग बहुत बडी सख्या मे हैं।

(ii) बडी तथा मध्यम सिचाई परियोजनाओ मे व्यवस्था के स्तर पर एव स्थानीय स्तर पर प्रयोक्ताओ के अधिकाधिक प्रयोग को प्रोत्साहित करना। इसका नयी परियोजनाओ मे आयोजन की अवस्था मे विस्तार किया जाएगा। प्रयोक्ताओ या गैर-सरकारी सस्थाओ की स्थानीय पहल को सरकार द्वारा सक्रिय समर्थन दिया जाए ताकि पानी का उचित प्रबन्ध किया जा सके।

(iii) कमान क्षेत्र विकास (Command Area Development) प्रोग्राम को प्रत्येक राज्य मे सिचाई प्राप्त कृषि और पानी के अनुकूलतम प्रयोग के शीघ्रातिशीघ्र उपयोग का प्रभावी उपकरण बनाना होगा।

(iv) छोटे सिचाई प्रोग्रामो पर अधिक बल दिया जाएगा ताकि वे शीघ्र पूरे की जा सके और उनके लाभ तुरन्त प्राप्त किए जा सके।

(v) समन्वित व्यष्टि-विकास परियोजनाओ (Micro-development projects) के अग के रूप मे छोटी सिचाई के तालाबो एव नयी परियोजनाओ की मरम्मत एव सुधार को प्रोत्साहन दिया जाएगा। ये सिचाई कार्यक्रम रोजगार-प्रेरित विकास परियोजनाओ के एक महत्त्वपूर्ण अग का कार्य करेंगे और इनका कार्यान्वयन राज्यीय सरकारो एव पचायती राज को सौंपा जाएगा।

(vi) पूरी की जा चुकी सिचाई परियोजनाओ के लिए जल-निकास की परियोजनाओ (Drainage schemes) को प्राथमिकता दी जाएगी ताकि लवणता (Salinity) और जलग्रस्तता (Waterlogging) की समस्याओ को हल किया जा सके।

(vii) भौम-जल की खोज एव उपयोग के कार्य मे, विशेष रूप मे पूर्वी और उत्तर-पूर्वीय क्षेत्रो मे, प्राथमिकता के आधार पर तेजी लाना।

(viii) समुचित वित्तीय विनियोजन (Financial investment) द्वारा नहरो का सतोषजनक ढग से अनुरक्षण एव जल-वितरण प्रणाली सुनिश्चित करना।

आठवीं योजना मे मुख्य एवं मध्यम सिचाई योजनाओ के लिए 22,840 करोड रुपए के परिव्यय का प्रस्ताव किया है और छोटी सिचाई के लिए इसके अतिरिक्त 6,080 करोड रुपए और 4,140 करोड रुपए कमान क्षेत्र विकास और बाढ नियन्त्रण पर खर्च करने का प्रस्ताव है। इस प्रकार कुल मिलाकर सिचाई पर 33,060 करोड रुपए का परिव्यय होगा। 1996-97 तक इस प्रकार 150 लाख हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि को सिचाई उपलब्ध कराने का लक्ष्य तय किया गया है। अत 1996-97 के अन्त तक कुल 940 लाख हेक्टेयर भूमि को सिचाई सुविधाएँ उपलब्ध कराई जा सकेगी।

सिचाई क्षमता का अल्पप्रयोग

एक बात जिसकी ओर ध्यान देना आवश्यक है और जिसकी बहुत अधिक उपेक्षा की गई है, भारतीय खेती मे जल-प्रयोग की कुशलता को बढाना है। इसके लिए पानी का भाप के रूप मे, या अत्यधिक सिचाई करने या रिसने (Seepage) के कारण पानी के नुकसान को न्यूनतम करने का प्रयास करना चाहिए। इस प्रकार यह अनुमान लगाया गया है कि सिचाई आधीन क्षेत्रफल को 50 प्रतिशत या 100 प्रतिशत तक भी बढाया जा सकता है।

पूर्व स्थापित सिचाई सुविधाओ का श्रेष्ठतर उपयोग भी उतना ही महत्त्व रखता है। अभी तक हम अपने सिचाई सम्बन्धी विनियोग से अधिकतम लाभ प्राप्त करने मे बुरी तरह विफल हुए हैं और इस प्रकार सिचाई आधीन भूमि द्वारा कृषि उत्पादन को अधिकतम योगदान उपलब्ध न कराया गया। अत सिचाई से यदि बहुफसल नहीं तो दोहरी फसल तो अवश्य प्राप्त की जानी चाहिए परन्तु सत्य तो यह है कि भारत का अधिकतर सिचाई प्राप्त क्षेत्र अभी भी एक-फसली क्षेत्र है। (देखिए तालिका 4)।

1950 51 मे कुल सिचाई क्षेत्र का 8 2 प्रतिशत एक से अधिक बार बोया गया यह बढकर 1970 71 मे 22 1 प्रतिशत हो गया और 1990-91 मे 33 2 प्रतिशत। दूसरे शब्दो मे 618 लाख हेक्टेयर सिचाई आधीन क्षेत्र मे से 144 लाख हेक्टेयर (या 23 3 प्रतिशत) एक से अधिक बार बोया गया। या तो अधिकतर सिचाई से केवल एक फसल की सुरक्षा होती है या सिचाई प्राप्त क्षेत्रो मे कृषि व्यवहार इतने विकसित नही हुए कि एक से अधिक फसल प्राप्त हो सके।

यदि हम यह कल्पना कर ले कि समग्र सिचाई प्राप्त क्षेत्र पर दो फसले उगाई जा सकती हैं तब एक फसल के आधार पर सिचाई प्राप्त भूमि के 76 प्रतिशत का अल्पप्रयोग हो रहा है। इस प्रकार का अल्पप्रयोग सरकारी उद्यमो के किसी भी अन्य प्रकार मे पाया नहीं जाता। वैज्ञानिको ने सिचाई प्राप्त भूमि पर 10 से 12 टन प्रति हेक्टेयर अनाज उत्पन्न करने की सभावना बताई है यदि बहु फसल पद्धति या फसलो के उचित विकल्प शस्य चक्र अपनाए जाएँ। अत यह स्पष्ट है कि वर्तमान सिचाई साधनो के पूर्ण प्रयोग द्वारा ही खाद्यान्न के 1 760 लाख टन के वर्तमान उत्पादन को बढाकर 3 000 या 5 000 लाख टन तक ले जाया जा सकता है।

तालिका 4 सिचाई प्राप्त भूमि पर दोहरी या बहु फसल की सीमा

	सिंचाई प्राप्त क्षेत्र (लाख हैक्टर)			शुद्ध सिचाई प्राप्त क्षेत्र में दोहरी फसल आधीन क्षेत्र का प्रतिशत
वर्ष	कुल	शुद्ध	एक से अधिक बार बोया गया क्षेत्र	
1950 51	226	209	17	8 2
1970 71	382	311	71	22 1
1980 81	496	388	108	27 8
1990 91	618	474	144	33 3

इस अल्पप्रयोग के कुछ महत्त्वपूर्ण कारण और उन्हे दूर करने के सुझाव निम्नलिखित है–

(i) आज भारत के अधिकतर किसानो को सिचाई के प्रयोग के अनुकूलतम परिणाम प्राप्त करने के लिए आवश्यक ज्ञान नहीं है। उन्हे उचित कृषि व्यवहार जिसमें शीघ्र पकने वाली फसलो की उचित किस्में उचित शस्यचक्र आदि हैं की जानकारी नहीं है। इस सम्बन्ध में बेहतर विस्तार सेवाएँ उपलब्ध करानी होंगी और इन्हे अनुसधान सम्बन्धी सेवाओ एव वैज्ञानिको से सम्बन्धित करना होगा ताकि बहु-फसल व्यवहार अपनाए जा सके।

(ii) *सिचाई के अनुकूलतम प्रयोग के लिए सहायक* सुविधाएँ अर्थात् भू-समतलीकरण (Land levelling) स्थल सुधार (Land shaping) भूमियो की चकबन्दी कुशल भू कुल्याएँ आदि देश के बृहत से भागो में उपलब्ध नहीं हैं। इस स्थिति के सुधार के लिए बडे पैमाने पर ग्राम सार्वजनिक निर्माण कार्य चालू करने होंगे।

(iii) आज बडी तथा मध्यम सिचाई परियोजनाओ का उचित रूप मे अनुरक्षण नहीं हो रहा है। छोटी सिचाई की परियोजनाएँ, विशेषकर तालाबो और खुले कुओ की अधिकतर उपेक्षा की गई है। इस महत्त्वपूर्ण दोष को दूर करने के लिए यह अनिवार्य है कि वर्तमान सिचाई पद्धति का नवीकरण (Renovation) और आधुनिकीकरण किया जाए। सिचाई परियोजनाओं–बडी तथा छोटी दोनो–का अनुरक्षण करना होगा ताकि समाज को अधिकतम लाभ प्राप्त हो। साथ ही नहरी सिचाई के साथ उचित स्थानो पर कुओ द्वारा सिचाई को विकसित करना होगा।

(iv) आज दोषपूर्ण सिचाई व्यवहार और उचित एवं पर्याप्त जल निकास सुविधाओ का अभाव न केवल जल के अपव्यय के लिए जिम्मेदार है बल्कि जललग्नता (Waterlogging) लवणता (Salinity) एव क्षारयुक्तता (Alkalinity) के लिए भी उत्तरदायी है जिनके कारण कृषि योग्य भूमि के बडे भाग को स्थायी हानि पहुची है। जल प्रबन्ध सम्बन्धी शिक्षा और जल निकास सुविधाओं की स्थापना द्वारा यह दोष दूर किया जा सकता है।

सामान्य रूप मे दोहरी एव बहुफसल कार्यक्रम को प्रोन्नत करने के लिए अखिल भारतीय समन्वित कार्यक्रम बनाना होगा ताकि पानी का अनुकूलतम प्रयोग हो सके। उद्देश्य यह है कि प्रति हैक्टेयर उत्पादिता को सिचाई प्राप्त क्षेत्रो मे बढाया जाए। यही एकमात्र उपाय है जिससे कृषि की नयी चुनौती का सामना किया जा सकता है।

बहुउद्देश्यीय नदी घाटी परियोजनाएँ–एक वाद-विवाद (*Multipurpose River Valley Projects A Controversy*)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के फौरन बाद के काल में बहु-

उद्देश्यीय नदी घाटी परियोजनाएँ और अन्य बांध और नहरें भारत की कृषि की सिंचाई सम्बन्धी आवश्यकताओ, उद्योगो के लिए बिजली और बाढ नियन्त्रण के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझी जाती थीं। अत बांधो के निर्माण को हमारी आर्थिक योजनाओ मे उच्च प्राथमिकता दी गई और बांधो एव नहरो पर कुल योजना परिव्यय मे 15 000 करोड रुपए या 15% इस कार्य पर खर्च किया गया। भारत विश्व के बांध-निर्माण करने वाले राष्ट्रो मे बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। जवाहरलाल नेहरू के अनुसार बांध आधुनिक भारत के मन्दिर हैं। अभी तक सिंचाई एव जल विद्युत भारत मे जल-ससाधनो के विकास के प्रमुख उद्देश्य रहे हैं।

महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ—बडी एव मध्यम सिंचाई परियोजनाओ पर भारी विनियोग करने से महत्त्वपूर्ण परिणाम सामने आए हैं। बडी तथा मध्यम परियोजनाओ द्वारा स्थापित सिंचाई-दक्षता के कारण सिंचाई आधीन क्षेत्र जो 1950-51 मे 100 लाख हेक्टेयर था बढकर 1990-91 मे 303 लाख हेक्टेयर हो गया है। कृषि मे सफलता और खाद्यान्नो मे आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के एकमात्र उपाय के रूप मे सिंचाई सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कारणतत्व है।

इस प्रकार जल-विद्युत का उत्पादन जो 1950-51 मे 30 करोड किलोवाट घण्टे था बढकर 1990-91 मे 7 200 करोड किलोवाट घण्टे हो गया-अर्थात् इसमे 24 गुना वृद्धि हुई।

(क) सिंचाई के लाभो मे अतिशयोक्ति—ऊपर दी गई उपलब्धियो का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से पता चलता है कि ये उपलब्धियाँ वास्तव मे इतनी प्रभावी नहीं हैं। चाहे 1951 और 1990 के बीच बडी तथा मध्यम सिंचाई परियोजनाओ द्वारा 230 लाख हेक्टेयर तक की सिंचाई-क्षमता (Irrigation potential) कायम की गई किन्तु नालियो एव जल-मार्गों के निर्माण में विलम्ब होने के कारण वास्तविक रूप मे सिंचाई प्राप्त क्षेत्रफल कहीं कम था। योजना आयोग ने यह बात स्वीकार की है कि बडी तथा मध्यम सिंचाई परियोजनाओ की उत्पादिता एव वित्तीय रूप में प्रत्याय-दर निराशापूर्ण ढग से निम्न है। उदाहरणार्थ, सिंचाई आधीन भूमि से वार्षिक औसत राष्ट्रीय उत्पादिता 17 क्विन्टल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है जबकि इससे कम-से-कम 40 से 50 क्विन्टल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, अधिकतर राज्य अपनी सिंचाई परियोजनाओ से कार्यकारी व्यय (Working expenses) भी वसूल नहीं कर पा रहे हैं क्योकि वे समुन्नति कर (Betterment levy) लगाने और उगाहने मे रुचि नहीं रखते। छठी योजना ने 430 करोड रुपए की वार्षिक हानि का अनुमान लगाया।

इस सम्बन्ध मे सबसे गम्भीर समस्या बडी तथा मध्यम परियोजनाओ को पूरा करने में विलम्ब है जोकि सामान्यतया 15 से 20 वर्ष तक हो जाता है और जिसके परिणामस्वरूप इनकी लागत बहुत बढ जाती है।

(ख) जल विद्युत सस्ती नहीं—जल विद्युत मे निहित मुख्य लाभ यह है कि यह ऊर्जा का एक नवीकरणयोग्य (Renewable) और गैर-प्रदूषित करने वाला स्रोत है। यह भी समझा जाता है कि तापीय एव न्यूक्लिक ऊर्जा (Nuclear power) की तुलना मे यह सस्ता है। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि जल विद्युत परियोजनाओ को चालू करने मे लगातार विलम्ब होता ही रहता है। जल-विद्युत परियोजनाओ की परिपाक अवधि सामान्यत 5 से 12 वर्ष के बीच रहती है जबकि तापीय-शक्ति (Thermal power) की केवल 5 वर्ष। परिणामत तापीय ऊर्जा के जनन की लागत 4 000 रुपए प्रति किलोवाट है जबकि यह जल-विद्युत के लिए 7 000 रुपए है।

1951 और 1991 के बीच जल-विद्युत की स्थापित क्षमता मे आश्चर्यजनक वृद्धि के बावजूद इसका कुल स्थापित क्षमता में भाग जो 1950-51 मे 33 प्रतिशत था गिरकर 1990-91 मे 29 प्रतिशत हो गया। एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जल-विद्युत के लाभ अधिकतर उद्योगो एव शहरी क्षेत्रो को उपलब्ध हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि बिजली की कमी के काल मे कृषि की आवश्यकताओ की उपेक्षा करके शहरी प्रयोक्ताओ को प्राथमिकता दी जाती है। पजाब और हरियाणा के सम्पन्न किसान ऐसे आपातकाल के लिए डीजल पम्प भी रखते हैं।

(ग) बाढ-नियन्त्रण का लाभ नहीं—नदी के जल को रोककर बांध इसे नियत्रित दर पर छोडते हैं ताकि यह बाढ की रोकथाम कर सकें। तथाकथित बहु-उद्देश्यीय नदी-घाटी परियोजनाए अपने-अपने क्षेत्रो मे बाढो क रोकने के लिए कायम की गई हैं। राष्ट्रीय बाढ नियन्त्रण प्रोग्राम मे 1954 मे बहुत से बांध निकास-नालियो एव नगर तथा ग्राम विकास योजनाए चालू की गई। मोटे तौर पर बाढ नियन्त्रण सम्बन्धी उपाय बुरी तरह विफल हुए हैं और साल-दर साल बाढो के कारण प्रभावित क्षेत्र और फसलो पशुओ एव इन्सानो को होने वाले नुकसान मे तेजी से वृद्धि हुई है।

बडे बांधो की एक और समस्या भारी मात्रा मे गाद (Silt) का जलाशयो (Reservoirs) मे जम जाना है। गाद जमने की दर मौलिक अनुमान से अधिक रही है। भारी गाद जमने से जलाशय की सग्रहण क्षमता (Storage capacity) कम हो जाती है और परिणामत वे भारी बाढ को समोने के योग्य नहीं रहते। प्राय एकदम पानी बढ जाने से कई बार अचानक बाढ आ जाती है जिससे भारी नुकसान होता है।

(घ) पर्यावरण पर दुष्प्रभाव—बडे बांधो और विशाल

बहु-उद्देश्यीय नदी-घाटी परियोजनाओ के पर्यावरण पर गम्भीर दुष्प्रभाव पडते हैं। इसका एक प्रधान रूप जलग्रस्तता एव भू-लवणता (Soil salinity) के कारण सिचाई परियोजनाओ के कमान-क्षेत्रो मे भूमि का कटाव है।

बडी सिचाई परियोजनाओ के साथ बहुत-सी समस्याएँ जुडी हुई है। सर्वप्रथम, यह देखा गया है कि सारे विश्व मे, जितनी भूमि नयी परियोजनाओ द्वारा उत्पादन के आधीन लाई जाती है, उतनी ही भूमि जलग्रस्तता (Waterlogging) और लवणता के कारण उत्पादन से बाहर चली जाती है। दूसरे, बडी परियोजनाओ की परिपाक अवधि (Gestation period) बहुत लम्बी होती है। कई बार तो यह परिपाक अवधि बढते-बढते एक या दो दशक या इससे भी अधिक हो जाती है। तीसरे, इन प्रोजेक्टो के साथ जुडे हुए अनेक अधिकारी सामान्यत भ्रष्ट एव अकुशल होते हैं और इस कारण लागत वृद्धि (Cost over runs) कही अधिक हो जाती है। चौथे, बहुमूल्य कृषि भूमि का एक बडा भाग वितरण प्रणाली का विकास करने मे नष्ट हो जाता है। अन्तिम परन्तु यह कम महत्त्वपूर्ण बात नही है कि धीरे-धीरे रिसने (Seepage) से पानी की उपलब्धि मे बहुत हानि होती है और कई बार यह हानि छोडे गए पानी की 50 प्रतिशत मात्रा के उच्च स्तर तक पहुच जाती है। इसका मुख्य कारण यह है कि वितरण सम्बन्धी नालियाँ कच्ची होती हैं और परिणामत जलग्रस्तता एक गम्भीर समस्या बन जाती है।

अत डॉ बी बी वोहरा का यह निष्कर्ष निकालना सही है-"बडी तथा मध्यम सिचाई का भविष्य धुधला है और देश के पास इस उपाय से 260 लाख एकड़ भूमि मे अतिरिक्त सकल सिचाई क्षमता कायम करने के लिए न ही तो ससाधन उपलब्ध है और न ही समय। अत सभी भावी योजनाओ का मुख्य आधार छोटी सिंचाई, विशेषकर भौम-जल के प्रयोग द्वारा ही होगी।"

सातवी योजना के दौरान, बडी सिचाई के लिए 11,560 करोड रुपए का प्रावधान किया गया परन्तु छोटी सिचाई के लिए 1,670 करोड रुपए की मामूली राशि उपलब्ध कराई गई। बडे सिचाई बाधो के पक्ष मे सम्मोहन समाप्त होना चाहिए और पहले की तुलना मे छोटी सिचाई के लिए कही अधिक राशि का प्रावधान होना चाहिए। छोटी सिचाई की परिपाक अवधि भी कहीं छोटी होती है और इसका कार्यान्वयन निजी क्षेत्र द्वारा कुएँ, ट्यूबवैल, पम्पसैट आदि स्थापित करके किया जाता है। अत इसमे वितरण सबधी नालियो के कारण भूमि का अपव्यय नहीं होता। छोटी सिचाई के साथ जलग्रस्तता की समस्याए भी जुडी नहीं रहती। किसान पानी के प्रयोग मे किफायत करते है क्योकि यह व्यवस्था प्रत्यक्षत उनके नियन्त्रण-आधीन होती है। अत. बेहतर प्रबन्ध की दृष्टि से भारी वित्तीय लागत एवं पर्यावरण पर दुष्प्रभाव डालने वाले बड़े बांध लाभकारी नहीं है परन्तु इस दृष्टि से छोटी सिचाई अधिक लाभप्रद है क्योकि इससे भौम-जल का अधिकतम प्रयोग सुनिश्चित किया जाता है और सिचाई स्रोतो पर बेहतर नियन्त्रण रहता है।

हाल ही के वर्षों मे बहुत से बुनियादी प्रश्न उठाए गए है और समय आ गया है कि सिचाई नीति पर पुनर्विचार कर नयी नीति निर्माण की जाए और बहु-उद्देश्यीय नदी घाटी परियोजनाओ पर बल कम किया जाए।

2. उर्वरक और खाद
(Fertilizers and Manures)

कृषि उत्पादन को बढाने की किसी भी योजना में रासायनिक खादो (Chemical fertilizers) का महत्त्वपूर्ण भाग होता है। भारत की भूमि घाटे नाना प्रकार की है तथा कई प्रकार से उपजाऊ है परन्तु इसमे नाइट्रोजन और फॉस्फोरस की कमी है जो कि कार्बनिक खाद (Organic manure) के साथ फसल के उत्पादन को बढावा देते हैं। जनसख्या के तीव्र गति से बढने के साथ, खाद्यान्न-उत्पादन को बढाने के लिए अधिकाधिक मात्रा मे रासायनिक खादो का प्रयोग एक अनिवार्य उपाय हो जाता है।

उर्वरकों का उत्पादन—मोटे तौर पर उर्वरक उद्योग ने पिछले दशक के दौरान तीव्र प्रगति की। नाइट्रोजन उर्वरक का उत्पादन 1960-61 और 1994-95 के बीच 1 लाख टन से बढकर 100 लाख टन से अधिक हो गया। उर्वरको के देशीय उत्पाद मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है परन्तु उपभोग में वृद्धि को दृष्टि मे रखते हुए यह पर्याप्त नहीं है।

उर्वरक सयत्र स्थापित करने मे अत्यधिक विलम्ब हुआ है। कई बार एक प्रोजेक्ट को स्थापित करने मे 8 से 9 वर्ष तक लग जाते है और इस कारण इसकी लागत अनावश्यक रूप मे बढ़ती जाती है। दूसरे, उर्वरक प्रोग्राम के लिए पूँजी की समस्या है। यह अनुमान लगाया गया है कि एक प्रोजेक्ट के लिए 1,000 से 1,500 करोड रुपए चाहिए जिसमे से विदेशी मुद्रा का भाग 350 करोड रुपए या इससे कुछ अधिक आका गया है। अधिक विदेशी विनियोग की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए, भारत सरकार ने उर्वरक उद्योग मे विदेशी पूँजी को आकर्षित करने के लिए 1965 के अन्त पर कुछ रियायते दीं, जैसे बहुसख्यक हिस्सा पूजी सहयोग, वितरण अधिकार आदि। परन्तु इन सभी रियायतो के देने के बावजूद विदेशी सहयोग बहुत कम था। इसके मुख्य कारण थे-(क) भारत को उर्वरको के आयात की लाभदायकता बहुत ही ऊँची रही है और (ख) कच्चे मालों की प्रकृति एव उपलब्धि के बारे मे नीति मे अनिश्चितता रही है।

उर्वरकों का आयात–चूंकि आन्तरिक उत्पादन लगातार बढती हुई माग से कम हो रहा है, सरकार को आयात पर निर्भर करना पडा है। आन्तरिक उत्पादन की तुलना मे उर्वरको के आयात का प्रतिशत सदैव बहुत अधिक रहा है। 1951-52 मे रासायनिक उर्वरको का आयात आन्तरिक उत्पादन का 133 प्रतिशत था और यह 1980-81 में कम होकर 92 प्रतिशत हो गया और 1993-94 मे और कम हो कर केवल 29 प्रतिशत रह गया। 1951-52 और 1994-95 के बीच उर्वरक आयात 0 52 लाख टन से बढकर 15 2 लाख टन हो गया। (तालिका 5) परन्तु अस्सी के दशक और 1990-91 से 1994-95 के बीच उर्वरको का औसत वार्षिक आयात 25 लाख टन रहा। इतनी बडी मात्रा में उर्वरको का आयात करना जिसके लिए दुर्लभ विदेशी मुद्रा का प्रयोग करना पडता है, सही नहीं है। इसका मुख्य कारण देश मे उर्वरको के उत्पादन की इकाइयाँ स्थापित करने के बारे मे स्पष्ट नीति का अभाव रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में, उर्वरक दुर्लभ होते जा रहे थे और तेल सकट के प्रभाव के कारण 1973 के पश्चात् इनकी कीमत मे तेजी से वृद्धि हो रही थी। इस प्रकार भारत को उर्वरको के आयात पर औसतन 2,800 करोड़ रुपए प्रति वर्ष खर्च करने पड रहे थे।

तालिका 5 . भारत मे रासायनिक उर्वरको का उत्पादन, आयात एव उपभोग

वर्ष	उत्पादन	आयात	उपभोग	प्रति हेक्टेयर उपभोग (किलोग्राम)
	(हजार टन)			
1951-52	39	52	70	0 5
1960-61	166	420	290	1 9
1970-71	1 060	630	2 260	13 1
1980-81	3 000	2,760	5 510	31 8
1993-94	10 000	2 940	13 800	69 0

स्रोत भारत सरकार, आर्थिक समीक्षा (1994-95)

उर्वरको का उपभोग–1965 मे नयी विकास रणनीति अपनाने के पश्चात् रासायनिक उवरको (Chemical fertilizers) के उपभोग मे तीव्र वृद्धि होती गई है। हाल ही के वर्षों मे उर्वरको के वितरण को सही करने के लिए विशेष उपाय किए गए। इनमे उल्लेखनीय हैं–परिवहन की अच्छी व्यवस्था करना, प्राथमिकता प्राप्त फसलो को उर्वरको का नियमित सभरण, रेलवे विभाग के साथ समन्वय द्वारा वैगनो की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध कराना, उवरको के लिए अल्पकालीन ऋणो की व्यवस्था, उवरको के सतुलित प्रयोग को प्रोन्नत करना, आदि। चाह हाल ही क वर्षो म भारत मे उर्वरको के उपभोग मे भारी वृद्धि हुई है परन्तु अभी भी भारत अन्य प्रगतिशील देशो से बहुत पीछे है।

उर्वरक के उपभोग के बार मे उल्लेखनीय बातें निम्नलिखित हैं–

(i) 1994-95 मे भारत मे उर्वरको का प्रति हेक्टर उपभोग 75 किलोग्राम था। इसके विरुद्ध, कुछ विकसित देशो सम्बन्धी आकडे इस प्रकार हैं दक्षिण कोरिया (405 कि ग्रा), नीदरलेण्ड (315 कि ग्रा), बैल्जियम (275 कि ग्रा) और जापान (380 कि ग्रा)।

(ii) उर्वरको के गहन प्रयोग के लिए पानी का निश्चित सभरण एक महत्त्वपूर्ण शर्त है। देश के अधिकतर भागो मे यह परिस्थिति विद्यमान न होने के कारण यह भारत के उर्वरक-उपभोग को बढाने मे एक मुख्य कठिनाई सिद्ध हुई है।

(iii) चूकि वर्षा पर आश्रित 70 प्रतिशत काश्त आधीन क्षेत्रफल द्वारा कुल उर्वरको के केवल 20 प्रतिशत का उपभोग किया जाता है सरकार इन क्षेत्रो मे उर्वरको के उपभोग को बढाने के लिए हाल ही के वर्षों मे उपाय कर रही है। सरकार ने एक राष्ट्रीय प्रोजेक्ट के आधीन 16 राज्यो के 60 जिले निश्चित किए हैं जिनमे उवरको का प्रयोग बहुत कम था। इसे बढाने के लिए प्रदर्शन, किसानो के प्रशिक्षण, परचून की दुकानो एव मिट्टी के परीक्षण सम्बन्धी उपाय किए जा रहे हैं।

(iv) रबी की फसले (खाद्य-भिन्न) हमारे कुल कृषि-उत्पादन के एक-तिहाई के समान हैं। फिर भी इनके द्वारा दो-तिहाई कुल उर्वरक उपभोग किया जाता है। इसका कारण यह है कि इनके लिए सिचाई की अपेक्षाकृत निश्चित मात्रा उपलब्ध है या भू-गर्भ मे पर्याप्त नमी उपलब्ध है।

(v) उवरको पर प्राप्त होने वाले अर्थसाहाय्यो (Subsidies) मे तेजी से वृद्धि हुई है। ये 1979-80 मे 600 करोड रुपए से बढकर 1992-93 मे 5,800 करोड रुपए हो गए। तत्पश्चात इनम कमी हुई है और ये 1993-94 मे 4,400 करोड रुपये और 1994-95 मे 4,000 करोड रुपये तक कम किए गए है। यह हमार सरकारी ससाधनो पर अत्यधिक भार है और दु ख की बात यह है कि ये साहाय्य अधिकतर सम्पन्न किसानो को प्राप्त होते हैं।

(vi) उवरको की अन्तर्राष्ट्रीय कीमतो मे वृद्धि के कारण अब हम इस बात पर विचार करने पर मजबूर हुए कि वनस्पति पोषको (*Plant nutrients*) का प्रयोग किया जाए। कम-से-कम सिद्धान्त रूप मे यह स्वीकार किया जा रहा है कि कार्बनिक खादो की ओर अब पहले की अपेक्षा अधिक ध्यान देना होगा।

आठवीं योजना म उवरक विकास रणनीति को कार्बनिक खाद क प्रयोग की ओर मोडा जा रहा है। इसमे

गोबर की खाद वनस्पति खाद (Compost) ग्रामीण एव शहरी दोनो शामिल हैं। एक रूक्ष अनुमान के अनुसार एक तिहाई गोबर इकट्ठा नहीं किया जाता और एक तिहाई का इस्तेमाल ग्रामीण लोग ईधन के रूप म कर लेते हैं और वास्तव मे एकत्रित किए और इस्तेमाल किए गोबर की मात्रा 3 400 लाख टन आकी गई है। आज पशुओ का पेशाब जिसमे खाद सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण गुण है को पूर्णतया व्यर्थ बहने दिया जाता है। यदि पशुओ के पेशाब को गोबर के साथ मिला लिया जाए, तो कुल उपलब्ध खाद की मात्रा 4 000 लाख टन हो जाएगी। ग्रामीण जनसख्या के लिए यदि विकल्प ईंधन की व्यवस्था कर दी जाए, तो इससे गोबर की खाद अधिक मात्रा मे उपलब्ध हो सकेगा। इसके अतिरिक्त गाबर गैस प्लान्ट के बढते हुए उपयोग से भी काबनिक खाद की मात्रा किसानो को उपलब्ध हो सकेगी। शहरी व्यर्थ पदार्थों वनो के घास और अन्य व्यर्थ पदार्थों का प्रयोग भी हरी खाद के लिए किया जा सकता है। इन उपायो से रासायनिक खादो पर निर्भरता कम की जा सकती है।

3 उन्नत बीज

भारतीय किसान खेती मे उन्नत बीजो के महत्त्व से परिचित हैं। कारण यह है कि उन्नत बीजो द्वारा 10 से 20 प्रतिशत उत्पादन वृद्धि हो सकती है। परन्तु वे सामान्यतया इस प्रकार के बीजो का प्रयोग करते हैं क्योकि या तो अच्छे बीज जो बुआई के लिए रखे जाते हैं उपभोग कार्य मे लाए जाते हैं या सग्रह न कर सकने के कारण वे नष्ट हो जाते हैं। अधिक महत्त्व की बात यह है कि किसान उन्नत बीजो का प्रयोग करें। कृषि विभाग तथा भारतीय कृषि अनुसधान परिषद ने उन्नत बीजो का विकास करने और उन्हे लोकप्रिय बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उदाहरणार्थ विश्व मे प्रसिद्ध गेहूँ और धान की कुछ सर्वोत्तम किस्मो का भारत मे विकास किया जा रहा है परन्तु ये बीज थोडी मात्रा में उपलब्ध हैं। द्वितीय योजना मे उन्नत किस्मो मे बीज की माग को पूरा करने के लिए प्रत्येक विकास खण्ड (Development block) में बीज फार्म (Seed farms) बनाए गए। सरकार ने 1963 मे राष्ट्रीय बीज निगम (National Seeds Corporation) की स्थापना की है जिसका उद्देश्य देश भर के लिए उन्नत उत्पादिता वाले बीजो का उत्पादन एव वितरण करना है। 1973 74 तक 260 लाख हेक्टेयर भूमि उन्नत बीजो के आधीन थी और 1991 92 तक 670 लाख हेक्टेयर भूमि अधिक उपजाऊ किस्म के बीजो के आधीन लाई गई।

4 भारत मे पशुपालन एव दुग्धशाला विकास

पशुधन किसी भी देश के लिए आय का महत्त्वपूर्ण स्रोत बन सकते हैं। वास्तव में पशुपालन द्वारा खेती की तुलना मे अधिक आय भी प्राप्त हो सकती है। हाल ही के वर्षों मे पश्चिमी यूरोप के देशो मे कुल कृषि उत्पादन में पशुपालन उत्पादन का योगदान 60 से 80 प्रतिशत रहा है। पशुधन से भारत मे उत्पादन का कुल मूल्य 70 000 करोड रुपये है जोकि कुल कृषि उत्पाद का 25 प्रतिशत है। इसमें पशुओ द्वारा उपलब्ध करायी गयी भारवाहक ऊर्जा (Draught power) को शामिल नहीं किया गया जिसका मूल्य 25 000 करोड रुपये आका गया है। उन्नत देशो में पशुधन सम्बन्धी उत्पाद अर्थात् गोश्त दूध और दूध से बनी हुई वस्तुओ को लोगो ने भोजन सम्बन्धी आदतो में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इन देशो मे पारम्परिक भोजन सम्बन्धी मदो अर्थात् अनाज और दालो का खाद्य पदार्थों में धीरे धीरे महत्त्व कम होता जा रहा है। परिणामत उपभोक्ताओ की प्राथमिकताओ मे परिवर्तन के कारण बहुत से यूरोपीय देशो अमेरिका कनाडा आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड जैसे विकसमान देशो मे कृषि के विकास मे प्रगतिशील और उन्नत पशुधन को केन्द्रीय महत्त्व दिया गया है।

भारतीय अर्थव्यवस्था मे पशुपालन का महत्त्व कमजोर वर्गों मे बेरोजगारी एव अल्प रोजगार को गम्भीर समस्याओं को हल करने की दृष्टि से बहुत ही अधिक है। इसके अतिरिक्त पशुपालन द्वारा सहायक व्यवसाय कायम करके आय जनन मे सहायता प्राप्त होती है। खुश्क कृषि में विशेषकर थोडी या नाममात्र वर्षा वाले इलाको मे पशुओ का प्रभावी कार्यभाग है। पशुपालन और दुग्धशाला विकास का प्रयोग गरीबी हटाओ प्रोग्राम के उपाय मे किया जा रहा है ताकि इससे अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध करा कर ग्रामीण निर्धनो की पारिवारिक आय बढायी जा सके।

भारत और विश्व मे पशुधन

भारत के पास पशुओ की सबसे अधिक सख्या है चीन का दूसरा स्थान है। आस्ट्रेलिया बेल्जियम डेनमार्क स्वीडन स्विटजरलैण्ड फिनलैण्ड आयरलैण्ड इटली नार्वे नीदरलैण्ड आदि के पास पशुओ की सख्या तो कुल के 1 प्रतिशत से भी कम है परन्तु इन देशो मे पशुधन पर आधारित उद्योग काफी विकसित हैं। पशुओ की चराई के लिए चरागाहो के रूप मे काफी भूमि चाहिए परन्तु भारत के पास प्रति पशु सबसे कम चराई भूमि (Grazing land) है। जाहिर है कि भारत मे पशुओ का आधिक्य है। तालिका 6 मे पशुगणना के अनुसार पशुधन की स्थिति व्यक्त की गई है।

तालिका 6 · भारत में पशुधन (करोड़ों में)

	1956	1966	1972	1982	1989
1 गोधन	15 9	17 6	17 9	19 2	19 4
2 भैंस	4 5	5 3	5 8	7 0	7 7
3 भेडें	3 9	4 2	4 0	4 9	4 5
4 बकरियाँ	3 5	5 5	6 8	9 5	11 0
5 अन्य	0 8	0 8	8 8	1 4	1 2
कुल	30 6	34 4	35 5	42 0	43 8

1989 को पशुगणना के अनुसार भारत मे 44 करोड पशु थे जिनमे से गोधन 19 4 करोड, भैंसें 7 7 करोड और बकरियाँ 11 करोड थीं। इस प्रकार सख्या की दृष्टि से 1972 और 1989 के बीच पशुधन की मात्रा मे 23 4 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

पशुधन और भारत की राष्ट्रीय आय

1980-81 मे पशुधन से उत्पादन का कुल मूल्य 10,597 करोड रुपए (1980-81 की कीमतो) पर था। यह (1987-88) मे बढकर 15,218 करोड रुपए हो गया। 1980-81 और 1987-88 को अवधि के दोरान कुल मूल्य वृद्धि का सूचकाक बढकर 143 6 हो गया अथात् इसकी वार्षिक वृद्धि दर 5 3 प्रतिशत थी। जाहिर है कि पशुधन के उत्पादन मे वृद्धि कृषि मे शुद्ध मूल्यवृद्धि (Net value added) को वृद्धिदर से अधिक है। यह कृषि से प्राप्त शुद्ध आय के 1980-81 में 18 6 प्रतिशत से बढकर 1987-88 में 23 प्रतिशत हो गई है। यह एक स्वस्थ प्रवृत्ति है।

तालिका 7 · पशुधन के उत्पादन का मूल्य
(1980-81 की कीमतो पर करोड़ रुपए)

	1980-81	1987-88	प्रतिशत
1 दूध और दूध से बनी वस्तुएँ	6 884	10 134	66 6
2 गोश्त और गोश्त की वस्तुएँ	1,570	2,271	14 9
3 अण्डे	351	606	4 0
4 ऊन और बाल	49	66	0 4
5 गोबर	1 352	1,525	10 0
6 रेशम के कीडे और मधु	136	197	1 3
7 स्टाक मे वृद्धि	255	419	2 8
पशुधन उत्पादन का मूल्य	10 597	15 218	100 0

1987-88 मे पशुधन द्वारा उपलब्ध कराई गइ आय मे से लगभग 6 7 प्रतिशत दूध और दूध से बनी वस्तुओ, 15 प्रतिशत गोश्त और गोश्त वस्तुओ, 21 प्रतिशत अण्डो 10 *प्रतिशत गोबर से प्राप्त होते है। (तालिका 7)*

भारतीय गाय की दूध देने की क्षमता बहुत कम है। यह अनुमान लगाया गया है कि भारत मे गौओ से दूध को औसत वार्षिक प्राप्ति 220 किलोग्राम है, जबकि इसको तुलना मे यह नीदरलैण्ड्स मे 4,220 किलोग्राम है, बेल्जियम और यू एस. ए में 3,270 किलोग्राम और यू के मे 2,900 किलोग्राम है। जहाँ तक गोश्त का सम्बन्ध है, भारत मे उपलब्ध गोश्त का लगभग तीन-चौथाई भाग भेडो और बकरियो से प्राप्त होता है। गोमास के कुल गोश्त का 6 प्रतिशत प्राप्त होता है। चाहे भारत मे गोपशु कुल पशुधन का सबसे बडा भाग है परन्तु राष्ट्रीय आय मे इनका योगदान बहुत कम है।

भारत की राष्ट्रीय आय मे पशुधन के बहुत थोडे से योगदान के कई कारण हैं। भारतीय पशुधन की दयनीय स्थिति सिद्ध करती हे कि धर्म के नाम पर पशुओ के प्रति उदासीनता एव निर्दयता के कारण देश मे पशुधन की हालत खराब होती गई है।

भारत मे पशुओ की सख्या का एक बडा भाग बडी आयु के नर एव मादा पशुओ का हे जो न तो काम करने की अधिक क्षमता रखते हैं और न ही अधिक दूध देते हैं। ये पशु स्पष्टत देश के उपलब्ध साधनो पर एक बोझ हैं और कृषि उन्नति मे एक बाधा हैं।

इसके साथ, कृषि मशीनरी के विस्तार अर्थात् ट्रैक्टर, पम्पिग सैट आदि से किसानो की पशु-शक्ति पर निर्भरता कम होती जा रही है। इसमे सबसे बडी कठिनाई देश के किसानो की जोतो का छोटा तथा बिखर होना है जिनके कारण बहुत अधिक सख्या मे पशु रखने पडते हैं।

इस बात का भी सकेत करना होगा कि हमारे पशुओ के *लगभग 60 प्रतिशत के लिए पर्याप्त मात्रा मे चारा उपलब्ध है। अत* हमारे पशुओ को भी बहुत घटिया और कम भोजन मिलता है। किन्तु पशु-चिकित्सा सुविधाओं के विस्तार के परिणामस्वरूप इनमे मृत्युदर कम होती जा रही है। इसके फलस्वरूप, पशुओ की सख्या की वृद्धि-दर जनसख्या की भाति तीव्र होती जा रही हे और इस कारण देश मे पशुओ का आधिक्य हो गया है। देश मे 10 करोड पशु फालतू हैं और इनके पोषण के लिए देश में 5,000 करोड रुपए प्रति वर्ष खर्च होते हैं।

पचवर्षीय योजनाआ के आधीन पशुपालन विकास प्रोग्रामो के तीन मुख्य उद्देश्य हैं-(i) दूध और दूध से प्राप्त होने वाले पदार्थों के सम्भरण को बढाना, (ii) खेती के कार्य के लिए भारवाहक पशुओ (Draught Animals) की व्यवस्था करना, और (iii) पशुआ से प्राप्त होने वाले वाणिज्यिक पदार्थों अथात् ऊन, खालो आदि के उत्पादन को बढाना। सातवीं योजना (1985-90) मे पशुपालन और डेरी विकास के लिए 1,077 करोड रुपए के परिव्यय की व्यवस्था की गइ है।

विकास-योजनाओ के प्रभावाधीन दूध का उत्पादन बढकर 600 लाख टन हो गया है और "आप्रेशन फ्लड प्राजैक्ट" (Operation Flood Project) के कार्यान्वयन के कारण इसमे लगातार वृद्धि हो रही है क्योकि यह विश्व का 1970 मे चालू किया गया सबसे बडा समन्वित दुग्धशाला विकास (Dairy development) प्रोग्राम है। सितम्बर 1994 तक इस प्रोग्राम के आधीन 69 000 दुग्धशाला सहकारी समितियाँ कायम की गयी जिनसे 90 लाख किसान जुडे हुए थे। यह ग्रामीण दूध के उत्पादको को शहरी उपभोक्ताओ के साथ जोडता है और बिचौलियो और उनके कमीशन को समाप्त करता है।

हाल ही के वर्षों मे मुर्गीपालन भारत की कृषि अर्थव्यवस्था का मुख्य अग बनता जा रहा है क्योकि यह ग्राम समाज के कमजोर वर्गों के अतिरिक्त आय और रोजगार के अवसर उपलब्ध कराता है। मुख्य बल अण्डो और मुर्गियो के गोश्त का उत्पादन बढाने पर है। भारत मे अण्डो का उत्पादन जो 1951 52 मे 183 2 करोड था बढकर 1993 94 मे 2 400 करोड हो गया है अर्थात् इसम 13 गुना वृद्धि हुई है।

5 कृषि का यन्त्रीकरण
(Mechanisation of Agriculture)

भारतीय किसानो द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले औजार और उपकरण सामान्यतया पुराने तथा आदिकालीन हैं जबकि पश्चिमी देशो के किसान उन्नत तथा अद्यतन फार्म मशीनरी (Up to date farm machinery) का प्रयोग करते हैं। कृषि के यन्त्रीकरण क फलस्वरूप इन देशो मे भी कृषि क्रान्ति (Agricultural revolution) हुई है जिसकी तुलना 18वी शताब्दी मे हुई औद्योगिक क्राति से की जा सकती है। कृषि के यन्त्रीकरण के कारण उत्पादन मे वृद्धि हुई और लागत मे कमी। इसके अतिरिक्त कृषि मशीनरी द्वारा बजर भूमियो को काश्त योग्य बनाया जा सका। इसीलिए तो पश्चिमी देशो की समृद्धि का मुख्य कारण कृषि के यन्त्रीकरण को ही समझा जा सकता है। सामान्यत यह विश्वास सुदृढ हो गया कि कृषि के यन्त्रीकरण के बिना प्रगतिशील कृषि सम्भव नहीं।

कृषि के यन्त्रीकरण का अर्थ है कि जहाँ भी सम्भव हो *पशु तथा मानवशक्ति का मशीनरी द्वारा प्रतिस्थापन किया* जाए। हल चलाने का कार्य ट्रैक्टरो द्वारा होना चाहिए, बुवाई और उर्वरक डालने का कार्य ड्रिल (Drill) द्वारा करना चाहिए। इसी प्रकार फसल काटने का कार्य भी मशीनो द्वारा किया जाना चाहिए, कृषि के पुराने ढंगा और औजारो अर्थात् लकडी के हलो बैलो दरान्ती आदि की जगह *मशीनो का प्रयोग किया जाना चाहिए।* अत यन्त्रीकरण का अर्थ खेती की सभी क्रियाओ मे हल चलाने से लेकर फसल काटने तथा बेचने तक मशीनो का प्रयोग होता है।

भारत मे कृषि के विकास की गति तेज करने के लिए यन्त्रीकरण का प्रश्न महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा है। जहाँ एक ओर तो कृषि के यन्त्रीकरण के पक्के समर्थक मिलते हैं वहा दूसरी ओर विरोधी पक्ष के विचारक भारत की वर्तमान *आर्थिक एव सामाजिक परिस्थितियो मे फार्म मशीनरी का* प्रयोग बिल्कुल अनुचित मानते है। अब हम इन दोनो पक्षो के तर्कों को प्रस्तुत करेंगे।

कृषि यन्त्रीकरण के पक्ष मे तर्क

कृषि के यन्त्रीकरण का मुख्य आधार मशीनरी के *उपयोग द्वारा सम्भव होने वाली बडी पैमाने की* मितव्ययिताएँ (Economies of large scale production) है। जितनी धरती पर एक बैल की जोडी द्वारा 10 दिन हल चलाया जा सकता है उतनी भूमि पर ट्रैक्टर द्वारा एक दिन मे और अधिक गहरा हल चलाया जा सकता है। दूसरे फार्म मशीनरी ने मनुष्य को भारी काम से छुटकारा दिलाया है। उदाहरणार्थ भूमि का पुन सुधार भूमि की खुदाई और मिट्टी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना हल चलाना आदि सभी भारी काम हैं। तीसरे फार्म मशीनरी द्वारा बडे पैमाने की खेती सम्भव हो पाई। भूमि के बहुत बडे बडे खेत जोते जा सकते है भारी मात्रा मे फसल काटी जा सकती है बडी मात्रा मे उत्पादन मण्डी तक पहुचाया जा सकता है। इन सभी कार्यों को थोडे समय में करने के लिए कृषि मशीनो का प्रयोग होता है। इस प्रकार श्रम उत्पादिता तथा भू उत्पादिता बढाई जा सकती है। उत्पादन की लागत कम की जा सकती है। अन्तिम *यन्त्रीकरण से उद्योग परिवहन* आदि मे रोजगार के अवसर भी बढाए जा सकेगे और परिणामत कृषि से जिन लोगो का रोजगार छिन जाएगा वे अन्य क्षेत्रो मे रोजगार पा सकेगे।

पश्चिमी देशो विशेषकर सयुक्त राज्य अमेरिका और भूतपूर्व सोवियत सघ मे जहाँ कृषि का विस्तृत रूप में यन्त्रीकरण किया गया है कृषि उत्पादन कई गुना बढ गया है। उदाहरणार्थ अमेरिका मे 12 प्रतिशत जनसख्या कृषि पर निर्भर है परन्तु कृषि उत्पादन इतना बढ चुका है कि सयुक्त राज्य अमेरिका अन्य देशो को भी कृषि वस्तुओ का निर्यात करता है। चूकि कृषि की मुख्य समस्या उत्पादन को बढाना है इसलिए कृषि के यन्त्रीकरण की पुष्टि करना युक्तिसगत ही है।

परन्तु प्रयोग की दृष्टि से भी यन्त्रीकरण के लिए

काफी क्षेत्र उपलब्ध है। उदाहरणार्थ, ट्रैक्टरो द्वारा बडे पैमाने पर जंगल साफ किए जा सकते हैं, व्यर्थ भूमि को पुन काश्त योग्य बनाया जा सकता है और इसी प्रकार भू-रक्षण (Soil conservation) आदि मे सहयोग प्राप्त हो सकता है। ट्रैक्टरो के अतिरिक्त, पम्पिग सेटो (Pumping sets) तथा नलकूपो (Tube wells) के लिए काफी क्षेत्र विद्यमान है। इसी प्रकार तेल निकालने, गन्ने से रस प्राप्त करने आदि के लिए डीजल इजन तथा बिजली से चलने वाली अन्य मशीनो का प्रयोग किया जा सकता है।

यन्त्रीकरण के विरुद्ध तर्क (Case Against Mechanisation)

जबकि कृषि उत्पादन को बढाने की दृष्टि से यन्त्रीकरण के पक्ष मे तर्क दिए जा सकते हैं, वहाँ यन्त्रीकरण के विरोध मे भी सबल तर्क प्रस्तुत किए जा सकते हैं। सर्वप्रथम, भारत में जोतो का आकार छोटा होने के कारण (3 से 12 एकड के बीच) यन्त्रीकरण के लिए कोई जगह नहीं। फिर ये छोटी जोते भी ग्राम के विभिन्न भागो मे बिखरी हुई हैं। एक ट्रैक्टर को आधी एकड भूमि की काश्त के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। यन्त्रीकरण की एक अनिवार्य शर्त यह है कि कृषि-मशीनो का उचित एव अनुकूल प्रयोग करने के लिए जोतो का आकार बडा होना चाहिए, वे छोटे-छोटे टुकडो मे बिखरे नहीं होनी चाहिए जैसा कि भारत मे वर्तमान है। यू एस ए में जोत का औसत आकार 60 हैक्टेयर, कैनेडा मे 90 हैक्टेयर और सोवियत रूस मे 600 हैक्टेयर है। इन देशो मे तो यन्त्रीकरण सम्भव है परन्तु भारत मे इसकी कोई सम्भावना नहीं। यह तर्क इस बात की उपेक्षा करता है कि छोटे फार्मों की काश्त के लिए उचित मशीनो का विकास हो चुका है और वे सफल रूप से जापान मे इस्तेमाल की जा रही हैं।

दूसरे, कृषि के यन्त्रीकरण के कारण बहुत से कृषि श्रमिक फालतू हो जाएँगे। एक अनुमान के अनुसार यदि पूर्ण यन्त्रीकरण कर दिया जाए, तो भारत मे उपलब्ध कुल क्षेत्रफल को 30 से 40 लाख कृषको द्वारा जोता जा सकता है। इस प्रकार लाखो की सख्या मे किसान बेरोजगार हो जाएँगे और उन्हे विकल्प रोजगार (Alternative employment) उपलब्ध कराने की समस्या उत्पन्न होगी। इतनी बडी सख्या मे कृषि श्रमिको को कृषि-भिन्न व्यवसायो (Non agricultural occupations) मे रोजगार उपलब्ध कराना सम्भव नही। यन्त्रीकृत खेती (Mechanised farming) के विरुद्ध यह सबसे गम्भीर आपत्ति है। अमेरिका और कैनेडा मे वास्तविक समस्या श्रम की दुर्लभता है परन्तु भारत मे श्रम का आधिक्य है। इसलिए जो नीति कम जन-घनत्व वाले विकसित देशो के लिए लाभदायक एव उचित है, अनिवार्य नहीं कि वह भारत के लिए भी ठीक हो।

तीसरे, फार्म मशीनरी के लिए पैट्रोल, डीजल एव मिट्टी के तेल की आवश्यकता होगी। देश मे इन खनिज तेलो की बहुत कमी है क्योकि आन्तरिक माग को पूरा करने के लिए देशीय उत्पादन काफी नहीं और तेल सकट के कारण तेल की अन्तर्राष्ट्रीय कीमत बहुत बढ गई है। भारत इस कारण तेल पर आधारित फार्म-मशीनरी का विस्तृत पैमाने पर प्रयोग नहीं कर सकता।

चयनात्मक यन्त्रीकरण—योजना का उचित लक्ष्य

इस बात को दृष्टि मे रखते हुए कि भारत मे जोत का आकार छोटा है किन्तु कृषि कार्य मे लगी जनसख्या का आकार बहुत बडा है, कृषि मे अधाधुध यन्त्रीकरण की नीति चलाना बडी भारी भूल होगी। भारत मे भूमि एक दुर्लभ साधन है परन्तु श्रम एक प्रचुर साधन है और परिणामत भू-उत्पादिता (Land productivity) को उन्नत करने की नीतियो का ग्राम-जनशक्ति के प्रयोग के साथ सामजस्य करना होगा। अत सीमित यन्त्रीकरण (Limited mechanisation) की नीति को अपनाना अनिवार्य होगा ताकि श्रम विस्थापन प्रभाव (Labour displacement effect) कम से कम किया जा सके। साथ ही गुप्त रूप मे बेरोजगार कृषि श्रम को कृषि-भिन्न ग्राम उद्योगो मे जज्ब करने के लिए इनका विस्तार करना होगा। इसके अतिरिक्त ग्राम क्षेत्रो मे जनसख्या वृद्धि को नियन्त्रित करने के प्रयास त्वरित करने होंगे ताकि जनसख्या मे भावी वृद्धि दर कम हो जाए। इस व्यवहार्य दृष्टिकोण की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए पाचवीं योजना के प्रारूप मे उल्लेख किया गया-"पाचवीं योजना मे चयनात्मक यन्त्रीकरण (Selective mechanisation) की नीति अपनाई जाएगी। उद्देश्य यह होगा कि फसल तीव्रता (Cropping intensity) और फार्म-उत्पादिता (Farm productivity) बढाई जाए। इन दिनो देश मे प्रति हैक्टर 0 4 हार्स पावर शक्ति उपलब्ध है (जिसमें से मशीनो से प्राप्त शक्ति केवल एक-चौथाई है) यह बहुत कम है और इसे बढाना होगा। हमे इस बात पर ध्यान देना होगा कि खेती की नइ तकनालॉजी मे खेती के काम तेजी से उचित समय पर और ठीक ढग से करने होते हैं। इसके अलावा बैल खरीदने और इन्हे रखने का खर्चा भी बढता जा रहा है। इन सबको देखते हुए खेती का यन्त्रीकरण आवश्यक लगता है किन्तु यन्त्रीकरण किस दर से और किस रूप मे हो, यह बात जोतो के आकार और कृषि श्रमिको के रोजगार पर यन्त्रीकरण के प्रभाव आदि सम्बद्ध बातो को

तालिका ५ भारत मे कृषि यन्त्रीकरण की प्रगति

	मद	1960 61	1970 71	1980 81	1992-93
1	कुल कृषि आधीन क्षेत्रफल (लाख हैक्टेयर)	152 8	165 8	175 0	183 0
2	ट्रैक्टर (कुल सम्पूर्ण योग) (लाख)	0 31	1 0	4 7	19 0
3	तेल इंजन (कुल सम्पूर्ण योग) (लाख)	2 30	15 6	29 0	52 0
4	बिजली चालित सिंचाई पम्पसेट या ट्यूबवैल (लाख)	2 0	13 5	40 0	96 2
5	प्रति हजार हैक्टेयर कृषि क्षेत्र के लिए संचालित शक्ति का उपभोग (किलोवाट घण्टे)	5 5	23 0	71 0	350.7

ध्यान मे रखकर निश्चित करनी होगी। अन्तिम बात खास तौर पर फसल की कटाई एवं सफाई की मशीन (Combine harvester) का इस्तेमाल करने के बारे मे अवश्य सोचनी होगी। इन मशीनो का उपयोग उन्हीं इलाको तक सीमित रखना होगा जहाँ फसल की कटाई के दौरान श्रमिको की कमी रहती है। अत आयोग इस विषय मे सावधानी बरतने की सलाह देते है। इस सम्बन्ध मे छठी योजना मे उल्लेख किया गया फिर भी कृषि कार्यों का अनियन्त्रित यन्त्रीकरण हमारे देश के हित मे नहीं होगा इससे देहातो मे बेरोजगारी की समस्या विकट हो जाएगी। इस प्रकार चयनात्मक यन्त्रीकरण की नीति को अपनाया जाएगा।

भारत मे फार्म यन्त्रीकरण (Farm mechanisation) की प्रगति

भारत मे कृषि कार्य के लिए ट्रैक्टरो तेल इंजनो सिंचाई के पम्पसेटो जो चाहे डीजल से चलाए जाएँ या बिजली से का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त ट्यूबवैल भी अधिक मात्रा मे लगाए गए हैं। इस प्रकार कृषि मे पशुओ या मानवशक्ति का प्रतिस्थापन संचालनशक्ति (Power) द्वारा किया गया है जिससे प्रति हैक्टर कृषि क्षेत्र उपभोग बढा है।

तालिका ५ मे दिए गए आकडो से पता चलता है कि कृषि यन्त्रीकरण मे काफी प्रगति हुई है। उदाहरणार्थ ट्रैक्टरो की संख्या जो 1960 61 मे केवल 0 3 लाख थी बढकर 1980 81 मे 4 7 लाख हो गई परन्तु यह 1992 93 तक बढकर एकदम 19 लाख हो गई। इसी प्रकार तेल इंजनो की संख्या जो 1961 मे 2 3 लाख थी बढकर 1992 93 मे 52 लाख हो गई। बिजली चालित सिंचाई पम्पसेटो व ट्यूबवैलो की मात्रा 1960 61 मे 2 लाख से बढकर 1970 71 मे 13 54 लाख और 1992 93 मे एक दम बढकर 96 2 लाख हो गई। इससे कृषि के आधीन निश्चित सिंचाई प्राप्त क्षेत्र मे काफी वृद्धि हुई है। इन सब यन्त्रीकरण के साधनो के परिणामस्वरूप प्रति हजार हैक्टेयर कृषि क्षेत्र के लिए संचालनशक्ति के उपभोग मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है और यह 1960 61 मे 5 5 किलोवाट घण्टे से बढकर 1992 93 मे 351 किलोवाट घण्टे हो गया है।

फार्म यन्त्रीकरण की इस प्रगति की समीक्षा के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं–

(i) चाहे परम रूप मे फार्म यन्त्रीकरण का विकास बडा प्रभावी प्रतीत होता है यह सापेक्ष रूप मे इतना प्रभावशाली नहीं है विशेषकर जब इसकी तुलना उन्नत देशो मे यन्त्रीकरण के साथ या भारतीय कृषि क्षेत्र के आकार के सदर्भ मे की जाए।

(ii) जो यन्त्रीकरण भारतीय कृषि क्षेत्र में हुआ भी है वह मुख्यत समृद्ध किसानो तक ही सीमित है। छोटे किसान जो भारतीय किसान जनसख्या का मुख्य भाग हैं यन्त्रीकरण की प्रक्रिया से अछूते ही रहे हैं। यह बात निन्दनीय है क्योकि इसके परिणामस्वरूप किसान जनसख्या मे असमानता मे वृद्धि हुई है।

(iii) यन्त्रीकरण की प्रक्रिया का अभिप्राय उत्पादन की तकनीक मे परिवर्तन है अर्थात् यह श्रम-प्रधान रहने की अपेक्षा पूजी प्रधान बन जाती है। भारतीय कृषि के विकास की वर्तमान अवस्था मे जबकि बहुत अधिक मात्रा मे बेरोजगार श्रम उपलब्ध है यन्त्रीकरण मे जल्दबाजी करने से अवाछनीय आर्थिक विकृतियाँ और सामाजिक तनाव उत्पन्न हो जाते हैं। किन्तु इस सम्बन्ध मे एक उल्लेखनीय अपवाद है–*सिंचाई का विद्युतीकरण (Electrification)*–न कि डीजलीकरण (Dieselisation)–जो सबसे अधिक अभिनन्दनीय माना जाना चाहिए।

चयनात्मक यन्त्रीकरण की नीति ने देश के कुछ भागों मे कृषि का आधुनिकीकरण किया है। भारत ने ट्रैक्टरो डीजल पम्पिंग सैटो ट्यूबवैल आदि के उत्पादन मे प्रभावी प्रगति प्राप्त की है। जबकि पजाब एव हरियाणा जैसे राज्यो मे जहाँ हरित क्रान्ति हो चुकी है यन्त्रीकरण तेज गति से आगे बढा है वहाँ बहुत से अन्य राज्यो मे इसने कोई महत्त्वपूर्ण प्रगति नहीं की है।

1 योजना आयोग पाँचवी पचवर्षीय योजना (1974 79) प्रारूप पृ 11
2 योजना आयोग पंचवर्षीय योजना का प्रारूप 1974 79 पृ 197

27

भू-सुधार
(LAND REFORM)

1. विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए भू-सुधार की आवश्यकता एवं क्षेत्र

भू-सुधारों (Land Reforms) का उद्देश्य उत्पादन के सामाजिक सम्बन्धो को ऐसा स्वरूप प्रदान करना है जिसके फलस्वरूप कृषि उत्पादिता अधिकतम की जा सके। कृषि के क्षेत्र में उत्पादिता मुख्यत दो प्रकार के तत्वो पर निर्भर करती है-तकनीकी और सस्थानात्मक। तकनीकी तत्वो (Technical factors) में बढिया बीज, उर्वरक, उन्नत हल, ट्रैक्टर, सिचाई आदि कृषि आदानों (Agricultural inputs) और विधियो का समावेश है, जिनके उपयोग से कृषि का स्तर उन्नत करने मे सहायता मिलती है चाहे भू-सुधार न भी हों। सस्थानात्मक सुधारो (Institutional reforms) के अन्तर्गत भू-स्वामित्व का कृषको के हित में पुनर्वितरण, खेती के आकार में सुधार, भू-धृति की सुरक्षा की व्यवस्था, लगान का नियमन (Regulation of rents) आदि समाविष्ट हैं। दूसरे शब्दो में, सामती सम्बन्ध, खेतो का छोटा आकार, खेतो का उपविभाजन तथा विखण्डन, भू-धारण अधिकारो की सुरक्षा (Security of land tenure rights) का अभाव, ऊँचा लगान आदि ऐसे सस्थानात्मक तत्व हैं जो कृषको को उत्पादन बढाने में हतोत्साहित करते हैं। इन तत्वो के कारण कृषको की बचत करने तथा कृषि मे धन लगाने की क्षमता कमजोर हो जाती है और वे अपने परिश्रम का फल भी नहीं भोग पाते। फलत दो विचारधाराओ का विकास हुआ। एक ओर समाजवादी विचार के प्रवक्ता हैं जिनके अनुसार ग्रामीण निर्धनता का वास्तविक कारण सामती अथवा अर्द्ध-सामती सम्बन्ध (Feudal and semi feudal relations) रहे हैं तथा इन सस्थानात्मक बाधाओं के हटा दिए जाने पर जो शक्तियाँ मुक्त होंगी, उनसे कृषिगत उत्पादन स्वत बढ जाएगा। दूसरी विचारधारा के अनुसार कृषि-उत्पादिता पूर्णत तकनीकी कारणों पर आधारित है एव उन्नत कृषि विधियो का उपयोग करके उत्पादिता का स्तर (Level of Productivity) उठाया जा सकता है। इस प्रकार उपर्युक्त विचारधाराओ में से एक के अनुसार उच्च उत्पादिता करने के लिए तकनीकी परिवर्तन अनिवार्य हैं और दूसरी के अनुसार सस्थानात्मक परिवर्तन। पिछले कुछ वर्षों से दोनो विचारधाराएँ एक दूसरे के निकट आ गई हैं और यह समझा जाने लगा है कि कृषि विकास की दृष्टि से वे एक दूसरे से सर्वथा पृथक न होकर एक दूसरे की पूरक हैं। यह बात स्वीकार कर ली गई है कि अनुकूल परिस्थितियो मे तकनीकी परिवर्तन प्रभावी ढग से कार्य कर सकते हैं तथा विकास की प्रक्रिया तीव्र की जा सकती है।

अत भूमि सुधार का दोहरा उद्देश्य है। एक ओर इसका उद्देश्य चकबन्दी (Consolidation) और जोतो को अधिकतम तथा न्यूनतम सीमा लागू करके लाभकर जोतों (Economic holdings) की स्थापना है ताकि श्रम तथा पूजी का अपव्यय न होकर भूमि का अपेक्षाकृत अधिक युक्तियुक्त प्रयोग किया जा सके। दूसरी ओर इसका उद्देश्य काश्तकारो मे भूमि का पुनर्वितरण करना और पट्टे पर दी गई भूमि की शर्तो मे सुधार करना है ताकि किसानो का शोषण समाप्त किया जा सके।

भू-सुधारो (*Land reforms*) का एक ओर तो यह उद्देश्य है कि *सामाजिक न्याय* को लक्ष्य मानकर स्वामित्व जोतो का पुनर्वितरण किया जाए और दूसरी ओर इनका उद्देश्य सकार्य जोतो का पुनर्गठन (Reorganisation of operational holdings) है। इसके अतिरिक्त भू-सुधारो का उद्देश्य *भू-धारण अधिकार की सुरक्षा करना, लगान नियत करना,* तथा स्वामित्वाधिकार प्रदान करना (Conferment of Ownership) भी है। भूमि-सुधार का प्रधान लक्ष्य बिचौलियो को हटाकर कृषक और राज्य के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित करना है। इसके साथ-साथ भू-धारण अधिकार की सुरक्षा और लगान के नियमन (Regulation of rent) द्वारा एक ऐसा वातावरण तैयार करना है जिसमे कृषको को अपने श्रम का फल मिलने की आशा हो। इस प्रकार भू-सुधार के अन्तर्गत निम्नलिखित विषय शामिल किए जाते हैं–

(क) बिचौलियो की समाप्ति, (ख) भू-धारण सुधार अर्थात् लगान का नियमन, भू-धारण की सुरक्षा (Security

of tenure) और काश्तकारों को भू-स्वामित्व प्रदान करना, (ग) जोतों की उच्चतम और निम्नतम सीमा का निर्धारण, (घ) कृषि का पुनर्गठन जिसमें जोतों की चकबन्दी करना और उनके उपविभाजन तथा विखण्डन को रोकना समाविष्ट है, तथा (ड) सहकारी फार्मों का गठन।

2. बिचौलियों की समाप्ति
(Abolition of Intermediaries)

भारत के स्वतन्त्र होने के समय देश की भू-व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न भू-धारण पद्धतियाँ प्रचलित थीं और ऐसा विश्वास किया जाता था कि उस समय की भू-धारण प्रणाली न तो अधिक उत्पादन की दृष्टि से ही उपयुक्त थी न कि सामाजिक तथा आर्थिक न्याय की दृष्टि से। परिणामत भू-धारण प्रणाली (Land tenure system) का पुनर्गठन *अत्यावश्यक समझा गया।* किन्तु भू-धारण प्रणाली के पुनर्गठन के प्रस्तावों पर विचार करने से पहले स्वाधीनता से पूर्व भारत में प्रचलित भू-धारण प्रणाली का सक्षिप्त वर्णन कर देना उचित होगा।

स्वतन्त्रता की पूर्वसंध्या पर तीन प्रकार की भू-धारण *प्रणालियाँ*

विभिन्न भू-धारण प्रणालियों को तीन मुख्य वर्गों के अन्तर्गत रखे जाने की परम्परा प्रचलित है—जमींदारी प्रथा, महालवारी प्रथा और रैयतवारी प्रथा।

(1) जमींदारी भू-धारण प्रणाली—जमींदारी प्रथा का आरम्भ लार्ड कार्नवालिस ने बंगाल में सन् 1793 से किया था। इसके अनुसार भूमि पर एक व्यक्ति का या अधिक से अधिक कुछ व्यक्तियों का संयुक्त स्वामित्व होता था जो *लगान की अदायगी के लिए जिम्मेदार होते थे।* ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने यह प्रथा इसलिए आरम्भ की थी कि अपने निहित स्वार्थों (Vested interests) की दृष्टि से एक विशेषाधिकार सम्पन्न एवं स्वामीनिष्ठ वर्ग का निर्माण किया जा सके। इस प्रकार जमींदारी, जागीरदारी, इनाम और राजकीय रियासतें इत्यादि अनेक प्रकार की भू-धारण प्रणालियों (Land tenures) का कृत्रिम निर्माण किया गया। भू-राजस्व (Land revenue) वसूल करने वाले अधिकारियों का पद बढ़ाकर उन्हें भू-स्वामी बना दिया गया। पहले ये राजस्व समाहर्ता (Rent collectors) केवल भू-राजस्व संग्रह करते थे जिनके बदले में उन्हें कमीशन मिलता था किन्तु अब जमींदारी प्रथा के अन्तर्गत उन्हें भूमि का स्वामी ही बना दिया गया। इस प्रकार भूमि में स्थायी स्वार्थों वाले वर्ग का विकास हुआ।

जमींदारी बन्दोबस्त (Zamindari Settlement) के दो रूप थे—स्थायी बन्दोबस्त और अस्थायी बन्दोबस्त। स्थायी बन्दोबस्त (Permanent settlement) के अन्तर्गत लगान सदा के लिए नियत कर दिया गया। यह प्रणाली बंगाल उत्तरी मद्रास और बनारस में लागू की गई। अस्थायी बन्दोबस्त (Temporary settlement) के अन्तर्गत विभिन्न राज्यों में 20 से 40 वर्ष की अवधि तक के लिए लगान नियत किया जाता था। इस प्रकार लगान में परिवर्तन हो सकता था। अस्थायी बन्दोबस्त बंगाल के शेष जमींदारों और अवध के ताल्लुकदारों पर लागू किया गया। लगान की अवधि काफी लम्बी होने के कारण अस्थायी बन्दोबस्त नाम भर के लिए ही *अस्थायी था।* *इस प्रकार लगान नियत हो* गया और ऐसा करने के मूल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सर्वप्रमुख उद्देश्य लगान की नियमित अदायगी की जिम्मेदारी जमींदारों पर डालना था।

ब्रिटिश सरकार का तर्क यह था कि जमींदार ग्रामीण जनता के सर्वश्रेष्ठ प्रबुद्ध वर्ग के प्रतिनिधि हैं, अत उन्हें भू-अधिकार सौंप दिए जाने के फलस्वरूप भूमि और कृषि में सुधार होगा। किन्तु ये आशाएँ फलीभूत न हो सकीं। *जनसंख्या में वृद्धि तथा ग्राम उद्योगों के क्षय के कारण भूमि* की मांग बढ़ गई जिससे जमींदार काश्तकारों से बहुत अधिक लगान वसूल करने लगे। जमींदारी प्रथा का आरम्भ प्रगतिशील कृषि को बल देने के लिए किया गया था किन्तु उसके कारण अनुपस्थित भू-स्वामित्व (Absentee landlordism) की बुराई उत्पन्न हो गई। इस प्रकार वास्तविक काश्तकार और राज्य के बीच बिचौलियों (Intermediaries) का एक ऐसा वर्ग विकसित हो गया जिसकी भूमि में केवल इतनी ही दिलचस्पी थी कि वह अधिक से अधिक लगान वसूल कर सके। ऐतिहासिक दृष्टि से एक वर्ग के रूप में जमींदार भोगविलास पर अपव्यय करने के लिए बदनाम रहे हैं। भारत में जमींदार इसका अपवाद नहीं थे। इस प्रकार इन जमींदारों ने कृषकों से जो धन शोषण किया, उससे पूँजी निर्माण न हो सका, केवल अभिदृश्य उपभोग (Conspicuous consumption) में वृद्धि हुई। जमींदारी प्रथा वाले गावों में दो कृषि वर्ग विकसित हो गए—दूरवासी भू-स्वामी और काश्तकार। दूरवासी भू-स्वामियों ने असली काश्तकारों का जी भर कर शोषण किया। राज्य की ओर से किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न किए जाने के फलस्वरूप इन जमींदारों को लगान की निर्ममतापूर्वक वसूली करने, जमीन से बेदखल करने और बेगार लेने की पूरी छूट मिली हुई थी। जमींदार दमन

और आतंक का प्रतीक बन गया। भारतीय कृषि गुजर-बसर की खेती बनकर रह गई। हतोत्साही उद्योग होते हुए भी कृषि के अलावा और चारा ही क्या था क्योंकि भूमि जनसाधारण की जीविका का मुख्य स्रोत थी।

(2) महालवारी भू-धारण प्रणाली–महालवारी के अन्तर्गत भूमि पर ग्राम-समुदाय (Village community) का संयुक्त स्वामित्व होता था और ग्राम-समुदाय के सदस्य या तो संयुक्त रूप मे या अलग-अलग लगान चुकाने के लिए जिम्मेदार होते थे। यह प्रणाली पहले आगरा और अवध मे और उसके बाद पंजाब में लागू की गई। इस प्रथा के आधीन गाँव की साझी जमीन या शामलात पर समूचे ग्राम-समुदाय का संयुक्त स्वामित्व होता था। इस प्रकार बंजर भूमि पर भी ग्राम-समुदाय का स्वामित्व होता था और उसे इस बात की छूट रहती थी कि सरकार से इजाजत लिए बिना इस भूमि को किराए पर उठा दे तथा इससे प्राप्त होने वाला लगान अपने सदस्यो मे बाँट दे या खेती की जमीन को अपने सदस्यो मे बांट दे। यह प्रणाली–विशेषतया पंजाब में–मुस्लिम परम्पराओ का परिणाम थी।

सम्पूर्ण गांव के लगान के रूप मे एक राशि निश्चित कर दी जाती है जिसे ग्राम समुदाय सामूहिक रूप मे या वैयक्तिक रूप में अदा करता है। गांव का लम्बरदार लगान संग्रह करता है जिसके लिए उसे पचोत्तरा अर्थात् 5 प्रतिशत कमीशन प्राप्त होता है।

(3) रैयतवारी प्रथा–रैयतवारी प्रथा के अन्तर्गत भूमि पर अलग-अलग वैयक्तिक स्वामित्व होता है। राज्य को भू-राजस्व अदा करने की जिम्मेदारी भू-धारियो पर सीधे और वैयक्तिक रूप मे होती है। पहला रैयतवारी बन्दोबस्त सन् 1792 मे मद्रास मे कायम हुआ। यह हिन्दू परम्परा का परिणाम था। यह भू-धारण प्रणाली बम्बई, बरार और मध्यभारत मे प्रचलित थी। रैयत को अपनी भूमि किराए पर उठाने की छूट थी तथा उसका भूमि पर तब तक अस्थायी धारणाधिकार रहता है जब तक कि वह नियत राजस्व अदा करता रहे। जमींदारी प्रथा का थोडा बहुत अंश रैयतवारी प्रथा मे दीख पड़ता है क्योंकि इसमे कृषक को अपनी भूमि किराए पर उठाने की छूट थी।

150 वर्षों के व्यवहार की अवधि मे उक्त तीनो प्रथाओ में बहुत परिवर्तन हो गया। इस विषय मे श्री वेंकटसुब्बैया का कथन है–"यदि लार्ड कार्नवालिस और सर टॉमस मुनरो जो क्रमश जमींदारी और रैयतवारी प्रथा के अधिवक्ता थे, 1940 मे इन प्रथाओ को देख पाते तो वे शायद ही उन्हे इस रूप मे पहचान सकते।"[1] इनकी विशेषताएँ एक-दूसरे से घुलमिल गई हैं। किन्तु तीनों प्रणालियो का झुकाव जमींदारी प्रथा की प्रवृत्तियो की ओर रहा है। भूमि उप-पट्टे (Sub letting) पर उठाना तथा भारी लगान वसूल करना, रैयतवारी क्षेत्रो तक भी आम बात हो गई। महालवारी प्रथा मे मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश (आगरा) जैसे राज्यो मे जमींदारी प्रथा की प्रवृत्तियाँ और पंजाब मे रैयतवारी प्रथा की प्रवित्तयाँ प्रविष्ट हो गईं। इसी प्रकार, इनाम और जागीरदारी क्षेत्रो में बन्दोबस्त के रूप में जमींदार आधे से दो-तिहाई तक की मांग करने लगे। अभिलेख न होने के कारण वे कृषको से चुकौता (Quit rents) वसूल कर सकते थे। इस प्रकार स्वतन्त्रता की पूर्वसंध्या पर, एक ओर भूमिहीन खेतिहर (Landless cultivators) और स्वेच्छा काश्तकार (Tenants at will) थे और दूसरी ओर विशाल रियासतो (Landed estates) के मालिक बड़े जमींदार। *किन्तु एक महत्त्वपूर्ण परन्तु विशोभकारी बात यह थी कि* ठीक-ठीक राजस्व अभिलेख (Revenue records) उपलब्ध नहीं थे जिसके कारण बिचौलियों के उन्मूलन का काम और भी कठिन हो गया। फलत एक सम्पूर्ण जोतगणना (Census of holdings) की आवश्यकता अनुभव की गई। विभिन्न प्रणालियो के परस्पर मिश्रण के कारण पहले के अधिनियमों द्वारा निर्धारित रान्तया वर्ग (Rentier class) का पता चलाना कठिन हो गया।

बिचौलियो का उन्मूलन–नीति और उपाय

स्वतन्त्रता के पश्चात् राज्य विधान सभाओ द्वारा बिचौलियो के उन्मूलन के अधिनियम पास करने की बाढ सी आ गई। यद्यपि इन अधिनियमो का उद्देश्य बिचौलिया का उन्मूलन करना था किन्तु व्यवहार में इन्होंने जमींदारो को बिचौलियो के समरूप मान लिया। परिणामत रैयतवारी के आधीन लगान प्राप्त करने वालो और अनुपस्थित जमींदारो (Absentee landlords) का एक वर्ग कानून की पकड से बाहर रह गया। इस बात पर बल देते हुए श्री वेंकटसुब्बैया ने लिखा–"कांग्रेस की घोषित आरम्भिक ग्रामीण नीति समस्त 15 लाख लगान उपजीवियो का उन्मूलन करने की नहीं सम्भवत उनमे से अधिकाश का उन्मूलन करने की थी। अपनी ग्रामीण नीति के बाद के चरणो मे ही केन्द्र एव राज्यो के दल तथा सरकारों ने गैर-जमींदारी लगान उपजीवियो (Non zamindari rentier) के अधिकार कम करने के सम्बन्ध मे विचार-विमर्श किया।"[2]

यद्यपि प्रयत्न पहले ही किये जाने लगे थे किन्तु बिचौलियो का वास्तविक उन्मूलन 1948 मे मद्रास के अधिनियम से आरम्भ हुआ। इसके पश्चात् मध्य प्रदेश उत्तर

1 Venkatasubbiah H *Indian Economy since Independence* p 51

2 *Ibid* p 37

प्रदेश, सौराष्ट्र और बम्बई मे भी विधान बनाया गया। सभी राज्यो मे कानून बन चुका है तथा असम, गुजरात और महाराष्ट्र की कुछ छोटी भू-धारण प्रणालियो और इनामो को छोडकर बिचौलियो का उन्मूलन या तो पूरा हो चुका था या पूरा हो रहा था। प्रसगवश, यह उल्लेखनीय है कि पश्चिमी बगाल, जो अनुपस्थित जर्मीदारी प्रथा से बुरी तरह उत्पीडित था, मे सबसे बाद (अर्थात् 1954-55) मे कानून बनाया गया। मद्रास, बम्बई और हैदराबाद मे 1949-50 मे कानून बनाया गया जब कि बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मध्य भारत और असम मे 1951 मे, उडीसा, पजाब, सौराष्ट्र और राजस्थान मे 1952 मे, पेप्सू, विन्ध्य प्रदेश और भोपाल मे 1953 म तथा पश्चिमी बगाल, हिमाचल प्रदेश, मैसूर और दिल्ली मे 1954-55 मे कानून बनाया गया। स्वामित्व अधिकार प्रदान करने के फलस्वरूप 30 4 लाख काश्तकारा (Tenants) और फसल सहभाजको (Share croppers) को लाभ हुआ है और उन्हे 62 2 लाख एकड काश्त योग्य क्षेत्रफल पर अधिकार प्राप्त हुए।

बिचोलियों से सम्बन्धित समस्याएँ

स्वतन्त्रता के पश्चात् जमींदारो भू-स्वामियो, जागीरदारो, मालगुजारा और ताल्लुकदारा ने बिचौलिया अधिकारा के उन्मूलन को स्वीकार कर लिया। एक के बाद एक सभी राज्यो मे कानून बनाया जा रहा था। यह *स्वाभाविक था कि वे जमींदार, जो अभी तक लाखो* किसानो के भाग्यविधाता बने हुए थे, इस कटु स्थिति को चुपचाप स्वीकार न करते। किन्तु बिचौलियो से सम्बन्धित *कानून की वाछनीयता-अवाछनीयता के प्रश्न को लेकर* सघर्ष करने के बजाय जमींदारो ने अपने अधिकार हरण के लिए अधिक से अधिक क्षतिपूर्ति प्राप्त करने, फिर से खेती करने *तथा काश्तकारो से बल-प्रयोग या दबाव द्वारा जमीन* खाली कराने की दशा म सारी शक्ति लगा दी। कुछ राज्यो मे नए कानूनों के लागू होने से पहले ही जमींदारों ने अपनी भूमि का बटवारा कर डाला। खेती करने के बहाने काश्तकारो से बड पैमाने पर भूमि बलात् खाली कराई गई तथा वे (काश्तकार) भागीदार मात्र बनकर रह गए। सहकारी खेती (Co-operative farming) के रूप म भू-सुधार कानून से बच निकलने का एक आसान तरीका मिल गया। इन सब विषया का कुछ और विस्तार से विवेचन करना उचित होगा।

बिचौलियो को दी गई क्षतिपूर्ति—सोवियत रूस, चीन और यूगोस्लाविया इत्यादि साम्यवादी देशा मे क्षतिपूति दिए बिना ही भू-स्वामिया का स्वामित्वहरण कर लिया गया था। वे सामूहिक फार्मों (Collective farms) म मजदूरी पर काम करने वाले श्रमिक-मात्र रह गए। किन्तु भारत में काग्रेस दल कृषक-स्वामित्व प्रणाली लागू करने के विषय में किसानों के प्रति वचनबद्ध था तथा जमींदारो को क्षतिपूर्ति देकर ही उक्त परिवर्तन किया जाना था। जनसाधारण के मन मे यह विचार घर कर चुका था कि एक निश्चित सीमा से अधिक भूमि किसी व्यक्ति के अधिकार मे नहीं रहनी चाहिए, सरकारी नीति जनसाधारण के इसी दृष्टिकोण की *स्वीकृति थी। निजी या वैयक्तिक सम्पत्ति के औचित्यों में* गाधी जी के विश्वास के कारण भू-स्वामियो को क्षतिपूर्ति (Compensation) देना आवश्यक हो गया। क्षतिपूर्ति दी *जाए या न दी जाए, इस विषय मे विवाद न था, मतभेद का* वास्तविक विषय क्षतिपूर्ति की मात्रा से सम्बद्ध था।

परिणामत जमींदारी उन्मूलन अधिनियमो को पहले उच्च न्यायालयो मे चुनौती दी गई और फिर अधिनिर्णय (Adjudication) के लिए सर्वोच्च न्यायालय में ले जाया गया। सर्वोच्च न्यायालय ने क्षतिपूर्ति के प्रश्न को न्याय-योग्य (Justiciable) ठहराया। परिणामस्वरूप सविधान की धारा 31 म सशोधन करना पडा। इस प्रकार सविधान के निर्माता, जो क्षतिपूति के मूल अधिकारो वाले खण्डो को न्याययोग्यता की परिधि से बाहर रखना चाहते थे, ऐसा न कर पाए। क्षतिपूर्ति की दरो, क्षतिपूर्ति की उच्चतम सीमा और क्षतिपूर्ति के निर्धारण के सिद्धान्तो पर पुनर्विचार किया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि जमींदार न्यायोचित और कुछ स्थितियो मे न्यायोचित से भी अधिक क्षतिपूर्ति प्राप्त करने में सफल हो गए।

अलग-अलग राज्यो में क्षतिपूर्ति का आधार और दर अलग-अलग थी। भूस्वामी के स्वामित्वहरण के समय की शुद्ध आय (Net income) के गुणज (Multiple) के रूप मे क्षतिपूर्ति नियत की गई (उदाहरणतया, आध्र प्रदेश, मद्रास, कर्नाटक, पश्चिमी बगाल, दिल्ली, मणिपुर और त्रिपुरा मे) निम्न आय वर्ग के सबध यह गुणज में अधिक किन्तु उच्च आय-वर्ग के सम्बन्ध मे कम था। कुछ राज्यों में क्षतिपूर्ति के आधार के रूप मे शुद्ध आय का समान गुणज तय किया गया। कुछ राज्यो मे क्षतिपूर्ति लगान के गुणज के बराबर थी, यथा असम, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश और हिमाचल प्रदेश मे। कुछ राज्यो मे क्षतिपूर्ति को भूमि के बाजार मूल्य से सम्बन्धित कर दिया गया यथा केरल म। कई राज्यो मे भूमियो पर नियत राशि के रूप में क्षतिपूर्ति तय की गई-यह राशि अलग-अलग भूमियो पर 50 रुपये से 900 रुपए प्रति एकड के बीच थी।

क्षतिपूर्ति नक्द या बॉंड के रूप म दी *जाती थी।*

अलग-अलग राज्यो मे 10 से 30 वर्ष की अवधि के बराबर किस्तों मे ये बाँड विमुक्त कराए जा सकते थे। आन्ध्र प्रदेश, असम, मध्य प्रदेश, मद्रास, उडीसा, पश्चिमी बगाल और हैदराबाद राज्यो ने क्षतिपूर्ति नकद देने का सिद्धान्त अपनाया किन्तु उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार, गुजरात और महाराष्ट्र राज्यो ने नकद तथा बांड दोनो रूपो मे क्षतिपूर्ति देने का सिद्धान्त स्वीकार किया।

3. भू-धारण सुधार
(Tenancy Reforms)

पट्टे पर खेती की समस्याएँ

जमींदारी और रैयतवारी पट्टेदारी की प्रणाली के आधीन भारत वर्ष मे पट्टे पर खेती का आम प्रचलन रहा है। पट्टे पर खेती का काम वे छोटे भू-स्वामी करते हैं जिन्हे अपने पास अपर्याप्त भूमि जान पडती है या फिर भूमिहीन श्रमिक। कई बार किसी बिचौलिए से पट्टे पर जमीन लेने वाले किसान खेती के लिए उसे पुन. पट्टे पर देते हैं। इस प्रकार पट्टे पर खेती के अनेक रूप चले आ रहे हैं। मोटे तौर पर पट्टेदार किसानो (Tenant) के तीन वर्ग हैं-(1) स्थायी काश्तकार (Occupancy tenants), (2) इच्छाधीन काश्तकार (Tenants-at will), और (3) उपकाश्तकार (Sub-tenants)। स्थाई काश्तकार के पट्टेदारी के हक स्थायी और दाययोग्य हैं। भूमि मे किसी प्रकार का सुधार करने के बदले में जमींदार से क्षतिपूर्ति भी प्राप्त कर सकते हैं। उन्हे पट्टे की स्थिरता और सुरक्षा प्राप्त रहती है जिसके कारण वे वास्तव में भूमि के स्वामी हो बन जाते हैं। **स्थायी काश्तकार और कृषकस्वामी (Peasant proprietor) मे केवल इतना ही अन्तर होता है कि पहले को जमींदार के हाथ लगान का भुगतान करना पड़ता है जबकि दूसरा सरकार को लगान देता है।** इस प्रकार व्यवहार मे स्थायी काश्तकार भू-स्वामी के रूप मे स्वीकार किया जाता है।

जमींदारो के मुकाबले इच्छाधीन काश्तकारो (Tenants-at-will) और उप-कृषको की स्थिति अत्यन्त निर्बल है। वे निर्मम शोषण का शिकार बनते हैं। उनके लगान में बार-बार वृद्धि, छोटी-छोटी बातो पर बेदखली, बेगार और अन्य उपायो द्वारा उनका शोषण किया जाता है। यह नितान्त वाछनीय है कि इस श्रेणी के किसानो का सरकार से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित किया जाए ताकि पट्टे के अधिकारो को सुरक्षित किया जाए। जिस देश मे बढती हुई आबादी के कारण भूमि की माग उसके सभरण से अधिक हो, उसमें कमजोर और असुरक्षित कृषको को निर्दयी जमींदारो के हाथो शोषित होने की व्यापक बुराई पाई जाती है। बटाई व फसल-सहभाजन (Share cropping) के रूप मे 50 प्रतिशत लगान आम बात थी। कई बार तो किसान को लगान के रूप मे अपनी उपज का दो-तिहाई भाग देना पड जाता था। ऐसी स्थिति और उसके साथ-साथ पट्टे की असुरक्षा के कारण यह आवश्यक हो गया कि भू-प्रणाली मे सुधार किए जाएँ।

पट्टे पर खेती की मात्रा (The extent of tenancy cultivation)

यद्यपि अखिल भारत मे पट्टे पर उठाए गए क्षेत्र की औसत 20 प्रतिशत है, किन्तु भारत के विभिन्न क्षेत्रो मे यह अक 11 से 26 प्रतिशत तक है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि खेती के कुल क्षेत्र का लगभग पाचवा भाग पट्टे (Lease) पर उठा हुआ है, अत इतने व्यापक क्षेत्र को प्रभावित करने वाली समस्या की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसी प्रकार भूमि की जोतो तथा खेती के सम्बन्ध मे की गई गणना से विभिन्न राज्यो से सम्बन्धित आकडे प्राप्त हुए हैं। उक्त आँकडो पर विचार करते समय यह बात ध्यान मे रखनी होगी कि उनमे स्थाई काश्तकारो की भूमि का समावेश नहीं किया गया क्योकि इनका पट्टे का अधिकार स्थायी और दाययोग्य होने के कारण उनकी गणना भूमि के स्वामियो मे ही कर ली जाती है। 1961 की जनगणना के अनुसार कुल कृषि-परिवारो का 17 प्रतिशत स्वामित्व जोत रखते थे, 8 प्रतिशत शुद्ध काश्तकारी जोत और 15 प्रतिशत मिश्रित काश्तकारी करते थे। इसकी तुलना मे कृषि आधीन कुल क्षेत्र का 78 प्रतिशत स्वामित्व जोतो के आधीन था, 4 प्रतिशत शुद्ध काश्तकारी के आधीन और 18 प्रतिशत मिश्रित काश्तकारी के आधीन था। भू-स्वामित्व मे असमानता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि ग्रामीण परिवारो के 5 प्रतिशत उच्चतम वर्ग के पास 80 प्रतिशत निम्नतम वर्ग से अधिक भूमि थी।

खुली काश्तकारी के अतिरिक्त बहुत-सी भूमि मौखिक या गुप्त काश्तकारी के आधार पर पट्टे पर दी जाती है। इसी प्रकार 33-40 प्रतिशत कुल कृषि आधीन क्षेत्र मौखिक पट्टे पर उठाया जाता है।

पट्टेदारी मे सुधार के उपाय (Measures of Tenancy Reform)

बिचौलियो के उन्मूलन सम्बन्धी कानून का उद्देश्य कृषको को भूमि दिलाना है किन्तु इससे पट्टेदारी की समस्या समाप्त नहीं हो जाती। थोडी बहुत जमीन तो पट्टे पर उठाई ही जाएगी। भू-सुधार के पच (Panel on Land Reforms) ने इस तथ्य को स्वीकार करते हुए खेती करने मे असमर्थ लोगो को, अथवा विधवा या अविवाहित स्त्री, अवयस्क, मानसिक रोग से ग्रस्त तथा सैनिक परिवारो को

अपनी भूमि पट्टे पर उठाने की छूट दी जाने की सिफारिश की। यही नहीं, जोत की अधिकतम सीमा नियत कर देने पर भी शायद एक परिवार के लिए पूरी भूमि सभाल पाना कठिन हो, अत थोडी-बहुत भूमि उप-पट्टे पर उठाना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त कृषि-श्रमजीवी वर्ग को कृषि-भिन्न व्यवसाय अपनाने के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से भी पट्टेदार कृषको को थोडी-बहुत भूमि उप-पट्टे पर उठाने की छूट देनी होगी। पट्टे या उप-पट्टे पर पूर्ण रोक लगाना न तो सामाजिक दृष्टि से वाछनीय है और न प्रशासनिक दृष्टि से व्यवहार्य। अत अधिक विवेकपूर्ण यही है कि पट्टे पर खेती (Tenancy cultivation) की बुराइयाँ दूर करने के लिए उपाए किए जाएँ। पट्टेदारी मे सुधार के उपायो का *निम्नलिखित विषयो से सबध है–(1) लगान का नियन्त्रण* (2) पट्टे की सुरक्षा और (3) कृषको को स्वामित्व प्रदान करना।

लगान का नियमन (Regulation of rent)– स्वतन्त्रता से पहले के युग मे तो लगान या तो प्रथा के *आधार पर नियत किया जाता था या माग और सभरण की* बाजार शक्तियों के आधार पर। भूमि सभरण स्थिर होने तथा *बढती हुई जनसख्या के कारण भूमि की माग मे तीव्र वृद्धि* होने का परिणाम यह हुआ कि लगान उत्तरोत्तर बढता गया। *हस्तशिल्प (Handicrafts)* के पतन के कारण भूमि पर आबादी का दबाव और भी बढ गया जिसका परिणाम लगान मे और अधिक वृद्धि के रूप में प्रकट हुआ। लगान की निर्मम वसूली आम बात थी।

अत कानून बनाकर लगान मे कमी करना अत्यावश्यक था। प्रचलित लगान दर उपज का आधा भाग या उससे कुछ अधिक थी। अर्थव्यवस्था के किसी भी अन्य क्षेत्र मे किए गए विनियोग के प्रतिफल की तुलना मे लगान सामाजिक न्याय की किसी भी कसौटी के आधार पर अत्यधिक थे। परिणामत प्रथम और द्वितीय याजना मे यह सिफारिश की गई कि लगान सकल उपज (Gross produce) के एक-चौथाई या पाचवें भाग से अधिक नहीं होना चाहिए। विभिन्न राज्यो ने लगान नियमन के लिए आवश्यक कानून बनाए, किन्तु अलग-अलग राज्यो मे नियत की गई लगान दरो में अब भी अन्तर है। गुजरात महाराष्ट्र और राजस्थान मे सकल उपज का छठा भाग अधिकतम लगान नियत किया गया। असम मैसूर मणिपुर और त्रिपुरा मे अधिकतम लगान की दर सकल उपज के 20 से 25 प्रतिशत के बीच नियत की गई। उडीसा और बिहार में सकल उपज का एक-चौथाई और केरल मे 25 से 50 प्रतिशत के बीच अधिकतम लगान नियत किया गया। पजाब मे उपज का एक-तिहाई भाग और तमिलनाडु में 33 3 से 40 प्रतिशत लगान नियत किया गया। जम्मू और कश्मीर आन्ध्र प्रदेश और पश्चिमी बगाल मे सकल उपज के आधे भाग के रूप मे लगान नियत किया गया। मध्य प्रदेश में लगान भू-राजस्व का गुणज (Multiple) है और यह भू-राजस्व के दुगुने से चार गुना के बीच निश्चित किया गया है।

किसान की कमजोर स्थिति तथा भूमि की व्यापक प्रबल माग के कारण लगान नियन्त्रण सम्बन्धी कानून का पालन कम और अतिक्रमण अधिक होता है। तीसरी योजना ने ठीक ही कहा–"जहाँ जमीन पर दबाव अधिक है और गाँव के काश्तकारो की सामाजिक एव आर्थिक स्थिति *कमजोर है वहाँ कानून की शरण लेना उनके लिए मुश्किल* हो जाता है। इनके अलावा कानूनी कार्रवाही करने मे खर्च अधिक होता है। और आमतौर से उतना खर्च उठाना काश्तकारो की शक्ति से बाहर होता है। अत कानून बन जाने पर भी कई तरह से विद्यमान शर्तों और परिस्थितियो *का ही पलडा भारी ठहरता है।*"[3]

इस सम्बन्ध मे अन्य सुझाव यह है कि लगान उपज के रूप मे नहीं नकद रूप मे *नियत किया जाए। चौथी योजना* ने इस सम्बन्ध मे उल्लेख किया "कानून द्वारा आन्ध्र, जम्मू *तथा कश्मीर, तमिलनाडु पजाब और पश्चिमी बगाल मे जो* लगान निर्धारित किए गए हैं वे अभी भी अधिक हैं और उन्हे जैसा कि योजनाओ मे सिफारिश की गई थी कुल उपज के एक-चौथाई या पाचवें भाग के बराबर कम करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उपज के रूप मे लगान को समाप्त कर इसके स्थान पर नकद लगान चालू करने चाहिए ताकि लगान मे उच्चावचन न हो और किसान को अपने विनियोग का पूर्ण लाभ प्राप्त हो सके।'[4]

काश्त अधिकार की सुरक्षा (Security of Tenure)

सर आर्थर यग (Arthur Young) ने ठीक ही कहा *था–"किसी व्यक्ति को उजाड बजर भूमि का सुरक्षित* स्वामित्व प्रदान कर दो वह उसे हरे-भरे बाग मे बदल देगा *और उसे हरा-भरा बाग नौ वर्ष के लिए पट्टे पर दे दो,* वह उसे मरुभूमि बना देगा।" उक्त कथन मे काश्त अधिकार की सुरक्षा की बात सार रूप मे कह दी गई है। काश्त का अधिकार अस्थाई होने पर किसान की भूमि में वैयक्तिक रुचि बहुत कम होती है। परिणामस्वरूप वह भूमि की साज-सभाल करने कुएँ और नलकूप खोदने तथा पक्की

3 Planning Commission *Third Five Year Plan* p 223
4 *Fourth Five Year Plan—A Draft Outline* p 130

बाड लगाने आदि के विषय मे अधिक ध्यान नहीं देता। काश्त के अधिकार छिन जाने के कारण उसकी भूमि सुधारने, बजर भूमि को कृषि योग्य बनाने या मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने के लिए दीर्घकालिक योजनाए तैयार करने का सारा उत्साह ही लुप्त हो जाता है। यहाँ तक भी देखा गया है कि फसल के अन्तिम वर्ष मे भूमि का इतना अधिक दोहन किया जाता है कि कई बार वह सवथा बजर हो जाती है। अत सामाजिक न्याय और अधिकतम उत्पादन दोनो दृष्टियो से ही काश्त अधिकार की सुरक्षा के लिए विधान बनाया जाना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार के विधान का उद्देश्य इच्छानुसार किसानो को स्थायी स्वामित्व का अधिकार दिलाना है।

काश्त की सुरक्षा से सम्बन्धित विधान बनाते समय तीन सारभूत उद्देश्यो को ध्यान मे रखना आवश्यक है-प्रथम बडे पैमाने पर किसानो की बेदखली न हो दूसरे, भूस्वामी को केवल स्वय काश्त के लिए ही भूमि पुन प्राप्त करने की इजाजत हो, और तीसरे, भूमि पुन प्राप्त करने पर किसान के पास नियत न्यूनतम भूमि रहने दी जाए।

स्वय काश्त के लिए भूमि पुन प्राप्त करने तथा बेदखली की समस्या

जमींदारी उन्मूलन लागू करने के प्रसग मे प्राप्त होने वाले अनुभव से पता चला है कि स्वय-काश्त (Personal cultivation) के नाम पर भूमि पुन प्राप्त करने (*Resumption for personal cultivation*) के लिए बहुत से किसानो को जमीन से बेदखल किया गया। इसका मुख्य कारण यह था कि भू-सुधार के आरम्भिक वर्षों मे 'स्वय काश्त' को परिभाषा करने मे अनेक त्रुटियाँ रह गई थीं। इसमे सन्देह नहीं कि कुछ परिस्थितियो म और भू-स्वामियो के कुछ वर्गों को खुद-काश्त के लिए कुछ भूमि देनी होगी किन्तु खुद-काश्त को आड मे मुजारो की बडे पैमाने पर बेदखली करने की इजाजत नहीं दी जा सकती। इसके लिए कुछ सुरक्षा कानून बनाने आवश्यक थे। दूसरी योजना के दौरान राज्यो ने मोटे तौर पर तीन विभिन्न प्रकार से खुदकाश्त सम्बन्धी विधान बनाए-

(i) सभी मुजारो को पट्टे की पूर्ण सुरक्षा दी गई और भू-स्वामियो को स्वय काश्त के अधिकार से वचित कर दिया गया।

(ii) भू-स्वामियो को एक सीमित क्षेत्रफल तथा खुद-काश्त का अधिकार दिया गया जो किसी हालत म भी एक पारिवारिक जोत से अधिक नहीं होना चाहिए बशर्ते कि मुजारे के पास काश्त के लिए एक न्यूनतम क्षेत्र बच जाए।

(iii) भू-स्वामी द्वारा खुद-काश्त के लिए जमीन पर एक सीमा लगा दी गई है किन्तु सभी हालतो में यह आवश्यक नहीं कि मुजारे के पास एक न्यूनतम क्षेत्रफल काश्त के लिए शेष बच जाए।

उत्तर प्रदेश, पश्चिम बगाल और दिल्ली प्रथम वर्ग मे आते हैं। गुजरात, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उडीसा, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, असम और पजाब दूसरे वर्ग में हैं। जम्मू तथा कश्मीर, मणिपुर, त्रिपुरा और पश्चिमी बगाल (फसल-सहभाजको के सदर्भ मे) तीसरे वर्ग मे आते हैं। जाहिर है कि अधिकतर राज्यो ने दूसरी प्रकार के विधान को स्वीकार किया है।

भूमि का स्वैच्छिक समर्पण और प्रत्यावर्तन

डॉ खुसरो के 'हैदराबाद मे जागीरदारी उन्मूलन और भूमि सुधारो के आर्थिक और सामाजिक प्रभाव' (1958) के *अध्ययन से यह विदित हुआ कि काश्तकारो की बेदखली* (Eviction nof tenants) बहुत बडे पैमाने पर की गई। *उक्त अध्ययन से प्राप्त होने वाले परिणाम तालिका 1 मे दिए* गए हैं-

उक्त अध्ययन के परिणाम अत्यन्त निराशापूर्ण हैं। 42 प्रतिशत काश्तकारो को भू-स्वामी वर्ग के हाथो उत्पीडित होना पडा तथा इस वर्ग ने काश्तकारो को अपने काश्तकारी अधिकार समर्पित करने के लिए वैध-अवैध सभी उपायो से बाध्य कर दिया। कुल परिणाम यह हुआ कि काश्तकार फसल-सहभाजक (Share cropper) की हीन स्थिति में पहुच गए और उनका शोषण उसी तरह ही होता रहा। तथाकथित 'स्वैच्छिक समर्पण' (Voluntary surrenders) दबाव के परिणामस्वरूप हुए, अत सामाजिक न्याय का लक्ष्य प्राप्त करने की दृष्टि से काश्तकारी अधिकार लौटाने की व्यवस्था करना सवथा वाछनीय होगा।

तालिका 1 **हैदराबाद मे काश्त सम्बन्धी अध्ययन**

प्रति 100 सुरक्षित काश्तकारो मे से

(1) वे जो अभी तक भी सुरक्षित काश्तकार हैं	45 5
(2) वे जो भूमि खरीदकर स्वामी बन गए	12 4
(3) वे जिन्हे कानूनी ढग से बेदखल कर दिया गया	2 6
(4) वे जिन्हे गैर कानूनी ढग से बेदखल कर दिया गया	22 1
(5) वे जिन्होने भूमि का स्वैच्छिक समर्पण किया	17 5

'स्वैच्छिक समर्पण' (*Voluntary surrenders*) की बुराई की रोकथाम के लिए तीसरी योजना मे दो सुझाव दिए गए। एक सुझाव यह था कि काश्तकारो द्वारा भूमि के स्वैच्छिक समर्पण को तब तक वैध न माना जाए, जब तक कि ऐसे मामलो को राजस्व अधिकारी विधिवत् रजिस्ट्री न कर ले। दूसरे सुझाव के अनुसार स्वैच्छिक समर्पण को

स्थिति मे भू-स्वामी को केवल उतनी ही भूमि पर खेती करने का अधिकार हो, जितनी भूमि की पुन प्राप्ति की विधान आज्ञा देता है। इस सम्बन्ध मे नीति-उपायो को क्रियान्वित करने की दिशा मे अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

अनौपचारिक या मौखिक पट्टेदारी (Informal or Oral Tenancy)

मौखिक पट्टेदारी अधिकार पारम्परिक कृषि समाजो का सामान्य लक्षण रहा है। अनौपचारिक पट्टेदारी, जिसे मौखिक काश्त-अधिकार भी कहा जाता है का अर्थ उस काश्त-अधिकार से है जिसे कानूनी स्वीकृति प्राप्त नही होती। अत वे पट्टेदारी सन्धियाँ काश्तकारी कानून का उल्लघन करके की जाती हैं।

श्री डी एस चौहान द्वारा किए गए दो अध्ययनो-एक पूर्वी उत्तर प्रदेश और दूसरा पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लिए-से यह व्यक्त हुआ कि पूर्वी उत्तर प्रदेश मे अनौपचारिक पट्टेदारी शुद्ध कृषि-आधीन क्षेत्रपाल के 28 8 प्रतिशत तक फैली हुई थी और 16 6 प्रतिशत भू-धारी इसमें ग्रस्त थे। पश्चिमी उत्तर प्रदेश म, शुद्ध कृषि आधीन क्षेत्र का 13 2 प्रतिशत अनौपचारिक पट्टेदारी के आधीन था और 27 6 प्रतिशत भू-धारी इसमे ग्रस्त थे। वर्तमान स्थिति का अत्यन्त असन्तोषजनक पहलू यह था कि औपचारिक पट्टेदारी के आधीन पूर्वी उत्तर प्रदश मे 1 प्रतिशत से कम क्षेत्रफल था और पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे 4 1 प्रतिशत। दूसरे शब्दो मे, भूमि का अधिकतर भाग अनौपचारिक पट्टेदारी पर दिया जाता है। जाहिर है भू-सुधार उपायो को लागू करने मे बहुत अधिक ढील दी गई।

अनौपचारिक पट्टेदारी के प्रयोग का मुख्य उद्देश्य काश्तकारो से अधिक लगान वसूल करना है। अधिक उपजाऊ किस्म के बीजो के प्रोग्राम के सफल होने के पश्चात् भू-स्वामियो मे यह विश्वास कायम हो गया है कि भूमि एक बहुत मूल्यवान परिसम्पत है और इससे ऊँची प्रत्याय दर (Rate of return) प्राप्त हो सकती है। भारत मे भू-क्षुधा (Land hunger) के विद्यमान होने के कारण, भू-स्वामियो के लिए सम्भव है कि वे स्थिति का अनुचित लाभ उठाकर अधिक लगान वसूल कर ले। दूसरे, अनौपचारिक पट्टेदारी का एक बडा ही आसान तरीका है जिसके द्वारा भू-स्वामी भू-सुधार उपायो को प्रभावहीन बना सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप भू-स्वामी दखलकारी काश्तकारी के अधिकार नहीं देते बल्कि अस्थायी आधार पर भूमि किराए पर देते हैं। इस प्रकार छिपी पट्टेदारी के आधीन, जोकि गैर-कानूनी है अर्ध-सामन्ती भू-प्रणाली को बनाए रखने की विधि निकाली गई है जिसे भू-सुधार उपायो द्वारा समाप्त करने का लक्ष्य रखा गया था।

काश्तकारी के लिए स्वामित्व अधिकार

भूमि-सुधार का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लक्षण काश्तकारो के लिए स्वामित्व अधिकार की व्यवस्था करना है। दूसरी योजना मे यह उचित समझा गया कि उन भू-क्षेत्रो मे, जिन्हे भूस्वामी पुन प्राप्त नहीं कर सकते, काश्तकार का भूमि खरीदने का अधिकार वैकल्पिक (Optional) था किन्तु यह प्रभावी सिद्ध नहीं हुआ। तीसरी योजना में कहा गया कि वैकल्पिक अधिकार को समाप्त करके काश्तकारो को भूमि खरीदने के लिए कहा जाना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए अनेक राज्यो मे विधान बनाया गया। उदाहरण के लिए पश्चिमी बगाल मे काश्तकार और उप-काश्तकार को भूमि का पूर्ण स्वामित्व प्रदान करके राज्य से सीधे सम्बन्धित कर दिया गया है। पजाब मे काश्तकार का भूमि खरीदने का अधिकार वैकल्पिक है। गुजरात, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, उडीसा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और सघीय क्षेत्रो मे विधान बनाया जा चुका है। असम, बिहार, *जम्मू तथा कश्मीर और तमिलनाडु मे खरीद का वैकल्पिक* अधिकार तक भी न होना बहुत निराशा की बात है।

4. भू-जोतों की अधिकतम सीमा (Ceiling on Land Holdings)

भारतीय भू-सुधारो मे यह परिकल्पना की गई थी कि राज्य जमीदारो से उनकी एक नियत सीमा से अधिक भूमि लेकर छोटे भू-स्वामियो मे बाट देगा ताकि वे अपनी जोतो को लाभदायक बना सकें या फिर यह भूमि भूमिहीन मजदूरो को दे दी जाएगी जिससे उनकी भूमि विषयक आवश्यकता पूरी हो सके। प्रो गाडगिल ने इस सम्बन्ध मे उल्लेख किया-"सभी साधनो मे भूमि एक ऐसा साधन है जिसकी मात्रा सर्वाधिक सीमित है, किन्तु उसके स्वामित्व के दावेदार बहुत अधिक हैं। अत अन्य गम्भीर और महत्त्वपूर्ण कारण न होने पर एक व्यक्ति को किसी बहुत बडे भू-क्षेत्र पर अपना अधिकार बनाए रखने की इजाजत देना *अन्यायपूर्ण* होगा। इसके अतिरिक्त भूमि, श्रम और पूजी के उपलब्ध *सम्भरण* (Supply) को दृष्टि मे रखते हुए उत्पादन के पूजी-प्रधान तरीके को प्रोत्साहन देना अवाछनीय होगा। इसके अतिरिक्त बडे पैमाने के प्रबन्ध मे जो लाभ हो, वे एक परिवार के लिए नही, काश्तकारो के सामूहिक या सहकारी सगठनों के लिए होने चाहिए। अन्त मे वर्तमान सामाजिक राजनीतिक वातावरण मे भूमि पुनर्वितरण अत्यावश्यक प्रतीत होता है।"[5] इस प्रकार भू-जोतो की अधिकतम सीमा

5 *Report of the Committee of the Panel on Land Reforms* p 99

तालिका 2 विभिन्न राज्यो मे जोत की वर्तमान सीमा (एकड़ो मे)

राज्य	पाच सदस्यो के परिवार के लिए 1973 के पश्चात् जोत की अधिकतम सीमा		1973 से पूर्व जोत की अधिकतम सीमा	
	दो फसले प्रतिवर्ष देने वाली सिंचित भूमि	एक फसल देने वाली सिंचित भूमि	जोत की अधिकतम सीमा	व्यवहार्य इकाई
आन्ध्र प्रदेश	10–18	15–27	27 से 234	भू-धारी
असम	16 66[1]		25	भू-धारी
बिहार 15	(सार्वजनिक स्रोतो से) 18 (निजी स्रोतो से)		10 से 30	भू-धारी
गुजरात	10 से 18	15 से 27	19 से 132	परिवार
हरियाणा	17 9	26 9	27 से 100	भू-धारी
हिमाचल प्रदेश	10	15		भू-धारी
जम्मू-कश्मीर	9 1 से 16 8	14 4 से 22 2	22 75	भू धारी
कर्नाटक	10 से 13	15 से 20	27 से 216	परिवार
केरल 12 से 15[1]		12 से 15	परिवार	
मध्य प्रदेश	18 से 54[1]		27 से 75	भू-धारी
महाराष्ट्र	अनुपलब्ध		18 से 126	भू-धारी
उडीसा	10	15	20 से 80	भू-धारी
पजाब 17 3	27 2	27 से 100	भू धारी	
राजस्थान	18	27 0	22 से 336	परिवार
तमिलनाडु	15[1]		12 से 60	परिवार
त्रिपुरा 9 9 से 29 6		25 से 75	परिवार	
उत्तर प्रदेश	17 4	27 0	40 से 80	भू धारी
प बगाल	12 4[1]		12 4 से 17 3	परिवार
दिल्लीअनुपलब्ध		24 से 60	परिवार	

1 इन राज्यों मे एक वर्ष मे दो फसले और एक फसल देने वाली भूमियो मे भेद नहीं किया गया।

2 परिवार की परिभाषा में पति, पत्नी और नाबालिग बच्चे शामिल किए जाते हैं।

निर्धारित करने की नीति का आधार निम्नलिखित तत्व हैं–

(1) कृषि आय की असमानताओं में कमी–ग्रामीण क्षेत्र मे भूमि आय का सर्वप्रमुख स्रोत है। किसी व्यक्ति या परिवार की प्रतिष्ठा उसके भू-स्वामित्व के आधार पर आकी जाती है। यदि आय के सर्वप्रमुख स्रोत भूमि से ग्रामीण समाज के छोटे से अश जमींदार को ही लाभ प्राप्त हो, तो भू-स्वामित्व का समूचा ढाँचा सामाजिक न्याय की प्राप्ति करने मे विफल ही कहा जाएगा। आय की असमानताओ मे कमी करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय भू-स्वामित्व की असमानताओ मे कमी करना है।

(2) स्व रोजगार (Self-employment) के क्षेत्र का विस्तार–भारतवर्ष मे खेती मे पूजी प्रधान उपायो (Capital-intensive measures) के उपयोग से बेरोजगारी काफी बढ जाएगी। परिणामस्वरूप, भारत सरकार चाहती है *कि छोटे कृषक-भू-स्वामियो की सख्या बढाई जाए किन्तु* इस विषय मे यह आशका व्यक्त की गई है कि बडी जमींदारियों को तोडने की नीति से भूमि, सम्पन्न जमींदारो से भूमिहीन कृषको को हस्तान्तरित हो जाएगी जिससे रोजगार का विस्तार चाहे हो जाए किन्तु उत्पादन पर बुरा प्रभाव पडेगा।

बडे पैमाने की मितव्ययिताओ और उत्पादन अधिकतम किए जाने का सारा तर्क केवल सैद्धान्तिक है। फार्म प्रबन्ध अध्ययनो (Farm management studies) से पता चलता है कि बडे खेतो की अपेक्षा छोटे खेतो मे प्रति एकड कुल उपज अधिक होती है। प्रोफेसर ल्यूइस के अनुसार *अधिक उपज के लिए खेत के आकार का अधिक महत्त्व नहीं है।* जापान जैसे छोटे खेतो वाले देश के अनुभव से यह सिद्ध हो

जाता है कि श्रम प्रधान तरीको से प्रति एकड अधिक उत्पादिता प्राप्त की जा सकती है। इसके विपरीत रूस मे बडे खेतो के बावजूद प्रति एकड उत्पादिता जापान के मुकाबले कम रही है। अत इतिहास अधिकतम सीमा निर्धारित करने की नीति का समर्थन करता है क्योंकि इस नीति से रोजगार का विस्तार तो होता ही है साथ ही अधिकतम उत्पादन में बाधा डाले बिना सामाजिक न्याय का उद्देश्य भी सिद्ध हो जाता है।

जोतों की अधिकतम सीमा निर्धारित करने से सम्बन्धित मुख्य समस्याएँ

भावी अधिग्रहण की अधिकतम सीमा निर्धारित करने की अपेक्षा विद्यमान जोतो की अधिकतम सीमा नियत करने की समस्या अधिक कठिन है। विद्यमान जोतो की अधिकतम सीमा के निर्धारण के लिए वर्तमान भू व्यवस्था का पुनर्गठन करना पडेगा। इसके लिए स्वामित्व अधिकारो की पूरी जाच पडताल करनी होगी। इससे बहुत सी समस्याएँ जुडी हुई हैं यथा असद्‌भाव हस्तान्तरण (Malafide transfers) अतिरिक्त भूमि को छूट और विक्रय। वर्तमान जोतो की अधिकतम सीमा तथा व्यवहार्थ इकाई (Unit of Application) निर्धारित करने का कानून दो अवस्थाओ म बनाया गया। पहली अवस्था जो जुलाई 1972 तक थी मे भू धारी को व्यवहार्य इकाई का आधार माना गया। 1972 के पश्चात् परिवार को व्यवहार्य इकाई का आधार स्वीकार किया गया। यह भी निर्णय किया गया कि जोत की अधिकतम सीमा कम की जाए ताकि भूमि का अधिक न्यायपूर्ण वितरण सम्भव हो सके। (देखिए तालिका 2)।

अतिरिक्त भूमि की क्षतिपूर्ति और बटवारा (Compensation and Allotment of Surplus Land)

अधिकतम सीमा के निर्धारण के विधान का उद्देश्य एक नियत सीमा से अधिक भूमि प्राप्त कर उसे छोटे किसानों बेदखल किए गए किसानो या भूमिहीनो को बेच देना है। इस प्रकार इस समस्या के दो पक्ष है–(1) भू स्वामियो को उनकी अतिरिक्त भूमि अधिग्रहण करने के बदले मे दी जाने वाली क्षतिपूर्ति और (2) जिन लोगो को अतिरिक्त भूमि का हस्तान्तरण किया जाए उनसे जमीन की कीमत की प्राप्ति।

क्षतिपूर्ति (Compensation) देने के सिद्धान्त का विवेचन पहले किया जा चुका है। जहाँ तक उन लोगो से जिन्हे जमीन बाटी गई है जमीन की कीमत वसूल करने का प्रश्न है यह प्रस्ताव किया गया कि क्रय कीमत इस रूप मे नियत की जाए ताकि किसान पर क्षतिपूर्ति की किस्तो ब्याज और भू राजस्व का कुल वार्षिक भार उचित लगान अर्थात् सकल उपज के चौथाई या पाचवें भाग से अधिक न हो। क्षतिपूर्ति के रूप मे दी जाने वाली कुल रकम अतिरिक्त भूमि पाने वालो से वसूल की जानी चाहिए ताकि राज्य पर किसी प्रकार का दायित्व न पडे।

अधिकतम जोत की सीमा के विधान के अधीन किए गए उपाया की प्रगति

पुराने अधिकतम जोत की सीमा के विधान के परिणामस्वरूप देश भर मे 1972 तक 23 15 लाख एकड अतिरिक्त भूमि (Surplus land) घोषित की गई। इसमे से 1982 तक 20 3 लाख एकड का वितरण किया गया। बडे खेद की बात यह है कि बिहार कर्नाटक उडीसा और राजस्थान मे कोई भी भूमि अधिकतम सीमा कानून के आधीन अतिरिक्त घोषित नहीं की गई। जाहिर है कि इन राज्यो मे अधिकतम सीमा कानून लागू होने से पूर्व बहुत से बेनामी हस्तान्तरण हो चुके थे। इससे विदित ही है कि भूमि के वितरण मे बहुत अधिक विलम्ब हुआ। भू स्वामियो द्वारा न्यायालयो मे मामले उठाने से यह देरी बढती गई। अत सरकार ने अस्तबल के द्वार को उस समय ताला लगाने का निर्णय किया जब सभी घोडे चोरी हो चुके थे।

पश्चिमी बंगाल भू सुधार (द्वितीय सशोधन) अधिनियम फरवरी 1971 मे पास किया गया जिसके अनुसार पाच सदस्यो के परिवार जिनमें पति पत्नी नाबालिग बेटे और अविवाहित बेटियाँ शामिल की गईं को 17 से 24 एकड तक भूमि की अधिकतम मात्रा रखने का अधिकार दिया गया। बालिग बेटो को छोड देने से यह भय था कि इससे इस कानून की अवहेलना के लिए छिद्र उपलब्ध होगा। इस कानून को अगस्त 1969 से लागू किया गया ताकि इस विधान के लागू होने से पूर्व असद्‌भाव हस्तान्तरण (Malafide transfers) को निष्क्रिय बनाया जा सके। हाल ही मे जोत की अधिकतम सीमा और कम करके 17 3 से 12 4 एकड कर दी गई। इसी प्रकार केरल सरकार ने केरल भू सुधार अधिनियम पास कर जोत की अधिकतम सीमा 15 से 36 एकड से कम करके 12 से 15 एकड कर दी।

अधिकतम जोत की सीमा का विवाद (1972) और निर्णय

काग्रेस पार्टी की केन्द्रीय भू सुधार समिति (Central Land Reforms Committee) ने यह सुझाव दिया कि बारहमासी सिचाई प्राप्त दो बार फसल उगाने वाले क्षेत्र मे अधिकतम जोत की सीमा 30 स्टैण्डर्ड एकड़ से घटाकर 10 स्टैण्डर्ड एकड़ कर देनी चाहिए। इस विवाद

को सुलझाने के लिए 23 जुलाई, 1972 को मुख्यमन्त्रियो के दूसरे सम्मेलन में निम्नलिखित सिफारिशे की गईं–

(i) किसी राज्य मे सबसे उत्तम श्रेणी की भूमि, जिसे विश्वस्त सिचाई सुविधाएँ उपलब्ध हो और जिस पर प्रति वर्ष कम-से-कम दो फसलें उगाई जा सके, के लिए 10–18 एकड की उच्चतम सीमा निर्धारित होनी चाहिए। इसका निर्धारण करते समय भूमि की उर्वरता और अन्य परिस्थितियो को ध्यान में रखना चाहिए।

निजी स्रोतो से प्राप्त सिचाई वाली भूमि और जिस पर कम-से-कम दो फसले उगाई जा सकती हो, के लिए 1 25 एकड भूमि को सार्वजनिक स्रोतो से सिचाई प्राप्त भूमि के 1 एकड के बराबर मानना चाहिए। किन्तु निजी स्रोतो से सिचाई प्राप्त भूमि की उच्चतम सीमा (*Ceiling*) 18 एकड से अधिक नहीं होनी चाहिए। 'निजी स्रोतो से प्राप्त सिचाई' का अर्थ ट्यूबवैल या उत्थापक सिचाई (Lift Irrigation) या डीजल अथवा बिजली द्वारा उपलब्ध कराइ गई बारहमासी सिचाई से है।

(ii) ऐसी विश्वस्त सिचाई वाली भूमि मे जहाँ केवल एक ही फसल उगाई जा सकती हैं, उच्चतम सीमा 27 एकड से अधिक नहीं होगी।

व्यवहार्य इकाई (*Unit of Application*) के सम्बन्ध में निम्नलिखित सिफारिशे की गई हैं–

(क) व्यवहार्य इकाई पाच व्यक्तियो का परिवार होगी। परिवार की परिभाषा मे पति, पत्नी और उनके नाबालिग बच्चे शामिल किए गए हैं। जहाँ परिवार के सदस्यो की सख्या पाच से अधिक हो, पाच के बाद प्रत्येक अतिरिक्त सदस्य के लिए अतिरिक्त भूमि की छूट देनी होगी किन्तु ऐसा इस प्रकार किया जाएगा कि किसी परिवार को प्राप्त होने वाला क्षेत्र पाच व्यक्तियो के परिवार के लिए निर्धारित उच्चतम सीमा के दुगुने से अधिक न हो जाए। उच्चतम सीमा परिवार के सभी सदस्यो के स्वामित्वाधीन सकल क्षेत्र पर लागू होगी।

(ख) जहाँ पति और पत्नी के पास अपने नाम मे अलग-अलग भूमि है, दोनो के पास भू-सम्पत्ति के अधिकार को उच्चतम सीमा के अन्तर्गत माना जाएगा जैसे उच्चतम सीमा से लागू होने से पूर्व प्रत्येक के पास भूमि हो।

(ग) प्रत्येक बालिग बच्चे को उच्चतम सीमा के प्रयोग के लिए पृथक इकाई समझा जाएगा।

मुख्यमन्त्रियो के सम्मेलन की सिफारिशो का अनुसरण करते हुए 17 राज्यीय सरकारो ने अधिकतम जोत विधान को सशोधित करके अधिकतम सीमा कम कर दी परन्तु अतिरिक्त भूमियो को प्राप्त करने म न्यायिक हस्तक्षेप (Judicial intervention) के कारण प्रगति धीमा रही।

अतिरिक्त भूमि का वितरण

अधिकतम जोत की सीमा लागू करने के पश्चात् अतिरिक्त भूमि की प्राप्ति और इसके वितरण की समीक्षा मार्च 1992 मे राजस्व मत्रियो के सम्मेलन मे की गई। (देखिए तालिका 3) इस बात की ओर सकेत किया गया कि 75% भूमि न्यायालयो के समक्ष मुकद्दमेबाजी मे फसी हुई है और इसे मुक्त कराना चाहिए और इसका वितरण करना चाहिए। मार्च 1985 और जून 1992 के 7 वर्षों के बीच, केवल 7 11 लाख एकड अतिरिक्त भूमि का वितरण किया गया।

तालिका 3 अधिकतम जोत अधिनियमो के कार्यान्वयन की सचयी प्रगति

लाख एकड़

	31.3 80 पर	31.3 85 पर	31 3 90 पर	31 3 92 पर
अतिरिक्त घोषित क्षेत्रफल	69 13	72 07	72 25	72 81
सरकार द्वारा कब्जे में लिया गया क्षेत्र	48 50	56 98	62 12	63 53
वितरित किया गया क्षेत्र	35 50	42 64	46 47	49 75
लाभ प्राप्तकर्ताओ की सख्या (लाख)	24 75	32 90	43 60,	47 59

कुल कृषि-आधीन क्षेत्र के 2% से भी कम को अतिरिक्त क्षेत्र घोषित किया गया। यह बहुत ही थोडा है। ग्राम विकास मत्रालय ने अपनी 1992–93 की वार्षिक रिपोर्ट मे इसके निम्नलिखित मुख्य कारण बताए हैं–

1 पाच से अधिक सदस्यो वाले परिवारो द्वारा जोत की अधिकतम सीमा से दुगुनी भूमि अपने स्वामित्व मे रखना,

2 परिवार मे बालिग पुत्रो के लिए अलग अधिकतम जोत की सीमा का प्रावधान,

3 सयुक्त परिवार के प्रत्येक हिस्सेदार को अधिकतम जोत की सीमा के लिए एक पृथक इकाई मानने का नियम,

4 चाय, काफी रबड, इलायची, नारियल के बागान और धार्मिक एव धर्मार्थ सस्थानो के आधिपत्य मे भूमियो को जोत की सामान्य अधिकतम सीमा के बाहर मानना,

5 बेनामी और फर्जी स्वामित्वान्तरण द्वारा अधिकतम जोत की सीमा के उद्देश्य को पराजित करना,

6 छूट के प्रस्तावो का दुरुपयोग और भूमियो का कुवर्गीकरण,

7 सार्वजनिक विनियोग द्वारा सिचाई आधीन लाई गई नयी भूमियो पर उचित जोत की सीमा को लागू न करना।

कुछ हद तक अधिकतम सीमा अधिनियम की मन्द

प्रगति की व्याख्या न्यायालयो के निर्णय और मुकद्दमेबाजी से की जा सकती है परन्तु जैसा कि कृषि मत्रालय की अद्यतन समीक्षा मे सकेत किया गया है कि जहाँ मुकद्दमेबाजी को एक बाधापूर्ण कारणतत्व माना जा सकता है वहाँ यह बात समझ मे नहीं आती कि हजारो एकड भूमि, जिसके बारे मे न्यायालयो मे आवेदन नहीं किए गए, का अभी तक निरीक्षण क्यो नही किया गया।

भू-सुधार अधिनियमो के कार्यान्वयन का इतिहास विधान मे छिद्र छोड दने गरीब मुजारो की बडे जमींदारो द्वारा बेदखलियो को देखते रहने और कुलक लाबी (Kulak Lobby)[6] के प्रभावाधीन समर्पण का इतिहास है। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि जहाँ प्राफेसर डण्डेकर और रथ ने अतिरिक्त भूमि के रूप मे 418 लाख एकड क्षेत्रफल आका और यह कहा कि इसमे से 395 लाख एकड वितरण योग्य है वहाँ वास्तव मे अनुमानित अतिरेक बहुत ही कम मात्रा मे अर्थात् 68 6 लाख एकड तक ही रह गया। जाहिर है कि अधिक बल खास भूमियो और कृषि योग्य व्यर्थ भूमि (Culturable wastes) पर दिया गया न कि बडे जमींदारो से भारी अतिरेक प्राप्त करने पर। हाल ही मे की गई कृषि गणना से पता चला है कि बडे जमींदार तो अपने स्वामित्वाधीन 150 लाख एकड भूमि की काश्त करने की परवाह ही नहीं करते। कार्यान्वयन राष्ट्रीय मार्गदर्शी सिद्धान्तो से कहीं पीछे हैं। भू-सुधार की मन्द प्रगति की समीक्षा के आधार पर हमे डॉ लेडनजिसकी (Ladenjinsky) के इस विचार से सहमत होना पडता है ''जहाँ राज्यो ने अधिकतम जोत प्रोग्रामो को औपचारिक रूप मे स्वीकार कर लिया वहाँ उन्होने व्यवहार मे इन्हे अस्वीकार कर दिया जब तक भू-सुधार का कार्यान्वयन ग्राम स्तर पर एसी समितियो को ही नहीं सौपा जाता जिनमे सीमात किसानो (Marginal farmers) और भूमिहीन मजदूरो का बहुमत हो तब तक प्रत्याशित परिणाम प्राप्त नहीं हो सकते।''

5 भू सुधार और स्वामित्व जोतो का आकार वितरण

(Land Reform and Size Distribution of Ownership Holdigns)

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (8वे 17वे और 26वे रौंद मे) द्वारा स्वामित्व जोतो के आकार वितरण सम्बन्धी आकडे 1953-54 1961-62 और 1971-72 के बारे मे एकत्र किए गए। तालिका 4 मे दिए गए आँकडो से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं।

(*i*) जबकि 1953-54 मे 31 4% सीमात परिवारो के स्वामित्वाधीन कुल क्षेत्रफल का 1 4% था, 1971-72 में 44 प्रतिशत परिवारो के पास कुल क्षेत्र का 1 6 प्रतिशत था। इससे जाहिर है कि सीमात किसानो की सख्या मे वृद्धि के साथ उनके स्वामित्वाधीन क्षेत्र मे तदनुरूप वृद्धि नहीं हुई है। इसी कारण इस वर्ग मे प्रति जोत के स्वामित्वाधीन औसत क्षेत्र जो 1953-54 मे 0 27 एकड था, कम होकर 1971-72 मे 0 14 एकड हो गया।

(*ii*) छोटे किसान परिवारो की सख्या 1953-54 में 174 लाख से बढकर 1971-72 में 274 लाख हो गई परन्तु कुल परिवारो के अनुपात के रूप में 1953-54 मे 35 7 से 1971-72 मे गिरावट होकर इनका अनुपात 33 8% हो गया। किन्तु छोटे परिवारो (एक एकड से 5 एकड) के स्वामित्वाधीन क्षेत्रफल जो 1953-54 में 15% था, बढकर 1971-72 मे 22 9% हो गया। इससे जाहिर है कि छोटे किसान परिवारो की स्थिति मे उन्नति हुई है।

(*iii*) बहुत बडे किसान परिवारो की सख्या और अनुपात मे गिरावट आई है। जबकि 1953-54 में 1 2% बडे परिवारो (50 एकड से अधिक) के स्वामित्वाधीन कुल क्षेत्र का 17 5% था, कुल परिवारो में इनका अनुपात कम होकर 1971-72 मे 0 4% हो गया।

(*iv*) बडे किसान परिवारो (15 से 20 एकड) में बहुत बडे परिवारो की सी प्रवृत्ति पाई गई। जबकि 1953-54 मे 8 8% परिवारो के पास कुल क्षेत्रफल का 35% था, इन परिवारो का अनुपात गिरकर 1971-72 में 5 प्रतिशत हो गया और इनके स्वामित्वाधीन क्षेत्रफल कम होकर 31 3 प्रतिशत हो गया।

(*v*) मध्यम किसान परिवारो (5 से 15 एकड) का कुल परिवारो मे अनुपात 22 8 प्रतिशत था और उनमें स्वामित्वाधीन 31 2 प्रतिशत क्षेत्रफल था। 1971-72 में इनका कुल परिवारो मे अनुपात गिरकर 16 7% हो गया परन्तु इनके स्वामित्वाधीन क्षेत्र बढकर 36 1% हो गया।

(*vi*) स्वामित्व जोतो का औसत आकार जो 1953-54 मे 6 25 एकड था कम होकर 1961-62 में 5 एकड हो गया और फिर 1971-72 में यह और गिरकर 3 84 एकड हो गया। यह जनसख्या दबाव का परिणाम है क्योंकि 1953-54 मे इन परिवारो की सख्या 488 लाख से बढकर 1971-72 में 810 लाख हो गई अर्थात इसमें 65 8% की वृद्धि हुई परन्तु इसके विरुद्ध स्वामित्वाधीन क्षेत्रफल 1953-54 में 3 055 लाख एकड से बढकर 1971-72 में 3 112 लाख एकड हो गया अर्थात् इसमे केवल 2 2% की वृद्धि हुई।

---

6 समृद्ध भू स्वामी जो गरीब किसानों की मेहनत का शोषण करके अपने लाभ को बढाते हैं।

तालिका 4 · विभिन्न जोत आकार-वर्गों मे परिवारो की सख्या और उनके स्वामित्वाधीन क्षेत्र (अखिल भारत)

स्वामित्व जोत का आकार वर्ग	परिवारो की सख्या और उसके आधीन क्षेत्र (लाखो मे) 1953-54			1961-62			1971-72		
	परिवारो की सख्या	स्वामित्वाधीन क्षेत्र (एकड़)	औसत क्षेत्र (एकड़)	परिवारो की सख्या	स्वामित्वाधीन क्षेत्र (एकड़)	औसत क्षेत्र (एकड़)	परिवारो की सख्या	स्वामित्वाधीन क्षेत्र (एकड़)	औसत क्षेत्र (एकड़)
सीमात (एक एकड से कम)	154 (31 4)	42 (1 4)	0 27	236 (36 8)	51 (1 6)	0 21	356 (44 0)	49 (1 6)	0 14
छोटे (1-4 99)	174 (35 7)	457 (15 0)	2 62	225 (35 1)	584 (18 4)	2 60	2 74 (33 8)	711 (22 9)	2 60
मध्यम (5-14 99)	111 (22 8)	952 (31 2)	8 54	130 (20 3)	1 097 (34 5)	8 44	136 (16 7)	1 124 (36 1)	8 29
बडे (15-49 99)	43 (8 8)	1 068 (35 0)	24 80	45 (7 1)	1 093 (34 4)	24 20	40 (5 0)	969 (31 0)	23 87
बहुत बडे (50 और अधिक)	6 (1 2)	536 (17 5)	88 70	4 (0 7)	354 (11 1)	80 96	4 (0 4)	259 (8 3)	73 87
कुल	488 (100 0)	3 035 (100 0)	6 25	640 (100 0)	3 179 (100 0)	4 97	810 (100 0)	3 112 (100 0)	3 84

नोट ब्रैकट मे दिए गए आँकडे कुल का प्रतिशत हैं।

डॉ वी एस व्यास ने स्वामित्व जोतो के आकार मे सरचनात्मक परिवर्तन (Structural change) पर तीन मुख्य कारणतत्वों के प्रभाव का परीक्षण किया है–वे हैं–(i) जनाकिकीय प्रक्रियाएँ, (ii) बाजार प्रेरित क्रियाएँ और (iii) सस्थानात्मक परिवर्तन।

स्वामित्व जोतो की सख्या मे वृद्धि मूलत किसान परिवारो की सख्या मे वृद्धि के कारण और ग्रामीण क्षेत्रो मे विकल्प रोजगार अवसरो के अभाव के कारण हुई।

जैसा कि श्री वी एम एस राव ने व्यक्त किया है, कम से कम 1950-60 के मध्य तक छोटे तथा मध्यम भू-स्वामियो द्वारा भूमि के विक्रय के कुछ प्रमाण मिलते हैं और इसका बडे तथा दूरवासी भू-स्वामियो द्वारा क्रय किया गया। यह अधिखतर प्रतिष्ठित प्रतिरूप की अभिव्यक्ति ही थी जिसमें छोटे तथा सीमात किसान को महाजनो के लिए गए ऋण को न लौटाने के बदले भू-स्वामित्व से हाथ धोने पडते थे। सयोगवश, बहुत-सी परिस्थितियो मे ये महाजन बडे भू-स्वामी भी होते थे। अत 1950-60 के दौरान बाजार प्रक्रियाएँ (Market processes) बडे भू-स्वामियो के पक्ष में क्रियाशील थीं। डॉ० बी० एस० व्यास का मत है, "1960-70 के दशक के दौरान यह प्रक्रिया बन्द हो गयी सक्षेप में, अधिकतम जोत के विधान के भय ने बडे तथा विशाल फार्मों के और अधिक विस्तार पर रोक लगा दी उपलब्ध प्रमाण ये सुझाव देते हैं कि भूमि बाजार छोटे तथा सीमात किसानो के विरुद्ध कार्य करने की अपेक्षा उनके पक्ष मे क्रियाशील हो गया।" इस बात की पुष्टि एम० एल० दन्तवाला और सी० एच० शाह के अध्ययनो से भी होती है जिनके अनुसार काश्तकारी विधान (Tenancy legislation) ने बहुत से राज्यो मे भूतपूर्व मुजारो के लिए भूमि क्रय करना आसान बना दिया। यह बात विशेष रूप मे भारत के पश्चिमी क्षेत्रो मे विद्यमान थी।

एक और कारण जो भारत मे जोतो के आकार वितरण को प्रभावित करता है, वह है सस्थानात्मक परिवर्तन (Institutional change) जिसे सामान्यत भू-सुधार कहकर पुकारा जाता है। इस सम्बन्ध मे कुछ राज्यो जैसे पश्चिमी बगाल, केरल, जम्मू तथा कश्मीर को छोड, राज्य द्वारा अधिकतम जोत की सीमा से अतिरिक्त भूमि के अधिग्रहण के फलस्वरूप भूमि का पुनर्वितरण न हो सका परन्तु बडे पैमाने के भू-स्वामियो के मन मे यह भय सा उत्पन्न हो गया कि उन्हे स्वय अपनी भूमिया छोटे तथा सीमान्त किसानो को बेच देनी चाहिएँ, क्योकि कहीं ऐसा न हो जाए कि उन्हे ये भूमियाँ बाजार मूल्य से कम दामो पर राज्य सरकार को सौंपनी पडे। भू-दान एव भूमि छीनो (Land grab) जैसे आन्दोलनो ने चाहे अपने ओर मे छोटे और सीमान्त किसानो को मापीय रूप मे लाभ नहीं पहुचाया परन्तु इनके कारण एक ऐसा वातावरण कायम हो गया है

कि बडे किसानो ने इसी मे बुद्धिमत्ता समझी कि वे कुछ भूमि को बेच दे।

उक्त विश्लेषण से यह पता चलता है कि भू-सुधार का भूमि के पुनर्वितरण पर प्रभाव केवल नाममात्र ही है, विशेषकर यह बात स्पष्ट हो गयी है कि यह अधिकतम जोत के विधान और अतिरिक्त भूमि के अधिग्रहण का परिणाम नहीं। दूसरे, जनसख्या के दबाव के कारण सीमान्त किसानो (या लगभग भूमिहीन मजदूरो) की सख्या मे वृद्धि हुई है। केवल मध्यम कृषको ने अपनी स्थिति उन्नत कर ली है। यदि बडे तथा बहुत बडे भू-स्वामियो पर भू-सुधार विधान को लागू करने का दबाव निरन्तर बनाए रखा जाए, तो जोतो का स्वामित्व वितरण अपेक्षाकृत दृष्टि से कम असमान बन सकता है। परन्तु इसके लिए मजबूत राजनीतिक मनोबल की जरूरत है। दूसरी ओर, सीमान्त किसान (या भूमिहीन मजदूर) को अपनी भूमि की इच्छा छोडने के लिए यह आवश्यक है कि कृषि-भिन्न ग्रामीण विकास के प्रोग्रामो को तेजी से बढाया जाए। इसी से ही ग्रामीण कृषक वर्ग को अध पतन की ओर धकेले जाने से रोका जा सकता है।

6. भू-सुधार नीति की आलोचना

भू-सुधार प्रोग्राम को एक भरसक उत्साह के साथ आरम्भ किया गया परन्तु यह उत्साह शीघ्र ही शिथिल पड गया और भू-सुधार के लिए आरम्भिक जोश ठडा हो गया। मोटे तौर पर भू-सुधार विधान का परिकल्पन तो ठीक था परन्तु इन कानूनो मे बहुत दोष होने के कारण भू-सुधार विधान द्वारा ग्रामीण जनता को बहुत थोडा-सा न्याय उपलब्ध हुआ। प्रोफेसर दन्तवाला ने ठीक ही कहा, "मोटे तौर पर भारत मे अब तक बनाए गए भू-सुधार सम्बन्धी कानून और निकट भविष्य मे कल्पित कानून उचित दिशा म पग हैं, किन्तु कार्यान्वयन के अभाव के कारण इनके परिणाम सतोषजनक होने से कहीं दूर हैं।"[7]

भारतीय भू-सुधार नीति का एक और दोष यह है कि इसके आधीन प्रगति धीमी रही है। इस प्रकार जमींदारो जागीरदारो तथा अन्य निहित हितो (Vested interests) को व्यवहार मे इस कानून का खडित करने के लिए पर्याप्त समय प्राप्त हो गया।

कार्यक्रम मूल्याकन सगठन (Programme Evaluation Organisation) द्वारा भू-सुधार के दो दोषपूर्ण प्रभावों का पता चलता है। एक ओर तो पुराने भू- सभी राज्यो में राष्ट्रीय मार्गदर्शी सिद्धातो को दृष्टि में रखते हुए या तो नए अधिकतम जोत की सीमा के अधिनियम (Land Ceiling Laws) बनाए गए हैं या पुराने कानून सशोधित किए गए हैं। अधिकतर सशोधित अधिनियम अब सविधान के नौवे परिशिष्ट (Ninth schedule) मे शामिल कर दिए गए हैं। इस प्रकार अधिनियमो को न्यायालयो में चुनौती नहीं दी जा सकती। किन्तु असम, जम्मू तथा कश्मीर तमिलनाडु महाराष्ट्र और दिल्ली द्वारा पारित कानून राष्ट्रीय मार्गदर्शी सिद्धान्तो के अनुकूल नहीं थे, या वे बहुत देर से पारित किए गए।

गुजरात, हरियाणा और पजाब मे सशोधित अधिकतम सीमा कानूनो के कार्यान्वियन को रोक दिया गया। पजाब एव हरियाणा के उच्च न्यायालयो ने पजाब अधिकतम जोत सीमा कानून की कुछ धाराए अवैध घोषित कर दीं और यह कहा कि 'व्यक्ति' की परिभाषा मे 'परिवार' को शामिल करना कृत्रिम एव अवैधानिक है। इसने यह भी निर्णय दिया कि कुछ लोगो को भूमि से वचित करना है तो उन्हे भूमि के बाजार मूल्य (Market value of land) पर धारा 31-ए के अनुसार क्षतिपूर्ति देनी होगी। इस निर्णय के आधार पर गुजरात के भू-स्वामियो ने भी अधिकतम जोत की सीमा के कानून का कार्यान्वियन स्थगित करवा दिया।

किसी कानून को सविधान की नौवीं अनुसूची मे शामिल कर लेने मात्र से ही इस बात की गारटी प्राप्त नहीं हो जाती कि इसे न्यायालय मे चुनौती नहीं दी जाएगी। इन कानूना को कई अन्य आधार लेकर भी चुनौती दी गयी है, जैसे (i) सविधान की धारा 14, 16 और 31 के साथ असगति, (ii) बालिग लडको और नाबालिग लडको तथा बालिग लडकिया एव अविवाहित नाबालिग लडकियो के बीच भेद, (iii) भूमि के वर्गीकरण का आधार (iv) क्षतिपूर्ति की दरों (v) स्टैण्डर्ड एकडो का परिकलन करने का ढग और (vi) परिवार-शब्द की परिभाषा मे स्वेच्छा, आदि।

कृषि पर राष्ट्रीय आयोग ने सरकारी मशीनरी को याचिकाओं (*Writ petitions*) के परिणामो का प्रसार करने मे ढील के लिए दोषी ठहराया है। आयोग ने उल्लेख किया है "जब सरकार किसी मुकदमे मे विजयी होती है, तो याचिकाओ के परिणाम जिले या तहसील तक पहुँचने में महीने या कई बार साल भी लग जाते हैं। इसके विरुद्ध जहा कहीं भी व्यक्ति विजयी होते हैं, वे बिना किसी विलम्ब के प्रयास आरम्भ करते हैं और रिकार्डों मे उचित सशोधन करवा कर ही दम लेते हैं।"

7 Report of the Tokyo Seminar on *Problems of Economic Growth* Congress for Cultural Freedom p 9

निस्सन्देह प्रशासनिक मशीनरी को मजबूत करने की बहुत आवश्यकता है। भू-सुधारो को सही ढग से लागू करने के लिए और भूमि अधिकतम सीमा कानून की सफलता के लिए भू-स्वामित्व सम्बन्धी रिकार्डों को तैयार करना अत्यन्त आवश्यक है। भू-सुधारो की सफलता के लिए प्रशासनिक मशीनरी ने काश्तकारो, फसल सहभाजको (Share croppers) और भूमिहीन मजदूरो के प्रतिनिधि लेने होंगे ताकि बुनियादी स्तर पर जहा प्राथमिक स्तर पर अपीलें और तब्दीलिया की जाती हैं, प्रभावी कार्य किया जा सके।

सातवीं योजना और भू-सुधार

छठी योजना के दौरान भू-सुधारो की प्रगति की समीक्षा करते हुए सातवीं योजना ने उल्लेख किया है-"1980-85 की अवधि के दौरान इस स्कीम के लिए केन्द्रीय क्षेत्र में 30 करोड़ रुपए की व्यवस्था की गई और इतनी राशि राज्यो द्वारा प्रदान की जानी थी। तथापि इन निधियों का वास्तविक उपयोग बहुत कम हुआ जिसका बडा कारण था कि राज्यो ने अपने भाग की व्यवस्था नहीं की और आबटित साधनो के उपयोग प्रमाणपत्र (Utilization certificates) प्रस्तुत न किए जाने के कारण केन्द्रीय सहायता का धन नहीं दिया जा सका।"* चाहे भू-सुधार के कार्यक्रम पर बल देते हुए सातवीं योजना में साफ कहा गया-"भूमि सुधार, गरीबी हटाओ कार्यनीति तथा कृषि के आधुनिकीकरण एव अधिक उत्पादन दोनो रूपो में महत्त्वपूर्ण तत्व माने गए हैं। भूमि के पुन वितरण तथा अन्य पूरक क्रियाए चालू करके स्थायी परिसम्पत्ति आधार (Asset base) प्रदान किया जा सकता है। इस तरह चकबन्दी, काश्तकारी विनियमन (Tenancy Regulation) और भूमि अभिलेखो (Land Records) को अद्यतन बनाने से छोटे और सीमान्त भूमिधारियो को उन्नत तकनालाजी एव आदान (Inputs) प्राप्त करने की पहुच बढेगी जिससे कृषि उत्पादन मे प्रत्यक्ष वृद्धि होगी।" किन्तु वास्तव में यह अनुभव किया गया कि इस कार्यक्रम और एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम अथवा राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम/ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम के बीच बहुत कम सम्बन्ध था और यह अलग-अलग कार्य करता रहा। इससे यह बात साफ हो जाती है कि भारत में भू-सुधारो को नीची प्राथमिकता दी गई और उनको कार्यान्विति बहुत ही खराब रही। अत कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि भू-सुधारो के सम्बन्ध मे प्रगति असन्तोषजनक रही।

28

जोत का आकार और उत्पादिता
(SIZE OF HOLDING AND PRODUCTIVITY)

1. लाभकर जोत (Economic Holding) का अर्थ

खेती की उपयुक्त इकाई के लिये पारिवारिक जोत (Family holding), अनुकूलतम जोत (Optimum holding), लाभकर जोत (Economic holding) आदि अनेक शब्दो का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुत सन्दर्भ मे उनका अभिप्राय क्या है, यह जानना उपयुक्त होगा।

भू-सुधारो की नामिका (Panel of land reforms) ने 'पारिवारिक जोत' शब्द का प्रयोग किया था। 'पारिवारिक जोत' (Family holding) का अनुमान लगाने के लिये नामिका ने आय को आधार बनाया। पारिवारिक जोत से तात्पर्य ऐसी जोत है जिससे 1,600 रुपये सकल औसत आय (Gross average income) या 1 200 रुपये शुद्ध आय प्राप्त हो (इसमे परिवार के श्रम का पारिश्रमिक भी सम्मिलित है) और जिसका क्षेत्रफल एक हल के लिये उपयुक्त इकाई से कम न हो।

अनुकूलतम जोत (Optimum holding) का अर्थ जोत के *उस अधिकतम आकार से है जिस पर परिवार का स्वामित्व होना चाहिये।* पारिवारिक जोत की तीन गुना जोत अनुकूलतम जोत कही गई। जोत के आकार की अधिकतम सीमा के निर्धारण के मूल मे यह विचार काम कर रहा है कि *जोत की ऊपरी सीमा उस स्तर तक नियत कर दी जाए,* जहा तक उस पर एक पारिवारिक का स्वामित्व स्वीकार किया जा सकता है। बागो तथा ईख के खेतो आदि को उपयुक्त व्यवस्था के अपवाद के रूप मे अलग रखना होगा क्योकि उनके अनुकूलतम आकार का निर्धारण करते समय यह बात ध्यान मे रखनी होगी कि उत्पादन की मात्रा मे कमी न हो। दूसरे शब्दो मे, बगीचो और ईख के फार्मों की जमीन के सदर्भ मे अनुकूलतम जोत उसे कहा जाएगा, जिस पर उत्पादन की नई तकनीक की सीमा मे रहते हुए भूमि, श्रम और पूजी का कुशलतम उपयोग किया जा सके।

लाभकर जोत (Economic holding) की अनेक प्रकार से परिभाषा की गई है। डा मान (Dr Mann) के अनुसार, लाभकर जोत उसे कहते हैं, "जिससे एक औसत परिवार को सन्तोषजनक *न्यूनतम जीवन-स्तर* उपलब्ध हो सके" किन्तु 'न्यूनतम जीवन स्तर' (Minimum standard of living) अस्पष्ट शब्द है। यह निश्चित करना कठिन है कि न्यूनतम, उचित अथवा उच्च जीवन-स्तर में किस-किस चीज को शामिल किया जाए। इसकी अपेक्षा लाभकर जोत की परिभाषा इस रूप मे करना कहीं अधिक युक्तियुक्त होगा कि यह एक ऐसी जोत होती है जिसमे कृषक और उसका परिवार साधनो का अधिकतम कार्यक्षम ढग से उपयोग करने का पर्याप्त अवसर पा सके। दूसरे शब्दो मे, लाभकर जोत अधिकतम कार्यक्षम और साथ ही परिचालन की दृष्टि से आदर्शतम आकार वाली होती है।

काग्रेस कृषि सुधार समिति (1949) ने लाभकर जोत *की परिभाषा एक ऐसी जोत के रूप मे की जो कृषक को उचित जीवन-स्तर उपलब्ध करा सके* और एक "सामान्य आकार" के परिवार को एक बैलो की जोडी का प्रयोग करते हुए पूर्ण रोजगार उपलब्ध करा सके। इस धारणा के आधार पर *अधिकतम जोत निर्धारित की गयी* और यह कहा गया कि किसी किसान के पास लाभकर जोत के तिगुने से अधिक भू-स्वामित्व नहीं होना चाहिये। इसके विरुद्ध *समिति ने आधारभूत जोत (Basic holding)* की धारणा का सुझाव दिया जो लाभकर जोत से तो छोटी ही कल्पित की गयी परन्तु बहुत अधिक छोटी एव अलाभकर नहीं।

लाभकर जोत का आकार निर्धारित करने वाले तत्व

लाभकर जोत का आकार विभिन्न तत्वो द्वारा निर्धारित होता है। ये तत्व स्थान-स्थान के साथ और प्रदेश-प्रदेश के साथ भिन्न-भिन्न होते हैं।

(1) भूमि की उर्वरता (Fertility of land)-लाभकर जोत के निर्धारण का एक मुख्य तत्व भूमि की उर्वरता है। भूमि जितनी अधिक उर्वर होगी, कृषक परिवार को उपयुक्त जीवन-स्तर प्राप्त कराने के लिये उतनी ही कम भूमि की आवश्यकता होगी। ध्यान रखाना होगा कि उन जमीनो की उर्वरता *अपेक्षाकृत अधिक होती है, जिनमे कृत्रिम सिचाई व्यवस्था हो।*

(2) खेती का तरीका-लाभकर जोत का आकार इस

बात पर भी निर्भर करता है कि खेती का कौन-सा तरीका उपयोग में लाया जाता है। यदि किसान ट्रैक्टर आदि कृषि यन्त्रों का उपयोग करता है, तो लाभकर जोत बड़े आकार की अर्थात 100 एकड़ या उससे भी अधिक होगी। इसके विपरीत, यदि वह खेती की पुरानी तकनीको का प्रयोग करता है तो वह 15 से 20 एकड़ तक के खेत से बड़ी जमीन की देखभाल नहीं कर सकेगा।

(3) शस्य-स्वरूप (Nature of the crops)-लाभकर जोत का आकार इस बात पर निर्भर करता है कि किस प्रकार की फसल उगाई गई है। उदाहरण के तौर पर, सब्जियो की खेती अत्यधिक सघन होती है और 5 एकड़ या उससे कम के खेत पर औसत कृषक-परिवार को लगातार और पूर्ण रोजगार भी मिल जाता है तथा वह उपयुक्त जीवन-स्तर भी प्राप्त कर सकता है। इसके विपरीत गेहूँ की खेती के लिये लगभग 35 एकड़ और भेड़-पालन (Sheep breeding) के लिये भी बड़ा खेत अपेक्षित होता है।

2. भारत में संकार्य जोतों के आकार का ढांचा (Size pattern of operational holdings in India)

सकार्य जोत की परिभाषा, "उस समग्र भूमि से है जिसका प्रयोग कुल या आशिक रूप मे कृषि उत्पादन के लिये एक तकनीकी इकाई के रूप में केवल एक व्यक्ति द्वारा या कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ किया जाता है, इस बात का ध्यान न रखते हुए कि भूमि का स्वामित्व, कानूनी रूप, आकार या स्थिति क्या है।" तकनीकी इकाई (Technical Unit) की परिभाषा "उस इकाई के रूप में की जाती है जो एक ही प्रबन्धक के आधीन हो और जिसके उत्पादन के साधन अर्थात श्रमशक्ति, मशीनरी एव पशु भी एक से ही हो।" इस परिभाषा के आधार पर 1960-61, 1970-71 और 1985-86 में तीन कृषि गणनाए (Agricultural censuses) की गयीं। इन गणनाओ का उद्देश्य भू-स्वामी की अपेक्षा वास्तविक काश्तकार पर बल देना था। कृषि विकास के कार्यक्रम मे, सकार्य जोत मूल निर्णायक इकाई मानी गयी।

तालिका 1 मे दिये गए आकडो से पता चलता है कि सकार्य जोतो की सख्या जो 1970-71 मे 710 लाख थी बढकर 1985-86 मे 980 लाख हो गयी अर्थात इनकी सख्या मे 38 प्रतिशत की वृद्धि हुई, चाहे इनके आधीन क्षेत्रफल में नाममात्र वृद्धि हुई अर्थात 1,620 लाख हैक्टेयर से 1,640 लाख हैक्टेयर।

(1) सीमान्त जोतें (Marginal holdings)-1970-71 की गणना के अनुसार 710 लाख कुल जोतो मे से 360 लाख (लगभग 51 प्रतिशत) 1 हैक्टर से कम आकार वाली हैं। इन सीमान्त जोतो के अधीन 1970-71 मे 150 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल था जो कुल क्षेत्रफल का 9 प्रतिशत था। इसके विरुद्ध 1990-91 मे इस वर्ग मे कुल जोतो की सख्या 620 लाख हो गयी और इनके अधीन 250 लाख हैक्टेयर क्षेत्र अर्थात क्षेत्रफल का 15 प्रतिशत था। दूसरे शब्दो में, क्षेत्र में वृद्धि ने इस वर्ग मे जोतो की सख्या में वृद्धि की ही क्षतिपूर्ति की। इससे सकेत मिलता है कि सीमान्त कृषको का यह वर्ग जिसके पास बहुत थोडी भूमि थी, निर्धनता रेखा

तालिका 1 भारत मे सकार्य जोतो की सख्या और आकार वितरण

	संख्या (लाखो मे)		क्षेत्रफल (लाख हैक्टेयर)	
	1970-71	1990-91	1970-71	1990-91
सीमान्त जोत (1 हैक्टेयर से कम)	360 (51)	620 (58)	150 (9)	250 (15)
छोटी जोतें (1 से 4 हैक्टेयर)	240 (34)	340 (33)	490 (30)	670 (41)
मध्यम जोतें (4 से 10 हैक्टेयर)	80 (11)	80 (7)	480 (30)	450 (27)
बड़ी जोतें (10 हैक्टेयर से अधिक)	30 (4)	20 (2)	500 (31)	290 (17)
कुल	710 (100)	1 060 (100)	1620 (100)	1 660 (100)

नोट ब्रैकट में दिये गये आकडे कुल का प्रतिशत हैं।
स्रोत Ministry of Agriculture *Agricultural Statistics at a Glance (1994)*

के नीचे रह रहा था। चूंकि सामान्त जोत का औसत आकार केवल 0 40 हैक्टेयर था जिससे प्राप्त आय गुजारा करना बहुत ही कठिन है। इससे भारतीय कृषि मे वर्तमान दरिद्रीकरण (Pauperisation) का सकेत मिलता है जिसका प्रमाण सीमान्त या लगभग भूमिहीन श्रमिको की सख्या मे लगातार वृद्धि मे मिलता है।

(2) छोटी जोतें (Small holdings)— इस वर्ग मे 1 से 4 हैक्टेयर को अधिसीमा मे आने वाली जोते शामिल की जाती हैं। 1970-71 मे इस वर्ग मे 240 लाख जोते थीं जिनका 490 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल अर्थात कुल क्षेत्रफल का 30 प्रतिशत। किन्तु 1990-91 मे इस वर्ग मे जोतो की सख्या बढकर 340 लाख हो गई (कुल का 33 प्रतिशत) और उनके आधीन क्षेत्रफल बढकर 670 लाख हैक्टेयर हो गया अर्थात कुल क्षेत्रफल का 41 प्रतिशत। दूसरे शब्दो, सापेक्ष तथा परम दोनो ही रूपो मे जोतो की सख्या और उनके आधीन क्षेत्रफल मे इस वर्ग मे थोडी वृद्धि हई है। इस वर्ग मे जोत का औसत आकार 2 हैक्टेयर से थोडा अधिक है।

(3) मध्यम जोते (Medium holdings)-इस वर्ग मे 4 से 10 हैक्टेयर की अधिसीमा मे आने वाली जोते शामिल की जाती हैं। 1970-71 मे इस वर्ग मे 80 लाख जोते थीं, (कुल जोतो का 11 प्रतिशत) जिनके अधीन 480 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल था अर्थात कुल सकार्य क्षेत्र का 30 प्रतिशत। 1990-91 मे, मध्यम जातो की मात्रा 80 लाख ही जो कुल जोतों का 7 प्रतिशत है परन्तु उनके अधीन 450 लाख हैक्टेयर क्षेत्र है अर्थात कुल सकार्य क्षेत्र का 27 प्रतिशत। इस वर्ग में जोत का औसत आकार 1970-71 और 1990-91 के बीच 6 हैक्टेयर से कम होकर 5 6 हैक्टेयर हो गया।

(4) बड़ी जोते (Large holdings)-इस वर्ग म 10 हैक्टेयर या इससे अधिक आकार वाली जोते शामिल की जाती हैं। 1970-71 मे इस वर्ग मे 30 लाख जोते थीं जो कुल जोतो का केवल 4 प्रतिशत थीं परन्तु उनके अधीन 500 लाख हैक्टेयर भूमि थी अर्थात कुल सकार्य क्षेत्र का 31 प्रतिशत। 1990-91 म, बडी जोतो की सख्या गिरकर 20 लाख हो गयी (अर्थात कुल 2 प्रतिशत) और इस क्षेत्र मे सकार्य क्षेत्र कम होकर 290 लाख हैक्टेयर हो गया (कुल क्षेत्रफल का 17 प्रतिशत) वास्तव मे इस वर्ग मे जोत के सकार्य क्षेत्रफल मे 20 वर्षों की अवधि म सबसे अधिक गिरावट आयी है। इस वर्ग मे जोत का ओसत आकार जो 1970-71 मे 18 हैक्टेयर था कम होकर 1990-91 मे 17 2 हैक्टेयर हो गया।

जोत का औसत आकार (Average size of holding)

तालिका 2 मे विभिन्न वर्गों मे सकार्य जोतो का औसत आकार दिया गया है। जोतो का कुल आकार जो 1970-71 मे 2 28 हैक्टेयर था, गिर कर 1990-91 मे 1 57 हैक्टेयर हो गया अर्थात इस अवधि के दौरान इसमे 31 प्रतिशत की गिरावट आयी। इसका मुख्य कारण यह है कि जहा जनसख्या मे वृद्धि के कारण सकार्य जोतो की सख्या मे वृद्धि हुई वहा सकार्य क्षेत्र में थोडी सी गिरावट आई। सकार्य क्षेत्र मे थोडी सी वृद्धि का कारण कमजोर वर्गों को

तालिका 2 भारत मे विभिन्न वर्गों मे जोतो का औसत आकार

आकार वर्ग	औसत आकार (हैक्टेयर में)		प्रतिशत
	1970-71	1990-91	परिवर्तन
सीमात (1 है से कम)	0 40	0 40	-2 5
छोटी (1 से 4 है)	2 04	1 98	-2 9
मध्यम (4 से 10 है)	6 08	5 88	-3 3
बडी (10 है से अधिक)	18 09	17 16	-5 1
कुल	2 28	1 57	-31 1

सरकारी भूमियो का आवण्टन है और सम्भवत कुछ हद तक सरकारी भूमियो पर नाजायज कब्जा भी है परन्तु इसका प्रतितुलन बहुत हद तक नागरीकरण के कारण कृषि-भूमि मे होने वाली लगातार कमी और पिछडे क्षेत्रो के औद्योगीकरण की सरकारी नीति द्वारा हुआ है। इन परस्पर विरोधी शक्तियो का शुद्ध प्रभाव यह है कि कुल सकार्य क्षेत्र 1 620-1630 लाख हैक्टेयर के आसपास अवरुद्ध रहा।

तालिका 3 भारत मे सकार्य जोतो का औसत आकार
हैक्टेयर में

राज्य	1970-71	1985-86
राजस्थान	5 46	4 34
महाराष्ट्र	4 28	2 65
गुजरात	4 11	31 5
मध्य प्रदेश	4 00	2 91
हरियाणा	3 77	2 76
कर्नाटक	3 20	2 41
पजाब	2 89	3 77
आध्र प्रदेश	2 51	1 72
अखिल भारत	**2 28**	**1 68**
उडीसा	1 89	1 47
हिमाचल प्रदेश	1 53	1 30
बिहार	1 50	0 87
असम	1 47	1 31
तमिलनाडु	1 45	1 01
पश्चिम बगाल	1 20	0 92
उत्तर प्रदेश	1 16	0 93
जम्मू एव कश्मीर	0 94	0 86
केरल	0 57	0 36

विभिन्न राज्यो मे जोत का औसत आकार

तालिका 3 मे विभिन्न राज्यो मे सकार्य जोत का औसत आकार 1970-71 और 1985-86 के बीच दिया गया है क्योंकि 1990-91 के आकडे उपलब्ध नहीं हैं। जबकि अखिल भारतीय औसत 1985-86 मे 1 68 हैक्टेयर थी, अखिल भारतीय औसत से ऊपर ये राज्य थे राजस्थान, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश, हरियाणा, कर्नाटक, पजाब और आध्र प्रदेश। अखिल भारतीय औसत के नीचे ये राज्य थे हिमाचल प्रदेश, बिहार, असम तमिलनाडु पश्चिमी बगाल, उत्तर प्रदेश, जम्मू तथा कश्मीर और केरल। इनम भिन्नता की सीमा बहुत अधिक थी। यदि राजस्थान को एक अपवाद मानकर छोड दिया जाए, तो हम देखते हैं कि गुजरात म औसत आकार 3 15 हैक्टेयर था और दूसरी ओर केरल मे औसत आकार 0 36 हैक्टेयर था। यह अभिसीमा 9 : 1 के बीच बैठती है। अच्छे औसत आकार से निश्चय ही कृषि के अविभाजीनय साधनो का अधिक अनुकूल प्रयोग हो सकता है और इससे लागत कम हो जाती है और जोतो की उत्पादिता बढ जाती है।

तालिका 4 मे दिये गये आकडो से स्पष्ट है कि अन्य देशो के मुकाबले भारत मे जोत का आकार छोटा है। जोतो की लघुता तथा खेती के बडे आकार में सकेन्द्रित हो जाने के अनेक कारण हैं।

तालिका 4 कुछ चुने हुए देशो मे 1970 मे जोत का औसत आकार

(हैक्टेयर में)

देश	जोत का औसत आकार
आस्ट्रेलिया	1 993
यू एस. ए	158
यू के	5 5
बेल्जियम	8 4
यूगोस्लाविया	5 0
भारत	2 3
जापान	1 0

स्रोत *Indian Agriculture in Brief* (1980)

3. जोतों के उपविभाजन और विखण्डन की समस्या

भारत मे कृषि जोतो की दुहरी समस्या है। जाते न केवल छोटी ही हैं अपितु विखण्डित भी हैं। वे एक स्थान पर बधी न होकर सारे गाव मे छोटे-छोटे टुकडो मे बिखरी हुई हैं। जोतो के आकार की लघुता का मुख्य कारण पैतृक भूमि का विभाजन और उपविभाजन रहा है। उधर भूमि के विखण्डन का कारण सम्पत्ति के सयुक्त स्वामियो (Joint owners) के बीच सम्पति का विभाजन रहा है। इनमे से प्रत्येक स्वामी का यह प्रयास रहा है कि उसे परम्परागत भूमि की प्रत्येक किस्म मे हिस्सा मिले।

भारत मे जोतो के छोटे आकार के कारण

(1) देश की बढती हुई आबादी-बढती हुई आबादी को जोतो के आकार की लघुता का महत्वपूर्ण कारण कहा जा सकता है। आबादी मे हुई वृद्धि के कारण भूमि के और अधिक टुकडे हो जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप भू-जोतो का आकार छोटा होता जाता है।

(2) **उत्तराधिकार का नियम**-भारत मे जोतो के आकार की लघुता का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण उत्तराधिकार का नियम (Law of Inheritance) है। आबादी मे वृद्धि के कारण ही छोटे आकार के खेत नहीं बन जाते, जोतो का विभाजन तो उत्तराधिकार के नियम के कारण हाता है। हिन्दू तथा मुस्लिम उत्तराधिकार नियम के अनुसार, सभी लडके (और लडकिया भी) पैतृक सम्पत्ति में समान भाग के अधिकारी होते हैं। परिणामत प्रत्येक पीढी के बाद बडे कृषि-क्षेत्र भी टुकडो म बट जाते हैं।

(3) सयुक्त परिवार प्रणाली का पतन-भारतीय जोतों के छोटे होने का तीसरा महत्वपूर्ण कारण सयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन है। औद्योगीकरण के प्रभाव, नगरो के विकास और पश्चिमी शिक्षा तथा सस्कृति के प्रसार के परिणामस्वरुप सयुक्त परिवार प्रणाली विघटित हो गई और परिवार अलग-अलग रहने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि जोते टुकडों मे बट गईं।

(4) **हस्तशिल्प और ग्रामोद्योग का पतन**-भारत मे छोटे आकार की जोतो का एक और उल्लेखनीय कारण ग्राम-हस्तशिल्प का पतन है। हस्तशिल्पो (Handicrafts) के कारण बहुत से शिल्पियो को रोजगार मिला हुआ था, किन्तु मशीन से बनी हुई वस्तुओ से प्रतिस्पर्द्धा से हस्तशिल्पी उजड गए और शिल्पियो को अपना पैतृक व्यवसाय छोडकर कृषि का सहारा लेना पडा। इसका परिणाम यह हुआ कि जमीन और भी अधिक छोटे टुकडो मे बट गई।

(5) ग्रामीण ऋण और देशी साहूकार-गावो मे देशी साहूकार वर्ग अत्यन्त निर्दयी है और उसका किसान को ऋण देने का एकमात्र उद्देश्य उससे किसी न किसी प्रकार उसकी जमीन हथिया लेना होता है। ये साहूकार किसान को उधार लेने के लिये प्रोत्साहित करते हैं और अनेक अनुचित उपायो द्वारा उससे भारी ब्याज वसूल करते हैं। चूकि अपना खत साहूकार के हाथ सौंपे बिना किसान और किसी उपाय से लिया हुआ ऋण चुका नहीं पाता, परिणामत अन्त में साहूकार ही जमीन का मालिक बन बैठता है।

(6) भूमि के साथ लगाव–किसान का भूमि के साथ लगाव भारत मे खेतो के छोटे होने के कारणो मे से एक है–भारतीय किसान को केवल जीविका का साधन ही नहीं समझता, प्रतिष्ठा और सम्मान का आधार भी समझता है। परिणामत प्रत्येक व्यक्ति पैतृक भूमि मे हिस्सा पाना चाहता है और परिणामत खेतो का आकार छोटा हो जाता है।

उपविभाजन और विखण्डन की प्रक्रिया इस सीमा तक बढ सकती है कि प्रत्येक भू-खण्ड अत्यन्त क्षुद्र आकार का रह जाए। महाराष्ट्र के एक गाव के सम्बन्ध मे अध्ययन से पता चला है कि "आधे एकड से छोटे खेत पृथक-पृथक स्वामित्व वाले 20 से भी अधिक खण्डो मे उप-विभाजित हैं।"

उपविभाजन और विखण्डन (Subdivision and fragmentation) की मात्रा

डा मान को अपने अध्ययन से पता चला कि पिपला सौदागर गाव मे 156 भू-स्वामियो के पास 729 भू-खण्ड थे, किन्तु उनमे से 463 भू-खण्ड एक एकड से भी कम आकार के और 211 भू-खण्ड चौथाई एकड से भी छोटे थे। पजाब मे जोत विखण्डन (Fragmentation of holdings) विषयक एक अध्ययन से पता चला कि 34 5 प्रतिशत किसानो मे प्रत्येक के पास 25 से अधिक भू-खण्ड थे। सारे देश मे इसी से मिलती-जुलती स्थिति विद्यमान थी।

उपविभाजन और विखण्डन के दोष

उपविभाजन और विखण्डन का विद्यमान होना उन्नत कृषि व्यवहार अर्थात अच्छे बीजो एव खाद के प्रयोग, श्रेष्ठ कृषि-मशीनरी के इस्तेमाल कुओ के खोदने, भूमि पर बाग लगाने फसल को कीडो से बचाने और कुल्या प्रणालियो (Drainage systems) को उन्नत करने मे बाधा है। इसके अतिरिक्त हदबदी, बाड लगाने और रास्ते बनाने आदि के रूप मे बहुत सी भूमि नष्ट हो जाती है। हदबन्दी के झगडे प्राय मुकद्देमबाजी का कारण बनते हैं। अत जाहिर है कि छोटे एव बिखरे खेत कृषि की कुशल व्यवस्था मे रुकावट हैं। परिणामत बडे खेतो की तुलना मे छोटे खेतो पर उत्पादन की लागत बहुत अधिक हो जाती है। इस कारण कृषि मे आर्थिक एव मानवीय साधनो का अपव्यय होता है।

उपविभाजन और विखण्डन का समाधान

(1) लाभकर जोतो की स्थापना (Creation of economic holdings) स्पष्टत सरकार को कृषि उत्पादिता (Agricultural productivity) बढाने के लिये तथा कृषि के सगठन और प्रबन्ध मे सुधार करने के लिये अनेक उपाय करने है। ये उपाय जो कि भू सुधार से सम्बद्ध हैं, सामूहिक रूप मे कृषि पुनर्गठन कहे जाते हैं। भारत मे भू-सुधार का एक महत्वपूर्ण अंग जोत के आकार में वृद्धि करना तथा बिखरी हुई जोतो को सगठित करना है। लाभकर जोतो के गठन के लिये निम्नलिखित महत्वपूर्ण उपाय करने होगे-

(क) जोतो की अधिकतम सीमा निश्चित करना, ताकि उन लोगो को जिनके पास नियत मात्रा से अधिक भूमि हो, अतिरिक्त अश को सरकार के हवाले कर देना पडे और सरकार इस प्रकार प्राप्त भूमि उन किसानो मे वितरित कर दे जिनकी जोत की इकाई लाभकर नही है।

(ख) उन किसानो को जिनके पास अत्यन्त छोटे खेत हैं, अपनी जमीने छोडकर गाव मे ही दूसरे धन्धो को अपनाने की प्रेरणा दी जानी चाहिये, और

(ग) गाव मे भूमिहीन मजदूरो को छोटे किसानो को काम दिलाने के लिये उद्योग-धन्धे शुरू किये जाने चाहिएं ताकि भूमि पर जनसख्या का दबाव कम किया जा सके।

भारत मे लाभकर जोतो का गठन कठिन है। इसके तीन विशिष्ट कारण हैं सर्वप्रथम, भारत मे अलाभकर जोतो (Uneconomic holdings) की सख्या इतनी अधिक है कि उन सबको लाभकर जोतो मे परिवर्तित करना कठिन होगा। दूसरे, भारत मे भूमि के स्वामित्व की भावना अत्यन्त प्रबल है। इसलिये धनी किसानो या जमीदारो को अपनी फालतू भूमि त्यागने या गरीबो को अपनी छोटी जोते छोड़ देने के लिये राजी कर सकना कठिन है।

यदि हम यह भी मान लें कि किसी प्रकार से लाभकर जोतो का गठन किया जा सकता है, तो भी सारभूत महत्व की बात तो यह होगी कि उनका पुन विभाजन और उपविभाजन न हो। उत्तराधिकारियो के बीच भू-सम्पत्ति के विभाजन और उपविभाजन के परिणामस्वरूप ही तो पहले भी छोटे आकार की जोते अस्तित्व मे आयी हैं और भूमि का विखण्डन हुआ है। इस उद्देश्य से उत्तराधिकार की वर्तमान प्रणाली जिसके अनुसार लडके और लडकियो को सम्पत्ति मे समान भाग मिलता है, इस प्रकार परिवर्तित की जानी चाहिये कि एक न्यूनतम आकार प्राप्त होने के पश्चात उपविभाजन की आज्ञा न दी जाये।

(2) चकबन्दी (Consolidation)-काफी समय से यह अनुभव किया जाता रहा है कि बिखरे खेतो की समस्या का उचित समाधान चकबन्दी ही है। चकबन्दी का अर्थ एक किसान के गाव भर मे बिखरे भू-खण्डो को एक सुसहत इकाई (Compact block) के अन्तर्गत ले आना है। चकबन्दी के लिये पहले गाव की सारी जमीन को एक भू-खण्ड मे एकत्र कर लिया जाता है और बाद में गाव के सारे किसानो मे सुसहत-भू-खण्ड के रूप मे विभाजित कर दिया

जाता है। चकबन्दी एक उपयोगी व्यवस्था है क्योंकि इसके कारण समय और श्रम की बचत होती है, सिंचाई के कारण भूमि सुधारने मे सहायता मिलती है और मुकदेबाजी कम हो जाती है।

चकबन्दी आन्दोलन बहुत से राज्यो विशेषकर पजाब में काफी प्रगति कर गया है। 31 जनवरी 1956 तक केवल 45 लाख हैक्टेयर भूमि की चकबन्दी की गयी परन्तु इस आन्दोलन ने धीरे-धीरे गति प्राप्त कर ली और 1972 तक लगभग 330 लाख हैक्टेयर भूमि चकबन्दी के आधीन लायी गयी। इसकी प्रगति सभी राज्यो मे एक जैसी नहीं है। छठी योजना ने चकबन्दी कार्य की असतोषजनक प्रगति का उल्लेख इन शब्दो मे किया है "अब तक के अनुमान के अनुसार केवल 450 लाख हैक्टेयर अथात चकबन्दी योग्य भूमि के लगभग एक-चौथाई भाग की देश मे चकबन्दी की जा चुकी है। किन्तु कार्यान्वयन अनियमित एव विकीर्ण रहा है। केवल पजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे यह कार्य पूरा हुआ है। दक्षिणी राज्यो और राजस्थान मे तो शुरुआत भी नहीं हुई है। पूर्वी राज्यो मे केवल उडीसा और बिहार मे कुछ काम शरू हुआ है।" ग्राम विकास मत्रालय द्वारा अपनी वार्षिक रिपोर्ट (1992-93) मे एकत्र किये गये आकडो के अनुसार 11 दिसम्बर 1992 तक 1 510 लाख एकड (611 लाख हैक्टेयर) भूमि की चकबन्दी की गयी। इसमें से केवल दो राज्यो महाराष्ट्र द्वारा 527 लाख एकड (कुल का 34 9%) और उत्तर प्रदेश द्वारा 442 लाख एकड (29 30%) की चकबन्दी की गयी। तीन और राज्यो अथात पजाब, हरियाणा और मध्य प्रदेश ने चकबन्दी के कार्य को गम्भीर रूप मे लिया है। बिहार तथा जम्मू एव कश्मीर ने यह योजना अभी स्थगित कर रखी है और पश्चिमी बगाल एव असम में इसे कायान्वित नहीं किया गया। पूरे देश की दृष्टि से अभी कृषि-आधीन क्षेत्रफल का केवल 45% चकबन्दी के आधीन लाया गया है। वस्तु-स्थिति यह है कि हम चकबन्दी के प्रति उदासीन हैं और यही इस दिशा मे हमारी मन्द प्रगति का कारण है।

चकबन्दी के कार्य मे जो महत्वपूर्ण कठिनाइया आती हैं, वे निम्नलिखित हैं

1 किसान अपनी पैतृक भूमि से बहुत अधिक लगाव रखते हैं और इसे चकबन्दी के लिये छोडने के लिये तैयार नहीं होते।

2 जिनके पास बढिया किस्म की भूमि होती है, वे इसे चकबन्दी मे देना नहीं चाहते। उन्हे भय होता है कि कहीं बदले में घटिया भूमि न दे दी जाये।

3 चकबन्दी एक कठिन प्रक्रिया है। सरकारी अफसर जो इस काम मे लगे होते हैं, वे आम तौर पर सुस्त होते हैं और प्राय भ्रष्ट भी।

4 सामान्य रूप मे, इस आन्दोलन के लिये किसानो के गरीब वर्गों मे उत्साह पैदा नहीं हुआ।

इस सम्बन्ध मे योजना आयोग ने साफ शब्दो में लिखा "इस प्रोग्राम की मुख्य कमजोरी यह थी कि चकबन्दी कार्य बिना मुजारो को पट्टे की सुरक्षा दिये, विशेषकर फसल सहभाजको (Share croppers) पर लागू किया गया। परिणामत जोतो की चकबन्दी से प्राय असुरक्षित मजारो की बडे पैमाने पर बेदखलिया की गयीं।"

(3) सहकारी खेती–कृषि पुनर्गठन की योजना के अग के रूप मे भारत सरकार ने सहकारी खेती को सरकारी नीति के रुप मे अगीकार किया।

4. सहकारी खेती
(Co-operative Farming)

भू-सुधारो का अन्तिम लक्ष्य भारत मे सहकारी फार्मों की स्थापना करना तथा सहकारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था (Co-operative rural economy) की रचना करना है। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने बहुत पहले यह जान लिया था कि सामाजिक और आर्थिक लक्ष्यो के प्रति व्यक्ति की पहल की भावना को उन्मुख करने के लिये भारत मे सहकारी समितिया बहुत उपयोगी होगी। महात्मा गाधी ने लिखा "मेरा यह दृढ विश्वास है कि हम तब तक कृषि का पूरा लाभ नहीं उठा सकते जब तक कि हम सहकारी खेती न करने लगें। क्या यह बात विवेकसम्मत प्रतीत नहीं होती कि एक गाव के सौ किसान परिवार जमीन को सौ हिस्सो मे बाटने की बजाय मिल कर सामूहिक खेती करें और उससे प्राप्त आय को आपस मे बाट ले?"[1]

सहकारी खेती के प्रकार

सहकारी खेती के निम्नलिखित चार प्रकार हैं

(i) सहकारी काश्तकारी खेती (Co-operative tenant farming) का तात्पर्य एक ऐसी व्यवस्था से है जिसमें सहकारी समिति की, जिसके अन्क सदस्य है, अपनी जमीन होती है जिसे अनेक छोटी जोतो मे विभक्त कर सदस्यो को पट्टे पर दिया जाता है। सहकारी समिति ऋण, बीज, खाद व उपकरणो आदि की सुविधाए प्रदान करती है तथा अपने सदस्यो की उपज का विक्रय करती है। प्रत्येक सदस्य को अपनी जोत का नियत लगान देना पडता है, उस जोते से होने वाली उपज पर किसान का अपना अधिकार रहता है।

(ii) सहकारी सामूहिक खेती (Co-operative collective farming) की व्यवस्था मे सदस्यो को अपनी

1 *Harijan*, February 15 1942

भूमि का अटल समर्पण करना पडता है। भूमि, पशु-धन और सामग्रिया साझी होती है, श्रम भी साझे रूप मे किया जाता है तथा प्रबन्धन कार्य साधारणतया निर्वाचित परिषदे (*Elected councils*) *करती हैं। इस व्यवस्था मे प्रत्येक* व्यक्ति को मजदूरी के अलावा फार्म की अधिशेष उपज में हिस्सा मिलता है। सामूहिक फार्म विशाल फार्म होता है और अधिक यन्त्रीकृत (Mechanized) होता है।

(*iii*) सहकारी बेहतर खेती (Co-operative better farming) खेती की वह प्रणाली है जिसमे गाव के थोडे या सारे किसान खेती की विकसित विधियो का उपयोग करने के उद्देश्य से सहकारिता करते हैं। वे हल चलाने निराई करने फसल काटने आदि खेतीबाडी के सभी कार्यो को मिलकर करते हैं। इस व्यवस्था मे प्रत्येक किसान *स्वन्त्रत रहता है, वह अपनी जमीन का इच्छानुसार प्रयोग* कर सकता है और जमीन उसके नाम ही बनी रहती है। इस प्रकार की सहकारी खेती समितियो को सेवा सहकारी समितिया (Service co operatives) भी कहते हैं।

(*iv*) सहकारी सयुक्त खेती (Co-operative joint farming) कृषि की वह व्यवस्था है जिसमे वे छोटे किसान अपनी जमीन एकत्र कर देते हैं, जिनकी जमीनो पर अलग-अलग रूप मे लाभकर खेती नहीं हो सकती। भू-खण्डो को एक इकाई के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया जाता है और सयुक्त रूप मे खेती की जाती है किन्तु प्रत्येक किसान का *अपनी भूमि पर स्वामित्व बना रहता है।*

सहकारी खेती शब्द का खेती के विभिन्न प्रकारो के लिये प्रयोग किया जाता सकता है, किन्तु हम प्रस्तुत सदर्भ मे इसका प्रयोग सहकारी सयुक्त खेती के लिये करेंगे। इसके कुछ उल्लेखनीय लक्षण निम्नलिखित हैं-

(क) किसान स्वेच्छा से इस व्यवस्था मे सम्मिलित होते हैं, बाध्य रूप से नही, (ख) उनकी भूमि उनके अधीन बनी रहती है क्योकि वे अपना भूमि का अधिकार समर्पित नहीं करते, (ग) वे अपनी भूमि पशुधन आदि का प्रयोग सम्मिलित रूप मे करते है और (घ) फार्म को एक इकाई मानकर उसका प्रबन्ध किया जाता है, प्रबन्ध समिति का चुनाव सारे सदस्य करते है। और (ड) प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भूमि के हिस्से ओर श्रम के अनुरूप उपज मे हिस्सा मिलता है।

भारत मे सहकारी खेती की आलोचना

भारत मे कल्पित सहकारी समितिया दो वर्गों मे विभक्त की जा सकती हैं (1) सेवा सहकारी समितिया और (2) सहकारी सयुक्त खेती समितिया। भारत मे सेवा सहकारी समितियो (Service Co operatives) का विरोध नहीं है क्योकि उनका कार्यक्षेत्र किसानो को कृषि आदान अर्थात बीज, उर्वरक और उन्नत उपकण उपलब्ध कराना है। साथ ही वे कृषि-उत्पादन के विपणन (Marketing) की व्यवस्था करते हैं। इसके विरुद्ध सरकार के सयुक्त फार्मों के निर्णय का अर्थशास्त्रियो एव राजनीतिज्ञो ने काफी विरोध किया है। सहकारी खेती की आलोचना सम्बन्धी मुख्य बाते निम्नलिखित हैं-

(*i*) वर्तमान असम समाज (*Inegalitarian* Society) पर सीधा प्रहार करने मे विफल-सामान्यत सहकारी आन्दोलन और विशेषकर सहकारी सयुक्त खेती एक क्रान्तिकारी आन्दोलन नहीं है। गुन्नार मिर्डल ने एक तीव्र टिप्पणी मे लिखा है "भारतीय दृष्टि से सहकारी आन्दोलन अपने सही रूप की तुलना मे कहीं कम आमूलवादी है। वस्तुत इसकी मुख्य कमजोरी यह है कि यह वर्तमान स्थिति मे कोई परिवर्तन नहीं करता। भू-स्वामियो, भूमिहीन मजदूरो और फसल सहभाजको (Share croppers) मे पारस्परिक प्रतिष्ठा सम्बन्धी भेद बने हुए हैं *और सहकारिता के सम्मानित लेबल के अधीन वे और भी* गहरे हो सकते हैं।"[2]

(*ii*) बहुत सी सहकारी समितिया मिश्रित पूजी कम्पनियो के रूप मे कार्य करती है और इस प्रकार भारत म पूजीवादी खेती को प्रोत्साहन मिला है। चाहे सिद्धान्तत भूमि एकत्र कर ली जाती है परन्तु वास्तव में यह साझी सम्पत्ति नहीं मानी जाती। भू-स्वामियो को अपने स्वामित्व के लिये लाभाश प्राप्त होता है और इस प्रकार सहकारी समितियो ने लगान देने की पद्धति को स्वीकार कर लिया है। भारत मे भू-स्वामियो और श्रमिको के बीच फसल बाटने के सिद्धान्त स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं किये गये। परिणामत भारतीय ग्राम समाज के शासक वर्ग सहकारी खेती की आड मे अनुपस्थित भू-स्वामित्व (Absentee landlordism) को प्रोत्साहित करते हैं। इसके अतिरिक्त, भू-स्वामी सहकारी खेती द्वारा फसल सहभाजकों को भृति श्रमिको (Wage Labourers) *मे परिवर्तित करना* बहुत आसान समझते हैं। साथ ही उन्हे सरकार से कृषि-आदान तथा ऋण प्राप्त करने मे प्राथमिकता प्राप्त होती है। चूकि सहकारी समितियो पर भू-सुधार कानून लागू नहीं होता, इसलिये भू-सुधार कानून से बचने का यह एक सुगम उपाय है। अत सहकारिता तो नाममात्र ही है परन्तु इसकी आड मे वैतनिक प्रबन्धको के आधीन मिश्रित पूजी कम्पनियो द्वारा खेती करायी जा रही है जिससे पूजीवादी खेती (Capitalist farming) को प्रोत्साहन मिला है।

(*iii*) सेवा सहकारी समितिया बिचौलियो के

---

2 Myrdal G *Asian Drama* Vol II p 1350

प्रतिस्थापन और गरीब किसानो को सस्ती दरो पर कृषि-आदान उपलब्ध कराने मे विफल रही है। चूकि छोटे किसानो का विपण्य अतिरेक कम होता है, इस कारण बड़े किसान उन्नत बीजो, उर्वरको कृषि मशीनरी और उपकरणो के रूप मे कृषि-आदान पहले प्राप्त कर लेते हैं। अत सेवा सहकारी समितिया भी समृद्ध किसानो को लाभ पहुचाती हैं निर्धन किसाना को नहीं।

भारत मे सहकारी खेती की प्रगति

30 जून, 1971 तक कुल 8 819 सहकारी खेती समितिया जिनकी सदस्यता 2 41 लाख थी कार्य कर रही थीं। केवल 2 प्रतिशत किसानो ने सहकारी खेती समितिया कायम की हैं और वे कुल क्षेत्रफल के नगण्य भाग अर्थात 0 4 प्रतिशत (4 75 लाख हैक्टेयर) की काश्त करती हैं। अत सहकारी खेती भारत में लोकप्रिय नहीं बन पायी। इनमे से बहुत-सी कागजी समितिया हैं जिनका उद्देश्य सरकार से ऋण तथा अनुदान प्राप्त करना है। वास्तविक रूप से कुशल कार्य करने वाली समितियो की कुल सख्या बहुत थोडी थी। यद्यपि सहकारी समितिया व्यवहार में सफल नहीं हो सकतीं, तो इनके निर्माण की योजना त्याग देनी ही अच्छी होगी।

5. जोत का आकार, उत्पादिता और लाभदायकता/फार्म कुशलता
(Farm Size, Productivity and Profitability/ Farm Efficiency)

लगभग दो दशको से अर्थशास्त्रियो मे फार्म आकार, उत्पादिता एव फार्म-कुशलता के सम्बन्ध मे एक विवाद चल रहा है। जबकि फार्म-उत्पादिता (Farm Productivity)का अर्थ भूमि के प्रति इकाई उत्पादन से है फार्म-कुशलता या फार्म-लाभदायकता (Farm profitability) से अभिप्राय उत्पादन की सभी लागतों को निकालने के पश्चात उत्पादन के मूल्य से प्राप्त अतिरेक से है। (उत्पादन-लागत मे किसान या उसके परिवार द्वारा उपलब्ध कराये गए आदानो (Inputs) का आरोपित मूल्य (Imputed value) भी शामिल है)। मौलिक रूप मे निगम्य तर्क (a priori reasoning) के आधार पर अर्थशास्त्रियो ने यह मत व्यक्त किया है कि छोटे फार्म गहन-खेती के कारण बडे फार्मों से कहीं अधिक उत्पादक है 1954-55 के पश्चात भारत सरकार द्वारा फार्म-प्रबन्ध अर्थशास्त्र (Farm Management Economics) से सम्बन्धित अध्ययनो ने अर्थशास्त्रियो का साख्यिकीय आधार उपलब्ध कराया ताकि वे एक ओर फार्म-आकार और दूसरी ओर उत्पादिता और कुशलता के बीच सम्बन्ध को जाच कर सकें। प्रोफेसर अमर्त्य सेन ने फार्म-आकार, उत्पादिता और लाभदायकता पर सारी बहस का निचोड तीन प्रस्थापनाओ (Propositions) मे व्यक्त किया।

(i) जब कृषि मे नियुक्त पारिवारिक श्रम को प्रचलित मजदूरी (Ruling wage rate) पर आरोपित मूल्य (Imputed value) प्रदान किया है, तो भारतीय कृषि का अधिकतर भाग अलाभकारी प्रतीत होता है।

(ii) मोटे तौर पर, कृषि की लाभदयकता जोत के आकार के साथ बढती है। लाभदायकता को लागतो के ऊपर उत्पादन के आकार अतिरेक (या घाटे) के रूप मे मापा जाता है जिसमे श्रम का आरोपित मूल्य भी शामिल है।

(iii) मोटे तौर पर प्रति एकड उत्पादिता जोत के आकार मे वृद्धि के साथ गिरती है।

इन प्रस्थापनाओ मे से पहली के अनुसार भारतीय कृषि का अधिकतर भाग तो अलाभकारी है। दूसरी प्रस्थापना मे कुशलता या लाभदायकता का फार्म-आकार से सम्बन्ध व्यक्त किया गया है और सेन का निष्कर्ष है कि कृषि की लाभदायकता जोत के आकार के साथ बढती है और परिणामत बडे आकार के फार्मों को तरजीह दी जानी चाहिये। तीसरी प्रस्थापना दूसरी का विरोध करती है क्योकि इसके अनुसार प्रति एकड उत्पादिता के आधार पर छोटे फार्म प्राथमिकता योग्य हैं जबकि पहली दो प्रस्थापनाए फार्म-आकार और लाभदायकता के बारे में हैं, अन्तिम प्रस्थापना उत्पादिता के बारे मे है। सेन के विचारो ने इस विषय पर एक लम्बी बहस का सिलसिला छेड दिया।

फार्म-आकार और उत्पादिता मे विलोम सम्बन्ध (Inverse Relationship)

साधारणतया यह कहा गया है कि फार्म-आकार और उत्पादिता मे विलोम सम्बन्ध है अथात छोटे फार्मो पर प्रति एकड उत्पादिता ऊची होती है और जोत के आकार में वृद्धि के साथ यह कम होती जाती है। जबकि खुसरो ने फार्म-सम्बन्ध सामग्री के विश्लेषण के आधार पर इस सम्बन्ध की पुष्टि की, अशोक रुद्र ने विलोम सम्बन्ध की साख्यिकी सार्थकता को चुनौती दी। इन अर्थशास्त्रियो के निष्कर्षों पर जी आर सैनी ने कई प्रकार की आपत्तिया उठायी हैं। सैनी ने कुछ वर्षों के लिये 9 राज्यो के पृथक फार्म प्रबन्ध आकडो का प्रयोग करके यह सिद्ध किया कि पारम्परिक कृषि मे फार्म-आकार और उत्पादिता मे विलोम सम्बन्ध की पुष्टि करता है।

फार्म आकार और उत्पादिता मे विलोम सम्बन्ध की व्याख्या साधारणतया छोटे फार्मों मे पारिवारिक श्रम के अपेक्षाकृत अधिक आदान (Higher input)के रूप मे की जाती है। अमर्त्य सेन का तर्क है कि भारत जैसी श्रम-प्रचुर

अर्थव्यवस्था (Labour surplus economy) मे परिवार श्रम की विकल्प लागत (Opportunity cost) बहुत कम होती है और परिणामत छोटे फार्म प्रचुर परिवार श्रम का प्रयोग करके कृषि का उस बिन्दु तक विस्तार कर लेते हैं जहाँ श्रम का सामान्य उत्पादिता या तो शून्य की ओर बढनी शुरू हो जाए या शून्य ही हो जाए। इसके विरुद्ध बडे फार्मों पर भाडे पर लगाए गये मजदूरो का अधिक प्रयोग होता है और भाडा-श्रम (Hired labour) का प्रयोग उस बिन्दु पर बन्द किया जाएगा जहा श्रम की सामान्य उत्पादिता प्रचलित मजदूरी दर के बराबर हो जाए। छोटे फार्मों के सदर्भ मे प्रति एकड उत्पादिता अधिकतम की जाती है जब कि फार्मों के सदर्भ मे जो भाडा-श्रम का प्रयोग करते हैं प्रति इकाई प्रयुक्त श्रम के आधार पर उत्पादन अधिकतम किया जाता है।

जब यह बात बिल्कुल स्पष्ट हैं कि छोटे फार्मों पर श्रम की अधिक मात्रा का प्रयोग विलोम सम्बन्ध का कारण है, किन्तु सेनी और कुछ अन्य अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन की इस बात को स्वीकार नहीं करते कि श्रम की निम्न विकल्प लागत (Low opportunity cost) छोटे फार्मों पर श्रम के उदार प्रयोग का कारण है। इसकी एक वजह तो यह है कि छोटे फार्म मध्यम एव बडे फार्मों के सह-अस्तित्व मे कार्य करते हैं जो भाडा-श्रम के अधिक अनुपात का प्रयोग करते हैं। इसका अर्थ यह है कि किसान परिवार की श्रम की विकल्प लागत प्रचलित बाजार मजदूरी है (अर्थात वह मजदरी जो बड फार्म भाडा-श्रम के लिये देते हैं) और किसान परिवार अपने पारिवारिक फार्म पर स्वय-नियुक्त श्रम की विकल्प लागत को अन्य फार्मों पर उपलब्ध भाडा-मजदूरी के बराबर करने का प्रयास करेंगे। स्वाभाविकत यह सही प्रतीत नहीं होता कि वे श्रम का प्रयोग उस सीमा तक बढाएगे जब तक कि श्रम की सीमान्त उत्पादिता शून्य या लगभग शून्य नहीं हो जाती। दूसरे, बहुत से अनुभवजन्य प्रमाण इस बात की पुष्टि करते हैं कि छोटे फार्मों पर श्रम की विकल्प लागत (Opportunity cost) प्रचलित मजदूरी से महत्त्वपूर्ण रूप मे भिन्न नहीं होती। अत परिवार श्रम की निम्न विकल्प लागत के रूप मे विलोम सम्बन्ध की व्याख्या सही प्रतीत नहीं होती।

इस सम्बन्ध मे दीपक मजुमदार लिखता है "फार्मों में अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन प्रति एकड श्रम के अधिक आदान पर निर्भर करता है-अन्य साधनो मे परिवर्तन तो लगभग श्रम के अधिक अनुपात मे ही होता है।" छोटे फार्मों पर खेती की गहनता बडे फार्मों की तुलना मे अधिक होती है। इसके अतिरिक्त, छोटे फार्मों पर श्रम का अधिक प्रयोग किसी उत्पादन वर्ष के दौरान भूमि के उसी टुकडे पर उत्पन्न फसलो के लिये नहीं होता बल्कि यह दो या अधिक उत्पन्न फसलो के लिए होता है। इससे छोटे फार्मों पर अधिक उत्पादिता की व्याख्या होती है। विलोम सम्बन्ध छोटी जोतो पर खेती की अधिक तीव्रता के कारण है, विशेषकर ऐसी फार्मों मे जहा सिचाई आधीन क्षेत्र का अनुपात सापेक्षत अधिक है।

जी आर सेनी के शब्दो मे हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं " भारतीय कृषि मे फार्म-आकार और उत्पादिता का विलोम सम्बन्ध मोटे तौर पर एक निश्चित बात है और इसकी साख्यिकी सार्थकता फार्म प्रबन्ध सम्बन्धी आकडो के आधार पर स्थापित की जा चुकी है।"

विलोम सम्बन्ध और हरी क्रान्ति

कृषि मे हरी क्रान्ति का मूल लक्षण पूजी-गहन तकनालाजी (Capital intensive technology) का विकास है जिसमे सकर बीज, रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग और निश्चित सिचाई की स्थापना आदि महत्वपूर्ण कार्यभाग अदा करते हैं। चाहे नयी तकनालाजी 'आकार तटस्थ' (Size neutral) है, किन्तु छोटे और बडे फार्मों को पूजी और इनके द्वारा आदानो का प्रयोग समान रूप में उपलब्ध नहीं होता है और परिणामत इसमे प्राप्त लाभो के वितरण मे भी भिन्नता पायी जाती है। सेनी ने पजाब और उत्तर प्रदेश के आकडो का प्रयोग करके हरी क्राति के विलोम सम्बन्ध पर प्रतिकूल प्रभाव का परीक्षण किया। जी आर सेनी के मुख्य निष्कर्षों का साराश निम्नलिखित है–

(i) समय के उपरात गुणाकों (Coefficients) की तुलना करने से पता चलता है (1950-60 के दशक के मध्य और 196-70 के दशक के अन्तिम वर्षों मे नयी तलनालाजी के आरम्भिक प्रभाव का सकेत मिलता है) कि ये गुणाक 1960-70 के दशक के अन्तिम वर्षों मे इकाई के निकट होते चले गए हैं जिससे छोटे तथा बडे फार्मों के बीच उत्पादिता के अन्तर कम होते जाते हैं। यह बात बडे किसानो के पक्ष मे है।

(ii) 1950-60 के दशक के मध्य में फार्म-आकार और प्रति एकड आय मे विलोम सम्बन्ध है परन्तु भू-वितरण के कारण उत्पन्न होने वाली आय की असमानताए छोटे और बडे फार्मों के पक्ष मे कम हो जाती थीं। 1960-70 के दशक के अन्तिम वर्षों मे नई तकनालाजी के कारण फार्म-आकार और प्रति एकड फार्म-आय के बीच एक सकारात्मक सम्बन्ध व्यक्त हुआ। इसका अर्थ यह है कि जैसे-जैसे फार्म आकार मे वृद्धि होती है, फार्म से प्राप्त होने वाली आय मे अनुपात से अधिक वृद्धि होती है। इससे ग्राम क्षेत्रो मे आय की असमानताए और बढ जाएगी।

ये निष्कर्ष साफ व्यक्त करते हैं कि नयी तलनालाजी के आगमन मे आय वितरण की असमानताओ मे वृद्धि हुई

है और इन प्रवृत्तियों को दूर करने के लिये नीति सम्बन्धी उचित उपाय किये जाने चाहिए।

फार्म-आकार और लाभदायकता (Farm size and profitability)

अमर्त्य सेन जिसने यह सारी बहस आरम्भ की का मत है कि भारतीय कृषि का अधिकतर भाग अलाभकारी है और कृषि की लाभदायकता जोत के आकार के साथ बढ जाती है। सेन की प्रस्थापना का आधार यह मान्यता है कि यदि परिवार-श्रम को प्रचलित मजदूरी दर के आधार पर आरोपित मूल्य (Imputed Value) प्रदान कर दिया जाए तो कृषि का अधिकतर भाग अलाभकारी बन जाएगा।

जी आर. सेनी ने उत्तर प्रदेश और पजाब के फार्म-प्रबन्ध आकडो का विश्लेषण किया और यह साबित किया कि न केवल श्रम का सीमान्त मूल्य उत्पाद (Marginal Value Product) सकारात्मक है बल्कि यह उत्पादन-लागत से अधिक भी है। इससे साफ प्रमाणित होता है कि भारतीय कृषि का अधिकतर भाग अनिवार्यत अलाभकारी नहीं, कम से कम परिवार श्रम को मजदूरी दर पर आकने से तो ऐसा सिद्ध नहीं होता। विभिन्न क्षेत्रो मे फार्मों के विभिन्न वर्ग सम्बन्धी लाभ एव हानि के आकडो के परीक्षण से पता चलता है कि अमर्त्य सेन की पहली प्रस्तावना सही नहीं है। जी आर. सेनी ने निम्नलिखित उल्लेखनीय निष्कर्ष प्राप्त किये हैं

(1) सबसे छोटे फार्मों से भी काफी बडे अनुपात मे सकारात्मक लाभ प्राप्त हुआ।

(2) हानिया न केवल छोटे फार्मों मे ही पायी जाती हैं बल्कि ये भूमि की बडी जोतो मे भी विद्यमान हैं।

(3) सबसे रुचिकर बात यह है कि आकार-वर्ग एक वर्ष में हानि मे होते है, तो दूसरे वर्ष लाभ मे।

अत भारतीय कृषि की अलाभकारिता की खोज प्रचलित बाजार मजदूरी पर परिवार श्रम के मूल्याकन मे न करके किन्हीं और कारणतत्वो मे करनी चाहिये। एक सभव कारण तो यह है कि निजी स्वामित्वाधीन भूमि का आरोपित मूल्य (Imputed Value), किराया-मूल्य (Rental value) के रूप में या ब्याज के रूप मे बहुत अधिक लगाया जाता है। यदि स्वामित्वाधीन भूमि का किराया-मूल्य उत्पादन लागत से निकाल दिया जाए, तो फार्मों की हानिया, लाभ मे परिवर्तित हो जाती है या हानिया समाप्त हो जाती हैं। जी आर. सेनी के शब्दो मे, "प्रमाण इस बात का पुरजोर सुझाव देते हैं कि भारतीय कृषि मे अनुभव की गयी अलाभकारिता की खोज एव व्याख्या निजी स्वामित्व के आधीन भूमि के आरोपित मूल्य के रूप मे की जा सकती है, न कि प्रचलित मजदूरी पर परिवार श्रम के मूल्य के रूप में।"

अमर्त्य सेन की दूसरी प्रस्थापना तो स्पष्ट ही है कि जोत के आकार में वृद्धि के साथ मानवीय श्रम पूजी-उपकरणो, उर्वरको आदि के अधिक प्रयोग के कारण लाभदायकता (Profitability) मे वृद्धि होती है।

साराश के रूप मे, निम्नलिखित निष्कर्ष उभरते हैं

(i) पारम्परिक भारतीय कृषि मे फार्म-आकार और प्रति एकड उत्पादिता के बीच एक विलोम सम्बन्ध के लिये सामान्य साख्यिकीय प्रमाण उपलब्ध हैं।

(ii) प्रोफेसर ए. एम खुसरो ने 1960-70 के दशक के लिये भारतीय कृषि मे मात्रा-सम्बन्धी स्थिर प्रत्याय-दर (Constant returns to scale) की विद्यमानता को सिद्ध किया। वह लिखते हैं "5 एकड से अधिक आकार के ऊपर लागत-कुशल और उत्पादिता की दृष्टि से बडे फार्मों और छोटे फार्मो मे चुनाव की समस्या नहीं। वास्तुस्थिति यह है कि भारतीय कृषि मात्रा-सम्बन्धी स्थिर प्रत्याय का प्रारूपिक चित्र प्रस्तुत करती है और जोत की अधिकतम सीमाए आकार-तटस्थ हैं।"[3]

(iii) 1950-60 के दशक के आकडो के आधार पर फार्म-आकार और उत्पादिता के बीच एक विलोम-सम्बन्ध का सकेत मिलता है परन्तु यह चित्र 1960-70 के दशक और उसके बाद के काल के आकडो से जिसमे हरी क्रान्ति का विस्तार हुआ, पूर्णतया पलट जाता है। जी आर. सेनी और प्रेम विशिष्ट द्वारा किये गये अनुसधान आकार मे वृद्धि के साथ फार्म-उत्पादिता में किसी सरचनात्मक परिवर्तन (Structural shift) का सकेत नहीं देते बल्कि इनसे पता चलता है कि फार्म-उत्पादिता मे अतर फार्म-आकार मे अन्तर के कारण उत्पन्न नहीं होते, ये तो बडे भू-स्वामियो के पक्ष मे फार्म-आदानो (Farm inputs) के गम्भीर कुवितरण का परिणाम हैं।

(iv) पारम्परिक कृषि स आधुनिक कृषि की ओर सक्रान्ति जिसका मुख्य लक्षण पूजी-प्रधान तकनालाजी है, के कारण फार्म-आकार और उत्पादिता का विलोम सम्बन्ध समय के साथ-साथ मात्रा सम्बन्धी स्थिर प्रत्याय मे परिवर्तित हो जाएगा। अत पारम्परिक कृषि मे तो जब विलोम-सम्बन्ध (Inverse relationship) विद्यमान होता है, तो छोटे किसान काश्तकारी परिवारो मे भू-वितरण मे असमानता के कारण उत्पन्न होने वाली आय की असमानताओ को कुछ हद तक कम कर लेते हैं। परन्तु आधुनिक कृषि मे परिवर्तन के साथ "आरम्भिक अवस्था तो पूजी-प्रधान तकनालाजी के आगमन पर भी फार्म-आकार

3 Khusro A M *Economics of Land Reform and Farm Size in India* (1973) Introduction p xii

और उत्पादिता मे मे विलोम सम्बन्ध कायम रहता है। समय के साथ गुणाको (Co efficients) की तुलना करने से पता चलता है कि वे 1960-70 के दशक के अन्तिम वर्षो मे इकाई के समीप होते चले जाते हैं। यह परिवर्तन बडे भू-स्वामियो के पक्ष मे तबदीली का सकेत देता है और यह व्यक्त करता है कि छोटे और बडे फार्मों के बीच उत्पादिता के अन्तर धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं। इससे यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि जब उत्पादिता धीरे-धीरे 'स्थिरता' की ओर परिवर्तित होती जा रही है, "काश्तकारी परिवारो मे भूमि के कुवितरण (Maldistributiom) के कारण आय की अधिक असमानताए उत्पन्न होनी अनिवार्य हैं जब तक कि अन्य उचित सुधारो द्वारा इन्हे रोका नहीं जाता।"[4]

(*v*) जी आर सेनी ने यह भी सिद्ध किया है, "फार्म *आकार और उत्पादिता के बीच सम्बन्ध चाहे महत्वपूर्ण है,* परन्तु यह फार्म-परिवारो के बीच बढती हुई असमानताओ पर ध्यान केन्द्रित नहीं करता। 1950-60 के दशक के मध्य मे फार्म-आकार और प्रति एकड आय मे विलोम सम्बन्ध था हरी क्रान्ति के विस्तार के पश्चात् विलोम *सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। इस विलोम सम्बन्ध* ने अब एक सकारात्मक सम्बन्ध का रूप धारण कर लिया है। यह व्यक्त करता है कि जैसे-जैसे फार्म-आकार मे *वृद्धि होती है, आय मे इसके परिणामस्वरूप अनुपात से* कहीं अधिक वृद्धि होती है। इससे पर्याप्त सकेत मिलता है कि हरी क्रान्ति के आगमन के पश्चात छोटे और बडे फार्मों के बीच आय की असमानताए और अधिक हो गयी हैं।"[5]

नीति सम्बन्धी गूढ़ार्थ (Policy Implications)

फार्म आकार और उत्पादिता/लाभदायकता के सम्बन्ध के विश्लेषण से नीति सम्बन्धी दो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं, "पहला जोत की अधिकतम सीमा को अब भी कुशलता के आधार पर न्यायोचित ठहराया जा सकता है। (चूकि फार्म-आकार और उत्पादिता मे विलोम सम्बन्ध अभी भी कायम है) और समता (Equity)के आधार पर, जोत की *अधिकतम सीमा का औचित्य और भी मजबूत हो गया है।* दूसरे भू-स्वामित्व मे असमानता को न केवल नीति सम्बन्धी उपायो द्वारा दूर करना होगा, परन्तु फार्म-आदानो में असमान वितरण को सुधारने के लिये प्रयत्न करने होगे जो कि छोटे और बडे फार्मों के बीच बढती हुई आय की असमानताओ के लिये उत्तरदायी है।"

29

भारत में ग्राम-ऋण की व्यवस्था
(ORGANISATION OF RURAL CREDIT IN INDIA)

1. ग्रामीण ऋण की आवश्यकता एवं स्रोत

भारतीय कृषक को वित्तीय आवश्यकताओ को तीन वर्गों में बाटा जा सकता है। यह वर्गीकरण इस बात पर आधारित है कि किसान को किस उद्देश्य के लिए और कितने समय के लिए ऋण की आवश्यकता है। वे तीन वर्ग निम्नलिखित हैं –

(क) कृषक को खेती-बाडी या घरलू आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए 15 मास से भी कम समय के लिए धन की आवश्यकता पडती है। उदाहरणतया, उसे बीज, उर्वरक और चारा आदि खरीदने के लिए धन की आवश्यकता होती है। जिस वर्ष फसल अच्छी न हुई हो, उस वर्ष अपने परिवार का निर्वाह करने के लिए भी उसे धन की आवश्यकता हो सकती है। वे ऋण अल्पावधि ऋण (Short-term loans) होते हैं जो साधारणतया फसल काटने पर चुका दिए जाते हैं।

(ख) कृषक को अपनी भूमि मे सुधार करने, पशु खरीदने और कृषि उपकरण (Agricultural implements) प्राप्त करने के लिए 15 महीन से लेकर 5 वर्ष तक के मध्यावधि ऋणो (Medium-term loans) की भी आवश्यकता होती है। अल्पावधि ऋणो की तुलना में ये ऋण अधिक होते हैं और उन्हे अपेक्षाकृत अधिक समय के बाद ही चुकाया जा सकता है।

(ग) कृषक को अतिरिक्त भूमि खरीदने, भूमि मे स्थाई सुधार करने, ऋण अदा करने और महगे कृषि-यन्त्र खरीदने के लिए ऋण की आवश्यकता पडती है। ये ऋण 5 वर्ष से भी अधिक अवधि के लिए लिए जाते हैं। कृषक इन ऋणो को अनेक वर्षों मे थोडा-थोडा करके चुका पाता है। इन्हे दीर्घकालीन ऋण (Long term loans) कहते हैं।

एक और दृष्टि से हम किसानो को ऋण सम्बन्धी आवश्यकताओ को दो वर्गो मे बाट सकते हैं– उत्पादक और अनुत्पादक ऋण। उत्पादक ऋणो मे ऐसे उधार शामिल किए जाते है जो किसानो को कृषि क्रियाओं में सहायता देते हैं या अपनी भूमि उन्नत करने मे सहायता देते हैं, जैसे बीज, खाद, औजार आदि क्रय करने के लिए ऋण, सरकार को कर का भुगतान करने के लिए ऋण और भूमि पर स्थायी उन्नतिया करने, जैसे कुआ को खोदने एव गहरा करने, बाड लगाने आदि के लिए ऋण। इसके अतिरिक्त, भारतीय किसान प्राय अनुत्पादक कार्यों के लिए भी उधार लेता है, जैसे विवाह, जन्म एव मृत्यु, मुकद्दमेबाजी के लिए ऋण। यदि अनुत्पादक ऋण ब्याज की अत्यधिक दर पर लिए जाए, तो यह बहुत अनुचित और अविवेकपूर्ण बात है।

ग्राम ऋण के स्रोत (Sources of Rural Credit)

किसान अपनी अल्पावधि और मध्यावधि वित्तीय आवश्यकताओ को पूर्ति के लिए साहूकारो, सहकारी ऋण समितियो और सरकार से रुपया उधार लेता है। दीर्घावधि आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए वह साहूकारो, भूमि विकास बैको और सरकार से रुपया उधार लेता है।

तालिका 1 विभिन्न एजेन्सियो से कृषको द्वारा प्राप्त उधार

प्रतिशत वितरण

	1951-52	1961-62	1971	1981
क गैर-संस्थानात्मक स्रोत				
1 साहूकार	69.7	49.2	36.1	16.1
2 व्यापारी	5.5	8.8	8.4	3.2
3 सम्बन्धी एव मित्र	14.2	8.8	13.1	8.7
4 भू-स्वामी एव अन्य	3.3	14.5	10.7	8.8
उप योग (1 से 4)	92.7	81.3	68.3	36.8
ख संस्थानात्मक स्रोत				
5 सरकार	3.1	15.5	7.1	3.9
6 सहकारी समितियां	3.3	2.6	22.0	29.9
7 वाणिज्य बैंक	0.9	0.6	2.6	29.4
उप-योग (5 से 7)	7.3	18.7	31.7	63.2
कुल (क+ख)	100.0	100.0	100.0	100.0

तालिका 1 से स्पष्ट है कि ग्रामीण ऋण देने वाले अभिकरणो (Agencies) के भाग मे परिवर्तन हुआ है। साहूकार और महाजन जो 1951-52 में ग्रामीण ऋण के सबसे महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में लगभग 70 प्रतिशत उधार

उपलब्ध कराते थे, उनका भाग कम होकर 1961-62 में 49 प्रतिशत और 1981 तक तीव्र रूप में गिरकर केवल 16 प्रतिशत रह गया। अन्य गैर-सस्थानात्मक स्रोतों (Non institutional sources) का भाग जो 1951-52 में 23 प्रतिशत था कम होकर 1981 में 21 प्रतिशत हो गया अर्थात् व्यापारियों सम्बन्धियों एवं भू स्वामियों द्वारा जुटाए गए उधार के भाग में मामूली सी गिरावट हुई। कुल मिलाकर गैर-सस्थानात्मक स्रोतों से प्राप्त उधार का अनुपात जो 1951-52 में लगभग 93 प्रतिशत था कम होकर 1971 तक 68 प्रतिशत और 1981 तक और अधिक गिरकर लगभग 38 प्रतिशत ही रह गया। इसके विरुद्ध सस्थानात्मक उधार (Institutional credit) जो 1951 52 में कुल कृषि उधार का 7 प्रतिशत उपलब्ध कराता था 1971 में लगभग 32 प्रतिशत और 1981 में 63 प्रतिशत भाग उपलब्ध कराने लगा। इसका मुख्य श्रेय सहकारी समितियों और वाणिज्य बैंकों को जाता है। सहकारी समितियों का भाग 1961 62 तक केवल 3 प्रतिशत था किन्तु 1971 में 22 प्रतिशत और 1981 में लगभग 30 प्रतिशत हो गया। इसके साथ साथ 1969 में 20 बड़े व्यापारी बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पश्चात् वाणिज्य बैंकों का कृषि उधार में भाग 1971 में 3 प्रतिशत और 1981 में 29 प्रतिशत हो गया। जाहिर है कि कृषि उधार की बढ़ती हुई माग को पूरा करने के लिए सहकारी समितियों और वाणिज्य बैंकों के विस्तार पर जोर दिया गया।

1 गैर संस्थानात्मक स्रोत (Non institutional Sources)

(i) साहूकार (Moneylenders)

गावों में दो प्रकार के साहूकार हैं। एक वे साहूकार हैं जो खेती और साहूकारी दोनों ही कार्य करते हैं। इन्हें कृषक साहूकार (Agriculturist moneylenders) कहते हैं। ये मूलत खेती करते हैं किन्तु सहायक व्यवसाय के रूप में रुपया उधार देने का भी काम करते हैं। गाव का दुकानदार भी साहूकारी कर लेता है। इसके अलावा एक दूसरे प्रकार के साहूकार होते हैं जिनका व्यवसाय रुपया उधार देना होता है।

किसान को नकद रुपये की आवश्यकता के लिए साहूकार पर निर्भर रहना पड़ता है। पिछले वर्षों से किसान को नकद धन देने वाले साधन के रूप में साहूकार का महत्व तेजी से कम होता जा रहा है। उदाहरणार्थ अखिल भारतीय ग्राम ऋण सर्वेक्षण (1954) की जाच के अनुसार सम्पूर्ण ग्राम ऋण में साहूकारों द्वारा दिये गए ऋण का भाग लगभग 70 प्रतिशत था किन्तु 1975 76 में किए गए एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार साहूकारों के ऋण का अश केवल 43 प्रतिशत था। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि संस्थानात्मक अभिकरणों (Institutional agencies) के मुकाबले साहूकार पिछड़ते जा रहे हैं। किन्तु फिर भी गांवों में साहूकारों की प्रधानता के अनेक कारण हैं

(क) साहूकार उत्पादक और अनुत्पादक दोनों प्रकार के प्रयोजनों के लिए तथा अल्पावधि और दीर्घावधि दोनों प्रकार की आवश्यकताओं के लिए किसान को खुले रूप में ऋण देता है। (ख) साहूकार तक किसान आसानी से जा सकता है। साहूकार का कृषक के परिवार से कई पीढ़ियों से पारिवारिक सम्बन्ध होता है। (ग) उनके लेन देन के तरीके सरल और लचीले होते हैं। (घ) स्थानीय स्थिति से परिचित होने के कारण वह जमीन और प्रोनोट दोनों के ही बदले ऋण दे सकता है। ऋण का रुपया वापस लेने का ढंग वह भली भांति जानता है।

साहूकारों के दोषपूर्ण व्यवहार–ग्रामीण साहूकार अपने अनेक दोषपूर्ण व्यवहारों के कारण बदनाम हैं। वे किसान से ऋणपत्र (Bond) और प्रोनोट ले लेते हैं जिनमें वे ऋण की राशि बढ़ाकर लिखते हैं। किसानों से भारी किस्त वसूल करते हैं। वे किसानों को रुपया अदा करने के बदले में रसीद नहीं देते और कई बार रुपया वसूल कर चुकने पर भी मुकर जाते हैं। वे ऋण पर बहुत भारी ब्याज लेते हैं यहां तक कि 24 प्रतिशत और उससे भी अधिक। इसके अलावा वे और अनेक छल कपट करते हैं। भारतीय कृषि की बहुत सी बुराइयों की जिम्मेदारी साहूकारों पर ही है क्योंकि उनका एकमात्र उद्देश्य किसान का शोषण करना और उनकी भूमि हथियाना होता है। जब तक उनकी दोषपूर्ण क्रियाओं पर रोक नहीं लगाई जाती तब तक किसान की दशा सुधारना कठिन होगा।

(ii) व्यापारी एवं कमीशन एजेण्ट (Traders and Commission Agents)

व्यापारी एव कमीशन एजेण्ट किसानों को फसल के पकने से पूर्व उत्पादक उद्देश्यों के लिए ऋण उपलब्ध कराते हैं। वे किसानों को मजबूर करते हैं कि वे फसल को कम कीमतों पर बेचें और वे अपने लिए भारी कमीशन वसूल करते हैं। वित्त का यह स्रोत नकद फसलों अर्थात रुई मूगफली तम्बाकू आदि या फलों के बगीचों आमों आदि के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। व्यापारी एव कमीशन एजेण्टों का कृषि वित्त में भाग जो 1951 52 में 5 5 प्रतिशत था बढ़कर 1961 62 में 8 7 प्रतिशत हो गया परन्तु 1981 में कम होकर 3 2 प्रतिशत हो गया। व्यापारी एव कमीशन एजेण्टों को भी महाजनों जैसा ही समझा जा सकता है क्योंकि उनके द्वारा किसानों को दिए गए उधार की दरें अत्यधिक होती हैं और इनके अन्य अवाछनीय प्रभाव भी होते हैं।

(iii) सम्बन्धी (Relatives)

किसान अपने सम्बन्धियो से नकद या वस्तुओं के रूप में उधार प्राप्त करते हैं ताकि वे अस्थायी कठिनाइयो को दूर कर सकें। ये ऋण सामान्यत अनौपचारिक रूप मे लिए जाते हैं, इन पर ब्याज या तो लिया ही नहीं जाता था या ब्याज की दर बहुत नीची होती है और ये ऋण फसल कटने के फौरन बाद लौटा दिए जाते हैं। परन्तु वित्त का यह स्रोत अनिश्चित है और आधुनिक कृषि की बढ़ती हुई आवश्यकताओ के कारण, किसान इस स्रोत पर अधिक निर्भर नहीं रह सकता। वास्तव मे, ग्राम ऋण के इस स्रोत का महत्त्व कम होता जा रहा है, 1951-52 मे सम्बन्धियो से उधार कुल ग्राम ऋण का 14 2 प्रतिशत था परन्तु 1981 मे यह कम होकर केवल 8 7 प्रतिशत रह गया।

(iv) भू-स्वामी एव अन्य (Landlords and others)

किसान, विशेषकर छोटे किसान एव काश्तकार, भू-स्वामियो एव अन्य पर अपनी आवश्यकताओ के लिए निर्भर रहते हैं। वित्त के इस स्रोत मे वे सभी दोष विद्यमान हैं जो महाजनो, व्यापारियो या कमीशन एजेण्टो द्वारा उपलब्ध कराये गये वित्त मे पाये जाते हैं। प्राय इस वित्त से छोटे किसानो से उनकी भूमि छल द्वारा हर ली जाती है। भूमिहीन श्रमिको को बन्धुआ श्रम (Bonded labour) बनने के लिए मजबूर किया जाता है। इससे भी बुरी बात यह है कि वित्त का यह स्रोत अधिक महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा है-यह 1951-52 मे 3 3 प्रतिशत से बढकर 1961-62 मे 14 5 प्रतिशत वित्त जुटाने लगा परन्तु 1981 मे इसका भाग कम होकर 8 8 प्रतिशत रह गया।

कृषि वित्त के गैर-सरकारी स्रोतो के मुख्य दोष हैं अनुत्पादक उपभोग कार्यो के लिए ऋण का प्रयोग, ब्याज की ऊँची दरें और इस प्रकार किसानो द्वारा मूलधन एव ब्याज लौटाने को असमर्थता, छोटे किसानो द्वारा ऋण प्राप्त करने की कठिनाइ आदि।

2 ऋण के सस्थानात्मक स्रोत (Institutional Sources of Credit)

सस्थानात्मक ऋण मे ऐसी राशिया शामिल की जाती हैं जो सहकारी समितियो, वाणिज्य बैंको और क्षेत्रीय ग्राम बैंकों (Regional Rural Banks) द्वारा उपलब्ध करायी जाती हैं। राज्यीय सरकारें राज्यीय सहकारी बैंको और भूमि विकास बैंको को वित्तीय सहायता देने के अतिरिक्त "तक्कावी ऋण" (Taccavi Loans) भी उपलब्ध कराती हैं। सहकारिता के क्षेत्र मे प्राथमिक कृषि उधार समितिया (Primary Agricultural Credit Societies) अल्पकालीन एव मध्यमकालीन ऋण उपलब्ध कराती हैं और भूमि विकास बैंक कृषि के लिए दीर्घकालीन ऋणो का प्रबन्ध करते हैं। वाणिज्य बैंक जिनमे क्षेत्रीय ग्राम बैंक भी शामिल हैं कृषि तथा सम्बद्ध क्रियाओ के लिए अल्पकालीन एव सावधि ऋण दोनो ही उपलब्ध कराते हैं। कृषि तथा ग्राम विकास के लिए राष्ट्रीय बैंक (NABARD) राष्ट्रीय स्तर पर कृषि उधार के लिए शिखर सस्थान है और ऊपर वर्णित सभी एजेन्सियो को पुनर्वित सहायता (Refinance assistance) उपलब्ध कराता है। भारतीय रिजर्व बैंक, देश के केन्द्रीय बैंक के रूप मे ग्राम-उधार के लिए व्यापक निर्देश और राष्ट्रीय बैंक को इसके कार्यों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करता है। सस्थानात्मक ऋण की आवश्यकता गैर-सरकारी एजेन्सियो द्वारा उपलब्ध कराये गये उधार की अपर्याप्तता और इनके दोषो के कारण उत्पन्न होती है। निजी उधार दोषपूर्ण है क्योंकि-

(क) यह लाभ-उद्देश्य पर आधारित है और इसलिए यह सदा शोषणात्मक होता है, (ख) यह बहुत महँगा होता है और भू-उत्पादिता (Land productivity) से सम्बन्धित नहीं होता, (ग) यह सबसे वाछनीय क्षेत्रो और सबसे अधिक जरूरतमन्द लोगो को प्राप्त नहीं होता, (घ) यह कृषि मे उन्नतिया करने के लिए उपलब्ध नहीं होता और परिणामत बहुत से आवश्यक सुधार धनराशि की दीर्घकाल के लिए नीची दर पर अनुपलब्धि के कारण किये नहीं जाते, और (ङ) यह कृषको की अन्य आवश्यकताओ के साथ समन्वित नहीं होता।

सस्थानात्मक ऋण शोषणात्मक नहीं होते और उनका मूल उद्देश्य किसानो को अपनी उत्पादिता बढाने या आय को अधिकतम करने मे सहायता देना है। ब्याज की दर सापेक्ष दृष्टि से न केवल नीची होती है अपितु यह किसानो के भिन्न-भिन्न वर्गों और भिन्न-भिन्न उद्देश्यों के लिए अलग-अलग भी हो सकती है। सस्थानात्मक ऋण में अल्पकालीन एव दीर्घकालीन ऋणो की आवश्यकताओ मे स्पष्ट भेद किया जाता है और उसके अनुसार उधार दिया जाता है। अन्तिम बात यह है कि सस्थानात्मक ऋण कृषको की अन्य आवश्यकताओ से पूर्णतया समन्वित होते हैं। किसानो को केवल उधार ही नहीं चाहिए बल्कि उन्हे अपनी कृषि-क्रियाओ के आयोजन अर्थात् बीजो, खाद, कीटनाशको आदि के प्रयोग के लिए मार्गदर्शन भी चाहिए ताकि वे अच्छी फसल उत्पन्न कर सके और अपनी आय को अधिकतम कर सके। कृषि-उधार और कृषि-सुधार साथ-साथ चलने चाहिए, किसानो को उन्नत कृषि-विधियो में प्रशिक्षण देना चाहिए और उन्हे पर्याप्त और सस्ता उधार

भी उपलब्ध कराना चाहिए। सभी विकसित देशो मे उधार-सेवाएँ और विस्तार सेवाएँ (Extension services) साथ-साथ चलती हैं। यह कार्य सबसे अच्छे ढग से सहकारी समितियो एव वाणिज्य बैंको द्वारा किया जा सकता है, न कि अतिलोभी महाजनो एव कमीशन एजेण्टो द्वारा।

(*i*) सहकारी ऋण समितियां (Co-operative Credit Societies)

सहकारी वित्त प्रबन्ध ग्राम ऋण का सबसे सस्ता और बढिया स्रोत है। इसमे किसान के शोषण का भय नही रहता। ब्याज की दर भी काफी कम है। 1992-93 मे रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया से सहायता प्राप्त होने के कारण 88,000 प्राथमिक सहकारी ऋण समितियो द्वारा 5,080 करोड रुपये के अल्पकालीन एव मध्यमकालीन ऋण उपलब्ध कराये गये। 1994-95 मे इसके बढकर 6,600 करोड रुपये हो जाने की *आशा है। सक्रिय प्राथमिक उधार समितिया* (Primary credit societies) 86 प्रतिशत ग्रामो तक फैली हुई हैं और इन से 86 प्रतिशत ग्राम जनसख्या को लाभ होता है। सहकारी समितियो द्वारा 1981 मे कृषि के लिए कुल उधार (जिसमे सहकारी ऋण समितिया एव भूमि विकास बैंक भी शामिल हैं) की आवश्यकता का 33 प्रतिशत जुटाया गया जबकि 1951-52 मे यह अनुपात केवल 3 प्रतिशत था।

फिर भी किसानो को महाजनो के चगुल से पूर्णतया छुडाया नहीं जा सका। किसानो की सभी ऋण सम्बन्धी आवश्यकताए सहकारी समितियो द्वारा पूरी नहीं की गयी हैं। इसके अतिरिक्त, छोटे किसान अपनी आवश्यकताएँ सहकारी समितियो से भी पूरी करने मे कठिनाई अनुभव करते हैं। साथ ही, पश्चिमी बगाल, बिहार उडीसा और राजस्थान जैसे विशाल क्षेत्र हैं जहाँ यह आन्दोलन या तो फैल नहीं सका या इसकी जडे गहरी नहीं हुई हैं और परिणामत किसान सहकारी समितियो के लाभो से वचित रहे हैं। बहुत सी जगहो पर सहकारी समितियो का कार्य सिद्धान्तहीन और बेईमान किसानो द्वारा बुरी तरह बर्बाद कर दिया गया है और इस प्रकार जरूरतमन्द किसानो को सहकारिता के लाभ उपलब्ध नहीं हो पाये हैं।

(*ii*) भूमि-बन्धक बैक या भूमि-विकास बैक (Land Development Banks)

दीर्घकालीन ऋणो की आवश्यकता भूमि-बन्धक बैंकों (Land Mortgage Banks) [जिन्हे आजकल भूमि-विकास बैंक कहा जाता है] से पूरी हो रही है। इन बैंको का उद्देश्य किसान को उसकी भूमि बन्धक रखकर दीर्घकालिक ऋण प्रदान करना है। भूमि विकास बैंको से मिलने वाला ऋण काफी सस्ता होता है और उसकी अदायगी काफी लम्बे समय मे करनी होगी। अत यदि पिछले ऋणो की अदायगी करनी हो या नई जमीन खरीदनी हो या भूमि पर ट्यूबवैल आदि के रूप मे कोई सुधार करना हो, तो इन बैंकों से उधार लेना सुविधापूर्ण होता है। ऋण, साधारणतय, *15 से 20 वर्ष तक की लम्बी अवधि के लिए दिए जाते हैं।* यद्यपि भारतवर्ष म पिछले कुछ वर्षों मे भूमि-विकास बैंको ने काफी प्रगति की है किन्तु फिर भी किसान की वित्तीय आवश्यकताओ की पूर्ति मे उनका योगदान अधिक नहीं रहा है। बहुत से ऋणो के लिए किसानो को इन बैंकों के बारे मे जानकारी उपलब्ध नहीं है और न ही वे इनकी लाभदायकता से परिचित हैं। दूसरे, इन बैंको की व्यवस्था करना कठिन है। केन्द्रीय भूमि विकास बैंको की सख्या 1950-51 मे 5 से बढकर 1983-84 मे 19 हो गई जब कि प्राथमिक भूमि-विकास बैंको (Primary Land Development Banks) की सख्या इसी काल के दौरान 286 से बढकर 1,170 हो गई। परन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि लगभग 70 प्रतिशत भूमि विकास बैंक दक्षिण भारत के तीन राज्यो अर्थात् तमिलनाडु आध्र प्रदेश और कर्नाटक मे स्थित हैं। जबकि 1950-51 मे इन बैंको द्वारा केवल 3 करोड का उधार उपलब्ध कराया गया, इसकी मात्रा 1992-93 मे बढकर *1,210 करोड रुपये हो गयी। 1994-95 मे इस उधार की* मात्रा के बढकर 2 500 करोड हो जाने की प्रत्याशा है। भूमि विकास बैंक भूमि की प्रतिभूति (Security) के विरुद्ध ऋण देते हैं और बडे भू-स्वामियो ने इनका लाभ उठाया है और मोटे तौर पर छोटे किसानो को इनसे लाभ प्राप्त नहीं हुआ।

(*iii*) वाणिज्य बैक और ग्राम वित्त (Commercial *banks and rural finance)*

चिरकाल से भारत मे वाणिज्य बैंको ने अपनी क्रियाए शहरी क्षेत्रो तक सीमित रखीं, वे शहरी जनता से जमा स्वीकार करते और शहरी क्षेत्रो मे व्यापार और उद्योग के लिए वित्त जुटाते। इनके खिलाफ बहुत समय से यह शिकायत की जा रही थी कि वे कृषि क्षेत्र को उधार उपलब्ध नहीं कराते। 1969 के बैंक राष्ट्रीयकरण के पश्चात् इन्हे कृषि क्षेत्र की ओर विशेष रूप से ध्यान देने के लिए बाध्य किया गया। जून 1969 में अनुसूचित वाणिज्य बैंको द्वारा 44 करोड रुपये का वित्त उपलब्ध कराया गया। 1994-95 मे वाणिज्य *बैको ने क्षेत्रीय ग्राम बैंको के साथ कृषि क्षेत्र* को 7 100 करोड रुपये के प्रत्यक्ष ऋण उपलब्ध कराए।

(*iv*) क्षेत्रीय ग्राम बैक (Regional Rural Banks)

ये बैंक 1975 से स्थापित किए गए और इनका विशेष उद्देश्य छोटे तथा सीमात किसानो, कृषि मजदूरो, देहाती

दस्तकारो आदि को प्रत्यक्ष ऋण उपलब्ध कराना था। ये ऋण उत्पादन कार्यों के लिए दिए जाते हैं। 1994-95 तक 196 क्षेत्रीय ग्राम बैंक कायम हो चुके थे और वे ग्रामीण जनता को लगभग 4,000 करोड रुपये वार्षिक उधार के रूप मे उपलब्ध कराते रहे हैं। इन बैंकों के ऋणो का 90 प्रतिशत ग्राम क्षेत्रो के कमजोर वर्गों को दिया जाता है।

(v) सरकार और ग्रामीण-उधार

सरकार ग्राम-वित्त का अल्पकाल एव मध्यकाल के लिए महत्त्वपूर्ण स्रोत रही है। सरकार द्वारा किसानो को दिए गए ऋण आपातकाल या सकट के समय जैसे अकाल, बाढ आदि में सामान्यत दिए जाते हैं। इन पर ब्याज की दर नीची होती है-6 प्रतिशत के करीब-और इनकी वापसी का ढग बहुत आसान होता है। ये ऋण आसान किस्तो मे भू-कर (Land tax) के साथ लौटाए जाते हैं। ये ऋण, ब्याज की दर नीची होने के कारण चाहे लोकप्रिय हैं परन्तु ये कभी भी महत्वपूर्ण नहीं बन पाए। 1951-52 मे कुल ग्राम ऋणो मे इनका भाग केवल 3 3 प्रतिशत था जो 1981 मे थोडा बढ कर 3 9 प्रतिशत हो गया। राज्यीय सरकारो ने कृषि के अल्पकालीन ऋणो के लिए 350 करोड रुपये से 400 करोड रुपये के अग्रिम दिए। इस असन्तोषजनक स्थिति के कई कारण हैं किसान तक्कावी ऋणो को प्राप्त करने मे बहुत कठिनाई महसूस करते हैं, इसकी प्राप्ति मे बहुत सी परिस्थितियो मे अफसरो से ऋण स्वीकृत कराने के लिए कुछ रिश्वत भी देनी पडती है। इसलिए तक्कावी ऋण लोकप्रिय नहीं बन पाए।

निष्कर्ष

1950 मे ग्राम-भारत मे महाजन का सबसे अधिक महत्त्व था और सस्थानात्मक स्रोतो द्वारा कृषि उधार की कुल आवश्यकताओ का 3 प्रतिशत से अधिक नहीं जुटाया जाता था। चाहे महाजन अभी भी महत्त्वपूर्ण हैं परन्तु उनका एकाधिकार बीते युग की बात हो गयी है। विभिन्न योजनाओं के आधीन कृषि उधार के अधिकाधिक सस्थानीकरण (Institutionalisation) के कारण अल्पकालीन एवं मध्यकालीन उत्पादक उधार का लगभग 80 प्रतिशत इन स्रोतो से उपलब्ध कराया गया। सहकारी उधार पर आगामी वर्षों मे और भी बल दिया जाएगा जब वाणिज्य बैंक प्रत्यक्ष उधार देने की अपेक्षा अल्पकालीन उत्पादक उधार के लिए सहकारी प्रणाली का अधिकाधिक प्रयोग करने लगेंगे।

किन्तु इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि ग्राम उधार के क्षेत्र मे पिछले 40 वर्षो मे हुए सभी परिवर्तन और उन्नतिया गरीबी दूर करने पर कोई भारी प्रभाव नहीं डाल पायीं। इस प्रकार वे ग्राम जनसख्या के निचले स्तर पर रहने वाली जनसख्या के 70 प्रतिशत की आर्थिक दशा उन्नत करने के लिए पर्याप्त मात्रा मे ऋण उपलब्ध नहीं करा पायीं। इस सन्दर्भ मे यह बात साधिकार कही जा सकती है

(i) सरकार द्वारा कायम किए गए बहुत से नये सस्थान और ग्राम-वित्त के इन सस्थानो द्वारा अत्यधिक विस्तृत सुविधाओ का लाभ देश के 30 प्रतिशत मध्यम एव समृद्ध वर्गों द्वारा हथिया लिया जाता है।

(ii) वे ऋण सुविधाए जो केवलमात्र सीमात तथा छोटे किसानो और आर्थिक दृष्टि से पिछडे वर्गो के लिए कायम की गयीं, उन्हें भी सरकारी अफसरो और राजनीतिज्ञो से गठबन्धन करके समृद्ध किसानो ने हथिया लिया।

(iii) ग्रामीण जनता के सबसे कमजोर वर्ग अर्थात् बन्धुआ मजदूरो, भूमिहीन कृषि श्रमिको, अनुसूचित एव जनजातियो आदि के लिए कुछ भी नहीं किया गया। ये लोग, जो कुल ग्राम-जनसख्या का 25 से 30 प्रतिशत हैं, उच्च जातियो के महाजनो और भू-स्वामियो के क्रूर शोषण का लगातार शिकार बनते रहे हैं।

(iv) थोडी बहुत वित्तीय सहायता जो ग्रामीण जनता के सबसे कमजोर वर्गो को वाणिज्य बैंको, सहकारी बैंको एव समितियो द्वारा दी जा रही है, उसका उद्देश्य केवल प्रचार करना है परन्तु इसने ग्रामीण जनता के निचले 70% को ऋण सम्बन्धी समस्या को छुआ तक नहीं है।

निष्कर्ष के रूप म यह कहा जा सकता है कि सस्थानात्मक एजेन्सियो से उधार के प्रवाह मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है। सहकारी एव वाणिज्य बैंको (जिनमे क्षेत्रीय बैंक भी शामिल हैं) से ग्रामीण उधार की मात्रा जो 1960-61 मे 24 करोड रुपये थी, बढकर 1970-71 में 880 करोड रुपये हो गयी । और 1991-92 मे ओर बढकर 11,200 करोड रुपये हो गयी।

उधार देने वाले सस्थानो की मुख्य समस्या बकाया राशियो की अत्यन्त असतोषजनक स्थिति है। माग की तुलना मे बकाया राशियो का अनुपात सहकारी समितियो के लिए 40 से 42 प्रतिशत के आसपास था और क्षेत्रीय ग्राम बैंको के लिए 47 प्रतिशत था। जाहिर है कि ऋण की वापसी की दृष्टि से कोई महत्त्वपर्ण उन्नति नहीं हुई है। इस प्रकार देश के विभिन्न भागो में सहकारी समितियो एव वाणिज्य बैंकों जैसे कृषि उधार सस्थानो की दशा अत्यन्त शोचनीय हैं। इस बात को योजना आयोग ने बडे दु ख से स्वीकार किया है "जानबूझकर ऋण-वापसी मे चूक और इस प्रकार बकाया राशियो की बढती हुई प्रवृत्ति अनेक राज्यो मे बहुत जोर पकड रही है और इनमे सहकारिता की दृष्टि से कुछ प्रगतिशील राज्य भी हैं, जैसे महाराष्ट्र और गुजरात। कुछ राज्यो ने अपने राजकोष मे से कृषि ऋण और

आर्थिक सहायता देकर पूरे देश के सामने एक घटिया उदाहरण प्रस्तुत किया है। यदि इस प्रवृत्ति को बदला नहीं गया और बैंको की भूमिका केवल ऐसे सस्थानो के रूप मे बदलने लगी जिनका कार्य समग्र रूप से देश को अधिकतम लाभ प्रदान करने के लिए दुर्लभ ससाधनो को पुनर्जीवित न करा कर मात्र अनुदान बाँटना ही हो गया तो बैंक प्रणाली कृषको की बढती हुई आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए अधिक ऋण देने मे अशक्त साबित हो जायगी।

2 कृषि वित्त के विशेष लक्षण

कृषि वित्त की आवश्यकता स्थिर एव निरन्तर रहती है और यह उत्पादन की मात्रा की बजाय कृषि क्रियाओ के स्वभाव पर अधिक निर्भर करती है। किसी वर्ष के दौरान कृषि उत्पादन मे घट बढ मानसून मौसम या अन्य प्राकृतिक परिस्थितियो के कारण हो सकती है परन्तु कृषि क्रियाओ के लिए वित की मात्रा एक या दूसरे वर्ष के लिए लगभग स्थिर रहती है। समय के साथ साथ कृषि तकनालाजी मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप वित्त की आवश्यक मात्रा मे वृद्धि होती रहती है।

जबकि कोई उद्योगपति वस्तुओ के सग्रह मशीनरी आदि के विरुद्ध जो कि आसानी से नकदी मे परिवर्तित किए जा सकते हैं उधार ले सकता है वहाँ किसान तो केवल अपनी भूमि को बन्धक रख कर ही ऋण प्राप्त कर सकता है और भूमि ऐसी परिसम्पत् है जिसे आसानी एव शीघ्रता से नकदी मे तबदील नहीं किया जा सकता। यदि किसान अपने खाद्यान्नो या कच्चे माल के विपण्य अतिरेक (marketable surplus) के विरुद्ध उधार लेने को तैयार हो जाएँ, तो उनके लिए बैंको से वित्त प्रबन्ध करना आसान हो जाएगा। परन्तु यह भारत मे सामान्य व्यवहार नहीं रहा है। किसानो को खेती और उत्पादन सम्बन्धी अन्य क्रियाओ के लिए उधार लेना पडता है। भूमि को छोड किसी अन्य भौतिक प्रतिभूति (Tangible security) के अभाव और उत्पादन न कि विपणन के लिए उधार लेने की प्रवृत्ति-ये दो ऐसे महत्वपूर्ण कारण हैं जो भूतकाल मे वाणिज्य बैंको को किसानो को उधार देने से रोकते रहे हैं।

तकनीकी प्रगति या हरी क्राति के बावजूद अभी भी भारतीय कृषि 'मानसून मे जुआ ही है दो अच्छी फसले दो बुरी फसले और एक सामान्य फसल। उत्पादन मे इतनी अनिश्चितता के कारण कृषि को वाणिज्य बैंको एव बीमा कम्पनियो के लिए एक जोखिमपूर्ण व्यवसाय ही समझा जाता है।

भारतीय किसान विशेषकर छोटे किसानो को भारी मात्रा को न केवल उत्पादक कार्यों के लिए ऋणो की आवश्यकता पडती है बल्कि उपभोग कार्यों के लिए भी। छोटे किसान को कम काम काज के मौसम मे भी उधार की आवश्यकता पडती है या ऐसे समय पर जब फसल पूर्णतया विफल हो जाती है। इसके अतिरिक्त परम्परा से भी हमारे किसान अपनी शक्ति के बाहर खर्च करने के आदी हैं और ये खर्चे जन्म मृत्यु, शादियो और धार्मिक उत्सवो पर किए जाते हैं। मुकदमेबाजी उधार की आवश्यकता का एक अन्य अनुत्पादक परन्तु महत्त्वपूर्ण कारण है। भारतीय महाजन किसानो को इन बहुविध आवश्यकताओ को ध्यान मे रखता है और सभी मौसमो मे और उद्देश्यो के लिए ऋण देता है जबकि सहकारी समितिया अपने ऋणो को केवल उत्पादक उद्देश्यो के लिए सीमित रखती हैं।

छोटे किसानो सीमान्त कृषको और भूमिहीन मजदूरो और ग्रामीण दस्तकारो की अपनी विशेष समस्याएँ हैं। जबकि बडे किसानो के पास अपनी धनराशि होती है या वे सहकारी समितियो वाणिज्य बैंको से उधार प्राप्त कर सकते हैं छोटे किसानो के सामने अपनी आवश्यकताओ के लिए ऋण प्राप्त करने मे वस्तुत बहुत सी कठिनाइया हैं। उनके पास ऋणो को लौटाने की सामर्थ्य होती है। कई बार तो सहकारी समितियाँ भी इनके विरुद्ध भेदभाव करती हैं। इस प्रकार वे मजबूर होकर महाजनो से ऋण लेते हैं और अपनी थोडी बहुत जायदाद या अपने आपको बन्धक रख देते हैं। ग्रामीण ऋणग्रस्तता और बन्धुआ श्रम (Bonded labour) का आविर्भाव ऋण सुविधाओ के अभाव का प्रत्यक्ष परिणाम है।

अन्तिम भारतीय किसानो की मूल आवश्यकता सस्ते उधार की प्राप्ति है जो पर्याप्त मात्रा मे और उचित समय पर उपलब्ध होना चाहिए। सहकारी समितिया जिन्हे किसानो की वित्तीय आवश्यकताओ को पूरा करने की जिम्मेदारी सौंपी गयी सस्ता उधार तो उपलब्ध कराती हैं परन्तु उनकी सहायता पर्याप्त नहीं है। किसानो का एक बहुत बडा प्रतिशत सहकारी समितियो के ऋणो से वचित रहता है। सहकारी ऋण सस्ते तो अवश्य हैं परन्तु समय पर प्राप्त नहीं होते। इन सभी परिस्थितियो मे उत्पादन क्रियाओ पर दुष्प्रभाव पडता है और किसानो को (और विशेषकर छोटे किसानो को) मजबूर होकर महाजनो से ऋण प्राप्त करने पडते हैं जो अत्यधिक ब्याज दर प्राप्त करते हैं और उनके पास बन्धक के रूप मे रखी गयी भूमि हडप कर लेते हैं। चाहे महाजनो से पर्याप्त उधार मिल जाता है और यह उचित समय पर भी मिल जाता है परन्तु यह बहुत ही महगा है। अत भारत मे ग्रामीण ऋण का मूल दोष यह है कि यह न तो पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होता है न ही उचित समय पर और यह ब्याज की उचित दर पर भी उपलब्ध नहीं होता।

अत ग्रामीण स्रोतो मे समग्र देश के लिए 61% उधार सस्थानात्मक स्रोतो से उपलब्ध कराया गया परन्तु सबसे

खेदजनक बात यह है कि 10,000 रुपये से कम परिसम्पत रखने वाले परिवारो को सस्थानात्मक स्रोतो से केवल 32 6 प्रतिशत ही मिल पाया। अत: ग्राम-क्षेत्रो के निर्धन वर्ग अपनी ऋण सम्बन्धी आवश्यकताओ के लिए साहूकारो एव महाजनो पर ही निर्भर रहे। अत सस्थानात्मक उधार का अधिकतर भाग ग्राम क्षेत्र के समृद्ध वर्गों को ही उपलब्ध होता है।

भारत मे अच्छे कृषि वित की आवश्यकताए निम्नलिखित हैं-

(i) निजी उधार पर निर्भरता को पूर्णतया समाप्त करना चाहिए और केवल संस्थानात्मक वित्त ही उपलब्ध होना चाहिए जो कि समृद्ध और निर्धन दोनो प्रकार के किसानो को उपलब्ध होना चाहिए। इसके द्वारा कृषि की कुशलता एव उत्पादिता को बढाना चाहिए।

(ii) सस्थानात्मक वित्त को सफल बनाने के लिए प्रशिक्षित, निष्ठावान एव वचनबद्ध व्यक्ति होने चाहिए जो सहकारी समितियो और क्षेत्रीय ग्राम बैंकों का प्रबन्ध एव सचालन कर सके।

(iii) भूमि एक घटिया प्रतिभूति होने के कारण, ग्राम ऋण का आधार भूमि नहीं बल्कि आसानी से रोकाकारणीय प्रतिभूतिया (Encashable securities) अर्थात् कृषि-उत्पाद होना चाहिए।

(iv) ग्राम-ऋण का प्रयोग केवल उत्पादक उद्देश्यो के लिए किया जाना चाहिए जिसका अर्थ यह है कि उपभोग-उद्देश्यो के लिए उधार को निरुत्साहित करना चाहिए। ग्राम-ऋण सामान्यतया नकदी की अपेक्षा जिन्स के रूप मे होना चाहिए अर्थात् बीजो, उर्वरको, कीटनाशको आदि के रूप में।

(v) छोटे तथा सीमान्त किसानो और भूमिहीन श्रमिको के लिए उपभोग-ऋण आवश्यक होगे और जिन बन्धुआ मजदूरो को मुक्त किया जाएगा, उनके लिए भी ऐसे ऋणो की व्यवस्था होनी चाहिए।

(vi) ब्याज और मूलधन का भुगतान एक अच्छी वित्त-प्रणाली के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं। सामान्यतया, कृषि-ऋणो पर ब्याज की दर कम होनी चाहिए। और कृषको के विभिन्न वर्गो के लिए ब्याज को भिन्न-भिन्न दर होनी चाहिए। इसी प्रकार उधार के प्रयोग के आधार पर विभेदक दरें (Differential rates) होनी चाहिए। नीची ब्याज-दरें और विभेदक दरो का उद्देश्य छोटे किसानो को नयी तकनालाजी, अच्छे खेती व्यवहार आदि के लिए प्रोत्साहित करना है।

(vii) कृषि-ऋणग्रस्तता के बढते हुए भार को रोकने के लिए मूलधन के नियमित भुगतान पर बल देना जरूरी है। किन्तु किसानो के विभिन्न वर्गो को दृष्टि मे रखते हुए ऋण-भुगतान की शर्तों मे सशोधन की व्यवस्था की जानी चाहिए।

कृषि वित्त में सुधार

इस बात पर बल देने की आवश्यकता नहीं कि कृषि उत्पादन कार्यक्रम की सफलता उधार पर निर्भर करती है। सरकार द्वारा बहु-एजेन्सी-रणनीति (Multi Agency strategy) अपनाने के आधीन, सहकारी उधार सस्थान, वाणिज्य बैंक और क्षेत्रीय ग्राम बैंक सामान्य किसानो को और विशेषकर छोटे तथा सीमान्त किसानो को ऋण देते हैं। सरकार किसान-वर्ग की ऋण सम्बन्धी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण रखती है और इस प्रकार किसानो की सभी प्रकार की ऋण की जरूरतो के लिए उधार उपलब्ध कराती है। इसमे उत्पादन एव विनियोग के लिए उधार, उपभोग आवश्यताओं के लिए उधार और यदि सभव हो सके, तो पुराने ऋणो के परिशोधन (Redemption of old debts) के लिए भी उधार देती है। वाणिज्य बैंक और क्षेत्रीय ग्राम बैंक ग्राम-उधार उपलब्ध कराने मे विशेष कार्य भाग अदा कर रहे हैं। उनका विशेष बल कृषि-आदान (Input),अनिवार्य वस्तुए ओर सेवाए उपलब्ध कराने पर है, न कि केवल उधार पर। रिजर्व बैंक की शाखा-विस्तार नीति के अनुसार वाणिज्य बैंको और क्षेत्रीय ग्राम बैंको की एक शाखा अब 15 000 जनसख्या के लिए ग्रामो एव अर्द्ध-नगरीय क्षेत्रो मे उपलब्ध है जबकि 1969 मे बैंक राष्ट्रीयकरण के समय 65,000 जनसख्या के लिए एक शाखा उपलब्ध थी। अत यह आशा की जा सकती है कि महाजनो की क्रियाए सीमित की जा सकेगी ओर इस शताब्दी के अन्त तक छोटे तथा सीमान्त किसानो और ग्रामीण-दस्तकारो का शोषण समाप्त किया जा सकेगा।

3. वाणिज्य बैंक और ग्राम-वित्त
(Commercial Banks and Rural Finance)

ग्राम-वित्त मे वाणिज्य बैंको की दिलचस्पी पहली बार तब शुरू हुई जब 1955 मे स्टेट बैंक की सहायता के पश्चात् सहकारी विधायन और विपणन समितियो (Co-operative Processing and Marketing Societies) को उधार सुविधाओ की व्यवस्था की गई। स्टेट बैंक और इसके अनुषगी बैंको ने अर्धनगरीय और ग्राम क्षेत्रो मे शाखाओ का एक जाल बिछा दिया परन्तु इस नेतृत्व का वाणिज्य बैंको ने लाभ न उठाया और वे कृषि-वित्त की समस्याओ से पृथक ही रहे। 1967 मे बैंको के सामाजिक नियन्त्रण (Social control of banks) से स्थिति मे कुछ सुधार हुआ। जुलाई

1969 तक सभी वाणिज्य बैंको की ग्राम और नगर क्षेत्रो मे लगभग 5 200 शाखाएं थीं 1991 के मध्य तक इनकी संख्या बढकर 34 500 हो गयी। 1991 तक 230 लाख कृषि उधार खाते थे और इन खातो मे अनुसूचित वाणिज्य बैंको की कुल बकाया राशि 17 000 करोड रुपये थी जबकि जून 1969 मे इन बैंको मे 1 6 लाख खातो मे कुल बकाया राशि 160 करोड रुपये थी।

वाणिज्य बैंक और प्रत्यक्ष वित्त

1969 मे बैंक राष्ट्रीयकरण के पश्चात् आरम्भिक अवस्था मे राष्ट्रीयकृत बैंको ने अपना ध्यान बडे किसानो और ऐसे किसानो पर केन्द्रित किया जो अधिक उपजाऊ किस्म के बीजो द्वारा खाद्यान्नो के उत्पादन को बढाने मे व्यस्त थे। इन्हे पम्पिग सेट ट्रैक्टर अन्य कृषि मशीनरी कुएँ तथा ट्यूबवैल लगाने के लिये सीधे ऋण (Direct Loans) दिये गये। इसी प्रकार फल तथा बागानी फसलो भूमि को हमवार तथा विकसित करने दुधार पशु खरीदने मुर्गी पालन आदि के लिये भी ऋण दिये गये।

वाणिज्य बैंको द्वारा अप्रत्यक्ष वित्त-प्रबन्धन (Indirect financing)

चाहे आगामी कुछ वर्षो मे वाणिज्य बैंको द्वारा प्रत्यक्ष वित्त प्रबन्ध (Direct financing) का क्षेत्र सीमित ही रहेगा परन्तु इनके द्वारा अप्रत्यक्ष वित्त-प्रबन्ध की बहुत गुजाइश है। उदाहरणार्थ वाणिज्य बैंक सहकारी समितियो को वित्त उपलब्ध करा सकते हैं ताकि ये किसानो के लिए उत्पादन सम्बन्धी उधार का विस्तार कर सके। विशेष रूप मे वे विपणन एव विधायन मे लगी हुई सहकारी समितिया को उधार दे सकते हैं या कृषि मे सहायक क्रियाओ अर्थात् डेरी उद्योग (Dairy farming) मुर्गी पालन आदि के लिए वित्त उपलब्ध करा सकते हैं। दूसरे वाणिज्य बैंक ऐसी एजेन्सियो को जो आदानो (Inputs) के सभरण या कृषि उत्पाद के विधायन एव विपणन में लगी हुई है उधार देकर अप्रत्यक्ष रूप मे किसानो को उत्पादन सम्बन्धी अप्रत्यक्ष उधार मुहैया कर सकते हैं। तीसरे व ऐसी उत्पादन या वितरक फार्मों एजेन्सियो और सहकारी समितियो को उधार दे सकते हैं जो कृषि मशीनरी या पम्प-सेट किराया खरीद पद्धति (Hire purchase system) द्वारा या अन्यथा उपलब्ध कराती हैं। चौथे वे भारतीय खाद्य निगम राज्यीय सरकारो और सस्थाओ को खाद्यान्नो की वसूली सग्रहण एव वितरण के लिए उधार दे सकते हैं। अन्तिम वाणिज्य बैंक केन्द्रीय विकास बैंको के ऋण पत्र (Debentures) खरीद सकते हैं और उन्हे अग्रिम दे सकते हैं। इनके उधार पर केन्द्रीय विकास बैंक किसानो को भूमि विकास के मध्यम तथा दीर्घकालीन अग्रिम दे सकते हैं।

वाणिज्य बैंक और समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम

अक्टूबर 1980 के पश्चात् सरकार ने समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम (Integrated Rural Development Programme) का विस्तार देश के सभी विकास खण्डो में कर दिया है और वाणिज्य बैंको को यह निर्देश दिया है कि वे इस कार्यक्रम के लिए वित्त प्रबन्ध करें। परन्तु यह देखने मे आया है कि वाणिज्य बैंको ने इस कार्यक्रम को उत्साह के साथ लागू नहीं किया। परन्तु वाणिज्य बैंको के मन्दोत्साह के कई कारण हैं। सर्वप्रथम वाणिज्य बैंको को यह कहा गया है कि वे सरकारी एजेसियो द्वारा निश्चित किए गए आर्थिक दृष्टि से एव अन्यथा पिछडे लोगो को वित्त उपलब्ध कराएँ। वाणिज्य बैंको ने यह पाया कि अधिकतर समृद्ध किसानो ने अपने नाम लाभग्राहियो (Beneficiaries) की सूची मे या तो सरकारी अफसरो को रिश्वत दे कर या राजनीतिक दबाव का प्रयोग करके दाखिल करवा लिए हैं। दूसरे शब्दो मे यह कहना सही होगा कि सभी भावी उधार लेने वाले वास्तव मे आर्थिक दृष्टि से पिछडे हुए नहीं हैं और बैंको को वैध लाभग्राहियो को ढूढने का दायित्व भी निभाना पडता है।

दूसरे बैंको ने यह भी देखा है कि सभी लाभग्राही प्राप्त ऋण का प्रयोग उस उद्देश्य के लिए नहीं करते जिसके लिए ऋण दिया गया हो। बहुत सी परिस्थितियो मे किसान बैंक-उधार का प्रयोग अनुत्पादक कार्यो मे करते हैं परन्तु फर्जी विक्रेताओ के माध्यम से भैंसो के क्रय की रसीद पेश कर देते हैं। ऐसे विक्रेताओं को वे थोडा कमीशन दे देते हैं वाणिज्य बैंको को क्रय विक्रय के सौदो की विश्वसनीयता की छानबीन करनी पडती है।

अन्तिम छोटे एव भोले किसान छोटे सरकारी अफसरो स्थानीय राजनीतिज्ञो और पचायत समिति के सदस्यो द्वारा ठगे जाते हैं इसके पहले कि वे बैंक-उधार के लाभग्राही बन सकें। अन्ततोगत्वा भारी बकाया राशि के लिए बैंको को हानि उठानी पडती है। इस कारण बैंक समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के लिए वित्त उपलब्ध नहीं कराना चाहते।

कृषि उधार मे वाणिज्य बैंको का बढ़ता हुआ कार्यभाग

आगामी कुछ वर्षों मे कृषि क्षेत्र की उधार आवश्यकताएँ 25 000 से 30 000 करोड रुपये के बीच आकी गई हैं। इन्हे पूरा करना एक भारी कठिन कार्य है और इसकी जिम्मेदारी सहकारी समितियो एव वाणिज्य बैंको को लेनी होगी। चूकि वाणिज्य बैंको के पास इस कार्य के लिए सीमित साधन हैं इसलिए उनके लिए यह अधिक महत्त्वपूर्ण है कि वे इस क्षेत्र मे अपने सीमित ससाधनो का अनुकूलतम प्रयोग करें।

कृषि के लिए वित्त-प्रबन्ध के क्षेत्र में, समस्या केवल मात्रा की दृष्टि से ऋण उपलब्ध कराने की ही नहीं बल्कि 5,50,000 ग्रामो तक पहुचाने की है जिनमे छोटे किसानो की अधिकतम जनसख्या निवास करती है। इन सबको केवल 36,000 बैंक शाखाओ द्वारा पहुच पाना बहुत ही कठिन कार्य है। आगामी 5 या 10 वर्षों के शाखा-विस्तार कार्यक्रम को दृष्टि में रखते हुए यह कहना उचित ही होगा कि वाणिज्य बैंक इन सभी ग्रामो तक पहुच नहीं सकेगे। अत छोटे किसानो की दशा सुधारने के लिए वित्त-प्रबन्ध की कुछ नई योजनाएँ चलानी होगी। अत कृषि विकास एव छोटे किसानो की दशा सुधारने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको ने निम्नलिखित योजनाएँ आरम्भ की हैं-

(i) छोटे किसानो की विकास एजेन्सियाँ कायम की गई हैं ताकि छोटे तथा भविष्य मे सक्षम बनने योग्य किसानो की समस्याओ का पता लगाया जा सके और उन्हे उनके जिलो में ही कृषि आदान सेवाएँ और उधार मुहैया कराए जा सकें।

(ii) सहकारी समितियो के प्रयास को बढावा देने के लिए रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने एक योजना बनाई जिसके आधीन वाणिज्य बैंक प्राथमिक कृषि-उधार समितियो को वित्त उपलब्ध कराते हैं जो फिर किसानो के लिए वित्त प्रबन्ध करती हैं। यह योजना 13 राज्यो के 142 जिलो मे लागू की जा रही है और इससे लगभग 2 870 प्राथमिक समितियाँ सहायता प्राप्त कर रही हैं।

यह अनुमान लगाया गया है कि लगभग 70 प्रतिशत किसान जिनके पास 2 हैक्टेयर से कम भूमि है, को बैंक-ऋण उपलब्ध नहीं है। केवल बडे भू-स्वामी ही उधार-पात्र समझे जाते हैं और बैंक उन्हे ही ऋण देते हैं। परन्तु ऐसी स्थिति देर तक कायम नहीं रह सकती।

ग्राम उधार के लिए नयी रणनीति सेवा क्षेत्र की नयी पद्धति (New Strategy for Rural Lending : Service Area Approach)

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने नवम्बर-दिसम्बर 1987 में देश भर मे फैले हुए कुछ चुने हुए जिलो मे बैंक-उधार के ग्राम क्षेत्रो पर प्रभाव का अध्ययन किया। इन अध्ययनो के आधार पर फरवरी 1988 के पश्चात् ग्राम-उधार की एक नई रणनीति अपनाई गई जिसे सेवा-क्षेत्र पद्धति (Service Area Approach) के नाम से सम्बोधित किया गया। इसके आधीन वाणिज्य बैंको की अर्द्ध-नगरीय एव ग्रामीण शाखाओ को विशेष क्षेत्र सौंपे गए जिनमे उन्हे कार्य करना होगा और अपने आर्थिक विकास के लिए आयोजन पद्धति अपनानी होगी। इस पद्धति का औचित्य इस बात मे है कि चूंकि ग्रामीण एव अर्द्ध-ग्रामीण क्षेत्रो मे बैंक शाखाओ का जाल बिछा दिया गया है और चूँकि इन क्षेत्रो मे ग्राम-उधार मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि हो चुकी है, इसलिए ग्राम उधार के बारे मे सेवा-क्षेत्र पद्धति अपनानी अनिवार्य है जिससे बैंक-उधार द्वारा ग्राम विकास के कार्य का समन्वय किया जा सके।

सेवा क्षेत्र द्धति के कार्यान्वयन के लिए पाँच अवस्थाएँ होगी-

(i) ग्राम तथा अर्द्धग्राम केन्द्र के लिए सेवा क्षेत्रा की पहचान,

(ii) सेवा-क्षेत्र का सर्वेक्षण ताकि विभिन्न क्रियाओ के लिए उधार की क्षमता का अनुमान लगाया जा सके और लाभग्राहियो (Beneficiaries) की पहचान की जा सके,

(iii) वार्षिक आधार पर योजनाओ को तैयार करना,

(iv) उधार योजनाओ के प्रभावी क्रियान्वयन का एक नैरतर्य आधार पर समन्वय करना, और

(v) योजनाओ के क्रियान्वयन की प्रगति के लिए लगातार निरीक्षण (Monitoring) की पद्धति तैयार करना।

समन्वय की आवश्यकता

नई तकनीक के अपनाने से कृषि-क्षेत्र की आवश्यकताएं बढी भी हैं और विस्तृत भी हुई हैं। इस कारण कई वित्तीय एजेन्सियाँ एक साथ मिलकर ग्राम-क्षेत्र मे वित्त-प्रबन्ध का कार्य कर सकती हैं। परन्तु वाणिज्य बैंको और सहकारी समितियो में भी समन्वय की आवश्यकता है ताकि वे एक दूसरे के विरुद्ध कार्य न करते रहे। साथ ही यह भी जरूरी है कि ये संस्थाएँ दोहरे वित्त-प्रबन्ध या कुछ क्षेत्रो मे अत्यधिक वित्त-प्रबन्ध की व्यवस्था न करें। इसके अतिरिक्त यह देखना भी जरूरी है कि ऋण कानूनो की अवहेलना करने वाला कृषक किसी दूसरी सस्था से वित्त प्राप्त न कर सके। यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि ऋण-प्रस्तावों का निरीक्षण करते समय विभिन्न बैंक एक-दूसरे से लगातार परामर्श करते रहें। इसके लिए बैंको के एजेण्टो और प्रबन्धको तथा सहकारी समितियो के अधिकारियो मे सहयोग होना चाहिए ताकि वित्त प्रदान करने की मात्रा तथा प्रकार के कुछ साझे सिद्धान्त तैयार किए जा सके।

सेवा क्षेत्र की नई रणनीति 1 अप्रैल 1989 से लागू की गई और इसे देश के सभी 445 जिलो मे लागू करने का निर्णय किया गया। इस रणनीति के आधीन वाणिज्य बैंको ने 1989-90 के लिए वार्षिक उधार योजना तैयार की और इसके लिए 15 600 करोड रुपए के उधार की व्यवस्था की गई जिसमे से कृषि का 10,730 करोड रुपए प्राप्त होने की प्रत्याशा थी। वास्तविक उपलब्धि 14,100 करोड रुपए हुई। 1990-91 के लिए 17,200 करोड रुपये का लक्ष्य रखा गया।

इस योजना के कार्यान्वयन के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि यह योजना ग्राम उधार की उत्पादिता बढाने में बहुत उपयोगी सिद्ध होगी और इसे शीघ्रातिशीघ्र स्थिर करने के प्रयास करने चाहिएँ। जहा पर वाणिज्य बैंको को आगामी वर्षों के लिए शाखा उधार योजनाएँ तैयार करने के लिए निर्देश दिए गए हैं वहाँ सहकारी बैंको को भी इन उधार योजनाओ की तैयारी मे वाणिज्य बैंको से सहयोग करने का सुझाव दिया गया है।

नई रणनीति का मूल्याकन

नई रणनीति के विशाल स्तर पर अपनाने से कोई चमत्कार होने वाला नहीं है। इस सदर्भ मे श्री ए आर पटेल का कहना है- हमने भूतकाल मे भी सहकारी समितियो को 1971 मे अपनाकर किसान सेवा समितियो (Farmer Service Societies) को 1973 मे चालू करके और केन्द्रीय एव राजकीय सरकारो द्वारा क्षेत्रीय ग्राम बैंक 1975 मे स्थापित करके प्रयोग किए इनमे से कोई भी ग्राम बैंक समस्या का अचूक समाधान सिद्ध नहीं हुआ। किन्तु सरकार का कहना है कि नई रणनीति भूतकाल के प्रयोगो से भिन्न है क्योकि इसमे कोई नया सस्थान स्थापित नहीं किया गया बल्कि वर्तमान सस्थानो को उन्नत करके अधिक कुशल बनाने का प्रयास किया गया है।

सरकारी आकडो से नयी रणनीति के लागू होने के पश्चात् कृषि क्षेत्र मे उधार की लगातार वृद्धि का सकेत मिलता है। (देखिए तालिका 2)

तालिका 2 कृषि उधार का प्रवाह

करोड रुपये

	वाणिज्य बैंक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	सहकारी समितिया	कुल
1984 85 (छठी योजना के अन्त तक)	2 790	3 440	6 230
1989 90	4 930	5 260	10 190
1990 91	5 010	3 970	8 980
1991 92	6 160	5 350	11 510
1992 93	6 700	6 300	13 000
1993 94*	6 600	8 500	15 100
1994 95**	7 100	9 600	15 700

*प्रारभिक **लक्ष्य

स्रोत कृषि एव सहकारिता मत्रालय वार्षिक रिपोर्ट (1994 95)

4 क्षेत्रीय ग्राम बैंक

(Regional Rural Banks)

20 सूत्री कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण अश धीरे धीरे ग्राम ऋणग्रस्तता को समाप्त करना था और ग्रामीण क्षेत्रो मे किसानो एव कारीगरो को सस्थानात्मक उधार उपलब्ध कराना था। नए आर्थिक कार्यक्रम के इस पहलू को आगे बढाने के लिए ही भारत सरकार ने 26 सितम्बर 1975 को एक अध्यादेश द्वारा देश भर मे क्षेत्रीय ग्राम बैंक स्थापित करने की घोषणा की। क्षेत्रीय ग्राम बैंको का मुख्य उद्देश्य विशेष रूप मे छोटे तथा सीमान्त किसानो कृषि मजदूरो कारीगरो तथा छोटे उद्यमकर्त्ताओ को उधार तथा अन्य सुविधाएँ उपलब्ध कराना है ताकि वे ग्राम क्षेत्रो में कृषि व्यापार वाणिज्य उद्योग एव अन्य उत्पादक क्रियाओ को विकसित कर सके।

आरम्भ मे 2 अक्टूबर 1975 को पाँच क्षेत्रीय बैंक स्थापित किए गए उत्तर प्रदेश मे मुरादाबाद और गोरखपुर मे हरियाणा मे भिवानी में राजस्थान मे जयपुर और पश्चिम बगाल मे माल्डा के स्थान पर। ये बैंक क्रमश सिडीकेट बैंक स्टेट बैंक आफ इण्डिया पजाब नेशनल बैंक युनाइटिड कमर्शल बैंक और युनाइटिड बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा चालू किए गए। प्रत्येक क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की अधिकृत पूजी (Authorised capital) 1 करोड रुपए और जारी एव चुकती पूजी (Issued and Paid up capital) 25 लाख रुपए थी। क्षेत्रीय ग्राम बैंक की हिस्सा पूजी में केन्द्रीय सरकार द्वारा 50 प्रतिशत राज्यीय सरकार द्वारा 15 प्रतिशत और चलाने वाले वाणिज्य बैंक द्वारा 35 प्रतिशत योगदान दिया जाता है। चाहे मूल रूप मे क्षेत्रीय बैंक अनुसूचित वाणिज्य बैंक ही हैं किन्तु वे कुछ पहलुओ में इनसे भिन्न हैं

(क) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको का कार्यक्षेत्र राज्य के एक या कुछ जिलो के निर्धारित इलाके तक सीमित कर दिया जाता है।

(ख) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक छोटे तथा सीमान्त किसानों (Marg nal farmers) देहाती कारीगरो कृषि मजदूरों और अन्य थोडे सम्पत्ति वाले व्यक्तियो को उत्पादक उद्देश्यों के लिए ऋण तथा अग्रिम देते हैं।

(ग) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको की उधार दरें किसी विशेष राज्य मे सहकारी समितियो की उधारो दरो की तुलनीय हैं।

क्षेत्रीय ग्राम बैको की प्रगति

दिसम्बर 1990 तक 23 राज्यो मे 196 क्षेत्रीय ग्राम बैंक स्थापित किए गए जिनकी 14 500 शाखाएँ थीं इस प्रकार 1990 के अन्त तक इन बैंको ने देहातो में रहने वाले निर्बल वर्गों को 3 560 करोड रुपए का अल्पकालीन ऋण उपलब्ध कराया। क्षेत्रीय ग्राम बैंको के ऋणो का 90 प्रतिशत कमजोर

वर्गों को उपलब्ध कराया गया। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया इन बैंकों को प्रोत्साहन देने के लिए कई प्रकार की सहायता एव रियायतें देता है।

क्षेत्रीय बैंको पर समिति

रिजर्व बैंक ने क्षेत्रीय ग्राम बैंको की उधार नीति के गुणात्मक पक्षो की जाच के लिए अप्रैल 1981 मे एक अध्ययन किया जिसके अनुसार यह बात स्पष्टतया स्थापित की गई कि मोटे तौर पर ये बैंक अपने लक्ष्यो मे सफल हुए हैं–

(क) इन बैंको ने रिजर्व बैंक और भारत सरकार द्वारा निर्धारित उधार नीति एव कार्यविधि सम्बन्धी हिदायतो का अनुकरण किया।

(ख) क्षेत्रीय ग्राम बैंको के स्थापित करने का मूल उद्देश्य ग्राम क्षेत्रो मे कृषि, व्यापार, वाणिज्य उद्योग एवं अन्य उत्पादक क्रियाओ को विकसित करके ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास करना है।

(ग) क्षेत्रीय ग्राम बैंको ने लक्षित समूहो को उधार सुविधाएँ देकर लोगो के मन मे यह धारणा कायम की है कि ये छोटे व्यक्तियो के बैंक हैं। इनमे छाटे तथा सीमान्त किसान, कृषि-मजदूर, दस्तकार और उत्पादक उद्यमो मे कार्य कर रहे छोटे उद्यम शामिल किए जाते हैं।

क्षेत्रीय ग्राम बैंक तथा नेबार्ड (NABARD)

जुलाई 1982 मे नेवार्ड की स्थापना के पश्चात क्षेत्रीय ग्राम बैंको को रिजर्व बैंको से प्राप्त होने वाली पुनर्वित्त सुविधा नेबार्ड से मिलने लगी। 1987–88 के दौरान 164 क्षेत्रीय ग्राम बैंको को अल्पकालीन एव मध्यकालीन ऋण के रूप में 310 करोड रुपए के उधार की स्वीकृति दी गई। इन बैंको ने नेबार्ड से दीर्घकालीन वित्त भी प्राप्त किया है। नेबार्ड अब क्षेत्रीय ग्राम बैंको की पुनर्वित परियोजनाओ के प्रशासन, उनके कार्य-निष्पादन की देख-रेख और शाखा विस्तार तथा कानूनी निरीक्षण के लिए रिजर्व बैंक के साथ एक कडी के रूप में कार्य करेगा। आशा की जाती है कि तेजी से शाखा-विस्तार और अधिक कुशल टैक्निकल स्टाफ के साथ क्षेत्रीय ग्राम बैंक आने वाले वर्षो मे अपने निष्पादन को और उन्नत कर पाएँगे।

क्षेत्रीय ग्राम बैंको का मूल्याकन

रिजर्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार क्षेत्रीय ग्राम बैंक समाज के कमजोर वर्गों को सस्थानात्मक उधार उपलब्ध कराने में सफल हो गए हैं परन्तु कुल मिलाकर इन ऋणो की वसूली की स्थिति सतोषजनक नहीं है।

वित्तीय प्रणाली पर नरसिम्हम समिति (Narasimham Committee) ने क्षेत्रीय ग्राम बैंको का मूल्याकन करते हुए उल्लेख किया कि इन बैंको का उद्देश्य वाणिज्य बैंकों की कार्य कर रही शाखाओ को एक कम-लागत वाला विकल्प उपलब्ध कराना था परन्तु इन बैंको का कार्य निष्पादन काफी चिन्ता का विषय रहा है। समिति के अनुसार, तीन बुनियादी समस्याएँ हैं–

(क) इनके द्वारा की जाने वाली क्रियाओ पर बहुत से सीमाबन्धन होने के कारण क्षेत्रीय ग्राम बैंको की आय कमाने की क्षमता निम्न है,

(ख) क्षेत्रीय ग्राम बैंको के मजदूरी और वेतनमान वास्तव मे बढते ही जा रहे हैं और हाल ही मे घोषित वृद्धि से वाणिज्य बैंको के लगभग बराबर हो जाएँगे। वेतनमान मे वृद्धि के साथ क्षेत्रीय ग्राम बैंकों की स्थापना का महत्त्वपूर्ण तार्किक आधार समाप्त हो गया है, और

(ग) क्षेत्रीय ग्राम बैंको के प्रवर्तक बैंक (Sponsoring Banks) भी अपनी ग्रामीण शाखाएँ इन बैंकों के क्षेत्रों मे चला रहे हैं। इस कारण कई प्रकार के नियन्त्रण एव प्रशासन पर होने वाले परिहार्य व्यय कम किए जा सकते हैं।

नरसिहम समिति के अनुसार सरकार को एसे ग्रामीण बैंकिग ढाचे के निर्माण मे सहायता देनी चाहिए जो क्षेत्रीय ग्राम बैंको के स्थानीय लक्षणो को वाणिज्य बैंको की वित्तीय शक्ति एव सगठनात्मक तथा प्रबन्धकीय कुशलता से प्रभावी रूप मे जोड दे। इस सम्बन्ध मे समिति ने दो मूल समस्याओ का उल्लेख किया है। पहली प्रतिस्पर्द्धा जो वाणिज्य बैंक-प्रणाली का अनिवार्य लक्षण है, को ग्रामीण बैंक-व्यवस्था के सदर्भ मे परित्याग करना होगा। दूसरी, ग्रामीण भारत मे ऋण उपलब्ध कराने मे काफी बडा अन्तर है और इस अन्तर को समाप्त करने मे समय लगेगा। इन दो बातो को दृष्टि में रखते हुए नरसिहम समिति ने यह सिफारिश की है कि वाणिज्य बैंको को अपनी ग्रामीण शाखाओ के परिचालन को अनुषगी कम्पनियाँ (Subsidiaries) कायम करके अलग कर देना चाहिए। इन अनुषगियो को अपने निर्धारित परिचालन-क्षेत्र मे मानवशक्ति की भर्ती एव प्रयोग की इजाजत होनी चाहिए।

नरसिहम समिति ने यह भी सिफारिश की है कि बैंको को अपनी ग्रामीण शाखाओ के विनिमय की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। ऐसे बैंक जिनकी किसी क्षेत्र-विशष मे थोडी ग्रामीण शाखाएँ हैं, उन्हे ये शाखाएँ उन बैंको के पक्ष मे छोड देनी चाहिएँ जिनकी उस क्षेत्र मे अधिक शाखाएँ हैं। परन्तु डॉ ए एम खुसरो की अध्यक्षता म स्थापित कृषि उधार समीक्षा समिति का मत है कि क्षेत्रीय ग्राम बैंको की ये कमजोरियाँ अन्तनिहित हैं और अक्षमता उनके सगठनात्मक

ढाचे का अंग है। अत क्षेत्रीय ग्राम बैंको से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे समाज के सबसे बडे वर्ग की सेवा उनसे प्रत्याशित ढग से कर पाएँगे। खुसरो समिति के अनुसार देश की उधार प्रणाली मे क्षेत्रीय ग्राम बैंको के लिए निकट भविष्य मे कोई स्थान नही है और उनका प्रवर्त्तक बैंकों के साथ विलयन (Merger) कर देना चाहिए।

5. नेबार्ड और ग्राम उधार
(NABARD and Rural Credit)

रिजर्व बैंक ने अपने आरम्भ होने के समय से ही कृषि उधार मे गहरी रुचि दिखाई और इसके लिए एक पृथक *विभाग कायम किया।* रिजर्व बैंक राज्यीय स्तर के सहकारी बैंको तथा भूमि-विकास बैंको के माध्यम से कृषि को अल्पकालीन मौसमी उधार के साथ मध्यकालीन एव दीर्घकालीन उधार की व्यवस्था करता रहा। साथ ही, रिजर्व बैंक ने कृषि पुनर्वित्त निगम (Agricultural Refinance Corporation) की स्थापना की ताकि कृषि-विकास प्रोग्रामो, विशेषकर सावधि-उधार (Term credit) सुविधाओ को विकसित किया जा सके। 'कृषि-उधार' से 'ग्राम-विकास' के रूप मे बैंक उधार के कार्यभाग मे विस्तार के कारण इस बात की जरूरत महसूस की गई कि ग्राम विकास प्रोग्रामो के प्रतिपादन एव कार्यान्वयन के लिए *शिखर-स्तर (Apex level) पर एक अधिक विस्तृत सस्था* होनी चाहिए जो उधार सस्थानो की सहायता कर सके और इनका मार्गदशन भी कर सके। इस उद्देश्य को लेकर कृषि तथा ग्राम-विकास राष्ट्रीय बैंक (National Bank for Agriculture and Rural Development—NABARD) की जुलाई 1982 मे स्थापना की गई ताकि यह कृषि-पुनर्वित्त विकास बैंको के कार्य एव रिजर्व बैंक के सहकारी समितियो एव क्षेत्रीय ग्राम बैंको सम्बन्धी पुनर्वित्त के कार्यों का भार सभाल सके। नेबार्ड का रिजर्व बैंक से *सीधा सम्बन्ध है और इसके लिए रिजर्व बैंक ने* इसकी हिस्सा-पूजी के आधे के बराबर योगदान दिया है और शेष आधा भाग भारत सरकार द्वारा जुटाया गया। रिजर्व बैंक को नेबार्ड के निदेशक मण्डल (Board of Directors) पर अपने तीन केन्द्रीय बोर्ड के निदेशको को मनोनीत करने और अपने एक उप-गवर्नर (Deputy Governor) को नेबार्ड का अध्यक्ष नियुक्त करने का अधिकार है।

नेबार्ड के ससाधन (NABARD'S Resources)

नेबार्ड की अधिकृत पूजी 500 करोड रुपए है और चुकती पूजी (Paid up capital) 100 करोड रुपए है। अपनी ऋण-सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए नेबार्ड *भारत सरकार, विश्व बैंक तथा अन्य एजेन्सियो* से राशियाँ प्राप्त करता है, यह बाजार से भी निधियाँ प्राप्त *करता है और राष्ट्रीय कृषि (दीर्घकालीन क्रियाओ और* स्थिरीकरण) निधि के ससाधनो का भी प्रयोग करता है। जहाँ तक अल्पकालीन उधार एव पूजी आवश्यकताओ का सबध है, नेबार्ड रिजर्व बैंक पर निर्भर करता है। रिजर्व बैंक से हस्तातरित राशियो के अतिरिक्त नेबार्ड विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय विकास सस्था (International Development Association) से भी उनके द्वारा वित्त-प्रबन्ध को गई परियोजनाओ के कार्यान्वयन के लिए राशियाँ प्राप्त करता है।

नेबार्ड के कार्य

(*i*) *समन्वित ग्राम विकास को प्रोन्नत करने के लिए* नेबार्ड कृषि छोटे उद्योगो कुटीर तथा ग्राम उद्योगो, हस्तशिल्पो और ग्रामीण दस्तकारियो और अन्य सम्बन्धित क्रियाओ के सभी प्रकार के उत्पादन एव विनियोग के लिए पुनर्वित्त सस्थान के रूप मे कार्य करता है।

(*ii*) यह राज्यीय सहकारी बैंको (State Cooperative Banks), क्षेत्रीय ग्राम बैंको भूमि विकास बैंको एव रिजर्व बैंक द्वारा मान्यता प्राप्त वित्तीय सस्थानो को अल्पकालीन मध्यकालीन एव दीर्घकालीन उधार उपलब्ध कराता है।

(*iii*) यह राज्यीय सरकारो को (20 वर्ष की अवधि तक) दीर्घकालीन उधार देता है ताकि वे सहकारो उधार समितियो की हिस्सा-पूजी मे योगदान दे सके।

(*iv*) *यह केन्द्र सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त किसी भी* सस्थान को दीधकालीन उधार दे सकता है या कृषि एव ग्राम *विकास से सम्बन्धित किसी भी सस्थान की हिस्सा-पूजी* या प्रतिभूतियो मे विनियोग मे योगदान दे सकता है।

(*v*) इसे यह दायित्व सौंपा गया है कि यह केन्द्र एव राज्यीय सरकारो योजना आयोग और अन्य अखिल-भारतीय एव राज्यीय-स्तर के सस्थानो की उन क्रियाओ का समन्वय करें जो लघु-स्तर, कुटीर तथा ग्राम उद्योगो, ग्रामीण दस्तकारियो, पिछ्ड़े एव विकेन्द्रीकृत क्षेत्रो मे उद्योगो आदि के *विकास से सम्बन्धित हैं।*

(*vi*) इसे यह दायित्व सोपा गया है कि प्राथमिक सहकारी बैंको को छोडकर क्षेत्रीय ग्राम बैंको और सहकारी बैंको का निरीक्षण करे।

(*vii*) यह कृषि तथा ग्राम विकास मे अनुसधान को प्रोन्नत करने के लिए अनुसधान एव विकास-निधि भी रखता है।

नेबार्ड की कार्य प्रगति

नेबार्ड अपने विभिन्न कार्यों को भली प्रकार निभा रहा है। 1993-94 के दौरान इसने 3 990 करोड रुपए के ऋणो की स्वीकृति दी। ये ऋण बैंक दर से 3 प्रतिशत की नीची रियायती दर पर दिए जाते हैं। नए 20 सूत्री कायक्रम के आधीन कमजोर वर्गो का उधार की उपलब्धि सुनिश्चित करने के लिए नेबार्ड ने बैंको को इस बात के लिए बाध्य कर दिया कि वे अपने अल्पकालीन ऋणो का एक निश्चित प्रतिशत छोटे तथा सीमान्त किसानो और अन्य आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गो को उपलब्ध कराएँगे।

नेबार्ड ने मध्यमकालीन उधार क सम्बन्ध म रिजर्व बैंक द्वारा स्वीकृत कृषि उद्देश्यो के आधीन प्रतिपादित नीति की लगातार पालना की है। यह राज्यीय सरकारो को दीर्घकालीन ऋण देता है ताकि वे सहकारी उधार सस्थानो की हिस्सा-पूजी मे योगदान कर सक। 1993-94 के दौरान नेबार्ड ने 90 करोड रुपए के मध्यमकालान एव दीघकालान ऋण दिए।

माच 1994 के अन्त तक नबार्ड और कृषि पुनवित्त निगम ने मिलकर 1 09 470 स्कामो को स्वीकृति दी थी और इनके लिए 26 680 करोड रुपए की वित्तीय सहायता का वचन दिया था। जिन उद्देश्यो के लिए ऋण देने का प्रस्ताव है, उनमे उल्लेखनीय हैं–छोटी सिचाई, भूमि विकास, फार्म यन्त्रीकरण (Farm mechanisation), बागान, मुर्गी-पालन, भेड पालन, सूअर पालन मत्स्य, दुग्धशालाओ का विकास सग्रहण आदि। उद्देश्य अनुसार विवरण से पता चलता है नेबाड की ऋण योजनाओ म सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान छोटी सिचाई का है अर्थात् 1993-94 मे स्वीकृत राशि का 25 प्रतिशत। दूसरा नम्बर फार्म-यन्त्रीकरण का है।

नेबार्ड कम-विकसित बैंकिग की दृष्टि से अल्प-विकसित राज्यो अर्थात् उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान एव उडीसा मे इसी क्रम से अधिकाधिक लाभ पहुचा रहा है और इन राज्यो मे कृषि-क्षेत्र मे विनियोग को प्रोन्नत करने का भरसक प्रयास रहा है।

नेबार्ड ने देश मे सहकारी ढाचे का पुनर्गठन करने और इसे मजबूत बनाने का कार्य बडे उत्साह से करना आरम्भ कर दिया है। सहकारी समितियो का क्रमिक ढग से पुनर्गठन कर इनके भावी विकास और आयोजन के लिए नेबार्ड ने मार्गदर्शी सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं। नेबार्ड सहकारी साख सस्थानो के प्रभावी समन्वय का कार्य भी कर रहा है। इसी प्रकार रिजर्व बैंक के मूल सुझाव के अनुरूप यह अल्पकालीन एव मध्यमकालीन उधार में भी कार्यात्मक समन्वय का प्रयास कर रहा है। नेबार्ड 127 केन्द्रीय सहकारी बैंको के पुन स्थापन प्रोग्राम की लगातार समीक्षा करता रहता है इन बैंको की पहचान 'कमजोर' बैंको के रूप में की गई जिन्हे पुन स्थापित करने की आवश्यकता अनुभव की गई। इसी प्रकार नेबार्ड राज्यीय भूमि विकास बैंको और प्राथमिक भूमि विकास बैंको की व्यवस्था और प्रबन्धकीय कौशल को बढाने का प्रयास कर रहा है। अत नेबार्ड से बहुत सी आशाए बन्धी हैं कि यह कृषि उधार के माध्यम को बहुत मजबूत करके कृषि तथा ग्राम विकास को प्रोन्नत करेगा।

30

कृषि विपणन तथा भाण्डागार

(AGRICULTURAL MARKETING AND WAREHOUSING)

1. भारत में कृषि-विपणन की वर्तमान अवस्था

किसान अपने अतिरिक्त उत्पादन का कई प्रकार से विक्रय कर सकता है। सबसे पहला और सामान्य तरीका तो यह है कि किसान फालतू फसल ग्राम के साहूकार या महाजन एव व्यापारी को बेचता है। व्यापारी स्वय भी कृषि-उत्पादन क्रय कर सकता है या किसी बडी वाणिज्यिक फर्म या किसी बडे व्यापारी का अभिकर्त्ता (Agent) बनकर भी फसल खरीद सकता है। यह अनुमान लगाया गया है कि पजाब मे गेहू का 60 प्रतिशत, तिलहनो का 70 प्रतिशत और रूई का 35 प्रतिशत उत्पादन ग्राम मे ही बेचा जाता है।

भारतीय किसानो मे प्रचलित विक्रय की दूसरी प्रणाली के अनुसार किसान अपने उत्पादन को साप्ताहिक या अर्ध-साप्ताहिक ग्राम-बाजारो मे, जिन्हे 'हाट' कहते हैं, बेच देते हैं। इनके अतिरिक्त, धार्मिक उत्सवो के सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण ग्रामो या कस्बो मे मेले लगाए जाते हैं। किसान इन मेलो मे अपना उत्पादन और पशु लाते हैं और उन्हे वहा बेचते हैं।

कृषि-विपणन की तीसरी प्रणाली मे छोटे तथा बडे कस्बो मे मण्डियो मे क्रय-विक्रय किया जाता है। मण्डिया उत्पादन-केन्द्रो से कई मील दूर स्थित भी हो सकती हैं और परिणामत किसान को अपनी उपज मण्डी तक ले जाने के लिए विशेष प्रयास करना पडता है। मण्डियो मे दलालो द्वारा किसान अपनी फसल को आढतियो को बेचते हैं। ये आढतिए, जो थोक-व्यापारी होते हैं अपनी फसल या तो फुटकर विक्रेताओ (Retailers) को या आटे की मिलो या विधायन-इकाइयो (Processing units) को बेच देते हैं। उदाहरणतया, रूई के थोक विक्रेता इसे कपडा कारखानो को बेच देते हैं किन्तु खाद्यान्नो को आटे की मिलो या फुटकर *विक्रेताओ को बेचा जाता है।*

किसानो को उपलब्ध कृषि-विपणन सम्बन्धी मूल सुविधाए

कृषि-उत्पादन के विक्रय मे अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए किसान को कुछ मूल सुविधाओ की उपलब्धि आवश्यक है-

(क) उसके पास अपनी वस्तुओ को रखने के लिए गोदामो की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। (ख) उसमे कुछ समय के लिए रुक सकने की क्षमता होनी चाहिए जबकि वह उस समय की प्रतीक्षा कर सके जबकि वह अपने स्टॉक को अच्छे मूल्य पर बेच सके। यदि वह फसल कटने के बाद अपनी उपज को बेचेगा तो उसे कम कीमत ही प्राप्त होगी। (ग) उसके पास सस्ती परिवहन सुविधाए (Transport facilities) होनी चाहिए ताकि वह फसल को ग्राम मे ही साहूकार या महाजन-व्यापारी को न बेचकर मण्डी मे ले जा सके। (घ) उसे बाजार मे विद्यमान परिस्थितियो तथा प्रचलित मूल्यो के बारे मे पूर्ण सूचना होनी चाहिए, नहीं तो उसे *धोखा हो सकता है। व्यवस्थित* और विनियमित मण्डियो (Organised and regulated markets) का विकास होना चाहिए जहा किसान को दलाल और आढतिये लूट न सके। (ड) बिचौलियो (Intermediaries) की सख्या जितनी कम-से-कम हो सके, कर देनी चाहिए। इससे किसानो को अपनी फसल के बदले उचित मूल्य प्राप्त होगा।

कृषि-विपणन के दोष (Defects of Agricultural Marketing)

भारत मे कृषि विपणन की दशा बहुत ही बुरी है। किसान बहुत निर्धन एव अशिक्षित है। उसे अपनी उपज के क्रय-विक्रय के सम्बन्ध मे पूर्ण जानकारी भी उपलब्ध नहीं। सबसे पहले तो उसके पास अपनी उपज का सग्रह करने के लिए गोदामो की सुविधा उपलब्ध होनी चाहिए। गोदामो के रूप मे उपलब्ध सुविधाओ की यह हालत है कि ग्रामो मे 10 से 20 प्रतिशत उपज चूहो, चींटियो आदि द्वारा नष्ट कर दी जाती है।

दूसरे किसान इतना निर्धन और ऋणग्रस्त है कि वह अपने ऋणो का भुगतान करने के लिए अपनी उपज महाजन या व्यापारी को बेचने के लिए तैयार हो जाता है। इस प्रकार के बाध्य-विक्रय (Forced sale) के कारण औसत किसान की कमजोर *स्थिति और भी अधिक कमजोर हो जाती है।*

तीसरे, ग्रामीण क्षेत्रो मे परिवहन सुविधाए इतनी बुरी हैं

कि समृद्ध किसान भी जिसके पास काफी अतिरक्त (Surplus) उपलब्ध होता है, मण्डियो मे जाना नहीं चाहते। बहुत-सी सड़के कच्ची हैं जो बरसात के मौसम मे इस्तेमाल नहीं की जा सकतीं।

चौथे मण्डियो मे परिस्थितिया इतनी बुरी हैं कि किसान को मण्डियो मे जाकर काफी प्रतीक्षा करनी पडती है तब ही वह अपनी फसल को बेच पाता है। इसके अतिरिक्त, सौदा-प्रणाली ऐसी है कि इससे किसान को नुकसान ही होता है। किसान आढतिये को अपनी फसल बेचने के लिए दलाल की सहायता लेता है। दलाल और आढतिया खुले रूप से नहीं बल्कि गुप्त रूप से सौदा करते हैं। *दलाल आमतौर पर आढतिये से मिला होता है और* परिणामत जो कीमत तय की जाती है उससे किसान की अपेक्षा आढतिये को अधिक लाभ होता है। इसके अलावा माप और तौल के गलत बट्टो द्वारा किसान को लूटा जाता है और यह कहकर कि उसकी फसल घटिया किस्म की है, उसे कम मूल्य स्वीकार करने के लिए मजबूर किया जाता है। किसान को मण्डी मे हानि ही होती है।

पाचवे, किसान और अन्तिम उपभोक्ता के बीच बिचौलिया की सख्या बहुत अधिक है और इसलिए उपज का काफी भाग वे हडप कर जाते हैं।

छठे किसानो को बडी-बडी मण्डियो मे प्रचलित कीमतो के बारे म सूचना भी नही मिलती और न ही उन्हे प्रत्याशित बाजार परिस्थितियो और कीमतो सम्बधी जानकारी होती है। परिणामत किसानो को जो भी कीमत दलाल और आढतिये देने को तैयार हो जाए, स्वीकार करनी पडती है।

कृषि-विपणन (Agricultural Marketing) को उन्नत करने के उपाय

सरकार कृषि-विपणन की परिस्थितियो को उन्नत करने के बारे म जागरूक है और उसने उन्हे सुधारने के लिए कई उपाय किये हैं। अखिल भारतीय भाण्डागार निगम (All India Warehousing Corporation) की स्थापना की गई है जिसका उद्देश्य कस्बो तथा मण्डियो मे गोदाम कायम करना और उनका प्रबन्ध करना है। ग्रामो मे गोदामो की सख्या बढाने के लिए सहकारी समितियो को अनिवार्य वित्तीय एव तकनीकी सहायता दी जा रही है। किसानो को वित्तीय स्थिति उन्नत करने के लिए और उन्हे महाजनो के चंगुल से मुक्त कराने के लिए सहकारी साख समितियाँ उधार देती हैं। अत किसानो की उपज का क्रय-विक्रय करने के लिए सहकारी विपणन एव विधायन समितिया (Co operative marketing and processing societies) आरम्भ की गई हैं। ग्रामीण परिवहन को विकसित किया जा रहा है। विनियमित मण्डिया (Regulated markets) स्थापित की गयीं और इनमे किसानो के हितो की रक्षा के लिए कदम उठाए गये। अन्तिम, बाजार सम्बन्धी सूचना का प्रचार करने के लिए भी उपाय किए गए। खाद्यान्नो की कीमते सरकार द्वारा कृषि कीमत आयोग (Agricultural Prices Commission) की सिफारिशो के आधार पर निश्चित की जा रही हैं। सरकार भारतीय खाद्य निगम और भारतीय रूई निगम द्वारा एक बडे व्यापारी के रूप में कार्य कर रही है और कृषि-उत्पादन का क्रय-विक्रय करती है।

2 विनियमित मण्डियां
(Regulated Markets)

विनियमित मण्डियों का उद्देश्य किसान को आढतियो और दलालो के दोषपूर्ण व्यवहारो से मुक्त कराना है। इनके मुख्य लक्ष्य *अस्वस्थ बाजार व्यवहारो (Market practices)* को दूर करना, विपणन-दातव्य (Marketing charges) कम करना और किसान को उचित मूल्य का विश्वास दिलाना है। इन उद्देश्यो को दृष्टि मे रखकर सभी राज्यीय सरकारो ने विनियमित मण्डियो सम्बन्धी कानून बनाये हैं। 1951 मे भारत मे 200 से अधिक विनियमित मण्डिया थीं। द्वितीय योजना के अन्त तक (अर्थात् 1961 मे) 1,000 विनियमित मण्डिया कायम हो चुकी थीं। मार्च 1994 के अन्त तक देश में 6,800 से भी अधिक कृषि-मण्डिया विनियमित की गयीं।

विनियमित मडी के लक्षण (Features of a Regulated Market)

कानून के आधीन एक विनियमित मडी किसी विशिष्ट वस्तु या वस्तु-समूह के लिए चालू की जाती है। ऐसी मण्डी के प्रबन्ध के लिए एक मण्डी समिति (Market Committee) बनाई जाती है जिसमे राज्यीय सरकार, स्थानीय सस्थाओं (अर्थात् जिला बोर्ड) व्यापारियो, कमीशन एजेण्टो या दलालो और स्वय किसानो के प्रतिनिधि होते हैं। दूसरे शब्दो मे, मण्डी समिति म सभी प्रकार के हित सम्मिलित होते हैं। इस समिति को एक निश्चित अवधि के लिए सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है और इसे मण्डी के प्रबन्ध का कार्य सौंप दिया जाता है।

मण्डी समिति द्वारा, मण्डी म वसूल किए जाने वाले कमीशन भी निश्चित किये जाते हैं। मण्डी समिति इस बात का भी ध्यान रखती है कि कोइ दलाल न तो क्रेता की ओर से कार्य करे और न विक्रेता की ओर से। इस प्रकार किसान को दी जाने वाली कीमत मे से *अनधिकृत कटौतिया (Unauthorised deductions)* समाप्त हो जाती हैं। साथ

ही माप और तौल के सही बट्टो का प्रयोग भी अनिवार्य कर दिया जाता है। यह समिति सभी प्रकार की शिकायते सुनती है और उनका निर्णय भी करती है। झगडे की हालत मे, यह मध्यस्थ निर्णय (Arbitration) भी करती है।

विनियमित मण्डियो की प्रणाली को दलालो और कमीशन एजेण्टो की दोषपूर्ण प्रथाओ को हटाने और नये बाजार-व्यवहारो (Market Practices) की स्थापना के लिए बहुत लाभदायक समझा जाता है। इसके द्वारा किसानो को अपनी उपज के लिए उचित कीमते (Fair prices) प्राप्त करने के लिए सहायता मिलती है। देश मे मानकीकृत माप और तौल के बट्टो (Standardised weights and measures) का प्रयोग करने मे भी इनसे सहायता मिली है। *अत सरकार ने देश मे विद्यमान सभी मण्डियो को विनियमित मण्डियो मे बदल देने की नीति अपनाई है।*

विनियमित मण्डियो का विकास विशेष रूप मे ऐसे क्षेत्रो मे होना चाहिए जहा रूई, पटसन, तम्बाकू जैसी वाणिज्य फसलें और महत्त्वपूर्ण अपारम्परिक फसले उत्पन्न की जाती है और साप्ताहिक बाजारो या हाटो मे बेची जाती हैं। सहकारी विपणन एव वितरण और बैंक-प्रणाली को *विनियमित मण्डियो से जोडना होगा। इन मण्डियो का* कार्यक्षेत्र सभी मुख्य फसलो तक फैलाना होगा। पशुधन, मछलियो, फलो तथा सब्जियो के लिए अलग मण्डिया *कायम करनी होगी।*

विनियमित मण्डियो के उद्देश्य हैं (क) कृषि-वस्तुओं के उत्पादको को लाभपूर्ण कीमते प्राप्त हो सके, (ख) *उत्पादक और उपभोक्ता के बीच कीमत-प्रसार (Price* spread) को कम किया जा सके। (ग) व्यापारियो और कमीशन एजेटो के अकार्यात्मक लाभ कम किए जा सकें। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सरकार विनियमित विपणन प्रणाली का व्यापक एव तीव्र विकास करना चाहेगी।

3. सहकारी विपणन
(Co-operative Marketing)

1954 से पूर्व, सहकारी साख समितियो (Co operative Credit Societies) की अपेक्षा सहकारी विपणन समितिया पृथक् रूप मे स्थापित की गयीं। किन्तु 1954 तक, किसानो को उधार देने के लिए और अतिरिक्त उपज (Surplus produce) के क्रय-विक्रय के लिए बहु-उद्देशीय समितिया (Multi purpose societies) चालू की गयीं।

सहकारी विपणन समिति की कार्यविधि इस प्रकार है समिति के सदस्य अपनी अतिरिक्त उपज समिति को बेचने के लिए तैयार हो जाते हैं। जैसे ही वे समिति को उपज ला कर देते हैं, उन्हे अपनी कृषि क्रियाओ (Agricultural operations) को चलाने के लिए अग्रिम (Advance) दे दिया जाता है। समिति सभी सदस्यो की उपज को एकत्रित करती है और ग्राम के अन्य सदस्यो से भी, जो इसे अपनी उपज बेचना चाहते हैं, खरीद लेती है। यह फिर उपज का विधायन (Processing) कर मण्डी को बेच देती है। इस कारण बिचौलियो की कोई जरूरत नही रहती। यदि प्रचलित कीमते (Current prices) अनुकूल न हो और भविष्य मे कीमते बढने की आशा हो तो समिति वस्तु का स्टॉक एकत्र करने का निर्णय कर सकती है। जैसे ही उपज बेच दी जाती है, *समिति किसान को उपज की शेष कीमत* भी अदा कर देती है। विपणन समिति का एक महत्त्वपूर्ण *लक्षण यह है कि इसका प्रबन्ध वैतनिक कर्मचारियो (Paid staff) द्वारा किया जाता है। आमतौर पर किसी एक समिति* के आधीन कई ग्राम होते है। उसी हालत मे समिति प्रभावी और सफल हो सकती है।

सहकारी विपणन समितियों के लाभ

कुछ पश्चिमी देशो मे सहकारी विपणन बहुत ही सफल हुआ है। दुग्ध पदार्थो के सहकारी विपणन के लिए डेनमार्क विश्व मे प्रसिद्ध है। सहकारी आधार पर कृषि-विपणन (Agricultural marketing) के अनेक लाभ हैं। उनमे मुख्य ये है-

(1) विपणन समिति वैयक्तिक सौदाशक्ति (Individual bargaining) का प्रतिस्थापन सामूहिक सौदाशक्ति (Collective bargaining) द्वारा करती है। किसान स्वय निर्बल है परन्तु विपणन समिति बलवान होती है। (2) यह समिति किसानो को अग्रिम देती है और उन्हे अच्छी कीमतो की प्रतीक्षा करने के योग्य बनाती है, इसके अतिरिक्त, यह उन्हे उनकी *अन्य आवश्यकताओ के लिए* भी ऋण देती है। (3) समिति के अपने गोदाम और भाण्डागार (Warehouses)भी होते हैं। इस प्रकार यह चूहो, *चींटियो और नमी से खराब* हो जाने वाली फसल को बचाती है। (4) यह तेज और सस्ते परिवहन का प्रबन्ध भी करती है। कई बार तो यह अपने वाहनो की भी व्यवस्था करती है। (5) यह किसानो को वर्गीकृत और मानकीकृत (Graded and standardised) वस्तुओं के उत्पादन के लिए प्रोत्साहन देती है और उन्हे *अपनी उपज मे* मिलावट करने से रोकती है। (6) यह सभरण (Supply) की मात्रा का नियन्त्रण करती है और इस प्रकार कीमतो को प्रभावित करती है। (7) यह बहुत से बिचौलियो (Middlemen) को भी हटा देती है और इस प्रकार बहुत-सा लाभ उनकी *अपेक्षा किसान को प्राप्त होता है। (8) किसानो की उपज* को बेचने के अतिरिक्त यह उनको बीज, उर्वरक, उपकरण आदि जैसी अनिवार्य वस्तुए उपलब्ध कराती है। *अत*

सहकारी विपणन समिति ग्रामीण बाजार प्रणाली को पुन व्यवस्थित करने की सर्वोत्तम पद्धति है।

सहकारी विपणन में सुधार का क्षेत्र

सहकारी विपणन समितियो के विकास के लिये काफी बडा क्षेत्र उपलब्ध है। सर्वप्रथम, उच्चतर खेती (Better farming), वित्त और विपणन के समायोजन की आवश्यकता है। आज यह प्रयास किया जा रहा है कि ऐसी समितिया कायम की जाए जो इन तीनो सेवाओं को एक साथ उपलब्ध कराए।

दूसरे, विपणन समितियो को कृषि वस्तुओ के विधायन-कार्य को भी करना चाहिए। बहुत-सी वस्तुओ का यदि विक्रय से पहले विधायन कर लिया जाए, तो उनको अच्छी कीमतो पर बेचना आसान हो जाता है। रूई से बिनौले निकाल कर यदि दबा लिया जाए, तिलहनो से यदि तेल निकाल कर बेचा जाए, पटसन का विधायन कर यदि उसे गाँठो मे बाध लिया जाए आदि, तो इससे विपणन-कार्य सुविधाजनक हो जाता है।

तीसरे, सहकारी विपणन समितिया उपभोक्ताओ को प्रत्यक्ष रूप मे कृषि-उत्पादन बेच सकती हैं (जहा कहीं भी यह सम्भव हो) और इस प्रकार ये बिचौलियो और उनको दिए जाने वाले कमीशन से मुक्त हो सकती हैं।

चौथे, सहकारी विपणन समितियो को अपनी वस्तुओं के वर्गीकरण (Grading) के लिए मजबूर करना चाहिए। वर्गीकरण से न केवल समितियो को अपनी उपज के लिए अच्छी कीमतें प्राप्त करने मे सहायता मिलेगी बल्कि इनके द्वारा सदस्यो को अपने उत्पादन की किस्म उन्नत करने मे भी सहायता मिल सकती है।

पाचवे, सहकारी विपणन समितियो को ग्रामीण क्षेत्रो तथा मण्डियो में अपने गोदाम और भाण्डागार कायम करने के लिए भी सहायता देनी चाहिए। यह सरकार द्वारा अनुदान और अर्थसाहाय्य (Grants and subsidies) देकर भी किया जा सकता है या स्टेट बैंक या रिजर्व बैंक द्वारा सस्ती वित्त-व्यवस्था द्वारा भी हो सकता है।

छठे, सहकारी विपणन समितियो का कार्य-क्षेत्र बढाकर इनमे बहुत से ग्राम (यदि हो सके तो एक पूरी तहसील) शामिल कर लेने चाहिए ताकि ये किसानो के माल को अच्छी प्रकार क्रय-विक्रय कर सके। इस प्रकार समिति अपने प्रबन्ध कार्य के लिए योग्य व्यक्तियो को भी लगा सकती है।

सातवें, सहकारी विपणन समितियो के लिए कृषि-आदानो अर्थात् उर्वरको, बीजो, कृषि-मशीनरी और औजार, कीटनाशको आदि के क्रय-विक्रय का बहुत बडा क्षेत्र उपलब्ध है। देश मे कुल उर्वरक के वितरण का लगभग 47 प्रतिशत सहकारी विपणन समितियो द्वारा बेचा जाता है।

अन्तिम, सरकार को जब भी सम्भव एव अनिवार्य हो, सहकारी विपणन समितियो का प्रयोग करना चाहिए। उदाहरणार्थ, सरकार ने पहले ही खाद्यान्नो मे राजकीय व्यापार (State trading) चालू कर दिया है। राजकीय व्यापार निगम (State Trading Corporation) सरकारी विपणन समितियो से सीधे ही खाद्यान्न खरीद सकता है और व्यापार के अन्य मार्गो की उपेक्षा कर सकता है। इससे भी विपणन समितियो की स्थापना को प्रोत्साहन मिलेगा।

सहकारी विपणन की प्रगति

भारत सरकार और रिजर्व बैंक के सक्रिय प्रोत्साहन के आधीन सहकारी विपणन ने महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और बिहार मे भारी प्रगति की है। महाराष्ट्र और गुजरात की रूई विक्रय समितियाँ अपने सदस्यो के लिए रूई की धुनाई करती हैं और इस प्रकार उन्हे काफी लाभ पहुँचाती हैं। उत्तर प्रदेश और बिहार की गन्ना विपणन समितियाँ अपने सदस्यो के हितो की, चीनी कारखानो के विरुद्ध, रक्षा करती हैं और गन्ने की गुणवत्ता (Quality) को उन्नत करने मे सहायता करती हैं। वे धन राशि अग्रिम (Advance) के रूप मे देती हैं और ग्रामो मे कल्याणकारी क्रियाएँ भी चलाती हैं। इसके अतिरिक्त वे कारखानो को गन्ना उपलब्ध कराती हैं और बीजो तथा उर्वरको के क्रय के लिए वित्त उपलब्ध कराती हैं। महाराष्ट्र मे ऐसी समितियाँ हैं जो तम्बाकू, फलो, सब्जियो आदि के विक्रय मे विशेषज्ञता प्राप्त कर चुकी हैं। वे सदस्यो को उपज कमीशन के आधार पर बेचती हैं, परन्तु कुछ परिस्थितियो मे उपज का विधायन करती हैं और खादो और शुद्ध बीजो का सभरण करती हैं। अखिल भारतीय ग्राम साख सर्वेक्षण समिति की सिफारिशो के आधीन सहकारी विपणन और सहकारी उधार के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया गया। चौथी योजना को पूर्वसध्या पर लगभग 66 प्रतिशत कृषि उधार समितियो को विपणन समितियो से सम्बद्ध किया गया। शेष 34 प्रतिशत उधार समितियो को भी बाद मे विपणन समितियो के साथ जोड दिया गया।

सहकारी विपणन तन्त्र मे 6,000 से अधिक प्राथमिक विपणन समितियाँ कार्य कर रही थीं जिनमे से 3,500 विशेष वस्तु विपणन समितियाँ थीं। जिला स्तर पर 160 केन्द्रीय विपणन समितियाँ थीं। राज्यीय स्तर पर 29 शीर्ष समितियाँ (Apex Societies) और 25 विपणन फैडरेशन (Marketing federations) थे। अखिल भारतीय स्तर पर राष्ट्रीय कृषि-सहकारी विपणन सघ (National Agricultural Co operative Marketing

Federation—NAFED) कार्य कर रहा है। सहकारी विपणन के अतिरिक्त सहकारी विधायन (Co operative processing) भी काफी प्रगति कर रहा है। सहकारी विपणन समितियो ने 1972-73 मे 920 करोड रुपए की कृषि उपज का क्रय-विक्रय किया परन्तु इसकी मात्रा बढकर 1993-94 मे 7 500 करोड रुपए हो गई। पजाब महाराष्ट्र उत्तर प्रदेश और गुजरात मिलकर सहकारी समितियो द्वारा क्रय-विक्रय की गई कुल उपज के 75 प्रतिशत के लिए जिम्मेदार है। सहकारी समितियो द्वारा बेची गई कुल कृषि उपज मे खाद्यान्नो का भाग 50 प्रतिशत है। सहकारी समितियो को रूई और पटसन की वसूली मे रूई एव पटसन निगमो की ओर से अधिक कार्यभाग दिया जा रहा है। सहकारी समितियो ने उर्वरको और अन्य कृषि आदानो उन्नत बीजो कृषि मशीनरी एव कीटनाशको के वितरण मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि रिकाड की है।

सहकारी विधायन (Cooperative Processing)

सहकारी विधायन (Co-operative processing)—आज देश मे 2 500 कृषि सहकारी विधायन समितिया सहकारा क्षेत्र मे कार्य कर रही हैं। इनकी सख्या 1962 63 में केवल 326 थी। चीनी उद्योग मे सहकारी समितिया भारी कार्यभाग अदा करती हैं और चीनी के राष्ट्रीय उत्पादन के 58 प्रतिशत के लिए जिम्मेदार हैं।

देश मे अब 220 सहकारी चीनी कारखाने हैं जिन्हाने चीनी के उत्पादन म भारी कुशलता का परिचय दिया है। ये कारखाने चीनी प्राप्ति क्षमता उपयोग और उप-उत्पादो (Bye products) के प्रयोग मे सक्षम हैं। इन कारखानों ने शराब के कारखानो (Distilleries) कागज की मिलो और अलकोहल पर आधारित रासायनिक इकाइयो की स्थापना की है। इन कारखानो ने अपने आस-पास के इलाको मे ग्राम समाज के लिए समाजार्थिक सेवाएँ अर्थात् सिचाई सुविधाएँ, डेरी एव मुर्गी पालन क्रियाएँ, कृषि विस्तार एव शिक्षा सस्थाएँ और हस्पताल स्थापित किए हैं। वे औद्योगीकृत समाज के लिए त्वरक का कार्य भी करते हैं जिससे प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रूप मे ग्रामीण जनता के लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध कराए जा सके।

सहकारी सग्रहण (Co operative Storage)

कृषि सहकारी समितियो को अपने विभिन्न कार्यो के लिए गोदामो की आवश्यकता पडती है। सातवीं योजना मे सहकारी क्षेत्र मे 20 लाख टन की अतिरिक्त सग्रहण क्षमता कायम करने का लक्ष्य रखा गया किन्तु पहले तीन वर्षों म ही लक्ष्य से अधिक अर्थात 24 लाख टन की अतिरिक्त सग्रहण क्षमता कायम की गई। देश मे कार्य कर रही 46 000 प्राथमिक सहकारी समितियो और विभिन्न स्तर पर कार्य कर रही सहकारी विपणन समितियो के पास अपने गोदाम हैं। इस उपलब्धि का श्रेय विश्व बैंक तथा योरोपीय आर्थिक समुदाय (European Economic Community) द्वारा सहायता प्रदान की गई कई सहकारी सग्रहण परियोजनाओ के कार्यान्वयन को दिया जा सकता है। इस सम्बन्ध मे सहकारी समितियो द्वारा शीत गोदाम (Cold Storage)-विशेषकर आलुओ के लिए-का उल्लेख करना अनुचित न होगा। मार्च 1988 तक 6 लाख टन क्षमता के 216 शीत गोदाम कायम किए गए।

निष्कर्ष यह कि NAFED ने नाशवान वस्तुओं अर्थात् प्याज और आलुओ की बाजार कीमतो को मुख्य उत्पादन क्षेत्रो मे स्थिर रखने मे लाभदायक योगदान दिया है। इसके लिए या तो यह स्वय बाजार म महत्त्वपूर्ण रूप मे हस्तक्षेप करता है या कभी-कभी सरकार की एजेन्सी के रूप में कार्य करता है। NAFED फार्म उत्पादन के अन्त राज्यीय व्यापार एव निर्यात को प्रोन्नत करता है। यह प्याज, दालो, लाल मिर्च अदरक लहसन और बडी इलायची जैसी वस्तुओ का भिन्न-भिन्न देशो को निर्यात करता है। दालो मूगफली प्याज और आलुओ का निर्यात NAFED द्वारा ही किया जाता है। 1987-88 मे NAFED द्वारा 54 करोड रुपए का प्रत्यक्ष निर्यात किया गया। यह आधिक्य वाले क्षेत्रो से अभाव-ग्रस्त क्षेत्रो को अनिवार्य वस्तुओ को भेजता है ताकि उपभोग वस्तुओ की पूर्ति बढाई जा सके। 1987-88 के दौरान 180 करोड रुपए की वस्तुओ का NAFED द्वारा इस उद्देश्य के लिए व्यापार किया गया। उत्पादको एव उपभोक्ताओ दोनो की दृष्टि से NAFED बाजार क्रियाओ और बाजार कीमतो पर सद्प्रभाव डालता रहा है।

राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (National Co-operative Development Corporation) कृषि उपज एव अन्य अनुसूचित वस्तुओ के उत्पादन विधायन सग्रहण एव विपणन का कार्य सहकारी समितियो द्वारा कराता था। इस निगम ने अपने कार्यक्षेत्र का विस्तार करके इसमें सहकारी डेरी मुर्गीपालन मत्स्यपालन और छोटी वन उपज को शामिल कर लिया है जो कि मूलत समाज के कमजोर वर्गों को लाभ पहुँचाते हैं। 1962 मे स्थापना के पश्चात् इस निगम ने मार्च 1994 तक 2,500 करोड रुपए की वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई। यह निगम राष्ट्रीय स्तर पर सहकारी विपणन, भण्डार एव विधायन के लिए वित्तीय एव प्रोन्नति की प्रधान सस्था है। यह इन क्रियाओ के लिए बडे विस्तृत स्तर पर सहायता देता है।

4 सरकार और कृषि विपणन

सरकार द्वारा विपणन-सर्वेक्षणो के आधार पर कृषि वस्तुओ क क्रय विक्रय मे सुधार लाने के लिए किए गए उपाय निम्नलिखित हैं-

(i) सरकार ने कृषि वस्तुओ के वर्ग-विभाजन (Grading) तथा मानकीकरण (Standardisation) के लिए बहुत-सा कार्य किया है। कृषि उपज (वर्ग-विभाजन एव विपणन) अधिनियम के आधीन घी, आटा, अण्डे आदि वस्तुओ के लिए वर्ग-विभाजन केन्द्र स्थापित किए हैं। कृषि विपणन विभाग द्वारा वर्ग-विभाजित वस्तुओ पर 'AGMARK' की मुहर लगा दी जाती है। इस प्रकार इन वस्तुओ के बाजार का विस्तार होता है और उनके लिए अच्छी कीमत प्राप्त हो सकती हैं। नागपुर मे केन्द्रीय कोटि नियन्त्रण प्रयोगशाला (Central Quality Control Laboratory) कायम की गई है। इसी प्रकार देश के विभिन्न भागो मे आठ प्रादेशिक प्रयोगशालाएँ (Regional laboratories) कायम की गई हैं। इन सब प्रयोगशालाओ का उद्देश्य कृषि-वस्तुओ की किस्म एव शुद्धता का परीक्षण करना है। कोटि नियन्त्रण को अधिक मजबूत करने के लिए निरीक्षण को बढाया जा रहा है और वर्ग-विभाजन मे उन्नति की जा रही है।

(ii) कृषि-विपणन को सुधारने का एक महत्त्वपूर्ण उपाय देश भर मे विनियमित मण्डियाँ (Regulated markets) कायम करना है। अब देश मे 6,050 विनियमित मण्डियाँ कार्य कर रही हैं। विनियमित मण्डियो की स्थापना के फलस्वरूप मण्डियो में दोषपूर्ण व्यवहारो को दूर किया जा रहा है। यह अनुमान है कि कुल कृषि उपज के लगभग 70 प्रतिशत का क्रय-विक्रय इन्हीं मण्डियो मे होता है।

इस सम्बन्ध मे सरकार द्वारा देश भर मे माप और तोल के बट्टो का मानकीकरण (Standardisation) विशेषकर उल्लेखनीय है। सरकार ने देश मे प्रचलित विभिन्न प्रकार के माप और तौल के बट्टो को समाप्त कर, इनके स्थान पर मीट्रिक प्रणाली अपनाई है। इस प्रकार किसानो के साथ बट्टो के आधार पर होने वाला छल-कपट समाप्त हो गया है।

(iii) सरकार ने कस्बो तथा ग्रामो मे भाण्डागार सुविधाओं (Warehousing facilities) को भी उन्नत करने के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। 1957 मे कृषि उपजो मे सग्रहण तथा गोदामो एव भडारणो के परिचालन के लिए केन्द्रीय भाण्डागार निगम की स्थापना की गई। इसी उद्देश्य से विभिन्न राज्यो में राज्यीय भाण्डागार निगम (State Warehousing Corporations) स्थापित किए गए। आज भारतीय खाद्य निगम देश के विभिन्न भागो मे गोदामों के एक जाल का निर्माण कर रहा है।

(iv) किसानो मे कृषि सम्बन्धी सूचना के प्रसारण के लिए सरकार रेडियो तथा टेलीविजन का प्रयोग भी करती रही है। रेडियो तथा दूरदर्शन के प्रसारण में मुख्य वस्तुओ के दैनिक मूल्यो, स्टॉक तथा बाजार की गतिविधियो सम्बन्धी सूचना दी जाती है। बहुत से किसान इन प्रसारणो को सुनकर लाभ उठाते हैं।

सहकारी विपणन समितियों का संगठन

भारत सरकार ने बहु-उद्देश्य सहकारी समितियो के सगठन को प्रोत्साहन देने के लिए सक्रिय प्रोत्साहन दिया है और इस कार्य मे विशेष बल उधार एव विपणन पर ही रखा गया। प्राथमिक विपणन समितियो को केन्द्रीय विपणन समितिया और राज्यीय स्तर पर शिखर विपणन समितिया कायम करने के लिए प्रोत्साहन दिया गया। इसी प्रकार राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन सघ (NAFED) भी कायम किया गया। सरकार ने सहकारी विपणन समितियो और सघो को स्टेट बैंक आफ इडिया और अन्य राष्ट्रीयकृत बैंको के माध्यम से अधिक वित्तीय ससाधन उपलब्ध कराए।

इस सम्बन्ध में, राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम (NCDC) का उल्लेख करना उचित होगा जिसकी स्थापना भारत सरकार द्वारा 1965 मे की गयी ताकि वह सहकारी समितियो द्वारा कृषि-उपज के उत्पादन, ससाधन, भाण्डागार और विपणन के प्रोग्रामो का आयोजन कर सके और उन्हे प्रोत्साहन दे सके।

विशेष बोर्डों की स्थापना—भारत सरकार ने रबड, कॉफी, चाय, तम्बाकू, गरममसाले, नारियल, तिलहन और वनस्पति तेल आदि के बारे में विशिष्ट वस्तु-बोर्ड (Specialised commodity boards) स्थापित किए हैं। हाल ही के वर्षों म, राष्ट्रीय दुग्धशाला विकास बोर्ड ने न केवल 'आप्रेशन फ्लड' मे सहायता दी है बल्कि यह तेल और अन्य कृषि-वस्तुओं के विक्रय का कार्य भी कर रहा है।

भारत सरकार ने कुछ विशेष वस्तुओ जैसे चावल, दाले, पटसन, मोटे अनाज, रूई, तम्बाकू, तिलहन, गन्ना, सुपारी आदि के लिए बहुत सी विकास परिषदे भी कायम की हैं। भारत सरकार ने बहुत सी निर्यात प्रोन्नति परिषदे भी कायम की हैं जैसे काजू निर्यात प्रोन्नति परिषद और कृषि एव ससाधित खाद्य निर्यात विकास प्राधिकार (Agricultural and Processed Food Export Development Authority)।

5. भारत में भाण्डागार
(Warehousing in India)

भारत मे भाण्डागार सुविधाओ को विकसित करने के महत्त्व को बहुत समय पहले अनुभव कर लिया गया था। भाण्डागार सुविधाओ द्वारा एक ओर तो दोषपूर्ण सग्रहण से होने वाली हानि को कम किया जा सकता है और दूसरी ओर यह किसानो को उधार प्राप्त कराने के लिए एक सुविधाजनक उपकरण [illegible] है। कृषि-वित्त उपसमिति

(Agriculture Finance Sub-committee) ने 1945 मे और *ग्राम बैंक व्यवस्था जाच समिति (Rural Banking Enquiry Committee)* ने 1950 मे भारत म ग्रामाण वित्त प्रबन्ध के लिए भाण्डागार को प्रोन्नत करने की आवश्यकता पर बल दिया। भाण्डागार क क्षेत्र म सबस महत्त्वपूर्ण और विस्तृत रूप मे *अखिल भारत ग्राम उधार सर्वेक्षण समिति* (1954) की सिफारिश थी। इस समिति ने देश भर म भाण्डागारो के विकास करने के लिए एक प्राग्राम भी पश किया। समिति ने तीन स्तराय प्रणाला की सिफारिश की–(क) *राष्ट्राय स्तर पर भारताय खाद्य निगम* और केन्द्राय भाण्डागार निगम को अखिल भारताय महत्त्व क केन्द्रा पर भाण्डागार सुविधाएँ कायम करन का कार्य सौंपा गया (ख) राज्याय सरकारो का राज्य या जिला स्तर पर भाण्डागार *सुविधाएँ कायम करने और ग्राम स्तर पर सहकारी सुविधाएँ* कायम करने का दायित्व दिया गया। भारत सरकार न इस समिति की सिफारिशा को स्वाकार किया आर परिणामत 1956 म राष्ट्रीय सहकारी विकास एव भाण्डागार बाड और *1957 मे केन्द्रीय भाण्डागार निगम* (Central Warehousing Corporation) की स्थापना का। इसके पश्चात् सभी राज्यों मे राज्यीय भाण्डागार निगम (State Warehousing Corporations) स्थापित किए गए।

आज सावजनिक क्षेत्र म तीन मुख्य एजेन्सियाँ बड़ पैमाने पर गोदाम/भाण्डागार क्षमता (Warehousing capacity) स्थापित कर रही है। ये हैं–भारताय खाद्य निगम केन्द्रीय भाण्डागार निगम और राज्याय भाण्डागार निगम। भारतीय खाद्य निगम के अपने गादाम हैं और यह अन्य स्रोतो से भी किराए पर गोदाम लेता है। केन्द्राय भण्डागार निगम और राज्यीय भाण्डागार निगमा का मुख्य कार्य उचित स्थानो पर गोदाम कायम करना है और उनका कृषि उत्पाद उर्वरको आदि के *सग्रहण के लिए प्रयोग* करना है। सग्रहण क्षमता का ब्यौरा इस प्रकार है। 1960-61 मे भारत मे केवल 40 सामान्य भाण्डागार थे जिनकी क्षमता 1 लाख टन थी। 1993 94 तक सार्वजनिक क्षेत्र की तीनो इकाइयो द्वारा *322 लाख टन की भाण्डागार क्षमता* कायम की गयी।

इसके अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र को एजेन्सियो और सहकारी समितियो द्वारा कृषि उपज के लिए अपन गोदाम भी बनाए गए हैं। *सहकारी क्षेत्र की 1993 94 मे सग्रहण* क्षमता 131 लाख टन थी। जाहिर है कि भाण्डागार सुविधाओ का विस्तार किया जा रहा है और सार्वजनिक क्षेत्र तथा सहकारी क्षेत्र दोना ही इस दिशा मे प्रयत्नशाल हैं।

52 600 से अधिक प्राथमिक कृषि सहकारा समितिया और अधिकतर विपणन सहकारा समितिया द्वारा दश म अपने गोदाम कायम किए गए हैं जिनके लिए राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम ने धन उपलब्ध कराया।

भाण्डागारा के अतिरिक्त शीत गादाम भी है जिनके द्वारा नाशवान वस्तुआ जैसे प्याज आलू, फल सब्जिया मछली गोश्त दुग्ध पदार्थ आदि का आपद विक्रय (Distress sale) न करना पड। इस समय देश म कुल *2 970 शात भाण्डागार है जिनकी क्षमता लगभग 78 लाख* टन है। इनम से सहकारी शात भाण्डागारा की सख्या 243 है ओर इनकी क्षमता 7 लाख टन है।

आठवीं योजना क प्रोग्राम

आठवीं यानना क दौरान भारताय खाद्य निगम केन्द्रीय भाण्डागार निगम तथा राज्याय भाण्डागार निगमा द्वारा 14 *लाख टन की अतिरिक्त सग्रहण क्षमता कायम का जाएगी।* इसके अतिरिक्त उर्वरका और कृषि आदाना–पटसन रूई आदि के लिए 20 लाख टन का अतिरिक्त सग्रहण क्षमता स्थापित करन का प्राग्राम है। सहकारा क्षत्र म प्राथमिक *कृषि उधार समितिया एव विपणन समितिया द्वारा 21 लाख* टन की अतिरिक्त सग्रहण क्षमता कायम की जाएगी। कुल मिलाकर आठवीं यानना क अन्त तक अर्थात् 1996 97 तक 55 लाख टन अतिरिक्त सग्रहण क्षमता कायम करने का *प्राग्राम है। इसके अतिरिक्त 70 शीत गोदाम कायम किए* जाएँगे।

भाण्डागार रसीद के विरुद्ध अग्रिम (Advance against warehouse receipts)

भाण्डागारो के दो निश्चित भाग हैं–(1) गोदामो को बेहतर एव वैज्ञानिक सुविधा का उचित लागत पर उपलब्ध *कराना और (2) किसाना तथा व्यापारिया* को भाण्डागार की रसीद के रूप म एक सुविधाजनक साख पत्र उपलब्ध कराना ताकि वे बैंक से उधार ले सक। दोना लाभ महत्त्वपूर्ण हे परन्तु दूसरा पहले पर निर्भर करता है। दूसरे शब्दा म भाण्डागारा का काफी ग्राहक प्राप्त करने चाहिए ताकि वे गादामा की स्थानाय आवश्यकता की पूर्ति कर सक और स्थानीय जमाकर्त्ताआ (Local depositors) को सस्ते दामा पर यह सेवा उपलब्ध करा सके। परम्पराओ मे जकडे हुए किसानो एव व्यापारिया को भाण्डागार की इस नई पद्धति के लाभा से परिचित कराना होगा। खाद्यान्ना के अतिरिक्त इन गोदामा म गुड खापडा प्याज आदि के सग्रहण के लिए विशेष प्रबन्ध करना होगा।

दश म भाण्डागार के विकास का एक मुख्य उद्दश्य व्यापारिक बैंक से ऋण प्राप्त करने के लिए भाण्डागार की रसाद को साख पत्र (Instrument of cred t) क रूप म *इस्तमाल करना है। व्यापारिक बैंक उत्पादका एव व्यापारिया* को प्रतिभूतिया के आधार पर ऋण देने क लिए तैयार होते हैं [illegible] है कि रिजर्व बैंक को किसी

अनुसूचित बैंक के प्रोनोट (*Promissory note*) या किसी सरकारी बैंक के साख पत्र के विरुद्ध अग्रिम देने का अधिकार दिया जाए। भाण्डागार की स्थापना से वस्तुओ के बदले में ऐसे साख-पत्रो का निर्माण सम्भव है। इसी कारण तो भारत सरकार गोदाम सुविधाओं का तेजी से विकास कर रही है और भाण्डागार की रसीद को एक लोकप्रिय साख पत्र बना रही है। पिछले कुछ वर्षो मे भाण्डागारो की रसीदो के विरुद्ध अनुसूचित बैंको द्वारा दिए गए ऋणो मे काफी विस्तार हुआ है। सहकारी बैंक भी भाण्डागार रसीदो के विरुद्ध अग्रिम देते हैं चाहे इन अग्रिमो की मात्रा अभी महत्त्वपूर्ण नहीं है। यहाँ इस बात का उल्लेख करना अनुचित न होगा कि भाण्डागार रसीद अभी पूर्णतया परक्राम्य साख पत्र (Fully negotiable credit instrument) नहीं बन पाई।

अखिल भारतीय ग्राम-साख सर्वेक्षण समिति (*All India Rural Credit Survey Committee*) ने सिफारिश की थी कि सहकारी समितियो और भाण्डागारो की क्रियाओ मे तालमेल होना चाहिए। यह समझा जाता था कि भाण्डागार सुविधाओ से मुख्यत उत्पादको और सहकारी समितियो को लाभ होगा। चूकि किसान को विपणन समितियो के आधीन सगठित किया जा सकता है इसलिए भाण्डागार सुविधाओ का प्रयोग किसान केवल सहकारी विपणन समितियो द्वारा ही कर सकते हैं। किन्तु अभी इन्होने कृषि वस्तुओ के क्रय विक्रय का कार्य प्रभावी रूप मे करना आरम्भ नहीं किया और इस कारण वे भाण्डागार सुविधाओ का लाभ नहीं उठा रहीं।

31

सहकारिता और कृषि विकास
(CO-OPERATION AND AGRICULTURAL DEVELOPMENT)

भारत मे आयोजन के सस्थापक सहकारिता (Co operation) को दलित वर्गों के आर्थिक विकास विशेषकर ग्राम क्षेत्रो मे का एक उपाय समझते थे। वे ग्राम पचायत ग्राम सहकारी समिति और ग्राम स्कूल को ऐसे सस्थानो को त्रिमूर्ति समझते थे जिनके आधार पर एक आत्मनिर्भर आर्थिक एव सामाजिक दृष्टि से न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था कायम की जा सकती थी। सहकारी समितियो का शोषण रहित स्वरूप सदस्यता मे स्वेच्छा एक व्यक्ति एक वोट का सिद्धान्त अविकेन्द्रीकृत निर्णय पद्धति और लाभ पर आत्मरोपित नियन्त्रण कुछ ऐसे लक्षण है जो सहकारी समितियो मे निजी स्वामित्व और सार्वजनिक हित के गुणो का मिश्रण कर इन्हे विकास का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण बना सकते थे।

1 अल्पकालिक सहकारी उधार
(Short term Co operative Credit)

भारत मे सहकारी आन्दोलन का आरम्भ मुख्यत इसलिए किया गया कि किसानो को कृषि कार्यों के लिए अपेक्षित पूजी कम ब्याज दर पर उपलब्ध कराई जा सके और उन्हे महाजन के चगुल से मुक्त किया जा सके। अल्पकाल के लिए सहकारी उधार की व्यवस्था का सक्षेप मे निम्नलिखित ढग से सगठन किया गया है–

प्राथमिक उधार समिति (Primary Credit Society)–सहकारी उधार समिति जिसे सामान्यत *प्राथमिक कृषि उधार समिति* भी कहते है दस या अधिक व्यक्तियो से आरम्भ की जा सकती है। वे व्यक्ति साधारणतया एक ही गाँव के होने चाहिएँ। प्रत्येक हिस्से का मूल्य सामान्यत नाममात्र होता है ताकि गरीब से गरीब किसान भी समिति का सदस्य बन सके। सदस्यो का दायित्व असीमित (Unlimited liability) होता है जिसका तात्पर्य यह है कि समिति के विफल होने की अवस्था मे उसकी सम्पूर्ण हानि का प्रत्येक सदस्य पर पूर्ण उत्तरदायित्व रहता है। इसका अर्थ यह है कि समिति के सभी सदस्यो का परस्पर निकट परिचय होना चाहिए। समिति का प्रबन्ध एक निर्वाचित सस्था (Elected body) करती है जिसके अध्यक्ष सचिव और कोषाध्यक्ष रहते हैं। प्रबन्धमण्डल के सदस्य अवैतनिक (Honorary) होते हैं। केवल लेखाकार (Accountant) ही वेतनिक होता है वह भी उसी अवस्था मे जबकि समिति इतनी बडी हो कि उसके लिए पूर्णकालिक लेखाकार (Full time accountant) अपेक्षित हो। कृषि कार्यों के लिए अल्पकालिक ऋण सामान्यत एक वर्ष के लिए दिए जाते है जिनकी ब्याज दर कानून द्वारा लगभग 6 प्रतिशत नियत की गई है। लाभ को हिस्सेदारो मे लाभाश (Dividend) के रूप मे वितरित नहीं किया जाता उसका उपयोग कुआँ बनाने स्कूल की देखभाल करने आदि ग्राम कल्याणकारी कार्यों मे किया जाता है।

तालिका 1 प्राथमिक कृषि उधार समितियाँ

	1950 51	1960 61	1970 71	1994 95
समितियो की सख्या (हजारो मे)	106	212	161	88
वर्ष के दौरान दिए गए ऋण (करोड रुपए)	23	202	578	6 600
बकाया ऋण (करोड रुपए)	6	40	784	3 795

प्राथमिक उधार समितियो की उपयोगिता धीरे धीरे बढती जा रही है। 1950 51 मे इन्होने 23 करोड रुपए का उधार दिया। 1960 61 मे यह राशि बढकर 202 करोड रुपए, 1970 71 मे 578 करोड रुपए और 1994 95 मे 6 600 करोड रुपए हो गई। यह प्रगति चाहे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है परन्तु किसानो की वित्त सम्बन्धी माँग को दृष्टि मे रखते हुए पर्याप्त नहीं।

भारत सरकार और रिजर्व बैंक द्वारा प्राथमिक सहकारी समितियो के पुनर्गठन तथा पुनरुद्धार का प्रोग्राम चालू किया गया। यह प्रोग्राम राजस्थान उडीसा मध्य प्रदेश केरल तमिलनाडु और गुजरात मे पूरा किया गया है। अन्य राज्यो

मे इसमे विशेष प्रगति नहीं हुई। उदाहरणार्थ, समितियों की सख्या जो 1970-71 मे 1,61,000 थी, कम करके जून 1990 मे 88,000 कर दी गई है। आज भी सबल और पुन जीवीशक्ति प्राप्त समिति की सख्या 88,000 के करीब हो रही है।

भारतीय रिजर्व बैंक, राज्यीय सरकारो के सहयोग के साथ, कमजोर सहकारी बैंको को मजबूत बनाने और सहकारी विकास मे क्षेत्रीय असन्तुलन (Regional imbalance) कम करने के लिए बहुत से कदम उठाता रहा है। 1975-76 मे इन प्रयासो को और तीव्र किया गया ताकि कमजोर समितियाँ अपनी हानि अशोध्य ऋणो (Bad debts) और बकाया ऋणो को समाप्त कर सके। इसलिए कृषि पर राष्ट्रीय आयोग (National Commission on Agriculture) ने कृषक सेवा समितियो (Farmers Service Societies) के गठन की सिफारिश की है ताकि ये केवल उधार ही नहीं बल्कि सदस्यो को कृषि आदान (Agricultural inputs) और तकनीकी मार्गदशन दे सके जिससे वे बडी बहु-उद्देश्योय समितियाँ बना सकें।

सहकारी उधार प्रणाली द्वारा उन किसानो को, जो समिति के केन्द्र के नजदीक ही रहते हैं और जिनके बारे मे समिति को गहरी जानकारी प्राप्त होती है, ऋण दिया जाता है। परन्तु सहकारी समितियाँ सगठन और वित्त की दृष्टि से बहुत निर्बल हैं और व्यवहार मे, कृषि-क्षेत्र के लिए उधार उपलब्ध कराने के बारे में उनकी क्षमता सीमित है। अखिल भारतीय ग्राम ऋण पुनरवलोकन समिति ने प्राथमिक उधार समितियो की निम्नलिखित कमजोरियाँ बताई हैं-(i) सहकारी उधार अभी तक भी किसानो द्वारा लिए गए कुल उधार का एक थोडा-सा अनुपात ही है, (ii) काश्तकारो एव छोटे किसानो को अपनी आवश्यकताओ के लिए उधार प्राप्त करने मे कठिनाई होती है, (iii) अधिकाँश उधार समितियाँ कमजोर हैं और वे उत्पादन सम्बन्धी उधार की आवश्यकता को पूर्णतया सतुष्ट करने में असमर्थ हैं, (iv) प्रत्येक स्तर पर बकाया ऋण की मात्रा मे शोचनीय वृद्धि हो रही है जो सहकारी उधार सस्थाओ की विफलता को व्यक्त करती है, और (v) सहकारी समितियाँ उधार लेने वाले किसानो को पर्याप्त मात्रा मे उचित समय पर उधार उपलब्ध नहीं करा सकी हैं।

सहकारी केन्द्रीय बैंक (Co-operative Central Bank)—ये बैंक एक निर्दिष्ट क्षेत्र मे प्राथमिक उधार समितियो के सघ हैं जिनका कार्यक्षेत्र सामान्यत सम्पूर्ण जिला होता है। इसलिए इन्हे कभी-कभी जिला सहकारी बैंक भी कहते हैं। इन बैंको के हिस्सेदार कुछ निजी व्यक्ति होते हैं जो वित्त और प्रबन्ध दोनो की ही व्यवस्था करते हैं। सहकारी केन्द्रीय बैंको की निधि के तीन स्रोत हैं-उनकी अपनी हिस्सा-पूजी और रक्षित निधि (Reserve), जनता की जमा-राशि और स्टेट कोआपरेटिव बैंक से मिले ऋण। इनका मुख्य कार्य ग्राम प्राथमिक समितियो को ऋण देना है किन्तु इनसे यह आशा की गई थी कि ये सामान्य जनता को जमा (Public deposit) को आकर्षित कर सकेगे। पर यह आशा सिद्ध नहीं हुई है। अधिकाँश केन्द्रीय सहकारी बैंक राज्यीय सहकारी बैंक और प्राथमिक उधार समितियो के मध्य अन्तर्वर्ती का कार्य करते हैं। रिजर्व बैंक ने कमजोर सहकारी बैंको को पुन स्थापित करने की एक योजना बनाई। केन्द्रीय सहकारी बैंको की स्थिति तालिका 2 मे दी गई है।

तालिका 2 **केन्द्रीय सहकारी बैंक**

	1950-51	1960-61	1970-71	1990-91
सख्या	505	390	341	353
विलम्बित बकाया ऋण (करोड रुपए)	83	350	894	18 177

राज्यीय सहकारी बैंक (State Co-operative Banks)—यह बैंक, जिसे शीर्ष बैंक (Apex Bank) भी कहा जाता है, प्रत्येक राज्य मे सहकारी उधार सरचना (*Credit structure*) का शीर्ष होता है। यह बैंक राज्य के केन्द्रीय सहकारी बैंको को धन देता है और उनके कार्य का नियन्त्रण करता है। यह रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया से उधार लेता है और उसके तथा केन्द्रीय सहकारी बैंको और ग्राम प्राथमिक समितियो के बीच कडी के रूप मे काम करता है। राज्यीय सहकारी बैंक कवल सहकारी उधार आन्दोलन को ही सहायता नहीं देता अपितु अन्य सहकारी उद्यमो (Co-operative enterprises) और प्रवृत्तियो को भी प्रोत्साहन देता है। तालिका 3 मे राज्यीय सहकारी बैंको की स्थिति दी गई है।

तालिका 3 **राज्यीय सहकारी बैंक**

	1950 51	1960-61	1970-71	1990-91
सख्या	15	21	25	28
दिए गए ऋण (करोड रुपए)	42	258	748	11,572

सहकारी उधार का सबसे असतोषजनक पहलू सरकारी उधार सस्थानो के भारी बकाया ऋण (Overdues) हैं। रिजर्व बैंक द्वारा नियुक्त अध्ययन दल (Study Team) (1974) ने अपनी रिपोर्ट मे साफ कहा-"सहकारी

समितियो मे बकाया ऋणो के विद्यमान होने का मुख्य कारण मनोबल का अभाव और काश्तकारो मे अनुशासन की कमी है। सहकारी समितियो द्वारा दोषपूर्ण उधार नीति अपनाना, गैर-जिम्मेदार सदस्यो के विरुद्ध तेजी से कार्यवाही करने के सम्बन्ध मे प्रबन्धको द्वारा ढील और उचित वातावरण का अभाव इस परिस्थिति को बढाने वाले अन्य कारणतत्व है।" यह बडी असतोषजनक बात है कि कुल बकाया ऋणो (Outstanding loans) मे विलम्बित ऋणो (Loans overdue) की मात्रा भारत मे 42 प्रतिशत है। यह अनुपात तमिलनाडू मे 23 प्रतिशत से लेकर बिहार मे 77 प्रतिशत तक है।

हाल ही के वर्षो मे किसान सगठित होते जा रहे है और किसान सघो की एक मुख्य माग यह है कि सहकारी समितियो एव बैको को बकाया ऋण रद्द कर देने चाहिएँ। कुछ राज्यो द्वारा इन ऋणो को रद्द कर देना एक शोचनीय बात है। इससे एक अवाछनीय उदाहरण कायम हो जाता है और भविष्य मे ऋणो की वसूली और कठिन बन जाएगी। अत सहकारिता के विकास मे विलम्बित ऋणो की वसूली एक गम्भीर रुकावट है।

विलम्बित ऋणो (Loan overdues) के साथ सम्बन्धित एक समस्या यह है कि सहकारी समितियो द्वारा दिए गए कृषि-उधार की वृद्धि-दर हाल ही के वर्षों मे मन्द हो गई है। उधार के प्रवाह मे इस अवरोध का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण बढते हुए विलम्बित-ऋण है जो उधार के पुन प्रयोग (Credit recycling) की प्रक्रिया के मार्ग मे रुकावट बन जाते है।

सहकारी उधार की अन्य कमजोरियाँ

उधार सहकारिता (Credit co operation) की दूसरी कमजोरी यह है कि काश्तकार फसल-सहभाजक (Share croppers) भूमिहीन कृषि मजदूर और देहातो मे काम करने वाले दस्तकार जो बहुत गरीब है और जिन्हे उधार की अत्यन्त आवश्यकता है को इन वर्षों मे कुल उधार का केवल 3 से 5 प्रतिशत भाग ही प्राप्त होता है। छोटे और सीमात किसानो को कुल उधार का अपेक्षाकृत अधिक भाग अर्थात् 35 प्रतिशत प्राप्त होता है। परन्तु चूकि ये किसान अपने आदानो ((Inputs) की खरीद के लिए मुख्यत उधार पर निर्भर होते है, उनकी उपलब्ध उधार की मात्रा अभी भी नाकाफी है। दूसरे शब्दो मे चाहे ग्राम समुदाय मे कमजोर वर्गों के भाग मे लगातार वृद्धि हुई है और यह अब लगभग कुल का 40 प्रतिशत हो गया है, यह भाग उसकी अनिवार्य उत्पादन सम्बन्धी आवश्यकताओ के लिए पर्याप्त नही है।

विभिन्न राज्यो मे सहकारिता के लाभो के असमान वितरण की समस्या बनी रहेगी। उदाहरणार्थ, 1976-77 मे प्रति सदस्य दिए गए ऋणो की अखिल भारतीय **औसत 278** रुपए थी और इसके विरुद्ध गुजरात मे यह राशि 769 **रुपए**, हरियाणा मे 777 रुपए और पजाब मे 479 रुपए तक ऊची थी परन्तु पश्चिमी बगाल मे यह 178 रुपए, उत्तर प्रदेश मे 169 रुपए और उडीसा मे 114 रुपये तक नीची थी। यह परिस्थिति अभी भी बनी हुई है। उधार उपलब्ध कराने मे क्षेत्रीय असमानताओ मे काफी अन्तर होने के अतिरिक्त, सहकारी समितियाँ अधिकतर जनजातीय एव पहाडी क्षेत्रो मे उत्पादक ऋणो और विनियोग के प्रवाह को बढाने मे सफल नही हुई हैं।

यदि एक और दृष्टि से देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि प्रति हैक्टेयर कृषि-आधीन क्षेत्र के आधार पर औसत ऋण केवल 5 राज्यो अर्थात् गुजरात हरियाणा, केरल, पजाब और तमिलनाडू मे अखिल भारतीय औसत (65 रुपए प्रति हैक्टेयर) के दुगुने से अधिक है। सहकारिता के विकास मे एक मुख्य कठिनाई विलम्बित ऋणो की निरन्तर समस्या है जिसका समाधान करना होगा। चाहे अब सहकारी समितियाँ लगभग सारे ग्राम-भारत मे फैली हुई हैं, परन्तु इनकी सदस्यता कुल ग्रामीण परिवारो के लगभग 45 प्रतिशत के बराबर है और कृषि श्रमिको और ग्राम-शिल्पियो का भाग कुल सदस्यता मे 10 प्रतिशत है। ग्राम-समुदाय के सबसे कमजोर वर्गों को अभी भी कुल सदस्यता मे पर्याप्त प्रतिनिधित्व नही मिला है।

अन्तिम विश्लेषण मे सहकारी समितियो के निष्पादन की सबसे बडी कमजोरी जो इन समितियो की बुराइयो की जड मे है, प्रबन्ध का क्षेत्र है। बहुत वर्षों से सहकारी क्षेत्र मे उचित मानव-शक्ति विकास की आवश्यकता के बारे मे बहुत चर्चा होती रही है। इसमे भी विशेष प्रगति नही हुई। स्वय सहकारी समितियो ने इस समस्या की ओर विशेष ध्यान नही दिया है।

2. दीर्घकालीन सहकारी उधार–भूमि विकास बैंक

परम्परा से किसान की दीर्घकालीन ऋण की आवश्यकताएँ साहूकार पूरी करता आया है किन्तु बाद मे राज्य सरकार और सहकारी उधार बैक आदि अन्य अभिकरणो ने भी उसकी इन आवश्यकताओ को पूरा करना शुरू किया। किन्तु ये अभिकरण (Agencies) किसी-न-किसी रूप मे दोषपूर्ण सिद्ध हुए। अत एक ऐसी सस्था की आवश्यकता अनुभव की गई जो किसानो को उचित ब्याज-दर पर दीर्घकालीन ऋण दे सके और उन ऋणो को कई वर्षों मे या वार्षिक या अर्द्धवार्षिक किस्तो मे चुकाने की छूट हो।

बन्धक बैंको की स्थापना का वास्तविक आरम्भ मद्रास मे हुआ, जबकि इस राज्य ने ऋण-पात्रो (Debentures) को जारी करने का केन्द्रीयकरण करने और राज्य के प्राथमिक बैंको को समन्वित करने के लिए 1929 मे केन्द्रीय भूमि बन्धक बैंक (Central Land Mortgage Bank) की स्थापना की। भूमि बन्धक बैंको की प्रगति बहुत धीमी और विषम रही है। महामदी के दौरान भूमि-बन्धक बैंका को कुछ उत्तेजन प्राप्त हुआ, क्योंकि उस समय कृषि कीमतो के काफी गिर जाने के कारण किसानो को वित्तीय सहायता की आवश्यकता आ पड़ी। किन्तु द्वितीय महायुद्ध आरम्भ होने पर किसान काफी समृद्ध हो गए और उन्होने भूमि-बन्धक बैंको के ऋण चुकता कर दिए। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद, भूमि-बन्धक बैंक पुन काफी प्रगति करते जा रहे हैं। फिर भी इस बात का ध्यान रखना होगा कि भूमि-बन्धक बैंको की जो कुछ प्रगति हुई है, वह आन्ध्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात राज्यो तक ही सीमित है। प्राथमिक भूमि विकास बैंको की सख्या जो 1950-51 मे 286 थी, बढकर 1994-95 मे 1,850 हो गइ और केन्द्रीय (या राज्यीय) भूमि विकास बैंको (Land development banks) की सख्या इसी समय के दौरान 5 से बढकर 19 हो गई। भूमि विकास बैंको द्वारा दिए कुल ऋणो की मात्रा 1994-95 मे बढकर 2,500 करोड रुपए हो गई और बकाया ऋणो की मात्रा 4,000 करोड रुपए हो गई।

भूमि विकास बैंको की संरचना

दीर्घकालिक उधार सरचना (Long term credit structure) का निर्माण केन्द्रीय भूमि-विकास बैंको (सामान्यत प्रत्येक राज्य के लिए एक बैंक) और प्राथमिक भूमि-विकास बैंको से हुआ है। कुछ राज्यो म प्राथमिक भूमि-विकास बैंक नहीं है, किन्तु उनके स्थान पर केन्द्रीय भूमि विकास बैंको की शाखाएँ हैं।

भूमि-विकास बैंक हिस्सा पूजी, रक्षित निधि जमा और बाण्ड या ऋण-पत्र के निगमन से अपनी निधि उपलब्ध करते हैं। इनमे बाड और ऋण-पत्र सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। केन्द्रीय विकास बैंक द्वारा जारी किए गए ऋण-पत्र दीर्घकालिक ऋण होते हैं जिनकी ब्याज और अवधि नियत होते हैं। सामान्यत इन ऋणो की अवधि 20 वष तक होती है। ब्याज की अदायगी तथा मूलधन की चुकती के सम्बन्ध में राज्य सरकारें इन ऋण-पत्रो की गारटी देती हैं। सहकारी बैंक, वाणिज्यिक बैंक, स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया और रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ऋण-पत्रो को खरीदते हैं। साधारण ऋण-पत्रा (Ordinary debentures) के अतिरिक्त, भूमि-विकास बैंक 7 वष तक की अवधि वाले ग्राम ऋण-पत्र (Rural debentures) 1957 के बाद से प्रकाशित कर रहे हैं जिन्हे किसान, पचायते और रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया खरीदते हैं। हाल ही के वर्षो मे कृषि तथा ग्राम विकास के लिए राष्ट्रीय बैंक (नेबार्ड) ने सहकारी समितियो और विकास बैंको को काफी पुनवित्त सुविधाएँ (Refinance facilities) प्रदान की हैं जिनके कारण इन बैंको को अपने उधार का विस्तार करने मे बडी सहायता प्राप्त हुई है।

भूमि-विकास बैंको के वित्तीय कार्य

भूमि विकास बैंको का मुख्य कार्य कृषि-सम्पत्ति की प्रतिभूति (Security) पर ऋण देना है। चूकि ये बैंक दीर्घावधि ऋण देते हैं, प्रतिभूति के विषय मे कठोर नियम बनाए गए हैं। साधारणतया ये बैंक प्रतिभूति के मूल्य के 50 प्रतिशत तक ऋण देते हैं। बन्धक रखी जाने वाली भूमि का मूल्याकन (Evaluation) करने के लिए ये उन दक्ष लोगो को नियुक्त करते हैं, जो स्थानिक दशाओं के जानकार होते हैं। भूमि का मूल्य निधारित करते समय प्रदत्त भूमि-कर (Land tax paid), भूमि का भाटक मूल्य (Rental value of land), भूमि से सकल और शुद्ध आय (Gross and net income) तथा भूमि का विक्रय-मूल्य आदि बहुत-सी बाते ही ध्यान मे नहीं रखते बल्कि इस बात का विचार भी करते हैं कि ऋण-प्रार्थी की ऋण चुकाने की क्षमता कितनी है। भूमि-विकास बैंक 9 प्रतिशत की नीची ब्याज दर पर ऋण देता है ताकि जरूरतमन्द किसान दीर्घकाल के लिए धन प्राप्त कर सके।

भूमि-विकास बैंक बहुत से उद्देश्यो के लिए उधार उपलब्ध कराते हैं जिनमे ऋणो की वापसी, भूमि का सुधार, महगे कृषि औजारो की खरीद, कुएँ या डीजल पम्प लगाने आदि के उद्देश्य शामिल हैं। एक समय था, जब पुराने ऋणो का परिशोधन (Redemption of old debts) इन बैंको का सबसे महत्त्वपूर्ण और एक दृष्टि से एकमात्र उद्देश्य समझा जाता था। किन्तु हाल ही के वर्षों मे, किसान भूमि-विकास बैंको से मुख्यत भूमि के सुधार और उन्नति के लिए ही ऋण लेते हैं जिनम कुएँ लगाने के लिए (56 प्रतिशत) और कृषि मशीनरी के लिए (30 प्रतिशत) उधार शामिल है।

भूमि विकास बैंको की समस्याएँ

कुछ राज्यो को छोडकर भारत मे अभी भूमि विकास बैंक मजबूती से पनप नहीं पाए हैं। फिर भी, इन बैंको ने कृषि विकास के लिए लगभग 2,780 करोड रुपए का उधार दिया है जिसमे से 70 प्रतिशत का प्रयोग छोटी सिचाई के विकास के लिए हुआ है। 1990-91 मे भूमि विकास बैंको द्वारा दिए गए उधार की मात्रा 3,755 करोड रुपए हो गई। इन बैंको की लगभग 1,487 शाखाएँ हैं जो कि तहसील या ब्लाक स्तर पर मुख्यत स्थित हैं और इनके 139 लाख सदस्य हैं। इनके सभी ऋण उत्पादक उद्देश्यो के लिए और

(i) **सहकारी क्रय और विक्रय समितियाँ**–ये समितियाँ बीज, खाद, उपकरणो और मशीनो आदि के क्रय और सदस्यो की कृषि-उपज के विक्रय का काम करती हैं।

(ii) *सहकारी विपणन समितियाँ* **(Co-operative Marketing Societies)**–इनका काम किसानो की उपज के अतिरेक का विक्रय करना है।

(iii) चकबन्दी समितियाँ **(Consolidation Societies)**–इनका कार्य अपने सदस्यो को, उनके छोटे-छोटे परिवार और बिखरे खेतो का एकीकरण करने मे सहायता देना है। वस्तुत ये समितियाँ अधिकारियो को चकबन्दी के काम मे सहायता देती हैं।

(iv) **उन्नत कृषि समितियाँ**–ये किसानो को खेती के उन्नत तरीके और पद्धतियाँ अपनाने मे सहायता करती हैं।

गाँवो मे अन्य साख-भिन्न समितियो मे भूमि-पुनरुद्धार समितियो (*Land Reclamation Societies*), फसल रक्षा समिति, पशु अभिजनन समितियो (Cattle Breeding Societies) और सहकारी खेती समिति आदि का समावेश है। भारत मे साख-भिन्न सहकारी समितियाँ, साख समितियो के बराबर विकास नहीं कर सकीं। इसका मुख्य कारण यह है कि साख-भिन्न समितियो के लिए अपेक्षाकृत अधिक शिक्षा और उच्च प्रशिक्षण की अपेक्षा होती है जिसका हमार देश मे अभाव है। इसके अलावा एक कारण यह भी है कि साख समितियो ने साख-भिन्न समितियो के बहुत से कार्य, जैसे क्रय और विक्रय, उन्नत खेती आदि स्वय करने आरम्भ कर दिए। वर्तमान प्रवृत्ति यह है कि एक उद्देश्य वाली सहकारी समिति को बहु-उद्देश्यीय सहकारी समिति (Multipurpose co-operative society) मे बदल दिया जाना चाहिए ताकि यह साख और साख-भिन्न दोनो प्रकार के कार्य कर सके।

(v) **विनिर्माण एव विधायन समितियाँ (Manufacturing and Processing Societies)**–सहकारी क्षेत्र अब काफी प्रगति कर गया है और यह चीनी, तिलहनो, फलो एव सब्जियो, रेशम उत्पादन, सूत कातने, दुग्धशालाओ, मुर्गीपालन, मत्स्यपालन आदि का विनिमाण एव विधायन करने लगा है। 1990-91 के दौरान, 225 सहकारी चीनी कारखानो मे 715 लाख टन गन्ना पेरा गया और 73 लाख टन चीनी उत्पन्न की गई। यह बडे गर्व की बात है कि सहकारी समितियो द्वारा चीनी का उत्पादन देश में उत्पन्न की गई कुल चीनी के लगभग आधे के समान था। यह बात भी सराहनीय है कि इन कारखानो की उपयोग क्षमता 123 प्रतिशत है।

(vi) **परचून उचित मूल्य विपणन**–1990-91 तक देश भर में फैली हुई एक अध सरचना (Infrastructure) तैयार की गई है जिसम 21,490 प्राथमिक उपभोक्ता सहकारी समितियाँ, 627 केन्द्रीय उपभोक्ता सहकारी स्टोर (जिनके साथ 4,500 शाखाएँ एव विभागीय भण्डार हैं), 30 राज्यीय स्तर के उपभोक्ता सहकारी फेडरशन और राष्ट्रीय उपभोक्ता सहकारी फेडरशन शामिल हैं।

साख-भिन्न सहकारी समितियो का विकास उस सीमा तक नहीं हुआ जिस सीमा तक साख-समितियाँ विकसित हो सकीं। इसका मुख्य कारण यह है कि इनके लिए उच्चतर शिक्षा और श्रेष्ठ प्रशिक्षण की जरूरत है जो भारत मे उपलब्ध नहीं था। इसके अतिरिक्त, स्वय साख समितियो ने बहुत से साख-भिन्न कार्य अथात् क्रय एव विक्रय, बेहतर खेती आदि करने आरम्भ कर दिए। किन्तु वर्तमान प्रवृत्ति यह है कि एक-उद्देश्य समितियो को बहु-उद्देश्य समितियों मे परिवर्तित किया जा रहा है ताकि वे साख एव साख-भिन्न दोनो कार्य कर सके।

4. सहकारी आन्दोलन की उपलब्धियाँ

सहकारी आन्दोलन को आरम्भ हुए लगभग 90 वर्ष हो चुके हैं। सहकारी आन्दोलन के आलोचको के मत मे यह आन्दोलन न ग्रामीण जनता की दरिद्रता हो मिटा पाया है और न ही इसके परिणामस्वरूप कृषि-उत्पादन मे वृद्धि, उन्नत विपणन दशाएँ, उन्नत जीवन-स्तर आदि प्राप्त हुए हैं। साहूकारो को सर्वथा समाप्त करना तो दर किनार, यह उनके प्रभाव को कम भी नहीं कर सका है। सहकारी आन्दोलन की पूर्ण विफलता का सकेत इसी तथ्य से हो जाता है कि सन् 1954 तक (अपने अस्तित्व के ठीक 50 वर्ष के पश्चात्) सहकारी उधार समितियाँ किसानो की कुल आवश्यकताओ का तीन प्रतिशत से कुछ ही अधिक ऋण उपलब्ध करा सकी थीं। किन्तु फिर भी यह धारणा बना लेना कि आन्दोलन सर्वथा विफल रहा और इस लिए इसे समाप्त कर देना चाहिए, युक्तियुक्त नहीं। सहकारी आन्दोलन का सर्वोत्तम मूल्याकन करते हुए अखिल भारतीय ग्राम साख सर्वेक्षण समिति ने 1954 मे कहा था, **''सहकारिता विफल रही है किन्तु सहकारिता को अवश्य ही सफल बनाना होगा।''** यह सच है कि 1954 से पहले तक सहकारी आन्दोलन अधिक सफल नहीं हुआ किन्तु उसके बाद से, सरकार और रिजर्व बैंक के सक्रिय योगदान के कारण, इसने बहुत अधिक प्रगति की है।

सहकारी आन्दोलन से प्राप्त लाभ

सहकारी समितियो का पहला लाभ यह है कि इससे किसानो को लगभग 6 प्रतिशत (या इससे कुछ अधिक) की

सस्ती दर पर ऋण उपलब्ध होता रहा। सन् 1954 मे सहकारी साख समितियाँ किसानो की आवश्यकताओ को अधिकाधिक पूर्ण करती आ रही हैं। गाँवो मे साहूकारो का एकाधिकार भग होता जा रहा है। एक समय ऐसा था जब साहूकारो से किसानो की 70 प्रतिशत ऋण आवश्यकताएँ पूरी हुआ करती थीं किन्तु अब ये उनकी 50 प्रतिशत से भी कम आवश्यकताएँ पूरी करते है। 1990-91 मे सहकारी समितियो द्वारा कुल कृषि ऋणो का 43 3 प्रतिशत उपलब्ध कराया गया। अत एक समय ऐसा आएगा, जबकि सहकारी साख-समितियाँ इतनी महत्त्वपूर्ण हो जाएँगी कि ग्राम वित्त के क्षेत्र मे साहूकार का कोई स्थान ही नहीं रहेगा।

दूसरे सहकारी समितियो ने खेती के उन्नत तरीको के प्रयोग मे भी सहायता दी है। विपणन और विधायन समितियो ने किसानो को अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ सस्ते भावो पर खरीदने और कृषि उपज को अच्छे भावो पर बेचने मे सहायता दी है। इससे किसानो को भण्डार सुविधाएँ (Warehouse facilities) मिली हैं।

तीसरे आवास सहकारी समितियो उपभोक्ता सहकारी समितियो आदि साख-भिन्न समितियो ने अपने सदस्यो की आर्थिक स्थिति सुधारने मे सहायता दी है और उन्हे शक्ति-प्राप्त वर्गों के शोषण से बचाया है। उदाहरणतया, बहुत से शहरी क्षेत्रो मे आवास-समितियो ने मध्यम आय वर्ग के लोगो को जमीन प्राप्त करने और मकान बनाने मे सहायता दी है। उपभोक्ता सहकारी समितियो ने न्यून वस्तुओ को समान और उचित भाव पर उपलब्ध कराके दुकानदारो को मनमानी कीमतें वसूल करने से रोका है। इसी प्रकार हाथ-करघा बुनकरो आदि शिल्पियो की सहायता के उद्देश्य से बनी समितियो अपने सदस्यो को वित्त और विपणन की सुविधाएँ प्रदान की हैं।

भारत मे सहकारी आन्दोलन विश्व मे सबसे बडा है। देश मे 3 5 लाख सहकारी समितियाँ हैं जिनकी सदस्यता 17 5 करोड हैं और कार्यकारी पूजी 76 000 करोड रुपये है। सहकारी समितियो के कुल सदस्यो के 50 प्रतिशत से कुछ अधिक सदस्य प्राथमिक कृषि उधार समिदियो के सदस्य हैं। सहकारी आन्दोलन अधिकतर ग्रामो पर आधारित हैं। सहकारी समितियाँ कृषि उत्पादन के विकास का प्रधान ढाँचा (Framework) कायम कर रही हैं और समाज के कमजोर वर्गों को सेवाएँ उपलब्ध कराने का माध्यम भी हैं। हाल ही के वर्षों में सहकारी आन्दोलन की क्रियाओ का अधिकाधिक विस्तार और निरन्तर विशाखन भी हुआ है। इनके प्रोग्रामो एव नीतियो को कमजोर वर्गों और पिछडे वर्गों के विकास के लिए मोडा जा रहा है।

ग्राम सहकारी समितियो ने उधार, उत्पादन, कृषि ससाधन और विपणन के क्षेत्रों मे महत्त्वपूर्ण कार्यभाग अदा किया है। सहकारी समितियों के मार्गदर्शी सिद्धान्त हैं स्वैच्छिक एव खुली सदस्यता, लोकतान्त्रिक नियत्रण, लाभ का न्यायोचित वितरण और ससाधनो का अनुकूलतम प्रयोग। वर्तमान काल मे, इस बात पर बल दिया गया कि भारत मे एक लोकतान्त्रिक, आर्थिक दृष्टि से सक्षम और आत्मनिर्भर सहकारी आन्दोलन का विकास किया जाए।

इस आन्दोलन के लाभो के बारे मे किए गए दावो के बावजूद, इस आन्दोलन की कई कमजोरिया और सीमाएं हैं। उदाहरणार्थ, इस आन्दोलन के आधीन ग्राम क्षेत्र को उधार की मात्रा जो 1989-90 मे 2,790 करोड रुपये थी, बढकर 1994-95 मे 7,100 करोड रुपय हो गयी। बैंक-उधार के ग्राम क्षेत्र की ओर प्रवाह का भी सहकारी समितियो से प्रवाह होने वाले कृषि-उधार पर अनुकूल प्रभाव पडा। 1990 के वर्ष को छोड जबकि सहकारी क्षेत्र से उधार मे थोडी गिरावट आयी सहकारी उधार मे लगातार वृद्धि ही हुई है और यह 1989-90 मे 5,260 करोड़ रुपये से बढकर 1994-95 मे 9,600 करोड़ रुपये हो गया। कृषि-क्षेत्र को कुल उधार जो 1989-90 मे 10,190 करोड़ रुपये था बढ़कर 1994-95 में 16,700 करोड रुपये हो गया अर्थात् केवल 5 वर्षों मे 60 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि।

5. सहकारी आन्दोलन की कमजोरियाँ

यद्यपि पिछले कुछ वर्षों मे सहकारी आन्दोलन की गति तीव्र हो गई है किन्तु अपने जीवन के आरम्भिक 50 वर्षों मे यह अत्यन्त मन्द गति से विकसित हुआ। इसकी मन्द गति के अनेक कारण रहे। अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति ने तथा अन्य अनेक व्यक्तियों और समितियो ने इस आन्दोलन की दुर्बलताओ की जाच की और इसके सुधार तथा पुनर्गठन के लिए सुझाव दिए हैं।

1 **सहजता का अभाव**—भारत मे सहकारी आन्दोलन जनता के बीच सहज रूप से विकसित नहीं हुआ। इसके स्वैच्छा-प्रेरित न होने के कारण लोगो ने अपनी आवश्यकताओ की सन्तुष्टि के लिए समितियो के गठन की आतुरता न दिखाई। आन्दोलन का स्वरूप बहुत कुछ सरकारी विभाग का सा होने के कारण किसानो ने सहकारी साख समितियो को आमतौर पर ऋण देने वाला सरकारी अभिकरण ही समझा। आन्दोलन चलाने वाले सरकारी अधिकारी सहकारिता के आदर्शों से अनभिज्ञ थे। उन्हें न तो उचित प्रशिक्षण मिला था और न ही वे किसानो की आवश्यकताओ से परिचित थे।

2. वित्त का अभाव–वित्त का अभाव सहकारी आन्दोलन की मूलभूत दुर्बलता रही है। आरम्भ मे यह सोचा जाता था कि सदस्य अपनी बचत जमा करके समितियो को कार्यकारी पूजी (Working capital) मे बडा अशदान करेंगे। ग्राम समितियो की सहायता करने के लिए सगठित की गई केन्द्रीय और राज्यीय सहकारी साख समितियाँ जनता से प्रत्याशित जमा आकर्षित न कर पाईं। यह स्थिति अब तक भी विद्यमान है। रिजर्व बैंक सहकारी बैंको को रियायती दर पर ऋण देने को तैयार था किन्तु राज्य सहकारी बैंको ने इस सुविधा का लाभ नहीं उठाया।

3. केवल उत्पादन कार्यो के लिए ऋण देना–सहकारी साख समितियो ने किसान को उनकी समग्र साख आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए सहायता नहीं दी। इन समितियो से केवल कृषि-कार्यों के लिए ही उधार मिल सकता था किन्तु किसान को अपनी अनेक अन्य आवश्यकताओ के लिए भी धन की अपेक्षा रहती है। फलत. उसे ऐसी आवश्यकताओ के लिए भी धन प्राप्त करने के लिए साहूकारो पर निर्भर रहना पडा। तात्पय यह है कि सहकारी साख समितियो को किसानो की सभी आवश्यकताओ की पूर्ति मे सहायक होना चाहिए था, अन्यथा उन्हे किसानो की पूर्ण निष्ठा प्राप्त नहीं हो सकती थी।

4. केवल उधार देने की व्यवस्था–सहकारी आन्दोलन, उधार विपणन और विधायन के पारस्परिक सम्बन्ध को समझने मे विफल रहा। परिणामत सहकारी समितियो ने किसानो को ऋण देने को ही अपना एकमात्र कर्त्तव्य मान लिया और उन्हे अन्य क्रियाओ मे सहायता नहीं दी। कुछ क्षेत्रो मे भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए भिन्न-भिन्न समितियाँ स्थापित की गईं। किन्तु आवश्यकता ऐसी सहकारी समिति के निर्माण की थी जो किसानो की सारी आवश्यकताएँ पूर्ण करने मे सहायक हो सकती और उनसे सारा वर्ष सम्पर्क बनाए रखती। किसानो को उधार, विपणन, विधायन, उन्नत खेती आदि सब सुविधाएँ देने की विफलता भारत मे सहकारी आन्दोलन की एक महत्त्वपूर्ण कमी रही है।

5. गैर-सरकारी अभिकरणो द्वारा प्रतिस्पर्द्धा (Competition by private agencies)–आरम्भ से ही सहकारी आन्दोलन को सशक्त निहित हितो (Vested interests) से प्रतिस्पर्द्धा करनी पडी। गाँवो मे साहूकारो और व्यापारियों ने सहकारी आन्दोलन को असफल बनाने का प्रयास किया। शहरो मे उपभोक्ता सहकारी समितियो का व्यापारियो और सट्टेबाजो ने कडा विरोध किया। किन्तु सहकारी आन्दोलन का उपर्युक्त विरोध भारत के लिए सर्वथा नया नहीं था क्योकि अन्य देशो मे भी इसका ऐसा विरोध होता रहा है। इस प्रकार भारत मे सहकारी आन्दोलन अपनी कमजोर वित्तीय स्थिति के कारण शक्तिशाली प्रतिस्पर्द्धा की वजह से अधिक प्रगति न कर सका।

6 दोषपूर्ण प्रबन्ध और नेतृत्व–गाँवो मे बहुत-सी सहकारी समितियाँ दोषपूर्ण प्रबन्ध और नेतृत्व के कारण समाप्त हो गईं। भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था मे जमींदार एक प्रमुख तत्व है किन्तु ये जमींदार सहकारी आन्दोलन को सफल बनाने मे कोई रुचि नहीं रखते। किसानो के सामान्य कल्याण के कार्य मे भी इन्होने कोई दिलचस्पी नहीं ली। इसके अलावा, समितिया के काम पर भाई-भतीजावाद और पक्षपात का भी बहुत दुष्प्रभाव पडा है। उदाहरणार्थ, ऋण और अन्य सुविधाएँ जरूरतमन्द किसानो की अपेक्षा धनी किसानो और पदाधिकारियो (Officials) के सम्बन्धियो तथा मित्रो को ही उपलब्ध होती रही हैं। यही नहीं, सहकारी समितियो के पदाधिकारी अपने मित्रो, परिचितो के बारे मे ऋण की अदायगी के विषय मे अनावश्यक रूप से ढील देते हैं। तात्पर्य यह है कि सहकारी आन्दोलन का प्रबन्ध अनुचित और अकुशल हाथो मे रहा।

7. सरकार की मनोवृत्ति–सरकार द्वारा सहकारी आन्दोलन को सब सम्भव उपायो से प्रोन्नत करना युक्तिसगत था किन्तु सरकार की मनोवृत्ति मे यह दोष था कि इसने सहकारिता को एक सरकारी विभाग ही बना डाला, जिससे इसमे कठोर नियमवादिता और अदूरदर्शिता की वे सब बुराइयाँ आ गईं जो सरकारी विभागो में आमतौर पर पाइ जाती है। आन्दोलन मे अफसरशाही की मनोवृत्ति बल पकड गई और निजी पहल (Private initiative) के लिए बहुत कम स्थान रह गया।

ऊपर दिए गए कुछ दोष तो सहकारी आन्दोलन के गठन मे ही विद्यमान हैं और कुछ भारतीय ग्राम समाज की सामाजिक तथा आर्थिक रचना मे, किन्तु फिर भी जहाँ तक सहकारिता की भावना का प्रश्न है, वह सर्वथा निर्दोष है। सत्य तो यह है कि सहकारी आन्दोलन अन्य अनेक देशो मे अत्यन्त सफल प्रमाणित हुआ है, उदाहरणार्थ, इग्लैण्ड मे उपभोक्ता सहकारी आन्दोलन, जर्मनी मे साख सहकारी आन्दोलन और डेनमार्क तथा स्वीडन मे उत्पादक सहकारी आन्दोलन। यदि यह आन्दोलन अन्य देशो मे सफल सिद्ध हुआ है और भारत मे असफल, तो इससे एक ही तथ्य का सकेत मिलता है और वह यह कि इसकी सफलता के लिए जो सारभूत परिस्थितियाँ अन्य देशो मे वतमान थीं, भारत मे उनका अभाव है। जब तक भारत मे भी इन परिस्थितियो का

विकास नहीं कर लिया जाता, तब तक उक्त आन्दोलन की सफलता की अधिक सम्भावना नहीं।

6. आठवी योजना मे सहकारिता

सहकारी आन्दोलन की प्रगति की समीक्षा से पता चलता है कि आज भारत मे प्राथमिक कृषि उधार समितियो का विस्तृत जाल फैला हुआ है। जिला और राज्यीय स्तर पर लगभग सभी राज्यो मे सहकारी सघ कायम किए जा चुके हैं। सहकारी समितियो ने उधार, बैंकिग, कृषि-आदानो के वितरण कृषि-विधायन भाण्डागार और गादाम कायम करने मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। दुग्धशालाओ और तेल विधायन क्रियाओ मे सहकारी क्षेत्र निजी क्षेत्र के मुकाबले मे एक महत्त्वपूर्ण प्रतिसतुलनकारी शक्ति (Countervailing power) के रूप मे उभरा है जिससे उत्पादको एव उपभोक्ताओ दोनो को लाभ प्राप्त होता है। आज लगभग 60 प्रतिशत हथकरघे जो देश मे कुल सूती वस्त्र उत्पादन का 30 प्रतिशत उपलब्ध कराते हैं सहकारी क्षेत्र मे है। लगभग 30,000 कारीगरो की और औद्योगिक सहकारी समितियाँ देश मे कार्य कर रही है।

किन्तु देश के सभी भागो मे सहकारिता का एक समान विकास नहीं हुआ है। इसके मुख्य कारण हैं-सहकारी समितियो पर निहित हितो का प्रभुत्व, दोषपूर्ण प्रबन्ध, सहकारी समितियो की सरकारी एजेन्सियो पर अत्यधिक निर्भरता और सहकारी समितियो का कुछ ही क्रियाओ तक सीमित रहना।

सातवी योजना के अन्त पर जैसा कि तालिका 4 मे दर्शाया गया है सहकारी समितियो ने 1991-92 मे 4 350 करोड रुपए के अल्पकालीन ऋण और 360 करोड रुपए के मध्यम कालीन ऋण दिए। सहकारी समितियो द्वारा 2,475 करोड रुपए के उर्वरक वितरित किए गए। इसके अतिरिक्त, सहकारी उपभोक्ता समितियो ने 2,725 करोड रुपए के मूल्य की वस्तुएँ ग्रामीण क्षेत्रो मे और 2,700 करोड रुपए के मूल्य की शहरी क्षेत्रो मे वितरित की। सहकारी क्षेत्र द्वारा 121 लाख टन अतिरिक्त गोदाम क्षमता का निर्माण किया गया।

आठवी योजना (1992-97) के आधीन सहकारी क्षेत्र के लक्ष्य तालिका 4 मे दिए गए हैं। जाहिर है कि सरकार सहकारी क्षेत्र का और अधिक विस्तार करना चाहती है। इस सम्बन्ध मे एक महत्त्वपूर्ण कार्य प्रबन्ध का व्यवसायीकरण (Professionalisation of management) है जिसका आठवीं योजना मे विशेष रूप मे उल्लेख किया गया है। ऐसा करना विशेष रूप मे सहकारी विधायन समितियो (Processing societies) के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

आठवी योजना मे कृषि-वित्त के लिए सहकारी क्षेत्र का विकास अनिवार्य है। इस सम्बन्ध मे कृषि-उधार समीक्षा समिति (Agricultural Credit Review Committee) ने यह सिफारिश की है कि प्रत्येक प्राथमिक कृषि समिति को ऋण-सम्बन्धी क्रियाओ का विशाखन होना चाहिए और इन समितियो को आन्तरिक ससाधनो का जनन करने के लिए अधिक जमा एकत्र करनी चाहिए। अत इन समितियो के ससाधन आधार को मजबूत बनाना चाहिए।

आठवी योजना मे सहकारी आन्दोलन को राष्ट्रीय प्राथमिकताओ और गरीबी हटाओ प्रोग्राम से जोडा जाना चाहिए। इसके लिए विकास के मुख्य क्षेत्र होगे-खुश्क खेती के क्षेत्र, छोटी सिचाई और व्यर्थभूमि का विकास। इसके अतिरिक्त, सहकारी आन्दोलन को अफसरशाही से मुक्त किया जाएगा ताकि इसके कार्यकलाप मे उदारीकरण लाया जा सके।

तालिका 4 आठवीं योजना (1992-97) के दौरान महत्त्वपूर्ण सहकारी क्रियाओं के लक्ष्य

	भौतिक कार्यक्रम	इकाई	1991 92 मे उपलब्धि (अनुमान)	1996-97 के के लिए लक्ष्य
1	अल्पकालीन ऋण	करोड रुपए	4 350	7 050
2	मध्यम तथा दीर्घावधि ऋण	करोड रुपए	360	615
3	सहकारी समितियो द्वारा विपणन किए जाने वाले कृषि उत्पाद का मूल्य	करोड रुपए	965	1 625
4	सहकारी समितियो के द्वारा वितरित उर्वरक (मूल्य)	करोड रुपए	2 475	4 000
5	सहकारी समितियो द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों मे वितरित उपभोक्ता वस्तुओ का मूल्य	करोड रुपए	2 725	4 500
6	सहकारी समितियो द्वारा शहरी क्षेत्र मे वितरित उपभोक्ता वस्तुओ का मूल्य	करोड रुपए	2,700	5 000
7	अतिरिक्त गोदाम क्षमता का निर्माण	लाख टन	121	142
8	शीतागार का निर्माण स्थापित क्षमता	सख्या	239	309

32

खाद्य समस्या
(THE FOOD PROBLEM)

यदि हम सामान्य जनता को उचित कीमतो पर अन्न की न्यूनतम मात्रा उपलब्ध कराने मे असफल रहते हैं, तो आर्थिक आयोजन का सारा आडम्बर अर्थहीन प्रतीत होता है। जैसा कि फोर्ड फाउण्डेशन (Ford Foundation) के कृषि-दल ने कहा है, "पर्याप्त भोजन के बिना, भारत द्वारा मानवीय कल्याण बढाने, सामाजिक न्याय और लोकतत्र प्राप्त करने की सभी आशाएँ पूर्ण होनी असम्भव हो जाएँगी।" प्रोफेसर दन्तवाला ने ठीक ही लिखा, "मेरा यह निश्चित विचार है कि हमे एक सकट का सामना नहीं करना बल्कि एक दीर्घकालीन रोग का उपचार करना है।"[1]

1. खाद्य-समस्या और खाद्य-नीति
(Food Problem and Food Policy)

हमारी खाद्य समस्या का आरम्भ उस समय से होता है जबकि अप्रैल, 1937 म बर्मा को भारत से अलग कर दिया गया। बर्मा के जुदा हो जाने के बाद भारत को अपनी आन्तरिक आवश्यकताओ के लिए हर वर्ष 15 से 20 लाख टन चावल का आयात करना पडता। जब द्वितीय विश्वयुद्ध ने बर्मा जापान के हाथो पराजित हुआ, तो आयात का यह स्रोत भारत के लिए समाप्त हो गया। इस कारण 1943 मे बगाल मे भयकर अकाल पडा जिसमे लाखो व्यक्ति भूख के कारण मर गए।

1947 मे जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो साथ विभाजित भी हुआ। विभाजन ने भारत की खाद्य सम्बन्धी स्थिति और भी कमजोर बना दी। विभाजन के फलस्वरूप भारत के हिस्से मे 82 प्रतिशत जनसख्या, चावल के उत्पादन का केवल 68 प्रतिशत क्षेत्रफल, गेहूँ के उत्पादन का 65 प्रतिशत क्षेत्रफल अनाजो के आधीन कुल मिलाकर 75 प्रतिशत क्षेत्रफल और सिचाई के आधीन केवल 69 प्रतिशत क्षेत्रफल मिला। जहाँ बर्मा के अलग हो जाने से चावल का आयात करना अनिवार्य हो गया, वहाँ विभाजन के कारण भारत गेहूँ के लिए अन्य देशो पर निर्भर हो गया।

1950 के पश्चात् खाद्य-समस्या

प्रथम योजना के ठीक पहले भारत एक गम्भीर अन्न सकट मे फसा हुआ था और अन्न को कीमते बहुत ऊँची चढ चुकी थीं। उदाहरणार्थ, अनाज की कीमते युद्ध-पूव काल के स्तर से 421 प्रतिशत ऊची थीं। कोरिया के युद्ध से आरम्भ हुए स्फीतिकारी दबावो (Inflationary pressures) के अतिरिक्त खाद्य-समस्या का मुख्य कारण खाद्यान्न के उत्पादन मे कमी था। भारत सरकार ने अन्न की बढती हुई कीमतो को रोकने का प्रयास किया और सरकार इसमे सफल भी हुई। जून 1954 मे खाद्यान्नो का कीमत सूचकाक गिरकर 82 हो गया। इसका मुख्य कारण यह था कि उत्पादन सूचकाक (Production index) 1952-53 और 1953-54 के बीच 101 से बढकर 120 हो गया। उत्पादन और कीमतो के सम्बन्ध मे परिस्थिति अनुकूल होने के कारण कण्ट्रोल और राशनिग हटा दिए गए। आयात की भी भारी मात्रा म कमी हुई। प्रथम योजनाकाल मे खाद्य-पदार्थों की कीमतो मे 23 प्रतिशत की कमी हुई जबकि निर्मित वस्तुओं की कीमते केवल 3 5 प्रतिशत गिरीं। सामान्य रूप मे यह कहा जा सकता है कि सरकार तथा जनता खाद्यान्नो की स्थिति से सन्तुष्ट थी।

अक्तूबर, 1955 से ही खाद्यान्नो की कीमते चढनी शुरू हो गई थीं। आरम्भ मे कीमतो मे वृद्धि थोडी थी परन्तु शीघ्र ही यह तेज हो गई। इस प्रवृत्ति के दो कारण थे-प्रथम, इस वष म खाद्यान्नो का उत्पादन काफी कम हो गया। दूसर, सरकार के पास मोटे अनाजो (Millets) का स्टॉक नहीं था और इसके पास गेहू का स्टॉक भी कम था। इसके अतिरिक्त राजस्थान, बम्बई, बिहार, उडीसा और मद्रास मे अनाज की स्थानीय कमी थी जिसके मुख्य कारण सूखा, बाढ और तेज आधी थे। 1958-59 तक खाद्य-समस्या तीव्र रूप धारण

1 M L Dantwala *India s Food Problem* (1961) p 1

कर एक सकट बन गई। परन्तु इस काल मे इस समस्या का सबसे अजीब पहलू यह था कि खाद्यान्नो का उत्पादन निरन्तर बढता जा रहा था। पिछले कालो मे खाद्य समस्या का मूल कारण देश की आन्तरिक माँग की तुलना मे आन्तरिक उत्पादन मे कमी थी और इस अन्तर को भरने के लिए आयात करना अनिवार्य हो जाता था। परन्तु 1958-59 मे पहली बार एक नई स्थिति सामने आई। आन्तरिक उत्पादन और आयात दोनो मिलकर 1959 मे 770 लाख टन थे जबकि 1955 मे ये केवल 670 लाख टन थे। जहाँ 1955 मे कोई खाद्य-समस्या नहीं थी, वहाँ 1959 मे वस्तुत एक सकट प्रकट हो गया था। मूल अतर खाद्यान्नो की कीमतो के बारे मे था जिनमे पहले तीन वर्षों मे 41 प्रतिशत वृद्धि हुई। जब तक अन्न लोगो को उचित कीमतो पर मिलता रहता, यह विश्वास बना रहता कि देश मे खाद्य-समस्या विद्यमान नहीं परन्तु जब अन्न की कीमते बढने लगती हैं जनता मे बेचैनी फैल जाती है चाहे अन्न के स्टॉक पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध ही क्यो न हो उस समय यह समझा जाता है कि खाद्य समस्या उत्पन्न हो गई है।

इस स्थिति मे खाद्यान्नो की कीमतो मे वृद्धि का मूल कारण *लोगो के हाथ मे बढती हुई क्रय शक्ति* (Purchasing power) मुख्य फसलो के उत्पदान मे कमी सरकार के पास काफी बफर स्टॉक न होना और उत्पादको एव थोक-विक्रेताओ (Wholesalers) द्वारा जमाखोरी और सट्टेबाजी मे वृद्धि थे। सरकार ने इस स्थिति पर काबू पाने के लिए आयात की अधिक मात्रा प्राप्त करनी आरम्भ की, अपने भण्डारो से अधिक अनाज बाहर निकाला और उचित मूल्य की दुकाने (Fair price shops) खोलीं।

1956 के पश्चात् नई खाद्य-नीति

1956 मे भारत सरकार ने सयुक्त राज्य अमेरिका के साथ पी एल 480 सन्धि के आधीन अगले तीन वर्षों के लिए 33 लाख टन खाद्यान्न के आयात करने का समझौता कर लिया। सरकार को पी एल 480 खाद्यान्न एक ऐसा उपाय मिल गया जिसके द्वारा वह खाद्यान्नो की कीमते स्थिर रख सकती थी और देश मे ऐसा वातावरण कायम कर सकती थी कि अनाज पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हो। सरकार की नयी नीति निम्नलिखित मुख्य बातो पर आधारित थी-

(*i*) आगामी कुछ वर्षों मे बिना भारी मात्रा मे आयात करके भारत मे रिजर्व स्टॉक कायम करना सम्भव नही था क्योकि आन्तरिक उत्पादन कम था,

(*ii*) पी एल 480 (P L 480) के आधीन अनुकूल शर्तों पर काफी *बडी मात्रा मे गेहूँ और चावल उपलब्ध था।* साथ ही यह बात भी थी कि ये खाद्यान्न बिना किसी विदेशी मुद्रा के भुगतान किए प्राप्त किए जा सकते थे और इनसे रुपयो के रूप मे एक निधि कायम की जा सकती थी जिसका प्रयोग विकास कार्य के लिए किया जा सकता था, और

(*iii*) खाद्यान्नो के लगातार आयात के आश्वासन के फलस्वरूप खाद्यान्नो के बारे मे अनिश्चतता दूर हो सकती थी और इससे कीमतो को स्थिर करने मे सहायता मिल सकती थी।

1957 मे *भारत सरकार ने खाद्यान्न जाच समिति* (Foodgrains Enquiry Committee) स्थापित की। इस समिति ने दो सम्भव विकल्पो अर्थात 'पूर्ण नियन्त्रण' और 'अपूर्ण अनियन्त्रण' पर विचार कर इन दोनो को अस्वीकार कर दिया। समिति ने निष्कर्ष के रूप मे कहा-"हमारे विचार म *खाद्य समस्या का हल पूर्णतया स्वतन्त्र व्यापार* और पूर्ण नियन्त्रण के बीच है।" अत एक स्थिर और दीर्घकालीन खाद्य-नीति जो भारी मात्रा मे आयात पर आधारित थी, विकसित हुई। यह आशा की गई कि यह नीति निम्नलिखिल कारणतत्वो की वजह से सफल हो जाएगी-(क) राजनीतिक दृष्टि से यह स्वीकार्य थी, (ख) सरकार को इनके लिए कुछ खर्च नहीं करना था, वस्तुत सरकार खाद्य-आयात से विकास के लिए रुपए कमा सकती थी, (ग) प्रशासनिक दृष्टि से इसे लागू करना आसान था क्योकि खाद्यान्न आयात करके इन्हे सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public distribution system) द्वारा उचित कीमत की दुकानो पर बहुत ही कम कीमतो पर उपभोक्ताओ को बाँटना सुगम हो था, (घ) व्यवहार मे देशभर मे पूर्ण-स्वतन्त्र व्यापार ही रहेगा, (ड) निर्बल वर्ग की देशी खाद्यान्नो की ऊँची कीमतों के विरुद्ध पूरी रक्षा की जाएगी।

भारत सरकार की खाद्य-नीति इतनी अधिक सफल समझी गई कि तीन वर्षों के लिए 1956 मे पी एल 480 मे आयातित अनाज को एक ही वर्ष मे इस्तेमाल कर लिया गया। 1960 मे भारत सरकार ने यू एस ए से अगले 4 वर्षों मे 100 लाख टन गेहूँ और 10 लाख टन चावल के आयात की सन्धि की। नीति का उद्देश्य खाद्यान्नो की कीमतो को स्थिर रखना *था* और यदि खाद्यान्नो की कीमते बढती भी है तो भी जनसख्या के निर्बल वर्गो के लिए उचित मूल्य की दुकानो पर कम या लगभग निश्चित कीमत पर अनाज मुहेया करवाने की व्यवस्था की गयी।

1956 से 1966 के दशक के दौरान भारत सरकार की खाद्य-नीति आयात पर आधारित थी। नीति-निर्धारक इस नीति के गुह्यार्थ को समझ न सके कि इस प्रकार हम विदेशी

अन्न पर बुरी तरह निर्भर हो गए। भारत के नीति-निर्धारकों ने इस सुलभ विश्वास पर इस नीति की पुष्टि की कि अमेरिका का खाद्य अतिरेक वर्षों तक बना रहेगा और भारत अपने औद्योगिक विकास का आयोजन अमरीकी खाद्य अतिरेक पर कर सकता है।

तीसरी योजना के दौरान नयी खाद्य-नीति की विफलता

1956 में प्रतिपादित खाद्य-नीति जिसे 1957 में स्थापित खाद्यान्न जांच समिति का समर्थन प्राप्त हुआ तीसरी योजना के दौरान विशेषकर 1962-63 के पश्चात् बिल्कुल विफल हो गई। योजना के आरम्भ से ही खाद्यान्नों का उत्पादन लगभग स्थिर हो गया परन्तु माग की परिस्थितियाँ दबाव डालने लगीं। चाहे 1964-65 में उत्पादन 890 लाख टन के रिकार्ड-स्तर पर पहुंच गया परन्तु 1965-66 में यह सूखे के प्रभावाधीन गिरकर 720 लाख टन हो गया। जबकि खाद्य सभरण (Food supply) की स्थिति तीसरी योजना के दौरान शोचनीय थी, वहाँ व्यापारियों तथा सट्टेबाजों की असामाजिक क्रियाओं ने इसे और भी गम्भीर बना दिया। इसके विरुद्ध मुद्रा-सभरण तथा जनसख्या की वृद्धि के कारण खाद्यान्नों की माग निरन्तर बढ रही थी। इसके फलस्वरूप बिहार, उत्तर प्रदेश, उडीसा और राजस्थान के कुछ भागों में भयकर अकाल पडा जिसका सामना करने के लिए सरकार को भारी मात्रा में अन्न का आयात करना पडा।

ऐसी परिस्थिति में स्वाभाविक ही था कि अधिकाधिक लोग यह माग करें कि खुले बाजार की अपेक्षा सार्वजनिक वितरण (Public distribution) द्वारा सस्ती कीमत पर अनाज मिलना चाहिए। सार्वजनिक वितरण की माग को पूरा करने के लिए आयात की मात्रा बढाई गई जो 1963 में 46 लाख टन से बढकर 1966 में 104 लाख टन हो गई। देश में अनाज की वसूली को बढाया गया किन्तु सावजनिक वितरण द्वारा बाटे गए अनाज का 73 से 80 प्रतिशत आयात से प्राप्त हुआ। सरकार ने पहली बार यह बात स्वीकार की कि इतनी भारी मात्रा में अनाज का आयात करने पर भी खाद्यान्नों की कीमतें बढती ही गईं और निर्बल वर्गों के हितों को सुरक्षित नहीं रखा जा सका। इसके अतिरिक्त, सरकार को यह भी महसूस हुआ कि आयातित अनाज पर अत्यधिक निर्भरता के भयकर परिणाम निकल सकते हैं। अत नीति में परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की गई।

1966 के पश्चात् समन्वित खाद्य-नीति

भारत सरकार ने 1966 में एक और खाद्यान्न नीति समिति नियुक्त की ताकि खाद्य समस्या पर पुनर्विचार किया जा सके। समिति ने यह बात स्पष्ट रूप में कही कि भारत की खाद्य-आयात पर निर्भरता एक सही नीति नहीं है क्योंकि सयुक्त राज्य अमेरिका से आगामी वर्षों में न तो भारी मात्रा में और न आसानी से खाद्य-आयात प्राप्त हो सकेगा। साथ ही इसके लिए रुपयों की अपेक्षा डालरों में भुगतान करना होगा। समिति ने इस बात पर चिन्ता व्यक्त की कि खाद्य-समस्या का प्रयोग खुले रूप में भारत सरकार की आन्तरिक और विदेशी नीतियों को प्रभावित करने के लिए किया गया। इसी कारण 1966 की समिति ने राष्ट्रीय खाद्य बजट (National food budget) का निर्माण करने पर बल दिया ताकि खाद्यान्नों के राष्ट्रीय सभरण और वितरण के सम्बन्ध में एक समन्वित खाद्य-नीति (Integrated food policy) अपनाई जाए। इस नीति के मुख्य अश इस प्रकार थे-

(i) आवश्यक सभरण उपलब्ध कराने के लिए खाद्य-वसूली, (ii) वसूली को सुविधाजनक बनाने के लिए अन्तर्राज्यीय गतिविधियों पर नियन्त्रण ताकि कीमत उचित स्तर पर स्थिर रखी जा सके (iii) सावजनिक वितरण प्रणाली को मजबूत बनाया जाए ताकि अनाज को न्यायिक बाट की जा सके, और (iv) कठिनाई के वर्षों का सामना करने के लिए बफर-स्टॉक (Buffer stock) कायम करना।

इस नीति के कार्यान्वयन में कठिनाइ उत्पन्न होने का कारण यह था कि सावजनिक वसूली (Public procurement) और सार्वजनिक वितरण (Public distribution) में तालमेल न बिठाया जा सका। इसका मुख्य कारण यह था कि 1966 की खाद्य नीति समिति ने आंशिक वसूली और आंशिक वितरण की सिफारिश की परन्तु निजी व्यापार को स्वतन्त्र बाजार कीमत पर कार्य करने की छूट दे दी। इसके अतिरिक्त, समन्वित खाद्य नीति की सफलता के लिए यह जरूरी है कि खाद्य की कमी वाले राज्यों की आवश्यकताओं और खाद्य-अतिरेक वाले राज्यों में वसूली की मात्रा का पूर्वानुमान लगाया जाए। अत राष्ट्रीय खाद्य-बजट की कामयाबी इस बात पर निर्भर करेगी कि (क) कमी वाले राज्यों का घाटा अतिरेक वाले राज्यों की वसूली से पूरा किया जा सकेगा। (ख) अतिरेक वाले राज्यों का अतिरेक प्राप्त करना ताकि वह वितरण के केन्द्रीय सग्रह में इकट्ठा किया जाए। यदि राष्ट्रीय खाद्य-बजट में सन्तुलन प्राप्त नहीं होता, तो सरकार के लिए खाद्यान्नों का आयात करना स्वाभाविक ही होगा।

भारत सरकार ने 1966 की खाद्य नीति समिति की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया। सौभाग्यवश 1967-68 में पश्चात् खाद्यान्नों का आन्तरिक उत्पादन बढ गया।

आयात धीरे-धीरे कम हो गए, आन्तरिक वसूली बढ गई और 80 लाख टन का बफर स्टॉक (Buffer stock) कायम किया गया। तालिका 1 मे वार्षिक योजनाओ और चौथी योजना के बाद के काल मे खाद्यान्नो का उत्पादन दिया गया है।

तालिका 1 वार्षिक योजनाओं और चौथी योजना और बाद के काल मे खाद्यान्न का उत्पादन

(लाख टन)

	अनाज	दाले	कुल खाद्यान्न
1970-71	960	120	1080
1980 81	1190	106	1296
1981-82	1217	114	1331
1983 84	1395	129	1524
1987-88	1321	110	1431
1988-89	1566	137	1703
1990-91	1621	143	1764
1991-92	1550	121	1671
1993-94	1 690	131	1 821
1994-95	1,705	145	1 850

1966-67 में 760 लाख टन खाद्यान्न के उत्पादन की तुलना मे 1967-68 मे 950 लाख टन खाद्यान्न का रिकार्ड उत्पादन हुआ। चौथी योजना के पहले दो वर्षों (अर्थात् 1969-70 और 1970-71) के दौरान खाद्यान्नो का उत्पादन काफी उत्साहपूर्ण था अर्थात् क्रमश 1,000 लाख टन और 1,080 लाख टन। ऐसा महसूस होने लगा जैसे अन्न के मामले मे देश स्वावलम्बिता प्राप्त कर गया था परन्तु 1971-72 और 1972-73 मे लगातार अच्छी फसल न होने के कारण खाद्यान्नो के सम्बन्ध में स्थिति फिर शोचनीय हो गई। चाहे 1973-74 मे स्थिति मे कुछ हद तक सुधार हुआ परन्तु यह सन्तोषजनक नहीं था। खाद्य-स्थिति मे हर साल उतार-चढाव आते रहे हैं। 1973-74 मे पुनरस्थान (Revival), 1974-75 मे गिरावट और 1975-76 मे भरपूर फसल के कारण खाद्यान्न उत्पादन बढकर 1,210 लाख टन हो गया। 1976-77 मे इसमे फिर गिरावट आई परन्तु 1977-78 और 1978-79 मे खाद्यान्न उत्पादन भरपूर फसल के कारण फिर बढ गया। 1979-80 मे खाद्यान्न के उत्पादन मे भारी कमी आई परन्तु 1980-81 और 1981-82 मे पुन बढकर 1978-79 के स्तर तक पहुच गया। यदि 1980-81 और 1981-82 के आकडो की तुलना की जाए, तो यह पता चलता है कि कुल खाद्यान्न उत्पादन 1,296 लाख टन से बढकर 1,331 लाख टन हो गया अर्थात् इसमे केवल 2 7 प्रतिशत की वृद्धि हुई। परन्तु थोडा और विश्लेषण करने से पता चलता है कि चावल का उत्पादन इन दोनो वर्षों मे 536 लाख टन ही रहा। गेहूँ का उत्पादन 1980-81 मे 364 लाख टन से बढकर 378 लाख टन हो गया और मोटे अनाजो का उत्पादन 290 लाख टन से 303 लाख टन। परन्तु सबसे असन्तोषजनक बात यह है कि दालो का उत्पादन 1980-81 मे 106 लाख टन से बढकर 1981-82 मे केवल 114 लाख टन हुआ। 1983-84 मे खाद्यान्न उत्पादन 1,520 लाख टन के उच्च स्तर पर पहुच गया। 1984-85 में इसमे गिरावट आई परन्तु 1985-86 मे यह पुन बढकर 1,505 लाख टन हो गया। जाहिर है कि चावल और दालो के उत्पादन को बढाने मे खाद्य-नीति विफल रही है। 1987-88 मे सूखा पडने के कारण खाद्यान्न उत्पादन कम होकर क्रमश 1,431 लाख टन हो गया। 1988-89 और 1989-90 मे परिस्थिति मे सुधार हुआ है और खाद्यान्न उत्पादन 1989-90 मे 1,720 लाख टन और 1992-93 मे 1,800 लाख टन के रिकार्ड स्तर पर पहुच गया।

खाद्यान्न व्यापार का सरकारीकरण (Take-over of Foodgrains Trade)

थोक-खाद्य-व्यापार के सरकारीकरण की सिफारिश खाद्यान्न नीति समिति (Foodgrains Policy Committee) ने 1957 मे कीमतो के स्थायीकरण (Stabilisation) के उद्देश्य से की थी। परन्तु सरकार द्वारा उस समय इस सिफारिश की उपेक्षा की गई। अक्तूबर 1972 के काग्रेस पार्टी के अधिवेशन में खाद्यान्न के थोक व्यापार के सरकारीकरण, विशेषकर चावल और गेहूँ के व्यापार का निर्णय किया गया। परिणामत. आरम्भिक कदम के रूप मे 1 अप्रैल, 1973 को सरकार ने गेहूँ के थोक-व्यापार का सरकारीकरण कर दिया।

सरकारीकरण का मुख्य उद्देश्य अनिवार्य वस्तुओ को उचित कीमतो पर उपभोक्ताओ को उपलब्ध कराना था। इस निर्णय का मूलाधार इस बात मे था कि सरकार ने जनता को अन्न उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। दूसरे, वह खाद्यान्नो की कीमतो को एक ऐसे स्तर पर स्थिर करना चाहती थी जिसमे उत्पादको की उत्पादन-लागत पूरी हो सके और उन्हे अधिक उत्पादन करने मे प्रोत्साहन मिले। कीमत-स्तर की स्थिरता उपभोक्ताओ एवं उत्पादको दोनो के हित मे है। तीसरे, उपभोक्ताओ और उत्पादको के बीच बिचौलियो के विद्यमान होने से कीमतो मे तीव्र वृद्धि होती थी और इसके लिए व्यापारी फसलो को गोदामो में भर लेते थे और बाजार मे कृत्रिम दुर्लभता (Artificial scarcity) की स्थिति कायम कर देते थे। परिणामत खाद्यान्नो मे काला बाजार कायम हो जाता था। चौथे, थोक व्यापार के

सरकारीकरण द्वारा भारत सरकार थोक व्यापारियो और बिचौलियों की असामाजिक क्रियाओ का दमन करना चाहती है। जब कभी फसल विफल हो जाती थी, तो व्यापारी इस कठिन परिस्थिति मे सरकार की सहायता करने की अपेक्षा इसका अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा करते। जबकि सरकार खाद्यान्नो की वसूली करके इन्हे निश्चित कीमतो पर उपलब्ध कराने का भरसक प्रयत्न करती, वहा थोक व्यापारी और बिचौलिए जमाखोरी और काले बाजार मे जुट जाते हैं। अन्तिम, बिचौलियो की समाप्ति से सरकार को खाद्यान्न की वसूली मे सहायता मिलगी क्योकि किसानो को खाद्यान्न सरकारी सस्थाओ को बेचने पडेंगे। इस प्रकार सरकार खाद्यान्न के सार्वजनिक वितरण की प्रणाली को कायम रख सकेगी।

खाद्यान्न के थोक व्यापार के सरकारीकरण का बहुत विरोध भी हुआ। इस सम्बन्ध मे मुख्य आलोचनाएँ निम्नलिखित थीं–(i) खाद्य व्यापार का सरकारीकरण न तो एकाधिकार के विरुद्ध सघर्ष से सम्बन्धित है और न ही इससे समाजवाद के लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है। इसका कारण यह है कि खाद्यान्न व्यापार मे न तो कुछ व्यक्तियो का एकाधिकार था और न ही इसमे आर्थिक शक्ति का सकेन्द्रण विद्यमान था। (ii) सरकार का यह दावा गलत है कि थोक व्यापारी कीमतो को नियत्रित करते हैं और उपभोक्ताओ और उत्पादको का शोषण करते हैं। इस सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि थोक व्यापारी देश भर मे फैली हुई सैंकडो मण्डियों मे कार्य करते हैं और इस प्रकार उत्पादको को दी जाने वाली कीमते अत्यन्त प्रतिस्पर्द्धी हैं और माग एव पूर्ति की शक्तियो के प्रभावाधीन निर्धारित होती हैं। (iii) 3,500 मण्डियो और इनमे काम करने वाले लगभग 5 लाख व्यक्तियो को व्यापार से हटाकर "सरकार खाद्य-वितरण के एक प्रबुद्ध अनुभवी और सक्षम अभिकरण को बजाए एक सदिग्ध ईमानदारी एव कुशलता वाली प्रशासन मशीनरी को यह कार्य सौंप रही थी।" सरकार के पास न तो इस कार्य को निभाने का अनुभव था और न ही इतने जटिल, विशिष्ट और फैले हुए व्यापार के लिए उचित मशीनरी कायम कर सकने का। सरकारी क्षेत्र मे वर्तमान भ्रष्टाचार एव अनुकूता के कारण गोदामो मे माल भर लेने से काले बाजार और मुनाफाखोरी की बुराइयाँ और भी बढ जाएँगी। (iv) थोक व्यापारी की क्रय-कीमत और विक्रय कीमत मे अन्तर गैर-सरकारी व्यापार अधिकरणो के सम्बन्ध मे निम्नतम है। इसका कारण यह है कि निजी क्षेत्र मे व्यापारियो को एक लम्बा अनुभव और विशिष्टता प्राप्त होती है। भारतीय खाद्य निगम का अनुभव यह साफ जाहिर करता है कि वसूली की लागत (Cost of procurement) अपेक्षाकृत कहीं ऊची है और इससे उत्पादको एव उपभोक्ताओ दोनो को हानि होती है।

अप्रैल 1973 मे गेहूँ के सरकारीकरण के परिणामस्वरूप गेहूँ उत्पन्न करने वाले राज्यो मे अव्यवस्था की सी स्थिति हो गई। 300 लाख टन की रबी फसल के बावजूद सरकार द्वारा वसूली मे प्राप्त किए गए अनाज की मात्रा गत वर्ष से भी कम रही और गेहूँ की काले बाजार मे कीमते तेजी से बढीं। बडे किसानो ने अपने विपण्य अतिरेक ग्रामो मे जमा कर लिए। सरकारी वसूली सस्थाएँ पर्याप्त मात्रा मे खाद्यान्न प्राप्त करने में विफल हुईं और इसी कारण उचित कीमत की दुकाने वितरण कार्य को सुचारू रूप मे नहीं कर पाईं। गेहूँ के थोक व्यापार के सरकारीकरण मे विफलता को स्वीकार करते हुए सराकर ने इस नीति को त्याग दिया।

पिछले 45 वर्षों मे भारत की खाद्य-समस्या–एक साराश

पिछले 45 वर्षो मे भारत की खाद्य-समस्या मे बुनियादी परिवर्तन हो गया है। स्वतत्रता के समय, भारत की खाद्य-समस्या अनाज की कमी की समस्या थी, विशेषकर चावल और गेहूँ के अभाव की समस्या। सरकार की मुख्य चिन्ता यह थी कि खाद्यान्नो के सभरण को या तो उत्पादन मे वृद्धि द्वारा या आयात मे वृद्धि या दोनो का प्रयोग करके बढाया जाए। 1950-60 के दशक के पिछले अर्द्ध-भाग मे और 1960-70 के दशक के दौरान सरकार की मुख्य चिन्ता खाद्यान्नो की कीमतो पर नियत्रण करना था क्योकि सरकार को आन्तरिक उत्पादन को अनुपूरित करने के लिए सयुक्त राज्य अमेरिका से नियमित आयात का आश्वासन था। वस्तुत पी०एल० 480 के आयात हमारे कृषि एव औद्योगिक विकास का आधार थे।

1967-68 और 1994-95 के दौरान पजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश ने खाद्यान्नो के उत्पादन मे क्रमश 5 4 प्रतिशत, 4 प्रतिशत और 3 4 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि-दर रिकार्ड की। ये राज्य हमारी सार्वजनिक वितरण प्रणाली की रीढ हैं जो कि विश्व की सबसे बडी वितरण-प्रणाली है। इन राज्यो ने देश को प्रभावी रूप मे किसी भी गम्भीर खाद्यान्न-सकट से सरक्षण प्रदान किया है।

1970-80 के दशक मे भारत सरकार ने बफर स्टाक (Buffer Stock) कायम करने के लिए 50 लाख टन खाद्यान्नो के सग्रहण का लक्ष्य रखा। अन्तत सरकार 1980-90 के दशक और 1990-95 की अवधि मे 300 लाख टन खाद्यान्नो का बफर स्टाक कायम करने मे सफल हो गयी। वास्तव मे, खाद्यान्नो के इतने भारी रिजर्व द्वारा सरकार को खाद्यान्न-उत्पादन की कमी वाले तीन वर्षों मे इस सकट का सफलतापूर्वक सामना करने मे सहायता मिली। चाहे 1987-88 मे विस्तृत सूखा पडा, किन्तु सरकार इस सकट पर भी बफर स्टाक की मदद से नियत्रण करपायी।

अब खाद्य-समस्या न ही तो अन्न के अभाव की समस्या है और न ही ऊँची कीमतो की बल्कि इस समस्या का मुख्य बल इस बात पर है कि हम किस प्रकार निम्न आय वर्गों को उनकी सामर्थ्य-अनुकूल कीमतो (Affordable prices) पर खाद्यान्न उपलब्ध करा सकते हैं और दूसरे खाद्यान्नो के इस भारी स्टाक का प्रयोग किस प्रकार आर्थिक विकास को त्वरित करने के लिए किया जा सकता है। 1977 78 के पश्चात् रोजगार के लिए खाद्य कार्यक्रम (Food for work programme) आरम्भ किया गया ताकि ग्रामीण निर्धनो बेरोजगार और अकाल-पीडित व्यक्तियो को रोजगार उपलब्ध कराया जा सके। इसका उद्देश्य साथ साथ चिरस्थायी सामुदायिक परिसम्पत कायम करना था। सरकार कमजोर वर्गों को विशेषकर जनजातीय क्षेत्रो (Tribal areas) म जनता को सार्वजनिक वितरण प्रणाली की माहाय्यित कीमतो (Subsidised prices) से भी कहीं कम कीमतो पर अन्न उपलब्ध कराना चाहती है।

2 खाद्यान्नो की कीमतो को प्रभावित करने वाले कारण

(Factors Affecting Foodgrains Prices)

भारत म खाद्यान्नो की कीमतो को प्रभावित करने वाले मुख्य कारण तीन वर्गों म विभक्त किए जा सकते हैं–खाद्यान्नो की माग को प्रभावित करने वाले कारण खाद्यान्नो के सभरण को प्रभावित करने वाले कारण और सरकारी नीति का प्रभाव।

1 माग को प्रभावित करने वाले सामान्य कारण

चार कारण माग पक्ष की ओर से खाद्यान्न कीमतो को निर्धारित करते हैं। वे हैं–जनसख्या वृद्धि 1955 के पश्चात् विनियोग का बढता हुआ दबाव न्यून-वित्त और बैंक-उधार का विस्तार।

(1) जनसख्या की वृद्धि–भारत की जनसख्या 1951 म 36 1 करोड थी और यह तेजी से बढती जा रही है। 1994 म भारत की जनसख्या 88 4 करोड हो जाने का अनुमान है। पिछले चार दशको के दौरान जनसख्या की वृद्धि दर 2 1 से 2 5 प्रतिशत के बीच रही। भारत म हर वर्ष 150 से 160 लाख अतिरिक्त व्यक्तियो के भोजन का प्रबन्ध करना पडता है। इस बात का भी ध्यान रहे कि वर्तमान जनसख्या को भी अधिक और बेहतर खाद्यान्न उपलब्ध कराने पडते है। परिणामत जनसख्या की लगातार वृद्धि देश के लिए सबसे बडा खतरा है।

(2) मुद्रा-सभरण मे वृद्धि (Increase in money supply)–जब से 1951 के पश्चात् आयोजन प्रक्रिया आरम्भ हुई तब से ही मुद्रा सभरण लगातार बढता जा रहा है। मुद्रा-सभरण से अभिप्राय करेन्सी की मात्रा मे वृद्धि और बैंक उधार की मात्रा म वृद्धि है। प्रत्येक उत्तरोत्तर योजना में विनियोग की मात्रा म प्रत्यक्षत वृद्धि के कारण मुद्रा-सभरण म वृद्धि होती है। पहली योजना के दौरान कुल विनियोग लगभग 2 000 करोड रुपए था और छठी योजना मे यह बढकर 1 10 820 करोड रुपए के स्तर पर पहुँच गया। और सातवीं योजना म यह 2 21 170 करोड रुपए के उच्च स्तर को छू गया। इसके अतिरिक्त इस योजना के परिव्यय का वित्त-प्रबन्ध कुछ हद तक न्यून-वित्त प्रबन्ध (Deficit financing) द्वारा किया गया। साथ ही न्यून-वित्त की सीमा भी प्रत्येक उत्तरोत्तर काल मे बढती जा रही है पहली योजना म यह केवल 333 करोड रुपए थी जबकि यह छठी योजना मे 15 000 करोड रुपए और सातवीं योजना में 28 460 करोड रुपए हो गई। बढते हुए वित्तीय घाटे से मौद्रिक विस्तार होता है और इसका कीमतो पर स्फीतिकारी दबाव पडता है। गरीब और विकासशील अर्थव्यवस्था म जाहिर है कि स्फीतिकारी दबाव कृषि कीमतो पर विशेषकर खाद्य कीमतो पर कम पडेगा।

अन्य कारणतत्व जो माग पक्ष की ओर से 1951 के पश्चात् खाद्यान्नो की कीमतो को लगातार ऊपर चढाते हैं निम्नलिखित हैं–

(*i*) भारतीय जनसख्या के बहुत बडे अश की जो कि सीमात स्तर पर जीवन-निर्वाह करता है खाद्यान्नो की माग की उच्च आय लोच (High income elasticity)

(*ii*) जनता के बहुत से वर्गों के आहार की मात्रा और स्वरूप म परिवर्तन तथा उनका मोटे अनाज के स्थान पर बढिया किस्म के अनाज का उपभोग करने के प्रति झुकाव

(*iii*) जनसख्या म वृद्धि तथा औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप बढते हुए नगरीकरण के कारण मोटे अनाज के स्थान पर चावल और गेहूँ की माग म वृद्धि

(*iv*) उत्पादको व्यापारियो और उपभोक्ताओ सभी के द्वारा अनाज की जमाखोरी (Hoarding)

(*v*) बाजार की अनिश्चित स्थिति के कारण व्यापारियो द्वारा अनाज म सट्टेबाजी और उसके परिणामस्वरूप भावो में वृद्धि होना और

(*vi*) थोक व्यापारियो द्वारा काले धन का विस्तृत रूप म प्रयोग करके खाद्यान्नो के स्टॉक इक्ट्ठे कर लेना।

2 सम्भरण सम्बन्धी कारण (Factors on the Supply Side)

देश म अनाज की कीमतो मे वृद्धि के लिए सम्भरण की स्थिति म परिवर्तन भी महत्त्वपूर्ण कारण है। सच तो यह है कि कई बार अलग अलग फसलो के सम्भरण की स्थिति

में परिवर्तन ने भावो के परिवर्तन को उत्प्रेरित किया है। खाद्य-समस्या के सम्भरण सम्बन्धी कारण निम्नलिखित हैं-

(क) उत्पादन–अनाज की कीमतो मे परिवर्तन के लिए उत्पादन मे परिवर्तन या परिवर्तन का पूर्वानुमान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारण रहा है। बहुत बार तो उत्पादन के परिवर्तन से ही कीमतो मे परिवर्तन होता है, अन्य कारण बाद मे क्रियाशील होते हैं। 1964-65 मे 890 लाख टन की भरपूर फसल हुई। 1965-66 और 1966-67 मे सूखा पडने के कारण खाद्यान्न उत्पादन गिरकर 720 लाख टन और 740 लाख टन रह गया। स्वाभाविक ही था कि कीमतो मे तीव्र वृद्धि हो जिससे अन्न-सकट के लक्षण फिर विदित हो गए। 1967-68 के पश्चात् खाद्यान्न का उत्पादन लगातार बढता गया और 1970-71 मे यह 1,080 लाख टन के उच्च उत्पादन स्तर पर पहुच गया। इसके पश्चात् खाद्यान्नो के उत्पादन मे उतार-चढाव होता रहा है। 1978-79 मे खाद्यान्न का उत्पादन बढकर 1,310 लाख टन हो गया। परन्तु 1979-80 मे खाद्यान्न का उत्पादन गिरकर केवल 1 100 लाख टन रह गया और फिर पुन उन्नत होकर 1981-82 मे 1 331 लाख टन तक पहुचा। चाहे 1983-84 मे खाद्यान्न उत्पादन अपने शिखर पर पहुच 1 524 लाख टन हो गया परन्तु 1987-88 मे खाद्यान्न का उत्पादन फिर गिर कर 1 431 लाख टन हो गया। अगले तीन वर्षों मे खाद्यान्न के उत्पादन मे वृद्धि हुई और यह 1990-91 मे 1 764 लाख टन के रिकार्ड स्तर पर हुच गया। परन्तु 1991-92 मे इस मे फिर गिरावट आई और यह 1 671 लाख टन हो गया। खाद्यान्नों के उत्पादन मे उच्चावचन के कारण कीमता पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडता है।

ध्यान देने योग्य एक और बात यह है कि जहाँ अनाज के उत्पादन मे भारी वृद्धि हुई वहाँ दालो का उत्पादन अवरुद्ध रहा अथवा इसमे नाममात्र वृद्धि हुई। भारत जैसे मूलत शाकाहारी देश मे दालो की माग के लगातार बढने के कारण दालो की कीमतो मे तीव्र वृद्धि हुई।

(ख) पण्यागत अतिरेक (Marketed Surplus)–कीमतो मे उतार-चढाव के लिए अनाज के उत्पादन के उतार-चढाव से भी कहीं अधिक पण्यागत अतिरेक का उतार-चढाव महत्त्वपूर्ण होता है। सामान्यत अब यह विश्वास किया जाता है कि बहुत से मध्यम एव बडे वग के किसान फसल काटने के बाद मण्डी मे नहीं डालते बल्कि इसे बाद में अधिक कीमत पर बेचने के उद्देश्य से गोदामो मे इकट्ठा कर रखते हैं। इस सम्बन्ध म यदि अनाज की अनिवार्य वसूली की नीति लागू की जाए, तो वह बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकती है। सामान्यतया यह दखा गया है कि खाद्यान्न के उत्पादन मे वृद्धि के साथ बाजार-आमद (Market arrivals) मे भी वृद्धि होती है।

(ग) आयात–देश मे खाद्य-उत्पादन के अपर्याप्त होने के कारण सरकार को खाद्यान्नो का आयात बढाना पडा। उदाहरणार्थ 1961 मे 35 लाख टन खाद्यान्न आयात के विरुद्ध 1966 मे 104 लाख टन 1968 में 57 लाख टन खाद्यान्न विदेशो स मगवाना पडा। 1972 मे खाद्यान्न आयात बहुत ही कम होकर 5 लाख टन रह गया। सरकार ने पुन खाद्यान्नो का अधिक आयात करना आरम्भ कर दिया (1975 म 74 लाख टन) ताकि बफर-स्टॉक कायम हो सके। 1978 मे खाद्य-उत्पादन वृद्धि के कारण खाद्य-आयात केवल 10 लाख टन रह गया। 1979 म भी 9 5 लाख टन खाद्यान्न और 1980 म 4 लाख टन खाद्यान्न का आयात किया गया। 1981 म केवल 4 5 लाख टन खाद्यान्न आयात किया गया। सरकार ने सूखे की स्थिति का सामना करने के लिए 1988 मे 23 लाख टन खाद्यान्न आयात किया किन्तु 1990 म यह आयात नाममात्र और 1992 मे केवल 8 लाख टन था।

3 सरकार की खाद्य-नीति (Government's Food Policy)

सरकार की खाद्य-नीति या इसका अभाव या इसकी विफलता–खाद्यान्नो के तीव्र अभाव और परिणामत खाद्यान्नो की कीमतो की वृद्धि के लिए जिम्मेदार थी। स्वतन्त्रता के पश्चात् किसी भी समय पर सरकार द्वारा एक उचित एव ध्यानपूर्वक विचारी गई नाति को पालना न की गई अपितु खाद्य-समस्या क हल करने क लिए तदर्थ उपाय (Ad hoc measures) किए गए। भारतीय खाद्य-नीति का मूल उद्देश्य समाज के कमजोर वर्गों को उचित मूल्य की दुकानो द्वारा कम कामत पर खाद्यान्न उपलब्ध कराना रहा है। आयात और वसूली का प्रयोग सार्वजनिक वितरण प्रणाली का पोषण करने के लिए किया गया। 1966-67 तक हमारी खाद्य-नीति का मुख्य आलम्बन पी एल 480 के आधीन विदेशो से खाद्यान्न का आयात था। 1966 के पश्चात् आत्मनिर्भरता की ओर प्रयास किया गया। 1972 के पश्चात् फसल की विफलता के कारण सरकार की खाद्य-नीति लडखडा गई। सरकार ने एक अनुचित समय पर खाद्याना के सरकारीकरण की घोषणा की और व्यापारियो एव बडे किसानो के विरोध के कारण इस निणय को मजबूर होकर पलट दिया। खाद्यान्नो के सम्बन्ध मे बहुत सी अनिश्चितता और अस्पष्टता का मुख्य कारण सरकार द्वारा दीर्घकालीन सुस्पष्ट नाति का अभाव है।

3. खाद्य समस्या को हल करने के दीर्घकालीन उपाय

प्रोफेसर दन्तवाला का यह कथन पूर्णत सही है, "हमे सकट का इलाज नहीं, बल्कि जीर्ण रोग का इलाज करना है और यह चमत्कारी ढग से न होकर धीरे-धीरे ही हो सकता है।" सामान्यत भारत की भावी खाद्य आवश्यकताओ का अनुमान लगाकर अनेक उपायो को अपनाने का, जिनमे अन्न का उत्पादन बढाने और इसके वितरण मे सस्थानात्मक परिवर्तन समाविष्ट है, सुझाव दिया जाता है। समस्या का मर्म तो यह है कि जनसख्या मे वृद्धि तथा प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि के कारण अन्न की माग बढती जाएगी। इनके समाधान के लिए तीन प्रकार के उपाय करने होगे। ये उपाय हैं-(क) उत्पादन बढाने के उपाय (ख) वितरण मे परिवर्तन और (ग) कीमतो को स्थिर करने के उपाय।

1 उत्पादन बढाने के उपाय

(*i*) तकनीकी परिवर्तन–उत्पादन बढाने के उपायो मे ऐसे तकनीकी उपाय है जिनके विषय मे विशेष विवाद नहीं है। उत्पादन बढाने के लिए किसानो को उन्नत बीज, अधिक उर्वरक और सिचाई सुविधाएँ आदि प्रदान की जानी चाहिएँ। सघन खेती विकास प्रोग्राम, जिसमे उन्नत किस्म के अधिक उपजाऊ बीज रासायनिक खाद और सिचाई शामिल हैं, के विस्तार की योजना है जो भारतीय ग्रामो मे हरित क्राति (Green Revolution) ला रही है। उक्त उपायो से सघन खेती (Intensive cultivation) करने के अलावा भूमि-सुधार और भूमि-पुनरुद्धार (Land reclamation) करके विस्तीर्ण खेती भी की जानी चाहिए।

(*ii*) सस्थानात्मक परिवर्तन (Institutional changes)—कृषि-उत्पादन बढाने का दूसरा उपाय आवश्यक सस्थानात्मक परिवर्तन अर्थात् भूमि-सुधार है। भारत का वर्तमान कृषि ढाचा इस प्रकार है कि किसान को उत्पादन बढाने के लिए बिल्कुल प्रोत्साहन नहीं मिल पाता। ऐसी व्यवस्था जिसमे छोटे-छोटे और बिखरे हुए खेत हो, काश्तकारो को पट्टे की सुरक्षा प्राप्त न हो और उनसे अत्यधिक लगान वसूल किया जाता हो, किसानो को खेती मे विनियोग करने से निरुत्साहित करती है। भारत सरकार भू-सुधारो पर विशेष बल दे रही है। कुछ विशेष प्रकार के भू-सुधारो की तुरन्त आवश्यकता है जैसे काश्तकारी की शर्तों मे सुधार। इससे किसानो को काश्त की सुरक्षा प्राप्त होगी। जोत की अधिकतम सीमा लागू करने और काश्तकारी सुधारों को लागू करने पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।

(*iii*) सगठनात्मक तत्व–कृषि विकास के सम्बन्ध मे तीसरी प्रकार के उपाय सगठनात्मक हैं। उन्नत बीजो, उर्वरको, सिचाई सुविधाओ, कीटनाशको आदि के उपयोग से भी कृषि-उत्पादन बढाने के प्रयत्नो से हमे सफलता नहीं मिल सकी। इसका मुख्य कारण हमारे सगठन का दोषपूर्ण होना है। सगठन के अन्तर्गत न केवल सरकारी प्रशासन व्यवस्था का ही समावेश है, बल्कि सरकारी और अर्द्ध-सरकारी सस्थाएँ तथा सहकारी समितियाँ, पचायते और सामुदायिक विकास भी सम्मिलित हैं। कृषि के विकास में *सगठनात्मक तत्वो (Organisational factors)* के महत्त्व से इन्कार नहीं किया जा सकता।

2 वितरण सम्बन्धी परिवर्तन (Distributional changes)

पिछले कुछ वर्षों से सरकार ने वितरण के क्षेत्र मे प्रवेश किया है। 1956 मे जहा सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा 20 लाख टन खाद्यान बाटा गया, वहाँ 1991 मे 206 लाख टन खाद्यान्न सार्वजनिक वितरण के आधीन आ गया। सरकार ने अभावग्रस्त क्षेत्रो की आवश्यकताओ को पूर्णतया सन्तुष्ट करने का निर्णय किया। इसलिए इसने थोक व्यापार को लाइसेस पद्धति तथा लाभान्तर (Profit margin) निश्चित कर नियन्त्रित करने का प्रयास किया है। अतिरेक वाले राज्यो मे वसूली (Procurement) का कार्य राज्यीय सरकारें ही करती हैं और इसके लिए भारतीय खाद्य निगम *(Food Corporation of India)* प्रत्येक राज्य मे कार्य करता है और बडे पैमाने पर खाद्यान्नो की वसूली करता है।

खाद्यान्नो के उत्पादन मे भारी वृद्धि के परिणामस्वरूप सरकार ने खाद्यान्नो की गतिविधि और कीमतो पर से सभी नियत्रण हटा लिए हैं। भारत से चावल का निर्यात अन्य देशो को किया जा रहा है।

3 खाद्यान्नो की कीमतो को स्थिर करना

हाल ही के वर्षों मे खाद्य-नीति का मुख्य उद्देश्य खाद्यान्नो की कीमतो को बढने से रोकना रहा है। सरकार इस सम्बन्ध मे जो अल्पकालीन उपाय करती आई है, उनमें इसका समावेश है काफी मात्रा मे खाद्यान्नो का आयात, उचित कीमतो की दुकानो के माध्यम से विक्रय के लिए सरकार द्वारा देश के भीतर अन्न की अधिक वसूली, जमाखोरी और मुनाफाखोरी (Hoarding and profiteering) को रोकने के उपाय करना, अधिकतम नियन्त्रित भावो का निर्धारण तथा रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा चयनात्मक उधार नियन्त्रण उपायो (Selective credit control measures) का प्रयोग। इनम से कुछ उपायो का कुछ-न-कुछ परिणाम निकला ही है किन्तु फिर भी अभी तक के अनुभव से यह सिद्ध हुआ है कि कीमते स्थिर नहीं

की जा सकें। इसी उद्देश से भारत सरकार ने कृषि कीमत आयोग (Agricultural Prices Commission) स्थापित किया है जो खाद्यान्नो की वसूली कीमते निश्चित करने की सिफारिश करता है।

न केवल खाद्यान्नो की कीमतो को स्थिर करने के लिए बल्कि सामान्य कीमत स्तर को भी स्थिर करने के लिए बफर-स्टॉक क्रियाएँ (Buffer stock operations) केन्द्रीय महत्त्व रखती हैं। यदि इनका प्रयोग व्यवहारिकता एव बुद्धिमत्ता से किया जाए, तो ये किसान और उपभोक्ता दोनो की कीमतो के उच्चावचन के विरुद्ध सुरक्षा कर सकती हैं। बफर-स्टाक का मूल इस बात मे है कि अच्छे वर्षों में जब कीमतें कम होती हैं, तो सरकार क्रय करती है और बुरी फसल के काल में जब कीमतें चढने लगती हैं तो सरकार भूतकाल मे खरीदे हुए माल को बेचती है। इस प्रकार विचक्रीय क्रय एव विक्रय (Contra cyclical purchase and sale) की इस क्रिया द्वारा देश मे कीमतो की स्थिरता कायम की जाती है। इसके अतिरिक्त, बफर-स्टॉक क्रियाओ मे सरकार अतिरेक वाले क्षेत्र मे खरीद कर अभाव वाले क्षेत्रो मे फसल बेचती है। इसके फलस्वरूप न केवल कीमतो मे क्षेत्रीय समानता (Regional equality) स्थापित होगी बल्कि उपलब्ध खाद्यान्न का श्रेष्ठ वितरण भी सम्भव है। बफर स्टॉक क्रियाओ का आयोजन इस प्रकार करना चाहिए कि सरकार को भारी वित्तीय हानि न हो।

1973-74 मे सरकार ने 50 लाख टन बफर-स्टॉक कायम करने का निर्णय किया परन्तु इस दिशा मे महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई और वास्तव मे, 1986 मे 300 लाख टन का बफर-स्टॉक कायम हो गया। इसका मुख्य श्रेय पजाब हरियाण और उत्तर प्रदेश मे भारी मात्रा मे वसूली (Procurement) करना था जो इन राज्यो मे गेहूँ के उत्पादन मे आश्चर्यजनक वृद्धि के कारण सभव हो सकी। देश के हित को दृष्टि मे रखते हुए बफर-स्टॉक कायम करना अत्यन्त आवश्यक है ताकि सूखे के वर्षों के दौरान खाद्यान्नो की कमी को इस स्टॉक से माल जारी करके मर्यादित किया जा सके। इसी प्रकार भरपूर फसल के वर्षों में कीमतो मे तेज गिरावट को रोकने के लिए सरकार को भारी मात्रा में अनाज खरीदना पडता है ताकि किसानो को उचित कीमते प्राप्त हो सके और उत्पादन पर दुष्प्रभाव न पड़े।

देश में खाद्यान्नो की कीमतो पर अब कोई नियत्रण नहीं है। नियत्रण केवल यह है कि चावल और गेहूँ सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा निश्चित कीमतों पर बाटा जाता है।

4 कृषि उत्पादन के लिए कीमत प्रोत्साहन

मुख्य कठिनाई तो खाद्यान्नो की कीमतो से सम्बन्धित है। भारत तथा विदेश के सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री इस बात पर बल देते हैं कि कृषि-क्रान्ति का कीमतो से घनिष्ठ सम्बन्ध है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था मे कीमत-उत्पादन अनुपात (Price production ratio) मे परिवर्तन लाना अत्यन्त अनिवार्य है। इस सम्बन्ध मे अमरीकी विशेषज्ञो के दल की फार्म कीमतो (Farm prices) के बारे मे सिफारिश बहुत महत्त्वपूर्ण है। सयुक्त राज्य अमेरिका और अन्य देशो के अनुभव के आधार पर इस दल ने सकेत किया है कि 'अधिक प्रोत्साहक कीमते' (Highly incentive prices) कृषि विकास योजना की कुजी हैं। परन्तु वर्तमान प्रादेशिक प्रणाली मे अतिरेक वाले राज्यो में कीमते मन्द ही रहती हैं। तात्पर्य यह है कि इन राज्यो मे किसान कृषि मे आधुनिक तकनीक का परिचालन करने के लिए उत्साहित नहीं हो सकते। यदि किसान को आधुनिक तकनीक के प्रयोग के लिए तैयार करना हो तो उसे लाभकर एव प्रोत्साहक कीमते उपलब्ध होने की प्रत्याशा अवश्य होनी चाहिए। यह तभी सम्भव हो सकता है यदि प्रादेशिक प्रणाली को समाप्त कर खाद्य-पदार्थों मे राष्ट्रीय बाजार का विकास किया जाए। सरकार ने एक-राज्यीय क्षेत्र (Single state zones) की प्रणाली का परित्याग कर दिया है और देश भर मे खाद्यान्नो की निर्बाध गतिविधि की इजाजत दे दी है।

अत यह अनिवार्य है कि लाभकर कीमते (Remunerative prices) फसल के फौरन बाद की कीमतो की अपेक्षा क्षीण मौसम की कीमतों के निकट हों। यह एक महत्त्वपूर्ण शिक्षा है और जब तक सरकार कीमत-उत्पादन अनुपात को ऊँचा उठाने का प्रयास नहीं करगी, खाद्यान्नो मे स्वावलम्बिता (Self sufficiency) प्राप्त करनी असम्भव हो जाएगी। कारण यह है कि समृद्ध किसान तो अपने अतिरिक्त उत्पादन को क्षीण मौसम तक स्टॉक कर सकते हैं ताकि उन्हे अपने उत्पादन के लिए अधिक कीमत वसूल हो सके परन्तु कुल कृषि-उत्पादन बढाने के लिए छोटे किसानो को लाभकर कीमते उपलब्ध करानी होगी।

निष्कर्ष यह है कि खाद्य समस्या अभी काफी देर तक बनी रहेगी। लगातार बढती हुई जनसख्या तथा आय मे निरन्तर वृद्धि के कारण खाद्यान्नो की माग मे वृद्धि होना स्वाभाविक है। सरकार को समस्या के समाधान के लिए अधिक अन्न उत्पादन, नगरो की जनता के लाभ के लिए पण्यागत अतिरेक (Marketed surplus) मे वृद्धि, वितरण की उत्तम और सूक्ष्म व्यवस्था तथा खाद्यान्नो की कीमतो के स्थिरीकरण आदि विषयो पर बल देना होगा। फोर्ड फाउण्डेशन दल ने सही ही कहा है, "पर्याप्त अन्न जुटाए बिना, भारत की मानव कल्याण की उन्नति सामाजिक न्याय तथा लोकतन्त्र की सिद्धि की आशाएँ लगभग असम्भव हो जाएँगी।"

33
हरी क्रान्ति
(THE GREEN REVOLUTION)

1 नयी कृषि विकास रणनीति और 1960 के पश्चात् भारतीय कृषि का आधुनिकीकरण

1960 70 के दशक के मध्य के पश्चात् भारत में पारम्परिक कृषि व्यवहारों (Agricultural practices) का प्रतिस्थापन आधुनिक तकनालाजी एवं फार्म व्यवहार से किया जा रहा है। इसके परिणामस्वरूप भारत में एक कृषि क्रान्ति हो रही है। आरम्भ में नयी तकनालाजी का प्रयोग 1960 61 में सघन आई. ए. डी. पी. जिलों में एक मार्गदर्शी परियोजना (Pilot project) के रूप में किया गया। इसके बाद अधिक उपजाऊ किस्म के बीज (High yielding varieties) के प्रोग्राम को आई. ए. डी. पी. के साथ जोड़ दिया गया और इस विकास विधि को पूरे देश भर में विस्तार करने का लक्ष्य तय किया गया। इसे हरी क्रान्ति (Green Revolution) कहने की बजाए यह कहना बेहतर होगा कि इसे भारतीय कृषि का आधुनिकीकरण (Modernisation) कहा जाए।

पारम्परिक कृषि अधिकतर देशीय आदानों (Indigenous inputs) पर निर्भर करती है। इसमें कार्बनिक खादों, साधारण हलों एवं अन्य अपरिष्कृत कृषि औजारों, बैलों आदि का प्रयोग होता है। इसके विरुद्ध आधुनिक तकनालाजी में रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, बीजों की उन्नत किस्मों (जिनमें संकर बीज भी शामिल हैं), कृषि मशीनरी, विस्तृत सिंचाई, डीजल और विद्युत शक्ति आदि का प्रयोग सम्मिलित है। 1966 के पश्चात् आधुनिक कृषि आदानों (Modern agricultural inputs) के प्रयोग में 10 प्रतिशत की वार्षिक चक्रवृद्धि दर से उन्नति हुई है और इसकी तुलना में इसी काल के दौरान पारम्परिक आदानों का प्रयोग केवल 1 प्रतिशत प्रतिवर्ष बढ़ा है।

नयी कृषि तकनालाजी ऐसे समाधनों अर्थात् उर्वरकों, कीटनाशकों, कृषि-मशीनरी आदि पर आधारित है जो कृषि क्षेत्र के बाहर उत्पन्न किए जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप आधुनिक फार्म-आदानों (Farms inputs) के उत्पादन करने वाले उद्योगों का तीव्र गति से विकास हुआ है। फार्म यन्त्रीकरण (Farm mechanization) और सिंचाई के सघन प्रोग्रामों के फलस्वरूप ग्राम क्षेत्रों में बिजली और डीजल के उपभोग में वृद्धि हुई।

आधुनिक तकनालाजी के गुणार्थ

नयी तकनालाजी अपनाने के फलस्वरूप फसलों के कुल उत्पादन और उत्पादिता एवं रोजगार में लगातार वृद्धि हुई है। गेहूं, चावल, मक्का, आलुओं आदि के सम्बन्ध में *प्रभावशाली परिणाम प्राप्त हुए हैं। नयी तकनालाजी के* अपनाने से रोजगार में भी वृद्धि हुई है क्योंकि बहु विध फसलों और भाड़े मजदूरों के प्रयोग से रोजगार के अवसरों को विविध दिशाओं में विस्तार हुआ है। इसके साथ ही कृषि मशीनरी के अत्यधिक प्रयोग से श्रम का विस्थापन (Displacement of labour) भी हुआ है।

नयी तकनालाजी और कृषि के आधुनिकीकरण ने कृषि और उद्योग के परस्पर सम्बन्ध को और मजबूत बना दिया है। पारम्परिक कृषि में भी कृषि एवं उद्योग का *अग्रगामी सम्बन्ध* (Forward linkage) बहुत प्रबल था क्योंकि कृषि उद्योग के लिए बहुत से आदान मुहैया कराती है परन्तु इनमें प्रतिगामी सम्बन्ध (Backward linkage) बहुत कमजोर था क्योंकि कृषि द्वारा उद्योग से उत्पन्न बहुत कम निर्मित वस्तुओं का प्रयोग होता था। परन्तु कृषि के आधुनिकीकरण के कारण कृषि द्वारा उद्योग के माध्यम से उत्पन्न आदानों (inputs) की माग में भारी वृद्धि हुई है और परिणामत कृषि का प्रतिगामी सम्बन्ध और मजबूत हो गया है। इस प्रकार कृषि एवं उद्योग में सम्बन्ध प्रबल हो गया है।

आधुनिक तकनालाजी से उन क्षेत्रों को सबसे अधिक लाभ हुआ है जो साधन सम्पन्न हैं और इसके परिणामस्वरूप अन्त क्षेत्रीय असमानताओं (Inter regional disparities) में वृद्धि हुई है। भारत के 80 प्रतिशत क्षेत्रफल में अब भी कृषि वर्षा की अनिश्चितता पर निर्भर है और नयी तकनालाजी इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कर पायी। इससे देश के बहुत से भागों में उत्पादन एवं उत्पादिता के निम्न स्तरों की व्याख्या होती है। इससे कुछ वर्षों में

खाद्यान्नों एव नकद-फसलो के उत्पादन के निम्न स्तरो की भी व्याख्या होती है।

छोटे किसान जिनके वित्तीय स्रोत बहुत क्षीण हैं और जिनकी ऋणपात्रता बहुत कमजोर है, नयी तकनालाजी को बडे पैमाने पर अपना नहीं सके हैं। ग्राम-परिवारो का बहु-सख्यक भाग जिसके पास बहुत थोडी भूमि है या भूमि है ही नहीं, नई तकनालाजी से सबसे कम लाभ प्राप्त कर पाया है। नयी तकनालाजी मे अन्तर्निहित अधिक जोखिम ससाधनो पर सीमित नियन्त्रण और सस्थानात्मक सुविधाओ का अभाव कृषि की आधुनिक तकनीक के विकास मे मुख्य अडचने हैं।

नयी तकनालाजी ने किसान को बाजार-प्रेरित (Market oriented) बना दिया है। किसान आदानो के सभरण के लिए और अपने उत्पाद की माग के लिए बाजार पर अधिक निर्भर हो गए हैं। इसके साथ-साथ जैसे-जैसे नयी तकनालाजी के प्रयोग से किसानो की नकद आवश्यकताओ मे वृद्धि हुई है, उनकी कृषि-उधार की माग भी बढ गई है।

अन्तिम, आधुनिक तकनालाजी ने पारम्परिक तकनालाजी पर अपनी श्रेष्ठता केवल उन्हा क्षेत्रो मे स्थापित की है जिनमे "उचित परिस्थितिया" विद्यमान हैं परन्तु जैसा कि पहले सकेत किया जा चुका है, ये परिस्थितिया तो कुछ चुने हुए क्षेत्रो मे ही पायी जाती हैं और देश का शेष भाग उन्नत तकनालाजी के लिए उचित नहीं है। अत आवश्यकता इस बात की है कि ऐसी कम-लागत वाली तकनालाजी (Low cost technology) का विकास किया जाए जो छोटे किसानो द्वारा अपनायी जा सके और जिसके द्वारा स्थानीय ससाधनों का प्रयोग एव विदोहन हो सके।

2. नयी कृषि विकास रणनीति (Strategy) की उपलब्धियाँ

नयी कृषि विकास-रणनीति की मुख्य उपलब्धि अनाजो अर्थात् गेहू और चावल के उत्पादन को बढावा देना है। तालिका 1 म पिछले कुछ वर्षों के दौरान मुख्य खाद्य फसलो का उत्पादन दिया गया है। तालिका पर ध्यानपूर्वक विचार करने से पता चलता है कि चावल का उत्पादन जो 1960-61 मे 350 लाख टन था बढ कर 1994 95 मे 800 लाख टन हो गया जाहिर है भारत की इस मुख्य फसल म उत्पादन तेजी से बढा है। प्रति हेक्टेयर उत्पादन मे भी वृद्धि हुई है और यह 1960-61 मे 1 010 किलोग्राम से बढकर 1994-95 में 1,900 किलोग्राम हो गया।

गेहूँ का उत्पादन जो 1960-61 मे 110 लाख टन था बढकर 1994-95 मे 590 लाख टन हो गया। इस वृद्धि का कुछ भाग तो क्षेत्रफल में विस्तार के कारण था, परन्तु इसी अवधि के दौरान प्रति हेक्टेयर उत्पादन 850 किलोग्राम से बढकर 2 400 किलोग्राम हो गया अर्थात् 35 वर्षों के दौरान इसमे 182 प्रतिशत की वृद्धि हुई। जबकि मक्का ने भी प्रभावशाली प्रगति दिखायी है, अन्य मोटे अनाजो और दालों मे कोई वृद्धि नही हुई, बल्कि इस अवधि के दौरान इनमे गिरावट आयी है।

तालिका 1 खाद्यान्नो के उत्पादन की प्रगति

लाख टन

	1960 61	1990-91	1994-95
चावल	3~0	750	800
गेहूँ	110	550	590
(क) कुल अनाज	690	1 620	1 700
(ख) कुल दाले	130	140	150
कुल खाद्यान्न (क + ख)	820	1,760	1,850

हरित क्रान्ति की आरम्भिक सफलता के पश्चात् यह आशा की जाती थी कि खाद्यान्न के उत्पादन म वृद्धि की प्रवृति बना रहगी। इसी कारण 1970-71 मे खाद्यान्न उत्पादन बढकर 1 080 लाख टन हो गया। यह बात बडे गर्व से घोषित की गयी कि हरित क्रान्ति के परिणामस्वरूप खाद्य-आयात बन्द कर दिए गए हैं और काफी अच्छी मात्रा मे बफर-स्टॉक एकत्र कर लिए गए हैं परन्तु 1972-73 में सूखा पडने के कारण यह स्थिति कायम न रह सकी। पाचवीं योजना के दौरान भी खाद्यान्न के उत्पादन मे तेज उच्चावचन हुए हैं। 1974-75 के 1,000 लाख टन के निम्न स्तर से उत्पादन बढ कर 1975-76 मे 1,210 लाख टन हो गया फिर 1976-77 मे यह गिर कर 1,110 लाख टन हो गया परन्तु 1978-79 मे यह बढ कर 1,320 लाख टन हो गया। मौसम के खराब होने के कारण 1979-80 मे खाद्यान्न उत्पादन तीव्र रूप से गिरकर 1 097 लाख टन हो गया जो कि 1970-71 के उत्पादन के लगभग बराबर था। 1985-86 में 1 520 लाख टन का रिकार्ड खाद्यान्न उत्पादन हुआ किन्तु बुरे मौसम के कारण यह गिरकर 1987-88 मे 1,380 लाख टन रह गया। 1990-91 मे खाद्यान्न का उत्पादन एकदम तेजी से बढकर 1,760 लाख टन हो गया, परन्तु 1991-92 के दौरान गिरकर 1,670 लाख टन रह गया। 1994-94 मे खाद्यान्न उत्पादन पुन बढकर 1,850 लाख टन हो गया।

नयी कृषि विकास रणनीति क आरम्भ के पश्चात कृषि उत्पादन मे उच्चावचन सम्बन्धी दो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं –

(क) अनाज का उत्पादन पहले की भाति मौसम पर बहुत हद तक निर्भर है, और

(ख) अब गत वर्षों की अपेक्षा अधिकतम एव न्यूनतम उत्पादन कहीं अधिक है।

चूंकि हरित क्रान्ति का मुख्य बल खाद्यान्नों के उत्पादन को बढ़ाना था, इसलिए वाणिज्य फसलों (Commercial crops) के उत्पादन में वृद्धि की आशा करना उचित नहीं होगा। तालिका 2 से स्पष्ट है कि 1969 70 और 1974-75 के दौरान गन्ने, रुई, पटसन और तिलहनों के उत्पादन में कोई उल्लेखनीय उन्नति व्यक्त नहीं हुई। डा. धर्म नारायण ने इस परिस्थिति को शेष फसलों के उत्पादन में लगभग पक्षाघात (Paralysis) की संज्ञा दी है। 1974 75 के पश्चात् गन्ने के उत्पादन में महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई। परन्तु इस वृद्धि को क्रान्ति कहना उचित नहीं होगा।

तालिका 2 भारत में वाणिज्य फसलों का उत्पादन

वस्तु	इकाई	1960 61	1980 81	1990 91	1994-95
गन्ना (गुड़)	लाख टन	1 100	1 540	2 410	2 460
रुई	लाख गांठें	60	70	100	130
पटसन	लाख गांठें	40	80	90	80
तिलहन	लाख टन	70	90	180	180

स्रोत भारत सरकार आर्थिक समीक्षा 1994 95

कुल रूप में हरित क्रान्ति ने दालों के उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं डाला जबकि 1970 71 में खाद्यान्नों में इनका उत्पादन 118 टन था यह 1994-95 में बढ़कर 150 लाख टन हो गया। अतः दालों का उत्पादन पिछले 35 वर्षों में अवरुद्ध ही रहा या इसमें नाममात्र वृद्धि हुई। अतः हरित क्रान्ति केवल अनाजों जिनमें मुख्यतः गेहूँ, मक्का और बाजरा गिने जा सकते हैं तक ही सीमित रही। जबकि चावल का उत्पादन 1968 69 से 1978-79 के दौरान बड़ी मन्द गति से बढ़ा परन्तु इसके बाद चावल के उत्पादन में भी महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई। गेहूँ केवल एक ऐसी फसल है जिसके उत्पादन में लगातार वृद्धि व्यक्त हुई।

3 नयी विकास रणनीति के पक्ष में तर्क

नयी विकास रणनीति के समर्थकों के अनुसार गहन उत्पादन प्रणाली भारतीय कृषि में अल्पकाल में उग्र विकास करने का एक मात्र उपाय है। खाद्यान्नों में स्वावलम्बिता प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है कि ऐसी उत्पादन-विधि अपनाई जाए जिससे पर्याप्त मात्रा में अतिरिक्त अन्न उत्पन्न हो सके।

दूसरे भारत में कृषि-आदान (Agricultural inputs) न्यून मात्रा में उपलब्ध हैं और इस सम्बन्ध में सारे देश की आवश्यकताओं को पूरा करना सम्भव नहीं। इसलिए सारे देश में कृषि आदानों में इसकी सकेन्द्रित खुराकों का प्रयोग किया जा सकता है। नई रणनीति के समर्थक दूसरे प्रकार की नीति को न्यायोचित मानते हैं क्योंकि उनके विचार में इस नीति द्वारा ही अल्पकाल में अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त 1960-70 के दशक की पौरी समस्या देश को खाद्यान्न के सम्बन्ध में कम-से-कम समय में आत्मनिर्भर बनाना थी।

तीसरे यह तर्क दिया गया कि कृषि आदानों की अधिक खुराकों के प्रयोग से वर्द्धमान प्रत्याय (Increasing returns) प्राप्त की जा सकती हैं और इस प्रकार इस नीति के लिए उचित आर्थिक आधार भी उपलब्ध है।

चौथे श्रेष्ठतर खेती के तरीके का यदि बड़े पैमाने पर ग्रामों में प्रदर्शन किया जाए तो अन्य क्षेत्रों में किसानों को उत्तम तकनीक अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। अतः गहन कृषि विकास प्रोग्राम से एक लाभकारी चक्र गतिशील हो सकेगा जो कि धीरे धीरे क्षमता प्राप्त कर लेगा। इस प्रकार प्रोग्राम के प्रसार प्रभाव के फलस्वरूप भारतीय कृषि की उत्पादिता का स्तर उन्नत किया जा सकेगा।

पांचवें किसी विशेष क्षेत्र में उन्नत उत्पादन के अन्य क्षेत्रों पर अच्छे द्वितीयक एवं तृतीयक प्रभाव होंगे। उदाहरणार्थ देश में अन्न की अधिक मात्रा में उपलब्धि से खाद्य आयात पर हमारी निर्भरता कम हो जाएगी। इस प्रकार दुर्लभ विदेशी मुद्रा (Scarce foreign exchange) की बचत होगी जिसका प्रयोग अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के लिए किया जा सकेगा। इसी प्रकार व्यापारिक फसलों के उत्पादन में वृद्धि के कारण कृषि पर आधारित उद्योगों का भी विस्तार हो सकेगा।

4 नयी कृषि विकास रणनीति की कमजोरियां

(1) भारतीय कृषि में पूंजीवादी खेती का विकास—अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए उर्वरकों और सिंचाई पर भारी विनियोग करना पड़ता है। भारी विनियोग करना छोटे और मध्यम श्रेणी के किसानों की क्षमता से बाहर है। भारत में लगभग 810 लाख जोत हैं परन्तु केवल 6 प्रतिशत बड़े किसानों के पास कुल भूमि का 40 प्रतिशत है और केवल यही नलकूप पम्पिंग सेट उर्वरक और भारी मशीनरी के रूप में भारी विनियोग कर रहे हैं। परिणामतः नई कृषि-उत्पादन रणनीति के कारण भारत में पूंजीवादी खेती का विकास हुआ है। अतः कृषि क्रान्ति में प्रसार प्रभाव का अभाव और इस कारण भारतीय खेती में विकास कुछ आर्थिक घेरों में सीमित हो गया है। परिणामतः निर्धन किसानों को लाभ नहीं हुआ बल्कि इसके कारण ग्रामीण जनसंख्या के उच्चतम 10 प्रतिशत भाग के हाथ में सम्पत्ति का संकेन्द्रण हुआ है।

अशोक रुद्र, माजिद और तालिब ने पूजीवादी खेतो का विश्लेषण करने के लिए पजाब के बडे किसानों का अध्ययन किया। उन्होने पूजीवादी किसानो की परिभाषा ऐसे किसानो के रूप मे की जिनके पास 20 एकड से अधिक भूमि थी। इस अध्ययन से व्यक्त हुआ कि 20 एकड से अधिक आकार वाले फार्मों की सख्या 67 000 है और इसके आधीन 26 2 लाख एकड क्षेत्रफल है। इस प्रकार 1955-56 और 1967-68 के दौरान बडे किसानो के स्वामित्वाधीन क्षेत्रफल मे 9 5 प्रतिशत की वृद्धि हुई। और अधिक गहन अध्ययन से पता चला कि 20-25 एकड के आकार वाले फार्मों मे केवल 4 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि इसकी तुलना मे 100-150 एकड वाले फार्मों म 40 प्रतिशत की वृद्धि हुई और अधिकतर वृद्धि नयी तकनीक द्वारा ही सम्भव हुई। अत भारत मे भद्र किसानो (Gentlemen farmers) की सख्या मे वृद्धि का काफी प्रमाण उपलब्ध है। इनमें मिलिटरी की नौकरी से रिटायर हुए अफसर, रिटायड सिविल अफसर, शहरी व्यापारी शामिल हैं जो अपनी आय उद्योग या व्यापार से प्राप्त करते हैं और जिन्होने हाल हो मे कृषि को एक उद्योग के रूप मे चलाना आरम्भ किया है। यह वर्ग कृषि मे विनियोग को लाभदायक समझता है। पजाब मे इनकी सख्या कुल किसानो की सख्या का 3 प्रतिशत है। पूजीवादी किसानो, जिनमे भद्र किसानो के अतिरिक्त प्रगतिशील किसान भी शामिल हैं, के आधीन कुल फार्मो का 8 5 प्रतिशत फाम हैं जो कि कुल कृषि योग्य क्षेत्रफल के 27 प्रतिशत क्षेत्र पर फैले हुए हैं। इस वर्ग के किसान ही ट्रैक्टरो नलकूपो, पम्पिंग सेटो और अन्य उपकरणो पर विनियोग कर सकते हैं। इसी प्रकार ये किसान अपनी जोतो पर बिल्डिंग भू-सुधार और अन्य मरम्मत आदि के लिए पूजी-व्यय करने की सामर्थ्य रखते हैं। सर्वेक्षण के आधार पर यह परिणाम निकला है कि बडे फार्मों पर प्रति एकड अधिक पूजी-व्यय किया जाता है जो कि इनमे यन्त्रीकरण (Mechanisation) का सूचक है।

फ्रासीन फ्रकनेल, USAID विशेषज्ञ ने भारत के किसानो पर नयी कृषि विकास-रणनीति के समाजार्थिक सम्बन्धी (Socio-economic relations) पर प्रभाव का अध्ययन किया। उनके अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष निम्नलिखित हैं

(i) बहुसख्यक ऐसे किसानो ने जिनकी अलाभकर जोतो का आकार 2-3 एकड है, उर्वरको भी थोडी खुराको का प्रयोग करके अपने उत्पादन को बढा लिया है परन्तु कुल उत्पादन मे वृद्धि अपर्याप्त होने के कारण इनमे से भूमि विकास के लिए पूजी-अतिरक (Capital surplus) प्राप्त करना सम्भव नहीं।

(ii) ऐसे छोटे किसानो की आर्थिक दशा और भी खराब हो गई है जो काश्त के लिए कुछ भूमि पट्टे पर लेते हैं या शुद्ध रूप से मुजार (Tenants) हैं। हाल ही के वर्षो मे भूमि के मूल्य मे वृद्धि के परिणामस्वरूप लगान मे वृद्धि के कारण और/या नई अधिक लाभदायक तकनीक के प्रयोग के प्रभावाधीन भूस्वामियो मे अपनी भूमि स्वय-काश्त करने की प्रवृत्ति के कारण छोटे किसानो एव काश्तकारो की आय पर दुष्प्रभाव पडा है।

(iii) केवल बहुत ही थोडी सख्या वाले काश्तकार, जिनकी जोत का आकार 10 एकड या इससे अधिक है, भू-विकास के लिए विशेषकर छोटी सिचाई के लिए जोकि आधुनिक आदानो के कुशल प्रयोग के लिए एक अनिवार्य शर्त है पूजी-अतिरक गतिमान करने की स्थिति मे हैं। इसके अतिरिक्त इस वर्ग ने अपने लाभ को और अधिक बढाने के लिए अपने अतिरिक्त लाभ का प्रयोग भूमि-क्रय करने काश्त आधीन भूमि को उन्नत करने और आधुनिक उपकरण खरीदने मे किया है।

(iv) 20 एकड या इससे अधिक भूमि वाले किसानो को सबसे अधिक परम एव सापेक्ष लाभ प्राप्त हुआ है। इसका कुछ हद तक तो कारण यह है कि उन्होने फार्म क्रियाओ का यन्त्रीकरण किया है ताकि दोहरी या बहुफसल उत्पन्न की जा सके परन्तु एक कारण यह है कि उन्होने अपने फसल ढाचे का विस्तार कर अधिक लाभदायक वाणिज्यिक फसलो को समाविष्ट कर लिया है।

(v) किसानो की बहुसख्या-चावल क्षेत्र मे 75 से 89 प्रतिशत-की आर्थिक स्थिति मे गिरावट आयी है और अधिकतर अनुपात ऐसे किसानो का है जिनके जीवन-स्तर मे परम रूप म अवनति हुई है इनमे मौखिक पट्टे (Oral leases) पर काश्त करने वाले असुरक्षित मुजारे हैं।

(2) भारतीय कृषि मे सस्थानात्मक सुधारों (Institutional reforms) की आवश्यकता पर बल न देना—नई उत्पादन रणनीति कृषि मे सस्थानात्मक सुधारो की आवश्यकता को स्वीकार नहीं करती। किसानो के अधिकतर भाग को भू-अधिकार उपलब्ध कराने का तो बात ही क्या, हम भू-धारण की निश्चितता भी उपलब्ध नहीं करा पाए हैं। परिणामत किसानो की बेदखलिया बडे पैमाने पर की गई हैं। इसके नतीजे के तौर पर काश्तकारो को विवश होकर फसल सहभाजको (Share croppers) की स्थिति स्वीकार करनी पड रही है। मिन्हास और श्रीनिवास ने उर्वरक प्रयोग के सम्बन्ध में फसल-सहभाजन (Crop sharing) के प्रभाव का अध्ययन किया है। उनकी मूल कल्पना यह है कि उर्वरको पर व्यय कृषको द्वारा उधार प्राप्त करके किया जाता है और इस उधार के लिए 10 प्रतिशत ब्याज देना पडता है। चूकि एक फसल अवधि लगभग 6 मास होती है, इसलिए

ब्याज को कुल खर्च का लगभग 20 प्रतिशत माना जाएगा। यदि हम लाभ अधिकतम करने के पूँजीवादी सिद्धान्त को कसौटी माने तो वह किसान जो भू स्वामी हैं सिचाई-प्राप्त गेहू के क्षेत्रो मे 180 प्रतिशत लाभ प्राप्त करते हैं और चावल के सम्बन्ध मे यह लाभ 183 प्रतिशत है। इसकी तुलना मे काश्तकारी-कृषि (Tenancy cultivation) जो 50 प्रतिशत के आधार पर की जाती है से यह लाभ गेहूँ के सम्बन्ध मे 65 प्रतिशत और चावल के सम्बन्ध मे 67 प्रतिशत रह जाता है। 40 प्रतिशत के आधार पर फसल सहभाजन की अवस्था मे यह लाभ घट कर केवल 43 प्रतिशत रह जाता है। अत यह निष्कर्ष स्वाभाविक है कि उर्वरक प्रयोग के विस्तार मे काश्तकारी खेती एक बडी बाधा है। अधिकतम लाभ प्राप्त करने वाली कसौटी जोकि पूजीवादी अर्थशास्त्र का आधार है इस बात को सुस्पष्ट करती है कि काश्तकारो की अपेक्षा भू स्वामी ही उर्वरको की अधिक मात्रा का प्रयोग कर सकते हैं।

3 आय की बढती हुई असमानताए-कृषि म तकनीकी परिवर्तनो का ग्राम-क्षेत्रा म आय-वितरण पर दुष्प्रभाव हुआ है। भारतीय कृषि मे तकनाकी परिवर्तन और वितरण सम्बन्धी लाभो के बारे म अपने अध्ययन से सी एच हनुमन्तराव यह निष्कर्ष प्राप्त करता है "तकनीकी परिवर्तनो से एक ओर विभिन्न क्षेत्रो छोटे और बडे फार्मो और भू-स्वामियो के बीच आय की असमानताए बढी हैं और दूसरी ओर भूमिहीन मजदूरा और मुजारो मे खाइ और चौडी हो गयी है। किन्तु परम रूप मे तकनाकी परिवर्तन के लाभ सभी वर्गो मे बटे हैं। इनका सकेत तकनीकी परिवर्तन के अनुभव करने वाले क्षेत्रो मे वास्तविक मजदूरी एव रोजगार मे वृद्वि और छोटे किसाना की आय मे वृद्धि के रूप में मिलता है।"[1]

फिर भी हरी क्रान्ति के प्रधान लाभ प्राप्तकर्त्ता तो बडे किसान ही हैं जो अपने लाभ के लिए उन्नत किस्म के आदानो और ऋण-सुविधाआ को हथिया लेते हैं। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि नातिया मे इस प्रकार परिवर्तन किया जाए। डा वी के आर वी राव के शब्दो मे "यह बात अब सर्वविदित है कि तथाकथित हरी क्रान्ति जिसने देश मे खाद्यान्नो का उत्पादन बढाने मे सहायता दी है के साथ ग्रामीण आय म असमानता मे वृद्धि हुई है बहुत से थोडे किसाना को अपने काश्तकारी अधिकार छाडने पडे और ग्राम क्षेत्रों में सामाजिक एव आर्थिक तनाव बढे हैं।"[2]

अत भू-सुधार करने अनिवार्य हैं। डॉ डी पी चौधरी हरी क्रान्ति सम्बन्धी अपने सर्वेक्षण के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं "भू-सुधार के साथ पूँजी बाजार एव ग्राम-सस्थानो मे उचित परिवर्तन द्वारा उत्पादन एव उत्पादिता को अधिकतम करना सम्भव होगा और यह आय-वितरण की असमानताओ को कम करने के साथ पूर्णतया सगत होगा।"[3]

(4) श्रम-विस्थापन (Labour displacement) की समस्या-श्रम-विस्थापन के रूप मे हरी क्रान्ति की आड मे कृषि यन्त्रीकरण के प्रभाव को आकने के लिए, बहुत ही थोडे अध्ययन उपलब्ध हैं। उमा के श्रीवास्तव राबर्ट क्राऊन और हैडी ने हरी क्राति के दौरान दो प्रकार की नवक्रियाआ (Innovations) के चालू करने के प्रभाव की जाँच का है (1) जीव-विज्ञान सम्बन्धी नवक्रियाए (Biological innovations) और यान्त्रिक नवक्रियाए (Mechanical innovations) । जीव विज्ञान सम्बन्धी नवक्रियाआ से हमारा अर्थ कृषि-आदानो (Agricultural inputs) मे किए गये उन परिवर्तनो से है जो भू उत्पादिता को बढाते है। अच्छे बाज जिन्हे आमतौर पर अधिक उपजाऊ किस्म क बाज कहते हैं और खादो का प्रयोग इस श्रेणी की नवक्रियाए हैं। इस दृष्टि से हरी क्रान्ति बाज-खाद तकनाक मे परिवर्तन है। यात्रिक नवक्रियाआ मे वे नए औजार शामिल किए जात हैं जो मानव या पशु-श्रम का विस्थापन करते हैं। अत हरी क्रान्ति को जैविकाय एव यान्त्रिक क्रान्ति (Biological mechanical revolution) कहना उचित हागा। श्रम प्रयोग और श्रम-विस्थापित करने वाली नवक्रियाओ का शुद्ध प्रभाव वह सामा निर्धारित करगा जिस तक यन्त्रीकरण (Mechanisation) को लागू किया जाए ताकि श्रम-विस्थापन न हो। इस अध्ययन का निष्कर्ष यह है "चूकि यन्त्राकरण से श्रम की माग जो बीजा और खादो के विस्तृत प्रयोग से बढ रही थी पर दुष्प्रभाव पड सकता है इसलिए भारत जैसी श्रम-अतिरक वाली अर्धव्यवस्थाआ (Labour surplus economies) मे समय-पूर्व यन्त्राकरण को प्रोत्साहन देने से बढती हुई बेरोजगारी की समस्या का समाधान नहीं हो सकेगा।" परिणामत एसी नातिया पर जो सस्ते उधार का व्यावस्था द्वारा बडा श्रम विस्थापन मशीनरी को बिना सोचे समझे प्रोत्साहन देता हैं पर पुनर्विचार करना हागा।

सा एच हनुमन्ता राव रोजगार पर नयी तकनालॉजी के अनुकुल एव प्रतिकूल प्रभावा का इस प्रकार व्यक्त करता है "यदि हरा क्रान्ति का उन्नत किस्म के बीजा एव उवरका के प्रयाग का एकमुश्त प्राग्राम मान लिया जाए, तो इसका राजगार म महत्त्वपूर्ण यागदान प्रतात होता है। इसके

1 C H Hanumantha Rao *Technological Changes and Distribution of Gains in Indian Agriculture* (1975) p 178

2 V K R V Rao New Challenges before Indian Agriculture *Panse Memorial lecture* (April 1974)

3 D P Chaudhri in *Agrarian Reform and Agrarian Reformism* p 169

अतिरिक्त, नलकूपों द्वारा भी रोजगार मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है श्रम गुणाक (Labour co-efficient) सकार्य क्षेत्र के सम्बन्ध मे सबसे अधिक है और उसके बाद उन्नत किस्म के बीजो और सिचाई का नम्बर आता है। "

"ट्रैक्टरो के प्रयोग का शुद्ध रोजगार प्रभाव नकारात्मक हो सकता है यदि फार्म-क्रियाओ मे ट्रैक्टर-प्रयोग पूर्ण हो जाए। हार्वेस्ट कम्बाइन (*Harvest combine*) बडे पैमाने पर फार्म-श्रम का विस्थापन करेगी जबकि इसके भूमि-वर्धन-प्रभाव (Land augmenting effects) नाममात्र होगे।"[4]

5. हरित क्रान्ति की शिक्षाए

सभी तत्वो को सन्तुलित महत्त्व देकर विचार करने से पता चलता है कि अभी भारत कृषि-क्रान्ति के समीप नहीं पहुचा है। इससे पहले कि हम यह दावा कर सक हमे बहुत सी मजिले पार करनी होगी। अत बीज खाद एव सिचाई के एक-मुश्त प्रोग्राम के रूप मे हरित क्रान्ति की शिक्षाओ का विश्लेषण करना होगा।

प्रथम, हरी क्रान्ति के प्रभावाधीन गेहू, बाजरा और गन्ने के उत्पादन में बहुत ही अधिक वृद्धि हुई। मक्की के उत्पादन मे भी प्रगति हुई। चावल सभी खाद्यान्नो के औसत उत्पादन मे वृद्धि के स्तर से नीचे था परन्तु यह बात बहुत ही निराशजनक है कि चने, पटसन और रूई के सम्बन्ध मे वृद्धि-दर बहुत ही मन्द रही है। इसके अतिरिक्त दाल जो कुल खाद्यान्न उत्पादन का 10-12 प्रतिशत हैं के उत्पादन में कोई महत्त्वपूर्ण वृद्धि नहीं हुई। अत हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि हरी क्रान्ति का प्रभाव कुछ महत्त्वपूर्ण खाद्य-फसलो तक सीमित है और जब तक इन चन्द फसलो के उत्पादन मे वृद्धि सर्वव्यापक रूप धारण कर सभी फसलो के उत्पादन मे वृद्धि के रूप मे प्रकट नहीं होती तब तक यह कहना उचित नहीं होगा कि भारत मे कृषि क्रान्ति हो गयी है।

दूसरे, खाद्यान्नो मे वृद्धि पजाब हरियाणा पश्चिमी उत्तर प्रदेश, आन्ध्रप्रदेश के कुछ चुने हुए जिलो महाराष्ट्र और तमिलनाडु मे ही हुई। परन्तु ये राज्य भारत के कुल क्षेत्रफल के अधिकतर भाग के बराबर नहीं हैं। केवल इतना कहा जा सकता है कि इन्होंने कृषि-उत्पादन मे तीव्र वृद्धि की सम्भावना की ओर सकेत किया है। दूसरे शब्दो म, यह कहा जा सकता है कि पहले से उन्नत क्षेत्रो ने अपनी आर्थिक स्थिति और सुधार ली है। इस कारण भारत मे असन्तुलित विकास की प्रक्रिया आरम्भ हो गयी है। जो प्रदेश पीछे रह गये है, उन्हे आगे बढ गए प्रदेशो तक पहुचना है। जब तक भारत के मुख्य राज्य उत्थान-अवस्था (Take off stage) तक नहीं पहुच जाते, कृषि-क्रान्ति की बात करनी उचित न होगी।

तीसरे, नयी तकनीक की स्वीकार्यता किसानो की साक्षरता के स्तर पर निर्भर करती है। डॉ धर्मपाल चौधरी ने अपने अध्ययन **भारत मे शिक्षा और कृषि उत्पादिता** मे यह प्रमाणित किया है कि बडे किसान अनिवार्यत उत्पादिता बढाने लागत कम करने वाली नवक्रियाओ (Innovations) को पहले लागू करते हैं जब कि छोटे किसान जो सामान्यत अनपढ होते हे, पीछे रह जाते हैं। अत नयी तकनालाजी का प्रसार सूचना की सीमा पर निर्भर करता है और यह साक्षरता के स्तर पर निर्भर करती है। अत हरी क्रान्ति को फैलाने के लिए अनक्षरता को दूर करने का प्रोग्राम एक प्रधान उपकरण बन सकता है।

चौथे यह भी अनुभव किया गया है ग्रामो के वर्तमान ढाचे मे बडे किसान ही 6 से 10 प्रतिशत ब्याज की दर पर सहकारी समितियो एव ग्राम-बैंको से ऋण प्राप्त कर सकते हैं। छोटे किसान का देहात मे बहुत कम प्रभाव होने के कारण उसे तो महाजन से या असगठित मुद्रा बाजार के अन्य ऐसे स्रोतो से 12 से 75 प्रतिशत की ब्याज दरो पर ऋण लेना पडता है। विद्यमान स्थिति का परिणाम यह है कि जहाँ पर सरकारी एजेन्सिया कुल उधार का केवल 30 प्रतिशत उपलब्ध कराती हैं और वह भी बडे किसानो को। यह सामान्यत देखा गया है कि काश्तकार और छोटे किसान जिन्हे सस्ती दर पर उधार मिलना चाहिए, को सबसे ऊची ब्याज-दर पर उधार प्राप्त होता है और इसके विरुद्ध बडे किसानो को सस्ती दर पर। इसके परिणामस्वरूप बडे और छोटे किसानो को उपलब्ध कृषि-आदानो (*Agricultural inputs*) की वास्तविक लागत मे अन्तर उत्पन्न हो जाते हैं और जाहिर है कि ये अन्तर बडे किसानों के पक्ष में होते हैं।

पाचवें, कृषि-क्रान्ति के कारण तीन प्रकार के द्वन्द्व पैदा हो गए हैं, अर्थात् बडे और छोटे किसानो के बीच, भू-स्वामियो और काश्तकारो के बीच और कृषि-फार्मों के नियोजको एव नियोजितो के बीच। बडे फार्मो के स्वामी उवरक, पम्पिग सेट, नलकूप ओर कृषि-मशीनरी के रूप मे भारी विनियोग कर सकते हैं। वे सहकारी समितियो से उधार अच्छे बीज और उर्वरक भी प्राप्त कर लेते हैं। सामान्यत यह कहा जा सकता है कि बडे किसानो को कृषि-आदानो के पूर्वक्रय का अधिकार (Right of pre emption) प्राप्त है और फलस्वरूप छोटे किसान कृषि-

---

4 सी एच हनुमन्ता राव तत्रैव पृ 121

आदान प्राप्त करने से वचित हो जाते हैं। इस कारण आय की असमानताए बढी हैं और परिणामत पूंजीवादी खेती के विकास को प्रोत्साहन मिला है।

भारत मे, अधिकाश किसानो के खेत छोटे हैं और उन्हे बडे भू-स्वामियो से भूमि किराए पर लेनी पडती है। चूकि भू-पति नये कृषि-आदानों को उपलब्ध कराते हैं, ऐसे फार्मो पर लिए गये खेतो पर तो आधुनिक तक्नीक मे खेती होती है और काश्तकारो के अपने छोटे-छोटे भूमि के टुकडो पर पारम्परिक तकनीको का प्रयोग होता है। यह द्वैधवाद (Dualism) सामाजिक तनाव का कारण बनता है, विशेषकर ऐसी परिस्थिति मे जब कि भू-स्वामी शोषणात्मक लगान की माग करते हैं।

बडे फार्मों पर नई तकनीक के प्रयोग के कारण मानवीय श्रम का प्रतिस्थापन यात्रिक प्रक्रियाओ द्वारा हुआ है। दूसरे शब्दो मे, हमे नयी तकनीक के प्रत्यस्त प्रभावो (Backwash effects) को भी ध्यान मे रखना होगा जिनके कारण श्रम बेरोजगार हो जाता है। कृषि-क्रान्ति मे सबसे अधिक कष्ट भूमिहीन मजदूरो को हुआ है। जब तक ग्रामीण जनता के सबसे अधिक निर्बल वर्ग को रोजगार के अवसर उपलब्ध नहीं कराए जाते कृषि-क्रान्ति देश के लाखो भूमिहीन किसानो के लिए अर्थहीन ही रहेगी।

इसलिए, यह अनिवार्य है कि ग्राम-भारत मे काश्तकारी के शोषणहीन रूप विकसित हो और भूमिहीन मजदूरो की मजदूरी उन्नत हो सके। अधिक उपजाऊ किस्म के बीजो से प्राप्त लाभ समृद्ध जमींदार वर्गों की जेबो मे जा रहे हैं। परिणामत यह कहना उचित होगा कि नई उत्पादन-तकनीक से वितरण का पलडा समृद्ध वर्गो की तरफ झुक गया है। छोटे किसान, काश्तकार फसल-सहभाजक और भूमिहीन मजदूर अर्थात् कृषि-श्रम वर्ग को कृषि-आय मे अपना हिस्सा बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि किसानो मे सगठित आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया जाए।

सयुक्त राष्ट्र सघ के भूतपूर्व महासचिव ऊ थाँट ने ठीक ही चेतावनी दी है "यदि विकासशील देश भू-सुधार उपायो को तुरन्त लागू नहीं करते तो हरी क्रान्ति अकसीर सिद्ध होने की अपेक्षा वस्तुत पन्दोरा की पिटारी (Pandora's box) बन सकती है।" बहुत से प्रेक्षको का विचार है, " यदि इसे बाजार-परिस्थितियो पर ही छोड दिया जाए तो निर्वाह-किसानो (Subsistence farmers) की तुलना म हरी क्रान्ति उन किसानो को लाभ पहुचायेगी जो वाणिज्यिक उत्पादन मे लगे हुए हैं और इनमें भी छोटे किसानो की अपेक्षा बडे किसान को।"

नयी तकनीक के प्रचलन से विकसित हाने वाले सामाजिक सम्बन्धो के विश्लेषण से पता चलता है कि हरी क्रान्ति के साथ छोटे किसानो के लिए उधार का प्रबन्ध न किया गया, या काश्तकारी मुजारो को पट्टे की सुरक्षा उपलब्ध न करायी गयी, या मुजारो एव फसल सहभाजक (Share croppers) से वसूल किए जाने वाले लगान को कम न किया गया या आर्थिक असमानताओ को दूर करने के लिए सस्थानात्मक उपाय न किए गए, तो हरी क्रान्ति के इच्छित परिणाम व्यक्त नहीं हो पाएगे।

6. कृषि के नए विकास-क्षेत्र—दूसरी हरी क्रान्ति

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् पिछले 5 दशको के दौरान भारतीय कृषि ने कई दिशाओ मे प्रगति की है। प्रथम, खाद्यान्नो का उत्पादन जो 1950-51 मे लगभग 500 लाख टन था बढकर 1970-71 मे दुगने से भी थोडा अधिक होकर 1,084 लाख टन तक पहुच गया और 1983-84 मे 1,524 लाख टन के उच्च स्तर पर पहुच गया। इसके पश्चात् लगातार चार वर्ष सूखा पडने के कारण उत्पादन 1984-84 के शिखर स्तर के नीचे ही रहा किन्तु 1994-95 के अच्छा मानसून वर्ष होने के कारण खाद्यान्न 1,850 लाख टन के रिकार्ड स्तर तक पहुच गया।

दूसरे, सिचाई आधीन सकल क्षेत्रफल जो 1950-51 में 226 लाख हैक्टेयर था बढ कर 1994-95 मे 880 लाख हैक्टेयर हो गया। इस प्रकार 45 वर्षों (1950-51 से 1994-95) के दौरान सिचाई आधीन क्षेत्र मे 2 6 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई। 1950-51 मे एक से अधिक बार बोया जाने वाला क्षेत्र 20 लाख हैक्टेयर था किन्तु 1992-93 में यह बढकर 120 लाख हैक्टेयर हो गया।

तीसरे, अधिकाधिक सिचाई प्राप्त क्षेत्र को अधिक उपजाऊ किस्म के बीजो के आधीन लाने को नीति अपनायी गयी। इसके परिणामस्वरूप अधिक उपजाऊ बीजो के आधीन क्षेत्रफल जा 1970-71 मे 154 लाख हैक्टेयर था, बढ कर 1994-95 में 750 लाख हैक्टेयर हो गया। इसके साथ-साथ रासायनिक उर्वरको का उपभोग जो 1970-71 मे 22 लाख टन था बढकर 1994-95 मे 141 लाख टन हो गया।

इन सभी विकास कार्यक्रमो के परिणामस्वरूप, भारत खाद्यान्नो के सम्बन्ध मे आत्मनिर्भर हो गया और इसके खाद्यान्न-आयात नाममात्र हो गए। वह 220 लाख टन का बफर-स्टाक कायम करने मे सफल हो गया ताकि किसी एक वर्ष, या लगातार दो अथवा तीन वर्षों मे पडे सूखे का सामना कर सके। इससे हमारी कृषि सबल बन गयी।

परन्तु कृषि की इन उपलब्धियो के कारण हमें आत्मसन्तुष्ट नहीं बन जाना चाहिए क्योंकि अभी बहुत से

ऐसे विकास-क्षेत्र हैं जिनकी ओर हमारी कृषि-नीतियां मोडी जानी चाहिए ताकि कृषि विकास मे अवलम्बनीयता (Sustainability) और न्याय पर बल दिया जा सके। कृषि में मुख्य विकास-क्षेत्र निम्नलिखित हैं-

(i) मोटे अनाजो के आधीन क्षेत्रफल और उत्पादन मे नाममात्र वृद्धि–न हो मोटे अनाजो के आधीन क्षेत्रफल और न ही उनके उत्पादन मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई। इन फसलो के लिए अधिक उपजाऊ किस्म के बीज विकसित करने की ओर कोई ध्यान न दिया गया। चूंकि मुख्य आदानो का प्रयोग गेहू और चावल की ओर निर्देशित किया गया, मोटे अनाज उपेक्षित रहे और इनके उत्पादन को बढाना अब कृषि-विकास का मुख्य क्षेत्र है।

(ii) दालो के उत्पादन मे गतिरोध–1970-71 मे दालो का उत्पादन 118 लाख टन था। 1990-91 में जो कि खाद्यान्न उत्पादन का सर्वोच्च वर्ष था, दालो का उत्पादन 143 लाख टन था अर्थात् 20 वर्षो की अवधि मे केवल 21 प्रतिशत की वृद्धि। 1990-91 से 1994-95 के दौरान दालो का उत्पादन 140-145 लाख टन के बीच ही रहा है। दालो का प्रति व्यक्ति उपभोग जो 1971 मे 69 ग्राम प्रतिदिन था कम होकर 1994 मे 38 ग्राम हो गया। दालो के उपभोग मे यह तीव्र गिरावट चिन्ता का विषय है, विशेषकर गरीब वर्गों जिनके लिए दाले प्रोटीन का मुख्य स्रोत हैं।

दालें अधिकतर गैर-सिचाई वाली परिस्थितियो मे घटिया भूमि पर उगायी जाती हैं और इनके लिए कम मात्रा मे आदानो का प्रयोग किया जाता है। दालो के आधीन 257 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल में से केवल 27 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल को सिचाई प्राप्त है। दालों के लिए उर्वरको एव कीटनाशको की भी अधिक मात्रा की आवश्यकता नहीं पडती। अल्प-अवधि की किस्मो और उन्नत खुश्क-खेती-तकनालाजी के विकास के कारण दालो का उत्पादन बढाने के सम्बन्ध मे नयी आशाए पैदा हो गयी हैं। पिछले दशक के दौरान हुए अनुसधान के परिणामस्वरूप अरहर की ऐसी किस्मो का आविष्कार हुआ है जो गरीब किसानो के लिए उचित हैं और इनसे प्रति हेक्टेयर 2-3 टन उत्पादन करना सभव है और इसके अतिरिक्त 6-8 टन खुश्क डण्ठल (stalks) भी प्राप्त हो सकते हैं जो कि ईंधन के रूप मे इस्तेमाल किये जा सकते हैं। इसी प्रकार काली-मिट्टी-प्रबन्ध-तकनालाजी (Black Soil Management Technology) द्वारा बगाली चने की उतपादिता बढायी जा सकती है जो कि दालो की प्रधान फसल है। अरहर और चना दोनो मिलकर दालो के कुल उत्पादन का 60 प्रतिशत उपलब्ध कराते हैं और इनकी उत्पादिता को बढाने के लिए प्रयास सकेन्द्रित किए जाए, तो इससे दालो की उत्पादिता मे वृद्धि करने की काफी गुजाइश है।

(iii) एक अन्य विकास-क्षेत्र खाद्य-तेलो के उत्पादन को बढाना है–भारत खाद्य तेलो (Edible oils) के उत्पादन मे आत्मनिर्भर नहीं है। 1970-71 मे, खाद्य-तेलो का आयात केवल 23 करोड रुपये था, परन्तु बढती हुई माग को अपने देशीय उत्पादन से पूरा न कर सकने के कारण आयात मे वृद्धि होती गयी। यह आशा की जाती है कि भारत द्वारा 700 से 1,000 करोड रुपये के खाद्य-तेलो का आयात किया जाएगा।

वर्तमान परिस्थिति के परिणामस्वरूप, दो कठिन समस्याओ का सामना करना होगा, (i) खाद्य-तेल आयात द्वारा हमारी विदेशी मुद्रा का लगातार निकास होता रहेगा, और (ii) भारत एक महत्त्वपूर्ण खाद्य-पदार्थ के लिए विश्व के अन्य देशो पर निर्भर रहेगा।

भारत मे उत्पन्न होने वाले मुख्य खाद्य-तेल हैं मूगफली तोरिया (Rapeseed) तिल (Sesamum) जाफरान (Safflower) सूर्यमुखी, सोयाबीन आदि। भारत में तिलहनो के उत्पादन की मुख्य समस्या निम्न उत्पादिता है। न केवल भारत विकसित देशो की तुलना मे बहुत पीछे है, इसकी प्रति हैक्टेयर उत्पादिता चीन की तुलना मे भी काफी कम है। इसी कारण भारत सरकार ने तिलहन-तकनालाजी मिशन (Oilseeds Technology Mission) कायम किया है जिसने निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किए हैं-

1994-95 मे तिलहनो का उत्पादन 210 लाख टन था। सन् 2000 तक इसे बढाकर 260 लाख टन करना ताकि इनसे 80 लाख टन तेल प्राप्त किया जा सके। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित उपाय करने होगे-(i) अतिरिक्त तिलहन क्षेत्रो को सिचाई आधीन लाना, (ii) आधुनिक फसल-तकनालाजी का प्रयोग करना, (iii) फसल-प्रतिस्थापन (Crop substitution), (iv) बेहतर खुश्क खेती करना, (v) बेहतर ढग से तेल निकालना, (vi) तेल के अपारम्परिक स्रोतो का विदोहन, और (vii) तिलहनो के उत्पादन का अपारम्परिक क्षेत्रो और अपारम्परिक मौसमो मे परिवर्तन करना।

ऐसे अधिक उपजाऊ किस्म के बीजो के विकास के कारण जो कि सूखा और टिड्डी दल के प्रतिरोधक हैं, यह आशा की जाती है कि तिलहनो के उत्पादन और उत्पादिता बढाने के द्वार खुल गए हैं।

(iv) सिचाई और जल प्रबन्ध की नयी विकास-विधि–अगले 12 से 15 वर्षो के दौरान कुल उपलब्ध जल सग्रह 1,000 लाख हैक्टेयर मीटर होगा। 1,650 लाख हैक्टेयर कुल कृषि आधीन क्षेत्र से 1,760 लाख टन खाद्यान्न पैदा किया गया। दूसरे शब्दो मे, औसत रूप मे [illegible] उत्पादन एक टन से कम [illegible]। इसके, [illegible]

हैक्टेयर उत्पादन 4 टन है। यदि भारत को अपनी बढ़ती हुई जनसख्या का पोषण करना है, तो इसे सन् 2,000 तक अपनी 95 करोड प्रत्याशित जनसख्या के लिए 2,350 लाख टन खाद्यान्न उत्पन्न करना ही होगा।

चूकि जल एक दुर्लभ ससाधन है, इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि इसके अधिक कुशल प्रयोग पर बल दिया जाए। वर्तमान परिस्थिति यह है कि 90 प्रतिशत जल सिचाई के लिए इस्तेमाल होता है। विशेषज्ञो के अनुसार यह जल का अपव्यय एव व्यर्थ प्रयोग है। अत· सिचाई रणनीति ऐसी होनी चाहिए जो मितव्ययी ढग से जल-प्रयोग कर सके। इस सम्बन्ध मे लक्ष्य होना चाहिए कि अगले 12 वर्षों मे *सिचाई के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले जल का अनुपात* घटा कर 77 प्रतिशत कर दिया जाए ताकि औद्योगिक और नगरपालिका सम्बन्धी आवश्यकताओ की बढती हुई माग की पूर्ति की जा सके। सिचाई की नयी रणनीति को निम्नलिखित दिशाओ मे कार्य करना होगा –

(*i*) नहरी तथा तालाब कमान-क्षेत्रो (Command areas) मे सिचाई की उचित नीति और इस पर नियन्त्रण, विशेषकर धान के क्षेत्रो मे,

(*ii*) जल-निकास और पानी के पुन प्रयोग की सुविधाए उपलब्ध कराना,

(*iii*) भूतल-जल (Surface water) और भूगर्भजल (Ground water) का सयुक्त प्रयोग,

(*iv*) कुओ द्वारा सिचित क्षेत्रो मे ड्रिप-सिचाई (Drip irrigation) को चालू करना,

(*v*) नहरी/ तालाब कमान क्षेत्रो मे स्प्रिकलर सिचाई (Sprinkler irrigation) का प्रयोग करना,

(*vi*) सघन-फसला अर्थात् गन्ना, सब्जियो और रूई के लिए द्विभित्ति सिचाई (Biwall irrigation) को बढावा देना, और

(*vii*) किसानो एव प्रसार अधिकारियो (Extension officers) को जल-प्रबन्ध म प्रशिक्षण देना।

बडी सिचाई परियोजनाओ में बहुत बार अति-सिचाई (Over irrigation) की जाती है जिसका उत्पादन पर दुष्प्रभाव पडता है। उदाहरणार्थ, किसान धान के लिए 800 मिलीमीटर पानी का प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त, उचित कुल्याओं के अभाव के कारण पानी खेतो को अच्छी प्रकार न पहुच सकने से जल-लग्नता (Waterlogging) की समस्या उत्पन्न हो जाती है और इस प्रकार भूमि-लवण (Saline) या क्षार (Alkaline) बन जाती है।

तालिका 3 . विभिन्न प्रणालियो की सिचाई क्षमता
(प्रतिशत के रूप में)

सिचाई कुशलताएँ	विभिन्न प्रणालियाँ		
	सिचाई	स्प्रिकलर सिचाई	ड्रिप या द्विभित्ति सिचाई
वहन कुशलता	60-70 (कुआ सिचाई)	100	100
प्रयोग कुशलता	60-70	70-80	90
भूतल जल/नमी का वाष्पन	30-40	30-40	25
समग्र कुशलता	30-35	40-50	75-80

स्प्रिकलर सिचाई (Sprinkler irrigation) द्वारा जल-प्रयोग मे 30-35 प्रतिशत बचत की जा सकती है। इसका इस्तेमाल सभी सघन फसलो अर्थात् मोटे अनाज, मूँगफली, दालो और गेहूँ मे होना चाहिए।

ड्रिप सिचाई (Drip Irrigation) सभी कतारवाली फसलो के लिए उचित है। इसके प्रयोग से पानी की 50-70 प्रतिशत तक किफायत की जा सकती है। साथ मे विभिन्न फसलो की उत्पादिता मे 10-70 प्रतिशत तक वृद्धि की जा सकती है। इससे जल के मितव्ययी प्रयोग मे सहायता मिलती है और यह कुओ द्वारा सिचाई के लिए विशेष रूप मे उचित समझी जाती है।

द्विभित्ति सिचाई (Biwall irrigation) का हाल ही में महाराष्ट्र मे प्रयोग किया जा रहा है। इस प्रणाली में पानी मुख्य चैम्बर से वितरण चैम्बर मे डाला जाता है जिसके लिए इसमे समान फासले पर सभरण छेद (Supply Orifices) होते हैं जिनमे लेजर बीम लगे होते हैं। पानी निकासी छेद से धीरे-धीरे छोडा जाता है।

जल प्रबन्ध के इस विकास क्षेत्र मे किसानो तथा प्रसार अधिकारियो की शिक्षा अनिवार्य है। इस उद्देश्य के लिए प्रदर्शन, विचारगोष्ठियों, किसानो मे चर्चाएँ और अन्य जन-माध्यमा का प्रयोग करना अनिवार्य है। यह एक ऐसा विकास क्षेत्र है जिसमे लागत मे थोडी-सी वृद्धि से कहीं बेहतर परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

(*v*) छोटी सिचाई के पक्ष मे परिवर्तन पर बल–सातो पचवर्षीय योजनाओ के दौरान बडी तथा मध्यम सिचाई परियोजनाओ पर अत्यधिक बल दिया गया। अब यह बात महसूस की जा रही है कि बडी सिचाई परियोजनाओ ने प्रति हैक्टेयर सिचाई की लागत बहुत ही ऊची कर दी है। औसत रूप मे प्रति हैक्टेयर सिचाई लागत 60,000 रुपए है जोकि बहुत ज्यादा है। अत छोटी सिचाई की प्रति एकड लागत अपेक्षाकृत बहुत कम है और इसलिए भविष्य मे छोटी सिचाई पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।

(*vi*) बायोफर्टलाइजर के प्रयोग का विस्तार

करना—जीव-तकनालाजी एव आनुवंशिक इजीनियरिंग (Biotechnology and Genetic Engineering) में हाल ही में हुए अनुसधानो ने यह सिद्ध कर दिया है कि कुछ सूक्ष्म-जीव (Micro-organisms) जैसे बैक्टीरिया और नीले-हरे शैवाल (Algae) नाइट्रोजन-निश्चयक (Nitrogen fixers) का काय कर सकते हैं और पोधो को पोषण उपलब्ध करा सकते हैं। सबसे आम इस्तेमाल होने वाला जीव-उर्वरक (Biofertilizer) राइजोबियम (Rhizobium) है जो विशिष्ट बीजकोष (Legumes) की जडो मे प्रवेश करके जड-ग्रथिकाएँ (Root nodules) बना लेता है। ये ग्रथिकाएँ अमोनिया उत्पादन की फैक्टरियाँ बन जाती हैं। राइजोबियम बीजकोष के साथ सम्बन्ध स्थापित करके एक फसल-मौसम में 100-300 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर निश्चित कर सकता है और अगली फसल के लिए भी काफी नाइट्रोजन छोड सकता है। सूक्ष्म-जीवो द्वारा नाइट्रोजन-जनन मे महत्त्वपूर्ण तकनीक खोजने जिसका सारा खर्च स्वय प्रकृति अदा करती है दूसरी हरी क्रान्ति के द्वार खोल दिए गए हैं।

नयी जीव तकनालाजी के साथ शैवाल (Algae) के लिए टीके की लागत 10 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर पर लगभग 20 रुपए है और उवरक के रूप मे इसका नाइट्रोजन योगदान 200-400 रुपए प्रति हैक्टेयर है। यदि ग्राम-उत्पादन को इस तरीके से प्रोत्साहन दिया जाए, तो 0 2 हैक्टेयर भूमि से उत्पादन के विक्रय द्वारा किसान 1 000 से 1,500 रुपए की आय पैदा कर सकते हैं। अत नयी जीव-तकनालाजी (Bio-technology) उर्वरक उपभोग की लागत कम करने की दृष्टि से छोटे किसानो की समस्याओ का जवाब है।

जहाँ पर कि उर्वरको मे जीव-तकनालाजी का प्रयोग बडी सफलता से विकसित देशो मे किया गया है, भारत मे बहुत से कारण इसके प्रयोग और प्रचार मे बाधा हैं। वे हैं—प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव टीको के लाभो के प्रति चेतना का अभाव और औद्योगिक समर्थन की अनुपस्थिति। सरकार ने इण्डो-यू एस एस टी आई प्रोग्राम के आधीन जीव नाइट्रोजन निश्चयन परियोजना की स्थापना की है। भारत सरकार के कृषि मत्रालय ने जीव-उर्वरको की एक राष्ट्रीय परियोजना चालू की है। भविष्य म कृषि-विकास के लिए इसे मुख्य क्षेत्र समझना होगा।

(vii) खुश्क खेती पर बल देना चाहिए—भारत मे कुल कृषि आधीन 1 630 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल में से 1,000 हैक्टेयर अर्थात् कुल का 61 प्रतिशत खुश्क खेती (Dry farming) के आधीन है परन्तु खुश्क खेती आधीन क्षेत्र का कुल उत्पादन मे भाग केवल 40 प्रतिशत था।

इसमे सन्देह नहीं कि सिचाई के कारण खाद्यान्नो में स्वावलम्बिता प्राप्त हो सकी है परन्तु इसके साथ समृद्ध और गरीब के बीच खाई भी चौडी हो गई है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि खुश्क भूमि पर खेती करने वाले 72 प्रतिशत किसानो के पास 2 हैक्टेयर से कम भूमि है और यह भी बिखरे हुए और विभाजित खण्डो मे उपलब्ध है। चूकि देश को काफी समय तक खुश्क भूमि खेती करनी होगी, इसलिए यह आवश्यक है कि खुश्क-भूमि खेती की तकनालाजी विकसित की जाए ताकि खुश्क भूमि मे उत्पादन के बढाने की सभावनाओ का लाभ उठाया जा सके। इसके लिए खुश्क भूमि क्षेत्रो की समस्याओ का अध्ययन करना आवश्यक है ताकि क्षेत्र-विशेष तकनालाजी का विकास किया जा सके। उर्वरको का मर्यादित प्रयोग, उन्नत बीजो और वर्षा के पानी के बेहतर सग्रहण और इसके उचित प्रयोग द्वारा हम उत्पादिता मे 40 से 50 प्रतिशत तक वृद्धि कर सकते हैं। कुशल तथा समय-अनुसार प्रबन्ध वर्षा पर आधारित क्षेत्रो मे उत्पादन बढाने की कुजी है।

सार रूप मे हमने कृषि मे मुख्य विकास-क्षेत्रो का संकेत किया है। परन्तु कृषि सुधारों के अभाव में प्रत्याशित परिणाम प्राप्त नहीं हो सकेगे। डॉ एम एस स्वामीनाथन, विख्यात कृषि वैज्ञानिक ने पजाब मे हरी क्रान्ति की सफलता का विश्लेषण करते हुए उल्लेख किया है—

"पजाब मे हरी क्रान्ति कोई अचम्भा नहीं है। यह इसलिए सफल हो पाई क्योकि 1960-70 के दशक के मध्य मे वे सभी परिस्थितियाँ विद्यमान थीं जो इसकी सफलता के लिए अनिवार्य थीं—(क) भू-चकबन्दी तथा समतलीकरण (ख) स्वामी द्वारा खेती जिससे भूमि मे लम्बे काल के लिए रुचि पैदा हो (ग) ग्राम-सचार (घ) ग्राम-बिजलीकरण, और (ङ) एक गत्यात्मक कृषि विश्वविद्यालय।"

"यदि ये परिस्थितियाँ विद्यमान न होतीं, तो पजाब के किसानो के लिए गेहूँ और चावल की प्रबन्ध-प्रत्युत्तर किस्मो द्वारा उत्पादिता-क्षमता को वास्तविक उत्पादन मे बदलना कठिन हो जाता। अन्तत उत्पादिता दो कारणतत्वो की परस्पर क्रिया पर निर्भर करती है—पौधे की आनुवशिक कुशलता (Genetic efficiency) और किसान की प्रबन्ध कुशलता। किसानो की तन्मयता कठोर परिश्रम नवक्रिया और जोश ही भारतीय कृषि के भविष्य को परिवर्तित करने मे त्वरक का काम कर रहे हैं।"

34

औद्योगिक ढांचा और योजनाएँ
(INDUSTRIAL PATTERN AND THE PLANS)

1. औद्योगीकरण का ढांचा
(The Pattern of Industrialisation)

जबकि आज औद्योगीकरण के महत्त्व के बारे मे एकमत प्राप्त हो चुका है, औद्योगिक विकास के ढाचे के बारे मे अभी भी वाद-विवाद चल रहा है। ऐतिहासिक दृष्टि से औद्योगिक *विकास तीन अवस्थाओ मे हुआ है।* प्रथम अवस्था का सम्बन्ध **प्राथमिक वस्तुओ से माल तैयार करना है।** इसमे अनाज को पीसना, तेल निकालना, चमडा रगना, सूत कातना टिम्बर तैयार करना और धातु अयस्क (Metallic Ores) पिघलाना शामिल किए जाते हैं। द्वितीय अवस्था मे **कच्चे माल के रूप परिवर्तन** सम्बन्धी अर्थात् डबलरोटी और मिष्टान्न भोजन तैयार करना जूते बनाना, धातु सम्बन्धी वस्तुएँ, कपडा फर्नीचर और कागज तैयार करना। तृतीय अवस्था मे **उन मशीनो तथा पूजी यन्त्रो का निर्माण होता है** जो प्रत्यक्ष रूप मे किन्हीं फौरी आवश्यकताओ की तुष्टि नहीं करतीं बल्कि भावी उत्पादन क्रिया को सुविधाजनक बनाती हैं। हॉफमैन (Hoffman) के अनुसार औद्योगीकरण की प्रथम अवस्था मे उपभोग वस्तु-उद्योगो का प्रधान महत्त्व होता है और उसका शुद्ध उत्पादन पूजीवस्तु उद्योगो के उत्पादन से पाच गुना होता है। द्वितीय अवस्था मे यह अनुपात 2 5 1 हो जाता है और तृतीय अवस्था मे यह केवल 1 1 हो जाता है।

चाहे उद्योग का सामान्य विकास उपभोग-वस्तुओ से पूजी वस्तुओ की ओर हुआ है परन्तु इस विकास प्रक्रिया की कई किस्मे हैं। *औद्योगिक विकास* के रूसी ढाचे मे सीधे ही प्रथम अवस्था से तृतीय अवस्था मे प्रवेश किया गया परन्तु ब्रिटिश ढाचे मे धीरे-धीरे विकास किया गया। इसी प्रकार अल्पविकसित देश अपनी-अपनी आर्थिक परिस्थितियो के अनुसार औद्यागीकरण के विभिन्न ढाचे विकसित कर सकते हैं। यह सुझाव दिया जाता है कि अल्पविकसित देशो मे औद्योगीकरण के ढाचे क निर्माण मे पूजी के सापेक्षन अभाव को सबसे अधिक महत्त्व देना चाहिए। चूकि श्रम सापेक्ष दृष्टि से प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होता है और पूजी न्यून होती है, इसलिए श्रम-प्रधान उपभोग वस्तु उद्योगो (Labour intensive consumer goods industries) का विकास उचित प्रतीत होता है। किन्तु इस विचारधारा की मूल धारणा अनुचित है। समस्या न्यून साधन (पूजी) को बचाने की नहीं बल्कि इस साधन के सम्भरण को बढाने की है। अत औद्योगीकरण को ठीक ढग से एक गत्यात्मक प्रक्रिया (Dynamic process) के रूप मे कल्पित करना चाहिए, जिसमे बाह्य मितव्ययिताओ (External economies) और तकनीकी कौशल का विकास हो। इस कारण पूजी वस्तु क्षेत्र के विकास की *आवश्यकता होती है ताकि बाह्य मितव्ययिताएँ विकसित हो* सके और पूजी के सभरण को बढाया जा सके। चूकि बहुत से अल्पविकसित देश स्वय इन वस्तुओ को उत्पन्न नहीं करते, उनके सम्भरण को केवल आयात द्वारा ही बढाया जा सकता है। यह इस बात पर निर्भर है कि प्राथमिक वस्तुओ तथा निर्मित वस्तुओ के निर्यात को किस सीमा तक बढाया जा सकता है। चूकि प्राथमिक वस्तुओ के *उत्पादन* को *विकासशील अर्थव्यवस्था* की *निर्यात आवश्यकताओ* के अनुकूल बढाया नही जा सकता, इसलिए प्राथमिक वस्तुओ के निर्यात को पूजी-आयात के लिए विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का विश्वसनीय स्रोत नहीं समझा जा सकता।

अल्पविकसित देशो से प्राथमिक वस्तुओ के निर्यात बढाने की अपेक्षा निर्यात प्रोन्नत करने वाले विनिर्माण-उद्योगो (*Manufacturing industries*) का विकास भी किया जा सकता है। परन्तु मुख्य कठिनाई तो यह है कि इस प्रकार की वस्तुओ (जैसे सूती वस्त्र) मे उन्नत औद्योगिक देशो को बहुत भारी तुलनात्मक लाभ (Comparative advantages) प्राप्त है। इसका अनिवार्यत यह अर्थ नहीं कि निर्यात बढाने वाले उद्योगो का *विकास न किया जाए* बल्कि इसका केवल इतना ही अर्थ है कि निर्यात के लिए कुछ उद्योगा मे विशिष्टीकरण को विविध औद्योगिक व्यवस्था के विकास का प्रतिस्थापक नहीं समझा जा सकता। अत यदि निर्यात-उद्योगो के विकास द्वारा पर्याप्त मात्रा में

विदेशी मुद्रा (Foreign exchange) प्राप्त नहीं की जा सकती तो आयात-प्रतिस्थापन उपभोग वस्तु-उद्योगों (Import substituting consumer goods industries) द्वारा विदेशी मुद्रा को आयात के लिए बचाया जा सकता है। आयात-प्रतिस्थापन (Import substitution) दो प्रकार का होता है (क) आयातित वस्तुओ के लिए देश मे उत्पन्न वस्तुओ का प्रतिस्थापन और (ख) पूजी-वस्तु आयात के लिए उपभोग वस्तु आयात का प्रतिस्थापन। यदि कोई देश निर्यात से प्राप्त विदेशी मुद्रा को पर्याप्त मात्रा मे बढा नहीं सकता, तो यह फिर भी उपभोग-वस्तुओ के आयात को कम करके अपनी पूजी-वस्तुओ के आयात को बढा सकता है। परन्तु भारत में कुल उपभोगा की तुलना मे आयातित वस्तुओ का उपभोग बहुत ही थोडा है, परिणामत इसे और कम करना सम्भव नहीं जान पडता। इसलिए प्रथम प्रकार के आयात-प्रतिस्थापन का बहुत ही अधिक महत्व है, इसका उद्देश्य ऐसे उद्योगो का विकास करना है जो आयातित वस्तुओ से प्रतिस्पर्धा करें और इस प्रकार विदेशी मुद्रा के बचाने मे सहायता दे जिससे अधिक मात्रा मे पूजी-वस्तुओ का आयात किया जा सके। चूकि आयात-प्रतिस्थापक उद्योग देश की आर्थिक आत्मनिर्भरता को सबल बनाते हैं इसलिए इन्हे बढाना अधिक उचित समझा जाता है। इसके विरुद्ध निर्यात बढाने वाले उद्योग देश को विदेशी बाजारो मे कीमतों के तथा व्यापार की मात्रा मे परिवर्तन पर अधिक निर्भर बना देते हैं। अत सामान्यतया, आयात-प्रतिस्थापन प्राजैक्ट को निर्यात-प्रेरित परियोजना पर प्राथमिकता देनी चाहिए।

साराश यह कि औद्योगिक विकास पूजी-निर्माण (Capital formation) की दर पर निर्भर करता है। पूजी-वस्तुओ का सम्भरण या तो विकास द्वारा बढाया जा सकता है या राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि द्वारा। पूजी-वस्तुओ का आयात निर्यात की वृद्धि पर निर्भर करता है। चूंकि प्राथमिक वस्तुओ के निर्यात मे वृद्धि की सम्भावना सीमित है, इसलिए या तो निर्यात बढाने वाले विनिर्माण उद्योगो का विकास किया जा सकता है या आयात-प्रतिस्थापन उद्योगो का विकास किया जा सकता है ताकि पूजी वस्तुओ के आयात के लिए आवश्यक विदेशी मुद्रा उपलब्ध हो सके। इसके अतिरिक्त आयात की वर्तमान मात्रा की सीमा मे, उपभोग वस्तुओं की अपेक्षा पूजी-वस्तुओ का आयात किया जा सकता है। अत निर्यात बढाने वाले उद्योग विकल्प उद्योग नहीं बल्कि पूरक उद्योग हैं। इन तीनो प्रकार के उद्योगो का विकास औद्योगीकरण की सबसे प्रभावी युक्ति कही जा सकती है। इन तीनो का सापेक्ष महत्त्व तो प्रत्येक देश की आर्थिक परिस्थितियो और उनमे वर्तमान औद्योगीकरण की अवस्था पर निर्भर है।

2. आयोजन की पूर्वसंध्या पर भारत में औद्योगिक विकास का ढांचा

आधुनिक औद्योगिक प्रणाली के विकास से पूर्व, भारतीय निर्मित-वस्तुओ का विश्वव्यापी बाजार था। भारतीय मलमल और छींट की माग सारे ससार द्वारा होती थी। भारतीय उद्योग न केवल स्थानीय आवश्यकताओ के लिए माल उपलब्ध कराते थे अपितु वे निर्मित वस्तुओ का निर्यात भी करते थे। भारत की निर्यात की मुख्य वस्तुओ मे रूई तथा सिल्क छीट, रगारग के बर्तन, सिल्क तथा ऊनी कपडा शामिल थे।

इग्लैण्ड से राजनीतिक सम्बन्ध कायम होने और औद्योगिक क्राति के कारण भारत के हस्तशिल्प उद्योगो (Handicraft industries) का पतन हुआ। भारत मे मशीन द्वारा बनी हुई वस्तुओ की भरमार हो गई। भारत मे हस्तशिल्प उद्योगो के पतन से जो स्थान रिक्त हुआ, उसकी पूर्ति भारत मे आधुनिक ढग के उद्योग कायम करके नहीं की गई क्योंकि ब्रिटिश सरकार की नीति भारत मे निर्मित वस्तुओ के आयात तथा भारत के कच्चे माल के निर्यात को प्रोत्साहन देने की थी।

1918 के औद्योगिक आयोग (Industrial Commission) की रिपोट के बाद भारत मे कुछ चुने हुए उद्योगो को विभेदकारी सरक्षण (Discriminating protection) प्रदान किया गया। इस सरक्षण के साथ परमानुगृहीत राष्ट्र कण्डिका (Most favoured nation clause) जुडी हुई थी। फिर भी कुछ उद्योग अर्थात् सूती वस्त्र उद्योग, चीनी, कागज दियासलाई और कुछ हद तक लौह तथा इस्पात ने प्रगति की। परन्तु ब्रिटिश शासनकाल मे पूजी वस्तु उद्योगो (Capital goods industries) के विकास का कोई प्रयास नहीं किया गया। सच तो यह है कि इनके विकास की उपेक्षा की गई। आयोजन की पूर्वसध्या के समय (1950) भारत मे विद्यमान औद्योगिक ढाचे के निम्नलिखित मुख्य लक्षण थे-

(1) उद्योगो के आकार का उलार ढाचा–1956 तक भारत का औद्योगिक ढाचा औद्योगिक इकाइयो के आकार की दृष्टि से उलार था। 1956 के मध्य मे विनिर्माण (Manufacturing) मे लगभग 150 लाख व्यक्ति रोजगार प्राप्त थे। इसमे से 39 लाख व्यक्ति कारखानो मे काम करते थे। (कारखाने की परिभाषा अधिनियम मे किसी ऐसी उत्पादन-इकाई के रूप मे की गई जिसमे 10 या 10 से अधिक व्यक्ति काम करते हो), 111 लाख व्यक्ति ऐसे घरेलू उद्योगो एव प्रयोगशालाओ (Workshops) मे काम करते थे जो 10 से कम व्यक्तियों को रोजगार देते थे। औद्योगिक इकाइयो के आकार के अनुसार रोजगार का विवरण तालिका 1 मे दिया गया है।

तालिका 1 : औद्योगिक रोजगार का आकारानुसार ढाचा (1956)

विवरण	रोजगार प्राप्त व्यक्तियो की	1956 से औसत दैनिक सख्या (लाखो मे)	उत्पादन इकाइयो की सख्या रोजगार
1 घरेलू उद्योग तथा छोटी प्रयोगशालाएँ	10 व्यक्तियो से कम	111	5,130,000
2 छोटे कारखाने	10 से 49 व्यक्ति	12	61,000
3 मध्यम कारखाने	50 से 499 व्यक्ति	10	8 050
4 बडे कारखाने	500 से अधिक व्यक्ति	17	1 050
कुल		150	5,200,000

इन आकडो से स्पष्ट हो जाता है कि कारखानो मे रोजगार प्राप्त कुल 39 लाख व्यक्तियो मे से 12 लाख (अर्थात् 30 8 प्रतिशत) छोटे कारखानो मे, 10 लाख (या 25 6 प्रतिशत) मध्यम कारखानों में, 17 लाख (43 6 प्रतिशत) बडे कारखानो मे लगे हुए हैं। भारत के औद्योगिक ढाचे की विशिष्टता इस बात मे है कि या तो घरेलू उद्योगो और छोटी प्रयोगशालाओ (निम्नतम आकार वाले) मे रोजगार का अत्यधिक सकेन्द्रण है या बडे कारखानो (अर्थात् उच्चतम आकार वाले) मे रोजगार का सकेन्द्रण है। उलार औद्योगिक ढाचे का कारण हमारी अर्थव्यवस्था का औपनिवेशिक रूप था। विदेशियो और बडे-बडे भारतीय उद्योगपतियो द्वारा चालू की गई बडी कम्पनियाँ भारतीय औद्योगिक ढाचे के शिखर पर थीं और दूसरी ओर बहुत छोटे पैमाने पर चालू किए गए घरलू उद्योग थे। औद्योगिक ढाचे का उलार रूप इस बात से भी व्यक्त होता है कि मध्यम वर्ग के उद्यमकर्त्ता (Middle entrepreneurs), जो मध्यम स्तर के कारखानो का प्रबन्ध करें, विकसित नही हुए थे।

(2) पूजी की कम तीव्रता (Low capital Intensity)–भारत के औद्योगिक ढाचे का एक और लक्षण पूजी की अपेक्षाकृत कम तीव्रता थी। यह दो कारणतत्वों का परिणाम है–प्रथम भारत मे मजदूरी का स्तर नीचा था और द्वितीय, प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण गृह मण्डी (Home market) का आकार छोटा था और परिणामत तकनीकी पिछडेपन के कारण पूजी की तीव्रता कम ही रहती थी।

तालिका 2 कुछ उद्योगो मे रोजगार प्राप्त प्रति श्रमिक पर कुल पूजी

1950 की कीमतो पर हजार डालरो मे

	यू एस ए	भारत
सूत तथा कपडा	8 7	1 8
आटे तथा धान की मिल के पदार्थ	39 1	5 6
लोहा तथा इस्पात	32 1	5 7
चीनी साफ करने के कारखाने	26 8	2 6
कागज तथा कागज पदार्थ	10 2	0 6

सयुक्त राष्ट्र (United Nations) द्वारा दिए गए इन आकडों की तुलना से यह पता चलता है कि अमेरिका की तुलना मे भारत मे प्रति श्रमिक लगाई गई पूजी बहुत कम थी। पूजी की तीव्रता, केवल उपभोग-वस्तु-उद्योगो अर्थात् कपडा, चीनी आदि मे ही कम नहीं थी, बल्कि पूजी-वस्तु-उद्योगो अर्थात लौह तथा इस्पात मे भी कम थी।

(3) विनिर्माण वस्तु उत्पादन मे पूंजी-वस्तु-उद्योगों के उत्पादन की तुलना मे उपभोग वस्तु-उद्योगों के उत्पादन की प्रधानता–सयुक्त राष्ट्र के एक अनुमान के अनुसार 1953 मे उपभोग-वस्तु-उद्योगो और पूजी-वस्तु-उद्योगो के उत्पादन का अनुपात 62 38 था। हाफमैन (Hoffman) द्वारा बताई गई कसौटी के अनुसार भारत औद्योगिक विकास की द्वितीय अवस्था मे प्रवेश कर चुका है। फिर भी इसमे सन्देह नही कि पूजी-वस्तु क्षेत्र अभी तक कम विकसित हुआ और भारतीय अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास एव इसे आत्म-पोषक (Self-reliant) बनाने के लिए इस क्षेत्र का विस्तार करना अनिवार्य है। उसी हालत में प्रति व्यक्ति आय तीव्र गति से बढ सकती है।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि आयोजनकाल की पूर्वसध्या पर भारत के औद्योगिक ढाचे के तीन मुख्य लक्षण थे–(i) पूजी की कम तीव्रता, (ii) मध्यम आकार के कारखानो का कम विकसित होना, (iii) उपभोग-वस्तु और पूजी-वस्तु उद्योगों का असतुलन। यह अध्ययन करना रुचिकर होगा कि पचवर्षीय योजनाओ ने पूजी-वस्तु-उद्योगो के विकास और उलार औद्योगिक ढाचे को ठीक करने के लिए क्या उपाय किए।

3. औद्योगिक ढांचा और पंचवर्षीय योजनाएँ

भारत सरकार ने 1950-60 के दशक के दौरान आर्थिक विकास की एक चेतन नीति के रूप में औद्योगीकरण की क्रिया प्रारम्भ की। सरकार औद्योगीकरण के योगदान से पूरी तरह परिचित थी। इससे प्राथमिक क्षेत्रों के लिए आधार उपलब्ध कराया जा सकता था, यह अध

सरचना (Infrastructure) के विकास के लिए त्वरण का कार्य कर सकती थी, यह शोध एव विकास द्वारा नयी तकनालाजी के विकास को प्रोत्साहन दे सकती थी और यह विकास-गुणक (Growth multiplier) का कार्य भी कर सकती थी।

उद्योग और प्रथम पंचवर्षीय योजना

प्रथम योजना मे अर्थव्यवस्था के औद्योगीकरण के लिए बडे पैमाने पर प्रयास न किया गया। इसकी अपेक्षा मूल सेवाओ (Basic services) अर्थात् सचालन शक्ति तथा सिचाई के निर्माण पर बल दिया गया ताकि बाद मे सुविधाजनक रूप मे औद्योगीकरण सम्भव हो सके। 1948 का औद्योगिक नीति प्रस्ताव राजकीय एव निजी क्षेत्रों मे भेद का आधार माना गया।

प्रथम योजना मे किए गए विनियोग के फलस्वरूप औद्योगिक उत्पादन 7 प्रतिशत प्रतिवर्ष की सचयी विकास-दर से बढा। चाहे प्रथम योजना मे विद्यमान सामर्थ्य (Existing capacity) के पूर्ण प्रयोग का लक्ष्य रखा गया, फिर भी 5 वर्षों मे ओद्योगिक उत्पादन मे 39 प्रतिशत वृद्धि हुई। यह उपलब्धि कम न थी। विभिन्न उद्योगों मे भी स्थिति सतोषजनक थी। प्रथम योजनाकाल मे सिदरी उर्वरक कारखाना, चितरजन का इजन बनाने का कारखाना भारतीय टेलीफोन उद्योग, इण्टीग्रल कोच फैक्ट्री पेनसिलीन फैक्ट्री की स्थापना की गई। इसके अतिरिक्त पहली योजना के दौरान मुख्य अध सरचना सम्बन्धी आदानो (Infrastructural inputs) और बहुत से मूल उद्योगो अर्थात् इस्पात-औषधो, उर्वरको मशीन-निमाण मशीनो औजार आदि के आयोजन का कार्य भी प्रारम्भ किया गया।

उद्योग और दूसरी पचवर्षीय योजना

दूसरी पचवर्षीय योजना मे 1956 के ओद्योगिक नीति प्रस्ताव के आधार पर औद्यागीकरण का कार्यक्रम बनाया गया जिसके द्वारा इस योजना मे राजकीय क्षेत्र द्वारा सगठित उद्योग (Organised industry) पर 870 करोड रुपए का विनियोग किया गया। दूसरी योजना मे निजी क्षेत्र द्वारा 675 करोड रुपए का विनियोग किया गया जो योजना मे की गई प्रत्याशा से अधिक था। इसी प्रकार ग्राम तथा लघु उद्योगो में (राजकीय एव निजी क्षेत्रो को मिलाकर) 265 करोड़ रुपए का विनियोग किया गया। कुल मिलाकर उद्योगो पर 1810 करोड रुपए का कुल विनियोग हुआ जो द्वितीय योजना काल मे किए गए कुल विनियोग का 27 प्रतिशत था।

दूसरी योजना द्वारा जिस प्रकार के ओद्योगिक ढाचे के निर्माण का प्रयास किया गया, उसमे निम्नलिखित प्राथमिकताएँ रखी गई–

(i) लोहे तथा इस्पात और भारी रसायन (जिसमें नाइट्रोजन सम्बन्धी उर्वरक भी शामिल हैं) और भारी इन्जीनियरी तथा मशीन-निर्माण उद्योग के उत्पादन को बढाना, (ii) अन्य विकासमूलक वस्तुओ (Development commodities) और उत्पादक वस्तुओ अर्थात् अल्युमीनियम, सीमेंट, रासायनिक गुद्दा, रग और उर्वरको और अन्य अनिवार्य औषधियो के उत्पादन-सामर्थ्य का विस्तार करना (iii) महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय उद्योगो का आधुनिकीकरण (Modernisation) करना और इनमे पुरानी मशीनो का प्रतिस्थापन करना। इन उद्योगो मे पटसन और सूती वस्त्र उद्योग और चीनी उद्योग शामिल किए गए। (iv) स्थापित सामर्थ्य (Installed capacity) का पूर्ण प्रयोग करना, और (v) सामान्य उत्पादन प्रयोगो को आवश्यकताओ और उद्योग के विकेन्द्रीकृत क्षेत्र (Decentralised sector) के उत्पादन लक्ष्य को दृष्टि में रखते हुए उपभोग वस्तु उद्योगो के सामर्थ्य को बढाना।

दूसरी योजना का मुख्य कार्य इस्पात के तीन बडे कारखाने कायम करना था। इनमे से प्रत्यक की सामर्थ्य 10 लाख टन इस्पात पैदा करने की थी। इनमे उडीसा में राऊडकेला इस्पात कारखाना, मध्य प्रदेश मे भिलाई इस्पात कारखाना और पश्चिम बगाल मे दुर्गापुर इस्पात कारखाना थे। इसके अतिरिक्त, औद्योगिक विकास के विभिन्न क्षेत्रो मे बहुत-सी उत्पादन इकाइयाँ कायम की गईं।

द्वितीय योजना-काल मे हुई औद्योगिक प्रगति से स्पष्ट है कि औद्योगिक उत्पादन का सूचकाँक 1955-56 मे 139 से बढकर 1960-61 मे 194 हो गया। दूसरी योजना मे अधिकतर विनियोग भारी तथा मूल उद्योगो (Heavy and basic industries) पर किया गया। इसके अतिरिक्त, कृषि तथा परिवहन के लिए इस्तेमाल होने वाली मशीनो सम्बन्धी उद्योगो का विस्तार किया गया। साथ-साथ रसायन, सूती वस्त्र पटसन, सीमेंट, चाय, चीनी, आटे तथा तेल की मिलो, कागज, खनन उद्योगो आदि का भी विस्तार किया गया। इसके अतिरिक्त, कुछ नई औद्योगिक वस्तुओं अर्थात् बॉयलर, मशीनो, ट्रैक्टरो, स्कूटरो आदि का भारी मात्रा में उत्पादन आरम्भ किया गया। चिरस्थायी उपभोग वस्तुओ (Durable consumer goods) अर्थात् साइकिल, बिजली के पखे, बिजली के लैम्प, सिलाई मशीनो आदि के उत्पादन मे भी तीव्र वृद्धि हुई।

ग्राम तथा लघु उद्योगो का भी काफी विकास हुआ। लगभग 60 औद्योगिक बस्तियाँ (Industrial estates) जिनम 1 000 छोटे कारखाने थे, कायम की गईं। इस काल

मे छोटे उद्यमकर्त्ता वर्ग (Entrepreneurial class) का तेजी से विकास हुआ। बहुत-सी वस्तुओ जैसे मशीनी औजारो, सिलाई मशीनो, बिजली की मोटरो, पखो, साइकिलो आदि का उत्पादन पाँच वर्षों मे 25 से 50 प्रतिशत तक बढा। खादी के हाथ करघे (Handloom) और शक्ति चालित करघे (Powerloom) से बने हुए कपडे का उत्पादन 1955-56 मे 162 करोड मीटर से बढकर 1960-61 मे 215 करोड मीटर हो गया।

उद्योग और तीसरी पचवर्षीय योजना

तीसरी पचवर्षीय योजना का उद्देश्य औद्योगिक क्षेत्र का और अधिक विस्तार करना था। इसमे पूजी तथा उत्पादक वस्तुओ का विशेष रूप मे विकास करते हुए मशीन-निर्माण (Machine building) और तकनीकी एव प्रबन्धकीय कौशल (Technical and manngerial skill) पर विशेष बल दिया गया था।

सगठित उद्योगो एव नन पर तीसरी योजना के दौरान 3,000 करोड रुपए व्यय किए गए जिनमे से 1,700 करोड रुपए सरकारी क्षेत्र और 1 300 करोड रुपए निजी क्षेत्र मे व्यय हुए। औद्योगिक विकास के प्रोग्राम मे राजकीय क्षेत्र को केन्द्रीय स्थान प्राप्त हुआ। इस योजना का लक्ष्य अर्थव्यवस्था को उत्पादक-वस्तु-उद्योगो अर्थात् इस्पात, मशीन-निर्माण आदि मे आत्मनिर्भर बनाना था ताकि विदेशी सहायता की माग को काफी कम किया जा सके। उपभोग वस्तुओ के उत्पादन का विस्तार निजी क्षेत्र को सौंपा गया। कुल मिलाकर योजनाकाल मे औद्योगिक उत्पादन मे 70 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य रखा गया।

तीसरी योजना मे ग्राम तथा लघु उद्योगो पर 425 करोड रुपए के विनियोग-150 करोड रुपए सार्वजनिक क्षेत्र और 275 करोड रुपए निजी क्षेत्र मे-की व्यवस्था की गई। इस क्षेत्र मे योजना का उद्देश्य लाभकर रोजगार उपलब्ध कराना और उपभोग वस्तुओ और कुछ उत्पादक वस्तुओ के उत्पादन को बढाना था। योजना मे 300 औद्योगिक बस्तियाँ (Industrial estates) कायम करने की व्यवस्था की गई। इसी प्रकार खादी हाथ करघो और बिजली करघो द्वारा कपडे के उत्पादन को 215 करोड मीटर से 320 करोड मीटर बढाने का लक्ष्य रखा गया।

1965-66 को छोड, योजना के पहले चार वर्षों मे औद्योगिक उत्पादन 7 6 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढा। यह उपलब्धि योजना काल के 14 प्रतिशत प्रति वर्ष की लक्षित वृद्धि से बहुत कम थी। उत्पादक और मूल-उद्योगो के सम्बन्ध मे भी वास्तविक वृद्धि लक्ष्य से कम ही रही। इसके अतिरिक्त दो प्रमुख उपभोग-वस्तु-उद्योगो अर्थात् सूती वस्त्र उद्योग और चीनी में समग्र योजनाकाल के दौरान केवल 20 प्रतिशत और 13 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस्पात के डलो का उत्पादन 1965-66 मे 102 लाख टन के लक्ष्य की तुलना मे केवल 62 लाख टन तक ही पहुच पाया। योजना का एक और असन्तोषजनक पहलू यह है कि अनिवार्य उपभोक्ता वस्तुओ (Essential consumer goods) अर्थात् सूती वस्त्र की आम किस्मो, चीनी, मिट्टी का तेल, औषधियो, कागज आदि की कीमतो मे काफी वृद्धि हुई। अत मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि तीसरी योजना औद्योगिक क्षेत्र मे असफल रही। परन्तु इसके दौरान इजीनियरिंग उद्योगो अर्थात् ओटोमोबाइल, सूती वस्त्र मशीनरी, डीजल इजन, बिजली के ट्रासफार्मर, मशीनी औजारो आदि ने काफी प्रगति की। इसके साथ-साथ रसायन उद्योगो पैट्रोल उत्पादो, 'ारी रसायन, सीमेट आदि का उत्पादन भी काफी बढा।

उद्योग और चौथी पचवर्षीय योजना (1969-74)

चौथी योजना मे औद्योगिक क्षेत्र मे विनियोग सम्बन्धी निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किए गए-

1 ऐसे विनियोग को पूरा करना जिसके बारे मे सरकार वचनबद्ध है।

2 वर्तमान या भावी विकास के लिए वर्तमान सामर्थ्य को बढाना, विशेषकर ऐसी अनिवार्य वस्तुओ का सभरण बढाना जिनकी या तो माग मे वृद्धि हो रही हो, या जो आयात प्रतिस्थापन (Import substitution) के लिए या निर्यात प्रोत्साहन (Export promotion) के लिए आवश्यक हो, और

3 नए उद्योगो या वर्तमान उद्योगो के लिए नए आधार स्थानो के आन्तरिक विकास का लाभ उठाना।

चौथी योजना के दौरान 5,300 करोड रुपए के विनियोग की व्यवस्था की गई-जिसमे से 3,050 करोड रुपए सरकारी क्षेत्र मे और 2,250 करोड रुपए गैर-सरकारी क्षेत्र मे थे। इसके अतिरिक्त लघु तथा ग्राम उद्योगो मे सरकारी क्षेत्र मे 186 करोड रुपए और गैर-सरकारी क्षेत्र मे 560 करोड रुपए के विनियोग की व्यवस्था की गई। इस प्रकार कुल योजना विनियोग का 26 7 प्रतिशत उद्योगो पर व्यय करने का प्रोग्राम बनाया गया। परन्तु सरकारी क्षेत्र मे सगठित उद्योगो पर वास्तविक व्यय 2,700 करोड रुपए हुआ। जोकि योजना के लक्ष्य से कम था। आन्तरक क्षेत्र (Core sector) मे योजना-काल मे होने वाले कुल विनियोग का तीन-चौथाई सरकारी क्षेत्र मे ही किया गया। आन्तरक क्षेत्र मे लौह तथा इस्पात अलौह धातुओ उर्वरको, पैट्रोलियम एव पैट्रोरसायन, कोयला एव लौह-अयस्क को शामिल किया गया।

चाहे चौथी योजना के लक्ष्य मर्यादित ही थे परन्तु उद्योगो की प्रगति से जाहिर है कि ये लक्ष्य भी बहुत हद तक पूरे न हो सके। औसत रूप मे औद्योगिक उत्पादन की विकास दर 5 प्रतिशत रही जो 8 प्रतिशत के निर्धारित लक्ष्य से कहीं कम थी। चौथी योजना मे औद्योगिक उत्पादन की मन्द गति के कई कारण थे–आदानो का अपर्याप्त सभरण सुस्त माग और सामर्थ्य की कमी। उदाहरणार्थ, इस्पात के उत्पादन को बढाने के प्रोग्राम मे विफलता के कारण इस्पात की कमी हुई जिसके फलस्वरूप पूजी वस्तुओ और इजीनियरिंग उद्योगो के उत्पादन पर दुष्प्रभाव पडा। रूई के अभाव के कारण सूती वस्त्र उद्योग–एक मुख्य उपभोक्ता वस्तु उद्योग–का उत्पादन कम हुआ। रेल-वेगनो एव अन्य मशीनरी उद्योगो को कोयले की कमी ने सीमित कर दिया। बहुत से उद्योगो के सामर्थ्य का अल्पप्रयोग हुआ।

परन्तु औद्योगिक स्थिति मे गिरावट का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण निजी क्षेत्र पर विनियोग-विस्तार सम्बन्धी सीमाबन्धन था। उद्यमकर्त्ता कार्य मे इस रिक्ति को सरकारी क्षेत्र द्वारा पूरित करने की आशा की जाती थी परन्तु खेद की बात यह है कि सरकारी क्षेत्र इस दायित्व को पूरा नहीं कर सका और इसका मुख्य कारण सरकारी क्षेत्र में प्रबन्ध एव कार्यान्वयन की कठिनाइयाँ थीं। इस सीमाबन्धन को स्वीकार करते हुए चौथी योजना मे 65 चुने हुए उद्योगो को अपनी लाइसेन्स प्राप्त सामर्थ्य से अधिक उत्पादन करने की इजाजत दी गई। सरकार ने मिश्रित क्षेत्र (*Joint sector*) की धारणा को चालू करके बड़े औद्योगिक घरानो और विदेशी कम्पनियो को भारी विनियोग के क्षेत्र मे कार्य करने की अनुमति दे दी।

पाचवीं योजना मे उद्योग (Industries in the Fifth Plan)

पाचवी योजना के औद्योगिक प्रोग्राम आत्मनिर्भरता और सामाजिक न्याय के साथ विकास के उद्देश्यो को ध्यान मे रखकर बनाए गए। योजना मे निम्नलिखित बातो पर बल दिया गया–

(*i*) आन्तरक क्षेत्र (Core sector) के उद्योगो का तीव्र विकास और इसके लिए इस्पात, अलौह धातुओ, उर्वरको, खनिज तेलो तथा मशीन-निर्माण को उच्च प्राथमिकता देना।

(*ii*) ऐसे उद्योगो का विकास करना जिनमे तीव्र विशाखन और निर्यात मे वृद्धि की सभावनाएँ हो।

(*iii*) जन-उपभोग की वस्तुओ (अर्थात् कपडा खाने के तेल और वनस्पति चीनी, दवाइयाँ, साइकिल) उद्योगो के उत्पादन को बढाना।

(*iv*) निर्यात को छोड अनावश्यक वस्तुओ के उत्पादन को सीमित करना।

(*v*) छोटे उद्योगो का विकास करने के उद्देश्य से 124 मदो को केवल उनके लिए रिजर्व कराना और सहायक उद्योगो (Ancillary Industries) के गहन प्रोग्राम को विकसित करना ताकि वे बडे उद्योगो के पोषक उद्योग (Feeder Industries) बन सके।

सशोधित पाचवीं योजना मे सगठित उद्योग एव खनन पर कुल परिव्यय कम करके 10,135 करोड रुपए कर दिया गया। इसमे से 553 करोड रुपए छोटे उद्योगो पर खर्च करने की व्यवस्था की गई। यह पाचवीं योजना के कुल परिव्यय के 26 प्रतिशत के बराबर था। औद्योगिक क्षेत्र मे लक्षित 8 1 प्रतिशत की विकास-दर के विरुद्ध वार्षिक औद्योगिक वृद्धि-दर (1974-75 और 1977-78 के दौरान) 5 3 प्रतिशत रही जो निर्धारित लक्ष्य की तुलना मे कहीं कम थी।

छठी योजना (1980-85) मे उद्योग

छठी योजना की समग्र विकास-रणनीति विशेषकर सरचनात्मक विशाखन (Structural diversification), आधुनिकीकरण और आत्मनिर्भरता के परिवेश मे कार्य करना चाहती थी। योजना के अन्य पहलुओ मे निम्नलिखित शामिल किए गए

(1) सरकारी एव निजी क्षेत्र के बहुत से उद्योगो मे विनिर्माण क्षमता मे काफी वृद्धि करनी होगी ताकि न केवल उपभोक्ता वस्तुएँ और चिरस्थायी उपभोक्ता वस्तुएँ उपलब्ध कराई जा सके बल्कि कृषि तथा औद्योगिक विकास को बढावा देने के लिए अन्तर्वर्ती (Intermediate) और पूजी वस्तुओ का सभरण भी बढाया जा सके।

(2) सामान्य तौर पर पूजी वस्तु उद्योगो और विशेषकर इलेक्ट्रॉनिक्स उद्योग पर विशेष ध्यान देना होगा क्योकि इनसे आर्थिक क्रिया के विस्तृत क्षेत्र को बढावा मिलता है।

(3) योजना के लिए काफी मात्रा मे विदेशी ससाधनो की आवश्यकता है और इन्हे प्राप्त करने के लिए इन्जीनियरी सामान, *औद्योगिक वस्तुओ और परियोजना निर्यात* (Project exports) में काफी वृद्धि करनी होगी।

(4) औद्योगिक प्रगति निरन्तर तकनीकी विकास पर निर्भर करेगी। बहुत सोच-समझकर समसामयिक तकनीको (*Contemporary techniques*) के आयात की अनुमति देनी होगी। सबसे अधिक बल आन्तरिक अनुसधान और विकास पर देना होगा ताकि देशी तकनीकी विकास प्रोन्नत किया जा सके।

(5) पिछडे क्षेत्रो मे विकास के लिए नई कार्यनीतियाँ

निर्धारित करने की आवश्यकता है। इसलिए विकास के नये मॉडलों लागू करने पर बल देना होगा ताकि वर्तमान महानगरीय क्षेत्रों (Metropolitan areas) में उद्योगों के संकेन्द्रण को रोका जा सके।

छठी योजना के दौरान औद्योगिक विकास की प्रगति से पता चलता है कि औद्योगिक उत्पादन से 7 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि के लक्ष्य के विरुद्ध प्राप्त वृद्धि-दर केवल 5 5 प्रतिशत थी जोकि पिछले तीन दशकों के दौरान 6 प्रतिशत की वृद्धि दर की औसत प्रवृत्ति से भी नीचे थी। यह बहुत ही असंतोषजनक थी। कुछ बुनियादी उद्योगों अर्थात् इस्पात सीमेंट और धातुओं उर्वरकों सूती वस्त्र पटसन निर्मित वस्तुओं चीनी औषधों वाणिज्यिक गाड़ियों और रेलवे वैगनों में उपलब्धि उत्पादन लक्ष्य से कम रही। जिन उद्योगों में लक्ष्य से अधिक उत्पादन किया गया, वे थे-मशीनी औजार कारें मोटर साईकिल और स्कूटर और उपभोक्ता इलेक्ट्रॉनिक्स एवं संचार उपकरण। जाहिर है कि इन वर्गों के उपभोग की वस्तुओं में मूल तथा भारी उद्योगों एवं मजदूरी वस्तु उद्योगों (Wage goods industries) की तुलना में कहीं अधिक वृद्धि दर प्राप्त हुई।

उद्योगों और खनिजों के लिए जिनमें ग्राम उद्योग भी शामिल हैं छठी योजना में 22 200 करोड़ रुपये अर्थात् योजना के कुल व्यय के 22 8 प्रतिशत की व्यवस्था की गयी। इसके अतिरिक्त ऊर्जा के विकास के प्रोग्रामों पर 4 3000 करोड़ रुपये और कोयला उद्योग पर 2 870 करोड़ रुपये व्यय किए गए।

औद्योगिक उत्पादन में कमी के कारणों की व्याख्या करते हुए सातवीं योजना में निम्नलिखित का उल्लेख किया गया-(क) वास्तव में बिजली के उत्पादन की कमी औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि में सबसे बड़ी बाधा बन गई। (ख) अन्य बाधाओं में काफी समय से चल रही श्रम *अशांति और सूती वस्त्र के संबंध में अपर्याप्त माग पटसन* की निर्मित वस्तुओं में कच्चे माल की कमी इस्पात के सम्बन्ध में कोकिंग कोल का अभाव और इस्पात का प्रयोग करने वाले बहुत से उद्योगों में उचित प्रकार के इस्पात की अपर्याप्त उपलब्धि। (ग) उत्पादन के साधनों के प्रयोग में कुशलता बढ़ाने के बारे में कम चिन्ता के कारण पूंजी-अनुपात बढ़ा है। (घ) तकनालॉजीय उन्नति और ऊर्जा उपभोग में मितव्ययता लाने की ओर अपर्याप्त ध्यान उत्पादन लागत में वृद्धि और उत्पादन की क्वालिटी में अपर्याप्त सुधार।

सातवीं योजना (1985 90) के दौरान उद्योग

सातवीं योजना के मार्गदर्शी सिद्धान्तों अर्थात् सामाजिक न्याय के साथ विकास और उत्पादिता उन्नत करने के उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए औद्योगिक क्षेत्र के विकास कार्यक्रम इस प्रकार तय किए गए-

(i) स्वीकार्य क्वालिटी की मजदूरी-वस्तुओं और जनोपभोग की वस्तुओं की उचित कीमत पर पर्याप्त मात्रा में आपूर्ति सुनिश्चित करना

(ii) वर्तमान सुविधाओं के प्रयोग का पुनर्गठन उन्नत उत्पादिता एवं तकनालॉजी द्वारा अधिकतम उत्पादन करना,

(iii) उन उद्योगों के विकास पर ध्यान केन्द्रित करना जिनमें बड़ा देशीय बाजार और निर्यात क्षमता उपलब्ध है ताकि इनमें हम विश्व नेतृत्व प्राप्त कर सकें।

(iv) उच्च संवृद्धि क्षमता वाले और हमारी आवश्यकताओं की संगति वाले "सूर्योदय उद्योग" (Sunrise industries) आरम्भ करना

(v) महत्वपूर्ण क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने और दक्ष तथा प्रशिक्षित जनशक्ति को रोजगार के अवसर जुटाने के लिए एक समन्वित नीति विकसित करना।

सातवीं योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में बड़े तथा मध्यम उद्योगों के लिए 19 708 करोड़ रुपए के कुल विनियोग का प्रस्ताव है। इसके अतिरिक्त ग्राम तथा लघु उद्योगों के विकास के लिए 2 752 करोड़ रुपए अर्थात् कुल योजना-परिव्यय के 12 5% की व्यवस्था की गई है।

सातवीं योजना के दौरान 8 प्रतिशत प्रतिवर्ष की लक्षित वृद्धि दर प्राप्त करने की विकास-रणनीति में बिजली की उपलब्धि और आधारसंरचना सुविधाओं (Infrastructural Facilities) के विस्तार पर विशेष बल दिया गया। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए औद्योगिक लाइसेंस नीतियों एवं कार्यविधि को उदार बनाना होगा और सरकार द्वारा महत्वपूर्ण क्षेत्रों जैसे इलैक्ट्रॉनिक्स और निर्यात उद्योगों के लिए नई प्रोत्साहन देने होंगे। सातवीं योजना की औद्योगिक रणनीति के मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं-

(1) आधारसंरचना (Infrastructure) सम्बन्धी बाधाओं को तेजी से दूर करना होगा और इसके लिए बिजली की अतिरिक्त उपलब्धि पर विशेष बल देना होगा।

(2) सूती वस्त्र एवं चीनी उद्योग उनमें आधुनिकीकरण और तकनालॉजीय उन्नति को प्रोत्साहन देना होगा। सातवीं योजना में उल्लेख किया गया *आधुनिकीकरण और तकनालॉजीय उन्नति को प्रोत्साहन* देने के साथ-साथ लागत मात्रा में स्पर्द्धा की भावना को विकसित करने से क्वालिटी में सुधार होगा और लागत में भी कटौती होगी।"

(3) मुख्य उद्योगों जैसे इस्पात उर्वरकों आदि

धातुओ, पैट्रो-रसायन, कागज और सीमेंट के लिए योजना मे उत्पादिता बढाने के विशेष लक्ष्य निर्धारित करने होगे।

(4) निर्यात उत्पादन को देशीय अर्थव्यवस्था के उत्पादन का एकीकृत भाग बनाना होगा। ऐसे उद्योग जिनमे देश को एक तुलनात्मक लाभ प्राप्त है और जिनमे देश औद्योगिक परिपक्वता की एक सीमा तक पहुच चुका है, मे विशेष प्रयास करना होगा।

(5) सूर्योदय उद्योगो अर्थात् टैली-सचार, कम्प्यूटर, माइक्रो-इलैक्ट्रॉनिक्स और जीव-तकनालाजी (Bio technology) को प्रोत्साहन।

(6) उद्योगो का स्थिति-निश्चयन ऐसे छोटे जिला-नगरो के समीप करना जो अभी तक औद्योगीकृत नहीं हुए हो। इसका उद्देश्य क्षेत्रीय विषमताओ को दूर करना और उद्योगो के प्रसार को बढाना है।

(7) लगभग 30 प्रतिशत उद्योगो-बडे तथा मध्यम-मे प्रदूषण नियन्त्रण प्रणालियाँ (Pollution Control System) स्थापित करना।

औद्योगिक उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए सातवीं योजना मे अध सरचना सम्बन्धी सीमाबन्धनो (Infrastructural constraints) को दूर करने औद्योगिक लाइसेस नीति एव अन्य विनियमो (Regulations) के उदारीकरण, और इलेक्ट्रॉनिक्स जैसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो के तीव्र विकास को प्रोत्साहित करने पर बल दिया गया है। विनिर्माण क्षेत्र मे सकल मूल्य वृद्धि (Gross value added) की 8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि-दर प्राप्त करने का लक्ष्य सातवीं योजना मे रखा गया है।

सातवीं योजना की समीक्षा से पता चलता है कि औद्योगिक क्षेत्र जिसमे खनन, विनिर्माण और बिजली का उत्पादन शामिल है, मे सातवीं योजना के दौरान औसत वार्षिक वृद्धि-दर 8 5 प्रतिशत रही, जो 8 7 प्रतिशत के लक्ष्य से थोडी कम है किन्तु छठी योजना मे प्राप्त 3 5% की वृद्धि-दर से कहीं ऊँची है।

औद्योगिक क्षेत्र मे विनिर्माण क्षेत्र (Manufacturing sector) की औसत वार्षिक वृद्धि-दर 8 9 प्रतिशत रही। इस क्षेत्र मे, इलैक्ट्रिकल मशीनरी की वृद्धि दर 25 8% और रसायन एव रसायन उत्पाद की 11 7% रही। इन दोनों समूहो का विनिर्माण क्षेत्र की औद्योगिक वृद्धि मे योगदान 61 प्रतिशत था।

खनन क्षेत्र मे मन्द प्रगति अनुभव की गई और छठी योजना म प्राप्त 12 7% की वार्षिक वृद्धि दर की तुलना मे सातवीं योजना मे वृद्धि-दर 5 6 प्रतिशत रही। अन्य क्षेत्र जिनम सातवीं योजना म वृद्धि-दर मन्द रही वे हैं-पेय पदार्थ, तम्बाकू और तम्बाकू उत्पाद, लकडी एव लकडी की वस्तुएँ।

सातवीं योजना के दौरान जिन उद्योगो मे वृद्धि-दर त्वरित हुई, उनमे उल्लेखनीय हैं-टैक्सटाइल उत्पाद, मूल धातुएँ एव मिश्रधातु, धातु-उत्पाद और हिस्से, इलैक्ट्रिकल मशीनरी एव उपकरण।

बेहतर औद्योगिक विकास के लिए उत्तरदायी कारणतत्वो की व्याख्या करते हुए आठवीं योजना ने उल्लेख किया सातवीं योजना के दौरान उल्लेखनीय वृद्धि के कई कारण हैं। इनमे सबसे महत्त्वपूर्ण कारण आधार-सरचना सुविधाओं (Infrastructural facilities) अर्थात् विद्युत, कोयला आदि के उत्पादन मे सुधार है। इस वृद्धि मे जिन अन्य कारणतत्वो ने योगदान दिया है, वे इस प्रकार हैं-(क) लाइसेस प्रदान करने और इससे जुडी हुई कार्यविधि मे परिवर्तन (ख) तकनालाजी का आयात, (ग) पूजी वस्तुओ का अपेक्षाकृत अधिक आयात, (घ) स्थापित क्षमता का बेहतर उपयोग, बहुत से उद्योगो मे वस्तुओ का विस्तृत वर्गीकरण (Broad banding)। इसके अतिरिक्त, एम आर टी पी अधिनियम के आधीन कम्पनियो को परिसम्पत् की सीमा से छूट और पिछडे हुए क्षेत्रो मे 50 करोड रुपए तक विनियोग की इकाइयो को लाइसेस न लेने की छूट। इसके अतिरिक्त गैर-एम आर टी पी और गैर-विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम (Non FERA) कम्पनियो को 31 औद्योगिक समूहो मे लाइसेस प्राप्त करने से मुक्त कर देने से औद्योगिक विकास की प्रक्रिया त्वरित हो गई।

तालिका 3 औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि-दरें (1985-90)

	औसत वार्षिक वृद्धि दर
मुख्य औद्योगिक समूह	
1 विनिर्माण	8 9
2 खानें एव खदान	5 6
3 बिजली	9 3
समग्र उद्योग	**8 5**

सातवीं योजना ने उद्योग एव खनिज के लिए 22,200 करोड रुपए का प्रावधान किया किन्तु (चालू कीमतो पर) वास्तविक परिव्यय 26,095 करोड रुपए हुआ। 1984 की कीमतो पर सातवीं योजना का परिव्यय 21,063 करोड रुपए था। अत वास्तविक व्यय आयोजित व्यय का 95 प्रतिशत था। इस बात को दृष्टि मे रखते हुए यह कहा जा सकता है कि उत्पादन के रूप मे सातवीं योजना की उपलब्धियाँ काफी सतोषजनक प्रतीत होती हैं।

आठवीं योजना (1992-97) में उद्योग

आठवी योजना एक नए वातावरण मे प्रतिपादित की जा रही है जब औद्योगिक, राजकोषीय, व्यापारिक एव विदेशी विनियोग नीतियो मे बहुत से सुधार अर्थव्यवस्था मे किए जा रहे हैं। इस पृष्ठभूमि मे, परिमाणात्मक लक्ष्यो पर कम बल दिया जाएगा और आयोजन अधिक "साकेतिक" (Indicative) रूप धारण करेगा। आठवीं योजना का विश्वास है कि विभिन्न क्षेत्रो मे इच्छित वृद्धि औद्योगिक, राजकोषीय, व्यापारिक नीतियो मे सशोधन और शुल्को एव करो मे परिवर्तन द्वारा प्राप्त की जाएगी, न कि आयात अथवा निर्यात पर परिमाणात्मक सीमाबन्धनो (Quantitative restrictions) और लाइसेंस प्रणाली द्वारा।

1991 की नयी औद्योगिक नीति के प्रकाश मे सार्वजनिक और निजी क्षेत्रो के कार्यभाग की समीक्षा करनी होगी। इसमे सन्देह नहीं कि आरम्भिक अवस्था मे सार्वजनिक क्षेत्र ने भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास मे पथप्रदर्शक का कार्यभाग अदा किया, परन्तु इसकी मुख्य कमजोरी यह थी कि यह विकास क्रिया के आत्मपोषित विकास के लिए पर्याप्त ससाधन जनित करने मे असफल रहा। इसके अतिरिक्त, निजी क्षेत्र अब प्रौढ हो गया है और उसने काफी अधिक उद्यमकर्त्ता योग्यता, प्रबन्धकीय, तकनालाजीय, वित्तीय एव विपणन शक्ति प्राप्त कर ली है। अत अब निजी क्षेत्र को विकास-प्रक्रिया म अधिक कार्यभाग अदा करना है। यह दिशा-निर्देश उद्योगो मे प्रतिस्पर्द्धा और परिचालन मे कुशलता पर अधिक विश्वास रखने क दर्शन से युक्तिसगत है। प्रतिस्पर्द्धा पर अधिक बल देकर ऐसे क्षेत्रो का भविष्य मे विकास किया जाएगा जिनमे देश को तुलनात्मक लाभ (Comparative advantage) प्राप्त है।

दूसरे कम्पनियो का आकार जो अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डो से बहुत छोटा है, विस्तार, विलयन, समामेलन आदि द्वारा बढ जाने की आशा की जा सकती है।

तीसरे, देशीय उत्पादन का शेष ससार के साथ अधिक समन्वय करना होगा। जिन हिस्सो या पुरजो का उत्पादन आर्थिक दृष्टि से अलाभकर है, उनका आयात किया जाएगा। इसके विरुद्ध कुछ अन्य हिस्सो या पुरजो का निर्यात किया जाएगा।

अन्तिम, इस देश एव सम्बन्धित विदेशो मे ससाधनो की पूरकता का लाभ उठाने के लिए साझे उद्यम (Joint Ventures) स्थापित किए जाएँगे।

मोटे तौर पर इन मार्गदर्शी सिद्धान्तो को दृष्टि मे रखते हुए, आठवी योजना मे उद्योग एव खनिज प्रोग्रामो पर सार्वजनिक क्षेत्र मे 40,673 करोड रुपए का परिव्यय किया गया।

आठवीं योजना ने इस बात की ओर ध्यान दिलाया है कि पूजी-वस्तुओ के अधिकतर क्षेत्रो, देश मे निर्मित पूंजी वस्तुओ का निष्पादन, विदेशो मे प्राप्त समकालीन स्तर की तुलना मे बहुत घटिया है, विशेषकर जब इसकी तुलना तकनालाजीय प्रक्रिया, वस्तुओ की गुणवत्ता, उत्पादिता एव उत्पादन-लागत की दृष्टि से की जाए। तकनालाजी एव उत्पादिता के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर प्राप्त करने के लिए, प्रमुख पूजी वस्तु निर्माताओ से यह आशा की जाती है कि वे विदेशी सहयोग (Foreign collaborations) स्थापित करें जिनमे विदेशी हिस्सा पूजी (Foreign equity) और तकनालाजी के आयात द्वारा वे पूजी वस्तुओ के विश्व प्रसिद्ध सभरक (Suppliers) बन सके।

आठवीं योजना मे भारी उद्योग पर 2,771 करोड रुपए के आवण्टन के अतिरिक्त इस्पात पर 14,579 करोड रुपए का परिव्यय होगा। यह कुल विनियोग के लगभग 42 प्रतिशत के बराबर है। इस आवण्टन का मूल उद्देश्य इस क्षेत्र मे तकनालाजी को उन्नत कर इसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लाना है।

आठवीं योजना मे सकल मूल्यवृद्धि (Gross Value added) के रूप मे खनन एव खदान क्षेत्र मे 8 1 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि की कल्पना की गयी। विनिर्माण क्षेत्र मे 7 46 प्रतिशत और बिजली क्षेत्र मे 8 2 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। चुने हुए उद्योगो के बारे मे आठवीं योजना के लक्ष्य तालिका 5 मे दिए गए हैं।

तालिका 4 मे औद्योगिक क्षेत्र मे वृद्धि-दरो का विश्लेषण किया गया है। औद्योगिक उत्पादन के सूचकांक मे 1991-92 के दौरान 0 6 प्रतिशत की नाममात्र वृद्धि के विरुद्ध, आठवीं योजना के पहले तीन वर्षों मे धीमी परन्तु लगातार उन्नति का सकेत मिलता है। 1992-93 के दौरान औद्योगिक उत्पादन के सूचकाक में 2 3 प्रतिशत, 1993-94 मे 4 1 प्रतिशत की वृद्धि-दर और 1994-95 (अप्रैल से अक्तूबर) मे 8 प्रतिशत की अपेक्षाकृत उच्च वृद्धि-दर प्राप्त की गयी। **आर्थिक समीक्षा** (1994-95) ने सुधार-प्रक्रिया के परिणामस्वरूप सबल पुनरुत्थान (Recovery) के चिन्हो का सकेत किया है। इसमे उल्लेख किया गया है "1993-94 मे औद्योगिक वृद्धि 4 1 प्रतिशत हो जाने से मर्यादित पुनरुत्थान हुआ और अप्रैल-अक्तूबर 1994 में 8 प्रतिशत की प्रभावशाली वृद्धि-दर प्राप्त की गयी इस बात के साफ सकेत प्राप्त हैं कि एक महत्त्वपूर्ण और विस्तृत औद्योगिक पुनरुत्थान आरम्भ हो गया है और इसका कारण

नब्बे के दशक के पहले वर्षों मे सुधार कार्यक्रम का प्रभाव है। पूजी वस्तु क्षेत्र जो पहले डागमगा रहा था, अब औद्योगिक उन्नति मे प्रधान योगदान देने वाला क्षेत्र बन गया है। अत इसमे अप्रैल-अक्तूबर 1994 मे 21 7 प्रतिशत की वृद्धि हुई। उपभोक्ता वस्तुएँ-चिरस्थायी उपभोक्ता वस्तुओ और गैर-चिरस्थायी उपभोक्ता वस्तुओ दोनो मे ही निष्पादन अच्छा रहा है। छ मुख्य अध सरचना उद्योगो अर्थात् बिजली-जनन, कोयला लौह एव इस्पात, सीमेंट, रूक्ष तेल और परिशोधन उत्पादो मे ऊर्ध्व प्रवृत्ति बनी रही और अप्रैल-दिसम्बर 1994 के दौरान 8 प्रतिशत की वृद्धि-दर अनुभव की गयी। विनियोग वातावरण बहुत ही उत्साहवर्धक है।" वृद्धि-दर का क्षेत्रानुसार विश्लेषण करते हुए आर्थिक समीक्षा मे उल्लेख किया गया "अप्रैल-अक्तूबर 1994 के दौरान समग्र औद्योगिक उत्पादन मे 8 प्रतिशत की वृद्धि हुई जिसके साथ विनिर्माण मे 8 3 प्रतिशत की वृद्धि बिजली मे 7 7 प्रतिशत की वृद्धि और खनन एव खदान मे 6 2 प्रतिशत की वृद्धि हुई।" औद्योगिक वृद्धि के समग्र वातावरण मे "केवल चार क्षेत्रो अर्थात् सूती वस्त्र उद्योग पटसन उद्योग मूल धातुओ और विविध विनिर्माण उद्योगो मे अप्रैल-अक्तूबर 1994 के दौरान नकारात्मक वृद्धि-दरें रिकार्ड की गयीं।"

तालिका 4 मुख्य वर्गों के अनुसार औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि-दरें

क्षेत्र	1991-92	1992-93	1993-94	1994-95
सामान्य	0 6	2 3	4 1	8 0
विनिर्माण	-0 8	2 2	3 6	8.3
खनन एव खदान	0 6	0 6	2 5	6 2
बिजली	8 5	5 0	7 4	7 7
प्रयोग-आधारित वर्गीकरण				
बुनियादी वस्तुए	6 5	2 6	5 9	4 2
पूजी वस्तुए	8 6	0 1	5 3	21 7
मध्यवर्ती वस्तुए	-2 2	5 4	11 4	4 6
उपभोग वस्तुए	1 5	1 8	3 1	7 3
चिरस्थायी उपभोक्ता वस्तुए	-10 7	0 7	15 2	8 6
गैर चिरस्थायी उपभोकता वस्तुए	4 7	2 4	0 5	7 0

स्रोत भारत सरकार, आर्थिक समीक्षा (1994 95)

ऊपर दिए गए आकडो के विश्लेषण से कुछ निष्कर्ष प्राप्त होते हैं पहला यदि 1994-95 के पूरे वर्ष के दौरान 8 प्रतिशत की वृद्धि-दर मान भी ली जाए, तो 1992-93 से 1994-95—आठवीं योजना के पहले तीन वर्षों में औद्योगिक उत्पादन की औसत वार्षिक वृद्धि-दर 5 प्रतिशत बैठती है। अत यह आशा करना कि आठवीं योजना के दौरान औद्योगिक उत्पादन मे 8 0 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि प्राप्त की जा सकेगी, अति-आशावाद ही होगा। दूसरे, पूजी-वस्तु क्षेत्र में 21 7 प्रतिशत की वृद्धि-दर की प्राप्ति भ्रान्तिपूर्ण हैं क्योकि इस क्षेत्र मे तीन वर्ष लगातार नकारात्मक वृद्धि-दर पायी गयी, परिणामत आधार बहुत ही निम्न स्तर पर पहुच गया। पूजी-वस्तु उद्योगो का उत्पादन सूचकाक 1990-91 मे 291 6 था (आधार 1989-81 = 100) और यह गिरकर 1993-94 मे 252 3 हो गया और 1994-95 मे 321 के आसपास हो जाएगा। यदि हम शिखर से शिखर की वृद्धि-दर की तुलना करें, तो 1990-91 से 1994-95 के दौरान पूजी वस्तु क्षेत्र मे 2 4 प्रतिशत की बहुत ही निम्न वृद्धि-दर अनुभव की गयी। परन्तु यदि हम 1994-95 के शिखर की 1993-94 के गर्त (Trough) के साथ तुलना करें, तो 1994-95 मे वृद्धि-दर एक दम छलांग लगाकर 21 7 प्रतिशत हो जाती है जोकि एक साख्यिकीय जादूगरी और आकडो का दुरुपयोग है। तीसरे, चार मुख्य क्षेत्रों अर्थात् सूती वस्त्र उद्योग पटसन उद्योग, मूल धातुओ और विविध विनिर्माण उद्योगो मे नकारात्मक वृद्धि-दर का बना रहना शुभ लक्षण नहीं है क्योकि इन उद्योगों का औद्योगिक उत्पादन के सूचकाक मे 25 प्रतिशत महत्त्व है। दूसरे शब्दो मे, औद्योगिक क्षेत्र का एक-चौथाई भाग अभी भी पक्षाघात से ग्रस्त है। तिस पर भी, अर्थव्यवस्था मे समग्र औद्योगिक पुनरुत्थान का अभिनन्दन करना चाहिए और औद्योगिक अधिदृश्य पर जो काले धब्बे अभी भी बने हुए हैं, उन्हें हटाना आवश्यक है ताकि समग्र औद्योगिक क्षेत्र उन्नति के पथ पर अग्रसा हो सके।

4. आयोजन-काल के दौरान औद्योगिक प्रगति की समीक्षा : संरचनात्मक परिवर्तन (Structural Transformation)

1951 के पश्चात् पिछले चार दशको में औद्योगीकरण की प्रगति भारतीय आर्थिक विकास का मुख्य लक्षण रही है। औद्योगीकरण की प्रक्रिया जिसे 1948 एव 1956 के औद्योगिक नीति प्रस्तावो के आधीन पचवर्षीय योजनाओ मे बडे जोश से लागू किया गया, के कारण बहुत से उद्योगो मे भारी विनियोग करके नई क्षमता का निर्माण किया गया। इसके कारण पिछले 36 वर्षों मे औद्योगिक उत्पादन बढ कर लगभग 5 गुना हो गया और इस प्रकार भारत विश्व का दसवाँ सबसे अधिक औद्योगिक देश बन गया। औद्योगिक ढाचे का बहुत भारी विशाखन (Diversification) हुआ है और इस प्रक्रिया मे बहुत से नये उद्योग, अन्तर्वर्ती एव पूजी उद्योग स्थापित किए गए हैं। औद्योगीकरण के क्षेत्र मे भारत

तालिका 5 आठवीं योजना मे चुने हुए उद्योगों के उत्पादन सम्बन्धी लक्ष्य

उद्योग	इकाई	1991-92 वास्तविक/प्रत्याशित	1996-97 लक्ष्य	5-वर्षीय वृद्धि (%)	औसत वार्षिक वृद्धि-दर (%)
1 कोयला एव लिग्नाइट	लाख टन	2 400	3,280	36 6	6 5
2 रूक्ष तेल	लाख टन	310	500	61 3	10 0
3 लौह अयस्क	लाख टन	565	720	27 4	4 9
4 बिक्री के लिए इस्पात	लाख टन	143	232	62 2	10 1
5 सीमेट	लाख टन	530	760	43.4	7 5
6 पैट्रोलियम उत्पाद	लाख टन	502	616	22 7	4 2
7 नाइट्रोजन उर्वरक	लाख टन	73	98	34 2	6 0
8 फास्फेट उर्वरक	लाख टन	25	30	20 0	3 7
9 मानव-निर्मित फाइबर					
क विस्कोस फिलामेट यार्न	हजार टन	53 0	60 0	13 2	2 5
ख विस्कोस स्टेपल फाइबर	हजार टन	160 0	200 0	25 0	4 6
10 भारी उत्पादन वाली औषध	करोड रुपए	730	1 500	10 55	15 5
11 चीनी	लाख टन	120	155	29 2	5 2
12 वनस्पति	लाख टन	850	1 050	23 5	4 3
13 कपडा-मिल क्षेत्र	करोड मीटर	240	350	45 8	7 8
विकेन्द्रीकृत क्षेत्र	करोड मीटर	1 576	2,120	34 5	6 1
14 इलैक्ट्रानिक्स	करोड रुपए	15 070	36 000	138 9	19 0
15 ट्रैक्टर	हजार	155	240	54 8	9 1
16 विद्युत इजन	हजार	140	200	42 9	7 4
17 डीजल इजन	हजार	225	290	28 9	5 2
18 वाणिज्यिक गाडियाँ	हजार	135	200	48 1	8 2
19 यात्री कारें	हजार	165	250	51 5	8 6
20 स्कूटर मोटर साइकिल	हजार	1 800	2 400	33 3	5 9
21 मोटर वाहनो के टायर	लाख	260	320	23 1	4 2

स्रोत–आठवीं पचवर्षीय योजना (1992-97) से सकलित एव आकलित।

की प्रगति का अनुमान इस बात से साफ जाहिर होता है कि भारत के विदेशी व्यापार की सरचना मे निर्मित वस्तुओ के आयात मे लगातार कमी हुई है। इसके विरुद्ध औद्योगिक वस्तुओ, विशेषकर इजीनियरी सामान का भारतीय निर्यात मे भाग बढा है। अन्तिम, औद्योगीकरण मे तीव्र प्रगति के साथ तकनीकी एव प्रबन्धकीय कौशल मे भी तदनुरूप विकास हुआ है ताकि सर्वोत्तम परिमार्जित उद्योगो (Sophisticated industries) का कुशल परिचालन हो सके और ऐसे उद्योगो के आयोजन, डिजाइन एव निर्माण मे भी सफलता से कार्य किया जा सके।

स्वतन्त्रता-उपरान्तकाल मे औद्योगिक प्रगति

औद्योगिक क्षेत्र की मुख्य उपलब्धि भारत की क्षमता का विविधीकरण (Diversification of capacity) है। तालिका 5 मे चुने हुए उद्योगो मे औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि का सकेत प्राप्त होता है।

भारत ने लगभग सभी उपभोग वस्तुओ मे आत्मनिर्भरता प्राप्त कर ली है। पूजी वस्तु उद्योगो के उत्पादन मे वृद्धि विशेष रूप से प्रभावी जान पडती है। जिन वस्तुओ में महत्त्वपूर्ण रूप मे औद्योगिक क्षमता का विस्तार हुआ है, वे हैं–खनन एव धातुकर्म उद्योग, रसायन और पैट्रो-रसायन उद्योग जिसमे उर्वरक उत्पादन भी शामिल है, पूजी-वस्तु उद्योग जिनमे स्टील के कारखानो के लिए परिमार्जित उपकरण भी शामिल हैं, उर्वरक-सयत्र, रसायन-प्लान्ट आदि, हल्के, मध्यम और भारी इजीनियरिंग उद्योग, सचालन शक्ति एव परिवहन उद्योग, विनिर्माण उद्योग आदि। इसके अतिरिक्त भारत अब बहुत से उद्योगो की वृद्धि-दर का देश के अन्दर उत्पन्न की जाने वाली पूजी-वस्तुओ द्वारा आत्मपोषण कर सकता है और उसे केवल सीमान्त मात्रा मे आयात करता है। इसके अतिरिक्त, अध सरचना (Infrastructure) जिसमे अनुसधान एव विकास (R & D) की सामर्थ्य परामर्श एव डिजाइन सम्बन्धी इजीनियरी

सेवाएँ, प्राजैक्ट प्रबन्ध सेवाएँ और नवक्रिया-सामर्थ्य शामिल हैं, के द्वारा तकनालाजी को उन्नत करने और इसे अपने अनुकूल ढालने मे वस्तुत सराहनीय कार्य किया गया है।

औद्योगिक विकास की दर

1951 के पश्चात् औद्योगिक वृद्धि-दर समान रूप से नहीं हुई। पहले चोदह वर्षों (1951 से 1965) के दौरान, लगभग 8 प्रतिशत की स्थिर वृद्धि-दर के पश्चात् उच्चावचन की प्रवृत्ति व्यक्त हुई-1966-68 के दौरान लगभग गतिरोध की स्थिति, 1976-77 के दौरान 9 5 प्रतिशत की उच्च वृद्धि-दर, 1979-80 मे 1 4 प्रतिशत की नकारात्मक वृद्धि-दर। 1961-70 के दशक मे, औद्योगिक उत्पादन की औसत वृद्धि दर 5 5 प्रतिशत थी और 1971-80 के दौरान, औसत वृद्धि-दर लगभग 4 प्रतिशत हो गई। 1980-85 के दौरान भी औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर 5 5 प्रतिशत प्रति वर्ष रही। मूल बात यह है कि औद्योगिक वृद्धि-दर मन्द होती गई है। सातवीं योजना (1985-90) के दौरान वृद्धि दर बढकर औसतन 8 5 प्रतिशत प्रति वर्ष हो गई है।

औद्योगिक विकास की रणनीति (Strategy of industrial development)

भारतीय आयोजको द्वारा अपनाई गई विकास-रणनीति मे औद्योगीकरण की क्रिया को भारी उद्योगो के आधार के साथ त्वरित करने का प्रयास किया गया। ऐसी विकास रणनीति के लिए तकनालाजी-सामर्थ्य का विकास करना आवश्यक था जिसके लिए इजीनियरिंग क्षेत्र को सभी अवस्थाओ का निमाण एव प्रोन्नति जरूरी थे जैसे एक सबल अध सरचना उग्र-विशेषज्ञता और उचित उत्पादन उपकरण। आर्थिक आयोजन के आरम्भ से ही इंजीनियरिंग उद्योग (जिनमे मशीन-निर्माण उद्योग शामिल हैं) भारत की विकास-क्रिया का केन्द्र रहे हैं। केवल इजीनियरिंग उद्योगो के विकास द्वारा भारतीय आयोजन मे कल्पित औद्योगीकरण को एक मजबूत आधार मिल सकता था। विस्तृत-आधार वाला औद्योगिक ढाचा एक मजबूत, विकासोन्मुख इजीनियरिंग क्षेत्र के बिना कायम ही नहीं रह सकता था। साथ ही, इजीनियरिंग उद्योगो मे देशीय कौशल एव तकनीक को विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। इन सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि हमारे आयोजको ने यह बात स्वीकार कर ली कि केवल तकनीकी कौशल एव विशेषज्ञता द्वारा ही उत्पादिता के उच्च स्तर प्राप्त किए जा सकते हैं और परिणामत आय के उच्च-स्तर भी। अतः इजीनियरिंग उद्योग को समग्र आर्थिक विकास के त्वरक के रूप मे प्रोन्नत किया गया।

हमारे आयोजको द्वारा अपनायी गई विकास-रणनीति का एक और पहलू भी है। आरम्भ से ही, आयोजको ने विकास-प्रक्रिया मे विदेशी मुद्रा के अभाव को एक मुख्य सीमाबन्धन के रूप मे कल्पित किया। कई दशको से विकासशील देशो द्वारा निर्यात की जाने वाली प्राथमिक वस्तुओ की कम कीमत दी जाती थी और बढती हुई माग और विदेशी मुद्रा की प्राप्ति मे अन्तर को कम करने की कोई आशा नहीं थी। अत आयोजको ने यह ठीक ही निर्णय लिया कि देश में उद्योगो का विकास करके आयात की माग कम की जाए और विदेशी मुद्रा की प्राप्ति को बढाया जाए। काफी समय से, प्रेषणो का अन्त प्रवाह (Inflow of remittances) बहुत अधिक रहा है। इसके अतिरिक्त, काफी हद तक आयात-प्रतिस्थापन (Import substitution) भी हुआ है।

मूल तथा पूजी उद्योगों का बढ़ता हुआ महत्त्व

योजना काल का एक सराहनीय लक्षण यह है कि इसके दौरान औद्योगिक ढाचा मूल तथा पूजी-वस्तुओ के पक्ष मे परिवर्तित हो गया है। 19 उद्योगो के वर्गीकरण के

तालिका 6 स्वतन्त्रता-उपरान्त काल मे वस्तु-उत्पादन की वृद्धि

वस्तु	इकाई	1950-51	1970-71	1993-94
कपड़ा	करोड वर्ग मीटर	422	872	15 630
उर्वरक (नाइट्रोजन)	हजार टन	9	830	7,393
सीमेंट	लाख टन	27	143	578
तैयार इस्पात	लाख टन	10	46	151
बिजली	अरब किलोवाट	7 8	55 8	322 5
अल्युमिनियम	हजार टन	4 0	168 8	465 2
कागज और गत्ता	हजार टन	116	755	2 731
वाणिज्य गाडियाँ	हजार	8 6	41 2	140 8

स्रोत भारत सरकार, आर्थिक सर्वेक्षा, 1994-95

आधार पर जो कुल उत्पादक पूजी के 94 प्रतिशत, कुल रोजगार के 86 प्रतिशत और कुल मूल्य-वृद्धि (value added) के 90 प्रतिशत के लिए उत्तरदायी हैं, यह पता चलता है कि मूल और पूजी उद्योगो का भाग जो 1959 मे कुल उत्पादक पूजी का 49 6 प्रतिशत था, बढकर 1970 मे 78 6 प्रतिशत हो गया। कुल कारखाना रोजगार मे इसका भाग जो 1959 म 24 7 प्रतिशत था, बढकर 1970 मे 42 5 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार इस काल के दौरान मूल्य-वृद्धि 26 8 प्रतिशत से उन्नत होकर 56 3 प्रतिशत हो गई। उपभोग वस्तु उद्योगो अर्थात् सूती वस्त्र, चीनी, कागज, पटसन, तम्बाकू आदि का भाग कम हो गया। मूल उद्योगो जिनम लौह तथा इस्पात, उर्वरक, रसायन, सीमेंट और लौह तथा अलौह वस्तुएँ शामिल हैं की स्थिति औद्योगीकरण प्रोग्राम के आधीन महत्त्वपूर्ण रूप मे उन्नत हो गई। बहुत से पूजी वस्तु उद्योग जिनसे भारत परिचित ही न था, कायम और विकसित किए गए।

समर्थ माग का ढाचा और विकास का ढाचा

पिछले तीन दशको के दौरान औद्योगिक विकास का ढाचा समर्थ (Effective demand) के ढाचे के प्रतिरूप ही रहा हैं जिसका निर्धारण आय के वितरण द्वारा होता है। उत्पादन मे ससाधनो का कही अधिक भाग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे उच्च आय वर्गों के जीवन-स्तर को कायम रखने या उसको उन्नत करने मे जज्ब हो जाता है। इस छोटे से वर्ग की माग न केवल अभिदृश्य उपभोग की कुछ महत्त्वपूर्ण मदो के लिए है बल्कि आलीशान मकानो एव शहरी सुविधाओ, वायु परिवहन और बढिया यात्रा सुविधाओ टेलीफोन सेवा आदि पर व्यय के लिए भी होती है और यही वर्तमान औद्योगिक ढाचे के अधिकतर भाग का पोषण करती है। इसका अर्थ यह है कि उद्योग का और अधिक विस्तार बाजार के सकुचन से सीमित हो जाता है।

इस सम्बन्ध मे हमने चिरस्थायी उपभोग वस्तुओ और गैर-चिरस्थायी उपभोग वस्तुओ का जिक्र किया है। चिरस्थायी उपभोग वस्तुएँ अर्थात् रेफ्रीजरेटर वातानुकूलक, टी वी, कार एव स्कूटर आदि समाज के समृद्ध वर्गों की माग की तुष्टि करते हैं जबकि गैर-चिरस्थायी उपभोग वस्तुएँ अर्थात् चीनी चाय, सूती कपडा, वनस्पति, दियासलाई आदि जनोपभोग की वस्तुएँ हैं। 1961 और 1974 क दौरान गैर-चिरस्थायी उपभोग वस्तुआ का उत्पादन बहुत मन्द गति (केवल 2 6 प्रतिशत वार्षिक) से बढा और यह कीमत-स्तर मे स्फीतिकारी वृद्धि का महत्त्वपूर्ण कारण था। इसके कारण वास्तविक मजदूरी की वृद्धि समाप्त हो गई और इसके फलस्वरूप हडतालो का युग प्रारम्भ हुआ जिससे उत्पादन धीमा पड गया। इसके विरुद्ध, पूजीपति वर्ग स्फीति का लाभ उठाकर चिरस्थायी उपभोग वस्तुओ के उत्पादन को बढाता गया। इसका प्रभाव यह हुआ कि औद्योगिक ढाचा गडबड हो गया और इसका सामाजिक कल्याण पर दुष्प्रभाव पडा। इस प्रवृत्ति की भर्त्सना करते हुए प्रोफेसर के एन राज ने लिखा है "यदि यह स्थिति बनी रहती है, तो इस क्षेत्र मे विकास की ऊँची दर कायम रखने के लिए 'विलासी' एव 'अर्द्ध-विलासी' वस्तुओ की ऊँची माँग पर औद्योगिक विकास के ढाचे को आधारित करना होगा।"

यह स्थिति 1974 से 1990 के दौरान भी ऐसे ही कायम रही। इसका बढता हुआ प्रमाण इस बात से मिलता है कि उपभोग वस्तुओ, विशेषकर गैर-चिरस्थायी उपभोग वस्तुओ, के उत्पादन की वृद्धि-दर मन्द हो गई है।

तालिका 7 उत्पादन की औसत वार्षिक वृद्धि दरें

	1974-79	1980-85	1985-90
मूल उद्योग	8 4	8 5	7 4
पूजी वस्तु उद्योग	5 7	5 1	15 7
अन्तर्वर्ती वस्तुएँ	4 3	3 6	5 5
उपभोग वस्तुएँ	5 5	3 6	6 6
(क) चिरस्थायी	6 8	4 4	12 1
(ख) गैर-चिरस्थायी	5 4	3 4	5 4

प्रति श्रमिक बिजली उपभोग—1951 और 1984 के बीच देश के उद्योगो एव खानो मे प्रति श्रमिक बिजली उपभोग, 1,384 किलोवाट से बढकर 14 633 किलोवाट हो गया अर्थात् इसमे लगभग 10 गुनी वृद्धि हुई। चूकि प्रति व्यक्ति बिजली उपभोग को औद्योगिक उद्देश्यो के लिए यन्त्रीकरण या तकनालाजीय उन्नति का सूचक माना जा सकता है, अत इससे साफ जाहिर है कि कारखाना क्षेत्र में पूँजी तीव्रता (Capital intensity) बढ रही है। यदि अन्य विकसित देशो के साथ तुलना करें, तो भारत उनसे अभी बहुत पीछे है।

अत लघु स्तर एव कुटीर उद्योगो मे उत्पादन क्रियाओ के बिजलीकरण की भारी आवश्यकता है। इस परिवर्तन से ही इनकी उत्पादिता एव आय-जनन शक्ति बढायी जा सकती है।

तालिका 8 1951 और 1984 के बीच प्रति श्रमिक बिजली उपभोग

वर्ष	श्रमिकों की सख्या लाख	उद्योगो एव खानो मे करोड किलोवाट घण्टे	बिजली उपभोग प्रति श्रमिक (किलोवाट घण्टे)
1951	34 63	479 3	1 384
1960-61	44 16	1 713 9	3 881
1970-71	56 27	4 846 0	8 612
1984-85	85 20	12 467 0	14 633
1951 और 1984-85 के बीच वार्षिक वृद्धि	2 7	10 7	7 2

पूजी उत्पाद अनुपात का व्यवहार

विनियोग के व्यवहार का एक और बेहतर सूचकाक वृद्धिशील पूँजी उत्पाद अनुपात (Incremental Capital Output Ratio—ICOR) है। तालिका 9 मे दिए गए आकडो से पता चलता है कि वृद्धिशील पूँजी उत्पाद अनुपात जो पहली योजना के दौरान 5 2 था बढकर दूसरी योजना मे 7 48 हो गया। यह वृद्धि न्यायोचित ही थी क्योकि दूसरी योजना मे औद्योगीकरण एव अध सरचना निर्माण के कार्यक्रम आरम्भ किए गए।

तालिका 9 भारतीय उद्योगो मे वृद्धिशील पूजी-उत्पाद अनुपात

योजना	काल	वृद्धिशील पूजी-उत्पाद अनुपात
पहली योजना	1951 52 से 1955 56	5 52
दूसरी योजना	1956-57 से 1960 61	7 48
तीसरी योजना	1961-62 से 1965 66	6 67
चौथी योजना	1969-70 से 1974 75	11 46
पाँचवीं योजना	1974-75 से 1978 79	8 73

परन्तु चौथी योजना के दौरान ICOR और बढकर 11 46 हो गया और पाचवीं योजना के दौरान यह कम होकर 8 73 हो गया। पूजी-उत्पाद अनुपात मे वृद्धि की प्रवृत्ति की व्याख्या एक हद तक क्षमता उपयोग (Capacity utilisation) मे गिरावट द्वारा की जा सकती है। 1970 मे क्षमता उपोयग 85 प्रतिशत था जो गिरकर 1980 मे 76 प्रतिशत हो गया। इसका तात्पर्य यह है कि क्षमता-उपयोग मे 24 प्रतिशत तक वृद्धि की गुजाइश है।

निम्न क्षमता उपयोग न केवल उद्योग मे ही विद्यमान था बल्कि कृषि मे भी। सूती वस्त्रो के सम्बन्ध में अपर्याप्त माग उत्पादिता पर एक सीमाबन्धन के रूप मे कार्य करती रही है। परन्तु एक अधिक महत्त्वपूर्ण कारणतत्व जो क्षमता के अल्प-प्रयोग के लिए उत्तरदायी है, वह है बिजली, कोयला और परिवहन के रूप मे मूल अध सरचना का अभाव। पूँजी-उत्पाद अनुपात को बढाने और उत्पादिता को कम करने वाला एक अन्य कारण बिगडे हुए औद्योगिक सम्बन्ध हैं। जहाँ 1976 मे 127 लाख मानव दिनो की हानि हुई, वहाँ 1979 मे यह हानि बढकर 440 लाख मानव-दिन हो गई। 1985 मे भी 292 लाख मानव-दिनो की हानि हुई। अत औद्योगिक विवादों को दूर करने के लिए आवश्यक कदम उठाने होगे। ये विवाद मजदूरी एव भत्ते, कर्मचारियो की छँटनी और अनुशासनहीनता के कारण पैदा होते हैं। उत्पादिता मे गतिरोध को दूर करने के लिए एक ओर काम करने के लिए प्रोत्साहन बढाने होगे और दूसरी ओर औद्योगिक विवाद कम करने होगे।

सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्र का सापेक्ष कार्यभाग

आयोजन के काल मे बदलते हुए औद्योगिक ढाचे का महत्त्वपूर्ण लक्षण भारी तथा मूल उद्योगो म सरकारी क्षेत्र का भारी मात्रा मे विस्तार है। तालिका 10 स विदित है कि 1989-90 मे सरकारी क्षेत्र के स्वामित्वाधीन कुल कारखानो का 4 6 प्रतिशत से भी कम था परन्तु इनमे भारतीय कारखाना उद्योग मे लगी हुई 51 प्रतिशत से अधिक उत्पादक-पूजी (Productive capital) विनियुक्त हो रही थी। लगभग 41 प्रतिशत उत्पादक पूजी गैर-सरकारी क्षेत्र में लगी हुई थी। सरकारी क्षेत्र के अधिक भाग का मुख्य कारण यह है कि इसमे अधिकतर विनियोग भारी तथा मूल उद्योगो मे हुआ है जो अत्यधिक पूजी-प्रधान हैं।

यदि हम विभिन्न क्षेत्रो के रोजगार एव मूल्य-वृद्धि के योगदान का परीक्षण करें, तो इससे जाहिर है कि रोजगार का 66 प्रतिशत और मूल्य-वृद्धि का 61 प्रतिशत गैर-सरकारी क्षेत्र का योगदान है। सरकारी क्षेत्र मे रोजगार का भाग 27 प्रतिशत और मूल्य-वृद्धि का भाग 30 प्रतिशत है। सरकारी क्षेत्र मे रोजगार और मूल्य-वृद्धि का निम्न भाग उद्योगो का अत्यधिक पूँजी-प्रधान स्वरूप है। निष्कर्ष स्पष्ट है भारत के औद्योगिक ढाँचे मे गैर-सरकारी क्षेत्र प्रधान है। मिश्र क्षेत्र मे गैर-सरकारी और सरकारी क्षेत्र दोनो का स्वामित्व एव प्रबन्ध मे मिश्रण होता है, अभी महत्त्वपूर्ण नहीं बन सका।

इस सम्बन्ध मे एक रुचिकर बात यह है कि प्रति श्रमिक मजूदरी सरकारी क्षेत्र मे मिश्र क्षेत्र के लगभग बराबर है—अर्थात् क्रमश 26 677 रुपए और 23 471 रुपए। परन्तु गैर-सरकारी क्षेत्र म वार्षिक मजदूरी 15 190 रुपए थी जोकि सरकारी क्षत्र मे श्रमिको द्वारा प्राप्त मजदूरी का केवल 61 प्रतिशत थी।

तालिका 10 : भारतीय उद्योगों में स्वामित्व का ढांचा (1989-90)

	सरकारी क्षेत्र	मिश्र क्षेत्र	गैर-सरकारी क्षेत्र	कुल
कारखानो की सख्या	5024	2 332	1 00 627	1,07 992
	(4 6)	(2 2)	(93 2)	(100 0)
उत्पादक पूजी (करोड रुपए)	71 755	10 879	58 294	1 40,791
	(50 9)	(7 7)	(41 4)	(100 0)
रोजगार (लाखो में)	22 27	5 43	5 372	8 143
	(27 3)	(6 7)	(66 0)	(100 0)
शुद्ध मूल्य वृद्धि (करोड़ रु)	13 043	3 950	26 380	43 373
	(30 1)	(9 1)	(60 8)	(100 0)
प्रति श्रमिक मजदूरी (रुपए)	26 677	23 471	15 190	18 645

नोट—ब्रैकट में दिए गए आकडे कुल का प्रतिशत हैं।

अध.सरचना का विकास (Growth of Infrastructure)

औद्योगिक विकास और उत्पादन-क्षमता के विकास की तेज रफ्तार के साथ देश मे अध सरचना सुविधाओ का महत्त्वपूर्ण रूप मे विकास हुआ है चाहे यह पर्याप्त नहीं। "भारत के ईंधन के प्राथमिक साधन-कोयले-के उत्पादन मे तिगुने से अधिक विस्तार हुआ है और इस उद्योग के अधिकाश भाग का आधुनिकीकरण कर दिया गया है। तेल और गैस के लिए गहन खोज के कार्य मे, जो पाचवें दशक के अन्त मे आरम्भ किया गया था, अभितट और अपतट-दोनो ही रूप मे उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई है। तेल शोधक कारखानो, पाइप लाइनो, भण्डारण और वितरण की सुदक्ष सम्मिलित व्यवस्था विकसित की गई है और देश पेट्रो-रसायन युग मे प्रवेश कर रहा है। इस उप-महाद्वीपीय अर्थव्यवस्था को बनाए रखने के लिए बडी आधारभूत व्यवस्था तैयार की गई है-सिचाई-सचयन के निर्माण-कार्यों और नहरो का जाल, पन-बिजली और तापीय बिजली का उत्पादन, क्षेत्रीय बिजली ग्रिड, व्यापक बिजली-चालित और डीजल-चालित रेल-व्यवस्था, तेजी से बढते हुए सडक-परिवहन के सचलन से युक्त राष्ट्रीय और राज्यो के राजमार्ग और अधिकाँश शहरी केन्द्रो को सम्बद्ध करने वाली तथा भारत को ससार के दूसरे देशो से जोडने वाली दूर-सचार व्यवस्था।"[1] आधुनिक उद्योग और कृषि के विकास ने बैंकिंग, बीमा और वाणिज्य को प्रोत्साहित किया और इसके साथ-साथ बन्दरगाहो एव जहाजरानी और आन्तरिक एव बाह्य वायु सेवाओ का विस्तार एव आधुनिकीकरण होना चाहिए। किन्तु इन सभी सेवाओं से लाभ प्राप्त करने वाले अधिकतर व्यक्ति-शहरी एव ग्रामीण दोनो क्षेत्रो मे-जनसख्या के समृद्ध वर्गों से ही रहे हैं।

विज्ञान और तकनालाजी (Science and Technology)

योजनाकाल के दौरान देश ने तकनीकी मानवशक्ति (Technical manpower) का एक प्रशिक्षित वर्ग तैयार कर लिया है जोकि सीमेंट कारखानो, रासायनिक खादो की इकाइयो, तेलशोधन कारखानो, बिजलीघरो, इस्पात सयत्रों, इजन बनाने के कारखानो, इजीनियरिंग उद्योगो आदि की सकुशल देखभाल कर सकता है। तकनीकी सस्थानो मे प्रतिवर्ष 1 6 लाख डिप्लोमाधारी शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार कारखानो मे प्रशिक्षण एव बहुत से योग्य युवको एव युवतियो को विदेश भेजकर उच्चस्तर की शिक्षा उपलब्ध कराई जाती है। अत प्रशिक्षित मानवशक्ति (Trained manpower) के निर्माण के फलस्वरूप विदेशी तकनीशनो एव विशेषज्ञो पर निर्भरतया कम हो गई है।

औद्योगीकरण के प्रोग्राम की कमजोरियाँ

औद्योगीकरण प्रोग्राम की उपलब्धियो का अल्पानुमान किए बिना यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक उन्नति का अधिकतर भाग मिथ्या है। इसके पक्ष मे निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं -

प्रथम, चूकि औद्योगिक उत्पादन का सूचकाक केवल फैक्ट्री क्षेत्र तक ही सीमित है, इसलिए इसे अधिक औद्योगिक विकास का पर्याप्त माप मानना अनुचित है। इसमे लघु-स्तर क्षेत्र का उत्पादन जोडना वाछनीय है। इस प्रकार जब समूचे औद्योगिक विकास का सूचकाक तैयार किया जाता है, तो 1951 और 1968 के दौरान औद्योगिक उत्पादन की वार्षिक-वृद्धि दर केवल 4 प्रतिशत बैठती है। यदि इस काल मे हुई 41 प्रतिशत जनसख्या वृद्धि के प्रभाव को देखते हुए औद्योगिक उत्पादन मे प्रति-व्यक्ति वार्षिक

1 योजना आयोग 'पचवर्षीय योजना का प्रारूप' (1978 83), पृ 1 2

वृद्धि का सूचकाक तैयार किया जाए, तो इस पूर्णकाल मे प्रति व्यक्ति वृद्धि 33 प्रतिशत हुई अर्थात् औद्योगिक उत्पादन में प्रति-व्यक्ति वार्षिक वृद्धि केवल 1 8 प्रतिशत हुई। अत यह कहना उचित ही है कि औद्योगिक प्रगति धीमी हो रही है।

द्वितीय, 1948-49 मे उद्योग का राष्ट्रीय आय मे भाग 17 प्रतिशत था, यह 1993-94 मे 20 प्रतिशत के आसपास ही रहा। अत राष्ट्रीय उत्पादन मे योगदान के रूप मे विनिर्माण उद्योग क्षेत्र का भाग नीचा ही रहा। बहुत से विकसित देशो मे यह भाग 30 से 50 प्रतिशत के बीच है।

तृतीय, औद्योगीकरण की क्रिया के फलस्वरूप बेरोजगारी की समस्या के समाधान मे विशेष सहायता नहीं मिली है। 1960 और 1965 के बीच कारखाना क्षेत्र (Factory sector) मे रोजगार की वार्षिक वृद्धि-दर 6 6 प्रतिशत थी परन्तु 1965-70 की अवधि मे यह गिरकर 1 3 प्रतिशत के निम्न-स्तर पर पहुँच गई। यह *श्रम-शक्ति* की वृद्धि-दर से कम है। परिणामत भारत में कारखाना-रोजगार में 1985-86 मे भी श्रम-शक्ति का केवल 2 प्रतिशत रोजगार प्राप्त करता है। सार्वजनिक क्षेत्र के विनियोग की पूँजी-तीव्रता (Capital intensity) अधिक होने के कारण इसमें बहुत कम रोजगार कायम हुआ।

प्रोफेसर गुनार मिर्डल ने औद्योगीकरण के रोजगार पर प्रसार-प्रभावो (Spread effects) और इसके पारम्परिक क्षेत्र पर प्रत्यक्ष-प्रभावो (Backwash effects) का अध्ययन किया है। स्थिति का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने के पश्चात् मिर्डल लिखता है "औद्योगीकरण के रोजगार-प्रभाव आगामी कई दशको में भी बहुत अधिक नहीं हो सकते। बहुत समय तक शुद्ध रोजगार-प्रभाव नकारात्मक होगे। श्रम-प्रयोग की दृष्टि से समस्या के इस पहलू और उनके आधुनिक क्षेत्र के बाहर विस्तीर्ण परिणामो की उपेक्षा की जाती है क्योकि यह विश्वास किया जाता है कि औद्योगीकरण "बेरोजगारी" और "अल्परोजगार" के लिए उपचार है।"

चौथे औद्योगीकरण की क्रिया के परिणामस्वरूप बडे पैमाने के कारखानो का तीव्र विस्तार हुआ है और इसकी तुलना मे छोटे तथा मध्यम क्षेत्र की उपेक्षा हुई है। तालिका 11 मे 1989-90 के उद्योगो के वार्षिक सर्वेक्षण के आधार पर आकडे दिए गए हैं। प्लाण्ट एव मशीनरी के मूल्य के आधार पर कारखानो के ढाचे से पता चलता है कि 1989-90 मे केवल 6 449 बड कारखानो (कुल का 5 7 प्रतिशत) की कुल उत्पादक पूजी 1,25 988 कराड रुपए थी अर्थात् कुल का 89 प्रतिशत और उनके द्वारा शुद्ध मूल्यवृद्धि मे योगदान लगभग 76 प्रतिशत था परन्तु कुल कारखाना रोजगार मे उनका भाग केवल 54 9 प्रतिशत था। इसके *विरुद्ध 32,644 छोटे कारखानो* (जिनमे 5 से 50 लाख रुपए का विनियोग हुआ था) मे 11 415 करोड रुपये की उत्पादक पूजी (Productive capital) लगी हुई थी (कुल का केवल 8 1%) परन्तु उनके द्वारा शुद्ध मूल्यवृद्धि मे 6 941 करोड रुपए का योगदान (कुल का 16%) किया गया और उनमे 22 5 प्रतिशत रोजगार उपलब्ध कराया गया।

चाहे सरकार नए विकास केन्द्रो (Growth centres) की नीति अपनाने की घोषणा करती रही है ताकि औद्योगिक ढाचे का विविधीकरण (Diversification) हो किन्तु इसकी नीति के कारण औद्योगिक विकास का सकेन्द्रण कुछ महानगरों चुने हुए राज्यो और सर्वोच्च पूजीपतियो के हाथ में हो गया है।

इससे यह निष्कर्ष भी प्राप्त होता है कि बडे पैमाने के कारखाने पूजी-प्रधान हैं। इसके विरुद्ध रोजगार एव विकास

तालिका 11 भारतीय कारखानो के प्लान्ट और मशीनरी के अनुसार कुछ मुख्य लक्षण (1989-90)

प्लान्ट और मशीनरी का कुल मूल्य (लाख रुपए)	कुल कारखाने	रोजगार (लाखो मे)	उत्पादक पूजी (करोड़ रुपए)	शुद्ध मूल्य वृद्धि (करोड़ रुपए)
1 निम्न कारखाने	62 720	1 616	3 398	2 673
(5 लाख रुपए तक)	(58 1)	(19 8)	(2 4)	(6 2)
2 छोटे कारखाने	32 644	1 828	11 415	6 941
(5 से 59 लाख रु॰ तक)	(30 2)	(22 5)	(8 1)	(16 0)
3 बडे कारखाने	6 449	4 471	1 25 588	33 143
(50 लाख रु से अधिक)	(5 7)	(54 9)	(89 2)	(76.4)
कुल	1 07 992	8 143	1 40 791	43 373
	(100 0)	(100 0)	(100 0)	(100 0)

नोट कुछ कारखाने अवर्गीकृत होने के कारण कुल जोड अधिक है।

35
कुछ बड़े पैमाने के उद्योग
(SOME LARGE-SCALE INDUSTRIES)

इस अध्याय मे हम भारत के छ बडे उद्योगो का अध्ययन करेंगे। वे हैं लौह तथा इस्पात उद्योग, सूती वस्त्र उद्योग, पटसन उद्योग, चीनी, उद्योग, सीमेंट उद्योग तथा कागज उद्योग।

1. लौह एवं इस्पात उद्योग

इस्पात हमारी पचवर्षीय योजनाओ मे सवाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। अधिक उचित यह होगा कि इसे हमारे राजनीतिक-आर्थिक आयोजन का केन्द्र कहा जाए। द्रुत औद्योगीकरण कर रहे किसी भी विकासशील देश के लिए इस्पात क्षमता (*Steel capacity*) का द्रुत विकास करना आवश्यक है।

स्वतन्त्रता की पूर्वसध्या पर, लौह तथा इस्पात उद्योग की कुल क्षमता 13 लाख टन थी-10 लाख टन टाटा आयरन एण्ड स्टील क के कारण और 3 लाख टन इण्डियन आयरन एण्ड स्टील क के कारण। 1990-91 तक लौह एव इस्पात उद्योग के पास 6 समन्वित इस्पात कारखाने थे जिनकी कुल स्थापित क्षमता प्रतिवर्ष 100 लाख टन इस्पात सिले (Steel ingots) थी। विनियोग की दृष्टि से यह सबसे महत्त्वपूर्ण उद्योग हैं। इसमे 4,000 करोड रुपए का विनियोग हुआ है जिसमें अधिकतर सरकारी स्टील कारखानो में लगा हुआ है। लौह एव इस्पात उद्योग 2 5 लाख श्रमिको को सीधा रोजगार उपलब्ध कराता है। एक श्रमिक को रोजगार दिलाने के लिए 1 2 लाख रुपए की पूजी चाहिए। इस दृष्टि से यह एक पूजी-प्रधान उद्योग है। चाहे इस उद्योग को हमारे देश मे बहुत अधिक महत्त्व दिया गया और इसमे भारी विनियोग भी किया गया, फिर भी देश को औसतन 2,000 करोड रुपए के मूल्य का इस्पात आयात करना ही पडता है। 1991-92 मे 1,970 करोड रुपए का इस्पात आयात किया गया।

इस्पात के उत्पादकों मे 1974 मे भारत को 30वाँ स्थान प्राप्त था और 1979 म भारत ने उन्नति कर 19वा स्थान प्राप्त कर लिया। प्रति व्यक्ति उपभोग के रूप मे भारत मे वार्षिक औसत केवल 11 किलोग्राम है जबकि यह यू एस ए मे 685 कि ग्राम यू एस एस आर मे 623 कि ग्रा, स्वीडन मे 623 कि ग्रा और जापान म 494 कि ग्रा है।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् प्रगति

1956 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव ने लोह एव इस्पात को अनुसूची 'क' मे रख दिया जिसके आधीन सभी नई इकाइयो की स्थापना सरकार द्वारा करने का निर्णय किया गया। किन्तु गैर-सरकारी क्षेत्र से विद्यमान इकाइयो को अपने क्षमता के विस्तार की मनाही नहीं थी।

सार्वजनिक क्षेत्र मे इस्पात उद्योग की स्थापना की दिशा मे पहला कदम सन् 1954 मे उठाया गया, जबकि क्रुप-डेमाग कम्पनी (Krupp Demag Company) के साथ *एक समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। यह सयत्र राउरकेला मे* स्थापित किया गया। 1955 मे भारत सरकार और रूस की सरकार के बीच एक प्रारम्भिक समझौते के अनुसार भिलाई मे दूसरा इस्पात सयत्र स्थापित किया गया। 1956 मे ब्रिटिश सहयोग के साथ तीसरा इस्पात सयत्र दुर्गापुर मे स्थापित किया गया। तीन सवथा नए और एकीकृत लोह एव इस्पात सयत्रो की स्थापना जिनमे से प्रत्येक की क्षमता दस लाख टन सिले वार्षिक थी, निश्चय ही भारत जैसे देश के लिए एक भारी काम था क्योकि इसका औद्योगिक आधार निर्बल था और इसके पूँजी एव कौशल के साधन सीमित थे। *तालिका 1* से इस्पात के उत्पादन मे वृद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है

तालिका 1 इस्पात उद्योग का उत्पादन (लाख टन)

वर्ष	इस्पात की	विक्रय इस्पात सिले
1950-51	15	10
1960-61	34	24
1970-71	66	46
1980-81	75	68
1993 94	139	151

इस्पात उद्योग की प्रगति स्वतन्त्रता-उपरान्त काल के दौरान आयोजन की आरम्भिक अवस्था मे तीव्र गति से हुई परन्तु तीसरी योजना के दौरान विकास-दर धीमी हो गई और उत्पादन के लक्ष्य पूरे न हो सके। इसके पश्चात् भी उत्पादन मे गतिरोध बना रहा। उत्पादन मे गतिरोध के मुख्य कारण थे-(*i*) भिलाई को छोड अन्य सभी प्लान्टो मे सचालन-शक्ति का अभाव (*ii*) कोयले की अपर्याप्त उपलब्धि और (*iii*) दुर्गापुर और कुछ हद तक राउरकेला मे अशान्त औद्योगिक सम्बन्ध। आपातकाल (1975-77) के दौरान सभी इस्पात सयत्रो का बेहतर क्षमता-उपयोग (Capacity utilisation) हुआ, इसके अतिरिक्त औद्योगिक सम्बन्धो मे उन्नति और उद्योग मे अधिक अनुशासन के साथ कोयला परिवहन और सचालन शक्ति अधिक मात्रा मे उपलब्ध थे।

***स्टील अथारिटी ऑफ इण्डिया (Steel Authority* of India)**-1974 मे स्टील अथारिटी ऑफ इण्डिया कायम की गई और इसे इस्पात उद्योग के विकास की जिम्मेदारी सौंपी गई। इसे उद्योग के लिए मुख्य आदान (Inputs) अर्थात् कोकिग कोल और कच्चा लोहा उपलब्ध कराने का काम सौपा गया। स्टील अथारटी को सभी मुख्य बडी इकाइयो को समन्वित एव एक-साथ विकास करने के लिए *इनका नियन्त्रण अपने हाथ मे लेना था। ये मुख्य इकाइयाँ* थी-हिन्दुस्तान स्टील लि , बोकारो स्टील लि सालेम स्टील लि हिन्दुस्तान स्टील वर्क्स कन्सट्रक्शन लि भारत कोकिग कोल लि और राष्ट्रीय खनिज विकास निगम लि । परन्तु SAIL की वास्तविक उपलब्धि आयोजित लक्ष्य से कम थी।

अस्सी और नब्बे के दशक मे प्रगति

छठी योजना के आरम्भ तक समन्वित इस्पात प्लान्टा का क्षमता-उपयोग (Capacity utilisation) जो 1977-78 मे 90 प्रतिशत था कम होकर 1979-80 मे 69 प्रतिशत हो गया। इस्पात के उत्पादन मे यह गिरावट मुख्यत अध सरचना सीमाबन्धनो (Infrastructural constraints) के कारण व्यक्त हुई जिसमे कोयले की उपलब्धि, सचालन-शक्ति और रेल-परिवहन का भारी हाथ था। सचालन-शक्ति एक मुख्य सीमाबन्धन साबित हुई क्योकि कोयले के सीमित सम्भरण आदि से जो इस्पात पिघलाया गया, वह विक्रेय-इस्पात (Saleable steel) मे परिवर्तित नही किया जा सका और इस प्रकार 10 लाख टन स्टील के डले (Ingots) इकट्ठे हो गए। जबकि इस्पात का सम्भरण बढ नहीं रहा था इसकी माग लगभग 9 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर से तेजी से बढती जा रही थी। छठी योजना ने इस प्रवृत्ति को पलटने के लिए नयी विधि अपनाई ताकि भारत म इस्पात के उत्पादन को बढाया जा सके परन्तु छठी योजना मे विक्रेय इस्पात का 115 लाख टन का लक्ष्य पूरा न हो सका और उत्पादन 1984-85 मे केवल 85 लाख टन तक ही पहुँच सका।

किन्तु सातवी योजना मे यह अनुमान लगाया गया है कि तैयार इस्पात की माँग 1989-90 तक बढकर 138 6 लाख टन और 1994-95 तक 177 6 लाख टन हो जाएगी। इस शताब्दी के अन्त तक इसके 220 लाख टन हो जाने की सभावना है। चूँकि इस्पात उद्योग मे नयी क्षमता कायम करने की परिपाक अवधि बहुत लम्बी होती है, इसलिए इस्पात उद्योग के विकास के लिए एक दीर्घकालीन योजना बनाना अनिवार्य है। सातवी योजना मे विक्रेय इस्पात की क्षमता को बढाकर 148 4 लाख टन करने और उत्पादन को बढाकर 128 6 लाख टन करने का लक्ष्य रखा गया। इसके लिए व्यापक आयोजन की आवश्यकता है जिसमे आधुनिकीकरण तकनालाजी की उन्नति, पुरानी मशीनरी का प्रतिस्थापन सतुलन सुविधाओ (Balancing facilities) का प्रावधान और तकनालाजीय असतुलनो को दूर करना शामिल है। इन सब कठिनाइयो के बावजूद इस्पात का *वास्तविक उत्पादन 1989-90 मे 126 लाख* टन हो *गया* ओर लगातार बढता हुआ 1993-94 मे 151 लाख टन तक पहुच गया।

उद्योग की प्रगति की समीक्षा

एक दृष्टि से लोह एव इस्पात उद्योग ने काफी प्रगति की है ओर रूक्ष इस्पात का उत्पादन जो 1950-51 मे 10 लाख टन था बढकर 1993 94 मे 151 लाख टन हो गया। चाहे यह वृद्धि प्रभावशाली प्रतीत होती है परन्तु यह अत्यन्त असतोषजनक है। भारत अब अन्य देशो से इस्पात का मुख्य आयातक है। (2 500 करोड रुपये प्रति वर्ष) लौह तथा इस्पात उद्योग के विकास का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण देश मे अनुसधान एव डिजाइन मे प्रगति है। भारत अब आत्मनिर्भर

है और ऐसी स्थिति में है कि विदेशियों पर निर्भर किए बिना अपने स्टील प्लान्ट स्थापित कर ले। उदाहरणार्थ, भारत ने बोकारो स्टील प्लान्ट लगभग पूर्णतया अपने बलबूते पर ही स्थापित किया है। दूसरे, सरकारी क्षेत्र धीरे-धीरे इस्पात के उत्पादन में अधिक महत्त्वपूर्ण बनता जा रहा है। 1950-51 में समग्र उत्पादन गैर-सरकारी क्षेत्र मे किया जाता था परन्तु 1993-94 मे सरकारी क्षेत्र का कुल उत्पादन मे भाग 85 प्रतिशत हो गया है।

तीसरे, सरकार ने इलैक्ट्रिक आर्क भट्टियो जिन्हे आमतौर पर मिन्नी स्टील प्लान्ट कहते हैं, के लाइसेंस जारी किए। वे देश के कुल इस्पात उत्पादन के 30% को उपलब्ध कराते हैं और वे नरम इस्पात और मिश्रित इस्पात तैयार करते हैं। 1992-93 के दौरान 179 मिन्नी स्टील प्लान्ट स्थापित किए गए और इनमे 56 लाख टन की कुल क्षमता कायम की गई। इनमे से 167 कार्य कर रहे थे और 1993-94 मे इन्होने 37 लाख टन इस्पात तैयार किया।

चौथे, भारत धीरे-धीरे इस्पात का निर्यातक बनता जा रहा है। इस्पात के निर्यात का मूल्य जो 1950-51 मे 3 करोड रुपए से कम था, 1970-71 मे बढकर 87 करोड रुपए हो गया और यह 1977-78 मे बढकर 280 करोड रुपए हो गया परन्तु 1986-87 मे यह गिर कर 60 करोड रुपए रह गया क्योंकि देश मे लोहे की माग बढ गई। पुन भारत कच्चे लोहे का बडा निर्यातक बन गया है और भारत द्वारा 1,200 से 1,400 करोड रुपए के कच्चे लोहे का निर्यात किया जाता है।

अन्तिम, जबकि एक ओर भारत इस्पात के निर्यात द्वारा विदेशी मुद्रा कमाता है, दूसरी ओर यह अपनी घरेलू माँग को पूरा करने के लिए कुछ विशेष किस्म के इस्पात का आयात भी करता है। छठी योजना (1980-81 से 1984-85) के दौरान, 5,253 करोड रुपए का लोह और इस्पात आयात किया गया। आज भारत 1,000 से 1,200 करोड रुपए तक कच्चे लोहे का प्रतिवर्ष निर्यात करता है। किन्तु 1993-94 में भारत ने 2,500 करोड रुपए के लोहे तथा इस्पात का आयात किया। यदि भारत इस महत्त्वपूर्ण वस्तु के देशीय उत्पादन को बढा ले, तो इस्पात के आयात को कम करने की काफी गुजाइश है।

लौह तथा इस्पात उद्योग की समस्याएँ

इस उद्योग की प्रमुख गम्भीर समस्याएँ निम्नलिखित हैं-

1. **सरकारी क्षेत्र की इकाइयों की अकुशलता**—सबसे मुख्य समस्या सरकारी क्षेत्र की इकाइयों की स्थापना के पश्चात् इनकी अकुशल की है। ये इकाइयाँ अधिकतर घाटे मे चल रही हैं। इसके मुख्य कारण हैं-सामाजिक ऊपरी व्यय (Social overheads) पर भारी विनियोग, दोषपूर्ण श्रम सम्बन्ध, दोषपूर्ण एव अकुशल उच्च प्रबन्ध, क्षमता का अल्प-प्रयोग आदि।

2 *प्रशासित कीमतों की समस्या*—सरकार प्रशासित कीमतो की प्रणाली का अनुकरण करती रही है और उपभोक्ताओ के लिए इस्पात की नियत्रित वितरण प्रणाली चला रही है। इस्पात की विभिन्न मदो की भारी माँग के कारण, इस्पात के कीमत-नियन्त्रण और वितरण के कारण भारी काला बाजार कायम हो गया और इस्पात का भारी अभाव हो गया। इससे केवल गैर-सरकारी वितरको को लाभ होता था, प्रधान उत्पादको को उपभोक्ताओ द्वारा दी गई ऊँची कीमत के लाभ से वचित रखा जाता था और चूँकि वितरको की आय कर-जाल (Tax net) मे नहीं आती थी, इस कारण सरकार को भारी राजस्व-हानि होती थी।

सरकार द्वारा नियुक्त सयुक्त प्लान्ट समिति (Joint Plant Committee) ने इस्पात की विभिन्न मदो की अलग-अलग कीमते निश्चित कीं ताकि लागत-धक्य कारणतत्त्वो (Cost push factors) द्वारा स्फीति कुन्तल को ऊपर बढने से रोका जा सके। इस प्रकार प्रधान उत्पादको को उचित प्रत्याय (Return) प्राप्त हो सकती है। इस्पात की कीमतो मे समय-समय पर वृद्धि के कारण आन्तरिक ससाधनो के जनन मे सहायता मिलती है और उनका प्रयोग आधुनिकीकरण, विशाखन और विस्तार मे किया जा सकता है।

3. **क्षमता का अल्प-प्रयोग (Under-utilisation of capacity)**—लौह तथा इस्पात उद्योग अपनी पूर्ण क्षमता से कहीं नीचे स्तर पर कार्य कर रहा है। 1970-71 मे, सभी सयत्रो (Plants) का क्षमता-उपयोग 67 प्रतिशत था, TISCO मे यह सबसे अधिक था अर्थात् कुल क्षमता का 86 प्रतिशत और दुर्गापुर मे सबसे कम अर्थात् कुल क्षमता का 40 प्रतिशत। 1984-85 मे क्षमता-उपयोग बढकर 84 प्रतिशत हो गया। भिलाई मे क्षमता-उपयोग 94 प्रतिशत और TISCO मे 98 प्रतिशत तक पहुँच गया। जो कारणतत्व इस्पात उद्योग के अकुशल निष्पादन के लिए जिम्मेदार थे, उनमे उल्लेखनीय हैं-क्षमता का अल्प-प्रयोग जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन की लागत बढ जाती है और घाटे होने लगते हैं, कोयले और सचालन शक्ति का अपर्याप्त सभरण एव परिवहन सम्बन्धी बाधाएँ, उचित परिपोषण का

अभाव, घटिया प्रबन्ध, विशेषकर सरकारी क्षेत्र के इस्पात कारखानो के उच्च पदो पर प्रबन्धको की बार-बार तबदीलियाँ और बडे पैमाने पर श्रम-सघर्ष। लौह तथा इस्पात उद्योग मे भारी विनियोग के बावजूद क्षमता का अल्प-प्रयोग देश मे लौह तथा इस्पात के भारी आयात के लिए जिम्मेदार है। इसके अतिरिक्त इजीनियरिंग, वैगन-निर्माण जैसे उद्योगो पर भी इस्पात के अभाव का गहरा दुष्प्रभाव पडा है और इस्पात के निर्यात को सीमित करना पड रहा है। हाल ही के वर्षों मे क्षमता-उपयोग मे काफी उन्नति हुई है और यह 1988-89 मे बढकर लगभग 86 प्रतिशत हो गया।

4 **मिनी-स्टील प्लान्टो की रुग्णता (Sickness of mini-steel plants)**–हमे मिनी स्टील प्लान्टो की रुग्णता की समस्या का भी ध्यान रखना होगा। मिनी स्टील प्लान्टो के घटिया निष्पादन (Performance) के मुख्य कारण थे–बडे इस्पात कारखानो के उत्पादन मे वृद्धि के कारण मण्डी मे इस्पात मदो की अति पूर्ति के कारण इनके उत्पादन की माग की अपर्याप्तता निर्माण क्रिया मे गिरावट, सचालन शक्ति मे लगाई गई कई कटौतियो के साथ कुछ राज्यो मे सचालन शक्ति की दरो मे वृद्धि और वर्ष के अधिकतर भाग मे इस्पात की सिलो पर सापेक्षत उत्पादन शुल्को की ऊँची दरें। बहुत से उपायो और राजकोषीय प्रोत्साहनो (Fiscal incentives) के परिणामस्वरूप मिनी-स्टील प्लान्टो का पुनरुत्थान होने लगा है और उनके निष्पादन मे सुधार हुआ है। परिणामत मिनी स्टील प्लान्टो द्वारा किया गया उत्पादन बढकर 1992-93 मे 37 लाख टन हो गया। 1993-94 के दौरान उत्पादन गिरकर 27 लाख टन हो गया। 10 नई इकाइया कायम की जा रही हैं जिनकी इस्पात की सिलो की क्षमता 10 लाख टन होगी ताकि अतिरिक्त माग को सतुष्ट किया जा सके।

5 **धातुकर्म के लिए कोयला**–भारत मे कोक बनाने के लिए उच्चस्तरीय कोयले की कमी है। लौह तथा इस्पात उद्योग के विस्तार के साथ कोकिंग कोल (Coking coal) की माग मे भी वृद्धि होगी। इसके लिए एक नई नीति निर्माण करनी होगी ताकि उच्चस्तरीय कोयले के भण्डारो का सरक्षण किया जा सके और देशीय उत्पादन की सहायता के लिए कोयले का आयात किया जा सके।

1992-93 और 1994-95 के दौरान, लौह तथा इस्पात उद्योग के क्षेत्र मे सुधार किए जा रहे हैं। इनमे मुख्य हैं–इस्पात सामग्री के आयात एव निर्यात का उदारीकरण कीमत और वितरण-नियत्रणो (Distribution controls) का उन्मूलन, लौह तथा इस्पात वस्तुओ पर आयात-शुल्को की क्रमिक कटौती। देश मे लौह तथा इस्पात की वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि हुई है किन्तु उद्योग को प्रतिरक्षा, रेलवे, लघु-स्तर उद्योगो इजीनियरिंग वस्तुओ आदि की आवश्यकताओ को प्राथमिकता देने के लिए कहा जा रहा है।

लौह तथा इस्पात उद्योग को अब एक प्रतिस्पर्धी परिवेश का सामना करना पड रहा है। व्यापार नीति मे और उदारीकरण के साथ प्रतिस्पर्धी दबावो मे वृद्धि होगी। सरकार का विश्वास है कि चूँकि भारतीय इस्पात उद्योग को देशीय खानो से सर्वोत्तम किस्म का कच्चामाल और कोकिंग कोयले का महत्त्वपूर्ण अनुपात उपलब्ध है, इसलिए वह अपनी कुशलता उन्नत कर सकता है और सफलतापूर्वक विदेशी प्रतिस्पर्धा का सामना कर सकता है। इसका प्रमाण इस बात मे मिलता है कि 1993-94 की पहली तिमाही मे 845 करोड रुपये के इस्पात का निर्यात किया गया।

2. सूती कपड़ा उद्योग
(Cotton Textile Industry)

सगठित सूती कपडा उद्योग हमारे प्रमुख उद्योगो मे सबसे पुराना और सुदृढ रूप मे स्थापित उद्योग है। मार्च 1994 के अन्त तक भारत मे 1 175 कारखाने थे जिनमे 280 लाख तकलियाँ (Spindles) और 1 6 लाख करघे थे। उद्योग द्वारा 11 5 लाख श्रमिको को रोजगार उपलब्ध कराया जाता है जोकि कुल फैक्ट्री श्रम का 18 प्रतिशत है। यह उद्योग 150 वर्ष पुराना है। विश्व के निर्यात बाजार मे इसका द्वितीय स्थान है। निर्यात के कुल परिमाण की दृष्टि से जापान के बाद दूसरा स्थान भारत का ही है। यह विश्व के सूती कपडे के कुल निर्यात का 16 प्रतिशत तक निर्यात करता है।

उत्पादन की प्रवृत्ति और प्रति व्यक्ति उपलब्धि

तालिका 2 मे दिए गए आकडो से स्पष्ट है कि मिल क्षेत्र (Mill Sector) का विकास अपेक्षाकृत काफी मन्द गति से हुआ है। 1956 के बाद तो वस्तुत मिल क्षेत्र के उत्पादन मे वृद्धि नहीं हुई है। इसके मुकाबले विकेन्द्रीकृत क्षेत्र (Decentralised sector) (हथकरघा मशीन करघा और खादी) बहुत तीव्र गति से बढता जा रहा है। 1950-51 मे मिल क्षेत्र का उत्पादन मे भाग 79 प्रतिशत था और यह 1993-94 तक कम होकर 7 प्रतिशत रह गया जबकि इसके विरुद्ध विकेन्द्रीकृत क्षेत्र का भाग इसी काल के दौरान 21 प्रतिशत से बढकर 93 प्रतिशत हो गया।

उपभोग की प्रकृति मे परिवर्तन हो रहा है। धीरे-धीरे

मानव-निर्मित तन्तु के कपडे (Man-made fibre cloth) उपभोग में आने लगे हैं। 1960-61 में कपडे का प्रति व्यक्ति कुल उपभोग 15 मीटर था जो 1970-71 में 15 5 मीटर और 1993-94 मे यह बढकर 25 8 मीटर हो गया। इसमे सूती कपडे की उपलब्धता में मामूली वृद्धि हुई जो 13 8 मीटर से थोडा बढकर 15 8 मीटर हो गया। इसके विरुद्ध मानव-निर्मित तन्तुओ (Man made fibres) का प्रति व्यक्ति उपभोग जो 1960-61 में 1 2 मीटर था, तेजी से बढकर 1993-94 में 10 मीटर हो गया।

तालिका 2 सूती कपड़ा उद्योग मे उत्पादन

	कपड़े का उत्पादन (दस लाख मीटर)			प्रतिशत भाग	
वर्ष	मिल क्षेत्र	विकेन्द्रीकृत क्षेत्र	कुल उत्पादन	मिल क्षेत्र	विकेन्द्रीकृत क्षेत्र
1950 51	3727	1013	4740	79	21
1960-61	4645	2049	6694	69	31
1970-71	4055	3541	7596	53	47
1980-81	3430	4940	8370	41	57
1993 94	1 990	25 910	27 900	7	93

विभिन्न आय वर्गों के उपभोग-ढाचे मे कपडे के उपभोग के सम्बन्ध में भारी भिन्नता पाई जाती है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण की रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण जनसख्या के निम्नतम 40 प्रतिशत द्वारा कपडे का प्रति व्यक्ति वार्षिक उपभोग केवल 2 मीटर था, अगले 30 प्रतिशत का 9 मीटर और ग्राम जनसख्या के सर्वोच्च 29 प्रतिशत का प्रति व्यक्ति उपभोग 29 मीटर था। उपभोग-ढाचे में परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण रूप पोलीएस्टर और पोलीएस्टर के विभिन्न मिश्रणो का उच्चतम 30 प्रतिशत जनसख्या द्वारा बढता हुआ

तालिका 3 कपड़े की प्रति व्यक्ति उपलब्धता

(मीटर में)

	सूती कपड़ा	तन्तु मानव निर्मित	कुल
1960-61	13 8	1 2	15 0
1970-71	13 6	2 0	15 6
1980-81	11 0	3 7	14 7
1993 94	15 8	10 0	25 8

प्रयोग है। पोलीएस्टर मिश्रणो की कीमत सूती वस्त्रो की तुलना मे 3 से 4 गुना होती है परन्तु इस कपडे की उपभोग-अवधि सूती वस्त्र से 3 से 4 गुना, या कुछ परिस्थितियो मे और भी अधिक होती है। इसके अतिरिक्त पोलीएस्टर और मिश्रणो के धोने और इस्तरी करने की लागत बहुत कम होती है। परिणामत कपडे के उपभोग का ढाचा पोलीएस्टर और इसके मिश्रणो (Blends) के पक्ष मे बदलता जा रहा है। यह परिवर्तन निम्न मध्यम वर्ग में भी प्रवेश कर गया है, विशेषकर इन कपडो के साथ प्रतिष्ठा मूल्य जुड जाने के कारण। यह अनुमान लगाया गया है कि पोलीएस्टर और इसके मिश्रणो के एक मीटर द्वारा सूती वस्त्र के 3 से 4 मीटर का प्रतिस्थापन होता है। इस कारणतत्व से गत 20 वर्षों मे सूती कपडे के उपभोग में गिरावट की व्याख्या काफी हद तक हो जाती है।

कपड़े और सिलेसिलाए कपड़ो का निर्यात

भारत कपडे और सिले-सिलाए कपडे का मुख्य निर्यातक है। 1970-71 में कपडे का निर्यात 75 करोड रुपए तक मर्यादित था परन्तु 1993-94 में यह बढकर 4,820 करोड रुपये हो गया। हाल ही के वर्षों में सिलेसिलाए कपडो (Readymade garments) के निर्यात मे तेजी से वृद्धि हुई है। 1970-71 मे केवल 9 करोड रुपए के सिलेसिलाए कपडे का निर्यात किया गया जो 1975-76 मे बढकर 145 करोड रुपए और 1993-94 मे और बढकर 8,110 करोड रुपए हो गया। इस प्रकार कीमती पत्थरो एव जवाहरात के बाद यह निर्यात की दूसरी सबसे बडी मद है। सूत, फैब्रिक्स और सिलेसिलाए कपडे का निर्यात जो 1970-71 मे 84 करोड रुपये था बढकर 1993-94 मे 12,930 करोड रुपये हो गया।

सूती कपड़ा उद्योग की समस्याएँ

सरकारी नियन्त्रण और भारी उत्पादन शुल्क–सरकार द्वारा कीमत-नियन्त्रण, सूत के वितरण, उत्पादन के ढाचे आदि के निश्चयन के कारण सूती वस्त्र उद्योग पर बहुत बुरा प्रभाव पडा है। एक समय पर सरकार ने कपडे की कीमत उत्पादन-लागत से भी नीची निश्चित कर दी। 1972 की सूत-वितरण योजना के आधीन सरकार ने सभी कारखानो को इस बात के लिए बाध्य किया कि वे सूत के कुल उत्पादन का 50 प्रतिशत नीची दरो पर विकेन्द्रीकृत क्षेत्र (Decentralised sector) को उपलब्ध कराएँ। आयातित रूई पर शुल्क बहुत अधिक था और इस कारण रूई का आयात न केवल महगा ही हुआ बल्कि इसका असर देशी रूई की कीमतो में वृद्धि करने पर भी पडा। सूती कपडे की विभिन्न किस्मो पर उत्पादन-शुल्क (Excise duty) न केवल बहुत अधिक है बल्कि यह विभेदकारी भी है।

सूती वस्त्र उद्योग की गम्भीर समस्या कन्ट्रोल पर मिलने वाले कपडो की है। दूसरी योजना मे उत्पादन के प्रकार में परिवर्तन हुआ है। छोटे रेशे वाली कपास के उत्पादन मे कमी, बढिया अमरीकी कपास के बढते हुए प्रयोग और उपभोक्ताओं की बढिया कपडे के पक्ष में रुचि-

परिवर्तन का परिणाम यह हुआ कि मोटे और मध्यम किस्म के कपडे के उत्पादन मे गिरावट आ गई और बढिया किस्मो का उत्पादन बढ गया है। उत्पादन का ढाचा समाज के निबल वर्गों के हित मे नही। इस बात की पुष्टि इस तथ्य मे मिलती है कि कपडे की बढिया किस्मे अपेक्षाकृत ऊची कीमतो पर बिक जाती हैं। मोटे कपडे की उपलब्धि निश्चित करने के लिए भारत सरकार ने 30 मार्च, 1974 को कारखानो द्वारा नियन्त्रित कपडे (Controlled cloth) के उत्पादन को 40 करोड मीटर से बढाकर 80 करोड मीटर करने का आदेश दिया। उद्योग इस बात के लिए चिल्लाता रहा है कि वह नियन्त्रित कपडे के उत्पादन मे प्रत्येक वर्गमीटर कपडे पर 80 पैसे का घाटा सहन कर रहा है और कपडे के स्टॉक बढते चले जा रहे है। योजना आयोग ने यह बात खुले तौर पर स्वीकार की कि सूती वस्त्र उद्योग की रुग्णता का एक महत्त्वपूर्ण कारण नियन्त्रित कपडा योजना थी जिसके आधीन केवल रूई की कीमत कपडे की निश्चित कीमत से अधिक थी। अक्टूबर 1978 मे, सरकार ने मिलो को नियन्त्रित कपडा (Controlled cloth) बनाने के दायित्व से मुक्त कर दिया।

वर्तमान नियन्त्रित कपडा योजना मे जुलाई 1981 मे 65 करोड मीटर कपडा बनाने का लक्ष्य रखा गया। हाथकरघा उद्योग का कोटा 34 करोड मीटर रखा गया और शेष के उत्पादन की जिम्मेदारी राष्ट्रीय सूती वस्त्र निगम को सौप दी गई। सरकार का प्रस्ताव है कि धीरे-धीरे समग्र नियन्त्रित कपडे के उत्पादन का दायित्व हाथकरघा क्षेत्र (Handloom sector) को सौंप दिया जाए।

उत्पादन के प्रकार को उपभोक्ताओ की अभिरुचि के अनुकूल बनाने की समस्या–मिश्र तन्तु कपडे के उपभोग मे वृद्धि की प्रवृत्ति बढ रही है। कपडा उद्योग को अपने उत्पादन की किस्मो मे परिवर्तन करके माग के बदले हुए स्वरूप का समाधान करना होगा। इसके लिए आयातित कपास (Imported cotton) के स्थान पर कौशेयक तन्तु (Staple cotton) और मानव-निर्मित अन्य वस्तुओ का उपभोग आवश्यक होगा।

सूती वस्त्र उद्योग को सचालन-शक्ति के पर्याप्त और अविरत सभरण का अभाव–कोयले के अपर्याप्त सभरण का उद्योग प्रगति पर विशेषकर पश्चिमी ओर दक्षिण भारत मे, दुष्प्रभाव पडा। बिजली के सभरण मे उच्चावचन का भी उद्योग पर बुरा असर पडा है।

भारतीय कपड़ा उद्योग की विश्व-बाजार मे बढती हुई प्रतिस्पर्द्धा–अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे भारतीय कपडे की कीमते प्रतिस्पर्द्धा मे ऊँची होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय माँग को पकड नहीं पा रहीं। यह एक विरोधाभास है कि भारत जैसे देश में जहाँ मजदूरी कम है और रूई देश मे ही उपलब्ध है, उत्पादन की लागत इतनी ऊँची हो। किन्तु नीची मजदूरी का लाभ, रूई की ऊँची कीमतो और विधायन (Processing) की अधिक लागत से कट जाता है। इस सम्बन्ध मे यह उल्लेख करना जरूरी है कि मजदूरी और वेतन कुल लागत का केवल 16 प्रतिशत है, जबकि कच्ची रूई की कीमत 35 प्रतिशत और विधायन उत्पादन-लागत का 20 प्रतिशत है। उद्योग मे पुरानी मशीनरी के प्रतिस्थापन *(Replacement)* और *आधुनिकीकरण* की *अत्यन्त* आवश्यकता है। जब भारत के प्रतियोगी जैसे ताईवान और *दक्षिण कोरिया अद्यतन मशीनरी का प्रयोग करते हैं, भारतीय* सूती वस्त्र उद्योग मे अप्रयुज्य मशीनरी (Obsolete machinery) का ही प्रयोग हो रहा है। न ही उद्योग इस स्थिति मे है कि अपने आप नवीनीकरण और आधुनिकीकरण कर सके। आधुनिकीकरण और सुव्यवस्थीकरण (Rationalisation) के कारण कुछ बेरोजगारी होनी स्वाभाविक है ओर इसका मजदूर सघ विरोध करेंगे। परन्तु आधुनिकीकरण और सुव्यवस्थीकरण के बिना उद्योग द्वारा उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओ की क्वालिटी उन्नत नहीं हो सकती और उन्हे स्पर्द्धा कीमतों पर बाजार मे प्रस्तुत करना सभव नहीं।

कच्चे माल अर्थात् रूई के निरन्तर सभरण की समस्या–सूत और कपडे के उत्पादन मे रूई सबसे बडा एकमात्र तत्व है। उद्योग के महत्त्व और इसके विकास के लम्बे इतिहास को दृष्टि मे रखते हुए कहा जा सकता है कि कच्चे माल के सम्बन्ध मे स्थिति स्थिर नहीं है। रूई की काश्त का सबसे असन्तोषजनक पहलू यह है कि जहाँ भारत के पास रूई की काश्त के लिए सबसे अधिक क्षेत्रफल (अर्थात् विश्व क्षेत्र का 26 प्रतिशत) उपलब्ध है, वहाँ रूई का उत्पादन कुल विश्व उत्पादन का केवल 10 प्रतिशत है। इसमे सन्देह नही कि 1950-51 और 1981-82 के दौरान रूई का प्रति हैक्टेयर उत्पादन 88 किलोग्राम से 177 किलोग्राम हो गया, फिर भी यह सोवियत रूस (896 किलोग्राम) और स रा अमेरिका (560 किलोग्राम) के मुकाबले मे बहुत ही कम है। अत सूती वस्त्र उद्योग की दृष्टि से बढिया किस्म की रूई से उत्पादन को बढाना अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध मे बिजली और पानी की दरो मे वृद्धि का भी उल्लेख करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त रगो ओर रसायन पदार्थों की कीमतो मे भी भारी वृद्धि हुई है।

सूती वस्त्र उद्यमो मे रुग्णता (Sickness)–भूतकाल मे सूती वस्त्र उद्योग पर अयोग्य और स्वार्थी प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ (Managing agents) और निदेशको के

कारण बुरा असर पडा क्योकि वे तो केवल अपना लाभ बढाने मे ही रुचि रखते थे। उन्होने न तो वित्तीय-रिजर्व कायम करने की ओर पर्याप्त ध्यान दिया और न ही मशीनरी के आधुनिकीकरण की ओर। यदि सूती वस्त्र की मिलो का प्रबन्ध दोषपूर्ण रहा है, तो मजदूर सघो का कार्यभाग भी उद्योग के हित मे नहीं रहा। 1982 मे दत्ता सामन्त के नेतृत्व मे एक वर्ष से भी ऊपर समय हडताल चलाने के कारण उद्योग को भारी धक्का पहुँचा है। इसके नतीजे के तौर पर एक-तिहाई से अधिक कारखाने बीमार होकर बन्द हो गए। सरकार के उदासीन रवैये के कारण भी सूती वस्त्र उद्योग पर गहरा असर पडा है और लाखो मजदूर बेरोजगारी का शिकार बने हैं। सरकार ने 111 बीमार मिलो (Sick mills) को 1978 तक अपने *स्वामित्वाधीन* कर लिया और इनके प्रबन्ध के लिए राष्ट्रीय सूती वस्त्र निगम (National Textiles Corporation) की स्थापना की। राष्ट्रीय सूती वस्त्र निगम 1987-88 मे 133 बीमार इकाइयो का प्रबन्ध कर रहा था।

सरकार द्वारा बीमार मिलो का सरकारीकरण (Takeover)—ऊपर दिए गए बहुत से कारणो के परिणामस्वरूप, बहुत से सूती वस्त्र के कारखाने बीमार हो गए और उन्हे बन्द करना पडा। एक समय तो एक-तिहाई कारखाने बन्द हो गए और हजारो श्रमिको का रोजगार जाता रहा। मजदूर सघो और राजनीतिक दलो ने सरकार पर दबाव डाला कि वे इन बीमार मिलो का स्वामित्व अपने हाथ मे ले। सरकार ने नेशनल टैक्सटाइल कार्पोरेशन (*NTC*) स्थापित किया ताकि वह बीमार मिलो को चलाए। सरकार इन मिलो के पुन स्थापन एव आधुनिकीकरण के लिए लगातार वित्त जुटा रही है किन्तु ये मिले घाटे मे चल रही हैं जिसका भार सामान्य करदाता को सहन करना पडता है। एक प्रबल मत यह है कि यह कहीं बेहत्तर और सस्ता होता यदि इन मिलो को बन्द करने की इजाजत दे दी जाती और श्रमिको को क्षतिपूर्ति दे दी जाती। एन टी सी की मुख्य समस्याएँ अर्थात् घिसी-पिटी मशीनरी और अत्यधिक श्रम अब भी बनी हुई हैं।

3. सरकार की 1985 की टैक्सटाइल नीति
(1985 Textile Policy of the Government)

6 जून, 1985 को भारत सराकर ने अपनी टेक्सटाइल नीति की घोषणा की। नयी टैक्सटाइल नीति का मुख्य उद्देश्य उचित कीमत पर स्वीकार्य क्वालिटी वाले कपडे का उत्पादन बढाना था ताकि बढती हुई जनसख्या की कपडे की आवश्यकता पूरी की जा सके। इस मुख्य उद्देश्य को प्राप्त करते समय उद्योग की रोजगार एव निर्यात क्षमता को भी दृष्टि मे रखना होगा।

टैक्सटाइल नीति मे निम्नलिखित तीन आयामो वाले पुनर्गठित ढाचे का प्रस्ताव किया गया-(क) उद्योग का परिकल्पन विनिर्माण प्रक्रियाओ की अवस्थाओं अथात् कताई, बुनाई एव विधायन के रूप मे करना होगा, (ख) उद्योग को विभिन्न तन्तुओ के प्रयोग मे पूर्ण लोचशीलता की व्यवस्था की जाएगी, और (ग) इकाइयो की क्षमता के विस्तार या सकुचन के सम्बन्ध मे *अधिक व्यवहार्य नीति अपनाई जाएगी ताकि उद्योग मे प्रतियोगिता और स्वस्थ* विकास को बढावा मिल सके।

पुनर्गठित ढाचे के स्वाभाविक परिणाम के रूप मे नयी टेक्सटाइल नीति म उल्लेख किया गया-"नीति के रूप मे, सगठित कारखाना क्षेत्र मे बिजली करघे (Powerlooms) जहाँ तक सम्भव हो सकेगा असगठित बिजलीकरघा क्षेत्र के बराबर हो माने जाएँगे और उन्हे अपनी अन्तर्निहित शक्ति और क्षमताओ के आधार पर प्रतियोगिता करने की इजाजत होगी।" इसी प्रकार विधायन क्षेत्र मे, स्वतन्त्र बिजली-चालित विधायन-यन्त्रा (Power processors) और विधायन गृहा (Processing houses) को बराबरी का दर्जा दिया जाएगा।

नई नीति मे बहु-तन्तु प्रणाली के विकास के लिए *निम्नलिखित मार्गदर्शी सिद्धान्त होगे*-(क) सूती और मानव-निर्मित तन्तुओ/सूत के बीच पूर्ण तन्तु लोचशीलता उपलब्ध कराई जाएगी, (ख) मानव-निर्मित तन्तुओ/सूत की उचित कीमत पर उपलब्धि सुनिश्चित करने के लिए देशी उत्पादन मे वृद्धि के साथ आयात को भी बढावा दिया जाएगा, (ग) मानव-निर्मित तन्तुओ/सूत पर राजकोषीय शुल्क धीरे-धीरे घटाए जाएँगे ताकि देशी उत्पादन को प्रोत्साहन प्राप्त हो और इसका लाभ उपभोक्ताओ को कीमता मे कमी के रूप में प्राप्त हो सके (घ) मानव-निर्मित तन्तुओ/सूत के लिए आयात-खिडकी खुली रखी जाएगी।

इकाइयो को क्षमता-विस्तार और क्षमता-सकुचन को इजाजत होगी (जिसमे उन्हे बन्द करना भी शामिल होगा), जहाँ कहीं भी आवश्यक एव न्यायोचित हो, बशर्ते कि श्रमिको के हितो की पूर्ण सुरक्षा होती है।

हाथकरघा क्षेत्र के सम्बन्ध मे, हाथकरघा बुनकरो को ऊँची कमाई उपलब्ध कराने की दृष्टि से करघो के *आधुनिकीकरण पर बल दिया जाएगा और* हाथकरघो की उत्पादिता बढाने के लिए तकनालाजीय एव अन्य आदान उपलब्ध कराए जाएँगे ताकि हाथकरघे की उत्पाद की गुणवत्ता को उन्नत किया जा सके। इसके अतिरिक्त, हाथकरघो पर मिश्रित तन्तुओ (Blended fabric) के उत्पादन को प्रोत्साहन दिया जाएगा। अशदत्त किफायत कोष योजना (*Contributed Thrift Fund Scheme*) चालू की

जाएगी जिससे बुनकरो को कठिनाई के समय सहायता दी जाएगी। अन्तिम होते हुए भी यह कम महत्त्वपूर्ण नहीं कि नियन्त्रित कपडे के समग्र उत्पादन की जिम्मेदारी सातवीं योजना के अन्त तक हाथकरघा क्षेत्र को सौंप दी जाएगी।

बीमार इकाइयो का सरकारीकरण एव पुनरुत्थान

टैक्सटाइल नीति ने बीमार इकाइयो का सभाव्य जीवनक्षम एव सभाव्य जीवन-अक्षम मे वर्गीकरण किया ताकि प्रत्येक परिस्थिति ध्यान मे रखकर उपचार किया जा सके। *सभाव्य जीवन-क्षम इकाइयो (Potentially viable* units) के पुन स्थापन के लिए एक-मुश्त कार्यक्रम तैयार किया जाएगा। जहाँ कही भी क्षमता के कारण अकुशल प्रबन्ध है, वहाँ वर्तमान प्रबन्ध को बदलना होगा।

किन्तु जहाँ यह प्रत्याशा है कि बीमार इकाई को एक उचित अवधि मे पुन जीवित करना सभव नही वहाँ उसे बन्द करने की अपेक्षा कोई विकल्प नहीं होगा बशर्ते कि श्रमिको के हित सुरक्षित कर दिए जाते हैं। श्रम के सुव्यवस्थीकरण और कार्य-प्रमाप (Work norms) मे सशोधन के लिए श्रमिको से बातचीत की जाएगी ताकि *सन्तोषजनक समाधान प्राप्त किया जा सके।*

उसी सास टैक्सटाइल नीति ने साफ तौर पर उल्लेख किया-"राज्य द्वारा सरकारीकरण या राष्ट्रीयकरण ऐसी बीमार इकाइयो की रुग्णता की समस्या का समाधान नहीं है और सरकार नियम के रूप मे ऐसे मालमो मे हस्तक्षेप नहीं करेगी।"

विभिन्न क्रियाओ का आधुनिकीकरण–कताई, बुनाई एव विधायन क्षेत्र मे आधुनिकीकरण के लिए प्रत्येक इकाई की आवश्यकताओं की सावधानी से छानबीन की जाएगी और इसका आधार होगा-सतुलन सयत्रो (Balancing equipment) की स्थापना वर्तमान मशीनरी का नवीनीकरण (Renovation) और तकनालाजीय उन्नयन (Technological upgradation)। आधुनिकीकरण के लिए भारतीय औद्योगिक विकास बैंक द्वारा नरम उधार योजना (Soft loan scheme) के आधीन पर्याप्त मात्रा मे राशि उपलब्ध कराई जाएगी। आन्तरिक स्रोतो से साधन उत्पन्न करने के लिए टैक्सटाइल आधुनिकीकरण कोष स्थापित किया जाएगा। जो टैक्सटाइल मशीनरी देश मे बनाई नहीं जाती, उसके उदार आयात की अन्तर्राष्ट्रीय कीमतो पर इजाजत होगी।

टैक्सटाइल नीति की समीक्षा

टैक्सटाइल नीति के बारे मे मिश्रित सी प्रतिक्रिया हुई। इण्डियन काटन मिल्ज फेडरेशन के प्रधान श्री कान्ति कुमार पोद्दार ने इसे "प्रगतिशील, व्यवहार्य एव भविष्यवादी" नीति माना। इण्डियन मर्चेन्ट चेम्बर के प्रधान श्री प्रताप भोगवाल ने इसकी कल्पना उद्योग को ऑक्सीजन देने के रूप मे की है जोकि बहुत से बन्धनो मे जकडा हुआ चक्कर काट रहा था। इसी शैली मे, मिल-ओनर्स ऐसोसिएशन के *प्रधान श्री मनहरलाल शाह ने टैक्सटाइल नीति का स्वागत* किया, विशेषकर मानव-निर्मित तन्तुओ पर राजकोषीय शुल्को मे कमी, देश मे न बनाई जाने वाली मशीनरी के उदार आयात और पुन जीवित न की जा सकने वाली इकाइयो को बन्द करने की इजाजत देने का। कारखाना मालिको ने इस नीति का इस दृष्टि से भी स्वागत किया कि इसने चली आ रही इस धारणा का परित्याग किया है जो रूई-भिन्न तन्तुओ को विलासी मदे मानती थी और इन पर भारी कर लगाती थी।

नीति के आलोचक यह समझते हैं कि सरकार ने बडे *व्यापारिक घरानो के आगे घुटने टेक दिए हैं। उनका* विश्वास है कि नयी रियायतो से प्रत्याशित परिणाम प्राप्त होने वाले नही हैं।

पहला सरकार का मत है कि सश्लिष्ट एव मिश्रित तन्तुओ पर राजकोषीय शुल्को मे कमी के परिणामस्वरूप कपडे के उत्पादन को प्रोत्साहन प्राप्त होगा जिससे एक ओर तो जनता की कपडे की जरूरत पूरी की जाएगी और दूसरी ओर इस प्रक्रिया मे जनित प्रतिस्पर्द्धा शक्तियो के प्रभावाधीन नीची कीमते प्राप्त की जा सकेगी। यदि भूतकाल के अनुभव मार्गदर्शक कहे जा सकते है तो सभावना यही है कि नीचे राजकोषीय शुल्को के लाभ केवल मिल-क्षेत्र के मुनाफे को बढाएँगे और एक अपूर्ण या एकाधिकारीय बाजार ढाचे मे ये लाभ उपभोक्ताओ को हस्तातरित नहीं किए जाएँगे।

दूसरे, टैक्सटाइल नीति से बिजलीकरघा पर भारी असर पडेगा, विशेषकर सरकार द्वारा परम्परागत ऊर्ध्व उत्पादन क्षेत्रो अर्थात् हाथकरघा बिजलीकरघा एव सयुक्त कारखानो (Composite mills) का नये समस्तर क्षेत्रो-कताई, बुनाई एव विधायन से प्रतिस्थापन और साथ ही असगठित क्षेत्र को भी उसी वर्ग मे डाल देना जिसमे सगठित मिल-क्षेत्र रखा गया है। वास्तव मे ऊर्ध्व वर्गीकरण का उद्देश्य कम पूजी सघन इकाइयो को अधिक शक्तिशाली इकाइयो के साथ असमान ताकत के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करना था ताकि वे जीवित रह सके। परन्तु समस्तर वर्गीकरण द्वारा टैक्सटाइल नीति कारखाना क्षेत्र को अतिरिक्त लाभ प्रदान करती है। *साथ यह असगठित क्षेत्र को उन लाभो से वचित कर देती है* जो इसे अब तक प्राप्त थे। अपेक्षाकृत कमजोर बिजलीकरघा क्षेत्र की इकाइयो को नीति के आधीन यह कहा गया है कि

वे मजबूत कारखाना क्षेत्र के साथ अपनी "अन्तर्निहित शक्ति एव क्षमताओ" के आधार पर स्पर्द्धा करें। सगठित क्षेत्र जो अन्तर्राष्ट्रीय पूजी के विरुद्ध सदैव सुरक्षित बाजार कायम करने का आग्रह करता रहता है, वह मध्यम एव लघु क्षेत्र के विरुद्ध अपनी ताकत एव स्पर्द्धाशक्ति का प्रमाण देने के लिए आतुर है।

बिजलीकरघा क्षेत्र का मत है कि सूत कताई की अवस्था पर उत्पादन-शुल्क बढाने से असगठित बिजलीकरघा क्षेत्र को अधिक कीमत अदा करनी होगी परन्तु सयुक्त कारखाने (Composite Mills) जो अपने ही कारखानो मे सूत की कताई करते हैं, उन्हे परिवहन लागत चुगी एव बिक्रीकर के रूप में एक विभेदक लाभ (Differential advantage) प्राप्त होगा। परिणामत बिजलीकरघा इकाइयाँ सगठित कारखाना क्षेत्र के लिए यह कार्य करके ही जीवित रह सकती हैं और केवल परिवर्तन-दातव्य (Conversion charges) की तुच्छ राशि पर अपना निर्वाह कर सकती हैं। सरकार द्वारा इस विभेदक लाभ को समाप्त कर देने से बिजलीकरघा क्षेत्र के बन्द होने की प्रक्रिया तीव्र हो जाएगी या उन्हे सगठित कारखाना क्षेत्र के अल्प अग के रूप में जीवित रहने के लिए मजबूर होना पडेगा।

तीसरे, समग्र नियन्त्रित कपडे के उत्पादन की जिम्मेदारी हाथकरघा क्षेत्र पर डाल दी गई। सगठित कारखाना क्षेत्र इस बात से खुश है कि इसे नियत्रित कपडे के उत्पादन से छुटकारा मिल गया। जनता दल के नेता श्री मधु दण्डवते ने ठीक ही कहा—"नयी नीति आम उपभोक्ता के लिए किन्तु कम मुनाफे वाला नियत्रित कपडा बनाने का सामाजिक दायित्व सगठित कारखाना क्षेत्र से परिवर्तित कर रही है। बडी हैरानी की बात है कि क्या इसी बोझ से हाथकरघा क्षेत्र मे रुग्णता पैदा नहीं हो जाएगी।" सत्य तो यह है कि नियत्रित कपडा योजना का दायित्व हाथकरघा क्षेत्र पर डालना अन्यायपूर्ण है।

चौथे, सरकार ने ऐसी बीमार इकाइयो को बन्द करने की सिफारिश की है जो पुन जीवित नहीं हो सकतीं। चाहे सरकार ने साथ मे यह भी कहा है कि "श्रमिको के हितो की पूर्ण सुरक्षा की जाएगी" परन्तु यह एक विरोधाभास है जिसका समाधान नई टैक्सटाइल नीति के ढाचे मे नहीं हो सकता। आल इण्डिया टैक्सटाइल वर्कर्ज फेडरेशन ने एक तीखी टिप्पणी मे यह स्पष्ट किया कि "यह नीति टैक्सटाइल इजारदारो के प्रति पूर्ण समर्पण है जो बडे पैमाने पर बन्द, छटनी तालाबन्दियाँ एव जबरी छुट्टी (lay-offs) करते रहते हैं।"

निष्कर्ष यह कि टैक्सटाइल नीति (1985) ने आधुनिकीकरण, तकनालाजी की उन्नति और बीमार इकाइयो मे श्रम के सुव्यवस्थीकरण के नाम पर कारखानेदारो की सभी माँगें मान ली हैं। अत यह नीति पूजीवादी है। चाहे इसमे हर चरण पर यह कहा गया कि श्रमिको के हितो की रक्षा की जाएगी परन्तु यह तो कहने को है। पहले ही इस नीति के परिणामस्वरूप बिजलीकरघा क्षेत्र मे उत्पादन एव रोजगार पर दुष्प्रभाव व्यापक रूप धारण कर गए हैं। हाथकरघा क्षेत्र पर गरीबो के लिए सस्ती दर पर नियन्त्रित कपडा उत्पन्न करने के दायित्व के अत्यधिक भार के कारण हाथकरघा क्षेत्र पर बुरा असर पडना स्वाभाविक है। अत यह कहना उचित होगा कि टैक्सटाइल नीति केवल उत्पादन बढाने के उद्देश्य से ही प्रेरित है और इसमे रोजगार एव उत्पादन के लक्ष्यो का समन्वय करने का प्रयास नहीं किया गया।

इन सब आलोचनाओ के बावजूद, टैक्सटाइल नीति (1985) कपडे एव फैब्रिक्स के निर्यात को बढाने मे सफल हुई है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान, कारखानो के उत्पादन मे कमी हुई है परन्तु बिजलीकर्घा क्षेत्र और हाथकर्घा क्षेत्र के उत्पादन मे लगातार वृद्धि हुई है।

सरकार की हाल ही नीति सम्बन्धी उपाय

टैक्सटाइल उद्योग के स्वास्थ्य को उन्नत करने के लिये सरकार ने बहुत से नीति सम्बन्धी उपाय किए हैं—

1 1986 मे सरकार ने 750 करोड रुपये के योगदान से टैक्सटाइल आधुनिकीकरण कोष स्थापित किया है और कारखाना मालिको ने इसका पुरजोश स्वागत किया है। सितम्बर 1992 के अन्त तक, वित्तीय सस्थाओ द्वारा 357 मामलो में 1,370 करोड रुपये की स्वीकृति दी गयी।

2 सरकार ने राष्ट्रीय टैक्सटाइल निगम की बीमार इकाइयो को पुन जीवित करने की नीति तैयार की जिसमे उनके लिए कार्यकारी पूँजी उपलब्ध कराने का निर्णय किया गया ताकि वे अपनी तरलता-समस्याओ का समाधान कर सके। इसके साथ-साथ क्षमता के आधुनिकीकरण और अतिरिक्त श्रमिको के भार को कम करने के लिए स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना (Volutary Retirement Scheme) चालू की गयी। सरकार ने हाल ही मे इसके लिए राष्ट्रीय नवीकरण कोष (National Renewal Rund) की स्थापना की।

3 सरकार ने तकनालाजीय उन्नयन (Technological upgradation) के अन्य कायक्रम भी आरम्भ किए हैं और ये विकेन्द्रीयकृत क्षेत्र की क्षमता म तकनीकी उन्नति के लिए विशेष रूप मे लागू किए जा रहे हैं।

4 नयी उदारीकृत औद्योगिक नीति के आधीन बहुत से अन्य उद्योगो के साथ अगस्त 1991 मे टैक्सटाइल उद्योग को भी लाइसेंस-प्रणाली से मुक्त कर दिया गया। नयी नीति के आधीन नयी इकाईयाँ स्थापित करने या वर्तमान इकाइयो के क्षमता-विस्तार के लिए सरकार की स्वीकृति की *आवश्यकता नहीं।*

5 सरकार ने टैक्सटाइल उद्योग के निर्यात को उन्नत करने के लिए अप्रैल 1993 की निर्यात-आयात नीति मे परिवर्तन किया है और निर्यात-क्षमता को बढाने के लिए पूँजी वस्तुओ को रियायती दरो पर आयात करने की इजाजत दी है।

6 सरकार ने विभिन्न देशो को टैक्सटाइल मदो के निर्यात के सम्बन्ध मे कोटा नीति (Quta Policy) की घोषणा की है जो 1994-96 के लिए होगी।

7 गैट के उरुगुए रौंद के सफल समझौते के बाद, सरकार बहु-फाइबर सधि को धीरे-धीरे अगले 10 वर्षों मे समाप्त कर देगी। इस समझौते से भारत को तुलनात्मक लाभ (Comparative advantage) होगा जिससे उद्योग को मजबूत बनाने मे सहायता मिलेगी।

4. पटसन उद्योग
(Jute Industry)

पटसन भारत का एक महत्त्वपूर्ण उद्योग है जो 1885 मे आरम्भ किया गया। विदेशी मुद्रा अर्जित करने की इसकी क्षमता ही इसके महत्त्व का कारण है। 69 इकाइयो मे स्थापित कुल करघो की सख्या 44,900 थी और भारतीय पटसन उद्योग द्वारा कुल विश्व उत्पादन का लगभग 30 प्रतिशत उत्पादन किया जाता था। 2 5 लाख व्यक्तियो को प्रत्यक्ष रोजगार उपलब्ध कराने के अतिरिक्त, लगभग 40 लाख परिवार पटसन की काश्त से अपनी आजीविका प्राप्त करते थे।

देश के विभाजन के समय से पटसन उद्योग कच्ची पटसन की अत्यन्त कमी के कारण भारी सकट का सामना करता चला आ रहा है। पटसन का 70 प्रतिशत से भी अधिक कृषि-योग्य क्षेत्र इस समय बगला देश मे है। सन् 1951 मे कच्ची पटसन का उत्पादन 33 लाख गाठे था जबकि पूर्ण क्षमता के स्तर पर पटसन उद्योग की कुल आवश्यकता 72 लाख गाठे थी। इस कमी को पूरा करने के उद्देश्य से प्रथम दो योजनाओ मे सघन और विस्तृत खेती के अनेक कार्यक्रम आरम्भ किए गए। इनके परिणामस्वरूप कच्ची पटसन का उत्पादन बढकर 1960-61 मे 41 लाख *गाठे और 1970-71 मे 49 लाख गाठे हो गया।* इसके बाद उत्पादन मे उन्नति हुई और 1985-86 मे यह 109 लाख गाठो के रिकार्ड स्तर पर पहुँच गया।

भारत मे पटसन का उत्पादन बढाने के प्रयासों ं सफलता प्राप्त हुई है। 1973-74 मे पटसन के आधीन 6 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल था जो 1985-86 तक बढकर 11 लाख हैक्टेयर हो गया। परन्तु 1991-92 तक यह क होकर 9 लाख टन रह गया। किन्तु प्रति हैक्टेयर उत्पादित (Productivity) जो 1973-74 मे 1,412 किलोग्राम थी बढकर 1993-94 मे अपने शिखर पर 1,910 कि ग्राम प्रति हैक्टेयर हो गई। यह एक सराहनीय उपलब्धि है। यह बहुत आवश्यक है कि पटसन की काश्त पश्चिमी बगाल के बाहर बढाई जाए। असम, बिहार और उडीसा की सरकारें इस दिशा मे प्रयास कर रही हैं। हाल ही के वर्षो मे उत्तर प्रदेश और आन्ध्र प्रदेश की सरकारें अधिक पटसन उत्पादन के अभियान मे शमिल हो गई हैं।

जूट की निर्मित वस्तुओ का उत्पादन सभी प्रकार के उपायो एव प्रोत्साहनो के बावजूद अवरुद्ध रहा। 1993-94 मे पटसन का उत्पादन 14 6 लाख टन हो गया। पटसन के उत्पादन मे उन्नति बेहतर उपयोग क्षमता और बिजली की उपलब्धि मे सुधार का प्रत्यक्ष परिणाम था। किन्तु इनका अधिकतर भाग देश मे बोरो की बढती हुई माग के रूप में है। वास्तव मे, पटसन की वस्तुओ का देशीय उपभोग (Domestic consumption) पिछले कुछ वर्षों से कृषि-उत्पादन मे उन्नति के कारण बढता ही जा रहा है।

एक उत्साहवर्धक बात यह है कि अब पटसन उद्योग मे कताई के बाद की अवस्था के उपकरणो का आधुनिकीकरण किया जा रहा है। पुराने उपकरणो को तेज गति वाले नए उपकरणो से बदला जा रहा है। भारतीय पटसन उद्योग ने हाल ही मे अमेरिका मे गलीचे के तले के कपडे की माग मे हुई वृद्धि का भी लाभ उठाया है। सारे-के-सारे उत्पादन का निर्यात किया जाता है। प्रमुख निर्यात बाजार सयुक्त राज्य अमेरिका है। अत नए प्रयोगो और नए पदार्थों की खोज सरकार की पटसन उद्योग मे विकास की नीति होनी चाहिए। अब जिन अन्य नए पदार्थों का निर्माण किया जा रहा है, उनमे कुछ ये हैं, सूती थैले, पटसन टैक्सपालिन पगास्तीर्ण टाट, पटसन के गलीचे और जाल।

तालिका 4 से पता चलता है कि कुल उत्पादन के अनुपात के रूप म निर्यात मे गिरावट आई है। इसका कारण 1951 के पश्चात् देशीय उत्पादन मे हुई लगातार वृद्धि है। अप्रैल 1971 मे सरकार ने भारतीय पटसन निगम (Jute Corporation of India) की स्थापना की ताकि यह कीमत-आलम्बन (Price Support), वाणिज्यिक एव बफर स्टॉक क्रियाओ, पटसन के आयात एव निर्यात का कार्य कर सके। *बगलादेश टका के अवमूल्यन (Devaluation)* अन्तर्राष्ट्रीय बाजारो म पटसन की वस्तुआ म प्रतिस्पर्द्धा को

और भी तेज कर दिया। इस बिगडी हुई परिस्थिति को ठीक करने के लिए सरकार ने मई 1975 मे पटसन पर निर्यात् शुल्क पूर्णतया समाप्त कर दिया।

तालिका 4 पटसन उद्योग का उत्पादन, निर्यात और उपभोग (000 टन)

वर्ष	उत्पादन	निर्यात	उपभोग
1950-51	889	789	123
1960-61	997	760	278
1970-71	1 087	641	477
1980-81	1 392	440	922
1990-91	1 430	220	1 230
1993-94	1 459	210	1 240

पटसन के माल के निर्यात को बढाने के लिए सरकार ने सभी प्रकार की पटसन की वस्तुओ से 1976 मे नियात शुल्क (Export duties) हटा लिए। इन सभी उपायो के फलस्वरूप पटसन के उत्पादन और निर्यात मे वृद्धि हुइ ओर पटसन का निर्यात 1980 मे बढकर 4 4 लाख टन हो गया। पटसन के देशीय उपभोग मे भी वृद्धि हुई है और यह 1980-81 मे 9 22 लाख टन से बढकर 1992-93 मे 13 1 लाख टन हो गया अर्थात् इसमे 42 1 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसका मुख्य कारण सरकार द्वारा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रो अर्थात् खाद्यान्नो और उर्वरको के पैकिग की आवश्यकताओ के लिए अधिक पटसन खरीदना है। परिणामत 1993-94 मे पटसन का निर्यात कम होकर केवल 2 1 लाख टन रह गया।

पटसन उद्योग की मुख्य समस्याएँ

***(i)* कच्चे माल की समस्या**—पटसन उद्योग को कच्चे माल की समस्या 1947 मे देश के विभाजन के पश्चात् प्रारम्भ हुई। अधिकतर कच्ची पटसन उत्पन्न करने वाले क्षेत्र बगलादेश मे रह गए जबकि जूट की मिले पश्चिमी बगाल मे स्थित थीं। चाहे कच्ची पटसन के देशीय उत्पादन को बढाने के अभियान चलाए गए, फिर भी कच्ची पटसन का सभरण अपर्याप्त एव अनियमित रहा। कच्ची पटसन के देशीय उत्पादन मे एक से दूसरे वर्ष मे भारी उच्चावचन होते रहे हैं। यही बात प्रति हैक्टेयर उत्पादिता की है। परिणामत भारत इनके आयात पर निर्भर रहा है किन्तु भारत के लिए आयात की पयाप्त मात्रा उचित मूल्य पर प्राप्त करने की कठिनाई है। कच्ची पटसन के देशी उत्पादन को बढाने ओर इसकी उपलब्धि को पर्याप्त बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं।

***(ii)* प्लान्ट और मशीनरी का आधुनिकीकरण**—पटसन उद्योग की बहुत देर से यह समस्या रही है कि इसकी मशीनरी पुरानी एव घिसी-पिटी है। उद्योग ने प्लान्ट एव मशीनरी के आधुनिकीकरण (Modernisation) के लिए आन्तरिक साधन एकत्र नहीं किए। भारत सरकार ने पटसन उद्योग के आधुनिकीकरण के लिए आरम्भ मे राष्ट्रीय उद्योग विकास निगम की स्थापना की। हाल ही के वर्षों मे सुव्यवस्थीकरण (Rationalisation) और आधुनिकीकरण मे प्रगति हुई है और लगभग सभी पटसन कारखानो ने यह कार्य पूरा कर लिया है। सरकार ने जूट आधुनिकीकरण निधि योजना *(Jute Modernisation Fund Scheme)* के आधीन 150 करोड रुपए की एकमुश्त सहायता देने की घोषणा की है। यह सहायता स्वास्थ्य एव बीमार सभी इकाइयो को उपलब्ध होगी।

***(iii)* पटसन की वस्तुओ का उत्पादन**—पटसन का निर्मित वस्तुओ के उत्पदान मे एक वर्ष से दूसरे वर्ष मे बहुत उच्चावचन रहा है। इस परिस्थिति के लिए कई कारणतत्व उत्तरदायी हैं अर्थात् कच्ची पटसन का अनियमित एव अपर्याप्त सभरण सचालन-शक्ति का अभाव, निर्यात माग मे सुस्ती और प्रोत्साहन का अभाव। परन्तु आश्चर्यजनक बात है कि ऐसे कालो मे भी जबकि कच्चे माल का सभरण पर्याप्त एव नियमित था, पटसन की निर्मित वस्तुओ की कीमते ऊँची थीं। कच्ची पटसन के उत्पादन और इसके सभरण को नियमित बनाने से इस समस्या का समाधान किया जा सकता है।

***(iv)* प्रतिस्थापको से प्रतिस्पर्द्धा (Competition from substitutes)**—भारत की स्वतन्त्रता एव विभाजन से पूर्व भारत को पटसन के उत्पादन मे एक प्राकृतिक एकाधिकार प्राप्त था। पटसन के कारखानो के स्वामियो ने इस एकाधिकार का अनुचित लाभ उठाकर अन्तराष्ट्रीय बाजारो मे बहुत ऊँची कीमते वसूल कीं। सरकार ने भी इस क्षेत्र मे ऊँचे निर्यात-शुल्क (Export duties) लगाकर विदेशियो को अधिक कीमत देने पर मजबूर किया। स्वतन्त्रता-उपरान्त काल मे भारतीय पटसन उद्योग को नये उत्पादको अथात् बगला देश, फिलीपाइन, ब्राजील, जापान आदि से घोर प्रतियोगिता करनी पडी। इन देशो, विशेषकर बगलादेश को अद्यतन तकनालाजी एव मशीनरी के प्रयोग करने का अतिरिक्त लाभ भी था। दूसरे, पैकेट बनाने के लिए बहुत से विकल्प साधना अर्थात् कागज और कपडे के प्रयोग के कारण पटसन की वस्तुओ से भारी प्रतियोगिता होने लगी है। दूसरी समस्या का सामना करने के लिए

उद्योग को अपने उत्पादन के विशाखन के लिए प्रोत्साहन दिया जा रहा है, विशेषकर गलीचे के तले के कपडे के लिए जिसकी सयुक्त राज्य अमेरिका और रूस मे अच्छी माग है।

(v) ऊँची कीमते–भारतीय पटसन उद्योग को ऊँची कीमतो के कारण अन्तर्राष्ट्रीय बाजारो मे प्रतियोगिता के कारण बाहर निकाला जा रहा है। भारतीय पटसन की वस्तुओ की ऊँची कीमतो के लिए जिम्मेदार हैं–पुरानी मशीनरी का प्रयोग अकुशल तथा अलाभकर इकाइयों का विद्यमान होना, कच्ची पटसन की ऊँची कीमते और कच्ची पटसन के बारे मे बहुत ही *अविश्वसनीय सभरण स्थिति* और सरकार द्वारा लगाए गए भारी निर्यात-शुल्क। इसी कारण भारतीय पटसन की निर्मित वस्तुएँ अन्तर्राष्ट्रीय बाजारो मे ठहर नहीं पा रही हैं। इसके साथ ही सयुक्त राज्य अमेरिका से सश्लिष्ट पदार्थों की घोर प्रतियोगिता की जा रही है। अत आवश्यकता इस बात की है कि उत्पादन की लागत कम करने के उपाय किए जाएँ। सौभाग्यवश भारत मे सश्लिष्ट प्रतिस्थापको (Synthetic substitutes) की वर्तमान कीमत पटसन की वस्तुओ की तुलना मे अधिक है जिसके परिणामस्वरूप पटसन की वस्तुओ को कीमत की दृष्टि से लाभ प्राप्त हो जाता है।

पिछले कुछ वर्षो से पटसन उद्योग का निष्पादन ठीक नहीं रहा है। जूट निर्मित वस्तुओ के उत्पादन मे कमी हुई और 1980-81 के पश्चात् निर्यात भी कम हुए हैं। पटसन से निर्यात-आय जो 1979-80 मे 336 करोड रुपए थी बढकर 1991-92 मे 391 करोड रुपए हो गई। निर्यात आय मे मन्द वृद्धि के मुख्य कारण थे–विकसित देशो मे प्रतिसार सश्लिष्ट प्रतिस्थापको और अन्य मुख्य पटसन-वस्तुएँ उत्पन्न करने वाले देशो विशेषकर बगलादेश से स्पर्द्धा जो विश्व माग मे स्थिरता के कारण नीची कीमतो पर पटसन माल देने के लिए तैयार थे।

सरकार ने पटसन की वस्तुओ की कीमतो मे गिरावट को रोकने के लिए कई अल्पकालीन उपाय किए हैं–(क) सभी प्रकार की पटसन की वस्तुओ के निर्यात पर नकद क्षतिपूर्ति आलम्बन (Cash compensatory support) को सितम्बर 1981 के पश्चात् पुन चालू करना (ख) जूट के कारखानो को उत्पादको से पटसन खरीदने के लिए अतिरिक्त उधार की स्वीकृति। इसके अतिरिक्त बीमार जूट मिलो की सहायता के लिए बैंको एव औद्योगिक पुनर्निर्माण निगम द्वारा एकमुश्त कार्यक्रम।

निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि इस उद्योग के विकास की काफी सभावनाएँ हैं। जूट की निर्मित वस्तुओ जैसे गलीचे के तले के कपडे की अन्तर्राष्ट्रीय माग तेजी से बढ रही है। भारतीय पटसन उद्योग को अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का लाभ उठाकर अपना मजबूत आधार कायम करना चाहिए।

5. चीनी उद्योग
(Sugar Industry)

भारत चीनी के उत्पादको मे विश्व का चौथा मुख्य उत्पादक देश है। पहले तीन क्रमानुसार हैं–रूस ब्राजील और क्यूबा। भारत के सगठित उद्योगो मे चीनी उद्योग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। शुद्ध मूल्य वृद्धि मे अपने विनिर्माण के अशदान की दृष्टि से यह तीसरा सबसे बडा उद्योग है। यह लगभग 3 25 लाख श्रमिको की आजीविका का साधन है। इसके अतिरिक्त यह 250 लाख गन्ने की काश्त करने वाले किसानो को अप्रत्यक्ष रोजगार उपलब्ध कराता है। यह उद्योग केन्द्र सरकार के लिए उत्पादन शुल्क (Excise duty) का भी स्रोत है। भारत मे चीनी के 420 कारखाने हैं जिनकी कुल स्थापित उत्पादन-क्षमता (Installed capacity) 115 लाख टन है। इसमे से 400 कारखाने कार्य कर रहे हैं जिनमे से 120 निजी क्षेत्र मे 60 सार्वजनिक क्षेत्र मे और 220 सहकारी क्षेत्र मे थे।

स्वतन्त्रतापूर्व काल मे प्रगति का इतिहास–1932 से पहले लगभग 30 चीनी कारखाने थे जिनमे लगभग 1 6 लाख टन चीनी का उत्पादन होता था। 6 लाख टन चीनी आयात की जाती थी। 1932 मे इस उद्योग को मूलत इस उद्देश्य से प्रशुल्क सरक्षण (Tariff protection) प्रदान किया गया कि गन्ना उत्पादको को सरक्षण मिल सके और उनके उत्पादन का विकास हो सके। परिणामस्वरूप सन् 1937 तक उत्पादन 10 लाख टन हो गया। कारखानो की सख्या 137 हो गई।

स्वतन्त्रता-उपरान्त काल मे वृद्धि

अस्सी के दशक मे चीनी का उत्पादन औसतन 20 लाख टन रहा। सरकार ने उत्पादन बढाने के लिए प्रोत्साहन दिए और 1960 61 मे उत्पादन बढकर 30 लाख टन तक पहुच गया और 1990-91 मे 119 लाख टन। 1991-92 में उत्पादन 133 लाख टन के शिखर को छू गया। परन्तु 1992-93 और 1993-94 के दौरान चीनी के उत्पादन में तेजी से गिरावट आई क्रमश 21 प्रतिशत और 57 प्रतिशत। परन्तु चीनी का उपभोग लगातार बढता ही जा रहा है। इस कारण प्राय चीनी का सकट पैदा हो जाता है।

सरकार की नियन्त्रण-विनियन्त्रण-पुनर्नियन्त्रण (Control decontrol recontrol) की नीति के कारण

चीनी-उत्पादन मे काफी अस्थिरता रही है। इसका चीनी उद्योग पर घातक प्रभाव पडा है। 1960-70 और 1970-80 के दशक के दौरान चीनी के उत्पादन मे भारी वृद्धि हुई। अत 1960-70 के दशक के दौरान उत्पादन 45 से 50 लाख टन रहा। वास्तव मे 1977-78 के दौरान भारत मे चीनी के 65 लाख टन उत्पादन का रिकार्ड कायम हो गया। परिणामत सरकार ने चीनी की कीमत एव इसके वितरण पर सभी नियन्त्रण हटा दिए। परिणामत चीनी मे द्वैध कीमत प्रणाली (Dual pricing system) को समाप्त कर दिया गया।

तालिका 5 चीनी का उत्पादन एव उपभोग

लाख टन

वर्ष	आरम्भिक स्टाक	उत्पादन	उपभोग
1950-51	2	11	11
1960-61	13	30	21
1970-71	21	37	40
1980-81	6	51	50
1990-91	22	119	107
1991-92	33	133	112
1993 94	32	96	113

1978-79 का वर्ष चीनी उद्योग के लिए वस्तुत एक अजीब साल था। उद्योग के पास कुल उपलब्ध सभरण 92 लाख टन था और आन्तरिक उपभोग 71 लाख टन था। सरकार द्वारा सभरण के कृत्रिम विनियमन और बहुत-सी प्रशासनिक गलतियो के कारण, चीनी की कीमते बढकर 8 से 11 रुपए प्रति किलोग्राम हो गईं। इसका आम जनता के जीवन-स्तर पर बुरा प्रभाव पडा और सरकार ने पुन द्वैध कीमत प्रणाली लागू कर दी। इस प्रणाली के आधीन सरकार लेवी-चीनी (Levy sugar) और मुक्त विक्रय चीनी (Free sale sugar) का अनुपात निश्चित करती है। अब यह अनुपात 28 72 कर दिया। लेवी-चीनी उपभोक्ताओ को उचित मूल्य की दुकानो पर चीनी बेची जाती है। मुक्त विक्रय चीनी का उद्देश्य खुले बाजार मे कीमत पर चीनी बेचकर चीनी कारखानो की सहायता करना है।

1980-81 के पश्चात् चीनी के उत्पादन की स्थिति बहुत सन्तोषजनक रही है चाहे उत्पादन मे भारी उच्चावचन हुए हैं और 1991-92 मे चीनी का उत्पादन बढकर 133 लाख टन हो गया।

परन्तु 1992-93 और 1993-94 के दौरान चीनी के उत्पादन में तेजी से गिरावट हुई है-क्रमश 21 प्रतिशत और 57 प्रतिशत। साथ ही, चीनी का उपभोग लगातार बढता ही जा रहा है। इससे प्राय सकट पैदा हो जाता है।

1993-94 मे चीनी के उत्पादन मे कमी के कारण देश मे चीनी की कीमत मे एकदम वृद्धि हुई और 1994-95 की पहली तिमाही मे ये 18 से 20 रुपए प्रति कि ग्रा हो गयी। इस कारण सरकार को भारी मात्रा मेँ चीनी का आयात करना पडा।

चीनी के उत्पादन मे वृद्धि के बावजूद, सरकार चीनी के निर्यात को नहीं बढा पा रही है। इसका मूल कारण अन्तराष्ट्रीय कीमतो की तुलना मे भारतीय चीनी की कीमत का ऊचा होना है।

चीनी लाइसेस नीति (Sugar Licensing Policy)

भारत सरकार ने जुलाई 1990 मे नई चीनी लाइसेस नीति की घोषणा की ताकि चीनी उद्योग को प्रोत्साहन मिले। इस नीति के मार्गदर्शी सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

1 नय कारखानो के लाइसेस उसी हालत मे जारी किए जाएँगे यदि 15 किलोमीटर के घेरे मे कोई चीनी का कारखाना न हो।

2 नए चीनी कारखानो को 2,500 टन प्रतिदिन गन्ना पेरने की क्षमता (Crushing capacity) की अधिकतम सीमा तक लाइसेस दिए जाएँगे।

3 निजी क्षेत्र की अपेक्षा सहकारी एव सार्वजनिक क्षेत्र मे कारखाने लगाने के लिए प्राथमिकता दी जाएगी।

4 शीरा से औद्योगिक अल्कोहल बनाने के लिए उदार रूप मे लाइसेस दिए जाएँगे। इसका उद्देश्य औद्योगिक अल्कोहल के निर्यात को बढावा देना है।

सरकार नये कारखानो के लाइसेस एव विस्तार सम्बन्धी नियमो मे सशोधन कर सकती है।

चीनी विकास निधि (Sugar Development Fund)

1982 मे लोकसभा द्वारा पारित चीनी विकास निधि की स्थापना की गई। इस निधि का प्रयोग नरम शर्तो पर उधार देकर चीनी उद्योग का पुन स्थापन एव आधुनिकीकरण करना है। इस निधि से चीनी उद्योग के सम्बन्ध मे अनुसधान के लिए भी अनुदान दिए जाते हैं। इस निधि के आधीन 900 करोड रुपए की राशि उपलब्ध है जिसमे से अभी तक 490 करोड रुपए गन्ना विकास और चीनी उद्योग के आधुनिकीकरण के लिए दिए जा चुके हैं।

चीनी उद्योग की समस्याएँ

चीनी के उत्पादन मे अनियमित प्रवृति (Erratic Trend) का कारण यह है कि यह एक कृषि आधारित उद्योग है और इसके उत्पादन मे परिवर्तन वर्षा की

अनिश्चितता पर निर्भर करता है। दूसरे, गन्ने का उत्पादन बहुत हद तक गन्ने की कीमत पर निर्भर करता है, जोकि उद्योग का मुख्य कच्चा माल है। गन्ने का उत्पादन एक ओर तो प्रतियोगी फसलो की कीमत पर निर्भर करता है और दूसरी ओर सरकार द्वारा निश्चित की गई गन्ने की कीमतो पर। सरकार की नीति के अतिरिक्त गन्ने और गुड की कीमतो क सम्बन्ध का चीनी के उत्पादन पर बहुत अधिक प्रभाव पडा है। उत्पादन की दृष्टि से विचार करें तो गन्ने का चीनी और गुड दोनो को बनाने के लिए उपयोग किया जा सकता है। उपभोग की दृष्टि से विचार करें तो जब जब चीनी के मुकाबले गुड की कीमत बढ जाती है तब-तब गुड के स्थान पर चीनी का उपभोग होने लगता है।

स्थिति-निश्चयन (Location) के ढाचे मे **परिवर्तन**—चीनी उद्योग का उत्तर प्रदेश और बिहार मे स्थानीयकरण हुआ जो मिलकर 1960 61 मे कुल उत्पादन का 60 प्रतिशत उपलब्ध कराते थे। उत्पादन लागत सम्बन्धी विश्लेषणात्मक अध्ययनो से यह पता चला कि उत्पादन का प्रादेशिक ढाचा अविवेकपूर्ण है। चूकि कटने के बाद गन्ने का रस सूखना आरम्भ हो जाता है यह आवश्यक है कि उत्पादन इकाइयाँ कच्चे माल के स्रोत के समीप ही स्थित हो। परिणामत नई उत्पादन इकाइयो को गन्ना उत्पन्न करने वाले राज्यो मे ही कायम करने के प्रयास किए गए। इसके फलस्वरूप 1960-61 की तुलना मे 1980 81 मे कुल उत्पादन मे उत्तर प्रदेश और बिहार का भाग 60 प्रतिशत से कम होकर 28 प्रतिशत रह गया जबकि महाराष्ट्र आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक एव तमिलनाडु का भाग 32 प्रतिशत से बढकर 60 प्रतिशत हो गया। यदि यह प्रवृत्ति कायम रहती है, तो चीनी के प्रादेशिक ढाचे मे भी परिवर्तन होगा।

सहकारी क्षेत्र का कार्यभाग—हाल ही के वर्षों मे चीनी उद्योग के सहकारी क्षेत्र के महत्त्व मे वृद्धि हुई है। 1987-88 मे सहकारी चीनी के 211 कारखाने थे जिनके द्वारा कुल चीनी उत्पादन का 60 प्रतिशत उपलब्ध कराया गया।

गन्ने का विकास—चीनी के उद्योग के विकास के लिए केन्द्रीय महत्त्व का कारण गन्ने का प्रति एकड उत्पादन बढाना है। प्रति हैक्टेयर गन्ने का उत्पादन 1960-61 मे 45 टन से बढकर 1970-71 मे 48 टन और 1990-91 मे बढकर 65 टन हो गया। गन्ने के प्रति हैक्टेयर उत्पादन को दुगुना करने की सभावना है। उत्पादन की मात्रा को निर्धारित करने वाला दूसरा कारण गन्ने मे सूक्रोस (Sucrose) की प्रतिशत प्राप्ति है। भारत मे गन्ने का प्रति एकड उत्पादन और इससे सूक्रोस की प्राप्ति दोनो ही कम हैं।

गुड के उत्पादन से प्रतियोगिता—भारत मे 100 लाख टन गन्ने से 10 टन चीनी प्राप्त की जाती है परन्तु खाडसारी द्वारा केवल 7 टन चीनी तैयार की जाती है। इस कारण गन्ने के खाडसारी और गुड की ओर प्रयोग से देश को चीनी के उत्पादन मे नुकसान होता है। अत गुड के कारखानो में गन्ने के प्रयोग से चीनी के कारखानो की तुलना मे 25 से 40 प्रतिशत कम सूक्रोस प्राप्त किया जाता है। अत यह अनिवार्य है कि चीनी, गुड और खाडसारी के बीच कीमत-प्रतियोगिता को दूर किया जाए। इन तीनो निकट स्थानापन्न वस्तुओ (Close substitutes) के लिए एक ही कीमत पर गन्ने की बाट की सयुक्त नीति तैयार करनी होगी। जबकि कारखानो को उपलब्ध कराए जाने वाले गन्ने की कीमत सरकार द्वारा निश्चित की जाती है, गुड के सम्बन्ध में इस्तेमाल होने वाले गन्ने की कोई कीमत निश्चित नहीं की जाती। इसका आम परिणाम यह होता है कि गुड का उत्पादन चीनी की कीमत पर बढाया जाता है। इस नीति के नतीजे के तौर पर गन्ने का वितरण चीनी, खाडसारी और गन्ने के उत्पादको मे उचित आधार पर नहीं हो पाता।

दोषपूर्ण सरकारी नीति—चीनी सम्बन्धी नीति मे दीर्घकालीन दृष्टिकोण नहीं रखा गया। गत वर्षों मे भी नियन्त्रण विनियत्रण और पुनर्नियन्त्रण की नीति तदर्थ रूप मे लागू की गई। यद्यपि दुर्लभता के काल मे चीनी के पूर्ण विनियन्त्रण के पक्ष मे तर्क देना मूर्खता होगी, सरकार के लिए आशिक नियन्त्रण (Partial control) की नीति का प्रयोग करना उचित होगा ताकि निर्धन वर्गों को उचित कीमत पर चीनी उपलब्ध कराई जा सके।

आशिक नियन्त्रण एव द्वैध कीमत-निर्धारण (Dual pricing) की चीनी नीति अभी तक चल रही है। 1984-85 मे लेवी-चीनी और मुक्त-विक्रय चीनी का अनुपात 65 35 निश्चित किया गया परन्तु इसे फिर बदल कर 1986-87 मे 50 50 कर दिया गया। इसका उद्देश्य चीनी कारखानो की क्षमता को बढावा था ताकि गन्ने की प्रतियोगी कीमत अदा कर सके। गन्ने के उत्पादको के लिए कानूनी न्यूनतम कीमत (Statutory minimum price) को हर मौसम से पहले घोषणा की जाती है। 1989-90 मे यह न्यूनतम कीमत 22 रुपए प्रति क्विन्टल निश्चित की गई। 1992-93 मे इसे बढाकर 27 रुपए प्रति क्विन्टल कर दिया गया है। वर्तमान परिस्थितियो मे गन्ने के उत्पादको को कहीं ऊची कीमतें उपलब्ध होने लगी हैं जोकि कानूनी न्यूनतम कीमत से भी ऊँची है।

चीनी के उत्पादन की समस्या—गन्ने की निम्न उत्पादिता पेरने का छोटा मौसम उत्तर प्रदेश और बिहार में उद्योग का असन्तोषजनक स्थिति निश्चयन और गन्ने का अपर्याप्त सभरण—ये सभी कारणतत्व चीनी उद्योग के लिए समस्याएँ उत्पन्न करते हैं। इसके अतिरिक्त, भारतीय चीनी कारखानो की कुशलता कम होने के कारण गन्ने से

अपेक्षाकृत थोडी चीनी प्राप्त की जाती है। इसके अलावा उत्तर प्रदेश और बिहार में चलने वाले बहुत से कारखाने अप्रयोज्य (Obsolete) मशीनरी का प्रयोग करते हैं और उन्होंने अपनी घिसी-पिटी मशीनरी के आधुनिकीकरण के लिए कोई कदम नहीं उठाए। इसके साथ भारतीय चीनी कारखानों द्वारा अपने गन्ने के उत्पादन क्षेत्र विकसित नहीं किए गए (जैसा कि वैस्ट इंडीज मे किया गया) और इसलिए असख्य गन्ने के उत्पादको की मात्रा एव गुणवत्ता (Quality) पर उनका कोई नियन्त्रण नहीं रहता।

चीनी की ऊंची कीमतो की समस्या–भारत मे चीनी को उत्पादन-लागत अधिक होने के कारण इसकी कीमत विश्व कीमत (World price) की तुलना मे ऊँची है। इसका कारण एक हद तक चीनी कारखानो द्वारा स्टॉक में हेरा-फेरी, जमाखोरी और चोरबाजारी के कारण भी थोक-विक्रेता चीनी की कीमते बढा देते हैं। 1979-80 और 1980-81 के दौरान चीनी की कीमते देश के विभिन्न भागो मे 10-11 रुपए प्रति किलोग्राम और कुछ इलाको मे 18 रुपए प्रति किलोग्राम तक भी पहुँच गई थीं परन्तु उत्पादन मे तीव्र वृद्धि और चीनी की पर्याप्त उपलब्धि के कारण अब कीमत गिर गई है।

उप-उत्पादो की समस्या–चीनी उद्योग की एक महत्वपूर्ण समस्या उप-उत्पादो विशेषकर शीरा और राव (Bagasse) का पूर्ण उपयोग है। एक समय था जब राव ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता था और कारखानो को यह पता नहीं था कि वे एकत्र हुए शीरे का क्या करें ताकि वह स्वास्थ्य के लिए खतरा न बन जाए। आज राव (Bagasse) का इस्तेमाल करने के लिए कागज के छोटे प्लान्ट लगाए जाते हैं जिनसे कागज, गत्ता और पैकिंग कागज तैयार किया जाता है। शीरा आजकल सचालन शक्ति अल्कोहल (Power alcohol), उर्वरको, पशुओ के चारे आदि के निर्माण के लिए इस्तेमाल किया जाता है। एक ही स्थान पर एक-दूसरे के निकट स्थित बहुत-सी चीनी मिलें इकट्ठे मिलकर उप-उत्पादो का पूर्ण एव प्रभावी प्रयोग करती हैं। इस प्रकार वे चीनी की उत्पादन-लागत कम कर सकती हैं।

इन सभी कठिनाइयो एव समस्याओ के बावजूद किसी भी उद्योग ने इतनी तेजी से तरक्की नहीं की जितनी कि चीनी उद्योग ने। इस उद्योग का भी भविष्य बहुत उज्ज्वल है क्योंकि देश मे कच्चे माल का प्रचुर सभरण, श्रम और भारी आन्तरिक मण्डी उपलब्ध है। सरकार को दीर्घकालीन आधार पर आशिक नियन्त्रण और द्वैध कीमत नीति जारी रखनी चाहिए ताकि एक ओर उपभोक्ताओ के हितो की रक्षा की जा सके और दूसरी ओर उद्योग के हितो का सरक्षण किया जा सके। इन दोनो प्रकार के हितो का समन्वय देश के लिए आवश्यक है।

6. सीमेंट उद्योग

(Cement Industry)

भारतीय सीमेंट उद्योग की बुनियाद 1914 मे रखी गई जबकि गुजरात मे पोरबन्दर के स्थान पर इण्डियन सीमेंट कम्पनी लि ने सीमेंट बनाना आरम्भ किया। भारत मे सीमेंट की 140 बडी इकाइयाँ और 66 मिनी स्टील प्लान्ट कायम हो चुके हैं, जिनकी कुल उत्पादन क्षमता 660 लाख टन थी परन्तु वास्तविक उत्पादन 540 लाख टन हुआ। इनमे से सीमेंट उद्योग में लगभग 2 लाख श्रमिको को रोजगार प्राप्त है। भारत विश्व का सातवा सबसे बडा उत्पादक है। पहले पाच देश हैं–रूस, यू एस ए., इटली, जर्मनी और फ्रास। किन्तु भारत का सीमेंट का प्रति व्यक्ति उपभोग विश्व मे सबसे कम है। 1979 के दौरान भारत में प्रति व्यक्ति सीमेंट उपभोग 32 किलोग्राम था, इसके विरुद्ध जापान में 689 कि ग्रा, पश्चिमी जर्मनी 582 कि ग्रा, फ्रास 506 किग्रा, चीन 80 कि ग्रा और पाकिस्तान 49 कि ग्रा था।

तालिका 6 मे दिए गए आकडो से स्पष्ट है कि जब कभी स्थापित क्षमता (Installed capacity) मे एकदम वृद्धि हुई तो इसके परिणामस्वरूप क्षमता उपयोग की मात्रा मे कमी व्यक्त हुई परन्तु कुछ समय पश्चात् क्षमता-उपयोग मे निश्चय ही उन्नति हो जाती है। 1993-94 मे क्षमता-उपयोग 77 प्रतिशत था जबकि 1980-81 मे यह केवल 67 प्रतिशत था।

तालिका 6 *भारतीय सीमेंट उद्योग का विकास*

वर्ष	क्षमता (लाख टन)	उत्पादन (लाख टन)	क्षमता के प्रतिशत रूप में उत्पादन
1950 51	33	27	82
1960 61	94	79	85
1970 71	173	143	83
1980 81	270	181	67
1990-91	640	488	76
1993 94	752	580	77

सीमेंट के औसत वार्षिक उत्पादन मे भारी उच्चावचन होता रहा परन्तु उद्योग ने ऊर्ध्व प्रगति की प्रवृत्ति बनाए रखी। 1991-92 में सीमेंट का उत्पादन बढकर 662 लाख टन हो गया। अत 1980-81 और 1991-92 के दौरान उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर 8 5 प्रतिशत रही। इसके मुख्य कारण थे–कोयले के सभरण मे उन्नति, रलव वैगनो की बेहतर उपलब्धि और सुधरे औद्योगिक सम्बन्ध।

स्वामित्व का सकेन्द्रण–भारत मे किसी भी अन्य उद्योग मे सीमेंट उद्योग के बराबर स्वामित्व और नियन्त्रण का सकेन्द्रण नहीं है। सार्वजनिक क्षेत्र, ए सी सी,

डालमिया-जैन और बिडला का सीमेट की अधिकतर इकाइयो पर नियन्त्रण है। स्वामित्व और नियन्त्रण के सकेन्द्रण के कारण विभिन्न सीमेट कारखानो का वित्तीय एव प्रशासनिक एकीकरण हो गया है। इसका सीमेट की अलग-अलग इकाइयो के आकार पर भी बहुत अधिक प्रभाव पडा है।

देश भर मे बिखरी हुई इकाइया–असम और पश्चिमी बगाल को छोड देश के सभी भागो मे सीमेट उद्योग भली-भाँति फैला हुआ है। चूँकि सीमेट बनाने मे चूना पत्थर या चाक, चिकनी मिट्टी और जिप्सम आदि ऐसी कच्ची सामग्री का इस्तेमाल होता है जिसका वजन कम हो जाता है, अत इस उद्योग के स्वभावत उन स्थानो पर स्थापित होने की प्रवृत्ति होती है जहा कच्चे माल की परिवहन लागत न्यूनतम हो। बढिया किस्म का चूना पर्याप्त मात्रा में देश के अनेक भागो मे रेल लाइन के काफी निकट पाया जाता है। फलत सीमेट उद्योग से प्रादेशिक बिखराव की प्रवृत्ति दिखाई पडती है। केवल जिप्सम ही ऐसा कच्चा पदार्थ है जिसे दूर से ढोना पडता है। 1980 तक भी सीमेट के कारखाने अधिकतर देश के दक्षिण एव पश्चिमी क्षेत्रो मे सकेन्द्रित थे। उदाहरणार्थ, 1982-83 मे उत्तरी और पूर्वी क्षेत्रो द्वारा कुल उत्पादन का केवल 21 प्रतिशत उत्पन्न किया जाता था। इसके विरुद्ध, दक्षिण एव पश्चिमी क्षेत्रो मे कुल उत्पादन का 79 प्रतिशत उत्पन्न किया जाता था किन्तु केवल 57 प्रतिशत उपभोग किया जाता था।

उद्योग की समस्याएँ

सीमेट उद्योग की मुख्य समस्याएँ निम्नलिखित हैं-(i) सीमेट का उत्पादन करने वाले विभिन्न राज्यो मे सचालन शक्ति मे 20 से 75 प्रतिशत की कटौती, (ii) कोयले की कमी (iii) वैगनो की अपर्याप्त उपलब्धि, और (iv) भट्टी के तेल की सीमित उपलब्धि के कारण बहुत-सी इकाइयो का आशिक या पूर्ण रूप मे बन्द हो जाना। अत इन कारणो से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि क्षमता उपयोग जो पहले 93 प्रतिशत ता, कम होकर 1980-81 मे केवल 67 प्रतिशत हो गया और 1991-92 मे यह 81 प्रतिशत हो गया।

सीमेट की माग के 8 से 10 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढने का अनुमान है। इस माग को पूरा करने के लिए सरकार ने एक ओर मिनी प्लान्ट और दूसरी ओर वृहद आकार के प्लान्ट (Giant plant) स्थापित करने की योजना बनाई। एक मिनी प्लान्ट की स्थापित क्षमता 200 टन प्रतिदिन तक होती है। मिनी प्लान्ट के दो लाभ हैं-पहला, ऐसे प्लान्ट की पूजी लागत कम होती है, और दूसरा, ये दूर-दराज के इलाको मे भी लगाए जा सकते हैं। मार्च 1992 तक 140 मिनी प्लान्ट लगाए गए जिनकी कुल उत्पादन क्षमता 55 लाख टन थी। सरकार मिनी सीमेट प्लान्टो को कई प्रकार के प्रोत्साहन भी दे रही है। इसके अतिरिक्त बहुत से ऐसे प्लान्ट भी लगाए जा रहे हैं जिनकी उत्पादन क्षमता 1,200 से 3,000 टन प्रतिदिन के बीच है। अत सरकार क्षमता-विस्तार मे उदार नीति अपना रही है।

दूसरी समस्या सीमेट के वास्तविक विनियमन से सम्बन्धित है। सरकार ने वितरण की परमिट प्रणाली चालू की जोकि कभी भी ठीक ढग से नहीं चली। अक्टूबर 1978 से 14 राज्यो एव सघीय क्षेत्रो मे सीमेट के सार्वजनिक वितरण पर प्रत्यक्ष नियन्त्रण लागू किया गया ताकि प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रो और अनावश्यक उद्देश्यों के लिए उचित सभरण उपलब्ध कराया जा सके। इस प्रकार छोटे प्रयोगकर्त्ताओ को सुविधा देने और काले बाजार को समाप्त करने की योजना बनाई गई। देश मे सीमेट की भारी कमी महसूस की जा रही है और सरकार इसमे काले बाजार को समाप्त करने का प्रयास कर रही है।

फरवरी 1982 मे सरकार ने सीमेट से आशिक रूप से नियन्त्रण हटा लिया, और 33 प्रतिशत सीमेट को खुले बाजार मे बेचने की इजाजत दे दी। सीमेट निर्माता सघ ने 50 किलोग्राम के बोरे की कीमत 60 रुपए निश्चित की। यह 33 रुपए प्रति बोरे के वसूली सीमेट (Levy cement) से कहीं अधिक थी। खेद की बात यह है कि खुले बाजार मे सीमेट की कीमत 80-85 रुपए प्रति बोरे के बीच विद्यमान रही। यह तो ठीक है कि सीमेट अब खुले बाजार मे मिल रहा दे और इसका अभाव नहीं रहा किन्तु इसकी कीमत पर नियन्त्रण अवश्य होना चाहिए।

सीमेट आर्थिक विकास के लिए केन्द्रीय महत्त्व रखता है और इसकी बढती हुई माग को पूरा करने के लिए अभी उत्पादन बढाना सभव नहीं हुआ है। उद्योग के विकास की भारी सभावना है क्योकि बहुत ही उत्तम किस्म का चूना-पत्थर (Lime stone) देश भर मे उपलब्ध है। यदि एक अच्छी कीमत नीति के साथ सरकार द्वारा लगाए गए अनावश्यक विनियमन एव नियन्त्रण हटा लिए जाएँ, तो उद्योग के उत्पादन को बढाने के लिए सही वातावरण कायम हो सकता है। हाल ही के वर्षों मे एम आर टी पी कम्पनियो को सीमेट उत्पादन के लाइसेस दिए गए हैं। बहुत से औद्योगिक घराने सीमेट उत्पादन मे प्रवेश कर रहे हैं। इनमे उल्लेखनीय है-लारसेन एव टूब्रो, कोरोमडल फर्टलाईजर, दिल्ली क्लाथ मिल्ज, रेमान्ड, जे के सिनथैटिक्स और बिडला घराने की बहुत सी कम्पनियाँ। सीमेट उद्योग के आधुनिकीकरण एव क्षमता-विस्तार प्रोग्राम के लिए 2 500 करोड रुपए की योजना तैयार की गई है।

7. कागज उद्योग
(Paper Industry)

सन् 1962 में भारत मे कागज का प्रकट उपभोग 4 लाख टन होने का अनुमान लगाया गया था। इसमे 3 5 लाख टन का उत्पादन भारत में होता था और 0 5 लाख मीट्रिक टन विदेशो से मगाया जाता था। आयातित कागज में अधिकाश पैकिग का कागज विशेषतया क्राफ्ट कागज (Craft Paper) था। देश मे बनाए गए कागज मे अधिकाश छपाई का कागज है।

तालिका 9 भारतीय कागज उद्योग मे उत्पादन
(लाख टन)

वर्ष	कागज तथा गत्ता		अखबारी कागज का उत्पादन
	क्षमता	उत्पादन	
1960-61	4	3 5	0 4
1970-71	9	7 5	0 4
1980-81	11	11 0	0 5
1993 94	36	22 0	3 4

1960-61 और 1993-94 की अवधि मे कागज एव गत्ते का उत्पादन 3 5 लाख टन से 22 लाख टन तक बढ गया अर्थात् इसकी वार्षिक चक्रवृद्धि-दर 6 प्रतिशत थी। इसी बीच अखबारी कागज का उत्पादन 0 4 लाख टन से बढकर 3 4 लाख टन हो गया।

गैर-सरकारी क्षेत्र मे कागज और गत्ता बनाने वाली 334 इकाइयाँ हैं जिनकी स्थापित क्षमता 34 लाख टन है। वस्तुत कागज उद्योग के क्षेत्र मे बहुविध आकार, प्रकार और परिमाण की इकाइयाँ मौजूद हैं। एक ओर टीटागढ कागज मिल जैसी सुसगठित और सुसज्जित मिल है, तो दूसरी ओर गुजरात की पद्मजी मिल जैसी अत्यन्त छोटी और साधारण साज-सामान वाली इकाई है। इन दो छोरो के बीच अलग-अलग आकार की अनेक इकाइयाँ हैं जिनमे बहुसख्यक की उत्पादन क्षमता 6 से 15 हजार टन तक है। 1973 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव द्वारा सरकार ने बडे औद्योगिक घरानो को अतिरिक्त उत्पादन बढाने की इजाजत दे दी है और कागज उद्योग आन्तरक क्षेत्र (Core sector) मे समाविष्ट कर लिया है। इस समय देश मे 270 छोटी तथा मध्यम इकाइयाँ और 30 बडी इकाइयाँ हैं। छोटी तथा मध्यम इकाइयो द्वारा कुल उत्पादन मे लगभग 50 प्रतिशत योगदान किया जाता है।

भारत मे कागज का प्रति व्यक्ति उपभोग 2 किलोग्राम था किन्तु जैसे ही भारत मे साक्षरता का स्तर उन्नत हो जाएगा, कागज का उपभोग बढ जाएगा। कागज के प्रति व्यक्ति उपभोग सम्बन्धी कुछ आँकडे इस प्रकार हैं-यू एस ए 289 किलोग्राम, जापान 141 किलोग्राम, मलेशिया 37 किलोग्राम ब्राजील 27 किलोग्राम और टर्की 13 किलोग्राम।

भारत में अखबारी कागज की भारी कमी है और हमारी आवश्यकता का 70 प्रतिशत आयात किया जाता है। हमे अखबारी कागज उपलब्ध कराने वाले मुख्य देश कनाडा फिनलैण्ड, नार्वे, स्वीडन, पोलैंड और रूस हैं। भारत नेशनल न्यूजप्रिंट एण्ड पेपर मिल्ज लि, जो अकेला सरकारी क्षेत्र का उद्यम है, द्वारा 1980-81 में 5 1 लाख टन कागज तैयार किया गया। हिन्दुस्तान पेपर कार्पोरेशन-एक सरकारी उद्यम-की स्थापना एक और अभिनन्दनीय उपाय है। इसके द्वारा असम केरल और नगालैंड मे तीन कागज के कारखाने लगाए जाएँगे। इसके अतिरिक्त, सरकार पेपर एण्ड पल्प डिवेलपमेंट कार्पोरेशन के आधीन दो कारखाने लगाना चाहती है। इसके अलावा, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र में 1 65 लाख टन की क्षमता की तीन और इकाइयाँ स्थापित की गई हैं। इन सभी उपायो के बावजूद 2 लाख टन अखबारी कागज की माग पूरी नहीं की जा सकती। अत आयात पर निर्भर रहना ही पडेगा। 1993-94 मे अखबारी कागज का उत्पादन 3 4 लाख टन था जबकि 1980-81 में यह केवल 0 5 लाख टन ही था। यह एक अभिनन्दनीय स्थिति है।

हाल ही मे सरकार ने उद्योग की कठिनाइयो को देखते हुए कागज की कीमते बढा दी हैं। इसके साथ-साथ रियायती कागज (Concessional paper) और खुले बाजार मे कागज की कीमत मे अन्तर कम हो गया है। सरकार आशा करती है कि इसके परिणामस्वरूप कागज का उत्पादन तेजी से बढ जाएगा।

36

लघु उद्यम
(SMALL-SCALE ENTERPRISES)

1. लघु उद्यमों की परिभाषा और वर्गीकरण

औद्योगिक ढाचे को तीन भागो मे विभाजित किया जा सकता है (1) बडे उद्योग (2) मध्यम उद्योग और (3) लघु उद्योग। आकार के अनुसार औद्योगिक सस्थाओ के सीमाकन के लिए भिन्न-भिन्न कसोटियाँ अपनाई जाती हैं। इनमे प्रमुख है (क) विनियुक्त पूजी की मात्रा (ख) नियुक्त श्रमिको की सख्या (ग) सगठन और प्रबन्ध का स्वरूप और (घ) वार्षिक उत्पादन का मूल्य। इनमे से कोई भी एक तत्व अपने आप म निर्धारित कसौटी नहीं हो सकता क्योकि कुछ समय के बाद परिवर्तन हा जाता है। 1975 से पूर्व लघु उद्यम के लिए 7 5 लाख रुपए से कुल पूजी-विनियोग को कसौटी माना गया। 1975 मे भारत सरकार द्वारा स्वीकृत परिभाषा के अनुसार 10 लाख रुपए तक की पूजी वाले औद्योगिक उद्यम *(Industrial enterprise)* को लघु उद्यम कहा जाता था। इस परिभाषा के अनुसार मध्यम उद्यमो *(Medium enterprises)* से लघु उद्यमो को भिन्न करने वाली कसौटी यह थी कि लघु उद्यमो मे कुल 10 लाख रुपए या कम को अचल पूजी लगाई गई हो। एक ही कसौटी को आधार बनाकर उद्यम के आधार का निर्धारण करने से उनकी गणना मे सदिग्धता नही रहती। अनुषगी उद्यमो (Ancillaries) मे यदि पूजा विनियोग 15 लाख रुपए से कम होगा तो वे लघु उद्यम माने गए।

1980 मे काग्रेस द्वारा घोषित औद्योगिक नीति मे तीव्र आर्थिक विकास प्रोन्नत करने की दृष्टि से लघु उद्योगो की परिभाषा मे सुधार किया गया। अत इस परिभाषा के आधीन

(i) पिद्दी क्षेत्र (Tiny sector) मे विनियोग की सीमा 1 लाख रुपए से बढाकर 2 लाख रुपए कर दी गई है

(ii) लघु स्तर की इकाइयो मे विनियोग की सीमा 10 लाख रुपए से बढाकर 20 लाख रुपए कर दी गई है तथा

(iii) अनुषगी इकाइयो (Ancillaries) के लिए विनियोग की सीमा 15 लाख रुपए से बढाकार 25 लाख रुपए कर दी गई है।

मार्च 1985 मे सरकार ने लघु स्तर उद्यमो को विनियोग सीमा 20 लाख रुपए से बढाकर 45 लाख रुपए और सहायक उद्यमो (Ancillaries) की 25 लाख रुपए से बढाकर 45 लाख रुपए कर दी। विनियाग का अर्थ प्लान्ट और मशीनरी मे अचल परिसम्पत् के रूप मे विनियोग होगा।

औद्योगिक नीति वक्तव्य 1990 के अनुसार प्लान्ट और मशीनरी मे उद्यमो के लिए विनियोग की अधिकतम सीमा बढाकर 60 लाख रुपए कर दी गयी और तदनुरूप अनुषगी इकाइयो के लिए 75 लाख रुपए कर दी गयी। पिद्दी इकाइयो (Tiny units) के लिए विनियोग की सीमा 2 लाख रुपए से बढाकर 5 लाख रुपए कर दी गयी।

पारम्परिक एव लघु उद्यमो मे वर्गीकरण (Classification)

आमतौर पर लघु उद्यमो को पारम्परिक लघु उद्यमो (Traditional small enterprises) और आधुनिक लघु उद्यमो मे विभाजित किया जाता है। पारम्परिक लघु उद्यमों मे खादी और हथकरघे ग्राम उद्योग हस्तशिल्प, रेशम उद्योग नारियल जटा उद्योग शामिल किये जाते हैं। आधुनिक लघु उद्यमो द्वारा विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनायी जाती है जिनमे साधारण वस्तुओ से लेकर परिमार्जित वस्तुए अर्थात् टी वी सेट इलैक्ट्रानिक नियन्त्रण उपकरण, विभिन्न इन्जीनियरिंग वस्तुए शामिल हैं जो बडे उद्यमो की सहायक है। पारम्परिक लघु उद्यम अत्यधिक श्रम प्रधान हैं जबकि आधुनिक (Modern) लघु स्तर की इकाइया बहुत ही परिमार्जित मशीनरी *(Sophisticated machinery)* और उपकरणो का प्रयोग करती हैं।

पारम्परिक ग्राम उद्यमो का एक मुख्य लक्षण यह है कि वे पूर्णकालीन रोजगार (Full time employment) उपलब्ध नहीं करा सकते परन्तु केवल अशकालीन या सहायक रोजगार उपलब्ध करा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, पारम्परिक ग्राम तथा लघु उद्योग ऐसे श्रमिको एव दस्तकारो द्वारा चलाये जाते हैं जो निर्धनता-रेखा *(Poverty line)* के नीचे हैं जबकि आधुनिक लघु उद्योग आजीविका का अच्छा

स्रोत हैं। अत. यदि रोजगार के विस्तार के साथ निर्धनता-रेखा के नीचे जनसख्या को कम करना है तो आधुनिक लघु क्षेत्र का अधिक तेजी से और भारी मात्रा मे विस्तार करना होगा।

2. भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु उद्यमों की भूमिका

(Role of Small-Scale Enterprises in Indian Economy)

बड़े पैमाने के क्षेत्र से भारी प्रतिस्पर्द्धा के बावजूद छोटे पैमाने के उद्यमो ने भारतीय अर्थव्यवस्था मे स्वतन्त्रता-उपरान्त काल के दौरान विकास की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण भाग अदा किया है, चाहे सरकार से इन्हे पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त नहीं हुआ। इसका प्रमाण यह है कि जहाँ 1950 मे 16,000 लघु-इकाइयाँ पजीकृत (Registered) थीं, वहाँ इनकी सख्या बढकर 1961 मे 36,000 हो गयी और 1981-82 मे और बढकर 5 3 लाख हो गयी। पिछले दशक के दौरान, लघु स्तर क्षेत्र ने इस दिशा मे तरक्की की है कि साधारण वस्तुओ को बनाने के अतिरिक्त, यह बहुत-सी परिमार्जित वस्तुएं एव बढ़िया उपकरण जैसे इलैक्ट्रानिक नियन्त्रण उपकरण, माइक्रो-वेव हिस्से (Micro-wave components), इलैक्ट्रो-चिकित्सा उपकरण, टी वी सैट आदि का निर्माण करने लगा है। इन इकाइयो द्वारा 5,000 से अधिक वस्तुएं उत्पन्न की जाती हैं।

सरकार लघु-स्तर क्षेत्र के विकास के लिए वस्तुओ के आरक्षण (Reservation) की नीति अपनाती चली आई है। 1972 के छोटे पैमाने के उद्योगो की अखिल भारतीय गणना (Census of Small Scale Industries) के समय 177 मदें आरक्षित सूची में थीं। 1983 तक इनकी सख्या बढ़ाकर 837 कर दी गयी। इन इकाइयो मे 5,000 वस्तुएं तैयार की जाती हैं।

लघु उद्योग विकास सस्था द्वारा छोटे पैमाने की इकाइयों की दूसरी अखिल-भारतीय गणना (Second All-India Census) 1987-88 के लिए की गयी। इससे प्राप्त आकडों से पता चलता है कि 31 मार्च 1988 पर 9 87 लाख पजीकृत लघु-स्तर इकाइयो में से 3 05 लाख इकाइया (अर्थात् कुल का 31 प्रतिशत) बन्द थीं और इसके अतिरिक्त 57,000 (5 8 प्रतिशत) का कोई अता पता नहीं मिला। दूसरे शब्दों मे कुल इकाइयो का 36 7 प्रतिशत ऐसा था जो उत्पादन में योगदान नहीं दे रहा था। 1991-92 तक, कुल पजीकृत लघु-स्तर इकाइयो की सख्या 20 8 लाख हो गयी जिसमें 14 96 लाख राज्यीय उद्योग विभाग के साथ पजीकृत थीं और 5 84 लाख अपजीकृत (Unregistered) थीं। आर्थिक समीक्षा (1992-93) इनमें भी 30 से 40 प्रतिशत इकाइया कार्यशील नहीं थीं।

5 82 लाख कार्यशील इकाइयो मे से जिनके लिए आकडे उपलब्ध हैं, 96 2 प्रतिशत लघु-स्तर इकाइया थीं, 3 2 प्रतिशत सेवा-प्रतिष्ठान और 0 5 प्रतिशत अनुषगी इकाइया थी।

तालिका 1 1987-88 की गणना के परिणाम

	लघु-स्तर इकाइयो की गणना	
	1972	*1987-88*
1 प्रति इकाई अचल विनियोग (लाख रुपए)	0 76	1 60
2 प्रति इकाई रोजगार (सख्या)	12 00	6 29
3 प्रति कर्मचारी अचल विनियोग (हजार रुपए)	6 38	25 36
4 प्रति कर्मचारी उत्पादन का मूल्य (हजार रुपए)	15 74	117 22
5 प्रति कर्मचारी शुद्ध मूल्य-वृद्धि (हजार रुपए)	5 10	27 99
6 प्रति कर्मचारी अदा की गयी मजदूरी (रुपए)	1 560	6 270
7 उत्पादन का मूल्य/अचल परिसम्पत मे विनियोग	2 47	4 62
8 शुद्ध मूल्य-वृद्धि/अचल परिसम्पत मे विनियोग	0 32	1 10

स्रोत आर्थिक समीक्षा (1992-93)

1987-88 की गणना के परिणामो से पता चलता है कि प्रति इकाई अचल विनियोग (Fixed investment per unit) जो 1972 मे 0 76 लाख रुपए था बढ कर 1987-88 मे 1 6 लाख रुपये हो गया। इसी अवधि के दौरान थोक कीमत सूचकाक मे 348% (1972=100) की वृद्धि हुई। इस बात को दृष्टि मे रखते हुए यह कहा जा सकता है कि प्रति इकाई वास्तविक विनियोग मे कमी व्यक्त हुई। ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रति कर्मचारी उत्पादन का मूल्य 1972 और 1987-88 के बीच 15,740 रुपए से बढकर 1 17 लाख रुपए हो गया। यह एक अभिनन्दनीय प्रवृत्ति है। इसके अतिरिक्त, उत्पाद-विनियोग अनुपात (Output investment ratio) एव शुद्ध मूल्य-वृद्धि विनियोग अनुपात मे स्पष्ट सुधार हुआ है। इससे यह सकेत मिलता है कि लघु-स्तर क्षेत्र की पूजी-उत्पादिता (Capital productivity) में उन्नति हुई है जोकि सराहनीय है। औसत रूप में, एक लाख रुपए के अचल विनियोग से 1987-88 मे 4 व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त कराया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, लघु-स्तर उद्योगो का पूजी-श्रम अनुपात बहुत अनुकूल है। अत यह इस बात का साफ प्रमाण है कि लघु-उद्योगो का पूजी-रोजगार अनुपात सापेक्षत कम है। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि रोजगार की समस्या के समाधान के लिए अर्थव्यवस्था के विनियोग-मिश्रण (Investment mix) मे इनके भाग मे वृद्धि करना आवश्यक है।

लघु उद्योगो का उत्पादन—1973-74 और 1993-94 के दौरान लघु-स्तर इकाइयो की सख्या 4 2 लाख से बढकर 23 84 लाख हो गयी। इसी अवधि मे इस क्षेत्र मे रोजगार की मात्रा 40 लाख से बढकर 139 लाख हो गयी और उत्पादन 7,200 करोड रुपये से बढकर 2,41,648 करोड रुपए हो गया। 1980-81 से 1993-94 के दौरान लघु स्तर क्षेत्र मे रोजगार मे औसत वार्षिक वृद्धि-दर 5 3 प्रतिशत और उत्पादन मे 18 0 प्रतिशत बैठती है। इससे यह विश्वास परिपक्व हो जाता है कि अतिरिक्त श्रम को रोजगार दिलाने के लिए लघु-स्तर उद्यम महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। 1970-71 की कीमतो पर, छोटे पैमाने के क्षेत्र का उत्पादन 1973-74 मे 5,161 करोड रुपए से बढकर 1985 86 मे 17,840 करोड रुपए हो गया। इस प्रकार इसकी औसत वार्षिक वृद्धि-दर 10 9 प्रतिशत बैठती है जो इस काल के दौरान बडे पैमाने के उत्पादन की 5 2 प्रतिशत वार्षिक की वृद्धि दर से कहीं ऊची है।

तालिका 2 लघु-स्तर क्षेत्र में रोजगार एव उत्पादन

	उत्पादन (करोड़ रुपए)	*रोजगार* (लाखो मे)	*निर्यात* (करोड़ रुपए)
1973-74	7 200	39 7	393
1977 78	14 300	54 0	845
1980 81	28 060	71 1	1 643
1985-86	61 228	96 0	2 769
1991-92	*1 78 700*	*128 8*	*12 658*
1993-94	2 41 648	139 4	22,764
चक्रवृद्धि औसत वार्षिक दर			
1973-74 से 1980 81	21 4	8 7	22 6
1980 81 से 1993 94	18 0	5 3	22 4

ध्यान देने योग्य बात यह है कि लघु-स्तर क्षेत्र के उत्पादन मे बडे पैमाने के क्षेत्र की तुलना मे अधिक तेजी से वृद्धि हुई। जाहिर है समग्र औद्योगिक उत्पादन मे मन्द गति की तुलना मे लघु-क्षेत्र का निष्पादन सराहनीय है। इस तथ्य का हमारी राष्ट्रीय *आर्थिक* नीतियो के सदर्भ मे *विशेष* महत्त्व है। छोटे पैमाने के क्षेत्र के विकास से गैर-चिरस्थायी जन-उपभोग की वस्तुओ (Non durable consumer goods of mass consumption) का उत्पादन उन्नत होता है। इस प्रकार यह अस्फीतिकारी शक्ति के रूप मे कार्य करता है। यदि लघु-क्षेत्र को बडे जोर का धक्का दे दिया जाए, तो वह भारत जैसी पूजी न्यून *अर्थव्यवस्था (Capital* scarce economy) मे उत्पाद-पूजी अनुपात की ऊची दर एव रोजगार-पूजी-अनुपात (Employment capital ratio) की ऊँची दर द्वारा एक स्थायीकारी कारणतत्त्व (Stabilising factor) बन सकता है।

इस सम्बन्ध मे हम लघु-स्तर उद्योगो के निम्न क्षमता-उपयोग (Capacity utilisation) का उल्लेख कर सकते हैं। समग्र लघु-क्षेत्र मे क्षमता-उपयोग 53 प्रतिशत था किन्तु कुछ उद्योगो मे क्षमता-उपयोग 60 से 80 प्रतिशत के बीच है। इनमें हैं हल्के चमडे को रगना, बुने हुए ऊनी वस्त्र, छपाई, *काजू, सिले-सिलाए कपडे, टाइल और औद्योगिक* मशीनरी के पुर्जे। प्लास्टिक उत्पादन जैसे उद्योगो मे क्षमता-उपयोग बहुत ही नीचा था (29 प्रतिशत)।

निर्यात—सिले-सिलाए कपडो, डब्बाबन्द एव विधायित मछली, चमडे की चप्पलो एव सैंडलो, खाद्य वस्तुओ और चमडे की वस्तुओ मे विशेष रूप से निर्यात मे भारी वृद्धि हुई है। 1978 मे निर्यात का मूल्य बढकर 845 करोड रुपए हो गया और 1993-94 तक यह 22,764 करोड रुपए के रिकार्ड-स्तर पर पहुँच गया। लघु-क्षेत्र से निर्यात का एक बहुत महत्त्वपूर्ण लक्षण इनका अपारम्परिक निर्यात मे भाग था। 1993-94 मे कुल निर्यात मे लघु-क्षेत्र *का भाग 32 7 प्रतिशत था। इस क्षेत्र द्वारा निर्यात किए गए* मुख्य उत्पाद हैं इजीनियरिंग वस्तुए, कमाया हुआ चमडा *और चमडे की निर्मित वस्तुएँ, सिले-सिलाए कपडे हौजरी* और समुद्री उत्पाद।

लघु उद्योगो का अन्त राज्यीय वितरण (Inter-state distribution)—लघु उद्योगो के अन्त राज्यीय वितरण से पता चलता है कि छ राज्यो अर्थात् महाराष्ट्र, तमिलनाडु, पश्चिम बगाल, उत्तर प्रदेश, पजाब और गुजरात मे लघु क्षेत्र की कुल इकाइयो का 59 प्रतिशत भाग स्थित था, इनके द्वारा कुल रोजगार का 62 प्रतिशत रोजगार उपलब्ध कराया गया इसमे कुल अचल परिसम्पत् का 66 प्रतिशत लगा हुआ था और कुल उत्पादन का 69 प्रतिशत भाग उत्पन्न होता था। वे राज्य जो लघु-स्तर के उद्योगो को प्रोत्साहित करने मे बहुत पिछडे हुए हैं, उनमे राजस्थान, मध्य प्रदेश और उडीसा शामिल हैं।

कुछ जिलो मे विशिष्टीकरण के कारण भी लघु-स्तर की इकाइयो मे सकेन्द्रण जान पडता है। ऊनी हौजरी की 92 प्रतिशत इकाइयाँ लुधियाना में थीं, सूती हौजरी की 82 प्रतिशत इकाइयाँ कोयम्बटूर, लुधियाना, कलकत्ता, और दिल्ली मे थीं, साइकिलो के पुर्जो की 62 प्रतिशत इकाइयाँ लुधियाना, जालन्धर, हावडा, विशाल बम्बई मे थीं।

3. लघु उद्योगों का समर्थन

(The Case for Small-Scale Enterprises)

लघु उद्यम बीते समय मे विवादास्पद विषय रहा है। यह विवाद अभी भी चल रहा है। कुछ राजनीतिज्ञ लघु

उद्यमो के प्रबल समर्थक हैं, किन्तु कुछ अर्थशास्त्री और उद्योगपति इनके विरोधी हैं। लघु उद्यमो के विकास के पक्ष में दिए जाने वाले तर्कों को सक्षेप मे इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है–ये बडे पैमाने पर तत्काल काम जुटाते है राष्ट्रीय आय के अपेक्षाकृत अधिक न्यायपूर्ण वितरण का आश्वासन देते हैं और पूजी तथा कौशल के साधनो को प्रभावशाली ढग से गति देते हैं अन्यथा ये साधन अप्रयुक्त ही रह जाएँ। योजनारहित नगरीकरण (*Unplanned Urbanisation*) से उत्पन्न समस्याओ मे से बहुत सी ऐसी हैं जिन्हे देश भर मे औद्योगिक उत्पादन के लघु केन्द्रो की स्थापना करके दूर किया जा सकता है।" औद्योगिक नीति प्रस्ताव मे चार तक प्रस्तुत किए गए हैं।

रोजगार सम्बन्धी तर्क (Employment argument)

कर्वे समिति ने इस युक्ति पर बल देते हुए लिखा है–"सफल लोकतन्त्र के लिए स्व रोजगार (Self employment) का सिद्धान्त कम से कम उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि स्वशासन (Self government) का।"[2] रोजगार विषयक युक्ति इस धारणा पर आधारित है कि लघु उद्यमो के श्रम प्रधान (Labour intensive) होने के कारण उनमे विनियुक्त पूजी की इकाई अपेक्षाकृत अधिक रोजगार कायम करती है। यह भी माना जाता है कि बडे उद्यमो की तुलना मे छोटे उद्यमो पर अन्य प्रकार से जो थोडी अधिक लागत आती है उसकी हानि पूर्ति अशत लघु उद्यमो मे उपरिव्यय (Overheads) पर होने वाली कम लागत से हो जाती है। अत यह आग्रह किया जाता है कि पूँजी वस्तु उद्योगो और सामाजिक तथा आर्थिक अध सरचना (Infrastructure) के निर्माण को छोडकर (क्योकि इनके लिए पूजी प्रधान परियोजनाएँ आवश्यक होती हे) विकासशील अर्थव्यवस्था मे उत्पादन के अन्य क्षेत्रो मे लघु उद्यमो को बढावा दिया जाना चाहिए, क्योकि इनमे दुर्लभ पूजी की अपेक्षाकृत कम मात्रा द्वारा रोजगार का विस्तार किया जा सकता है।

धर और लाइडल उपर्युक्त मान्यता का विरोध करते हैं। उनका कहना है कि रोजगार के लिए रोजगार कायम करना वाछनीय नहीं है। लघु उद्यमो का आर्थिक औचित्य भी होना चाहिए। धर और लाइडल का कथन है "उत्पादक (या अनुत्पादक) प्रक्रिया मे किसी भी सीमा पर श्रमिको की सख्या बढा देने भर से रोजगार कायम किया जा सकता है। दूसर शब्दो मे 'महत्त्व का प्रश्न यह नहीं कि अतिरिक्त साधनो का किस प्रकार प्रयोग किया जाए अपितु यह है कि दुर्लभ साधनो का सर्वोत्तम उपयोग कैसे किया जाए।"[3] इस प्रकार रोजगार सम्बन्धी तर्क वस्तुत "उत्पादन सम्बन्धी तर्क" ही है। इसका अभिप्राय यह है कि लघु उद्यम दुर्लभ पूजी और उद्यम का उपयोग करके उत्पादन अधिकतम करते हैं। रोजगार की स्थापना इसका आवश्यक सहज परिणाम है। धर और लाइडल जाँच द्वारा इस नतीजे पर पहुँचे कि बडे उद्यमो मे दो या तीन पारी (Shifts) चलाना एक सामान्य बात है जबकि छोटे उद्यमो मे ऐसा नहीं होता। इस प्रकार यद्यपि देखने मे ऐसा लगता है कि छोटे उद्यमो मे उत्पादन की प्रति इकाई पर कम पूँजी लगाई जाती है किन्तु सामान्यत सबसे अधिक पूँजी प्रधान विनिमाण सस्थान (Manufacturing establishments) ऐसी छोटी फैक्टरियाँ हैं जिनम आधुनिक मशीनो का उपयोग किया जाता हैं और 50 तक श्रमिक नियुक्त किए जाते है।

तालिका 3 पर विचार करने से पता चलता हे कि धर और लाइडल का तक चाहे तार्किक दृष्टि से सही हो इसकी आकडो द्वारा पुष्टि नहीं होती। इन आकडों से जाहिर है कि 1974 75 मे पूजी रोजगार अनुपात (Capital employment ratio) लघु स्तर क्षेत्र म सबसे कम है। अत लघु स्तर उद्योगो की रोजगार निर्माण क्षमता बडे पैमाने के क्षेत्र से 8 गुना है। इसके अतिरिक्त अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बृहद स्तर क्षेत्र की तुलना म लघु स्तर उद्यागो का उत्पाद पूँजी अनुपात (Output capital ratio) 3 गुना है चाहे इनकी श्रम उत्पादिता (Labour productivity) सापेक्ष दृष्टि से कम है। इस तर्क के आधार पर साधिकार यह कहा जा सकता है कि उत्पादन एव रोजगार दोनो ही दृष्टियो से विनियोग की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा लघु स्तर उद्योगो के पक्ष मे बाँटी जानी चाहिए।

तालिका 3 विनिर्माण उद्यमो मे पूजी, रोजगार और उत्पादन

वर्ष	पूजी आकार	प्रति श्रमिक अचल पूजा	प्रति श्रमिक मूल्य वृद्धि	प्रति इकाई अचलपूजी पर मूल्य वृद्धि
1974 75	लघु	3 706	4 790	1 29
	मध्यम	7 935	8 785	1 11
	बडा	30 536	13 736	0 43
1978 79	लघु	16 582	7 051	0 43
	मध्यम	27 610	12 521	0 45
	बडी	68 166	15 903	0 23

1 Planning Commission *Second Five Year Plan*, p 47
2 *Report of the Village and Small scale Industries Committee* (1955) p 45
3 Dhar and Lydall *The Role of Small Enterprises in Indian Economic Development* p 11
4 *Ibid*, p 91

चाहे छोटे पैमाने के उद्योगो मे बढते हुए आधुनिकीकरण के कारण पूँजी-श्रम अनुपात बढ रहा है फिर भी 1978-79 के आकडा से यह पता चलता है कि बडे उद्यमो मे पूँजी-श्रम अनुपात छोट उद्यमो की तुलना मे 4 गुना है। उत्पाद-पूजी अनुपात (प्रति श्रमिक मूल्य वृद्धि) भी छोटे उद्यमो मे अनुकूल है।

तालिका 4 **भारतीय उद्योगो म उत्पादक पूजी, रोजगार और मूल्यवृद्धि (1985-86)**

प्लान्ट एव मशीनरी का कुल मूल्य	प्रति कर्मचारी उत्पादक पूजी	प्रति कर्मचारी मूल्यवृद्धि	प्रति पूजी की इकाई के लिए मूल्य वृद्धि
पिद्दी इकाइयाँ (5 लाख रु से कम)	25 759	11 568	0 45
लघु स्तर इकाइयाँ (35 लाख रुपए तक)	29 793	15 544	0 52
बडी इकाइयाँ (35 लाख रु से अधिक)	1 67 681	41 616	0 25

स्रोत *Annual Survey of Industries (1985 86)* से सकलित

1985-86 के लिए उद्योगो के वार्षिक सर्वेक्षण द्वारा उपलब्ध कराए गए आँकडो से पता चलता है कि लघु इकाइयो की तुलना मे बडे पैमाने की इकाइयो मे प्रति कर्मचारी उत्पादक पूजी (Productive capital) 5 6 गुना अधिक है परन्तु पूजी की प्रति इकाइ के विरुद्ध मूल्यवृद्धि छोटी इकाइयो मे अधिक है। इसमे सन्देह नहीं कि प्रति कर्मचारी मूल्यवृद्धि लघु इकाइयो की तुलना मे बडी इकाइया म 2 67 गुना अधिक है। 1985 86 का सर्वेक्षण रोजगार और उत्पादन की दृष्टि से लघु इकाइयो को बढावा देने का समथन करता है ताकि पूजी न्यून देश उत्पादन और रोजगार के लक्ष्या म समन्वय स्थापित कर सके।

1981 मे घरलू उद्यमा द्वारा विनिर्माण क्षत्र म 77 लाख व्यक्तियो को रोजगार उपलब्ध कराया गया जोकि इन उद्यमो म कुल जनित रोजगार (149 लाख) का लगभग 52 प्रतिशत था। छोटे पैमाने की इकाइया द्वारा 7 प्रतिशत रोजगार उपलब्ध कराया गया मध्यम-स्तर को इकाइयो द्वारा 20 प्रतिशत और बडे पैमाने की इकाइया द्वारा 21 प्रतिशत रोजगार उपलब्ध कराया गया। चूँकि कुल रोजगार का आधे से अधिक भाग घरलू इकाइयो म उत्पन्न होता है और बडे पैमाने की इकाइयाँ देश का तेजी से बढती हुई श्रम-शक्ति को समाने की क्षमता नहीं रखतीं जाहिर है कि इससे छोटे पैमाने और घरेलू उद्यमा को प्रात्साहन देने का तर्क और भी मजबूत हो जाता है।

समानता सम्बन्धी तक (Equality Argument)

इस तर्क का सार यह है कि बडे उद्यमो मे होने वाली आय की अपेक्षा लघु उद्यमो से होने वाली आय समाज मे अधिक व्यापक रूप मे वितरित होती है। दूसरे शब्दो मे लघु उद्यमो की आय का लाभ बहुत अधिक लोगो को होता है जबकि बडे उद्यमो से आर्थिक सत्ता के सकेन्द्रण (Concentration of economic power) को प्रोत्साहन मिलता है। इस प्रकार लघु उद्यम आय के वितरण मे अपेक्षाकृत अधिक समानता लाने का साधन हैं। कुछ लोगो का यह भी कहना है कि लघु उद्यमो मे से अधिकाश एक व्यक्ति-स्वामित्व या साझेदारी सस्थाएँ हैं जिनके फलस्वरूप उनमे मालिक और श्रमिको के बीच सम्बन्ध अधिक सौहार्दपूर्ण रहता है।

धर और लाइडल की राय मे उपर्युक्त तर्क भ्रमपूर्ण है। आँकडे यह बताते हैं "सार देशो मे बडी फैक्टरियो के मुकाबले छोटी फैक्टरियो मे औसत मजदूरी (या वेतन) कम होने की सामान्य प्रवृत्ति विद्यमान है।" इसके अलावा छोटी फैक्टरियो म वास्तव मे मजदूर सघ न होने के कारण मालिक श्रमिको का अधिकतम शोषण कर सकते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि बडे उद्यमो की तुलना मे छोटे उद्यमो मे श्रमिको की न तो आर्थिक स्थिति ही बेहतर होती है और न ही उन्हे सामाजिक सुरक्षा योजनाओ के आधीन अधिक लाभ प्राप्त होते हैं। अत कम मजदूरी देने के कारण लघु उद्यम और कम बचत और कम कर उपलब्ध कराते है जिससे विकास क्षमता कम हो जाती है।

इसमे सन्देह नहीं कि धर ओर लाइडल के तर्क मे कुछ सार अवश्य है। किन्तु दूसरी ओर यह भी सत्य है कि अल्पविकसित देशो मे श्रमिका को लघु उद्यमो मे कम मजदूरी या वेतन पर काम करने या बेकार रहने मे से किसी एक स्थिति का चुनाव करना पडता है। परिस्थितियाँ उन्हे कम आय वाला काम चुनने के लिए विवश कर देती हैं। यदि लघु उद्यमो मे थोडी मजदूरी वाला काम भी न मिले ता श्रमिक उससे भी वचित रह जाए। इसके अतिरिक्त फैक्टरी कानून को प्रभावशाली ढग से क्रियान्वित करके लघु उद्यमो और बडे उद्यमो म श्रमिको का औसत मजदूरी का अन्तर कम किया जा सकता है।

अन्तर्निहित साधन सम्बन्धी तर्क (Latent Resources Argument)

इसका अभिप्राय यह है कि लघु उद्यम अपसचित धन (Hoarded wealth) उद्यम योग्यता आदि अन्तर्निहित साधना का उपयोग करने मे समर्थ हाते हैं। धर और लाइडल का मत है कि अपसचित धन को काम मे लाना केवल एक ही बार प्राप्त होने वाला लाभ है। किन्तु क्या यह

सही नहीं है कि निष्क्रिय अपसंचित धन एक ऐसे आय-प्रवाह को गति देता है जो निरन्तर अग्रसर होता जाता है। लघु उद्यम विसंचयन (Dishoarding) को जितना प्रोत्साहन देते हैं, समाज का उतना ही लाभ होता है। दूसरे, लघु उद्यमों के कारण छोटे उद्यमकर्त्ताओ का एक ऐसा वर्ग उभर आता है जो अर्थव्यवस्था मे गतिशीलता का सचार करता है। धर और लाइडल के मतानुसार लघु उद्योग मे उद्यमकर्त्ताओ को अपेक्षाकृत कम पारिश्रमिक मिलता है। इस तथ्य को ध्यान मे रखे तो, "भारत मे छोटे उद्यमकर्त्ताओ (Small entrepreneurs) की कुल मिलाकर कमी प्रामाणित नहीं होती।" किन्तु यह धारणा अधिक ठोस नहीं है। यदि छोटे उद्यमकर्त्ता प्रचुर मात्रा मे विद्यमान थे, तो लघु-उद्यमो का विकास क्यो न हो सका। उद्यमकर्त्ता वर्ग का विकास एक विशेष वातावरण मे ही हो सकता है। लघु उद्यम ऐसे वातावरण के निर्माण मे सहायक होते हैं। इस प्रकार के वातावरण मे निजी उद्यमकर्त्ताओ को स्थानीय उद्यमो (Local enterprises) और लागत बचाने के उपायो मे अपनी अन्तर्निहित प्रतिभा की अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् बडी सख्या मे फर्मों का विकास इस तथ्य का प्रमाण है कि यदि बिजली-सम्भरण और ऋण सुविधा आदि के रूप म आधारभूत परिस्थितिया कायम कर दी जाएँ तो लघु उद्यम विकसित होकर अन्तर्निहित उद्यम-साधनो का उपयोग कर सकते हैं।

विकेन्द्रीयकरण सम्बन्धी तर्क (Decentralization Arguments)

इस तर्क द्वारा उद्योगो के विभिन्न प्रदेशो म फैले होने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। बडे उद्योग बडे शहरों में ही केन्द्रित रहा करते हैं। छोटे नगरो और देहातो को भी आधुनिक औद्योगीकरण का लाभ प्राप्त हो सके इसके लिए लघु उद्योगो को प्रोत्साहन देना आवश्यक है। देश का औद्योगीकरण तभी पूर्ण कहा जा सकता है जब उद्योग देश भर मे दूर-दूर तक फैले हो। यह सच है कि प्रत्येक गाँव मे लघु उद्योग आरम्भ नहीं किए जा सकते किन्तु कई ग्रामो में समूह बनाकर उनमे ऐसे लघु उद्योग चलाए जा सकते हैं जो अपने इर्द-गिर्द के क्षेत्र की आवश्यकताएँ पूरी कर सके। अन्तराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य आयोजन दल (The International Perspective Planning Team) ने ठीक ही कहा है, "अत्यधिक पिछडे क्षेत्र मे या सीधे गाँवो म बडी सख्या मे उद्योगो की स्थापना की नीति का विफल होना सवथा निश्चित है। आर्थिक दृष्टि से ऐसी नीति का औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता बिखराव की नीति के आधीन औद्योगिक विकास का केन्द्र न तो महानगर होने चाहिएँ, न ही गाँव। इन दो छोरो के बीच शहरा और कस्बो का ऐसा सुविस्तृत क्षेत्र, जो क्षमतावान हो, औद्योगिक विकास का केन्द्र होना चाहिए।"[5] औद्योगिक उद्यमो के विकेन्द्रण से कच्चा माल, निष्क्रिय बचत (Idle saving), स्थानीय प्रतिभा आदि स्थानीय साधनो को गति मिलती है और पिछडे हुए क्षेत्रो के लोगो का रहन-सहन का स्तर उन्नत हो जाता है। इसके अलावा लघु उद्योगो के कारण रोजगार का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है, जिससे थोडे से औद्योगिक नगरो मे पाई जाने वाली भीड की समस्या के हल मे भी सहायता मिलती है।

सक्षेप मे, बडे उद्यमो के साथ-साथ छोटे उद्यमो का विकास भी किया जाना चाहिए। सरकार की स्वीकृत नीति भी यही है। रोजगार सम्बन्धी तर्क मे निश्चय ही काफी बल है, किन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि हमे अन्तत ऐसे लघु उद्योग स्थापित नहीं करने हैं जो अक्षम हो। दीर्घकाल की दृष्टि से विचार करने पर लघु उद्यमो को जारी रखने का समथन केवल उसी अवस्था मे किया जा सकता है जबकि उनमे काम करने वाले तकनीकी दृष्टि से प्रगतिशील और कार्यकुशल बनने की क्षमता रखते हो। अन्तरिम अवस्था मे इन्हे सरक्षण दिया जाना चाहिए और सरकार को ऐसी परिस्थितियाँ कायम करनी चाहिए जिनमे ये उद्योग विकसित हो सके।

4. अक्षमताओं को दूर करने की नीतियाँ और कार्यक्रम

(Policies and Programmes to Remove Disabilities)

इस समय बडे उद्यमो के मुकाबले इन छोटे उद्यमो के माग मे अनेक अडचन हैं, जैसे दुर्लभ कच्चे माल और आयातित सामग्री के बाट की विषमतापूर्ण अवस्था, ऋण और वित्त की सुविधाओ का अभाव, तकनीकी निपुणता और प्रबन्धकीय योग्यता (Managerial ability) का निम्न स्तर तथा मण्डी से सम्पर्क का अभाव। इसलिए लघु उद्योगो की प्रतिस्पर्धा शक्ति बढाने के उद्देश्य से यह आवश्यक है कि इनकी कमजोरियो को दूर करने के लिए सम्पूर्ण दृष्टि विकसित की जाए।

(1) कच्चे पदार्थों, *आयातित कल पुर्जों और* उपकरणो का बटवारा—दूसर अन्तराष्ट्रीय दल ने लघु उद्योगो के लिए कच्चे पदार्थो, आयातित कल-पुर्जों और चुने हुए आयातित उपकरणो की उपलब्धता की समस्या का अध्ययन किया। दल ने इस तथ्य पर विशेष बल दिया कि सरकार की कच्चे माल के आवटन (Allocation) की पद्धति भेदभावपूर्ण है। एक ही वस्तु का उत्पादन करने वाले बड उद्यमो की तुलना मे छोटे उद्यमो को उनकी कुल क्षमता

---

5 *Report of the International Perspective Planning Team (1963),* p 12

की दृष्टि से सामान्यत कम हिस्सा दिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि बडे उद्यमो की तुलना म छोटे उद्यमो को अपनी आवश्यकता का माल चोर बाजार से खरीदना पडता है जिससे उन्हे बडे उद्यमो की तुलना मे घाटा रहता है। सरकार ने स्थिति मे सुधार के लिए कई कदम उठाए हैं।

(2) ऋण और वित्त (Credit and Finance)– लघु उद्यमो की वित्तीय अक्षमता एक निश्चित तथ्य है। इन उद्यमो की आवश्यकताएँ निजी साहूकारो से भारी ब्याज पर ऋण लेकर पूरी होती हैं जिसका परिणाम यह होता है कि इनकी उत्पादन लागत बढ जाती है। फिर भी कुछ लघु उद्यम ऐसे हैं जो पर्याप्त प्रतिभूति दे सकते हैं। इन्हे विशेष वित्तीय सस्थानो से दीर्घकालीन ऋण मिल जाता है और कभी-कभी वाणिज्यिक बैंको (Commercial banks) से कार्यकारी पूजी के लिए नकद उधार (Cash credit) भी प्राप्त होता है। किन्तु "भारत को औद्योगिक अर्थव्यवस्था मे लघु उद्यमो की महत्त्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए इन्हे मिलने वाली ऋण की कुल राशि भारतीय उद्योगो की कुल ऋण *राशि का बहुत ही छोटा अश जान पडती है।" मार्च 1994* मे वाणिज्यिक बैको द्वारा सभी उद्योगो को दिए गए 80 492 करोड रुपए के उधार मे छोटे उद्यमो का भाग 22 620 करोड रुपए अर्थात् 28 प्रतिशत था। अत लघु उद्योगो के प्रति वित्तीय सस्थानो के दृष्टिकोण मे वास्तविक परिवर्तन आवश्यक है। किसी उद्यम की उधार पात्रता का निर्णय परिसम्पत (Assets) से प्राप्त होने वाले मूल्य के आधार पर न करके इस दृष्टि से किया जाना चाहिए कि उसमे काम करने और मुनाफा कमाने का कितना सामर्थ्य है। इसके लिए एक समन्वित ऋण-व्यवस्था का विकास आवश्यक है जिसके आधीन उचित ब्याज-दर पर पर्याप्त मात्रा मे दीर्घकालीन ऋणपूजी (Loan capital) और अल्पकालीन उधार मिल सके।

रिजर्व बैक आफ इण्डिया ने 1960 मे छोटे उद्यमो की सहायता के लिए एक उधार गारण्टी योजना (Credit Guarantee Scheme) जारी की। इस योजना के अनुसार रिजर्व बैंक गारटी सम्था का कार्यभाग अदा करता है और उधार लिए गए ऋण पर ब्याज एव मूलधन को वापसी का दायित्व अपने ऊपर ओढता है। इस योजना के आधीन 1968-69 मे लघु-उद्यमो को लगभग 163 करोड रुपए का ऋण दिया गया। इस योजना के आधीन ऋण सुविधाओ का तीव्र विस्तार हुआ और जून 1984 तक गारन्टीकृत ऋणो की मात्रा 8 058 करोड रुपए हो गई। इससे जाहिर है कि सस्थानात्मक (Institutional) उधार के प्रवाह मे लघु-क्षेत्र की ओर लगातार वृद्धि हो रही है। रिजर्व बैंक के एक अध्ययन के अनुसार छोटे पैमाने के उद्यमकर्त्ता बडे पैमाने के उत्पादको की तुलना मे कहीं ईमानदार हैं और वे बडे उत्पादको की तुलना से व्यक्तिगत रूप मे कहीं अधिक जोखिम सहन करते है। इसकी पुष्टि के लिए रिजर्व बैंक आफ इण्डिया रिपोर्ट (1984-85) से पता चलता है कि इस योजना के आधीन कुल 59 करोड रुपए के 18,720 दावे 1984-85 के दौरान किए गए जिनमे 11,408 दावे मजूर करके 12 5 करोड रुपए अदा किए गए (अर्थात् उधार सस्थानो द्वारा दिए गए कुल ऋण का 0 5 प्रतिशत)। यह ईमानदारी और ऋणपत्रता का सराहनीय रिकार्ड है। इसके बावजूद और ऋण सुविधाओ के विस्तार के होते हुए भी, अधिकतर कारीगर एव शिल्पी विशेषकर वे जो समाज के कमजोर वर्गों से हैं और छोटे कस्बो और ग्रामो मे रहते हैं, अपनी ऋण आवश्यकताओ के लिए उधार प्राप्त नहीं कर पाते।

(3) तकनीकी सहायता (Technical Assistance)–पिछडी हुई टैक्नोलाजी और प्रशिक्षण एव अनुभवी पर्यवेक्षण-कर्मचारियो (Supervisory personnel) की कमी के कारण लघु उद्योगो का विकास *अवरुद्ध हो रहा है। अत उत्पादन-कुशलता मे वृद्धि करने* और नये पदार्थों के निर्माण को उत्तेजना देने के लिए तकनीकी सहायता ही महत्त्वपूर्ण एव उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इस समय लघु स्तर की इकाइयो को तकनीकी परामर्श एव सहायता देने के लिए कुछ सस्थाएँ विद्यमान हैं। इनमे पहली है केन्द्रीय लघु उद्योग सगठन जो अपनी सेवा सस्थाओ और विस्तार केन्द्रो के माध्यम से तकनीकी योग्यता प्राप्त कर्मचारियो की व्यवस्था करता है। ये सेवा सस्थाएँ और विस्तार केन्द्र उद्यमकर्त्ताओ को तकनीकी समस्याओ के सम्बन्ध मे परामर्श देते हैं। दूसरे प्रकार की तकनीकी सहायता सामान्य सुविधा प्रदान करने वाली वर्कशापो की ओर से दी जाती है। वे वर्कशापे छोटी फर्मों की ओर से कठिन निर्माण कार्य अपने हाथो मे ले लेती हैं। निर्माण के लिए शुद्धत लागत ली जाती है। यह दुर्भाग्य की बात है कि उत्पादन सुविधाओ का पूर्ण उपयोग नहीं किया जा रहा है। परिणामत सामान्य सुविधा प्रदान करने वाली वर्कशापे तकनीकी प्रशिक्षण केन्द्रो (Technical training *centres) मे परिवर्तित कर दी गई हैं।*

(4) विपणन सहायता (Marketing Assistance)–लघु उद्योग को विपणन सम्बन्धी अनेक कठिनाइयाँ भी उठानी पडती है क्योकि इनमे निर्मित पदार्थ अमानकीकृत (Unstandardised) होते हैं और उनकी किस्म मे भी परिवर्तन होता रहता है। निस्सन्देह लघु उद्योगो के पदार्थों मे डिजाइन की मौलिकता रहती है, पर इससे बाजार की अपूर्णता उत्पन्न होती है जिससे चिह्नित (Branded) और विज्ञापित वस्तुओ (Advertised goods)

को लाभ पहुचता है। अत यह और भी आवश्यक है कि सरकार इन पदार्थों का प्रचार करने तथा उत्पादको और व्यापारियो को एक-दूसरे के निकट लाकर उक्त अपूर्णताओ को समाप्त करे। बिक्री की गारन्टी देने के उद्देश्य से सरकार लघु फर्मों द्वारा बेचे गए पदार्थों मे से कुछ पर 15 प्रतिशत तक का अधिमान देती है। राष्ट्रीय लघु स्तर उद्योग निगम छोटी फर्मों को सरकारी एव प्रतिरक्षा क्रय के अधिकतर भाग को प्राप्त करने मे सहायता देता है परन्तु यह स्वय विपणन का दायित्व नहीं लेता। इस निगम द्वारा छोटे पैमाने की इकाइयो के लिए 1979-80 मे 70 करोड रुपए के क्रय आदेश (Purchase orders) प्राप्त किए गए।

(5) औद्योगिक बस्तियाँ (Industrial Estates)– औद्योगीकरण की राह पर चलने वाले नये देशो मे भारत ही ऐसा अगुआ देश है जिसने आधुनिक लघु उद्योगो के विकास को और उत्तेजन देने के लिए औद्योगिक बस्तिया के विस्तार को अपनाया है। औद्योगिक बस्तियो मे लघु उद्यमकर्त्ताओ के समुदाय को स्थान एव अन्य मूलभूत सामान्य सुविधाएँ उचित किराए पर उपलब्ध कराई जाती हैं। छठी पचवर्षीय योजना (1980-85) के अनुसार मार्च 1979 मे 662 औद्योगिक बस्तियाँ कार्य कर रही थीं। इन बस्तियो मे 13,467 इकाइयाँ कार्य कर रही थीं जिनका वार्षिक उत्पादन 636 करोड रुपए था और इस प्रकार 2 2 लाख व्यक्तियो को रोजगार प्राप्त था।

सरकार द्वारा प्रोत्साहन की नीति अपनाने के बावजूद, वास्तव में अभी भी कई बाधाएँ बनी हुई हैं। पहली, बडे पैमाने के क्षेत्र की अपेक्षा छोटे पैमाने की इकाइयो को अपने आवेदनो की स्वीकृति के लिए कहीं अधिक समय प्रतीक्षा करनी पडती है। इसमे भी सन्देह नहीं कि बडे उद्यम सरकार से अधिक सहायता प्राप्त कर लेते हैं। दूसरी, बहुत से लघु उद्योग परम्परागत एव आधुनिक समाज के समृद्ध वर्गों की आवश्यकताओ के लिए वस्तुएँ तैयार करते हैं। इससे राजकीय सहायता का उद्देश्य पूरा नहीं होता और ससाधनो का अपनिर्देशन होता है। तीसरी, कुछ बडे उद्योग, सरकार द्वारा छोटे उद्योगो के लिए उपलब्ध कराई गई रियायतो का अपने हित मे प्रयोग करते हैं। चूकि छोटे उद्यमो को लाइसेस लेना नहीं पडता इस मार्ग का लाभ उठाकर कुछ बडी फर्में वास्तव मे बहुत से उद्योगो अर्थात् दियासलाई, सिलाई मशीनो, साइकिल आदि मे घुस गई हैं। अन्तिम, इन उद्यमो का भारी सकेन्द्रण 6 राज्यो अर्थात् गुजरात, पजाब, तमिलनाडू, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बगाल मे हो गया है। अत भविष्य मे सतुलित क्षेत्रीय विकास की दृष्टि से अन्य राज्यों मे अधिक सहायता देनी होगी।

लघु उद्योगो की प्रगति की समीक्षा करते हुए सातवीं योजना ने स्पष्ट लिखा–"आधुनिक छोटे उद्योगों, जिनमे बिजली चालित करघे भी शामिल हैं, क्षेत्रीय दृष्टि से अधिक फैले हुए नहीं हैं, इनमे से अधिकतर विकसित राज्यो मे सकेन्द्रित हैं और इन राज्यो मे भी, कुछ ही क्षेत्रो मे जो या तो बडे नगर हैं या विकसित नगरीय सकेन्द्रण (Urban concentrations) या औद्योगिक बस्तियाँ हैं जिनमे अधिकतर छोटे उद्यम स्थित हैं।"

अन्तिम, वाणिज्य बैंको द्वारा छोटे उद्योगो को दी गई वित्तीय सहायता के बारे मे सातवीं योजना ने निष्कर्ष निकाला है "उधार उपलब्ध कराने के मामले मे, छोटे उद्योगो को 'प्राथमिकता क्षेत्र' (Priority sector) मे शामिल करने से बैंक वित्त के इनकी ओर प्रवाहित होने से मदद मिली है, किन्तु इसका प्रसार एक समान नहीं हुआ। वास्तव म, छोटे स्तर की इकाइयो मे छोटी इकाइयो को पर्याप्त लाभ नहीं हुआ और वे अभी भी साहूकारो पर उधार के लिए निर्भर हैं। यह उधार शोषणात्मक ब्याज दर पर मिलता है और इससे उनका मुनाफा कम हो जाता है।"

5. योजनाओं के अन्तर्गत ग्रामोद्योग एवं लघु उद्योग

पहली ओर दूसरी योजना मे ग्रामोद्योगो एव लघु उद्योगो पर लगभग क्रमश 42 करोड रुपए और 187 करोड रुपए खर्च किए गए थे, किन्तु तीसरी योजना मे इस क्षेत्र पर 241 करोड रुपए खर्च किए गए और वार्षिक योजनाओ (1966-69) के दौरान 132 करोड रुपए व्यय किए गए। चौथी योजना (1969-74) के दौरान ग्राम तथा लघु उद्योगो के विकास के लिए 251 करोड रुपए का वास्तविक व्यय किया गया। सरकारी क्षेत्र के अतिरिक्त गैर-सरकारी क्षेत्र द्वारा 560 करोड रुपए के प्रत्याशित विनियोग की अपेक्षा अधिक विनियोग हुआ।

सशोधित पाचवीं योजना मे लघु तथा ग्राम उद्योगो के लिए 510 करोड रुपए की व्यवस्था की गई। 1974-78 के दौरान ग्राम तथा लघु उद्योगो पर 388 करोड रुपए खर्च किए गए। परिणामत विकेन्द्रीयकृत क्षेत्र (Decentralised sector) मे कपडे का उत्पादन 1977-78 मे बढकर 410 करोड मीटर हो गया–230 करोड मीटर हथकरघे से और 180 करोड मीटर बिजली करघे (Power loom) से। 1974-75 और 1977-78 के बीच हस्तशिल्पो का निर्यात 194 करोड रुपए से बढकर 440 करोड रुपए हो गया। इसी प्रकार लघु-स्तर उद्योगो का उत्पादन जो 1974-75 मे 538 करोड रुपए था, बढकर 1977-78 मे 1,000 करोड रुपए हो गया।

छठी योजना (1980-85) मे ग्राम तथा लघु उद्योग

छठी योजना (1980-85) मे ग्राम तथा लघु उद्योगो पर

वास्तविक अनुमानित परिव्यय 1 952 करोड रुपए हुआ। दूसरे शब्दो मे इस क्षेत्र को कुल योजना परिव्यय का 1 8 प्रतिशत प्राप्त हुआ। छठी योजना की प्रगति की समीक्षा से पता चलता है कि इस क्षेत्र मे उत्पादन 1979-80 में 33 538 करोड रुपए था और यह बढकर 1984-85 में 65,730 करोड रुपए हो गया और इसी प्रकार इस क्षेत्र से निर्यात जो 1979-80 मे 2,281 करोड रुपए था बढकर 1984-85 मे 4 558 करोड रुपए हो गया। जहा तक रोजगार का सम्बन्ध है, यह 1979-80 मे 234 लाख व्यक्ति था और 1984-85 तक बढकर 315 लाख व्यक्ति हो गया। जहाँ पर उत्पादन का लक्ष्य मोद्रिक दृष्टि से पार कर लिया गया रोजगार लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सका। छठी योजना मे ग्राम तथा लघु उद्योगो द्वारा 326 लाख व्यक्तियो के लिए रोजगार उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया था।

सातवीं योजना मे ग्राम तथा लघु उद्योग

सातवी योजना (1985-90) मे ग्राम तथा लघु उद्योगो के लिए निम्नलिखित उद्देश्य तय किए गए (*i*) उद्योगो की सवृद्धि तथा व्यापक प्रसार मे सहायता करना (*ii*) कारीगरो की आमदनी के स्तरो को बढाना (*iii*) स्वरोजगार के अवसर पैदा करना और उन्हे बनाए रखना (*iv*) स्थानीय कौशल और ससाधनो का उपयोग करके माल और सेवाओ की नियमित पूर्ति सुनिश्चित करना (*v*) उपयुक्त प्रशिक्षण और प्रोत्साहनो के माध्यम से उत्पादन की उन्नत तकनीको का प्रयोग करके उद्यमशीलता विकसित करना।

सातवीं योजना मे ग्राम तथा लघु उद्योगो के लिए 2 752 करोड रुपए का प्रावधान किया गया जो कुल परिव्यय का 1 5 प्रतिशत था। परन्तु 1985-90 की सातवीं योजना की अवधि के लिए वास्तविक व्यय 3 249 करोड रुपए आका गया।

ग्राम तथा लघु उद्योगो की प्रगति की समीक्षा से पता चलता है कि आधुनिक लघु क्षेत्र उद्योगो और बिजली करघा कपडा बनाने वाले क्षेत्रो ने तेजी से प्रगति की और वे अपने उत्पादन रोजगार एव निर्यात के लक्ष्य को पार कर गए। 1984-85 मे आधुनिक लघु स्तर क्षेत्र के 90 520 करोड रुपए के लक्ष्य के विरुद्ध इस क्षेत्र का उत्पादन बढकर 1989-90 मे 92 080 करोड रुपए हो गया अर्थात् इसमे 12 7 प्रतिशत की औसत वार्षिक वृद्धि हुई। किन्तु खादी ग्राम तथा हाथकरघा कपड और नारियल जटा और नारियल उत्पाद मे उत्पादन लक्ष्य से कम रहा। एक और क्षेत्र जिसमे निष्पादन बहुत ही अच्छा रहा हस्तशिल्प उद्योग है जिसमे निर्यात बढकर 1989-90 मे 1 14 314 करोड रुपए हो गया। अत स्थिर कीमता पर इसमे 1984-85 और 1989-90 क दौरान 12 1 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई। रोजगार के रूप मे, वृद्धि दर 4 4 प्रतिशत थी। निर्यात के सदर्भ मे उपलब्धि सराहनीय थी। वर्तमान कीमतो पर ग्राम तथा लघु उद्योगो के निर्यात जो 1984-85 मे 4 558 करोड रुपए थे बढकर 1989-90 मे 14 807 करोड रुपए हो गए अर्थात् इनमे 26 6 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई। परन्तु खेद की बात यह है कि सातवी योजना के दौरान प्राप्त वृद्धि दर 1990-91 और 1991-92 मे बनी नहीं रहेगी क्योकि विदेशी मुद्रा की कमी के कारण आयातित कच्चे मालो हिस्सो एव पूजी वस्तुओ की उपलब्धि पर असर पडा। इसके अतिरिक्त उधार निपीडन (Credit squeeze) ब्याज की ऊची दरो विदेशी बाजार मे प्रतिसार ने भी बुरा प्रभाव ही डाला। परन्तु इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि लघु एव ग्राम उद्योगो के अर्थव्यवस्था पर लाभकारी प्रभाव निगम क्षेत्र को दिए गए प्रोत्साहनो की तुलना मे कहीं अधिक थे।

सातवी योजना की प्रगति से पता चलता है कि राज्य आधुनिक लघु क्षेत्र को अधिक प्रोत्साहन उपलब्ध कराता है क्योकि इनमे उत्पादन एव रोजगार की वृद्धि-दरें ऊची हैं।

तालिका 5 सातवीं योजना (1985-90) के दौरान लघु क्षेत्र की वृद्धि-दरें

	आधुनिक	पारम्परिक	कुल
उत्पादन	12 4	9 9	12 1
रोजगार	6 1	3 2	4 4
निर्यात	*26 5*	*26 6*	*26 6*

स्रोत आठवीं पचवर्षीय योजना (1992 97) में दिए गए आकडो से आकलित

निर्यात के सदर्भ मे भी लघु उद्योग क्षेत्र का निष्पादन निगम क्षेत्र की तुलना मे बेहतर रहा है। पारम्परिक क्षेत्र में, हस्तशिल्पो (Handicrafts) के विकास की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए क्योकि पारम्परिक लघु क्षेत्र मे मुख्य निर्यात कमाने वाला क्षेत्र है और लघु क्षेत्र के कुल निर्यात का 89 प्रतिशत इसके द्वारा उपलब्ध कराया जाता है।

6 लघु-क्षेत्र औद्योगिक नीति (1991)

6 अगस्त 1991 को भारत सरकार ने अपनी लघु क्षेत्र औद्योगिक नीति की घोषणा की जिसके मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं –

1980-90 के दशक के दौरान लघु क्षेत्र अर्थव्यवस्था के एक गत्यात्मक एव जीवन्त क्षेत्र के रूप मे उभरा है। सातवीं योजना के अन्त तक यह *विनिर्माण* क्षेत्र के उत्पादन के सकल मूल्य के लगभग 35 प्रतिशत और देश के कुल

निर्यात मे 40 प्रतिशत के बराबर योगदान देता है। इसके द्वारा 120 लाख व्यक्तियो को रोजगार उपलब्ध कराया गया।

1990-2000 के दशक के दौरान नयी नीति का उद्देश्य इस क्षेत्र को और अधिक सक्षम बनाना और इसे विकासोन्मुख बनाना है ताकि यह विकास मे अपनी पूरी शक्ति से योगदान कर सके, विशेषकर उत्पादन, रोजगार और निर्यात मे वृद्धि के रूप मे।

पिद्दी उद्यम (Tiny Enterprises)

सरकार ने पहले ही प्लान्ट और मशीनरी की दृष्टि से लघु-स्तर उद्योगो की विनियोग सीमाएँ बढा दी हैं और निर्यात-प्रेरित इकाइयो मे इन्हे 75 लाख रुपए और लघु उद्यमो एव अनुषगी इकाइयो (Ancillary units) मे इन्हे क्रमश 60 लाख और 75 लाख रुपए कर दिया है। पिद्दा उद्यमो के सदर्भ मे यह सीमा 2 लाख रुपए से बढाकर 5 लाख रुपए कर दी गई है।

सेवा उप-क्षेत्र एक तेजी से बढ रहा क्षेत्र है और रोजगार जनन के रूप मे इसकी क्षमता स्वीकार करनी होगी। अत सेवा क्षेत्र (Service sector) म काम कर रही सभी इकाइयो, जहाँ कहीं भी वे स्थित हो, लघु क्षेत्र मे ही शामिल की जाएँगी और उनकी विनियोग सीमा (Investment limit) पिद्दी क्षेत्र के तदनुरूप ही होगी।

वित्तीय आलम्बन सम्बन्धी उपाय

उधार की अपर्याप्त उपलब्धि–अल्पकालीन एव दीर्घकालीन–लघु स्तर क्षेत्र की लगातार समस्या बनी रही है। भविष्य मे साहाय्यित (Subsidised) अथवा सस्ते उधार की बजाए, नीति का बल उधार के पर्याप्त प्रवाह को आश्वस्त करना है और इसके आवटन को गुणवत्ता को उन्नत करना है ताकि इस क्षेत्र को क्रियाएँ सक्षम हो सके।

पूजी बाजार तक पहुच को कायम करने और आधुनिकीकरण और तकनालाजीय उन्नति (Technological upgradation) को प्रोन्नत करने के लिए अन्य औद्योगिक उद्यमो को लघु-क्षेत्र की इकाइयों मे 24 प्रतिशत की सीमा तक कुल हिस्सा-पूजी मे सहयोग करने की इजाजत होगी। इससे अनुषगीकरण (Ancillarisation) और उप-ठेकेदारी को सशक्त प्रोत्साहन मिलेगा जिसके परिणामस्वरूप रोजगार अवसरो का विस्तार होगा।

लघु उद्योगो को विलम्बित भुगतान की समस्या का समाधान करने की दिशा मे पहले कदम के रूप मे आढत सेवाएँ (Factoring services) भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक के द्वारा स्थापित की जा रही हैं और इनका सचालन वाणिज्य बैंको के माध्यम द्वारा किया जाएगा। लघु उद्योगो के बिलो के तुरन्त भुगतान के लिए एक उचित विधान बनाया जाएगा।

अध सरचना सुविधाएँ (Infrastructural Facilities)

लघु-स्तर क्षेत्र की वस्तुओ की उत्पादिता एव स्पर्द्धाशक्ति उन्नत करने के लिए लघु उद्योग विकास सस्था (*Small Industries Development Organisation*) के आधीन तकनालाजी विकास केन्द्र (Technology Development Cell) स्थापित किया जाएगा। यह सस्था अन्य औद्योगिक अनुसधान एव विकास सस्थाओ से सम्पर्क स्थापित करगी ताकि अपने उद्देश्यो को प्राप्त कर सके।

उद्यमकर्त्तत्व की प्रोन्नति (Promotion of entrepreneurship)

सरकार पहली पीढी के उद्यमकर्त्ताओ को प्रोन्नत करने का कायक्रम जारी रखेगी और प्रशिक्षण द्वारा उनके प्रयास को मजबूत बनाएगी। उद्यमकत्तत्व विकास प्रोग्राम को बढावा देने के लिए बहुत से प्रशिक्षक (Trainers) और प्रेरक तैयार किए जाएँगे। महिला उद्यमकर्त्ताओ को विशेष प्रशिक्षण कायक्रमो द्वारा सहायता प्रदान की जाएगी।

ग्राम उद्योग ग्राम उद्योग हथकरघा

हथकरघा क्षेत्र द्वारा देश के कुल वस्त्र उत्पादन का 30 प्रतिशत उपलब्ध कराया जाता है। सरकार की यह नीति है कि हथकरघा क्षेत्र को प्रोन्नत किया जाए ताकि ग्राम क्षेत्रो मे रोजगार को बनाए रखा जाए और हथकरघा बुनकरो के जीवन-स्तर को उन्नत किया जा सके।

जनता कपडा योजना जो प्राय बुनकरो को न्यूनतम आजीविका के स्तर के लिए आय जुटाती है आठवीं योजना के अन्तिम वर्ष तक समाप्त कर दी जाएगी और इसका प्रतिस्थापन एक नए प्राजेक्ट पैकेज प्रोग्राम द्वारा किया जाएगा जिसके आधीन करघों के आधुनिकीकरण प्रशिक्षण, बेहतर डिजाइन बेहतर रग एव रसायन और विपणन सहायता के लिए काफी मात्रा मे राशि उपलब्ध कराई जाएगी।

हस्तशिल्प क्षेत्र (Handicraft Sector)–हस्तशिल्प क्षेत्र के मुख्य अग जो ग्रामीण औद्योगीकरण को बढावा दे सकते हैं उत्पादन एव विपणन हैं। प्रशिक्षण एव डिजाइन-विकास की योजनाओ और उत्पादन एव विपणन सहायता के कार्यक्रमो को प्रोत्साहन दिया जाएगा।

अन्य ग्राम उद्योग–सरकार ग्राम तथा कुटीर उद्योगो के विस्तार की आवश्यकता को स्वीकार करती है ताकि गैर-फाम रोजगार के अवसर बढाए जा सक। इसके लिए खादी और ग्राम उद्योग आयोग और राज्यीय खादी और ग्राम उद्योग बोर्डों की क्रियाओ का विस्तार किया जाएगा ताकि ये सस्थाएँ मजबूत बनकर अपने दायित्व को प्रभावी रूप मे पूरा कर सके।

खादी एव ग्राम उद्योगो की क्रियाओ का क्षेत्रीय पद्धति के द्वारा तीव्र विकास किया जाएगा और उन कार्यक्रमो पर विशेष बल दिया जाएगा जो देश भर मे कमजोर वर्गों अर्थात् अनुसूचित जातियो एव जनजातियो और महिलाओ को लाभ पहुँचाए।

लघु उद्योग नीति का मूल्याकन

लघु उद्योग नीति वक्तव्य (1991) मे सरकार ने इस क्षेत्र को अर्थव्यवस्था के गत्यात्मक एव जीवन्त क्षेत्र के रूप मे सम्बोधित किया और नई नीति मे इस क्षेत्र के रास्ते मे आने वाली सभी रुकावटो को विनियमन एव अधिकारीतन्त्रीकरण (Bureaucratization) की अडचनो से मुक्त करने का निर्णय लिया। अत नया नारा है "प्रतिस्पर्द्धा" न कि "आरक्षण"।

प्रश्न उठता है कि क्या नई नीति एक बेहतर आर्थिक पर्यावरण का विश्वास दिलाती है जिसमे लघु तथा पिद्दी क्षेत्र अपनी विकास-क्षमता को पूर्णतया विकसित कर सकेगा?

पहला उधार की उपलब्धि के प्रश्न को ही लीजिए। सरकार लघु क्षेत्र के लिए रियायती उधार" के मिथक का प्रचार करती रही है चाहे रियायती उधार पर ब्याज की दर गैर-रियायती उधार पर ब्याज दर से केवल 0 5 से 1 प्रतिशत ही कम है। परन्तु अब इस मिथक को भी हटाकर यह प्रस्ताव किया जा रहा है कि साहाय्यित/सस्ते उधार की अपेक्षा उधार की पर्याप्त उपलब्धि पर बल दिया जाएगा। पहले भी, लघु उद्योगो को सस्ता उधार कहा मिलता था यदि लघु क्षेत्र ऋणो की स्वीकृति के साथ जुडे हुए भ्रष्टाचार और इनकी प्राप्ति मे विलम्ब को भी ध्यान मे रखा जाए। परन्तु उधार की उपलब्धि की सद्भावना को छोड उधार की मात्रा के बारे मे कोई ठोस बात नही कही गई। ऐसी कपोल कल्पना से लघु क्षेत्र का विकास सशक्त नही हो जाता। सरकार को यह निश्चित करना चाहिए था कि सस्थानात्मक उधार (Institutional credit) का कितना भाग प्राथमिकता के आधार पर लघु-क्षेत्र को उपलब्ध कराया जाएगा। इसे ऐसी कार्यनीति भी तय करनी चाहिए थी जो सरकारी लालफीताशाही और भ्रष्टाचार को उधार की स्वीकृति मे कम कर सके।

दूसरे नीति वक्तव्य मे एक महत्त्वपूर्ण सिफारिश की गई है कि किसी अन्य उद्यम को लघु-इकाइयो मे 24 प्रतिशत तक हिस्सा-पूजी के स्वामित्व की इजाजत होगी-अन्य उद्यम छोटे हो या बडे भारतीय हो या विदेशी। इस धारणा का मूल आधार यह है कि बाहरी तत्वो को चूकि 24% की सीमा तक हिस्सा पूजी मे अधिकार दिया गया है इस कारण वे अल्पसख्या मे रहगे और उनका लघु-इकाइयो पर प्रभुत्व कायम नही हो सकेगा। दूसरे बडी या विदेशी फर्मों के इस क्षेत्र मे प्रवेश द्वारा बडे पैमाने के उद्यमो से लघु-क्षेत्र को तकनालाजी का हस्तातरण हो सकेगा। इन तर्कों की गहरी छानबीन से पता चलता है कि ये तर्क मिथ्यापूर्ण हैं। राम के वैश भूतपूर्व लघु-स्तर उद्योग विकास उपायुक्त इस सम्बन्ध मे लिखते हैं अभी भी, यह कहा जाता है कि बहुत सी लघु-इकाइयाँ बडी इकाइयो द्वारा अपने नामजद बेनामी स्वामियो द्वारा नियन्त्रित की जाती हैं। यह भय है कि इस नये प्रावधान द्वारा यह स्थिति कानूनी रूप धारण कर लेगी और 24 प्रतिशत हिस्सा-पूजी के साथ एक या दो ऐसे परिवारो को जोड जो हिस्सो के स्वामी हैं लघु इकाई वस्तुत बडी कम्पनी की (यदि कानूनी रूप मे ऐसा न भी हो) एक अनुषगी कम्पनी बन जाएगी। सरकार इसे लघु-क्षेत्र का बडे क्षेत्र के साथ समन्वय कहती है किन्तु यह तो लघु क्षेत्र का निर्भरता-माडल (Dependency Model) है जिससे वह बडे पैमाने के उद्योगो का उपाग बन जाएगा और इस प्रकार बडे उद्योगो द्वारा छोटे उद्योगो का शोषण होता रहेगा। इस नई स्थिति मे भारतीय अर्थव्यवस्था मे इस क्षेत्र मे श्रम-विस्थापन प्रभाव (Labour displacement effects) बहुत गम्भीर रूप धारण कर जाएँगे जोकि अभी तक अपनी जनसख्या और परिणामत श्रमशक्ति की वृद्धि दर को नियन्त्रित नहीं कर पायी है।

जहाँ तक बडी इकाइयो द्वारा छोटी इकाइयो को तकनालाजी हस्तातरण (Technology transfer) का प्रश्न है यह बात बडी सन्देहपूर्ण है कि क्या बडी इकाइयाँ ऐसा करना चाहेगी। बडी इकाइयाँ तो छोटे मोटे कार्यों या उप-उत्पादो के लिए छोटी इकाइयो को केवल उप ठेके पर काम कराना चाहती हैं वे उन्हे कभी भी अपने बल पर स्वतन्त्र बनने नहीं देना चाहेगी।

तीसरे छोटी इकाइयो की रुग्णता के बारे मे हुए बहुत से अध्ययनो से पता चलता है कि बडी फर्में छोटी इकाइयो को समय पर भुगतान नहीं करतीं बावजूद इसके वे छोटी इकाइयो से माल प्राप्त कर चुकी होती हैं। अपनी कार्यकारी पूजी की आवश्यकताओ को पूरा न कर सकने के कारण, ये इकाइयाँ बीमार पड जाती हैं और बन्द कर दी जाती हैं क्योकि बडी फर्में कई बार भुगतान मे छ मास का और कुछ स्थितियो मे एक साल का विलम्ब कर देती हैं। यह आशा की जाती है कि नई नीति ऐसा कानून बनाएगी जिसके आधीन लघु क्षेत्र को 45 दिन के अन्दर भुगतान करना पडे। जनता सरकार ने ऐसा करने का वायदा किया, परन्तु इस सम्बन्ध मे कानून पास न कर सकी। काग्रेस (इ) की सरकार भी इस गम्भीर समस्या की ओर ध्यान नहीं दे रही है कि किस प्रकार बडे क्षेत्र की छोटे क्षेत्र के प्रति गैर-कानूनी और शोषणात्मक क्रियाओ को अनुशासित किया जाए।

चौथे सरकारी नीति लघु क्षेत्र मे बीमार इकाइयो के

बडी सख्या के प्रति अनभिज्ञ जान पडती है। आर्थिक समीक्षा (1993-94) के अनुसार लघु स्तर क्षेत्र मे 2 46 लाख इकाइयाँ बीमार हैं और बकाया ऋण की राशि, 3,100 करोड रुपए है। मूल प्रश्न यह है कि क्या लघु क्षेत्र की इकाइयो मे बडे पैमाने पर रुग्णता को रोका जा सकता है? इसके लिए जरूरी है कि छोटी इकाइयो के प्रबन्ध मे अधिक व्यवसायीकरण (Professionalism) लाया जाए। यह कहना उचित होगा कि घटिया प्रबन्ध रुग्णता के मुख्य कारणो मे से एक माना जाता है। अत यह आवश्यक है कि छोटे उद्यमकर्त्ताओ को उद्यमो के प्रबन्ध के बारे मे प्रशिक्षण दिया जाए। ऐसा प्रशिक्षण अनिवार्य है क्योंकि छोटे उद्यमकर्त्ता को बहुत से कार्य करने पडते हैं-उत्पादन की व्यवस्था, वित का प्रबन्ध, अपने उत्पाद के विक्रय के लिए आदेश प्राप्त करना, सार्वजनिक सम्बन्ध कायम करना, आदि। अत छोटे उद्यमकर्त्ता को बहुमुखी प्रशिक्षण देना होगा ताकि वह अपना कार्य भली भाति कर सके।

परन्तु छोटे उद्यमों को बीमार पडने से बचाने के लिए यह कहीं बेहतर होगा कि उद्यमकर्त्ता सहकारी किस्म का छत्र कायम करें ताकि युवा उद्यमकर्त्ताओ का उत्पादन के प्राजैक्टों के चयन मे मार्गदर्शन किया जा सके, आदानो के सभरण और उत्पादन की तकनीक के बारे में सूचना उपलब्ध कराई जा सके और उनकी उत्पाद के विक्रय मे सहायता की जा सके। ये सहकारी समितियाँ उधार की पर्याप्त मात्रा प्राप्त करने मे मदद कर सकती हैं। दूसरे शब्दो मे, छोटे उद्यमकर्त्ताओ की भलाई सहकारीकरण (Co operativisation) मे है, न कि निगमीकरण (Corporati zation) मे।

पाचवें, नई लघु क्षेत्र नीति बडे व्यापारिक घरानो और/या विदेशी फर्मों को स्वामित्व के भाग मे स्वीकृति देकर उनकी बडे व्यापारियो द्वारा उप-ठेके की क्रियाओ को कानूनी बना देती है। अधिकाधिक प्रमाण प्राप्त हुए हैं कि बडे व्यापारी अपने नाम मे व्यापार का विस्तार करने की अपेक्षा कुछ उत्पादन-क्रियाओ को छोटे ठेकेदारो से करवाते हैं। इस प्रकार वे अत्यधिक आधुनिकीकरण, स्वचलन (Automation) आदि के विरुद्ध मजदूर सघो के विरोध को कम कर देते हैं। उत्पादन की विकेन्द्रीयकृत प्रणाली का प्रयोग छोटी इकाइयो को बढावा देने क लिए इस लिए किया जाता है कि बडे व्यापारी मजदूर सघो को शक्ति को तोड सके।

अन्तिम नइ लघु क्षेत्र नीति और औद्योगिक नीति मध्यम क्षेत्र का जिक्र तक नहीं करती। जब तक लघु क्षेत्र 60 लाख रुपए की सीमा को पार नहीं करता यह लघु क्षेत्र के वर्ग मे रहता है परन्तु इस सीमा को पार करते ही यह बड़े पैमाने के क्षेत्र म प्रवेश कर जाता है। यह उद्योगों क वर्गीकरण का वैज्ञानिक ढग नहीं है। चूकि बहुत सी छोटी इकाइयाँ अपनी विकास-प्रक्रिया मे मध्यम क्षेत्र मे प्रवेश कर जाती हैं, इसलिए यह उचित होगा कि लघु, मध्यम और बडी इकाइयो की परिभाषा की जाए। औद्योगिक नीति की दृष्टि से, लघु एव मध्यम इकाइयो को एक समूह मानना चाहिए। बहुत से देशो म लघु एव मध्यम क्षेत्र की इकाइयो को एक ही वग मे रखा जाता है। इससे बडे पैमाने के क्षेत्र के मुकाबले मे इस क्षेत्र सम्बन्धी नीति तय करने म सहायता मिलती है।

निष्कर्ष यह कि लघु क्षेत्र पर नीति वक्तव्य एक हद तक तो इसे बढावा देता है। इसमे भूमि के आवण्टन, बिजली उपलब्ध कराने आदि मे लघु क्षेत्र को प्राथमिकता दी गइ है। इसम पिद्दी क्षेत्र को सस्थानात्मक वित्त म आसानी से प्राप्ति सहकारी खरीद मे प्राथमिकता और श्रम सम्बन्धी कानूनो मे ढील की बात कर दी गइ है। चूकि पिद्दी क्षेत्र, ग्राम क्षेत्रा म पारम्परिक कौशल की नर्सरी माना जाता है इसलिए प्रस्तावित प्रोत्साहनो के पैकेज से पिद्दी क्षेत्र को मजबूत बनाने म सहायता मिलेगी। यह अभिनन्दनीय है। चूकि पिद्दी क्षेत्र का सम्बन्ध दस्तकारो और शिल्पियो के साथ ग्राम तथा नगर क्षेत्रो मे है इस नीति से निर्धनता को दूर करने मे सहायता प्राप्त होगी।

नीति वक्तव्य व्यापार एव उद्योग से सम्बन्धित सेवाओ का भी जिक्र करता है। इनमें वे सभी सेवाएँ शामिल की जाती हैं जो किराए पर दी जाती हैं जैसे वीडियो केसेट या आधुनिक घरलू सामान का रख-रखाव जिनमे रफ्रिजरेटर, वाशिग मशीने टेलीविजन रूम कूलर आदि शामिल हैं। यह बडी उत्साहवर्धक बात है कि नीति वक्तव्य म इन सेवाओ की आवश्यकता को स्वीकार किया गया है। किन्तु जरूरत इस बात की है कि इनम विशेष क्रियाओ की पहचान की जाए ताकि युवा व्यवसायियो को वित्तीय एव अन्य सहायता प्रदान करक इन्ह विकसित किया जाए। रोजगार की दृष्टि से ये क्रियाए अत्यन्त उत्पादक सिद्ध हो सकती हैं और इसलिए इन्ह उधार प्रोत्साहन मिलने चाहिएँ।

इन उज्ज्वल लक्षणो क बावजूद, लघु क्षेत्र नीति का वल लघु-क्षेत्र को बडे पैमाने के क्षेत्र का एक उपाग बनाना ही है क्योकि इसम बडी फर्मों को 24 प्रतिशत तक हिस्सा पूजी का योगदान देने की स्वीकृति दी गइ है। यह बात वस्तुत सन्देहजनक है कि क्या नई नीति के परिणामस्वरूप छोटे क्षेत्र को तकनालाजी का हस्तातरण हो सकेगा या इससे बडे क्षेत्र का नियन्त्रण छोटे क्षेत्र पर बढ जाएगा? इस नीति मे लघु क्षत्र की इकाइयो की उपेक्षा एक गम्भीर कमी है और यह आवश्यक है कि सरकार को लघु क्षेत्र की रुग्णता को रोकने के लिए और अधिक ध्यान देना चाहिए। केवल रुपए न स लघु स्तर क्षेत्र का विकास नहीं हो

सकता, इसके लिए तो एक अनुकूल वातावरण का निर्माण करना होगा जिसमे लघु स्तर क्षेत्र की इकाइयाँ पनप सके। *अत: समय की पुकार यह है कि लघु उद्यमकर्ताओ मे* सहकारीकरण को प्रोत्साहित किया जाए, न कि बडे क्षेत्र के साथ समन्वय के नाम पर निगमीकरण (Corporatization) को। वास्तविक खतरा तो यह है कि बडे क्षेत्र को फर्जी इकाइयाँ कायम करके लघु क्षेत्र के नाम पर मिलने वाले प्रोत्साहनो को हथियाने से कैसे रोका जाए और साथ ही देश में अत्यधिक आधुनिकीकरण और स्वचलन (Automation) के विरुद्ध मे मजदूर सघो के विरोध को कैसे कम किया जाए ताकि श्रम-विस्थापन (Labour displacement) न हो सके। चाहे नीति वक्तव्य मे बीमारी का सही विश्लेषण किया गया है परन्तु जो उपचार इसमे *सुझाया गया है उससे विकास के साथ न्याय का लक्ष्य* प्रभावी रूप मे प्राप्त नहीं हो सकता।

7. आठवीं योजना (1992-97) मे ग्राम तथा लघु उद्योग

ग्राम तथा लघु उद्योगो के बारे मे दिशा-निर्देश एव रणनीति की व्याख्या करते हुए आठवी योजना ने उल्लेख किया "आठवी योजना के प्राथमिकता क्षेत्रो (Priority areas) मे से एक है इस शताब्दी के अन्त तक पूर्ण रोजगार के स्तर को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त मात्रा मे रोजगार कायम करना। इस क्षेत्र से सम्बन्धित अनेक क्रियाओ जैसे *ग्राम क्षेत्रो मे कृषि उत्पाद का विधायन (Processing),* रेशम उत्पादन एव सम्बन्धित क्रियाएँ प्राथमिकता क्षेत्रो मे महत्त्वपूर्ण लक्ष्यो के रूप मे निर्धारित की गई हैं। रोजगार मे वृद्धि करक गरीबी दूर करने के लिए चुने हुए ग्रामो के लिए एकीकृत स्थानीय क्षेत्र विकास कार्यक्रमो के साथ खादी, ग्राम उद्योग हथकरघा, रेशम-उत्पादन तथा हस्तशिल्पो के कार्यक्रमो का सामजस्य करना सभव है। यह भी सोचा गया है कि सेवा क्षेत्र मे प्रवेश जिससे आठवी योजना के दौरान, रोजगार कायम करने मे प्रमुख भूमिका अदा करने की आशा है, तथा "अनौपचारिक" क्षेत्र (Informal sector) को असख्य नियमो तथा विनियमो तथा नौकरशाही के नियन्त्रणो से मुक्त किया जाएगा। इसके अलावा, ग्रामीण कारीगरो सहित परम्परागत व्यवसायो की तकनीको और औजारो को अनुसधान एव नव-क्रियाओ (Immovations) द्वारा *प्रोत्साहित किया जाएगा।*

इन उद्देश्यो को दृष्टि मे रखते हुए, आठवीं योजना मे ग्राम तथा लघु क्षेत्र के उद्योगो के विकास के लिए 6,334 करोड रुपए का प्रावधान किया है जोकि सार्वजनिक क्षेत्र पर कुल परिव्यय का 1 5 प्रतिशत है। तालिका 6 मे उत्पादन, रोजगार एव निर्यात सम्बन्धी साकेतिक लक्ष्य दिए गए हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि ग्राम एव लघु उद्योग क्षेत्र मे मुख्य योगदान आधुनिक लघु क्षेत्र का है जिसका मूल्य के रूप मे कुल उत्पादन मे 86% भाग है। पारम्परिक उद्योगो मे, हस्तशिल्प उत्पादन का 1996-97 तक 29 620 करोड रुपए *तक बढ जाने का लक्ष्य रखा गया है।* बिजली-करघो के

तालिका 6 ग्राम तथा लघु उद्योग आठवीं योजना (1992-97)

उद्योग	इकाई	उत्पादन		रोजगार (लाख व्यक्ति)		निर्यात (करोड़ रुपए)	
		1991-92	1996-97	1991-92	1996-97	1991-92	1996-97
(क) आधुनिक लघु उद्योग	करोड़ रुपये	1,74,378	2,53,343	179 0	225 5	12,658	20,200
1 लघु स्तर उद्योग	करोड रुपए	1 60 000	2 33 436	126 0	150 5	12 658	20 200
2 बिजली करघा कपडा	करोड़ मीटर	1 104	1 528	53 0	75 0		
	करोड़ रुपये	14 378	19 907				
(ख) पारम्परिक उद्योग	करोड़ रुपये	20,916	41,432	264 3	328 2	10,331	30,015
3 खादी कपडा	करोड मीटर	11 4	16 0	14 6	16 5		
	करोड रुपए	278	560				
4 ग्राम उद्योग	करोड रुपए	2 150	3 760	35 4	46 3		
5 हथकर्घा कपडा	करोड़ मीटर	500	700	106 0	117 0	450	1 000
6 रेशम उत्पादन कच्चा रेशम	करोड रुपए	996	1 590	54 6	65 0		
7 हस्तशिल्प	करोड रुपए	13 260	29 620	48 2	77 7	9 215	27 915
8 नारियल जटा तन्तु	लाख टन	2 2	2 77	5 5	5 8	66	100
	करोड रुपए	168	212				
कुल (क + ख)	करोड़ रुपए	1,95,924	2,94,775	443 3	533 4	22,989	50 215

स्रोत योजना आयोग आठवीं पचवर्षीय योजना (1992-97) से सकलित

कपडे की तुलना मे हथकरघे के कपडे का महत्त्व कम हो रहा है। जहाँ पर 1996-97 तक जल्म करघे के कपडे का उत्पादन 19,907 करोड रुपए हो जाएगा, हथकरघे के कपडे का उत्पादन केवल 5,000 करोड रुपये तक ही पहुँच पाएगा।

आठवीं योजना के दौरान, ग्राम तथा लघु उद्योगो मे रोजगार जो 1991-92 मे 443 लाख था बढकर 1996-97 मे 553 लाख हो जाएगा-अर्थात् इसमें 110 लाख को वृद्धि होगी। इसमे लगभग 76 लाख का मुख्य योगदान तीन क्षेत्रो द्वारा होगा-हस्तशिल्प 29 4 लाख, आधुनिक लघु उद्योग 24 5 लाख और बिजली करघा कपडा 22 लाख। इसके अतिरिक्त, अन्य उपक्षेत्रो अर्थात् ग्राम उद्योगो, हथकरघा-कपडा और कच्ची रेशम द्वारा 32 लाख व्यक्तियो के लिए रोजगार कायम हो सकेगा-इनमे प्रत्येक भाग का लगभग 11 लाख होगा। ध्यान देने योग्य बात यह है कि बिजली करघे के कपडे के बढते हुए महत्त्व के कारण खादी के कपडे का महत्त्व तेजी से कम होता जा रहा है और इसमे केवल 1 5 लाख अतिरिक्त व्यक्तियो के लिए रोजगार कायम हो सकेगा।

निर्यात के क्षेत्र मे, अतिरिक्त निर्यात के दो मुख्य योगदाता होंगे-आधुनिक लघु उद्योग (7,542 करोड रुपए) और हस्तशिल्प (18,700 करोड रुपए)।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि रोजगार-जनन तथा गरीबी दूर करने की दृष्टि से, ग्राम तथा लघु उद्योगो का कायभाग सगठित निजी क्षेत्र से जो नई आर्थिक नीति का लाडला बच्चा है कहीं अधिक है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि सगठित निजी क्षेत्र म कुल 75 लाख व्यक्तियो को 10 या 10 से अधिक रोजगार वाले कारखानो मे रोजगार प्राप्त है। ग्राम तथा लघु उद्योगो ने केवल सातवीं योजना के दौरान 110 लाख व्यक्तियो को अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध कराया। ऐसी स्थिति मे यह युक्तिसगत है कि निगम क्षेत्र की तुलना म इन उद्योगो को अपेक्षाकृत अधिक रियायती सहायता और राजकोषीय, औद्योगिक एव अन्य नीतियो मे बेहतर व्यवहार मिलना चाहिए।

37
औद्योगिक वित्त
(INDUSTRIAL FINANCE)

कोई भी उद्योग चाहे वह छोटा हो या बडा वित्त के बिना चल नही सकता। इस अध्याय मे हम बडे पैमाने के औद्योगिक वित्त सम्बन्धी समस्याओ का अध्ययन करेंगे और उन सस्थाओ का वर्णन करेंगे जो इस वित्त को उपलब्ध कराते हैं।

1 बडे पैमाने के उद्योगो का वित्त-प्रबन्ध
(Financing of Large scale Industries)

बडे पैमाने के उद्योगो को दो कार्यों के लिए ऋण चाहिए। पहले उन्हे अपने अचल पूजी व्यय (Fixed capital expenditure) अर्थात् मशीनें और यन्त्र खरीदने भवन निर्माण आदि के लिए ऋण की आवश्यकता होगी। दूसरे उन्हे कार्यकारी पूँजी (Working capital) की आवश्यकताओ अर्थात् कच्चा माल और स्टोर खरीदने उत्पादन और विपणन सम्बन्धी चालू व्यय की पूर्ति के लिए ऋण की आवश्यकता होगी। उद्योग द्वारा निश्चित पूजी की आवश्यकता के लिए हिस्से एव ऋण पत्र (Debentures) जारी किए जाते हैं। कुछ सीमा तक कोई उत्पादन इकाई सार्वजनिक जमा (Public deposits) और लाभ के पुनर्नियोजन (Ploughing back of profits) पर निर्भर कर सकती है। पिछले वर्षों से भारतीय उद्योग वित्त निगम (Industrial Finance Corporation of India) और राज्यीय वित्त निगमो का महत्त्व बढता जा रहा है। इसके विरुद्ध कार्यकारी पूजी प्राप्त करने के अन्य उपायो मे हिस्सो तथा ऋण पत्रो प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ (Managing agents) से प्राप्त ऋण सार्वजनिक जमा बेक ऋण और अन्य देशी साहूकारो और बडे वित्त दाताओ (Financiers) का समावेश है। हम इस देश मे बडे पैमाने की इकाइयो को वित्त उपलब्ध कराने वाले स्रोतो का सक्षिप्त वर्णन करेंगे।

(1) हिस्से और ऋण पत्र (Shares and Debentures)

आमतौर पर बडे उद्योगो की वित्त आवश्यकता के बडे भाग को पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार के हिस्से जारी किए जाते हैं। पिछले कुछ वर्षो से 10 रुपए के छोटे मूल्य वर्गों (Denominations) के हिस्से जारी किए जाते हैं। विभिन्न प्रकार के विनियोक्ताओ (Investors) को सतुष्ट करने के लिए अधिमान हिस्से (Preference shares) और साधारण हिस्से (Ordinary shares) जारी किए जाते हैं। ऋण पत्र (Debentures) वे बाड हैं जो किसी कम्पनी द्वारा जनता के लिए जारी किए जाते हैं। अभी तक भारतीय विनियोक्ताओ मे ऋण पत्र लोकप्रिय नहीं हुए और कम्पनियो मे भी इस बारे मे उत्साह नहीं पाया जाता। भूतकाल और वर्तमान मे भी बडे पैमाने के उद्योग अपनी अचल पूजी (Fixed capital) की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए हिस्से और ऋण पत्र बेचते हैं।

(2) सार्वजनिक जमा (Public deposits)

अहमदाबाद मे सार्वजनिक जमा की प्रणाली विशेष महत्त्व रखती हैं चाहे बम्बई और शोलापुर की रुई की कुछ मिलें और असम एव बगाल के चाय के बागानो के लिए आवश्यक बचत पूँजी सार्वजनिक जमा द्वारा प्राप्त की गयी। अहमदाबाद मे उदाहरणार्थ लोग अपनी बचत रुई कारखानो के प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के पास जमा करवा देते थे। प्रबन्ध अभिकर्त्ता इस जमा का प्रयोग प्रबन्धित कम्पनियो के लिए कार्यकारी पूँजी उपलब्ध कराने के लिए करते थे। इस स्रोत का मुख्य दोष यह है कि लोक जमा औद्योगिक वित का एक अत्यन्त अविश्वसनीय स्रोत है क्योकि उन्हे किसी भी समय वापस लिया जा सकता है और विशेषकर ऐसे काल मे जब इसकी बहुत जरूरत होती है।

(3) बैक उधार (Bank Loans)

औद्योगिक वित्त मे भारतीय वाणिज्य बैंको का कार्यभाग बहुत ही कम महत्त्वपूर्ण रहा है। वे उद्योगो की अचल पूजी (Fixed capital) की आवश्यकताओ के लिए कुछ भी योगदान नहीं करते थे। वे तो उद्योगो की कार्यकारी पूजी की आवश्यकताओ के लिए उधार देते थे। भारतीय वाणिज्यिक बेक हिस्से तथा ऋण पत्र क्रय कर उद्योगो को

अचल पूंजी की आवश्यकताओ को पूरा करने से हिचकिचाते रहे। हिस्सा-पूँजी मे बडा जोखिम उठाना पडता है और जमाकर्त्ताओ की बचत से काम करने वाला बैंक इस जोखिम से बचना चाहता है। इसके अतिरिक्त, अल्पकाल के लिए जमा कराई गई राशि मे वाणिज्यिक बैंक अधिक जोखिम वाली दीर्घकालीन परिसम्पत (Long term asset) प्राप्त नहीं कर सकता। परन्तु यह सुझाव दिया गया है कि भारत मे बैंको को उद्योगो की सहायता के लिए ऋण-पत्रो का प्रयोग करना चाहिए था। इन ऋण-पत्रो से उन्हे ब्याज की काफी अच्छी दर प्राप्त भी हो जाती और जब भी उन्हे जरूरत होती, वे बाजार मे ऋण-पत्र बेच देते। किन्तु समस्या तो तब उत्पन्न होती जब ये ऋण की तीव्र आवश्यकता के काल मे ऋण-पत्र नहीं बेच पाते।

(4) देशी महाजन (Indigenous bankers)

देशी महाजनो ने भी उद्योगो के लिए, विशेषकर कठिनाई के समय, लाभदायक कार्य किया है। किन्तु वे ब्याज की अत्यधिक दर वसूल करते हैं। वे प्राय साधारण वैयक्तिक बाड (Personal bond) के विरुद्ध ऋण देते हैं। बडे पैमाने के उद्योग तो इन पर निर्भर नहीं करते किन्तु छोटे तथा मध्यम पैमाने के उद्योग देशी साहूकारा से अपनी अचल एव कार्यकारी पूजी के लिए काफी हद तक सहायता लेते रहे हैं। आधुनिक काल मे जब से राज्यीय वित्त निगमो तथा *वाणिज्यिक बैंको ने इसमे दिलचस्पी लेनी शुरू की है,* देशी महाजनो का औद्योगिक वित्त की उपलब्धि में महत्त्व कम होता जा रहा है।

(5) औद्योगिक वित्त के नए संस्थान

चूकि औद्योगिक वित्त के लिए ऊपर दिए गए स्रोत अपयाप्त थे, भारत सरकार ने इस कारण देश मे बढते हुए औद्योगीकरण की आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुए 1948 मे औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना की। 1955 मे भारतीय औद्योगिक उधार एव विनियोग निगम स्थापित किया गया। इसी प्रकार भारत सरकार ने राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम की स्थापना की। भारत सरकार न अब औद्योगिक विकास बैंक की स्थापना की है जिसमे पुनर्वित्त निगम (Refinance Corporation) और यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया को समाविष्ट कर लिया गया है। ये सभी संस्थान उद्योगो को दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराते हैं। यहाँ पर भारत के जीवन बीमा निगम (Life Insurance Corporation) का उल्लेख करना उचित होगा। जीवन बीमा निगम की निधि से हिस्से एव ऋण-पत्र क्रय किए जाते हैं।

2. भारतीय औद्योगिक वित्त निगम

(Industrial Finance Corporation of India)

दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात् तीव्र औद्योगीकरण की इच्छा बलवती हो गई। साथ ही, चल रहे उद्योगो मे पुरानी मशीनरी के विस्थापन (Replacement) और आधुनिकीकरण (Modernisation) की आवश्यकता और भी बढ गई। औद्योगिक वित्त उपलब्ध कराने की पारम्परिक सस्थाआ म इस काय के लिए पर्याप्त सामर्थ्य न होने के *कारण भारत सरकार ने एक विशेष अधिनियम के आधीन* औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना की। भारत सरकार और रिजर्व बैंक, अनुसूचित बैंक (Scheduled Banks) बीमा कम्पनियाँ और विनियोग-प्रन्यास (Investment Trusts) और सहकारी समितियाँ इसके हिस्सेदारो मे से हैं। इस प्रकार *औद्योगिक वित्त निगम (औ वि नि) के हिस्सेदारो* मे केन्द्र सरकार बैंक तथा वित्तीय सस्थान (Financial Institutions) तो शामिल हैं परन्तु साधारण व्यक्ति नहीं। केन्द्र सरकार ने पूँजी की वापसी की गारण्टी दी है और पूँजी पर न्यूनतम लाभांश देने का भी आश्वासन दिलाया है। निगम को खुल बाजार म बाड और ऋण-पत्र (Debentures) जारी करने का भी अधिकार है। निगम को विश्व बैंक (World Bank) तथा वित्तीय सस्थाओ से विदेशी मुद्रा उधार लने का भी अधिकार है। निगम किसी *समय-विशेष पर रिजर्व बैंक से उधार भी ले सकता है।*

औद्योगिक वित्त निगम के कार्य

निगम के तीन मुख्य कार्य हैं। प्रथम यह औद्योगिक फर्मो को ऋण तथा अग्रिम देता है और उनके द्वारा जारी किए गए ऋण पत्रो को क्रय करता है। दूसर निगम औद्योगिक फर्मो द्वारा पूजी बाजार (Capital market) में लिए गए उधार की गारण्टी देता है। तीसर, यह औद्योगिक फर्मो द्वारा जारी किए गए हिस्सो ऋणपत्रो और बाडो की हामीदारी (Underwriting) करता है।

मूल अधिनियम के अनुसार निगम को किसी औद्योगिक फर्म की हिस्सा पूजी मे सीधे योगदान देने की मनाही थी किन्तु 1960 म किए गए सशोधन द्वारा इसे इस बात की आज्ञा दे दी गइ है। निगम केवल पब्लिक लिमिटेड कम्पनियो और सहकारी समितियो को उधार दे सकता है। इसे प्राइवट लिमिटेड कम्पनिया या साझेदारियो को उधार देने का अधिकार नहीं। इसके अधिनियम मे एक सशोधन *द्वारा औद्योगिक वित्त निगम अब प्राइवेट लिमिटेड कम्पनियो* को भी उधार दे सकता है।

निगम को विनिर्माण (Manufacturing), खनन, जहाजरानी और बिजली के उत्पादन तथा वितरण सम्बन्धी कम्पनिया को दीर्घकालीन तथा मध्यमकालीन ऋण देने का

अधिकार है। किसी एक कम्पनी को अधिक से अधिक एक करोड रुपए तक उधार दिया जा सकता है (पहले यह सीमा 50 लाख रुपए थी)। विशिष्ट परिस्थितियो मे सरकार की आज्ञा द्वारा इस सीमा से भी अधिक ऋण दिया जा सकता है। ऋण की अवधि 25 वर्ष से अधिक नही हो सकती।

वित्तीय सहायता के लिए प्रार्थना करने वाली किसी भी औद्योगिक फर्म को उधार देने से पहले निगम निम्नलिखित बातो को दृष्टि मे रखकर सभी आवेदन पत्रो की जाच पडताल करता है–(*i*) राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए उद्योग का महत्त्व (*ii*) जिस योजना के लिए वित्तीय सहायता मागी जा रही है उसकी व्यवहार्यता एव लागत (*iii*) प्रबन्ध की क्षमता (*iv*) प्रस्तुत प्रतिभूति (Security) का स्वरूप (*v*) तकनीकी कर्मचारियो कच्चे माल आदि के सभरण की पर्याप्तता और (*vi*) वस्तु की किस्म और निर्मित वस्तु की देश के लिए आवश्यकता।

उधार देते समय निगम अचल परिसपत् (Fixed assets) अर्थात् भूमि बिल्डिग प्लाण्ट एव मशीनरी प्रतिभूति मागता है और सामान्यत कच्चे माल या निर्मित वस्तुओ के विरुद्ध उधार नहीं देता। यह साधारणतया निदेशको (Directors) की वैयक्तिक गारण्टी पर उधार देता है। इसे यह भी अधिकार प्राप्त है कि उधार लेने वाली फर्म के निदेशक मनोनीत कर दे ताकि वे कुशल प्रबन्ध का आश्वासन दे सके और औद्योगिक वित्त निगम के हितो की रक्षा कर सके। यदि कोई फर्म लिए गए उधार पर ब्याज या मूलधन लौटने मे बार बार दोषी पाई जाए, तो निगम को फर्म के प्रबन्ध को अपने स्वामित्वाधीन करने या बन्धक रखी गई सम्पत्ति को बेच देने का अधिकार भी प्राप्त है।

औद्योगिक वित्त निगम की कार्य-प्रगति

गत 47 वर्षों मे निगम भारतीय उद्योगो के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है। 1948 मे प्रारम्भ होने के पश्चात् मार्च 1994 तक निगम ने 18,292 करोड रुपए की वित्तीय सहायता की स्वीकृति दी जिसमे से 12 550 करोड रुपये वितरित किए गए। बहुत से उद्योग जिन्हे निगम से वित्तीय सहायता प्राप्त हुई है उनमे उल्लेखनीय हैं–उर्वरक सूती वस्त्र उद्योग कागज मूल रसायन एव उर्वरक सीमेट धातुएँ एव धातु सम्बन्धी उत्पाद मशीनरी मोटर गाडियाँ शीशा रबड आदि।

मार्च 1975 मे भारतीय औद्योगिक वित्त निगम ने जोखिम पूजी फाउडेशन (Risk capital foundation) स्थापित किया ताकि यह नए उद्यमकर्त्ताओ (Entrepreneurs) को ब्याज मुक्त या नाममात्र ब्याज पर औद्योगिक परियोजनाओ के लिए उधार दे। नए उद्यमकर्त्ताओ मे शिल्पवैज्ञानिक (Technologists) और व्यवसायी शामिल किए जाते हैं।

हाल ही के वर्षों मे भारतीय औद्योगिक वित्त निगम ने नई प्रोन्नति योजनाए (Promotional schemes) चालू की हैं। ये हैं–(*i*) महिला उद्यमकर्त्ताओ के लिए ब्याज साहाय्य योजना (Interest subsidy scheme) (*ii*) छोटे पैमाने की इकाइयो को विपणन सहायता देने के लिए परामर्श शुल्क साहाय्य योजना (Consultancy fee subsidy scheme) (*iii*) पिछी लघु स्तर एव अनुपगी इकाइयो के आधुनिकीकरण को प्रोत्साहित करना और (*iv*) छोटे तथा मध्यम स्तर की इकाइयो मे प्रदूषण पर नियन्त्रण। 1988-89 के दौरान निगम ने दो नई योजनाएँ प्रारम्भ की हैं अर्थात् उपस्कर पट्टेदारी (Equipment Leasing) योजना और उपस्कर प्राप्ति योजना (Equipment procurement scheme)। उपस्कर प्राप्ति योजना के आधीन भारतीय औद्योगिक वित्त निगम वर्तमान औद्योगिक फर्मों को वित्तीय पट्टे (Financial lease) पर उपस्कर (आयातित या देशी) उपलब्ध कराता है। उपस्कर प्राप्ति योजना के आधीन निगम उपस्कर प्राप्त करने के पश्चात् इसे वर्तमान औद्योगिक फर्मों को (निगमीय या सहकारी क्षेत्रो मे) पुन बेच देता है।

भारतीय औद्योगिक वित्त निगम अपनी क्रियाओ का विस्तार व्यापारिक बैंकिग (Merchant banking) मे कर रहा है ताकि यह अन्य वित्तीय सेवाओ मे भी प्रवेश कर सके विशेषकर प्राजैक्ट परामर्श ऋणो का एकत्रीकरण (Syndication of loans) पुन स्थापन प्रोग्राम का निर्माण विलयन एव समामेलन सम्बन्धी कार्य आदि। 1993 94 के दौरान निगम के व्यापारिक बैंकिग विभाग (Merchant Banking Department) द्वारा सार्वजनिक हिस्सो के रूप मे 3 120 करोड रुपए की राशि गतिमान कर सहायता दी गई।

अन्त मे यह कहना उचित ही है कि औद्योगिक वित्त निगम देश के पिछडे क्षेत्रो के बारे मे विशेष रूप मे चिन्तित है। हाल ही के वर्षों मे इसने पिछडे जिलो के विकास के लिए अपनी कुल सहायता का लगभग 50 प्रतिशत उपलब्ध कराया।

औद्योगिक वित्त निगम को भारतीय कम्पनी कानून 1956 के आधीन एक सार्वजनिक लिमिटिड कम्पनी में परिवर्तित कर दिया गया है और जुलाई 1993 मे इसने कार्य प्रारम्भ कर दिया है। प्रथम सार्वजनिक जारी पूजी द्वारा इसने 600 करोड रुपये की हिस्सा पूजी एकत्र की। ऋणो की स्वीकृतियो और वितरणो मे भी महत्त्वपूर्ण उन्नति हुई है।

3 राज्यीय वित्त निगम
(State Financial Corporations)

औद्योगिक वित्त निगम तो बडे पैमान के उद्योगो को दीर्घकाल के लिए ऋण देता है किन्तु छाटे तथा मध्यम स्तर

के उद्योगो को भी वित्तीय सहायता की आवश्यकता होती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए राज्यीय सरकारो ने राज्यीय वित्त निगम स्थापित किए हैं। 1951 के राज्यीय वित्त निगम अधिनियम के आधीन प्रत्येक राज्य मे निगम स्थापित किए गए हैं जिनका उद्देश्य छोटे, मध्यम तथा कुटीर उद्योगो की सहायता करना है। किसी राज्यीय वित्त निगम की अधिकृत पूजी (Authorised capital) राज्यीय सरकार द्वारा 50 लाख और 5 करोड रुपए की न्यूनतम और अधिकतम सीमा के बीच निर्धारित की जाती है। निगम के हिस्से राज्यीय सरकार, रिजर्व बैंक, अनुसूचित बैंकों, सरकारी बैंको, अन्य वित्तीय सस्थानो अर्थात् बीमा कम्पनियो और विनियोग न्यासो तथा गैर-सरकारी सस्थाओ द्वारा क्रय किए जाते हैं। इन हिस्सो की गारटी राज्य सरकार द्वारा दी जाती है। राज्यीय वित निगम भी अपने वित्तीय साधन बढाने के लिए बाडो तथा ऋणपत्रो का विक्रय कर सकता है। निगम जनता से भी पाँच वर्ष की निश्चित अवधि के लिए जमा स्वीकार कर सकता है। राज्यीय वित्त निगम राज्य मे विभिन्न स्थानो पर अपनी शाखाएँ खोल सकता है।

राज्यीय वित्त निगम के कार्य

राज्यीय वित्त निगम से सभी प्रकार की औद्योगिक फर्में सहायता प्राप्त कर सकती हैं और इस दृष्टि से इसका कार्य-क्षेत्र औद्योगिक वित्त निगम की तुलना मे विस्तृत है। यह निम्नलिखित कार्य कर सकता है-(1) औद्योगिक फर्मों को 20 वर्षों तक के लिए दिए ऋणो तथा पूजी-बाजार मे जारी किए गए ऋणो की गारटी करना, (2) औद्योगिक फर्मों के हिस्सो, बाडो या ऋण-पत्रो का निम्नाकन (Underwriting) करना, (3) औद्योगिक फर्मों को 20 वर्ष की अवधि तक के लिए ऋण तथा अग्रिम देने की स्वीकृति प्रदान करना, और (4) औद्योगिक फर्मों द्वारा जारी किए गए ऋण-पत्रो को क्रय करना।

राज्यीय वित्त निगमो को अन्तर्राष्ट्रीय विकास सस्था (International Development Association) से छोटी तथा लघु-स्तर की औद्योगिक इकाइयो के लिए प्राप्त सहायता के वितरण का कार्य भी सौंपा गया है।

राज्यीय वित्त निगमो द्वारा अधिकतर सहायता छोटे उद्योगो जिनमे सडक परिवहन शामिल है, को दी गई है। इन निगमो द्वारा विशिष्ट पिछडे क्षेत्रो मे औद्योगिक इकाइयो को रियायती दरो पर उदार वित्तीय सहायता दी गई है। राज्यीय वित निगम तकनीशन-उद्यमकर्ताओ (Technician-entrepreneurs) को उदार वित्तीय सहायता प्रदान करता है।

राज्यीय वित्त निगम और औद्योगिक वित्त निगम में भेद

बहुत-सी बातो मे राज्यीय वित्त निगम और औद्योगिक वित्त निगम एक-दूसर से मिलते-जुलते हैं परन्तु इनमे कुछ महत्त्वपूर्ण भेद भी हैं। सबसे पहले राज्यीय वित्त निगमो की हिस्सा पूँजी अपेक्षाकृत कम होती है। (अर्थात् 50 लाख से 5 करोड रुपए के बीच)। दूसर, वे अपनी हिस्सा-पूजी का 25 प्रतिशत गैर-सरकारी सस्थाओ के लिए पृथक् रख सकते हैं जबकि औद्योगिक वित्त निगम ऐसा नहीं कर सकता। तीसर राज्यीय वित्त निगम के लिए ऋण देने या ऋण के लिए गारण्टी देने की अधिकतम अवधि 20 वर्ष है जबकि औद्योगिक वित्त निगम के लिए यह अवधि 25 वर्ष है। अन्तिम, राज्यीय वित्त निगम द्वारा किसी फर्म को 10 लाख रुपए की अधिकतम वित्तीय सहायता दी जा सकती है जबकि औद्योगिक वित्त निगम किसी एक औद्योगिक फर्म को एक करोड रुपए तक ऋण दे सकता है और विशिष्ट परिस्थितियो म केन्द्र सरकार की अनुमति से इस सीमा से भी अधिक ऋण दे सकता है।

आज भारत म 18 राज्यीय वित्त निगम हैं और लगभग प्रत्येक राज्य मे अपना वित्त निगम है। *1993-94 के दौरान राज्यीय वित निगमो द्वारा 1,910 करोड रुपये के ऋणो को स्वीकृति दी गयी और 1,570 करोड रुपये वितरित किए* गए। 1971 और 1994 के बीच 16 820 करोड रुपये के कुल ऋणो को स्वीकृति दी गयी और 13,360 करोड रुपये के कुल ऋण वितरित किए गए। कुल स्वीकृति और वितरित सहायता का 70 प्रतिशत से अधिक लघु स्तर उद्योगो को प्राप्त हुआ। राज्यीय वित्त निगमो को मजबूत करने के प्रयास किए जा रहे हैं ताकि ये क्षेत्रीय विकास बैंक का प्रभावी रूप में काम कर सकें।

राज्यीय औद्योगिक विकास निगम (State Industrial Development Corporations)

राज्यीय वित्त निगमो के अतिरिक्त, 24 राज्यीय औद्योगिक विकास निगम भी हैं जो अपने-अपने राज्य मे औद्योगिक विकास प्रोन्नत करते हैं और छोटे उद्यमकर्ताओ और पिछडे क्षेत्रो की सहायता करते हैं। 1993-94 के दौरान, इनके द्वारा 940 करोड रुपये की सहायता की स्वीकृति दी गयी और 720 करोड रुपये वितरित किए गए। कुल रूप म मार्च 1994 तक औद्योगिक विकास निगमो द्वारा 8,110 करोड रुपये की सहायता को स्वीकृति दी गयी और 6,300 करोड रुपये वितरित किए गए।

4. भारतीय औद्योगिक ऋण तथा विनियोग निगम

(Industrial Credit and Investment Corporation of India)

औद्योगिक ऋण तथा विनियोग निगम विश्व बैंक द्वारा निजी क्षेत्रो मे लघु तथा मध्यम उद्योगो के विकास के लिए जनवरी 1955 मे चालू किया गया और इसकी अधिकृत पूजी 60 करोड रुपए और स्वीकृत पूजी (Subscribed capital) 22 करोड रुपए रखी गई। इसकी जारी पूँजी (Issued capital) को भारतीय बैंको, बीमा कम्पनियो और भारत मे सामान्य जनता द्वारा स्वीकार किया गया।

निगम का उद्देश्य नए उद्योगो को प्रोन्नत करना, वर्तमान उद्योगो के विस्तार एव आधुनिकीकरण (Modernisation) के लिए सहायता देना और उत्पादन तथा रोजगार की मात्रा बढाने के लिए तकनीकी और प्रबन्धकीय सहायता (Technical and managerial aid) उपलब्ध कराना है। निगम दीर्घकालीन तथा मध्यकालीन ऋण प्रदान करता है हिस्सा पूजी मे अशदान डालता है, हिस्सो तथा ऋणपत्रो की नई शृखला का निम्नाकन करता है गैर-सरकारी विनियोग के स्रोतो से प्राप्त ऋणो की गारण्टी देता है और प्रबन्धकीय तकनीकी तथा प्रशासकीय परामर्श देता है। अभी तक निगम द्वारा जिन उद्योगो को सहायता मिली है उनमे ये शामिल हैं–कागज, रसायन पदार्थ बिजली का सामान, सूती वस्त्र, चीनी धातु अयस्क, चूना या सीमेंट के कारखाने, शीशा उद्योग आदि। 1955 मे प्रारम्भ होने के पश्चात् मार्च 1994 तक निगम द्वारा 37,670 करोड रुपए की सहायता की स्वीकृति दी गई जिसमे से 22 970 करोड रुपए वितरित किए जा चुके हैं।

हाल ही के वर्षो मे इस निगम ने पिछडे हुए क्षेत्रो के विकास मे विशेष रुचि व्यक्त की है। मार्च 1991 तक निगम द्वारा पिछडे हुए क्षेत्रो के विकास के लिए 5 400 करोड रुपए के ऋणो की स्वीकृति दी गई। यह निगम नरम उधार योजना (Soft Loan Scheme) मे भी भाग ले रहा है।

यह निगम औद्योगिक वित्त मे एक महत्त्वपूर्ण कार्यभाग अदा करता रहा है। यह औद्योगिक फर्मों की ऋणो या ऋणो पर गारंटी के रूप मे सहायता करता है। यह सहायता रुपयो के रूप मे या विदेशी मुद्रा के रूप मे भी हो सकती है। इसके अतिरिक्त यह साधारण तथा अधिमान हिस्सो (Preference shares) और ऋण-पत्रो का निम्नाकन भी करता है। निगम द्वारा विदेशी मुद्रा के रूप मे ऋण उपलब्ध कराए जाते हैं जिनसे भारतीय औद्योगिक फर्मों को अनिवार्य पूजी वस्तुओ का विदेशो से आयात करने मे बडी सुविधा रहती है।

1983 मे निगम ने पट्टेदारी क्रियाएँ (Leasing operations) चालू की। यह कम्प्यूटरीकरण, आधुनिकीकरण/विस्थापन, ऊर्जा सरक्षण के लिए सामान, निर्यात प्रोत्साहन, प्रदूषण नियन्त्रण आदि के लिए ऋण देता है। पट्टेदारी के आधीन शामिल किए गए उद्योगों में हैं–टैक्सटाइल उद्योग, इजीनियरिंग, रसायन, उर्वरक, सीमेंट, चीनी आदि। 1983 और मार्च 1991 के बीच पट्टेदारी सहायता (Leasing assistance) के लिए निगम द्वारा 720 करोड रुपए की स्वीकृति दी गई।

1977 मे, इस निगम ने गृह विकास वित्त निगम (Housing Development Finance Corporation) को प्रोन्नत किया ताकि मध्यम तथा निम्न आय वर्गों के व्यक्तियो, सहकारिताओ आदि को देश भर मे रिहायशी मकान बनाने और उन्हे स्वामित्व आधार पर खरीदने के लिए दीर्घकालीन वित्त उपलब्ध कराया जा सके। मार्च 1991 तक गृह विकास वित्त निगम ने मकानो के लिए 2,900 करोड रुपए के ऋण दिए।

इसके अतिरिक्त, ICICI द्वारा हाल ही के वर्षों में निम्नलिखित कम्पनियाँ एव सस्थान प्रोन्नत किए गए हैं–

(*i*) भारतीय उधार क्षमता मूल्याकन सूचना सेवा लि (Credit Rating Information Sevices of India Ltd —CRISIL) निगम ने भारतीय इकाई न्यास के सहयोग से स्थापित की है। इसका उद्देश्य निगम क्षेत्र को उधार क्षमता मूल्याकन सेवा उपलब्ध कराना है।

(*ii*) भारतीय तकनालाजी विकास तथा सूचना कम्पनी लि (Technology Development and Information Company of India Ltd —TDICI) का उद्देश्य तकनालाजी के हस्तान्तरण तथा उन्नयन (Upgradation) के लिए वित्त उपलब्ध कराना है और तकनालाजी सम्बन्धी सूचना मुहैया कराना है।

(*iii*) वाणिजिय्क तकनालाजी की प्रगति सम्बन्धी कार्यक्रम (Programme for the Advancement of Commercial Technology—PACT) का उद्देश्य बाजार-सम्बन्धी अनुसधान एव विकास क्रिया के लिए सहायता प्रदान करना है। यह भारतीय और सयुक्त राज्य अमेरिका की कम्पनियो के साथ सहयोग से चलाया जा रहा है। इसकी स्थापना के लिए USAID द्वारा 100 लाख यू एस डालर का अनुदान दिया गया। ICICI को इसके प्रशासन एव प्रबन्ध की जिम्मेदारी सौंपी गई है।

(*iv*) वाणिज्यिक ऊर्जा अनुसधान त्वरण प्रोग्राम (Programme for Acceleration of Commercial Energy Research—PACER) की स्थापना के लिए USAID द्वारा 200 लाख यू एस डालर का अनुदान उपलब्ध कराया गया ताकि भारतीय ऊर्जा क्षेत्र मे चुने हुए अनुसधान एव तकनालाजी विकास प्रस्तावों के लिए वित्त प्रबन्ध किया जा सके।

(*v*) 1992-93 मे निगम ने USAID की सहायता के दो नए प्राजैक्ट प्रारम्भ किए अर्थात् कृषि वाणिज्यीकरण एव उद्यम परियोजना (Agricultural Commercialisation and Enterprise Project) (200 लाख डालर की सहायता से) और पर्यावरण विज्ञान एव तकनालाजी प्रोग्राम मे व्यापार (Trade in Environmental Sciences and Technology Programme—TEST) 250 लाख डालर की सहायता से।

5. भारतीय औद्योगिक विकास बैंक

(Industrial Development Bank of India)

1947 के बाद उद्योगो को दीर्घकालीन वित्त उपलब्ध कराने के लिए कायम किए गए विभिन्न सस्थानो मे भारतीय औद्योगिक विकास बैंक सबसे बाद मे कायम किया गया। औद्योगिक वित्त निगम, राज्यीय वित्त निगम औद्योगिक ऋण तथा विनियोग निगम राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम, भारतीय पुनर्वित्त निगम (Refinance Corporation of India) कई वर्षों से सीधे ऋण देने हिस्सो तथा बाडो को स्वीकार करने और प्राप्त किए गए ऋणो को गारण्टी देने के कार्य करते रहे हैं। इन सस्थानो द्वारा काफी बडी मात्रा मे वित्तीय सहायता दी गई और इस सहायता की मात्रा लगातार बढ रही है। परन्तु देश मे औद्योगिक विकास की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए सस्थान अपर्याप्त थे। एक ओर तो बढते हुए औद्योगीकरण के लिए बडे पैमाने पर वित्तीय साधन उपलब्ध कराने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक नई सस्था बनानी आवश्यक थी, दूसरी और यह भी आवश्यक था कि औद्योगिक वित्त उपलब्ध कराने वाले विभिन्न सस्थानो की क्रियाओ को समन्वित किया जाए। इन दोनो उद्देश्यो की पूर्ति के लिए सरकार ने भारतीय औद्योगिक विकास बैंक स्थापित करने का निर्णय जुलाई 1964 में किया।

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, रिजर्व बैंक के पूर्ण स्वामित्वाधीन 1976 तक इसका एक अनुषगी बैंक (Subsidiary bank) था। इसकी अधिकृत पूजी 50 करोड रुपए है। विकास बैंक का प्रबन्ध एव निर्देशन एक निदशक मण्डल (Board of Directors) के आधीन है जो रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के केन्द्रीय निदेशक मण्डल की भाति ही बनाया जाता है। रिजर्व बैंक का गवर्नर और डिप्टी गवर्नर इस बैंक के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष होते हैं। निदेशक मण्डल द्वारा एक कार्यकारिणी समिति (Executive Committee) नियुक्त की जाती है जो इसे सौंपे गए कार्यों की देख-भाल करती है। 1976 मे भारतीय औद्योगिक विकास बैंक को भारतीय रिजर्व बैंक से अलग कर दिया गया और इसका स्वामित्व भारत सरकार ने अपने हाथ मे ले लिया।

भारतीय विकास बैंक के कार्य

जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, इस बैंक का मुख्य कार्य औद्योगिक उद्यमो को वित्तीय सहायता प्रदान करना है। जिन उद्योगो को बैंक से सहायता मिल सकती है, उनमे विनिर्माण (Manufacturing), खनन, विधायन (Processing), जहाजरानी तथा अन्य परिवहन सम्बन्धी उद्योग तथा होटल उद्योग को भी शामिल किया जाता है। सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्र-दोनो मे स्थापित किए गए उद्योग सहायता के लिए विकास बैंक को प्रार्थना कर सकते हैं।

(*i*) प्रत्यक्ष सहायता (Direct assistance)-विकास बैंक औद्योगिक इकाइयो को ऋण तथा अग्रिम देता है और उनका निम्नाकन (Underwriting) भी करता है। औद्योगिक फर्मों द्वारा अनुसूचित बैंको (Scheduled banks) राज्यीय सहकारी बैंको, औद्योगिक विकास निगम तथा अन्य अनुसूचित वित्तीय सस्थाना से खुले बजार म प्राप्त ऋणो की गारण्टी देने का अधिकार विकास बैंक को प्राप्त है। यह औद्योगिक फर्मों क मान्यता-प्राप्त व्यापारिक विनिमय-पत्रो या प्रोनोटो को स्वीकार भी करता है और उनका बट्टा भी करता है। सीधे वित्त उपलब्ध कराने मे बैंक औद्योगिक वित्त निगम तथा औद्योगिक ऋण विनियोग निगम से मिलता-जुलता है।

(*ii*) अप्रत्यक्ष सहायता (Indirect assistance)-विकास बैंक औद्योगिक फर्मों को अप्रत्यक्ष रूप मे अर्थात् अन्य बैंको द्वारा भी सहायता दे सकता है। सबसे पहले विकास बैंक, औद्योगिक विकास निगम, राज्यीय वित्त निगमों तथा अन्य वित्तीय सस्थानो द्वारा दिए गए ऋणो को पुनर्वित्त (Refinance) का कार्य कर सकता है। इन ऋणो मे 3 से 25 वर्ष की अवधि के लिए दिए गए ऋण शामिल किए जाते हैं। दूसर, यह अनुसूचित बैंको या राज्यीय सहकारी बैंको द्वारा 3 से 10 वष के लिए दिए गए ऋणो के पुनर्वित्त का कार्य भी करता है। तीसर, यह अनुसूचित बैंको तथा राज्यीय सहकारी बैंको द्वारा नियात उधार (Export credit) का भी पुनर्वित्त प्रबन्ध करता है। इस प्रकार विकास बैंक उन बैंको तथा वित्तीय सस्थाना को वित्त उपलब्ध कराता है जो औद्योगिक फर्मो को उधार देते हैं। इसके अतिरिक्त विकास बैंक विभिन्न वित्तीय सस्थानो के हिस्से, बाड तथा ऋणपत्र क्रय कर सकता है और इस प्रकार उनके वित्तीय साधन बढा सकता है। परिणामत ये फर्मे उद्योग को अधिक मात्रा म सहायता कर सकती हैं।

(*iii*) विशेष सहायता (Special assistance)-

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक अधिनियम (1964) द्वारा एक विशप निधि की स्थापना की गई जिसे विकास सहायता निधि (Development Assistance Fund) कहते हैं। विकास बैंक इस निधि का प्रयोग ऐसी आद्योगिक इकाइयो की सहायता करने मे करेगा जो या तो सामान्य रूप मे ऋण प्राप्त नहीं कर पातीं, या विनियोग की भारी मात्रा के कारण या प्रत्याय-दर (Rate of return) कम होने के कारण या दोना कारणो से ऋण प्राप्त करने मे असमर्थ रहती हैं।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि अन्य वित्तीय निगमो की भाँति, *औद्योगिक विकास बैंक पर इस सम्बन्ध म कि* वह किस प्रकार की प्रतिभूति (Security) स्वीकार कर, कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया। बैंक को इस सम्बन्ध मे काफी हद तक स्वतन्त्रता है। निस्सन्देह इसे अपने बाँडो या ऋणपत्रो के विरुद्ध उधार देने की मनाही है।

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक की क्रियाएँ

औद्योगिक विकास बैंक औद्योगिक फर्मो को प्रत्यक्ष उधार देता है, यह औद्योगिक ऋण या निर्यात उधार का पुनर्वित्त प्रबन्ध करता है, यह विनिमय पत्रो का बट्टा करता है और औद्योगिक फर्मो के हिस्सो एव ऋणपत्रो का निम्नाकन (Underwriting) भी करता है और इनमे प्रत्यक्ष योगदान भी देता है। जुलाई 1964 मे अपनी स्थापना के पश्चात् मार्च 1994 के अन्त तक औद्योगिक विकास बैंक ने 77,160 करोड रुपए के ऋणो की स्वीकृति दी (इनमे गारण्टी दिए गए ऋण शामिल नहीं हैं) और इसमे से 55,160 करोड रुपए वितरित किए गए। केवल 1993-94 मे ही बैंक ने 13,200 करोड रुपए के ऋणो की स्वीकृति दी और 8 060 करोड रुपए के ऋण वितरित किए।

पिछड़े क्षेत्रो के लिए सहायता–पिछडे क्षेत्रो में विकास को प्रोन्नत करने के लिए भारतीय औद्योगिक बैंक ने जुलाई 1969 मे छोटे तथा मध्यम स्तर की परियोजनाओ के वित्त-प्रबन्ध के लिए एक योजना की घोषणा की। इसके आधीन इन क्षेत्रो मे नरम शर्तों अर्थात् ब्याज की रियायती दरो, अदायगी की लम्बी अवधि आदि पर ऋण उपलब्ध कराए जाते हैं। इस योजना के आधीन केवल ऐसे प्रॉजैक्ट शामिल किए जाते हैं जिनकी कुल लागत 3 करोड रुपए से अधिक न हो। इस बैंक ने लघु-स्तर क्षेत्र को सस्थानात्मक उधार की उपलब्धि बढाने के लिए कई उपाय किए।

इस योजना को बाद मे सशोधित किया गया और रुपए के रूप मे रियायती सहायता की अधिकतम सीमा 1 करोड से बढाकर 2 करोड रुपए कर दी गई। इस प्रकार यह बैंक पिछडे क्षेत्रो के विकास के लिए ऋणो की मात्रा को लगातार बढाता रहा है।

भारतीय विकास बैंक की पुनर्वित्त सुविधाएँ (Refinance facilities)–इस बैंक ने नवम्बर, 1964 मे भारतीय पुनर्वित्त निगम को अपने स्वामित्वाधीन कर लिया और तब से यह सदस्य बैंको को सहायता से औद्योगिक इकाइयो को पुनर्वित्त सुविधाएँ उपलब्ध करा रहा है। शिखर सस्थान के रूप मे भारतीय औद्योगिक विकास बैंक राज्यीय वित्त निगमो, भारतीय औद्योगिक ऋण तथा विनियोग निगम और औद्योगिक क्षेत्र मे कार्य कर रहे अन्य सस्थानो को औद्योगिक वित्त उपलब्ध कराने मे सहायता करता है और इसके लिए यह उनके हिस्सो तथा बाडो मे भागीदार बनता है। इस बैंक ने अप्रैल 1966 मे ऋणो एव गारण्टी मे भाग लेने के लिए एक योजना चालू की ताकि अन्य सस्थानो से जोखिम सहभागिता (Risk sharing) के उपाय के रूप में पुनर्वित्त क्रियाओ मे सहायता दे सके। आरम्भ होने से मार्च 1994 तक इस बैंक ने इस कार्य के लिए 18 020 करोड रुपए की साहयता दी।

लघु स्तर क्षेत्र को सहायता–भारतीय औद्योगिक विकास बैंक छोटे पैमाने के उद्योग और छोटे पैमाने के सडक परिवहन के लिए राज्यीय स्तर के सस्थानो और वाणिज्य बैंको द्वारा अप्रत्यक्ष रूप मे औद्योगिक ऋणो के लिए पुनर्वित्त प्रबन्ध करता है। इस क्षेत्र मे उपलब्ध कराई गई सहायता मे तेजी से वृद्धि हो रही है।

औद्योगिक विकास बैंक ने 1988 मे पिद्दी एव लघु-स्तर औद्योगिक क्षेत्र की ऐसी इकाइयो के लिए जिनकी विनिर्माण लागत (Manufacturing cost) 5 लाख रुपए से अधिक न हो, *राष्ट्रीय इक्विटी फड योजना (National Equity Fund Scheme)* द्वारा सहायता प्रदान करने की व्यवस्था की है। इस योजना का प्रबन्ध भारतीय विकास बैंक राष्ट्रीय बैंको के माध्यम से करता है। इसने नई पिद्दी (Tiny) और लघु-स्तर इकाइयो के लिए एक खिडकी योजना (Single window scheme) चालू की है ताकि इन्हे सावधि ऋण तथा कार्यकारी पुजी के रूप मे सहायता दी जा सके। इसके अतिरिक्त भारतीय औद्योगिक विकास बैंक लघु-स्तर, पिद्दी तथा कुटीर इकाइयो को विशिष्ट क्षेत्रो मे परामर्श सेवा भी उपलब्ध कराता है।

भारत सरकार ने भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (Industries Development Bank of India) को भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के पूर्ण-स्वामित्वाधीन अनुषगी के रूप मे 1989 मे स्थापित किया। इस बैंक ने अप्रैल 1990 से कार्य करना आरम्भ कर दिया है और इसे *लघु उद्योग विकास कोष और राष्ट्रीय इक्विटी फड* की व्यवस्था का दायित्व सौंपा गया है जिसका प्रशासन पहले भारतीय औद्योगिक विकास बैंक करता था।

सतुलित क्षेत्रीय विकास (Balanced Regional Development)–1970 के पश्चात् भारतीय *औद्योगिक*

विकास बैंक ने सतुलित क्षेत्रीय विकास और त्वरित औद्योगिक विकास के युगल उद्देश्यो को पूरा करने के लिए कुछ प्रोन्नत एव विकास क्रियाएँ प्रारम्भ की हैं। अन्य सावधि उधार सस्थानो (*Term-lending institutions*) के सहयोग के साथ भारतीय औद्योगिक विकास बैंक ने सभी राज्यो एव सघीय क्षेत्रो मे औद्योगिक सभावना सर्वेक्षण पूर कर लिए हैं। इस प्रकार 389 प्रॉजैक्ट जिन पर 2,645 करोड रुपए का कुल विनियोग होगा, तय किए गए हैं। इनमे से 74 प्राजैक्ट जिन पर 283 करोड रुपए का विनियोग होगा कार्यान्वित किए जा चुके हैं।

नरम उधार योजना (Soft Loan Scheme)–भारतीय औद्योगिक विकास बैंक ने 1976 मे नरम उधार योजना चालू की ताकि कुछ चुने हुए उद्योगो (अर्थात् सीमेंट, सूती वस्त्र उद्योग, पटसन और चीनी और कुछ इजीनियरिंग उद्योगो) को *रियायती* दर पर ऋण उपलब्ध कराया जा सके जिससे वे अपने प्लाट एव मशीनरी के आधुनिकीकरण पुन स्थापन और नवीनीकरण की योजनाओ को लागू कर सके। इस प्रकार कम लागत पर अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इस योजना के आधीन 7 5 प्रतिशत ब्याज दर ली जाती है और ऋण की अवधि 15 वर्ष रखी जाती है। यह योजना परिवर्तनीयता कण्डिका (*Convertibility Clause*) के कारण गैर-सरकारी क्षेत्र के लिए आकर्षक नहीं थी परन्तु इस कण्डिका के हटा देने के पश्चात् वितरण की गति तेज कर दी गई है।

जनवरी 1984 से नरम उधार योजना का सशोधन कर इसे आधुनिकोकरण के लिए नरम उधार योजना कहा गया ताकि इसके आधीन योग्य इकाइयो की सहायता की जा सके। इस योजना के आधीन, उत्पादन इकाइयो के आधुनिकीकरण के लिए सहायता उपलब्ध होगी जिसका प्रयोग मुख्यत उत्पादन-क्रियाओ के उन्नयन (Upgradation), तकनालाजी और उत्पाद को उन्नत करने *निर्यात-प्रोत्साहन, आयात-प्रतिस्थापन ऊर्जा की बचत*, प्रदूषण की रोकथाम, व्यर्थ पदार्थो के पुन प्रयोग और उप-उत्पाद आदि के लिए किया जाएगा।

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक का पुनर्गठन

कुछ आलोचक इस बैंक की कार्य-प्रगति एव उपलब्धियो से असतुष्ट थे। उनका कहना था कि औद्योगिक विकास बैंक एक प्रभावी विकास सस्थान बनने मे असफल रहा है और इसके द्वारा देश मे औद्योगीकरण की क्रिया को पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं दिया गया। इस शोचनीय स्थिति का मुख्य कारण यह है कि बैंक एक स्वतन्त्र सस्था न बनकर रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया का एक अनुषगी बनकर रह गया। भारत सरकार ने इस आलोचना को स्वीकार करते हुए फरवरी 16, 1976 को भारतीय औद्योगिक विकास बैंक को रिजर्व बैंक से अलग कर दिया। स्वायत्त बनने के पश्चात् भारतीय औद्योगिक विकास बैंक ने प्रभावी कार्य किया है। यह बैंक सावधि आधार का मुख्य स्रोत है क्योकि इसने सभी सावधि ऋण सस्थानो द्वारा स्वीकृत कुल ऋणो का 40 प्रतिशत और कुल वितरित ऋणो का 45 प्रतिशत उपलब्ध कराया।

भारतीय औद्योगिक विकास बैंक और नरसिहम समिति

नरसिहम समिति (Narasimham Committee) की एक मुख्य सिफारिश यह है कि बैंक और प्रत्यक्ष वित्त सस्थानो (Direct Financing Institutions) के बीच प्रतिस्पर्द्धा बढाकर कुशलता को उन्नत किया जा सकता है। इस दृष्टि से समिति भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के कार्यभाग और कृत्यो मे कुछ परिवर्तन लाना चाहती है।

आज यह बैंक दो कार्य करता है–अन्य प्रत्यक्ष वित्तीय सस्थानो की भान्ति *प्रत्यक्ष वित्त उपलब्ध कराना और* पुनवित्त प्रणाली द्वारा अप्रत्यक्ष वित्त उपलब्ध कराना। यह भारतीय औद्योगिक विकास बैंक और अन्य प्रत्यक्ष वित्तीय सस्थानो के बीच मूल अन्तर है। नरसिहम समिति का सुझाव है कि भारतीय औद्योगिक विकास बैंक को अपना प्रत्यक्ष वित्त-प्रबन्ध कार्य छोड देना चाहिए और अन्य सस्थानो जैसे राज्यीय वित्त निगमो, लघु उद्योग विकास बैंक आदि की *भान्ति सर्वोच्च प्रोन्नति का कार्य करना चाहिए*। प्रत्यक्ष उधार कार्य के लिए एक पृथक कम्पनी विशेष रूप मे कायम की जानी चाहिए।

भारत सरकार ने नरसिहम समिति की सिफारिशो को स्वीकार नहीं किया है। किन्तु सरकार ने एक अध्यादेश जारी करके भारतीय औद्योगिक विकास बैंक कानून (1964) मे सशोधन कर दिया है जिसका उद्देश्य बैंक की हिस्सा-पूजी *का पुनगठन करना है और इसे पूजी बाजार से हिस्सा-पूजी* प्राप्त करने का अधिकार देना है।

6. विनियोग सस्थान
(Investment Institution)

भारतीय इकाई न्यास (Unit Trust of India)

कुछ वर्षों से भारत सरकार इस बात पर विचार कर रही थी कि एक ऐसे सस्थान की स्थापना की जाए जिसके द्वारा मध्यम आय वग के सदस्य विनियोक्ता कम्पनियो की हिस्सा पूँजी म अधिकाधिक सख्या मे भाग ले सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए *फरवरी, 1964* मे *औपचारिक रूप* से इकाइ न्यास (Unit Trust) की स्थापना हुइ। इकाई-न्यास की आरम्भिक पूजी 5 करोड रुपए थी। इसके हिस्से रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, जीवन बीमा निगम, स्टेट बैंक

ऑफ इण्डिया और अनुसूचित एव वित्तीय सस्थानो द्वारा स्वीकार किया गए।

इकाई-न्यास के दो प्राथमिक उद्देश्य हैं-(क) मध्यम तथा निम्न आय वर्गों की बचत को प्रोत्साहित करना और फिर इन बचतो को एकत्र करना, और (ख) उन्हे देश मे बढते हुए औद्योगीकरण से प्राप्त समृद्धि के लाभो मे हिस्सा बटाने के योग्य बनाना। इन दो उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए तीन कार्य करने होगे-(i) देश के विभिन्न भागो से यथासभव जितने भी अधिक विनियोक्ताओ (Investors) को हो सके, न्यास की इकाइयाँ बेची जाएँ, (ii) इकाइयो के विक्रय से प्राप्त राशि और 5 करोड रुपए की आरम्भिक पूजी का औद्योगिक एव निगम प्रतिभूतियो (Corporaote securities) मे विनियोग किया जाए, और (iii) जिन व्यक्तियो ने न्यास की इकाइयाँ क्रय की हैं उनको लाभाश (Dividend) दिया जाए।

जून 1995 मे भारतीय इकाई न्यास ने अपनी क्रियाओ के 31 वर्ष पूरे कर लिए। पहले वर्ष मे कुल मिलाकर 19 करोड रुपए की हिस्सा पूँजी एकत्र हुई। दूसरे वर्ष मे मन्दी के पश्चात् इकाई न्यास की क्रियाए, तीसरे परन्तु बाद के वर्षों मे फिर तेज हो गईं। जून 1994 में ट्रस्ट के इकाईधारियो (Unit Holders) की कुल सख्या 200 लाख थी और इन इकाइयो की कुल राशि 60 000 करोड रुपए (जून 1995 तक) थी।

इकाइयो के लाभ (Advantages of Units)

न्यास की इकाइया के स्पष्टत चार लाभ हैं। वे हैं-(i) इन इकाइयो मे विनियोग सुरक्षित हैं क्योकि इनका जोखिम बहुत सी प्रतिभूतियो पर फैला दिया जाता है। (कुछ तो ऐसी प्रतिभूतियाँ हैं जिन पर स्थिर आय प्राप्त होती है और अन्य ऐसी हैं जिन पर परिवर्ती आय (Variable income) प्राप्त है)

(ii) इकाईधारियों को लगातार और अच्छी आय प्राप्त होगी। इस न्यास की 90 प्रतिशत आय का वितरण किया जाएगा और न्यास 6 प्रतिशत आय उपलब्ध कराने का प्रयास करेगा।

(iii) इकाई-न्यास से प्राप्त लाभाश रूपी आय पर भिन्न-भिन्न वर्गों को कर-रियायतें (Tax concessions) प्राप्त हैं।

(iv) इकाइयो की तरलता (Liquidity) बहुत अधिक है क्योकि विनियोक्ता जब चाहे उनके बदले नकदी ले सकता है। किसी भी समय क्रय की गई इकाइयाँ न्यास द्वारा निश्चित मूल्य पर बेची जा सकती हैं।

जुलाई 1964 से इकाई-न्यास द्वारा इकाइयो का विक्रय भारतीय पूजी बाजार के विकास म एक महत्त्वपूर्ण कदम है। सैद्धान्तिक दृष्टि से न्यास का कार्य सराहनीय है क्योकि इस प्रकार समाज की बचत को गतिमान करके व्यापार एव उद्योग मे विनियोग किया जाता है। चूँकि न्यास राजकीय क्षेत्र का उद्यम है, इसलिए सामान्य जनता का इसमें काफी विश्वास है। इसके अतिरिक्त इसे सरकार से बहुत सी कर *रियायते (Tax concessions)* प्राप्त हुई हैं। न केवल इसमें पूजी सुरक्षित ही है बल्कि इकाईधारी जब भी चाहे न्यास से इसके बदले मे नकदी प्राप्त कर सकता है। साथ ही यह बात भी बडी उत्साहवर्धक है कि निम्न तथा मध्यम आय वर्गों ने इसमें काफी योगदान किया है। ऐसा जान पडता है कि जैसे कोई इकाई-योजना उनकी जरूरत को ध्यान में रखकर चलाई गई हो। इसके अतिरिक्त इसमे विनियोग सुरक्षित है और इसमे लगातार आय प्राप्त होगी। फिर इसमें लगाई गई राशि तरल है क्योकि इसको जब चाहे नकदी में बदला जा सकता है।

अन्य विनियोग सस्थान (Other Investment *Institutions*)

भारतीय इकाई न्यास के अतिरिक्त जो जनसामान्य की बचत गतिमान कर औद्योगिक प्रतिभूतियो मे विनियुक्त करते हैं दो अन्य विनियोग सस्थान जो देश में कार्य करते हैं, वे हैं-भारतीय जीवन बीमा निगम (Life Insurance Corporation of India) और भारतीय साधारणा बीमा निगम (General Insurance Corporation of India)। ये दोनो सस्थान जनसाधारण से बीमा करने के आधार पर भारी मात्रा में राशियाँ एकत्र करते हैं, परन्तु वे अपने साधनों का एक भाग निगम क्षेत्र को दीर्घकालीन ऋण देने के लिए प्रयुक्त करते हैं या बाजार से औद्योगकि प्रतिभूतियाँ (Industrial securities) हिस्से एव ऋणपत्र प्राप्त कर लेते हैं। भारी मात्रा में राशियाँ उपलब्ध होने के कारण ये दो सस्थान स्टॉक एक्सचेंज में सशक्त कार्यभाग अदा करते हैं।

1993-94 के दौरान जीवन बीमा कम्पनी ने 1 460 करोड रुपए का दीर्घकालीन उधार उपलब्ध कराया और 590 करोड रुपए वितरित किए। इसी वर्ष साधारण बीमा कम्पनी ने 820 करोड रुपए की स्वीकृति दी और औद्योगिक क्षेत्र को 470 करोड रुपए वितरित किए।

7. भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक
(Industrial Reconstruction Bank of India)

हाल ही के वर्षों मे बहुत-सी औद्योगिक इकाइयां विशेषकर पूर्वी क्षेत्र में, बहुत अधिक कठिनाई में थीं औ लगभग बन्द होने वाली थीं। इस परिस्थिति के लिए पर्याप माग का अभाव, प्रबन्धकीय असावधानी, श्रम विवाद, कच्चे माल की कमी, आयात प्रतिबन्ध आदि जिम्मेदार थे। इ

इकाइयो के राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए महत्त्व को देखते हुए और विशाल श्रम-शक्ति के लिए रोजगार को दृष्टि मे रखते हुए, इनको सहायता करनी आवश्यक थी। भारत सरकार ने भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण निगम की स्थापना अप्रैल 1971 मे की ताकि यह बीमार इकाइयो (Sick units) की विशेष समस्याओ की देखभाल कर सके और उनके पुनर्निर्माण और पुन स्थापन के लिए सहायता उपलब्ध करा सके। यदि इस उद्देश्य के लिए आवश्यक हो, तो इन इकाइयो का प्रबन्ध भी अपने हाथ मे ले सकता है और अध:सरचना सुविधाएँ (Infrastructural facilities) अर्थात् परिवहन, विपणन आदि का विकास कर सकता है।

अगस्त 1984 मे भारत सरकार द्वारा एक कानून पास किया गया जिसके आधीन भारतीय औद्योगिक पुनर्निमाण निगम को भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक के रूप मे परिवर्तित कर दिया गया। भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक (Industrial Reconstruction Bank of India) की स्थापना मार्च 1985 मे हुई और इसने निगम के सब काम अपने ऊपर ले लिए। अब यह बैंक औद्योगिक पुनरुत्थान के लिए मुख्य अखिल भारतीय उधार एव पुनर्निर्माण एजेन्सी बन गया है, जो औद्योगिक विकास मे सहायता देता है और इसे प्रोन्नत करता है और औद्योगिक फर्मों का पुनरुत्थान भी करता है।

1993-94 के दौरान, IRBI ने 340 करोड रुपए के सावधि ऋणो (Term loans) की स्वीकृति दी जो आधुनिकीकरण, विशाखन, विस्तार, नवीनीकरण आदि के लिए दिए गए। इससे पहले औद्योगिक पुनर्निमाण निगम ने सावधि ऋणो के रूप मे टैक्सटाइल्ज, इजीनियरिंग, खनन एवं ढलाई उद्योगो मे सावधि ऋणो के रूप मे बीमार/बन्द इकाइयो को सहायता दी। वित्तीय सहायता देते हुए, पुनर्निर्माण बैंक आधुनिकीकरण को क्रिया को बनाए रखने, उत्पादक क्षमता को उन्नत करने और औद्योगिक इकाइयो की तकनालाजीय उन्नति पर बल देता है। इस बैंक का औद्योगिक पुनरुत्थान करने मे महत्त्वपूर्ण योगदान है। उदाहरणार्थ 1988-89 के दौरान भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक द्वारा सहायता दी गई 263 इकाइयो के औद्योगिक उत्पादन का मूल्य 9,500 करोड रुपए था और इनमे लगभग 4 लाख व्यक्तियो को रोजगार प्राप्त था। कुल रूप मे, इस बैंक ने मार्च 1994 तक बीमार और कमजोर इकाइयो को 2,160 करोड रुपये को सहायता को स्वीकृति दी जिसमे से 1,480 करोड रुपये वितरित किए गए।

इस बैंक ने अपनी क्रियाओ का विस्तार सहायक क्षेत्रो अर्थात् परामर्श सेवाओ, व्यापारिक बैंकिग (Merchant Banking) और उपस्कर पट्टेदारी (Equipment leasing) मे कर लिया है। ये सब क्रियाएँ बीमार औद्योगिक इकाइयो के पुन स्थापन से सम्बन्धित हैं। अपनी परामर्श सेवाओ द्वारा यह बैंको तथा वित्तीय सस्थाओ को उन बीमार इकाइयों की सम्पत्ति के सही मूल्य का अनुमान लगाने मे सहायता करता है जो अपने पुनरुत्थान के लिए सहायता चाहते हैं। अपनी व्यापारिक बैंकिग सेवाओ द्वारा, IRBI कई इकाइयो के विलयन और पुनर्निर्माण की क्रिया मे सहायता करता है। उपस्कर-पट्टेदारी वास्तव मे बैंक की भाडा-खरीद योजना का विस्तार ही है।

8. भारतीय निर्यात-आयात बैंक
(The Export-Import Bank of India)

भारतीय निर्यात-आयात बैंक की स्थापना जनवरी 1, 1982 मे हुई ताकि वह भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के अन्तर्राष्ट्रीय वित प्रभाग की क्रियाओ को सभाल सके और नियातको एव आयातको को वित्तीय सहायता उपलब्ध करा सके। इसके अतिरिक्त, इसे उन सभी वित्तीय सस्थाओ के काम का समन्वय करने का कार्य भी सौंपा गया जो वस्तुओ एव सेवाओ के निर्यात एव आयात के लिए वित्त जुटाते हैं। यह बैंक वाणिज्य बैंको एव वित्तीय सस्थानो को उनकी निर्यात-आयात वित्त प्रबन्ध क्रियाओ के विरुद्ध पुनर्वित्त सुविधाएँ भी उपलब्ध कराता है।

निर्यात-आयात बैंक के पूँजी साधन

इस बैंक को अधिकृत पुजी 200 करोड रुपए है और इसकी परिदत्त पूजी 100 करोड रुपए है जो पूर्णतया केन्द्र सरकार द्वारा पूरित की गई। बैंक अतिरिक्त साधन गतिमान करने के लिए भारत सरकार एव रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया से उधार ले सकता है और बाजार मे बाड तथा ऋणपत्र जारी करके भी साधन प्राप्त कर सकता है। यह अन्य देशो से विदेशी मुद्रा भी प्राप्त कर सकता है।

निर्यात-आयात बैंक (Exim Bank) के कार्य निम्नलिखित है–

(*i*) न केवल भारत अपितु तृतीय विश्व के देशो के लिए भी इन वस्तुओ तथा सेवाओ के नियात एव आयात के लिए वित्त का प्रबन्ध करना,

(*ii*) पट्टे के आधार पर नियात एव आयात का वित्त-प्रबन्ध,

(*iii*) विदेशो मे साझे उद्यमो (*Joint ventures*) के लिए वित्त प्रबन्ध,

(*iv*) भारतीय पार्टियो को उधार उपलब्ध कारना ताकि वे विदेशो मे साझे उद्यमो की हिस्सा-पूँजी मे योगदान दे सक,

(*v*) सीमित रूप मे व्यापारिक बैंकिग के कार्यों को करना। इनमे शामिल हैं–नियात या आयात म लगी हुई

कम्पनियो के स्टॉक, हिस्सो, बांडो या ऋणपत्रो को हामीदारी (Underwriting) करना,

(vi) निर्यात या आयात के लिए पार्टियो को तकनीकी, प्रशासनिक एव वित्तीय सहायता प्रदान करना।

इन कार्यों के अतिरिक्त, निर्यात-आयात बैंक व्यापारिक बैंकिग एव विकास-बैंकिग के कार्य भी करता है। अत यह बैंक भारत के निर्यात-प्रोत्साहन प्रयास को प्रोन्नत करने वाला शिखर सस्थान है। इस बैंक द्वारा 1982 मे 240 करोड रुपए की सहायता प्रदान की गई परन्तु यह राशि 1992-93 मे बढकर 1,600 करोड रुपए हो गई पर 1993-94 मे गिरकर 650 करोड रुपये हो गयी।

9. उभरते हुए वित्तीय मध्यवर्ती
(Emerging Financial Intermediaries)

हाल ही के वर्षो मे, विशेषकर अस्सी के दशक के मध्य मे, भारत के वित्तीय क्षेत्र मे सरचनात्मक परिवर्तन हुआ है। जोखिम पूजी, उधार और पट्टेदारी आदि के क्षेत्र मे व्यापार और वाणिज्य की आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए नये सस्थान कायम किए गए हैं। अभी ये सस्थान बालावस्था मे हैं। हम सक्षेप मे उनके बारे मे जानकारी देगे और उनके कार्यों का उल्लेख करेंगे।

1 जोखिम पूजी एवं तकनॉलाजी निगम लि० (Risk Capital and Technology Corporation Ltd.)–मार्च 1975 मे भारतीय औद्योगिक वित्त निगम ने जोखिम पूजी फाउन्डेशन (Risk Capital Foundtion) को जारी करने का दायित्व लिया ताकि नये उद्यमकर्ताओ जिनमे तकनॉलाजी-विशेपज्ञ और पेशेवर भी शामिल थे, सहायता प्रदान की जा सके जिससे वे बिना ब्याज के ऋणो या नाममात्र ब्याज पर ऋणो के आधार पर औद्योगिक प्राजैक्ट प्रोन्नत कर सके। उद्यमकर्ताओ को प्रोत्साहन देने के लिए जोखिम पूजी फाउन्डेशन को जनवरी 1988 मे जोखिम पूजी *एव तकनॉलाजी निगम लिमिटिड* मे परिवर्तित कर दिया गया। इस निगम की औद्योगिक क्षेत्र के लिए तीन योजनाएं हैं जोखिम पूजी योजना, तकनॉलाजी प्रोन्नति योजना और उद्यम पूजी योजना (Venture capital scheme)। जोखिम पूजी योजना के आधीन, इस निगम द्वारा मार्च 1994 तक 36 मध्यम एव बडे प्राजैक्टो को 36 करोड रुपये की सहायता की स्वीकृति दी गयी। ये प्राजैक्ट या तो नयी तकनॉलाजी पर *आधारित थे या नये प्रयोगो पर।* इनमे शामिल थे एण्टी-बाओटिक ड्रग्ज, रेडियो पेजिग प्रणालिया, पे-फोन (Pay phones), कैल्सियम सिलिकेट ब्रिक्स (Calcium silicate bricks) ग्रेनाइट और सगमरमर ससाधन मशीनरी आदि।

अपनी तकनॉलाजी वित्त एव विकास योजना के आधीन, इस निगम ने अभी तक 19 करोड रुपये की सहायता उच्च जोखिम वाले प्राजैक्टो को दी है। इनमें उल्लेखनीय हैं : कृत्रिम बुद्धि का विकास, सॉफ्टवेयर-विकास, शैक्षणिक यन्त्रमानव (Educational Robots), सकर बीज आदि।

उद्यम पूजी इकाई योजना के आधीन, इस निगम ने कम्पनियो के विकास और नयी तकनॉलाजी के वाणिज्यीकरण, नये उत्पादो एव वस्तुओ के चालू करने आदि के लिए सहायता दी है। मार्च 1994 तक इस योजना के आधीन 68 करोड रुपये की सहायता की स्वीकृति प्रदान की गयी।

2. भारतीय तकनॉलाजी विकास एवं सूचना कम्पनी (Technology Development and Information Company of India)–यह एक तकनॉलाजी उद्यम वित्त कम्पनी है जो कि 1989 में स्थापित की गयी ताकि नये तकनॉलाजी उद्यमों (Techology ventures) के लिए प्राजैक्ट वित्त प्रदान कर सके। मार्च 1994 तक इस कम्पनी द्वारा 107 करोड रुपये की सहायता उपलब्ध करायी गयी। इस कम्पनी ने कम्प्यूटरो, रसायन-पौलिमर, ड्रग्ज, बायोतकनॉलाजी, इलैक्ट्रिक, इलैक्ट्रानिक्स, टेलीकाम, पर्यावरण इजीनियरिंग, अपारम्परिक ऊर्जा आदि की औद्योगिक इकाइयो के लिए सहायता प्रदान की।

3. अध संरचना पट्टेदारी एवं वित्त सेवा लि० (Infrastructure Leasing and Financial Services Ltd.)–*यह निगम 1988 मे स्थापित किया गया* और इसका मुख्य उद्देश्य यन्त्रो की पट्टेदारी (Leasing equipment) और अध सरचना का विकास था। इस कम्पनी ने केन्द्र तथा राज्यीय सरकारो की सहायता से बहुत से अध सरचना प्राजैक्ट सुनिश्चित किए हैं। 1992-93 के दौरान इसने वाणिज्यीकरण (Commercialisation) एवं अध सरचना विकास मे महत्त्वपूर्ण प्रगति की है। यह *विभिन्न सरकारी एजेन्सियो के साथ मिलकर सडक-मार्गों,* पावर-जनन, टैली-सचार, जल-आपूर्ति, जल परिवहन सम्बन्धी अध सरचना का विकास कर रहा है।

विनियोग-बैंकिग (Investment banking) के क्षेत्र में यह निगम व्यापारिक बैंकिग (Merchant Banking) का कार्य करता है और इसने अपने निगमीय ग्राहको की वित्त आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए विक्रय-योग्य प्रतिभूतियो (Marketable securities) के बेचने मे मुख्य कार्यभाग अदा किया है। यह निगम सरकारी प्रतिभूतियो, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो के बाडो, निगमीय ऋणपत्रो (Corparate bonds) और इकाइयो के व्यापार मे सक्रिय भाग लेता है।

4 भारतीय उधार क्रमांकन सूचना सेवा लि० (Credit Rating Information Services of India)–इसकी स्थापना एक उधार क्रमाकन एजेन्सी के रूप में 1988 मे की गयी। इसका कार्य निश्चित कालीन जमा प्रोग्रामो, परिवर्तनीय एव अपरिवर्तनीय ऋणपत्रो का क्रमाकन (Rating) और कम्पनियो की उधारपात्रता का मूल्याकन भी करना है। 1993 तक इसके द्वारा 558 ऋण-उपकरणो (Debt Instruments) का जो 442 कम्पनियो द्वारा जारी किए गए और जो 30,000 करोड रुपये की राशि से सम्बन्धित थे का क्षमता-मूल्याकन (Rating) किया गया। इसने भारतीय कम्पनियो को सूचना उपलब्ध कराने के लिए कार्ड-सेवा (Card Service) का विकास किया है। इस कार्ड मे कम्पनी के महत्त्वपूर्ण व्यापार सम्बन्धी अगो के बारे में सूचना उपलब्ध करायी जाती है।

इसके अतिरिक्त इस कम्पनी ने वाणिज्यक पत्र प्रोग्रामो (Commercial Paper Programmes) के क्रमाकन का कार्य भी किया है और 78 कम्पनियो के मूल्याकन का काय भी पूरा कर लिया है। पहली बार इस कम्पनी ने सिटी बैंक (Citi Bank) के आटो-ऋण (Auto-loan) का श्रेणी-निर्धारण एक परिसम्पत पुष्ट प्रतिभूति के रूप मे किया। 1992-93 मे इसने बैंकिग-क्रमाकन-सेवाओ (Banking Rating Services) का कार्य प्रारम्भ किया।

इस कम्पनी की सेवाओ की अन्य देशो मे भी सराहना की जा रही है। 1991-92 मे इस कम्पनी ने अन्य देशो की कम्पनियो को उधार-क्षमता-मूल्याकन सम्बन्धी तकनीकी सहायता एव प्रशिक्षण दिया। इसे मलेशिया इस्राईल इन्डोनेशिया, पाकिस्तान और श्रीलका से इस कार्य के लिए निवेदन प्राप्त हुए हैं।

5 भारतीय स्टाकधारी निगम (Stock Holding Corporation of India)–इस निगम का मुख्य उद्देश्य हिस्सो और अन्य प्रतिभूतियो के स्वामित्वान्तरण के लिए बहीखाता प्रविष्टि प्रणाली (Book entry system) चालू करना है ताकि वर्तमान प्रणाली का जिसमे अत्यधिक कागजी कार्यवाही करनी पडती है, प्रतिस्थापन किया जा सके। आज यह निगम बहुत-सी बाजार-क्रियाओ का काय करता है और भारतीय इकाई न्यास, भारतीय जीवन बीमा निगम, पारस्परिक निधियो, साधारण बीमा निगम और इनके अनुषगियो के लिए सरक्षणीय सेवाए (Custodial Services) प्रदान करता है। माच 1993 के अन्त तक इस निगम के सरक्षण मे 1 8 करोड स्क्रिप (Scrips) थे। इसने 1992-93 मे 2 810 करोड रुपये की बाजार-क्रियाओ (Market Operations) का कार्य किया भारत सरकार ने यह निर्देश दिया है कि इस निगम को सभी सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको और इनके अनुषगियो एव इनके द्वारा स्थापित पारस्परिक विधियो (Mutual Funds) का कार्य करना होगा।

अन्य सस्थान

अन्य विकासात्मक वित्तीय सस्थानो मे निम्नलिखित का उल्लेख करना होगा–

गृह-निर्माण वित्त (Housing Finance)– भारतीय गृह एव शहरी विकास निगम लि० (Housing and Urban Development Corporation of India) एक राष्ट्रीय स्तर का सस्थान है जो व्यक्तियो और विशेषकर समितियो को गृह-निमाण एव फ्लेट बनाने के लिए ऋण देता है। इस निगम के 70 प्रतिशत ऋण कमजोर वर्गों के लिए आरक्षित होते हैं और निम्न आय वर्गों के लिए 65 प्रतिशत और ग्राम क्षेत्रो के लिए 15 प्रतिशत ऋण दिए जाते हैं। मार्च 1993 तक इस निगम ने 9,419 प्राजैक्टो के लिए जिनकी कुल लागत 12,490 करोड रुपये थी ऋण उपलब्ध कराया, इसमे HUDCO की ऋण-बद्धता 7,745 करोड रुपये की थी। इसके परिणामस्वरूप 55 लाख मकान बनाए जा सके, इनमे से लगभग 46 प्रतिशत ग्राम क्षेत्रो मे स्थित हैं।

गृह विकास वित्त निगम लि० (Housing Development Finance Corporation Ltd.)–एक दूसरा राष्ट्रीय स्तर का गृह-वित्त उपलब्ध कराने वाला सस्थान है। इसकी स्थापना 1977 मे भारतीय उधार एव विनियोग निगम द्वारा की गयी ताकि यह मध्यम एव निम्न आय वर्गों को दीर्घावधि वित्त उपलब्ध करा सके। ये ऋण व्यक्तियो को या सहकारी समितियो को मकानो के निर्माण या क्रय के लिए देशभर मे दिए जाते हैं। मार्च 1993 तक, इस निगम ने 2 400 नगरो मे 7 2 लाख मकानो के लिए 4,470 करोड रुपये के ऋण उपलब्ध कराए।

भारतीय जहाजरानी उधार एव विनियोग कम्पनी लि० (Shipping Credit and Investment Company of India)–जहाजो की प्राप्ति के लिए विशेष रूप मे उधार दिया करती थी। अब इसने अपनी क्रियओ का विस्तार अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रो के लिए कर लिया है परन्तु इसका विशेष बल निर्यात एव अध सरचना (Infrastructure) को बढावा देने पर है। इस विशाखन के परिणामस्वरूप अब यह कम्पनी बहुत से उद्योगो को ऋण देती है–जहाजरानी एव मछली उद्योगो के अतिरिक्त, आटोमोबाइल और इसके अनुषगी, रसायन एव पेट्रो-रसायन, इलैक्ट्रानिक्स, सूचना तकनॉलाजी, पावर-जनन और वितरण, इस्पात और इस्पात के उत्पाद, अन्य धातु, टेक्सटाइल्ज और खाद्य-ससाधन (Food processing)।

किन्तु जहाजरानी एव मछली उद्योग इस कम्पनी की प्राथमिकता बने हुए हैं।

भारतीय पर्यटन वित्त निगम लि० (Tourism Finance Corporation of India)–अन्तत भारत सरकार ने देश मे पर्यटन उद्योग के विकास एव प्रोन्नति के लिए भारतीय पर्यटन वित्त निगम एक विशिष्ट वित्त सस्थान के रूप मे कायम किया। पारम्परिक पर्यटन सम्बन्धी प्राजैक्टो के अतिरिक्त यह निगम गैर-पारम्परिक प्रौजक्टो जैसे मनोरजन पार्कों रस्सा मार्गों (Rope ways) कार किराया सेवाओ देशीय जल परिवहन की नावा आदि के लिए ऋण उपलब्ध कराता है। मार्च 1994 तक इस निगम द्वारा 525 करोड रुपये के कुल ऋणो को स्वीकृति दी गयी।

10 सार्वजनिक क्षेत्र के सावधि-उधार सस्थान-एक मूल्याकन (Public Sector Term lending Institutions—an *Evaluation*)

हमने विभिन्न सस्थानो का विवरण दिया है जो स्वतत्रता-प्राप्ति के पश्चात् औद्योगिक वित्त मे विशेष कार्यभाग अदा करते रहे हैं। इनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है–

(क) अखिल भारतीय विकास बैंक–(*i*) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (*ii*) भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (*iii*) भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (*iv*) भारतीय औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक (*v*) भारतीय औद्योगिक ऋण तथा विनियोग निगम।

(ख) राज्यीय स्तर के सस्थान–(*i*) राज्यीय वित्त *निगम (ii) राज्यीय औद्योगिक विकास निगम।*

(ग) विशिष्ट वित्तीय सस्थान–(*i*) जोखिम पूजी एव तकनॉलाजी निगम (*ii*) भारतीय तकनॉलाजी विकास एव सूचना कम्पनी (*iii*) भारतीय हिस्सेदारी निगम।

(घ) विनियोग सस्थान–(*i*) भारतीय इकाई न्यास (*ii*) जीवन बीमा निगम (*iii*) साधारण बीमा निगम।

सहायता-प्रदत्त उद्योगो की सख्या और स्वीकृत एव वितरित ऋणो की मात्रा मे लगातार वृद्धि हुई है। निजी क्षेत्र द्वारा प्राप्त की गयी प्रगति मुख्यत इन सस्थानो द्वारा उपलब्ध कराए गए वित्त का परिणाम है।

चौथी योजना के पश्चात् इन सस्थानो द्वारा स्वीकृत एव वितरित ऋणा मे तेजी से वृद्धि हुई है, जैसा कि तालिका 1 से सुव्यक्त है–1970-71 मे 230 करोड रुपये, 1980-81 में 2,550 करोड रुपये और 1993-94 मे 42,450 करोड रुपये।

तालिका 1 सावधि-उधार सस्थानो द्वारा स्वीकृत सहायता

करोड रुपये

वर्ष	राशि
1970 71	230
1980 81	2 550
1990 91	19 420
1993 94	42 450

यह बात स्मरण रखने योग्य है कि सार्वजनिक क्षेत्र के वित्तीय सस्थान, विशेषकर भारतीय औद्योगिक विकास बैंक भारतीय औद्योगिक ऋण एव विनियाग निगम और भारीतय औद्योगिक वित्त निगम ने नव-स्थापित कम्पनियो को उनकी ब्लाक-पूजी (Block Capital) आवश्यकताओ के लिए प्रत्यक्ष *वित्तीय सहायता दी।* वर्तमान कम्पनियो के लिए प्रत्यक्ष वित्तीय सहायता उनकी क्षमता-विस्तार एव *आधुनिकीकरण योजनाओ आदि के लिए दी जाती है।*

इसके अतिरिक्त, इन वित्तीय सस्थानो ने लघु स्तर उद्योगो के विकास पिछडे क्षेत्रो के विकास और नये/छोटे उद्यमकर्ताओ के प्राजैक्टो के लिए सहायता प्रदान की है जो समय के साथ-साथ लगातार बढती ही गयी है। उदाहरणार्थ पिछडे हुए जिलो मे स्थित प्राजैक्टो के सदर्भ में सावधि-उधार सस्थाओ से स्वीकृत एव वितरित ऋण की मात्रा मे हाल ही के वर्षों मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है।

38

भारत का विदेशी व्यापार
(THE FOREIGN TRADE OF INDIA)

1. विकासशील अर्थव्यवस्था में विदेशी व्यापार का महत्त्व

1947 से पूर्व भारत ब्रिटिश शासन का एक उपनिवेश (Colony) था और उसके विदेशी व्यापार का ढाचा एक प्रकार का औपनिवेशिक ढाचा ही था। भारत औद्योगिक देशो, विशेषकर इंग्लैण्ड को खाद्य पदार्थों और कच्चे माल का नियात करता था और उनसे निर्मित वस्तुओ का आयात करता था। निमित वस्तुओ के लिए विदेशो पर निर्भर होने के कारण देश मे औद्योगीकरण प्रगति न कर सका बल्कि ब्रिटिश निर्मित वस्तुओ द्वारा भारतीय माल से घोर प्रतिस्पर्द्धा के कारण देशी हस्तशिल्पो (Handicrafts) को भारी धक्का लगा।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् विकासशील अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओ के लिए व्यापार के औपनिवेशिक ढाचे को बदलना अनिवार्य था। जो भी अर्थव्यवस्था विकास प्रोग्राम को कार्यान्वित करने का निर्णय करती है उसे अपनी उत्पादन क्षमता (Productive capacity) को तेजी से बढाना पडता है। इस कारण विकास की आरम्भिक अवस्थाओ मे मशीनरी तथा अन्य सामान जो देश में बनाया नहीं जा सकता, का आयात करना पडता है। ऐसे आयात, जो उत्पादन के कुछ क्षेत्रो मे नई क्षमता स्थापित करते हैं या उत्पादन के अन्य क्षेत्रो मे क्षमता का विस्तार करते हैं विकासात्मक आयात (Developmental imports) कहलाते हैं। उदाहरणार्थ इस्पात सयत्र, इजन बनाने के कारखाने, जल-विद्युत परियोजनाएँ स्थापित करने के लिए किया गया आयात विकासात्मक आयात ही है। दूसरे एक विकासशील देश जो औद्योगीकरण करने के लिए प्रयत्नशील हो को देश मे स्थापित क्षमता के प्रयोग के लिए कच्चे माल तथा अन्तवर्ती वस्तुओ (Intermediate goods) का आयात करना पडता है। ऐसा आयात, जो देश मे स्थापित उत्पादन क्षमता का पूरा प्रयोग करने के लिए किया जाता है, परिपोषक आयात (Maintenance imports) कहलाता है। विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए परिपोषक आयात बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योकि बहुत सी औद्योगिक परियोजनाएँ परिपोषक आयात के अभाव के कारण रुक जाती हैं। किसी विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए विकासात्मक और परिपोषक आयात वह सीमा निर्धारित करते हैं जिसमे किसी समय-विशेष पर औद्योगीकरण किया जा सकता है। इस आयात के अतिरिक्त, एक विकासशील देश को ऐसी उपभोग वस्तुओ का आयात करना पडता है जिनका सभरण औद्योगीकरण के काल मे कम होता है। ऐसे आयात अस्फातिकारी (Anti inflationary) होते हैं क्योकि वे उपभोग वस्तुओ की दुर्लभता को कम करते हैं। स्वतन्त्रता-उपरान्त काल मे भारत मे खाद्यान्नो का आयात एक ऐसा उदाहरण है जिसके कारण देश मे कीमतो की वृद्धि अपेक्षाकृत कम हुई।

स्वाभाविक ही है कि विकास के आरम्भिक वर्षों मे आयात मे तीव्र दर से वृद्धि हो, परिणामत विकासशील देश का व्यापार-शेष (Balance of trade) बहुत अधिक प्रतिकूल हो जाएगा। विदेशी सहायता मे विकासशील देश को विकास का भार स्वय सहन करना पडता है, आयात लोचहीन (Inelastic) होने की स्थिति मे किसी विकासशील अर्थव्यवस्था को अपने नियात को बढाना अनिवार्य हो जाता है ताकि अपने बढते हुए विदेशी ऋण को कम किया जा सके। परम्परा से भारत जैसे अल्पविकसित देश खाद्य पदार्थों और कच्चे माल के निर्यातक (Exporters) रहे हैं। जैसे-जैसे आर्थिक विकास प्रगति करता है कच्चे माल का नियात कम हो जाता है क्योकि देश मे बढते हुए उद्योगो के लिए कच्चे माल की माग बढ जाती हैं। जनसख्या मे तीव्र वृद्धि के कारण नियात के लिए उपलब्ध खाद्य अतिरेक (Food surplus) या तो बहुत कम हो जाता है या घाटे मे परिवर्तित हो जाता है। परिणामत विकासशील अर्थव्यवस्था को अपने निर्यात बढाने के लिए नई वस्तुएँ और नए बाजार ढूढने पडते हैं। अल्पविकसित देश मे औद्योगीकरण की प्रगति के लिए विकसित देश व्यापार-अवरोधको (Trade barriers) को कम करके और इसको उपभोग वस्तुओ और अर्द्ध-निर्मित वस्तुओ के

निर्यात को स्वीकार करके सहायता कर सकते हैं। अल्पविकसित देश के लिए विदेशी सहायता महत्त्व रखती है परन्तु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण विदेशी व्यापार है। अत अल्पविकसित देशो द्वारा जो नया नारा बुलन्द किया गया है, वह है 'व्यापार और सहायता'।

2. स्वतन्त्रता-उपरान्त काल में भारत का विदेशी व्यापार

स्वतन्त्रता-उपरान्त काल मे भारत के विदेशी व्यापार का अध्ययन करने के लिए इस समस्त अवधि को छ कालो मे विभक्त करना सुविधाजनक होगा-(*i*) 1951-52 से 1955 56-प्रथम पचवर्षीय योजना काल (*ii*) 1956 57 से 1960-61-द्वितीय योजना काल, (*iii*) 1961-62 से *1965-66-तृतीय योजना काल और (iv) 1966 का* अवमूल्यन ओर 1973-74 नक का काल, (*v*) 1973-74 और 1980-81 के बीच का काल और (*vi*) 1980-81 के बाद का काल।

आयोजन की पूर्वसध्या मे भारत के विदेशी व्यापार के निर्यात की अपेक्षा आयात कही अधिक थे। आयात मे वृद्धि के कई कारण थे-(क) युद्धकाल मे अवरुद्ध माग और युद्ध-उपरान्त काल मे लगाए गए विभिन्न नियन्त्रणो एव प्रतिबन्धो के परिणामस्वरूप आयात मे वृद्धि, (ख) विभाजन के फलस्वरूप खाद्य तथा भूल कच्चे मालो अर्थात् पटसन और रूई की दुर्लभता के कारण आयात मे वृद्धि, और (ग) प्रतिस्थापन (Replacement) और विकास परियोजनाओ की आवश्यकताओ की दृष्टि से मशीनरी तथा अन्य सामान *के आयात मे वृद्धि।*

1951-52 से 1955-56-प्रथम योजना काल

इस काल मे आयात का ओसत वार्षिक मूल्य 730 करोड रुपए था ओर निर्यात का 622 करोड रुपए। इस प्रकार *औसत वार्षिक व्यापार घाटा 108 करोड रुपए था।* व्यापार के घाटे का मुख्य कारण औद्योगीकरण के प्रोग्रामो के कारण जो इस काल मे बहुत बढ गए थे, पूजी वस्तुओ के आयात मे वृद्धि था। कुल आयात के प्रतिशत रूप मे कच्चे मालो के आयात मे कुछ कमी हुई। इस काल मे 595 करोड रुपए के खाद्यान्नो का आयात किया गया।

1956-57 से 1960-61-द्वितीय योजना काल

दूसरी योजना के दौरान ओद्योगीकरण का एक विशाल प्रोग्राम प्रारम्भ किया गया। इसके अन्दर इस्पात कारखानो की स्थापना, रेलो का विस्तार तथा नवीकरण (Renovation), कई उद्योगो का आधुनिकीकरण समाविष्ट थे। परिणामत आयात की मात्रा बहुत अधिक बढ गई। इसके अतिरिक्त विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए परिपोषक आयात (Maintenance imports) की आवश्यकता से हमारा आयात और भी बढ गया। दूसरी योजना मे खाद्यान्नो का भी लगातार आयात करना पडा और इस अवधि मे कुल 805 करोड रुपये के खाद्यान्नो का आयात किया गया।

तालिका 1 पहली तीन योजनाओं एवं वार्षिक योजनाओ मे व्यापार-क्षेत्र

(करोड़ रुपए)

	आयात	निर्यात	व्यापार शेष
प्रथम योजना (1951-52 से 1955 56)	3 651	3,109	-542
वार्षिक औसत	**730**	**622**	**-108**
दूसरी योजना (1955-56 से 1960-61)	5,402	3,063	-2,339
वार्षिक औसत	***1,080***	***613***	***-467***
तीसरी योजना (1960-61 से 1965 66)	6 119	3,735	-2,384
वार्षिक औसत	**1,224**	**747**	**-477**
वार्षिक योजनाएँ (1966-67 से 1968-69)	5 775	3 708	-2,067
वार्षिक औसत	**1,925**	**1,236**	**-689**

दूसरी योजना मे निर्यात द्वारा औसत वार्षिक प्राप्ति प्रथम योजना काल की अपेक्षा कम थी जो यह जाहिर करती है कि निर्यात विविधता और निर्यात प्रोत्साहन (Export promotion) के प्रयास सफल न हो पाए। परिणामत दूसरी योजना के दौरान भारत में औसत वार्षिक प्रतिकूल व्यापार-शेष 467 करोड रुपए था जोकि प्रथम योजना की वार्षिक औसत अर्थात् 108 करोड रुपए से *कहीं अधिक था।*

1961-62 से 1965-66 तीसरी योजना काल

तीसरी योजना के निर्यात सम्बन्धी आँकडो से स्पष्ट है कि औसत वार्षिक निर्यात 747 करोड रुपए था। इसके विरुद्ध, ओसत वार्षिक आयात 1,224 करोड रुपए था। (देखिए तालिका 1) इसके मुख्यत. दो कारण थे-प्रथम, प्रतिरक्षा की आवश्यकताएँ बढ गई और द्वितीय, सूखे के कारण खाद्यान्नो की भारी मात्रा का आयात करना पडा।

तालिका 2 अवमूल्यन के बाद के काल मे व्यापार क्षेत्र

(करोड़ रुपयो में)

वर्ष	आयात	निर्यात	व्यापार शेष
चौथी योजना			
1969 70	1 582	1 413	169
1970 71	1 634	1 535	99
1971 72	1 824	1 607	217
1972 73	1 867	1 971	104
1973 74	2 955	2 523	432
कुल (1969 70 से 1973 74)	9 862	9 049	813
वार्षिक औसत	1 972	1 810	162
पाचवीं योजना (1974 75 से 1977 78)			
1974 75	4 519	3 329	1 190
1975 76	5 262	4 043	1 222
1976 77	5 074	5 146	72
1977 78	6 025	5 404	621
कुल (1974 75 से 1977 78)	20 924	17 888	−2 961
वार्षिक औसत	5 231	4 472	740
1978 79	6 814	5 726	1 088
1979 80	8 908	6 459	2 449
छठी योजना (1980 81 से 1984 85)			
1980 81	12 524	6 711	5 813
1981 82	13 608	7 806	5 802
1982 83	14 356	8 908	5 448
1983 84	15 763	9 872	5 891
1984 85	8 680	11 959	6 721
कुल (1980 81 से 1984 85)	74 931	42 254	29 675
वार्षिक औसत	14 986	9 051	5 935
सातवीं योजना			
1985 86	21 164	11 578	9 586
1986 87	22 669	13 315	9 354
1987 88	25 692	16 396	9 296
1988 89	34 202	20 647	13 555
1989 90	40 642	28 229	12 413
कुल (1985 86 से 1989 90)	1 44 369	90 165	54 204
वार्षिक औसत	28 874	18 033	10 841
1990-91	43 193	32 553	10 640

स्रोत रिजर्व बैंक आफ इण्डिया बुलेटिन मई 1993

1966 का अवमूल्यन और 1973 के बाच की अवधि

1966 मे भारत ने अपने रुपए का 36 5 प्रतिशत को सीमा तक अवमूल्यन किया। अवमूल्यन की घोषणा सूखे के वर्ष मे की गई और इसके बाद का वर्ष भी मौसम की दृष्टि से खराब ही रहा। साथ ही इस वर्ष सरकार ने 59 उद्योगो मे उदार आयात नीति अपनाने की घोषणा की इन सबका सचयी प्रभाव व्यापार शेष के घाटे को और भी बढाना था। चाहे रुपए के अवमूल्यन के पश्चात् 1966 67 और 1967 68 के दौरान निर्यात मे वृद्धि हुई किन्तु आयात के लोचहीन होने के कारण आयात का मूल्य 1967 68 मे एकदम बढकर 2 043 करोड रुपए हो गया। परिणामस्वरूप 1966 67 और 1967 68 के दौरान व्यापार शेष की स्थिति और भी खराब हो गई। 1968 69 और 1969 70 मे अच्छी फसल होने के कारण खाद्यान्न आयात मे महत्त्वपूर्ण

म्मी हुई। इसके अतिरिक्त अवमूल्यन के कारण भी निर्यात-प्रोत्साहन को बल मिला। अत व्यापार शेष जो 1967-68 मे 788 करोड रुपए तक प्रतिकूल था 1968-69 मे कम होकर केवल 373 करोड रुपए तक प्रतिकूल हो गया। 1969-70 मे यह और भी कम हो गया। 1972-73 मे आयात परिसीमन तथा खाद्यान्न के आयात को कम करने और निर्यात प्रोत्साहन (Export promotion) की नीति के परिणामस्वरूप देश मे स्वतन्त्रता उपारन्त काल मे पहली बार व्यापार शेष अनुकूल हुआ। यह एक अभिनन्दनीय प्रवृत्ति थी। परन्तु 1973-74 मे ही इसका प्रभाव गायब हो गया क्योकि बहुत से अन्तर्राष्ट्रीय कारणतत्वो ने पैट्रोलियम पदार्थो इस्पात और अलौह धातुओ उर्वरको और अखबारी कागज की कीमतो को ऊचा चढा दिया। चाहे निर्यात की कीमतो मे वृद्धि से वे 2 523 करोड रुपए के स्तर तक पहुच गए परन्तु आयात की कीमतो मे और तीव्र वृद्धि होने के कारण उनका मूल्य 2 955 करोड रुपए के उच्च स्तर पर पहुच गया। परिणामत व्यापार शेष मे 432 करोड रुपए का घाटा फिर व्यक्त हो गया। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि वार्षिक योजनाओ और तृतीय योजना की तुलना मे चौथी योजना मे व्यापार शेष का घाटा कहीं कम रहा। इस दृष्टि से चौथी योजना का रिकार्ड सतोषजनक समझा जा सकता है।

पाचवीं योजना के दौरान व्यापारिक घाटा

तेल की कीमतो मे वृद्धि जो अक्टूबर 1973 मे प्रारम्भ हुई ने दुनिया भर मे आयात एव निर्यात दोनो के मूल्यो पर भारी प्रभाव डाला। भारत भी इसका अपवाद न रह सका। तालिका 2 से जाहिर है कि पाचवीं योजना के दौरान आयात का मूल्य किस प्रकार बहुत ऊँचे स्तर पर पहुच गया। इसका मुख्य कारण भारत की प्रधान आयात वस्तुओ अर्थात् पैट्रोलियम उर्वरको एव खाद्यान्नो के मूल्य मे तीव्र वृद्धि थी। साथ ही भारत के निर्यात मे भी महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई और वे पाचवीं योजना के प्रत्येक उत्तरोत्तर वर्ष मे बढते ही गए। यह वृद्धि इतनी तीव्र थी कि 1976 77 तक निर्यात बढकर 5 146 करोड रुपए हो गए और वे आयात से 72 करोड रुपए अधिक हो गए। अत भारत के विदेशी व्यापार मे दूसरी बार अतिरेक पैदा हो गया। इसका मुख्य कारण हमारी निर्यातोन्मुख नीति थी। मछली मछलियो से बनी वस्तुओ कॉफी मूगफली सूती-वस्त्र और हस्तशिल्पो के निर्यात मे तीव्र वृद्धि हुई। लोह एव इस्पात के निर्यात मे भी वृद्धि हुई।

1977-78 मे, जनता सरकार द्वारा आयात मे उदारता की नीति अपनाने और निर्यात-तेजी (Export boom) के समाप्त हो जाने के कारण भारत के विदेशी व्यापार मे पुन 621 करोड रुपए का भारी घाटा उत्पन्न हो गया। इस प्रकार पाचवीं योजना (1974-75 से 1977-78 के दौरान) हमारा औसत वार्षिक व्यापार घाटा 740 करोड रुपए हो गया। (देखिए तालिका 2)

छठी एव सातवीं योजना के दौरान व्यापार घाटा

पैट्रोलियम निर्यात करने वाले देशो द्वारा पैट्रोलियम की कीमत मे और अधिक वृद्धि कर देने के कारण, हमारा आयात-बिल जो 1978-79 मे 6,814 करोड रुपए था, बढकर 1979-80 मे 8,908 करोड रुपए हो गया। इसके विरुद्ध निर्यात जो 1978-79 मे 5,726 करोड रुपए थे, बढकर 1979-80 मे केवल 6,459 करोड रुपए तक ही पहुच सके अर्थात् इनमे केवल 12 8 प्रतिशत की वृद्धि हुई। परिणामत 1979-80 मे हमारा व्यापार घाटा 2,449 करोड रुपए हो गया। 1980-81 मे स्थिति और भी गम्भीर हो गई और व्यापार-घाटा 5,813 करोड रुपए के उच्च स्तर पर पहुच गया। 1981-82 और 1982-83 के दौरान भी व्यापार घाटा क्रमश 5,802 करोड रुपये और 5,448 करोड रुपये रहा। आयात और निर्यात के आकडो की समीक्षा से पता चलता है कि इसके बावजूद पैट्रोलियम तथा इससे सम्बन्धित पदार्थों का आयात जो 1980-81 मे 5,267 करोड रुपए था गिरकर 1983 84 मे 4,830 करोड रुपए हो गया (क्योकि एक ओर तो तेल की अन्तर्राष्ट्रीय कीमते गिर रही थीं और दसरे तेल एव प्राकृतिक गैस आयोग द्वारा रूक्ष तेल के देशीय उत्पादन को बढाया गया) फिर भी 1983-84 मे व्यापार-घाटा 5,891 करोड रुपए था। इस स्थिति की व्याख्या इस बात से होती है कि विदेशी मुद्रा की जो बचत पैट्रोलियम के आयात मे कमी के कारण हुई, वह आयात-उदारता (Import liberalisation) की नीति अपनाने के कारण गैर-पैट्रोलियम आयात मे वृद्धि के परिणामस्वरूप कट गई। छठी योजना (1980-81 से 1984-85) के दौरान 14 986 करोड रुपए के औसत वार्षिक आयात के विरुद्ध 9 051 करोड रुपए का औसत वार्षिक निर्यात किया गया। इस प्रकार छठी योजना के दौरान 5,935 करोड रुपए का भारी औसत वार्षिक व्यापार घाटा व्यक्त हुआ और यह राष्ट्र के लिए चिन्ता का विषय रहा।

सातवीं योजना (1985-86 से 1989-90) के दौरान प्राप्त आकडो से पता चलता है कि काग्रेस (इ) द्वारा

अन्धाधुन्ध उदारीकरण की नीति जिसका बाद मे जनता दल सरकार ने भी अनुमोदन किया के परिणामस्वरूप औसत वार्षिक आयात बढकर 28,874 करोड रुपए हो गए, परन्तु औसत निर्यात केवल 18,033 करोड रुपए तक पहुच सके। अत 10 841 करोड रुपए का औसत वार्षिक अभूतपूर्व घाटा पैदा हो गया। इतने भारी व्यापार घाटे के उत्पन्न होने के कारण भारत सरकार को मजबूर होकर विश्व बैंक/अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के पास 670 करोड डालर के ऋण के लिए प्रार्थना-पत्र भेजना पडा। भारत सरकार को बढते हुए आयात को रोकने के लिए भी आयात-लाइसेंसो की उदार नीति पर अकुश लगाना पडा।

1990–91 के पश्चात भारत का विदेशी व्यापार

1990-91 मे व्यापार घाटा 10,638 करोड रुपए रहा। इसम सन्देह नहीं कि हमारे निर्यात-प्रोत्साहन के प्रयास के कारण निर्यात बढकर 32,558 करोड रुपए हो गए अर्थात् इनम 17 7 प्रतिशत की वृद्धि हुई, परन्तु खाडी युद्ध के परिणामस्वरूप सरकार आयात को सीमित न कर सकी और य बढकर 43 193 करोड रुपए के उच्च स्तर पर पहुच गए अथात् इनमे 22 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। परिणामत व्यापार-शेष का घाटा 1990–91 मे एक दम बढकर 10 635 करोड रुपये हो गया।

1991-92 के दौरान यू एस डालरो के रूप मे निर्यात मे 1 5 प्रतिशत की कमी हुई और वे 1991–92 म 1 815 करोड डालर थे। परन्तु आयात-सकुचन (Import compression) अधिक तीव्र था और इनम 19 4 प्रतिशत की गिरावट आई–1990-91 म 2,407 करोड डालर से गिरकर 1991-92 मे 1,941 करोड डालर। परिणामत व्यापार-घाटा 1991-92 मे 155 करोड डालर हो गया जबकि यह 1990-91 मे 593 कराड डालर था। इसके बावजूद कि सरकार ने नई व्यापार नीति मे नियात बढाने के लिए बहुत से उपाय किए–जैसे निर्यात-आयात स्क्रिप्स (Exim Scrips) की इजाजत देना, नकद क्षतिपूर्ति आलम्बन (Cash compensatory support) और रुपए का दो चरणो मे अवमूल्यन-परन्तु ये सभी उपाय निर्यात को प्रोत्साहित करने मे विफल रहे। सामान्य करन्सी क्षेत्र (General Currency Area) में भी डालर के रूप मे निर्यात मे केवल 6 3 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसकी तुलना मे रुपया करन्सी क्षेत्र मे 1991–92 क दौरान नियात म 42 5 प्रतिशत की गिरावट आई। इसका मुख्य कारण सोवियत सघ मे कठिन राजनीतिक स्थिति थी जिसका परिणाम इसके विघटन के रूप मे व्यक्त हुआ। परिणामत नियात म गिरावट आयी।

1992-93 के दौरान नियात मे केवल 3 7 प्रतिशत की वृद्धि हुई और निर्यात जो 1991-92 मे 1 787 करोड डालर थे बढकर केवल 1 854 करोड डालर ही हो पाए परन्तु इसके विरूद्ध आयात मे 12 7 प्रतिशत की अपेक्षाकृत कहीं अधिक वृद्धि हुई–वे 1991-92 मे 1 941 करोड डालर से बढकर 1992–93 म 2,188 डालर हो गए। परिणामत व्यापार-घाटा जो 1991–92 मे 154 5 करोड डालर था बढकर 1992–93 मे 334 5 करोड डालर हो गया। बिगडती हुई व्यापार घाटे को परिस्थिति के कई कारण थे–पहला, तेल के आयात मे 13 6 प्रतिशत की वृद्धि हुई और यह 562 4 करोड डालर के उच्च स्तर पर पहुँच गया। दूसरे, आयात-सकुचन (Import compression) क उपाया

तालिका 3 1989–90 से 1994–95 के दौरान भारत का व्यापार-शेष

वर्ष	करोड़ रूपये			करोड़ यू एस डालर		
	निर्यात	आयात	व्यापार-शेष	निर्यात	आयात	व्यापार शेष
1989 90	27 658	35 328	–7 670	1 661 2	2 121 9	–460 7
1990 91	32 558	43 193	–10 635	1 814 5	2 407 3	–592 8
1991–92	44 042	47 851	–3 809	1 786 6	1 941 1	–154 5
1992–93	53 688	63 375	–9 687	1 853 7	2 188 2	–334 5
1993 94	69 751	73 101	–3 350	2 223 8	2 330 6	106 8
1994 95	82 672	89 971	7 297	2 633 1	2 865 4	232 3
1995–96	1 06 465	1 21 647	–15 182	3183 1	3 637 0	453 9
1989 90 से 1995–96 के दौरान वार्षिक औसत वृद्धि दर						
	25 1	22 9		11 4	9 4	

स्रोत भारतीय रिजर्व बैंक बुलेटिन, अप्रैल 1996

की हटाने के कारण आयात में भी वृद्धि हुई और इसमें भी आयात निर्गम बढ़ा। निर्यात क्षेत्र में सामान्य करेन्सी क्षेत्र के निर्यात में 1992-93 के दौरान 10.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसका मुख्य कारण व्यापार एवं विदेशी मुद्रा दर प्रणालियों में उदारीकरण था। परन्तु रुपया भुगतान क्षेत्र (Rupee Payment Area) को किया जाने निर्यात में 1992-93 में 62.2 प्रतिशत की कमी हुई जबकि इसमें पिछले वर्ष भी इसमें 42.5 प्रतिशत की कमी हुई थी। इसका मुख्य कारण भूतपूर्व सोवियत संघ में आर्थिक अनिश्चितताओं का बने रहना था। इसका निर्यात बढ़ाने पर दुष्प्रभाव पड़ा। बम्बई में हुई गड़बड़ और योरोपीय देशों में प्रतिसार की प्रवृत्ति जारी रहने के कारण भी आयात के त्वरण की प्रक्रिया पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा।

1993-94 के दौरान निर्यात प्रोन्नति उपायों (Export promotion measures) के परिणामस्वरूप निर्यात में 19.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई और ये 1992-93 में 1 854 करोड़ डालर से बढ़कर 1993-94 में 2 224 करोड़ डालर हो गए। यह अभिनन्दनीय है। आयात के क्षेत्र में यह देखा गया कि आयात में केवल 6.1 प्रतिशत की वृद्धि हुई और ये 1992-93 में 2 188 करोड़ डालर से बढ़कर 1993-94 में 2 331 करोड़ डालर हो गए। इसके परिणामस्वरूप व्यापार घाटा 1993-94 में केवल 107 करोड़ डालर हो गया जबकि 1992-93 में यह 334.5 करोड़ डालर था।

1994-95 में निर्यात तेजी से बढ़कर 2 633 करोड़ डालर हो गए जबकि ये 1993-94 में 2 224 करोड़ डालर थे अतः इसमें 18.3 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसके विरुद्ध आयात में अपेक्षाकृत अधिक तेजी से 21.7 प्रतिशत की वृद्धि हुई। मूल्य रूप में 1994-95 में आयात 2 865 करोड़ डालर थे। इसके परिणामस्वरूप व्यापार घाटा जो 1993-94 में 107 करोड़ डालर था बढ़कर 1994-95 में 232 करोड़ डालर हो गया। परन्तु विदेशी मुद्रा रिजर्व की स्थिति सुविधाजनक होने के कारण देश इस व्यापार-घाटे को सहन कर सकता है। किन्तु इससे हमें आत्मसन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए और देश को सकारात्मक व्यापार-शेष की स्थिति की ओर बढ़ना चाहिए।

वर्ष 1995-96 के दौरान निर्यात बढ़कर 3 183 करोड़ डालर हो गए जबकि ये 1994-95 के दौरान 2 633 करोड़ डालर थे-डालरों के रूप में इसमें 20.9 प्रतिशत की तीव्र वृद्धि हुई परन्तु निर्यात प्रोत्साहन के लाभ को 1995-96 के दौरान अभूतपूर्व 26.9 प्रतिशत की आयात वृद्धि ने निष्क्रिय बना दिया-आयात जो 1994-95 में 2 865 करोड़ डालर थे बढ़कर 1995-96 में 3 637 करोड़ डालर हो गए।

किन्तु इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि वाणिज्य मन्त्रालय द्वारा दिए गए आँकड़ों में प्रतिरक्षा आयात (Defence imports) शामिल नहीं किए गए हैं। परिणामतः जब रिजर्व बैंक के आँकड़े वास्तविक भुगतान के रूप में उपलब्ध हो जाएँगे तो व्यापार-घाटा और अधिक हो जाएगा। इस सीमा तक व्यापार घाटे के ये आँकड़े अल्पानुमान हैं।

6 वर्षों (1989-90 से 1995-96) की अवधि के लिए यह कहा जा सकता है कि डालर रूप में निर्यात की औसत वार्षिक वृद्धि दर 11.4 प्रतिशत रही और आयात की वृद्धि दर 9.4 प्रतिशत रही। इस प्रवृत्ति को बनाए रखने की आवश्यकता है यदि देश को दीर्घावधि में व्यापार-शेष में आधिक्य कायम करना है ताकि विदेशी ऋण के कारण ब्याज के बढ़ते हुए भार को कम किया जा सके।

एक और ध्यान देने योग्य बात यह है कि रुपये के रूप में निर्यात में 25.1 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि 6 वर्षों (1989-90 से 1995-96) के दौरान हुई और आयात में केवल 22.9 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई। परन्तु निर्यात प्रयासों का अधिकतर भाग तो रुपये में किए गए अवमूल्यन (Devaluation) के प्रभाव को निराकरण करने में ही समाप्त हो गया और आयात के मूल्य में वृद्धि बहुत हद तक अवमूल्यन के कारण ही हुई। जाहिर है कि अवमूल्यन एक अल्पकालीन उपाय है और यह हमारे लगातार चलते हुए व्यापार घाटे की समस्या का कोई स्थायी हल प्रस्तुत नहीं करता। इस उद्देश्य से यह कहीं अधिक वांछनीय होगा कि भारत में कीमतों पर कड़ा नियन्त्रण रखा जाए ताकि अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में रुपया अधिमूल्यित नहीं हो जाता और इस कारण बार-बार अवमूल्यन की आवश्यकता नहीं पड़ती। सही उपचार तो यह है कि हमारी अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर अधिक तेज हो जाए ताकि स्फीति पर प्रभावी रूप में नियन्त्रण पाया जा सके। इसी प्रकार निर्यात प्रयास वास्तव में प्रभावी बन सकता है।

3 भारतीय विदेशी व्यापार की संरचना

(Composition of India's Foreign Trade)

भारत के विदेशी व्यापार की संरचना का अध्ययन करने के लिए आयात तथा निर्यात के बदलते हुए ढाँचे का विश्लेषण करना होगा।

आयात का ढाँचा (Pattern of Imports)

आयात का वर्गीकरण अम्बारी आयात (Bulk

imports) और गैर-अम्बारी आयात (Non-bulk imports) मे किया जाता है। अम्बारी आयात को फिर पैट्रोलियम, तेल एव स्नेहको (Petroleum, Oil and Lubricants—POL) और गैर-पी ओ एल आयात में विभक्त किया जाता है। गेर-पी ओ एल आयात मे उपभोग वस्तुएँ, उवरक और लौह तथा इस्पात शामिल किए जाते हैं। गैर-अम्बारी आयात मे पूजी वस्तुएँ (जिनमे इलैक्ट्रिकल एव गैर-इलैक्ट्रिकल मशीनरी शामिल हैं), हीर और कीमती पत्थर और अन्य मदे शामिल की जाती हैं।

तालिका 4 से पता चलता है कि आयात में लगातार वृद्धि की प्रवृति विद्यमान रही है जिसके लिए आन्तरिक एव बाहरी दोनो प्रकार के कारणतत्व उत्तरदायी रहे हैं। 1970-80 के दशक के दौरान, पैट्रोलियम निर्यात देशो के सगठन (Organisation of Petroleum Exporting Countries—OPEC) द्वारा पहली बार 1973-74 मे और फिर दोबारा 1979-80 मे कीमतो में तीव्र वृद्धि की गई। परिणामत. पैट्रोलियम पदार्थों के आयात मे 1970-80 के दशक मे तेज वृद्धि हुई परन्तु इसका प्रभाव 1980-90 के दशक मे भी महसूस किया गया। 1979-80 मे अर्थव्यवस्था मे भारी सूखा पडा।

1980-90 के दशक के दौरान बहुत से कारणतत्वो ने आयात को बढाने मे सचयी प्रभाव डाला। इनमे उल्लेखनीय हैं-गत दशक के दौरान तेल की कीमतो मे वृद्धि के परिणामस्वरूप विदेशी मुद्रा का भारी उत्प्रवाह, 1987 के सूखे के कारण देश मे खाद्यान्न का गभीर रूप मे अभाव, अर्थव्यवस्था की बढती हुई वृद्धि दर के कारण माग का दबाव और सरकार द्वारा अपनाई गई उदारीकरण (Liberalisation) की नीति। इन सब कारणतत्वो के परिणामस्वरूप एक ऐसी प्रक्रिया गतिमान हो गई जिसने अर्थव्यवस्था को आयात पर निर्भरता बढा दी। 1970-71 मे जबकि कुल आयात 1,634 करोड रुपए थे, ये बढकर 1980-81 मे 12,549 करोड रुपए हो गए। अत इस दशक

तालिका 4 भारतीय आयात का ढाचा

	1970-71	1980-81	1990-91	1993-94	वार्षिक वृद्धि दर (%) 1970 71 से 1980 81	1980-81 से 1990 91	1990-91 से 1993-94
	(करोड़ रुपए)						
1 अम्बारी आयात	825	8,739	20,020	28,560	23,2	8,6	13.2
	(50 5)	(69 6)	(46 4)	(39 1)			
(i) पैट्रोलियम तेल एव स्नेहक	137	5 267	10 820	18 055	37 5	7 4	18 6
(ii) गैर पी ओ एल मदें	688	3 472	9 200	10 055	16 1	10 2	5 7
क उपभोग वस्तुएँ	326	901	1 389	997	5 0	11 5	-
ख उर्वरक	100	818	1 770	2 607	16 0	8 0	13 8
ग. लौह तथा इस्पात	147	852	2,110	2 580	26 6	9 5	3 4
2. गैर-अम्बारी आयात	809	3,810	20,350	44,541	14 0	18.2	23.5
	(49.5)	(30 4)	(47 1)	(60 9)			
(i) पूजी वस्तुएँ	404	1,910	10,470	18,944	13 7	18 5	21 9
ख इलैक्ट्रिक मशीनरी	70	260	1 702	2 492	14 0	20 7	13 5
ख गैर इलैक्ट्रिक मशीनरी	258	1 049	4 240	7 533	11.2	14 6	21 1
(ii) हीर तथा कीमती पत्थर	25	417	3 740	8 284	31 2	24 5	30 3
(iii) अन्य	380	1 483	8 960	17,313	12 2	19 7	23 3
कुल	1,634	12,594	43,190	73,101	19.2	13 1	19 1

नोट ब्रैकेट मे दिए गए आकडे कुल का प्रतिशत हैं।

स्रोत रिजर्व बैंक आफ इंडिया, मुद्रा एव वित्त सम्बन्धी रिपोर्ट, 1993-94

के दोरान आयात मे 19 2 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हुई। 1980-90 के दशक के दौरान और विशेषकर 1984-85 के पश्चात जब प्रधानमत्री राजीव गाधी ने उदारीकरण की नीति का अनुसरण किया, आयात एकदम तेजी से बढकर 1990-91 मे 45,190 करोड रुपए के स्तर पर पहुच गए। 1980-81 ओर 1990-91 के दौरान आयात की वृद्धि दर 13 1 प्रतिशत के उच्च स्तर पर बनी रही। *1990-91 और 1993-94* के दोरान आयात की वार्षिक औसत वृद्धि दर 19 1 प्रतिशत थी।

आम तौर पर आयात मे वृद्धि के लिए पी ओ एल की मदा को दोषी ठहराया जाता है। जबकि यह बात सत्तर के दशक के लिए सत्य है, अस्सी के दशक का अनुभव यह बताता हे कि पी ओ एल की मदो की वृद्धि-दर 1980-81 और 1990-91 के दशक के दौरान केवल 7 4% थी, जबकि समग्र आयात की वृद्धि-दर 13 1 प्रतिशत थी। अत आयात म वृद्धि की व्याख्या उदारीकरण की नीति के कारण ही की जा सकती है जिसे काग्रेस (इ) सरकार ने तकनालाजीय उन्नयन (Technological upgradation) के नाम पर बढावा दिया। 1990-91 और 1993-94 मे यह परिस्थिति पलट गयी है और पी०ओ०एल० मदो के आयात की वृद्धि दर 18 6 प्रतिशत थी जबकि गैर-पी०ओ०एल० मदा के आयात की वृद्धि-दर 5 7 प्रतिशत प्रति वर्ष थी। इसका मुख्य कारण आटोमोबाइल उत्पादन को बढाने मे अत्यधिक जोशपूर्ण नीति था।

अम्बारी आयात (Bulk Imports) जिनमें कच्चे माल, अन्तर्वर्ती वस्तुएँ और खाद्यान्न शामिल हैं अर्थव्यवस्था की वृद्धि एव स्थिरता से सम्बन्धित हैं ओर सत्तर के दशक मे इनकी औसत वार्षिक वृद्धि-दर 23 2 प्रतिशत रही। परिणामत कुल आयात मे उनका भाग जो 1970-71 मे 50 5 प्रतिशत था बढकर 1980-81 मे 69 6 प्रतिशत हो गया। किन्तु इनकी वृद्धि-दर अस्सी के दशक म महत्त्वपूर्ण रूप मे कम हो गई।

गैर-पी ओ एल मदो मे उपभोग वस्तुओ जिनमे अनाज और अनाजो से तैयार वस्तुएँ, खाद्य-तेल, दाले ओर चीनी शामिल हैं, की वार्षिक वृद्धि दर सातवीं योजना के दौरान गिरकर 8 प्रतिशत हो गई। किन्तु लौह तथा इस्पात के आयात की वृद्धि-दर 1985-86 से 1990-91 के दौरान 14 4 प्रतिशत के अपेक्षाकृत उच्च स्तर पर रही। परन्तु इसके बाद 1990-91 के दौरान इसमे गिरावट आयी।

मोटे तौर पर अम्बारी मदो के आयात की वृद्धि दर सातवीं योजना के दोरान गिरकर 7 2 प्रतिशत हो गई जबकि यह छठी योजना के दौरान 10 2 प्रतिशत थी। अत अम्बारी मदो का कुल आयात मे भाग जो 1984-85 मे 58 6 प्रतिशत था कम होकर 1993-94 मे 39 प्रतिशत रह गया। गैर-अम्बारी मदो मे पूजी वस्तुओ का भाग जो 1980-81 में गिरकर 15 2 प्रतिशत हो गया था, बढना आरम्भ हो गया। *1993-94 तक यह 26 प्रतिशत तक पहुच गया।*

आयात के सम्बन्ध मे कुछ चुनी हुई वस्तुओ के आयात की प्रवृत्ति तालिका 5 मे दी गई है।

तालिका 5 मुख्य वस्तुओ के आयात की वार्षिक औसत

(करोड़ रुपए)

	1951-52 से 1960-61	1961-62 से 1965-66	1969-70 से 1973-74	1974-75 से 1979-80	1980-81 से 1984-85	1985-86 से 1989-90	1991-92 से 1993-94
1 खाद्यान	141	241	196	548	374	516	806
2 मशीनरी (इजनो समेत)	190	472	484	1078	2515	6415	9,274
3 खनिज तेल	77	85	226	2063	5264	4498	14,785
4 धातुए (लौह तथा अलौह)	93	172	309	647	1448	2450	2,625
5 रसायन और औषधिया	44	55	113	254	660	1868	4 588
6 रासायनिक खाद	–	28	96	439	698	1114	2,389
7 हीरे तथा कीमती पत्थर	–	–	–	244	730	2405	5,980

खाद्यान्न (Foodgrains)–भारत के विभाजन और इसकी बढती हुई आबादी के कारण खाद्यान्नो के आयात की आवश्यकता अनुभव हुई। आयोजन के पहले दशक (1950-51 से 1960-61) के दौरान खाद्यान्नो का औसत वार्षिक आयात 141 करोड रुपए था। तीसरी योजना के दौरान यह और बढकर 241 करोड रुपए प्रति-वर्ष हो गया। 1965-66 और 1966-67 मे सूखा पडने के कारण स्थिति और बिगड गई। परिणामत 1966-67 से 1968-69 के दौरान कुल रूप मे 1,201 करोड रुपये का खाद्यान्न विदेशो से मगवाया गया। चौथी योजना में खाद्य-आयात के गिरने की प्रवृत्ति व्यक्त हुइ। खाद्य आयात जो 1969-70 मे 184 करोड रुपए थे, गिरकर 1972-73 मे केवल 48 करोड रुपए रह गए। परन्तु ये चार अच्छी फसलो के वर्ष थे। यह प्रवृत्ति 1973-74 में फिर उलट गई और 1974-75 और 1979-80 के दौरान खाद्यान्न का औसत वार्षिक आयात 545 करोड रुपए हो गया। खाद्यान्नो की भरपूर फसल होने और भारी मात्रा म बफर-स्टॉक उपलब्ध होने के कारण खाद्यान्न आयात में कमी व्यक्त हुई। 1980-81 से 1984-85 की 5 वर्षों की अवधि मे खाद्यान्न का औसत वार्षिक आयात केवल 374 करोड रुपए था। 1985-86 और 1989-90 के दौरान खाद्यान्न आयात औसतन 516 करोड रुपये प्रति वर्ष था किन्तु 1992-93 मे यह फिर बढकर 1 240 करोड रुपये हो गया परन्तु कम हो 1993-94 मे 833 करोड रुपये हो गया।

मशीनरी–जिस देश मे औद्योगीकरण का प्रोग्राम आरम्भ किया गया हो वहाँ मशीनो के आयात की वृद्धि अनिवार्य हो जाती है। 1950-51 और 1960-61 के दौरान मशीनरी का औसत वार्षिक आयात 190 करोड रुपए था तीसरी योजना मे यह और अधिक बढ कर 472 करोड रुपए हो गया। चौथी योजना मे इस आयात की औसत 484 करोड रुपए हो गई। 1974-75 और 1979-80 के दौरान 4 078 करोड रुपए की मशीनरी का आयात किया गया। सातवीं योजना (1985-86 से 1989-90) के दौरान आधुनिकीकरण के प्रोग्रामो के लिए मशीनरी का औसत वार्षिक आयात 6 415 करोड रुपए तक पहुँच गया। यह 1993-94 मे और बढकर 13 998 करोड रुपये हो गया। मशीनरी का बढता हुआ आयात एक ओर हमारे औद्योगीकरण का सकेत करता है परन्तु दूसरी ओर हमारी देशी तकनालाजी का विकास करने में विफलता और आयात नीति मे अन्धाधुध अदारीकरण को दर्शाता है।

खनिज तेल (Mineral Oils)–खनिज तेलों के आयात मे भी वृद्धि हो रही है। भारत मे खनिज तेलो की कमी है। यह कमी पैट्रोलियम मे विशेषकर अनुभव की जा रही है। खनिज तेलो का वार्षिक आयात 1969-70 और 1973-74 के दौरान औसत रूप मे बढकर 226 करोड रुपए हो गया था। पैट्रोलियम निर्यात देशो के सघ (Organisation of Petroleum Exporting Countries) द्वारा रूक्ष तेल की कीमतो मे तीव्र वृद्धि की घोषणा करने के कारण 1973-74 के दौरान पैट्रोलियम के आयात का मूल्य बढकर 560 करोड रुपए हो गया। इसके उपरान्त 1974-75 और 1979-80 और 1984-85 के दौरान इसका औसत वार्षिक आयात 2,063 करोड रुपये था। 1980-81 मे पैट्रोलियम, तेल और स्नेहको का आयात रिकार्ड स्तर पर पहुच गया अर्थात औसत् वार्षिक आयात 5 264 करोड रुपए था। तेल की अन्तर्राष्ट्रीय कीमतो मे कमी और देशीय उत्पादन मे वृद्धि के कारण 1985-86 से 1989-90 के दौरान खनिज तेलो का औसत वार्षिक आयात कम होकर 4 498 करोड रुपए हुआ। खाडी युद्ध ने खनिज तेलो की कीमत मे भारी वृद्धि की परिणामत खनिज तेल आयात बिल बढकर 1993-94 मे 18 055 करोड रुपए के उच्च स्तर पर पहुच गया।

धातुएँ–भारत मे लौह तथा इस्पात का आयात किया जाता है। कुछ हद तक अलौह धातुओ (Non ferrous metals) का भी आयात होता है। 1969-70 और 1973-74 के दौरान धातुओ का औसत वार्षिक आयात 309 करोड रुपए और 1974-75 और 1979-80 के दौरान इनका वार्षिक आयात 647 करोड रुपए हो गया। 1980 81 और 1984-85 के दौरान लौह तथा अलौह धातुओ का औसत वार्षिक आयात बढकर 1,448 करोड रुपए हो गया। हमारे इस्पात प्लान्टो के क्षमता उपयोग मे उन्नति द्वारा लौह तथा इस्पात के आयात को कम किया जा सकता है। यह वस्तुत बहुत ही निराशाजनक बात है कि 1985-86 से 1989-90 के दौरान औसतन 2,450 करोड रुपए की धातुओ का वार्षिक आयात किया गया। 1993-94 मे 2,789 करोड रुपये के मूल्य की धातुओ का आयात किया गया।

रसायन तथा औषधियाँ (Chemicals and Medicines)–भारत मे रसायनो तथा औषधियो के आयात में भी वृद्धि हुई है। इन वस्तुओ की औसत वार्षिक आयात पहली तथा दूसरी योजना में 44 करोड रुपए प्रतिवर्ष था जो 1969-70 और 1973-74 के दौरान बढकर 113 करोड रुपए हो गया। यह 1974-75 और 1979-80 के दौरान और बढकर 254 करोड रुपए हो गया। 1985-86 और 1989-90 के दौरान इनका औसत वार्षिक आयात बढकर 1,868 करोड रुपए हो गया। 1993-94 मे यह और बढकर 5,574 करोड रुपए हो गया।

हीरे तथा कीमती पत्थर–1974-75 और 1979-80 की अवधि के दौरान हीरों तथा कीमती पत्थरो के आयात की वार्षिक औसत 244 करोड रुपए थी जो 1985-86 से

1989 90 की अवधि के दौरान बढकर 2 405 करोड रुपए हो गई। इस आयात का एक भाग तो भारत मे समृद्ध वर्गों की माग तुष्ट करने के लिए किया जाता है और एक भाग इसके हस्तशिल्प निर्यात उद्योग के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराता है। यह बात ध्यान दने याग्य है कि 1985 86 और 1989 90 के दौरान हीरो एव कीमती पत्थरा का औसत वार्षिक नियात 2 648 करोड रुपए था। यह बात ध्यान देने योग्य है कि *1993 94* के दौरान 12 528 करोड रुपये के निर्यात के विरुद्ध इनका आयात 8 284 करोड रुपये था।

उर्वरक–भारतीय कृषि म नई तकनीक के अपनाने के फलस्वरूप उर्वरको के आयात को बढाया गया। जबकि तासरी योजना के दौरान उर्वरको का औसत वार्षिक आयात केवल 28 करोड रुपए था यह 1966 67 और 1968 69 के दोरान बढकर 121 करोड रुपए हो गया परन्तु दश मे रासायनिक उर्वरको के उत्पादन मे वृद्धि के कारण इनका *औसत वार्षिक आयात 1969 70 और 1973 74 के दोरान कम होकर 96 करोड रुपए हो गया।* अन्तर्राष्ट्रीय वस्तुओ की कीमतो मे वृद्धि के कारण 1974 75 और 1979 80 के दोरान रासायनिक उर्वरको का औसत वार्षिक आयात एकदम 439 कराड रुपए हो गया। 1980 81 से 1984 85 के दोरान उवरको का औसत वार्षिक आयात 698 कराड रुपए *था। हाल ही म सरकार ने उवरको के आयात* मे कटाती करने की अपेक्षा इनके आयात मे उदारीकरण किया है। परिणामत 1985 86 और 1989 90 के दौरान उवरका का आसत वार्षिक आयात 1 114 करोड रुपए हो गया। 1993 94 मे उर्वरको का आयात 2 607 करोड रुपये था।

निर्यात का ढाचा (Pattern of Exports)

भारत के नियात मोटे तौर पर चार वर्गों में विभक्त किए जाते हैं-(*i*) कृषि और सम्बन्धित उत्पाद जिसमे काफी चाय खल (O l cakes) तम्बाकू काजू, गर्म मसाले चाना कच्ची रुई चावल मछली और मछली से बनी वस्तुएँ, गाश्त ओर गाश्त से बनी वस्तुएँ, वनस्पति तेल फल सब्जियाँ और दाल (*ii*) अयस्को (Ores) और खनिजा म कच्चा मेगनाज और कच्चा लाहा और अबरक शामिल किए जात हैं (*iii*) निर्मित वस्तुओ म सूती वस्त्र आर सिले सिलाए कपड पटसन की बनी वस्तुएँ, चमडा और जूते हस्तशिल्प (जिनमें हीर और कीमता पत्थर भी शामिल ह) रसायन इजानियरा वस्तुएँ और लाह तथा इस्पात सम्मिलित किए जाते हैं आर (*iv*) खनिन इधन और स्नेहक (Lubr cants)।

तालिका 6 मे दिए आकडो से पता चलता है कि कृषि तथा खनिज सम्पत्ति पर निर्भर पारम्परिक आयात 1970 71 मे कुल के 42 प्रतिशत के बराबर थे किन्तु 1993 94 मे इनका भाग कम होकर लगभग 26 प्रतिशत हा गया। इसके विरुद्ध निर्मित वस्तुओ का भाग जो 1970 71 मे लगभग 50 प्रतिशत था बढकर 1993 94 मे लगभग 75 प्रतिशत हो गया। हमारे निर्यात के ढाचे मे परिवर्तन का एक रुचिकर पहलू यह है कि खनिज ईंधनो एव स्नेहको का भाग जो 1970 71 मे लगभग 1 प्रतिशत था बढकर 1993 94 में 1 8 प्रतिशत हो गया। जाहिर है कि भारतीय निर्यात का ढाचा निर्मित वस्तुओ तथा खजिन ईंधनो के पक्ष मे परिवर्तित हो रहा है जिनका मिला जुला भाग जो *1970 71* मे लगभग 51 प्रतिशत था बढकर 1993 94 मे लगभग 77 प्रतिशत हो गया।

तालिका 6 भारतीय निर्यात का वर्गीकरण

करोड़ रुपए

	1970 71	1980 81	1993 94*
1 कृषि तथा सम्बन्धित वस्तुएँ	487	2 057	15 315
	(31 7)	(30 6)	(22 0)
2 अयस्क एव खनिज	164	413	2 785
	(10 7)	(6 2)	(4 0)
3 निर्मित वस्तुएँ	772	3 747	52 083
	(50 3)	(55 8)	(74 7)
4 खनिज तेल एव स्नेहक	13	28	1 248
	(0 8)	(0 4)	(1 8)
5 अन्य	99	465	1 106
	(6 5)	(6 9)	(1 6)
कुल	*1 535*	*6 710*	*69 751*
	(100 0)	(100 0)	(100 0)

ब्रैक्ट में दिए गए आकडे कुल का प्रतिशत हैं

कुछ मुख्य वस्तुओ ० औसत वार्षिक निर्यात तालिका 7 मे दिया गया है।

चाय–चाय भारत के निर्यात की महत्वपूर्ण मद है। 1951 52 से 1960 61 के काल म हमारा चाय का औसत वार्षिक नियात 119 करोड था जो दूसरी याजना के दौरान और अधिक होकर 132 करोड रुपए हो गया। तीसरी योजना के दौरान चाय के निर्यात म थोडी गिरावट आई परन्तु चाथी याजना के दारान चाय का आसत वार्षिक नियात बढकर 142 करोड रुपए हो *गया। 1991 92* क दौरान चाय का औसत वार्षिक निर्यात 1 132 कराड रुपए था परन्तु यह गिरकर 1993-94 म 978 कराड रुपये हा।

गया। हमारी चाय के प्रमुख ग्राहक हैं–यू के, यू एस ए, कनाडा, आस्ट्रेलिया, रूस, मिश्र और जर्मनी।

पटसन का सूत और निर्मित वस्तुएँ (Jute Yarn and Manufactures)–पटसन हमारे निर्यात की मुख्य मद रही है। पटसन के निर्यात मे हमारा सबसे बडा प्रतिस्पर्धी बगला देश है। इस वस्तु के निर्यात मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि नहीं हुई है। प्रथम एव द्वितीय योजना काल के 135 करोड रुपए के औसत वार्षिक निर्यात की तुलना म 1970-71 पटसन का निर्यात फिर बढकर 190 करोड रुपए हो गया। 1993-94 क दौरान पटसन का निर्यात थोडा और बढकर 355 करोड रुपए हो गया।

रूई का सूत ओर निर्मित वस्तुएँ (Cotton Yarn and Manufactures)–प्रथम एव द्वितीय योजना काल में सूत तथा कपडे का औसत वार्षिक निर्यात 78 करोड रुपए था किन्तु तीसरी योजना के दौरान यह गिरकर 55 करोड रुपए प्रतिवर्ष हो गया। भारतीय सूती वस्त्र उद्योग मे उत्पादन की लागत अपक्षाकृत अधिक होने के कारण भारत के लिए अन्तराष्ट्रीय बाजार मे सूत तथा कपडा बेचना कठिन हो जाता है। वास्तव मे अधिक लागत के दो मुख्य कारण हैं–अधिक श्रम लागत (Labour cost) और पुराना मशीनरी का प्रयोग। अवमूल्यन के पश्चात् कपडे के निर्यात म वृद्धि हुई तथा 1970-71 और 1993-94 के दौरान सूत तथा कपडे का निर्यात 75 करोड रुपए से बढकर 4 837 करोड रुपए हो गया।

सिले-सिलाए कपड़े (Readymade garments)– हाल ही के वर्षों म सिले सिलाए कपडो के निर्यात मे उन्नति हुई है। 1970-71 म इनका निर्यात केवल 9 करोड रुपए था परन्तु 1980-81 में यह बढकर 378 करोड रुपए हो गया। इसमे लगातार तेज उन्नति हुई है ओर 1993-94 के दौरान सिलेसिलाए कपडे का औसत वार्षिक निर्यात बढकर 8,091 करोड रुपए के रिकार्ड स्तर पर पहुच गया।

चमड़ा तथा निर्मित वस्तुएँ–भारतीय निर्यात की एक पारम्परिक मद कच्ची खाले तथा चमडा है। परन्तु हाल ही के वर्षों मे इस मद मे कमाए हुए चमडे का अनुपात बढ गया है। यह स्वस्थ प्रवृत्ति है। 1980-81 के दौरान भारत को इस मद से लगभग 337 करोड रुपए प्रति वर्ष प्राप्त हुए। 1993-94 के दौरान इस मद का औसतन वार्षिक निर्यात और बढकर 4 139 करोड रुपए हो गया।

लौह अयस्क (Iron ore)–भारत कच्चे लोहे का निर्यात करता है। 1960-61 के दौरान इसका निर्यात मूल्य लगभग 27 करोड रुपए था किन्तु इसमे लगातार वृद्धि होती चली आई है और 1980-81 के दौरान निर्यात 303 करोड रुपए था। 1993-94 मे कच्चे लोहे का निर्यात 1 357 करोड रुपए था। यह एक अस्वस्थ प्रवृत्ति है। भारत को अपने निर्यात म इस्पात के भाग को बढाना चाहिए ओर कच्चे लोहे का प्रयोग अपने स्टील प्लान्टो मे करना चाहिए।

काजू (Cashew Kernels)–हाल के वर्षों में काजू का हमारे निर्यात मे महत्त्व बढा है। 1970-71 के दौरान काजू का निर्यात 52 करोड रुपए था। 1993-94 मे भारत द्वारा 1 044 करोड रुपए का काजू निर्यात किया गया।

इजीनियरी सामान–1970-71 मे इस मद से निर्यात के रूप मे 130 करोड रुपए प्राप्त हुए। 1980-81 म इन वस्तुओ का निर्यात 727 करोड रुपए हो गया। 1993-94 के

तालिका 7 भारत के प्रमुख निर्यात

करोड़ रुपए

	1960 61	1970 71	1980 81	1993 94
1 काफी	2	25	214	555
2 चाय	192	148	426	978
3 फल तथा सब्जियाँ	7	18	116	727
4 रूई का सूत और निर्मित वस्तुएँ	91	75	277	4 837
5 चमडा तथा निर्मित वस्तुएँ	39	72	337	4 139
6 लौह अयस्क	27	117	303	1 357
7 तम्बाकू	25	33	141	461
8 इजीनियरी सामान	13	130	727	9 474
9 काजू	30	52	140	1 044
10 सिलेसिलाए कपड़े	अनु	9	378	8 091
11 हस्तशिल्प	अनु	70	894	14 936
12 मछली तथा निर्मित वस्तुएँ	7	31	213	2 538
13 चावल		5	224	1 287

दौरान 9,474 करोड रुपए की इजीनियरिंग वस्तुओ का निर्यात किया गया। यह हमारे बढते हुए औद्योगीकरण का प्रमाण है और एक अभिनन्दनीय प्रवृत्ति है।

हस्तशिल्प (Handicrafts)–समय के साथ-साथ भारतीय हस्तशिल्पो का निर्यात मे महत्त्व बढता जा रहा है। जबकि 1970 71 मे यह 70 करोड रुपए के निम्न स्तर पर था 1993-94 मे यह बढकर 14 936 करोड रुपए हो गया।

इन मदो के अतिरिक्त, भारत द्वारा चावल, फल तथा सब्जियो तम्बाकू और वनस्पति तेलो का निर्यात भी होता है। इसमे सन्देह नहीं कि भारत का निर्यात ढाचा धीरे-धीरे बदल रहा है। पारम्परिक मदो का महत्त्व कम होता जा रहा है और निर्यात का विविधीकरण (Diversification) हो रहा है। इस प्रवृत्ति को और मजबूत बनाना होगा।

4. भारत के विदेशी व्यापार की दिशा
(Direction of India's Foreign Trade)

भारत के विदेशी व्यापार की क्षेत्रीय दिशा (Regional direction) का अध्ययन करने के लिए विश्व को मोटे तौर पर चार बडे वर्गों मे बाट लेना उचित होगा अर्थात् अमेरिका यूरोप एशिया एव ओशनिया (Oceania) और अफ्रीका।

जहा तक अमेरिका महाद्वीप का सम्बन्ध है, भारत के उत्तरी अमेरिका के साथ जिसमे सयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा शामिल हैं, घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध हैं। हमारे विदेशी व्यापार मे लैटिन अमेरिका के देशो और अन्य अमरीकी देशो का कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं रहा था और न ही यह विकसित हुआ।

भारत 1951-52 मे अमेरिका को अपने कुल निर्यात का 28 प्रतिशत भेजता था जिसमे से 21 प्रतिशत उत्तरी अमेरिका को और 6 3 प्रतिशत लैटिन अमेरिका के देशो को। समय के साथ लैटिन अमेरिका के देशों का भाग कम हो गया और 1979-80 मे यह हमारे निर्यात का 0 3 प्रतिशत रह गया। उत्तरी अमेरिका का भाग 1955-56 और 1969-70 के दौरान 17 से 21 प्रतिशत के बीच था। 1971 में बगला देश के युद्ध के पश्चात् भारत और सयुक्त राज्य अमेरिका के आपसी सम्बन्धो मे तनाव उत्पन्न हो गया और सयुक्त राज्य अमेरिका के साथ हमारा व्यापार कम हो गया। यह बहुत हद तक इस बात की व्याख्या है कि 1976-77 में सयुक्त राज्य अमेरिका को हमारा निर्यात गिरकर 10 प्रतिशत क्या हो गया। हाल ही के वर्षों मे इस स्थिति में थोडा सुधार हुआ है और 1993-94 मे यू एस ए. को हमारा निर्यात कुल निर्यात का 18 प्रतिशत हो गया। आयात पक्ष की ओर अमेरिका द्वारा 1951-52 में 36 3 प्रतिशत योगदान किया गया परन्तु इसका भाग 1960-61 मे गिरकर 31 5 प्रतिशत हो गया, फिर 1965-66 में खाद्यान्नो के आयात मे वृद्धि होने के कारण यह बढकर 40 प्रतिशत हो गया और 1970-71 मे यह लगभग 35 प्रतिशत था। बगला देश युद्ध में सयुक्त राज्य अमेरिका के शत्रु से व्यवहार के कारण भारत ने सयुक्त राज्य अमेरिका पर अपनी निर्भरता कम करने का फैसला किया और परिणामत उत्तरी अमेरिका से हमारे आयात गिरकर 1974-75 मे कुल आयात का केवल 19 2 प्रतिशत रह गए। खाद्यान्नो के अपेक्षाकृत अधिक मात्रा मे आयात के फलस्वरूप, हमारे आयात मे यू एस ए का भाग 1975-76 मे बढकर 24 6 प्रतिशत हो गया परन्तु यह 1993-94 मे फिर गिरकर 11 7 प्रतिशत रह गया।

ऐतिहासिक रूप मे 1947 तक भारत ब्रिटिश राज्य का एक उपनिवेश होने के कारण यू के के साथ घनिष्ठ व्यापारिक सम्बन्ध रखता था। इसके यूरोप के अन्य देशो के साथ भी व्यापारिक सम्बन्ध थे। व्यापार की दृष्टि से यूरोपीय महाद्वीप को तीन बडे क्षेत्रो मे विभक्त किया जा सकता है–पश्चिमी यूरोप, पूर्वी यूरोप और अन्य यूरोपीय देश। पश्चिमी यूरोप को फिर मोटे तौर पर दो भागो मे बाटा जाता है–यूरोपीय साझा बाजार (European Common Market—ECM) और यूरोपीय स्वतन्त्र बाजार क्षेत्र (European Free Trade Area—EFTA)।

1950-51 मे कुल भारतीय आयात का 30 5 प्रतिशत पश्चिमी यूरोप से प्राप्त होता था। 1955-56 मे पश्चिमी यूरोप का भाग बढकर 48 9 प्रतिशत हो गया। इसके लिए दो कारणतत्व उत्तरदायी थे पहला यू के से आयात बढने का कारण यह था कि इसे भारत को स्टर्लिंग ऋण (Sterling debt) का भुगतान करना था और दूसरे ECM देशो, विशेषकर पश्चिमी जर्मनी का भाग हमारे आयात मे तीव्र रूप मे बढ गया। चूकि 1973 मे यू के ने ECM मे शामिल होने का निर्णय कर लिया हमारे कुल आयात मे EFTA देशो का महत्त्व सुकडकर केवल 1 6 प्रतिशत हो गया। ECM देशो का भाग जो 1955-56 मे 18 2 प्रतिशत था गिरकर 1969-70 मे 10 9 प्रतिशत हो गया परन्तु यह फिर उन्नत होकर 1979-80 मे 24 2 प्रतिशत हो गया। किन्तु एक हद तक यह वृद्धि EFTA क्षेत्र से केवल परिवर्तन के रूप मे ही है। यदि हम EFTA और ECM क्षेत्रो को साथ ले, तो 1955-56 के पश्चात् यूरोप के भाग मे कमी हुई है और 1976-77 मे यह गिरकर 21 3 प्रतिशत हो गया। किन्तु 1979-80 मे यह उन्नत होकर लगभग 27 प्रतिशत हो गया। किन्तु यह 1993-94 मे उन्नत होकर 30 प्रतिशत हो गया।

हाल ही के वर्षों मे पूर्वीय यूरोप के देशो अर्थात् यू एस एस आर पोलैंड रूमानिया बुल्गारिया पूर्वी जर्मनी

तालिका 8 भारत के विदेशी व्यापार की दिशा

करोड रुपये

	1980–81				1993–94			
	निर्यात		आयात		निर्यात		आयात	
1 आर्थिक सहयोग एव विकास सगठन	3 126	(46 6)	5 747	(45 8)	39 670	(59 9)	40 855	(55 9)
(क) यूरोपाय आर्थिक समुदाय	1 447	(21 6)	2 639	(21 0)	18 149	(26 0)	21 898	(30 0)
(i) फ्रास	147	(2 2)	280	(2 2)	1 582	(2 3)	1 866	(2 6)
(ii) बेल्जियम	144	(2.2)	296	(2 4)	2 632	(3 8)	5 866	(8 0)
(iii) जर्मनी	38ᶜ	(5 7)	694	(5 5)	4 833	(6 9)	5 617	(7 7)
(iv) यू० के०	395	(5 9)	731	(5 8)	4 306	(6 2)	4 793	(6 6)
(ख) उत्तरा अमेरिका	806	(12 0)	1 851	(14 8)	13 276	(19 0)	9 259	(12 7)
(i) कनाडा	62	(0 9)	332	(2 6)	710	(1 0)	730	(1 0)
(ii) यू०एस०ए०	744	(11 1)	1 519	(12 1)	12 566	(18 0)	8 528	(11 7)
(ग) एशिया एव ओशनिया	708	(10 5)	932	(7.4)	6 381	(9 1)	7 047	(9 6)
(i) आस्ट्रेलिया	92	(1 4)	170	(1 4)	792	(1 1)	2 063	(2 8)
(ii) जापान	598	(8 9)	749	(6 0)	5 482	(7 9)	4 749	(6 5)
2. पैट्रोलियम निर्यातक देश	745	(11 1)	3 490	(27 8)	7 441	(10 7)	16 363	(22 4)
(i) ईरान	123	(1 8)	1 339	(10 7)	498	(0 7)	1 189	(1 6)
(ii) कुवैत	97	(1 4)	338	(2 7)	331	(0 5)	3 534	(4 8)
(iii) साऊदी अरब	165	(2 5)	540	(4 3)	1 600	(2 3)	4 865	(6 7)
(iv) यू०ए०ई०	152	(2 3)	350	(2 8)	3 628	(5 2)	3 138	(4 3)
3 पूर्वीय यूरोप	1 486	(22.1)	1 296	(10.3)	3 038	(4 4)	1 666	(2 3)
यू०एस०एस०आर०	1 226	(18 3)	1 014	(8 1)	2 393	(3 4)	1 174	(1 6)
4. विकासशील देश	1 266	(18 9)	1 971	(15 7)	18 114	(26 0)	13 854	(19 0)
(i) एशिया	880	(13 1)	1 428	(11 4)	15 256	(21 9)	11 102	(15 2)
(ii) सार्क देश	236	(3 5)	140	(1 1)	3 808	(4 0)	351	(0 5)
(iii) अफ्रीका	345	(5 1)	204	(1 6)	2 093	(3 0)	1 817	(2 6)
5 अन्य	65	(0 9)	45	(0.4)	240	(0 3)	363	(0 5)
कुल (1 से 5)	6 711	(100 0)	12 549	(100 0)	69 751	(100 0)	73 101	(100 0)

नोट ब्रैक्ट में दिए गए आकडे तन्नुरूप कालम में कुल का प्रतिशत हैं।
इसमें पूर्वीय एव पश्चिमी दोनों भागो के आकडे पूरे जर्मनी के लिए शामिल किए गए हैं
स्वतन्त्र राज्यों के राष्ट्रमण्डल के लिए आकडे दिए गए हैं।
सार्क (क्रस्ट) देशो में हैं भारत पाकिस्तान बगलादेश नेपाल भूटान श्रीलका और मालद्वीप।
पैट्रोलियम निर्यातक देशों (OPEC) में शामिल हैं ईरान इराक कुवैत सऊदी अरब और यू०ए०ई० यूरोपीय आर्थिक समुदाय (European Economic Commun ty) में शामिल हैं फ्रास जर्मनी बेल्जियम लक्समबर्ग नीदरलैण्ड आस्ट्रिया नार्वे पुर्तगाल स्वीडन और स्विटजरलैण्ड।

चैकोस्लावाकिया यूगोस्लाविया के साथ हमारा व्यापार विकसित हुआ है। इन देशो से आयात की मुख्य मदे हैं लौह एव इस्पात अलौह धातुएँ, रसायन पूजी साज सामान रेलवे स्टोर कागज दवाइयाँ एव औषधियाँ और पैट्रोलियम उत्पाद। इनमे से बहुत सी वस्तुओ के आयात हमारे आन्तरिक प्रोजेक्टो (Core Projects) और सामरिक महत्त्व के उद्योगो मे सहायक हैं। इनके बदले भारत इन देशों को चाय काजू, गर्म मसाले तम्बाकू तिलहन चमडा धात्विक अयस्क (Metallic ores) पटसन की निर्मित वस्तुओं आदि का निर्यात करता है अर्थात् भारताय नियात की पारम्परिक मदे (Traditional items)। इन देशो से आयात की सरचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये आयात आर्थिक विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। 1960 61 मे भारत ने इस क्षेत्र से अपने कुल आयात का 4 प्रतिशत मगवाया और इस क्षेत्र को निर्यात का लगभग 8 प्रतिशत भेजा। परन्तु 1962 मे भारत चान युद्ध और 1965 मे

भारत-पाक युद्ध के पश्चात् पूर्वीय यूरोप के समजवादी देशो के साथ हमारे व्यापारिक सम्बन्ध बहुत अधिक उन्नत हो गए। 1970-71 मे, इस वर्ग के देशो मे हमारे कुल आयात का 13 5 प्रतिशत प्राप्त किया गया और इन्हे हमारे कुल निर्यात का 21 प्रतिशत भेजा गया। इस क्षेत्र से कुल व्यापार का 84 प्रतिशत यू एस एस आर से है। 1993-94 तक, पूर्वीय योरोप से हमारे आयात गिरकर लगभग 2 प्रतिशत रह गए और इस क्षेत्र को निर्यात मे भी गिरावट आई और वे 1979-80 तक 14 प्रतिशत हो गए और 1993-94 तक और गिरकर केवल 4 4 प्रतिशत रह गए। सोवियत सघ के विघटन के परिणामस्वरूप, इन देशो के साथ हमारे व्यापारिक सम्बन्धो मे परिवर्तन आ रहा है।

हमारे विदेशी व्यापार मे एशिया एव ओशनिया मे आस्ट्रेलिया और जापान महत्त्वपूर्ण है। 1980-81 के दौरान हमारे निर्यात मे जापान का भाग 10 3 प्रतिशत था जोकि कम होकर 1993-94 मे 7 9 प्रतिशत रह गया किन्तु जापान का हमारे आयात मे भाग जो 1980-81 मे केवल 7 4 प्रतिशत था, वह 1993-94 मे 6 5 प्रतिशत हो गया।

पैट्रोलियम निर्यात देशो के सगठन (Organisation of Petroleum Exporting Countries) के साथ हमारे व्यापारिक सम्बन्ध बढे हैं। 1970-71 मे इन देशो से हमारे आयात का 7 6 प्रतिशत प्राप्त होता था और इन्हे हम अपने निर्यात का 6 4 प्रतिशत भेजते थे किन्तु 1993-94 के दौरान इन देशो से कुल आयात का 22 4 प्रतिशत प्राप्त हुआ और इन्हे अपने निर्यात का 10 7 प्रतिशत ही भेजा जा सका। इनमे मुख्य देश हैं-ईरान, कुवैत, यू ए ई और साऊदी अरब।

कुल रूप मे यह कहा जा सकता है कि भारत का विदेशी व्यापार अब अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत हो गया है। 1951-52 और 1969-70 के दौरान पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका पर भारत की अत्यधिक निर्भरता अब कम हो गया और धीरे-धीरे हमारा व्यापार पूर्वीय यूरोप के देशो और एशियाई देशो के साथ बढता गया। परन्तु अस्सी के दशक और 1990-91 से 1993-94 के तीन वर्षों के दौरान जिसमे सोवियत सघ का विघटन हुआ, पश्चिमी यूरोप, और उत्तरी अमेरिका का महत्त्व बढ गया है। ये दोनो क्षेत्र 1993-94 मे हमारे निर्यात के 60 प्रतिशत और आयात के 56 प्रतिशत के लिए जिम्मेदार थे। पूर्वीय यूरोप के देशो का भाग सुकड कर नगण्य हो गया और एशिया और अफ्रीका के देशो का भाग बढ रहा है।

कुछ महत्त्वपूर्ण देशो के सदर्भ मे हमारे विदेशी व्यापार की दिशा का परीक्षण करना रुचिकर होगा। हमारे विदेशी व्यापार मे नौ देश महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वे हैं, यू एस ए., यू के , जर्मनी, यू एस एस आर, जापान, यू ए ई , साऊदी अरब, आस्ट्रेलिया और कनाडा। 1951-52 से 1992-93 के दौरान इन नौ देशो के साथ हमारे निर्यात 51 से 63 प्रतिशता की अभिसीमा (Range) मे रहे हैं। इसके विरुद्ध इसी काल के दौरान हमारे आयात मे इनका भाग 47 से 72 प्रतिशत के बीच रहा।

स्वतन्त्रता-पूर्व काल मे चाहे यू के विदेशी व्यापार मे सर्वप्रथम स्थान रखता था परन्तु 1970 तक यू एस ए का महत्त्व बढता गया। हाल ही मे, विशेषकर 1971 के भारत-पाक युद्ध के पश्चात् हमारे विदेशी व्यापार मे यू एस एस आर उतना ही महत्त्वपूर्ण बन गया। आयात पक्ष मे 1993-94 मे यू एस ए. का भाग सबसे अधिक था, उसके बाद महत्त्व के अनुसार आते हैं-जर्मनी, जापान, यू के , सऊदी अरब और यू.ए.ई.। निर्यात की दृष्टि से 1960-61 तक यू के को भारतीय निर्यात यू एस ए. की अपेक्षा हमेशा अधिक रहा परन्तु तीसरी योजना के दौरान यू एस ए. को निर्यात यू के के बराबर हो गया और बाद मे यू के को निर्यात और अधिक गिरकर 5 प्रतिशत के अतिनिम्न स्तर पर पहुच गया। 1965-66 तक पश्चिमी जर्मनी से हमारे आयात बढते गए और बाद मे गिरते ही गए हैं और 1975-76 तक ये कुल आयात का लगभग 7 प्रतिशत थे। इसके विरुद्ध, इस देश को हमारे निर्यात कुल निर्यात का केवल 2-3 प्रतिशत ही रहे परन्तु 1993-94 मे बढकर 7 प्रतिशत हो गए। यही कारण है कि जर्मनी के साथ हमारा भारी व्यापारिक घाटा ही रहा। जापान के साथ युद्ध-पूर्व-काल मे हमारे व्यापारिक सम्बन्ध थे परन्तु युद्ध के दौरान जापान के साथ हमारा विदेशी व्यापार कट गया, फिर अब वह पुन चालू हो गया है। यू एस एस आर. के साथ हमारे व्यापारिक सम्बन्ध हाल ही के वर्षों मे विकसित हुए, परिणामत 1951-52 में हमारे कुल आयात मे 10 प्रतिशत के भाग की तुलना मे 1991-92 मे यह भाग 3 7 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार यू एस एस आर का हमारे निर्यात मे भाग जो 1960-61 में 1.4 प्रतिशत था, बढकर 1991-92 मे 3 प्रतिशत हो गया। हमारे विदेशी व्यापार मे ईराक और ईरान महत्त्वपूर्ण बन गए थे किन्तु ईरान-ईराक युद्ध के कारण इन देशो का महत्त्व कम हो गया है और कुवैत, यू ए ई और साऊदी अरब से अधिक आयात का मुख्य कारण खनिज तेल, विशेषकर पैट्रोल का आयात है।

स्वतन्त्रता-उपरान्त काल मे हमारे विदेशी व्यापार की दिशा में मुख्य परिवर्तन निम्नलिखित हैं-

(1) नये व्यापारिक साझीदार-स्वतन्त्रता-पूर्व काल में भारत का मुख्य व्यापारिक साझीदार यू०के० था और इसका हमारे निर्यात मे भाग 34 प्रतिशत और आयात मे 30 प्रतिशत था। चाहे स्वतन्त्रता के पश्चात्, भारत ब्रिटिश

राष्ट्रमण्डल (Commonwealth) का सदस्य बना रहा है, फिर भी यह नये व्यापारिक साझीदार प्राप्त करने मे सफल हो गया है। यू०के० के अतिरिक्त, महत्त्व की दृष्टि से अन्य देश हैं • यू०एस०ए०, रूस, जर्मनी, जापान और पैट्रोलियम निर्यातक देश। अत 1951 के पश्चात् भारत के विदेशी व्यापार का मुख्य लक्षण भौगोलिक दृष्टि से विविधीकरण है और इस प्रकार विशिष्टीकरण द्वारा भारत अपने निर्यात के लिए नयी मण्डिया ढूंढने में सफल हुआ है।

(2) आयात के अधिक स्रोत–दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात् बहुत से कारणतत्त्वो के परिणामस्वरूप जिन देशो से हम माल खरीदते हैं, उनकी सख्या मे वृद्धि हुई है। भारत के आयोजित विकास के लिए मशीनरी, सयत्रो, कच्चेमाल आदि की माग केवल यू०के० अथवा यू०एस०ए० द्वारा पूरी नहीं की जा सकती थी। इसके अतिरिक्त, विश्व बैंक एव अन्य अन्तर्राष्ट्रीय सस्थानो से प्राप्त सहायता द्वारा भारत (विश्वव्यापी निविदाओ–Global tenders) द्वारा सबसे सस्ते स्रोत से क्रय कर सकता था। तीसरे, कुछ देशो से बद्ध-सहायता (Tied aid) और अनुदान प्राप्त होने पर भारत को मजबूर होकर उन्हीं देशो से अपने आयोजन कार्यक्रमो के लिए आयात करना पडता था। विदेशी मुद्रा की दुर्लभता के कारण भारत कुछ पूजीवादी देशो की अपेक्षा यू०एस०एस०आर० और अन्य समाजवादी देशो से द्विपक्षीय रुपया व्यवस्था के लिए प्रोत्साहित हुआ। यू०एस० एस०आर० के विघटन के पश्चात् पूर्वीय यूरोप के देशो से व्यापार बहुत कम हो गया है। इसके साथ, चूकि 1973 मे तैल की कीमतो मे तेज वृद्धि हुई, भारत द्वारा पैट्रोलियम निर्यातक देशो अर्थात् ईरान, यू०ए०ई०, कुवैत, साऊदी अरब आदि से अधिक मात्रा में आयात किया गया।

(3) निर्यात के लिए बड़े और अधिक आकर्षक मार्ग–भारत अपने आयात के भुगतान के लिए अपने निर्यात का विविधीकरण करता रहा है। स्वाभाविक ही है कि उसे अपनी वस्तुए बेचने के लिए नए देशो की खोज करनी पडती। चाहे यू०के० भारत को वस्तुएँ काफी बडी मात्रा मे खरीदता है परन्तु इसे अब दूसरा स्थान प्राप्त है और यू०एस०ए० भारतीय माल का सबसे बडा क्रेता बन गया है। इस प्रकार, चार देश अर्थात् यू०के०, यू०एस०ए०, जर्मनी और जापान भारतीय निर्यात के 40 प्रतिशत का क्रय करते हैं। ये समृद्ध देश हैं जिनकी राष्ट्रीय एव प्रति व्यक्ति आय बहुत अधिक है और वे भारत की पारम्परिक वस्तुओं (रूई और पटसन निर्मित वस्तुओ, विशेषकर गालीचो चमडे की वस्तुओ) और गैर-पारम्परिक वस्तुओ जैसे समुद्री पदार्थों, हीरे एव कीमती पत्थरो आदि के लिए उत्तम बाजार उपलब्ध कराते हैं।

(4) नये क्षेत्रो की सभावना–अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका का भाग बहुत ही थोडा है। ये समृद्ध महाद्वीप हैं जिनका भविष्य उज्जवल है। भारत को इन देशो के साथ व्यापारिक सम्बन्ध विकसित करने चाहिए। वे भारत के निर्यात के लिए बडी मण्डिया बन सकते हैं। इसी प्रकार मध्य पूर्व एशिया के विकासशील देशो मे से भारतीय निर्यात बढाने की बहुत गुजाइश है और हाल ही मे इन देशो मे भारत ने अपनी नयी मण्डियो का विकास किया है।

स्रोत के आधार पर आयात के ढाचे से पता चलता है कि आर्थिक सहयोग एव विकास सगठन (Organisation for Economic Co-operation and Development) के देशो द्वारा भारतीय आयात में 1993–94 में सबसे बडा भाग अर्थात् 56 प्रतिशत उपलब्ध कराया गया। इसके बाद विकासशील देशो (तेल-निर्यातक देशो को छोडकर) का भाग लगभग 19 प्रतिशत है। तेल निर्यातक देशो और पूर्वी यूरोप के देशो का भाग क्रमश 22 प्रतिशत और 2 प्रतिशत था।

भारत के निर्यात मे भी विविधीकरण (Diversification) हुआ है। 1993–94 मे ओ०ई० सी०डी० समूह का भारतीय निर्यात मे भाग 60 प्रतिशत था जबकि विकासशील देशो का 26 प्रतिशत और पूर्वीय यूरोप के देशो का भाग 3 4 प्रतिशत है। तेल निर्यातक देशो का का हमारे कुल निर्यात में भाग 10 7 प्रतिशत है। हाल ही के वर्षों मे एशिया और प्रशान्त महासागर क्षेत्र के देशो का भारतीय निर्यात मे भाग बढ रहा है।

आर्थिक समीक्षा (1989–90) में विदेशी व्यापार के बदलते हुए ढाचे का जिक्र करते हुए उल्लेख किया गया–"भारत के निर्यात एव आयात मे एशिया के विकासशील देशो के साथ तीव्र वृद्धि हुई है (यदि पैट्रोलियम निर्यातक देशो के सगठन को छोड भी दिया जाए)। इनमे से कुछ अर्थव्यवस्थाओ (कोरिया, सिगापुर, मलेशिया, हागकाग और ताईवान) में लगातार आर्थिक वृद्धि के साथ व्यापार मे महत्त्वपूर्ण उदारीकरण और आर्थिक विनियमन हुआ है। अत इन देशो को निर्यात बढाने के बहुत ही अच्छे अवसर विद्यमान है। इसके विरुद्ध, अनिश्चितता के कारण पूर्वीय योरोप के देशो मे प्रस्तावित आर्थिक सुधारो के कारण व्यापार ढुलमुल ही रहेगा।"

39

भारत का भुगतान शेष
(INDIA'S BALANCE OF PAYMENTS)

पिछले आध्याय मे हमने भारत के व्यापार-शेष (Balance of trade) का विवेचन किया है परन्तु व्यापार-शेष हमारे अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वो (International obligations) की अपूर्ण तस्वीर प्रस्तुत करता है (चाहे वह कुल तस्वीर के बहुत बडे भाग को प्रस्तुत करता है)। अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वो का पूर्ण विवरण प्राप्त करने के लिए व्यापार-शेष मे अदृश्य मदो (Invisible items) से प्राप्त होने वाली शुद्ध आय को जमा करना होगा। व्यापार-शेष मे अदृश्य मदों से प्राप्त शुद्ध आय जोडकर चालू खाते पर भुगतान-शेष (Balance of payments on current account) प्राप्त किया जाता है।

भुगतान-शेष की सुविधा की दृष्टि से वर्गीकरण (क) चालू खाते पर भुगतान-शेष और (ख) पूजी खाते पर भुगतान-शेष के रूप मे किया जाता है। चालू खाते मे वस्तुओ तथा सेवाओ का भुगतान, एकपक्षीय भुगतान (Unilateral transfer) और दान शामिल किए जाते हैं। इस प्रकार चालू खाते पर भुगतान-शेप मे वस्तुओ तथा सेवाओ का निर्यात अदृश्य मदे और दान (Donations) सम्मिलित किए जाते हैं। पूजी खाते पर भुगतान-शेप मे देश को अन्तर्राष्ट्रीय वित्त स्थिति से सम्बन्धित चालू खाते की मदो का और अधिक स्पष्टीकरण मिलता है। चालू खाते की सभी मदे पूजी खाते मे व्यक्त होती हैं। परिणामत पूजी खाते मे देश की विदेशी परिसम्पत् और दायित्वो (International assets and liabilities) का अध्ययन किया जाता है। देश के विदेशी मुद्रा प्रारक्षण (Foreign exchange reserve) मे परिवर्तन जो देश की वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान स्थिति की सबलता या निर्बलता के सूचक होते हैं पूजी खाते (Capital account) मे शामिल किए जाते हैं।

1. स्वतन्त्रता-उपरान्त काल मे चालू खाते पर भुगतान-शेष

1951-52 से 1955-56—पहली योजना का काल

प्रथम योजना के दौरान भुगतान-शेप की स्थिति पर कोरिया के युद्ध के प्रभावस्वरूप आरम्भ हुई तेजी, 1953 मे अमरीका मे घटित प्रतिसार (Recession), देश में अनुकूल वर्षा होने के कारण कृषि और औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि का प्रभाव पडा। इस प्रकार इस काल मे खाद्य के आयात में कमी हुई परन्तु भारत सरकार की उदार आयात नीति (Liberal import policy) के कारण आयात 963 करोड रुपए के ऊँचे स्तर पर पहुँच गया। अत कोरिया के युद्ध के लाभ समाप्त हो गए। चाहे अदृश्य मदो के कारण 70 करोड रुपए की शुद्ध सकारात्मक आय प्राप्त हुई फिर भी भुगतान-शेष 163 करोड रुपए तक प्रतिकूल रहा। कुल मिलाकर पहली योजना के दौरान स्थिति सन्तोषजनक रही और पाच वर्षों की अवधि मे भुगतान-शेप केवल 42 करोड रुपए प्रतिवर्ष की औसत दर तक प्रतिकूल रहा।

1956-57 से 1961-62—दूसरी योजना का काल

दूसरी योजना का महत्त्वपूर्ण लक्षण यह था कि इसके दौरान व्यापार-शेप का घाटा 2,339 करोड रुपए था। अदृश्य मदो तथा मित्र देशो से प्राप्त अनुदानो से कुल 614 करोड रुपए शुद्ध अतिरेक के रूप मे प्राप्त हुए। इस प्रकार पाच वर्षों के दौरान भुगतान-शेष का कुल घाटा 1,725 करोड रुपए रह गया। इस परिस्थिति के मुख्य कारण थे (1) मूल तथा भारी उद्योगो के विकास के लिए पूजी-वस्तुओ का भारी आयात, (2) बढती हुई जनसख्या और विस्तृत होते हुए उद्योग की खाद्य-पदार्थों और कच्चेमाल की बढती हुई माग को कृषि उत्पादन मे वृद्धि द्वारा पूरा करने मे विफलता, (3) अर्थव्यवस्था द्वारा निर्यात को पर्याप्त मात्रा मे न बढा पाना और एक विकसमान अर्थव्यवस्था के लिए न्यूनतम परिपोषक आयात (Maintenance Imports) उपलब्ध कराने की आवश्यकता। परिणामत विदेशी मुद्रा प्रारक्षण (Foreign exchange reserve) मे तीव्र कमी हुई और देश के सामने आयात पर प्रतिबन्ध लगाने और निर्यात का विस्तार करने की अपेक्षा कोई चारा न रहा।

तीसरी योजना और वार्षिक योजनाओं का काल

तीसरी योजना के दौरान व्यापार-शेष का घाटा 2,384 करोड रुपए था, परन्तु अदृश्य मदो के खाते मे 432 करोड रुपए की शुद्ध आय प्राप्त हुई। इस प्रकार 1961-62 और 1965-66 के बीच चालू खाते पर भुगतान-शेष का घाटा 1,951 करोड रुपए रह गया।

वार्षिक योजनाओ (1966-67 से 1968-69) के काल के दौरान, विदेशों से प्राप्त किए गए उधार पर ब्याज के रूप में भारी राशि अदा करनी पडी। विनियोग आय (Investment Income) के रूप मे 1,449 करोड रुपए का शुद्ध उत्प्रवाह हुआ। इस कारण अदृश्य मदो मे अतिरेक का सफाया हो गया। परिणामत भुगतान-शेष का घाटा व्यापार-शेष के घाटे की तुलना मे और प्रतिकूल हो गया। 1969-70 और 1970-71 मे अच्छी फसल होने के कारण खाद्यान्न-आयात बहुत कम हो गया और इस प्रकार व्यापार-शेष का घाटा और भी कम हो गया। परन्तु 1971-72 और 1972-73 के दौरान स्थिति फिर बिगड गयी।

1973-74 मे अदृश्य मदो के खाते में असामान्य अनुकूलता का कारण सयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार के साथ पी एल 480 और अन्य रुपया राशि के भुगतान से छूट का निर्णय था और इस प्रकार भारत को 1,664 करोड रुपए अदृश्य प्राप्ति के रूप मे मिल गए। 1974-75 मे इस मद मे अनुकूलता का कारण परिवहन खाते और निजी खाते पर लिए गए ऋणो के रूप मे 280 करोड रुपए की भारी राशि की प्राप्ति थी। यदि इन असामान्य वर्षों को छोड दिया जाए तो चालू खाते मे घाटे का मुख्य भाग व्यापार शेष मे घाटे के कारण ही था।

पाचवीं योजना 1975-76 से 1978-79

1975-76 और 1978-79 के दौरान अदृश्य मदो मे तीव्र वृद्धि के कारण चालू खाते पर भुगतान शेष म अधिशेष उत्पन्न हो गया। अदृश्य मदो की प्राप्ति मे वृद्धि के उत्तरदायी मुख्य कारण थे (i) तस्करी (Smuggling) और अन्य गैर-कानूनी अन्तर्राष्ट्रीय भुगतान के विरुद्ध किए गए कडे उपाय, (ii) रुपए के विदेशी मूल्य मे ऐसे समय स्थिरता जब मुख्य अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राओ के मूल्यो में भारी उच्चावचन हो रहे थे, (iii) पर्यटको से प्राप्तियो मे वृद्धि, (iv) तकनीकी परामर्श एव अनुबन्ध सेवाओ (Technical consultancy and contract services) से प्राप्तियो मे

तालिका 1 चालू खाते पर भुगतान शेष

(करोड़ रुपए में)

योजना	वर्ष	व्यापार शेष	शुद्ध अदृश्य मदे	भुगतान शेष
पहली योजना	(1951-52-1955-56)	-542	+500	-42
दूसरी योजना	(1956-57-1960-61)	-2,339	+614	-1,725
तीसरी योजना	(1961-62-1965 66)	-2,382	+432	-1950
वार्षिक योजनाएं	(1966-67 से 1968 69)	-2067	+52	-2015
चौथी योजना	(1969 70 से 1973 74)	-1564	+1664	+100
पाचवीं योजना	(1974 75 से 1978 79)	-3,179	+6,261	+3082
	1979 80	-3374	+3140	-234
	1980 81	-5967	+4310	-1657
	1981 82	-6121	+3804	-2317
	1982 83	-5776	+3480	-2296
	1983 84	-5871	+3609	-2262
	1984 85	-6 721	+3869	-2852
छठी योजना	(1980 81 से 1984-85)	-30,456	+19,072	-11,384
	1985 86	-9 586	+3 630	-5 956
	1986 87	-9 354	+3 524	-5 830
	1987 88	-9 296	+3 003	-6 293
	1988 89	-13 555	+1 975	-11,580
	1989 90	-12 413	+1 025	-11 388
कुल	(1985 86 से 1989 90)	-54,204	+13,157	-41,047
	1990 91*	-16 934	-435	-17 369
	1991-92*	-6 495	+4 258	-2 337
	1992-93*	-14 101	+1 337	-12 764

*अस्थायी

वृद्धि और (v) रोजगार के लिए विदेश जाने वाले भारतीयो की सख्या मे वृद्धि और इनके द्वारा भारत को प्रेषण (Remittance) के रूप मे अधिक राशि भेजना। 1974-75 से 1978-79 के काल मे व्यापार-घाटा 3,179 करोड़ रुपए रहा किन्तु अदृश्य मदो से 6,261 करोड रुपए प्राप्त होने के कारण भुगतान-शेष मे 3,082 करोड रुपए का भारी अतिरेक कायम हो गया। आयोजन आरम्भ होने के पश्चात् भारत की पहली बार विदेशी खाते मे सतोषजनक स्थिति थी।

छठी योजना और सातवीं योजना का काल

1979-80 के पश्चात् भुगतान-शेष की स्थिति मे भारी परिवर्तन हुआ है। जबकि पाचवीं योजना की समग्र अवधि के दौरान भारत ने अनुकूल भुगतान-शेष अनुभव किया 1979-80 के पश्चात् भारत ने प्रतिकूल भुगतान-शेष अनुभव किया। इसका मुख्य कारण व्यापार घाटे मे वृद्धि था। तालिका 1 से जाहिर है कि व्यापार घाटा 1980-81 मे बढकर 5,967 करोड रुपए और 1981-82 मे और बढकर 6,121 करोड रुपए हो गया। 1983-84 और 1984-85 मे भी व्यापार घाटा क्रमश 5,871 करोड रुपए और 6,721 करोड़ रुपए रहा। इस असन्तोषजनक स्थिति का मुख्य कारण आयात में वृद्धि थी जबकि निर्यात मे अपेक्षाकृत कहीं कम वृद्धि हुई। चाहे अदृश्य मदो के रूप मे 1980-81 और 1984-85 के बीच प्राप्ति 19,072 करोड रुपए हुई जोकि अपने आप मे एक रिकार्ड उपलब्धि थी, परन्तु व्यापार-शेष का घाटा 30,456 करोड रुपए होने के कारण भुगतान शेष 11,384 करोड रुपए तक प्रतिकूल हो गया। शुद्ध विदेशी सहायता के अतिरिक्त, भुगतान-शेष के इस भारी घाटे को पूरा करने के लिए भारत सरकार को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से भारी ऋण प्राप्त करना पडा।

1985-86 और 1989-90 के दौरान (सातवीं योजना की अवधि मे) कुल व्यापार घाटा 54,204 करोड रुपए था।

तालिका 2 : 1990–91 से 1993–94 तक भुगतान-शेष

करोड़ यू०एस० डालर

	1990–91*	1991–92*	1992–93*	1993–94**	1994–95**
1 निर्यात	1847.7	1826.6	1866.9	2,270.0	2676.3
2 आयात	2791.4	2106.4	2,323.7	2398.5	3126.9
3. व्यापार-शेष (1–2)	–943.7	–279.8	–456.8	–128.5	–450.6
4. अदृश्य मदो से शुद्ध प्राप्ति	–24.3	+162.0	+84.2	+97.0	219.1
5. चालू खाते पर भुगतान शेष (3+4)	–968.0	–117.8	–353.6	–31.5	–231.5
6. विदेशी सहायता (शुद्ध)	221.0	303.7	185.9	170.0	125.0
7 वाणिज्यिक उधार (शुद्ध)	224.9	148.6	–35.8	125.2	102.9
8 अनिवासी भारतीयों की जमा (शुद्ध)	153.6	29.0	200.1	94.0	84.7
9 रुपया ऋण सेवा	–119.3	–124.0	–87.8	–74.5	–105.0
10. विदेशी विनियोग	6.8	15.4	58.5	411.0	499.5
11 अन्य पूंजी (शुद्ध)	231.8	27.1	–24.3	173.5	124.7
12 पूंजी खाते पर भुगतान-शेष (6 से 11)	840.2	475.4	425.4	919.3	707.2
13 समग्र शेष (5 + 12)	–127.8	–357.6	–72.8	–888.8	–475.7
14. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से उधार	121.4	78.6	128.8	19.1	114.6
15. औपचारिक रिज़र्व (–वृद्धि + गिरावट)	127.8	–357.6	–72.8	–888.8	–475.7
सकल देशी उत्पाद के प्रतिशत के रूप मे					
निर्यात	6.2	7.3	7.8	8.9	8.9
आयात	9.4	8.4	9.8	9.5	9.5
व्यापार-शेष	–3.2	–1.1	–2.0	–0.5	–1.8
अदृश्य मदो से प्राप्त आय	–0.1	0.7	0.2	0.4	0.7
चालू खाते पर भुगतान शेष	–3.3	–0.4	–1.8	–0.1	–0.8

* प्रारम्भिक अनुमान ** शेष अनुमान

स्रोत भारत सरकार आर्थिक समीक्षा (1995–96)

इसी काल के दौरान 13,157 करोड रुपए अदृश्य मदो से प्राप्त हुए। परिणामत चालू खाते पर भुगतान-शेष का कुल घाटा 41 047 करोड रुपए हो गया। भुगतान-शेष का अत्यधिक प्रतिकूल हो जाना चिन्ता का विषय है।

1990-91 के दौरान व्यापार-घाटा 16 934 करोड रुपये था परन्तु अदृश्य मदो से प्राप्त आय भी 435 करोड रुपये तक नकारात्मक हो गयी। परिणामत चालू खाते पर भुगतान शेष 17,369 करोड रुपये हो गया। पिछले 40 वर्षों में पहली बार अदृश्य मदों से शुद्ध आय नकारात्मक हो गयी। इसका मुख्य कारण विनियोग-आय का शुद्ध उत्प्रवाह (Net outflow) था जो 1990-91 में 6 732 करोड रुपये हो गया जबकि यह 1989-90 में 4 875 करोड रुपये था-38 प्रतिशत की वृद्धि। अत अदृश्य मदो से प्राप्त शुद्ध आय के रूप में व्यापार-घाटे को कम करने की राहत समाप्त हो गयी। 1991-92 और 1992-93 के दौरान अदृश्य मदो पर सकारात्मक अधिशेष प्राप्त होने के कारण कुल व्यापार-घाटा 65 5 प्रतिशत और 9 5 प्रतिशत तक क्रमश कम हो गया।

भुगतान शेष और नये आर्थिक सुधार (1991)

तालिका 2 मे भुगतान शेष की स्थिति डालरो के रूप में दी गयी है। चूकि अदृश्य मदो से प्राप्त आय नकारात्मक हो गयी है, इस कारण अदृश्य मदो का व्यापार-घाटे को कम करने का कार्यभाग समाप्त हो गया है। इसका मुख्य कारण विदेशी ऋण पर ब्याज भुगतान के रूप मे अत्यधिक उत्प्रवाह है। ब्याज भुगतान के कारण शुद्ध उत्प्रवाह (Net Outflow) 1990-91 में 375 करोड डालर और 1992-93 में 342 करोड डालर था। 1993-94 मे भी इसके 400 करोड डालर रहने की प्रत्याशा है। परिणामत भुगतान-शेष पर चालू घाटा जो 1990-91 में सकल देशीय उत्पाद का -3 3 प्रतिशत था गिरकर 1991-92 में -0 4 प्रतिशत हो गया। इसका मुख्य कारण आयात मे सकुचन है और परिणामत यह 1992-93 में फिर बढकर -1 8 प्रतिशत हो गया। आर्थिक समीक्षा (1993-94) में यह अनुमान लगाया गया कि 1993-94 में चालू खाते पर घाटा और गिरकर सकल देशीय उत्पाद का केवल 0 1 प्रतिशत रह गया परन्तु 1994-95 मे यह फिर बढकर 0 8 प्रतिशत हो गया।

पूजी खाते पर सतुलन कायम करना (Capital Account Balancing)

पारम्भिक रूप मे दो मुख्य स्रोतो अर्थात् द्विपक्षीय एव बहुपक्षीय स्रोतो से विदेशी सहायता और वाणिज्यिक उधार (Commercial borrowing) द्वारा चालू खाते के घाटे के लिए वित्त प्रबन्ध किया जाता है। चाहे विदेशी सहायता ने 1991-92 में 304 करोड डालर और 1992-93 में 186 करोड डालर का वित्त जुटाया विदेशी वाणिज्यिक उधार ने नकारात्मक योगदान दिया जिसका अर्थ यह है कि ऋणशोधन (Amortization) और ब्याज के रूप मे वाणिज्यिक उधार पर उत्प्रवाह शुद्ध विदेशी वाणिज्यिक उधारो के अन्त प्रवाहो (Inflows) से अधिक थे।

एक और कारणतत्व जिसने पूजी खाते पर नकारात्मक प्रभाव डाला रूसी ऋण पर रुपया-सेवा-भार (Rupee debt service) है। यह 1991-92 मे 124 करोड डालर था अनिवासी भारतीयो की जमा (Non resident Indians deposits) 1992-93 मे 200 करोड डालर की वृद्धि हुई जो आशिक रूप मे भुगतान-शेष की स्थिति मे सुधार और एक हद तक एक नयी जमा योजना (Deposit scheme) को चालू करने का परिणाम थी।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से उधार द्वारा 1992-93 म 128 8 करोड डालर का योगदान प्राप्त हुआ जबकि यह राशि 1991-92 मे 78 6 करोड डालर थी। इसका मुख्य उद्देश्य द्विपक्षीय एव बहुपक्षीय ऋणदाताओ द्वारा भारत को भुगतान-शेष के सकट से मुक्त करना था। जून 1993 मे भारत सहायता सघ (Aid India Consortium) ने 220 करोड डालर की तीव्र-वितरणाय सहायता देने का वायदा किया।

इन सभी पूंजी अन्त प्रवाहो (Capital inflows) के परिणामस्वरूप विदेशी मुद्रा रिजर्व मे 1992-93 म 357 6 करोड डालर और 1993-94 मे 72 8 करोड डालर को वृद्धि हुई। अत वित्तमत्री ने यह दावा किया कि विदेशी मुद्रा रिजर्व जो 1992-93 मे 6 4 अरब डालर थे बढकर मार्च 1994 में 15 1 अरब डालर हो गए। जून 1995 में ये रिजर्व और बढकर 19 6 अरब डालर के उच्चस्तर पर पहुच गए।

विदेशी मुद्रा रिजर्व मे तीव्र वृद्धि अत्यधिक उधार या भारी मात्रा मे विदेशी सहायता के अन्त प्रवाह (Inflow) का परिणाम है। भारत सरकार परिस्थिति पर परदा डालने के लिए यह कहती रही है कि वर्तमान सकट को दूर करने के लिए गैर-ऋण कायम करने वाली सहायता का प्रयोग किया जा रहा है। परन्तु ऋण रूपी एव गैर-ऋण रूपी अन्त प्रवाहो (Non-debt inflows) के रूप में भेद विदेशी मुद्र उत्प्रवाहो के भार को कम नहीं करता। ऋण के रूप मे ऋण-शोधन भुगतान एवं ब्याज के रूप मे उत्प्रवाह होते हैं और गैर-ऋण कायम करने वाली सहायता द्वारा लाभाश और रायल्टी के रूप मे विदेशी मुद्रा का उत्प्रवाह होता है। दोना परिस्थितियो मे देश पर भार बढता है। अत यह भेद केवल रूप का ही है परन्तु वास्तविक रूप में अर्थहीन है।

भारतीय रिजर्व बैंक के गवनर श्री सी० रगाराजन ने 22 अगस्त 1996 को दिल्ली में सी०एन० वकील स्मृति भाषण

मे भुगतान-शेष की स्थिति के बारे मे सावधान रहने का परामर्श दिया। उन्होने यह चेतावनी दी कि विदेशी मुद्रा रिजर्व 1 700 करोड डालर के नीचे गिरने नहीं देने चाहिए। उनका मत था कि भुगतान-शेष को दो चलो द्वारा प्रबन्धित किया जाना चाहिए-प्रथम चालू खाते पर भुगतान-शेष सकल देशीय उत्पाद के लगभग 2 प्रतिशत के बराबर रहना चाहिए और द्वितीय विदेशी मुद्रा रिजर्व मे 1996-97 के आरम्भ मे पहुँचे स्तर अर्थात् 1 700 करोड डालर से और गिरावट नही आनी चाहिए। यह बात ध्यान देने योग्य है कि विदेशी मुद्रा रिजर्व 1994-95 मे 2,520 करोड डालर थे और वे 1995-96 मे कम होकर 2 170 करोड डालर हो गए और 1996-97 के आरम्भ मे और गिरकर 1 700 करोड डालर के स्तर पर पहुँच गए। इस प्रवृत्ति को रोकना चाहिए क्योकि 1 700 करोड डालर के रिजर्व द्वारा चार मास के आयात के लिए कवच उपलब्ध कराया जा सकता है और यह अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डो के अनुसार एक स्वीकार्य ओर वाछनीय स्तर है।

मुख्य प्रश्न जिसकी रिजर्व बैंक के गवर्नर ने अपेक्षा की यह है क्या हम भारी मात्रा मे विदेशी विनियोग के अन्तर्प्रवाह पर लगातार निर्भय रहे कि वे हमे भुगतान-शेष के सकट से मुक्त करते रहे या हमे अपने विदेशी व्यापार की नीति मे ऐसा परिवर्तन करना होगा कि चालू खाते का घाटा समाप्त हो जाए। केवल उत्तरोक्त मार्ग ही देश को निर्भरता के गर्त से बचा सकता है जिसमे कि हम फसते चले जा रहे है। इसके लिए आयात की काट-छाट करनी जरूरी है ताकि गैर-आवश्यक आयात को कम किया जाए आर भुगतान शेष के घाटे को तीव्र गति से कम किया जाए। दूसरे आटोमोबाइल उद्योग को कृत्रिम प्रोत्साहन देने की नीति की गति धीमी करनी होगी ताकि पी०ओ०एल० का आयात-बिल (Import bill) जो 1995 96 मे 750 करोड डालर के स्तर पर पहुच गया है को सन् 2000-01 तक 1 300 करोड डालर तक सीमित किया जा सके। इसके लिए एक ऊर्जा-योजना (Energy Plan) बनाने की जरूरत है न कि आटोमोबाइल उद्योग के बेलगाम ढग से विस्तार की। देश अल्पकालीन समाधानो मे फस गया है। आवश्यकता इस बात की है कि भुगतान-शेष की समस्या के समाधान के लिए दीर्घकालीन नीति अपनायी जाए।

2. भुगतान-शेष के घाटे की समस्या का समाधान

चाहे सरकार किसी एक वर्ष के दौरान भुगतान शेष के घाटे को पूरा करने के लिए सचित विदेशी मुद्रा रिजर्व का प्रयोग कर ले या अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से ऋण प्राप्त कर ले या विदेशी ऋण या अनुदान प्राप्त कर ल परन्तु देश इस प्रकार अपने लगातार बने हुए भुगतान-शेष की समस्या का समाधान नहीं कर सकता। जब तक भुगतान-शेष मे निरन्तर घाटा उत्पन्न करने वाले मूल कारणतत्व कायम रहते हैं, देश भुगतान-शेष मे प्रतिकूलता अनुभव करता रहेगा। देश धीरे धीरे ऐसी अवस्था मे पहुच सकता है जहा (i) इसके पास कोई विदेशी मुद्रा रिजर्व बाकी न रहे (ii) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से सामान्य और विशेष सुविधाओ के आधीन सब ऋण प्राप्त कर लिए जाए, (iii) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से प्राप्त विशेष ऋण भी समाप्त हो चुका हो और (iv) अन्य देश इसे और उधार देने के लिए राजी न हो। इसके अतिरिक्त ब्याज और ऋण-शोधन (Amortisation) के रूप मे इन पुराने ऋणो पर भारी राशि का भुगतान करने के लिए अतिरिक्त ऋण प्राप्त करने पडे। भारत अभी ऐसी स्थिति मे नहीं पहुँचा है जिसमे कि मैक्सिको अर्जनटाइना और कुछ अन्य देश पहुँच चुके थे जिन्हे अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय ने बाद मे बचाया। अत भारत को समय रहने पर अपनी निरन्तर भुगतान-शेष की बिगडती हुई स्थिति को सुधारने के लिए उपाय करने होगे।

मूल रूप मे यह बात स्वीकार करनी होगी कि भारत के भुगतान-शेष मे प्रतिकूलता की समस्या अनिवार्यत भारी व्यापार घाटे से उत्पन्न होती है जिसका कारण तेजी से बढते हुए आयात के विरुद्ध निर्यात का अपेक्षाकृत धीमी गति से बढना है। इसका अन्तिम हल तो इस नीति मे है कि आयात सीमित कर न्यूनतम आवश्यक स्तर पर लाया जाए और निर्यात प्रोत्साहित कर अधिकतम सभव सीमा तक बढाए जाए।

आयात सरचना मे परिवर्तन–इसमे सन्देह नहीं और यह बात सभी स्वीकार करते है कि आयात मे कमी की काफी गुजाइश है। खाद्यान्नो के उत्पादन मे वृद्धि द्वारा इनका आयात पूर्णतया समाप्त किया जा सकता है। इस सम्बन्ध म सरकार को यह बात समझ लेनी चाहिए कि अमरीकी गेहू के लिए ऊची कीमते देने की अपेक्षा अपने देश के किसानो को ऊची वसूली कीमते (Procurement Prices) देना कहीं अधिक लाभदायक है। इसी प्रकार विलासी तथा अर्द्ध-विलासी वस्तुए अर्थात् वीडियो रगीन टी वी के आयात पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए, भले ही इन वस्तुओ की माग उच्च वर्गों द्वारा आवश्यक मानी जाती है। इनके आयात को किसी भी आधार पर न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। केवल लौह एव इस्पात के आयात म कमी करके 1 000 से 1 300 करोड रुपए तक विदेशी मुद्रा बचायी जा सकती है और देश म इस्पात कारखाना म क्षमता उपयोग बढाकर ऐसा परिणाम प्राप्त करना सम्भव है। इसी प्रकार सीमेट कागज आदि का आयात घटाया जा सकता है। उर्वरको के सम्बन्ध म देश मे अतिरिक्त क्षमता कायम करक

आयात कम किया जा सकता है। जहा तक विकास के लिए मशीनरी के आयात का प्रश्न है जिसे बिल्कुल अनिवार्य समझा जाता है इसमे भी स्थानाय उत्पादन और स्थानीय तकनालाजी (Local technology) को प्रोत्साहित कर काफी वचत प्राप्त की जा सकती है।[1] पैट्रोलियम तेल एव स्नेहको (Petroleum oil and lubricants) के आयात मे देशी उत्पादन मे वृद्धि द्वारा कम-से कम 25 से 33 प्रतिशत की कटौता का जा सकती है। इसके अतिरिक्त इनका देश मे व्यर्थ उपभोग भी काटना होगा। अत ऊपर बताए गए सभी उपायो के समूचे प्रभाव के फलस्वरूप यह अनुमान लगाया गया है कि आयात 3 000 से 3 500 करोड़ रुपए तक कम किए जा सकते हैं। इस हद तक आयात मे कटौती एव आयात प्रतिस्थापन के लिए बहुत कड़ी सरकार की आवश्यकता नहा बल्कि केवल ऐसी सरकार की आवश्यकता है जो देश के हित को सर्वोच्च महत्त्व देती हो।

निर्यात प्रोत्साहन (Export promotion)—आयात परिसामन व्यापार घाटे को कम करने का केवल एक पहलू है निर्यात का विस्तार भी उतना ही महत्वपूण है। गैर पारम्परिक निर्यात (Non traditional exports) मे भी वृद्धि की काफी गुजाइश है इसमें हल्की इन्जीनियरिंग वस्तुए, हस्तशिल्प आदि शामिल हैं। पारम्परिक वस्तुओ के सम्बन्ध म कम से कम यह प्रयास अवश्य करना चाहिए कि कुल नियात म उनका वर्तमान अनुपात बना रहे। नियात को बढावा देने के लिए बहुत से प्रोत्साहनो के अलावा कुछ ऐसी वस्तुओ के देशी उपभोग को सीमित करने का भी प्रयास करना चाहिए जिनमे अधिक निर्यात क्षमता है ताकि नियात अतिरेक मे वृद्धि हो। इस सन्दर्भ मे निर्यात वस्तुआ की लागतो एव कीमतो की वृद्धि को भा काबू मे रखना होगा ताकि भारतीय वस्तुए अन्तराष्ट्रीय मण्डिया में ऊची कामतो के कारण बाहर न धकेल दी जाए। चाहे भारत सरकार और औद्योगिक व्यापारिक घराने निर्यात प्रोत्साहन पर दिन रात बल देते है परन्तु इस बात पर बल देना आवश्यक है कि उन्नत देशो मे सरक्षणवादी नीतियो (Protectionist policies) के कारण नियात का भी एक सीमा तक विस्तार किया जा सकता है।

1960 70 और 1970 80 के दशक के दौरान सरकार कड़े विदेशी मुद्रा नियन्त्रणा के आधीन कार्य करती रही है ताकि अनावश्यक वस्तुओ के आयात को रोका जा सके या ऐसी वस्तुओ का आयात कम किया जाए जिनका उत्पादन देश मे पहले से हो रहा है और विदेशी मुद्रा को केवल अनिवार्य आयात के वित्त प्रबन्ध के लिए सम्भाल कर रखा जाए। विदेशी मुद्रा नियन्त्रण प्रणाली के कारण विदेशी मुद्रा के सदर्भ मे भारी चोरबाजारी शुरू हो गई और निर्यात मे विस्तृत रूप मे कम बीजकीकरण (Under invoicing) के परिणामस्वरूप भारी मात्रा मे अवैध विदेशी मुद्रा एकत्र की गयी। आगामी वर्षों मे विदेशी मुद्रा नियन्त्रणो का प्रयोग हमारी भुगतान शेष की समस्या के लिए नहीं किया जाएगा।

3 आयात नीति

(Import Policy)

स्वतन्त्रता-उपरान्त काल में आयात नीति का मार्गदर्शी सिद्धान्त विकास प्रेरित नीति को बढावा देना था ताकि देश आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त कर सके। इस नीति के मुख्य लक्षण निम्नलिखित थे –

(i) विदेशी मुद्रा को बचाने के लिए जहा तक हो सके कम से कम आयात करना चाहिए, (ii) आयात का स्वरूप इस प्रकार बदलना चाहिए कि इससे नियात प्रोत्साहन (Export promotion) त्वरित किया जा सके। इसका उद्देश्य अन्तत भुगतान शेष की प्रतिकूल स्थिति को सुधारना है। (iii) ऐसी वस्तुओ के आयात को बढावा देना चाहिए जिनसे अर्थव्यवस्था के औद्योगीकरण मे सहायता मिले और ऐसी वस्तुओ का आयात जो देश मे ही उत्पन्न की जा सकती हो या तो पूर्णतया बन्द कर देना चाहिए या हतोत्साहित करना चाहिए। आवश्यक तथा अनावश्यक आयात (Inessential imports) में भेद करना इस कारण जरूरी है क्योकि विकासशील अथव्यवस्था मे पूजी वस्तुओ के आयात की माग इतनी अधिक होता है कि इसके लिए विदेशी मुद्रा उपलब्ध कराने मे काफी कठिनाई अनुभव होती है।

आयोजन के प्रथम दशक मे आयात नीति

प्रथम योजना काल के बाद आशावाद के वातावरण और दूसरी योजना मे कल्पित औद्योगीकरण के प्रोग्राम के कारण 1955 और 1956 मे उदार आयात नीति अपनाई गई। सरकारी एव गैर सरकारी दोनों क्षेत्रो मे आयात में वृद्धि हुई। गैर सरकारी क्षेत्र मे आधुनिकीकरण (Modernisation) प्रतिस्थापन (Replacement) और विस्तार की योजनाओ और सरकारी क्षेत्र म मूल तथा बुनियादी उद्योगो के प्रोग्राम को कार्यान्वित करने के कारण आयात मे अभूतपूर्व वृद्धि हुई। इस कारण आयात नीति को बदलना अनिवार्य हो गया और उसके बाद आयात पर कड़े प्रतिबन्ध लगाए गए।

1962 मे मुदलियार समिति ने आयात नीति के बारे मे

---

1 विशाल क्षमता के विद्युत जनन (Electric generators) जो भारत हैवी इलैक्ट्रिकल लिमिटेड द्वारा उत्पन्न किए जा सकते थे का आयात जननो से किया गया क्योकि अन्तर्राष्ट्रीय महानिगमों द्वारा विदेशी सहायता और नरम ऋण (Soft loan) का वायदा किया गया। इसके अतिरिक्त देश के सरकारी उच्चाधिकारियो को विदेशी पार्टियों से समझौते कराने से कुछ लाभ प्राप्त हो सकते हैं।

यह सिफारिश की कि वर्तमान उद्योग के लिए कच्चे माल, मशीनी-हिस्सो आदि के आयात की सुविधाए उपलब्ध करानी चाहिए। आयात की सुविधा के लिए उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगो को अधिमान देना चाहिए। इनमे ये उद्योग शामिल है (i) सचालन शक्ति एव परिवहन उद्योग (ii) निर्यात मूलक उद्योग, (iii) ऐसे उद्योग जो आयात होने वाले कच्चे माल और सघटको (Components) का उत्पादन करते है और सयत्र एव मशीनरी के आयात के लिए स्वय विदेशी मुद्रा का प्रबन्ध करते हैं। इस समिति की सिफारिशो को सरकार ने मान लिया।

अवमूल्यन (1966) के पश्चात् आयात नीति

1965-66 तक प्रतिबन्धात्मक नीति ही लागू की गई। रुपए के अवमूल्यन के पश्चात् 22 जून 1966 को भारत सरकार ने नई आयात नीति घोषित की। इस नीति मे सरकार ने 59 प्राथमिकता प्राप्त उद्योगो अर्थात् कच्चे मालो, सघटको एव फालतू पुर्जो के आयात मे फिर से उदारता की नीति अपनाई। उदार आयात का उद्देश्य उद्योगो मे पूर्ण उत्पादन-क्षमता तक उत्पादन कर पाना था। प्राथमिकता-प्राप्त वर्ग मे दिए गए उद्योगो मे निर्यात उद्योग, ऐसे उद्योग जो जनता की सामान्य आवश्यकताओ को पूरा करते हैं और पूजी निर्माण उद्योग शामिल किए गए।

उदार आयात नीति का एक और लक्षण सरकार द्वारा कृषि-उत्पादन बढाने के लिए बडी मात्रा मे उर्वरको, कीटनाशको, गन्धक आदि का प्रबन्ध करना था। इसके अतिरिक्त, सरकार प्राथमिकता-प्राप्त वर्ग मे समाविष्ट उद्योगो मे छोटे पैमाने की इकाइयो को लाइसेस प्रदान करने की सुविधा मे भी उदारता दिखाना चाहती थी। नई आयात नीति मे निर्यात-प्रतिस्थापन उद्योगो की अपेक्षा सामान्यत *ओद्योगीकरण को त्वरित करने पर विशेष बल दिया गया।*

निर्यात-प्रेरित आयात नीति (Export-oriented Import Policy)

1975-76 मे भारत सरकार ने नई आयात नीति की घोषणा की। यह नीति उत्पादन-विशेषकर निर्यात उत्पादन-को बढाने के उद्देश्य से प्रेरित थी। सामर्थ्य उपयोग (Capacity utilisation) को प्रोन्नत करने के लिए इस नीति म परिपापक आयात (Maintenance imports) पर अधिक बल दिया गया। इस नीति के मुख्य लक्षण थे

(i) निर्यातको के लिए समय पर आयात का प्रबन्ध करने के उद्देश्य से स्वचालित आयात लाइसेस (Automatic import licensing) प्रदान करने की योजना चालू की गयी। इस योजना के अन्तर्गत, किसी भी निर्माता या निर्यातक जिसे 1974-75 के दौरान आयात लाइसेस मिला हो को उतने ही मूल्य और उन्हीं मदो के लिए अग्रिम लाइसेन्सो की इजाजत होगी। इस नीति का उद्देश्य सामर्थ्य-उपयोग को और अधिक प्रोन्नत करना था।

(ii) अननुज्ञेय मदो (Non permissible items) की अधिकतम सीमा 5 प्रतिशत से बढा कर 10 प्रतिशत कर दी गयी ताकि किसी ऐसी छोटी सी मद की अनुपलब्धि के कारण जिसका आयात सामान्यता वर्जित हो, निर्यात-उत्पादन पर दुष्प्रभाव न पडे।

(iii) ऐसी इकाइयो की जो अपने उत्पादन के कम-से-कम 20 प्रतिशत का निर्यात करती है आयातित कच्चे माल के उपभोग के मूल्य के आधार पर लाइसेस प्राप्त करने की स्वीकृति दी गयी।

(iv) आयात अधिकार योजना (Import Entitlement Scheme) के आधीन मशीन्री के आयात की नीति मे उदारता लायी गई। आयातित मशीनरी को अधिकतम सीमा 6 लाख रुपए से बढाकर 7 5 लाख रुपए कर दी गयी। निर्यात-उत्पादन मे काम करने वाला निर्माता आयात अधिकार योजना की समग्र राशि प्रतिस्थापन *आधुनिकीकरण, अनुसधान एव विकास मे लगा सकता था।*

जनता सरकार की स्थापना के पश्चात् 1977-78 मे नयी आयात नीति घोषित की गयी जिसमे औद्योगिक कच्चे माल और पूजी वस्तुओ के आयात मे महत्त्वपूर्ण उदारता लायी गयी। इसमे छोटे पैमाने के उद्यमो का विशेष ध्यान रखा गया। नीति की मुख्य बातें निम्नलिखित थीं-

(1) स्वतन्त्र सामान्य लाइसेस (Open General Licence) की सूची का विस्तार कर इसमे 570 मदे शामिल की गयी। बहुत सी नई वस्तुए, जिनमे चमडा और कपडे की मशीनरी भी थीं,स्वतन्त्र सामान्य लाइसेस सूची मे शामिल कर ली गयीं, 111 मदो मे उदारता लायी गयी और मशीनरी और मशीनी औजारो को 28 मदो को लाइसेस मुक्त कर दिया गया।

(2) छोटे पैमाने की इकाइयो के लिए कच्चे माल और सघटको के आयात के लिए 20 प्रतिशत की सीधी वृद्धि की घोषणा की गई।

(3) चुनी हुई वस्तुओ के सम्बन्ध मे निर्यात-घराना प्रमाण-पत्र (Export house certificate) प्राप्त करने के लिए न्यूनतम निर्यात की सीमा 50 लाख रुपए से बढा कर 1 करोड रुपए तक कर दी गई और अन्य वस्तुओ के सम्बन्ध मे बढा कर 3 करोड रुपए से 5 करोड रुपए कर दी गई।

काग्रेस (इ) सरकार की 1980-81 मे घोषित आयात नीति का उद्देश्य अनावश्यक आयात को सीमित करके देशीय उत्पादन को प्रोत्साहन देना और निर्यात को बढाना था ताकि बढता हुआ भारी व्यापार-घाटा कम किया जा सके। नई आयात-नीति के मुख्य लक्षण थे (i) पाच मदो के

लिए पुन पूर्ति लाइसेन्स (REP Licence) के विरुद्ध शुल्क मुक्त आयात (Duty free imports)की इजाजत दी गई। ये मदें थीं स्टेनलेस स्टील, जस्ता, पीतल, पोलिएस्टर एव नाइलॉन धागे का सूत। (ii) मशीनरी और सज्जा के रक्षण सम्बन्धी फालतू पुर्जों के लिए अपेक्षाकृत अधिक उदार आयात नीति अपनायी गयी। (iii) देशीय उद्योग के विकास को उन्नत करने और आयात पर निर्भरता को कम करने के लिए 50 से अधिक मदे स्वतन्त्र सामान्य लाइसेंस (OGL) के क्षेत्र से हटा दी गई। इसके अतिरिक्त 18 मदे सीमित की अपेक्षा प्रतिबन्धित सूची (Banned list) मे परिवर्तित कर दी गई। (iv) छोट पैमाने की इकाइयो को 50 000 रुपए के मूल्य तक पुन लाइसेंस (Repeat licence) देने की प्रणाली जारी रखी गयी।

निर्यात-आयात नीति (1985)

तत्कालीन वाणिज्य मन्त्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने 12 अप्रैल, 1985 को निर्यात-आयात नीति की घोषणा की। पहली बार सरकार ने 3 वर्षीय आधार पर नीति बनाई। नई नीति का मूल उद्दश्य आयातित आदानो की सुगम तथा शीघ्र उपलब्धि द्वारा उत्पादन को सुविधाजनक बनाना था निर्यात-आयात नीति द्वारा निरन्तरता और स्थिरता कायम की जाए, निर्यात-उत्पादन-आधार को मजबूत बनाया जाए, तकनालाजीय उन्नति को सुविधाजनक बनाया जाए और आयात में सभी सम्भव बचते की जाए। इस नीति के मुख्य लक्षण थे

(i) 53 मदो के आयात को वांछित दिशाओ मे परिवर्तित कर दिया गया।

(ii) औद्योगिक मशीनरी की 201 मदो को आयात नीति के अनुसार स्वतन्त्र सामान्य लाइसेन्स (Open General Licence) के आधीन रख दिया गया। जिन क्षेत्रो को इस नीति से लाभ होगा वे थे चमड़ा आटोमोबाइल इलैक्ट्रानिक्स,जूट का कपडा और तेल क्षेत्र सेवाए।

(iii) एक नई योजना 'आयात-निर्यात पास बुक' चालू की गइ है। इस योजना द्वारा निर्माताओ एव निर्यातको को निर्यात-उत्पादन के लिए आयातित-आदान शुल्क-मुक्त प्राप्त करने की सुविधा दी गयी।

(iv) कम्प्यूटर और कम्प्यूटर पर आधारित प्रणालियो के लिए दो स्तरीय नीति अपनाई गई। वे जिनकी लागत 16 लाख रुपए से कम होगी को अपने प्रयोग के लिए सभी व्यक्तियो को आयात की इजाजत होगी।

(v) प्रवासी भारतीय/भारतीय मूल के ऐसे व्यक्ति जो स्थायी रूप म बसने के लिए वापिस नहीं आ रहे हो को सामान्य नीति के अनुसार ही आयात सुविधाए दी जाएगी और उन्हे कोइ विशेष सुविधाए प्राप्त नहीं होगी।

वर्तमान आयात नीति का उद्योग एव वाणिज्य के चेम्बर, व्यापारिक एव औद्योगिक घराना और प्रसिद्ध उद्योगपतियो द्वारा स्वागत किया गया। यह नीति अनावश्यक आयात को सीमित करती थी परन्तु देशी उत्पादन एव निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए आयात की इजाजत देती थी। यह नीति आयात द्वारा तकनालाजी उन्नति को बढ़ावा देना चाहती थी। नीति बहु-राष्ट्रीय निगमो द्वारा देश म वस्तुओ के राशिपातन (Dumping) को रोकने के बारे म सजग थी और इसलिए यह देशीय उत्पादन को आयात पर चयनात्मक प्रतिबन्ध लगाकर आलम्बन देना चाहती थी। इस नीति का एक और अभिनन्दनीय पहलू लघु-स्तर एव कुटीर उद्योगो एव कृषि निर्यात को बढावा देना था। इस प्रकार हमारे मानव-शक्ति और कृषि-ससाधनो के अधिकतम प्रयोग को सहायता मिलेगी। जहा तक निर्यात को बढावा देने का सम्बन्ध है, आयात नीति बहुत ही स्पष्ट उपायो द्वारा भारतीय निर्यात का विस्तार करना चाहती थी। विभिन्न उपाय सीधे और सकारात्मक थे। और हर एक इस बात स सहमत है कि भारतीय आयात नीति स्पष्टत निर्यात-प्रेरित है।

आयात-निर्यात नीति (1988-89)

30 मार्च 1988 को घोषित आयात-निर्यात नीति म 1985 की नीति में कुछ छोटे-मोटे सशोधन किए गए। इस नीति की मुख्य बाते निम्नलिखित हैं –

1 745 मदो को स्वतन्त्र सामान्य लाइसस (Open General Licence) की सूची मे रख दिया गया। इनमे 200 मदे जीवन बचाव उपकरणा 108 मद औषधी और 99 मदे मशीनरी से सम्बन्धित थीं।

2 आयात पुन पूर्ति लाइसस योजना का विस्तार किया गया।

3 आयात की 26 मदो को सरकारी आयात की सूची से हटा लिया गया।

4 निर्यात घरानो और निर्यात व्यापार घराना (Export Trading Houses) को स्वीकार करने की वैध सीमा बढा कर शुद्ध विदेशी मुद्रा क्रमश 2 करोड रुपए और 10 करोड रुपए कर दी गयी।

5 प्रवासी भारतीयो को विशेष आयात सुविधाओ का लाभ उठाने के लिए स्थायी प्रत्याय की शत हटा दी गयी।

6 एसे देशीय विनिर्माताओ (Manufacturers) के लिए जिनकी औसत बिक्री 14 करोड से अधिक है पास बुक योजना लागू की गयी।

इन सभी उपायो का उद्देश्य 1985 मे घोषित आयात निर्यात नीति को सबल बनाना था।

4 निर्यात-नीति
(Export Policy)

1947-48 और 1950-51 के बीच निर्यात नीति का आधार दो मुख्य बाते थी दुर्लभ मुद्रा क्षेत्र (Hard currency areas) से प्राप्ति को अधिकतम करना और (ii) यह आश्वासन दिलाना कि जब तक घरेलू माग को पर्याप्त रूप मे पूरा न किया जाए, तब तक निर्यात नहीं किया जायेगा। युद्धोपरांत काल मे विद्यमान दुर्लभता के कारण यह अनिवार्य था कि भारतीय अर्थव्यवस्था मे दुर्लभता की स्थिति को दूर किया जाए। बढती हुई कीमतो को रोकने के लिए ऐसा करना आवश्यक था। अत इस अवधि के दौरान निर्यात नीति प्रतिबन्धात्मक (Restrictive) थी। 1949 के अवमूल्यन और कोरिया के युद्ध के कारण हमारे निर्यात को कुछ प्रोत्साहन अवश्य मिला परन्तु कोरिया के युद्ध की समाप्ति और बाद मे घटित प्रतिसार (Recession) के कारण निर्यात नीति मे उदारता के प्रति रुख बदलना पडा। कुछ निर्यात शुल्क तो हटा दिए गए परन्तु पहली योजना के अन्तिम दो वर्षों मे आर्थिक विकास की आवश्यकताओ को दृष्टि मे रखकर निर्यात प्रोत्साहन (Export promotion) पर गम्भीर रूप से विचार किया गया।

स्टलिंग अधिशेष के सग्रहण के कारण निर्यात प्रोत्साहन की आवश्यकता कम अनुभव की गयी। दूसरी योजना मे इस बात पर बल देते हुए लिखा गया भारत को निर्यात से प्राप्त होने वाली आय कुछ ही वस्तुओ पर निर्भर है। इनमे से तीन अर्थात् चाय पटसन और कपडा हमारे निर्यात के लगभग आधे के बराबर हैं। इन मुख्य निर्यात पदार्थों को स्वदेशी प्रतियोगिता का सामना करना पडता है। इस कारण अल्पकाल मे निर्यात मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि सम्भव नहीं। चाहे नई वस्तुओ के निर्यात के लिए हर सम्भव उपाय करना चाहिए और मुख्य निर्यात वस्तुओ के लिए नई नई मण्डिया ढूढनी चाहिए, परन्तु यह बात स्वीकार करनी होगी कि *औद्योगीकरण की क्रिया जब तक आगे नहीं बढ जाती* और देशीय उत्पादन मे वृद्धि नहीं हो जाती तब तक निर्यात मे अधिक मात्रा मे प्राप्ति होने की कोई सम्भावना नहीं।

निर्यात प्रोत्साहन (Export Promotion)

तीसरी योजना मे निर्यात प्रोत्साहन की आवश्यकता को अनुभव करते हुए निम्नलिखित उपायो का उल्लेख किया गया-(क) घरेलू उपभोग उचित सीमा तक कम करना होगा ताकि निर्यात के लिए वस्तुए बचाई जा सके। (ख) जब कोई अर्थव्यवस्था विकसित होने लगती है तो घरेलू मण्डियो मे अधिकाधिक मुनाफा कमाया जा सकता है अत निर्यात की सापेक्ष लाभकारिता (Relative profitability) बढाने के कदम उठाने चाहिए। (ग) मुख्य उद्योगो को -विशेषकर निर्यात उद्योगो को-लागत के स्वरूप तथा उत्पादिता की दृष्टि से जल्दी-से जल्दी प्रतियोगी स्तर पर आना चाहिए और इस काम के लिए हर एक उद्योग मे व्यवस्थित कार्यक्रम अपनाने की जरूरत है। निर्यात मे विविधता लाने और निर्यात-व्यापार मे धीरे-धीरे निश्चित रूप से नई तैयार वस्तुओ और खनिज पदार्थों का हिस्सा बढाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है। औद्योगिक लाइसेस नीतियो को भी इस तरह से बदला जाना चाहिए कि निर्यात की उन्नति हो।

1962 मे नियुक्त की गई आयात एवं निर्यात समिति की सिफारिशे

1962 मे मुदलियार समिति ने निर्यात बढाने के लिए निम्नलिखित प्रोत्साहनो एव सहायता की सिफारिश की

(i) कच्चे मालो की अधिक उपलब्धि-समिति ने यह सकेत किया कि हमारे निर्यातमूलक उद्योगो के सामने सबसे बडी कठिनाई कच्चे मालो का पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध न होना है। परिणामत ऐसे उद्योगो मे उत्पादन क्षमता का अल्पप्रयोग होता है और उत्पादन लागत उची रहती है। इसलिए यह सिफारिश की गई कि कच्चे मालो और सघटको का सीमान्त आयात किया जाना चाहिए क्योकि इनके आयात पर किए गए व्यय की अपेक्षा निर्यात मे अपेक्षाकृत अधिक बढावा मिलने से लाभ और अधिक होगा।

(ii) आयकर छूट (Income Tax Relief)—समिति ने निर्यात से प्राप्तियो (Earnings) पर आयकर छूट देने की सिफारिश की।

(iii) आयात-अधिकार द्वारा निर्यात प्रोत्साहन (Export promotion through import entitlement)— *निर्यात* प्रोत्साहन का एक और महत्त्वपूर्ण उपाय निर्यातको को उनके निर्यात से प्राप्त आय के विरुद्ध आयात लाइसेस जारी करना था। इस उपाय को सफलता के साथ जर्मनी जापान और पाकिस्तान मे लागू किया गया। इस योजना का दोहरा उद्देश्य था (क) निर्यातक को यह अधिकार देना कि वह अर्जित विदेशी मुद्रा के एक भाग को अपने उद्योग के विकास के लिए आवश्यक कच्चे मालो तथा सामान के आयात के लिए इस्तेमाल कर सके और (ख) आयातक को ऐसी वस्तुओ के आयात की इजाजत दी जानी चाहिए जो देश मे लाभपूर्ण रूप से बेची जा सके ताकि वह अपने निर्यात की सम्भावना कर सके या निर्यात पर हानि को कम कर सके। भारत सरकार ने इस सुझाव को स्वीकार किया और विशिष्ट मदो के निर्यात के विरुद्ध आयात लाइसेस जारी किए गए।

2 Planning Commission *Second Five Year Plan* p 78 79

(iv) निर्यात प्रोत्साहन योजना (Export promotion scheme) के क्षेत्र का विस्तार–समिति ने यह सिफारिश की कि निर्यात प्रोत्साहन योजना कुछ ही वस्तुओ पर लागू होने की बजाय कच्चे माल, सघटको एव साज-सामान की सभी मदो पर लागू होनी चाहिए। निर्यात प्रोत्साहन योजना के इस प्रकार विस्तार से ही निर्यातक या विनिमाता (Manufacturers) अपनी लागत को कम कर सकेगे और अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में अपनी स्पर्द्धा-शक्ति को उन्नत कर सकेगे।

आयात तथा निर्यात नीति समिति (1962) की रिपोर्ट के आधार पर निर्यात प्रोत्साहन के उपाय किए गए। जून 1966 मे रुपए के अवमूल्यन के पश्चात् इस नीति मे परिवर्तन किया गया।

1973-74 मे अन्तर्राष्ट्रीय बाजारो मे पैट्रोलियम उर्वरको तथा खाद्यान्नो की कीमतो मे तीव्र वृद्धि के कारण अवमूल्यन क लाभकारी प्रभाव समाप्त हो गए। अत सरकार ने नियात-प्रोत्साहन के बहुत से उपाय चालू किए। इनमें मुख्य थे–नियात बढाने के लिए सामथ्य का विस्तार क्रातिक कच्चे माला की पूति नकद सहायता सावधि-उधार सस्थाना द्वारा निर्यात-वित्त प्रबन्ध।

निर्यात प्रोत्साहन पर टडन समिति की सिफारिशे

सरकार ने श्री प्रकाश टडन की अध्यक्षता मे 1979 में एक समिति नियुक्त की ताकि निर्यात-प्रोत्साहन के लिए उपाय सुझाए। समिति की मुख्य सिफारिशे निम्नलिखित थीं

(क) समिति ने सुझाव दिया कि 1980-81 और 1990-91 क दौरान नियात मे 10 प्रतिशत का वार्षिक वृद्धि दर होनी चाहिए।

(ख) इस उद्देश्य के लिए समिति के अनुसार निर्यात-प्रेरक विकास रणनाति अपनानी वाछनीय होगी। अत विदशी व्यापार नाति को नियात प्रोत्साहन के उद्देश्य के साथ इस प्रकार जाडना होगा कि भारत का विश्व-व्यापार मे भाग जो अब 0 5 प्रतिशत है बढकर 1 प्रतिशत हो जाए।

इन उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए

(i) पर राष्ट्रीय निगमो (Transnational Corporations) को भारत के निर्यात प्रयास के साथ जाडना चाहिए और उन्हे एक पचवर्षीय ठोस नियात योजना बनान क लिए आमन्त्रित करना चाहिए।

(ii) निर्यात उत्पादन को सभी औद्योगिक इकाइयो (जिनमे MRTP कम्पनिया भी शामिल हैं) को प्रोत्साहित करना चाहिए और इसके लिए लाइसेंस प्राप्त क्षमता पर रोक नहा लगाना चाहिए। निर्यात के लिए उत्पादन को एकाधिकार एव प्रतिबन्धात्मक व्यवहार कानून से छूट प्राप्त होनी चाहिए।

(iii) निर्यात घरानो (Export houses) को निर्यात उत्पादन बढाने की दृष्टि से सीमित एव प्रतिबन्धित मदो के आयात की इजाजत होनी चाहिए ताकि वे निर्यात मण्डियो मे अपने माल के सभरण को बढा सके।

(iv) बडे औद्योगिक घरानो की परिसम्पत् की अधिकतम सीमा 20 करोड रुपए से बढाकर 50 करोड रुपए कर देनी चाहिए।

(v) लघु स्तर क्षेत्र के आरक्षण के होते हुए भी समिति ने यह सिफारिश की कि स्वचालित लाइसेस (Automatic Licensing) की सीमा जो अब 25 प्रतिशत है बढा कर 50 प्रतिशत अतिरिक्त लाइसस प्रदान करने चाहिए। इसने यह भी सिफारिश की कि नियात उत्पादन के शत प्रतिशत आधार पर अतिरिक्त क्षमता के लाइसेस जारी करन चाहिए।

(vi) लघु स्तर क्षेत्र के लिए जूता के निर्माण का आरक्षण (Reservation) बडी नियात इकाइयो पर लागू नहीं होना चाहिए।

(vii) निर्यात उद्योग को अद्यतन तकनालाजी (Latest technology) के अधिक उदार आयात की सुविधा होनी चाहिए। जहा पर भी अद्यतन तकनालाजी का आयात बिना विदेशी हिस्सा पूजी (Foreign equity) के हो तो इसे स्वतन्त्र सामान्य लाइसेस सूची मे शामिल करना चाहिए।

(viii) ऐसी इकाइया जो अपने उत्पादन का 50 प्रतिशत से अधिक पिछले तीन वर्षों से निर्यात करती रही हों, को पूजी वस्तुओ का आयात शुल्क-मुक्त (Duty free) होना चाहिए। 100 प्रतिशत निर्यात प्रेरक उद्योगो के लिए, आयात सम्बन्धी आवश्यक वस्तुए (जिनम कच्चे माल एव ईंधन भी शामिल हो) शुल्क मुक्त प्राप्त करने की इजाजत होनी चाहिए।

(ix) निगम क्षेत्र (Corporate sector) मे निर्यात-प्राप्तियों की सीमा तक कर-उधार (Tax Credit) की योजना पुन चालू करनी चाहिए।

(x) निर्यात उन्मुख उद्योगो के लिए अप्रत्यक्ष कर ढाचे (Indirect tax structure) को और युक्तियुक्त बनाना चाहिए ताकि उनके कच्चे मालो एव मध्यवर्ती वस्तुओ (Intermediates)पर उत्पादन-शुल्को (Excise duties)के कर-भार से छूट दी जा सके।

(xi) राज्यीय सरकारा को नियात पर आधारित कृषि-वस्तुओ की उत्पादन-योजनाओ के निर्माण मे अधिक भाग लेना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए, बागान (विशेषकर चाय और काफी सम्बन्धी) के विकास के लिए अलग-अलग

सभी मदो का खुले रूप में आयात करने की स्वीकृति दी गई, इसके अन्तर्गत बहुत से कच्चे मालो जिनमे अलौह धातुए भी शामिल हैं के आयात को सरकारी क्षेत्र के आधीन न करने की अपेक्षा निजी क्षेत्र को आयात करने की इजाज़त होगी और इसके अतिरिक्त पूजी वस्तुओ के आयात को और उदार बनाया गया यदि इनके आयतक निर्यात दायित्व (Export obligation) को पूरा करें। नीति का मुख्य बल उदारीकरण (Liberalisation) की क्रिया को अधिक बढ़ावा देना था ताकि देश मे अपेक्षाकृत अधिक उदार विदेशी व्यापार प्रणाली की स्थापना की जा सके। नीति के मूल लक्षण निम्नलिखित थे–

(i) नकारात्मक सूची को छोड जिसमे उपभोक्ता वस्तुएँ (28 मदे) और 70 अन्य मद जिनके आयात को सीमित किया जाएगा, अन्य सभी मदो जिनमे पूजी वस्तुए शामिल हैं, का आयात पूर्णतया खुला होगा। नकारात्मक सूची मे शामिल की गई उपभोक्ता वस्तुएँ हैं–उपभोक्ता इलैक्ट्रानिक्स, उपभोक्ता टेली-सचार सामान, घडियाँ रूई और संश्लिष्ट मनुष्यकृत रैनेट (Animal rennet) और बिना-निर्मित हाथी दात के आयात पर रोक लगा दी गई है। यह सोचा जाता था कि सरकार समृद्ध वर्गों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली उपभोक्ता वस्तुओ के आयात को समाप्त करना चाहती है किन्तु वाणिज्य सचिव श्री ए वी गणेशन द्वारा 4 अप्रैल 1992 को की गई इस घोषणा ने कि सरकार उपभोक्ता वस्तुओं को नकारात्मक सूची से हटाने की प्रक्रिया जल्दी ही चालू करेगी, सरकार की मौलिक भावना पर पानी फेर दिया कि सरकार इन वस्तुओ के आयात को सीमित या समाप्त करना चाहती है।

(ii) बहुत-सी वस्तुओ का आयात सरकारी-निर्देश (Canalisation) क्षेत्र से हटा दिया गया है और इनके आयात को निजी क्षेत्र को इजाजत दे दी गई है। ये वस्तुए हैं–अखबारी कागज, अलौह धातुए, प्राकृतिक रबडे, मध्यवर्ती वस्तुए (Intermediates) और कच्चेमाल इस्पात की सभी मदें, फीचर और वीडियो फिल्मे। किन्तु नई नीति के आधीन पैट्रोलियम उत्पाद, विटामिन ए, खाद्य तेलो, उर्वरको एव अनाज का आयात सरकारी क्षेत्र द्वारा ही किया जाएगा।

(iii) सात मदो की छोटी-सी सूची को छोड जिसमे गोमास और चर्बी शामिल है, निर्यात की सभी मदे विदेशी व्यापार के लिए खोल दी गई हैं। इसके अतिरिक्त 62 मदो अर्थात् कच्ची सिल्क, विशेष धातुओ, दालो, सैनिक स्टोर, दूध, नारियल और गरी का निर्यात लाइसेस के आधार पर किया जाएगा।

(iv) शुल्क छूट योजना (Duty Exemption Scheme) का क्षेत्र-विस्तार करने का वचन दिया गया और इसमे मात्रा-आधारित अग्रिम लाइसेसो (Quantity-based advance licences) के अतिरिक्त मूल्य-आधारित अग्रिम लाइसेस (Value based advance licences) चालू किए गए। इसके परिणामस्वरूप निर्यातक को समग्र-सीमा के अन्तर्गत वस्तुओ के आयात या निर्यात करने मे अधिक स्वतन्त्रता उपलब्ध होगी और मात्रा-सम्बन्धी सीमाबन्धन केवल सवेदनशील वस्तुओ (Sensitive goods) मे लागू होगे।

(v) निर्यात घरानो, व्यापार एव स्टार व्यापार घरानो (Star trading houses) को अग्रिम लाइसेस योजना के आधीन स्वप्रमाणन (Self-certification) की स्वीकृति होगी जिसके आधार पर उन्हे निर्यात की विशिष्ट वस्तुओ के विरुद्ध शुल्क-मुक्त आयात की इजाजत होगी।

(vi) 25 प्रतिशत और 15 प्रतिशत रियायती शुल्कदर पर पूजी वस्तुओ के आयात के लिए दो खिडकियाँ अब उपलब्ध होगी–(क) 25 प्रतिशत शुल्क पर आयात के लिए पिछले 4 वर्षों के पूजी वस्तुओ के लागत बीमा-भाडा मूल्य (CIF Value) के विरुद्ध तीन गुना निर्यात करने का दायित्व होगा, और (ख) 15 प्रतिशत शुल्क पर आयात के लिए पिछले 5 वर्षों के पूजी-वस्तुओ के लागत बीमा-भाडा मूल्य के विरुद्ध 4 गुना निर्यात करने का दायित्व होगा।

(vii) पूजी वस्तुओ के देशीय निर्माताओ (Domestic manufacturers) को जो आयात-सामान चाहिए, उसे लागत-बीमा-भाडा मूल्य पर 15% रियायती शुल्क पर आयात करने की सुविधा उपलब्ध होगी।

(viii) 100 प्रतिशत निर्यात-उन्मुख इकाइयो (Export-oriented units) और ऐसी इकाइयो को जो मुक्त व्यापार और निर्यात-विधायन क्षेत्रो मे स्थित हैं, और सुविधाएँ दी गई, अर्थात् वे न केवल अपनी मशीनरी लगा सकेगी बल्कि पट्टे पर मशीनरी भी स्थापित कर सकेगी। इन इकाइयो को कृषि, बागवानी, जलचर पालन, मुर्गी पालन और पशु पालन की नइ क्रियाओ मे प्रवेश करने की इजाजत होगी।

(ix) सरकार ने अखबारी कागज के आयात पर सरकारी-निर्देश (Canalisation) समाप्त कर दिया है और भारत के समाचार पत्रो के रजिस्ट्रार को आयात लाइसेस जारी करने का अधिकार दे दिया गया।

नई निर्यात नीति के उद्देश्यो की व्याख्या करते हुए श्री पी चिदंबरम ने उल्लेख किया है–"स्थायित्व नई नीति का मूल है।" उन्होने साधिकार कहा–"1992-97 की नइ सरकारी निर्यात-आयात नीति सिद्धान्तत विदेशी व्यापार व्यवस्था को लाइसेसो, मात्रात्मक प्रतिबन्धो और अन्य स्वैच्छिक नियत्रणो से मुक्त करने के इरादे से बनाई गई है। नइ व्यापार व्यवस्था का आधार विश्वास का सिद्धान्त है।"

नई व्यापार नीति की समीक्षा

डॉ बी एल दत्त अध्यक्ष फेडरेशन ऑफ इण्डियन चैम्बर ऑफ कामर्स एण्ड इडस्ट्री ने नई नीति को उदारीकरण की प्रक्रिया मे एक और मील का पत्थर माना है परन्तु सेन्टर ऑफ इडियन ट्रेड यूनियनो (सीटू) ने यह आरोप लगाया है कि पूजीवस्तुओ के निरकुश आयात की स्वीकृति से भारतीय जनसख्या के नगण्य भाग की उपभोक्तावाद (Consumerism) की हवस की ही केवल तुष्टि होगी। इस प्रकार मजदूर सघ ने निर्यात पर लगे लगभग सभी प्रतिबन्धो के हटाने और ऐसी अनिवार्य वस्तुओ जैसे खाद्य पदार्थ जिनकी पूर्ति देश मे अपर्याप्त है के निर्यात की स्वीकृति की कडी आलोचना की है।' मार्क्सवादी मजदूर सघ ने बहुराष्ट्रीय कम्पनियो द्वारा समग्र अर्थव्यवस्था को शोषण के लिए समर्पित करने की भी भरसक निन्दा की है।

चाहे उदार व्यापार व्यवस्था नीति के बारे मे ये दोनो विचार एकाकी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते है किन्तु कुछ मूल प्रश्न इस सम्बन्ध मे उठाने की आवश्यकता है

पहला क्या उदारीकृत व्यापार नीति से व्यापार सतुलन की खाई पाटी जा सकेगी ? सारी सातवी योजना की अवधि के दौरान हमने उदारीकृत व्यापार नीति का अनुकरण किया है। पी पी चिदबरम ने केवल इसका और अधिक विस्तार किया है। परन्तु धरातल पर उपलब्ध तथ्यो से पता चलता है कि जहा 1986 87 मे हमारे निर्यात 13 315 करोड रुपए से बढकर 1990 91 मे 33 178 करोड रुपए तक पहुच गए। अत 5 वर्षो की इस अवधि मे हमारे निर्यात मे 19 863 करोड रुपए की वृद्धि हुई जिसे 26 651 करोड रुपए की आयात की वृद्धि ने निष्क्रिय बना दिया। इसके परिणामस्वरूप व्यापार घाटा जो 1986 87 मे 9 354 करोड रुपए था बढकर 1990 91 मे 15 142 करोड रुपए हो गया। 1991 92 के दौरान भी व्यापार घाटे मे कमी का कारण आयात सकुचन (Import Compression) है न कि निर्यात मे वृद्धि। अधिक उदारीकृत व्यापार व्यवस्था मे आलोचको का मत है कि आयात तेजी से बढ जाएँगे और व्यापार घाटा और भी अधिक प्रतिकूल हो जाएगा यदि इनके विरुद्ध निर्यात मे अपेक्षित वृद्धि नही होती। चाहे सरकार आयात को निर्यात के विस्तार सम्बन्धी निष्पादन के साथ जोडना चाहती है फिर भी सरकार द्वारा आयातित मदो और स्टार व्यापारिक घरानो द्वारा स्वप्रमाणन के रूप मे कुछ ऐसे छिद्र उपलब्ध है जिनके कारण व्यापार घाटे मे कमी नही होगी।

दूसरे इस नीति मे निर्यात बढाने की दृष्टि से लघु-स्तर क्षेत्र के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं दिए गए। इस बात का सकेत करना आवश्यक है कि भारत के 40 प्रतिशत निर्यात लघु-क्षेत्र द्वारा किए जाते है। चूकि बहुत से कच्चे मालो का आयात सरकारी क्षेत्र से हटा लिया गया है तो इसका क्या यह अर्थ है कि लघु क्षेत्र को कच्चे माल के क्रय के लिए बडे पैमाने के क्षेत्र के साथ प्रतियोगिता करनी होगी। जाहिर है कि नई व्यापार नीति लघु क्षेत्र के लिए अलाभकारी सिद्ध होगी।

तीसरे नई व्यापार नीति पूजी वस्तु आयात की आड मे खुले द्वार की नीति (Open door policy) अपनाना चाहती है। यह बात समझ लेनी जरूरी है कि आयात की दृष्टि से पूजी वस्तु आयात को अबाध्य नही मानना चाहिए। पहले ही यह शिकायत की जा रही है कि जहा भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्ज लिमिटिड और अन्य मशीन निर्माताओ ने विभिन्न प्रकार की पूजी वस्तुओ एव मशीनरी के लिए क्षमता स्थापित कर ली है सरकार इन क्षेत्रो मे भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियो को आमत्रित करती जा रही है। पूजी वस्तु क्षेत्र मे भी एक प्रतिबन्धित सूची होनी चाहिए जहाँ इन वस्तुओ का उत्पादन देशीय कम्पनियो द्वारा किया जा रहा है।

अन्तिम भारत को ऐसे औद्योगिक देशो के दबाव का भी मुकाबला करना है जो अपनी अर्थव्यवस्थाओ मे विद्यमान प्रतिसार (Recession) को दूर करने के लिए भारत पर अपने निर्यात लादना चाहते है। इस उद्देश्य से विश्व बैंक एव अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के ऋणो के साथ सम्बन्धित शर्तो पर भी गहराई से विचार करना होगा ताकि हमारे अन्तर्राष्ट्रीय ऋणदाता हमे ऋण स्वीकार करने के लिए मजबूर करते समय इस बात के लिए बाध्य न कर सके कि हम अपने आयात को बढाए ताकि प्रतिसार मे ग्रस्त उनकी अर्थव्यवस्थाए इस कष्ट से छुटकारा पा सके।

निष्कर्ष के रूप मे यह सकेत करना होगा कि 5 वर्षीय निर्यात आयात नीति निर्यातको एव आयातको को अपने प्रोग्रामो के आयोजन मे सहायता करती है और इस प्रकार निर्यात आयात नीति का मध्यमकाल मे स्थायित्व अभिनन्दनीय है। बहुत से अफसरशाही के विलम्बो को काट देना और कार्यनीति का सरलीकरण भी उचित दिशा मे कदम है परन्तु फिर भी यह प्रश्न बना हुआ है—क्या यह नीति व्यापार घाटे (Trade deficit) को कम करने का प्रभावी उपकरण है ? समय ही इस प्रश्न का उत्तर उपलब्ध कराएगा चाहे सकारात्मक उत्तर की सभावना उज्ज्वल दिखाई नही पडती।

40

गैट और भारत का बहुपक्षीय व्यापार
(GATT AND MULTI-LATERAL TRADE OF INDIA)

टैरिफ एवं व्यापार पर सामान्य सधि (General Agreement on Tariff and Trade—GATT) सम्बन्धी सगठन जनीवा मे 1948 मे स्थापित किया गया ताकि सभी सदस्य देशो को समृद्धि और विकास के लिए निर्बाध व्यापार (Free trade) के लक्ष्य को बढ़ावा दिया जा सके। गैट का मुख्य उद्देश्य वस्तु व्यापार में प्रतिस्पर्धा को सुनिश्चित करने के लिए व्यापार अवरोधको की समाप्ति या उन्हे कम करना था। गैट के आधीन बात-चीत के पहले सात रौंदो का उद्देश्य व्यापार-अवरोधको (Trade barriers) को कम करके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहित करना था। इसके अतिरिक्त, यह भी प्रयास किया गया कि सदस्य देशो द्वारा लगाए गए गैर-टैरिफ प्रतिबन्ध (Non tariff restrictions) भी कम किए जाए। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के मुद्दो पर बहस और वार्ता के लिए गैट एक लाभदायक मच के रूप मे उभरा।

1. वार्ता का उरुगुए रौंद—गैट का आठवाँ रौंद (Uruguay Round of Negotiations—8th Round of GATT)

बहुपक्षीय व्यापार वार्ता का आठवा रौंद जिसे आम बोलचाल मे उरुगुए रौंद कहा जाता है (चूँकि इसका आरम्भ उरुगुए मे हुआ) सितम्बर 1986 मे गैट के सदस्यो मे मत्री स्तर पर वार्ता के रूप मे एक विशेष अधिवेशन मे शुरू हुआ। पिछले चार दशको के दौरान विश्व व्यापार मे 1948 के पश्चात् गैट की स्थापना के बाद सरचनात्मक परिवर्तन हुए हैं। 1950 मे विश्व वस्तु व्यापार मे कृषि का भाग 46 प्रतिशत था, जो कम होकर 1987 मे 13 प्रतिशत रह गया। इसके साथ, विकसित देशो के सकल देशीय उत्पाद (Gross Domestic Product) के विभिन्न क्षेत्रों मे योगदान और रोजगार के ढाँचे मे गुणात्मक परिवर्तन हुआ है। विकसित देशो के सकल देशीय उत्पाद मे सेवा क्षेत्र का भाग तेजी से बढ रहा है। यह 1986 मे सकल देशीय उत्पाद की 50 से 70 प्रतिशत की अभिसीमा मे था। रोजगार के भाग के रूप में भी सेवा क्षेत्र का महत्त्व बढता जा रहा था। उदाहरणार्थ, सयुक्त राज्य अमेरिका मे सेवा क्षेत्र द्वारा सकल देशीय उत्पाद मे लगभग दो-तिहाई योगदान दिया गया और रोजगार के रूप मे यह कुल श्रमशक्ति के 70 प्रतिशत से भी अधिक था। 1980 मे, सयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा सेवाओ के रूप मे 3,500 करोड डालर का निर्यात किया गया। वस्तु क्षेत्र मे तुलनात्मक लाभ जापान एव कई अन्य नव-औद्योगीकृत देशो के पक्ष मे परिवर्तित हो गया। इन सभी कारणतत्वो के परिणामस्वरूप यू एस ए के नेतृत्व मे विकसित देशो ने सेवा-क्षेत्र को व्यापारिक-वार्ता के आधीन लाने की पहल की।

अत उरुगुए रौंद मे 15 क्षेत्रो मे वार्ता करने का आदेश दिया। भाग 1 के आधीन वस्तु व्यापार के सम्बन्ध मे 14 क्षेत्रो मे बातचीत करने का कार्य सौंपा गया और भाग 2 मे सेवाओ सम्बन्धी व्यापार के बारे मे बातचीत का।

भाग 1 मे निम्नलिखित को शामिल किया गया—

1 टैरिफ 2 गैर-टैरिफ उपाय, 3 उष्णकटिबन्धीय वस्तुएँ (Tropical products), 4 प्राकृतिक ससाधन-आधारित वस्तुएँ, 5 टैक्सटाइल एव कपडे, 6 कृषि, 7 गैट-अनुच्छेद (GATT-Articles), 8 बचाव सम्बन्धी उपाय, 9 बहुपक्षीय व्यापार वार्ता, सधियाँ एव व्यवस्थाएँ 10 अर्थसाहाय्य (Subsidies) और प्रतितुलनकारी उपाय, 11 विवाद निपटारा, 12 बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारो (Intellectual property rights) के साथ सम्बन्धित व्यापारीक पहलू, 13 व्यापार सम्बन्धित निवेश उपाय, 14 गैट-प्रणालियो की कार्यविधि।

अत गैट के पारस्परिक विषयों अर्थात् टैरिफ एव टैरिफ-भिन्न अवरोधको और अर्थसाहाय्यो (Subsidies) और प्रति तुलनकारी उपायो, डम्पिग विरोधी उपायो आदि पर गैट की नियमावली और अनुशासन, के अतिरिक्त बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारो के साथ सम्बन्धित व्यापारिक पहलुओ (Trade Related Aspects of Intelltectual Property Rights—TRIPS), व्यापार से सम्बन्धित निवेश के उपाय और सेवाओ मे व्यापार पहली बार बातचीत मे शामिल किए गए।

यह आशा की जाती थी कि यह वार्ता 4 वर्ष के अन्दर पूरी हो जाएगी परन्तु सहयोगी देशो मे मतभेद हो जाने के कारण, विशेषकर ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर जो कृषि, टैक्सटाइल्स, डम्पिग-विरोधी उपायो आदि से सम्बन्धित थे, यह अवधि लम्बी हो गयी। इस गतिरोध को तोडने के उद्देश्य से श्री आर्थर डकल, डाइरेक्टर जनरल, गैट ने एक बहुत विस्तृत दस्तावेज प्रतिपादित किया जिसे आम भाषा मे डकल-प्रस्ताव (Dunkel proposals) कहकर पुकारा गया। उन्होने इस दस्तावेज को सदस्य देशो के सामने एक समझौतावादी दस्तावेज के रूप मे पेश किया। 15 दिसम्बर 1993 को डकल-प्रस्तावो ने अन्तिम अधिनियम (Final Act) का रूप धारण किया और भारत ने 117 देशो के साथ 15 अप्रैल 1994 को इस सधि पर हस्ताक्षर किए।

2. उरुगुए रौंद का अन्तिम अधिनियम और इसके भारत के लिए गुह्यार्थ

वामपथी दलो, जनता दल और भारतीय जनता पार्टी ने डकल प्रस्तावो को स्वीकार करने के विरोध मे भारी सघर्ष चालू किया। इस आक्रमण का मुख्य बल इस बात पर था कि सयुक्त राज्य अमेरिका और बहुराष्ट्रीय निगमो के दबाव के आधीन भारत ने अपनी प्रभुसत्ता समर्पित कर दी है। इसमे सन्देह नहीं है कि कुछ आलोचनाओ की प्रेरणा राजनीतिक थी परन्तु यह कहना सही होगा कि कुछ हद तक ये आलोचनाएँ गुमराह करने वाली हैं। इसके विरुद्ध, भारत सरकार का यह दावा कि गैट-सधि के परिणामस्वरूप हमारे निर्यात 200 करोड डालर की दर से प्रतिवर्ष बढेगे, अतिश्योक्ति है।

इस सदर्भ मे, भारत सरकार ने भारतीय निर्यात-आयात बैंक (Export Import Bank of India) को एक विशिष्ट अध्ययन करने का आग्रह किया। इस अध्ययन के अनुसार गैट (1993) के अनुसार भारत को आय के रूप मे 460 करोड डालर प्रति वर्ष का लाभ होगा परन्तु गैट-सधि से केवल निर्यात के रूप मे 125 करोड डालर का वार्षिक लाभ प्राप्त होगा परन्तु इस अध्ययन मे यह चेतावनी भी दी गयी है कि ये लाभ एकदम प्राप्त नहीं होगे क्योकि विभिन्न सधियो के कार्यान्वयन की समय-अवधि भिन्न-भिन्न है। परन्तु इसके विरुद्ध, एशियाई विकास बैंख के अध्ययन ने यह बात साफ की है कि उरुगुए रौद की वार्ता के परिणामो से भारत और अन्य निम्न आय वाले देशो को बहुत ही थोडा लाभ होगा-अर्थात् अपने सकल देशीय उत्पाद का 0 5 प्रतिशत। बैंक ने यह अनुमान लगाया है कि 10 वर्षों की अवधि के पश्चात् चीन और अन्य तेजी से विकसित हो रहे एशियाई देशो को सबसे अधिक लाभ प्राप्त होगा जो कि सकल देशीय उत्पाद (Gross Domestic Product) के लगभग 2 5 प्रतिशत के समान होगा। अत विभिन्न क्षेत्रो में गैट-सन्धि के गुह्यार्थों का अध्ययन करना उचित होगा-

बुनियादी शुल्क और निर्यात-साहाय्यो में कटौती

टैरिफ के सम्बन्ध मे भारत ने बुनियादी शुल्क (Basic duty) को 30% से घटाने का वायदा किया है। यह कटौती 6 वर्षों के दौरान लागू की जाएगी और कच्चे मालो, अन्तर्वर्ती वस्तुओ और पूँजी वस्तुओ पर लागू होगी। किन्तु इसमे कृषि वस्तुएँ, पेट्रोलियम पदार्थ, उर्वरक और कुछ अलौह धातुएँ जैसे जस्ता और ताँबा शामिल नहीं की गयी है। ये टैरिफ कटौतियाँ (Tariff Reductions) भारत मे चालू किए गए आर्थिक सुधारो का अग भी हैं और इनकी सिफारिश चेलैय्या समिति (Chelliah Committee) ने भी की है।

गैट-सधि म यह तय किया गया है कि डम्पिग-विरोधी कार्यवाही समाप्त कर दी जाएगी यदि किसी देश द्वारा आयात के रूप मे डम्प की गयी वस्तुओ की मात्रा, उस देश-विशेष के घरेलू बाजार के 1% से कम है। इस सम्बन्ध मे केवल एक अपवाद उस परिस्थिति मे उत्पन्न होता है यदि डम्प करने वाले देश सामूहिक रूप मे कुल घरेलू व्यापार के 2 5 प्रतिशत से अधिक वस्तुएँ उडेल देते हैं। *डम्पिग-विरोधी कार्यवाही उस हालत मे भी समाप्त* कर दी जाएगी यदि डम्पिग से प्राप्त होने वाला लाभ 20% से कम हो। इन कण्डिकाओ (Clauses) से भारत को अपने निर्यात को डम्पिग-विरोधी जाँच के विरुद्ध सरक्षण के रूप मे सहायता मिलेगी। भारत के लिए कहीं बेहतर होता यदि डम्प किए गए आयात की मात्रा का भाग घरेल बाजार के 1% से अधिक होता।

निर्यात-साहाय्यो (Export subsidies) की मनाही के सम्बन्ध मे गैट-सधि मे यह निश्चय किया गया कि भारत जैसे देश जिनकी प्रति व्यक्ति आय 1,000 डालर से कम है को अपने उत्पादो पर अर्थसाहाय्य हटाने से छूट होगी यदि उनका विश्व व्यापार मे भाग 3 25% से कम है। इस कसौटी के आधार पर भारत का भाग केवल हीरे जवाहरात में अधिक है क्योकि इनमे भारत का भाग विश्व व्यापार का लगभग 10 प्रतिशत है। अन्य वस्तुओ के सम्बन्ध मे भारत पर कोई ऐसी पाबन्दी नहीं कि वह निर्यात लाभ पर आय-कर छूट जैसे निर्यात-साहाय्यो को हटाए या उन्हे कम करे।

अत गैट-सन्धि, जैसा कि आलोचको द्वारा कहा जाता है, निर्यात-साहाय्यो को वापस लेकर, हमारे निर्यात पर कोई विनाशकारी प्रभाव नही डालती। हीरे एव जवाहरात का निर्यात 1992-93 मे कुल निर्यात का 19% था। जाहिर है कि 81% निर्यात, निर्यात-साहाय्यो को हटाने या कम करने की शर्त से मुक्त हैं।

बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारों का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

कुछ आलोचकों का विचार है कि बौद्धिक सम्पत्ति *अधिकारों (Intellectual Property Rights)* का जो गैट-सन्धि में सन्निहित हैं भारतीय अर्थव्यवस्था पर सर्वनाशी प्रभाव होगा। ऐसा विशेषकर दो क्षेत्रों मे होगा–औषधो एव कृषि में। ये दोनो क्षेत्र जनकल्याण पर प्रभाव डालते हैं।

व्यापार से सम्बन्धित बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारो के प्रभाव को जानने के लिए नयी पेटेंट प्रणाली के क्षेत्र को समझना होगा। इसके आधीन, औद्योगिक तकनालाजी के सभी क्षेत्रो मे किसी भी आविष्कार के लिए पेटन्ट उपलब्ध होंगे चाहे वे उत्पाद (Product) के बारे मे हो या प्रक्रिया (Process) के बारे में।

पेटट सरक्षण (Patent Protection) का विस्तार सूक्ष्म-जीवो (Micro organisms) गैर-जैविक और सूक्ष्म-जैविक *क्रियाओ (Micro biological processes)* या पौधो की विभिन्न किस्मो तक किया जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि समग्र औद्योगिक एव कृषि क्षेत्र और एक हद तक जीव-तक्नालाजी (Bio-technology) क्षेत्र पेटट की शर्तों (Patent *provisions*) के आधीन आ जाएगा।

पेटट-सरक्षण मे एक बहुत ही खतरनाक शर्त लगाई गई है और इसका सम्बन्ध पेटट-प्रणाली के मूल-दर्शन मे परिवर्तन करना है जिसके अनुसार वस्तुएँ, चाहे वे आयात की जाए या देश मे बनायी जाएँ, बिना किसी भेद-भाव के पेटट के सरक्षण के आधीन होंगी। इसका तात्पर्य यह है कि पेटट *प्रणाली (Patent Regime)* न केवल उत्पादन-एकाधिकार स्थापित करना चाहती है बल्कि यह आयात-एकाधिकार (Import monopoly) भी कायम करना चाहती है। इस परिस्थिति में पेटट-धारी (Patent holder) केवल आयात ही करेंगे और राष्ट्रीय सरकार आयातित-वस्तुओ पर किसी प्रकार का कीमत-नियत्रण नहीं कर सकेगी। इस शर्त की सहायता से पेटट-धारी सभी प्रकार के कीमत-नियत्रण के उपायो का उल्लघन कर सकेगे।

पेटट प्रणाली और औषधियाँ एव दवाइयाँ (Pharmaceuticals and Drugs)

आलोचको का मत है कि पेटट प्रणाली दवाइयो पर गम्भीर रूप मे प्रभाव डालेगी। आज तो परिस्थिति यह है कि इनकी कीमते बहुत नीची हैं–भला हो भारतीय पेटट *अधिनियम (Indian Patent Act)* का जो 1970 मे पास किया गया। इस कानून के पारित होने के पश्चात् भारतीय औषध एव दवाई उद्योग ने तेजी से प्रगति की और वह जीवन-रक्षक दवाइयाँ बहुत सस्ते दामो पर उपलब्ध करा सका। इसके अतिरिक्त, यह 2,600 करोड रुपये की विदेशी मुद्रा भी अर्जित कर सका।

नयी पेटट प्रणाली के आधीन, श्री बी के केयाला, सयोजक पेटट कानून कायदल के अनुसार लगभग 70 प्रतिशत दवाइयाँ नये पेटट कानूनो के आधीन रहेगी, परिणामत बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार के आधीन पेटट-धारियो को भारी राशि का भुगतान करना होगा और इसके फलस्वरूप भय यह है कि दवाइयो की कीमते 5 से 10 गुना बढ जाएँगी। आज भारत की जनसख्या का केवल 30 प्रतिशत आधुनिक दवाइयाँ खरीद सकता है और यदि गैट-सधि स्वीकार कर ली जाती है, तो लगभग 20 प्रतिशत अतिरिक्त जनसख्या स्वास्थ्य की दृष्टि से इनसे वचित हो जाएगी। *इस प्रकार केवल 10 प्रतिशत जनसख्या की पहुँच* ही आधुनिक दवाइयो तक शेष रह जाएगी। ऐसी नीति के हमारी जनसख्या के लिए खतरनाक परिणाम हो सकते हैं।

श्री बी के केयाला ने दो विशिष्ट बुनियादी दवाइयो का उदाहरण दिया है। ये दवाइयाँ दो बहुराष्ट्रीय निगमो द्वारा चार देशो मे बेची जा रही हैं।

तालिका 1 दो बुनियादी दवाइयो की कीमतो का तुलनात्मक विवरण

कीमतें भारतीय रुपयो मे परिवर्तित की गयी हैं

दवाई	ब्रैंड	कम्पनी	भारत	पाकिस्तान	ब्रिटेन	यू एस ए
रेनिटडीन	जैनटेक	ग्लेक्सो	29 03	260 40	481 31	744 65
	300 मि ग्र × 10		(1 0)	(9 3)	(16 5)	(25 6)
डाक्लोफिनेक	वोवेरान	सीबा गीगी	5 67	55 80	95 84	239 47
	50 मि ग्र × 10		(1 0)	(9 8)	(15 2)	(42 2)

नोट–ब्रैकट में दिए गए आकड़े भारत मे कीमतों के गुणा के रूप मे हैं।

स्रोत–B K Kealya Final Dunkel Act—New Patent Regime Janata, March 6 1994

ये दवाइयाँ भारत मे प्रक्रिया-पेटट (Process patent) के आधीन है और पाकिस्तान ब्रिटेन और यू एस ए मे उत्पाद-पेटट (Product patent) के आधीन। उत्पाद पेटट प्रणाली के परिणामस्वरूप इनमे कीमत भेद (Price differential) पाकिस्तान मे 9 से 10 गुना है और ब्रिटेन मे 15 से 16 गुना। यदि यही कहानी भारत मे दोहरायी जाती है तो इस बात की भारी सभावना है कि दवाइयो की कीमते आश्चर्यजनक रूप मे बढ जाएँ। सरकार का इसके विरुद्ध यह मत है कि डक्ल अन्तिम अधिनियम (Dunkel Final Act) के परिणामस्वरूप औषधा की कीमतो मे केवल 10 से 15% की वृद्धि होगी। सरकार के इस दावे के समर्थन मे वाणिज्य मत्री श्री प्रणब मुखर्जी ने उल्लेख किया है-" भारत जैसा देश जो उत्पाद पेटट प्रणाली को औषधो खाद्य पदार्थों और रसायन मे स्वीकार नही करता को इन मदो मे उत्पाद पेटट प्रणाली कायम करने के लिए 10 वर्षों की सक्रमण अवधि दी गयी है। उत्पाद पेटट चालू करने पर ऐसी पेटट दवाइयो की कीमतो मे *भयकर* वृद्धि का भय न्यायोचित नहीं है क्योकि इस स ध के आधीन सरकार गैर-वाणिज्यिक सार्वजनिक उपयोग के लिए अनिवार्य लाइसेस पद्धति कायम कर देगी और स थ ही ऐसी परिस्थितियो को रोकेगी जिनमे या तो अपर्याप्त उपलब्धि या भारी कीमत-वृद्धि को बढावा मिले। इसके अतिरिक्त सरकार को यह *अधिकार भी प्राप्त है कि वह दवाइयो पर कीमत-नियन्त्रण* पुन लागू कर दे।"

देश मे बहुत से सरकार के इस विचार से सहमत नहीं हैं। ऐसा देश जिसमे व्यापक निर्धनता विद्यमान है यह जरूरी है कि जीवन-रक्षक दवाइयाँ और अन्य बुनियादी औषधियाँ कम कीमतो पर उपलब्ध हो ताकि जनता उन्हे *खरीद सके। ऐसा तभी सभव है यदि दवाइयो की कीमतो* पर नियन्त्रण किया जाए। अत यह खतरा सही है कि दवाइयो की कीमते बढ जाएँगी विशेषकर इस कारण कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अन्य देशो मे अत्यधिक लाभ एकत्र कर सक्ती है परन्तु वे दवाइया पर कीमत-नियन्त्रण के कारण भारत मे घुस नहीं पा रही है। इसमे सन्देह नहीं कि सरकार के पास उत्पाद पेटट प्रणाली को आर अन्तरण करने के लिए 10 वर्ष है परन्तु बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ इससे पहले ही ऐसी स्थिति कायम कर सक्ती हैं कि सरकार को मजबूर होकर पेटट अधिनियम मे सशोधन करना पडे या वे कृत्रिम दुर्लभता की स्थिति पैदा कर सक्ती हैं। दवाइयो के बाजार मे अभी भी एसा स्थिति बनी हुई है कि कोई दवाई बाजार से लोप हो जाता हैं और फिर कुछ समय के पश्चात् बाजार मे ऊँची कामत पर उपलब्ध हो जाती है। नवम्बर 1992 और नवम्बर 1993 के दौरान दवाइयो के थोक कीमत सूचकाक मे 8 2 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि समग्र कीमत सूचकाक मे 7 1 प्रतिशत की वृद्धि हुई। यह तो अच्छी परिस्थिति है चाहे वृद्धि औषधि कीमत नियन्त्रण के बावजूद हो रही है परन्तु यदि बहुराष्ट्रीय निगमो को स्वतन्त्रता दे दी जाती है, तो खतरा यह है कि दवाइयो एव *औषधो की कीमते बहुत तेजी से बढने लग जाएँगी* जिससे आम आदमी के स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव पड़ेगा। सरकारी दावे पर रोषपूर्ण टिप्पणी करते हुए श्री बी के केयाला लिखते हैं- 'यह तर्क की नयी पेटट प्रणाली केवल 10-15 प्रतिशत उत्पाद को प्रभावित करेगी पूर्ण रूप मे गलत और मूर्खतापूर्ण है।"

'श्री कि डेबराय का मत है कि श्री बी के केयाला का निराशावादी दृष्टिकोण सही नहीं है। उनका विश्वास है कि दवाइयो की कीमतो की काल्पनिक वृद्धि मे बहुत अधिक अतिश्योक्ति है। विभिन्न देशो से तुलना सम्बन्धी तर्कों को गम्भीर रूप से नहीं लेना चाहिए। विश्व स्वास्थ्य सस्था (World Health Organization) द्वारा प्रकाशित अनिवार्य दवाइयो की सूचि मे 250 से अधिक प्रविष्टियाँ (Entries) हैं। इसमे से 10 प्रतिशत से भी कम विश्व-व्यापी पेटटो के आधीन हैं। अन्य सभी जातिगत (Generic) बन गए हैं और उन्हे दोबारा पेटट-सरक्षण देने की आवश्यकता नहीं है। अत कि डेबराय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है-"कीमत-वृद्धि का सम्बन्ध इन वर्तमान दवाइयो पर तो होगा, परन्तु नयी दवाइयो पर नही होगा जो हर वर्ष *अन्तर्राष्ट्रीय बाजार* मे प्रवेश करती हैं। यदि पेटट सरक्षण मे परिवर्तन नहीं किया जाता तो हो सकता है कि ये दवाइयाँ भारत मे बेची ही न जाएँ।"

परन्तु सरकार या कुछ अर्थशास्त्रियो द्वारा दी गयी व्याख्या से आलोचक सहमत नही हैं। बहुराष्ट्रीय निगमो मे इतनी शक्ति है *कि वे बाजार मे कृत्रिम दुर्लभता कायम कर* दे या वर्तमान दवाइयो को वापस लेकर उनकी अपेक्षा नयी दवाइयो को नये उत्पाद पेटट के रूप मे पजीकृत करा लें। अत जहाँ तक अनिवार्य दवाइयो का सम्बन्ध है सरकार को औषध कीमत नियन्त्रण आदेश (Drug Price Control Order) जारी रखना पडेगा। इससे अन्य दवाइयो की कीमतो को भी विनियमित करना होगा *अन्यथा बहुत सी* बीमारिया का इलाज गरीब और मध्यम वर्गों की पहुँच के बाहर हो जाएगा। स्वास्थ्य के निजीकरण की बढती हुई प्रवृति के कारण स्थिति पहले ही इस दिशा मे परिवर्तित हो रही है।

कृषि मे पेटट या पेटट-जैसा सरक्षण

डक्ल अन्तिम अधिनियम ने कृषि मे पेटट जैसे सरक्षण (Patent like protection) प्रदान करने के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार के

अनुसार सरक्षण का विस्तार सूक्ष्म-जीवो (Micro-Organisms) गैर-जैविक और सूक्ष्म-जैविक क्रियाओ और पौधों की विभिन्न किस्मो तक किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 27 मे यह उल्लेख किया गया है कि भारत को पौधों की किस्मो को सरक्षण देने के लिए या तो पेटट या एक प्रभावी स्वजातिक प्रणाली (Sui generis system) या दोनो के सम्मिश्रण को आधार बनाना चाहिए। यह प्रणाली 10 वर्षों की सक्रमण अवधि के पश्चात् लागू की जाएगी।

इस बात पर बल देना जरूरी है कि गैट के आधीन अधिकतर पेटट प्रणालियो मे कृषि, खाद्य और स्वास्थ्य को उनके क्षेत्र से बाहर रखा गया। कुछ विकसित देशो ने एक पृथक स्वजातिक प्रणाली (Sui generis system) कायम कर लिया जिसने पौधा-जनको (Plant breeders) को बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार प्रदान किए। इसे 1961 मे पौधो की नयी किस्मो के सरक्षण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सघ (International Union for the Protection of New Varieties of Plants—UPOV) ने सहिताबद्ध कर दिया। 1978 में यू एस ए को यह इजाजत दी गयी कि वह अपने कानूनों में तवदीली किए बिना अन्तर्राष्ट्रीय सघ का सदस्य बन जाए। परन्तु यह अन्तर्राष्ट्रीय सघ मुख्यत विकसित देशों की ही सस्था बना रहा।

1978 के अन्तर्राष्ट्रीय सघ (UPOV) के सम्मेलन के आधीन, नयी किस्म के पौधा-जनक को उस किस्म के बीजो को व्यापारिक मार्गों द्वारा इनके उत्पादन एव विपणन का लगभग पूर्ण एकाधिकार था। बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार के आधीन उसके अधिकार के केवल दो ही अपवाद थे-1 जनक द्वारा छूट जिसके आधीन किसी अन्य जनक (Breeder) को प्रजनन उद्देश्य के लिए सरक्षित किस्म के प्रयोग की इजाजत दी गयी हो और 2 किसान को छूट जिसके आधीन किसी किसान को अपनी फसल मे से सरक्षित बीजो को अपनी अगली फसल बोने के लिए रखने का अधिकार दिया गया हो। यह सम्मेलन 24 पौधो तक सीमित था और सरक्षण की अवधि 15 से 18 वर्ष की अधिसीमा मे रखी गयी।

इस सम्मेलन को 1991 मे सशोधित किया गया और सशोधित अन्तर्राष्ट्रीय सधि मे पौधा-जनको (Plant breeders) को सरक्षण के और ऊँचे स्तर उपलब्ध कराये गये और किसी नयी किस्म के जनको के अधिकार और मजबूत कर दिए गए। 1991 की सधि के आधीन, जनक को पौधा जनक अधिकारधारी (Plant Breeder Right-holder) को रायल्टी अदा करनी होगी यदि उनकी नयी किस्म सरक्षित किस्म से किसी भी लक्षण मे मिलती जुलती हो। इसी प्रकार, किसान को यह स्वाभाविक छूट नहीं दी गयी थी कि वह सरक्षित किस्म के अपनी फार्म पर बचाए गए बीजो को नयी फसल मे बो सके। उसे या तो बीजो के प्रयोग के लिए क्षतिपूर्ति देनी होगी या जनक से स्वीकृति प्राप्त करनी होगी। अधिकतर पौधा जनक विशाल बहुराष्ट्रीय निगम हैं जो अधिकतम लाभ कमाने के लक्ष्य से ही काम करते हैं। वे किसानो को स्वीकृति देने मे आनाकानी कर सकते हैं, फिर उन्हे बहुराष्ट्रीय निगमो से बीज खरीदने के लिए मजबूर किया जा सकता है।

स्वजातिक प्रणाली जिसके आधीन पौधा जनक अधिकारधारियो को यह अधिकार सौंपा गया है पेटट प्रणाली की अपेक्षा केवल नाम मे अन्तर ही है। इसके अतिरिक्त 1991 की सधि मे यह निश्चय किया गया है कि जो स्वजातिक प्रणाली कायम की जाए, वह "प्रभावी" होनी चाहिए ताकि पौधा जनको को वास्तविक सरक्षण प्राप्त हो सके। परन्तु भारत द्वारा इस सम्बन्ध मे बनाए गए कानून की प्रभावशालिता कौन परखेगा? इसका उत्तर है-वह परिषद (Council) जो व्यापार-सम्बन्धी बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार के आधीन बहुपक्षीय व्यापार सस्था (Multilateral Trade Organisation—MTO) के तत्त्वाधान मे बनायी जाएगी।

भारत सरकार की निरन्तर आलोचना की गयी है कि स्वजातिक प्रणाली -पौधा जनक अधिकार प्रणाली-किसानो के हितो के विरुद्ध है और यह नयी पौधा किस्मो के विकास मे बाधा बन जाएगी। वाणिज्य मत्री श्री प्रणव मुखर्जी ने इस सम्बन्ध मे उल्लेख किया-"जबकि पौधा जनको (Plant Breeders) को जो सधि के आधीन नयी किस्मो का विकास करते हैं, उचित सरक्षण मिलना चाहिए, किसानो और शोधकताओ के अधिकारो को पूर्ण सरक्षण होना चाहिए। स्वजातिक विधान म जिसका ड्राफ्ट तैयार किया जा रहा है किसानो के हित सुरक्षित किए जाएँग।"

इस सम्बन्ध मे सरकार जो कुछ कहती है और जो कुछ किया जा रहा है उसम काफी अन्तर है? यह सरकार द्वारा पौधा-किस्म अधिनियम (1993) के तैयार ड्राफ्ट जो 1994 मे जारी किया गया सिद्ध हो जाता है। राजीव धवन और अपर्णा विश्वनाथन ने अपने लेख मे इस वास्तविक कहानी का रहस्योद्घाटन किया है कि सरकार बहुराष्ट्रीय निगमो के दबाव के आधीन एकदम परास्त हो गयी है। लेखो ने जो मुख्य मुद्दे उठाएँ हैं, वे हैं-

1 बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार सधि के आधीन भारत के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह सन् 2005 तक या तो पौधा पेटट या पौधा जनक अधिकार प्रणाली को अपनाए जिसे दूसर शब्दो मे स्वजातिक प्रणाली का नाम दिया गया है। पेटट प्रणाली को सन् 2005 तक स्थगित किया जा सकता है। पौधा किस्म कानून (1993) का मसौदा पौधा जनको को यह अधिकार तुरन्त देना चाहता है और बौद्धिक

सम्पत्ति अधिकार के आधीन सक्रमण अवधि का भी त्याग कर देता है।

2 जब कि अन्तर्राष्ट्रीय सघ (1978) का प्रयोग केवल 24 पौधो की किस्मो तक सीमित था इसे अन्तर्राष्ट्रीय सघ (UPOV)-1991 ने सामान्यीकृत कर सभी पौधो पर लागू कर दिया और भारत के प्रारूप अधिनियम मे समग्र वनस्पति जगत को पौधा जनको के अधिकारो के आधीन कर दिया। वास्तव मे प्रारूप अधिनियम (Draft Act) मे दी गयी धाराओ को शब्दश अन्तर्राष्ट्रीय सघ (1991) से नकल कर लिया गया। इसमे केवल अन्तर यह है कि जहाँ प्रारूप अधिनियम मे पौधा जनको के अधिकार 15 से 18 वर्षों के लिए रखे गए है, वहाँ अन्तर्राष्ट्रीय सघ (1991) ने इसका प्रावधान 20 से 25 वर्ष के लिए किया। सरकार की कडी आलोचना करते हुए राजीव धवन एव अपर्णा विश्वनाथन ने साफ शब्दो मे कहा हैं-"यह धोखाधडी इस प्रकार खुल कर सामने आती है। सर्वप्रथम सरकार का यह दावा है कि "प्रभावी स्वजातिक सरक्षण" (Effective sui generis) की जो अनिवार्यताएँ बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारा के साथ सम्बन्धित व्यापारिक पहलुओ से जुडी हुई हैं उनके बारे मे भारत अपने हितो की रक्षा के लिए कोई भी कानून बना सकता है। सरकार ने जान बूझ कर यह बात छिपाए रखी कि इस वाक्य का अर्थ यह है कि यह कानून 1978 के अन्तर्राष्ट्रीय सघ के अनुकूल होना चाहिए। परन्तु अभी तक सरकार ने इस बात का कोई सतोषजनक उत्तर नहीं दिया कि इसने अन्तर्राष्ट्रीय सघ (UPOV)-1991 के समतुल्य कानून पहले ही क्यो तैयार कर दिया जबकि इसकी बौद्धिक सपत्ति अधिकारो के आधीन जरूरत ही नहीं थी।

यह बात वस्तुत बडी अजीब मालूम होती है कि प्रारूप अधिनियम (Draft Act) सरकार को यह पूर्ण स्वेच्छाधिकार देता है कि ऐसे देशो को भी जो अपने जीन-बैंक (Gene banks) भारत को उपलब्ध नहीं कराते जनन-द्रव्य (Germ plasm) हस्तातरित करेगी। अत भारत सरकार अन्तर्राष्ट्रीय सघ (1991) की धाराओ की पूर्ण रूप मे नकल करने की जल्दबाजी और अत्यधिक जोश दिखा रही है। यह प्रावधान सयुक्त राष्ट्र सघ के जीव-विविधता सम्मेलन (Biological Diversity Convention of United Nations) के विरुद्ध है जिसके अनुसार पश्चिम के देशो को आनुवशिक ससाधन (Genetic Resources) उपलब्ध कराने के लिए विकासशील देशो को उन्नत देशो के अनुसधान और विकास के लाभो का भाग प्राप्त करने के लिए तत्-प्रति-तत् (Quid pro quo) मिलना चाहिए। यह बात ध्यान देने योग्य है कि अन्तर्राष्ट्रीय सघ (1991) को किसी भी देश द्वारा सन्तुष्ट नहीं किया गया सयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा भी नही। प्रश्न उठता है-भारत को इस सम्बन्ध मे इतनी जल्दी करने की क्या आवश्यकता थी? क्या भारत ने पर्याप्त तकनीकी योग्यता और लागत सम्बन्धी प्रतिस्पर्धा शक्ति प्राप्त कर ली है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे अपने बलबूते पर खडा रह सकता है? जाहिर है कि इसका उत्तर है-नहीं। यदि ऐसा है, तो इस अत्यधिक जल्दबाजी का कारण अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के कारण एकदम झुक जाना हो सकता है या भारत सयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार को यह सकेत देना चाहता है कि वह उसकी गैट सम्बन्धी नीति का पालन करने के लिए तैयार है ताकि अन्य *विकासशील देश भी इसका अनुसरण करें।*

विवाद का दूसरा विषय वह सीमा निर्धारित करना है जिस तक किसानो को अर्थसाहाय्य (Subsidies) उपलब्ध कराए जा सकते हैं। डकल अन्तिम कानून मे यह तय किया गया है कि विकासशील देश अपने उत्पाद के मूल्य के 10 प्रतिशत तक अर्थसाहाय्य उपलब्ध करा सकते हैं, जबकि विकसित देशो के लिए यह सीमा 5 प्रतिशत के निम्न स्तर तक है। यदि किसी देश के अर्थसाहाय्य डकल अन्तिम कानून द्वारा निर्धारित सीमा से ऊँचे है, तब उन्हे छ वर्षों के अन्दर 20 प्रतिशत कम करना होगा। इस दृष्टि से "अर्थसाहाय्य अनुशासन" (Subsidy discipline) लागू करने का प्रयास किया गया है। इस सम्बन्ध मे यह उल्लेख करना आवश्यक है कि विकसित और अल्पविकसित देशो-दोनो के लिए अर्थसाहाय्यो के बारे मे समान व्यवहार युक्ति सगत नहीं। इसका मुख्य कारण भिन्न-भिन्न देशों मे अर्थसाहाय्यो (Subsidies) की प्रकृति मे है। विकसित देश अपनी कृषि को इसलिए साहाय्य प्रदान करते हैं ताकि वे अपने अनाज को अन्य देशो की मण्डियो मे डम्प कर सकें, जबकि इसके विरुद्ध विकासशील देश अर्थसाहाय्यो का प्रयोग अपने किसानो को नीची कीमतो पर आदान (Inputs) खरीदने मे सहायता करने मे करते हैं ताकि वे अपना उत्पादन बढा सकें। इस प्रकार वे खाद्यान्नो एव कच्चेमाल के सम्बन्ध मे विदेशो पर अपनी निर्भरता कम कर सकते हैं। अर्थसाहाय्यो का दूसरा मुख्य उद्देश्य जनसाधारण को उचित कीमतो पर खाद्यान्न उपलब्ध कराना है और इस प्रकार खाद्य-साहाय्य (Food subsidies) खाद्यान्नो की कीमतो को नियत्रित करने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं ताकि जनसाधारण को *सस्ती कीमतो पर अनाज मुहैय्या* कराया जा सके।

मार्च 1994 मे लोक सभा के दो-दिवसीय विशेष अधिवेशन मे सरकार द्वारा यह रहस्योद्घाटन किया गया कि गैट-सचिवालय ने भारत सरकार के इस परिकलन का अनुमोदन किया है कि फार्म-साहाय्य (Farm Subsidy) डकल अन्तिम कानून के आधीन 30 860 करोड रुपये तक किया जा सकता है। चूँकि कृषि-साहाय्यो का कुल जोड

अभी इस स्तर से नीचे है, इस कारण गैट-सीमा से चिन्तित होने की कोई आवश्यकता नहीं।

गैट-संधि मे यह तय किया है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System) इस तरह लक्षित की जानी चाहिए कि उसका लाभ केवल ऐसे परिवारो को ही प्राप्त हो जो पोषण-सम्बन्धी लक्ष्यो की स्पष्ट रूप मे निर्धारित कसौटियो के अनुसार इसके लिए उपयुक्त माने जा सकते हैं। इसके साथ-साथ यह भी कहा गया है कि गरीबो की पहचान ऐसे पोषणिक मानदण्डो (Nutritional norms) द्वारा की जानी चाहिए जिनकी स्वीकृति गैट-फोरम (GATT Forum) से प्राप्त है। गैट-संधि के कुछ आलोचक इस कण्डिका को हमारी प्रभुसत्ता पर प्रहार मानते हैं। उनका कहना है कि यह गैट-फोरम के प्रति पूर्ण-आत्म समर्पण है। परन्तु यह आलोचना ठीक नहीं। भारत मे बहुत से अर्थशास्त्री यह तर्क पुरजोर रूप मे प्रस्तुत करते हैं कि खाद्य-साहाय्यो को विवेकपूर्ण ढग से लक्षित करना चाहिए और यदि यही विचार डकल अन्तिम अधिनियम द्वारा आत्मसात कर लिया जाता हैं तो इसका विरोध नहीं किया जा सकता। पोषणिक मानदण्डो को निधारित करने के प्रश्न पर देश में भी विचार किया जा सकता है और बाद मे इसकी गैट-सदस्यो मे भी चर्चा की जा सकती है विशेषकर विकासशील देशो के सदस्यो के बीच। वास्तविक समस्या तो मानदण्ड निधारित करने और गरीबो की पहचान करने की नहीं, बल्कि इसके कायान्वयन की है ताकि इसका लाभ अनुचित एव सम्पन्न वर्गों द्वारा हथिया न लिया जाएँ।

कृषि से सम्बन्धित एक अन्य मुद्दा डकल अन्तिम कानून का वह प्रस्ताव है जिसके अनुसार सभी देशो को 1986 और 1988 के दौरान अपने कुल उपभोग के कम-से-कम 4 प्रतिशत के आयात की इजाजत देनी होगी। इसमे केवल वे प्राथमिक वस्तुएँ छोडी जा सकी हैं जिन्हे विकासशील देश अपने भोजन का मुख्य-अग समझता है। भोजन के मुख्य-अग की श्रेणी मे आने वाली वस्तुओं (जैसे भारत के सदर्भ मे चावल एव गेहूँ) के सदर्भ मे अपने देशीय उपभोग का केवल 1 प्रतिशत आरम्भ म उपलब्ध कराना होगा। गैर-मुख्य वस्तुओ (Non-Staple Commodities) के बार मे, पहुँच के अवसर कायान्वयन के पहले और छठे वर्ष के दौरान 0 8 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढाने होगे। यदि कृषि को उदारीकृत बनाया जाता है, तो आदानो (Inputs) की कीमतो मे वृद्धि होगी, परन्तु इसके विरुद्ध, नियात की कीमतो मे भी वृद्धि होगी। अत यदि कृषि-नियात बढाए जाते हैं तो तिलहनो और गन्ने को छोडकर, भारत को अपनी कृषि उपज के लिए ऊँची कीमत उपलब्ध होगी। परन्तु इसके परिणामस्वरूप भारत मे उपभोक्ताओं को कृषि-उत्पादो के लिए ऊँची कीमते अदा करनी पडेगी। पहुँच अवसर कण्डिका (Access opportunity clause) का यह ऐसा पहलू है जो भारत की जनता के हितों पर दुष्प्रभाव डालेगा।

व्यापार सम्बन्धित निवेश उपाय और इनका भारत पर प्रभाव

व्यापार सम्बन्धित निवेश-उपाय (Trade Related Investment Measures) सयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा 1980 मे चालू किए गए चूँकि प्रतियोगिता मे वह जापान और पूर्वीय एशिया के नव-औद्योगीकृत राष्ट्रो मे पिट रहा था और अपनी इस क्षति को पूरा करने के लिए सेवाओ मे व्यापार को बढावा देना चाहता था। चाहे गैट ने अपनी वार्ता के पहले सात रौंदो मे सेवाओ मे व्यापार की कभी भी चर्चा नहीं की थी, सयुक्त राज्य अमेरिका ने इस विचार को गैट के आठवे रौंद की वार्ता (8th Round of Negotiations) मे आगे बढाया। इसका मुख्य उद्देश्य बहुराष्ट्रीय निगमो को लाभ पहुँचाना था ताकि वे वित्तीय सेवाओ, टेली-सचार, विपणन मे निवेश कर सके जिससे विश्व-व्यापार को प्रोत्साहन मिले।

व्यापार सम्बन्धित निवेश उपायो की विषय-वस्तु का मुख्य प्रावधान यह सुनिश्चित करता है कि सरकारें विदेशी पूँजी के साथ भेद भाव नहीं करेंगी। दूसर शब्दो मे यह प्रावधान सदस्य देशो को विदेशी पूँजी के लिए राष्ट्रीय व्यवहार देने के लिए मजबूर करता है। इन उपायो के मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं-

(i) विदेशी पूँजी / विनियोक्ताओ / कम्पनियो पर लगाए गए सभी प्रतिबन्ध समाप्त कर देने चाहिए।

(ii) विदेशी विनियोक्ता को विनियोग के बारे मे वही अधिकार प्राप्त हागे जो कि राष्ट्रीय विनियोक्ता (National Investor) को प्राप्त हैं।

(iii) निवेश के किसी भी क्षेत्र पर कोई भी प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाएगा।

(iv) न ही विदेशी निवेश के विस्तार पर कोई सीमाबन्धन होगा—100 प्रतिशत विदेशी इक्विटी की भी इजाजत होगी।

(v) कच्चे मालों और हिस्सो का आयात मुक्त रूप मे करने की इजाजत होगी।

(vi) विदेशी विनियोक्ताओ पर स्थानीय उत्पाद एव सामग्री के इस्तेमाल करने की पाबन्दी नहीं होगी।

(vii) लाभाश, ब्याज और रायल्टी (Royalty) के देश-प्रत्यावर्तन (Repatriation) पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होगा।

(ix) क्रमिक विनिर्माण प्रोग्राम (Phased Manufacturing Programme) जैसे प्रावधानो को

जिनका उद्देश्य विनिर्माण मे देशीय अश को बढावा देना है, पूर्णतया समाप्त कर दिया जाएगा।

1991 के पश्चात चालू की गयी नयी आर्थिक नीति और सरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम (Structural Adjustment Programme) के आधीन ही भारत सरकार विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग को आकर्षित करने के लिए अत्यधिक झुक रही है और इसके परिणामस्वरूप विदेशी मुद्रा विनियमन कानून *(FERA)* और *औद्योगिक नीति* मे बहुत से परिवर्तन किए गए हैं। गैट-सधि के आधीन अन्तर यह है कि ये परिवर्तन बहु-पक्षीय व्यापार सधि (Multilatural Trade Treaty) का अग बन गए हैं और भविष्य मे विश्व व्यापार सघ इस बारे मे अनुशासन लागू कर सकेगा। इस दृष्टि से यह सधि विदेशी विनियोग के विभिन्न क्षेत्रो मे हमे चयनात्मक रूप मे कार्य करने की स्वतन्त्रता को समाप्त कर देती है। यह हमारे आत्मनिर्भरता के लक्ष्य के प्रतिकूल है। यह कहीं बेहतर होता यदि व्यापार सबधित निवेश सधि मे कुछ ऐसा प्रावधान कर दिया जाता। *श्री एन के चौधरी और जे सी अग्रवाल इस सम्बन्ध मे* लिखते हैं-"पेप्सी फूड जैसे विदेशी निवेश को इस उम्मीद और शर्त पर बढावा दिया गया कि कम्पनी अपने उत्पादो के निर्यात द्वारा भारत के लिए विदेशी मुद्रा अर्जित करेगी और साथ-साथ अपने उत्पादन-कार्यक्रम मे देशी माल का क्रमश अत्यधिक प्रयोग करेगी। किन्तु इन नीतियो का अनुसरण करना सभव नहीं यदि देश गैट-1994 पर हस्ताक्षर कर देता है।" इससे साफ जाहिर है कि एक बार यदि किसी क्षेत्र मे विदेशी विनियोग की इजाजत दे दी जाती है, तो देश इसके अर्थव्यवस्था और स्थानीय उद्योग पर पडने *वाले दुष्प्रभावो को रोकने के लिए स्वतन्त्र नहीं रह जाता।* इस दृष्टि से आलोचको का मत है कि विदेशी विनियोग को निर्बाध स्वतन्त्रता हमारी आर्थिक प्रभुसत्ता के साथ समझौता है।

टैक्सटाइल्स और वस्त्र (Textiles and Clothing)

गैट-सन्धि मे टैक्सटाइल्स एव वस्त्रो के व्यापार को उदार बनाने के लिए कुछ प्रस्ताव किए हैं। ये प्रस्ताव विकासशील देशो के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह बडी अजीब बात है कि विकसित देश जो अपने आप को स्वतन्त्र व्यापार के सबसे बडे प्रवक्ता मानते हैं, ने बहुतन्तु सधि (Multi fibre agreement) के आधीन व्यापक कोटा-प्रतिबन्ध (Quota restrictions) लगाए हैं। इस अधिनियम मे यह प्रस्ताव किया गया है कि इन कोटा-प्रतिबन्धो को 10 वर्षों (1993 से 2003) की अवधि के दौरान क्रमिक रूप मे समाप्त कर दिया जाए और 10 वर्षों के पश्चात् टैक्सटाइल क्षेत्र को पूर्णतया उदार बनाया जाए।

डकल अन्तिम अधिनियम में 10 वर्षों की अवधि को तीन चरणो मे विभाजित किया गया है। पहले चरण में विकसित देशो के टैक्सटाइल निर्यात के 16 प्रतिशत को उदार बनाया जाएगा, इसके बाद दूसरे चरण मे 17 प्रतिशत करे और तीसरे चरण मे 18 प्रतिशत। अत 10 वर्षों के पश्चात् टैक्सटाइल बाजार के 51 प्रतिशत को उदार बनाया जाएगा। इस प्रकार टैक्सटाइल बाजार के महत्त्वपूर्ण भाग *(49 प्रतिशत)* को *सन् 2003 के पश्चात् उदारीकरण की* दूसरी लहर की प्रतीक्षा करनी होगी। इसमें सबसे अजीब बात यह है कि एक टैक्सटाइल की परिभाषा इस प्रकार की गयी है कि टैक्सटाइल क्षेत्र मे ऐसी मदे शामिल की गयी हैं जो अभी विकसित देशो मे कोटा-प्रतिबन्धो के आधीन नहीं हैं। अत वास्तविक उदारीकरण करने की अपेक्षा और टैरिफ-भिन्न प्रतिबन्ध (Non tariff restrictions) हटाने की बजाए, उदारीकरण का मिथक कायम किया जा रहा है। इस बात को वाणिज्य मन्त्रालय ने स्पष्ट किया है-"यह एक सत्य है कि टैक्सटाइल सधि आरम्भिक वर्षों मे समान रूप मे *सतुलित नही है। इस अवधि मे न्यूनतम उदारीकरण का* प्रस्ताव है और उदारीकरण के लिए महत्त्वपूर्ण कदम अन्तिम तीन वर्षों मे उठाएँ जाएँगे। यह भारत के लिए असतोष का एक मुख्य कारण है और हम आयात करने वाले देशो से प्रबल आग्रह करते हैं कि वे उदारीकरण की प्रक्रिया को और आगे बढाएँ।"

गैट मे सामाजिक कण्डिका (Social Clause in GATT)

मार्च 1994 के अन्त मे गैट-सन्धि को अन्तिम रूप देने मे सबसे आश्चर्यजनक प्रस्ताव पेश किया गया। इस प्रस्ताव को जिसे आम भाषा मे **"सामाजिक कण्डिका"** (Social Clause) कहा जाता है, की तजवीज सयुक्त राज्य अमेरिका ने की ताकि इसे माराकेश घोषणा मे शामिल किया जा सके। सयुक्त राज्य अमेरिका के प्रतिनिधि ने यह प्रस्ताव किया कि सामाजिक कण्डिका के आधीन विकासशील देशो से किए जाने वाले आयात पर प्रतितुल्य शुल्क (Countervailing duty) लगानी होगी ताकि इन देशो मे विद्यमान निम्न श्रम लागत (Low Labour cost) के प्रभाव को दूर किया जा सके। साधारण भाषा मे इस प्रस्ताव का अर्थ यह था-यदि भारत मे एक कमीज की कीमत 50 रुपये है और अमरीका मे 200 रुपये, तो इस अन्तर का मुख्य कारण श्रम-लागत मे अन्तर हैं। इस तुलनात्मक लाभ को दूर करने के लिए, भारत को सयुक्त राज्य अमेरिका को निर्यात पर शुल्क अदा करना होगा ताकि इस लागत-लाभ को निष्प्रभावी बनाया जा सके। *यह उल्लेख किया गया कि सामाजिक कण्डिका का उद्देश्य* मानवीय चिन्ताएँ हैं ताकि विकासशील देश अपने श्रमिको को बेहतर मजदूरी दे जिससे उनका जीवन-स्तर उन्नत हो।

विकासशील देशो के विशेषज्ञो को इस प्रस्ताव से भारी धक्का पहुँचा क्योंकि यह प्रस्ताव तीसरी दुनिया के देशो की प्रतिस्पर्धा शक्ति को कुन्द करने के उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया। विशेषज्ञो ने मानववादी तर्क को एक जर्जर एव बोसीदा उपाय माना। तीसरी दुनिया के मजदूरो की हालत मे अचानक चिन्ता उत्पन्न होने के छल के पीछे गहरी चाल थी और इसका वास्तविक उद्देश्य विकासशील देशो को प्राप्त प्रतिस्पर्धा लाभ से वचित करना था। वे जानते हैं कि जहाँ तक तकनालाजी का सम्बन्ध है, ये देश ऐतिहासिक दृष्टि से पिछडे ही हैं। विकासशील देशो को विकसित देशो से तकनालाजी प्राप्त करने के लिए भारी कीमत अदा करनी पडती है। यदि यह कण्डिका लागू कर दी जाती है, तो भारतीय वस्तुएँ सयुक्त राज्य अमेरिका और अन्य योरोपीय समुदाय के देशो मे अविक्रेय बन जाएगी। व्यगात्मक रूप मे इसका गूढ़ार्थ यह है कि गरीब देशो को इस बात के लिए अधिक कीमत अदा करने के लिए मजबूर किया जा रहा है क्योंकि वे गरीब हैं।

आलोचको का मत है कि यह चाल हारकिन बिल (Harkin Bill) की ही एक कडी है जो सयुक्त राज्य काग्रेस के सामने है और जो सयुक्त राज्य के श्रम विभाग पर इस बात के लिए आग्रह करता है कि ऐसी वस्तुओं की हर वर्ष पहचान की जाए जो बाल-श्रम (Child Labour) से बनायी जाती हैं और उन देशो की भी पहचान की जाए जो इन का निर्यात करते हैं। यदि यह विधयेक पास हो जाता है, तो सयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार ऐसी वस्तुओ के आयात पर प्रतिबन्ध लगा देगी और इस प्रकार भारत द्वारा निर्यात किए जाने वाले कालीनो हीरे एव जवाहरात, टेक्सटाइल, सिले सिलाए कपडो आदि पर गहरा दुष्प्रभाव पडेगा। अत सामाजिक कण्डिका का मुख्य लक्ष्य भारत जैसे देश हैं ताकि इनको प्राप्त प्रतिस्पर्धी लाभ को नष्ट कर दिया जाए और इनकी निर्मित वस्तुओ के निर्यात की क्षमता को अपग बना दिया जाए। अत इसके परिणाम के तौर पर अन्त में इन देशो को कच्चेमाल अर्थात् रुई, कच्चे लोहे के निर्यात की इजाजत दी जाए और इन्हे सिलेसिलाए कपडो और इस्पात के आयात के लिए मजबूर किया जाए। श्री प्रणब मुखर्जी, केन्द्रीय वाणिज्य मत्री ने सामाजिक नीति सम्बन्धी चिन्ताओ जैसे श्रम के बारे मे मानदण्ड और व्यापार में सीधे सम्बन्ध का कडा विरोध करते हुए 13 अप्रैल 1994 को साफ-साफ कहा-"मैं यह बात बिल्कुल स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूँ कि जहाँ हम अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-मापदण्डो (International labour standards) के लिए पूर्णतया वचनबद्ध हैं, हम इस प्रयास को बिल्कुल सही नहीं मानते जो ऐसे क्षेत्रो मे सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करता है, जहाँ वे विद्यमान नहीं है। व्यापार नीति को सभी चिन्ताओ को न्यायकर्ता नहीं माना जा सकता।"

सामाजिक कण्डिका प्रस्ताव जी-15 राज्यो के लिए एक साझा मुद्दा बन गया और मलेशिया के प्रधानमत्री महाथीर मुहम्मद ने इस प्रावधान के विरुद्ध जहाद खडा कर दिया। जी-15 देश इस बात पर एकमत थे कि सामाजिक कण्डिका प्रस्ताव का उनकी अर्थव्यवस्थाओ पर बुरा प्रभाव पडेगा और इससे भुगतान-शेष की समस्या और विकट बन जाएगी, इसकी बजाए कि यह भुगतान-शेष के घाटे को पाटने मे मदद दे। जी-15 देशो की सामूहिक शक्ति के कारण सयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार को पीछे हटना पडा और इस मुद्दे को स्थगित कर दिया गया।

एक और प्रस्ताव पर्यावरण सरक्षण कण्डिका (Environmental Protection Clause) को लागू करना है ताकि विकासशील देशो को पर्यावरण के विनाश के लिए हर्जाना देने के लिए मजबूर किया जा सके। विशेषज्ञो का मत है कि इससे अधिक विभेदकारी शर्त की कल्पना करनी सम्भव नहीं क्योंकि विश्व परिवेश सम्बन्धी पर्यावरण के तीन-चौथाई की हानि के लिए पिछली दो शताब्दियो में विकसित देश जिम्मेदार हैं। यह वस्तुत एक विडम्बना है कि विकसित देश इन तथ्यो के प्रकाश मे किस मुँह से विकासशील देशो को अपने गुनाहो की सजा देना चाहते हैं।

विकसित देशो द्वारा नयी-नयी चालो द्वारा अपने प्रस्तावो के प्रति विकासशील देशो को घुटने टेकने के लिए मजबूर करने की अनेक कोशिशे की जा रही हैं। सामाजिक कण्डिका की अस्थायी रूप मे वापसी को विकासशील देशो की जीत नहीं समझना चाहिए। यह बात बिल्कुल सभव है कि विश्व व्यापार सगठन की स्थापना के पश्चात् इस प्रस्ताव को पुन जीवित कर दिया जाए। इसके विरुद्ध जो प्रश्न उठाने की जरूरत है वह यह है कि मानवीय चिन्ताओ के आधार पर क्या विकासशील देश सयुक्त राज्य अमेरिका की वस्तुओ पर प्रतितुल्य शुल्क (Countervailing duties) उस समय तक क्यो न लगा दें जब तक कि सयुक्त राज्य अमेरिका मे काली जाति के नागरिको को समान मानवीय व्यवहार प्राप्त नहीं हो जाते? क्या काले लोगो के लिए श्रम-मानदण्ड महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, यदि व्यापार नीति को सामाजिक चिन्ताओ के साथ जोडकर इसके तार्किक परिणामो तक प्रबल रूप मे ले जाया जाए। अत तीसरी दुनिया के देशो को निगरानी रखनी होगी और एकजुट होकर इन प्रस्तावो का विरोध करना होगा ताकि गैट के विस्तारित क्षेत्र का उनके विरुद्ध प्रयोग न किया जाए।

निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि असमान सहयोगियो की दुनिया मे बहुपक्षीयवाद (Mululateralism) द्विपक्षीयवाद (Bilateralism) से बेहतर है और यदि सयुक्त राज्य अमेरिका और योरोपीय समुदाय से सम्बन्धित किसी बडे सहयोगी से कुछ रियायतें प्राप्त करनी हैं, तब विकासशील देशो की सगठित शक्ति अपने पक्ष मे अधिक प्रभावी दबाव डाल सकती है। गैट का एक सराहनीय लक्षण यह है कि यह एक देश, एक वोट के

सिद्धान्त पर कार्य करता है। किन्तु विकसित देश विकासशील देशो पर कई प्रकार से विशेषकर भौतिक सम्पत्ति अधिकार एव व्यापार सम्बन्धित निवेश उपायो द्वारा दबाव डालते हैं। चाहे भारत सरकार यह दावा कर रही है कि गैट-सधि के परिणामस्वरूप देश को महत्त्वपूर्म लाभ प्राप्त होने की सभावना है किन्तु अभी ऐसे निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना ठीक नहीं। डकल अन्तिम कानून एक बडा प्रलेख है और इसके अन्दर बहुत-सी ग्रथियाँ विद्यमान हैं और इस कानून का झुकाव तो निश्चय ही विकसित दशो की ओर है। इण्डिया इटरनेशनल सेन्टर के श्री आर के खुराना ने सही रूप में स्थिति प्रस्तुत की हैं–"इस बात पर आम सहमति है कि उरुगुए रौंद ऐसा खेल बना रहा है जिसमे अधिक शक्तिशाली देश नियम निर्धारित करते हैं। दुर्भाग्यवश भारत उन सशक्त व्यापार करने वाले देशो मे से एक नहीं है और यह बहुत सन्देहजनक है कि इस देश द्वारा इससे अधिक महत्त्वपूर्ण प्राप्ति सभव नहीं हो सकती थी जोकि इस वार्ता से देश प्राप्त कर सका है।"

गैट के इतिहास से यह बात स्पष्ट हो गयी है कि जब भी नव-औद्योगीकृत देशो ने विकसित देशो की स्पर्द्धा-शक्ति को चुनौती दी है तो विकसित देशो ने तुरन्त ही बदले की भावना से टैरिफ और गैर-टैरिफ प्रतिबन्ध लगा दिए। अब उन्होने इसका विस्तार व्यापार सम्बन्धित बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारो एव व्यापार सम्बन्धी निवेश उपायो के रूप मे कर दिया। सामाजिक कण्डिका की तजवीज का उद्देश्य भी विकासशील देशो की स्पर्द्धाशक्ति को क्रुन्द करना था। यह खेल जारी रहेगा। इस परिस्थिति का समाधान तभी हो सकता है जब विकासशील देश बहुपक्षीय व्यापार सगठन का लाभ उठाकर अपनी ताकत का सगठित रूप में एकजुट होकर प्रदर्शन करें, इसकी बजाए कि वे अपनी प्रभुसत्ता की बलि चढा दें। यह कहना कि इसका कोई समाधान नहीं एक पराज्यवादी समाधान है। यह बात विकासशील देशो के लिए लाभकारी होगी यदि चीन को भी विश्व व्यापार सस्था में शामिल कर लिया जाए। फिर चीन और भारत दोनो मिलकर विश्व व्यापार सस्था के सहयोगियो (Partners) के लिए उचित एव न्यायपूर्ण सधि तय करवा सकते हैं, इसकी अपेक्षा कि सशक्त राष्ट्र कमजोर राष्ट्रो पर जोर-जबरदस्ती कर अपनी बात मनवाते चले जाएँ।

गैट का उस गुए रौद और बाद मे हुए परिवर्तन

अन्तिम कानून मे दिए गए विश्व व्यापार सगठन (World Trade Organisation) की स्थापना 1 जनवरी 1995 को की गयी और भारत 30 दिसम्बर 1994 को इस समझौते पर हस्ताक्षर कर विश्व व्यापर सगठन का सस्थापक सदस्य बन गया। विश्व बैंक आर्थिक सहयोग और विकास सगठन (Oranisation for Economic and Development) और गैट-सचिवालय द्वारा तैयार किए गए अनुमानो के अनुसार उरगुए रौंद के पैकेज के परिणामस्वरूप व्यापार पर प्रभाव के रूप मे सन् 2005 तक 745 अरब डालर के वस्तु-व्यापार की वृद्धि होगी। गैट-सचिवालय ने यह भी पूर्वानुमान लगाया कि कपडे के क्षेत्र मे यह वृद्धि 60 प्रतिशत कृषि, वाणिकी एव मछली-पालन मे 20 प्रतिशत और ससाधित खाद्य और पेय-पदार्थों मे 19 प्रतिशत होगी। आर्थिक समीक्षा (1994-95) के अनुसार "चूकि भारत की वर्तमान और भावी निर्यात प्रतिस्पर्द्धा इन्हीं वस्तु-समूहो मे निहित है। इस बात पर विश्वास कर लेना तर्कसगत है कि भारत को इन क्षेत्रो में भारी लाभ होगा। यदि यह मान लिया जाए कि विश्व व्यापार मे भारत का बाज़ार-भाग (Market share) 0 5 प्रतिशत से उन्नत होकर 1 प्रतिशत हो जाता है और हम नव-निर्मित अवसरो का लाभ उठाने मे कामयाब हो जाते हैं, तो सयमित अनुमान के रूप मे भी व्यापार सम्बन्धी लाभ 2 7 अरब यू०एस० डालर होने की सभावना है। अधिक उदार अनुमान इन लाभो को 3 5 से 3 7 अरब डालर की अभिसीमा मे भी रख सकता है।

परन्तु आर्थिक समीक्षा (1994-95) में यह बात साफ तौर पर की गयी है कि जहा विकसित देश विश्व व्यापार सगठन जैसे राज्योपरि सगठन (Super statal organisations) के दबावाधीन विकासशील देशो को अपने व्यापार-अवरोधक (Trade barriers) कम करने और वस्तुआ के बेरोक-टोक प्रवाह के लिए मजबूर करते हैं, वहा वे अपने हितो की रक्षा के लिए सरक्षणात्मक नीतिया (Protectionist policies) चलाने के लिए व्यापार-अवरोधक खडे करते हैं। आर्थिक समीक्षा (1994-95) ने इसी कारण स्पष्ट रूप में उल्लेख किया है "नब्बे के दशक मे औद्योगिक देशो मे बेरोजगारी चरम सीमा पर है। इस कारण न केवल इन्हीं देशो मे समस्याए उत्पन्न हुई हैं, बल्कि इसके परिणामस्वरूप अन्य देशो मे सरक्षणवाद (Protectionism) का शोर भयकर बन सकता है और इससे बहुपक्षीय व्यापार (Multi lateral trade) को खतरा पैदा हो सकता है। चाहे बहुत से विकासशील देशो ने आर्थिक सुधारो के अग के रूप में अपने व्यापार को महत्त्वपूर्ण रूप मे उदार बना दिया है, विकसित देशों ने व्यापार अवरोधक खडे किए हैं और विकासशील देशो के लाभ की मदो को बाज़ार प्राप्त करने मे खतरा पैदा हो गया है।" इस प्रकार की परिस्थिति का विद्यमान होना इन देशो की कथनी और करनी मे अन्तर्विरोध को व्यक्त करता है। इसी कारण भारतीय लोकसभा ने पेटट सशोधन अध्यादेश (1994) को जो 31 दिसम्बर 1994 को जारी किया गया था अपनी स्वीकृति नहीं दी है। इसी प्रकार व्यापार और वाणिज्य चिन्ह कानून (1958) (Trade and Merchandise Marks Act) को जो 1993 मे लोकसभा में पेश किया गया था अपनी स्वीकृति नहीं दी है। इसका कारण यह है कि भारतीय लोकसभा के सदस्य यह महसूस करते हैं कि विकसित देशो के इरादे सही नहीं हैं और वे गैट का प्रयोग कर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के अधिकतर लाभो को स्वय हडप करना चाहते हैं और विकासशील दशो के लिए कुछ बचे-खुचे लाभ छोड देना चाहते हैं।

41

औद्योगिक श्रम और इसका संगठन

(INDUSTRILA LABOUR AND ITS ORGANISATION)

1 औद्योगिक श्रम क लक्षण

सैद्धान्तिक दृष्टि से तो औद्योगिक श्रम स हमारा आशय उन सभा श्रमिको से होना चाहिए जो वडे तथा छोट पैमाने के उद्यमो जिनमे कुटार उद्योग भा हे म काय करत हैं। किन्तु भारत मे इस पद का प्रयोग सामित रूप से किया जाता है और उन सभा श्रमिका को जिन पर व्यवस्थित कारखानो मे फैक्टा अधिनियम (Factory Act) लागू हाता है औद्योगिक श्रम का अग मान लिया जाता है। वे श्रमिक जो कुटार उद्योगो म काम करते हे इनम शामिल नहा किए जाते। चूँकि हमार देश मे कारखाना उद्योगा (Factory industries) का प्रगति बहुत धार धार हुइ इसलिए औद्योगिक श्रम का विकास भी धार धार हुआ है। 1950 और 1991 के बाच कारखाना म अनुमानित औसत दैनिक राजगार 30 लाख से बढकर 85 लाख हो गया। अभिप्राय यह है कि औद्योगिक श्रम कुल कायकारा जनसख्या (Working population) क 3 0 प्रतिशत के समान हे और सभी प्रकार के उद्योगो के श्रम के 25 प्रतिशत के समान है। वस्तुत यह प्रतिशत बहुत ही थोडा है। परन्तु अपने सगठन और राष्ट्रीय आय मे योगदान के कारण औद्योगिक श्रम देश की अर्थव्यवस्था म महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जहाँ पर सन्तुष्ट औद्योगिक श्रम देश का गौरव है वहा असतुष्ट औद्योगिक श्रम से तो राष्ट्राय आय मे कमी ही होगी।

भारत के औद्योगिक श्रम के कुछ विशिष्ट लक्षणो के कारण मजदूर सघ व्यवस्था पर भी इसका प्रभाव पडा है। प्रथम बहुत से औद्योगिक श्रमिक मूलत ग्रामवासी है। इनमें से बहुत से लोग नोकरी को तलाश मे स्थायी या अस्थायी रूप मे शहरो मे आकर बस जाते हैं। इनमे से बहुत से भूमि के साथ अपना सम्बन्ध कायम रखते हैं और इस कारण वे कभी शहरो मे चले जाते हे और कभा गाँव म लौट आते हैं। श्रम का प्रवासीपन (Migratory character) हमारे औद्योगिक श्रम का विशेषता है। पिछले कुछ वर्षो स औद्योगिक श्रम के एक नए वर्ग का विकास हुआ है जिसकी जडे कृषि मे नहीं बल्कि जो स्थाया रूप म नगरों और कस्बो मे ही रहता है।

दूसरे औद्योगिक श्रम अधिकतर अशिक्षित है और परिणामत वह उद्योगो की समस्याओ से परिचित नहीं होता। इस श्रम को अपनी समस्याओ का भा पूण आभास नहा होता। भारत मे मजदूर सघ आन्दोलन (Trade Union Movement) क कमजार रहने का यह मुख्य कारण है।

तासर भारत म औद्योगिक श्रम प्रदेश धर्म जाति भाषा आदि के आधार पर बटा हुआ है। पिछले कुछ वर्षों से ये भेदभाव वलहान होते जा रहे हैं और आर्थिक आधार पर औद्योगिक श्रम सगठित होता जा रहा हे।

चौथे भारताय श्रमिक काफी समय तक एक ही नौकरी पर नहीं रहते। श्रम का आधिक्य अनुपस्थिति (Absenteeism) अनुशासनहीनता आदि मुख्य समस्याएँ है। इनका एक कारण तो यह है कि श्रमिक ग्रामाण क्षेत्रो से आते हैं जहा वे अपेक्षत स्वतन्त्र परिस्थितियो म पलते हैं या कुछ हद तक उनम शिक्षा का अभाव और अवकाश की चाह भा इसके लिए उत्तरदायी है।

2 मजदूर सघ आन्दोलन (Trade Union Movement)

मजदूर सघ श्रमिको द्वारा स्वैच्छिक रूप मे कायम की गई ऐसी सस्थाएँ होती हे जिनका उद्देश्य सामूहिक प्रयास द्वारा श्रमिको के हितो की रक्षा करना एव उन्हे प्रोन्नत करना होता है। बीसवीं शताब्दी के पहले चतुर्थ भाग मे भारत मे मजदूर सघ आन्दोलन आरम्भ हुआ चाहे इस आन्दोलन के प्रस्फुटित होने के लिए उन्नासवीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थ भाग म वाज बोए जा चुके थे। एस एस बगाली एन एम लोखडे और कुछ अन्य व्यक्तियो द्वारा मजदूर सघ स्थापित किए गए। वे कुछ हद तक हडतालें करवाने मे सफल हुए जिससे मजदूरों का दशा कुछ हद तक उन्नत हुई। लेकिन पहले विश्वयुद्ध के अन्त तक भारत मे मजदूर सघ की पक्की नींव डाला न जा सकी थी।

मजदूर सघ आन्दोलन का विकास

प्रथम विश्व-युद्ध के पश्चात् भारतीय श्रम वर्ग ने

श्रमिको की दशा उन्नत करने और उनके लिए अधिक मजदूरी और अन्य रियायते प्राप्त करने के लिए हडताल के उपाय की प्रभाविता को अनुभव किया। बहुत सी हडतालो की घोषणा की गई। 1921 मे 4,000 हडताले हुई जिनमे 6 लाख श्रमिको ने भाग लिया। इनमे से अधिकतर हडतालो की सफलता के कारण बहुत से मजदूर सघ कायम हो गए। 1920 मे आल इण्डिया ट्रेड यूनियन काग्रेस (AITUC) की स्थापना हुई ताकि यह श्रमिको के हितो की रक्षा कर सके, देश भर में फैली हुई विभिन्न श्रम-सस्थाओ की क्रियाओ को समन्वित कर सके ओर जिन क्षेत्रो मे मजदूर सघ आन्दोलन फेल नहीं सका उनमे इसे फैला सके। जबकि AITUC समग्र रूप मे सगठित श्रमिको के लिए राजनीतिक एव आथिक हितो की रक्षा करती थी, यह विभिन्न उद्योगो मे श्रमिका के विभिन्न वर्गों की कठिनाइया की ओर ध्यान न दे सकी। AITUC की स्थापना स दश मे मजदूर सघो के निर्माण की लहर दोड गई। इस प्रकार बडे तथा छोटे उद्योगो मे यह आन्दोलन फैल गया ओर मजदूर सघो की सदस्यता (Membership) बढकर कई गुना हो गई।

1926 में मजदूर सघ अधिनियम (Trade Union Act) पास हुआ जो कि मजदूर सघ आन्दोलन मे एतिहासिक महत्त्व रखता है। इस अधिनियम ने पजीकृत मजदूर सघो (Registered trade unions) को कानूनी स्वीकृति प्रदान कर दी जिससे इसके सदस्यो को कुछ हद तक कानून की पकड से सुरक्षा प्राप्त हो गई। मजदूर सघो का रजिस्ट्रेशन होन से इसका स्थान सामान्य जनता और कारखानो के मालिको की नजरो मे ऊँचा हो गया।

1920 के बाद के काल मे मजदूर-नेताओ क बीच सैद्धान्तिक मतभेद होने के कारण मजदूर सघ आन्दोलन मे फूट पड गई। AITUC पर साम्यवादियो न कब्जा कर लिया ओर नरम दल ने ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन फैडरशन (AITUF) के रूप मे एक नई केन्द्रीय श्रम-सस्था कायम की। नेताओ के आपसी झगडो के कारण श्रमिको का उनमे विश्वास कम हो गया ओर परिणामत कइ हडताले असफल हो गईं।

1930 के पश्चात् मजदूर सघ आन्दोलन के लिए ऐसा वातावरण बनना आरम्भ हो गया जो इस आन्दोलन के लिए अनुकूल न था। मेरठ काँड मे पकडे गए साम्यवादियो और 1929 मे बम्बई सूती वस्त्र उद्योग की हडताल की असफलता के कारण मजदूर सघ आन्दोलन को धक्का लगा। 1929 की घोर मन्दी (Great Depression) का भी प्रभाव पडा। इस काल मे हडतालो द्वारा न तो मजदूरी को ही गिरने से राका जा सका ओर न ही श्रमिको को छटनी (Retrenchment) से ही बचाया जा सका। इस काल मे भी मजदूर सघों म फूट पडी हुइ थी किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व ही इस आन्दोलन मे फिर एकता कायम हो गई।

दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान सकटकालीन स्थिति घोषित की गई और युद्ध मे भाग लेने के प्रश्न पर मजदूर सघो के नेताओ मे फिर मतभेद हो गया। रूसी साम्यवादी पार्टी का अनुकरण कर साम्यवादी ब्रिटिश सरकार की सहायता कर नाजियो को पराजित करना चाहते थे, जबकि राष्ट्रवादी नेता (Nationalist leaders) ब्रिटिश साम्राज्यवाद (Imperialism) को उखाड फैंकने के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन को मजबूत बनाना चाहते थे। इससे फिर एक सैद्धान्तिक मतभेद पैदा हो गया और मजदूर सघ आन्दोलन मे फिर फूट पड गई। युद्धकाल मे निवाह-व्यय (Cost of living) के बढने के कारण औद्योगिक अशान्ति मे वृद्धि हुई। सरकार ने भारतीय प्रतिरक्षा नियमो का प्रयोग कर हडतालो और तालाबन्दियो (Strikes and lockauts) को गैर-कानूनी करार दिया और औद्योगिक झगडो को समझौते ओर अधि-निर्णयन (Adjudication) द्वारा हल करने का प्रयास किया। परन्तु आर्थिक स्थिति के खराब हो जाने के कारण श्रमिको मे अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए सगठित कार्य करने की जागृति उत्पन्न हो गई। इससे मजदूर सघ आन्दोलन को प्रोत्साहन मिला और मजदूर सघो की सख्या ओर सदस्यता दोनो मे वृद्धि हुई।

स्वतन्त्रता के पश्चात्–स्वतन्त्रता के साथ भारत का विभाजन भी हुआ। इसके तुरन्त बाद भारत मे बेरोजगारी बढ गई। श्रमिको की ये आशाएँ कि राष्ट्रीय सरकार बनते ही वे अधिक मजदूरी, काम की अच्छी दशाएँ और सुविधाएँ प्राप्त कर सकेगे, पूरी न हो सकीं। श्रमिको ने यह अनुभव किया कि उन्हें तो वर्तमान मजदूरी एव अन्य सुविधाओ को कायम रखने के लिए सघर्ष करना आवश्यक है। देश मे बडी भारी मात्रा मे हडताले हुईं ओर इस काल मे मानव-दिनो (Mandays) की इतनी हानि हुई कि पहले कभी नहीं हुई थी।

देश मे तीन केन्द्रीय श्रम-सघो की स्थापना के कारण इस काल में मजदूर सघ आन्दोलन मे फिर फूट पड गई। इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन काग्रेस (INTUC) 1947 में चालू की गई और इस पर काग्रेस पार्टी का नियन्त्रण था। प्रजा समाजवादी पार्टी द्वारा 1948 मे हिन्द-मजदूर सभा (HMS) बनाई गई। आमूल परिवर्तनवादियो (Radicalists) द्वारा 1949 मे यूनाइटिड ट्रेड यूनियन काग्रेस (UTUC) स्थापित की गई। ये सभी मजदूर सघ श्रमिको की दशा उन्नत करने के लिए प्रयत्न करते रहे हैं किन्तु दु ख की बात यह है कि इनमे एकता नहीं और वे किसी साझी विचारधारा या सिद्धान्तो क अनुकूल कार्य नहीं करते। भारतीय मजदूर सघो के विकास सम्बन्धी कुछ आकडे तालिका 1 मे दिए गए हैं।

तालिका 1 भारत में मजदूर संघ आन्दोलन का विकास

वर्ष	पंजीकृत मजदूर संघों की संख्या	सूचना उपलब्ध कराने वाले संघ	सदस्यता (लाखों में)
1951 52	4 620	2 556	20
1961 62	11 614	7 087	40
1975	28 634	10 158	65
1978	32 207	8 351	60
1981	3[illegible] 539	6 [illegible]82	54
1987	49 [illegible]9	[illegible] 063	79
1990	[illegible]2 016	8 828	70

मजदूर संघ आन्दोलन की वर्तमान स्थिति

यहाँ यह उल्लेख करना उचित होगा कि मजदूर संघ आन्दोलन काफी फैल गया है और उसकी जड़ मजबूत होती जा रही है। इसलिए अब यह स्थायी रूप धारण कर रहा है। तालिका 2 में अखिल भारतीय संस्थाओं की सदस्यता दी गई है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि भारत में बहुत से मजदूर संघ हैं और कुछ तो बड़े मजदूर संघों से टूट कर बने हैं और कुछ कई मजदूर संघ नेताओं के व्यक्तिगत प्रभाव के कारण बने हैं। किन्तु पाँच मुख्य मजदूर संघों अर्थात् INTUC HMS BMS AITUC और CITU 1989 में *कुल सदस्यता के लगभग 74 प्रतिशत के लिए जिम्मेवार हैं।* दो अन्य महत्त्वपूर्ण मजदूर संघ हैं *UTUC- LS* और HMKP जिनकी सदस्यता 11 प्रतिशत है। जाहिर है कि भारतीय मजदूर संघ आन्दोलन मुख्य राजनीतिक दलों के श्रमिकों के संगठन हैं।

दिसम्बर 1989 से सम्बन्धित अद्यतन अनन्तिम आंकड़ों से जो मुख्य श्रम आयुक्त द्वारा घोषित किए गए पता चलता है कि भारतीय मजदूर संघ जो कि भारतीय जनता पार्टी से सम्बन्धित मजदूर संगठन है सदस्यता के रूप में प्रथम स्थान पर था और इसकी सदस्य संख्या 31 17 लाख थी। इसके बाद थे–इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस जोकि कांग्रेस पार्टी से सम्बन्धित है की सदस्य संख्या 27 06 लाख थी इसके बाद सेंटर आफ इंडियन ट्रेड यूनियन्स है जो मार्क्सवादी कम्यूनिस्ट पार्टी से सम्बन्धित है और इसकी सदस्यता 17 98 लाख थी। उत्तरोत्तर क्रम में हिन्द मजदूर सभा है *जिसकी सदस्य संख्या 14 77 लाख थी। सापेक्ष* रूप में भारतीय मजदूर संघ ने अपनी सदस्यता 21 प्रतिशत से बढ़ाकर 26 2 प्रतिशत करके अपनी स्थिति उन्नत कर ली है जबकि इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थिति में सदस्यता के अनुपात में—38 85 प्रतिशत से 22 75 प्रतिशत हो जाने से–गिरावट आयी है। सीटू (CITU) ने अपनी स्थिति काफी मजबूत की है और कुल सदस्यता में इसका अनुपात 5 75 प्रतिशत से बढ़कर 15 12 प्रतिशत हो गया। आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (AITUC) जो भारतीय *कम्यूनिस्ट पार्टी से सम्बन्धित है ने भी अपनी स्थिति थोड़ी उन्नत की है (6 प्रतिशत से 7 77 प्रतिशत)।* चूंकि *बहुत से केन्द्रीय मजदूर संघों ने अनन्तिम प्रमाणन (Provisional verification)* के दावों को चुनौती दी है श्रम आयुक्त इन आपत्तियों की जांच कर रहे हैं और इस वर्ष के अन्त तक अन्तिम आंकड़े उपलब्ध हो जाने की उम्मीद है। परन्तु *अनन्तिम आंकड़ों से संकेत मिलता है कि कांग्रेस–* सम्बन्धित इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस की श्रमिकों में ताकत काफी घटी है और भारतीय मजदूर संघ सीटू और आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की शक्ति में वृद्धि हो रही है। वामपंथी संगठन जैसे सीटू और आइटक इस बात से घबरा गए हैं कि दक्षिण पंथी भारतीय मजदूर संघ की ताकत बढ़ गयी है।

मजदूर संघ आन्दोलन के दोष

श्री वी वी गिरि के अनुसार भारतीय मजदूर संघ आन्दोलन के तीन मुख्य दोष हैं–(क) छोटे–छोटे मजदूर संघों का प्रधानता–लगभग तीन चौथाई मजदूर संघों की सदस्यता 500 से कम है (ख) मजदूर संघों का आकार छोटा होने और बहुत थोड़ा चन्दा होने के कारण इनके पास वित्त का अभाव (ग) पूर्ण रूप से वैतनिक अधिकारियों (Paid officials) की कमी।

आन्दोलन के इन मूल दोषों के अतिरिक्त जोकि इस आन्दोलन की दुर्बलता के लिए उत्तरदायी हैं कुछ अन्य उल्लेखनीय दोष ये हैं–

आन्दोलन का एक गम्भीर दोष यह है कि इन संघों का नेतृत्व गैर सदस्यों (Non members) और कई बार तो पेशेवर राजनीतिज्ञों के हाथ में ही रहा है। भूतकाल में इसके

तालिका 2 केन्द्रीय मजदूर संघों की सदस्यता

सदस्ता (लाखों में)

	अद्यतन सर्वेक्षण जो 31 12 89 को हुआ*		पिछला सर्वेक्षण जो 31 12 80 को हुआ**	
	कुल	प्रतिशत	कुल	प्रतिशत
1 BMS	31 17	26 20	12 11	21 04
2 *INTUC*	27 06	22 75	22 36	*38 85*
3 CITU	17 98	15 12	3 31	5 75
4 HMS	14 77	12 42	7 63	13 26
5 AITUC	9 24	7 77	3 45	5 99
6 UTUC (Lenin Sarani)	8 03	6 75	6 21	10 79
7 UTUC	5 40	4 54	1 65	2 87
8 NFITU	5 30	4 45	0 84	1 46
कुल	118 95	100 0	57 55	100 0

* *अनन्तिम आकडे* ** *अन्तिम आकडे*

स्रोत हिन्दुस्तान टाइम्स 7 अगस्त 1994

INTUC-इडियन नेशनल ट्रेड यूनियन काग्रेस AITUC-आल इडिया ट्रेड यूनियन काग्रेस CITU-सेटर आफ इडियन ट्रेड यूनियन्स HMS-हिन्द मजदूर सभा BMS-भारतीय मजदूर सघ UTUC-यूनाइटेड ट्रेड यूनियन काग्रेस UTUC—LS-यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस-लैनिन सारणी NFITU-नेशनल फेडरेशन आफ इडिपेन्डेन्ट ट्रेड यूनियन्स।

कुछ भी कराण रहे हो किन्तु यह बात विशेष महत्त्व रखती है कि मजुदर सघो का नेतृत्व स्वय सदस्य ही करें क्योकि वे श्रम-वर्ग की समस्याओ से परिचित होते हैं। इस सम्बन्ध मे यह उल्लेख करना अनिवार्य है कि भारतीय मजदूर सघ आन्दोलन पर राजनीतिक दल ही छाए रहे हैं और यह स्थिति आज भी उसी तरह बनी हुई है। ऐसी स्थिति मे श्रमिकों के हितो की उपेक्षा की जाती है और मजदूर सघो को राजनीतिक दलो के हितो को प्रोन्नत करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

आन्दोलन का एक दोष यह है कि बहुत से मजदूर सघ श्रमिको की वफादारी प्राप्त करने म असफल रहे हैं और न ही वे उनके वफादार रहने की आवश्यकता पर बल देते हैं। अधिकतर मजदूर सघ हडताले करवाने मे व्यस्त रहते हैं और श्रमिका क हितो को बढाने के लिए नियोजको (Employers) स सोदेबाजी करते रहते हैं। इस कारण बहुत से अन्य उपयोगी कार्यों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। इनमे बीमारी मे चिकित्सा रोगग्रस्त श्रमिको पर आश्रित व्यक्तियो को सहायता शैक्षणिक एव सास्कृतिक कार्य आदि शामिल हैं

अन्तिम मजदूर सघ आन्दोलन पर हमारे श्रम वर्ग के स्वभाव का भी प्रभाव पड़ा है। उदाहरणार्थ श्रमिको की अशिक्षा और अज्ञान उनका प्रवासीपन भाषा जाति परम्पराआ आदि क आधार पर श्रमिको म भिन्नता कम मजदूरी और मजदूर सघो के चन्दे देने की कम क्षमता आदि मजदूर सघो की मुख्य कमजोरियाँ हैं।

दूसरी योजना ने मजदूर सघ आन्दोलन के दोषो का वर्णन करते हुए लिखा, "मजदूर सघो की अधिकता, राजनीतिक शत्रुता ससाधनो की कमी और श्रमिकों में एकता न होना वर्तमान सघो की कुछ मुख्य कमजोरियाँ हैं।"[1]

मजदूर सघ आन्दोलन को मजबूत बनाने के उपाय

श्रमिको के हितो की सर्वोत्तम रूप मे रक्षा करने और इन्हे बढाने के लिए यह अनिवार्य है कि इनकी सौदाशक्ति (Bargaining power) प्रबन्धको के बराबर हो। अत मजदूरो के हितो की रक्षा करने और उत्पादन के लक्ष्य प्राप्त करने के लिए एक शक्तिशाली मजदूर सघ आन्दोलन का विकास आवश्यक है। श्री वी वी गिरि ने इस सम्बन्ध में लिखा है "यदि मजदूर सघ आन्दोलन मे एकता न हो और वह इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए शक्तिशाली न हो तो पूर्णरूपेण समाजवादी लोकतन्त्र के आधार पर बनाए गए औद्योगिक ढाचे की बुनियाद पक्की नहीं होगी और ऐसी हालत मे सरकार अपने सर्वोत्तम आदर्शों और कार्यक्रमो के होते हुए भी श्रम वर्ग को बुनियादी अधिकार दिलाने में कठिनाई अनुभव करेगी।"[2]

1 Planning Commission *Second Five Year Plan* p 572
2 *V V Giri Labour Problems in Indian Industry* p 42

(1) एकता की आवश्यकता—वर्तमान स्थिति में औद्योगिक विवादो (Industrial disputes) को सुलझाने में राजनीतिक शत्रुता, श्रमिको मे फूट और बहुत से सघो का विद्यमान होना इनकी मजबूती के कम होने के कारण है। इसलिए एकता का होना अनिवार्य है। जो लोग मजदूर सघ आन्दोलन मे विश्वास रखते हैं, उन्हे मिलकर एक केन्द्रीय सस्था कायम करनी चाहिए जो उनकी माँगो को सदा पेश करे। एक दूसरा उपाय यह है कि विभिन्न मजदूर सस्थाएँ एक साझा प्रोग्राम तैयार करें। देश मे औद्योगिक शान्ति (Industrial peace) की स्थापना के लिए मजदूर सघो मे एकता का होना अत्यन्त आवश्यक है। तभी इन सघो की शक्ति बढेगी।

(2) अस्वास्थ्यकर राजनीति के प्रभावो को दूर करना—आजकल मजदूर सघो का नेतृत्व राजनीतिक नेताओ के हाथ मे है क्योकि इस आन्दोलन का नियत्रण राजनीतिक दलो के पास है। चूँकि मजदूर सघो के नेताओ के हित राजनीतिक दलो की विचारधारा से जुडे होते हैं, वे अपने राजनीतिक दलो के हितो की रक्षा के लिए श्रम-वर्ग के हितो को बलिदान कर देते हैं। समय आ चुका है कि श्रम-वर्ग अपने आपको राजनीतिक दलो की चालो से बचाए।

(3) एक सघ एक उद्योग—एक ही औद्योगिक संस्थान (Industrial establishment) मे बहुत से मजदूर सघों के कायम हो जाने से उनमे आपसी शत्रुता पनपती है। इस कारण मजदूर सघो मे एक बुनियादी कमजोरी आ जाती है। इससे उनकी सामूहिक सोदाशक्ति (Collective bargaining power) कम हो जाती है और वे श्रमिको के जायज हितों के लिए भी सघर्ष नहीं कर पाते। अभी तक भारत मे 'एक उद्योग मे एक सघ' का आदर्श प्राप्त नहीं हुआ। मजदूर सघ आन्दोलन की प्रभाविता को बढाने के लिए यह बहुत ही आवश्यक है।

(4) श्रम वर्ग द्वारा नेतृत्व (Working class leadership)—विश्व के अन्य देशो की भाति भारत मे भी मजदूर सघ 'बाहरी व्यक्तियो (Outsiders) या गैर सदस्यो (Non members) द्वारा बनाए गए। श्रमिक निधन और अशिक्षित होने के कारण सदा नौकरी से निकाल दिए जाने के भय से इनम सक्रिय भाग नहीं लेते थे। इसलिए नियोक्ता (Employers) के सामने श्रमिको की शिकायत पेश करने के लिए समाज म प्रतिभाशाली व्यक्तियो को मजदूर सघो का नेतृत्व सभालने की प्रार्थना की जाती। इन बाहरी व्यक्तियो ने मजदूर सघ आन्दोलन के विकास म महत्त्वपूर्ण भाग अदा किया है। किन्तु नेतृत्व के भी कुछ पहलू होते हैं। उदाहरणार्थ बहुत से बाहरी व्यक्ति तो श्रमिको को भडकाने का काम [illegible] अपनी राजनीतिक शतरज के मोहरे समझते थे। इसी कारण तो विभिन्न मजदूर सघों मे आपसी मतभेद और शत्रुता पनपती। इसलिए यह अनिवार्य है कि श्रमिक स्वय मजदूर सघो का नेतृत्व अपने हाथ मे ले। आज श्रमिक यह महसूस करने लगे हैं कि बाहरी नेतृत्व की जगह मजदूर स्वय इनका नेतृत्व सभाल सकते हैं। कुछ लोगो का यह खयाल है कि भारत म श्रम-वर्ग (Working class) अभी तक इतना प्रौढ नहीं बना कि आवश्यक नेतृत्व प्रदान कर सके। इस सम्बन्ध मे कलकत्ता मे खोले गए एशियन ट्रेड यूनियन कॉलेज का विशेष महत्त्व है जिसका उद्देश्य नौजवान श्रमिको को मजदूर सघो के परिचालन सम्बन्धी शिक्षा देना है।

(5) जिम्मेदार मजदूर सघ नेतृत्व—मजदूर सघो के नेताओ को सघो को उपलब्ध सवैधानिक एव कानूनी अधिकारो की जानकारी होनी चाहिए। उन्हे उन अधिकारो का प्रयोग श्रमिको के हितो की रक्षा के लिए करना चाहिए। किसी मजदूर सघ नेता मे स्वतन्त्रता की चाह सतोष, उद्यम, उत्साह और इमानदारी के गुण होने चाहिएँ।

(6) श्रमिक के दायित्व—आजकल मजदूर सघ अपना ध्यान श्रमिकों की मागो की ओर ही रखते हैं। समय आ गया है कि वे अब श्रमिको मे अनुशासन और दायित्व के गुणो का भी विकास करें ताकि वे अपना कार्य मन लगाकर करें। मजदूर सघो को पहले श्रमिको को उनके कर्त्तव्यो और दायित्व की जानकारी करानी चाहिए और बाद मे उनमें अधिकारो और विशेषाधिकारो (Privileges) के बारे मे सचेत करना चाहिए। इनके अतिरिक्त, श्रमिको को यह अहसास होना चाहिए कि उन्हे एक समृद्ध राज्य का निर्माण करना है। श्री वी वी गिरि ने ठीक ही लिखा है, "समाजवाद के लिए औद्योगिक लोकतन्त्र (Industrial democracy) की स्थापना करनी आवश्यक है जिसके लिए एक ओर तो अनुशासन और दूसरी ओर इमानदारी और कुशल काम जरूरी है।"

इस सम्बन्ध मे यह उल्लेख कर देना उचित होगा कि मजदूर सघो के लिए जनता का सहयोग अनिवार्य है और यह इसी हालत म प्राप्त हो सकता है यदि श्रमिक अपने कर्त्तव्यो और दायित्वो के प्रति पूर्ण रूप से जाग्रत हो जाएँ। इसके अतिरिक्त श्रमिको का ऐसे उपायो का प्रयोग नहीं करना चाहिए जो उत्पादन को हानि पहुचाए। यहा पर हमारा अभिप्राय "काम की गति कम करने वाले उपायो" (Go slow methods) से है।

(7) मजदूर सघो की अधिक लाभदायकता—भारतीय मजदूर सघ एक प्रकार की हडताल समितियाँ (Strike committees) हैं। यदि मजदूर सघो का उद्देश्य श्रमिको की वैयक्तिक या सामूहिक शिकायतो का [illegible] करना ही है, तो जैसे ही ये शिकायतें दूर हो

जाती है श्रमिको की सघो मे दिलचस्पी कम हो जाती है। इस प्रकार की स्थिति सघो क लिए अच्छी नही। श्रमिको की दिलचस्पी को स्थायी रूप मे कायम रखने के लिए उन्हे दुर्घटनाओ को हालत मे क्षतिपूर्ति (Compensation) चिकित्सक सहायता आदि की सुविधाएँ भी उपलब्ध करानी चाहिएँ।

इसके अतिरिक्त मजदूर सघो के लिए हडताल निधि (Strike fund) कायम करना अत्यन्त आवश्यक है। निर्धन होने के कारण श्रमिक काफी दिनो तक काम न करने के लिए तैयार नही होते। इसलिए जो हडताल लम्बी हो जाती है वह साधारणतया असफल हो जाती है। इस कारण यह आवश्यक है कि मजदूर सघ हडताल निधि मे से श्रमिको को हडताल वेतन (Strike pay) के रूप मे निर्वाह के लिए कुछ राशि दे। इससे मजदूर सघो की शक्ति बहुत बढ जाएगी और दूसरी और वे अपने सदस्यो से अधिक वफादारी की आशा कर सकते है।

मजदूर सघ आन्दोलन का भविष्य उज्ज्वल है। ऊपर दिए गए कुछ सुझावो को लागू करना आवश्यक है। सरकार भी मजदूर सघो को उचित दिशा मे विकसित करने का प्रयास कर रही है। हमारे मजदूर सघो की शक्ति इतनी बढ जानी चाहिए कि सरकार तथा नियोजको को हर महत्त्वपूर्ण मामले मे परामर्श करना पडे।

42

श्रम समस्याएं और श्रम-नीति
(LABOUR PROBLEMS AND LABOURS POLICY)

1 औद्योगिक विवाद
(Industrial Disputes)

श्रमिका और नियोजको क बीच संघर्ष और विवाद चलते रहते ह इन झगड़ों को औद्योगिक विवाद कहते हैं इनके कारण कई प्रकार के अप्रिय परिणाम सामने आते हैं उदाहरणार्थ श्रमिकों द्वारा हड़ताल काम की गति धीमा करना नियोजकों द्वारा तालाबन्दियां Lo kou s आदि चाहे हडताल सफल हो या विफल किन्तु इनके कारण मालिक और मजदूर के आपसी सम्बन्ध खराब हो जाते हैं इसका सबसे हानिकारक परिणाम उत्पादन की कमी व फलस्वरूप राष्ट्रीय आय का कम हो जाना होता है अत यह अनिवार्य है कि औद्योगिक विवादो के कारणो की जाच की जाए और उनको दूर करने के उपाय सोचे जाय।

औद्योगिक विवादो का प्रवृत्ति (*Trend in Industrial Disputes*)

प्रथम विश्वयुद्ध ने श्रमिकों को अपने अधिकारों के बारे में जाग्रत कर दिया और उन्हे इनके लिए संघर्ष करने के लिए मजबूर कर दिया। उस समय के पश्चात् एक विशाल पैमाने पर औद्योगिक संघर्ष आरम्भ हो गया। 1928 और 1930 के बीच बहुत भारी संख्या मे हडताले हुईं चूकि मजदूर संघ आन्दोलन पर साम्यवादी छा गये थे वे पूजीवादी अर्थव्यवस्था को हडतालो द्वारा तहस नहस करना चाहते थे द्वितीय विश्वयुद्ध मे सरकार ने हड़तालों और तालाबन्दियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया ताकि औद्योगिक उत्पादन पर दुष्प्रभाव न पडे। औद्योगिक विवादों का समझौता एवं अधिनिर्णयन (*Adjudication*) द्वारा हल किया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् औद्योगिक विवादों मे भारी वृद्धि हुई। 1947 मे 1 811 औद्योगिक झगडे हुए जिनसे 18 लाख श्रमिक सम्बन्धित थे। इस प्रकार काम बन्द होने से 16 5 लाख मानव दिनों (mandays) की हानि हुई।

तालिका 1 म स्वतन्त्रतापरान्त काल म औद्योगिक विवादों के आकडे दिए गए है। इस तालिका का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से निम्नलिखित बातों का पता चलता है।

(1) मानव दिनो का बढती हुई हानि की प्रवृत्ति—औद्योगिक विवादों से सम्बन्धित श्रमिको और इनके कारण मानव दिनो की हानि (*Mandays lost*) की एक बढ़ती हुई प्रवृत्ति देखने मे आयी है। 1961 म 49 लाख मानव दिनो की हानि के विरुद्ध 1971 म 165 लाख मानव दिनो की हानि हुई। 1973 74 मे कामतों की तीव्र वृद्धि के कारण परिस्थिति और भी बिगड गयी और 1974 म 402 लाख मानव दिनो की हानि का रिकार्ड कायम हो गया 1975 म आपातकालीन स्थिति की घोषणा के कारण और आन्तरिक सुरक्षा कानून (*Maintenance of Internal Securit Act*) और भारतीय सुरक्षा नियम (Defence of India Rules) के भय के कारण औद्योगिक विवादो मे कमी हुई। किन्तु आपातकालीन स्थिति की समाप्ति के पश्चात् श्रम अशान्ति फिर हो गयी। 1976 म 127 लाख मानव दिनो की हानि के विरुद्ध 1977 मे 253 लाख मानव दिनों की हानि हुई। परिस्थिति 1978 मे कुछ सुधरी परन्तु 1979 म फिर खराब हो गया। 1979 के दौरान हडतालो के कारण 297 लाख मानव दिनो और तालाबन्दियो के कारण केवल 74 लाख मानव दिनो (कुल का 20 प्रतिशत) की हानि हुई। ऐसा लगता था जैसे मजदूर संघो ने युद्ध का रास्ता अपना लिया हो। किन्तु 1980 मे इन्दिरा काग्रेस द्वारा पुन शासन सभालने के पश्चात् नियोजको ने अपनी ताकत दिखानी शुरू कर दी। 1980 म हडतालो के कारण 120 लाख मानव दिनों (कुल का 55 प्रतिशत) और तालाबन्दियो के कारण 99 लाख मानव दिनों (कुल का 45 प्रतिशत) की हानि हुई। लगभग यही परिस्थिति 1981 म बनी रही और 226 लाख मानव दिन औद्योगिक झगडो के कारण बरबाद हो गये। 1982 मे बम्बई टैक्सटाइल हडताल ने स्थिति और बिगाड दी और इस वर्ष के दौरान 746 लाख मानव दिनो की हानि हुई। यह एक नया रिकार्ड है। बम्बई टैक्सटाइल हडताल के कारण कुल रूप म 548 लाख मानव दिनो की हानि हुई जिसमें से 414 लाख मानव दिनों की 1982 मे और 134 लाख मानव दिनों की 1983 म हानि हुई। इस औद्योगिक अशांति

तालिका 1 : हड़ताल और तालाबन्दी मे मानव दिवस हानि तथा सन्निहित श्रमिक

वर्ष	श्रमिक सन्निहित			मानव दिवस हानि			औसत दिन जिनके दौरान एक श्रमिक सन्निहित रहा	
	हड़ताल (हजारो मे)	तालाबन्दी	कुल	हड़ताल (लाखो में)	तालाबन्दी	कुल	हड़ताल मे	तालाबन्दी मे
1961	432	80	512	30	19	49	12	11
	(84)	(16)	(100)	(60)	(40)	(100)		
1971	1,476	169	1,645	118	47	165	8	34
	(91)	(9)	(100)	(71)	(29)	(100)		
1976	550	186	736	28	99	127	5	53
	(75)	(25)	(100)	(22)	(78)	(100)		
1981	1,261	327	1,588	212	154	366	17	47
	(79)	(21)	(100)	(58)	(42)	(100)		
1983	1,167	294	1,461	249	219	468	21	75
	(80)	(20)	(100)	(53)	(47)	(100)		
1985	878	201	1 079	115	177	292	13	88
	(81)	(19)	(100)	(35)	(65)	(100)		
1986	1,444	201	1,645	188	139	327	13	69
	(88)	(12)	(100)	(58)	(42)	(100)		
1987	1,495	275	1,770	140	213	353	9	77
	(84)	(16)	(100)	(40)	(60)	(100)		
1988	937	254	1191	125	214	339	13	84
	(79)	(21)	(100)	(37)	(63)	(100)		
1989	1,158	206	1,364	107	220	327	9	107
	(85)	(15)	(100)	(33)	(67)	(100)		
1990	1,162	146	1,308	106	135	241	9	92
	(89)	(11)	(100)	(44)	(56)	(100)		
1991	872	470	1,342	124	140	264	14	30
	(65)	(35)	(100)	(47)	(53)	(100)		
1992	767	485	1,252	151	161	312	20	33
	(61)	(39)	(100)	(48)	(52)	(100)		
1993	672	282	954	56	147	203	8	52
	(76)	(24)	(100)	(28)	(72)	(100)		

नोट कोष्ठक मे दिए गए आकडे कुल का प्रतिशत हैं।

के लिए निम्नलिखित कारण जिम्मेदार थे-(*i*) ऐसे मजदूर सघ जो आपातकाल के दौरान मजदूरा मे अपनी साख खो बैठे थे हडताला द्वारा इसे पुन प्राप्त करना चाहते थे (*ii*) देश मे विद्यमान राजनीतिक अस्थिरता का प्रभाव मजदूर सघ के नेताओ के दृष्टिकोण पर पडा प्रतिद्वन्द्वी वर्गो ने सरकारो से, जो या तो अस्थिर थीं या निकट भविष्य मे हटने वाली थी, अधिकाधिक रियायत प्राप्त करने की कोशिश की (*iii*) गैर-जिम्मेदार मजदूर सघ नेतृत्व के कारण श्रमिको मे बढती हुई अनुशासनहीनता और (*iv*) नियोजको द्वारा श्रमिको को दण्ड देने के लिए तालाबन्दिया का अधिक बार प्रयोग।

(*ii*) मानव-दिनो की हानि मे तालाबन्दियों का बढ़ता हुआ भाग—तालिका 1 का गहन निरीक्षण करने से यह साफ पता चलता है कि हाल ही के वर्षो मे तालाबन्दी और कुल श्रमिक-दिवसो की सख्या मे किस दर से वृद्धि हो रही है। आपातकाल के वर्षो मे तालाबन्दी की वृद्धि-दर अपनी चरम सीमा पर थी। 1976 के पूरे वर्ष मे हडतालो के कारण 28 लाख मानव-दिवसो की हानि हुई थी जबकि 1975 मे 167 लाख मानव दिवस नष्ट हुए थे। इसमें तालाबन्दी के कारण 1976 मे 99 लाख मानव-दिवसो की हानि हुई। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि एकाधिकारवादियो ने आपातकाल के वर्ष 1976 मे किस

तरह से श्रमिको को दबाया था। बुर्जुआ वर्ग द्वारा तालाबदी श्रमिको को सजा देने का एक रूप है। अत यह एक दिलचस्प अध्ययन होगा कि एक श्रमिक हडताल और तालाबन्दी में किस अनुपात से सन्निहित रहा तथा दोनो मे किस अनुपात से मानव-दिवसो को हानि हुई। तालिका 1 मे दिये हुए आँकडो से स्पष्ट हो जाता है कि 1976 मे एक श्रमिक औसत रूप से 5 दिन हडताल मे सन्निहित था, इसके विपरीत तालाबन्दियो मे 53 दिन की हानि हुई। 1961 से 1978 तक के आकडो का विश्लेषण करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि एक हडताल 8 या 9 दिन से अधिक नहीं टिकी है लेकिन 1973-74 से ही तालाबन्दी के कारण मानव-दिनो को बरबादी मे अधिकाधिक वृद्धि होती चली गयी है। 1975 के वर्ष मे तालाबन्दी की औसत अवधि 26 मानव दिन से लेकर 47 मानव दिन तक रही। 1976 मे यह 53 मानव दिन तक पहुँच गयी। इससे यह स्पष्ट है कि 1976 का वर्ष अधिकारवादियो की कृपा से कारखानादारो के लिए वरदान स्वरूप था। तालाबन्दी के कारण 1976 मे समस्त मानव दिनो के 78 प्रतिशत दिनो को हानि हुई। यह श्रमिक वर्ग के विरुद्ध किये गए अपराध का एक भयकर उदाहरण है। 1985 के दौरान तालाबन्दियों के कारण 65 प्रतिशत और 1989 मे 67 प्रतिशत मानव-दिन बर्बाद हुए। 1992 और 1993 के दौरान भी तालाबन्दियो के कारण 52% और 67% मानव-दिनो की क्रमश हानि हुई। मानव-दिनो की हानि के अपेक्षाकृत अधिक भाग से यह सकेत मिलता है कि जहाँ सरकार औद्योगिक झगडो के लिए मजदूरो को जिम्मेदार ठहराती है, वहाँ पर तालाबन्दियों का भी गहन विश्लेषण करने की आवश्यकता है ताकि श्रम वर्ग के विरुद्ध इनके बार-बार प्रयोग को रोका जा सके।

औद्योगिक विवादो के कारण (Causes of industrial disputes)

औद्योगिक विवादो के कई कारण हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण कारण अधिक मजदूरी की माग है। यह सवमान्य बात है कि भारतीय उद्योगपति मजदूरी देने क सम्बन्ध मे एक उदार नीति नहीं अपना सके। पिछले कुछ वर्षों मे मजदूरी मे वृद्धि कीमतो मे वृद्धि के अनुपात मे नहीं हुई। बहुत स औद्योगिक झगडे अधिक मजदूरी की माग का परिणाम हैं।

बोनस की माग या बोनस बढाने की माग औद्योगिक झगडो का दूसरा कारण है। श्रमिको मे यह चेतना बढ रही है कि उन्हें फर्मों के लाभ मे से अधिक भाग मिलना चाहिए। चूँकि मिल मालिको ने इस बात को स्वीकार नहीं किया है, इसलिए बहुत से औद्योगिक झगडे इसका परिणाम हैं।

बहुत से औद्योगिक झगडो का कारण काम की दशाओ (Working conditions) मे सुधार करना होता है। इनम काम के कम घण्टे, अधिक सुरक्षा के उपाय, कैण्टीन की सुविधाए, छुट्टिया और अवकाश शामिल हैं।

अन्य कारणो मे उल्लेखनीय ये हैं नियोजको द्वारा मजदूर सघो को स्वीकृति न देना, प्रतिनिधित्व के लिए प्रतियोगी मजदूर सघो म सघर्ष, कारखाने मे सुव्यवस्थीकरण *(Rationalisation)* चालू करना, श्रमिको मे छटनी (Retrenchment) का भय, मजदूर सघ के नेताओ को अपमानित करना, आदि। कभी-कभी राजनीतिक कारणो से भी हडताले घोषित की जाती हैं।

1966-71 के दौरान मजदूरी और बोनस (या श्रमिको की आर्थिक मागे) के कारण 46 से 50 प्रतिशत औद्योगिक विवाद हुए। इसके पस्चात् आर्थिक मागो के कारण औद्योगिक झगडो म कमी हुई और आपातकाल के मुख्य वर्ष अथात् 1976 के दौरान यह आकडा गिरकर 37 प्रतिशत हो गया। परन्तु इस काल मे बोनस के कारण अधिक हडताले होने का कारण यह था कि सरकार ने बोनस को उत्पादिता से जोडने की घोषणा की। परिणामत सरकार ने बोनस का एक विलम्बित मजदूरी (Deferred wage) के रूप मे भुगतान करने की पद्धति आपातकाल के दौरान समाप्त कर दी। सरकार ने श्रमिको को आवण्टनीय अतिरिक्त (Allocable Surplus) के वितरण के फारमूले की बहस मे उलझाए रखा परन्तु इस सम्बन्ध मे कोई अन्तिम निर्णय न किया। आपातकाल की समाप्ति क पश्चात् श्रम-वर्ग की आर्थिक मागो पर पुन बल दिया गया। 1978 से 1986 के दौरान मजदूरी और बोनस के कारण 32 से 40 प्रतिशत तक औद्योगिक विवाद हुए।

छटनी छुट्टी और काम के घण्टे 1961 मे कुल औद्योगिक विवादो के 32 प्रतिशत के लिए जिम्मेदार थे। 1971 तक यह आकडा कम होकर 24 प्रतिशत हो गया परन्तु 1976 मे बढकर 33 प्रतिशत हो गया। 1981 से 1986 के दौरान इन कारणो से लगभग 21 से 24 प्रतिशत औद्योगिक झगडे उत्पन्न हुए।

अन्य कारणो ने 22 से 34 प्रतिशत औद्योगिक विवादो को जन्म दिया। 1961-72 के दौरान इनमे उतार-चढाव अवश्य हुआ परन्तु इसके बाद के काल 1978 से 1986 के दौरान 28 से 47 प्रतिशत औद्योगिक विवाद इनके कारण हुए।

2. औद्योगिक विवादों का समाधान
(Settlement of Industrial Disputes)

एक समय था जबकि सरकार पूजीपतियो और मजदूरो के बीच सघर्ष को कानून तथा व्यवस्था (Law and order) की समस्या समझती थी परन्तु यह एक ठीक दृष्टिकोण नहीं था। कारण यह है कि हडतालें एव तालाबन्दिया उत्पादन

और राष्ट्रीय आय पर दुष्प्रभाव डालते हैं और परिणामत अर्थव्यवस्था और उपभोक्ताओ की दृष्टि मे इन्हे सुलझाना आवश्यक है। ब्रिटिश सरकार ने 1929 मे औद्योगिक विवाद अधिनियम पास किया जिसके आधीन प्रबन्धको एव मजदूरा के बीच होने वाले झगडो को औद्योगिक न्यायालयो (Industrial courts) के सामने रखा जा सकता था (किन्तु ये न्यायालय स्थापित न किये गये)। युद्धकाल मे सरकार ने अनिवार्य समझौता या अधिनिर्णयन (Compulsory conciliation and arbitration) द्वारा समस्या का समाधान किया।

1947 का औद्योगिक विवाद अधिनियम (1956 के सशोधन के साथ)

1947 मे भारत सरकार ने औद्योगिक विवाद अधिनियम पास किया जिसके आधीन विवादो को रोकने आर समझौता करने की मशीनरी कायम का गई। 1956 मे इस अधिनियम मे सशोधन किया गया। औद्योगिक शाति स्थापित करने आर औद्योगिक विवाद हल करने की वर्तमान मशीनरी के मुख्य अग निम्नलिखित है–

(i) कार्य समितिया (Works Committees)—नियाजको और नियोजिता क बाच अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कार्य समितिया कायम की गयी है। इनका उद्देश्य मजदूरो एव नियोजको के बीच दैनिक जीवन म उत्पन्न होने वाले छाट मोटे झगडो को हल करना है। सरकार ऐसे औद्योगिक प्रतिष्ठानो (Industrial establishments) को जिनमे 100 से अधिक व्यक्ति काम करते हैं इन कार्य समितियो को स्थापित करने का निर्देश दे सकती है। जून 1987 क अन्त तक केन्द्र सरकार के 560 उद्यमो मे कार्य समितिया काम कर रहा था।

***(ii) समझौता अधिकारी* (Conciliation officers)**—सरकार विशष प्रदेशो एव उद्योगा क लिए समझौता अधिकारा नियुक्त करता है। औद्योगिक झगडा उत्पन्न हाने की हालत म समझौता अधिकारा का यह कर्त्तव्य है कि वह दोना दला मे बातचात आरम्भ कराकर समझौता करा दे। यदि वह इस कार्य म विफल हो जाए, तो वह इस बार मे सरकार को रिपाट भेज दे जिसम अपनी विफलता के कारण और समझोते के लिए किए गए उपाया का वर्णन होना चाहिए।

(iii) समझौता वोर्ड (Board of conciliation)—सरकार समझौता वार्ड नियुक्त कर सकती हे जिसमे एक अध्यक्ष (काई स्वतन्त्र व्यक्ति) और दो या चार व्यक्ति जो नियोजका ओर श्रमिको के प्रतिनिधि हा शामिल होगे। समझोता वार्ड उस औद्योगिक विवाद की छानबान करेगा जो उसे सरकार द्वारा सोपा गया हा। वार्ड को सरकार को अपनी सफलता या विफलता की रिपोर्ट भेजनी होगी।

(iv) जाच न्यायलय (Court of enquiry)—जब कोई औद्योगिक विवाद समझौता अधिकारी या समझौता बोर्ड द्वारा सुलझाया न जा सके ता मामला जाच न्यायालय को सोप दिया जाता है। न्यायालय एक या अधिक स्वतन्त्र व्यक्तियो पर आधारित हो सकता है। न्यायालय छानबीन करने के पश्चात् अपना रिपोर्ट सरकार को भेज देता है जो अधिनिर्णयन (Adjudication) क लिए औद्योगिक न्यायाधिकरण (Industrial tribunal) का सोप देता है।

(v) श्रम न्यायालय (Labour courts)—राज्यीय सरकारा द्वारा नियाजको के विवादास्पद आदेशा प्रबन्धको द्वारा निलम्बित और पदच्युत (Suspended and dismissed) किए गए कर्मचारियो हडतालो और तालाबन्दिया के कानूनी या गैर कानूनी होने के बार मे निर्णय करने क लिए श्रम न्यायालय स्थापित किए गए हैं। श्रम न्यायालय इन मामला के बार मे शीघ्र निर्णय कर सरकार को रिपोर्ट भेज देते हे।

(vi) औद्योगिक न्यायाधिकरण (Industrial tribunals)—दो प्रकार क औद्योगिक न्यायाधिकरण *कायम किए गए है–राज्यीय न्यायाधिकरण (State* tribunals) और राष्ट्रीय न्यायाधिकरण (National tribunals)। राज्याय सरकार मजदूरी बानस लाभ सहभाजन (Profit sharing) आदि से सम्बन्धित मामला मे से एक से अधिक न्यायाधिकरण कायम कर सकती है। राज्यीय न्यायाधिकरण म उच्च न्यायाधीश स्तर का व्यक्ति लगाया जाता है। राष्ट्रीय न्यायाधिकरण की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती है। इसे ऐसे मामले सौंपे जाते हैं जो या ता राष्ट्रीय महत्त्व रखते हा या जो ऐसे औद्योगिक प्रतिष्ठानो (Industrial establishments) से *सम्बन्धित* हा जा एक से अधिक राज्यो मे स्थित होते हैं। राज्यीय एव राष्ट्रीय न्यायाधिकरण के फैसलो को दोनो पक्षो को मानना पडता है।

मझौतातन्त्र के अतिरिक्त इस कार्य के लिए पिछले कुछ वर्षों मे दो और व्यवहार (Practices) भी लाकप्रिय हो गए हैं।

साझी प्रबन्ध परिषद् (Joint Management Council)—सरकार यह महसूस करती है कि श्रमिका को प्रबन्ध कार्य से जोडना चाहिए और इसलिए यह सभी उद्यागा म साझा प्रबन्ध परिषदा की स्थापना का सिफारिश करती है। इन परिषदा द्वारा श्रमिको को प्रबन्ध सम्बन्धी समस्याआ की जानकारी प्राप्त हागी वे कुछ हद तक प्रबन्धका की कठिनाइया से भी परिचित हो सकेगे और परिणामत प्रबन्ध और श्रम मे अच्छे सम्बन्ध स्थापित हा

सकेंगे। जहाँ कहीं भी साझी प्रबन्ध परिषदें स्थापित की गई हैं इससे औद्योगिक सम्बन्ध अच्छे हो गए हैं, एक सन्तुष्ट श्रम शक्ति का विकास हुआ है, व्यर्थ व्यय में कमी हुई है, उत्पादिता (Productivity) बढ़ी है और लाभ की मात्रा उन्नत हुई है। श्रमिक सभी राष्ट्रीयकृत बैंकों के निदेशक मण्डल (Board of directors) पर भी कार्य करते हैं। सरकार ने अक्टूबर 1975 में एक प्रस्ताव द्वारा श्रमिक सहभागिता की एक और योजना 1977 में सार्वजनिक क्षेत्र के ऐसे प्रतिष्ठानों में लागू की जिनमें कम से कम 100 श्रमिक कार्य करते हैं। सितम्बर 1994 तक यह योजना 236 सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में लागू की जा चुकी है।

अनुशासन संहिता (Code of discipline)—1958 में भारतीय श्रम सम्मेलन ने उद्योग के लिए एक अनुशासन संहिता तैयार की। इस संहिता को राष्ट्रीय मजदूर संघों का समर्थन प्राप्त हो गया और इसे नियोजकों की विभिन्न संस्थाओं ने भी स्वीकार कर लिया। अनुशासन संहिता के अनुसार नियोजकों और श्रमिकों ने अपनी इच्छा से यह मान लिया कि वे कारखाने में आपसी विश्वास और सहकारिता का वातावरण कायम करेंगे और अपने सभी विवादों और शिकायतों को आपसी बातचीत, समझौते और स्वैच्छिक मध्यस्थ निर्णय (Voluntary arbitration) द्वारा हल करेंगे और सीधी कार्यवाही करने से परहेज करेंगे। अनुशासन संहिता द्वारा

(क) हड़तालों और तालाबन्दियों को उचित अधिसूचना (Notice) के बिना घोषित नहीं किया जा सकता (ख) विभिन्न दलों को बिना एक दूसरे से परामर्श किए कोई एकतरफा कार्य नहीं करना चाहिए, (ग) न तो श्रम को धीमा करने के उपायों का प्रयोग होना चाहिए, न ही जानबूझ कर संयंत्र (Plant) या सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाना चाहिए, न ही हिंसक क्रियाओं का प्रयोग करना चाहिए, न धमकाना एवं बल प्रयोग करना चाहिए, आदि (घ) विवादों को हल करने की वर्तमान मशीनरी का इस्तेमाल करना चाहिए और उसके द्वारा किए गए फैसलों और समझौतों को एकदम लागू करना चाहिए

अनुशासन संहिता को 190 नियोजकों और 115 ऐसे मजदूर संघों द्वारा स्वीकार किया गया है जो किसी केन्द्रीय नियोजक या श्रम संघ के सदस्य नहीं हैं, यह संहिता सरकारी क्षेत्र के उन उद्यमों पर लागू होती है जो कम्पनियों या निगमों के रूप में चलाए जा रहे हैं।

औद्योगिक विश्रान्ति (Industrial Truce)—1962 में नियोजकों एवं श्रमिकों की केन्द्रीय संस्थाओं की एक संयुक्त बैठक में एक औद्योगिक विश्रान्ति प्रस्ताव पास किया गया जिसके अनुसार आपातकालीन स्थिति में उत्पादन कार्य में विघ्न न डालने, उत्पादन में कमी न लाने का निश्चय किया गया। इसके विरुद्ध उत्पादन को अधिकतम करने और प्रतिरक्षा प्रयासों को हर सम्भव उपाय से प्रोत्साहित करने का संकल्प किया गया। 1988-89 की अवधि के दौरान *19,774 औद्योगिक विवादों में से 8,478 (अर्थात् 42.5 प्रतिशत) को स्वैच्छिक मध्यस्थता द्वारा हल किया गया और 3,501 (अर्थात् 31 प्रतिशत) को सरकारी हस्तक्षेप द्वारा।* लगभग 22 प्रतिशत मामलों को मध्यस्थता के योग्य नहीं समझा गया।

राष्ट्रीय मध्यस्थता प्रोन्नति बोर्ड (National Arbitration Promotion Board)—औद्योगिक झगड़ों को स्वैच्छिक मध्यस्थता द्वारा सुलझाने के लिए इस बोर्ड की स्थापना जुलाई 1967 में की गई। बोर्ड में नियोजकों एवं श्रमिकों की संस्थाओं, सरकारी उद्यमों और केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के प्रतिनिधि सम्मिलित हैं। अतः इस बोर्ड के माध्यम से स्वैच्छिक मध्यस्थता की पद्धति द्वारा *औद्योगिक विवादों को हल करने के उपाय को प्रोन्नत किया जाता है।*

3. भारत में सामाजिक सुरक्षा के उपाय
(Social Security Measures in India)

किसी भी औद्योगिक अर्थव्यवस्था में व्यापारिक उच्चावचनों (Business fluctuations) के कारण बेरोजगारी की मात्रा बढ़ती घटती रहती है। इस प्रकार श्रमिकों को बीमारी, औद्योगिक दुर्घटना और वृद्धावस्था में आर्थिक सहायता चाहिए, श्रमिकों के पास पूंजीपतियों की भाँति कोई संचित सम्पत्ति तो नहीं होती, जिसका वे इन कठिनाइयों के समय प्रयोग कर सकें। स्वाभाविकतः राज्य सरकार का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि श्रमिकों को इन विपत्तियों के विरुद्ध सामाजिक सुरक्षा दे। पाश्चात्य देशों में राज्य सरकारों ने बीमारी तथा बेरोजगारी के विरुद्ध सुरक्षा और वृद्धावस्था में दुर्घटनाओं की हालत में कुछ सहायता देने के कुछ उपाय किए हैं। सामूहिक रूप से इन सभी उपायों को सामाजिक सुरक्षा (Social security) उपाय कहते हैं।

भारत में सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता

जहाँ बहुत से देशों में कई दशाब्दियों पहले सामाजिक सुरक्षा के उपाय लागू किए जा चुके थे, भारत में स्वतन्त्रता के बाद इस ओर ठीक तरह से ध्यान दिया गया। इसका कारण एक ओर तो श्रम कल्याण क्रियाओं (Labour welfare activities) में राज्य सरकार की रुचि और सहानुभूति का अभाव था परन्तु दूसरी ओर मजदूर संघों द्वारा इन उपायों के लिए अपनी माँगों पर बल देने का अभाव था। किन्तु सत्य तो यह है कि मजदूरी और वेतन प्राप्त करने वाले वर्गों में सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता को सदैव महसूस किया गया।

स्वतन्त्रता से पूर्व सामाजिक सुरक्षा

1923 मे भारत में कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम (Workmen s Compensation Act) पास किया गया जिसके अनुसार औद्योगिक दुर्घटना या चोट लगने की हालत मे श्रमिको को क्षतिपूर्ति उपलब्ध कराई गई। इस अधिनियम के आधीन नियोजको को क्षतिपूर्ति अदा करनी है और क्षतिपूर्ति की राशि चोट की प्रकृति और श्रमिक के वेतन पर निर्भर करती है। ऐसी चोट जिसमे श्रमिक की मौत हो जाए, क्षतिपूर्ति को दर 20 000 रुपए और 1 14 000 रुपए के बीच निश्चित की गई। पूर्णतया स्थायी अगहानि (Permanent disablement) की हालत मे क्षतिपूर्ति की दर 24 000 रुपए से लेकर 70 000 रुपए तक निश्चित की गई। आशिक अगहानि (Partial disablement) की हालत मे मजदूरी का 50 प्रतिशत क्षतिपूर्ति के रूप मे 5 वर्ष की *अधिकतम अवधि के लिए अदा किया जाता हैं। इस कानून* के बारे मे मजदूरी की कोई सीमा नही है। किन्तु यह कानून उन व्यक्तियो पर लागू नही होता जो कर्मचारी बीमा *अधिनियम (1948) के आधीन आते हैं।*

स्वतन्त्रता के बाद–कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948

1948 मे कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम (Employees State Insurance Act) पास किया गया जिसका उद्देश्य श्रमिको को अनिवार्य एव योगदत्त स्वास्थ्य बीमा सेवा उपलब्ध कराना था। सबसे पहले तो इस कानून को उन बारहमासी कारखानो पर लागू किया गया जो यात्रिक सचालन शक्ति (Mechanical power) का प्रयोग करते हो और जिनमे 20 या 20 से अधिक व्यक्ति काम करते हो। यह कानून उन मजदूरी प्राप्तकर्त्ताओ (Wage earners) या कम वेतन पाने वाले क्लर्कों एव प्रशासनिक कर्मचारियो पर लागू होता है जिनकी आय 3 000 रुपये से कम है। यह योजना अनिवार्य है क्योकि इसके आधीन सभी श्रमिको को बीमा करवाने के लिए बाध्य कर दिया जाता है और यह योगदत्त (Contributory) है क्योकि इसका वित्त प्रबन्ध नियोजको एव नियोजितो (Employers and Employees) दोनो के योगदान द्वारा किया जाता है।

वित्त प्रबन्ध एव योगदान (Finances and Contributions)—1948 के अधिनियम के अनुसार कर्मचारी राज्य बीमा निधि (*Employees State* Insurance Fund) कायम की गई। इस निधि मे नियोजक मजदूरी का 4% और श्रमिक मजदूरी का 1 5% योगदान देते हैं। चिकित्सा पर व्यय मे राज्याय सरकारो का भाग 12 5 प्रतिशत तक है। नियोजक नियोजिता योगदान के अतिरिक्त केन्द्र एव राज्यीय सरकार भी इस योजना को चलाने मे योगदान देती है।

श्रमिको को लाभ (Benefits to Workers)

इस योजना मे श्रमिको और उनके परिवारो को पाच प्रकार से लाभ उपलब्ध कराए जाते हैं। वे हैं–

(1) बीमारी सम्बन्धी लाभ (Sickness benefit)—किसी भी बीमा किए हुए श्रमिक को बीमारी सर्टिफिकेट के आधार पर उपलब्ध होता है। किसी एक वर्ष मे लगातार *बीमारी के लिए यह लाभ 91 दिन के अधिकतम समय के* लिए नकद भुगतान के रूप मे उपलब्ध होता है। दैनिक बीमारी सम्बन्धी लाभ की मात्रा औसत दैनिक मजदूरी के आधे के बराबर है। जिस बीमा हुए श्रमिक को बीमारी *सम्बन्धी लाभ होगा* उसकी चिकित्सा किसी डिस्पेन्सरी या निगम के आधीन कार्य कर रही किसी चिकित्सा सस्था द्वारा होनी चाहिए।

(2) चिकित्सा सुविधा (Medical benefit)—उन श्रमिको को उपलब्ध होगी जो बीमारी सम्बन्धी लाभ या प्रसूति और अगहानि लाभ (Disablement benefit) के लिए प्रार्थना करें। बीमारी चोट या प्रसूति अवस्था मे इसका अर्थ मुफ्त चिकित्सा उपलब्ध कराना होगा। यह चिकित्सा बीमा हुए श्रमिक के समस्त परिवार के लिए उपलब्ध होगी। पिछले कुछ वर्षो मे निगम द्वारा कुछ ऐसे श्रमिको को भी जो क्षय रोग केन्सर कुष्ठ (Leprosy) और मानसिक रोगो से ग्रस्त हैं सुविधा देने का प्रयास भी किया गया है। इसके अतिरिक्त कृत्रिम अग (Artificial limbs) और दाँत भी लगाए जाते है।

(3) प्रसूति सुविधा (Maternity benefit) के आधीन बीमा की हुई स्त्री को नकद राशि के रूप मे औसत दैनिक मजदूरी की पूरी राशि 12 सप्ताहो के लिए दी जाती है।

(4) अगहानि सुविधा (Disablement benefit)—किसी श्रमिक को औद्योगिक दुर्घटना या चोट की हालत मे दी जाती है। *अगहानि लाभ क्षति की मात्रा पर निर्भर है।* अस्थायी अगहानि मे श्रमिक को मजदूरी का 70 प्रतिशत अगहानि काल मे वेतन दिया जाता है। स्थायी आशिक अगहानि मे श्रमिक को जीवन भर के लिए पूर्ण दर (Full rate) पर क्षतिपूर्ति मिलती है। स्थायी पूर्ण हानि (Permanent total disablement) की स्थिति मे श्रमिक को जीवन भर मजदूरी के 70 प्रतिशत तक मासिक पेशन दी जाती है।

(5) आश्रिता को लाभ (Dependants' benefit)—उस श्रमिक के आश्रिता को प्राप्त होगा जिसकी औद्योगिक दुर्घटना या चोट के कारण मृत्यु हो जाए। इसकी मात्रा मृतक और उसके आश्रितो मे आपसी सम्बन्ध पर निर्भर करती है। मृतक की विधवा को अपने जीवन भर के लिए या शादी करने तक पूर्ण दर का 60 प्रतिशत भाग

क्षतिपूर्ति मिलेगी। प्रत्येक आश्रित पुत्र को 15 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक और प्रत्येक आश्रित पुत्री को 15 वर्ष की आयु तक या विवाह तक (जो भी पहले हो) पूर्ण दर की 40 प्रतिशत क्षतिपूति मिलेगी।

सामाजिक सुरक्षा योजना की प्रगति—कर्मचारी राज्य बीमा निगम अक्टूबर, 1984 मे चालू किया गया। 31 दिसम्बर 1994 तक इस योजना के आधीन 120 अस्पताल थे जिनमे 20,925 बिस्तर थे। इसके अतिरिक्त 67 लाख कर्मचारी इससे लाभ उठा रहे हैं। इस निगम द्वारा 1993-94 में विभिन्न लाभो के रूप मे 337 करोड रुपये वितरित किए गए।

यह कहना ठीक है कि कर्मचारी राज्य बीमा योजना अभी सगठित उद्योगो तक ही सीमित है ओर इसमे व्यापक रूप मे कई ओर लाभ जैसे बेरोजगारी अनुदान, वृद्धावस्था पैंशन शामिल नहीं किए गए। किन्तु यह योजना सामाजिक सुरक्षा की ओर पहला कदम है और धीर-धीर इसे एक व्यापक योजना बनाना होगा।

अन्य प्रकार की सामाजिक सुरक्षा योजनाए

इस योजना के अतिरिक्त अन्य प्रकार की भी योजनाए हैं-जैसे वृद्धावस्था पूर्वोपायी कोष अधिनियम (*Provident Fund Act*) और प्रसूति योजनाए। 1952 मे कर्मचारी पूर्वोपायी कोष अधिनियम पास किया गया जो छ उद्योगो में उन कारखानो पर लागू किया गया जिनमे 50 या इससे अधिक श्रमिक काम करते हैं। इस योजना का विस्तार उन सभी श्रमिको के लिए किया गया जो 5,000 रुपये तक वेतन प्राप्त करते थे। मार्च 1994 के अन्त तक यह 180 उद्योगो पर लागू किया गया और सभी कारखाने जिनमे 20 या 20 से अधिक व्यक्ति काम करते हैं, इसके आधीन लाए गए। प्रत्येक नियोजित एव नियोजक श्रमिक की कुल मजदूरी का 8 33 प्रतिशत योगदान करता है। केन्द्र सरकार ने 1 जून 1989 से पूर्वोपायी योगदान की दर 8 33 प्रतिशत से बढाकर 10 प्रतिशत कर दी है। यह योजना अनिवार्य एव योगदत्त है। मार्च 1993 के अन्त तक पूर्वोपायी कोष मे कुल रूप मे 35,819 करोड रुपए प्राप्त हुए।

इस योजना के आधीन प्रत्येक श्रमिक *अपनी मजदूरी* का 8 प्रतिशत योगदान देता है और उतना ही तुल्य योगदान *(Matching contribution) नियोजको द्वारा दिया जाता है।* इस योजना के आधीन जो श्रमिक निश्चित दिनो को एक अवधि के लिए हाजिर रहते हैं उन्हे बोनस तिमाही मे एक बार दिया जाता है और यह उनकी मूल मजदूरी का 10 प्रतिशत होता है।

भारत सरकार ने 1972 में ग्रेचुटी भुगतान *अधिनियम* (Payment of Gratuity Act) भी पास कर दिया जिसके आधीन कारखानो, खानो, तेल क्षेत्रो, बागान बन्दरगाहो, रेलवे कम्पनियो दुकानो या अन्य प्रतिष्ठानो मे काम करने वाले कमचारियो को प्रत्येक वर्ष के पूर्ण सेवाकाल के लिए 15 दिन की मजदूरी ग्रेचुटी के रूप मे मिल सकती है परन्तु ग्रेचुटी की अधिकतम सीमा 1 00 000 रुपये रखा गयी है।

1 मार्च 1971 से सरकार ने दो परिवार पेन्शन योजनाए (Family pension schemes) भी चालू की हैं-कोयला खाना की पेन्शन योजना ओर कमचारी परिवार पेन्शन योजना। इन दोनो परिवार पेन्शन योजनाओ का उद्देश्य किसी कमचारी की अपरिपक्व मृत्यु (Premature death) हो जाने की अवस्था मे उसके परिवार को दीघकालीन वित्तीय सुरक्षा प्रदान करना है। इन योजनाओ के वित्त-प्रबन्ध क लिए नियोजक एव नियोजिता द्वारा पूर्वोपायी कोष मे डाली गयी राशि के कुछ भाग का प्रयोग किया जाता है और इसके अतिरिक्त राशि केन्द्र सरकार द्वारा जुटायी जाती है। मार्च 1994 तक 150 लाख कमचारी परिवार पेशन योजना के आधीन लाए गए।

प्रसूति लाभ के सम्बन्ध मे सभी राज्यो म विधान पास कर दिया गया है। प्रसूति लाभ अधिनियम 1961 *(Maternity Benefit Act) द्वारा प्रसूति सुरक्षा समान रूप मे उपलब्ध करायी जाएगी। यह अधिनियम उन सभी कारखानो और बागानो पर लागू होगा जिन पर कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम लागू नहीं होता।*

सामाजिक सुरक्षा के उपायो की समीक्षा क आधार पर यह कहा जा सकता है कि सामाजिक सुरक्षा के उपाय श्रमिक को बुरे स्वास्थ्य दुघटना और वृद्धावस्था मे काफी हद तक सहायता देत हैं। चाहे भारत मे ये उपाय देर से लागू किए गए—अधिकतर स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात्—फिर भी इनसे श्रमिको को व्यापक सामाजिक सुरक्षा प्राप्त होती है।

परन्तु अभी भारत मे बेरोजगारी के विरुद्ध सुरक्षा की कोई योजना नहीं है। पश्चिम के देशो मे भी बेरोजगारी बीमा (Unemployment insurance) को कार्यान्वित करना बहुत कठिन है और भारत जैसे देश में जहाँ बेरोजगारी बढ रही है यह लगभग असम्भव है। परन्तु ऐसा कोई-न-कोई उपाय तो करना ही होगा। इस सम्बन्ध मे महाराष्ट्र सरकार द्वारा चलायी गया रोजगार गारण्टी योजना विशेष रूप म उल्लेखनीय है। अन्य राज्यो को इसका अनुसरण करना चाहिए। बेरोजगारी एक अभिशाप है और देश की निधनता का मुख्य कारण है। बेरोजगारी लाभ की व्यवस्था के पश्चात् ही हम यह गर्व से कह सकते हैं कि भारत मे श्रमिको के लिए एक अच्छी सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था विद्यमान है।

43

कृषि श्रम
(AGRICULTURAL LABOUR)

1 भारत मे कृषि श्रम की वर्तमान स्थिति

कृषि श्रम जोकि मुख्यत आर्थिक एव सामाजिक दृष्टि से पिछडे वर्गों द्वारा उपलब्ध कराया जाता है को चार वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है–

(क) जमीदारो से बधे हुए भूमिहीन श्रमिक (Landless laburers)

(ख) व्यक्तिगत रूप मे स्वतन्त्र किन्तु पूर्णत औरो के लिए काम करने वाले भूमिहीन श्रमिक

(ग) छोटे किसान जिनके आधीन अत्यन्त छोटे छोटे खेत हैं वे अपना अधिकाश समय औरो के लिए काम करने मे लगाते है और

(घ) वे किसान जो आर्थिक दृष्टि से पयाप्त जोतो के स्वामी है किन्तु जिनके एक दो लडके या आश्रित अन्य समृद्ध किसानो के यहाँ काम करते हैं।

इनमे प्रथम वर्ग के श्रमिको की स्थिति बहुत कुछ दासो या गुलामो की सी है। इन्हे बन्धुआ श्रम (Bonded labour) भी कहते है। इन्हे आमतौर पर मजदूरी पैसे के रूप मे नही वस्तु के रूप मे मिलती है। इन्हे अपने मालिको के लिए काम करना पडता है। वे अपने स्वामी की नौकरी छोडकर अन्य स्वामी के आधीन काम करने के लिए स्वतन्त्र नही होते। इन्हे बेगार भी करनी पडती है। कभी कभी इन्हे अपने स्वामियो को नकद धन और मुर्गे बकरियाँ आदि भी भेट करने पडते हैं। उपर्युक्त वर्गों मे दूसरे और तीसरे वर्ग के श्रमिको का काफी महत्त्व है। भूमिहीन श्रमिको की समस्या सर्वाधिक विकट समस्या है।

कृषि श्रम का परिमाण (Magnitude of agricultural labour)

ग्राम श्रमिको की सख्या आय और जीवन मान (Standard of living) आदि के विषय मे सही सही आकडे उपलब्ध नही है। किन्तु समितियो और आयोगो की रिपोर्टों के रूप मे थोडी बहुत जानकारी उपलब्ध है। 1960 मे प्रकाशित द्वितीय कृषि श्रम जाच (Second Agricultural Labour Enquiry) की रिपोर्ट के अनुसार कुल ग्राम परिवारो मे कृषि श्रमिक परिवार लगभग 25 प्रतिशत थे। इस जाच के अनुसार ग्राम श्रमिको मे से 85 प्रतिशत अनियत श्रमिक (Casual labourers) थे जो किसी भी किसान के यहाँ काम कर सकते थे। केवल 15 प्रतिशत श्रमिक विशेष भू स्वामियो के यहा नियत श्रमिक के रूप मे काम करते थे आधे से अधिक श्रमिको के पास बहुत थोडी सी भूमि थी ऐसे श्रमिको की सख्या वस्तुत बहुत कम थी जिनके पास आर्थिक दृष्टि से लाभकर जोत (Economic holding) थी पर जो श्रम के फालतू होने के कारण दूसर लोगो के यहाँ काम करते थे।

कृषि मजदूरो की भारी सख्या अनुसूचित जातियो जनजातियो एव अन्य पिछडे वर्गों से है। एक अनुमान के अनुसार कुल कृषि मजदूरो का 75 से 80 प्रतिशत अनुसूचित जातियो से सम्बन्धित है।

ग्रामीण श्रम के राष्ट्रीय आयोग (1991) के अनुसार 1987–88 के दौरान कुल 1 084 लाख ग्राम परिवारो मे 430 लाख परिवार ग्रामीण श्रम परिवार थे और इनमे 333 लाख परिवार कृषि श्रम परिवार थे। सापेक्ष रूप मे कुल ग्रामीण परिवारो मे ग्रामीण श्रम परिवारो का अनुपात 39 7 प्रतिशत और कृषि श्रम परिवारो का 30 7 प्रतिशत था। इसका अर्थ यह है कि कृषि श्रम परिवारो की मात्रा 1987–88 म कुल ग्रामीण श्रम परिवारो के 77 प्रतिशत के बराबर थी।

1981 की जनगणना के आकडो से पता चलता है कि कृषि श्रमिको की सख्या 644 लाख है। देश मे कुल श्रमिको (मुख्य एव सीमान्त) की सख्या 2 246 लाख थी और इस प्रकार कृषि श्रमिक कुल श्रम शक्ति का 26 3 प्रतिशत थे। 1961 मे कृषि श्रमिको की सख्या केवल 310 लाख थी। इससे जाहिर है कि कृषि श्रमिको की सख्या मे तीव्र वृद्धि हुई है। ग्रामीण श्रम पर राष्ट्रीय आयोग ने उल्लेख किया है सत्तर और अस्सी के दशको के दौरान ग्रामीण जनसख्या म 2 प्रतिशत और 1 5 प्रतिशत की क्रमश वृद्धि हुई है। किन्तु तदनुरूप दशको मे कृषि श्रमिको की सख्या

में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि हुई जो क्रमश 4 1 प्रतिशत और 3 0 प्रतिशत प्रति वर्ष थी।''

इसका अर्थ यह है कि सीमान्त किसान (Marginal farmer) भूमिहीन श्रमिको की मात्रा को बढाते रहे हैं। पुराने ऋणो के रूप में बढती हुई आर्थिक मजबूरियो के कारण अपनी भूमि बेचने के लिए बाध्य हो जाते हैं। इससे इस बात को पुष्टि होती है कि सिचाई ट्यूबवैल, उर्वरको या सडको के रूप मे विनियोग मे लगाए गए करोडो रुपयो का लाभ बडे किसानो को हुआ है। इसका यह भी अर्थ है कि सहकारी समितियो एव ग्रामीण बैंको ने भी समृद्ध जमींदारो की ही सहायता की है।

ग्रामीण-श्रम के राष्ट्रीय आयोग का एक अन्य जाच-परिणाम यह है कि जहा 1987-88 के दौरान कृषि-श्रम-परिवारो में पुरुषो और स्त्रियो द्वारा कृषि-भृति-रोजगार के रूप में प्रतिवर्ष औसत काम किए गए दिन क्रमश 230 दिन और 184 दिन थे, इसके विरुद्ध 1983 मे तदनुरूप आकडे (चौथी ग्रामीण श्रम जाच) क्रमश 159 दिन और 136 दिन थे। रोजगार के दिनो मे गिरावट का कृषि-श्रम-परिवारो की आय एव ऋण परिस्थितियो पर दुष्प्रभाव ही हुआ है।

यह भी देखा गया है कि कुल श्रम-शक्ति मे भृति-श्रम का अनुपात जो 1972-73 मे 34 1 प्रतिशत था बढकर 1987-88 के दौरान 41 4 प्रतिशत हो गया। इसी अवधि के दौरान, कुल भृति श्रम मे अनियत भृति-श्रम (Casual wage labous) का अनुपात जो 1972-73 मे 64 8% था बढकर 1987-88 में 75 8% हो गया। कृषि श्रम के अनियतीकरण (Casualisation) की बढती हुई प्रवृत्ति की व्याख्या करते हुए, ग्रामीण श्रम पर राष्ट्रीय आयोग ने साफ शब्दो मे उल्लेख किया है ''कृषि मे तकनालाजीय परिवर्तन, छोटे किसानो का सीमान्तीकरण (Marginalisation) पारम्परिक कुटीर उद्योगो की समाप्ति स्फीति आदि कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण कारणतत्त्व हैं जो देश के विभिन्न क्षेत्रो मे अलग-अलग रूप मे क्रियाशील हो रहे हैं और इनके परिणामस्वरूप कृषि-श्रमिको की सख्या बदस्तूर बढती जा रही है।''

भू-वितरण के औपचारिक आकडो से पता चलता है कि ग्रामीण परिवारो के पास या तो भूमि है ही नहीं या उनके पास एक हैक्टेयर से कम भूमि के अलाभकर टुकड हैं। कुल मिलाकर 61 प्रतिशत परिवारो के पास कृषि आधीन क्षेत्रफल का कवल 8 प्रतिशत है। इनमे से 22 प्रतिशत परिवार ऐसे हैं जिनके पास कोई भूमि नहीं। अन्य 25 प्रतिशत के पास आधे हैक्टेयर (या 1 2 एकड) से कम भूमि है। अत ये सीमान्त किसान भूमिहीन किसानो की फौज मे भरती होन चले जाते हैं। चूकि ये निर्धनता रखा (Poverty line) की सीमा पर रहते हैं, ये धीरे-धीरे इसके नीचे खिसकते जाते हैं।

कृषि श्रमिको की मजदूरी और आय

कृषि श्रमिको को दी गयी मजदूरी के आकडो से पता चलता है कि देश के कुछ भागो जैसे केरल पजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश को छोड कृषि श्रमिको को अधिसूचित न्यूनतम मजदूरी (Notified minimum Wage) प्राप्त नहीं होती। इन राज्यो मे भी स्त्रियो को अधिसूचित न्यूनतम मजदूरी के अनुसार मजदूरी नहीं दी जाती। जहा पर कृषि-श्रम सगठित और जागरूक हो गया है वहा मजदूरी न्यूनतम मजदूरी के करीब पहुच गयी है। जहा पर कृषि-श्रमिक असगठित हैं और परिणामत उनकी सौदाशक्ति कमजोर है वहा वास्तविक मजदूरी और सरकार द्वारा निश्चित मजदूरी के बीच अन्तर काफी ज्यादा है।

इसके बावजूद सभी राज्यो मे बिना किसी अपवाद के 1970-71 से 1988-89 के दौरान वास्तविक मजदूरी मे वृद्धि हुई है। अधिकतर राज्यो म सत्तर के दशक की तुलना मे अस्सी के दशक मे वास्तविक मजदूरी म काफी अधिक वृद्धि रिकाड की गयी है।

दो और प्रवृत्तिया भी सुव्यक्त हुइ हैं। पहली वास्तविक मजदूरी म क्षेत्रीय असमानताओ मे गिरावट आई है। दूसरी, पिछले कुछ वर्षो के दौरान पुरुष एव स्त्री कृषि-श्रमिक को दी जाने वाली मजदूरी के बीच अन्तर भी कम हुए हैं। इस सम्बन्ध मे ग्रामीण श्रम के राष्ट्रीय आयाग ने उल्लेख किया है ' ग्रामीण रोजगार और वनरोपण प्रोग्रामो का कार्यान्वयन (जिनम न्यूनतम मजदूरी निश्चित की जाती है और जो गरीब ग्रामीण महिलाओ को रोजगार सम्बन्धी आवश्यकताओ को पूरा करती हैं), न्यूनतम मजदूरी मे समय-समय पर सशोधन और समान काम के लिए समान मजदूरी की अधिसूचना नयी तकनालाजी द्वारा प्राप्त की गयी उत्पादिता मे वृद्धि और सामान्य जागरूकता का विकास ऐसे कारणतत्व हैं जिन्होने कृषि-क्षेत्र मे ग्रामीण महिलाओ की वास्तविक मजदूरी मे अधिक वृद्धि करने मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।''

कृषि-श्रम-परिवारो की रहन-सहन की दशा दयनीय है। 100 रुपये से कम प्रति व्यक्ति मासिक व्यय वाले श्रम-परिवारो का अनुपात लगभग 70% है जिससे साफ पता चलता है कि कृषि-श्रमिको की सख्या का बहुत बडा बहुसख्यक भाग निर्धनता रखा के नीचे है।

2. कृषि श्रमिकों की हीन आर्थिक दशा के कारण

कृषि श्रमिको की दयनीय आर्थिक स्थिति के अनेक कारण हैं। उनकी कम मजदूरी और हीन आर्थिक स्थिति के कारणो मे प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं-

(1) निम्न सामाजिक स्थिति-अधिकाश कृषि-

श्रमिक युग-युग से उपेक्षित एव दलित जातियो के सदस्य हैं। निम्न और दलित जातियो के लोग सामाजिक दृष्टि से बधे एव घुटे हुए हैं। उनमे कभी भी दबग बनने का साहस नहीं रहा। उनकी स्थिति निरीह-मूक पशुओ की सी रही है।

(2) असगठित–कृषि श्रमिक अनपढ और अजागरूक हैं। वे गावो मे बिखरे हुए असगठित रूप से रहते हैं। वे अपने को सघो के रूप मे सगठित नहीं कर पाए हैं। इनके विपरीत शहरो मे श्रमिक अपने को सगठित करन मे सफल हो सक हैं। नगरो मे राजनीतिक दल भी श्रम-सघो (Labour unions) की गतिविधियो मे रुचि लेते हैं। कृषि-श्रमिक इस लाभ से सर्वथा वचित है फलत वे मजदूरी के सवाल को लेकर जमीदारो से सौदेबाजी नही कर सकते।

(3) मौसमी रोजगार–कृषि श्रमिक को सारा वर्ष लगातार काम नही मिल पाता। द्वितीय कृषि-श्रम की जाच के अनुमान के अनुसार कृषि-श्रमिक को वर्ष भर मे केवल 197 दिन ही काम मिलता है और शेष समय वह बेकार रहता है। ग्राम क्षेत्रो मे अल्प-रोजगार (Under employment) के अलावा बेकारी भी है। अल्प रोजगार एव बेकारी दोनो भारतीय कृषि-श्रमिक की कम आय और हीन आर्थिक स्थिति के लिए जिम्मेदार है। किन्तु खेती के धन्धे की प्रकृति ही कुछ ऐसी है कि श्रमिक को लगातार काम नहीं मिल सकता। अधिकतर खेती मे काम मौसम के अनुसार कुछ समय छोड छोडकर होता है। अनेक परिस्थितियो मे एक फसल प्रणाली के कारण वर्ष मे कवल छ या सात महीने का काम ही मिल पाता है। जहाँ सिचाई सुविधाएँ उपलब्ध करा दी गई हैं केवल वहा ही दोहरी फसल (Double cropping) के कारण वर्ष भर काम मिल सकता है।

(4) कृषि भिन्न व्यवसायो की कमी–ग्रामो मे कृषि-भिन्न व्यवसायो (Non agricultural Occupa tions) की कमी भी कृषि श्रमिको की कम मजदूरी और हीन आर्थिक दशा के लिए जिम्मेदार है। ग्रामो मे आबादी की निरन्तर वृद्धि के कारण भूमिहीन श्रमिको की सख्या भी बढती जा रही है। किन्तु दूसरी ओर खेती भिन्न काम धन्धो की कमी तथा एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश मे न आने-जाने क कारण जमीन पर आबादी का दबाव और भी अधिक होता जा रहा है।

(5) ग्राम-ऋणग्रस्तता (Rural Indebtedness)–कृषि श्रमिक बुरी तरह ऋण-ग्रस्त है। साधारणतया ये श्रमिक अपने भू-स्वामियो से ही ऋण लेते हैं। इन्हे कम मजदूरी स्वीकार करने पर बाध्य होना पडता है। चूकि उनके पास रहन रखने के लिए कुछ भी नहीं होता वे अपने आपको ही महाजनो और समृद्ध जमीदारो क पास रहन रख देते हैं और बन्धुआ मजदूर बन जाते हैं।

इस प्रकार कुछ तो ऐसे कारणों से जिन पर श्रमिकों का अपना वश नहीं है और कुछ सौदा करने की अपनी दुर्बलता के कारण ये बेचारे कृषि श्रमिक अत्यन्त दयनीय जीवन जीते चले आ रहे हैं।

3 कृषि श्रमिक की दशा सुधारने के लिए सुझाव

कृषि श्रमिको की दशा मे सुधार करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए गए हैं–

1 कृषि दासता (Agricultural serfdom) समाप्त करना–कृषि दासता जोकि भारत के बहुत से भागो मे विद्यमान है समाप्त की जानी चाहिए। वस्तुत भारत के सविधान मे तो सभी प्रकार की दास-प्रथा का निषेध किया गया है। किन्तु शताब्दियो से चली आ रही दासता आसानी से नहीं मिटाई जा सकती। इसका कारण यह है कि भारत के कृषि-श्रमिक अनपढ और निस्सहाय हैं। दास-प्रथा की समाप्ति के उपायो मे ग्राम-जनता का शिक्षण और उसे अपेक्षाकृत उन्नत अवसर उपलब्ध कराना मुख्य है। आशा है वि बन्धुआ-श्रम के उन्मूलन सम्बन्धी आर्थिक कार्यक्रम के अधीन किए गए उपायो के प्रभावाधीन कृषि-दासता समाप्त हो जाएगी।

2 कृषि-क्षेत्र मे न्यूनतम मजदूरी नियमो को बढिया ढग से लागू करना–पजाब हरियाणा और केरल को छोडकर देश के शेष भागो मे कृषि-श्रमिको को बहुत कम मजदूरी मिलती है। उनकी मजदूरी बढाना नितान्त आवश्यक है क्योकि बिना इसके उनकी आर्थिक दशा सुधारी नहीं जा सकती। न्यूनतम मजदूरी कानून बना देना भर पर्याप्त नहीं, उसे लागू करने के उपाय किए जाने चाहिएँ।

3 भूमिहीन कृषि-श्रमिको को पुन बसाना–कृषि-श्रमिको की दशा सुधारने के लिए भूमिहीन कृषि-श्रमिको को भूमि देना आवश्यक है। इसके अनेक ढग हो सकते हैं, जिनमें एक यह है कि नई सुधरी भूमि केवल इन्हे बाट दी जाए। दूसरा उपाय यह है कि विद्यमान भूमि को ही सब लोगो मे फिर बाट दिया जाए। ऐसा स्वेच्छा से भी हो सकता है और अनिवार्य भी। भूदान आन्दोलन का उद्देश्य भूपतियों से भूमिहीनो को स्वैच्छिक रूप मे जमीन दिलाना था। अन्य उपाय है–जोत की अधिकतम सीमा का निर्धारण और सहकारी खेती।

4 कृषि मे सुधार–भारतीय कृषि के मौसमी स्वरूप के कारण कृषि श्रमिको को पूर्णकालिक रोजगार नहीं मिल पाता। कृषि कार्य बढाने के लिए सघन खेती (Intensive cultivation) और सिचाई के विस्तार दोनो की अत्यन्त आवश्यकता है। इन उपायो से दोहरी फसल होने लगेगी, जिससे श्रमिक को वर्ष भर कार्य मिल सकेगा। इसके

अतिरिक्त, श्रमिक की उत्पादिता में भी वृद्धि होगी, जिससे उसकी मजदूरी भी बढ़ेगी। ग्राम उद्योगों (Rural industries) की स्थापना बहुत जरूरी है ताकि ग्राम जनता को काम मिल सके।

5. सार्वजनिक निर्माण कार्यक्रम (Public Works Programme)–ग्राम-श्रमिकों को काम दिलाने और ग्राम-श्रम का पूरा-पूरा उपयोग करने के उपायों में से बढ़िया उपाय सार्वजनिक-निर्माण कार्यक्रम है। सरकार गांवों में अपनी परियोजनाएं इस ढंग से अमल में ला सकती है कि रीते मौसम (Off season) में खाली श्रमिकों का काम मिल सके। सड़कें बनाना, तालाबों तथा नहरों की खुदाई और उन्हें गहरा करना, वनरोपण आदि ऐसी परियोजनाएं हैं। लघु उद्योगों की स्थापना का और सार्वजनिक-निर्माण कार्यक्रम का गांवों की जनसंख्या को सक्रिय बनाने, ग्राम-जनता की मजदूरी बढ़ाने और देश की आय में वृद्धि करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान है।

4. कृषि श्रम के सम्बन्ध में सरकार द्वारा किए गए उपाय

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से केन्द्र तथा राज्यीय सरकारों दोनों ने ही कृषि-श्रमिकों की दशा उन्नत करने के विषय में प्रशासनीय कार्य किया है। कृषि-श्रमिक की मजदूरी बढ़ाने के विषय में कुछ उपाय किए गए हैं, जिनमें मुख्य ये हैं–

(1) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम–1948 में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम बनाया गया था। इस अधिनियम के आधीन प्रत्येक राज्य सरकार को तीन वर्षों में कृषि श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी स्थानीय लागत (Local cost) और जीवन-मान को ध्यान में रखकर नियत की जाती है। चूँकि देश के अलग-अलग भागों में स्थिति अलग-अलग है और विधान के अनुसार एक ही राज्य में मजदूरी की दरें अलग-अलग निश्चित की गई हैं, व्यवहार में न्यूनतम मजदूरी दर को प्रभावशाली ढंग से लागू करना बहुत कठिन है। बहुत से राज्यों में मजदूरी दर को प्रभावशाली ढंग से लागू करना बहुत कठिन है। बहुत से राज्यों में मजदूरी की न्यूनतम दर चालू दरों से भी कम नियत की गई है। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम व्यवहार में कृषि-श्रमिकों की मजदूरी बढ़ाने में सफल नहीं हो सका।

(2) अन्य वैधानिक उपाय–विधान बनाकर जमींदारी प्रथा सभी राज्यों में समाप्त कर दी गई। इससे सम्बद्ध सभी प्रकार का शोषण भी देश भर में मिट गया है। इसके अतिरिक्त काश्तकारों और मजदूरों के हितों की रक्षा करने तथा जिस जमीन पर वे खेती करते हैं, उसे प्राप्त करने में उसकी मदद करने के लिए बहुत से राज्यों में काश्तकारी कानून बना दिए गए हैं। सभी राज्यों में विधान बनाकर कृषि-जोत अधिकतम सीमा नियत कर दी गई है। इन विधानों के अनुसार धनी-भू-स्वामियों की फालतू जमीन भूमिहीन मजदूरों में बाटे जाने की व्यवस्था है।

(3) श्रम सहकारी समितियों (Labour co-operatives) का संगठन–दूसरी योजना में श्रम-सहकार या सेवा सहकारों (Service co operatives) के निर्माण को प्रोत्साहन देने का प्रयत्न किया गया था। इन सहकारों के सदस्य जो कि श्रमिक होते हैं सड़कें बनाने नहरें और तालाब खोदने तथा जंगल लगाने आदि सरकारी कामों का ठेका लेते हैं। ये सहकार रीते मौसम (Off season) में कृषि श्रमिकों को रोजगार प्रदान करेंगे तथा निजी ठेकेदारों के शोषण से उनकी रक्षा करेंगे।

4 रोजगार गारंटी योजना (Employment guarantee scheme)–महाराष्ट्र सरकार ने रोजगार गारण्टी योजना चालू की जिसके आधीन कोई काम करने योग्य व्यक्ति अपने जिले के जिलाधीश (Collector) या उसके द्वारा अधिकृत किसी छोटे अफसर को रोजगार के लिए प्रार्थना-पत्र दे सकता है। इस योजना के अनुसार सरकार को प्रार्थी को उसके निवास स्थान के 5 किलोमीटर के बीच रोजगार उपलब्ध कराना होगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार को विभिन्न सार्वजनिक निर्माण प्रोग्राम सम्बन्धी योजनाएँ (अर्थात् सिंचाई, सड़क निर्माण आदि) तैयार रखनी होंगी। इनमें मजदूरी की दर ऐसी नहीं होगी जिससे कृषि क्रियाओं में सामान्य रोजगार प्राप्त श्रमिक आकर्षित हो सकें। यह सभी व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराने का अभिनन्दनीय कदम है और हाल ही में बनाई गई जवाहर रोजगार योजना इस दिशा में ही एक कदम है।

भारत में भूमिहीन मजदूर जो कुल श्रम-शक्ति का लगभग 25 प्रतिशत हैं, की दशा बहुत ही दयनीय रही है। भूमिहीन श्रमिक समाज का सबसे अधिक शोषित वर्ग है। उनकी आर्थिक दशा को सुधारने और उनके कल्याण को प्रोन्नत करने की ओर ठोस उपाय करने की आवश्यकता है।

5. कृषि मजदूर और न्यूनतम मजदूरी
(Agricultural Labour and Minimum Wages)

1948 में न्यूनतम मजदूरी कानून के लागू होने के पश्चात् सरकार पर यह दबाव डाला गया कि इस कानून को कृषि-श्रम पर भी लागू किया जाए। इस कानून का क्षेत्र-विस्तार किया गया किन्तु फिर भी कुछ ऐसे राज्य हैं जिनमें कृषि-श्रम के अधिकतर भाग इस कानून के आधीन न लगाए जा सके। जिन राज्यों में यह कानून लागू भी किया गया, उनमें न्यूनतम मजदूरी के निश्चयन एवं पालन के लिए एक-सी मशीनरी कायम नहीं की गई। मोटे तौर पर यह

कहा जा सकता है कि (1) यह कानून प्रत्येक राज्य मे मृत अधिनियम ही रहा है। (2) कृषि मे न्यूनतम मजदूरी को बहुत समय से सशोधित नही किया गया। (3) लगभग हर जगह वास्तविक मजदूरी अधिक कामकाज वाले मौसम मे न्यूनतम मजदूरी से अधिक हो जाती है और कम कामकाज वाले मौसम मे न्यूनतम मजदूरी से कम हो जाती है। (4) इस कानून को प्रभावी रूप मे पालना करने की मशीनरी बिल्कुल अपर्याप्त है। इस कानून के आधीन न ही मुकदमा चलाया जा सकता है और परिणामत न ही इसमे सफलता प्राप्त है। (5) कानून को लागू करने की अन्य कठिनाइयो मे मुख्यत कृषि मजदूरो मे दरिद्रता एव अनक्षरता वर्तमान कानून सम्बन्धी जानकारी का अभाव कृषि फार्मो का बिखरा होना रोजगार का अनियमित होना कृषि श्रम का असगठित होना आदि है।

विभिन्न प्रदेशो और विभिन्न फसलो आदि मे पुरुषो स्त्रियों एव बच्चो को दी जाने वाली मजदूरी मे काफी भिन्नता पाई जाती है। राष्ट्रीय श्रम आयोग पर्याप्त प्रमाण के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि 1956 और 1963 के दौरान कृषि श्रमिको की आय औद्योगिक श्रमिको की मजदूरी की तुलना मे अधिक बढी है। इसका मुख्य कारण यह था कि ग्रामीण क्षेत्रो मे औसत मजदूरी मे काफी वृद्धि हो रही थी यह बात विशेषकर पजाब और तमिलनाडु के कुछ क्षेत्रो के लिए सत्य है।

मई 1987 मे हुए श्रम मत्रियो के सम्मेलन ने यह सिफारिश की कि न्यूनतम मजदूरी कानून के आधीन निश्चित की जाने वाली न्यूनतम मजदूरी निर्धनता रेखा के साथ सम्बन्धित होनी चाहिए। इस बात को ध्यान मे रखते हुए राज्यो को 15 मई 1990 को यह सलाह दी गई कि न्यूनतम मजदूरी 15 रुपए प्रतिदिन होगी जिसके नीचे प्रत्येक रोजगार के लिए न्यूनतम मजदूरी निश्चित की जाएगी। किन्तु ग्राम्य श्रम पर राष्ट्रीय आयोग ने 20 रुपए प्रतिदिन की न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की सिफारिश की।

इन सिफारिशो के परिपालन के लिए, सामान्य न्यूनतम मजदूरी की एक नई धारणा कल्पित की गई जिसमे सामान्य श्रमिको के लिए खाद्य ईंधन एव मकान के रूप मे श्रमिको को अनिवार्यताएँ उपलब्ध कराने का निर्णय किया गया जो न्यूनतम मजदूरी कानून के आधीन नहीं आते थे। ध्यान देने योग्य बात यह है कि ग्रामीण निर्धनता का उन्मूलन न्यूनतम मजदूरी की गारटी पर निर्भर करता है।

30 नवम्बर 1992 पर न्यूनतम मजदूरी कानून के आधीन कुल रोजगार क्षेत्रो की सख्या 1 023 थी। श्रम मत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट (1992 93) के अनुसार केन्द्र एव राज्यीय सरकारो ने न्यूनतम मजदूरी निश्चित की है जो अकुशल श्रमिको के लिए कम से कम और कुशल श्रमिको के लिए अधिक से अधिक होनी चाहिए। सिफारिश की गई न्यूनतम मजदूरी की अभिसीमा से अधिक मजदूरी निम्नलिखित राज्यो मे निश्चित की गई पजाब 31 70 से 33 95 रुपए, हरियाणा 24 से 33 85 रुपए हिमाचल प्रदेश और राजस्थान 22 रुपए, उडीसा 25 रुपए, बिहार 15 से 25 रुपए, अरुणाचल प्रदेश 15 से 18 70 रुपए इनके विरुद्ध जिन राज्यो मे मानदण्ड से नीची मजदूरी निश्चित की गई है वे है उत्तर प्रदेश 10 50 से 28 85 रुपए, पश्चिमी बगाल 10 40 से 21 62 रुपए, मध्य प्रदेश 11 से 36 रुपए, केरल 12 से 40 रुपए गुजरात 11 से 31 रुपए, महाराष्ट्र 11 से 34 30 रुपए, असम 7 से 25 रुपए कर्नाटक 7 75 से 26 80 रुपए तमिलनाडु 7 से 35 रुपए।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि न्यूनतम मजदूरी का निश्चय इस बात की कोई गारटी नहीं कि वह कृषि मजदूरो को दिया भी जाएगा। यह तो इस बात पर निर्भर करता है कि राज्य क्या कार्यभाग अदा करता है और कृषि श्रमिको मे किस हद तक सघीकरण (Unionization) हुआ है।

6 बन्धुआ श्रम का उन्मूलन
(Abolition of Bonded Labour)

लाखो भूमिहीन मजदूरो के साथ अभी तक बन्धुआ श्रम या अनुबन्ध श्रम (Contract Labour) का व्यवहार किया जाता है और वे दासो या गुलामो का सा जीवन व्यतीत करते है। भारत में बन्धुआ श्रम की प्रथा शताब्दियो से चली आ रही है। यह कृषि अर्थव्यवस्था का विशेष लक्षण है। यह प्रथा अनुसूचित जातियो आदिवासियों और अर्द्ध जनजातियो मे घोर निर्धनता और निराशता की स्थिति से उत्पन्न हुई जिन्हे वर्ष के एक भाग के दौरान ही मजदूरी के रूप मे कुछ आय प्राप्त होती थी। जब उन्हे बुरी फसल के मौसम मे खाद्यान्नो की आवश्यकता होती या विशेष अवसरो अर्थात् विवाह उत्सव तथा बीमारी की हालत मे ऋण की आवश्यकता होती तो उन्हे उधार लेना पडता परन्तु उनके पास अपने श्रम की अपेक्षा भूमि हीरे जवाहरात या अन्य जायदाद के रूप मे रहन रखने के लिए कुछ भी नहीं था। अत वे अपने आपको ही रहन रख देते। साहूकारो और उच्च जाति के भू स्वामियो ने उनकी लाचारी एव अनभिज्ञता का लाभ उठाया और उनके साथ शोषणात्मक करारनामे कर लिए। उनकी मजदूरी इतनी कम और ब्याज की दर इतनी ऊँची प्राय 25 से 50 प्रतिशत थी कि समय के साथ ऋण का भार बढता ही जाता। वास्तव मे ऋण का भार इतना अधिक हो गया कि इसका भुगतान ऋणी के परिवार के श्रम द्वारा कई पीढियो तक भी नहीं किया जा

सकता था। यदि किसी भूमिहीन श्रमिक ने उधार ले लिया तो वह और उसके वंश के लोग शाश्वत गुलामी में ग्रस्त हो गए। आधुनिक काल में भी अनुसूचित जातियों (Scheduled castes) के खेत मजदूर जो वर्ष में केवल 5 या 6 महीने ही रोजगार प्राप्त कर पाते उनको समय भू स्वामियों से प्राप्त उधार राशि या खाद्यान्न पर जीवित रहते हैं। देश के विभिन्न भागों में बन्धुआ श्रम को कई नामों से पुकारा जाता है उदाहरणार्थ मद्रास में पानियल उड़ीसा में 'हालिया' या 'मूलिया' उत्तर बिहार में जनहमासिया और दक्षिण बिहार में 'कामिया' मध्य प्रदेश में हरवाह उत्तर प्रदेश में 'सेवक' या 'हरि' आदि।

चाहे यह प्रथा शताब्दियों से प्रचलित है परन्तु बन्धुआ श्रम के बारे में कोई विश्वसनीय आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ (International Labour Organisation) ने भारत के लिए 1.5 करोड़ बन्धुआ श्रमिकों का अनुमान लगाया जिनमें 50 लाख बच्चे हैं इसकी तुलना में भारत सरकार ने लाख बन्धुआ मजदूरों का आंकड़ा दिया। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के अनुमान का आधार 'स्वतन्त्र एजेन्सियाँ' है जबकि भारत सरकार का अनुमान राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण पर आधारित है। भारत सरकार का आंकड़ा घोर अल्पानुमान है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के अनुसार केवल कृषि में 2 लाख से अधिक बन्धुआ श्रमिक हैं। यह व्यवहार खदानों गलीचे बुनने और घरेलू सेवा में विस्तृत रूप में विद्यमान है।

बन्धुआ श्रम आमतौर पर कम काम काज वाले मौसम में समृद्ध भू स्वामियों से खाद्यान्न उधार लेता है। इन ऋणों का भुगतान सामान्यतया जिन्स (Kind) के रूप में किया जाता है और यह मूल राशि का 1.25 से 1.50 गुना होता है। इस प्रकार के आधार के परिणामस्वरूप समृद्ध किसान अपनी कृषि क्रियाओं के लिए श्रम के नियमित सम्भरण (Regular supply) के बारे में आश्वस्त हो जाता है। बन्धुआ श्रम को दोहरा भार उठाना पड़ता है ऊंचा ब्याज दर के भुगतान के रूप में और अपने मालिकों को सस्ता श्रम बेचने के रूप में। अधिकतर बंधुआ मजदूर उच्च वर्गों के घरों बागों एवं खेतों पर वंशानुगत दासों (Hereditary serfs) के रूप में कार्य करते थे। उनके कार्यों में भूमि जोतने से लेकर घरेलू सेवा कार्य तक शामिल थे। महाराष्ट्र आन्ध्र प्रदेश बिहार और अन्य राज्यों में आदिवासियों को उच्च जातियों के जमींदारों एवं महाजनों के हाथों बहुत कष्ट सहने पड़े।

भूतकाल में भी बंधुआ श्रम के उन्मूलन के प्रयास किए गए। 1933 में पार्लियामेण्ट ने सारे ब्रिटिश साम्राज्य में बंधुआ श्रम की समाप्ति का कानून पारित किया। दुर्भाग्यवश इसका कोई प्रभाव न पड़ा क्योंकि विभिन्न राज्यों ने यह महसूस किया कि भारत में कोई दासता नहीं है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान ने दासता बेगार और अनिवार्य मजदूरी के अन्य रूपों की मनाही कर दी। इसके फौरन बाद बंधुआ श्रम के उन्मूलन के कानून पास किए गए। परन्तु यह प्रथा कायम रही क्योंकि इन कानूनों को लागू न किया गया। साम्यवादियों एवं मानववादी संगठनों द्वारा शोषकों के विरुद्ध बंधुआ आदिवासी श्रमिकों को संगठित करने के आन्दोलन चलाए गए, इनके परिणामस्वरूप इन मजदूरों के भयंकर शोषण की ओर जनता का ध्यान आकर्षित हुआ। प्रायः इन आन्दोलनों को 'साम्यवादी' संज्ञा देकर इन्हें दबा दिया गया। परन्तु अनुसूचित जातियों और जनजातियों (Tribals) के आयुक्त की लगातार रिपोर्टों में पिछड़ी जातियों के निर्मम शोषण एवं दमन के वर्णन का प्रभाव सरकार पर पड़ा। गरीब तथा शोषित देहाती जनता की दशा सुधारने के लिए श्रीमती इंदिरा गांधी ने अपने 20-सूत्री कार्यक्रम में इसे एक मूल कार्यक्रम के रूप में शामिल कर लिया। अक्टूबर 1975 में राष्ट्रपति ने एक अध्यादेश द्वारा बंधुआ श्रम को अवैध घोषित कर दिया और उनके ऋण मनसूख कर दिए।

बंधुआ श्रम का भविष्य

योजना आयोग की प्रोग्राम मूल्यांकन संस्था (Programme Evaluation Organisation) ने बन्धुआ श्रम पर अपनी रिपोर्ट में ये तथ्य एवं सिफारिशें पेश कीं—(i) बन्धुआ मजदूरों की मुक्ति और उनके पुनर्वास की अबाध रूप से बाद आवश्यक निर्वाह भत्ता उपलब्ध कराने में राज्यीय एवं जिला प्राधिकार विफल हुए हैं। इस कारण यह भय बना रहता है कि बन्धुआ मजदूर पुनः बन्धन में न फंस जाएँ। (ii) प्रोग्राम मूल्यांकन संस्था ने यह सिफारिश की है कि नागरिक अधिकार संरक्षण कानून का सख्ती से पालन करना चाहिए और स्वैच्छिक संस्थाओं को सामाजिक सुधारों के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। अन्य ग्राम विकास कार्यक्रमों से साधनों को परिवर्तित कर बन्धुआ श्रमिकों के पुनः स्थापन को सफल बनाना चाहिए।

अतः सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ग्राम क्षेत्रों में लाभकर रोजगार (Gainful employment) कायम किया जाए और इसके लिए देशभर में ग्राम-विकास के प्रोग्रामों का त्वरित करना होगा। इसमें उद्योगों की स्थापना भी शामिल है जो कृषि तथा वन संसाधनों पर आधारित हैं। नियमित रोजगार प्राप्त होने से ऋणों के लिए महाजनों की आवश्यकता भी कम हो जाएगी। इन सिफारिशों के कारण सातवीं योजना (1985–90) में बन्धुआ श्रम के पुनर्वास के लिए 15 करोड़ रुपए की व्यवस्था की गई।

राज्यीय सरकारों से श्रम मन्त्रालय को प्राप्त सूचना के

अनुसार 2,51,424 बधुआ मजदूरो का पता लगाकर उन्हे 30 मार्च 1993 तक मुक्त कर दिया गया है। मुक्त किए गए बधुआ श्रमिको मे से अभी तक 2 27 404 पुन स्थापित कर दिए गए है। छठी योजना (1980-85) मे बधुआ मजदूरो के पुन स्थापन के लिए 25 करोड की व्यवस्था की गई है। इस योजना के आधीन एक बधुआ मजदूर को पुन स्थापित करने की लागत 4 000 रुपए होगी जिसमे से राज्यीय सरकारो को 50 प्रतिशत समतुल्य अनुदान के रूप मे दिया जाएगा। यह सहायता मुक्त किए गए बधुआ मजदूरो को आय जनन आर्थिक इकाइयो के रूप मे दी जाती है। इन इकाइयो मे कृषि सम्बन्धी औजार एव आदान मुर्गीखाने भेडे बकरियाँ सूअर बढई के औजार और व्यक्तिगत रुचियो एव आवश्यकताओ के अनुसार अन्य व्यवसायो के लिए उपकरण आदि शामिल है। यह राशि फरवरी 1986 से बढाकर 6 250 रुपए कर दी गई है। अगस्त 1994 से इस राशि को बढाकर 10 000 रुपये कर दिया गया है।

7. ग्रामीण श्रम पर राष्ट्रीय आयोग की सिफारिशे

(Recommendations of the National Commission on Rural Labour)

वर्तमान कृषि-ढाचा भू स्वामित्व की असमानता को पोषित करता है और यह छोटे तथा सीमान्त किसानो को अपनी भूमि बडे किसानो को बेचने के लिए मजबूर करता है। इसने सीमान्त किसानो के परोलतारीकरण (Proletarianization) की प्रक्रिया को त्वरित किया है। ग्रामीण श्रम पर राष्ट्रीय आयोग ने साफ शब्दो मे लिखा है "नई तकनालाजी बाजार प्रेरित और पूजी प्रधान होने के कारण मुख्यत बडे किसानो के पक्ष मे है छोटे किसानो के पास न तो आवश्यक ससाधन आधार है और न ही वे आवश्यक जानकारी और जोखिम सहन करने की शक्ति रखते हैं इस प्रकार वे नयी तकनालाजी को अपनाने मे पिछड गए है। अत छोटे किसान बडे भूस्वामियो की तुलना मे अलाभकारी स्थिति म है और कई बार आर्थिक दबावो ने उन्हे बाध्य कर दिया कि वे कृषि श्रमिको की बढती हुई सेना मे शामिल हो जाए।"

भारत मे भू स्वामित्व के वितरण म परिवर्तन का कोई उम्मीद नही है। यह आशा करना पूर्णतया अवास्तविक हो होगा कि ग्रामीण श्रम को कृषि के अन्दर कृषक-स्वामियो के रूप मे समोया जा सकता है। इस कटु सत्य को दृष्टि मे रखते हुए, राष्ट्रीय आयोग ने कृषि-श्रमिको की दशा सुधारने के लिए निम्नलिखित उपायो का सुझाव दिया है।

आयोग का मत है कि गरीब कृषि-श्रमिको को जीवन-क्षम बनाने की रणनीति अनिवार्यत बहुआयामी होनी चाहिए। सर्वप्रथम तो सिचाई जल-निकास और बाढ-नियन्त्रण एव ग्रामीण बिजली की आपूर्ति करनी होगी और इसके साथ-साथ शुष्क खेती की तकनालाजी (Dry farming technology) चालू करनी होगी ताकि कृषि-उत्पादिता एव रोजगार मे वृद्धि हो।

दूसरे यह बहुत जरूरी है कि रोजगार-जनन-कार्यक्रम चलाए जाए जिनका उद्देश्य अतिरिक्त श्रम-शक्ति को कृषि-क्रियाओ मे जज्ब करना होना चाहिए और इनके परिणामस्वरूप कृषि श्रमिको की आय मे वृद्धि होगी। न्यूनतम मजदूरी और सामाजिक सुरक्षा (Social security) को लागू करना रोजगार कार्यक्रमो का अनिवार्य अग होना चाहिए।

तीसरे कृषि श्रमिको को रहने के लिए स्थान (अथवा वास भूमि) उपलब्ध कराना चाहिए ताकि वे न केवल अपनी बुनियादी जरुरत पूरी कर सके बल्कि परिवार कुछ सहायक भू-आधारित क्रियाए अर्थात् मुर्गीपालन दुग्धशालाए आदि चला सके।

आयोग ने सिफारिश की है कि कृषि-श्रम के लिए केन्द्रीय विधान कायम करने की अत्यन्त आवश्यकता है। इस विधान द्वारा कृषि श्रमिको को रोजगार की सुरक्षा काम के निर्धारित घण्टे निश्चित मजदूरी के भुगतान और विवादो के समाधान के लिए मशीनरी की व्यवस्था की जानी चाहिए। इस विधान मे श्रम-कल्याण सम्बन्धी योजनाओ को तैयार करने और सामाजिक सुरक्षा के उपाय करने का प्रावधान भी होना चाहिए।

आयोग ने सिफारिश की है कि केन्द्रीय एव राज्यीय स्तर पर ग्रामीण श्रम के लिए एक पृथक विभाग होना चाहिए जिसके अधिकारी राज्यीय स्तर के नीचे भी हो।

आयोग ने सिफारिश की है कि कृषि श्रमिको के मजदूर सघो को कायम करने का प्रावधान होना चाहिए ताकि कृषि-श्रमिक उपयोज्य कानून के आधीन कार्य कर सकें।

आयोग ने कृषि श्रम-कल्याण कोष की स्थापना की सिफारिश की है ताकि महिला कृषि श्रमिको को दो जीवित बच्चो तक प्रसूति अवकाश 100 रुपये प्रतिमास की दर पर वृद्धावस्था पेंशन और मृत्यु और चोट के विरुद्ध क्षतिपूर्ति दी जा सके। इस कोष के लिए ससाधनो के रूप मे नियोजको द्वारा योगदान दिया जाना चाहिए जो भूमि पर उपकर (Cess on land) के रूप मे हो सकता है और थोडा सा योगदान सरकार द्वारा निर्धारित दरो पर कृषि-श्रमिको को भी करना होगा। किन्तु इनसे पर्याप्त राशि उपलब्ध होनी सभव नही और इस कारण आयोग का मत है कि केन्द्र एव राज्य सरकार को कम-से-कम 50 50 के आधार पर योगदान म हिस्सा डालना होगा। यह तभी करना होगा जब

केन्द्र सरकार पहले तीन वर्षों के लिए 100 प्रतिशत व्यय की व्यवस्था करे।

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि कृषि श्रम ग्रामीण जनसख्या का सब से गरीब वर्ग है। ग्रामीण श्रम के राष्ट्रीय आयोग ने यह बात रिकार्ड की है कि 1987-88 मे सामान्य ग्रामीण निर्धनता-अनुपात के 33 4 प्रतिशत के विरुद्ध ग्रामीण-श्रम-परिवारो मे आयोग के अनुसार निर्धनता अनुपात लगभग 57 प्रतिशत था। अत आयोग ने कई सिफारिशे की हैं ताकि यह वर्ग जो शताब्दियो से घोर निर्धनता मे जीवन-व्यतीत कर रहा है निधनता-स्तर से ऊपर उठ सके। यह सत्य है कि जहा कृषि-श्रम ने हरित क्रान्ति मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, कुछ राज्यो को छोड जिनमे मजदूरी मे वृद्धि के रूप मे कुछ लाभ प्राप्त हुआ है इसकी सामान्य दशा मे उन्नति नहीं हुई है। कृषि-श्रमिको की सहायता के लिए एक ओर विकास की रोजगार-प्रधान रणनीति की सिफारिश की है और दूसरी ओर कृषि-श्रमिको के मजदूर संघो की व्यवस्था का सुझाव दिया है ताकिउनकी सौदाशक्ति उन्नत की जा सके। इन प्रयासो की सहायता के लिए आयोग ने सकेत किया है कि केन्द्र सरकार को सामाजिक सुरक्षा की योजना चालू करने के विधान की पहल करनी चाहिए।

ग्रामीण श्रम के राष्ट्रीय आयोग की सिफारिशो के पश्चात्, केन्द्र सरकार ने कृषि-श्रमिको के केन्द्रीय विधान का मसौदा तैयार किया है और इसे राज्यीय श्रम मत्रियो के 42वे सम्मेलन मे 7 जुलाई, 1993 को वितरित किया है ताकि उनको राय जान सके। यह बात बडी उत्साहवर्धक है कि केन्द्र सरकार ग्रामीण-श्रम के राष्ट्रीय आयोग की सिफारिशो के कारण जागी है ताकि हमारे समाज के गरीबो मे सबसे गरीब वर्ग की दशा सुधारने के लिए कुछ कदम उठा सके।

ग्राद्ध करने के लिए सेवाओ और परिसम्पत्ति के अनुरक्षण (Maintenance) की बेहतर पणालियाँ अपनाना

3 लाइन टर्मिनल और चल स्टाक (Rolling Stock) में वृद्धि करना तथा चयनात्मक आधार पर मीटर गेज को ब्राड गेज मे परिवर्तित करना

4 उन्नत तकनालाजी के माध्यम से कुल मिलाकर कार्यकुशलता मे सुधार करने परिचालन लागतो (Operational costs) मे कमी करने और श्रम तथा पूजी परिसम्पत्तियो (Capital assets) की उत्पादकता मे वृद्धि करने के लिए उपाय करना

5 विद्युतीकरण पर अधिक बल देते हुए उन्नत तकनालाजी के माध्यम से ऊर्जा सरक्षण करना

6 वैकल्पिक मार्गो के माध्यम से अधिक व्यस्त मार्गों पर लाइन क्षमता मे वृद्धि करने के लिए चयनात्मक आधार पर नेटवर्क का विस्तार करना। नेटवर्क मे लुप्त लिको को जोडना और सामरिक औद्योगिक एव अन्य विकासात्मक आवश्यकताओ के लिए अपेक्षित लाइने बिछाना।

ससाधनो के सीमाबन्धन को दृष्टि मे रखते हुए आठवी योजना मे ऐसी परिसम्पत्तियो का प्रतिस्थापन करने का निर्णय लिया गया है जो अपनी उपयोगिता की अवधि पूरी कर चुकी है वर्तमान परिसम्पत्तियो के अनुरक्षण और चल रहे अनिवार्य प्राजैक्टो को पूरा करने पर बल दिया जाएगा ताकि परिवहन क्षमता को बढाने मे सहायता मिले। तकनालाजीय उन्नति और आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक विनियोग पर भी बल दिया जाएगा आठवी योजना की अवधि (1992 97) के दौरान 27 200 करोड रुपए का प्रावधान किया गया है। सातवी योजना के दौरान रेलो ने जीर्ण मशीनरी तथा उपकरणो के प्रतिस्थापन आधुनिकीकरण और तकनालाजीय उन्नति कम्प्यूटरीकरण आदि मे महत्त्वपूर्ण प्रगति की।

रेलो का अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

रेल निर्माण एव विस्तार से समाज को बहुत लाभ प्राप्त हुए है। सबसे पहले भारतीय रेलो ने उद्योग की स्थापना मे सहायता दी है। बम्बई मे सूती वस्त्र उद्योग बगाल मे पटसन उद्योग बिहार मे कोयला उद्योग असम और बगाल मे चाय के बाग इन सभी का विस्तार रेलो से हुआ है।

दूसरे रेलो ने भारतीय कृषि की सहायता की है। रेलो के आरम्भ से पूर्व भारतीय किसान अपनी फसल को केवल स्थानीय मण्डी मे ही बेच सकता था परन्तु रेलो ने हमारी कृषि वस्तुओ के बाजार का विस्तार किया है और कुछ वस्तुओ अथात् कपास पटसन तिलहन आदि के लिए भारतीय किसान विश्व बाजार से सम्बन्धित हो गए हैं। रेलो द्वारा कृषि वस्तुओ का श्रेष्ठतर वितरण सम्भव हुआ है (इनके द्वारा अधिक उत्पादन वाले क्षेत्रो से अभाव वाले क्षेत्रो मे वस्तुओ का परिवहन होता है) और इस कारण देश मे एक समान कीमते कायम करने मे सहायता मिलती है। फसलो के असफल होने और अकाल की परिस्थितियो मे रेले अतिरेक वाले इलाको से दुर्भिक्ष वाले इलाको मे अनाज भेजने मे बडी सहायक होती है।

तीसरे रेलो द्वारा ग्रामो प्रदेशो और कुछ हद तक सम्प्रदायो की पृथकता भी कम हो गई। जाति और सयुक्त परिवार के बन्धन शिथिल हो गए है और लोग अब किसी भी स्थान और किसी भी नौकरी को स्वीकार कर सकते हैं। रेलो ने सारे देश को एक बना दिया है और इस प्रकार देश मे भौगोलिक गतिशीलता को बढाने मे सहायता दी है।

चौथे रेलो द्वारा सभी प्रकार की वस्तुओ और विशेषकर भारी और नाशवान वस्तुओ के बाजार के विस्तार मे सहायता मिली है। इसी प्रकार रेल यातायात के कारण मछली अण्डे दूध फल और सब्जी के व्यापार का विस्तार हुआ है। आयात और निर्यात दोनो रेल यातायात से सुविधाजनक बन गए है।

अन्तिम रेलो के राजनीतिक प्रभाव की उपेक्षा नहीं की जा सकती। देश मे किसी आतरिक गडबडी या बाहरी आक्रमण के समय सेना या पुलिस को तेजी से देश के एक भाग से दूसरे भाग मे पहुँचाया जा सकता है। वास्तव मे 19वी शताब्दी मे रेलो का तेजी से निर्माण करने का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि आतरिक गडबडी या विद्रोह के समय सेना को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुचाने के लिए रेलो का जाल बिछाना जरूरी था। इस प्रकार रेले भारत जैसे देश के प्रशासन के लिए लाभदायक हैं।

भारत मे रेलो के सुधार का क्षेत्र

देश मे स्वतत्रता के पश्चात् और विशेषकर पचवर्षीय योजनाओ के आधीन रेल परिवहन के विकास मे भारी प्रगति हुई है फिर भी भारतीय रेल व्यवस्था अभी आदर्श नही बन पायी। इसमे कई एक कमिया विद्यमान है। चाहे भारत की रेल व्यवस्था एशिया मे पहले नम्बर पर और सारे ससार मे दूसर नम्बर पर है फिर भी इतने बडे देश के लिए रेल व्यवस्था बहुत अपर्याप्त है। तालिका 2 मे दिए गए आकडो से यह सिद्ध होता है कि उन्नत देशो के स्तर पर पहुचने के लिए अभी रेल विकास को और अधिक बढाना जरूरी है।

दूसरे भारत मे तकनीकी प्रगति पश्चिमी देशो की भाँति अपनाने के लिए बडा क्षेत्र उपलब्ध है। रेलो का विद्युतीकरण (Electrification) डीजल तेल का प्रयोग आदि तकनीकी प्रगति के कुछ अश है। इन परिवर्तनो की लागत अधिक होने के कारण इन्हे भारतीय रेलो मे धीरे धीरे

अपनाया जा रहा है। किन्तु सुरक्षा और कुशलता के लिए भी परिवर्तनो को तेजी से रल व्यवस्था मे लाना ही पडेगा।

तालिका 2 चुने हुए दशो मे रेलमार्ग की लम्बाई

	प्रति एक लाख जनसख्या के लिए	प्रति 100 वग मील क्षेत्रफल के लिए
भारत	9 6	2 7
यू एस ए	224	6 6
यू के	46	20 0
कनाडा	465	10 0
बैल्जियम	–	44 0

—तीसरे भारत कइ प्रकार के रल सामान मे स्वावलम्बी बन गया है। परन्तु कुछ उपकरणो के लिए भारत विदेशा पर निर्भर है। अत रेल सामान के उत्पादन का और विस्तार होना चाहिए ताकि आयात कम किया जा सके।

चौथे रलो की कुशलता को बढाना अत्यन्त आवश्यक है। दुर्घटनाओ और इससे होने वाली हानि की मात्रा बहुत अधिक है। इसलिए रल यातायात को सुरक्षित एव सुविधाजनक बनाना अनिवाय है।

अन्तिम भारताय रला को अपने कायकारी व्यय (Working expenses) मे भा किफायत करनी चाहिए। तकनीकी परिवतनो और व्यर्थ व्यय को दूर करके ही कार्यकारी व्यय घटाया जा सकता है। पुरानी और जार्ण रेल पूजी का पुन स्थापन (Replacement) और रलो मे बिना टिकट यात्रा भारतीय रेलो की कुछ अन्य समस्याएँ ह जिनकी ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिए।

बढते हुए तेल सकट मे रलवे का महत्त्व और भी बढ गया है। तेल की अपेक्षा भारतीय अथव्यवस्था मे ऊर्जा के निर्माण मे कोयले पर निर्भरता बढ रहा है। यह परिवर्तन तभी सभव है यदि रेलवे कोयले की भारी मात्रा का परिवहन कर सकती है। इस सम्बन्ध मे यह बात ध्यान देने योग्य है कि देश के बहुत से भागो मे ऊर्जा सकट का मुख्य कारण कोयले पर आधारित तापीय बिजलाघरो (Thermal Power Stations) को विफलता है। इसका प्रभावी कारण रेलवे द्वारा इन बिजलाघरो को समय पर कोयला न पहुचा पाना था। बिना किसी अतिशयोक्ति के यह बात कही जा सकती है कि भारतीय अथव्यवस्था का भाग्य और इसका जनता का कल्याण बहुत हद तक भारताय रलव का कोयला उवरक खाद्यान्न आदि के परिवहन की कुशलता बढाने पर निभर करगा।

2 रेल-वित्त
(Railway Finance)

1924 से पूर्व रल वित केन्द्राय सरकार के वित्त का ही अग था परन्तु 1924 मे रल वित्त को केन्द्रीय सरकार के सामान्य वित से पृथक किया गया।

1950 के रलवे सम्मेलन (Convention) के अनुसार (क) सामान्य करदाता (General tax payer) को रलो मे हिस्सेदार का स्थान दिया गया चाहे वास्तव मे भारतीय रलो मे कन्द्राय सरकार ही एकमात्र हिस्सेदार है (ख) भारत सरकार को उधार दी हुई पूजा पर 4 प्रतिशत लाभाश प्रापत करने का गारण्टी होगी (ग) रेलो का ऐसे नय रेलमार्ग बनाने के लिए, जिनमे तुरन्त लाभ की आशा न हो रेल विकास निधि (Railway Development Fund) स्थापित करनी चाहिए। इस निधि मे से सवारियो के लिए अधिक सुविधाएँ उपलब्ध कराने और श्रम कल्याण कार्य पर भी व्यय किया जाना चाहिए, और (घ) रेलो को मूल्य ह्रास निधि (Railway Depreciation Fund) कायम करनी चाहिए ताकि रलवे के सामान का पुन स्थापन किया जा सके।

1960 मे एक नए सम्मेलन (Convention) में यह निर्णय किया गया कि रले सामान्य राजस्व (General Revenues) के लिए लाभाश (Dividend) का 4 25 प्रतिशत गारण्टी करें। बाद मे 1964 तक लगायी हुई पूजी पर सामान्य राजस्व को 5 5 प्रतिशत लाभाश और इसके बाद मे लगाई गई पूजी पर 6 प्रतिशत लाभाश तय किया गया। जबसे रेले घाटे मे गई है रलवे कन्वेशन समिति ने 1971 में रेलो को कुछ छूट दी है।

अन्तिम रेलवे सम्मेलन अगस्त 1980 मे स्थापित किया गया और इसकी सिफारिशो के अनुसार रेलवे को 31 मार्च 1980 पर विनियुक्त पूजी पर 1980 85 की अवधि के लिए 5 5 प्रतिशत लाभाश देना होगा और अप्रैल 1980 से विनियुक्त पूजी पर 6 5 प्रतिशत।

भारतीय रलो के वित्तीय परिणाम

घोर मन्दा के पश्चात् कुछ वर्ष रले फिर नुकसान में चलने लगीं। दूसर विश्वयुद्ध म रल यातायात (Railway traffic) मे वृद्धि हुई। तत्पश्चात् रेले निरन्तर प्रगति कर रही हैं। न केवल रलो द्वारा सामान्य राजस्व म योगदान की लगातार पूर्ति होता आई है बल्कि रलो ने कुछ रुपया विकास एव मूल्य ह्रास निधियो (Development and Depreciation Funds) की ओर भी लगाया है।

लाइनों पर लागत की तुलना में कम किराया भाड़ा वसूल करने के रूप में है। 1994 95 के दौरान रेलों को उपनगरीय और अन्य यातायात पर 2 180 करोड़ का घाटा और कम दर वाले माल पर 140 करोड़ रुपए का घाटा हुआ। इस प्रकार सामाजिक दायित्व (Social burden) के कारण 1994 95 में 2 320 करोड़ रुपए का घाटा हुआ। इससे साफ जाहिर है कि यदि रेलवे को ये सामाजिक भार सहन न करने पड़ते तो वे घाटे में न जातीं।

(iii) रेलवे में बढ़ती हुई अकुशलता—रेलवे में बढ़ते हुए वित्तीय संकट का एक और महत्त्वपूर्ण कारण इसमें बढ़ती हुई अकुशलता है। विशेषज्ञों ने इस सम्बन्ध में कई सूचक बताए हैं। वैगनों की अनुपलब्धि और वैगनों की बाट में भ्रष्टाचार देश में परिवहन सम्बन्धी अड़चनों के दो मूल कारण हैं। हाल ही के वर्षों में रेलवे में की गई कई हड़तालें काम धीरे करो काम केवल नियमानुसार काम पद के अनुसार रेलवे कर्मचारियों द्वारा छोटे छोटे मामलों पर हड़ताल कर देना और मई 1974 में रेलवे की आम हड़ताल (General strike) ने रेलवे की हालत बहुत बिगाड़ दी है। इन सभी हड़तालों आन्दोलनों आदि का माल यातायात पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। किन्तु पिछले कुछ वर्षों में सरकार तथा रेलवे कर्मचारी रेल व्यवस्था की कुशलता को उन्नत करने के लिए भरसक प्रयत्न कर रहे हैं इससे भारतीय अर्थव्यवस्था को भारी लाभ होगा क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था के कल्याण का रेलवे की कुशलता से गहरा सम्बन्ध है। इन सब उपायों के परिणामस्वरूप भूतपूर्व रेलवे मन्त्री श्री माधव राव सिंधिया के अनुसार मानव और मशीनों दोनों की उत्पादिता में भारी वृद्धि हुई है। वास्तव में परिवहन कुशलता में इतना अधिक सुधार हुआ है कि यह देश के लिए गर्व की बात है और भारतीय रेलें माल यातायात उपयोग में विश्व का नेतृत्व कर रही हैं और लगभग सभी रेलवे प्रणालियों को विकसित देशों की रेलों को भी पीछे छोड़ गई हैं।

3 रेलवे बजट (1996 97)

1995 96 के बजट और संशोधित अनुमान—1995 96 के बजट ने रेलों के निष्पादन में लगातार सुधार की प्रत्याशा व्यक्त की। 1995 96 के बजट में माल यातायात एवं सवारी यातायात से अधिक राजस्व प्राप्त करने का लक्ष्य रखा। बजट में कुल यातायात प्राप्तियों के रूप में 21 960 करोड़ रुपये का राजस्व प्राप्त करने का निश्चय किया। इसमें से 18 760 करोड़ रुपये के कायकारी व्यय और मूल्यह्रास निधि (Depreciation Fund) और पेंशन निधि में ... योगदान के पश्चात् 2 000 करोड़ रुपये का अतिरेक प्राप्त होने की प्रत्याशा की

1995 96 के संशोधित अनुमान सकल यातायात प्राप्तियों से 22 175 करोड़ रुपये प्राप्त करने की आशा करते हैं। यह आंकड़ा बजट अनुमान से 215 करोड़ रुपये अधिक है। साधारण कार्यकारी व्यय 14 590 करोड़ रुपये आंका गया है जोकि बजट में दिए गए आंकड़े से थोड़ा कम है। मूल्यह्रास निधि को 2 060 करोड़ रुपये और पेंशन निधि को 2 090 करोड़ रुपये का योगदान देने के बाद कुल कार्यकारी व्यय 18 740 करोड़ रुपये बैठता है। 243 करोड़ रुपए विविध राजस्व से प्राप्ति के रूप में जोड़ने के पश्चात् संशोधित अनुमान (Revised estimates) में 3 678 करोड़ रुपये शुद्ध रेलवे राजस्व के रूप में प्राप्त होंगे। सामान्य राजस्व को लाभांश के रूप में 1 318 करोड़ रुपये का योगदान करने के पश्चात् 1995 96 के संशोधित अनुमान में 2 318 करोड़ रुपये का अतिरेक प्राप्त होगा जबकि बजट में यह राशि 2 000 करोड़ रुपये आंकी गयी थी

1996 97 का रेलवे बजट 1996 97 के बजट में माल यातायात और सवारी यातायात के लिए अपेक्षाकृत ऊंचा लक्ष्य तय किया गया है। बजट में कुशलता में लगातार सुधार की मान्यता भी की गई है। इन मान्यताओं और लक्ष्यों के आधार पर कुल यातायात से प्राप्तियों के 24 800 करोड़ रुपए तक बढ़ जाने की आशा है। साधारण कार्यकारी व्यय के 16 423 करोड़ रुपए तक रहने का अनुमान है और इसमें स्टाफ की वार्षिक वेतन वृद्धि सम्बन्धी भुगतान महंगाई भत्ते और रेल क्रियाओं में वृद्धि से सम्बन्धित अनुरक्षण और ईंधन का व्यय शामिल है 1996 97 के बजट में रेलवे मूल्यह्रास आरक्षण निधि में योगदान 2 000 करोड़ रुपए रखा गया है। पेंशन निधि में योगदान को बढ़ाकर 3 150 करोड़ रुपए किया जा रहा है। इसका मुख्य कारण पेंशन प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि और उदारीकरण की नीति के कारण पेंशन निधि से अधिक राशि की निकासी है। अतः इस प्रकार कुल कार्यकारी व्यय बढ़कर 21 573 करोड़ रुपए होने की सम्भावना है और परिणामतः शुद्ध यातायात प्राप्तियों के रूप में 3 227 करोड़ रुपए शेष रह जाएंगे। यदि इनमें विविध राजस्व के रूप में प्राप्त 276 करोड़ रुपए जोड़ लिए जाएं, तो शुद्ध रेलवे राजस्व बनकर 3 503 करोड़ रुपए हो जाएगा। सामान्य राजस्व को लाभांश (Dividend) देने के पश्चात् 1 916 करोड़ रुपए का अतिरेक प्राप्त होने की सम्भावना है।

दरो को बढाकर स्टैंडर्ड दरें निश्चित की गई। लौह तथा इस्पात के लिए विशिष्ट दरें हटा दी गई। इस प्रकार दक्षिण की ओर चीनी की गतिविधि पर दी जाने वाली रियायते भी हटा ली गई। कोयले के भाडे मे 30 प्रतिशत वृद्धि की गई।

भाडे की दरो की तरह स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् सवारी किराए की दरो का भी सुव्यवस्थीकरण किया गया। जनवरी 1948 मे सवारी किरायो को समान मील-आधार पर मानकीकृत (Standardise) किया गया। 1951 मे रेलवे किराये मे 20 से 25 प्रतिशत की वृद्धि की गई। 1955 मे सवारी किरायो (Passenger fares) को दूरेक्षीय किराए ढाचे (Telescopic fare structure) के आधार पर निश्चित किया गया। इन्हे तीन श्रेणियो मे बाटा गया-पहली 150 मील तक, दूसरी 151 से 300 मील तक और तीसरी 301 मील से अधिक। पहली श्रेणी के किराए बढाए गए, दूसरी श्रेणी को वैसे ही छोड दिया गया और तीसरी श्रेणी के किराए कम कर दिए गए। इसके बाद भी रेल के किराए को कई बार बढाया गया।

1957 मे ए रामास्वामी मुदलियार की अध्यक्षता मे एक रेल भाडा जाच समिति नियुक्त की गई। इसने सिफारिश की कि रेल दर ढाचे को निम्नतम से उच्चतम वर्ग के लिए प्रगतिशील बनाना चाहिए। इस कार्य के लिए समिति ने सुझाव दिया कि निम्नतम दर को आधार मानकर अन्य दरो को इसके अनुपात मे व्यक्त किया जाना चाहिए। इस प्रकार तीन श्रेणियो की अपेक्षा समिति ने आठ श्रेणियो की सिफारिश की। सरकार ने इन सुधारो को स्वीकार कर अक्टूबर 1958 मे इन्हे लागू कर दिया।

वर्तमान रेल-भाडे का ढाचा—आज रेलो मे मूलत दो प्रकार से भाडा वसूल किया जाता है। एक भाडा दर तो खाद्यान्नो एव खादो के लिए है जिसके लिए माल डिब्बो के आधार पर दर निश्चित की गई है। इस प्रकार खाद्यान्नो की परिवहन लागत कम कर दी गई है, दूसरी दरें अन्य वस्तुओ के लिए है। फलो, सब्जियो, मिट्टी के तेल और नमक पर विशिष्ट रियायती दरें कायम की गई हैं। इसी प्रकार हाथकर्घा पदार्थों, खादी, किताबो आदि पर भी रियायती दरें दी गई हैं। मोटे तौर पर कुल मिलाकर रेल दरो मे मर्यादित वृद्धि हुई हैं। 1962 के पश्चात् भाडे की दरो को थोडा बढाया गया है।

रेल-दर नीति का मूल्याकन

वर्तमान रेल-दर नीति मे स्वतन्त्रता-पूर्व काल के बहुत से दोष दूर कर दिए गए है। वर्तमान रेल-दर नीति से रेल-वित स्थिति उन्नत हुई है और रेल प्रयोगकताओ के हितो को सतुष्ट किया गया है। अब रेले अपनी पूजी पर सामान्य बजट को एक निश्चित न्यूनतम लाभाश (Minimum dividend) देकर विकास एव मूल्य-ह्रास निधियो (Development and depreciation funds) को काफी योगदान देने लगी हैं। इसके अतिरिक्त वस्तुओ का वर्ग-विभाजन औद्योगीकरण की आवश्यकताओ की दृष्टि से किया गया है। उदाहरणार्थ, कोयले, खनिज तेलो, कच्चे मालो आदि के परिवहन पर भाडे की नीची दरें निश्चित की गई हैं।

दूसरे भाडे की ऐसी दरें निश्चित की गई हैं कि रेलो और सडको के बीच तालमेल हो सके। भारत सरकार ने मुदलियार समिति की सिफारिशो को दृष्टि मे रखकर थोडे फासले पर भाडे को बढाया है ताकि थोडे फासले का यातायात सडको द्वारा किया जा सके। लम्बे फासले पर भाडे को कम करने का उद्देश्य इस क्षेत्र मे रेल यातायात को प्रोत्साहन देना है।

तीसरे यदि भारत मे किराए एव भाडे की वतमान दरो की तुलना समुन्नत देशो मे विद्यमान दरो से की जाए, तो यह कहा जा सकता है कि वे बहुत नीची हैं। यदि रेलवे द्वारा किराए एव भाडे मे की गई कई बार वृद्धि को भी दृष्टि मे रखा जाए, तो भी यह बात सही जान पडती हैं।

5 सडक तथा सडक परिवहन
(Road and Road Transport)

भारतीय अर्थव्यवस्था मे सडक परिवहन का महत्त्व

रेलो की तुलना मे सडक यातायात से कई निश्चित लाभ उपलब्ध होते हैं। प्रथम रेल निर्माण के लिए भारी मात्रा मे पूजी चाहिए। इसके अतिरिक्त, चूँकि रेल के निर्माण एव विस्तार के लिए भारत को विदेशो पर निर्भर करना पडता है अत इस कार्य के लिए विदेशी मुद्रा (Foreign Exchange) की भी आवश्यकता होती है। सडके बनाने के लिए एक तो पूजी की कम मात्रा की आवश्यकता पडती है और दूसरे विदेशो से आयात की आवश्यकता नहीं। चूँकि भारत मे पूजी की कमी है इसलिए रेल निर्माण को अपेक्षा सडक निर्माण को तरजीह देनी चाहिए।

दूसरे सडक परिवहन अधिक तेज, अधिक सुविधाजनक एव अधिक लोचपूर्ण है। सडक परिवहन, विशेषकर छोटे फासले के यातायात के लिए और वस्तुओ की गतिविधि के लिए लाभदायक है। मोटर गाडियाँ, सवारिया एव माल को किसी भी स्थान से एकत्रित कर सकती हैं और वे जहा भी चाहे उन्हे पहुचा सकती हैं। सडक परिवहन द्वारा ही घर-घर से वस्तुओ को एकत्र किया एव पहुचाया जा सकता है। परन्तु रेल मार्ग निश्चित होता है और इसलिए रेलो मे सडक परिवहन की लोचशीलता उपलब्ध नहीं।

यातायात के एक तिहाई का वहन हाता है। राष्ट्रीय प्रमुख मार्ग प्रणाली प्राथमिक सडक ग्रिड (Gr d) है और यह केन्द्र सरकार का दायित्व है। राज्याय पमुख मार्ग और मुख्य जिला सडक द्वितायक सडक प्रणाली का भाग है इसक अतिरिक्त बहुत से ग्राम विकास कायक्रमा के अधान ग्राम सडक बनई जाता हैं जैसे न्यूनतम आवश्यकता कायक्रम ग्राम भूमिहीन रोजगार गारटी कायक्रम राष्ट्राय ग्राम राजगार कार्यक्रम और कमान क्षेत्र विकास कायक्रम इन सबका उद्देश्य सडक निमाण द्वारा ग्रामो को जाडना है

थाठवीं योजना मे सड़क परिवहन के मुख्य क्षेत्र और रणनाति

आठवीं योजना म निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य तय किए गए–

1 राष्ट्रीय प्रमुख मार्गों और राज्याय प्रमुख मार्गो म कमियो को दूर करना ओर सडक नटवक क निरन्तर विस्तार की अपेक्षा इनमे सुधार करना।

2 न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम क आधान ग्रामा को सडको का निर्माण करने पर लगातार बल दत रहना आठवीं योजना के दौरान 30 000 ग्रामा को सडका स जाडना।

3 सडक परिवहन क्षेत्र का उत्पादकता (Productivity) बढाने के लिए सडक प्रणाली म सुधार करना।

4 अधिक यातायात वाले मार्गों को दा या चार उप मार्गों (Lanes) मे बाटना ताकि सडक परिवहन की गति एव उत्पादकता बढाई जा सके।

5 सडक निमाण कायक्रम द्वारा रोजगार जनन करना और

6 ऊर्जा का सरक्षण।

इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिए, आठवीं योजना मे वतमान सडक प्रणाली को विभिन्न उन्नयन कायक्रमा (Upgradation programmes) द्वारा मजबूत बनाने का लक्ष्य रखा गया है ताकि अधिक उत्पादकता प्राप्त की जा सके तेज सफर हो सके और ऊर्जा सरक्षण को भी बढाया जा सके। इसी प्रकार बडे सडक नेटवक मे कमिया दूर का जाएँगी और पुलो का निर्माण किया जाएगा। इसक अतिरिक्त तकनालाजी के आधुनिकाकरण सडका क अनुरक्षण पर बल दिया जाएगा।

सवारी एव माल यातायात मे भारी वृद्धि के कारण राष्ट्राय प्रमुख मार्गों मे भारी सुधार करने का आवश्यक्ता है इनमे एक लेन से दो लेन बनान दा से चार लेन (Lane) बनाने और कुछ स्थितयो म एक्सप्रेस मग बनाने हाग। 1991 की कीमतो पर इन मदो पर 41 000 कराड रुपए क व्यय का अनुमान लगाया गया है। परन्तु योजना आयोग ने साधना म कमा क कारण 2 60८ कराड रुपए के केन्द्रीय व्यय का आठवा याजना मे प्रावधान किया है। साधनो की इस कमा का ध्यान म रखते हुए सडक निमाण म निजी क्षेत्र Fr ८e e का सहयोग प्राप्त किया जाएगा।

राज्याय क्षेत्र म न्यूनतम आवश्यकता कायक्रम के अन्तगत आन वाला सडका तथा पुलो क लिए ग्रामाण सडका क लिए ६० करोड रुपए सहित 10 610 करोड रुपए क पारव्यय का प्रावधान है

सडक प्रणाला का उन्नत करन के लिए अभा बहुत कुछ करना बाका है दश म कुल सडक माग का केवल आधा अच्छा सतह वाला है राष्ट्राय प्रमुख मार्गो म भी 30 प्रतिशत लम्बाई म एक हा लन Lane है देश के 36 प्रतिशत गाव सडका स जुड हुए नहीं है ओर 65 प्रतिशत ग्रामो म सभा मौसमा वाला सडका नहा है अत कुल सडक प्रणाला क्षमता सामावन्धना म जकडी हुई है इस पर वहना का भाड बढ जाता है और इधन का अपव्यय हाता है

भारत म सडक परिवहन (Poad Transport in India)

जबकि ४5 म मोटर गाडिया (टको एव छाटी गाडिया का सख्या ३ लाख था यह 993 94 तक तजा स बढकर 8 लाख हा गई इसा अवधि क दौरान बसो का सख्या ३4 स बढकर 00 000 हो गयी और टको की सख्या 8 स बढ कर 0 लाख से भी अधिक हो गया किन्तु कराधान का ऊचा दरा ओर तल का कामता म भारी वृद्धि क कारण सडक पारवहन का विकास कुछ हद तक सामित रहा है बहुत सा समितियो द्वारा दिए गए प्रस्तावो का काइ लाभ नहा हुआ अनौपचारिक अनुमान के अनुसार दश म चलन वाला माटर गाडियाे पर कराधान भार सभवत विश्व म सवस अधिक है कन्द्र और राज्य दोनों ने कर लगान म एक हाड सा लगा रखा है परन्तु दोना हा सडक निर्माण एव सडक अनुरक्षण (Road ma nt nance) की सुविधाए उपलब्ध करान मे विफल रहे है।

सड़क परिवहन का राष्टायकरण (Nationalisation of Road Transport)

सडक परिवहन का अब राज्याय सरकार निजी पूनागत एव सहकारा सामतिया भा चलाती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति क बाद बहुत सा राज्याय सरकारो न सडक परिवहन (बसा) का या ता आशिक रूप म या पूर्ण रूप म राष्टायकरण कर दिया है। राज्याय सरकार अब अधिकाधिक मार्गो का राष्ट्रायकृत परिवहन के आधान ला

रही हैं। बस-परिवहन के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में मुख्य तर्क निम्नलिखित हैं–

(1) सड़क परिवहन एक सार्वजनिक उपयोगी सेवा (Public utility service) है और इसलिए हमें इसे राज्य आधीन लाना चाहिए। (2) सड़क परिवहन से राज्य को काफी आय प्राप्त हो सकती है जिसे आर्थिक विकास के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। (3) राष्ट्रीयकरण द्वारा रेलवे और सड़क परिवहन के बीच समन्वय करने में आसानी हो सकती है। इससे विभिन्न कम्पनियों के बीच प्रतिस्पर्द्धा को भी समाप्त किया जा सकता है। (4) इससे बड़े पैमाने के उत्पादन में भी लाभ प्राप्त होंगे। वे सुविधाएँ, जो छोटी बस कम्पनियों को उपलब्ध नहीं बड़े पैमाने पर चलाई जाने वाली राज्यीय कम्पनियों को उपलब्ध होंगी। (5) राज्यीय कम्पनियों द्वारा सवारियों को अधिक सुविधाएं उपलब्ध कराई जा सकती हैं और कर्मचारियों के काम की दशाएं भी उन्नत की जा सकती हैं।

आज भारत में 60 राज्यीय सड़क परिवहन उद्यम (State Transport Undertakings) हैं जिनके पास मार्च 1994 के अन्त तक 1.02 लाख बसें थीं। इनमें 5 000 करोड़ रुपए का विनियोग हुआ था और इनमें 15 लाख व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त था। इनमें प्रतिदिन 450 लाख सवारियाँ यात्रा करती थीं।

राज्यीय सड़क परिवहन उद्यमों की संचालन कुशलता (Operating efficiency) बहुत ही कम है। इनके वित्तीय परिणाम बहुत ही निराशाजनक हैं और 1990 91 में इन्हें 470 करोड़ रुपए की हानि हुई। इस हानि के मुख्य कारण हैं *अत्यधिक अकुशलता घटिया परिपोषण लागत पर* आधारित किराया पद्धति का अभाव और आदानों की कीमतों में परिवर्तन के अनुरूप किराये में समय पर परिवर्तन न करना अलाभकर मार्गों को सामाजिक कारणों आदि के आधार पर चलाते रहना आदि। जबकि निजी चालक (Private operators) खूब मुनाफा कमा रहे हैं राज्यीय सड़क परिवहन उद्यम घाटे पर चल रहे हैं और भारी घाटे इकट्ठे करते चले जा रहे हैं और इनके भार को सामान्य करदाता को सहन करना पड़ता है इसका कुल संचयी घाटा 2 500 करोड़ रुपये हो गया है

राष्ट्रीय परमिट योजना (Nation al [illegible])

परिवहन गर्म [illegible] सीमाबन्धन [illegible] 20 सूत्री [illegible] इन सामाबन्धना को हटाने के उद्देश्य से राष्ट्रीय परमिट योजना चालू की गई। इस योजना के आधीन प्रत्येक राज्य या संघीय क्षेत्र द्वारा जारी किए जाने वाले राष्ट्रीय परमिटों की संख्या केन्द्र सरकार द्वारा तय की जाती है। आरम्भ में लगभग 5 300 परमिट जारी किए गए। राष्ट्रीय परमिट योजना के आधीन मालगाड़ियों को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बिना रुकावट लम्बी दूरी की गतिविधि होने लगी है।

इस सम्बन्ध में अन्त राज्यीय परिवहन आयोग (Inter state Transport Commission) ने अन्त राज्यीय मार्गों पर माल एवं सवारी सेवाओं के संचालन के लिए राज्यों एवं संघीय क्षेत्रों को पारस्परिक प्रबन्ध करने में सहायता दी है। इसने क्षेत्रीय परमिट योजना (Zonal Permit Scheme) चालू की है जिसके आधीन राष्ट्रीय एवं राज्यीय प्रमुख मार्गों पर किसी एक स्थान पर अदा करने के बाद सार्वजनिक माल ढोने वाली गाड़ियों की सीमित संख्या को बेरोकटोक आने जाने की इजाजत मिल जाती है। राष्ट्रीय परमिट योजना इस प्रक्रिया को और आगे बढ़ाने का प्रयत्न करेगी।

सड़क परिवहन की समस्याएँ

भारत में वाणिज्यिक गाड़ियों की थोड़ी संख्या के अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण समस्या यह है कि मोटर-परिवहन के बहुत से चालक (Operators) हैं। सड़क पुनर्गठन परिवहन (मसानी) समिति ने यह अनुमान लगाया कि कुल 48 000 चालकों में से 46 000 ऐसे हैं जिनके पास पांच से कम गाड़ियां हैं। कुल सवारी परिवहन का लगभग तीन-चौथाई भाग निजी चालकों (Private operators) के हाथ में है। चालकों की इतनी बड़ी संख्या के कारण अकुशलता उत्पन्न होती है और नियन्त्रण एवं विनियमन उपायों को लागू करना कठिन हो जाता है।

दूसरे मोटर ट्रांसपोर्ट को अनावश्यक प्रतिबन्धात्मक उपायों (Restrictive measures) के आधीन कार्य करना पड़ता है। इनमें मोटर गाड़ी अधिनियम (Motor Vehicles Act) सिद्धान्तों एवं व्यवहारों की नियमावली भी शामिल है प्रत्येक राज्य में अपने प्रतिबन्धात्मक उपाय हैं। इसके अतिरिक्त सड़क परिवहन पर बहुत से और भारी कर भी लगाए गए हैं आयात शुल्क बिक्री कर रजिस्ट्रेशन फीस मोटर गाड़ी कर और चालू पुर्जों (Spare parts) पर आयात शुल्क और बिक्री कर आदि। सड़क परिवहन पर पथ करों (Toll taxes) और महसूल चुंगी (Octroi Duties) का भी प्रभाव पड़ता है। इन करों के भार को कम करना चाहिए

[illegible] सड़क परिवहन की परिचालन लागत (Cost [illegible]) भी बहुत अधिक है। इसका कारण कुछ हद तक तो विभिन्न शुल्क एवं कर हैं और कुछ हद तक खराब सड़कें हैं जिनके कारण दुर्घटनाएँ अधिक होती हैं मशीनरी की घिसावट बढ़ती है और ईंधन की अधिक मात्रा का प्रयोग होता है।

इन कठिनाइयों के होते हुए भी सड़क परिवहन तेजी

से तरक्की कर रहा है और इसका भविष्य उज्ज्वल है। रेल परिवहन पर अधिक दबाव के कारण और विभिन्न प्रकार के परिवहनो के समन्वित विकास (Co ordinated development) के कारण राजकीय क्षेत्र के लिए यह आवश्यक है कि उत्तरवर्ती योजनाओ मे माल ढोने वाली मोटर गाड़ियों को अपने हाथ मे ले।

6 रेल सडक समन्वय (Rail Road Co ordination)

रेलें और सडके परिवहन के अन्य साधनो को अपेक्षा एक दूसरे की पूरक हैं और इस प्रकार एक दूसरे की सहायक हैं। सडक परिवहन द्वारा किसी स्थानीय मण्डी एव निकटतम रलवे स्टेशन से सम्पर्क स्थापित करते है। इसके विरुद्ध रेलो द्वारा उत्पादन के दूर दूर केन्द्रो और उपभोक्ताओ से सम्पर्क स्थापित किया जाता है। किन्तु रेले अच्छी और पर्याप्त सडको के बिना काफी उत्पादन एकत्र नहीं करा सकतीं। साथ ही यह भी सत्य है कि अच्छी से अच्छी सडके भी फसलो लौह तथा इस्पात सीमट कोयले और अन्य भारी वस्तुओ को उत्पादको से अन्तिम उपभोक्ताओ तक नहीं पहुचा सकतीं। इस प्रकार रेले और सडक पूरक हैं। किन्तु वे सभी स्थानो पर प्रतिस्पर्द्धी (Competitive) बन गई हैं। पिछले 40 वर्षों से यह प्रयास किया गया कि स्पर्द्धा का कम करके रेलो एव सडको से समन्वय कायम किया जाए।

सड़क परिवहन की स्वाभाविक श्रेष्ठता

बस और लॉरी कम्पनिया रलो के साथ सवारी तथा माल यातायात आकर्षित करने मे स्पर्द्धा कर सकती हैं। मोटर परिवहन कई ऐसी सुविधाए उपलब्ध करा सकता है जो रेलवे परिवहन के लिए सम्भव नहीं–उदाहरण के लिए घर घर से माल एकत्र करना और पहुचाना समय सारणी (Time table) मे अधिक लोच तेज परिवहन आदि। सडक परिवहन के इन लाभो ने इसे व्यापारी वर्ग के लिए बहुत लोकप्रिय बना दिया है। जहा पर थोडा माल भेजना हो वहा तो सडक परिवहन ही उचित है। डेविड हियूस (David Hughes) के अनुसार सडक परिवहन द्वारा कई बार हमारी परिवहन लागत आधी हो जाती है और माल पहुचाने का समय बहुत हद तक बच जाता है। इसके अतिरिक्त रेल की तुलना मे सडक से माल मगवाने का एक लाभ यह भी है कि इसमे चोरी नहा होती। कोई हानि कोई कष्ट या पैकिंग की खर्चीली विधि का भी प्रयोग नहा होता। सडक परिवहन के लाभ पर बल देते हुए मसानी समिति ने लिखा सडक परिवहन रल परिवहन से लगभग तीन गुना तेज है और भूतकाल का तुलना म इसे भविष्य म बडे पैमाने पर विकसित करना होगा।'

सडक परिवहन की श्रेष्ठता का एक और कारण यह भी है कि रल परिवहन का कुछ मूल अलाभो के आधीन कार्य करना पडता है। उदाहरणार्थ रेल कर्मचारियो के घण्टे निश्चित हैं। रेलो को सामाजिक एव राष्ट्रीय उद्देश्यो के लिए यात्रा सम्बन्धी रियायते देनी पडती है। उन्हे सभी प्रकार के यातायात को स्वीकार करना पडता है और इसमे चुनाव नहीं कर सकतीं। उन्हे खाद्यान्नो सीमेंट कोयला खाद और अन्य वस्तुओ पर विशेष रियायते देनी पडती है क्योकि वे नीची भाडा दर ही बरदाश्त कर सकती है। रेलो को देश के हितो के लिए यदि हानि भी सहन करनी पडे तो भी वे कार्य करती हैं। अत एक सार्वजनिक उपयोगी उद्यम होने के नाते रेलो को अलाभकारी मार्गों के सचालन मे उपनगरीय (Sub urban) एव अन्य शहरी यातायात में, निम्न दर पर ढुलाई वाले माल के परिवहन मे और निर्यात व्यापार आदि के लिए दी गई रियायतो के रूप मे हानि सहन करनी पडी। युद्ध के उद्देश्य से जो रेल मार्ग बनाए जाते हैं उनमे हानि होती है। इन्हे अनिवार्य वस्तुओ को प्राथमिकता के आधार पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना पडता है। उदाहरणार्थ रेलो को अकाल क्षेत्रो मे खाद्यान्न और चारा पहुचाने के लिए भी हानि सहन करनी पडी। इसके लिए बहुत सी सवारी गाडियो को काटना पडा और बहुत से उच्चदर वाले सामान्य यातायात को छोडना पडा। 1993 94 मे अलाभकारी लाइनो पर रेले चलाने के लिए 30 10 करोड रुपए की हानि सहन करनी पडी। ये सभी बाते सिद्ध करती हैं कि रेले अपने सामाजिक दायित्व के कारण सडक परिवहन की तुलना मे उतने ही लाभो के आधार पर कार्य नहा कर सकतीं।

रलो को सडक परिवहन की प्रतियोगिता से बचाने के उपाय

1930 40 के दशक मे बहुत सी समितियो ने रेल–परिवहन और मोटर परिवहन मे प्रतियोगिता के प्रश्न पर विचार किया। एक महत्त्वपूर्ण सुझाव तो यह था कि रेलो को अपनी सेवाओ मे सुधार कर सडक परिवहन से प्रभावी रूप मे प्रतियोगिता करना चाहिए। उदाहरणार्थ रेलो को बस सर्विस चलानी चाहिए, शटल गाडियाँ चलानी चाहिए, अपनी सारणा म सुधार करना चाहिए। सस्ते वापसी टिकट और तीसर दर्जे क मासमी टिकट और बारातो आदि के लिए रियायत देनी चाहिए। इसी प्रकार कच्च माल यातायात क सम्बन्ध म रलो को काम शीघ्रतापवक करना चाहिए, —ने तराको को सरल बनाना चाहिए, माल पहुचाने और

1 Quoted by Road Traansport Re organ sation (Masani) Comm ttee p 6

2 Ibid p 40

विकासशील अर्थव्यवस्था में इनका महत्त्व और भी बढ जाता है। रेल और सडक-परिवहन के बीच स्पर्धा और समन्वय करने के प्रश्न पर दो मत हैं। सही बात तो यह होगी कि इन दोनो प्रणालियो के लाभो को दृष्टि मे रखकर दोनो का विकास किया जाए। इनमे दोहरी सेवाए कायम करने की अवश्यकता नहीं और न ही इनमे व्यर्थ की प्रतिस्पर्द्धा बढाने मे कोई तुक है। सार्वजनिक प्राधिकारी को सावधानी से ऐसी योजना बनानी चाहिए कि इन दोनो सेवाओ के विकास मे पूजी साधनो का इस प्रकार प्रयोग हो सके कि इससे जनता के लिए पर्याप्त परिवहन सेवाए उपलब्ध कराई जा सके। आर्थिक विकास क सदर्भ मे भारत दोहरी परिवहन सेवाओ के निर्माण मे ससाधनो के व्यर्थ-व्यय का सामर्थ्य नहीं रखता।

7 भारत मे जल-परिवहन
(Water Transport in India)

जल परिवहन दो प्रकार का है–अन्तर्देशीय जल परिवहन और समुद्रतटाय जल-परिवहन।

अन्तर्देशीय जल परिवहन (Inland Water Transport)

देश की परिवहन व्यवस्था मे नदी तथा नहरो के परिवहन ने काफी योगदान किया है परन्तु पिछली शताब्दी के मध्य के पश्चात्, रेल-परिवहन पर अधिक बल देने और नदियो के पानी का प्रयोग सिचाई के लिए करने के परिणामस्वरूप जल-परिवहन को क्षति हुई है। आज भी असम पश्चिमी बगाल और बिहार मे अन्तर्देशीय जल-परिवहन का विशेष महत्त्व है। असम और कलकत्ता के बीच कुल 25 लाख टन यातायात (Traffic) मे से लगभग आधा भाग जल-परिवहन द्वारा और शेष भाग रेल और सडक-परिवहन द्वारा ले जाया जाता है। अन्तर्देशीय जल परिवहन का केरल मे बहुत महत्त्व है। यह परिवहन उडीसा आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडु म भी कुछ महत्त्व रखता है।

भारत मे विभिन्न प्रकार की नदियो नहरो आदि के आधार पर कुल जल-परिवहन 14 500 किलोमीटर पर हो सकता है जिसका केवल 5 200 किलोमीटर मुख्य नदियो और 485 किलोमीटर मार्ग ऐसा है जो कि यन्त्रीकृत वाहनो के लिए उचित माना जा सकता है। पर जहा कहीं जल-मार्ग उपलब्ध भी हैं, वहा भी विभिन्न सीमाबन्धनो के कारण इनकी सामर्थ्य का पूर्ण प्रयोग नहीं किया जा रहा है।

पहली दो योजनाओ मे अन्तर्देशीय जल-परिवहन की उपेक्षा की गई और एक करोड से भी कम रुपया इस पर व्यय किया गया। 1959 मे अन्तर्देशीय जल-परिवहन समिति की रिपोट के आधार पर अन्तर्देशीय जल-मार्गों के विकास की दीर्घकालीन योजनाए तैयार की गईं। इनके आधार पर तीसरी योजना मे 7 5 करोड रुपए की लागत का विकास कार्यक्रम तैयार किया गया। चौथी योजना मे अन्तर्देशीय जल परिवहन के विकास के लिए 11 करोड रुपए खर्च किए गए। सशोधित पाचवीं योजना मे जल परिवहन पर लगभग 25 करोड रुपए खर्च करने की व्यवस्था की गई। छठी योजना मे इस परिवहन व्यवस्था को प्रोन्नत करने के लिए 43 करोड रुपए की राशि रखी गई। सातवीं योजना मे जल-परिवहन पर 226 करोड रुपए के व्यय का प्रस्ताव है।

आठवीं योजना में अन्तर्देशीय जल परिवहन पर 226 करोड रुपए व्यय करने का प्रस्ताव है। इस योजना का मुख्य बल (*i*) ऐसे क्षेत्रों मे इस परिवहन का विकास करना है जिनमे इसे प्राकृतिक लाभ है। (*ii*) दो राष्ट्रीय जलमार्गो का विकास करना-गगा और ब्रह्मपुत्र जलमार्ग। (*iii*) अन्तर्देशीय वाहनो का आधुनिकीकरण एव अपनी उपयोगिता पूरी कर चुके वाहनो का प्रतिस्थापन (*iv*) बेहतर वाहनो को प्राप्त करने के लिए निजी उद्यमकर्त्ताओ को ब्याज-रूपी-साहाय्य (Interest subsidy) जारी रखा जाएगा। टर्मिनल कायम करने के लिए भी निजी सहयोग प्राप्त किया जाएगा।

भारतीय जहाजरानी (Indian Shipping)

भारतीय जहाजरानी अभी अपनी शैशव अवस्था मे है। कारण यह है कि जहाजरानी का जो कुछ भी विकास हुआ है वह केवल स्वतन्त्रता के बाद के काल मे हुआ है। स्वतन्त्रता के पूर्व भारतीय जहाजरानी कम्पनियाँ सफल न हो सकीं क्योकि इनके विरुद्ध विदेशी जहाजरानी कम्पनियाँ घोर प्रतिस्पद्धा करती थीं और भारत के विदेशी शासक इनका सरक्षण नहीं करते थे। भारत को स्वतन्त्रता के समय केवल 42 जहाज थे जिनकी कुल सामर्थ्य 1 लाख टन (कुल पजीकृत भार) थी। भारतीय जहाज अपने समुद्र-पार व्यापार (Overseas trade) का केवल 2 प्रतिशत ले जाते थे।

जहाजरानी का विकास–1947 मे भारत सरकार ने जहाजरानी नीति समिति नियुक्ति की जिसने राष्ट्रीय जहाजरानी नीति अपनाने की सिफारिश की। भारत का समुद्र-तट 6,700 किलोमीटर लम्बा है। भारत म 1990–91 के दौरान 50,000 करोड रुपए की वस्तुओ का आयात एव निर्यात हुआ। तीव्र आर्थिक विकास के साथ अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के निरन्तर बढने की आशा की जा सकती है। यह सारा व्यापार विदेशी जहाजरानी कम्पनियो के हाथो मे जाता है जो जहाजरानी के भाडे के रूप मे बहुत पैसा कमाती हैं। भारत के हित की दृष्टि से यह आवश्यक है कि यदि सारा नहीं, तो अन्तराष्ट्रीय व्यापार का कुछ भाग तो अवश्यक ही अपने जहाजो में जाए। इससे भारत विदेशी मुद्रा की बचत भी कर पाएगा जोकि आज यह विदेशी जहाजरानी

कम्पनियों को देता है। इसके अतिरिक्त, इतिहास हमें यह शिक्षा देता है कि जहाजरानी के सम्बन्ध मे विदेशों पर निर्भरता कठिन समय मे देश के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। इसीलिए तो जहाजरानी नीति समिति ने यह सिफारिश की कि (क) भारत अपने शत-प्रतिशत तटीय व्यापार के परिवहन की व्यवस्था करे, और (ख) भारत अपने पडोसी देशों से अर्थात् बर्मा, लका आदि के साथ 75 प्रतिशत व्यापार और समुद्र पार देशों से 50 प्रतिशत व्यापार अपने जहाजो मे करे।

आरम्भिक वर्षों मे धीमी प्रगति के बावजूद भारतीय जहाजरानी सामर्थ्य का पिछले दो दशको मे महत्त्वपूर्ण विकास हुआ है। भारत के समुद्र-पार व्यापार से भारतीय जहाजरानी के भाग मे लगातार वृद्धि हुई है और कुल मिलाकर आज यह 31 प्रतिशत है। 1950-51 और 1984-85 के दौरान कुल पजीकृत भार के रूप मे भारतीय जहाजरानी की सामर्थ्य जो 1950-51 मे केवल 4 लाख टन थी बढकर 1984-85 मे 60 लाख टन हो गई। छठी योजना (1980-85) मे जहाजरानी की कुल सामर्थ्य 1984-85 मे 78 लाख टन लक्ष्य के विरुद्ध वास्तविक के रूप में केवल 60 लाख टन थी।

सातवीं योजना के दौरान 75 लाख टन सामर्थ्य कायम करने का लक्ष्य रखा गया किन्तु उपलब्धि थोडी कम रही–1991-92 मे 59 लाख टन। इसका मुख्य कारण भाडा बाजार मे कमजोरी था जिसके कारण भारतीय जहाजरानी कम्पनियाँ अपने टन-भार को बढाने के लिए पर्याप्त मात्रा मे राशि जुटा न सकीं।

चाहे भारतीय जहाजरानी सामर्थ्य मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है फिर भी यह बहुत से समुद्र-तटीय देशों के साथ अनुकूल रूप मे तुलनीय नहीं है। आज भारतीय जहाजरानी विश्व के कुल बेडे का केवल 1 प्रतिशत है चाहे सत्तर के दशक (1970-80) के दौरान काफी अच्छी प्रगति-दर बनी रही और लगभग 37 लाख टन कुल पजीकृत भार (Gross Registered Tonnage) की अतिरिक्त वृद्धि हुई किन्तु छठी और सातवीं योजना की अवधि मे यह प्रगति-दर धीमी पड गयी। इसका मुख्य कारण भारतीय जहाजरानी उद्योग में एक लम्बे प्रतिसार का बने रहा था जिसका इस उद्योग को लगातार कई वर्षों तक सामना करना पडा।

जहाजरानी के विकास मे सरकारी सहयोग

भारत सरकार ने जहाजरानी के विस्तार को उच्च प्राथमिकता दी क्योंकि इससे विदेशी मुद्रा की बचत होती है। सरकार ने दो जहाजरानी कम्पनिया स्थापित कीं—पूर्वी जहाजरानी निगम (Eastern Shipping Corporation) जो आस्ट्रेलिया और सदूर-पूर्व म कार्य करती है और पश्चिमी जहाजरानी कम्पनी (Western Shipping Corporation) जो इडो-पर्शियन गल्फ, इडियन रेडसी और भारत-पोलैण्ड के मार्गों पर कार्य करती है। 1961 में इन दोनो निगमो का विलयन किया गया और भारतीय जहाजरानी निगम की स्थापना (Shipping Corporation of India) की स्थापना की गयी। मार्च 1994 के अन्त पर इस निगम के पास 160 जहाज थे जिनकी कुल भार-क्षमता 40 लाख टन थी। यह निगम विश्व के सबसे बडे निगमो में गिनी जाती है। यह अब विश्व के सभी महत्त्वपूर्ण समुद्री-व्यापार के मार्गों पर कार्य करती है।

भारत के पास चार प्रमुख जहाज-निर्माण स्थल हैं–वे विशाखापटनम कलकत्ता बम्बई और कोचिन में स्थित हैं। जहाजरानी उद्योग के विकास के एकीकृत अग के रूप में, बन्दरगाहो, छोटे पत्तनो एव प्रकाश स्तम्भों (Light houses) का विकास भी किया जा रहा है।

छठी योजना (1980-85) के दौरान इस उद्देश्य के लिए 720 करोड रुपए के परिव्यय की व्यवस्था की गई। सातवीं योजना मे भारतीय जहाजरानी पर 826 करोड़ रुपए के परिव्यय की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त बन्दरगाहो एवं प्रकाश स्तम्भो के विकास के लिए 1,260 करोड रुपए का प्रावधान किया गया है। आठवीं योजना में जहाजरानी उद्योग पर 3,400 करोड रुपए के व्यय का प्रस्ताव है।

भारतीय जहाजरानी की समस्याएँ–भारतीय जहाजरानी की पहली समस्या भार-सामर्थ्य (Tonnage capacity) का अपर्याप्त होना है। दूसरे, विदेशी मुद्रा *(Foreign exchange)* की कमी के कारण जहाजरानी के विकास मे गम्भीर कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं क्योंकि जहाजरानी के विकास मे विदेशी मुद्रा की भारी आवश्यकता पडती है। तीसरे, भारतीय जहाजरानी उद्योग की परिचालन लागत (Operating cost) काफी अधिक है। चौथे, भारतीय जहाजरानी कम्पनियो को अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियो से प्रतियोगिता का सामना करना पडता है। भारत सरकार जहाजरानी कम्पनियो की कठिनाइयो के बारे मे सजग है और इन्हें दूर करने के प्रयास कर रही हैं। चाहे काफी प्रगति हुई है परन्तु यह स्थिति सतोषजनक नहीं।

इस सदर्भ मे हमे तटीय जहाजरानी (Coastal shipping) की समस्याओ का उल्लेख करना जरूरी है। भारत का समुद्र-तट 7 517 किलोमीटर से कुछ अधिक लम्बा है। परन्तु विभिन्न कारणो के परिणामस्वरूप, तटीय जहाजरानी मे समय के साथ-साथ गिरावट आई है। उदाहरणार्थ 1956 में तटीय जहाजरानी क्षेत्र मे कुल 97 जहाज थे जिनकी कुल भार-सामर्थ्य 2 4 लाख टन थे। 1966 तक अर्थात् अगले 10 वर्षों मे इन जहाजो की सख्या

बढ़कर 99 और सामर्थ्य 3.2 लाख टन हो गई। इसके बाद इसमें गिरावट आनी शुरू हो गई। 1984-85 मे, कुल 56 जहाज परिवहन के लिए उपलब्ध थे और उनकी भार-सामर्थ्य केवल 3.5 लाख टन रह गई। तटीय जहाजरानी को प्रभावित करने वाले मुख्य कारण हैं-ऊंची परिवहन लागते, बन्दरगाहो पर विलम्ब, यान्त्रिक परिवहन सुविधाओ आदि का अभाव।

8. नागरिक विमान परिवहन
(Civil Aviation)

नागरिक विमान परिवहन की वास्तविक प्रगति 1920 में चालू हुई जब सरकार ने कुछ हवाई अड्डे बनाए। नागरिक विमान-परिवहन विभाग 1927 मे स्थापित किया गया और बहुत से उड्डयन क्लब (Flying Club) कायम किए गए किन्तु प्रगति बहुत धीमी थी। दूसरे विश्व युद्ध के काल मे और इसके बाद काफी प्रगति हुई। बहुत-से हवाई जेहाज खरीदे गए, नई सेवाएं चालू की गई और उनकी उड़ानें बढ़ाई गईं। 1948 मे सरकार ने अपनी विमान परिवहन नीति (Aviation Policy) की घोषणा की जिसके अनुसार आन्तरिक और बाहरी सेवाओ को कुछ निजी वाणिज्यिक कम्पनियो (Private Commercial Concerns) को सहायता देने का विश्वास दिलाना था। 1946 मे, सरकार ने वायु-परिवहन लाइसेंस बोर्ड स्थापित किया। इस कारण 11 वायु परिवहन कम्पनियाँ कायम हो गईं जिससे कम्पनियो को भारी नुकसान हुए।

1950 में वायु परिवहन जाच समिति (राजाध्यक्ष समिति) नियुक्त की गई। इस समिति ने यह सिफारिश की कि सभी कम्पनियो का समन्वय कर चार कम्पनिया बना देनी चाहिए ताकि सघाती प्रतियोगिता को समाप्त किया जा सके और प्रदेशानुसार कार्य बाटा जा सके। चूंकि निजी कम्पनियाँ स्वेच्छापूर्वक विलयन के लिए तैयार नहीं थीं, भारत सरकार को नागरिक विमान परिवहन का राष्ट्रीयकरण करना पड़ा। इसके तीन मुख्य कारण थे-(1) राष्ट्रीयकरण से परिचालन कुशलता (*Operational efficiency*) बढ़ जाएगी। (2) इससे नागरिक विमान परिवहन की अच्छी व्यवस्था हो सकेगी और इस प्रकार सरकार को प्रशिक्षित तकनीशियन, पायलट आदि मिल सकेंगे, और (3) इससे सेवाओ का दोहरापन कम हो सकेगा और इस प्रकार लागत कम हो जाने से हानि घटाई जा सकेगी।

1953 मे सरकार ने वायु-परिवहन निगम अधिनियम (Air Transport Corporation Act) पास किया जिसके आधीन इण्डियन एयरलाइन्स कारपोरेशन आन्तरिक वायु सेवा के लिए, एयर इण्डिया इण्टरनेशनल विदेशी वायु सेवा के लिए स्थापित की गई। राष्ट्रीयकरण के पश्चात् सभी दिशाओ मे प्रगति हो रही है। नए हवाई अड्डे बनाए जा रहे हैं। पहली तीन योजनाओ मे नागरिक विमान परिवहन पर 49 करोड़ रुपए व्यय किए गए। चौथी योजना मे नागरिक वायु परिवहन के लिए 202 करोड़ रुपए की व्यवस्था की गई। पाचवीं योजना मे इसके लिए 335 करोड़ रुपए व्यय करने का प्रस्ताव था। छठी योजना (1980-85) मे नागरिक विमान-परिवहन के लिए 760 करोड़ रुपए की व्यवस्था की गई।

इन सब प्रयासो के परिणामस्वरूप 1985 मे, नागरिक विमान-परिवहन के आधीन 1,050 लाख किलोमीटर उड़ान की गई, इसमे 108 लाख यात्रियो ने सफर किया और 1,279 लाख किलोग्राम माल का परिवहन किया गया। सातवीं योजना मे नागरिक विमान-परिवहन के लिए 760 करोड़ रुपए की व्यवस्था की गई है। आठवीं योजना (1992-97) मे नागरिक विमान परिवहन पर 3,998 करोड़ रुपए के परिव्यय का प्रस्ताव है।

45

भारतीय वाणिज्य बैंक व्यवस्था
(INDIAN COMMERCIAL BANKING)

भारत मे कई प्रकार के बेक पाए जाते हे। इनमे से प्रत्येक किसी न किसी विशिष्ट क्षेत्र का कार्य करता है। देशी बेकर तो बेक-कार्य के साथ व्यापार तथा कमीशन एजेन्ट का कार्य करते हे। वाणिज्य बैंको मे दो प्रकार के बैंक शामिल हे (क) भारतीय वाणिज्य बैंक (जिन्हे सामान्यतया सयुक्त स्कध बेक (Joint Stock Banks) भी कहा जाता है) आन्तरिक व्यापार वाणिज्य तथा उद्योग मे विशिष्ट कार्य करते हे और (ख) विदेशी वाणिज्य बेक-जिन्हे सामान्यतया विनिमय बेक (Exchange Bank) कहते है भारत मे विदेशी व्यापार एव वाणिज्य का विशिष्ट कार्य करते हे। इन सब बैंको के ऊपर रिजर्व बेक ऑफ इण्डिया है जो देश का केन्द्रीय बेक है। हम इस अध्याय मे इन सस्थानो का सक्षेप मे अध्ययन करेंगे।

1. देशी बैक-व्यवस्था
(Indigenous Banking)

चाहे भारत मे पश्चिमी प्रकार की वाणिज्य बैंक-व्यवस्था का विकास तो हाल ही मे हुआ है, भारत मे बैंक-प्रणाली तो इससे पहले भी प्रचलित थी। प्राचीन काल से ही भारत मे देशी बैंक-प्रणाली एक पारिवारिक या वैयक्तिक व्यापार-सघटन के रूप मे सगठित की गई। देशी बैकरो को भारत के विभिन्न नामो से सम्बोधित किया जाता है अर्थात् सर्राफ सेठ साहूकार, महाजन, चेट्टी आदि। इनका व्यापार छोटे पैमाने के महाजनो से बडे सर्राफो द्वारा किया जाता है। कुछ के व्यापार का आकार तो कुछ अनुसूचित बैंको (Scheduled Bank) के व्यापार-कार्य से भी अधिक है।

देशी बैंकरो की क्रियाएँ (Operations of Indigenous Bankers)

देशी बैंकर रुपया उधार देते हे और वे हुण्डियो या आन्तरिक विनिमय-पत्रो (Internal bills of exchange) द्वारा भारत के आन्तरिक व्यापार का वित्त प्रबन्ध करते हैं। देशी बैंकर तीन प्रकार के हैं-(क) वे जिनका मुख्य कार्य बेकिग है, (ख) वे जो अपने बैंक-कार्य के साथ व्यापार एव कमीशन का कार्य भी करते हैं, और (ग) वे जो मुख्यत व्यापारी और कमीशन एजेन्ट हैं परन्तु जो थोडा-सा बैंक कार्य करते है। देशी बैंकरो मे से अधिकाश द्वितीय श्रेणी के हैं।

देशी बैंकरों का सगठन सामान्यतया एक पारिवारिक फर्म के रूप मे होता है। वे अपनी कार्यकारी पूजी लगाते हैं। देशी बैंकर सयुक्त स्कध बैंको की भाति जनता से जमा (Deposits) स्वीकार नही करते (इस दृष्टि से उन्हे बैंक नही कहा जा सकता) परन्तु कुछ विशेष परिस्थितियो मे उनमे से कुछ अपने मित्रो एव सम्बन्धियो से जमा स्वीकार करते हे। वे सभी प्रकार की प्रतिभूतियो (Securities) अर्थात् स्वर्ण जवाहरात, भूमि, प्रतिज्ञा-पत्रो (*Promissory* Notes) हुण्डियो आदि के विरुद्ध उधार देते हैं। वे उधार प्राप्तकर्ताओ की वैयक्तिक प्रतिभूति के विरुद्ध भी उधार देते है। वे हुण्डियो का क्रय-विक्रय एव बट्टा भी करते हैं। वे भारत के आन्तरिक व्यापार केन्द्रो और बन्दरगाहो के बीच ग्रामो से फसलो की गतिविधि के लिए वित्त उपलब्ध कराते हैं। वे ग्रामीण उत्पादन का क्रय करते हैं और वे योरोपियन वाणिज्य फर्मो के क्रेता तथा वितरण एजेन्ट का कार्य करते है। बैंक कार्य के सम्बन्ध मे वे अब भी पारस्परिक उपायो का प्रयोग करते हैं, वे देशी पद्धति के अनुसार अपने खाते रखते हैं और उनका मुख्य साख-पत्र हुण्डी होता है जो कि अन्तर्देशीय विनिमय पत्र कहलाता है और इस पर 9 से 12 प्रतिशत ब्याज दिया जाता है।

आमतौर पर देशी बैंकरो का सम्पर्क देश के अन्य बैंको के साथ नहीं होता। इसका मुख्य कारण यह है कि वे अपनी ही धनराशि का प्रयोग करते हैं। परन्तु जब अधिक व्यापार के मौसम मे उनके पास धन की दुर्लभता होती है, तब वे सयुक्त स्कध बैंको की हुण्डियो का बट्टा करते हैं और इस प्रकार मुद्रा बाजार के सगठित क्षेत्र की धनराशि देशी बैंकरो या मुद्रा-बाजार के असगठित क्षेत्र के हाथो मे चली जाती है।

देशी बैंक व्यवस्था के दोष (Defects of Indigenous Banking)

इस बैंक व्यवस्था के मुख्य दोष निम्नलिखित है-

(क) वे असगठित होते है और उनका अन्य प्रकार के बैंकों के साथ सम्पर्क नहीं होता। (ख) वे अपने बेक-कार्य के साथ व्यापार और कमाशन का कार्य करते हैं और परिणामत उन्हे अपने-अपने बेक व्यापार म जोखिम सहन करना पडता है। (ग) वे अल्पकालीन एव दोघकालीन वित्त मे भेद नहीं करते और न ही वे वित्त के विभिन्न उद्देश्यो मे ही भेद करते हैं। (घ) वे देशी भाषा प्रणालियो (Vernacular Systems) मे खाते रखते हैं। वे बहुत सी स्थितियो मे रसीद नहीं देते और वे देश मे विद्यमान अन्य बैंक सस्थाओ (Banking institutions) की तुलना मे ब्याज की अत्यधिक दर वसूल करते हैं। शर्राफ समिति (Shroff Committee) के अनुसार देशी बैंकर कुल आन्तरिक व्यापार के 75 से 90 प्रतिशत के लिए वित्त जुटाते हैं परन्तु रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के गवनर के अनुसार आज भारत के आन्तरिक व्यापार के 50 प्रतिशत के लिए देशी बैंकरो द्वारा वित्त उपलब्ध कराया जाता है।

देशी बैंकर और रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया

बावजूद इसके कि देशी बैंकरो ने भारतीय आर्थिक जीवन मे प्रभावी कार्यभाग अदा किया है वे सगठित बैंक-व्यवस्था के क्षेत्र से बाहर ही रहे हैं। सन् 1931 मे केन्द्रीय बैंकिग जाच समिति (Central Banking Enquiry Committee) द्वारा भारतीय मौद्रिक बाजार के दोनो क्षेत्रो का समन्वय करने की आवश्यकता पर बल दिया गया और देशी बैंकरो के बैंक-कार्य का रिजर्व बैंक से सम्पर्क स्थापित करने की सिफारिश की गयी। समिति ने विशेष रूप से यह सिफारिश की कि पश्चिमी ढग का आधुनिक विनिमय-पत्र बाजार (Modern Bill Market) विकसित किया जाए, जिसमे हुण्डी पारम्परिक विनिमय-पत्र जिनका देशी बैंकरो द्वारा प्रयोग किया जाता है समाविष्ट किए जाए।

1935 मे रिजर्व बैंक के प्रारम्भ के पश्चात् कई बार यह प्रयास किया गया कि देशी बैंकरो को इसके नियन्त्राधीन लाया जाय। 1937 में रिजर्व बैंक ने इस सम्बन्ध मे एक योजना बनायी किन्तु देशी बेकरो ने इस योजना को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। केवल कुछ ही महाजनो ने इस योजना का लाभ उठाया परन्तु अधिकाश देशी बेंकर इस अवसर का लाभ उठा न सके।

1954 म शराफ समिति ने सिफारिश की कि रिजर्व बैंक को अनुसूचित बेको के माध्यम द्वारा देशी बैंकरो को हुण्डिया का बट्टा करना चाहिए। बम्बई शराफ सस्था ने भी देशी बैंकरो को रिजर्व बैंक आफ इण्डिया और सगठित मुद्रा बाजार से सम्बन्धित करने के लिए इसी प्रकार के सुझाव दिए परन्तु रिजर्व बेक ने इस सम्बन्ध मे और अधिक कार्य करने से इन्कार कर दिया।

देशी बेकरो का भविष्य (The Future of Indigenous Bankers)

यह सत्य है कि देश मे बेक-व्यवस्था का तीव्र विकास हुआ है और स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया की शाखा-विस्तार नीति के कारण और ग्राम क्षेत्रो में सहकारी वित्त (Co operative finance) के विस्तार के साथ यह विचार किया जाता है कि देशी बैंकरो का कार्यभाग भविष्य मे बहुत कम हो जाएगा। किन्तु यह विश्वास करना भी युक्तिसगत है कि देशी बेकर कस्बो तथा ग्रामो मे महत्त्वपूर्ण भाग अदा करते रहेंगे क्योकि जो कार्य इनके द्वारा किया जाता है और जो जोखिम वे उठा सकते हैं, वह सगठित बैंक व्यवस्था (Organised banking system) द्वारा वहन नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ यह कहा जाता है कि सगठित उधार सस्थान प्रतिभूति की आवश्यकताओ के सम्बन्ध मे बहुत परिदृढ है और वे इतना अधिक ब्याज प्राप्त करना चाहते हैं जो छोटे दर्जे के उधार प्राप्तकर्ता दे नहीं सकते। बहुत-सी लघुस्तर इकाइयो के पास ऋण प्राप्त करने के लिए काफी अचल परिसम्पत (Fixed assets) नहीं होती। अत स्वाभाविक ही है कि वे देशी बेकरो से ऋण लेने के लिए तैयार हो जाए जो उन्हे बिना प्रतिभूति ऋण देने मे हिचाकचाते नहीं। बम्बई कलकत्ता मद्रास कानपुर दिल्ली और बहुत से अन्य बडे तथा छोटे कस्बो मे देशी बैंकरो को अपने व्यापार के लिए लाभपूर्ण क्षेत्र प्राप्त होता रहेगा।

बैंक आयोग (1972) और देशी बेकर

बैंक आयोग (1972) के अनुसार देशी बैंकर भारतीय अर्थव्यवस्था मे महत्त्वपूर्ण कायभाग अदा करते हैं क्योंकि वे अर्थव्यवस्था के उन क्षेत्रो (छोटे पैमाने को व्यावसायिक इकाइयो एव फुटकर व्यापार) को उधार उपलब्ध कराते हैं जो कि उत्पादक हैं परन्तु जिन्हे वाणिज्य बैंक सम्बन्धित लागत या जोखिम की दृष्टि से सहायता नहीं देते। बैंक आयोग (Banking Commission) का विश्वास है कि देशी बैंकरो की कार्यविधि मे क्षिप्रता और लोच पाइ जाती है और साथ ही देशी बैंकरो के कुछ महत्त्वपूर्ण वर्ग (मुल्तानी शराफ) वाणिज्य बेको को एक लाभदायक मुद्रा बाजार का उपकरण (अथात् हुण्डिया) उपलब्ध कराते हैं जिनकी तरलता की मात्रा (Degree of liquidity) और जिनसे आय-प्राप्ति काफी अधिक होती है। किन्तु आयोग यह भी स्वीकार करता है कि इस प्रणाली का दुरुपयोग भी किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, देशी बैंकरो द्वारा बहुत अधिक ब्याज दर वसूल की जाती है। इसलिए तो आयोग का

कहना है कि देशी बैंक व्यवस्था का विनियमन होना चाहिए।

आयोग के अनुसार देशी बैंकरों का नियन्त्रित करने का सर्वोत्तम उपाय उन्हें वाणिज्य बैंकों के आधीन लाना है। रिजर्व बैंक आफ इण्डिया को वाणिज्य बैंकों के माध्यम द्वारा देशी बैंकरों के कार्यों पर अप्रत्यक्ष प्रभाव डालना चाहिए और इस उद्देश्य के लिए उन्हें मार्गदर्शी सिद्धान्त प्रतिपादित करने चाहिए। आयोग का मत है कि देशी बैंकरों को वाणिज्य बैंकों से बट्टा सुविधाएं प्राप्त करने के बदले निम्नलिखित शर्तें पूरी करनी होंगी -

(i) उन्हें व्यापारिक कार्यों को करने की मनाही होनी चाहिए। (ii) कम से कम एक लाख रुपए की न्यूनतम पूँजी उनके पास होनी चाहिए। (iii) उन्हें अपने बही खाते सही ढंग से रखने होंगे और उनका वार्षिक लेखा परीक्षण कराना होगा। (iv) जहां तक सम्भव हो सके देशी बैंकरों को एक से अधिक बैंकों से उधार लेने के लिए प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए (v) देशी बैंकरों को एक संस्था का सदस्य बनना चाहिए। (vi) वाणिज्य बैंकों और देशी बैंकों के बीच एक समझौता होना चाहिए जिसके अनुसार देशी बैंकों द्वारा अपने ग्राहकों से दिए गए अग्रिमों पर ब्याज दर निर्धारित की जानी चाहिए।

बैंक आयोग के अनुसार देशी बैंकरों और रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करना न तो आवश्यक ही है और न ही व्यवहार्य। रिजर्व बैंक द्वारा देशी बैंकरों के लिए प्रत्यक्ष पुनर्वित्त प्रबन्ध (Refinancing) प्रशासनिक दृष्टि से सुविधाजनक है क्योंकि हुण्डियां छोटी-छोटी राशियों के लिए होती हैं चाहे उनकी कुल राशि काफी बड़ी हो जाती है। इस प्रकार रिजर्व बैंक को इन छोटी हुण्डियों की देय तिथि पर भुगतान आदि की निगरानी करनी होगी और प्रशासनिक दृष्टि से यह कार्य कठिन हो जाता है। यहां इस बात का उल्लेख करना रुचिकर होगा कि बैंक आयोग ने उन सभी सिफारिशों को दोहराया है जो 1935 के पश्चात् देशी बैंकरों को संगठित प्रणाली के साथ जोड़ने के लिए की जाती रही हैं परन्तु आयोग ने इस तथ्य को दृष्टि में नहीं रखा कि देशी बैंकर सदा रिजर्व बैंक की शर्तों पर इस परामर्श को स्वीकार करने से मना करते रहे हैं।

बैंक आयोग की राय में देशी बैंकर देश के भावी विकास में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्यभाग अदा कर सकते हैं। परन्तु इन बैंकों का आकार बढ़ाना होगा उन्हें अधिक व्यावसायिक बनाना होगा और इनकी व्यापार क्रियाओं का विशोधन करना होगा। इन बैंकों को संगठित वित्त व्यवस्था के साथ सम्बन्धित करना होगा और उन्हें बैंक-भिन्न वित्तीय बिचौलियों (Financial intermediaries) के कुछ कार्य करने होंगे। इसके अतिरिक्त अधिक कुशल देशी बैंकरों को अपने आपको बट्टा एवं स्वीकृत गृहों (Discounting and Acceptance Houses) में परिवर्तित करना होगा ताकि वे एक विकासशील अर्थव्यवस्था की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा कर सकें।

2 भारत में वाणिज्य बैंक प्रणाली की हाल ही की प्रवृत्तियां

(Commercial Banking in India—Recent Trends)

भारत में पश्चिमी ढंग की बैंक व्यवस्था का प्रारम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ। प्रारम्भिक वाणिज्य बैंक एजेन्सी हाउस (Agency house) कहलाते थे और वे *ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा चलाए जाते थे।* वे व्यापार तथा बैंक कार्य दोनों करते थे और इसलिए अपनी स्थापना के शीघ्र ही पश्चात् असफल हो गये। पहला संयुक्त *स्कन्ध बैंक जिसका नाम बैंक ऑफ हिन्दुस्तान था* कलकत्ता में चालू किया गया। इसके प्रबन्धकर्ता योरोपियन थे किन्तु इस बैंक का भी दिवाला निकल गया। फिर सरकार *के वित्तीय सहयोग के साथ बैंक ऑफ बंगाल (1806)* बैंक आफ बम्बई (1840) और बैंक ऑफ मद्रास (1843) चालू किए गए। इन बैंकों को प्रैसीडेन्सी बैंक (Presidency Bank) *कहा गया और इन्हें अपने-अपने क्षेत्रों में नोट जारी* करने का अधिकार सौंपा गया। शुद्ध रूप में पहला भारतीय बैंक *अवध कमर्शल* बैंक (Oudh Commercial Bank) 1881 में कायम किया गया इसके बाद 1894 में पंजाब नैशनल बैंक और 1901 में पीपल्स बैंक (Peoples Bank) स्थापित किया गया। 1905 में स्वदेशी आन्दोलन ने भारतीय बैंकों के आरम्भ को बहुत प्रोत्साहन दिया।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि 1950 के पश्चात् बैंक जमा (Bank deposits) में निरन्तर वृद्धि हुई है। बैंकों की संख्या में कमी रिजर्व बैंक की छोटे बैंकों के बड़े बैंकों के साथ विलयन की नीति के कारण हुई ताकि बैंक प्रणाली सबल बन सके। 1950 51 और 1970 71 के दौरान इन बैंकों की संख्या 430 से कम होकर 73 हो गई। 1960 61 में भारत में 256 अननुसूचित बैंक (Non scheduled Banks) थे परन्तु इनकी संख्या नवम्बर 1980 तक कम होकर केवल 4 हो गई। शेष बैंकों का बड़े बैंकों से विलयन कर दिया गया। 1994 95 में देश में 271 अनुसूचित वाणिज्य बैंक थे। आयोजन के प्रभावाधीन भारतीय *अर्थव्यवस्था* में इनका तेजी से विकास हो गया है।

1. बैंक जमा और उधार का विस्तार

बैंक जमा का विस्तार हाल ही के वर्षों मे बैंक व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण रहा है। आयोजित विकास, न्यून-वित्त प्रबन्ध (Deficit financing) और जारी करेन्सी की अधिक मात्रा के कारण बैंक जमा (Bank deposits) मे वृद्धि हुई। साथ ही लगातार प्रचार, बडे पैमाने पर बैंक शाखाए खोलकर और अपने ग्राहको को अच्छी सेवा उपलब्ध कराकर बैंको ने जनता मे बैंक आदतो के विकास करने मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। तालिका 1 मे अनुसूचित बैंको की जमा एवं उधार की वृद्धि की प्रवृत्ति सम्बन्धी आकडे प्रस्तुत किए गए हैं।

वाणिज्य बैंकों ने बचत गतिमान करने मे सराहनीय कार्य किया है। 1950-51 और 1994-95 के बीच बैंक जमा 820 करोड रुपए से बढकर 3,76,110 करोड रुपए हो गयी। परन्तु अभी भी थोडे से कस्बे ऐसे हैं जहाँ बैंक स्थापित नहीं किये जा सके। 5 लाख ग्रामो का तो कहना ही क्या, उनमे तो जनता की बचत को गतिमान करने की बहुत आवश्यकता है। ऐसे क्षेत्रो मे जहाँ बैंक कायम किये जा चुके हैं, नये जमाकर्त्ताओ (Depositors) को आकर्षित करने की जरूरत है और वर्तमान जमाकर्त्ताओ को अपनी जमा बढाने के लिए प्रेरित करना होगा। बैंक-जमा विस्तार के साथ-साथ बैंक-उधार का भी लगातार विस्तार हुआ है, जो कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि को व्यक्त करता है। बैंक अब उद्योग, व्यापार और कृषि की उधार सम्बन्धी आवश्यकताओ के लिए कहीं अधिक मात्रा मे वित्त उपलब्ध कराते हैं। 1950-51 और 1992-93 मे बैंक उधार लगभग 580 करोड रुपए से बढकर 1,51,950 करोड रुपए हो गया।

तालिका 1 सभी अनुसूचित वाणिज्य बैंको की जमा एव उधार

वर्ष	बैंको की संख्या	बैंक जमा (करोड़ रुपए)	बैंक उधार (करोड़ रुपए)
1950-51	430	820	580
1960-61	330	1 746	1 320
1970-71	87	5 910	4 690
1980-81	179	37 990	25 270
1990-91	271	1 92 540	1 16 300
1994 95	271	3 76 110	2 09 810

2. विकास-प्रेरित बैंक-व्यवस्था (Development-oriented Banking)

ऐतिहासिक दृष्टि से बैंक-व्यवस्था का वाणिज्य और पारम्परिक उद्योगो (अर्थात् सूती वस्त्र और पटसन) से साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। बहुत समय तक बैंक वित्त के नये क्षेत्रो मे प्रवेश करने से हिचकिचाते थे। सयुक्त स्कन्ध बैंको का कार्यक्षेत्र बडे और वाणिज्य क्षेत्रो में सकेन्द्रित होने के कारण वाणिज्य-भिन्न क्षेत्र (Non commercial areas) उपेक्षित रहे। इसका मुख्य कारण वाणिज्यिक बैंको द्वारा व्यापार और पारम्परिक उद्योगो को प्राथमिकता देना था। हाल ही के वर्षों मे बैंक-व्यवस्था पारम्परिक सीमाबन्धनो से निकलकर नये क्षेत्र मे प्रवेश कर रही है। बैंक-व्यवस्था की धारणा, जो कि केवल बैंक जमा स्वीकार करने और उसे उधार देने तक सीमित थी, का अब विस्तार हो रहा है और बैंक-व्यवस्था विकास-प्रेरित बनती जा रही है। सयुक्त स्कन्ध बैंक अब औद्योगिक और कृषि वित्त की आवश्यकताओ को पूरित करने की ओर अधिकाधिक ध्यान दे रहे हैं। अल्पकालीन वित्त-प्रबन्ध की अपेक्षा अब बैंक, विकास और विस्तार की आवश्यकताओं को दृष्टि मे रखते हुए मध्यम और दीर्घकालीन उधार की ओर अपनी क्रियाओ को बढा रहे हैं।

3 फार्म वित्त (Farm Finance)

निस्सदेह बैंको ने सगठित उद्योगो के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण एव सराहनीय कार्य किया है परन्तु बैंक-उधार की नयी नीति फार्म-वित्त पर विशेष ध्यान दे रही है। भारत सरकार कृषि-उत्पादिता को शीघ्रातिशीघ्र बढाने के लिए भरसक प्रयत्न कर रही है और वाणिज्य बैंको से इस क्षेत्र मे प्रवेश करने का आग्रह किया जा रहा है। वाणिज्य बैंको ने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया है। बैंक-राष्ट्रीयकरण के पश्चात् तो यह दायित्व और भी अधिक समझा जा रहा है। 1969 और जून 1994 के दौरान, ग्रामीण और अर्धनगरी क्षेत्रो मे बैंक-शाखाओ की सख्या 1,858 से बढकर 35,400 हो गयी और कृषि-उधार के खातो की सख्या बढकर 180 लाख हो गयी जिनके द्वारा 21,210 करोड रुपए का उधार दिया गया।

4 बडे ग्राहको की अपेक्षा बैंको द्वारा छोटे ग्राहको का ध्यान

बैंक-व्यवस्था का नया और विशिष्ट लक्षण, बडे ग्राहको की अपेक्षा छोटे ग्राहको की आवश्यकताओ की ओर ध्यान देना है। एक समय था, जब बैंक कुछ समृद्ध व्यक्तियो का विशिष्ट अधिकार समझे जाते थे। परन्तु आज इनका सरक्षण आम जनता को भी निश्चित रूप में मिलने लगा है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि वाणिज्य बैंकों के 60 प्रतिशत जमाकर्त्ता बचत-बैंक जमाकर्त्ता (Saving bank depositors) हैं जिनमें दफ्तर जाने वाले क्लर्क से लेकर खेत मे कार्य करने वाले किसान तक शामिल हैं। बैंक नीति मे इस परिवर्तन के लिए वाणिज्य बैंक स्वय उत्तरदायी हैं।

5. बैक-शाखाओ का तेजी से विस्तार

तीव्र आर्थिक विकास मे वाणिज्य बैंको का तीव्र विस्तार अन्तर्निहित है। जुलाई 1969 और जून 1994 के दौरान, देश मे बेक-दफ्तरो की सख्या 8,260 से बढकर 61,740 हो गई। चाहे हाल ही के वर्षों मे शाखा-विस्तार प्रोग्राम की प्रगति सतोषजनक है परन्तु फिर भी देश के काफी बडे क्षेत्र मे अभी बैंक शाखाए नहीं है। केवल 35,400 ऐसे ग्रामो को छोडकर जिनमे बैंक सेवाए उपलब्ध हैं, भारत के 5,20,000 ग्रामो मे बेक सुविधाए उपलब्ध नही है।

6 बैको का राष्ट्रीयकरण

जुलाई 1969 मे 14 बडे बेको का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। विदेशी बैंक और ऐसे बैंक जिनकी जमा 50 करोड रुपए से कम थी, राष्ट्रीयकृत क्षेत्र म नहीं लाये गए। भारत सरकार का विचार था कि राष्ट्रीयकृत बेक अर्थव्यवस्था को गत्यात्मक बना देगे और देश मे आथिक विकास की दर को त्वरित करने मे सहायता देंगे। 15 अप्रैल 1980 को छ वाणिज्य बैको का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। इस प्रकार कुल जमा मे सरकारी क्षेत्र के बैंको का भाग 91 प्रतिशत हो गया।

निष्कर्ष–स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद की चार दशाब्दियो मे वाणिज्य बैंको के रूपान्तरण मे इतना परिवर्तन हुआ है कि अब उनका पहला रूप पहचानना कठिन है। 1940-50 के दौरान इनका प्रधान कार्य व्यापार के लिए वित्त जुटाना था। राष्ट्रीय योजनाओ, नीतियो और प्राथमिकताओ के अनुरुप उन्होने अर्थव्यवस्था का विकास करने और इसके कार्यक्षेत्र मे विविधता लाने मे विशेष सहायता दी है। इस उद्देश्य के लिए छोटे उद्योगो और किसानो को ऋण देने, कार्यकारी पुजी की आवश्यकताओ के लिए वित्त जुटाने, छोटी इकाइयो के लिए गारन्टी देने और इस प्रकार के कई कार्य प्रारम्भ किए हे। बैंको के कार्यक्षेत्र मे और भी तब्दीलियाँ की जा रही हैं।

3. राष्ट्रीयकरण के पश्चात् वाणिज्य बैंक-व्यवस्था

(Commercial Banking after Nationalisation)

सरचना की दृष्टि से, 1969 के राष्ट्रीयकरण के पश्चात् वाणिज्य बैंक व्यवस्था म एक विशेष बल और समजन प्राप्त हुआ है। राष्ट्रीयकृत बेको की नीतियो और कार्यविधि का स्टेट बैक और इसके अनुषगियो (Subsidiaries) के साथ घनिष्ठ ताल मेल और सामजस्य स्थापित किया गया है जबकि 1969 के राष्ट्रीयकरण से पूर्व ये भिन्न दिशाआ मे भी कार्य करते थे। अत मौद्रिक और बक-नीतिया के निर्माण ओर कार्यान्वयन के लिए अब अपेक्षाकृत अच्छा वातावरण उपलब्ध है। राष्ट्रीयकृत बैंको की मुख्य उपलब्धियो मे ग्राम-क्षेत्रो मे शाखा विस्तार (Branch expansion), कृषि-क्षेत्र के लिए ऋण उपलब्ध कराना, छोटे पैमाने के उद्योगो के लिए वित्त जुटाना और कुछ अन्य उपेक्षित क्षेत्रो की सहायता करना है।

तालिका 2 बैक-राष्ट्रीयकरण के पश्चात् सभी बेकों द्वारा शाखा विस्तार

	19-7-1969	30-6-1994
1 कुल शाखाओ की सख्या	8 321	61,740
2 ग्रामीण शाखाए	1 858	35,400
3 कुल के प्रतिशत के रूप मे ग्रामीण शाखाए	22	57
4 जनसख्या प्रति बैंक दफ्तर	65 000	12 000

शाखा विस्तार (Branch Expansion)—मुख्य वाणिज्य बैंको के राष्ट्रीयकरण और अग्र बैंक योजना (Lead Bank Scheme) के आरम्भ के पश्चात् शाखा विस्तार प्रोग्राम तेज हो गया।

तालिका 2 से स्पष्ट है कि जुलाई 1969 मे हुए बैंक-राष्ट्रीयकरण के पाच वर्षों के अन्दर बैंक शाखाओ की सख्या मे 155 प्रतिशत से भी अधिक की वृद्धि हुई परन्तु सबसे अधिक असाधारण प्रगति ग्राम केन्द्रो के रूप मे हुई जिनकी सख्या जुलाई 1969 मे 1,858 से बढकर जून 1994 के अन्त तक 35,400 बैंक-दफ्तर हो गई। 1969 मे 65,000 जनसख्या के लिए एक बैंक-दफ्तर था, 1973 मे 36,000 जनसख्या के लिए और 1994 मे 12,000 जनसख्या के लिए एक बैंक-दफ्तर कायम हो गया। इस बात का उल्लेख करना होगा कि बैक दफ्तरो के बढने के कारण अब बैंक-क्षेत्र का बहुत विस्तार हुआ है। 83 प्रतिशत ग्रामो की जनसख्या 1,000 से कम है और इस कारण प्रत्येक ग्राम मे बैंक खोलना सम्भव नहीं। अत एक ग्राम बैंक 16 किलोमीटर के घेरे के अन्दर सभी ग्रामो को सेवा उपलब्ध कराता है। कुछ बैंको ने चलते-फिरते दफ्तर (Mobile *offices*) और अनुषगी दफ्तर कायम किए हैं।

ग्रामो एव अर्द्धग्रामीण क्षेत्रो मे बैंक सुविधाओ के विस्तार पर विशेष बल देने के कारण देश के पिछडे हुए जिलो को लाभ हुआ है ताकि इनमे लघु-स्तर उद्यमो को प्रोन्नत किया जा सके। अभी तक भारत के केवल 35,400 ग्रामो मे राष्ट्रीयकृत बैंको की शाखाए खोली गयी हैं किन्तु भारत मे लगभग 5 लाख गाव हैं जिन्हे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे बैंक सुविधाए पहुचाने की समस्या है। शाखा विस्तार की यह महान प्रगति, चाहे महत्त्वपूर्ण है, परन्तु यह हमें राष्ट्रीयकृत बैंको को समस्या के आकार का बोध कराती है।

विकास-प्रयास में सहयोग–राष्ट्रीयकरण के पश्चात्, सरकारी क्षेत्र मे बैंको ने अपने पारम्परिक उद्देश्य (अर्थात् हिस्सेदारो के लाभ को अधिकतम करने) के कार्य का परित्याग कर दिया है और वे अपने आपको विकास-प्रयास का मुख्य उपकरण समझने लगे हैं। इस नई चेतना का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू "अग्र बैंक योजना" (Lead Bank Scheme) का चालू करना है जिसके आधीन देश के सभी जिले किसी-न-किसी बैंक को सौंपे गए हैं। प्रत्येक अग्र-बैंक अपने आधीन जिलो मे विस्तृत आर्थिक सर्वेक्षण करवाता है ताकि (i) सभी महत्त्वपूर्ण स्थानो पर शाखाए खोली जा सके, (ii) जिले मे विकास के लिए अधिकतम उधार सेवाए उपलब्ध कराई जा सके, और (iii) जिले मे उपलब्ध अतिरेक को गतिमान किया जा सके।

प्राथमिकता वाले क्षेत्र (Priority Sectors)—राष्ट्रीयकरण से पूर्व वाणिज्य बैंको के विरुद्ध प्राय यह आलोचना की जाती थी कि उन्होने किसानो छोटे उद्योगपतियो, कारीगरो और निर्यातको को वित्त उपलब्ध कराने मे उपेक्षा की। राष्ट्रीयकरण के पश्चात् बैंको ने इन प्राथमिकता वाले क्षेत्रो को उधार उपलब्ध कराने की ओर काफी ध्यान दिया। छोटे व्यापारियो एव उद्यमकर्त्ताओ को ऋण देने के सम्बन्ध मे बहुत प्रगति हो चुकी है और बैंको ने निम्न वर्गों को उधार देने के लिए विशेष योजनाए चालू की हैं। बहुत से उधार लेने वाले इससे पूर्व महाजनो की दया पर निर्भर थे और अत्यधिक ब्याज देते थे जो कि 24 प्रतिशत तक या इससे भी अधिक होता था। वाणिज्य बैंक अब उचित ब्याज दर (8 से 10 प्रतिशत के बीच) पर पर्याप्त मात्रा मे और उचित समय पर ऋण उपलब्ध कराते हैं।

तालिका 3 से जाहिर है कि प्राथमिकता वाले क्षेत्रो मे कुल ऋणो का अनुपात 1969 मे 15 प्रतिशत से बढकर मार्च 1994 तक लगभग 35 3 प्रतिशत हो गया। कुल रूप मे उधार की मात्रा जो 1969 मे 440 करोड रुपए थी, बढकर 53,875 करोड रुपए हो गयी। यह प्रगति मर्यादित ही कही जा सकती है। बैंक राष्ट्रीयकरण के फौरन बाद तो तीव्र प्रगति हुई परन्तु बाद मे प्रगति की गति धीमी पड गयी। ऋणों की इस सामान्य अवरुद्धता का मुख्य कारण यह है कि बैंकों के अफसर, ऊपर से लेकर नीचे तक बैंक व्यवस्था के नए उद्देश्यों से पूर्णतया सजग एव अभिप्रेरित नहीं हैं। इसी कारण तो कृषि उधार मे 25 वर्षों मे 5 8 प्रतिशत से 13 9 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई। इसी प्रकार "अन्य सभी" क्षेत्रो जिनमे सडक परिवहन के चालक, फुटकर व्यापारी और छोटे धन्धे वाले, पेशेवर (Professional) और स्व-नियुक्त व्यक्ति (Self employed persons) शामिल हैं, को दिए गए ऋणो की मात्रा जो 1969 मे लगभग 1 प्रतिशत थी, परिवर्तित होकर 1994 मे 6 6 प्रतिशत हो गयी।

तालिका 3 प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में सरकारी बैंकों से उधार

(करोड़ रुपए)

प्राथमिकता वाले क्षेत्र	जून 1969	मार्च 1980	मार्च 1994
1 कृषि	142	2,766	21,208
	(5 5)	(13 0)	(13 9)
2 लघु स्तर उद्योग	251	2,630	22 620
	(8 5)	(12 4)	(14 8)
3, अन्य प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र	48	1,333	10 047
	(0 9)	(6 3)	(6 6)
4 कुल प्राथमिकता वाले क्षेत्र	440	6,729	53,875
(1+2+3)	(14 9)	(31 7)	(35 3)
5 बैंको द्वारा दिया गया	3 017	21 234	1,52 735
कुल ऋण	(100 0)	(100 0)	(100 0)

नोट ब्रैकेट मे दिए गए आकडे वाणिज्य बैंको के कुल ऋणो का प्रतिशत है।

प्राथमिकता-प्राप्त क्षेत्रो के बारे मे जो आरम्भिक जोश उत्पन्न हुआ था, वह बैंको द्वारा सामना की गयी कई समस्याओ के कारण ठण्डा हो गया

(i) 40 प्रतिशत का लक्ष्य प्राप्त करने के उद्देश्य से बैंक ने अन्धाधुन्ध उधार देना प्रारम्भ किया। बहुत सी स्थितियो मे, बैंक पर कमजोर वर्गों को उधार देने के बारे मे बाहरी दबाव था।

(ii) चूकि प्राथमिकता-क्षेत्र वाले ऋण छोटे खातो से सम्बन्धित थे, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक इन के वितरण पर पूरी निगरानी न रख सके और न ही इन छोटे ऋणो की पूरी वसूली ही हो पायी। परिणामत बैंको की लाभदायकता पर इसका बुरा प्रभाव पडा।

(iii) वाणिज्य बैंको को दोहरी मार सहनी पडी। एक ओर उन्हे अपनी जमा का 53 5 से 55 प्रतिशत रोक-आरक्षण अनुपात (Cash Reserve Ratio) और सवैधानिक तरलता अनुपात (Statutory Liquidity Ratio) के रूप मे रखना पडता था और दूसरी ओर अपने उपलब्ध ससाधनो का 40 प्रतिशत प्राथमिकता क्षेत्र (Priority sector) को रियायती दर पर उपलब्ध कराना पडता था। परिणामत. उनकी लाभदायकता (Profitability) पर इसका बुरा असर पडा।

(iv) प्राथमिकता क्षेत्र को बैंक-उधार देश के सभी राज्यो मे समान नहीं था। बहुत से पिछडे हुए राज्यो अर्थात् उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान आदि में यह बहुत कम था। इससे देश मे असतुलन बढा है।

जमा गतिमान करना (Deposit Mobilisation)—बैंक राष्ट्रीयकरण के पश्चात् यह प्रत्याशा की जाती थी कि

इससे जमा गतिमान करने में प्रोत्साहन मिलेगा। कुछ हद तक इसका एक कारण नयी शाखाओ के जाल का विस्तार करना समझा गया और कुछ हद तक बचतकर्त्ताओ को दिया जाने वाला प्रोत्साहन। परन्तु राष्ट्रीयकृत बैंक इस महत्त्वपूर्ण उद्देश्य मे सफल नही हुए। बैंक राष्ट्रीयकरण के पश्चात् बैंक जमा की वृद्धि दर 16 से 17 प्रतिशत के समान ही रही है। यहाँ इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य है कि विदेशी बैंको और छोटे गैर सरकारी क्षेत्र के बैंको की जमा राशि मे कहीं अधिक वृद्धि हुई है जिससे यह जाहिर होता है कि सम्भवत राष्ट्रीयकृत बैंकों की अपेक्षा दूसरे बैको मे बचत जमा करायी जा रही है। इस सम्बन्ध मे यह अनिवार्य है कि सरकारी क्षेत्र के बैंक पहल और उद्यम दिखाएँ।

अत्यधिक उधार विस्तार (Excessive Credit Expansion)—राष्ट्रीयकरण के पश्चात् बैको के कार्य का सबसे अधिक चिन्ताजनक पहलू बडी लापरवाही से बैंक उधार का विस्तार करना है और सम्भवत यह सरकार के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष निर्देशो के आधीन किया जा रहा है। आमतौर पर बैंक उधार का विस्तार बैंक जमा के विस्तार के साथ साथ होता है। परन्तु बैंक राष्ट्रीयकरण के पश्चात् बैंक उधार का विस्तार 24 प्रतिशत की दर से हुआ जबकि बैंक जमा मे लगभग 17 प्रतिशत की वृद्धि हुई। राष्ट्रीयकरण के बावजूद बैंक उधार सम्बन्धी पुरानी बुराइया और त्रुटिया अभी दूर नही हुईं। उदाहरणार्थ अतिरिक्त प्रतिभूति (Security) के रूप मे निदेशको की वैयक्तिक गारन्टी उधार के अत्यधिक विस्तार के लिए उत्तरदायी है। इस कारण यह धारणा पक्की हो रही है कि आज भी व्यापार और उद्योग मे प्रसिद्ध व्यक्तियो के नाम पर ही उधार मिलता है। इसके फलस्वरूप उधार लेनी वाली फर्मों को गारटी देने वाली फर्मों को कमीशन देना पडता है। इसके अतिरिक्त पहले की भाति बैंक वित्त का प्रयोग उधार प्राप्तकर्त्ताओ द्वारा हिस्से एकत्र करने और कम्पनियो पर अपना नियन्त्रण मजबूत करने के लिए किया जा रहा है।

सामाजिक बैकिग–निर्धनता दूर करने के प्रोग्राम

विभेदक ब्याज दर की योजनाएं (Differential rate of interest schemes)—सरकार ने अप्रैल 1972 से 162 जिलो में विभेदक ब्याज दरें लागू की। बाद मे यह योजना देश भर मे लागू की गयी। इस योजना के आधीन सरकारी क्षेत्र के बैंक समाज के कमजोर वर्गों को 4 प्रतिशत की रियायती दर पर उधार देते है। इनके पास रहन रखने के लिए कोई भौतिक सम्पत्ति नही होती। परन्तु बैंक से वित्तीय सहायता प्राप्त करने पर वे अपनी स्थिति उन्नत कर सकते हैं। इस योजना के आधीन 1989 मे 47 लाख उधार प्राप्तकर्त्ताओं के पास 708 करोड रुपए का बकाया उधार था। चाहे 1992-93 मे उधार प्राप्तकर्ताओ की सख्या कम होकर 30 लाख हो गयी किन्तु मार्च 1992 तक बकाया राशियो की मात्रा बढकर 708 करोड रुपए हो गयी। इस योजना के आधीन कमजोर वर्गों में बैंक उधार का भारी विस्तार हुआ है।

समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम (Integrated Rural Development Programme)—यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था मे असतुलन दूर करने के लिए एक पथप्रदर्शक एव महत्त्वाकाक्षी प्रोग्राम है और ग्रामीण जनता की सर्वांगीण प्रगति एव समृद्धि के लिए भी कार्य करता है। इस प्रोग्राम के आधीन बैंको ने 21 लाख लाभप्राप्तकर्त्ताओ को 1992-93 मे सहायता प्रदान की और 1 040 करोड रुपये वितरित किये जिसमे से 690 करोड रुपये अर्थसाहाय्य (Subsidy) के रूप मे थे। 21 लाख लाभप्राप्तकर्त्ताओ मे से 10 लाख अनुसूचित एव जनजातियो से थे। सातवी योजना (1985–90) के दौरान बैंको ने 182 लाख व्यक्तियो की सहायता की जिसमें से 82 लाख अनुसूचित एव जनजातियो से थे और 34 लाख स्त्रिया थी। सातवी योजना के दौरान ऋणो के रूप मे 5 370 करोड रुपये और अर्थसाहाय्य के रूप मे 3 320 करोड रुपये वितरित किए गए। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको की माग की तुलना मे आई०आर०डी०पी० ऋणो की वसूली का अनुपात बहुत कम था केवल 32 प्रतिशत।

भारत सरकार द्वारा कई अन्य महत्त्वपूर्ण योजनाएं चालू की गयी और वे बैको द्वारा कार्यान्वित की गयी। इनमें उल्लेखनीय हैं बेरोजगार शिक्षित युवको के लिए स्वरोजगार योजना (लगभग 1 लाख लाभप्राप्तकर्ता और 1990 91 मे 1 4 लाख व्यक्तियो को 61 करोड रुपये का ऋण) अल्पसख्यक समुदायो को उधार (लगभग 13 लाख व्यक्तियो को 1991 92 मे 838 करोड रुपये का ऋण)।

अत यह स्पष्ट है कि बैंको ने राष्ट्रीयकरण के पश्चात् कुछ क्षेत्रो मे सफलतापूर्वक कार्य किया है किन्तु बाद मे वे इतने सफल नहीं रहे। एक सामान्य धारणा बलवती होती जा रही है कि बैको द्वारा सामाजिक उद्देश्यो को अपनाने के पश्चात् पूँजी पर प्रत्याय दर (Rate of return) कम ही रहेगी। प्रोफेसर बी एन अदारकर रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के भूतपूर्व गवर्नर ने इस सम्बन्ध मे साफ साफ कहा यह सोचना कि चूकि बैंक अपने सामाजिक उद्देश्यो का पालन करने लगे हैं इसलिए उनकी पूजी पर उचित प्रत्याय दर प्राप्त नही हो सकती गलत है। राष्ट्रीयकरण के पश्चात् भी विनियोग पर प्रत्याय की दर बैंकों की कार्य प्रगति को मापने की महत्त्वपूर्ण कसौटी रहेगी।

तालिका 4 अनुसूचित वाणिज्य बैंको की लाभदायकता

करोड़ रुपए

रिपोर्ट करने वाले बैंक	1973	1981	1991-92	1993-94
स्टेट बैंक ग्रुप	5 (1 7)	16 (0 9)	244 (1 8)	356 (2 6)
राष्ट्रीयकृत बैंक	8 (1 6)	30 (1 0)	559 (2 6)	-4 780 (-23 0)
अन्य भारतीय बैंक	1 (2 0)	3 (1 8)	77 (5 9)	128 (6 8)
विदेशी बैंक	4 (5 5)	14 (6 3)	320 (8 7)	574 (14 0)

नोट : 1 ब्रैकेट में दिए गए आकडे कुल आय का प्रतिशत हैं।

2 शुद्ध लाभ से अभिप्राय करधान और बोनस की मात्रा को घटा कर प्राप्त राशि से है।

3 स्टेट बैंक ग्रुप में आठ बैंक हैं और राष्ट्रीयकृत बैंको में 20 बैंक हैं।

4. भारत में बैंकों की लाभदायकता
(Profitability of Banks in India)

रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया ने अपनी रिपोर्ट 'भारत मे बैंकिग की प्रवृत्ति एवं प्रगति' मे अनुसूचित बैंको की लाभदायकता के परिणाम प्रस्तुत किए हैं

जहा तक स्टेट बैंक ग्रुप का सम्बन्ध है, इन बैंको के लाभ मे लगातार वृद्धि हुई है और यह 1981 मे 16 करोड रुपए से बढ कर 1993-94 मे 356 करोड रुपए हो गया। कुल आय के अनुपात के रूप मे यह महत्त्वहीन था-लगभग 2 6 प्रतिशत। कुछ वर्षो मे तो यह 1 प्रतिशत से भी कम था। राष्ट्रीयकृत बैंकों मे लाभदायकता बहुत ही कम रही है। कुछ वर्षों तक तो यह गिर रही थी। 1991-92 मे राष्ट्रीयकृत बैंको का शुद्ध लाभ कुल आय का केवल 2 6 प्रतिशत था।ल परन्तु 1993-94 के दौरान, राष्ट्रीयकृत बैंको को भारी हानि सहन करनी पडी और यह राशि 4 780 करोड रुपये थी जिसका मुख्य कारण इन बैंको द्वारा प्रतिभूति घोटाले मे भाग लेना था।

भारतीय गैर-सरकारी क्षेत्र के बैंको का शुद्ध लाभ 1993-94 मे कुल आय का 6 8 प्रतिशत था। विदेशी बैंको की लाभदायकता कहीं बेहतर है। उदाहरणार्थ विदेशी बैंको का शुद्ध लाभ 1991-92 मे 8 7 प्रतिशत था। परन्तु 1992-93 मे ये बैंक भी प्रतिभूति घोटाले मे फस गए और उन्हे 842 करोड रुपये की हानि सहन करनी पडी परन्तु 1993-94 मे स्थिति म सुधार हुआ है और इन्हे पुन 14 प्रतिशत लाभ (574 करोड रुपये) प्राप्त हुआ।

हम 1992-93 को एक असामान्य वर्ष मानकर छोड भी सकते हैं और वाणिज्य बैंको के पिछले वर्षो के लिए लाभ पर विचार कर सकते हैं। विभिन्न प्रकार के बैंको की लाभदायकता की तुलना से साफ जाहिर है कि भारत मे सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको की लाभदायकता बहुत कम है। यह बात भी सर्वविदित है कि कुछ बैंक तो घाटे मे चल रहे हैं। सरकारी बैंको की कम लाभदायकता की व्याख्या इनके सामाजिक दायित्वो (Social obligations) के रूप मे की जा सकती है अर्थात् ग्राम क्षेत्रो मे शाखाए खोलना, समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के लिए वित्त जुटाना और अन्य गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमो के लिए रियायती दर पर ऋण देना, कुल उधार के 35 प्रतिशत तक प्राथमिकता क्षेत्र के लिए उधार देना आदि। ये तर्क, गैर-सरकारी बैंको के विरुद्ध बहुत हद तक सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको की नीची लाभदायकता की व्याख्या करते हैं। विदेशी बैंको के दफ्तर तो महानगरो और चुने हुए शहरो तक सीमित हैं, उन पर कोई सामाजिक दायित्व भी नही है परन्तु उन पर भी ऊचे कानूनी तरलता अनुपात और रोक-आरक्षण अनुपात के सीमाबन्धन लागू हैं। फिर भी वे काफी मुनाफे कमा लेते हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र के बैको की नीची लाभदायकता के कारण

नरसिम्हम समिति (Narasimham Committee) ने भारत के सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको की गिरती हुई लाभदायकता के लिए दो प्रकार के कारणतत्वो का उल्लेख किया है एक ओर वे कारण हैं जिनके परिणामस्वरूप बैंको की ब्याज रूपी आय मे गिरावट आती है और दूसरी ओर वे कारण हैं जो बैंको की परिचालन लागत (Operating cost) को बढाते हैं। ब्याज रूपी आय मे कमी का कारण कुल जमा का एक बडा भाग सापेक्षत नीची ब्याज दर पर कानूनी तरलता अनुपात और रोक-आरक्षण अनुपात के रूप मे रखना है। इसके अतिरिक्त सामाजिक बैंकिग के आधीन कुल जमा का काफी बडा भाग प्राथमिकता क्षेत्र को देना पडता है जिस पर भी ब्याज दर कम रहती है। बैको की कुल जमा का केवल 30 प्रतिशत भाग ही बाजार ब्याज दर (Market rate) पर उधार दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, बैंको को संदिग्ध पार्टियो को-कृषि तथा उद्योग मे उधार देने के लिए मजबूर किया जाता है और इनमे से बहुत से ऋण बट्टे खाते मे डालने पडते हैं। बैंको के सामने बकाया राशियो की समस्या भी है। इन सभी समस्याओ के लिए सरकार स्वय जिम्मेदार है।

जबकि राजस्व मे इच्छित वृद्धि न हो सकी, बैको को बढती हुई परिचालन लागत की समस्या का सामना करना पडता है–अनार्थिक शाखा विस्तार, कर्मचारियो की भारी भर्ती, मजदूर सघीय क्रियाए, निम्न उत्पादकता और भारी वेतन-बिल आदि। इन सभी कारणो के फलस्वरूप लाभ घटता चला जाता है और कई वर्षो से बेक घाटे मे चल रहे हैं।

लाभदायकता उन्नत करने के लिए सुझाव

नरसिम्हम समिति ने बैंको की वित्तीय शक्ति और लाभदायकता को उन्नत करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए हैं –

1 सभी सदिग्ध ऋणो की देखभाल के लिए परिसम्पत्ति पुनर्निर्माण निधि (Assets Reconstruction Fund) कायम करना चाहिए।

2 समय के उपरान्त कानूनी तरलता अनुपात (Statutory liquidity ratio) घटा कर 25% कर देना चाहिए और इसी प्रकार रोक आरक्षण अनुपात (Cash reserve ratio) कम करके कुल जमा के उसे 5% तक लाना चाहिए। इस प्रकार बेको को लाभदायक प्रयोगो के लिए अधिक राशियाँ उपलब्ध हो सकेगी।

3 कानूनी तरलता अनुपात के आधीन जो सरकारी और अर्ध-सरकारी प्रतिभूतियाँ सरकार द्वारा बैंको को प्रस्तुत की जाती हैं, उन पर ऊची ब्याज दर देनी चाहिए।

4 बैंको को उधार की न्यूनतम ब्याज दर निश्चित करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

5 प्राथमिकता क्षेत्र के लिए उधार की मात्रा कुल उधार के वर्तमान 40% से कम करके 10% कर देनी चाहिए।

6 सभी रियायती ब्याज दरें समाप्त कर देनी चाहिए।

7 बैंको को राशियाँ प्राप्त करने के नए स्रोत ढूढने चाहिए। उदाहरणार्थ जमा-प्रमाणपत्रो (Certificates of deposits) द्वारा बैंक को काफी जमा-राशि प्राप्त हो सकती है जिसे बाद मे निगम क्षेत्र को अधिक लाभदायक ब्याज-दर पर उधार दिया जा सकता है।

8 बैंक 182 दिन के राजकोषीय बिल (Treasury bills) जारी कर सकते हैं जिन पर अधिक ब्याज दर प्राप्त हो सकती है।

9 शाखा विस्कतार को कडे रूप मे वाणिज्यिक आधार पर ही बढावा देना चाहिए और बैंको को आपस मे शाखाओ की अदला-बदली की इजाजत होनी चाहिए।

10 बैंकों की क्रियाओ का विस्तार–हाल ही के वर्षो मे बैंको ने बहुत सी नवीन याजनाए चालू की हैं जिनसे अतिरिक्त आय प्राप्त हा सकती है। उदाहरणार्थ बहुत से बैंका ने व्यापारिक बेकिंग अनुषगिया (Merchant banking subsidiaries), पारस्परिक निधियाँ (Mutual funds), जोखिम पूजी कम्पनियाँ (Venture capital companies), आढत सेवाए (Factoring services) और क्रेडिट कार्ड आदि चालू किए हैं। इन सभी स्रोतो से बैंको को अत्यन्त आवश्यक राजस्व प्राप्त हुआ है।

अत सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको की निम्न लाभदायकता के मुख्य कारण हैं–राजनीतिक एव प्रशासनिक हस्तक्षेप और उनकी कार्य प्रणाली पर नियन्त्रण, घटिया कार्य सस्कृति और उपभोक्ता सेवाओ के प्रति सामान्य उदासीनता और भयकर मजदूर सघीय क्रियाए जो बैंक-प्रणाली को समय-समय पर बर्बाद कर देती हैं और इसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था को भी खराब करती हैं। घटिया लाभदायकता के कुछ भी कारण क्यो न हो, इस स्थिति को सुधारना अत्यन्त आवश्यक है। नरसिम्हम समिति के शब्दा मे, "अर्थव्यवस्था के वित्तीय स्वास्थ्य मे इतनी गिरावट आ चुकी है कि यदि इसमे सुधार के उपाय शीघ्र नहीं किए जाते, तो इसके परिणामस्वरूप इन बैंको को सौंपी गई बचत और उस पर प्रत्याय का मूल्य और अधिक लुप्त हो जाएगा और इसका दुष्प्रभाव जमाकर्त्ताओ और विनियोक्ताओ के विश्वास पर पडेगा।"

5. बैंकिंग प्रणाली और प्रतिभूति घोटाला
(Banking System and the Securities Scam)

1988 मे शेयर बाजार (Stock Exchange) मे भारी गिरावट के पश्चात् इसमे तेजी की प्रवृत्ति कायम हो गई जिसके कारण बाजार नेताओ द्वारा बढिया निष्पादन और उत्तरोत्तर सरकारो की उद्योग-मैत्रीपूर्ण नीतियाँ थीं जैसे उत्पादको को लाइसेस जारी करने मे उदारीकरण, उदार राजकोषीय उपाय, उदार एव सकारात्मक निर्यात-आयात नीति निजी क्षेत्र के लिए क्षेत्र-विस्तार, आदि। गत तीन वर्षों मे व्यक्त तेजी की प्रवृत्ति को डॉ मनमोहन सिह के 1991-92 के बजट ने और प्रोत्साहन दिया और बाजार-मैत्री की नीतियो (Market friendly policies) की एक शृखला चालू कर दी। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया का साधारण हिस्सो की कीमतो का सूचकाक जो मार्च 1988 के अन्त पर (1981-82 = 100) 528 था फरवरी 1992 मे 1,000 की सीमा को पार कर गया। इस अवस्था मे डॉ मनमोहन सिह के 1992-93 के बजट मे शेयर बाजार को जोकि तेजी से उबल रहा था एक उन्माद के वातावरण मे पहुचा दिया। इन दो बजटो के पूर्व एव पश्चात्, सनसेक्स (Sensex) मे 360 अको की वृद्धि हुई। सनसेक्स जोकि बम्बई मे देश के सर्वाधिक क्रय-विक्रय किए जाने वाले स्क्रिप्स (Scrips) पर आधारित है, जनवरी 1992 म 2,000 के करीब था, यह 9 मार्च को 3,350 को पार कर गया और 20 अप्रैल 1992 को 4,300 पर पहुच गया। भारत सरकार के वित्त मत्रालय

के अनुसार शेयर बाजार में यह अभूतपूर्व तेजी औद्योगिक एव व्यापारिक सम्प्रदाय द्वारा 1992-93 के बजट का भव्य स्वागत थी।

रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने भारतीय एव विदेशी बैंको के प्रतिभूति-व्यापार (Securities trading) के बारे मे आरम्भिक जाच की जिसमे बहुत से बैंको मे प्रतिभूतियो के सौदो में अनियमितताओ और धोखाधडी का गम्भीर रहस्योद्घाटन हुआ। शेयर बाजार के बेईमान दलालो ने कुछ बैंक अधिकारियो के साथ साठ-गाठ करके नियमो एव मार्गदर्शी सिद्धान्तो का उल्लघन किया ओर शेयर बाजार मे सट्टेबाजी के लिए भारी मात्रा मे राशियाँ हथिया लीं। इन अनियमितताओ एव धोखाधडी को आम भाषा मे "प्रतिभूति घोटाला" (Securities scam) कहा जाता है। एक तरफ तो इसके कारण भारतीय शेयर बाजारो मे सबसे भयकर कृत्रिम तेजी को उत्तेजना मिली जो बाद मे एकदम धडाम से समाप्त हो गई जिससे अनेक स्टाक धारियो (Stock holders) को भारी घाटे हुए, दूसरी तरफ इसके परिणामस्वरूप बैंको के आन्तरिक नियन्त्रण एव पर्यवेक्षण के रूप मे वे कमजोरिया सामने आईं जिनके कारण बैंको को भारी घाटे हुए। रिजर्व बैंक ने इस घोटाले की जाच के लिए एक उच्च स्तरीय समिति नियुक्त की जिसे जानकीरमण समिति के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इसे प्रतिभूति सोदो मे विभिन्न प्रकार की अनियमितताओ की पहचान का कार्य सौंपा गया जिनके द्वारा बैंकिग प्रणाली से भारी मात्रा मे राशियाँ हथिया ली गईं।

1 बैंको और उनके अनुषगियो द्वारा प्रतिभूतियो एव अन्य विनिमय-पत्रो का क्रय दिखावे के तोर पर किसी अन्य बैंक से किया गया परन्तु वास्तव मे उनसे प्राप्त राशियो को प्रत्यक्षत या अप्रत्यक्षत दलालो (Brokers) के खाते मे डाल दिया गया।

2 तुरन्त अग्रे (Ready forward) क्रय-विक्रय के सौदो को बैंको ने या तो अपने या अपने ग्राहकों (Clients) के खातो मे जो दलालो के साथ थे, दाखिल कर दिया जिन्होने इन राशियो का प्रयोग सट्टेबाजी मे किया।

3 शेयर बाजार म दलालो को ऐसे विनिमय-पत्रो के बट्टे से वित्त जुटाया गया जिनके समर्थन मे वास्तविक सोदे नहीं हुए थे।

4 बैंको एव अन्य सस्थाना ने अन्य बैंको से माग-मुद्रा (Call money) के रूप मे काफी भुगतान दिखाया। परन्तु प्राप्तकर्त्ता बैंको के बही-खातो में इन माग-मुद्रा स्वीकृतियो का कोई रिकार्ड नहीं था बल्कि इसकी बजाए ये राशियाँ वैयक्तिक दलालो के खातो मे जमा कर दी गईं। देय तिथि पर, इन आरोपित माग-ऋणो (Call loans) का भुगतान अन्य बैंको के नाम मे दलालो के खातो से वापिस कर दिया गया।

5 बैंको एव अन्य सस्थानो ने अन्य बेको एव सस्थानो के पास रखे गए विनिमय-पत्रो का पुन बट्टा किया और इनसे प्राप्त राशियाँ और वापसियाँ दलालो के खाता मे व्यक्त की गईं।

6 अन्त निगमीय जमा (Inter corporate deposits) और पोर्टफोलियो प्रबन्ध योजनाओ (Portfolio management schemes) के आधीन ऐसी राशियाँ जो सार्वजनिक क्षेत्र और अन्य बैंको के व्यापारिक बैंकिग अनुषगियो (Merchant banking subsidiaries) से प्राप्त की गईं, वे तुरन्त अग्रे सौदो (Ready forward deals) द्वारा दलालो को सौंप दी गईं।

कई अन्य प्रकार की धोखाधडी भी की गई। जानकीरमण समिति ने अनुमान लगाया कि बिना-मिलान राशियो (Unreconciled accounts) की मात्रा लगभग 4 000 करोड रुपए थी। ये अनियमितताए सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको निजी क्षेत्र के बैंको एव विदेशी बैंको द्वारा की गईं।

बैंक अनियमितताओ के लिए उत्तरदायी कारण

जानकीरमण समिति ने उन हालात की छानबीन अपनी अन्तिम रिपोर्ट म की है जिनमे ये अनियमितताए की गईं। समिति के अनुसार इसके निम्नलिखित कारण हैं –

(क) सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयाँ, जिनके पास राशियो का बाहुल्य था विनियोग के लाभदायक अवसरो की तलाश कर रही थीं,

(ख) बैंक जिन पर रोक-आरक्षण अनुपात (Cash Reserve Ratio) और कानूनी तरलता अनुपात (Statutory Liquidity Ratio) का भार एक तरफ पड रहा था और प्राथमिकता क्षेत्रो को उधार देने का भार दूसरी तरफ पड रहा था के सामने ब्याज के रूप मे कम आय प्राप्त करने की समस्या थी ओर सभवत उन्हे अपने खातो मे घाटे दिखाने पडते। वे शीघ्र लाभ प्राप्त करन के अवसरो की तलाश मे थे, और

(ग) इस अवधि के दोरान शेयर बाजार मे तेजी की लहर चल रही थी और तेजडिए (Bulls) अपने अति-क्रय के लिए वित्त-प्रबन्ध का भरसक प्रयास कर रहे थे। जिन बैंको ने सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयो से राशियाँ स्वीकार कर रखी थीं, उन्होने यह सोचा कि उच्च आय प्राप्त करने का एकमात्र उपाय स्टाक-दलालो के तेजी को स्थितियो मे काम कर रहे बाजार के लिए वित्त जुटाना है।

इन तीनो बातो की व्याख्या हम सविस्तार करेंगे-

***(i)* सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयो द्वारा ऊची प्रत्याय (Returns) की तलाश**–सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयो को जब बजट-समर्थन (Budgetary support) बन्द कर दिया गया, को मजबूर होकर बाजार से (जिसमे बैंक भी शामिल थे) भारी मात्रा मे राशियाँ गतिमान करनी पडीं। उनके पास भारी मात्रा मे अल्पकालीन ऋण थे और वे विनियोग के अवसरो की तलाश मे थे और जिस कूपन-दर (Coupon Rate) पर उन्होने बाड जारी किए थे उससे अधिक प्रत्याय-दर प्राप्त करना चाहते थे। उन पर माग-मुद्रा बाजार (Call money market) मे इन निधियो का विनियोग करने पर प्रतिबन्ध था। उन्हे अन्त निगमीय जमा मे विनियोग करने की मनाही थी क्योकि यह सोचा जाता था कि यह बहुत जोखिमपूर्ण है। बैंक जमा पर ब्याज निश्चित था और कम भी। किन्तु जमा के प्रमाणपत्रो (Certificates of deposits) पर ब्याज-दर की कोई अधिकतम सीमा नही थी परन्तु बैंको पर जमा प्रमाणपत्रो की कुल मात्रा जारी करने पर अधिकतम सीमा लगी हुई थी। इन स्थितियो के कारण तेजी जोर पकड रही थी।

***(ii)* बैंक और लाभ की तलाश**–बैको को अपनी जमा (Deposits) की काफी बडी मात्रा रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के पास नकद या निश्चित प्रतिभूतियो के रूप म रखनी पडती थी। इस सारी अवधि के दौरान रोक-आरक्षण अनुपात जमा का 15 प्रतिशत और वर्द्धमान जमा (Incremental deposits) का 25 प्रतिशत था और कानूनी तरलता अनुपात (SLR) इसके अलावा 38 5 प्रतिशत था। इस प्रकार कुल जमा के 63 5 प्रतिशत भाग पर या तो कोई ब्याज प्राप्त नहीं होता था या बहुत थोडा ब्याज प्राप्त होता था। वाणिज्यिक उधार के लिए तो केवल 36 5 प्रतिशत जमा उपलब्ध थी।

इस 36 5 प्रतिशत मे से 40 प्रतिशत को राष्ट्रीयकृत बैंको द्वारा प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रो को उधार देना पडता था। निजी बैंको और विदेशी बैंको के लिए यह अनुपात थोडा था। ये ऋण ब्याज की रियायती दर पर दिए जाते थे।

इसके अतिरिक्त कानूनी तरलता अनुपात के आधीन सरकारी प्रतिभूतियो मे बैंक विनियोग पर प्रत्याय-दर दीर्घकालीन ऋण-पत्रो पर वर्तमान बाजार दर से कम थी।

इन सबके कारण वाणिज्य बैको की लाभदायकता बहुत कम हो गई। बेको के पास अपनी प्रत्याय-दर को उन्नत करने के लिए इन प्रतिभूतियो मे व्यापार और तुरन्त अग्रे सौदो (Ready forward deals) की प्रक्रिया को अपनाने के सिवा और कोई चारा न था।

साथ ही बैंक को पोर्टफोलियो प्रबन्ध योजना के आधीन निगम क्षेत्र से राशिया स्वीकार करने की इजाजत दे दी गई जहा जमाकर्त्ता अपेक्षाकृत अधिक प्रत्याय प्राप्त कर सकता था परन्तु इन पर कई प्रतिबन्ध थे। रिजर्व बैंक के नियम ऐसे थे कि बैंक केवल अन्य बैंको के साथ तुरन्त अग्रे सौदे (क्रय एव विक्रय) कर सकते थे, या वे केवल सरकारी एव अन्य स्वीकृत प्रतिभूतियो मे विनियोग कर सकते थे।

***(iii)* शेयर बाजार की तेजी और बैंक-रसीदों का कार्यभाग**–शेयरो की कीमतो मे वृद्धि तो 1989-90 से आरम्भ हो चुकी थी परन्तु 1991-92 के बजट के पश्चात् तेजी जोर पकडने लगी। 1991-92 के दौरान औसत बदला-दर जिस पर शेयर बाजार के दलाल उधार प्राप्त कर सकते थे 7 8 से 59 1 प्रतिशत की सीमा मे था। बैंक, विशेषकर विदेशी बैक ऐसे लाभार्थ क्रय-विक्रय (Arbitrage) अवसरो की खोज मे थे, जिनके द्वारा बैंकर सस्ती दर पर ऋण प्राप्त कर इन्हे ऊची दर पर उधार दे सकते थे। इन अवसरो का लाभ उठाने के लिए बैंको को वर्तमान नियमो का उल्लघन करना पडा। उन्होने बैंकरो की रसीद को एक लाभदायक माध्यम पाया और शेयर बाजार के दलालो को अपनी अपराधी क्रियाओ मे बहुत इच्छुक पाया। बैंको ने बडी मात्रा मे बैंकरो की रसीदो मे तुरन्त अग्रे सौदो का विस्तृत प्रयोग किया। बैंकरो की रसीदो का प्रयोग तब भी किया गया जब प्रतिभूतियो का हस्तातरण नहीं हुआ। बैंकरो की रसीदो का प्रयोग स्टाक दलालो को अपने प्रतिभूति सौदो के वित्त प्रबन्ध के लिए किया गया।

जब शेयर बाजार मे तेजी एकदम समाप्त हो गई, तो सारा ढाचा गिर गया। उस स्थिति मे सरकार और रिजर्व बैंक ने यह महसूस किया कि शेयर बाजार का पागलपन बजट के प्रति अनुकूल प्रतिक्रिया नही था बल्कि कुछ धोखेबाज दलालो को बैंक द्वारा उपलब्ध कराई गई भारी मात्रा में राशियो का परिणाम था।

प्रतिभूति घोटाले के प्रति सरकार का रुख

सरकार ने प्रतिभूति घोटाले मे उत्तरदायी व्यक्तियो की पहचान और उन्हे अनियमितताओ और धोखाधडी के सौदो के लिए सजा देने के लिए फौरी कदम उठाए। उनका उद्देश्य हथियाई गई राशियो को वापस लेना था।

1 प्रतिभूति घोटाले के साथ सम्बन्धित सभी मामलों को जाच के लिए एक विशेष न्यायालय की नियुक्ति की गई और घोटाले से सम्बद्ध व्यक्तियो की सम्पत्ति को जब्त करने के लिए कानून पास किया गया।

2 बम्बई उच्च न्यायालय का एक विशेष न्यायाधीश घोटाले से सम्बन्धित मामलो की सुनवाई के लिए नियुक्त किया गया।

3 सरकार ने जब्त सम्पत्ति के तुरन्त विक्रय के लिए अभिरक्षक (Custodian) नियुक्त किया।

4 सभी धखेधडी और गुप्त सौदों के मामले की जाच के लिए केन्द्रीय जाच ब्यौरो को कहा गया।

5 इन सभी मामलो की छानबीन के लिए श्री रामनिवास मिर्धा की अध्यक्षता मे एक सयुक्त ससदीय समिति (Joint Parliamentary Committee) नियुक्त की गई जो घोटाले के सभी पहलुओ की जाच कर रही है और इसके लिए दायित्व निश्चित कर रही है और भविष्य मे बैंक व्यवस्था के सुधार के लिए सुझाव देगी। इसकी रिपोर्ट शीघ्र ही ससद मे पेश की जाएगी।

प्रतिभूति घोटाला और बैंकिग प्रणाली की कमजोरियाँ

प्रतिभूति घोटाले ने देश की बैंकिग प्रणाली की कमजोरियो की ओर ध्यान आकर्षित किया है। एक स्तर पर यह बैंको को धोखा देने के लिए नियमो और कार्यविधियो के जानबूझकर एव आपराधिक ढग से उल्लघन की कहानी है। यह शेयर बाजार मे दलालो और बैंक अधिकारियो मे गहरी साठ-गाठ का परिणाम है। इसके साथ-साथ बैंक-प्रणाली मे कुछ बुनियादी दोष हैं -

1 वाणिज्य बैंको के भीतर नियन्त्रण व्यवस्था की कमजोरियाँ–यदि इन बैंको मे अधिक प्रभावी नियन्त्रण व्यवस्था होती, तो इन धोखाधडी की क्रियाओ का परदा फाश पहले ही हो जाता।

2 पर्यवेक्षी प्रक्रिया मे कमजोरियाँ--रिजर्व बक का सुझाव है कि इन कमजोरियो को दूर करने के लिए वित्तीय पर्यवेक्षण का बोर्ड (Board of Financial Supervision) स्थापित किया जाए।

3 सरकार द्वारा बैंक-ससाधनो को कम ब्याज दर पर विनियोग करने का निर्देश–इस निर्देश ने बैंको पर दबाव डाला कि वे उन विभिन्न क्रियाओ की खोज करें जिनके द्वारा वे अपनी आय को बढाने के उपाय कर सक्ते हैं।

4 अति विनियमित वित्त प्रणाली को चलाने की कठिनाइयाँ–ये अनियमितताए वित्तीय प्रणाली की कठिनाई की ओर ध्यान आकर्षित करती हैं जिसमे एक भाग मे प्रशासित ब्याज-दरो (Administered interest rates) का पूजी बाजार मे बाजार निर्धारित-दरो के साथ सह-अस्तित्व है। ऐसी स्थिति मे कडे नियन्त्रण कामयाब नहीं हो सकते और उपलब्ध उच्च ब्याज दरो को प्राप्त करने के नियमो को तोडने के प्रयास किए जाते हैं।

सरकार का यह मत है कि उसने घोटाले के अर्थ-व्यवस्था पर पडने वाले प्रभावो को कम-से कम करने म सफलता प्राप्त की है। सरकार ने रिजर्व बैंक के सहयोग के साथ पर्यवेक्षण व्यवस्था को मजबूत करने के लिए कदम उठाए हैं ताकि इस प्रकार की समस्याए भविष्य मे उत्पन्न न हो। बैकिग प्रणाली के सदर्भ मे सरचनात्मक सुधारो की एक श्रृखला तैयार की गई है ताकि व्यवस्था सम्बन्धी दबावो को कम किया जा सके जिनके कारण ऐसी कुरीतियाँ उत्पन्न हुई है जिन्होने बेईमान व्यक्तियो को इनका दुरुपयोग करने का अवसर दिया है।

परन्तु साधारण जनता इन उपायो मे विश्वास नहीं रखती न ही वह यह मानती है कि ऐसी अनियमितताए दोबारा नही होगीं वह तो यह समझती है कि प्रतिभूति घोटाला देश के साथ सबसे बडा धोखा और सार्वजनिक अपमान का विषय है और ये शेयर बाजार के दलालो ओर बैंक अधिकारियो एव सरकारी अफसरो एव शक्तिशाला राजनीतिज्ञो के बीच साठगाठ का परिणाम है। यह बात कि किसी सरकारी अफसर को नोकरी से बरखास्त नहीं किया गया ओर न ही केन्द्राय जाच ब्यूरो को अपने काम को सही ढग से करन की इजाजत दी गई इस बात का प्रमाण है कि सरकार इस मामले को किसी न किसी तरह दबाना चाहती है। सयुक्त ससदीय समिति कुछ भी प्रमाणित न कर सकेगी और न हो कोई सफलता प्राप्त कर सकेगी। इस तथ्य को स्वीकार करना ही होगा कि यह सार्वजनिक घोटाला हो गया है और इसने छोटे विनियोक्ता को बुरी तरह प्रभावित किया है। इस समय विनियोग बाजार मे अनिश्चितता है और भविष्य मे भी बैंकिग प्रणाली मे ऐसी धोखाधडी का घटनाओ के दोबारा व्यक्त होने की सभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता।

46

रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया
(THE RESERVE BANK OF INDIA)

1. रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया और इसके कार्य

रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, अप्रैल 1935 मे पाच करोड रुपये की चुकती पूजी से, जो 100 रुपये के मूल्य वर्ग हिस्सो मे विभाजित थी चालू किया गया। आरम्भ मे समग्र हिस्सा पूजी का स्वामित्व गैर-सरकारी हिस्सेदारो के हाथ मे था। भारत सरकार ने इसमे रु 2,22,000 के मौद्रिक मूल्य के हिस्से लिए। बैंक के सार्वजनिक कार्यों को दृष्टि मे रखते हुए, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम, 1934 मे यह व्यवस्था की गई कि केन्द्र सरकार को रिजर्व बैंक के गवर्नर और डिप्टी गवर्नर नियुक्त करने का अधिकार होगा और ये दोनो रिजर्व बैंक के केन्द्रीय निदेशक मडल (Central Board of Directors) के सदस्य होगे। इस अधिनियम मे हिस्सो के स्वामित्व और लाभाश वितरण सम्बन्धी धाराए भी थी। 1949 मे रिजर्व बैक का राष्ट्रीयकरण किया गया। बैंक मे सामान्य प्रबन्ध एव निर्देशन का कार्य 20 सदस्यो पर आधारित केन्द्रीय निदेशक मण्डल द्वारा किया जाता है। इसमे एक गवर्नर,चार डिप्टी गवर्नर एक वित्त मन्त्रालय द्वारा नियुक्त सरकारी अधिकारी और भारत सरकार द्वारा नामजद दस ऐसे निदेशक होते हैं जो देश के आर्थिक जीवन के विभिन्न पहलुओ का प्रतिनिधित्व करते है और चार निदेशक स्थानीय बोर्डों (Local Boards) का प्रतिनिधित्व करने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा नामजद किये जाते हैं। केन्द्रीय बोर्ड के अतिरिक्त चार स्थानीय बोर्ड भी हैं जिनके मुख्य कार्यालय बम्बइ कलकत्ता मद्रास और नई दिल्ली मे हैं। स्थानीय बोर्डों के पाच सदस्य होते हैं जो कि केन्द्र सरकार द्वारा चार वर्षो की अवधि के लिए नियुक्त किये जाते हैं और इनमे क्षेत्रीय एव आथिक हिता आर सरकारी एव देशी बैंकों का प्रतिनिधित्व मिलता है। 1934 स रिजर्व बैंक अधिनियम द्वारा किसी केन्द्रीय बक के सभी महत्त्वपूण कार्य रिजव बेंक का सोंप गये हैं।

(i) नोट प्रचालन बक (Bank of Issue)—रिजर्व बैंक को विभिन्न भूल्यवर्गो के नाट जारी करने का एकाधिकार प्राप्त ह। रिजव बेंक सरकार के प्रतिनिधि के रूप म एक रुपये क नोटा ओर सिक्को ओर छाटे सिक्को के देश भर मे वितरण का कार्य करता है। रिजर्व बैंक ने करेंसी नोट जारी करने के लिए एक पृथक् प्रचालन विभाग (Issue Depatment) कायम किया हुआ है। प्रचालन विभाग की परिसम्पत और देयता (Assets and Liabilities) को बैकिग विभाग की इन मदो से पृथक् रखा जाता है। आरम्भ मे यह तय किया गया कि प्रचालन-विभाग की परिसम्पत का 40 प्रतिशत स्वर्ण सिक्को एव स्वर्ण या स्टर्लिंग प्रतिभूतियो (Sterling securities) के रूप मे रखना चाहिए किन्तु स्वर्ण का मूल्य 40 करोड रुपये से कम नहीं होना चाहिए। परिसम्पत का शेप 60 प्रतिशत भाग रुपये के सिक्को भारत सरकार की रुपये की प्रतिभूतियो, स्वीकृत विनिमय पत्रो और भारत मे भुगतान होने वाले प्रोनोटो (Promissory notes) के रूप मे रखा जा सकता है। द्वितीय विश्वयुद्ध और उसके बाद के काल की आवश्यकताओ के फलस्वरूप, इन धाराओ मे कई महत्त्वपूर्ण सशोधन किये गये। 1957 के पश्चात्, इस अधिनियम द्वारा यह निर्देश दिया गया कि प्रचालन-विभाग के पास स्वर्ण मुद्रा स्वर्ण एव विदेशी ऋण-पत्र कुल मिलाकर किसी समय 200 करोड रुपये के मूल्य से कम नहीं होने चाहिए। इनमे स्वर्ण का मूल्य (धातु तथा मुद्रा मिलाकर) 115 करोड रुपये से कम नहीं होना चाहिए। इस *वर्तमान समर्थन-व्यवस्था* को *न्यूनतम प्रारक्षण प्रणाली* (Minimum Reserve System) कहा जाता है।

(ii) सरकार का बैकर (Banker of Government)—रिजर्व बैंक का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य सरकार का बैंकर, एजेण्ट एव परमाशदाता का कार्य करना है। रिजर्व बैंक केन्द्र सरकार का आर सभी राज्यीय सरकारो का प्रतिनिधि है। वह भारत सरकार का बैंक-व्यापार करता है अर्थात् भारत सरकार के लिए रुपया स्वीकार करता है, उसके रुपयो की अदायगी करता हे तथा प्रेषण (Remittance) एव अन्य बैकिग क्रियाए (Banking operations) भी करता है। यह सरकार के लिए नये सावजनिक ऋण (Public debt) का प्रबन्ध करता है। यह सरकार के वास्ते 90 दिन क लिए आर्थोपाय अग्रिम (Ways

and means advances) देता है। यह राज्यीय एव स्थानीय प्राधिकारो को भी ऋण देता है। सभी मुद्रा एव बैंक-व्यवस्था सम्बन्धी मामलो पर यह सरकार को परामर्श देता है।

(*iii*) बैंको का बैंकर तथा अन्तिम ऋणदाता (Banker's bank and lender of the last resort)—रिजर्व बैंक को बैंको के बैंकर का कार्य करना पडता है। 1949 के बैंकिंग विनियमन अधिनियम के अनुसार प्रत्येक अनुसूचित बैंक को अपनी माग देयता (Demand liabilities) का 5 प्रतिशत और अपनी सावधि देयता (Time liabilities) का 2 प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास नकद-अधिशेष (Cash balance) के रूप मे रखना पडता था। 1962 के एक सशोधन के अनुसार माग और सावधि देयता मे अन्तर को समाप्त कर दिया गया और बैंको को अपनी समग्र जमा देयता (Aggregate deposit liabilities) का 3 प्रतिशत नकद-प्रारक्षण (Cash reserves) मे रखने का आदेश दिया गया। न्यूनतम नकद-प्रारक्षण की मात्रा रिजर्व बैंक द्वारा बदली जा सकती है।

आवश्यकता के समय या विपत्ति काल मे अनुसूचित बैंक अपने विनिमय-पत्रो का बट्टा करवा कर वित्तीय निभाव (Financial accommodation) प्राप्त कर सकते हैं। चूकि रिजर्व बैंक किसी बैंक की उस समय सहायता कर सकता है जबकि अन्य सभी बैंक इस कार्य मे असमर्थ हो, इसलिए तो रिजर्व बैंक को न केवल बैंको का बैंकर बल्कि अन्तिम ऋणदाता भी कहते हैं।

(*iv*) साख का नियन्त्रक (Controller of credit)-रिजर्व बैंक साख के नियन्त्रक का कार्य करता है अर्थात् इसे भारत मे अन्य बैंको द्वारा निर्मित साख की मात्रा पर नियन्त्रण करने का अधिकार प्राप्त है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह या तो बैंक दर मे परिवर्तन कर सकता है या खुले बाजार की क्रियाओ (Open market operations) का प्रयोग कर सकता है। 1949 के बैंकिंग कम्पनी अधिनियम के अनुसार रिजर्व बैंक किसी विशेष बैंक को या समग्र बैंक व्यवस्था को निर्देश कर सकता है कि किसी विशेष व्यक्ति-समूह को कुछ प्रकार की प्रतिभूतियो के विरुद्ध उधार न दे। 1956 के पश्चात् रिजर्व बैंक द्वारा चयनात्मक साख नियन्त्रण (Selective credit controls) के उपायो का अधिकाधिक प्रयोग किया जाने लगा है।

रिजर्व बैंक को भारतीय मुद्रा बाजार का नियन्त्रण करने के लिए बहुत से अन्य अधिकार भी प्राप्त हैं। प्रत्येक बैंक को भारत मे बैंक व्यापार करने के लिए रिजर्व बैंक से लाइसेंस लेना पडता है। यदि कोई बैंक रिजर्व बैंक द्वारा लगायी गयी शर्तों को पूरा न करे तो यह लाइसेंस वापस भी लिया जा सकता है। किसी नयी शाखा को खोलने से पूर्व भी प्रत्येक बैंक को रिजर्व बैंक की स्वीकृति प्राप्त करनी पडती है। प्रत्येक अनुसूचित बैंक द्वारा रिजर्व बैंक को अपना साप्ताहिक विवरण देना पडता है जिसमे अपनी परिसम्पत् एव देयता (Assets and liabilities) सम्बन्धी सूचना सविस्तार देनी पडती है। इसी प्रकार रिजर्व बैंक को किसी भी वाणिज्य बैंक के खाते के परीक्षण का भी अधिकार प्राप्त है।

अत रिजर्व बैंक को सर्वोच्च बैंक प्राधिकार होने के नाते ये अधिकार प्राप्त हैं (क) यह सभी अनुसूचित बैंको के नकद-प्रारक्षण (Cash reserve) को अपने पास रखता है। (ख) यह गुणात्मक तथा परिमाणात्मक नियन्त्रणो (Qualitative and quantitative controls) द्वारा बैंको की साख-क्रियाओ का नियन्त्रण करता है। (ग) यह लाइसेंस परीक्षण तथा सूचना प्राप्त करने की विधियो द्वारा भी बैंक प्रणाली पर नियन्त्रण करता है। (घ) यह अनुसूचित बैंको को बटटा करने की सुविधाए उपलब्ध कराके अन्तिम ऋणदाता का कार्य करता है।

(*v*) विदेशी मुद्रा प्रारक्षण का सरक्षक (Custodian of foreign exchange reserves)—रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया पर औपचारिक विनिमय दर (Rate of exchange) स्थिर रखने का दायित्व होता है। 1934 के रिजर्व बैंक अधिनियम के अनुसार बैंक को निश्चित दरो पर स्टर्लिंग क्रय एव विक्रय करना पडता था। क्रय-विक्रय का कोई सौदा 10 000 रुपये की राशि से कम नहीं हो सकता था। विनिमय दर 1 रुपया-1 शिलिंग 6 पैन्स निर्धारित की गयी। स्टर्लिंग के क्रय एव विक्रय का उद्देश्य विनिमय दर को स्थिर रखना था 1935 के पश्चात् रिजर्व बैंक ने विनिमय दर 1 शिलिंग 6 पैंसे पर ही स्थिर रखी चाहे कई बार इस दर को बदलने के पक्ष और विपक्ष मे काफी दबाव डाला गया। भारत 1946 मे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (International Monetary Fund) का सदस्य बन गया और इस पर यह दायित्व आ गया कि यह कोष के सभी अन्य सदस्यो के साथ अपनी विनिमय दर स्थिर रखे।

रुपये की विनिमय दर को स्थिर रखने के अतिरिक्त रिजर्व बैंक को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राओ के भारतीय प्रारक्षण के सरक्षण का काय भी करना पडता है। भारत के महान् स्टर्लिंग अधिशेष (Sterling balances) की प्राप्ति और प्रबन्ध इसी बैंक द्वारा किया गया।

प्रोन्नति कार्य **(Promotional functions)**—स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् आर्थिक विकास पर अधिक बल देने के फलस्वरूप रिजर्व बैंक के कार्यो का लगातार विस्तार हुआ है। बैंक द्वारा विकास एव प्रोन्नति सम्बन्धी बहुत से कार्य किए जाते हैं जो कि एक समय पूर्व केन्द्रीय बैंक के

सामान्य कार्यक्षेत्र के बाहर माने जाते थे। रिजर्व बैंक को यह निर्देश दिया गया कि वह बैंक आदतों को प्रोन्नत करे ग्राम तथा अर्द्ध नगरीय क्षेत्रो मे बैंक सुविधाओ को फैलाए और नयी विशिष्ट वित्त प्रबन्ध एजेन्सियो की स्थापना करे और उन्हे बढावा दे। इसी उद्देश्य को लेकर रिजर्व बैंक ने 1962 मे जमा बीमा निगम (Deposit Insurance Corporation) 1963 मे कृषि पुनर्वित्त निगम (Agricultural Refinance Corporation) और 1964 मे इकाई न्यास (Unit Trust) एव औद्योगिक विकास बैंक भारत के औद्योगिक पुनर्निर्माण बैंक (Industrial Reconstruction Bank of India) की स्थापना की। ये सस्थाए रिजर्व बैंक द्वारा प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रूप मे कायम की गयीं इनका उद्देश्य बचत की आदत को प्रोत्साहित करना और बचत को गतिमान करना था ताकि औद्योगिक वित्त एव कृषि वित्त जुटाया जा सके। आरम्भ से ही रिजर्व बैंक मे कृषि उधार विभाग कायम किया गया था परन्तु 1951 के पश्चात् बैंक का कार्यभाग महत्त्वपूर्ण बन गया। बैंक ने किसानो तक अल्पकालीन उधार पहुँचाने के लिए सहकारी आन्दोलन का विकास किया और दीर्घकालीन वित्त उपलब्ध कराने के लिए कृषि पुनर्वित्त निगम कायम किया।

2 रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया और भारतीय मुद्रा बाजार

(Reserve Bank of India and the Indian Money Market)

सुव्यवस्थित मुद्रा बाजार प्रभावी मौद्रिक नीति का आधार होता है। मुद्रा बाजार (Money market) की परिभाषा अल्पकाल के लिए उधार लेने और उधार देने वाले बाजार के रूप मे की जा सकती है। इससे उधार लेने वालों की अल्पकालीन आवश्यकताओ की पूर्ति होती है। मुद्रा बाजार वह स्थान है जहा वित्तीय तथा अन्य सस्थानो और व्यक्तियो के पास उपलब्ध विनियोज्य निधिया (Investible funds) उधार प्राप्त करने वालो द्वारा अल्पकाल के लिए उधार ली जाती है। उधार लेने वालो मे सस्थान व्यक्ति या स्वय सरकार भी हो सकती है। मुद्रा बाजार मे रिजर्व बैंक को केन्द्रीय स्थान प्राप्त है और वह बाजार मे करेन्सी तथा उधार के प्रवाह को नियन्त्रित करता है।

सामान्यतया भारतीय मुद्रा बाजार को दो भागो मे बाँट लिया जाता है असगठित और सगठित क्षेत्र। इन दोनों क्षेत्रो मे विद्यमान ब्याज की दरो मे काफी अन्तर रहता है। असगठित मुद्रा क्षेत्र (Unorganised monetary sector) मे देशी बैंक समाविष्ट किए जाते हैं जो अपना बैंक व्यापार पारम्परिक ढग से करते है। सगठित मुद्रा क्षेत्र (Organised monetary sector) मे रिजर्व बैंक स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया और इसके अनुषगी बैंक 20 राष्ट्रीयकृत बैंक और गैर-सरकारी क्षेत्र के अन्य बैंक भारतीय और विदेशी दोनो शामिल किए जाते है। भारतीय मुद्रा बाजार के सगठन मे बडी ढील पाई जाती है और 1935 मे रिजर्व बैंक के आरम्भ से पूर्व इसमे बहुत सी कमिया विद्यमान थीं। कुछ कमियां तो अब तक भी पायी जाती है। अब हम उनमे से कुछ का विवेचन करेंगे।

भारतीय मुद्रा बाजार के दोष

1 एकीकरण का अभाव (Lack of Integration)—भारतीय मुद्रा बाजार का एक महत्त्वपूर्ण दोष मुद्रा बाजार का बहुत से खण्डो या क्षेत्रो मे विभक्त होना था। ये खण्ड या क्षेत्र एक दूसरे से बहुत ही ढीले रूप मे सम्बन्धित थे। एक समय था जब प्रत्येक खड अर्थात् इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया (जो अब स्टेट बैंक कहलाता है) विनिमय बैंक भारतीयो के स्वामित्वाधीन संयुक्त स्कन्ध बैंक सहकारी बैंक और देशी बैंक-सभी बैंक व्यापार के किसी एक अग का कार्य ही करते थे और इस प्रकार अपने व्यापार क्षेत्र मे एक दूसरे से स्वतन्त्र थे। इसके अतिरिक्त मुद्रा बाजार के विभिन्न खण्डो के सम्बन्ध स्नेहपूर्ण न थे। उदाहरणार्थ सयुक्त स्कन्ध बैंक (Joint stock banks) इम्पीरियल बैंक ऑफ इण्डिया तथा विदेशी बैंको से ईर्ष्या करते थे क्योकि भारत मे ब्रिटिश शासन इनका संरक्षण अपना दायित्व समझता था। 1949 के बैंकिंग विनियमन अधिनियम के पास होने के पश्चात् रिजर्व बैंक द्वारा सभी बैंको को लाइसेंस देने शाखाए खोलने हिस्सा पूंजी प्राप्त करने दिए गए ऋण तथा अग्रिम के प्रकार आदि के बारे मे एक सा बर्ताव दिया जाने लगा।

रिजर्व बैंक ने अब मुद्रा बाजार के संगठित क्षेत्र को अपने प्रभावाधीन कर लिया है क्योकि वह अब सगठित क्षेत्र की क्रियाओ पर नियन्त्रण करने की स्थिति मे है। इसी प्रकार अधिक काम काज के मौसम मे वाणिज्य एव सरकारी बैंक बट्टा तथा उधार सुविधाओ के लिए अधिकाधिक सीमा तक रिजर्व बैंक पर निर्भर हो गए हैं। इसके अतिरिक्त रिजर्व बैंक इनकी उधार नीतियो (Lending policies) का मार्गदर्शन करता है और नियमित रूप मे वाणिज्य बैंको के हिसाब किताब का परीक्षण भी करता है।

2 असंगठित मुद्रा बाजार का विद्यमान होना—इस सम्बन्ध मे मुख्य दोष सगठित मुद्रा बाजार का देशी बैंकरो से पृथक होना है। असगठित बाजार मे अल्पकालीन और दीर्घकालीन वित्त मे कोई स्पष्ट भेद नहीं होता और न ही वित्त के विभिन्न उद्देश्यों मे ही कोई भेद होता है। रिजर्व बैंक ने देशी बैंकरो को अपने प्रत्यक्ष प्रभावाधीन लाने के लिए कई प्रयास किए परन्तु ये सफल न हुए, यद्यपि जो

शर्तें रिजर्व बैंक द्वारा देशी बैंकरो पर लगाई गयीं, उन्हे देशी बैंकरो ने स्वीकार न किया। जिस हद तक देशी बैंकर सगठित मुद्रा बाजार के प्रभाव-क्षेत्र के बाहर रहेगे, उस हद तक रिजर्व बैंक का समग्र मुद्रा बाजार पर नियन्त्रण सीमित होगा। किन्तु देशी बैंकर सगठित बैंक-व्यवस्था के आधीन इसलिए आ रहे थे क्योंकि इन्हे उपरोक्त से बट्टा सुविधाए (Rediscounting facilities) प्राप्त हो रही थीं।

3. ब्याज की मौद्रिक दर मे भिन्नता–मुद्रा बाजार का एक और महत्त्वपूर्ण दोष बहुत-सी ब्याज की मौद्रिक दरो का विद्यमान होना है। भारतीय मुद्रा बाजार के बहुत से खण्डो एव क्षेत्रो में विभक्त होने के कारण ऐसा होना स्वाभाविक था। इनमे सरकार की उधार प्राप्त करने की दर, वाणिज्य बैंको की जमा एव उधार दरें, सहकारी बैंको की दरें, प्रत्यक्ष वित्तीय सस्थानो की दरें, आदि हैं। इतनी अधिक ब्याज दरो के एक साथ विद्यमान होने का मूल कारण मुद्रा-बाजार के विभिन्न क्षेत्रो में पूंजी की गतिहीनता (Immobility of capital) है। यह दोष अब दूर किया जा चुका है। हाल ही के वर्षों मे विभिन्न मौद्रिक दरें केन्द्रीय बैंक दर मे परिवर्तन के साथ शीघ्र ही सामजस्य कायम कर लेती हैं।

4 विभिन्न केन्द्रो मे ब्याज-दर की असमानता–एक और लक्षण दो मुख्य केन्द्रो अर्थात् बम्बई और कलकत्ता मे मौद्रिक दरो मे काफी असमानता का विद्यमान होना है। इसके कारण प्रतिभूतियो की कीमतो में उच्चावचन और व्यापार की गतिविधि पर कई प्रतिक्रियाए होती हैं। चाहे रिजर्व बैंक को स्थापित हुए लगभग 70 वर्ष हो गए हैं, फिर भी मौद्रिक दरो मे अन्तर आज भी विद्यमान है। किन्तु रिजर्व बैंक ने देश के विभिन्न भागो मे राशियो के प्रेषण (Remittance of funds) को सस्ता एव विधिवत् बना दिया है और इस प्रकार देश भर मे मौद्रिक दरा को समान करने में सहायता दी है।

5 मुद्रा की मौसमी तगी–भारतीय मुद्रा बाजार का एक और प्रकट लक्षण मुद्रा की मौसमी तगी (Seasonal stringency) है और वर्ष के एक भाग मे-अथात् नवम्बर से जून के बीच व्यस्त मौसम मे जब फसलों को ग्रामा एव जिलों से नगरो तथा बन्दगाहो तक ले जाना पडता है–मुद्रा की ऊँची दरें विद्यमान होना है। वर्ष के एक भाग और दूसरे भाग के बीच भी मौद्रिक दरों मे काफी भिन्नता पाई जाती है। 1935 से पूर्व याचना-मुद्रा दर (Call money rate) कभी-कभी व्यस्त मौसम मे 7 से 8% होती, परन्तु कम काम-काज के मौसम (Slack season) मे गिरकर 1 प्रतिशत और कई बार 0 5 प्रतिशत भी हो जाती है। आरम्भ से ही रिजर्व बैंक ने यह चेष्टा की है कि मुद्रा-बाजार मे अल्पकालीन दरो मे मौसमी उच्चावचन को कम करने मे सहायता दे। रिजर्व बैंक अधिक काम-काज के मौसम में मुद्रा बाजार मे मुद्रा डाल देता है और इसे कम काम-काज के मौसम म वापस ले लेता है। अत इसके फलस्वरुप भारतीय मुद्रा-बाजार में न अधिक बाहुल्य हो सकता है और न न्यूनता। साथ ही याचना मुद्रा दरो मे भिन्नता समाप्त कर दी गई है।

6 विनिमय पत्र बाजार (Bill Market) का विकसित न होना–मुद्रा बाजार का एक और मुख्य दोष विनिमय पत्र बाजार का विकसित न होना है। किसी भी देश मे कुशल मुद्रा बाजार की स्थापना के लिए आवश्यक है कि एक सुसगठित विनिमय पत्र बाजार कायम किया जाए ताकि उधार पद्धति निर्विघ्न रूप से कार्य कर सके। देश के विभिन्न उधार सस्थानो को अन्तत और प्रभावी रूप मे केन्द्रीय बैंक के साथ सम्बन्धित करने की दृष्टि से भी पत्र बाजार का विकास आवश्यक है। कुछ एक ऐतिहासिक कारणा के फलस्वरूप भारत में विनिमय पत्र बाजार का विकास नहीं हो सका। इन कारणो मे तरलता प्रयोजनो (Liquidity purposes) के लिए नकदी की अधिक मात्रा की आवश्यकता विनिमय पत्रो का बट्टा करवाने की अपेक्षा उधार प्राप्त करने मे प्राथमिकता, नकद-साख प्रणाली, आदि शामिल किए जाते हैं। परन्तु विनिमय-पत्रो के बाजार का विकास न होने का मुख्य कारण विदेशियो के स्वामित्वाधीन विनिमय बैंका का विदेशी व्यापार मे विनिमय करना और लन्दन मुद्रा बाजार मे विनिमय पत्रो का बट्टा करना या उन्हे परिपक्व होने तक अपने पास रखना है। 1952 मे रिजर्व बैंक ने विनिमय पत्र बाजार योजना बनाई, जो वास्तव मे विनिमय पत्रा का बाजार नहीं था परन्तु वाणिज्य बैंको के लिए रिजर्व बैंक से उधार लेने का एक उपाय था। 1970 मे, रिजर्व बैंक ने एक उचित विनिमय पत्र बाजार बनाया जिसे नया विनिमय पत्र बाजार कहा जाता है। इसमें अल्पकालीन व्यापार विनिमय पत्र खरीदे एव बेचे जाते हैं।

7. सुसगठित बैंक प्रणाली की अनुपस्थिति–भारतीय मुद्रा बाजार का एक और दोष सुसगठित बैंक प्रणाली का विकास न होना है। बैंको का शाखा विस्तार भी मन्द गति से हुआ है। देश मे बडे बैंको की सख्या बहुत थोडी है और वास्तविक दृष्टि से बहुत बडे बैंक तो कुछ एक ही हैं। ये बैंक अधिकतर बडे नगरो तथा मण्डियों मे स्थित हैं। पूजी की गतिशीलता म अत्यधिक मन्दता और विभिन्न ब्याज दरो का विद्यमान होना देश मे शाखा विस्तार को मन्द गति के लिए उत्तरदायी हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् और विशेषकर बैंक विनियमन अधिनियम, 1949 के पारित होने के बाद, बैंक प्रणाली पर रिजर्व बैंक बहुत गहरा प्रभाव और नियन्त्रण रखने लगा है। विलयन और समामेलनो द्वारा बैंको की सख्या बहुत कम कर दी गई हैं।

भारतीय मुद्रा बाजार–एक अल्पविकसित मुद्रा बाजार

मुद्रा बाजार के ऊपर दिए गये लक्षणो से यह विदित होता है कि भारतीय मुद्रा बाजार बहुत ही अविकसित है और इसकी तुलना लन्दन मुद्रा बाजार जैसे उन्नत मुद्रा बाजारो से नहीं की जा सकती। यह एक ऐसा मुद्रा बाजार है जिसे बैक तथा अन्य वित्तीय सस्थान (Financial institutions) अल्पकाल के लिए उधार देते या इससे उधार प्राप्त करते हैं।

प्रथम, भारतीय मुद्रा बाजार के पास इसके कार्य-कलाप की सफलता के लिए एक सगठित बैंक व्यवस्था उपलब्ध नही है। दूसरे, इसके पास अल्पकालीन परिसम्पतो (अर्थात् विनिमय पत्रो, राजकोषीय पत्रो (Treasury bills) या अल्पकालीन सरकारी बाडो) का पर्याप्त एव निरन्तर सभरण प्राप्त नहीं है। तीसरे, भारत मे अल्पकालीन परिसम्पतो (Short term assets) के कोई व्यापारी नहीं है जो सरकार एव बैंकिग प्रणाली के बीच मध्यवर्तियो (Intermediaries) का कार्य कर सके। इस सम्बन्ध मे हमे लन्दन मुद्रा बाजार मे बट्टा घरो (Discount houses) और विनिमय पत्रो के दलालो के महत्त्वपूर्ण भाग को दृष्टि मे रखना होगा। चौथे, भारतीय मुद्रा बाजार मे कुछ बहुत ही आवश्यक उप-बाजार (Sub markets) जैसे याचना-मुद्रा बाजार, विदेशी विनिमय पत्र स्वीकृति बाजार (Acceptance markets) या वाणिज्यिक विनिमय पत्र बाजार विद्यमान नही हैं। इसमे सदेह नहीं कि अब एक सगठित याचना मुद्रा बाजार (Call money market) काफी विकसित हो गया है परन्तु अन्य तो विद्यमान ही नहीं हैं। पाचवे, मुद्रा बाजार के विभिन्न अगो मे तालमेल नहीं है। मुद्रा बाजार के विभिन्न अगो मे आपसी सम्बन्ध बडे ढीले और असमन्वित हैं। अन्तिम, भारतीय मुद्रा बाजार लन्दन मुद्रा बाजार की भाति विदेशी मुद्रा को आकर्षित नहीं कर पाता।

भारतीय रिजर्व बैंक ने इन दोषो को दूर करने के लिए कुछ उपाय किए हैं। मुद्रा बाजार के विभिन्न वर्गों मे जो अन्तर विद्यमान थे, वे रिजर्व बैंक द्वारा काफी कम कर दिए गये हैं। विदेशी बैंको और भारतीय सयुक्त स्कध बैंको के बीच भेद की नीति अपनायी नहीं जाती। भारतीय मुद्रा बाजार अब अधिक व्यवस्थित होता जा रहा है। विभिन्न क्षेत्रो एव विभिन्न समयो पर ब्याज की दरो मे जो अन्तर विद्यमान होते थे, वे भी रिजर्व बैक द्वारा काफी कम कर दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त, खुले बाजार की क्रियाओ और बिल बाजार योजना द्वारा मुद्रा की तगी को भी काफी हद तक कम करने मे रिजर्व बैक सफल हुआ है।

इस सम्बन्ध मे, भारतीय मुद्रा बाजार को नियन्त्रित करने मे रिजर्व बैंक की कुछ कठिनाइयो का उल्लेख करना उचित होगा।

प्रथम, पत्र बाजार (Bill market) की अनुपस्थिति मे रिजर्व बैंक के लिए यह सभव नहीं कि मुद्रा बाजार में अतिरिक्त निधि (Surplus funds) प्राप्त करने के लिए अपने विनिमय पत्रो का विक्रय कर सके।

दूसरे, याचना मुद्रा बाजार (Call money market) के अपर्याप्त विकास के कारण रिजर्व बैंक का कार्य और कठिन हो जाता है क्योकि अधिकांश बैंक अपने नकद प्रारक्षण (Cash reserve) और जमा मे निश्चित अनुपात नहीं रखते और इस प्रकार वाणिज्य बैंको की नीति को प्रभावित करने के लिये रिजर्व बैंक को खुले बाजार की क्रियाओ (Open market operations) का प्रयोग करना पडता है।

तीसरे, देशी बैंकरो को मुद्रा बाजार मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है और उनका भी एकीकरण किया जा रहा है। रिजर्व बैंक की क्रियाओ का अधिकतर प्रभाव तो मुद्रा बाजार के सगठित क्षेत्र पर पडता है और यह प्रभाव असगठित क्षेत्र (जो मुख्यत देशी बैंकरो से बना हुआ है) पर नहीं पडता। असगठित क्षेत्र का विद्यमान होना, रिजर्व बैंक की एक समस्या है।

3. रिजर्व बैंक आफ इण्डिया की मौद्रिक नीति

भारत मे पचवर्षीय योजनाओ के चालू होने के साथ आयोजित विकास की आवश्यकताओ के अनुकूल मौद्रिक नीति मे परिवर्तन करना जरूरी था। 1952 के बाद भी मौद्रिक नीति मे सरकार की वर्तमान आर्थिक नीति के युगल उद्देश्यो पर ही बल दिया गया–(क) देश मे आर्थिक विकास को त्वरित करना ताकि राष्ट्रीय आय और जीवन-स्तर उन्नत हो सके, और (ख) दूसरे विश्वयुद्ध के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप मे उत्पन्न अभावो और सरकार द्वारा न्यून वित्त प्रबन्ध (Deficit financing) के कारण पैदा होने वाले स्फीतिकारी दबावो (*Inflationary pressures*) को नियन्त्रित करना। इस प्रकार योजनाकाल मे रिजर्व बैंक द्वारा अपनायी गयी इस नीति को "नियन्त्रित विस्तार" (Controlled expansion) की नीति की सज्ञा दी जा सकती है अर्थात् इस नीति मे एक ओर तो आर्थिक विकास के लिए पर्याप्त वित्त प्रबन्ध किया गया और दूसरी ओर कीमत-स्थिरता (Price stability) कायम की गई। भारत जैसी अर्थव्यवस्था मे जहाँ आयोजित आर्थिक विकास की नीति अपनायी गयी हो, विनियोग की बढती हुई माँग के लिये करेंसी और साख का विस्तार अनिवार्य है। रिजर्व बैंक ने अर्थव्यवस्था के त्वरित और विविध विकास की दृष्टि से साख एव मुद्रा सभरण (Monetary supply) के विस्तार की आवश्यकता को अनुभव किया है। इस बात का पूरा अहसास है कि मुद्रा तथा साख के अत्यधिक विस्तार से स्फीतिकारी प्रवृत्तिया पनपती हैं जो अन्तत अर्थव्यवस्था की वित्तीय स्थिरता के

लिए एक खतरा है। 1973 के पश्चात्, स्फीतिकारी दबाव बढते ही गये और रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति केवल स्फीति के नियन्त्रण तक ही सीमित हो गयी।

साख नियन्त्रण (Credit Control)

विकासशील अर्थव्यवस्था मे करेंसी और साख का विस्तार विनियोग की बढती हुई माग को पूरा करने के लिए अनिवार्य होता है। परन्तु इसके साथ मौद्रिक प्राधिकार को यह ध्यान रखना चाहिए कि इससे स्फीतिकारी दबाव (Inflationary pressure) अधिक न हो जाये और न ही स्फीतिकारी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो सके। साथ ही यह भी सत्य है कि सरकारी व्यय मे वृद्धि और लगातार न्यून व्यय (Deficit expenditure)—जिसे पूर्वोक्त के वित्त प्रबन्ध के लिए इस्तेमाल किया जाता है-के कारण कीमते, मजदूरी और आय ऊपर उठती हैं। 1955-56 के पश्चात् और विशेषकर 1973-74 के बाद कीमतो मे स्फीतिकारी वृद्धि लगातार बढती ही गयी है। रिजर्व बैंक को अर्थव्यवस्था मे बढते हुए स्फीतिकारी दबावो को नियन्त्रित करने का कार्य सौंपा गया है।

भारतीय रिजर्व बैंक के पास साख नियत्रण के कई उपाय हैं। ये मुख्यत दो वर्गों मे विभक्त किए जाते हैं परिमाणात्मक एव गुणात्मक नियन्त्रण। परिमाणात्मक नियन्त्रणों (Quantitative controls) का प्रयोग उधार की मात्रा के नियन्त्रण के लिए किया जाता है और अप्रत्यक्षत ऐसे स्फीतिकारी एवं अवस्फीतिकारी दबावो के नियन्त्रण के लिए किया जाता है जो उधार के विस्तार या सकुचन के कारण व्यक्त होते हैं। परिमाणात्मक साख नियन्त्रणो को सामान्य साख नियन्त्रण भी कहते हैं और इनमे बैंक दर नीति, खुले बाजार की क्रियाए और नकद आरक्षण अनुपात शामिल किए जाते हैं।

(क) बैंक-दर-1930-40 के दशक की परम्परा के अनुसार, रिजर्व बैंक ने सस्ती मुद्रा नीति (Cheap money policy) चालू की और एक निम्न बैंक-दर (3 प्रतिशत) निश्चित की और इसे नवम्बर 1953 तक नहीं बदला, फिर इसे बढाकर 3 5 प्रतिशत कर दिया गया। धीरे-धीरे बैंक दर बढायी गयी और जुलाई 1981 तक यह बढ़ कर 10 प्रतिशत हो गयी। इसके बाद 10 वर्षों तक (1981-91) बैंक दर अपरिवर्तित ही रही। जुलाई 1991 मे यह बढाकर 11 प्रतिशत कर दी गयी और अक्तूबर 1991 मे और बढा कर 12 प्रतिशत कर दी गयी।

बैंक-दर या केन्द्रीय बैंक की पुन बट्टा दर (Rediscount rate) आधुनिक अर्थव्यवस्थाओ मे एक महत्त्वपूर्ण मौद्रिक उपाय है। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यभाग वित्तीय क्षेत्र मे भाग लेने वालो और विशेषकर बैंको को केन्द्रीय बैंक की मौद्रिक और ब्याज-दर नीति के बारे मे स्थिति को स्पष्ट करना है। यदि मौद्रिक नीति प्रभावी और विश्वसनीय है, तो बैंक-दर मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप बैंको की प्राथमिक उधार दर (Prime lending rate) मे परिवर्तन होगा और इस प्रकार यह एक स्वतन्त्र मौद्रिक नियन्त्रण के उपाय के रूप में कार्य करेगी। किन्तु मौद्रिक नीति के उपाय के रूप मे बैंक दर का कार्यभाग भारत मे बहुत ही सीमित रहा है। इसके मूलत निम्नलिखित कारण हैं

(क) ब्याज-दरो की सरचना का प्रशासन रिजर्व बैंक आफ इडिया द्वारा किया जाता है। वे अपने-आप बैंक दर से जुडी हुई नहीं हैं।

(ख) वाणिज्य बैंको को विशेष पुन वित्त सुविधाए (Refinance facilities) प्राप्त हैं और उनके लिए यह अनिवार्य नहीं कि वे भारतीय रिजर्व बैंक के साथ अपनी ग्राह्य प्रतिभूतियो का पुन बट्टा बैंकदर पर करें, और

(ग) विनिमय पत्र बाजार अल्पविकसित है और मुद्रा बाजार के विभिन्न उप-बाजारो पर ब्याज-दर का प्रभाव नहीं पडता।

दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि भारत मे बैंक-दर अन्य बाजार ब्याज-दरो के लिए गति निर्धारक (Pace setter) का कार्य नहीं करती और मौद्रिक बाजार दरे अपने-आप बैंक-दर मे परिवर्तन के साथ परिवर्तित नहीं होतीं। साथ ही, बैंको (और विकासात्मक वित्त सस्थानो) की जमा-दरे और उधार दरें बैंक-दर के साथ जुडी हुई नहीं हैं। भारत सरकार और भारतीय रिजर्व बैंक अपनी पुन बट्टा सुविधाओ की पहुच के बारे में नियमो एव कार्यविधि की समीक्षा कर रहे हैं ताकि अन्य आधुनिक अर्थव्यवस्थाओ की भाति बैंक-दर को मौद्रिक नीति का सक्रिय उपाय बना सकें।

(ख) परिवर्तनशील रोक प्रारक्षण आवश्यकताए (Variable cash reserve requirements)—उदार नियत्रण का दूसरा उपाय परिवर्तनशील रोक प्रारक्षण आवश्यकताओ का रिजर्व बैंक द्वारा प्रयोग है। 1934 के रिजर्व बैंक अधिनियम के आधीन प्रत्येक वाणिज्य बैंक को अपने रोक प्रारक्षण (Cash reserve) की एक न्यूनतम मात्रा, रिजर्व बैंक के पास रखनी पडती है। आरम्भ में यह माग जमा का 5 प्रतिशत और सावधि जमा (Time deposits) का 2 प्रतिशत थी। 1962 के सशोधन द्वारा रिजर्व बैंक को यह अधिकार दिया गया है कि वह न्यूनतम रोक आवश्यकता को कुल माग एव सावधि जमा के 3 से 15 प्रतिशत के बीच निर्धारित कर सकता है। 1973 दौरान रिजर्व बैंक ने अपने इस अधिकार का दो

संकुचन के लिए प्रयोग किया। यह अनुपात जून 1973 में 3 से बढ़कर 5 प्रतिशत और सितम्बर 1973 मे 7 प्रतिशत कर दिया गया।

इसके बाद भी रिजर्व बैंक ने कई बार प्रारक्षण अनुपात में तबदीली की है। अक्तूबर 1987 मे यह अनुपात शुद्ध माग एवं सावधि दायित्वो का 10 प्रतिशत कर दिया गया ताकि वाणिज्य बैंक के पास नकदी की मात्रा कम करके उधार की मात्रा को प्रभावित किया जा सके।

(ग) कानूनी तरलता आवश्यकताएँ (Statutory liquidity requirements)—रोक प्रारक्षण आवश्यकताओ के अतिरिक्त वाणिज्य बैंको को बैंक नियमन कानून (1949) की धारा 24 के अनुसार अपनी कुल माग एव सावधि जमा का कम से कम 25 प्रतिशत नकदी स्वण और बन्धन मुक्त (Unencumbered) अनुमोदित प्रतिभूतियो मे तरल परिसम्पत् के तौर पर रखना पडता है। इसे *कानूनी तरलता अनुपात कहते हैं।*

पर्याप्त तरल परिसम्पत् को कायम रखना सुदृढ बैंक व्यवस्था का मूल सिद्धान्त है। इसी कारण बैंक नियमन कानून (1949) द्वारा भारत के वाणिज्य बैंको को तरल परिसम्पत् का न्यूनतम अनुपात कायम रखना अनिवार्य कर दिया गया है। रिजर्व बैंक ने इस अधिकार के आधीन तरलता अनुपात को 25 प्रतिशत से बढाकर नवम्बर 1972 मे 32 प्रतिशत कर दिया और फिर 1981 मे 35 प्रतिशत और सितम्बर 1984 मे 36 प्रतिशत और जनवरी 1988 मे 38 प्रतिशत कर दिया। तरलता अनुपात बढाने के उद्देश्य हैं–(i) वाणिज्य बैंको की व्यापार एव उद्योग को ऋण तथा अग्रिम देने की क्षमता को कम करना और (ii) बैंक राशियो को ऋण तथा अग्रिमो से हटाकर सरकारी तथा अनुमोदित प्रतिभूतियो मे विनियोग म लगाना।

यहा इस बात का उल्लेख करना चाहिए कि कानूनी तरलता आवश्यकताओ और रोक प्रारक्षण अनुपात का उद्देश्य एक ही है अर्थात् वाणिज्य बैंको की व्यापार एव उद्योग के लिए उधार का विस्तार करने की क्षमता कम करना और इसलिए ये स्फीति-विरोधी उपाय है।

(घ) भारतीय रिज़र्व बैंक की खुले बाजार की क्रियाए (Open Market Operations)

खुले बाज़ार की क्रियाओ से अभिप्राय केन्द्रीय बैंक द्वारा मौद्रिक बाजार में ग्राह्य प्रतिभूतियों (Eligible securities) के क्रय और विक्रय से है। ऐसी अर्थव्यवस्थाएं जिनमे सुविकसित मौद्रिक बाजार विद्यमान है, केन्द्रीय बैंक खुले बाजार की क्रियाओ का प्रयोग वाणिज्य बैंक के पास नकद आरक्षण (Cash Reserve) को प्रभावित करने के लिए करते हैं। इस प्रकार वाणिज्य बैंको को औद्योगिक एव वाणिज्यक क्षेत्रों को दिए जाने वाले ऋणो एव अग्रिमो को प्रभावित किया जा सकता है। रिज़र्व बैंक ने कई वर्षों से इस उपाय का प्रयोग नहीं किया।

1991 के बाद भारत मे विदेशी राशियो के भारी प्रवाह के कारण बैंकिंग क्षेत्र मे अत्यधिक तरलता की समस्या पैदा हो गयी और भारतीय रिजर्व बैंक ने बडे पैमाने पर खुले बाज़ार की क्रियाओ का प्रयोग किया। जब भारतीय रिज़र्व बैंक सरकारी प्रतिभूतियो को बाजार मे बेचता है, तो वाणिज्य बैंकों के नकद-आरक्षण (Cash reserve) का एक भाग खींच लेता है और इस प्रकार बैंको की औद्योगिक एव वाणिज्यक क्षेत्रा को उधार देने की क्षमता को कम कर दता है। एक बार अतिरिक्त नक्दी समाप्त कर दी जाती है और कानूनी नकद आरक्षण आवश्यकता कम कर दी जाती है, तब बैंकों को अपने उधार की पूर्ति कम करनी पड़ती है ताकि वे अपनी कानूनी नक्द आरक्षण की आवश्यकताओ के लिए कुछ नकद-आरक्षण जुटा सके। इसके परिणामस्वरूप बैंक उधार जिसमे माग-जमा (Demand Deposits) का निमार्ण शामिल होता है, गिर जाता है और मुद्रा-सभरण (Money Supply) का सकुचन हो जाता है।

ठीक उलटी स्थिति उत्पन्न हो जाएगी यदि भारतीय रिजर्व बैंक बाजार से प्रतिभूतिया क्रय करता है और उनके लिए भुगतान करता है। वाणिज्य बैंको के पास अधिक अतिरिक्त नकदी हो, तो वे अधिक उधार एव अधिक बैंक जमा कायम कर सकगे। मुद्रा के सभरण मे वृद्धि होगी। देश मे आर्थिक प्रतिसार की प्रवृत्ति को पलटने के लिए इस प्रकार की नीति अपनायी जाती है जिसमे सरकार प्रतिभूतिया खरीदती है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय रिजर्व बैंक खुले बाजार की क्रियाओ को मौद्रिक नीति के उपाय के *रूप मे सक्रिय ढग से इस्तेमाल करेगा।*

2. चयनात्मक एवं प्रत्यक्ष साख नियन्त्रण (Selective and Direct Credit Controls)

साख नियन्त्रण के उपायो के रूप मे 1956-57 के पश्चात् चयनात्मक साख नियन्त्रण के उपायो का विकास विशेष रूप मे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर गया है। मई 1956 मे रिजर्व बैंक ने एक निर्देश जारी किया जिसके अनुसार अनुसूचित बैंको पर यह रोक लगा दी गई कि वे धान तथा चावल के *विरुद्ध अग्रिम (Advances)* को सीमित करें और अपने उधार-प्रतिभूति अन्तर (Margin) को 10 प्रतिशत बढा दे। 1964-65 मे रिजर्व बैंक ने खाद्यान्नो, तिलहनों, वनस्पति तेलो आदि के विरुद्ध दिए जाने वाले अग्रिमो के लिए वाणिज्य बैंको को एक निश्चित उधार-प्रतिभूति अन्तर (Margin) रखने का निर्देश किया। इसका उद्देश्य ऐसी

वस्तुओ के विरुद्ध, जिनकी देश में कमी हो, बैंक-उधार की मत्रा को सीमित करना था। 1965 के पश्चात् साख अधिकरण योजना (Credit Authorisation Scheme) के अधीन वाणिज्य बैंको को किसी एक उधार प्राप्त करने वाले को 1 करोड रुपए या इससे अधिक के ऋण देन से पूर्व रिजर्व बैंक की स्वीकृति लेनी पडती है। जनवरी 1970 के पश्चात् राष्ट्रीयकृत बैंको को किसी सयुक्त पूजी कम्पनी के एक लाख रुपए या इससे अधिक के हिस्से और ऋण पत्र खरीदने से पूर्व रिजर्व बैंक की पूर्वानुमति लेनी पडता है। उधार क्रियाओ के सम्बन्ध म रिजर्व बेक द्वारा राष्ट्रीयकृत बैंको पर बहुत से प्रत्यक्ष नियन्त्रण (Direct controls) लगाए गए हैं। चयनात्मक साख नियन्त्रण सम्बन्धी तीन उपाय भारत मे किए जाते हैं-(1) विशिष्ट प्रतिभूतियो के विरुद्ध न्यूनतम उधार प्रतिभूति अन्तर (2) किसी विशेष उद्देश्य के लिए दिए गए उधार का मात्रा पर अधिकतम सामा, और (3) कुछ विशेष प्रकार के अग्रिमो पर विभेदकारी ब्याज दरें (Discriminatory rates)। चयनात्मक साख नियन्त्रण लागू करते समय रिजव बैंक यह ध्यान रखता है कि उत्पादन, वस्तुओ के स्थान परिवतन एव नियात के लिए दिए जाने वाले उधार पर असर न पडे। चयनात्मक नियन्त्रणो का मुख्य उद्देश्य मालतालिकाओ (Inventories) के लिए व्यापारियो को उधार देना है।

उधार अधिकरण योजना (Credit Authorisation Scheme)—चयनात्मक उधार नियन्त्रण का एक रूप उधार अधिकरण योजना है जो नवम्बर 1965 मे चालू की गई। इस योजना के कार्यान्वयन द्वारा रिजर्व बैंक बडे उधार प्राप्तकर्त्ताओ-सरकारी एव गैर-सरकारी दोनो क्षेत्रो मे-पर योजना प्राथमिकताओ और बैंक ससाधनो पर विभिन्न प्रतियोगी क्षेत्रो की वर्तमान उभरती हुई मागो को दृष्टि मे रखकर नियन्त्रण कर सकता है। इस योजना से बैंको मे समीक्षा तकनीक (Appraisal techniques) को उन्नत करने में सहायता मिलती है। यह उधार नियन्त्रण और अवाञ्छनीय उपायो के रूप मे महत्त्वपूर्ण उपकरण सिद्ध हुआ।

इस योजना के आधीन वाणिज्य बैंको को किसी एक पार्टी को एक करोड या इससे अधिक उधार देने के लिए रिजर्व बैंक से स्वीकृति प्राप्त करनी पडती है। अप्रेल 1986 में यह सीमा बढाकर 6 करोड रुपए कर दी गइ। विनिमाण इकाइयों (Manufacturing units) और नियातको के लिए यह सीमा 7 करोड रुपए रखी गई।

मार्च 1986 के अन्त तक योजना के आधीन 21,470 करोड रुपए के उधार की स्वीकृति दी गई, जिसमें से 93 प्रतिशत कार्यकारी पूँजी की आवश्यकताओ के लिए थी।

देश मे वित्तीय प्रणाली के अविनियमन (Deregulation) और उदारीकरण करने की दृष्टि से, रिजर्व बैंक ने 1987 के पश्चात् बहुत से उपाय किए हैं। रिजर्व बैंक द्वारा इस सम्बन्ध मे एक मुख्य उपाय के रूप में उधार अधिकरण योजना (Credit Authorisation Scheme) को अक्टूबर 1988 मे समाप्त कर दिया गया। किन्तु बैंको द्वारा बुनियादी वित्तीय अनुशासन को लगातार पालना करने के लिए रिजर्व बैंक उन सभी बैंक उधारो को मानीटर करेगा जो (क) कायकारी पूजी की आवश्यकताओ के रूप मे किसी एक पार्टी को 5 करोड रुपए से अधिक राशि उपलब्ध कराते हैं और (ख) सावधि ऋणो (Term loans) के रूप मे 2 करोड रुपए से अधिक उधार उपलब्ध कराते हैं। इसे उधार मानीटरिंग व्यवस्था (Credit Monitoring Arrangement) के नाम से सम्बोधित किया गया है।

मौद्रिक नीति का मूल्याकन

मौद्रिक नाति के युगल उद्देश्यो मे अर्थव्यवस्था का विकास और स्फीतिकारी दबावो पर नियन्त्रण शामिल किए जाते हैं। मौद्रिक नीति का मूल्याकन करते समय दो बातो का उल्लेख किया जा सकता है।

प्रथम देश के विकास में मौद्रिक नीति को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता। यह बात स्वीकार की जाती है कि अर्थव्यवस्था को स्वय-स्फूर्त विकास (Self sustained growth) का अवस्था मे लाने का मुख्य दायित्व सरकार पर है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए रिजर्व बैंक पर बहुत थोडा दायित्व डाला गया है। रिजर्व बैंक को यह विश्वास दिलाना चाहिए कि विकास-प्रक्रिया बेंक उधार के अभाव के कारण मन्द नहीं होने दी जाएगी।

द्वितीय रिजर्व बैंक के उपायो एव अधिकारो का कार्यक्षेत्र अनुसूचित बैंको तक ही सीमित हो जाता है। जिस हद तक स्फीतिकारी दबाव बैंक-वित्त का परिणाम होते हैं, रिजव बेक के सामान्य एव चयनात्मक नियन्त्रण अवश्य प्रभाव डालते हैं। परन्तु यदि स्फीतिकारी दबावा के कारण न्यून वित्त प्रबन्ध (Deficit finance) और वस्तुओ की कमी है तो रिजर्व बैंक के उपाय किसी भी प्रकार से कारगर नहीं हो सकते। हाल ही के वर्षों मे यही स्थिति भारत में विद्यमान थी। इसके अतिरिक्त, यह बात भी उल्लेखनीय है कि रिजर्व बैंक का न ही तो बैंक-भिन्न सस्थाओ (Non-banking institutions) और न ही देशी बैंकरो पर कोई नियन्त्रण है परन्तु वे देश के व्यापार एव उद्योग में महत्त्वपूर्ण भाग अदा करते हैं।

47

भारत में वित्तीय प्रणाली का सुधार
(REFORM OF THE FINANCIAL SYSTEM IN INDIA)

1. बैंकिग प्रणाली का सुधार
(Reform of the Banking System)

भारत सरकार ने श्री एम नरसिम्हम, भूतपूर्व गवर्नर, रिजर्व बेंक ऑफ इण्डिया की अध्यक्षता मे वित्तीय प्रणाली के ढाचे, व्यवस्था, कार्यों एव कार्यरीति के सभी पहलुओ की जाच करने के लिए एक समिति नियुक्त की। समिति ने नवम्बर 1991 मे अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

समिति के बुनियादी जाच-परिणाम

समिति के अनुसार, सार्वजनिक बैंकों एव वित्तीय सस्थानो की घटिया वित्तीय स्थिति ओर निम्न कुशलता के कुछ बुनियादी कारण हैं –

(1) विनियोग, उधार आवटन, शाखा विस्तार और व्यापार के आन्तरिक प्रबन्ध और कार्य-सचालन मे भारी मात्रा मे केन्द्रीय निर्देशन, और

(*ii*) बैंक व्यवस्था अत्यधिक राजनीतिक हस्तक्षेप का शिकार रही है जिसके नतीजे के तौर पर ये सस्थान अपने वाणिज्यिक उद्देश्यो के आधार पर कार्य नही कर सके और न ही इन्हे आन्तरिक स्वायत्तता प्राप्त थी।

नरसिम्हम समिति का मुख्य उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको और विकास सम्बन्धी वित्तीय सस्थानो के वित्तीय स्वास्थ्य को उन्नत करना है ताकि उन्हे सक्षम एव कुशल बनाया जा सके। तभी वे अर्थव्यवस्था की उभरती हुई आवश्यकताओ को पूरा कर सकते हैं। समिति की सिफारिशो का मुख्य बल बैंकिग प्रणाली, विकास वित्त सस्थानो (Development Finance Institutions) और मुद्रा एव पूजी बाजार पर है।

नरसिम्हम समिति ने जुलाई 1969 के बैंक राष्ट्रीयकरण के पश्चात् सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको की आश्चर्यजनक सफलता को स्वीकार किया है–

(*i*) भारी मात्रा मे विस्तार, विशेषकर ग्रामीण एव अर्द्धनगरीय क्षेत्रो मे,

(*ii*) परिवार क्षेत्र की बचत को गतिमान करना,

(*iii*) बेक-उधार के बढते हुए भाग का प्राथमिकता क्षेत्रो *अर्थात् कृषि, लघु उद्योगो, परिवहन आदि के लिए* प्रयोग,

(*iv*) सापेक्षत बैंक-विहीन क्षेत्रो (Unbanked areas) मे अधिक रुचि और क्षेत्रीय असमानताओ को धीरे-धीरे कम करना।

जबकि पिछले दो दशको मे बैंक राष्ट्रीयकरण के पश्चात् बैंक-प्रणाली ने महत्त्वपूर्ण प्रगति की है, किन्तु इसमें साथ-साथ उत्पादिता एव कुशलता मे भारी गिरावट आई है और परिणामत इसकी लाभदायकता मे भारी क्षति हुई है। इस स्थिति के दो मुख्य कारण हैं–निर्देशित विनियोग और निर्देशित उधार कार्यक्रम।

निर्देशित विनियोग (Directed Investment)

पर्याप्त तरल परिसम्पत् (Liquid assets) को कायम रखना सुदृढ बैंक-व्यवस्था का बुनियादी सिद्धान्त है। इसी कारण बैंकिग नियमन कानून 1949 (धारा 24) के आधीन भारत मे वाणिज्य बैंको को नकदी, स्वर्ण और बन्धनमुक्त अनुमोदित प्रतिभूतियो (Unencumbered approved securities) के रूप मे कुल माग तथा सावधि जमा दायित्वो के 25 प्रतिशत से कम राशि को तरल परिसम्पत के रूप मे रखना आवश्यक कर दिया गया। रिजर्व बैंक को यह अधिकार दिया गया कि वह न्यूनतम कानूनी तरलता अनुपात (Statutory Liquidity Ratio—SLR) को परिवर्तित कर सकता है। इस अधिकार के तहत, भारतीय रिजर्व बैंक ने नवम्बर 1972 मे इसे 25% से बढाकर 30 प्रतिशत और बाद मे धीरे-धीरे बढाकर 38 5% कर दिया। भारतीय रिजर्व बैंक के ऐसा करने के दो मुख्य कारण थे–

(क) ऊचे कानूनी तरलता अनुपात के कारण वाणिज्य बैंको को अपनी राशियो का बहुत बडा भाग सरकारी *प्रतिभूतियो एव सरकार द्वारा गारटीकृत प्रतिभूतियो मे रखना* पडता था और इस कारण वाणिज्य बैंको की उद्योग एव व्यापार को ऋण तथा अग्रिम देने की क्षमता कम हो जाती थी।

(ख) ऊचे कानूनी तरलता अनुपात (SLR) के कारण

बैंकों को अपनी राशियो को बैंक उधार एव अग्रिम की अपेक्षा सरकारी प्रतिभूतियो एव अन्य प्रतिभूतियो मे रखना पडता था। यह माना जाता था कि इसका प्रभाव स्फीति को कम करना है।

नरसिम्हम समिति ने यह तर्क दिया है कि ऊचे कानूनी तरलता अनुपात के कारण बैंको की लाभदायकता पर प्रभाव पडता है क्योकि सरकारी प्रतिभूतियो पर ब्याज दर बाजार ब्याज दर (Market rate of interest) से अपेक्षाकृत कम होती है। इसके अतिरिक्त, ऊच एस एल आर के कारण बैंक के पास उत्पादक आर्थिक क्षेत्रो जैसे कृषि उद्योग एव व्यापार को साधन उपलब्ध कराने के लिए कम राशि शेष रह जाती है। अत नरसिम्हम समिति ने ऊचे कानूनी तरलता अनुपात को बैंक प्रणाली एव उन बचतो पर भी जो बैंको मे रखी जाती हैं, एक कर (Tax) कहा है।

अत नरसिम्हम समिति ने अप्रत्यक्ष रूप मे यह बात साफ कर दी है कि ऊचा कानूनी तरलता अनुपात भारत सरकार के वित्त मन्त्रालय द्वारा बन्दी बैंक-प्रणाली के साथ एक प्रकार का धोखा था जिसके द्वारा सरकार कानून की सहायता से कुल बैंक जमा का 38 5 प्रतिशत अपने खर्चे की पूर्ति के लिए हथिया लेती थी और इस पर बहुत कम ब्याज देती थी जबकि बैंको को अपने जमाकर्त्ताओ को कहीं अधिक ब्याज देना पडता था। यह तब न्यायोचित समझा जा सकता था यदि सरकार इन राशियो का प्रयोग विकासात्मक परियोजनाओ मे करती। परन्तु हाल ही के वर्षों मे सरकार बैंको से प्राप्त राशियो का प्रयोग सरकारी कर्मचारियो के वेतन अदा करने के लिए भी करती रही है।

नकद प्रारक्षण अनुपात (Cash Reserve Ratio)–रिजर्व बैंक अधिनियम (1934) के आधीन वाणिज्य बैंको को रिजर्व बैंक के पास न्यूनतम नकद प्रारक्षण भी रखना पडता है। रिजर्व बैंक के अधिनियम मे सशोधन कर 1962 मे इसे यह अधिकार दिया गया कि वह नकद प्रारक्षण अनुपात को कुल माग एव सावधि जमा के 3 से 15 प्रतिशत के बीच निश्चित कर सकता है। अत माग प्रबन्ध की नीति के आधीन इस अनुपात मे कई बार परिवर्तन किया गया। 1973 मे यह अनुमान लगाया गया कि नकद प्रारक्षण अनुपात मे 1 प्रतिशत की वृद्धि से 100 करोड रुपए की सीमा तक उधार क्षमता कम हो जाएगी।

वर्तमान नकद प्रारक्षण अनुपात औसतन 15 प्रतिशत है। यदि इन दोनो अनुपातो–एस एल आर और सी आर आर को एक साथ लिया जाए, तो बैंको को अपनी कुल जमा का 53 5 प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास रखना पडता है। नकद प्रारक्षण अनुपात के आधीन वाणिज्य बैंको द्वारा रखी गई राशि पर रिजर्व बैंक 10 5 प्रतिशत ब्याज देता है और अतिरिक्त शेष राशियो पर 5 प्रतिशत। ब्याज की ये राशिया प्रचलित ब्याजदरो से एक वर्ष के लिए रखी गई जमा से भी कम हैं। अत प्रारक्षण आवश्यकता कर (Reserve Requirement Tax) के कारण बैंक को प्राप्त होने वाली आय म लगातार कमी हुई है और इसका लाभदायकता पर दुष्प्रभाव पडा है।

निर्देशित उधार कार्यक्रम (Directed Credit Programmes)

1969 मे बैंक राष्ट्रीयकरण का उद्देश्य एक ओर तो बैंक उधार का विस्तार बैंक-विहीन क्षेत्र (Unbanked areas) मे करना था और दूसरी ओर कृषि तथा अन्य अभी तक उपेक्षित क्षेत्रो मे बढावा देना था जिन्हे प्राथमिकता क्षेत्र (Priority sector) की सज्ञा दी गई। बाद मे सरकार ने वाणिज्य बैको के विशेष ध्यान क लिए इसम कुछ और क्षेत्र जैसे निर्यात-क्षेत्र खाद्य वसूली क्रियाए आदि जोड दिए। बेको को यह निर्देश दिया गया कि नये उधार क्षेत्रो मे सफलता प्राप्त करें। बैंको को यह भी कहा गया कि वे प्रतिभूति-उन्मुख उधार (Security oriented credit) की बजाए उद्देश्य उन्मुख उधार की ओर अधिक ध्यान दे। इन नाति के परिणाम वाणिज्य बेक-प्रणाली के लिए अत्यन्त भयानक एव अनर्थकारी हुए।

विशिष्ट क्षेत्र उधार के लक्ष्य निश्चित करने के कारण उदार पोर्टफोलियो (Loan portfolio) की गुणवत्ता में गिरावट आई उधार के गुणात्मक पहलुओ की ओर अपर्याप्त ध्यान दिया गया उधार के आवेदन पत्रो का उचित परीक्षण न किया गया न ही बन्धक रखने की आवश्यकता पर जोर दिया गया न ही उधार देने के बाद इसका पर्यवेक्षण एव निगराना की गई। इन सबका परिणाम यह हुआ कि बकाया राशियो की मात्रा मे वृद्धि हो गई और उत्पादिता को गहरा धक्का लगा।

राजनीतिक एव प्रशासनिक हस्तक्षेप

नरसिम्हम समिति के अनुसार बैंक-प्रणाली को सबसे अधिक क्षति उधार सम्बन्धी निणयो मे राजनीतिक एव प्रशासनिक हस्तक्षेप से हुई है। उदाहरणार्थ काग्रेस पार्टी द्वारा ग्राम एव नगरीय क्षेत्रो मे उधार मेले लगाए जिनका उद्देश्य अपने समथको को बैंक उधार दिलवाना था। यह बात सुदृढ बैंक व्यवस्था के सिद्धान्तो के विरुद्ध थी। यह स्थिति समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम (IDRP) के दौरान ग्राम क्षेत्रा मे निर्धनो एव आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गों के बीच ऋण वितरण के सदर्भ म हुई। नरसिम्हम समिति के अनुसार इस प्रकार कुल कृषि तथा लघु औद्योगिक उधार दूषित हो गया।

राजनीतिक हस्तक्षेप की अभिव्यक्ति अन्य क्षेत्रो मे भी हुई है। उदाहरणार्थ केन्द्र एव अन्य निर्देशित बैंक बीमार

औद्योगिक इकाइयो को उधार देते रहे हैं जबकि उनकी अपनी सूझबूझ के अनुसार ऐसा नहीं करना चाहिए था। इसी प्रकार औद्योगिक एव वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (BIFR) की सलाह और न्यायालयों के निर्देशों का परिपालन करते हुए वाणिज्य बैंक मजबूर होकर बीमार औद्योगिक इकाइयो को उधार उपलब्ध कराते हैं। अत सार्वजनिक बैंको को काफी नुकसान उठाना पडा है उनकी आय कम हो गई है अप्राप्य ऋणो (Bad debts) के लिए अपर्याप्त प्रावधान अधिक उत्पादक क्षेत्रो से उधार को समाप्त करने के कारण लाभदायकता पर दुष्प्रभाव पडता है।

बैंकों का बढता हुआ व्यय

व्यय पक्ष की ओर से गत दो दशको के दौरान बैंको का व्यय बढता ही गया है। इस सम्बन्ध म नरसिम्हम समिति ने निम्नलिखित बातो की ओर सकेत किया है–

(i) शाखा विस्तार मे आश्चर्यजनक वृद्धि करते हुए यह ध्यान नहीं रखा गया कि क्या नई शाखाए आर्थिक दृष्टि स सक्षम हैं।

(ii) कमान एव नियन्त्रण की बागडोर ने केन्द्राय कार्यालय पर्यवेक्षण आन्तरिक परीक्षण और अकेक्षण और बिना मिलान के अन्त शाखाओ और अन्त बैंक प्रविष्टिया (*Interbank entries*) को कमजोर बनाया है।

(iii) स्टाफ की सख्या मे तेजी से वृद्धि हुई है और उनकी पदोन्नतियाँ भी भारी मात्रा मे त्वरित की गई हैं। इसके कारण मानवशक्ति की गुणवत्ता म गिरावट और सभी स्तरो पर अत्यधिक स्टाफ की नियुक्ति हुई है।

(iv) मजदूर सघो द्वारा पदोन्नति और प्रशासन की नीतियो में विवेकपूर्ण दृष्टिकोण नहीं अपनाया गया और अनुशासन एव कार्य आचार व्यवहार (work ethics) को बढावा नहीं दिया। इसके अतिरिक्त यत्रीकरण एव कम्प्यूटरीकरण (Computerisation) आदि के कार्यक्रमो का विरोध किया गया है। मजदूरी और पदोन्नति को उत्पादिता के साथ न तो वैयक्तिक बैंको और न ही समग्र बैंक प्रणाली में जोडा गया है। इसके परिणामस्वरूप ग्राहक सेवा मे अकुशलता और श्रम उत्पादिता (Labour productivity) म गिरावट आई है।

(v) कृषि तथा लघु उद्योगो मे बैंक उधार को बढाया दिया है जबकि इन ऋणो की प्रशासन इकाई लागत (Unit cost) बहुत ऊची है। इसके अतिरिक्त य ऋण साहाय्यित ब्याज दर (*Subsidized interest rate*) पर दिए जाते हैं।

2 बैंकिग प्रणाली पर नरसिम्हम समिति की सिफारिशे
(Recommendations of the Narasimham Committee on the Banking System)

नरसिम्हम समिति की सिफारिशो का आधार यह मूल धारणा है कि बैंक जनता से प्राप्त ससाधनो के ट्रस्टी हैं और इनका प्रयोग ऐसे ढग से किया जाना चाहिए कि इनके स्वामियो अर्थात् जमाकर्त्ताओ को अधिकतम लाभ प्राप्त हो। इस धारणा का अभिप्राय यह है कि सरकार को भी यह हक हासिल नहीं कि वह आर्थिक ससाधनो के आयोजन की आड मे इन राष्ट्रीयकृत बैंको की शोध-क्षमता (Solvency) स्वास्थ्य और कुशलता को किसी प्रकार से खतरा पहुचाए। साथ ही सरकार को यह अधिकार भी नहीं होना चाहिए कि वह बैंको की राशियो को ब्याज की नीची दरो पर प्राप्त करे और फिर इनका प्रयोग उपभोग *व्यय-कर्मचारियो के वेतन के भुगतान-के वित्त-प्रबन्ध के* लिए करे। ऐसा करना जमाकर्त्ताओ के साथ धोखाधडी है। नरसिम्हम समिति की सिफारिशो के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

(i) सचालन लोचशीलता (Operational flexibility) को एक सीमा तक बनाए रखना

(ii) सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको को अपने निर्णयो में आन्तरिक स्वायत्तता प्रदान करना और

(iii) बैंक क्रियाओ मे व्यावसायिकता (*Professionalism*) की अधिक मात्रा का प्रयोग।

(क) निर्देशित विनियोग (Directed Investment) के बारे मे

नरसिम्हम समिति ने कानूनी तरलता अनुपात और नकद प्रारक्षण अनुपात के बारे मे ये महत्त्वपूर्ण सिफारिशें की हैं–

1 कानूनी तरलता अनुपात–समिति ने यह सिफारिश की है कि सरकार को सार्वजनिक क्षेत्र के वित्तीय सस्थान के लिए ससाधन गतिमान करने के लिए कानूनी तरलता अनुपात (*Statutory liquidity ratio*) को इस्तेमाल करने की विधि तुरन्त छोड देनी चाहिए। समिति ने सरकार से आग्रह किया है कि अगले पाच वर्षों के दौरान एस एल आर. को 38 5 प्रतिशत से घटाकर 25 प्रतिशत के स्तर पर लाया जाएगा। एस एल आर मे कटौती के परिणामस्वरूप बैंको के पास अपेक्षाकृत अधिक राशि बच जाएगी जिसका प्रयोग वे कृषि उद्योग व्यापार आदि को प्रोन्नत करने में कर सकते हैं। समिति ने यह भी सिफारिश की है कि सरकार की उधार-प्राप्ति दर धीरे धीरे बाजार दर से

सम्बन्धित होनी चाहिए और इन ऊची ब्याज दरो द्वारा बैंको को अपनी आय बढाने मे सहायता मिलेगी।

2. नकद प्रारक्षण अनुपात–अभी तक रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया नकद प्रारक्षण अनुपात (Cash Reserve Ratio) का प्रयोग मुद्रा एव उधार नियन्त्रण के मुख्य उपाय के रूप मे करता रहा है। नरसिम्हम समिति ने सिफारिश की है कि भारतीय रिजर्व बैंक को अब खुले बाजार की क्रियाओ (Open Market Operations) पर अधिकाधिक निर्भर करना चाहिए और नकद प्रारक्षण अनुपात पर अपनी निर्भरता कम कर देनी चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति की दृष्टि से समिति ने यह प्रस्ताव किया कि नकद प्रारक्षण अनुपात को क्रमिक रूप मे इसके वर्तमान उच्च स्तर से नीचे लाना चाहिए और रिजर्व बैंक को वाणिज्य बैंको की जब्त जमा पर अधिक ब्याज-दर देनी चाहिए जोकि बैंको के एक वर्ष की जमा पर बुनियादी न्यूनतम दर से थोडी अधिक हो। इस क्रिया से रिजर्व बैंक के पास वाणिज्य बैंको से प्राप्त की हुई बहुत सी राशि जो निष्क्रिय नकदी (Idle cash) के रूप में पडी रहती है, अधिक उत्पादक एव लाभदायक कार्यो मे इस्तेमाल की जा सकेगी। इसके अतिरिक्त बैंको को भी भारतीय रिजर्व बैंक के पास रखे हुए नकद अधिशेष (Cash balances) से अधिक राजस्व प्राप्त होगा।

(ख) निर्देशित उधार प्रोग्राम (Directed Credit Programme) के बारे में

नरसिम्हम समिति ने सिफारिश की है कि निर्देशित उधार प्रोग्राम की प्रणाली को धीरे-धीरे समाप्त कर देना चाहिए। इसका एक कारण तो यह है कि कृषि एव लघु उद्योग अब परिपक्व अवस्था मे प्रवेश कर गए हैं और उन्हे अब विशेष आलम्बन की आवश्यकता नहीं। दूसरे, दो दशकों तक ब्याज-साहाय्य (Interest subsidy) के रूप मे दी जाने वाली सहायता काफी है और इस कारण रियायती ब्याज दरो का परित्याग कर देना चाहिए। समिति का तर्क यह है कि निर्देशित उधार प्रोग्राम को एक नियमित प्रणाली के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए बल्कि अर्थव्यवस्था के कमजोर वर्गों के लिए असामान्य आलम्बन के रूप मे प्रयुक्त करना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह कार्यक्रम अस्थायी होना चाहिए, न कि स्थायी। प्राथमिकता क्षेत्र की पुन परिभाषा करनी होगी और इसके अन्तर्गत ग्राम समाज के कमजोर वर्गों अर्थात् सीमान्त किसानो ग्रामीण हस्तशिल्पियो, ग्राम तथा कुटीर उद्योगो, पिद्दी क्षेत्र (Tiny sector) आदि को शामिल करना चाहिए। इस प्रोग्राम की मात्रा कुल बैंक उधार के 10 प्रतिशत तक निश्चित कर देनी चाहिए। इस प्रणाली की तीन वर्षों के पश्चात् समीक्षा करनी चाहिए और फिर यह निर्णय करना चाहिए कि इसे समाप्त किया जाए या इसके अन्दर कुछ सशोधन कर रियायती ब्याज दर को और घटाया जाए।

(ग) ब्याज-दरो के ढांचे (Structure) के बारे मे

नरसिम्हम समिति का मत है कि ब्याज-दरो के ढाचे का निर्धारण मोटे तौर पर बाजार शक्तियो द्वारा किया जाना चाहिए। बैंको और वित्तीय सस्थानो की जमा एव उधार दरो पर लगाए गए सभी नियन्त्रणो एव नियमो को समाप्त कर देना चाहिए। प्राथमिकता क्षेत्र के आधीन छोटी राशियो पर मिलने वाली रियायती ब्याज दरें हटा ली जानी चाहिए। समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम पर मिलने वाले ऋणो पर साहाय्यो को भी समाप्त कर देना चाहिए।

नरसिम्हम समिति का प्रस्ताव है कि ब्याज-दरो के ढाचे को सरल बनाने का अधिकार भारतीय रिजर्व बैंक को होना चाहिए। केन्द्रीय बैंक दर लगर दर (Anchor rate) होनी चाहिए और अन्य सभी ब्याज-दरें इससे घनिष्ठ रूप मे सम्बन्धित होनी चाहिए।

ऊपर दी गई सभी सिफारिशो का उद्देश्य बैंकिग क्षेत्र की ब्याज रूपी आय को बढाना है।

(घ) बैंकिग ढाचे की सरचनात्मक व्यवस्था के बारे मे

बैंक क्रियाओ मे अधिक कुशलता लाने की दृष्टि से, नरसिम्हम समिति ने सार्वजनिक क्षेत्र के बैंको की विलयन एव स्वामित्व-पुनर्गठन द्वारा सख्या कम करने का प्रस्ताव दिया है। समिति के अनुसार मोटे तौर पर बैंक ढाचा इस प्रकार का होना चाहिए–

1 3 या 4 बडे बैंक (जिनमे स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया भी शामिल हो) ऐसे होने चाहिए जो वास्तविक रूप मे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के बन सके।

2 8 से 10 राष्ट्रीय बैंक होने चाहिए जिनकी शाखाए देश भर मे फैली हुई हो और जो सामान्य या सर्वव्यापक बैंकिग कार्य करते रहे।

3 स्थानीय बैंको की क्रियाए सामान्यतया किसी एक विशेष क्षेत्र तक सीमित हो जानी चाहिए।

4 ग्राम बैंक जिनमे ग्रामीण क्षेत्रीय बैंक (Rural Regional Banks) भी शामिल हो, की क्रियाए ग्राम क्षेत्रो तक सीमित होनी चाहिए। इनका मुख्य कार्य कृषि तथा सम्बद्ध क्रियाओ के लिए वित्त जुटाना होना चाहिए।

चूकि अब देश मे ग्रामीण तथा अर्द्ध-नगरीय शाखाओ की व्यवस्था कायम हो गई है, बैंक आदतो को डालने के उद्देश्य से शाखाओ के विस्तार की दृष्टि से लाइसेंस देने की पद्धति समाप्त कर देनी चाहिए। समिति के अनुसार बैंको को लाभदायकता के शुद्ध आधार पर ही शाखाए खोलने की स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए।

नरसिम्हम समिति यह चाहती है कि सरकार घोषणा करे कि भविष्य मे बैंको का राष्ट्रीयकरण नहीं किया

जाएगा। समिति ने सिफारिश की है कि भारतीय रिजर्व बैंक को निजी क्षेत्र मे बैंक कायम करने की इजाजत देनी चाहिए यदि वे आरम्भ म न्यूनतम पजी एव अन्य शर्तो को पूरा करें। सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र के आधीन कार्य कर रहे बैंको के साथ व्यवहार मे कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए।

नरसिम्हम समिति ने यह सिफारिश की है कि सरकार को विदेशी बैंका को यह स्वीकृति देनी चाहिए कि वे अपनी शाखाओ या अनुषगियो (Subsidiaries) के कार्यालय भारत म खोल सक। उन्ह भारतीय बैंको की भान्ति वही या मिलते-जुलते सामाजिक दायित्व पूरे करने पर बल देना चाहिए। विदेशी बैंका और भारतीय बैंको को मिल कर साझे उद्यम (Joint ventures) स्थापित करने की इजाजत होनी चाहिए ताकि वे व्यापार एव विनियोग बैंकिग पट्टेदारी एव अन्य तरह प्रकार की वित्तीय सेवाओं की व्यवस्था कर सकें।

बैंकिग प्रणाली के बारे मे अन्य सिफारिशे

परिसम्पत पुनर्निर्माण निधि (Assets Reconstruction Fund) की स्थापना—आज राष्ट्रीयकृत बैंको और विकास-वित्त सस्थाना (Direct Finance Institutions) पर अव-मानक, (Substandard) सदिग्ध एव हानि वाली परिसम्पत्त का भार पडा हुआ है। नरसिम्हम समिति ने परिसम्पत पुननिमाण निधि की स्थापना की सिफारिश की है। इसके लिए सरकार को एक विशेष कानून बनाना चाहिए ताकि यह सस्था राष्ट्रीयकृत बैंको और वित्तीय सस्थानो के अप्राप्य ऋणो (Bad debts) और सदिग्ध ऋणा के एक भाग को बट्टे पर अपने हाथ म ले सके। धीरे-धीरे सभी अप्राप्य एव सदिग्ध ऋण इस सस्था को सौंप देने चाहिए। इस प्रकार बैंक एव वित्तीय सस्थान इन अप्राप्य एव सदिग्ध ऋणा को अपने तुलन पत्रो पर से हटा लेगे और इनका प्रयोग इस प्रक्रिया द्वारा अधिक उत्पादक कार्यों मे कर सकेगे।

नियन्त्रण की द्वैधता को समाप्त करना—नरसिम्हम समिति ने सिफारिश की है कि बैंकिग प्रणाली पर द्वैध-नियन्त्रण (Dual Central) की व्यवस्था जिसके आधीन एक ओर भारतीय रिजर्व बैंक और दूसरी ओर वित्त मत्रालय का बैंकिग विभाग इसक ऊपर नियन्त्रण रखता है तुरन्त समाप्त कर देनी चाहिए और बैंकिग प्रणाली के नियमन के लिए भारतीय रिजर्व बैक प्रधान एजेन्सी होनी चाहिए।

स्वतन्त्र एव स्वायत्त बैक—प्रत्येक बैंक स्वतन्त्र एव स्वायत्त होना चाहिए। प्रत्येक बैंक को कार्य करने की तकनीक और सस्कृति मे आमूल परिवतन करना चाहिए ताकि यह आन्तरिक रूप मे प्रतिस्पर्द्धी हो सके और इस प्रकार यह विश्व म हो रह परिवर्तनो के अनुसार कार्य कर सकता है। रिजर्व बैंक को आन्तरिक प्रशासन क सदर्भ मे बैंको की स्वतन्त्रता और स्वायत्तता को ध्यान मे रखते हुए उन सभी मार्गदर्शी सिद्धान्तो एव निर्देशो की समीक्षा करनी चाहिए जो सरकार या भारतीय रिजर्व बैंक ने अब तक जारी किए हैं। अन्तिम, बैंक के सर्वोच्च अधिकारी (अध्यक्ष एव प्रबन्ध-निदेशक) का आधार राजनीतिक कारण नहीं होने चाहिए बल्कि व्यावसायिकता एव ईमानदारी होना चाहिए। इस के लिए विशेषज्ञो का एक स्वतन्त्र पैनल होना, न कि सरकार द्वारा नियुक्तियाँ की जाने की वर्तमान पद्धति।

चाहे ससाधन गतिमान करने की दृष्टि से प्रभावी मात्रात्मक उपलब्धियाँ प्राप्त की गई हैं, परन्तु उधार विस्तार के साथ कई विकृतियाँ बैंकिग प्रणाली मे उत्पन्न हो गई हैं। बहुत से सरकारी क्षेत्र के बैंक वित्तीय दृष्टि से कमजोर हो गए हैं और एक प्रतिस्पर्द्धात्मक पर्यावरण की चुनौती का सामना नहीं कर पा रहे हैं। नरसिम्हम समिति ने बिल्कुल साफ शब्दो में सरकार और वित्त मत्रालय पर वर्तमान असतोषजनक स्थिति की जिम्मेदारी डाली है। सरकारी बैंको का प्रयोग एव दुरुपयोग सरकार, अधिकारियो, बैंक कर्मचारियो एव मज्दूर सघो द्वारा किया गया। नरसिम्हम समिति की सिफारिशे कई पहलुओ मे क्रान्तिकारी हैं और इनका विरोध मजदूर सघो, वित्त मत्रालय और प्रगतिशील अर्थशास्त्रियो द्वारा किया जाना स्वाभाविक है।

3. सार्वजनिक क्षेत्र के वित्तीय संस्थानों का सुधार
(Reform of the Public Sector Financial Institutions)

सरकार ने गत 40 वर्षों के दौरान बहुत से सार्वजनिक क्षेत्र के वित्तीय सस्थान स्थापित किए हैं। इनमे उल्लेखनीय हैं—भारतीय औद्योगिक वित्त निगम भारतीय औद्योगिक ऋण तथा विनियोग निगम और भारतीय औद्योगिक विकास बैंक जिन्होने बडे पैमाने के उद्योगो के लिए वित्त उपलब्ध कराया। राज्यीय वित्त निगमो एव लघु उद्योग विकास निगमो ने लघु तथा मध्यम क्षेत्र के उद्यमो के लिए राज्यीय स्तर पर साधन जुटाने मे सहायता दी। इसके अतिरिक्त भारतीय जीवन बीमा निगम, साधारण बीमा निगम, भारतीय इकाई न्यास (Unit Trust of India) ने छोटी बचतो को गतिमान किया। भारतीय औद्योगिक पुन निर्माण बैंक (Industrial Reconstruction Bank of India) ने बीमार इकाइयो के पुनर्स्थापन मे सहायता दी। निर्यात-आयात बैंक (Exim Bank) ने निर्यात वित्त उपलब्ध कराया और नेबार्ड (NABARD) ने कृषि एव ग्राम विकास के लिए वित्त जुटाया। इस प्रकार स्वतन्त्रता-उपरान्त काल मे कायम किए गए सभी सस्थानो को नरसिम्हम समिति ने विकास वित्त सस्थान (Development Finance Institutions) के नाम

से सम्बोधित किया है। समिति ने यह बात स्वीकार की है कि पिछले 40 वर्षों मे ये संस्थान औद्योगिक विकास के मुख्य उद्देश्य के लिए वित्त जुटाने मे सफल हो गए हैं किन्तु इन संस्थानों मे कुछ कमजोरियाँ भी पैदा हो गई हैं जिन्हें दूर करना अनिवार्य है।

विकास वित्त संस्थानो की कमजोरियाँ (Weaknesses of DFIs)

नरसिम्हम समिति के अनुसार हाल ही के वर्षों मे विकास वित्त संस्थानो की लाभदायकता (Profitability) मे काफी गिरावट आई है, चाहे मोटे तौर पर अखिल भारतीय संस्थानो ने अपनी वित्तीय क्षमता बनाए रखी है। इसका कारण ऋण-क्रियाओ मे कुछ कमजोरियाँ हैं।

प्रथम, भारतीय लाइसेंस प्रणाली ने बहुत सी ऐसी परियोजनाओ के लिए वित्त जुटाया जो उद्यमकर्त्ताओ द्वारा बनाई गईं जिनकी क्षमता प्रमाणित नहीं थी। इन अकुशल उद्यमकर्त्ताओ को बहुत सी रियायतो के आधार पर और नियमो में ढील देकर ऋण उपलब्ध कराए गए।

दूसरे, बीमार इकाइयो को सहायता देने की सरकारी नीति ने विकास वित्त संस्थानो को मजबूर किया कि वे अपनी बेहतर व्यापारिक निर्णय शक्ति के विरुद्ध बीमार इकाइयो को वित्त उपलब्ध कराएं।

तृतीय, राज्यीय स्तर के संस्थान स्वायत्त वित्तीय संस्थानो के रूप मे कार्य करने की अपेक्षा राज्यीय सरकारो के अंग के रूप मे कार्य करते रहे हैं।

अन्तिम, सावधि वित्त (Term Finance) के क्षेत्र मे विकास वित्त संस्थानो मे प्रतिस्पर्द्धा का पूर्णतया अभाव रहा है।

विकास वित्त संस्थान एक कार्टेल (Cartel) की भांति कार्य करते रहे हैं क्योंकि विभिन्न संस्थान मिलकर संघीय वित्त (Consortium finance) उपलब्ध कराते हैं। उधार मांगने वालो को अपने प्राजैक्टो के वित्त प्रबन्ध के लिए चुनाव मे सीमित गुंजाइश ही रहती है। संघीय वित्त की प्रणाली का लाभ यह है कि उधार मांगने वालो को वित्त-प्रबन्ध के लिए कई संस्थानो के पास जाना नहीं पड़ता परन्तु नरसिम्हम समिति के अनुसार इसके दोष इस प्रकार हैं -

(क) यदि वित्तीय-संघ प्रार्थी का आवेदन अस्वीकार कर दे, तो उसके पास कोई दूसरा विकल्प नहीं रह जाता, और

(ख) इसके कारण सहयोगी संस्थानो मे दायित्व की भावना के विकास मे बाधा पड़ती है और ये पोर्टफोलियो के अधिकतर भाग के बारे मे अपनी जिम्मेदारी महसूस नहीं करते।

विकास वित्त संस्थानो के बारे में नरसिम्हम समिति की सिफारिशें

नरसिम्हम समिति की सिफारिशो का आधार समिति की यह मान्यता है कि विकास वित्त संस्थान भारत के संदर्भ मे प्रासंगिक हैं चाहे जैसे जैसे भारतीय अर्थव्यवस्था अधिकाधिक औद्योगिक विकास करेगी, इनका विकास मे कार्यभाग कम होता जाएगा। साथ ही, उद्योग के क्रमिक अविनियमन (Deregulation) और औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली के क्षेत्र मे कमी के कारण, विकास वित्त संस्थानो पर जिम्मेदारी और बढ़ जाएगी। समिति की मुख्य सिफारिशें इस प्रकार हैं -

1 विकास वित्त संस्थानों के स्वामित्व-ढांचे को भारतीय औद्योगिक ऋण तथा विनियोग निगम की भान्ति अधिक विस्तृत आधार वाला बनाना होगा।

2 सरकार को एक कार्य-योजना तैयार करनी चाहिए जोकि आगामी तीन वर्षो मे कार्यान्वित की जाए जिसके आधार पर विकास वित्त संस्थान आन्तरिक प्रशासन मे पर्याप्त रूप मे स्वायत्त बन जाए।

3 वित्त संस्थानो के मुख्य प्रबन्धको की नियुक्ति (जैसे कि बैंको मे) प्रमाणित व्यवसायी योग्यता वाले व्यक्तियो की होनी चाहिए और इनके चयन के लिए प्रसिद्ध व्यक्तियो का एक पैनल कायम होना चाहिए।

4 विकास वित्त संस्थानो के बोर्डों मे औद्योगिक क्षेत्र के प्रतिनिधि शामिल किए जाने चाहिए।

5 राज्य स्तर के वित्तीय संस्थानो मे, राज्य सरकार के साथ सम्बन्ध तोड़ना चाहिए और इन संस्थानो की सहायता करनी चाहिए ताकि वे उन्नत कुशलता के साथ कार्य कर सकें, उन्हें केवल उतने ही प्राजैक्ट अपने आधीन लेने चाहिए जिनको वे कुशलता से चला सके और अपने ऋणों की वसूली कर सकें और उन्हें अतिरिक्त राशियो के लिए पूंजी बाजार मे भी प्रवेश करना चाहिए।

6 विकास वित्त संस्थानो को पूंजी बाजार से बाजार-सम्बन्धित दरो पर राशियां गतिमान करनी चाहिए। उन्हें परिवार क्षेत्र की बचतो को ऐसी योजनाओ द्वारा गतिमान करना चाहिए जो वाणिज्य बैंको से टकराव मे नहीं आती।

7. ऋणों की स्वीकृति के संदर्भ मे प्रत्येक विकास वित्त संस्थान को ऋण प्रदान करने का पूर्ण अधिकार होना चाहिए। इस कार्य के लिए प्राजैक्ट का तकनीकी एवं आर्थिक मूल्यांकन होना चाहिए और ये ऋण ऐसे उद्यमकर्त्ताओ को देने चाहिए जो योग्य एवं ईमानदार हों। विकास वित्त संस्थानो को अपने ऋणो के कार्यान्वयन का स्वयं पर्यवेक्षण करना चाहिए।

8 संघीय वित्त-प्रबन्ध की वर्तमान प्रणाली का परित्याग कर देना चाहिए।

9 भारतीय औद्योगिक विकास बैंक के कार्यभाग और कृत्यो मे परिवर्तन करके इसे अन्य सस्थानो के समान बनाना चाहिए। इस बैंक को सर्वोच्च पुनर्वित्त प्रबन्ध के कार्यभाग के लिए ही इस्तेमाल किया जाना चाहिए और इसका प्रत्यक्ष उधार का कार्य किसी अलग सस्थान को सोप देना चाहिए जिसे एक कम्पनी के रूप मे कायम किया जा सकता है।

10. निगमीय स्वामित्वान्तरण (Corporate take-over) के मामलो मे, विकास वित्त सस्थानो को ऐसे वर्तमान प्रबन्धको का समर्थन करना चाहिए जिनका सभी के लाभ के लिए प्रमाणित रिकार्ड हो। इसमे केवल एसे नये प्रबन्धक अपवाद हो सकते हैं जो इनसे बेहतर कार्य कर सकते है। इन सभी मामलो मे विकास वित्त सस्थानों को बाहरी दबावो से स्वतन्त्र होकर अपने वैयक्तिक निर्णय लेने होगे।

नरसिम्हम समिति ने यह प्रस्ताव किया है कि विकास वित्त सस्थानो को अन्तर्राष्ट्रीय रूप मे स्वीकार्य मानदण्ड अपनाने चाहिए। इन्हे पूजी पर्याप्तता को बहाल करना चाहिए, सावधि उधार के वित्त-पोषण मे प्रतिस्पर्द्धा का अश बढाना चाहिए ताकि उधार मागने वालो को अधिक चयन की गुजाइश हो। समिति ने यह भी सिफारिश की है कि वाणिज्य बैको को सावधि वित्त (*Term Finance*) के विस्तार के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए जबकि विकास वित्त सस्थानो को कार्यकारी पूजी (Working capital) की आवश्यकताओ के लिए अल्पकालीन ऋण देने आरम्भ करने चाहिए।

4. भारत में मुद्रा और पूंजी बाजार का सुधार (Reform of the Money and the Capital Market in India)

भारतीय मुद्रा बाजार (Indian Money Market)

भारतीय मुद्रा बाजार जोकि अल्पकालीन विनिमय-पत्रो का बाजार है, मे कई नए सस्थान कायम किए जा चुके हैं जैसे भारतीय बट्टा एव वित्त घर (Discount and Finance House of India)। नई प्रतिभूतियाँ शामिल की गई हैं जैसे वाणिज्यिक विनिमय-पत्र और जमा-प्रमाण-पत्र (Certificates of Deposits)। ये विशिष्ट एव विनियोग सस्थान अब विकसित हो रहे बाजार की आवश्यकताओ को पूरा कर रहे हैं। वित्तीय सस्थानो एव विनिमय पत्रो के इस फैलाव के कारण अब बचतकर्त्ताओ को परिसम्पत् (Assets) के चुनाव मे विस्तृत किस्म के पत्र उपलब्ध हैं जिनमे से वे जोखिम तरलता और प्रत्याय-दर के आधार पर चुनाव कर सकते हैं। वित्तीय सेवाओ मे भी काफी प्रतिस्पर्द्धा उपलब्ध है।

चाहे मुद्रा बाजार की क्रियाओ का विस्तार हो रहा है और एक द्वितीयक बाजार (Secondary market) के विकास की भी शुरुआत हो चुकी है, माग मुद्रा बाजार (Call money market) की मुख्य समस्या इसमे अत्यधिक अस्थिरता का अश है। हाल ही के वर्षों के दौरान, माग मुद्रा सोदो की मात्रा बढती जा रही है और औसत माग मुद्रा दरो मे वृद्धि हो रही है। मुद्रा बाजार मे ऊची दरो के विद्यमान होने के परिणामस्वरूप सभवत वाणिज्यिक विनिमय-पत्रो के सोदो मे वृद्धि नहीं हो रही है।

रिजर्व बेक ने बैंको और उनके अनुषगियो को मुद्रा-बाजार मे पारस्परिक निधियाँ (Mutual funds) स्थापित करने की इजाजत दे दी है जिससे मुद्रा बाजार की निधियो की पूर्ति मे वृद्धि होगी। मुद्रा बाजार क्रिया का विस्तार होगा यदि विनिमय-पत्रो के बट्टा द्वारा उधार मागने वालो का क्षेत्र-विस्तार नही किया जाता। साथ ही भारतीय रिजर्व बैंक को अपने बट्टा व्यापार (Discounting business) का प्रयोग पुनर्वित उपाय के रूप मे अधिकाधिक करना होगा ताकि विनिमय-पत्र को वित्त उपकरण के रूप मे लोक प्रिय बनाया जा सके। मुद्रा बाजार मे भाग लेने वालो की मात्रा बढाने ओर विनिमय-उपकरणो की किस्मो का विस्तार करने से द्वितीयक बाजार अधिक क्रियाशील हो सकेगा। इस सम्बन्ध मे भारतीय बट्टा एव वित्त घर की स्थापना इस दिशा मे एक महत्त्वपर्ण कदम है क्योकि इससे मुद्रा-बाजार में उच्चावचनो को कम करने मे सहायता मिलेगी और इससे द्वितीयक बाजार का निर्माण प्रोत्साहित हो सकेगा।

नरसिम्हम समिति ने यह सुझाव दिया है कि सुप्रबन्धित गैर-बैंकिग वित्तीय अन्तर्वर्तियो (Non-banking financial intermediaries) जैसे किराया-खरीद और लीजिग कम्पनियो (Leasing companies) एव व्यापारी बैंको को मुद्रा बाजार मे कार्य करने की इजाजत होनी चाहिए। जोखिम पूजी कम्पनियाँ भी अपनी अल्पकालीन पूजी निधियाँ मुद्रा बाजार म उपलब्ध करा सकती हैं।

भारत मे पूजी बाजार (Capital Market in India)

पिछले दो दशको के दौरान, भारत मे पूजी बाजार का महत्त्वपूर्ण रूप मे विकास हुआ है। पूजी बाजार के सौदो की मात्रा मे तीव्र वृद्धि हुई है, इसके कार्यों का विविधीकरण हुआ है। नये वित्तीय सस्थान जैसे व्यापारी बैंक, पारस्परिक निधियाँ एव जोखिम पूजी कम्पनिया कायम हो गई हैं और काफी सक्रिय रूप मे कार्य कर रही हैं। नये वित्तीय उपकरण जैसे पूर्ण एव आशिक परिवर्तनीय ऋण पत्र, 182 दिन के राजकोषीय पत्र, वाणिज्यिक विनिमय पत्र जमा प्रमाण पत्र आदि चालू हो गए हैं। इससे बढते हुए विविधीकरण (Diversification) का परिचय मिलता है और वित्तीय सेवाओ मे सूक्ष्मता के विकास का आभास होता है जोकि बढते हुए पूजी एव मुद्रा बाजार की आवश्यकताओ की पूति कर सकती है। आज नयी जारी पूजी की मात्रा

6 500 करोड रुपए से 7 000 करोड रुपए के बीच है। हिस्सेदारो की सख्या कई करोडो तक पहुच गई है जिससे हिस्सा पूजी की बढती हुई सस्कृति का सकेत मिलता है।

वाणिज्य बैंक जो मुद्रा बाजार मे व्यापार करते है पूजी बाजार में अपने व्यापारी बैंको (Merchant banks) और पारस्परिक निधि अनुषगियो द्वारा प्रवेश करते है। वे अब लीजिग और जोखिम पूजी वित्त मे भी कार्य करने लगे है।

गैर-बैंकिग वित्तीय अन्तर्वर्ती (Non banking financial intermediaries)

1 लीजिग और किराया खरीद कम्पनियाँ (Leasing and hire purchase companies)—हाल ही में बहुत सी लीजिग कम्पनियाँ चालू की गई हैं परन्तु इनमें से बहुत सी लोप हो गई क्योंकि उनके पास कम पूजी थी और उनका प्रबन्ध बहुत घटिया था। छोटे तथा मध्यम आकार वाली कम्पनियो के लिए लीजिग (Leasing) एक लोकप्रिय तरीका बनता जा रहा है जिससे प्लान्ट एव मशीनरी के लिए वित्त प्राप्त किया जा सकता है। इनके विकास के कारणो मे वैयक्तिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए तीव्र गति अनौपचारिकता और लाचशीलता के गुण हैं।

अत लीजिग एव किराया खरीद कम्पनियो के महत्त्व और बढते हुए कार्यभाग को स्वीकार करते हुए नरसिम्हम समिति ने सिफारिश की है कि

(क) एक न्यूनतम पूजी आवश्यक्ता निश्चित कर देना चाहिए,

(ख) व्यापार करने के विवेकपूर्ण मानदण्ड और मार्गदर्शी सिद्धान्त निर्धारित कर देने चाहिए और

(ग) पर्यवेक्षण का आधार नियतकालिक तुलन पत्र होने चाहिए जिनका एकीकृत पर्यवेक्षण प्राधिकार द्वारा परीक्षण होना चाहिए।

2 व्यापारी बैंकिग (Merchant Banking)— मौलिक रूप मे वाणिज्य बैंको द्वारा व्यापारी बैंकिग विभागो के रूप मे स्थापित होने के पश्चात् ये पृथक रूप मे व्यापारी बैंक अनुषगी कम्पनियाँ बन गए है। कुछ व्यापारी बैंक गैर वित्तीय सेवा कम्पनियो के रूप मे विदेशी बैंकिग तथा मुद्रा बाजार सस्थानो के रूप मे कायम किए गए है और कुछ ऐसी फर्मों द्वारा स्थापित किए गए हैं जो दलाली एव वित्तीय परामर्श कार्य करती हैं।

भारत मे व्यापारी बैंक नई जारी पूजी का प्रबन्ध एव हामीदारी (Underwriting) करते है वे उधार के व्यवसायी सघ (Syndication) बनाने का कार्य करते है और वे अपने निगमीय ग्राहको को राशियाँ प्राप्त करने तथा अन्य वित्तीय पहलुओ पर सलाह देते है। विदेशी व्यापारी बैंको के विरुद्ध भारतीय व्यापारी बैंक बैंकिग कार्य अर्थात् जमा स्वीकार करना उधार देना और विदेशी मुद्रा सेवाए भी उपलब्ध कराते हैं।

नरसिम्हम समिति भारत की औद्योगिक अर्थव्यवस्था के अविनियमित ढाचे मे व्यापारी बैंको के कार्यभाग की काफी बडी क्षमता की कल्पना करती है। समिति चाहेगी कि सरकार सुप्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारी एव विनियोग बैंको के साथ साझे उद्यमो (Joint ventures) की स्थापना मे प्रोत्साहन दे। समिति यह भी चाहती है कि समय के साथ-साथ व्यापारी बैंक बाजार से जमा तथा उधार ससाधन भी प्राप्त करने लगे। इसके लिए उन्हे भारतीय रिजर्व बैंक के मार्गदर्शी सिद्धान्तो के अन्तर्गत कार्य करना होगा।

वर्तमान परिस्थिति मे व्यापारी बैंक दो प्राधिकारो के आधीन कार्य करते हैं-

(क) भारतीय प्रतिभूति एव विनिमय बोर्ड (Securities and Exchange Board of India) को सभी व्यापरी बैंकों की निर्गम क्रिया और उनके व्यापार के पोर्टफोलियो प्रबन्ध के नियमन का अधिकार प्राप्त है।

(ख) भारतीय रिजर्व बैंक उन व्यापारी बैंको का पर्यवेक्षण करता है जो वाणिज्य बैंको के अनुषगी या इनके सम्बन्धी है। यदि व्यापारी बैंक जमा गतिमान करना चाहें तो उन्हे भारतीय रिजर्व बैंक के मार्गदर्शी सिद्धान्तो का पालन करना होगा।

3 पारस्परिक निधियाँ (Muttal Funds)— हाल ही के वर्षों मे पारस्परिक निधियाँ पूजी बाजार के नए सस्थानो मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बन गई हैं। बहुत से सार्वजनिक बैंको और वित्तीय सस्थानो ने कर छूट आधार पर पारस्परिक निधियाँ स्थापित की हैं ये लगभग भारतीय इकाई न्यास की भान्ति ही हैं। इन्होने विनियोक्ता समर्थन के रूप मे भारी प्रगति प्राप्त कर ली है। अब सरकार निजी क्षेत्र और साझे क्षेत्र मे भी पारस्परिक निधियो का क्षेत्र-विस्तार करना चाहती है। भारतीय प्रतिभूति एव विनिमय बोर्ड को इनके लिए मार्गदर्शी सिद्धान्त बनाने और इनके कार्य के पर्यवेक्षण एव विनियमन का अधिकार है।

नरसिम्हम समिति ने सिफारिश की है कि (i) पारस्परिक निधियो के निर्माण के लिए एक उचित विनियामक ढाचा (Regulatory framework) कायम होना चाहिए ताकि सुदृढ सुव्यवस्थित और प्रतिस्पर्द्धी वातावरण मे इनका विकास हो सके (ii) पारस्परिक निधियो की स्थापना और कार्य सचालन के लिए एक उचित कानूनी ढाचा होना चाहिए और (iii) कर रियायतो के क्षेत्र मे पारस्परिक निधियो (भारतीय इकाई न्यास भी जिसमें शामिल हो) को एक सा व्यवहार मिलना चाहिए।

4 जोखिम पूजी कम्पनियाँ (*Venture Capital Companies*)—जोखिम पूजी वित्त प्रबन्ध पूजी बाजार मे हाल ही मे नए प्रवेशको मे से है। इस प्रकार की पूजी के लिए काफी बडा क्षेत्र उपलब्ध है क्योकि हाल ही के वर्षों मे टैक्नोक्रेट उद्यमकर्त्ता (Technocrat entrepreneur) उभरे है जिनके पास योग्यता एव विशेषज्ञता है किन्तु पूजी का अभाव है। वित्तीय सस्थाए आमतौर पर विनियोग वित्त *प्रबन्ध मे प्रवर्तक योगदान (Promoter contribution)* की अधिक मात्रा पर बल देते है जिस स्थिति मे टैक्नोक्रेट उद्यमकर्त्ताओ को जोखिम पूजी कम्पनियो के समर्थन की आवश्यकता पडती है ताकि नए विचार और नई तकनालाजी आरम्भ करके अपनी परिस्थितियो के अनुकूल ढाली जा सके। इस कार्य मे अत्यधिक जोखिम उठाना पडता है।

नरसिम्हम समिति ने यह महसूस किया कि जोखिम पूजी कम्पनियो की स्थापना के मार्गदर्शी सिद्धान्त बहुत प्रतिबन्धात्मक और अव्यावहारिक है और इस कारण वे इनके विकास मे बाधा है। समिति यह आशा करती है कि सरकार इन मार्गदर्शी सिद्धान्तो की समीक्षा कर इनमे सशोधन करेगी ताकि पात्रता की कसौटियो (Eligibility criteria) का विस्तार किया जा सके और जोखिम पूजी कम्पनियो के कार्य सचालन मे कुछ हद तक लोचशीलता प्राप्त की जा सके। चूकि जोखिम पूजी वित्त प्रबन्ध मे जोखिम का अश बहुत अधिक होता है इसलिए नरसिम्हम समिति ने यह सिफारिश की है कि इन कम्पनियो पर पूजी लाभ कर (Capital gains tax) मे कटौती करनी चाहिए और जोखिम पूजी कम्पनियो के साथ वही व्यवहार किया जाना चाहिए जो पारस्परिक निधियों के साथ किया जाता है।

पूजी बाजार का नियमन (Regulation of the Capital Market)

पूजी बाजार के *विभिन्न सस्थानो जिनका हमने जिक्र* पहले किया है ने पूजी बाजार का विस्तार करने मे सहायता दी है और बचतकर्त्ता और विनियोक्ता को कई प्रकार के विकल्प उपलब्ध कराए हैं। इनके विकास और विस्तार को बढावा देने की अत्यन्त आवश्यकता है। साथ ही विनियोक्ता सरक्षण की दृष्टि से पूजी बाजार के नियमन की आवश्यकता है। अभी तक पूजी निर्गम नियन्त्रक (Controller of Capital Issues) या/और भारतीय प्रतिभूति एव विनिमय बोर्ड द्वारा नियन्त्रण लागू किए गए है। उदाहरणार्थ नई जारी पूजी के लिए पहले स्वीकृति लेनी आवश्यक है चाहे व्यापारी बैंकरो ने इसकी हामीदारी की हो और व्यवसायी परामर्श के आधार पर विनियोग का प्रकार इसकी शर्तें कीमत-निर्धारण आदि किया गया हो।

नरसिम्हम समिति के अनुसार ऐसी कम्पनियाँ जिनके हिस्से शेयर बाजार की सूची मे अकित हैं, के बारे मे न ही SEBI और न ही CCI की पूर्व-स्वीकृति की आवश्यकता होनी चाहिए। सूची मे न शामिल किए गए हिस्सो के सदर्भ मे जिनके बारे मे विनियोक्ताओ को इनके भावी लाभ और प्रवर्तको सम्बन्धी पृष्ठभूमि पर्याप्त नही शेयर बाजारो को SEBI के मार्गदर्शी सिद्धान्तो के आधार पर स्वीकृति प्रदान करनी चाहिए ताकि प्रवर्तक इनका किसी प्रकार दुरुपयोग न कर सके।

नरसिम्हम समिति ने सिफारिश की है कि प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड को सुविचारित मार्गदर्शी सिद्धान्त तैयार करने चाहिए ताकि विनियोक्ताओ के हितो की रक्षा की जा सके और इन सिद्धान्तो को पूजी निर्गम नियन्त्रण के द्वारा लागू मार्गदर्शी सिद्धान्तो का विस्थापन करना होगा। समिति यह सिफारिश करती है कि CCI के बाजार नियामक कार्य SEBI को सौंप देने चाहिए जो सुविचारित सिद्धान्त और मार्गदर्शी सिद्धान्त प्रतिपादित करे परन्तु पूजी बाजार के दिन प्रति दिन के कार्यों मे दखल न दे। अत पूजी निर्गम नियन्त्रक (Controller of Capital Issues) का अत्यधिक इच्छानुसार नियन्त्रण समाप्त कर देना चाहिए।

जहा तक पूजी बाजार के विभिन्न सस्थानो का सम्बन्ध है नरसिम्हम समिति ने उन सामान्य सिद्धान्तो की रूपरेखा तैयार की है जो विभिन्न सस्थानो के विनियामक ढाचे (Regulatory framework) को नियन्त्रित करेंगे। जहां तक पर्यवेक्षण (Supervision) का सम्बन्ध है नरसिम्हम समिति वित्तीय सस्थानो के पर्यवेक्षण के लिए सस्थानो के बाहुल्य के विरुद्ध है।

अन्तिम नरसिम्हम समिति चाहती है कि भारतीय पूजी बाजार को धीरे धीरे विदेशी पोर्टफोलियो विनियोग के लिए खोल देना होगा और साथ ही ऐसे प्रयास किए जाने चाहिएं जिनसे पूजी बाजार की गहराई बढे और इसके लिए नई प्रकार की हिस्सा पूजी (equity) और ऋण पत्र जारी करने सुविधाजनक बनाने होगे।

5 1991-92 के बाद बैंकिंग-सुधार

देश मे मजदूर सघो और राजनैतिक दलो के विरोध के बावजूद भारत सरकार ने *नरसिम्हम समिति की सभी मुख्य* सिफारिशे स्वीकार कर लीं और उनका तुरन्त क्रियान्वयन शुरू कर दिया। बैंकिंग सुधारो के अग के रूप में 1991-92 और 1994-95 के दौरान निम्नलिखित उपाय किए गए

(1) कानूनी तरलता अनुपात (Statutory Liquidity Ratio) को 1993-94 के दौरान वर्द्धमान माग तथा सावधि दायित्वो पर 38 5 प्रतिशत से घटा कर 25 *प्रतिशत कर दिया गया और बकाया शुद्ध देशीय माग तथा*

सावधि दायित्वों (Outstanding net domestic demand and time liabilities) पर 38 75 प्रतिशत से घटा कर 1993-94 मे 34 75 प्रतिशत कर दिया गया और फिर सितम्बर 1994 मे 31 5 प्रतिशत कर दिया गया। इस प्रकार मार्च 1995 के अन्त तक औसत कानूनी तरलता अनुपात 29 5 प्रतिशत हो गया। 1996-97 तक कानूनी तरलता अनुपात को वित्तीय सुधार कार्यक्रम के अग के रूप मे घटाकर 25 प्रतिशत तक लाने की प्रक्रिया जारी है और इसके पूर्णतया लागू किए जाने की सभावना है।

(2) नकद आरक्षण अनुपात (Cash Reserve Ratio)-मौलिक रूप मे भारतीय रिजर्व बैंक की इच्छा यह थी कि नकद आरक्षण अनुपात को 15 प्रतिशत से घटाया जाए और वस्तुत मई 1993 मे इसे घटाकर 14% कर दिया गया। परन्तु विदेशी मुद्रा अन्तर्प्रवाह के तेजी से बढ जाने और इसके परिणामस्वरूप प्राथमिक तरलता (Primary liquidity) मे वृद्धि के कारण भारतीय रिजर्व बैंक को मजबूर होकर नकद आरक्षण अनुपात को जून और अगस्त 1994 के दौरान तीन अवस्थाओ मे बढाकर 14 से 15 प्रतिशत करना पडा।

अक्तूबर 1994 मे भारतीय रिजर्व बैंक ने पहली बार बैंको को 7 5 प्रतिशत का नकद-आरक्षण अनुपात रखने के लिए मजबूर किया। यह अनुपात जोकि विदेशी मुद्रा अनिवासी खाता (बैंक) योजना पर लागू किया गया को बाद में बढा कर 15 प्रतिशत कर दिया गया।

इसी के साथ, अनिवासी अप्रत्यावर्तनीय रुपये खाते (Non resident non repatriable Rupee account) योजना पर भी 7 5 प्रतिशत का नकद-आरक्षण अनुपात पहली बार चालू किया गया। रिजर्व बैंक ने यह अनुमान लगाया कि इन दोनो उपायो से अनुसूचित वाणिज्य बैंको की 1,155 करोड रुपये की राशि जडीकृत हो जाएगी और इसका मुद्रा-सभरण को वृद्धि को रोकने पर मर्यादित प्रभाव होगा।

भारतीय रिजर्व बैंक ने 11 नवम्बर 1995 को "तरलता दबाव" (Resource crunch) को देखते हुए नकद आरक्षण अनुपात को 0 5 प्रतिशत कम कर दिया और इस प्रकार 15 प्रतिशत का अपेक्षा बैंको को 14 5 प्रतिशत नकद-आरक्षण अनुपात के रूप मे रखना होगा। आशा की जाती है कि इस प्रकार बैंको के 2 000 करोड रुपये के साधन मुक्त हो जाएगे। भारतीय रिजर्व बैंक के एक अधिकारी ने यह स्पष्ट किया कि नकद-आरक्षण अनुपात मे कटौती एक अस्थायी उपाय है जिसके द्वारा वतमान तरलता-दबाव को राहत दी गई है परन्तु हमारा मुख्य लक्ष्य तो मुद्रा-सभरण को वृद्धि पर रोक लगाकर स्फीति को कम करना है। वतमान गम्भीर परिस्थिति को देखते हुए नकद आरक्षण अनुपात मे कटौती को एक उपचारात्मक उपाय समझना होगा और ऐसा करना न्यायोचित हैं।

(3) ब्याज दर की पट्टिया (Interest rate slabs) अप्रैल 1992 के पश्चात् 20 से कम करके 3 कर दी गयीं। भारतीय रिजर्व बैंक ने बैंक अग्रिमो पर न्यूनतम ब्याज दरों और सावधि जमा पर अधिकतम ब्याज-दरो को कम कर दिया।

1994-95 के दौरान बैंको को बडे आकार के ऋणो (अर्थात् 2 लाख रूपये से अधिक) की ब्याज-दरें निर्धारित करने की स्वतन्त्रता दी गयी। अक्तूबर 1994 से प्रभावी ब्याज-दरें निम्नलिखित हैं

25 000 रुपये तक	12%
25 001 से 2 लाख रुपये	13 5%
2 लाख रुपये से अधिक	स्वतन्त्र

बैंक अग्रिमो की ऊची पट्टियो (Slabs) मे ब्याज-दरो के विनियमन का उद्देश्य बैंको मे स्वस्थ प्रतियोगिता को बढावा देना और उनकी कार्यात्मक कुशलता (Operational efficiency) को प्रोत्साहित करना है। इससे बैंक को अपनी कुशलता के अनुसार और अपने ग्राहको के बारे मे जोखिम के अनुभव के अनुसार उधार-दरो का समन्वय करने मे भी मदद मिलेगी।

अनुसूचित वाणिज्य बैंको को अपनी जमा पर ब्याज की दरें निश्चित करने की स्वतन्त्रता है परन्तु ये न्यूनतम ब्याज-दर (4 5%) और अधिकतम ब्याज-दर (11%) के बीच होनी चाहिए।

(4) विवेकशील मानदण्डो (Prudential norms) का प्रारम्भ भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा सुधार प्रक्रिया के अग के रूप मे किया गया। विवेकशील प्रणाली का उद्देश्य आय की पहचान परिसम्पत के वर्गीकरण और अप्राप्य ऋणो (Bad debts) के लिए प्रावधान द्वारा यह निश्चित करना है कि वाणिज्य बैंको के बही खाते उनकी स्थिति का अधिक उचित रूप मे निरूपण करे और इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्य खाता-सम्बन्धी व्यवहारो को अपनाना होगा। इससे बैंको के अधिक प्रभावी पर्यवेक्षण (Supervision) मे सहायता प्राप्त होगी।

आज स्थिति यह है कि बैंको को अपनी हानि-उठाने वाली परिसम्पतो और गैर-निष्पादनीय परिसम्पतो (Non-performing assets) के लिए वित्तीय प्रावधान करना पडता हैं। इस वित्तीय प्रावधान (Provisioning) के लिए 14,000 करोड रुपये की राशि की आवश्यकता थी। इसे फैलाकर दो वर्षों मे प्रावधान किया गया। बैंको को अपने सदिग्ध एव अप्राप्य ऋणो के विरुद्ध 1992-93 के दौरान कम-से-कम 30 प्रतिशत प्रावधान करना पडा और शेष 70 प्रतिशत का प्रावधान 1993-94 मे किया गया।

(5) पूजी-पर्याप्तता मानदण्ड (Capital adequacy norms) भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अप्रैल 1992 मे निश्चित किए गए और बैक को इनका पालन तीन वर्षों की अवधि मे करना होगा। बैको से यह भी प्रत्याशा की गयी कि वे मार्च 1993 तक पूजी-जोखिम परिसम्पत अनुपात (Capital to Risk Assets Ratio) के 4 प्रतिशत तक पहुच जाए। यह सभी अनुसूचित वाणिज्य बैंको के लिए मार्च 1996 तक 8 प्रतिशत हो जाना चाहिए। किन्तु भारत मे कार्य कर रहे विदेशी बैको और विदेशी सहयोग के साथ कार्य कर रहे भारतीय बैको को मार्च 1993 और 1994 तक क्रमश 8 प्रतिशत प्राप्त करना आवश्यक था।

विवेकशील मार्गदर्शी सिद्धान्तो और नये पूजी-पर्याप्तता मानदण्ड ये अपेक्षा रखते हैं कि अनुसूचित वाणिज्य बैंक अपने पोर्टफोलियो मे सदिग्ध और अप्राप्य ऋणो के लिए 14 000 करोड रुपये की बडी राशि का प्रावधान करेंगे। चूकि इनके परिणामस्वरूप होने वाले घाटे से बैक की पहले की अपर्याप्त पूजी भी समाप्त हो जाएगी बैको की सक्षमता और वित्तीय स्वास्थ्य के सरक्षण के लिए केन्द्र सरकार ने अपने 1993 94 के बजट मे 5 700 करोड रुपये और 1994 95 के बजट मे फिर और 5 600 करोड के पूजी-योगदान (Capital contribution) का प्रावधान किया ताकि कम लाभदायिकता वाले राष्ट्रीयकृत बैंको का पुन पूजीकरण (Recapitalisation) किया जा सके।

प्रापक बैंको (Recipient banks) से यह आग्रह किया गया कि वे आगामी दो या तीन वर्षों मे विकासक्षम बनने के लिए योजनाए तैयार करें। बेसल समिति (Basle Committee) की सिफारिशो के आधार पर भारतीय वाणिज्य बेको के लिए एक नया पूजी ढाचा प्रारम्भ किया गया जिस मे बैंको के लिए पूजी के दो स्तर तय किए गए।

(क) स्तर 1 या केन्द्रक पूजी (Core Capital) जिसे अप्रत्याशित हानियो के विरुद्ध सबसे अधिक स्थायी और एकदम उपलब्ध समर्थन समझा जाता है मे परिदत्त पूजी, कानूनी रिजर्व शेयर-प्रीमियम और पूजी-रिजर्व शामिल किए गए और

(ख) स्तर 2 की पूजी मे अव्यक्त रिजर्व (Undisclosed reserves) पूर्णतया परिदत्त सचयी शाश्वत अधिमान हिस्से (Preference shares) पुन मूल्यन रिजर्व (Revluation Reserves) सामान्य प्रावधान और हानि-रिजर्व (Loss Reserve) आदि शामिल किए गए।

यह बात भी निश्चित कर दी गयी कि स्तर 2 की पूजी स्तर-1 की पूजी से 100 प्रतिशत से अधिक नही होनी चाहिए।

भारत सरकार ने बैकिग कम्पनी अधिनियम का सशोधन कर दिया है ताकि राष्ट्रीयकृत बैक पूजी बाजार से सार्वजनिक निर्गम (Public issues) द्वारा पूजी-राशि प्राप्त कर सके। शर्त यह लगायी गयी है कि केन्द्र सरकार के आधिपत्य आधीन राशि परिदत्त पूजी से गिरकर 51 प्रतिशत से कम नहीं होनी चाहिए।

भारतीय स्टेट बैंक पहला बैंक था जिसने सार्वजनिक निर्गम द्वारा 1,400 करोड रुपये की हिस्सा-पूजी और 1,000 करोड रुपये के बॉड प्राप्त किए। भारतीय रिजर्व बैंक की हिस्सा पूजी अब स्टेट बैंक मे 67% हो गयी है जबकि पहले यह 99% थी। भारतीय स्टेट बैंक अधिनियम का सशोधन कर दिया गया हैं और हिस्सेदारो को 10 *प्रतिशत मताधिकार (Voting rights) दिए गए हैं।* ओरियन्टल बैंक आफ कामर्स ने 1994-95 के दौरान *सार्वजनिक निर्गम द्वारा 360 करोड रुपये एकत्र किए। अन्य* राष्ट्रीयकृत बैंक भी पूजी-बाजार के प्रयोग की योजना बना रहे हैं।

(6) क्रियान्वयन की स्वतन्त्रता (Freedom of operation)-अनुसूचित वाणिज्य बैंको को अब यह स्वतन्त्रता दी गयी है कि वे पूजी-पर्याप्तता मानदण्डो और विवेकशील खाता मानदण्डो की परिधि मे रहते हुए नयी शाखाए और विस्तार-केन्द्र खोल सकते हैं। वे ग्रामीण क्षेत्रो को छोड अन्य क्षेत्रो मे अक्षम शाखाओ को बन्द भी कर सकते हैं। बैंको के उधार देने के मानदण्डो को भी उदार बनाया गया है और बैंको को मालतालिकाओ और प्राप्य राशियो की विशेष मदो को रखने के स्तर मे भी स्वतन्त्रा दी गयी है।

(7) नये गैर-सरकारी क्षेत्र के बैंक-*भारत सरकार* ने सिद्धान्त रूप मे नये गैर-सरकारी क्षेत्र के बैंको को स्थापित करने के 12 सुझाव स्वीकार कर लिए हैं। इन नये बैंको को यह इजाजत दी गयी है कि वे 20 प्रतिश तक विदेशी सस्थानात्मक विनियोक्ताओ (Institutional Investors) से और 40 प्रतिशत तक अनिवासी भारतीयो से पूजी-योगदान प्राप्त कर सकते हैं। छ गैर-सरकारी बैंको ने कार्य करना शुरु कर दिया हैं।

(8) बैंको का पर्यवेक्षण (Supervision)-भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा वाणिज्य बैंको पर पर्यवेक्षण और कड़ा किया जा रहा है। इस कार्य के लिए रिजर्व बैंक के गर्वनर की अध्यक्षता में वित्तीय पर्यवेक्षण बोर्ड (Board of Financial Supervision) स्थापित किया गया है। रिजर्व बैंक ने दिसम्बर 1993 मे एक नया विभाग जिसका नाम पर्यवेक्षण विभाग रखा गया है कायम किया है जो एक स्वतन्त्र इकाई के रूप में वाणिज्य बैंको की निगरानी करेगा और वित्तीय पर्यवेक्षण बोर्ड की सहायता करेगा।

(9) ऋणो की वसूली- भारत सरकार ने बैंकों और वित्तीय सस्थानो द्वारा दय ऋणो की वसूली सम्बन्धी कानून

(1993) पारित कर दिया है ताकि बैंको तथा वित्तीय सस्थानो से देय ऋणों की वसूली की जा सके। इस कार्य के लिए विशेष वसूली ट्रिब्यूनल (Tribunal) कायम किए गए हैं ताकि बकाया ऋणो को तेजी से वसूली की जा सके।

बैंकिग क्षेत्र पर प्रभाव डालने वाले बाह्य एव सरचनात्मक कारणतत्वो को ठीक करने की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप, बैंकिग प्रणाली का अत्यधिक विनियामक (Regulatory) स्वरूप बदल जाएगा और इसमे खुलेपन प्रतिस्पर्द्धा, विवेकशीलता और पर्यवेक्षी अनुशासन के लक्षण उत्पन्न होगे। 1992-93 की भारतीय रिजर्व बैंक की रिपोर्ट "भारत मे बैंकिग की प्रवृत्ति एव प्रगति" मे यह उल्लेख किया गया है "अत वाणिज्य बैंको को इस बारे मे सचेत होने की जरूरत है कि वे एक चुनौतीपूर्ण पर्यावरण मे प्रवेश कर रहे हैं और उन्हे वित्तीय-उद्योग मे अपने स्थान की पुन परिभाषा करनी होगी। उन्हे नये उपाय और कार्यविधि चालू करने होगे ताकि नयी चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना कर सके, विशेषकर ग्राहको की उच्च गुणवत्ता सेवा के लिए बढती हुई माग की चुनौती।" इसके लिए वाणिज्य बैंको को अनिवार्यत अपनी कार्यविधि मे "वाणिज्यक दिशा-परिवर्तन" करना होगा। इसके लिए

(क) उन्हे अपने विनियोक्ताओ की बचत पर बेहत्तर प्रत्याय देनी होगी

(ख) उन्हे ऐसी रणनीतिया अपनानी होगी जो अतिरिक्त राजस्व जुटाए

(ग) नयी सेवाओ के निर्माण द्वारा उभरते हुए वित्तीय जोखिम को कम करना होगा

(घ) आय-लागत अनुपात (Income to cost ratios) को उन्नत करना हागा और क्रियान्वयन की प्रभाविता को बढाना हागा और

(ड) निम्न लाभदायिकता और अत्यधिक गैर-निष्पादनीय परिसम्पत्तियो की समस्याओ का आक्रामक ढग से सामना करना होगा।

सामान्य रूप म, वाणिज्य बैंको का साम्या (Equity) की उपेक्षा किए बिना कुशलता पर बल देना होगा। बैंको को सदैव इस बात का ध्यान रखना होगा कि वे विकासात्मक वित्तीय सस्थानो के साथ, सामाजिक एव आर्थिक परिवर्तन के वैध उपकरण हैं।

48

केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय सम्बन्ध
(FINANCIAL RELATION BETWEEN THE CENTRE AND THE STATES)

1. सविधान में वित्तीय सम्बन्ध
(Financial Relations under the Constitution)

भारतीय सविधान मे सघीय और राज्यीय सरकारो के वित्तीय अधिकारो की स्पष्ट बाट की गयी है। इस वर्गीकरण के लिए जिस सिद्धान्त को अपनाया गया उसका आधार यह था कि वे कर जिनका अन्त राज्यीय आधार है सघीय सरकार द्वारा लगाए जाते हैं जबकि स्थानीय आधार वाले राज्यीय सरकारो द्वारा लगाए जाते हैं। अवशिष्ट अधिकार (Residuary powers) सघीय सरकार को प्राप्त हैं।

सविधान मे कुछ सघीय करा से प्राप्त राजस्व को राज्यो मे बाट सम्बन्धी धाराएँ दी गई हैं। सघीय सरकार द्वारा लगाए गए करा को चार भागो मे बाटा जाता है (क) वे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए जाते हैं और जो पूणतया केन्द्र सरकार द्वारा ही रखे जाते है (ख) वे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए तथा एकत्र किए जाते है, परन्तु जिनसे प्राप्त राजस्व राज्यीय सरकारो के साथ बाटा जाता है (ग) वे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए तथा एकत्र किए जाते हैं परन्तु जिनसे प्राप्त समस्त राजस्व राज्यो को सौंप दिया जाता हे और (घ) वे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए जाते है परन्तु जो राज्य सरकारो द्वारा एकत्र तथा प्रयुक्त किए जाते हैं।

सघीय कर (Union taxes)—जो सविधान की *सातवीं अनुसूची मे दिए गए हैं इस प्रकार है*

(1) कृपि आय को छोडकर अन्य आय पर कर (2) निगम आय कर (Corporation income tax) (3) सीमा शुल्क (Custom duties) जिनमे आयात तथा निर्यात शुल्क शामिल किए जाते हे, (4) शराब तथा स्वापक औपधो को छोड अन्य वस्तुओ पर उत्पादन शुल्क, (5) कृपि भूमि को छोड अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा एव उत्तराधिकार शुल्क (Estate and Succession Duty) (6) कृपि भूमि को छोड व्यक्तिया और कम्पनियो की परिसम्पत के पूजी मूल्य (Capital value) पर कर, (7) वित्तीय प्रलेखा पर स्टाम्प, (8) हिस्सा बाजार और भावी बाजार (Future market) के लिए किए गए सौदो पर स्टाम्प शुल्क छोडकर अन्य कर, (9) समाचार पत्रो के क्रय-विक्रय और उनमे दिए गए विज्ञापनो पर कर, (10) रेल भाडे और किराए पर कर, (11) रेलवे, समुद्र या वायु द्वारा पहुँचाई गयी वस्तुओ या सवारिया पर चुगी (Terminal tax),और (12) अन्त राज्यीय व्यापार (Inter state trade) के दौरान वस्तुओ के क्रय या विक्रय पर कर।

राज्यीय कर (State taxes)—*सविधान की सातवीं* अनुसूची मे दिये गये कर निम्नलिखित हैं

(1) भू-राजस्व, (2) समाचार पत्रो को छोडकर अन्य वस्तुओ के विक्रय या क्रय पर कर, (3) कृषि आय पर कर, (4) भूमि तथा भवनो पर कर (5) कृषि भूमि पर सम्पदा व उत्तराधिकारी शुल्क (6) शराब तथा स्वापक औषघो पर उत्पादक शुल्क, (7) किसी स्थानीय क्षेत्र में वस्तुओ के प्रवेश पर कर, (8) धातु अधिकारो पर कर, (9) बिजली के उपभोग तथा विक्रय पर कर, (10) गाडियो, पशुओ तथा नौकाओ पर कर, (11) वित्तीय प्रलेखो को छोडकर अन्य प्रलेखो पर स्टाम्प शुल्क, (12) सडक या जल अन्तर्देशी मार्गों द्वारा ढोई गयी वस्तुओ एव सवारियो पर कर, (13) मनोरजन तथा जुए पर कर, (14) पथ कर (Toll tax), (15) व्यवसाय, व्यापार, पेशे और रोजगार पर कर, (16) प्रति व्यक्ति कर (Capitation Taxes), और (17) समाचार-पत्रो को छोडकर अन्य विज्ञापनो पर कर।

भारतीय सविधान का एक विशेष लक्षण यह है कि जिन करो का उल्लेख विशेष रूप से राज्यीय या समवर्ती सूची (Concurrent list) मे नहीं है, उन्हे केन्द्रीय सरकार को लगाने का अधिकार है।

केन्द्रीय राजस्व का वितरण एव आवण्टन (Distribution and Allocation of Central Revenue)

सविधान के कुछ ऐसे कर सघीय सूची *(Union list)* मे शामिल किये गये हैं जो आशिक या पूर्ण रूप से राज्यो को बाट दिए जाते हैं। इस वर्ग मे तीन प्रकार के कर होते हैं। प्रथम, वे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए जाते हैं परन्तु जो

राज्यो द्वारा एकत्र एव प्रयुक्त किए जाते हैं। इनमे स्टाम्प शुल्क और अल्कोहल तथा स्वापक ओषधो पर लगाए गए उत्पादन शुल्क शामिल किए जाते है। दूसर कुछ ऐसे कर है जो केन्द्र द्वारा लगाए एव एकत्र किए जाते हैं परन्तु जिनसे प्राप्त कुल आय राज्योय सरकारो को सौंप दी जाती है। इन करो मे हैं उत्तराधिकार एव सम्पदा शुल्क सवारियो पर सीमा कर रेल भाडे और किराए पर कर हिस्सा बजारो और भावी बाजारो मे किए गए सौदे पर कर आदि। इनमे से कृषिभूमि को छोड अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क को बाट को जाती है। इनम से 1 प्रतिशत सघाय क्षेत्र को दिया जाता है और शेष वित्तीय आयोग (Finance Commission) की सिफारिश क आधार पर बाटा जाता है। रेलो के किराये पर कर 1957 म लगाया गया और 1961 मे समाप्त कर दिया गया। तासर निगम आय पर कर छोडकर अन्य आय पर केन्द्रीय कर और उत्पादन शुल्क जो सघाय सरकार द्वारा लगाए और एकत्र किए जाते हैं परन्तु जो राज्यो के साथ एक निर्धारित ढग से बाटे जाते है। कारखाना निर्मित कपडे चीनी और तम्बाकू पर अतिरिक्त उत्पादन शुल्क के बदले 1957 मे इन वस्तुओ पर राज्याय बिक्री कर (State Sales Tax) लगाया गया। यह कर सघाय सरकार द्वारा लगाया जाता है और इससे समग्र आय को राज्यो मे इस प्रकार बाटा जाता है कि विस्थापित बिक्री कर स पूर्व प्राप्त होने वाली आय की गारण्टी प्रत्येक राज्य को दी जा सके।

सहायता अनुदान (Grant in aid)—राज्यीय सरकारो को कुछ महत्त्वपूर्ण कल्याणकारी एव विकासात्मक कार्य सौंपे गए है परन्तु मागा को पूरा करने के लिए पर्याप्त ससाधन नहीं है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने एक स्थापित व्यवहार बना लिया है कि सहायता अनुदान के रूप मे अपने कुछ साधन राज्यो को दे दे। भारत मे सघ राज्य सम्बन्धो (Union State relations) मे सहायता अनुदान को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया है। ये अनुदान वित्तीय साधनो मे अन्त राज्याय असमानताओ (Inter state disparities) को दूर करने मे विशेष सहायता देते है। इनके द्वारा विभिन्न राज्यो मे उपलब्ध अनिवार्य कल्याणकारी सेवाओ और विकासात्मक प्रोग्रामों म कुछ हद तक केन्द्राय नियन्त्रण और समन्वय भी कायम हो जाता है।

ऋण (Loans)—राज्यीय सरकारो को बाजार से उधार लने का अधिकार प्राप्त है परन्तु वे सघाय सरकार से भी उधार ले सकता है जिसके परिणामस्वरूप केन्द्र सरकार का राज्याय उधार और व्यय पर काफी नियन्त्रण प्राप्त हो जाता है। हाल ही के वर्षों मे राज्यो द्वारा केन्द्र सरकार से मागे जाने वाले वार्षिक उधार की दर बहुत काफी बढ गयी है। अन्य उद्देश्यो के अतिरिक्त सिचाई नदी घाटी परियोजनाओ कृषि विकास पुनर्वास सामुदायिक विकास और औद्योगिक गृह निर्माण (Industrial housing) के लिए भी उधार दिया जाता है। राज्य सरकार केन्द्र सरकार के पास जमा के रूप मे कुछ राज्योय और स्थानीय राशिया भी रखती हैं जो वास्तव मे केन्द्र द्वारा दिए गए ऋण होते हैं और जिनका प्रयोग सामान्य उद्देश्यो के लिए किया जाता है।

राज्यो को हस्तातरित साधन (Resources transferred to states)

तालिका 1 से पता चलता है कि केन्द्र से राज्यो को प्राप्त होने वाले साधनो का योगदान बढता जा रहा है।

1951 52 मे केन्द्र से हस्तातरित साधनो द्वारा कुल राज्यीय व्यय के 25 प्रतिशत के लिए वित्त जुटाया गया परन्तु 1987 88 मे यह अनुपात बढकर 46 प्रतिशत हो गया। केन्द्र से राज्यो को हस्तातरित साधनों की बढती हुई प्रवृत्ति तीन बातो का प्रमाण देती है (क) केन्द्रीय एव राज्यीय वित्त

तालिका 1 केन्द्र सरकार स राज्यो को हस्तातरित साधन

(करोड़ रुपए)

	विभाजित कर	अनुदान	शुद्ध ऋण	कुल साधन
195[illegible]	53	32	73	158
[illegible]धन योजना (1951 56)	344	288	799	1 431
द्वितीय योजना (1956 61)	668	789	1 411	2 868
[illegible] योजना ([illegible]961 66)	1 196	1 304	3 100	5 650
[illegible] (1966 69)	1 292	1 389	2 676	5 347
[illegible] ([illegible]969 [illegible]4)	4 562	3 831	6 7[illegible]8	15 101
[illegible] ([illegible]9[illegible]4 [illegible]9)	8 337	8 135	8 810	25 282
[illegible] ([illegible]9[illegible] 85)	0	15 470	14 1[illegible]0	53 320
[illegible] ([illegible]90)	49 [illegible]60	42 [illegible]10	31 [illegible]60	1 23 530
[illegible] की अवधि	98 89	90 720	54 650	2 44 260

मे अधिकाधिक समन्वय हो रहा है (ख) राज्य सरकारे केन्द्र पर बुरी तरह निर्भर होती जा रही है और (ग) केन्द्र द्वारा राज्यो के मामलो मे दखल देने की शक्ति बढती जा रही है।

औसत रूप म प्रथम योजना मे राज्यो को केन्द्र से 280 करोड रुपए की वार्षिक राशि हस्तातरित की गयी यह राशि दूसरी योजना म 570 करोड रुपए, तीसरी योजना मे 1 130 करोड रुपए, चौथी योजना मे 3 020 करोड रुपए और पाचवीं योजना मे 5 060 करोड रुपए और छठा योजना मे 10 090 करोड रुपए और सातवी योजना में 21 000 करोड रुपए हो गयी। यह वृद्धि वित्त आयोगो की सिफारिशो का परिणाम थी। इस प्रकार राज्यो के कुल व्यय का 45 प्रतिशत केन्द्र से हस्तातरित साधनो द्वारा उपलब्ध कराया जाता है।

केन्द्र से राज्यो को हस्तातरित ससाधन तीन प्रकार के होते है कर अनुदान और ऋण। राज्यीय साधनो मे सबसे अधिक वृद्धि अनुदानो के रूप मे हुई है जो राज्यो की बढती हुई वित्तीय आवश्यकताओ का सकेतक है। करो मे से सघीय उत्पादन शुल्को के भाग मे सबसे अधिक वृद्धि हुई है। इसका मुख्य कारण विभाज्य उत्पादन शुल्को की सूची मे सम्मिलित वस्तुओ की सख्या मे वृद्धि है। विभिन्न करो से प्राप्त होने वाली आय मे वृद्धि के कारण भी करो एव शुल्को के राज्यीय भाग मे वृद्धि हुई।

2 वित्त आयोग
(Finance Commissions)

सविधान के आधीन राष्ट्रपति को वित्त आयोग नियुक्त करना पडता है। आयोग को इस सम्बन्ध मे राष्ट्रपति को निम्नलिखित विषयो मे सिफारिशे करनी होती है (क) केन्द्र और राज्यो के बीच करो से राजस्व की बाट करना और फिर विभिन्न राज्यो मे राजस्व बाटना (ख) वे सिद्धान्त निर्धारित करना जिनके आधीन राज्यो को सहायता अनुदान (Grants in aid) उपलब्ध कराया जाए, और (ग) केन्द्र और राज्यो के वित्तीय सम्बन्धो के बारे म किसी अन्य मामले की जाच करना। वित्त आयोग की नियुक्ति बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योकि इसके माध्यम से केन्द्र और राज्यो के बीच बदलती हुई परिस्थितियो के अनुसार वित्तीय सम्बन्धो मे परिवर्तन की गुजाइश है।

सविधान के चालू होने के पश्चात् दस वित्त आयोग नियुक्त किए जा चुके हैं जिन्होने अपनी सिफारिशे प्रस्तुत की है। इन वित्त आयोगो की सिफारिशो को तीन शीर्षको के आधीन बाटा जा सकता है (i) आयकर तथा अन्य करो का विभाजन तथा वितरण (ii) अनुदान और (iii) सघ द्वारा राज्यो को दिए गए ऋण।

(i) आयकर की बाट एव वितरण–वैयक्तिक आयकर सघीय सरकार द्वारा लगाया और एकत्र किया जाता है। प्रथम वित्त आयोग ने कर से प्राप्त राशि का 55 प्रतिशत राज्यो मे बाटने की सिफारिश की। इस राशि का 80 प्रतिशत जनसख्या के आधार पर और 20 प्रतिशत राज्य से एकत्र की गयी राशि के आधार पर बाटने के लिए कहा गया। दूसरे वित्त आयोग ने राज्य के भाग को 55 प्रतिशत से बढाकर 60 प्रतिशत कर दिया। तीसरे वित्त आयोग ने इस भाग को और बढा कर 66 प्रतिशत करने की सिफारिश की। चौथे और पाचवें वित्त आयोग ने आयकर से प्राप्ति का 75 प्रतिशत राज्यो को देने की सिफारिश की। छठे वित्त आयोग (1972) ने कुल आयकर के 80 प्रतिशत को राज्यो मे बाटने की सिफारिश की। सातवे और आठवे वित्त आयोग ने आयकर का 85 प्रतिशत राज्यो के लिए निश्चित किया। जाहिर है कि प्रत्येक उत्तरोत्तर वित्त आयोग ने राज्यो के भाग को बढा दिया। किन्तु दसवे वित्त आयोग ने अपनी रिपोर्ट मे 1995-2000 की अवधि के लिए आय-कर से शुद्ध प्राप्ति के 77 5 प्रतिशत को राज्यो को हस्तातरित करने की सिफारिश की है। (देखिए तालिका 2)

तालिका 2 आयकर के सम्बन्ध मे वित्त आयोगो की सिफारिशे

वित्त आयोग	आयकर मे राज्यो का भाग	राज्यो मे आयकर का वितरण	
		जनसख्या के आधार पर	एकत्र की गई कर आय के आधार पर
पहला	55	80	20
दूसरा	60	90	10
तीसरा	66	80	20
चौथा	75	80	20
पाचवा	75	90	10
छठा	80	90	10
सातवे से नवे	85	90	10
दसवा	77 5	90	10

जहा तक आयकर प्राप्तियो को विभिन्न राज्यो मे बाटने का प्रश्न है पहले कुछ वित्त आयोगो ने जनसख्या और कर एकत्रीकरण (Tax collection) की दोहरी कसौटी का प्रयोग किया। इसके अनुसार इस राशि का 80 प्रतिशत जनसख्या के आधार पर और 20 प्रतिशत राज्य से एकत्र की गयी धनराशि के आधार पर बाटा गया। इस कसौटी के आधार पर ऐसे राज्यो को जिनकी जनसख्या अधिक थी और ऐसे समृद्ध राज्य जो आयकर राजस्व मे अधिक योगदान देते थे लाभ होना स्वाभाविक था। दूसरे वित्त आयोग ने राज्य की जनसख्या को वितरण का अधिक महत्त्वपूर्ण आधार माना और आयकर के विभाजनीय सग्रह (Divisible pool) का 90 प्रतिशत जनसख्या के आधार पर

बांटने की सिफारिश की। इस कसौटी का स्वाभाविक लाभ उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे अधिक जनसख्या वाले राज्यो को होना था जो भारत के सबसे गरीब राज्य भी थे। इस स्थिति को तीसरे और चौथे वित्त आयोग ने पलट दिया। परिणामतः आयकर एकत्रीकरण के आधार को 20 प्रतिशत कर दिया जिससे महाराष्ट्र और पश्चिमी बगाल जैसे राज्यो को लाभ हुआ क्योकि इनका आयकर मे योगदान अधिक था। कारण यह है कि इनमे बम्बई और कलकत्ता जैसे महानगर स्थित थे। पाचवे वित्त आयोग के पश्चात् फिर आयकर वितरण के फार्मूले मे राज्य की जनसख्या को मुख्य कसौटी बनाया गया।

पहली बार आठवे वित्त आयोग ने जिसके अध्यक्ष श्री वाई बी चव्हाण थे, राज्यो मे आयकर के वितरण का एक नया फार्मूला लागू किया

(*i*) आयकर से शुद्ध प्राप्ति का 10 प्रतिशत राज्यो मे आयकर के योगदान के आधार पर वितरित किया जाता रहेगा,

(*ii*) शुद्ध प्राप्ति का 90 प्रतिशत राज्यो मे निम्नलिखित कसौटियों के आधार पर बाटा जाएगा

25 प्रतिशत जनसख्या के आधार पर

25 प्रतिशत प्रति व्यक्ति आय के विलोम को जनसख्या से गुना के आधार पर, और

50 प्रतिशत राज्य की प्रति व्यक्ति आय और सबसे अधिक प्रति व्यक्ति आय वाले राज्य (अर्थात् पजाब) के बीच अन्तर को जनसख्या से गुना के आधार पर।

इन तीन कारको वाले फार्मूले का उद्देश्य राज्यो मे भारी मात्रा में साम्य (Equity) लाना है। नवें वित्त आयोग ने भी मूल रूप मे कुछ छोटे-मोटे सशोधनो के साथ इसी फार्मूले का अनुसरण किया। आयकर की प्राप्तियो की बाट के लिए नवें वित्त आयोग ने अब यह फार्मूला स्वीकार किया है

नवे वित्त आयोग ने इसमे एक और कसौटी जोड दी अर्थात् राज्यो के पिछडेपन का सयुक्त सूचकाक (Composite index) जो दो तत्वो पर आधारित होगा (क) राज्य में अनुसूचित एव जनजातियों की जनसख्या और (ख) 1981 की जनगणना के आधार पर विभिन्न राज्यो मे कृषि-श्रमिको की सख्या। नवे वित्त आयोग के अनुसार संयुक्त सूचकाक बहुत हद तक राज्य में निर्धनता और पिछडेपन का सही सकेतक होगा।

दसवे वित्त आयोग ने आठवे और नवें वित्त आयोगो के फार्मूले का मूल्याकन कर आयकर की विभाजनीय राशियो के लिए निम्नलिखित फार्मूले की सिफारिश की है

(क) 20 प्रतिशत 1971 की जनगणना के आधार पर,

(ख) 60 प्रतिशत प्रति व्यक्ति आय के अन्तर के आधार पर,

(ग) 5 प्रतिशत समायोजित क्षेत्र (Adjusted area) के आधार पर,

(घ) 5 प्रतिशत अध सरचना के सूचकाक के आधार पर, और

(ङ) 10 प्रतिशत कर-प्रयास के आधार पर।

(*ii*) उत्पादन शुल्क (Excise duty) की बांट एवं वितरण—प्रथम वित्त आयोग ने तीन वस्तुओ अर्थात् तम्बाकू, दियासलाई और वनस्पति पदार्थो पर लगाए गए उत्पादन शुल्क का 40 प्रतिशत राज्यो मे जनसख्या के आधार पर बाटने की सिफारिश की। दूसरे और तीसरे वित्त आयोग ने इस क्षेत्र में वस्तुओ की सख्या को ओर बढा दिया। चौथे वित्त आयोग ने 45 वस्तुए शामिल कीं किन्तु राज्यो को इनसे प्राप्त कुल आय का 20 प्रतिशत देने की सिफारिश की जिसमे 80 प्रतिशत जनसख्या के आधार पर और शेष राज्य के आर्थिक और सामाजिक पिछडेपन के आधार पर। पाचवे वित्त आयोग ने भी लगभग वही सिफारिशे कीं जो चौथे वित्त आयोग ने की थीं। छठे वित्त आयोग ने भी उत्पादन-शुल्क मे राज्यो का भाग तो 20 प्रतिशत ही रखा परन्तु इसके वितरण का आधार बदल दिया—75 प्रतिशत तो जनसख्या के आधार पर और 25 प्रतिशत राज्य के पिछडेपन के आधार पर। सातवे वित्त आयोग ने राज्य का भाग उत्पादन-शुल्क से प्राप्ति का 40 प्रतिशत निश्चित करने की ओर इसके वितरण के लिए नया फार्मूला अपनाने की सिफारिश की। आठवें वित्त आयोग ने राज्यो के भाग को बढाकर 45 प्रतिशत कर दिया और 40 प्रतिशत का वितरण नए फार्मूले के आधार पर और 5 प्रतिशत घाटे वाले राज्यो के लिए रखा गया। नवे वित्त आयोग ने 45 प्रतिशत की समग्र प्राप्ति को एक समेकित राशि (Consolidated amount) के रूप मे वितरित करने का प्रस्ताव किया, (इसकी बजाए कि इसे 40 प्रतिशत और 5 प्रतिशत के दो खण्डो मे बटा जाए)। (देखिए तालिका 3)

किन्तु दसवे वित्त आयोग ने सघीय उत्पादन-शुल्को की शुद्ध प्राप्तियो के भाग को घटा कर 47.5 प्रतिशत कर दिया। उत्पादन-शुल्को के राज्यीय-भाग में वृद्धि का उद्देश्य आयकर मे इनके भाग मे की गयी कमी की क्षतिपूर्ति करना है।

यहा इस बात पर बल देने की जरूरत है कि सभी वित्त आयोगो ने एक मूल उद्देश्य अपने सामने रखा, अर्थात् केन्द्रीय उत्पादन शुल्को मे राज्यो के भाग को बढाना। पहले कुछ वित्त आयोगो ने अधिकाधिक उत्पादन-शुल्को को विभाजनीय सग्रह (Divisible pool) मे लाने की कोशिश की परन्तु राज्यो के प्रतिशत भाग को कम कर दिया किन्तु सातवे, आठवे और नवे वित्त आयोग ने (क) सभी

तालिका 3 उत्पादन-शुल्क के बारे मे वित्त आयोगो की सिफारिशे

वित्त आयोग	उत्पादन शुल्क मे राज्य का भाग आधार पर	उत्पादन शुल्क का वितरण	
		जनसख्या के आधार पर	राज्य के पिछड़ेपन जैसी अन्य शर्तों के
पहला	3 शुल्को का 40%	40	60
दूसरा	8 शुल्को क 25%	40	60
तीसरा	35 शुल्को का 20%	40	60
चौथा	45 शुल्को का 20%	80	20
पाचवा	45 शुल्को का 20%	80	20
छठा	45 शुल्को का 20%	75	25
	सभी शुल्को का 40%	25	75
सातवा			
आठवा एव नवा	सभी शुल्को का 45%	25	75
दसवा	सभी शुल्को का 47 5%	20	80

केन्द्रीय उत्पादन शुल्को (Central excise duties) को विभाजनीय सग्रह मे शामिल कर दिया और (ख) राज्यो के भाग को पहले 20 प्रतिशत से बढ़ाकर 40 प्रतिशत और अन्तत इसे 47 5 प्रतिशत कर दिया। अत समय के साथ-साथ वित्त आयोग राज्यो की वित्त आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए केन्द्रीय उत्पादन शुल्को पर निर्भर करते रहे हैं।

जहा तक केन्द्रीय उत्पादन शुल्को से प्राप्तियो के वितरण का सम्बन्ध है वित्त आयोग ने आरम्भ मे दो कसौटिया अपनायीं अर्थात् राज्य की जनसख्या और राज्य का पिछडापन। इस प्रणाली ने स्पष्टत अधिक जनसख्या वाले परन्तु आर्थिक दृष्टि से पिछडे राज्यो जैसे उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश को लाभ पहुचाया। सातवे वित्त आयोग ने सबसे पहले केन्द्रीय उत्पादन-शुल्कों के वितरण के लिए एक नया फार्मूला लागू किया जिसमे प्रत्येक अग को 25 प्रतिशत महत्त्व दिया गया (क) जनसख्या (ख) राज्य को प्रति व्यक्ति आय मे वृद्धि (ग) प्रत्येक राज्य मे निर्धनता की जनसख्या और (घ) राज्यो के बीच आय समता (Income equalisation) के फार्मूले को। आठवे वित्त आयोग ने एक और नया फार्मूला लागू किया जिसका आधार राज्यो मे आय कर के वितरण के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला फार्मूला ही था।

नवे वित्त आयोग की नयी कसौटियो का ध्यानपूवक मूल्याकन करने से पता चलता है कि केन्द्रीय उत्पादन शुल्को की प्राप्तियो के अन्त राज्यीय विभाजन के लिए पिछले वित्त आयोगो के फार्मूले को और सशोधित किया गया है।

(i) राज्यो के बीच 25 प्रतिशत भाग 1971 की जनगणना के आधार पर वितरित किया जाना चाहिए।

(ii) 12 5 प्रतिशत का वितरण राज्यो के बीच आय समायोजित कुल जनसख्या (Income Adjusted Total Population) के आधार पर होना चाहिए।

(iii) 12 5 प्रतिशत का वितरण पिछडेपन के सूचकाक के आधार पर किया जाना चाहिए।

(iv) 33 5 प्रतिशत के वितरण का आधार राज्य की प्रति व्यक्ति आय और सबसे अधिक आय वाले राज्य (अर्थात् पजाब) की आय से अन्तर को सम्बन्धित राज्य की 1971 की जनसख्या से गुणा करके होना चाहिए।

(v) 16 5 प्रतिशत का वितरण करो के अन्तरण के पश्चात् घाटे वाले राज्यों के बीच होना चाहिए।

दसवे वित्त आयोग ने आयकर के विभाजन के फार्मूले का ही प्रयोग किया जिसके आधार पर उत्पादन-शुल्को की शुद्ध प्राप्तियो के 40 प्रतिशत का वितरण किया जाएगा। शेष 7 5 प्रतिश घाटे वाले राज्यो के बीच बाटा जाएगा।

बिक्री कर के एवज मे अतिरिक्त उत्पादन-शुल्क—सामान्य उत्पादन-शुल्को के अतिरिक्त केन्द्र बिक्री कर के एवज मे सूती वस्त्रो तम्बाकू और चीनी पर अतिरिक्त उत्पादन-शुल्क भी लगाता रहा है और इससे समग्र प्राप्तियो का वितरण राज्यो में किया जा रहा है। चूँकि अतिरिक्त उत्पादन-शुल्क बिक्री कर के एवज मे लगाये जाते हैं जो कि स्वय उपभोग पर कर है विभिन्न राज्यो के भाग इन वस्तुओ के उपभोग मे उन राज्यो के भाग के अनुरूप ही हैं।

नवें वित्त आयोग ने यह संकेत दिया है कि इन वस्तुओं के राज्यवार उपभोग (Statewise consumption) के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं और इसलिए अतिरिक्त उत्पादन-शुल्कों से प्राप्त निवल आय मे अलग-अलग राज्यों का भाग निर्धारित करने के लिए राज्यीय घरलू उत्पाद (State domestic product) और जनसख्या के प्रयोग की सिफारिश की है। दसवे वित्त आयोग ने इस आवटन योजना को बदल दिया है।

रेल यात्री किराए पर कर के एवज मे अनुदान

सविधान के अनुच्छेद 269 मे अन्य मदो के साथ रेल-यात्री किराए पर कर का जिक्र किया गया है। यह कर पहली बार 1957 मे लगाया गया और इससे प्राप्त आय अन्य राज्यो मे वितरित कर दी गयी। 1961 में इस कर को समाप्त कर दिया गया। वास्तव मे इस कर का विलयन मूल-किराए (Basic fare) मे कर दिया गया और राजस्व मे परिणामत होने वाली हानि की क्षतिपूर्ति करने के लिए राज्यो के लिए अनुदान की पद्धति कायम की गयी। 1971 में रेल-यात्री किराए पर कर को पुन जीवित किया गया परन्तु 1973 मे इसे फिर समाप्त कर दिया गया। इसके बाद वित्त आयोगो को यह दायित्व सौंपा गया कि वे इस कर के एवज मे राज्यो को अनुदान देने के बारे मे सुझाव दे। इस बारे मे दो बातो पर निर्णय लेना है (क) रेल-यात्री किराए के एवज मे केन्द्र कितने अनुदान की मात्रा का राज्यो को अन्तरण करे अर्थात् क्या यह एक निश्चित राशि होनी चाहिए या यह कुल रेल-यात्री प्राप्तियो का प्रतिशत निश्चित किया जाना चाहिए? (ख) अनुदान के अन्त राज्यीय विभाजन (Inter-state sharing) का आधार क्या होना चाहिए?

पहले प्रश्न पर केन्द्र और राज्यो के बीच हमेशा मतभेद रहा है। जब इस कर को समाप्त किया गया तब यह गैर-उपनगरीय रेलवे यात्री प्राप्तियो का 10 7 प्रतिशत योगदान देता था। अत राज्य हमेशा इस बात पर इसरार करते रहे हैं कि अनुदान की मात्रा रेलवे यात्री प्राप्तियो के 10 7 प्रतिशत पर निश्चित होनी चाहिए। परन्तु रेलवे विभाग सदा इस बात पर परिदृढ रहा है कि अनुदान एक निश्चित राशि के रूप मे तय कर दिया जाना चाहिए। यह राशि मौलिक रूप में 23 करोड रुपये निश्चित की गयी। आठवें वित्त आयोग ने इसे बढाकर 95 करोड रुपय कर दिया जो कि उस समय पर रेलवे यात्री प्राप्तिया का 10 7 प्रतिशत था। अनुदान की निश्चित राशि तय करने के लिए रलवे ने निम्नलिखित तर्क दिए-

(क) रेलवे के सामाजिक दायित्वों का आघात लगातार बढता रहा है और रलो को यात्री किराए मे सहाय्य प्रदान करने और वस्तुओ पर निम्न भाडे के रूप मे 2,000 करोड रुपये की वार्षिक हानि हो रही है। दूसर शब्दो मे, रल न केवल यात्री यातायात को साहाय्य प्रदान कर रही हैं बल्कि माल यातायात को भी।

(ख) रेलवे-प्राप्तियो को केन्द्र सरकार के कर-राजस्व के तुल्य नहीं मानना चाहिए जिसका एक भाग राज्यो पर निर्भर होता है। रलवे का एक विकासशील अर्थव्यवस्था की माग को पूरा करने के लिए एक आधुनिक और कुशल परिवहन अध सरचना (Transport infrastructure) की व्यवस्था के लिए पर्याप्त साधन जुटाने होंगे। परिणामत यदि रेल-यात्री किराए पर कर के एवज मे अनुदान की राशि बढायी जाती हैं तो इससे उनके विकास पर दुष्प्रभाव पडेगा।

नवें वित्त आयोग ने राज्यो की इस माग को अस्वीकार कर दिया कि रल-यात्री किराए पर कर के एवज मे उन्हे गैर-उपनगरीय रल-यात्री आय पर 10 7 प्रतिशत क्षतिपूर्ति अनुदान मिलना चाहिए। साथ ही आयोग ने रलवे के तक के अनुसार अनुदान की मात्रा को 95 करोड रुपये तक ही सीमित करने से इन्कार कर दिया। अत आयोग ने आठवीं योजना की अवधि (1990-95) के लिए प्रति वर्ष 150 करोड रुपये की एकमुश्त राशि निश्चित कर दी।

आठवे वित्त आयोग की भाति दसवे वित्त आयोग ने रेलवे के तर्क को अस्वीकार कर दिया और बहुत से राज्यो से अपनी सहमति व्यक्त की अथात् अनुदान का भाग गैर-उपनगरीय रेलवे यात्रियो से प्राप्तियो का 10 7 प्रतिशत होना चाहिए। चूकि 1992-93 के वष के लिए उपलब्ध आकडो मे यह राशि 3 540 करोड रुपये थी दसवे वित्त आयोग ने इसका 10 7 प्रतिशत अथात् 380 करोड रुपये राज्यो को प्रतिवर्ष 1995-2000 की अवधि के दौरान देने की सिफारिश की।

सम्पदा-शुल्क (Estate Duty)

सम्पदा-शुल्क 1953 में लागू किया गया जिससे होने वाली समग्र आय राज्यो को हस्तान्तरित करने का निणय किया गया। द्वितीय वित्त आयोग ने यह सिफारिश की कि इसका 1 प्रतिशत सघीय क्षेत्रो को दिया जाए और शेष राज्यो मे बाट दिया जाए। चौथे पाचवे और छठे वित्त आयोग ने सघीय क्षेत्रों (Union Territories) के भाग को बढाकर 5 प्रतिशत करने की सिफारिश की। सातवे वित्त आयोग ने यह सिफारिश की कि कृषि सम्पदा को छोड अन्य प्रकार की सम्पदा से प्राप्त होने वाल सम्पदा शुल्क का वितरण प्रत्येक राज्य मे स्थित सम्पदाओ के कुल मूल्य के अनुपात मे होना चाहिए। आठवे वित्त आयोग ने सम्पदा शुल्क के वितरण मे कोई तब्दीली नहीं की।

(iii) 1,250 करोड रुपये राज्यो की विशेष समस्याओ के समाधान के लिए

(iv) 4,730 करोड रुपये विपत्ति राहत के लिए, और

(v) 5,380 करोड रुपये स्थानीय निकायो अर्थात् पचायतो और नगरपालिकाओ के लिए।

इस प्रकार सहायता अनुदान की कुल राशि 20,300 करोड रुपये तय की गयी।

(क) आयकर प्राप्तियो मे राज्यो के भाग को 80 प्रतिशत से बढाकर 85 प्रतिशत कर दिया,

(ख) केवल 45 उत्पादन-शुल्को की अपेक्षा सभी उत्पादन शुल्क केन्द्रीय उत्पादन-शुल्को के लिए कर-विभाजन के आधीन लाए गए,

(ग) उत्पादन-शुल्को मे राज्यो के भाग को 20 प्रतिशत से बढाकर 40 प्रतिशत और *अन्ततोगत्वा* इसे 45 प्रतिशत तक ले जाना।

इन अधिनिर्णयो (Awards) के परिणामस्वरूप राज्यो को कर-राजस्व का इतना अधिक अन्तरण किया गया कि उनमें से अधिक ने राजस्व-लेखे पर अतिरेक प्राप्त कर लिया। नवे वित्त आयोग ने आठवीं योजना की अवधि (1990-95) के लिए राज्यो के योजना-भिन्न तथा योजना घाटे (Non-plan and plan deficit) का अनुमान लगाया और क्रमश 15,017 करोड रुपये 7,580 करोड रुपये के कुल सहायता अनुदान का अधिनिर्णय दिया। इसने केन्द्र के योगदान के रूप मे विपत्ति राहत कोष और भोपाल गैस त्रासदी के लिए उदार अनुदान के रूप मे 3,137 करोड रुपये का प्रावधान भी किया है। दसवे वित्त आयोग ने भी राहत कोष के लिए उदार नीति अपनायी।

3. दसवें वित्त आयोग की सिफारिशें (Recommendations of the Tenth Finance Commission)

दसवा वित्त आयोग जून 1992 मे कायम किया गया और श्री के सी पत को इसका अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इस आयोग ने अपनी रिपोर्ट मे निम्नलिखित सिफारिशे कीं।

दसवे वित्त आयोग को यह कहा गया था कि जहा कहीं भी जनसख्या को करो और शुल्को एव सहायता अनुदान के विभाजन मे एक कारक समझा जाए, उसके लिए 1971 की जनगणना के आकडो का इस्तेमाल करना होगा।

केन्द्र और राज्यो का वित्त एक विश्लेषणात्मक समीक्षा

दसवे वित्त आयोग के अनुसार, भारत के राजकीय वित्त का मूल लक्षण पिछले चार दशको के दौरान *राजकोषीय सतुलन (Fiscal balance) मे लगातार गिरावट* की प्रवृत्ति का बने रहना है।

(क) 1982-83 तक, भारतीय अर्थव्यवस्था मे राजस्व अतिरेक अनुभव किया गया जिसका प्रयोग पूजी-व्यय के एक भाग की अदायगी के लिए किया गया।

(ख) 1982-83 के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था राजस्व लेखे मे लगातार घाटे की स्थिति मे चली गयी है। उदाहरणार्थ 1975-76 मे इसमे सकल देशीय उत्पाद का 2 5 प्रतिशत राजस्व अतिरेक प्राप्त किया गया, किन्तु 1990 में यह 3 6 प्रतिशत के राजस्व घाटे और 1993-94 मे यह राजस्व घाटा सकल देशीय उत्पाद क 5 0 प्रतिशत के बराबर हो गया।

राजकोषीय घाटे के रूप मे वृद्धि कहीं और अधिक तेज गति से हुई है। उदाहरणार्थ, सकल देशीय उत्पाद के अनुपात के रूप मे राजकोषीय घाटा (Fiscal deficit) 1975-76 मे 6 प्रतिशत था जो 1990-91 मे बढकर 12 प्रतिशत हो गया और 1993-94 मे यह लगभग 11 5 प्रतिशत था। अत अर्थव्यवस्था का स्वरूप राजस्व-अतिरेक अर्थव्यवस्था से परिवर्तित होकर राजस्व-घाट वाली अर्थव्यवस्था का रूप धारण कर गया।

राजस्व प्राप्तियो (Revenue receipts) द्वारा पूजी-व्यय के एक भाग की पूर्ति की जाती थी, परन्तु अब पूजी प्राप्तियो के अधिकाधिक भाग का प्रयोग राजस्व-व्यय के वित्त-प्रबन्ध के लिए किया जाता है। अत वित्त-प्रबन्ध क गैर-ऋण कायम करने वाले स्रोत का स्वरूप बदल कर अब बढते हुए आन्तरिक ऋण-ग्रस्तता के स्रोत वाला हो गया है। परिणामत सार्वजनिक ऋण और ब्याज का भार इतना अधिक हो गया कि यह अब व्यय की सबसे अधिक बढती हुई मद बन गया है। इसके नतीजे के तौर पर राजस्व-व्यय मे तीव्र वृद्धि हुई है। बढते हुए राजकोषीय घाटों ऋणो और ब्याज मे भारी वृद्धि ने राजकोषीय घाटे को और अधिक बढा दिया है।

1 कर-राजस्व के बारे म समस्या नहीं है। सकल देशी उत्पाद (Gross Domestic Product) के अनुपात के रूप मे कुल राजस्व जो 1960-61 मे 12 प्रतिशत था बढकर 1987-88 मे 27 4 प्रतिशत हो गया। इसके बाद यह इसी स्तर पर रहा। इस वृद्धि के मुख्य भाग का कारण कर-राजस्व (Tax revenues) मे निरन्तर वृद्धि था जब कि कर-भिन्न राजस्व के स्रोतो का विदोहन न किया जा सका। वर्तमान प्रति व्यक्ति आय के स्तर पर कर-राजस्व मे वृद्धि काफी प्रभावशाली थी।

2 अत राजकोषीय असतलन (Fiscal imbalance) का मुख्य कारण सरकारी व्यय की बेलगाम वृद्धि है। राजस्व

व्यय की वृद्धि में त्वरण हाल ही के वर्षों में हुआ है।

(i) 1970 80 के दशक के मध्य तक राजस्व-व्यय सकल देशीय उत्पाद का 15% था।

(ii) तत्पश्चात् 1987-88 में यह बढ़कर सकल देशीय उत्पाद के 27 प्रतिशत तक पहुंच गया।

(iii) 1987-88 के पश्चात् यह सकल देशीय उत्पाद के 27 प्रतिशत पर स्थिर हो गया।

(iv) हाल ही के वर्षों में व्यय की संरचना के स्तर की परिदृढ़ता और लोचहीनता में गिरावट आया है।

(v) ब्याज और वेतन व्यय के मुख्य अंगों के परिणाम के रूप में उभरे हैं जिसका प्रत्यक्ष कारण सरकार द्वारा व्यय के वित्त प्रबन्ध का ढांचा और विस्तारी नीतियों का अनुसरण है।

दसवें वित्त आयोग ने संकेत किया है कि ब्याज और वेतन अब वचनबद्ध व्यय (Committed expenditure) ही समझे जाते हैं जिनमें कटौती नहीं की जा सकती। इस प्रकार राजस्व प्राप्तियों की अपेक्षा व्यय की आय लोच (Income elasticity) अधिक है और इसके परिणामस्वरूप घाटों की प्रवृत्ति बन पकड़ गया है। अत भारतीय अर्थव्यवस्था संसाधन आधारित राजकोषीय प्रबन्ध से व्यय आधारित बजट की ओर परिवर्तित हो गया है।

घाटों का चित्रण (Profile of Deficits)

दसवें वित्त आयोग ने केन्द्र सरकार के राजस्व एवं राजकोषीय घाटे को सकल देशीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप में आंका है।

वर्ष	राजस्व घाटा	राजकोषीय घाटा
1981 82	0 2	5 4
1990 91	3 5	8 4
1994 95	4 3	8 4

जबकि राजस्व घाटे में वृद्धि होती रही है राजकोषीय घाटा जिसका प्रयोग राजस्व घाटे को पूरा करने के लिए किया जाता था भी चिन्तनीय ढंग से बढ़ा है। दसवें वित्त आयोग ने स्पष्ट किया है कि स्थिति का असंतोषजनक पहलू राजकोषीय घाटे के वित्त प्रबन्ध का ढंग है। समय के उपरान्त विशेषकर 1991 के पश्चात् मुद्राकृत घाटा (Monetised deficit) महत्वपूर्ण रूप से कम हुआ है और अन्य प्रकार के उधारों का अनुपात बढ़ गया है। परिणामत सरकारी व्यय के वित्त प्रबन्ध की इकाई-लागत (Unit cost) बढ़ गया है। अत यह जरूरी हो गया है कि राजस्व घाटे और राजकोषीय घाटे के साथ मुद्राकृत घाटे को कम किया जाए।

सरकारी व्यय के वित्त-प्रबन्ध की ऊंची लागत का प्रमाण बढ़ता हुआ ब्याज भुगतान है। अत बाजार से उधार या छोटी बचत एवं अन्य प्राप्तियों द्वारा वित्त-प्रबन्ध करने से ऐसे राजस्व-व्यय को प्रोत्साहन मिला है जिसमें कोई वित्तीय प्रत्याय प्राप्त नहीं होती और पूंजी-व्यय का भी एक बड़ा भाग ऐसा है जिसमें अपर्याप्त प्रत्याय प्राप्त होता है। ये दोनों ढंग विवेकहीन और दोषपूर्ण हैं। अत राजकोषीय रोग का मूल कारण बढ़ता हुआ ब्याज-भुगतान है जिसके लिए उधार का विवेकहीन प्रयोग प्रधान कारण है।

दसवें वित्त आयोग ने इस संक्रान्ति का भी जिक्र किया है *जिसमें एक स्वस्थ राजस्व अतिरेक देने वाली व्यवस्था* अब भारी घाटे देने लगी है। इसका कारण राजस्व खाते को योजना और गैर-योजना (Plan and Non plan) में अलग अलग कर देना था। अस्सी के दशक के आरम्भिक वर्षों तक योजना राजस्व खाते में मामूली घाटा रहा करता था इसके बाद योजना के आकार में वृद्धि के फलस्वरूप यह बढ़ गया। इसके विरुद्ध 1990 91 तक गैर-योजना खाते में अतिरेक रहा। राजस्व और पूंजी अंगों को एक ही वर्ग में इकट्ठा कर देने से और इसे योजना-परिव्यय का नाम देने से यह प्रवृत्ति जड़ पकड़ गयी कि उधार का प्रयोग राजस्व व्यय के वित्त प्रबन्ध के लिए किया जाए। परन्तु यह अनिवार्य होना चाहिए था कि योजना के लिए राजस्व संसाधनों को पृथक रूप से राजस्व प्राप्तियों के साथ सन्तुलन प्राप्त किया जाए। दसवें वित्त आयोग के अनुसार "राजकोषीय अनुशासन की मूल शर्त का पालन न करना आन्तरिक राजकोषीय असन्तुलन का मुख्य कारण है।" अब केन्द्र सरकार अपने बजट में भारी घाटा दिखा रही है और आने वाले वर्षों में भी बजट घाटों के पूर्वानुमान लगाए गए हैं। साथ ही साथ कोई राज्य ऐसा नहीं जिसने गैर-योजना राजस्व खाते में अतिरेक का पूर्वानुमान लगाया हो। ऐसी भयंकर स्थिति किसी भी वित्त आयोग के सामने नहीं थी। इस कारण दसवें वित्त आयोग का कार्य और भी कठिन हो गया क्योंकि इसे न केवल राजस्व खाते में सन्तुलन स्थापित करना था बल्कि पूंजी खाते में अतिरेक पैदा करना था।

1 आयकर का विभाजन

दसवें वित्त आयोग ने आयकर की शुद्ध प्राप्तियों के विभाजनीय संग्रह के प्रश्न पर विचार करते हुए इस बात की ओर संकेत किया कि पहले वित्त आयोग ने आयकर में राज्यों का भाग 55 प्रतिशत निश्चित किया जो बाद के उत्तरोत्तर वित्त आयोग बढ़ाते रहे और सातवें वित्त आयोग ने इसे 85 प्रतिशत कर दिया। आठवें और नवें वित्त आयोग ने इसे 85 प्रतिशत ही रखा।

कुछ राज्यों ने दसवें वित्त आयोग के सामने इस

बढ़ाकर 100 प्रतिशत करने का तर्क दिया हैं। राज्यो द्वारा आयकर के भाग में वृद्धि के लिए निम्नलिखित तर्क दिए गए हैं

(1) आयकर की तुलना में निगम कर (Corporation Tax) अधिक लोचपूर्ण सिद्ध हुआ है, परन्तु जबकि 1959 से पूर्व इससे प्राप्त राजस्व विभाजनीय-सग्रह (Divisible pool) का हिस्सा था, अब इसे इस सग्रह से निष्कासित कर दिया गया है।

(ii) राज्यो को केन्द्र द्वारा आयकर पर लगातार अधिभार (Surcharge) लगाने से राजस्व की हानि हो रही है परन्तु केन्द्र इसे राजस्व का सामान्य स्रोत मानने लगा है।

(iii) विभाजनीय सग्रह लगातार सुकडता जा रहा है क्योंकि केन्द्रीय बजट मे लगभग हर साल बहुत सी राहते और रियायतें दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त, आयकर की बुनियादी छूट की सीमा भी बढा दी जाती है।

(iv) आर्थिक उदारीकरण के परिपेक्ष्य मे राज्यो की व्यय सम्बन्धी जिम्मेदारिया, विशेषकर अध सरचना (Infrastructure) सम्बन्धी बढती जा रही हैं।

इन सभी बातो को ध्यान मे रखते हुए, दसवे वित्त आयोग ने आयकर की शुद्ध प्राप्तियो मे राज्यो के भाग को 77 5 प्रतिशत पर निश्चित करने की सिफारिश की। बाद मे आयोग ने उत्पादन-शुल्क में उचित वृद्धि की भी सिफारिश की। आयोग ने अपनी सिफारिश के पक्ष मे दो तर्क दिए हैं

(क) जो प्राधिकार किसी कर को लगाता है और इसकी व्यवस्था करता है उसे कर की प्राप्ति मे महत्त्वपूर्ण और पर्याप्त भाग मिलना चाहिए और

(ख) इस कारण भाग में परिवर्तन का राज्यो को हस्तातरित होने वाले साधनो पर विशेष प्रभाव नहीं पडना चाहिए।

दूसरे शब्दो मे, दसवे वित्त आयोग ने यह उल्लेख किया कि आयकर के राज्यो के भाग मे हुई किसी भी कमी की पूर्ति केन्द्रीय उत्पादन-शुल्क में राज्यो के भाग में वृद्धि द्वारा की जानी चाहिए। अत वित्त आयोग वस्तुत यह चाहता था कि आयकर में केन्द्र की पर्याप्त रुचि बनी रहनी चाहिए।

विभिन्न राज्यो मे आयकर प्राप्तियो की बाट क बारे मे दसवें वित्त आयोग ने निम्नलिखित कसौटिया निर्धारित कीं

(1) 20 प्रतिशत 1971 की जनगणना के आधार पर

(2) 60 प्रतिशत प्रति व्यक्ति आय मे अन्तर के आधार पर

(3) 5 प्रतिशत समायोजित क्षेत्र (Adjusted area) के आधार पर

(4) 5 प्रतिशत अध सरचना सूचकाक (Infra structure index) के आधार पर

(5) 10 प्रतिशत कर-प्रयास (Tax effort) के आधार पर

सिफारिश का यह भाग इस विषय पर पहले आयोगो की सिफारिशो से बहुत भिन्न नहीं हैं।

2 केन्द्रीय उत्पादन-शुल्को का विभाजन

नवें वित्त आयोग ने केन्द्रीय उत्पादन शुल्को मे राज्यो के भाग को 45 प्रतिशत पर निश्चित किया था। राज्यो ने दसवे वित्त आयोग से इसे बढाकर 55 से 60 प्रतिशत तक कर देने की माग की। दसवे वित्त आयोग ने राज्यो के तर्कों पर विचार करने के पश्चात् यह सिफारिश की कि केन्द्रीय उत्पादन शुल्को मे राज्यो का भाग बढा कर 47 5 प्रतिशत कर देना चाहिए। इसका कारण आयोग द्वारा आयकर मे राज्यो के भाग को कम करना था।

राज्यों मे उत्पादन शुल्को के वितरण के लिए दसवे वित्त आयोग ने निम्नलिखित सिफारिशें कीं

(क) केन्द्रीय उत्पादन शुल्को से शुद्ध प्राप्तियो का 40 प्रतिशत राज्यो मे उन्हीं कसौटियो के आधार पर बाटा जाएगा जिनके अनुसार आयकर बाटा जाता है, और

(ख) केन्द्रीय उत्पादन शुल्को का शेष 7 5 प्रतिशत घाटे-वाले राज्यो में वितरित किया जाएगा।

3 बिक्री कर के एवज म अतिरिक्त उत्पादन-शुल्क का विभाजन

चीनी, सूता वस्त्रो और तम्बाकू पर लगाए गए अतिरिक्त उत्पादन-शुल्क (Additional excise duties) की समग्र शुद्ध प्राप्ति राज्यों को सौंप दी जाती है और वित्त आयोगो ने शुद्ध आय (Net proceeds) के अन्त राज्यीय वितरण के केवल सिद्धान्तो की सिफारिश की है। अतिरिक्त उत्पादन शुल्क बिक्री कर (Sales tax) के एवज मे लगाए जाते हैं जो कि उपभोग पर कर है। इस प्रकार वित्त आयोगों ने अतिरिक्त उत्पादन शुल्को का वितरण प्रत्येक राज्य मे इन वस्तुओ के उपभोग के आधार पर किया है। नवे वित्त आयोग ने यह सकेत दिया कि इन वस्तुओ के राज्यवार उपभोग (Statewise consumption) के आकडे उपलब्ध नहीं है और इसलिए अतिरिक्त उत्पादन-शुल्को से प्राप्त निवल आय मे अलग अलग राज्यो का भाग निर्धारित करने के लिए राज्यीय घरेलू उत्पाद (State domestic product) और जनसख्या के प्रयोग की सिफारिश की। दसवे वित्त आयोग ने भी नवे वित्त आयोग की सिफारिश की ही पुष्टि की है और इसक आबटन ढाचे मे कोई भी परिवर्तन नहीं किया है।

4 रल यात्री किराए पर कर (Tax on passenger fares) के एवज मे अनुदान

रेल यात्री किराए पर कर 1973 मे हटा दिया गया आर राज्यो को इस हानि की पूर्ति के लिए अनुदान की एक प्रणाली चालू की गयी। दसवे वित्त आयाग ने इस विषय पर पिछल वित्त आयोगा को मिफारिशो की समीक्षा की। गज्य सरकारें हमेशा इस बात पर बल देती रही हैं कि अनुदान की मात्रा गर-उपनगरीय यात्री किराये (Non suburban passenger fares) से प्राप्त होने वाली आय के 10 7 प्रनिशत क बराबर होनी चाहिए क्योकि जब 1973 मे यात्री किराए पर कर हटाया गया था तब उसका योगदान इतना ही था। इसके विरूद्ध रेलवे का मत यह रहा है कि वे उपनगराय रल यात्री आय के 10 7 प्रतिशत के बराबर अनदान से इस भार को सहन नहीं कर सकतीं क्योकि (i) रल न केवल यात्री बल्कि माल यातायात को भी साहाय्यित दरा (Subsidized rates) पर उपलब्ध कराती हैं और परिणामत उनका वार्षिक हानि 2 000 करोड रुपये है (ii) रला के चलाने का लागत मे वृद्धि रलो द्वारा भाडे म वृद्धि करन पर सामाबन्धन घटत हुए बजट समर्थन (Budgetary support) आदि के कारण यात्री किराए पर कर के एवज म सहायता-अनुदान (Grant in aid) बढाना जरूरा हो गया ह।

दसव वित्त आयाग ने रेलवे के तर्को को अस्वीकार कर दिया क्योकि यह अनुदान रलो द्वारा नही दिया जाता बल्कि केन्द्र सरकार का दना पडता है। वित्त आयोग ने राज्यो के दृष्टिकोण का स्वीकार किया आर यह सिफारिश की कि सहायता-अनुदान यात्रा किराए पर कर के 10 7 प्रतिशत के बराबर होना चाहिए। दसव वित्त आयोग ने यह पाया कि वर्ष 1992 93 के लिए (अद्यतन वर्ष जिसके लिए आकडे उपलब्ध है) कुल गैर-उपनगरीय यात्री किराए से 3 540 कराड रुपये की आय प्राप्त हुइ। इस कारण इसका 10 7 प्रतिशत अथात् 380 करोड रुपये वित्त आयोग द्वारा अनुदान निश्चित कर दिया गया जो कि राज्यो को प्रत्येक वर्ष 1995 2000 की अवधि के दौरान प्राप्त होगा।

5 सहायता अनुदान (Grant-in-aid)

दसवे वित्त आयोग ने यह अनुमान लगाया कि राजस्व खात म घाटा 7 580 करोड रुपये होगा ओर इसको देखते हुए 1995 2000 की अवधि के लिए 7 580 करोड रुपये के अनुदान की सिफारिश की। आयोग को सोपे गए विचारार्थ विषयो (Terms of reference) मे इससे यह आग्रह किया गया था कि यह राज्यो को अनुदान बढाते समय प्रशासन के आधुनिकीकरण और विकास-भिन्न क्षेत्रो मे स्टैंडर्ड बढाने का धयान रखे। दसवे वित्त आयोग ने उन्नयन (Upgradation) के लिए निम्नलिखित क्षत्रो को चुना

(क) जिला प्रशासन-पुलिस अग्निशमन सेवा जेल रिकार्ड कक्ष खजाने एव खाते।

(ख) शिक्षा-कन्याओ की शिक्षा को बढावा देना उच्चतर प्राथमिक स्कूलो के लिए अतिरिक्त सुविधाए, प्राथमिव स्कूलों के लिए पीने के पानी की सुविधाए।

(ग) विशेष समस्याए-अत दसवे वित्त आयोग ने उन्नयन अनुदान (Upgradation grants) के लिए 1,360 करोड रुपये और राज्या की विशेष समस्याओ के लिए 1,250 करोड रुपये के अनुदान की सिफारिश की।

इसके अतिरिक्त दसवे वित्त आयोग ने सिफारिश की कि (i) राजस्व खाते पर घाटे की पूर्ति के लिए 7,580 करोड रुपये का सहायता अनुदान (ii) विपत्ति राहत के लिए 4,730 करोड रुपये और (iii) स्थानीय निकायो अर्थात् पचायतो और नगरपालिकाआ के लिए 5 380 करोड रुपये का अनुदान दिया जाएगा।

इस प्रकार कुल मिला कर दसवे वित्त आयोग ने 1995-2000 की अवधि के लिए 20 300 करोड रुपये के सहायता अनुदान की सिफारिश की।

6 राज्यो की ऋण-स्थिति (Debt position)

पहले भी वित्त आयोगो को राज्या की ऋण-स्थिति विशेषकर उन्ह केन्द्र द्वारा दिए गए ऋणो की समीक्षा करनी जरूरी थी। पाचवे वित्त आयोग को छोड अन्य वित्त आयोगो ने यह कार्य सतही रूप से किया। नवे वित्त आयोग को विशेष रूप म यह निदेर्श दिया गया कि वह 31 मार्च 1989 तक राज्यो की ऋण स्थिति का मूल्याकन करे और उपचारात्मक उपायो का सुझाव दे। दसवे वित्त आयोग को 31 मार्च 1994 तक राज्यों की ऋण-स्थिति की समीक्षा करने और राजकोषीय घाटे को कम करने के उपायो की सिफारिश करने का निर्दर्श दिया गया। दसवे वित्त आयोग ने राज्यो एव केन्द्र के विचारो को दृष्टि मे रखकर अपनी सिफारिशे दीं। आयोग ने इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित मार्गदर्शी सिद्धान्त तय किए

(क) राजकोषीय प्रणाली पर सीमाबन्धन (Constraints) ऋण-राहत की मात्रा जो मध्यकालीन परिपेक्ष्य मे उपलब्ध करायी जा सकती है का सीमित कर देते हैं।

(ख) साथ ही एसे राज्य जो बहुत अधिक राजकोषीय दबाव के आधीन कार्य कर रह हैं उन्हें सहायता देनी चाहिए ओर

(ग) बेहतर राजकोषीय प्रबन्ध के लिए प्रोत्साहन देने चाहिए।

तदनुरूप दसवे वित्त आयोग ने निम्नलिखित राहत एव उपचारात्मक उपायो की सिफारिश की

(i) राजकोषीय निष्पादन (Fiscal performance) के साथ जुडी हुई सभी राज्यो के लिए सामान्य ऋण राहत (General debt relief) की योजना

(ii) राजकोषीय दबाव के आधीन कार्य करने वाले राज्यो (अर्थात् उडीसा बिहार उत्तर प्रदेश) के लिए विशेष राहत। इन तीन राज्यो के लिए 1989-95 के दौरान लिए गए

तालिका 4 पिछले पाच वित्त आयोगो द्वारा वैधानिक हस्तातरण के अग

करोड रुपये

	कर हस्तातरण	घाटे सम्बन्धी अनुदान	अन्य अनुदान	कुल अनुदान	कुल हस्तान्तरण
पाचवा आयोग	3 590 (88)	490		490 (12)	4 090 (100)
छठा आयोग	6 940 (80)	820	930	1 750 (20)	8 690 (100)
सातवा आयोग	18 810 (97)	140	390	530 (3)	19 340 (100)
आठवा आयोग	33 130 (93)	970	1 420	2 39 (7)	35 520 (100)
नवा आयोग	87 890 (83)	15 010	3 140	18 160 (17)	1 06 040 (100)
दसवा आयोग	2 06 340 (99)	7 580	12 720	20 300 (1)	2 26 640 (100)

नोट बैकट में दिए गए आकडे कुल हस्तातरण का प्रतिशत हैं

ऋणों और 31 मार्च 1995 तक बकाया ऋणो के 5 प्रतिशत की अदायी का समाप्त कर देने की सिफारिश की गयी है। इससे 166 करोड रुपये के ऋण मुआफ किए गए।

(iii) पजाब को आतकवाद का मुकाबला करने के लिए विशेष ऋणो पर 1995 2000 के दौरान मूलधन की अदायगी का एक तिहाई मुआफ कर दिया गया। इस प्रकार 490 करोड रुपये की राहत दी गया।

(iv) विशेष वर्ग के राज्यो के लिए 44 करोड रुपये का राहत।

इस प्रकार कुल मिलाकर दसवे वित्त आयोग ने 1995 2000 की अवधि के लिए 700 करोड रुपये की ऋण राहत की सिफारिश की।

तालिका 4 से स्पष्ट है कि दसवे वित्त आयोग की सिफारिशो के परिणामस्वरूप 2 26 640 करोड रुपये की राशि राज्यो को हस्तातरित की जाएगी। इसकी तुलना पिछले वित्त आयोग के साथ तालिका 4 मे दी गयी है। जाहिर है कि कुल हस्तातरण मे कर हस्तातरण का भाग दसवे वित्त आयोग द्वारा 99 प्रतिशत रखा गया और अनुदानो की मात्रा केवल 1 प्रतिशत थी। इस दृष्टि से दसवे वित्त आयोग ने अनुदानो के महत्त्व को नाममात्र बना दिया।

7 राशि हस्तातरण की विकल्प योजना (Alternative scheme)

अपना अधिनिर्णय देने के पश्चात् दसवे वित्त आयोग ने ऊर्ध्व ससाधन विभजन (Vert cal resource sharing) की विकल्प योजना प्रतिपादित की जो आयोग की राय मे वर्तमान कर विभाजन प्रणाला से बेहतर है। हाल मे तो भारताय सविधान मे राज्यो के साथ केवल करो के विभाजन का प्रावधान है। कर सुधारो की प्रगति बहुत ही सुविधाजनक बन जाएगी यदि कर विभाजन व्यवस्था के क्षेत्र का विस्तार किया जाए ताकि ससाधन प्रवाहो (Resource Flows) को अधिक निश्चितता प्रदान की जा सके। इससे कन्द्र और राज्यो दोनो को और अधिक लोचशलता प्राप्त हो जाएगी।

भारताय कर प्रणाली अप्रत्यक्ष करो पर भारा रूप मे निर्भर है। इसमे केन्द्रीय उत्पादन शुल्क और राजकीय बिक्रा कर दशीय व्यापार करो म केन्द्रीय स्थान रखते हे। इस कर प्रणाली मे बहुत से दोष हे जेसे ऊचा और बहु विध कर दर आदानो पर कराधान और उनका सौपान प्रभाव (Cascading effect) कर आधार म से सवाओ को छाड देना छूटो और रियायतो का बाहुल्य राज्या की कर प्रणालियो म सगति का अभाव आदि। पिछले दस वर्षो से कर हस्तातरण आय कर के 85 प्रतिशत और उत्पादन शुल्को के 45 प्रतिशत के स्तर पर स्थिर रहा है। इसके अतिरिक्त केन्द्र सरकार ने आयकर मे कोई रुचि नहीं दिखायी क्योकि इसका भाग केवल 15 प्रतिशत है। अनुच्छेद 268 और 269 के आधीन कर के स्रोतो का या तो विदोहन नहीं किया गया या उनका अल्प विदोहन हुआ है।

दसवें वित्त आयोग ने इस बात की ओर भी ध्यान दिलाया है कि मुख्य केन्द्रीय करा मे दो कर जो इस समय विभाजनाय हे अन्य दो करो से कम लोचशील हे।

तालिका 5 मुख्य केन्द्राय करो का वार्षिक वद्धि दरें

	1970 80	1980 90	1970 90
आयकर	12 76	14 83	13 80
उत्पादन शुल्क	14 10	14 31	14 20
निगम कर	14 42	17 15	15 79
सीमा शुल्क	20 96	20 03	20 49

स्रोत Ministry of Finance *Interim Report of the Tax Reforms Comm ttee*

सभी केन्द्राय करो को इकटठा करने का एक स्पष्ट लाभ यह होगा कि केन्द्र और राज्य कुल राजस्व का वृद्धि मे भागीदार बन सकेगे। यह बत कर सुधारा के काल मे विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हो सकती है जबकि करा को सापेक्ष लोचशालता (Relative buoyancy) म परिवतन हो रहा है।

राज्यो ने सामान्यत राजस्व के एक बडे सग्रह के लिए दबाव डाला है जिससे उन्हे बडा भाग मिल सके। उन्होने सदा निगम कर को विभाजनीय सग्रह (Divisible pool) मे लाने पर बल दिया है। पिछले वित्त आयोग भी इस बात पर गम्भीर रूप से विचार करते रहे और यह एक महत्त्वपूर्ण कारण था जिसने उन्हे धीरे-धीरे आयकर मे राज्यो के भाग को 55 प्रतिशत से 85 प्रतिशत तक ले जाने और उत्पादन-शुल्को मे राज्यो के भाग को 45 प्रतिशत तक ले जाने के लिए अभिप्रेरित किया। पिछले वित्त आयोग ने इस प्रश्न पर राष्ट्रीय विकास परिषद (National Development Council) को विचार करने की सिफारिश की। आठवे वित्त आयोग की राय मे निगम कर ने उच्च लोचशीलता का परिचय दिया है और इसलिए यह बेहत्तर होगा कि राज्य को राजस्व के इस स्रोत से लाभ हो। सरकारिया आयोग भी निगम कर (Corporation Tax) को विभाजनीय सग्रह मे लाने के पक्ष मे था और इसके लिए सविधान मे सशोधन करने का सुझाव दिया। अन्तिम कर-सुधारो पर राजा चैलय्या समिति (1991) ने भी कर विभाजन (Tax sharing) के सवैधानिक प्रावधानो की पुनर्समीक्षा करने की सिफारिश की। समिति की राय मे "राजकोषीय समायोजन (Fiscal adjustment) का कार्य राज्यो के साथ कर विभाजन के फार्मूले से उत्पन्न होने वाली समस्याओ के कारण और जटिल बन गया है आज राज्यो को कर हस्तातरण कुल केन्द्रीय कर राजस्व का लगभग 24 प्रतिशत है। राज्यो की सहमति और सहयोग से इस सम्बन्ध मे प्रासगिक सवैधानिक प्रावधानो का सशोधन किया जा सकता है जिससे केन्द्र द्वारा कुल सघीय कर-राजस्व का 25 प्रतिशत राज्यो को विभाजित किया जा सके। इस प्रकार राज्यो एव केन्द्र दोनो के लिए यह निश्चित हो जाएगा कि उनके अपने-अपने बजटो मे राजस्वो की कितनी मात्रा प्राप्त होगी और केन्द्र को अपने कराधान के ढाचे मे विकृति पैदा करने के लिए गैर-विभाजनीय कर (Non shareable taxes) लगाने के लिए मजबूर नहीं होना पडेगा।'

भारत सरकार के वित्त मत्रालय ने भी दसवे वित्त आयोग को यह कहा है कि वह कर-विभाजन के ढाचे मे इस प्रकार परिवर्तन करने की जाच करे कि केन्द्र का समग्र राजस्व (केवल अधिभारो (Surcharges) को छोड कर) विभाजनीय बन जाए। इसका अनुपात 22 से 23 प्रतिशत के बीच निश्चित किया जा सकता है और यह 20 वर्षों के लिए कारगर समझा जाएगा। यदि राज्यो को केन्द्रीय करो से कुल प्राप्तियो का भाग देना है तो इसके लिए सविधान मे सशोधन करना होगा।

दसवे वित्त आयोग ने आयकर, केन्द्रीय उत्पादन शुल्को यात्री किराए के एवज मे अनुदान और अतिरिक्त उत्पादन-शुल्को से प्राप्त राजस्व से भी राज्यो के भाग का 1979-80 से 1994-95 की अवधि के लिए परिकलन किया। विभिन्न अवधियो की औसत इस प्रकार है

सातवा वित्त आयोग (1979-84)	27 28%
आठवा वित्त आयोग (1984 89)	25 44%
नवा वित्त आयोग (1989-94)	27 26%

अत दसवे वित्त आयोग ने सिफारिश की कि

(क) राज्यो का केन्द्रीय करो की कुल प्राप्ति मे 26 प्रतिशत भाग होना चाहिए।

(ख) अतिरिक्त उत्पादन-शुल्को का विलयन बुनियादी उत्पादन-शुल्को के साथ कर देना चाहिए और इन वस्तुओ पर राज्यो द्वारा बिक्री कर नही लगाए जाने चाहिए इसके अतिरिक्त केन्द्र के कुल कर राजस्व का और 3 प्रतिशत राज्यो को अतिरिक्त उत्पादन शुल्को के एवज मे दिया जाना चाहिए।

(ग) यात्री किराए के एवज मे सहायता अनुदान की कर व्यवस्था को बुनियादी शुल्को से विलयन करना चाहिए।

दसवा वित्त आयोग चाहता है कि कुल केन्द्रीय कर राजस्व के 26 प्रतिशत और 3 प्रतिशत वाली व्यवस्था के आधार पर राज्यो को राजस्व हस्तातरण होना चाहिए। इसके लिए सविधान मे उचित सशोधन होना चाहिए और इस स्थिति का 15 वर्षों के पश्चात् समीक्षा होनी चाहिए। दसवे वित्त आयोग ने यह सिफारिश की है कि सविधान के अनुच्छेद 268 के आधान लगाए गए कर केन्द्रीय कर सग्रह मे शामिल नहीं किए जाने चाहिए अर्थात् वे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए जाते है परन्तु राज्य अपने अपने क्षेत्रों मे इनसे प्राप्त होने वाली आय का प्रयोग करते है विभाजनीय सग्रह का भाग नहीं होने चाहिए। परन्तु अनुच्छेद 269 के आधीन करो से प्राप्ति विभाजनीय सग्रह का भाग होनी चाहिए अर्थात् वे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए और एकत्र किए जाते हैं परन्तु इनसे प्राप्त होने वाली समग्र आय राज्यो को सौंप दी जाती है। ऐसा करने से केन्द्र सरकार को प्रोत्साहन प्राप्त होगा कि वह ऐसे कर आधारो का विदोहन करे जिनका अभी तक विदोहन नही हुआ है।

दसवे वित्त आयोग द्वारा इस नयी व्यवस्था से निम्नलिखित मुख्य लाभ प्राप्त होगे

(क) राज्यो को कुल कर राजस्व मे निश्चित भाग के आवटन से केन्द्रीय करो के सग्रह की वृद्धि मे अपने आप भाग प्राप्त होने लगेगा

(ख) केन्द्र सरकार इस बात की चिन्ता [illegible] किये बिना कि कोई कर राज्यो के साथ विभाजनीय है या [illegible] कर सुधार कार्यक्रम को बढावा दे सकती है और

(ग) इस व्यवस्था के आधीन अ[illegible] और 269 के अन्तर्गत लगाए गए कर भी इसका [illegible] और इनके विदोहन की अधिक सभावना है।

[illegible]

49

भारतीय सार्वजनिक वित्त

(INDIAN PUBLIC FINANCE)

1 केन्द्रीय सरकार का बजट (1998-99)
(Budget of The Central Government — 1998 99)

वित्त मंत्री श्री यशवन्त सिन्हा ने प्रधानमंत्री अटल विहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाली सरकार का पहला बजट 1 जून 1998 को पेश किया। वित्त मंत्री ने अपने भाषण में भारतीय अर्थव्यवस्था मे वर्तमान कुछ असतोष प्रवत्तियों की ओर ध्यान दिलाया। 1997 98 मे समग्र आर्थिक वद्धि दर कम होकर 5 प्रतिशत हो गयी, कृषि की वद्धि दर नकारात्मक था और खाद्यान्नो का उत्पादन जो गत वर्ष 1990 लाख टन था गिरकर 1 940 लाख टन हो गया औद्योगिक उत्पादन की वद्धि दर भी धीमी होकर 4 ? प्रतिशत हो गयी लगातार दूसरे उत्तरोत्तर वर्ष मे नियात निष्पादन (Export performance) कमजार ही था और डालरो के रूप मे इसमे 3 प्रतिशत से कम वद्धि रिकार्ड की गयी राजकोषीय घाटे (Fiscal deficit) की परिस्थिति और बिगडकर यह सकल देशीय उत्पाद का 6 1 प्रतिशत हो गयी पूजी बाजार की स्थिति निराशाजनक रही और आधार सरचना की कठिनाइयो के कारण अर्थव्यवस्था सत्रस्त रही। इन कठिन परिस्थितियो मे, वित्त मंत्री ने अपने बजट म इन सर्वांगीण पतन की परिस्थितिया को पलटने का प्रयास किया।

बजट का दार्शनिक आधार

वित्त मत्री के अनुसार, इस बजट के लिए मार्गदर्शन के रूप मे उन्हे *गाधीजी का प्रसिद्ध* जन्तर ही मिला, "मैंने उस निर्धनतम और निर्बलतम व्यक्ति का चेहरा स्मरण किया है जिसे मैने कभी देखा था और यह सुनिश्चित किया है कि यह बजट उसके लिए लाभकारी हो। इस बात की और व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा 'इस बजट की जडे स्वदेशी हैं। परन्तु मैं यह बात स्पष्ट करना चाहूगा कि "स्वदेशी का अर्थ अलगाव नहीं है। स्वदेशी का अर्थ भारत को मजबूत और आत्मनिर्भर बनाना है ताकि हम विश्व के साथ प्रतिस्पर्द्धा कर सके।

इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए वित्त मंत्री द्वारा द्वारा निम्नलिखित उपाय किए गए —

कृषि और ग्राम विकास

वर्षा पर निर्भर क्षेत्रो की सहायता के लिए जलविभाजन विकास (Watershed Development) की एकीकत योजना चालू की जाएगी और उसके लिए योजना-आबटन (Plan allocation) जो 1997 98 मे 517 करोड रुपये था बढाकर 677 करोड रुपये कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त त्वरित सिचाई लाभ प्रोग्राम (Accelerated Irrigation Benefit Programme) के प्रावधान मे भी 58 प्रतिशत की वद्धि की गयी है।

अधिक उधार उपलब्ध कराने और आधार सरचना (Infrastructure) को मजबूत बनाने के लिए नेबार्ड (NABARD) द्वारा प्रतिबन्धित ग्रामीण आधार सरचना विकास निधि (Rural Infrastructure Development Fund) के आधीन 3 000 करोड रुपये का प्रावधान किया गया है। इसके लिए नेबार्ड की हिस्सा पूजी 500 करोड रुपये से बढायी गयी है।

नेबार्ड को यह निर्देश दिया गया ह कि स्वय सहायता समूहो (Self help groups) की योजना का विस्तार कर इसे 2 लाख स्वय सहायता समूहो में फैलाए जिसके माध्यम से आगले 5 वर्षों में 40 लाख परिवारों द्वारा छोटी उत्पादन इकाइयां चलायी जा सकें। 1998 99 के दौरान 10 000 स्वय सहायता *समूहों द्वारा 2 लाख परिवारों को सहायता प्रदान का जाएगी।*

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (Regional Rural Banks) के पुनर्गठन एव पुन पूजीकरण (Recapitalisation) के लिए बजट में 265 करोड रुपये का प्रावधान किया गया ह।

नेबार्ड ने किसानों के लिए किसान क्रेडिट कार्ड (Kisan Credit Card) की एक मॉडल योजना तैयार की है जो बैंको द्वारा अपनायी जाएगी ताकि किसान इनका उपयोग बाज खाद, कीटनाशक आदि जैसे कृषि-आदाना (Agricultural

। puts) के क्रय के लिए कर सके और अपनी जरूरतो के ।ल१ नकदी प्राप्त कर सके।

किसानो को विविध प्रकार के उपकरणो एव औजारो की प्रतिस्पर्धा कीमतो (Competitive Prices) का लाभ दिलाने के लिए यह निर्णय किया गया है कि कृषि उपकरणो एव औजारो को लघु स्तर उद्योग क्षेत्र के विनिर्माण के लिए आरक्षित सूची (Reserved list) से बाहर निकाल दिया जाए।

उर्वरको के प्रयोग से अनुकूलतम फसल उत्पादकता प्राप्त करने के उद्देश्य की दृष्टि से यह जरूरी है कि पोषक साधनो (Nutrients) अर्थात् नाइटोजन (N) फासफोरस (P) और पोटाशियम (K) के प्रयोग मे सन्तुलन कायम किया जाए। एन पी के का सतुलन जो 1991 92 मे 5 9 2 4 1 था प्रतिकूल रूप मे बिगडकर 1996 97 मे 10 2 9 1 हो गया है। नाइटोजन के सन्तुलन को बहाल करने के लिए यूरिया की विक्रय कीमत मे फौरी रूप से 1 रुपया प्रति किलोग्राम की वद्धि की गयी है।

लघु उद्योग

लघु उद्योगो की कार्यकारी पूजी (Working Capital) की उच्चतम सीमा 2 करोड रुपये से बढाकर 4 करोड रुपये कर दी गयी है। इससे लघु उद्योगो को उधार का प्रवाह सुविधाजनक बन जाएगा।

अभी तक भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (Small Industries Development Bank of India—SIDBI) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक का एक अनुषगी (Subsid iary) था। एस आई डी बी आई को लघु क्षेत्र मे शीर्षस्थ भूमिका निभाने के योग्य बनाने के लिए इसे भारतीय औद्योगिक विकास बैंक से अलग करके स्वायत स्थान प्रदान किया जा रहा है।

उद्योग मे निजी विनियोग

उद्योग मे ओर उदारता लाने के उद्देश्य से सरकार ने कोयला एव लिग्नाइट और पेटोलियम उत्पादो को लाइसेंस मुक्त करने का निर्णय किया है।

सरकार यह उम्मीद करती हे कि अगले दो वर्षों के दौरान विदेशी विनियोग के प्रवाह को बढाकर दुगुना अर्थात् 6 2 अरब यू एस डालर कर लेगी जबकि इसका वर्तमान स्तर 3 1 अरब डालर है। इसके लिए सरकार की प्रशासनिक मत्रालय के एक विशिष्ट अधिकारी को 100 करोड रुपये से अधिक के प्रत्येक विदेशी विनियोग के प्रस्ताव के लिए 90 दिनो की अवधि के भीतर अन्तिम निर्णय उपलब्ध कराना हो। मॉनिटरिंग अधिकारी (Monitoring officer) की यह व्यक्तिगत जिम्मेदारी होगी कि वह इस निर्णय को सुनिश्चित करे।

आवास-व्यवस्था

1998 99 के दौरान 20 लाख अतिरिक्त आवासीय इकाइयो (Dwelling units) का निर्माण किया जाएगा जिनमे 13 लाख ग्रामीण क्षेत्रो और 7 लाख शहरी क्षेत्रो मे होगी। इंदिरा आवास योजना के लिए बजटीय आबटन (Budget allocation) जो 1997 98 मे 1 144 करोड रुपये था बढाकर 1998 99 के लिए 1 600 करोड रुपये किया गया है।

प्रयोज्य शहरी भूमि को आवासीय निर्माण के लिए मुक्त करने के लिए शहरी भूमि हदबन्दी और विनियमन कानून (Urban Land Ceiling and Regulation Act) को समाप्त कर दिया जाएगा।

आवास और शहरी विकास निगम (HUDCO) की पूजी का आधार बढाया जा रहा है ताकि मकानो के लिए अधिक उधार उपलब्ध कराया जा सके।

आधार संरचना (Infrastructure)

प्रमुख आधार सरचना क्षेत्रो अर्थात् ऊर्जा परिवहन और सचार के लिए योजना परिव्यय 1998 99 के बजट मे बढाकर 61 146 करोड रुपये कर दिया गया है जबकि 1997 98 मे यह 45 252 करोड रुपये था। इस प्रकार इसमे 35 प्रतिशत की वृद्धि की गयी हे। इससे आधार सरचना सम्बन्धी सीमा बन्धनो को दूर करने मे सहायता मिलेगी और इस प्रकार औद्योगिक विकास का पुनरुत्थान होगा जिससे तीव्र आर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिलेगा।

पावर पर कुल योजना परिव्यय 1998 99 मे बढाकर 9 500 करोड रुपये कर दिया गया है जबकि 1997 98 मे यह 6 738 करोड रुपये था।

प्रमुख सरकारी क्षेत्र के उपक्रमो जैसे एन टी पी सी और कोल इंडिया के प्रति बकाया भुगतान की राशि लगभग 10 000 करोड रुपये हे। ये भारी बकाया राशि सरकारी उद्यमो के निवेश मे गभीर बाधा है। सरकार इन बकाया राशियो के लिए एक गारटी योजना तैयार करेगी। इन गारंटियो के बल पर सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम या तो अपने ऋण के प्रतिभूतीकरण (Securitisation) द्वारा अधिक ससाधन प्राप्त कर सकेगे या वे प्रत्यक्ष रूप मे बाजार मे प्रवेश कर साधन जुटाने मे समर्थ बन सकेगे।

नयी सडक परियोजनाओ के कार्यान्वयन को त्वरित करने के लिए जिसमे वर्तमान राष्ट्रीय राजमार्गों (National Highways) मे चार लेन बनाना भी शामिल है इस बजट मे इस उद्देश्य से भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण के लिए 500 करोड रुपये का प्रावधान है।

भविष्य निधियो (Provident Funds) मे प्राप्त होने वाली अतिरिक्त राशि का 10 प्रतिशत तक उच्चस्तरीय रूप

मे आकी गयी गैर सरकारी क्षेत्र की प्रतिभूतियो मे निवेश करने की इजाज़त दी गयी है।

संविधान के निर्देशानुसार प्राथमिक शिक्षा को पाचवीं कक्षा तक नि शुल्क और अनिवार्य बनाने और लडकियो के लिए कालेज स्तर तक नि शुल्क शिक्षा प्रदान कराने के लिए, 1998 99 मे बजट-आबटन बढाकर 7047 करोड रुपये कर दिया गया है जबकि 1997 98 मे यह 4716 करोड रुपये था। अत पिछले वर्ष की तुलना मे इसमे 50 प्रतिशत की वृद्धि की गयी है।

सूचना तकनालाजी (Information Technology)

भारत को एक विश्व सूचना तकनालाजी शक्ति (Global Information Technology Power) बनाने के लिए सरकार ने एक विशेष योजना तैयार करने का निर्णय किया है जिसके अनुसार साफ्टवेयर क्षेत्र मे कर्मचारी स्टाक विकल्प (Stock options) के पात्र होंगे।

वित्तीय एव पूजी बाजार

हमारे सार्वजनिक क्षेत्र के बको मे गैर निष्पादनकारी परिसम्पत्तियो (Non performing assets) को कम करने के लिए सरकार ऋण वसूली न्यायाधिकरण (Debt Recovery Tribunals) को सभी राज्यो मे मजबूत बनाना चहती है। हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि निवल गैर निष्पादनकारी परिसम्पत्तियो को जो 1996 97 मे औसतन 9 प्रतिशत थीं घटाकर 2000 2001 तक 5 प्रतिशत के नीचे स्तर पर लाया जाए।

भारतीय रिजर्व बैंक बैको के लिए न्यूनतम पूजी पर्याप्तता अनुपात (Minimum Capital AdequaCy Ratio) को 31 मार्च 2000 तक वर्तमान 8 प्रतिशत से बढाकर 9 प्रतिशत और इसके पश्चात् यथाशाघ्र 10 प्रतिशत करना चाहता है।

विदेशी मुद्रा कानन को भारतीय अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओ के अधिक अनुरूप बनाने के लिए और इसे विदेशा मुद्रा बाजार मे हुए परिवर्तनो के अनुसार ढालने के लिए, सरकार ने यह निर्णय किया है कि विदेशी मुद्रा विनियमन कानून (Foreign Exchange Regulation Act) को निरस्त कर इसका प्रतिस्थापन एक नए विदेशी मुद्रा प्रबन्ध अधिनियम (Foreign Exchange Management Act FEMA) द्वारा किया जाए जो आधुनिक अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओ के अनुरूप होगा।

फेमा (FEMA) लाने का उद्देश्य नशीली दवाओ के विक्रेताओ आतकवादियो हथियार तस्करो और दूसरे जघन्य आर्थिक अपराधियो के गैर कानूनी लेन देन को रोकना है। फेमा के साथ ही कालेधन के वैधीकरण निवारण का विधेयक लोकसभा मे पेश किया जाएगा।

भारतीय जीवन बीमा निगम के एकाधिकार को समाप्त करने के उद्देश्य से बजट में बीमा क्षेत्र को गैर सरकारी भारतीय कम्पनियो को प्रतिस्पर्द्धा के लिए खोला जाएगा।

सरकार ने यह निर्णय किया है कि विदेशी वित्तीय सस्थानो (Foreign Investment Institutions—FII) को असूचीकत देशीय ऋण प्रतिभूतियो (Unlised domestic debt securities) मे निवेश करने की इजाजत देने का निर्णय किया है। चूक की अवस्था मे उन्हे स्वय जोखिम सहन करना होगा। याद रहे कि अभी तक विदेशी निवेश सस्थानो को केवल सूचीकृत ऋण प्रतिभूतियो मे निवेश की इजाजत थी।

अनिवासी भारतीयो के लिए रियायतें

अभी तक अनिवासी भारतीय द्वितीयक बाजार (Secondary market) मे भारतीय कम्पनियो के हिस्से खरीद सकते थे परन्तु व्यक्तिगत रूप मे कोई अनिवासी भारतीय (Non Resident Indian—NRI) कम्पनी की कुल हिस्सा पूजी के 1 प्रतिशत की सीमा तक ही हिस्से खरीद सकता था और अनिवासी भारतीय निगमीय सस्थाए कुल मिलाकर 5 प्रतिशत की सीमा तक कम्पनी मे निवेश कर सकती थीं। वित्त मत्री ने यह प्रस्ताव किया है कि अनिवासी भारतीय के लिए व्यक्तिगत रूप मे किसी कम्पनी की कुल इक्विटी को खरीदने की सीमा 1 प्रतिशत से बढाकर 5 प्रतिशत कर दी जाए और सभी अनिवासी भारतीय निवेश की सीमा 5 प्रतिशत से बढाकर 10 प्रतिशत कर दी जाए।

भारतीय यूनिट टस्ट एक न्यू इंडिया मिलेनियम योजना (New India Millenium Scheme) शुरू करेगा जो केवल अनिवासी भारतीयो द्वारा डालरो मे अशदान के लिए खुली होगी।

इसी प्रकार, स्टेट बैंक आफ इंडिया अनिवासी भारतीयो के लिए विदेशी मुद्राओ के मूल्य मे नया 'रिसरजेंट इंडिया बाण्ड (Resurgent India Bond) जारी कर रहा है। इससे अनिवासी भारतीयो को आधारसरचना मे विनियोग करने मे सहायता प्राप्त होगी। यह बाण्ड पूर्ण रूप से देश प्रत्यावर्तनीय (Repratiable) होगे और इन नए बाण्डो पर सरकार वही रियायते देगी जो एन आर आई राशियो पर इस समय उपलब्ध हैं।

इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा भारतीय मूल के व्यक्तियो पी आई ओ (Person of Indian Origin) के लिए विशेष पी आई ओ कार्ड जारी किए जाएगे जो अनिवासी भारतीयो को विशेष आर्थिक शैक्षणिक वित्तीय और सास्कृतिक लाभ भी पहुचाएंगे।

विनिवेश/निजीकरण/सार्वजनिक उद्यमों का सुधार

1998 99 के बजट मे 5000 करोड रुपये विनिवेश (Disinvestment) से प्राप्त करने का प्रावधान है। इस प्रक्रिया को त्वरित करने के लिए सरकार ने आई ओ सी., गेल वी एस एन एल और कानकोर से हिस्सा पूजी का विनिवेश करने का निर्णय किया है। इंडियन एयरलाइन्स मे सरकारी हिस्सा पूजी का पुनर्गठन करने के साथ इसका अनुपात 49 प्रतिशत तक नीचे लाने का निर्णय किया गया है।

सार्वजनिक क्षेत्र की बीमार इकाइयों को बन्द करने की समस्या के सतोषजनक समाधान के रूप मे स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति योजना (Voluntary Ratirement Scheme—VRS) का एक उदार पैकेज प्रस्तुत किया गया है। स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के आधीन आज प्रत्येक पूर्ण सेवा वर्ष के विरुद्ध 15 दिन की मजदूरी क्षतिपूर्ति के रूप मे दी जाती है नये सेवानिवृत्ति पैकेज मे सेवा के प्रत्येक पूर्ण वर्ष के लिए 45 दिन की मजदूरी या वेतन देने का वादा किया गया है। जिन व्यक्तिया ने 30 वर्ष का सेवाकाल पूरा कर लिया हो उन्हे 60 महीने का वेतन क्षतिपूर्ति के रूप मे दिया जाएगा। इस पैकेज को लागू करने के लिए वित्त प्रवन्ध क लिए पुर्नसरचना निधि (Restructuring Fund) का पृथक रूप मे गठन किया गया है।

इसके अतिरिक्त सरकार ने यह भी निर्णय किया है कि सरकार गैर सामरिक सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो (Non strategic PSUs) मे सरकारी हिस्सा पूजी को 26 प्रतिशत तक लाएगी। महत्त्वपूर्ण सामरिक उद्यमो के सम्बन्ध मे सरकार अधिसख्य हिस्सा पूजी (Majority share holding) की वर्तमान स्थिति बनाए रखेगी।

2 1998 99 के बजट का सार

तालिका 1 में 1998 99 के बजट सम्बन्धी सूचना सार रूप मे दी गयी है। तुलना की दृष्टि से तालिका मे 1996 97 के वास्तविक आर 1997 98 के बजट एव सशोधित अनुमान दिए गए है—

1998 99 के वजट अनुमानो का परीक्षण करने से पूर्व हमे 1997 98 के दारान सरकार के निष्पादन का परीक्षण करना चाहिए। दूसरे शब्दो मे हमे 1997 98 के बजट अनुमानो ओर सशोधित अनुमानो पर विचार करना चाहिए।

1997 98 के सशोधित अनुमान (Revised estimates)

1997 98 के लिए 232176 करोड रुपये के कुल व्यय के वजट अनुमान क विरुद्ध, सशोधित अनुमान इसे 235245 करोड रुपये आकते *हैं—अर्थात् 3069* करोड रुपये की वृद्धि जिसम गैर योजना व्यय मे 5291 करोड रुपये की वृद्धि हुई और योजना व्यय मे 2220 करोड रुपये की कमी। अत सरकार अपने गैर योजना व्यय (Non plan expenditure) को नियंत्रित करने में सफल नहीं हुई और गैर योजना व्यय मे वद्धि को एक हद तक निष्प्रभावी बनाने के लिए योजना व्यय मे कटौती करनी पडी। मुख्य मदे जिनके व्यय में वद्धि हुई है अर्थसाहाय्य (Subsidies) पुलिस पेन्शन सामान्य प्रशासनिक सेवाएं और राज्यो एव सघीय क्षेत्रो को ऋण हैं।

प्राप्ति पक्ष मे सकल कर राजस्व (Gross tax revenue) *सशोधित अनुमानो मे 142720 करोड रुपये था* जबकि बजट अनुमान मे यह 153647 करोड रुपये था—10927 करोड रुपये की कमी। इसका मुख्य कारण *सीमा शुल्को (Custom duties) मे 11550 करोड रुपये* और सघीय उत्पाद शुल्कों (Union excise duties) मे 4,500 करोड रुपये की कम प्राप्ति था जोकि मुख्यत आयात मे तीव्र *गिरावट और औद्योगिक उत्पादन मे मन्द विकास का परिणाम* थी। चाहे आयकर प्राप्ति के रूप मे (जिसमे स्वैच्छिक आय घोषणा योजना भी शामिल है) 7050 करोड रुपये की वृद्धि हुई किन्तु सीमा शुल्को और सघीय उत्पाद शुल्को में तीव्र गिरावट ने सकल कर राजस्व मे तीव्र कमी कायम कर दी। परिणामत इस कमी को पूरा करने के लिए सरकार ने अधिक मात्रा मे बाजार उधार (Market borrowing) का प्रयोग किया आर 79023 करोड की पूजी प्राप्तियो (Capital receipts) के बजट अनुमान की तुलना मे सशोधित अनुमान मे ये प्राप्तिया बढकर 96731 करोड रुपये हो गयीं—17708 करोड़ रुपये की वृद्धि। दूसरे शब्दा में अधिक *बाजार उधार से सरकार पर ब्याज का भार और बढ गया।*

अत सरकार प्राप्तिया और व्यय को 1997 98 के बजट मे किए गए प्रस्तावो के अनुसार प्रवन्धित करने मे विफल रही है। अत श्री पी चिदम्बरम का 'स्वप्न बजट अस्त व्यस्त हो गया है। परिणामत सरकार का राजस्व घाटा (Revenue deficit) बजट अनुमान मे 30266 करोड रुपये की अपेक्षा बढकर 1997 98 के संशोधित अनुमान के अनुसार 43686 करोड रुपये हो गया। इसी प्रकार 1997 98 के *सशोधित अनुमान मे राजकोषीय घाटा बढकर 86345* करोड रुपये हो गया जब कि बजट अनुमान मे यह 65454 करोड रुपये आका गया था। सकल देशीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप में राजकोपीय घाटा 6 1 प्रतिशत के उच्च स्तर पर पहुच गया। अत श्री चिदम्बरम के 'स्वप्न बजट (Dream budget) *में 1997 98 मे इसको घटाकर सकल देशीय उत्पाद के* 4 5 प्रतिशत पर लाने का लक्ष्य हवा मे उड गया।

तालिका 1 **बजट का सार**

(करोड रुपए)

	1996-97 वास्तविक	1997-98 बजट अनुमान	1997-98 संशोधित अनुमान	1998-99 बजट अनुमान
1 राजस्व प्राप्तियां (2 + 3)	126279	153143	138514	161994
2 कर राजस्व (केन्द्र को निवल)	93701	113394	99158	116857
3 कर भिन्न राजस्व	32578	39749	39356	45137
4 पूंजी प्राप्तियां (5 + 6 + 7)	74728	79033	96731	105933
5 ऋणो की वसूली	7540	8779	9479	9908
6 अन्य प्राप्तिया	455	4800	907	5000
7 उधार और अन्य देयताए	66733	65454	86345	91025
8 कुल प्राप्तियां (1 + 4)	201007	232176	235245	267927
9 गैर परियोजना व्यय (10 + 11 + 12)	147473	169324	174615	195925
10 राजस्व खाते पर जिसमें	127298	145854	146080	166301
11 ब्याज अदायगिया	59478	68000	65700	75000
12 पूजी खाते पर	20175	23470	28535	296[illegible]4
13 योजना व्यय (14 + 15)	53534	62852	60630	72002
14 राजस्व खाते पर	31635	37554	36120	43761
15 पूजी खाते पर	21899	25[illegible]98	24510	28[illegible]41
16 कुल व्यय (9 + 13)	201007	232176	235245	267927
17 राजस्व व्यय (10 + 14)	158933	183408	182200	210062
18 पूजी व्यय (12 + 15)	42074	48768	53045	57865
19 राजस्व घाटा (1—17)	32654	30266	43686	48068
20 राजकोषीय घाटा (1 + 5 + 6)—16	66733	65454	86345	91025
21 प्राथमिक घाटा (20—11)	7255	2546	20645	16025

स्रोत भारत सरकार, बजट का सार (1998 99) जून 1998

1998–99 के बजट अनुमान

1998 99 के लिए कुल व्यय का अनुमान 2,67 927 करोड रुपये लगाया गया है। इसमें से 72,002 करोड रुपये केन्द्र, राज्य और सघीय क्षेत्रों की योजनाओ के लिए रखे गए हैं और शेष 1 95 925 करोड रुपये गैर सरकारी व्यय के रूप मे है। इस प्रकार योजना के लिए बज्टीय समर्थन (Budgetary Support) मे 11,372 करोड रुपये की वृद्धि की गयी है 60 630 करोड रुपये के सशोधित अनुमान की तुलना मे 72,002 करोड रुपये अथात् 18 8 प्रतिशत की तीव्र वद्धि।

सकल कर राजस्व 1,57 711 करोड रुपये आका गया ह और राज्यो के भाग के रूप में 40 854 करोड रुपये की व्यवस्था करने के पश्चात् केन्द्र का शुद्ध कर राजस्व, 1 16,857 करोड रुपये शेष रह जाएगा। (देखिए तालिका 1) गैर कर राजस्व मे भी वद्धि की प्रत्याशा है और यह बढकर 45 137 करोड रुपये हो जाएगा। अत कुल राजस्व प्राप्तियो के रूप में 1 61 994 करोड रुपये का अनुमान ह। इसके विरुद्ध, कुल राजस्व व्यय (Revenue expenditure) के 2,10 062 करोड रुपये हो जाने की प्रत्याशा है। अत यह 48 068 करोड रुपये अर्थात् सकल देशीय उत्पाद (Gross domestic product) के रूप मे 3 प्रतिशत होगा।

राजकोषीय घाटा (Fiscal deficit) के निर्धारण के लिए हमे राजस्व प्राप्तियों में ऋणो की वसूली और अन्य प्राप्तियो (तालिका 1 5 और 6 मद) को जमा करना होगा। यह जोड 1 76 902 करोड रुपये बैठता है। इसके विरुद्ध, कुल व्यय (राजस्व जमा पूजी व्यय) के 2,67 927 करोड रुपये रहने की प्रत्याशा है। राजकोषीय घाटा इन दोनो जोडों का अन्तर ह। [(1+5+6)–(17+18)] जो कि 91 025 करोड रुपये बैठता है—सकल देशीय उत्पाद का 5 6 प्रतिशत। वित्त मत्री श्री

तालिका 2 : केन्द्र सरकार का व्यय

(करोड़ रुपये)

	1997-98 बजट अनुमान	1997-98 संशोधित अनुमान	1998-99 बजट अनुमान
I गैर-योजना व्यय (क+ख)	**1,69,324**	**1,74 615**	**1 95 925**
क राजस्व व्यय (1 से 17)	145 854	146 080	166 301
1 ब्याज सदाय	68 000	65 700	75 000
2 रक्षा राजस्व व्यय	26,713	26 807	30 840
3 मुख्य आर्थिक सहायता (खाद्य उर्वरक (यूरिया) विनियंत्रित उर्वरक और निर्यात संवर्धन)	17 130	18 366	19 883
4 ब्याज और अन्य आर्थिक सहायता	1 121	1 278	2,142
5 डाक घाटा	784	885	695
6 पुलिस	3 956	4 928	5 374
7 पेंशन	5 251	6 883	7 342
8 राज्य सरकारों को दिए गए ऋण को बट्टे खाते डालना	212	790	1 013
9 आम चुनाव 12वीं लोक सभा		350	300
10 अन्य सामान्य सेवाएं (राज्य के अंग, कर संग्रहण, वैदेशिक कार्य आदि)	4 566	392	5 785
11 पांचवें केन्द्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों का कार्यान्वयन	4 205		
12 सामाजिक सेवाएं (शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रसारण आदि)	3 461	4 358	4 865
13 आर्थिक सेवाएं (कृषि, उद्योग, विद्युत, परिवहन, संचार, विज्ञान और प्रौद्योगिकी आदि)	4 001	4 524	5 003
14 केन्द्रीय आयोजना स्कीमों के संबंध में वचनबद्ध व्यय के लिए	500		
15 राज्य और संघ राज्य क्षेत्र की सरकारों को अनुदान	4 970	4 625	6 753
16 विधानमंडल रहित संघ राज्य क्षेत्रों का व्यय	683	859	896
17 विदेशी सरकारों को अनुदान	301	340	410
ख पूंजी व्यय (18 से 24)	**23,470**	**28 535**	**29 624**
18 रक्षा पूंजी	8 907	9 297	10 360
19 अन्य आयोजना-भिन्न पूंजी परिव्यय	1 713	1 564	3 168
20 सरकारी उद्यमों को ऋण	1 107	1 583	1 481
21 राज्य और संघ राज्य क्षेत्र की सरकारों को ऋण	11 396	15 817	14 293
22 विदेशी सरकारों को ऋण	215	159	173
23 अन्य आयोजना-भिन्न ऋण	164	163	184
24 विधानमंडल रहित संघ राज्य क्षेत्रों का व्यय	32	48	35
II योजना व्यय (च+छ)	**62 852**	**60 630**	**72 002**
च राजस्व व्यय (25+26)	**37,554**	**36,120**	**43 761**
25 केन्द्रीय आयोजना	25 545	23 293	30 115
26 राज्य और संघ राज्य क्षेत्र की परियोजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता	12,009	12,827	13 646
छ पूंजी व्यय (2+28)	**25 298**	**24,510**	**28,241**
27 केन्द्रीय योजना	10 585	10 336	12,349
28 राज्य और संघ राज्य क्षेत्र की योजनाओं के लिए केन्द्रीय सहायता	14 713	14 174	15 892
जोड़ - व्यय (I+II)	**2 32,176**	**2,35,245**	**2 67,927**

यशवन्त सिन्हा ने उल्लेख किया "अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति को ध्यान मे रखते हुए और विकास के लिए व्यय प्रोत्साहन की आवश्यकता को दृष्टि मे रखते हुए, मेरा विश्वास है कि इस वर्ष इस पर अधिक दबाव डालकर इसे कम करने की आवश्यकता नहीं है।

केन्द्र के सरकारी व्यय का विश्लेषण

1997-98 के संशोधित अनुमान में केन्द्र का सरकारी व्यय 174015 करोड रुपये था और 1998 99 मे इसके बढकर 195925 करोड रुपये हो जाने का प्रत्याशा है—12.2 प्रतिशत की वृद्धि। इसके विरुद्ध 1998-99 मे योजना-व्यय के 72,002 करोड तक पहुच जाने की प्रत्याशा है जब 1997 98 मे यह 60630 करोड रुपये रहा—18 8 प्रतिशत की वृद्धि। अत गैर योजना व्यय की तुलना मे वित्त मंत्री ने योजना-व्यय मे अपेक्षाकृत अधिक प्रतिशत वृद्धि का प्रावधान किया है। यह 1997 98 के बजट मे कल्पित परिस्थिति से निश्चित रूप मे उन्नत स्थिति है।

गैर योजना राजस्व व्यय (Non plan revenue expenditure) की मुख्य मदो का अध्ययन करने से पता चलता है कि चार मदो अर्थात् ब्याज-भुगतान रक्षा अर्थसाहाय्य (Subsidies) और सामान्य प्रशासन (जिसमे पुलिस और पेन्शन भी शामिल है) पर कुल गैर योजना राजस्व व्यय का 90 4 प्रतिशत खर्च होगा। (देखिए तालिका 3) चूंकि ये व्यय राज्य प्रबन्ध के अनिवार्य अग है इसलिए वित्त मंत्री के पास सामाजिक एव आर्थिक सेवाओ पर व्यय बढाने के लिए बहुत थोडी गुजाइश ही रह जाती है भले ही ये व्यय आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने के लिए आवश्यक हैं।

ब्याज भुगतान कुल गैर योजना राजस्व-व्यय 1998-99 मे 46.2 प्रतिशत और अर्थसाहाय्य 13 6 प्रतिशत के बराबर थे। चाहे रक्षा व्यय का अनुपात थोडा गिरकर 19 प्रतिशत हो गया जबकि गत वर्ष यह 19 4 प्रतिशत था परन्तु वित्त मंत्री ने यह आश्वासन दिया है "मै अगर आवश्यक हुआ तो वर्ष के दौरान बजटीय समर्थन मे वृद्धि करने पर विचार करुगा। हमारी रक्षा सम्बन्धी तैयारियो मे किसी प्रकार का समझौता नहीं किया जा सकता।"

इसमे सन्देह नहीं कि रक्षा पर सापेक्षत अधिक प्रावधान करने की जरूरत है अन्यथा इसके देश की सुरक्षा और इसके साथ विकास पर गभीर दुष्प्रभाव पड सकते हैं।

योजना-व्यय और केन्द्रीय योजना व्यय

1998-99 के लिए केन्द्रीय योजना व्यय (Central Plan Outlay) का विश्लेषण करने से पता चलता है कि 1997 98 के 91839 करोड रुपये के बजट-प्रावधान के विरुद्ध संशोधित अनुमान मे प्रत्याशित व्यय 81033 करोड रुपये था अर्थात् 10806 करोड रुपये की कमी बजटीय

तालिका 3 गैर-योजना राजस्व-व्यय का वितरण

करोड रुपये

	1997-98 संशोधित अनुमान	1998-99 बजटीय अनुमान
1 ब्याज	65700 (47 4)	75,000 (46.2)
2 रक्षा	26,802 (19.3)	30,840 (19 0)
3 अर्थसाहाय्य (Subsidies)	19644 (14.2)	22,025 (13.6)
4 सामान्य प्रशासन (पुलिस पेशन एव अन्य सामान्य सेवाए, राज्य के अग आदि)	17023 (12.3)	18,501 (11 4)
योग (1 से 4)	1,29,169 (93 2)	1,46,366 (90 4)
कुल राजस्व प्राप्तिया	1,38,514 (100 0)	161994 (100.0)

नोट बजट मे दिए गए आकडे कुल राजस्व प्राप्तियो का प्रतिशत हैं।
स्रोत वित मत्रालय बजट का सार (जून 1998) से सकलित एव परिकलित

परिव्यय मे 11 8 प्रतिशत की गिरावट। यह बात बडी निराशाजनक है कि गैर-योजना व्यय मे वृद्धि का प्रबन्ध करने के लिए सरकार योजना-व्यय मे कटौती करती है। चाहे तत्कालीन वित्त मंत्री श्री पी चिदम्बरम ने बडे जोश से

तालिका 4 केन्द्रीय योजना परिव्यय

(करोड रुपये)

	1997-98 बजट अनुमान	1997-98 संशोधित अनुमान	1998-99 बजट अनुमान
बजट सहायता	36,130	33,629	42,464
सरकारी उद्यमों आदि के आन्तरिक और बजट बाह्य ससाधन	55709	47404	62,723
जोड-केन्द्रीय आयोजना परिव्यय	91,839	81,033	1,05,187
केन्द्रीय योजना का क्षेत्रवार परिव्यय			
कृषि और सम्बद्ध गतिविधिया	2,969	2,756	3,864
ग्रामीण विकास	7,691	6,949	8,182
सिचाई और बाढ नियत्रण	323	268	374
ऊर्जा	24,235	21129	30,082
उद्योग और खनिज	11,200	10,771	11,551
परिवहन	15016	12985	16,186
सचार	13,361	11137	14,878
विज्ञान, प्रौद्योगिकी और पर्यावरण	2,177	1965	2,766
सामान्य आर्थिक सेवाए	773	712	1,011
सामाजिक सेवाए	13,817	12,115	16,010
सामान्य सेवाए	278	246	283
कुल जोड	91,839	81,033	1,05,187

तालिका 5 : केन्द्र सरकार की प्राप्तियाँ

(करोड़ रुपये)

			1197-98 बजट अनुमान	1997-98 संशोधित अनुमान	1998-99 बजट अनुमान
I.	राजस्व प्राप्तियाँ (ग+घ)		1,53,143	1,38,514	1,61,994
क	सकल कर-राजस्व (1 से 11)		1,53,647	1,42,720	1,57,711
	1	निगम-कर	21,860	21,360	26,550
	2.	आय-कर (वी डी आई एस, '97 सहित)	21700	28,750	20,930
	3.	ब्याज कर	1800	800	920
	4.	व्यय कर	210	210	300
	5	धन-कर	130	130	145
	6.	उपहार-कर	10	10	10
	7	सीमा शुल्क	52550	41000	48148
	8.	संघ उत्पाद शुल्क	52,200	47700	57690
	9	सेवा कर	2,150	1,500	1867
	10.	अन्य कर और शुल्क	801	981	867
	11	संघ राज्य क्षेत्रों के कर	236	279	284
ख	घटाइए-राज्यों का हिस्सा		40,254	43,562	40854
	आय कर		15691	21116	13946
	संघ उत्पाद शुल्क		24,563	22,446	26,908
ग.	निवल कर राजस्व		1,13,393	99158	1,16857
घ	गैर-कर राजस्व (12 से 16)		39750	39,356	45,137
	12.	ब्याज प्राप्तियाँ	24092	25327	27954
	13	लाभांश और लाभ	6,013	5862	7373
	14	विदेशी अनुदान	1100	1170	1054
	15	अन्य कर भिन्न राजस्व	8,250	6,680	8,425
	16.	संघ राज्य क्षेत्रों की प्राप्तियाँ	265	317	331
II	पूँजी प्राप्तियाँ (17 से 26)		79033	96,731	105933
	17	ऋणों की वसूलियाँ	8,779	9479	9908
	18	बाजार उधार	4,070	4070	48326
	19	अन्य अल्पावधिक मध्यवधिक और दीर्घावधिक ऋण	29750	38414	
	20	विदेशी सहायता	2,435	1201	2,337
	21	सरकारी क्षेत्र के उद्यमों में इक्विटी धारिता का विनिवेश	4800	906	5000
	22	अल्प बचतें लोक भविष्य निधि तथा सेवानिवृत्ति होने वाले कर्मचारियों के लिए जमा योजना'	14000	25478	21640
	23	राज्य भविष्य निधियाँ	2,550	3200	5350
	24	विशेष जमा	10006	8984	9495
	25	अन्य	2643	2675	3877
	26	नकद शेष में कमी		2324	
	जोड़-पूँजी प्राप्तियाँ		79033	96731	105933
	कुल प्राप्तियाँ (I+II)		2,32,176	2,35,245	2,67927

स्रोत भारत सरकार, बजट का सार (1998 99) जून 1998

यह कहा था कि 1997-98 के बजट में केन्द्रीय योजना-व्यय में 18.5 प्रतिशत की वृद्धि की जा रही है परन्तु सत्य तो यह है कि वास्तविक वृद्धि केवल 4.5 प्रतिशत है। यह हमारी योजना-परिव्यय के बारे में गंभीरता का परिचय है।

दूसरा असन्तोषजनक पहलू सार्वजनिक उद्यमों के आन्तरिक और बजट बाह्य ससाधनों (Internal and extra-budgetary sources) के बजट अनुमान मे 55 709 करोड रुपये से सशोधित अनुमान मे 47 404 करोड रुपये हो जाने से तीव्र गिरावट आयी है। इसका अर्थ 8 305 करोड रुपये की गिरावट जिसका केन्द्रीय योजना-परिव्यय के वित प्रबन्ध पर दुष्प्रभाव पडा है। अत सार्वजनिक उद्यमो के सुधार के बारे मे फौरी कार्रवाई की जानी चाहिए।

1998-99 के वर्ष के लिए वित्तमत्री ने केन्द्रीय योजना व्यय को 81 033 करोड रुपये से बढा कर 105 187 करोड रुपये करने का प्रस्ताव किया है—लगभग 30 प्रतिशत की वृद्धि। एक बार फिर वित मत्री सार्वजनिक उद्यमो के योगदान के रूप मे अत्यन्त आशावादी जान पडते हैं और इसे 1997-98 (सशोधित अनुमान) मे 47 404 करोड रुपये की तुलना मे 1998 99 मे बढाकर 62,723 करोड रुपये करना चाहते हैं— 32.3 प्रतिशत की वृद्धि। यदि इसे 1997 98 मे हुई 14 9 प्रतिशत योगदान मे गिरावट के प्रकाश मे देखा जाए, तो यह एक भारी अत्यानुमान है। वित्त मत्री ने यह उल्लेख किया है योजना-आबटन हमारी प्रधान प्राथमिकताओं का प्रतिबिम्ब हैं। कृषि मत्रालय के योजना आवटन मे 58 प्रतिशत की वृद्धि करके इसे 1 807 करोड रुपये से बढाकर 2 854 करोड रुपये किया गया है ग्राम क्षेत्रो एव रोजगार मत्रालय के आबटन को 8 356 करोड रुपये से बढाकर 9 912 करोड रुपये— 18 6 प्रतिशत की वृद्धि स्वास्थ्य एव परिवार कल्याण मत्रालय के आवटन को 2,747 करोड रुपये से बढाकर 3 684 करोड रुपये— 34 प्रतिशत की वृद्धि और कल्याण मत्रालय के व्यय को 804 करोड रुपये से बढा कर 1,539 करोड रुपये करना— 91 प्रतिशत की वृद्धि। परन्तु मूल प्रश्न यह है कि क्या वित्त मत्री सार्वजनिक उद्यमो के निष्पादन मे आमूल उन्नति कर पाएंगे ताकि वे कहीं अधिक मात्रा मे आन्तरिक ससाधन जुटा सके। दूसरे, यह इस बात पर निर्भर करता है कि वे किस हद तक राजस्व प्राप्तिया बढा सकते हैं और गैर सरकारी व्यय को निर्यत्रित कर सकते हैं ताकि केन्द्रीय योजना के बजटीय समर्थन के लिए साधन प्राप्त हो सके। दोनो प्रकार से भविष्य उज्ज्वल दिखायी नहीं देता।

राजस्व प्राप्तियो का विश्लेषण

1998 99 के बजट मे सकल कर राजस्व के रूप में 1,57,711 करोड रुपये प्राप्त करने का अनुमान है जबकि इसके विरुद्ध 1997-98 (संशोधित अनुमान) मे 1,42,720 करोड रुपये प्राप्त किए गए। अत· पिछले वर्ष की तुलना में 10.5 प्रतिशत अधिक कर-राजस्व प्राप्त करने का सकेत है। (देखिए तालिका 5) इन अनुमानों को तैयार करते हुए वित्तमत्री ने सेलुलर और बुनियादी सचार सेवाओ के आपरेटरो से लाइसेस फीस के रूप मे 2,800 करोड रुपये और भारतीय रिजर्व बैंक के निवल अधिशेष लाभ (Net Surplus profit) के रूप मे 4,200 करोड रुपये की प्राप्ति को भी शामिल किया है।

बेहत्तर कर अनुपालन (Tax compliance) और कर-आधार के विस्तार द्वारा वित्तमत्री 9,205 करोड रुपये अतिरिक्त कर-राजस्व के रूप मे प्राप्त करने की प्रत्याशा करते हैं जिसमें से 1780 करोड रुपये राज्यो को देने के पश्चात् केन्द्र को शुद्ध राजस्व के रूप में 7425 करोड रुपये प्राप्त होगे।

तालिका 6 **बजट प्रस्तावों का प्रभाव**

(करोड रुपये)

	कुल	केन्द्र का भाग	राज्यों का भाग
निगम कर	2,400	2,400	–
सीमा शुल्क	2,748	2,748	–
सघीय उत्पाद शुल्क	4,290	2,510	1 780
सेवा कर	233	233	–
कुल	9 205	7 425	1 780

बजट मे यह मान्यता की गयी है 1998 99 मे सकल देशीय उत्पाद मे चालू कीमतो पर 14.5 प्रतिशत की वृद्धि होगी जिसमे वास्तविक वृद्धि दर का भाग 6.5 प्रतिशत और स्फीति का 7-8 प्रतिशत होगा। इसमे औद्योगिक उत्पादन मे 10 प्रतिशत वृद्धि की मान्यता की गयी है। सघीय उत्पाद शुल्को (Union Excise Duties) मे 1998-99 के दौरान लगभग 21 प्रतिशत की वृद्धि और सीमा-शुल्को (Custom duties) मे 17 4 प्रतिशत की वृद्धि की प्रत्याशा है। जबकि कुल कर राजस्व मे निगम कर का भाग जो 1997-98 मे 15 प्रतिशत था के बढकर 1998-99 में 16 8 प्रतिशत हो जाने की प्रत्याशा है, आयकर का भाग 1997-98 में 20 1 प्रतिशत से कम होकर 1998-99 मे 13.3 प्रतिशत हो जाने का अनुमान है। इसका मुख्य कारण यह है कि 1997 98 के दौरान प्राप्त कर-राजस्व में स्वैच्छिक आय-घोषणा (Voluntary Disclosure of Income Scheme VDIS) योजना के आधीन प्राप्त 10 050 करोड रुपये की राशि शामिल है। यदि

इसको छोड़ दिया जाए, तो सामान्य आधार पर आयकर प्राप्ति 18 700 करोड रुपये बैठती है। परन्तु 1998 99 के आकडों में समाधान के आधीन 4 000 करोड रुपये की प्रत्याशित राशि शामिल की गयी है जो गुप्त रूप मे स्वैच्छिक आय घोषणा योजना ही है। यदि समाधान के आधीन प्राप्त राशि छोड दी जाए, तो आयकर से राजस्व प्राप्ति केवल 16 930 करोड रुपये ही होगी। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन चार करों द्वारा 1997 98 मे कुल कर राजस्व का 98 2 प्रतिशत उपलब्ध कराया गया और 1998 99 मे इनके द्वारा 97.2 प्रतिशत राशि उपलब्ध कराने की प्रत्याशा है। (देखिए तालिका 7)

तालिका 7 मुख्य करों का कर-राजस्व मे प्रतिशत भाग

	1997 98 संशोधित अनुमान	1998 99 बजट अनुमान
केन्द्रीय उत्पाद शुल्क	33 4	36 6
सीमा शुल्क	8 7	30 5
निगम कर	15 0	16 8
आयकर	0 1	13 3
कुल कर राजस्व	100 0	100 0

स्रोत वित्त मत्रालय बजट का सार, जून 1998 से परिकलित

गैर कर राजस्व (Non tax revenue) मे 14 7 प्रतिशत की वृद्धि समान्य है। पूजी प्राप्ति (Capital receipts) क्षेत्र मे वित मत्री 1998 99 के दौरान 1 05 933 करोड रुपये प्राप्त करने की प्रत्याशा करता हे जबकि इसके विरुद्ध 1997 98 मे इस मद से 96 731 करोड रुपये की प्राप्ति हुई—9 5 प्रतिशत की वद्धि। यह बिल्कुल ठीक ही जान पडती है क्योंकि 1997 98 के दौरान सरकार ने राजस्व मे कमी को पूरा करने के लिए बहुत ही उदार रूप मे बाजार ऋणों (Market borrowing) का प्रयोग किया परन्तु इससे 1998 99 मे ब्याज का भार बढकर 75 000 करोड रुपये हो गया। इस बचत में इस विकल्प का प्रयोग इतनी गैर जिम्मेदारी से करने का कोई इरादा नहीं है और इस दृष्टि से इसके इरादे नेक हैं। चाहे बजट मे विनिवेश (Disinvestment) के लिए 1998 99 के दौरान 5 000 करोड रुपये का प्रावधान किया गया परन्तु हमारा रिकार्ड यह बताता है कि 1997 98 के दौरान 4 800 करोड रुपये के बजट प्रावधान के विरुद्ध हमारी विनिवेश से प्राप्ति केवल 906 करोड रुपये थी। यह अत्यन्त निराशाजनक है। इसके अतिरिक्त यह बात भी समझ नहीं आती कि जहा 1997 98 के दौरान, छोटी बचतो लोक भविष्य निधियों, राज्यीय भविष्य निधियो और विशेष जमा से 1997 98 (संशोधित अनुमान) के दौरान 37 662 करोड रुपये की प्राप्ति हुई, वहा 1998 99 के बजट में इसके लिए 36,845 करोड रुपये का प्रावधान किया गया है जो 1997-98 में प्राप्त राशि से भी कम है। इस प्रतिकूल प्रवृत्ति का कोई कारण नहीं बताया गया।

3 बजट में कर-प्रस्ताव (Tax Proposals)

1998 99 के बजट मे मुख्य कर प्रस्ताव इस प्रकार है —

प्रत्यक्ष कर प्रस्ताव (Direct Tax Proposals)

वित्तमंत्री ने उल्लेख किया "व्यक्ति कर या निगम कर के ढाचे मे कोई भी परिवर्तन करने का मेरा प्रस्ताव नहीं है। मैं आशा करता हू कि कर ढाचे मे दीर्घावधिक स्थायित्व (Longterm stability) से बढती हुई उत्पादिता, स्वैच्छिक कर-अनुपालन (Tax compliance) और कर विस्तार प्रयासों में एक सद्गुणी चक्र (Virtuous circle) कायम हो जाएगा।" किन्तु इस सम्बन्ध मे कुछ रियायतो की घोषणा की गयी —

1 कर छूट (Tax exemption) की सीमा 40 000 रुपये से बढाकर 50 000 रुपये कर दी गयी।

2 ऐसे वेतन प्राप्त करने वाले जिन की आय 1 लाख रुपये तक है के लिए मानक कटौती (Standard deduction) 20 000 रुपये से बढाकर 25 000 रुपये कर दी गयी है।

जिन वेतन प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की आय 1 लाख और 5 लाख रुपये के बीच हे उनके लिए मानक कटौती 20 000 रुपये ही रहेगी।

3 चिकित्सा व्यय की कर मुक्त उच्चतम सीमा 10 000 रुपये से बढाकर 15 000 रुपये कर दी गयी है।

जिन वेतन प्राप्त करने वाले व्यक्तियो की आय 5 लाख रुपये से ऊपर है उनके लिए मानक कटौती उपलब्ध नहीं होगी।

तालिका 8 आयकर की वर्तमान और सशोधित दरे

वर्तमान दर		संशोधित दर	
40 000 रुपये तक	शून्य	50 000 रुपये तक	शून्य
40 001 से 60 000 रुपये	10%	50 001 से 60 000	10%
60 001 से 1 50 000 रुपये	0%	60 001 से 1 50 000	20%
1,50 000 से अधिक	30%	1 50 000 रुपये से अधिक	30%

कर दरो मे कटौती का व्यक्तियो हिन्दु अविभाजित परिवारो आदि पर विभिन्न आय स्तरो पर प्रभाव इस प्रकार है —

तालिका 9 : आय के विभिन्न स्तर पर आय-कर-राहत

कुल आय (रुपये)	वर्तमान कर-दायित्व	नया कर-दायित्व	प्रस्तावित राहत	
			राशि (रुपये)	प्रतिशत
50 000	1 000	शून्य	1000	100
60,000	2,000	1 000	1 000	50
75 000	5 000	4 000	1 000	20
1,20,000	14 000	13 000	1000	7 1
1,50 000	20,000	19 000	1 000	5 0
2 00 000	35 000	34 000	1000	2.8
3,00,000	65 000	64,000	1 000	1.54

ध्यान देने योग्य बात यह है कि जैसे-जैसे व्यक्ति की आय में वृद्धि होती है, तो इसके साथ-साथ वर्तमान कर-दायित्व के अनुपात के रूप में प्रतिशत-राहत कम होती चली जाती है।

कर-आधार का विस्तार (Widening Tax base)

श्री पी चिदम्बरम ने अपने बजट में चार मानदण्डो के प्रयोग का उल्लेख किया। वे थे · घर की मलकियत, टेलीफोन का रखना, विदेशी यात्रा पर खर्च और मोटर गाडी का स्वामित्व। यदि कोई व्यक्ति इन चार मानदण्डो में से दो को पूरा करता हो, तो उसे आयकर-विवरणी (Income tax return) दाखिल करनी होगी। श्री यशवन्त सिन्हा ने इसमे दो और मानदण्डों को जोड़ दिया—क्रेडिट कार्ड रखना और महगी क्लबो की सदस्यता। इस प्रकार कुल छ. मानदण्ड हो जाते हैं। अतत चार मानदण्डो में से दो को मिलना प्रशासनिक दृष्टि से कठिन कार्य है, इसलिए वित्त मंत्री ने यह प्रस्ताव किया कि यदि कोई व्यक्ति इन छ· में से एक की भी पूर्ति करता है, तो उसे आय-कर विवरणी दाखिल करने के लिए कहना उचित होगा। यह स्कीम अब "छः में एक" के नाम से जानी जाएगी और 12 बड़े महानगरों के साथ 23 अन्य शहरों में भी लागू की जाएगी। इस प्रकार इस स्कीम का विस्तार 35 शहरों तक किया जाएगा। वित्त मत्री आशा करते हैं कि इससे पूरे राजकोषीय वर्ष में आयकर विवरणियों में कम-से कम 50 प्रतिशत की वृद्धि होगी।

कर-अनुपालन सुनिश्चित करने और कर-वंचन (Tax evasion) को कम करने के लिए कर-निर्धारितियों (Tax assesses) को अपना पैन (PAN) या जी आई आर. (G I R) नम्बर सभी सौदों में देना अनिवार्य कर दिया गया है। इन सौदों में है : (1) अचल सम्पत्ति का क्रय या विक्रय, (2) मोटर वाहनों का क्रय या विक्रय, (3) 50 000 रुपये से अधिक के शेयरों का लेन-देन (4) बैंकों में नया खाता खोलना, (5) 50,000 रुपये से अधिक की सावधि जमा (Fixed deposit) (6) टेलीफोन लगवाने के लिए आवेदन और (7) होटलों में 25,000 रुपये से अधिक का भुगतान।

वित्त मंत्री ने एक पृष्ठ वाले करदाता अनुकूल विवरणी पत्र जिसे "सरल" कहा जाएगा, को शुरू करने का प्रस्ताव किया। सरल को किसी चार्टर्ड एकाउन्टेट अथवा कर-सलाहकार की सहायता के बिना सरलता से भरा जा सकता है।

कर-विवाद सुलझाने के लिए समाधान

वित्त मंत्री ने कर-विवाद सुलझाने के लिए **'समाधान'** नामक एक नयी स्कीम शुरू करने का प्रस्ताव किया। यह स्कीम प्रत्यक्ष करों एवं अप्रत्यक्ष करो दोनों पर लागू होगी और वर्तमान दरों पर प्रत्यक्ष कर की बकाया राशि का भुगतान करने पर करदाता को ब्याज तथा जुर्माने की माफी तथा मुकदमा चलाने से मुक्ति प्रदान करेगी। अप्रत्यक्ष करों के सम्बन्ध में, 50 प्रतिशत बकाया शुल्क अदा करने पर कर-दाता को ब्याज और जुर्माने की माफी और मुकदमा चलाने से मुक्ति उपलब्ध होगी।

शैक्षणिक एवं चिकित्सा संस्थानों के सम्बन्ध में पूर्ण छूट, जिसका गलत प्रयोग हो रहा है, वापस लाने का प्रस्ताव है।

उपहार कर (Gift-Tax) समाप्त

उपहार कर से नाममात्र राजस्व-प्राप्ति होने के कारण वित्त मंत्री ने 30 सितम्बर 1998 के पश्चात् दिए जाने वाले उपहारो पर उपहार कर समाप्त कर दिया। किन्तु उपहार कर आयकर अधिनियम के आधीन लगाया जाएगा और उपहार को करदाता की आय माना जाएगा। अनिवासी भारतीयों को वर्तमान की भाँति इससे छूट जारी रहेगी।

आवास-निर्माण के लिए प्रोत्साहन

अनुमोदित आवास परियोजनाओं (Housing projects) के लिए कर-अवकाश (Tax holiday)—पहले पांच वर्षों के लिए लाभों से 100 प्रतिशत कटौती और इसके बाद के पांच वर्षों के लिए 30 प्रतिशत कटौती।

स्वयं-गृहीत मकानों (Self-occupied houses) के लिए उधार ली गयी पूंजी पर ब्याज की कटौती (Deduction) 15,000 रुपये से बढ़ाकर 30,000 रुपये कर दी गयी।

मरम्मतों तथा संग्रहण प्रभारों (Collection changes) के लिए 20 प्रतिशत से कटौती बढ़ाकर 25 प्रतिशत कर दी गयी।

विश्व बैंक द्वारा सहायता प्राप्त आवास परियोजनाओं में कार्य कर रही कम्पनियों को होने वाले लाभों में 50 प्रतिशत की कटौती।

एक वर्ष मे 790 करोड रुपये की राजस्व-प्राप्ति की आशा है। इसका उपयोग सडको के विकास के लिए किया जाएगा और यह सम्पूर्ण राशि भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण (National Highway Authority of India) को सौंप दी जाएगी।

स्वर्ण पर आयात शुल्क 220 रुपये से बढाकर 250 रुपये प्रति 10 ग्राम कर दिया गया।

फर्नेस आय एल एस एच एस., एच एस डी मोटर स्प्रिट और ए.टी.एफ जैसे द्वितीयक उत्पादो पर भी आयात शुल्क घटाकर 10 से 5 प्रतिशत के स्तर पर लाने का प्रस्ताव है। कच्चे तेल पर सीमा शुल्क 27 प्रतिशत से घटाकर 22 प्रतिशत कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप एक वर्ष मे 965 करोड रुपये राजस्व हानि का अनुमान है। इस हानि को पूरा करने के लिए मोटर स्प्रिट पर उत्पाद शुल्क (excise duty) 20 प्रतिशत से बढाकर 35 प्रतिशत कर दी गयी है। समानान्तर विपणन के लिए आयातित मिट्टी के तेल पर 2 प्रतिशत विशेष शुल्क सहित 32 प्रतिशत सीमा शुल्क लगाया गया है।

केन्द्रीय उत्पाद शुल्क

लघु स्तर क्षेत्र की सहायता के लिए, उत्पाद शुल्क के लिए छूट की सीमा (Exemption limit) 30 लाख रुपये से बढाकर 50 लाख रुपये कर दी गयी है। 50 लाख रुपये और 100 लाख रुपये की अभिसीमा मे एक समान 5 प्रतिशत की सामान्य दर लगायी गयी है। इन प्रस्तावो के परिणामस्वरूप 300 करोड रुपये की राजस्व हानि होगी। वित्त मत्री के अनुसार, "हमारी अर्थव्यवस्था के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र के लिए यह एक छोटी सी कीमत चुकानी होगी।"

निम्नलिखत वस्तुओ पर 8 प्रतिशत उत्पाद शुल्क (Excise duty) लगाया गया—

पैकेटबन्द चाय ब्राड युक्त मक्खन और घी हस्तचालित मशीन से भिन्न सिलाई मशीनें, ब्राडयुक्त मसाले फैक्ट्रियों में उत्पादित ब्राडयुक्त खाद्य उत्पाद, ब्राड नाम से बिकने वाले मास और मछली उत्पाद, मक्खन सहित दूध पाउडर जिसमें शिशुओ के लिए निर्मित दूध शामिल नहीं 1800 सी सी तक के ट्रैक्टर, चश्मे के शीशे और फ्रेम स्लाइड फास्नर्स।

चिकित्सा यत्रो और उपकरणो तथा प्रदूषण नियन्त्रण उपस्करों पर उत्पाद शुल्क 5% से बढाकर 8% कर दिया गया।

चिकित्सा फर्नीचर, धूप के चश्मो और रिकार्ड न किए गए आडियो केसिटो पर 13 प्रतिशत की दर से शुल्क लगाया गया।

हथियार और गोलाबारूद पर शुल्क 18 प्रतिशत से बढाकर 25 प्रतिशत कर दिया गया परन्तु सैन्य सेवाओ के लिए हथियारो और गोलाबारूद को उत्पाद शुल्क से छूट जारी रहेगी।

नाइलोन फिलामेंट यार्न पर उत्पाद शुल्क 30 प्रतिशत से घटाकर 25 प्रतिशत कर दिया गया।

सिगरेटो पर विशिष्ट दरो के 6 प्रतिशत से 11 प्रतिशत के बीच भिन्न भिन्न मात्रा मे उत्पाद शुल्क मे वृद्धि की गयी।

अल्कोहल आधारित प्रसाधन वस्तुओ पर उत्पाद शुल्क 100 प्रतिशत से घटाकर 50 प्रतिशत किया गया।

सेवा-कर सडको द्वारा माल की ढुलाई या सेवा कर (Service tax) समाप्त कर दिया गया है।

कुछ नयी सेवाओ पर सेवा कर लगाया गया है। वे हैं —आरकिटेक्ट, आतरिक सज्जाकार, प्रबन्ध परामर्शदाता चार्टर्ड अकाऊटेंट, कॉस्ट अकाऊटेंट, कम्पनी सचिव निजी सुरक्षा सेवाए, वास्तविक जायदाद के एजेंट, बाजार अनुसन्धान एजेन्सिया, साख निर्धारण एजेन्सिया (Credit rating agencies) हामीदारी एजेन्सिया (Under writing agencies) और बूचडखाने।

सीमा शुल्को से 3,304 करोड रुपये की शुद्ध प्राप्ति और उत्पाद शुल्को से 5 009 करोड रुपये की प्राप्ति होगी।

डाक सेवाओं की दरों में संशोधन

प्रतियोगिता पोस्टकार्ड की दर 2 रुपये से बढाकर 3 रुपये अन्तर्देशीय पत्र रु 1 से बढाकर रु 1.50 प्रत्येक 20 ग्राम अथवा उसके भाग के लिए पत्र की दर रु 2 से बढाकर रु 3 और प्रत्येक 500 ग्राम अथवा उसके भाग के लिए पार्सलो की दर 8 रुपये से बढाकर 10 रुपये कर दी गयी है। इन सशोधनो से एक पूरे वर्ष मे लगभग 270 करोड रुपये और 1998-99 में लगभग 180 करोड रुपये अतिरिक्त राजस्व प्राप्त होने का अनुमान है।

4. 1998-99 के बजट का मूल्यांकन

वित्त मत्री यशवन्त सिन्हा ने भाजपा-गठबन्धन वाली सरकार का पहला बजट जो कि राष्ट्रीय एजेडा मे अन्तर्निहित स्वदेशी के दर्शन पर आधारित था, पेश किया। बजट में कृषि तथा ग्राम विकास के लिए आवटन बढाने का साहसी प्रयास किया गया है। बजट ने त्वरित सिचाई लाभ कार्यक्रम के आधीन आबटन मे 58 प्रतिशत की वृद्धि की है। इसी प्रकार ग्रामीण आधार सरचना विकास निधि मे आबटन बढाकर 3 000 करोड रुपये कर दिया गया है। नेबार्ड को यह निर्देश

दिया गया है कि ग्रामीण भारत मे फैली हुई बेरोजगारी और अल्परोजगार की समस्या से निपटने के लिए स्वरोजगार योजना चलाए। अत बजट मे एक महत्त्वपूर्ण प्रयास द्वारा कृषि मे गिरावट की स्थिति को उलटने का प्रयास किया गया है ताकि ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाया जा सके। किसानों को ग्राम उधार के रूप मे अधिक राशि उपलब्ध कराने के लिए किसान क्रेडिट कार्ड जारी करने का प्रस्ताव किया गया हे ताकि किसान इसके प्रयोग द्वारा बीज खाद, कीटनाशक आदि जेसी कृषि सम्बन्धी आवश्यकताओ को आसानी से खरीद सकें और अपनी उत्पादन सम्बन्धी जरूरतो के लिए बैंको से नकदी भी प्राप्त कर सके। इससे भी कृषि उत्पादन एव उत्पादिता मे वृद्धि होगी।

दूसरे, ल्घु स्तर उद्योग के लिए वर्तमान कर्मचारी पूजी की 2 करोड रुपये की सीमा बढाकर 4 करोड रुपये कर दी गयी है। इससे लघु उद्योगो की ओर अधिक उधार प्रवाहित होगा। इसके अतिरिक्त लघु उद्योगो की समस्याओ की देखभाल के लिए भारतीय लघु उद्योग विकास बेंक को भारतीय औद्योगिक विकास बैक से पृथक कर एक स्वायत्तता दी जा रही है। इसके अतिरिक्त, इस्पेक्टर राज जो लघु उद्यमियो की परेशानी का कारण रहा है समाप्त किया जा रहा है।

तीसरे, ऊर्जा, परिवहन एव सचार के रूप में आधार सरचना उपलब्ध कराने के लिए जहा 1997 98 के सशोधित अनुमान मे 42 252 करोड रुपये की राशि रखी गयी थी वहा इसे 1998 99 के बजट मे बढाकर 61 146 करोड रुपये कर दिया गया है। इस प्रकार इसमे 35 प्रतिशत की भारी वृद्धि स उद्योग के विकास पर एक प्रधान सीमाबन्धन को दूर करने मे सहायता मिलेगी।

चौथे विदेशी निवेश प्रवाह को सुविधाजनक बनाने के लिए प्रशासनिक मत्रालय मे एक अधिकारी नियुक्त किया जाएगा जिसे मॉनिटरिंग अधिकारी का कार्य सौंपा जाएगा और उसकी यह जिम्मेदारी होगी कि 100 करोड रुपये से अधिक के प्रत्येक विदेशी निवेश प्रस्ताव के बारे मे 90 दिन के अन्दर अन्तिम निर्णय सुनिश्चित कराए। वित्त मत्री उम्मीद करते ह कि इस प्रकार लालफीताशाही को काट कर वे अगले दो वर्षों मे विदेशी निवेश को दुगुना करके 6 2 अरब यू एस डालर कर सकेंगे।

पाँचवें अनिवासी भारतीयो की अप्रयुक्त क्षमता का प्रयोग करने के लिए कई कदम उठाए गए ह। अनिवासी भारतीय के लिए व्यक्तिगत रूप मे किसी कम्पनी की कुल इक्विटी को खरीदने की सीमा 1 प्रतिशत जिसे बढाकर 5 प्रतिशत कर दी गयी है और सभी अनिवासी निवेश की सीमा किसी कम्पनी मे 5 प्रतिशत से बढा कर 10 प्रतिशत कर दी गयी है।

भारतीय यूनिट ट्रस्ट एक 'न्यू इडिया मिलेनियम स्कीम आरभ करेगा जो केवल अनिवासी भारतीयो द्वारा डालरो में अशदान के लिए खुली होगी। इसी प्रकार भारतीय स्टेट बैंक अनिवासी भारतीयो के लिए विदेशी मुद्राओ के मूल्य मे एक नया 'रिसरजेंट इडिया बाण्ड जारी कर रहा है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि चीन मे विदेशी निवेश का अधिकतर भाग विदेशो मे रहने वाले चीनियो द्वारा उपलब्ध कराया जाता है। वित्त मत्री भी उसी प्रकार इस अप्रयुक्त स्रोत का विदोहन करना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त चूंकि अनिवासी भारतीय विदेशो मे बसे हुए हैं वे आधुनिक तकनालाजियो से परिचित है और वे बिना किसी राजनैतिक शर्त के तकनालाजी के प्रवाह मे भारत की सहायता कर सकते ह। चाहे वित्त मत्री ने साफ शब्दो मे तो नहीं कहा किन्तु भारत पर लगाए गए आर्थिक प्रतिबनधो के प्रभाव को कम करने के लिए यह उपाय किया जा रहा हे। अत वित्त मत्री द्वारा उठाया गया यह कदम अभिनन्दनीय है।

छठे 20 लाख आवासीय इकाइयो का 1998 99 के दौरान निर्माण किया जाएगा जिसमे 13 लाख ग्राम क्षेत्रो और 7 लाख शहरी क्षेत्रो मे होगी। इसके लिए बजट मे 1 600 करोड रुपये का प्रावधान किया गया हे।

सातवे वित्त मत्री ने शिक्षा के लिए 7 047 करोड रुपये का प्रावधान किया है जबकि 1997 98 के सशोधित अनुमान मे इस पर 4 716 करोड रुपये खर्च किए गए। इस प्रकार पिछले वर्ष के कुल बजटीय प्रावधान की तुलना मे इस वर्ष लगभग 50 प्रतिशत की वृद्धि का सकेत हे। इसका मुख्य उद्देश्य साक्षरता विशेषकर स्त्री साक्षरता को बढावा देना है।

आठवे सरकार ने 1998 99 मे केन्द्रीय योजना परिव्यय को बढाकर 105 187 करोड रुपये कर दिया है जबकि 1997 98 के दौरान यह 81 033 करोड रुपये था—अर्थात् 30 प्रतिशत की वृद्धि। समग्र योजना आवटन और विशेषकर सामाजिक क्षेत्र के आबटन म वृद्धि वस्तुत अभिनन्दनीय है।

अन्तिम देशी उद्योग के सरक्षण के लिए सरकार ने 8 प्रतिशत का आयात शुल्क लगाया है। इसके लिए तर्क यह दिया गया है कि सरकार देशीय उद्योग को खेल का हमवार मैदान उपलब्ध कराना चाहती है क्योकि हमारे वस्तु कराधान का प्रभाव आयातित वस्तुआ की तुलना म स्वदेशी वस्तुओं पर पडता है। जब स्वदेशी वस्तुओ पर बिक्री कर और अन्य स्थानीय कर एव शुल्क लगाए जाते हे आयातित क्षेत्र

अपनी प्रकृति के कारण इनसे बच जाता है। इस निर्णय का औद्योगिक हल्को में विस्तृत रूप से स्वागत हुआ है। इसके अतिरिक्त वित्त मत्री ही इस घोषणा का कि बीमा क्षेत्र को भी निजी भारतीय कम्पनियो को खोल दिया गया है का भी भरपूर स्वागत हुआ है। इसी प्रकार विदेशी मुद्रा विनियमन कानून का प्रतिस्थापन विदेशी मुद्रा प्रबन्ध कानून के द्वारा करना ऐसा कदम माना जा रहा है जिससे विनियोक्ताओ मे विश्वास बढेगा और इस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था को बढावा मिलेगा। बहुराष्ट्रीय निगमो की लाबी नाखुश है कि बीमा क्षेत्र विदेशी कम्पनियो को क्यो नहीं खोला गया परन्तु विदेशा कम्पनियो को भारतीय बचत एकत्र करने की इजाजत देने में कोई तुक नहीं। पहले तो ये कम्पनिया भारतीय बचत का निर्यात करें और फिर भारत इसी बचत के आयात के लिए इन्हे निवेदन करे ताकि यह बचत हमारे देशीय बचत के प्रयास में पूरक बन सके। यदि मुख्य तर्क यह था कि बीमा क्षेत्र मे प्रतियोगिता कायम की जाए और जीवन बीमा निगम के एकाधिकार को तोडा जाए तो वित्त मत्री का निर्णय बुनियादी रूप मे सही है और स्वदेशी एव आत्मनिर्भरता की भावना से युक्तिसगत है।

बजट की आलोचना

जहा पर मोटे तौर पर बजट का स्वागत हुआ है वहा वामपथी दलो एव कांग्रेस द्वारा बजट की आलोचना भी की गया है। कुछ हद तक यह आलोचना पक्षपातपूर्ण भी हो सकती है परन्तु आलोचको द्वारा उठाए गए कई मुद्दे तर्कसगत भी हो सकते है। अत इस दृष्टि से बजट की आलोचनाओ की छानबान करनी उचित होगी।

(*i*) पेट्रोल की कीमतो मे 4 रुपये प्रति लिटर की वृद्धि न्यायोचित नहीं। विरोधी दलो के सयुक्त प्रहार ने सरकार को यह स्पष्टीकरण देने के लिए मजबूर कर दिया कि कीमत वृद्धि केवल 1 रुपया प्रति लिटर है। वित्त मत्री का यह कहना कि 4 से 5 रुपये प्रति लिटर की अवांछित वृद्धि का कारण वित्त मत्रालय और पेटोलियम मत्रालय मे तालमेल का अभाव था, से कोई भी वर्ग सन्तुष्ट नहीं हुआ। वस्तु स्थिति यह है कि कीमत वृद्धि के राजनैतिक गृहयार्थो ने सरकार को मजबूर कर दिया कि वह वापस ले ले।

(*ii*) यूरिया को कीमत 1 रुपया प्रति किलोग्राम बढाने के लिए वित्त मत्री ने यह तर्क दिया कि वह नाइट्रोजन फास्फोरस पोटाश (एन पी के) का सतुलन उर्वरको के प्रयोग मे बहाल करना चाहते हैं। वित्त मत्री ने अपने निर्णय के पक्ष मे तर्क देते हुए कहा 'एन पी के का सतुलन जो 1991 92 मे 5 9 2 4 1 था 1996 97 तक प्रतिकूल रूप मे बदलकर 10 2 9 1 हो गया है। यूरिया की कीमत मे वृद्धि करने से इस सन्तुलन को बहाल करने में मदद मिलेगी।" यूरिया की प्रचलित कीमत 3 66 रुपये प्रति किलोग्राम थी और इसे बढाकर 4 66 रुपये प्रति किलोग्राम करने का निर्णय किया गया—27 4 प्रतिशत की वृद्धि। अत 50 किलोग्राम का एक बोरा जो किसान को 183 रुपये मे मिलता था सशोधित कीमत पर 233 रुपये मे मिलेगा। इस प्रकार सरकार 2,000 करोड रुपये देशीय यूरिया से प्राप्त करना चाहती थी। जहा वित्त मत्री ने अपने सबसे पहले प्रस्ताव में कृषि की नकारात्मक वृद्धि दर को पलटने के लिए कई प्रोत्साहन देने का प्रयास किया और कृषि को आबटन बढाकर सिचाई का विस्तार और ग्रामीण उधार के विस्तार का प्रस्ताव किया वे बडी आसानी से यह बात भूल गए कि उर्वरको की माग लोचहीन नहीं है और इस निर्णय के दुष्प्रभाव भी हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रस्ताव के राजनैतिक प्रभावो का ध्यानपूर्वक विश्लेषण नहीं कर पाए। सरकार ने इस निर्णय से होने वाली हानि को नियंत्रित करने के लिए यूरिया की कीमत मे वृद्धि को घटाकर 50 पैसे प्रति किलोग्राम कर दिया। इस निर्णय का विरोध न केवल विपक्षी दलो ने—अपितु सरकार मे सहयोगी पार्टियो अर्थात् अकाली दल हरियाणा विकास पार्टी समता पार्टी ने भी किया। सरकार अब यूरिया के सम्बन्ध मे कीमत वृद्धि के प्रस्ताव को पूर्णतया वापस लेने पर विचार कर रही है। अत मूल प्रश्न यह है कि एन पी के का आदर्श सतुलन क्या है जिसे वित्तमत्री स्थापित करना चाहते हैं ? इस बात की व्याख्या बजट मे नहीं की गयी। क्या यूरिया की कीमत मे वृद्धि एन पी के सतुलन को सुनिश्चित करने का एकमात्र उपाय है ? तथ्यो की जानकारी से पता चलता है एन पी के के प्रयोग मे असतुलन कृषि मे कार्य कर रही विस्तार सेवाओ की विफलता का परिणाम है जो किसान को अनुकूलतम उत्पादिता प्राप्त करने के लिए उर्वरको के सही प्रयोग की शिक्षा नहीं दे पायीं। इसके अतिरिक्त एन पी के सतुलन पर भिन्न भिन्न फसलो के लिए और भिन्न भिन्न क्षेत्रो के लिए अलग-अलग है क्योंकि यह भूमि की किस्म पर निर्भर करता है। जहा बडा किसान जिसके पास विपण्य अतिरेक काफी अधिक है फसल की लागत मे वृद्धि को ऊची वसूली कीमत से प्राप्त कर लेगा, वहा छोटा किसान जो अधिकतर पारिवारिक उपभोग के लिए ही उत्पादन करता है पर इसका बुरा असर पडेगा। अत उर्वरक की कीमतो मे वृद्धि के कल्याण सम्बन्धी प्रभावो का

पूरी तरह अध्ययन नहीं किया गया। जाहिर है कि निर्णय करने से पहले जो परामर्श विशेषज्ञो से किया जाना चाहिए था वह नहीं किया गया। परिणामत सरकार को इस सम्बन्ध मे भी एकदम पीछे हटना पडा।

(*ii*) लघु स्तर इकाइयों की कार्यकारी पूजी की सीमा 2 करोड रुपये से 4 करोड रुपये करने के बारे मे वित्त मत्री ने अपने बजट भाषण मे कहा "मैंने स्वय उस निर्धनतम और निर्बलतम व्यक्ति का चेहरा स्मरण किया है जिसे मैंने कभी देखा था और यह सुनिश्चित किया है कि यह बजट उसके लाभ के लिए हो।" वित्त मत्री अपने फैसले के अन्तर्विरोधों की पहचान नहीं कर पाए। मार्च 1998 मे प्रधानमत्री ने लघु स्तर उद्योगो मे अचल पूजी की अधिकतम सीमा घटाकर 1 करोड रुपये कर दी ताकि इन्हे लघु-उद्योगो मे 'बडी' इकाइयो की घुसपैठ और बडे पैमाने के क्षेत्र द्वारा जाली लघु इकाइयो से बचाया जा सके। परन्तु भाजपा-नेतृत्व की उसी सरकार के वित्त-मत्री ने कार्यकारी पूजा की सीमा 2 करोड रुपये से बढाकर 4 करोड रुपये करने का निर्णय किया। क्या दाये हाथ को पता है कि बाया हाथ क्या कर रहा है ? इसके अतिरिक्त वित्त मत्री को यह पता होना चाहिए कि लघु क्षेत्र की 92 प्रतिशत इकाइया ऐसी है जिनकी अचल पूजी 2 लाख रुपये से कम है। यदि अन्त्योदया सिद्धान्त वित्त मत्री के मस्तिष्क मे है तब उन्हे इस क्षेत्र मे उधार प्रक्रिया को आसान बनाना चाहिए था और नायक समिति की सिफारिशो का पालन करने का निर्णय करना चाहिए था। परन्तु उनकी नीति से लघु स्तर क्षेत्र मे 'बडी' इकाइयो को अधिक लाभ कमाकर मध्यम एव बडे पैमाने के क्षेत्र मे प्रवेश करने में सहायता प्राप्त होगी। यह न तो राष्ट्रीय एजेडा की भावना है और न ही गाधी जी के प्रसिद्ध जन्तर की जिसकी शपथ वित्त मत्री लेते आए हैं। राष्ट्रीय एजेडा 'बेरोजगारी हटाओ' को सर्वोच्च उद्देश्य मानता है परन्तु लघु स्तर की नीति से इस प्रकार का कोई आभास प्राप्त नहीं होता। यह कहीं बेहतर होता यदि कुल उधार का एक बडा भाग (अर्थात् 40 प्रतिशत) पिछ्ड़ी क्षेत्र के लिए आरक्षित कर दिया जाता। यदि ऐसा कर दिया जाता, तो स्वदेशी की गाधीवादी धारणा न्यायोचित मानी जा सकती थी। परन्तु वित्त मत्री ने तो लघु क्षेत्र की सहायता सम्बन्धी अपने जोशीले प्रयास मे फार्म-औजारों को लघु क्षेत्र के लिए आरक्षित मदो की सूची से ही हटा दिया। ताकि किसान प्रतिस्पर्धी मूल्यों पर विविध प्रकार के कृषि उपकरणों एव औजारो का लाभ उठा सकें। यदि वित्तमत्री के तर्क को स्वीकार कर लिया जाए, तब समग्र लघु क्षेत्र से आरक्ष[illegible] [illegible]टाने के पक्ष मे भी तर्क कायम किया जा सकता है। वित्त मत्री ने ग्राम क्षेत्रो मे रोजगार मे कमी के रूप मे अपने निर्णय के गुह्यार्थों की ओर ध्यान नहीं दिया। इन इकाइयो को आधुनिकीकरण मे सहायता देने की बजाए, उन्होंने इन इकाइयो का अपने आजीविका के स्रोत से हटाने का निर्णय किया जो कि अन्त्योदया सिद्धान्त के साथ भारी धोखा है।

(*iv*) **समाधान—गुप्त रूप मे स्वैच्छिक आय घोषणा योजना**—वित्त मत्री ने कर-विवाद समाधान योजना का प्रस्ताव भी किया है। यह योजना प्रत्यक्ष कर ओर अप्रत्यक्ष कर दोनो पर लागू होगी और वर्तमान दरो पर प्रत्यक्ष करों के बकाया भुगतान पर ब्याज तथा जुर्माने की माफी तथा मुकदमा चलाने से मुक्ति प्रदान करेगी। एक अनुमान के अनुसार 31 मार्च 1998 पर विवादों मे फसे अप्रत्यक्ष करो की राशि 10 000 करोड रुपये और विवादित प्रत्यक्ष करो की राशि 40 000 करोड रुपये थी।

प्रत्यक्ष कर के सम्बन्ध मे इस योजना का लाभ उठाने के लिए किसी व्यक्ति को 30 प्रतिशत कर देना होगा और फर्मों एव कम्पनियो को बकाया कर का 35 प्रतिशत। यह स्कीम धन-कर कानून उपहार-कर कानून व्यय कर कानून और ब्याज-कर कानून के आधीन भी लागू होगा। जहा तक अप्रत्यक्ष करो का सम्बन्ध है देय राशि बकाया करो का 50 प्रतिशत होगी। यह योजना 1 सितम्बर को आरभ होगी और 31 दिसम्बर, 1998 को बन्द हो जाएगी।

ध्यान देने योग्य बात यह है क्या समाधान स्वैच्छिक आय-घोषणा योजना का सशोधित एव विस्तृत रूप ही नहीं है जो प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष दोना प्रकार के करो पर लागू होगा? एक ओर तो वित्त मत्री ईमानदार करदाताओं को सम्मान योजना के आधीन मानपत्र देना चाहते है परन्तु दूसरी ओर वे ऐसे व्यक्तियों अथवा कम्पनियो को मुकदमेबाजी ओर जुर्माने से पूर्ण माफी देना चाहते है यदि व्यक्ति अथवा कम्पनी समाधान योजना के आधीन बकाया करो का एक निश्चित अनुपात अदा करने के लिए तैयार हो जाते है। यही प्रयास वित्त मत्री पी चिदम्बरम ने स्वैच्छिक आय घोषणा मे किया था परन्तु उनकी बेईमान व्यक्तियो या कम्पनियो को पूर्ण माफी देने की योजना की भर्त्सना की गयी। यदि यह उस समय गलत था तो अब इसे कैसे न्यायोचित ठहराया जा सकता है।

(*v*) बजट को बचत को प्रोत्साहित करने का वातावरण तैयार करना चाहिए था परन्तु श्री यशवन्त सिन्हा का बजट इसमे विफल हुआ है। सर्वप्रथम इसको प्राप्ति के लिए इसे व्यक्तिगत कराधान को बढाना चाहिए था। श्री पी चिदम्बरम ने [illegible]यकर एव निगम कर की दरो को काट कर असामान्य

रूप मे नीचे स्तरो पर ले जाने का भारी भूल की ओर इसके नतीजे के तोर पर आयकर से प्राप्ति 1997 98 मे गिरकर 18750 करोड रुपये हो गयी जबकि इसका 21 750 करोड रुपये का पूवानुमान था (यदि इसमे से स्वैच्छिक आय घोषणा के आधीन प्राप्त 10,500 करोड रुपये को निकाल दिया जाए क्योंकि यह पिछले वर्षो मे आबंटित कर पर आय कर प्राप्ति को व्यक्त करता है) बहुत से देशो मे वैयक्तिक आयकर की अधिकतम सीमा भारत द्वारा अपनाया गयी दर से ऊची है। सयुक्त राज्य अमेरिका मे यह 47.5 प्रतिशत जापान मे 50 प्रतिशत, यू के मे 40 प्रतिशत है और कुछ अल्पविकसित देशो मे भी ये दरे ऊचा है। उदाहरणार्थ मिस्र मे यह 48 प्रतिशत, चीन एव दक्षिण कोरिया में 45 प्रतिशत और इन्डोनेशिया एव ब्राजील मे 35 प्रतिशत है। यह कहीं बेहत्तर होता यदि वित मत्री ने उच्च आय वर्गों की दरो को सीमान्त रूप मे स्पन्दित कर अधिक राजस्व प्राप्त कर लिया होता।

दूसरा विकल्प यह था कि वित्त मत्री ने अनिवार्य जमा योजना लागू कर आयकर देने वाले वर्गों पर आरोहा दर के अधार पर बाध्य बचत करने का बोझ डाला होता। इस प्रकार के उपाय से एक ओर तो सरकार को स्फीति को नियंत्रित करने मे मदद मिलती और दूसरी ओर राष्ट्रीय एजेडा द्वारा निश्चित 30 प्रतिशत देशीय बचत को बढाने के लक्ष्य की प्राप्ति और सहायता प्राप्त होती। इन दोनो दृष्टियो से बजट मे साहस की कमी रही और "कर ढाचे की दीर्घकालीन स्थिरता की आड मे श्री पी चिदम्बरम द्वारा तय मार्ग पर चलने का निर्णय श्री यशवन्त सिन्हा ने किया। परिणामत श्री सिन्हा का बजट 1998 99 मे आयकर से 20920 करोड रुपये प्राप्त करने की प्रत्याशा करना है जिसमे 4000 करोड समाधान योजना से प्राप्त होंगे जो कि एक प्रकार की गुप्त स्वैच्छिक आय घोषणा योजना ही है। यदि इसको बाहर निकाल दिया जाए, तो बेहतर कर पालन और विस्तृत कर-आधार के प्रस्तावो के बावजूद, कर प्राप्ति मे कोई महत्वपूर्ण वृद्धि का सकेत नहीं मिलता।

(ii) विनिवेश के सम्बन्ध मे बजट पुराना लाक का ही अनुकरण करता है। इस बजट म 5000 करोड रुपये 1998-99 म विनिवेश से प्राप्त करने का प्रावधान किया है। इस प्रक्रिया को त्वरित करने के लिए सरकार ने आई ओ सी गेल वी एस एन एल और कानकोर से हिस्सा पूजी का विनिवेश करने का निर्णय किया है। इंडियन एयर लाइंस म सरकारी हिस्सा पूजी को पुनर्गठन करने के साथ 49 प्रतिशत तक नीचे लाने का निर्णय किया है। इसके अतिरिक्त, सरकार गैर सामरिक सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो मे सरकारी हिस्सा पूजी को 26 प्रतिशत तक लाएगी।

बीमार इकाइयो की समस्या के समाधान के लिए बजट मे एक उदार स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति योजना का प्रस्ताव किया गया है। नये सेवा निवृत्त पेकेज मे प्रत्येक पूर्ण वर्ष की सेवा के लिए 45 दिनो की मजदूरी या वेतन देने का वादा किया गया है।

मूल प्रश्न यह है कि ये सिफारिशें करके भाजपा गठबन्धन वाली सरकार ने मक्खियो के छत्ते मे अपना हाथ क्यो दे दिया है ? मजदूर सघ आन्दोलन आरभ कर सरकार के सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो के निजीकरण के प्रयास को रोकने के लिए मोर्चा लगाएंगे। वस्तु स्थिति यह है कि 1997 98 में विनिवेश के रूप म 4 800 करोड रुपये के बजटीय प्रावधान के विरुद्ध केवल 906 करोड रुपये की प्राप्ति हुइ। इसी प्रकार, 1996 97 म 5 000 करोड रुपये के प्रावधान के विरूद्ध मात्र 500 करोड रुपये का प्राप्ति हुइ। यह परिस्थिति तब विद्यमान है जबकि सरकार अपने सबसे अधिक लाभ कमाने वाले उद्यमो का विनिवेश करने के लिए तैयार है।

अत सरकार को सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो के निजीकरण के विरुद्ध इन उद्यमो के निष्पादन को उन्नत करने के विकल्प पर पुनर्विचार करना चाहिए। 1995 96 के दौरान विनियुक्त पूजी पर सकल लाभ मे उन्नति हुई और यह 16 1 प्रतिशत के उच्च स्तर पर पहुच गया। वित्त मत्रालय की **आर्थिक समीक्षा (1997 98)** मे इस सम्बन्ध मे उल्लेख किया है " 1996 97 मे सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो का वास्तविक सकल लाभ लागत अन्तर लक्ष्य से लगभग 10 प्रतिशत बढ गया है। पिछले वर्ष इसमे लक्ष्य की तुलना मे 8 प्रतिशत की वृद्धि हुइ थी। हाल ही के वर्षों मे सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो की लाभदायकता मे उन्नति हुई है चाहे इसे सकल लाभ लागत अन्तर, सकल लाभ और विनियुक्त पूजी पर कर पूर्व लाभ के रूप मे आका जाए। शुद्ध परिसम्पत की तुलना मे कर पश्चात् लाभ मे भी उन्नति हुई है। इन उन्नतियो का कारण सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों पर अपने निष्पादन मे सुधार करने के लिए बढता हुआ प्रतियोगिता का दबाव है।" यदि अद्यतन आर्थिक समीक्षा मे प्रस्तुत वास्तविकता के रूप मे यह सकेत प्राप्त है तो 1998 99 मे प्रस्तावित निजीकरण या उदार स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति पैकेज इसका न हो तो यथार्थ और न हो वाछनीय समाधान है। इसके अतिरिक्त भाजपा गठबन्धन वाली सरकार के राष्ट्रीय एजेडा म इस सम्बन्ध म यह उल्लेख किया गया " हम सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो मे व्यापक सुधार करेंगे जिसमे पुनर्गठन, पुन स्थापन और विनिवेश शामिल है।" ऐसा प्रतीत होता है कि 1998 99 का बजट राष्ट्रीय एजेडा द्वारा निर्धारित सामन्जस्य को भी पार कर गया है।

अन्तिम बजट प्रस्तावो मे दो गभीर समस्याओं का जिक्र ही नहीं किया गया। यह कल्पना कर ली गयी है कि स्फीति की दर 6 5 से 7 प्रतिशत की अभिसीमा मे ही रहेगी। दूसरे, इसमे सयुक्त राज्य अमेरिका, जापान और विश्व बैंक द्वारा नाभिकीय विस्फोटो के बाद लगाए गए प्रतिबन्धो के प्रभाव की पूर्णतया उपेक्षा की गयी है। वर्तमान सकेतो से पता चलता है कि करो मे वृद्धि के परिणामस्वरूप स्फीति की दर धीरे-धीरे ऊपर की ओर बढनी शुरू हो गयी है और इसके 8 से 9 प्रतिशत तक पहुच जाने की उम्मीद है यदि इसे सीमित करने के उपाय नहीं किए जाते। इसी प्रकार प्रतिबन्धों की उपेक्षा करना वास्तविकता के प्रति अपनी आखे मूद लेना है। बजट मे प्रतिबन्धो के प्रभाव को निष्क्रिय बनाने के लिए कोई आकस्मिकता योजना तैयार नहीं की गयी।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि श्री यशवन्त सिन्हा के बजट के कई सराहनीय पहलू हैं। इसमे कृषि और ग्राम विकास को प्राथमिकता दी गयी है। इसमे कृषि वृद्धि की नकारात्मक प्रवृत्ति को पलटने के लिए ग्राम उधार की अधिक मात्रा उपलब्ध कराने का वादा किया गया है। इसके साथ आधार सरचना पर बल देकर यह उद्योग विकास के मुख्य सीमाबन्धन का दूर करना चाहता है। इसमे देशीय उद्योग को प्रोत्साहिन करने के लिए खेल का हमवार मैदान तैयार किया गया है। इसमें अनिवासी भारतीया के निवेश को प्रोन्नत करने के उपाय किए गए हैं और 100 करोड रुपये से अधिक प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग प्रस्ताव पर 90 दिन में अन्तिम निर्णय करने का वादा किया गया है। इसमे केन्द्रीय योजना परिव्यय मे 20 प्रतिशत की वृद्धि की गयी है ताकि इसमें गिरावट की परिस्थितियों को पलटा जा सके। इसमे सामाजिक क्षेत्र के परिव्यय को बढाया गया है। ये सब उत्साहवर्धक लक्षण ही हैं।

परन्तु निर्बलतम और सबसे गरीब वर्गों के सम्बन्ध मे इसका रिकार्ड सतोषजनक नहीं है। इसके कुछ प्रस्ताव जैसे यूरिया की कीमत मे वृद्धि कृषि को प्रोन्नत करने के प्रयास के साथ मेल नहीं खाते। इसमे सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों मे सरकारी हिस्सा पूजी को 26 प्रतिशत तक घटाने का प्रस्ताव अनावश्यक रूप में उठा दिया गया है। गाधी जी के जन्तर का उद्धरण देना तो बहुत आसान है परन्तु इसके अनुसार कार्य करना बहुत कठिन है। बहुत से उपायों विशेषकर लघु क्षेत्र सम्बन्धी उपाय का विश्लेषण करने से पता चलता है कि यह बजट अन्त्योदया के सिद्धान्त पर अमल करने में विफल हुआ है।

प्रोफेसर सुरेश डी तन्दुलकर बजट का आलोचनात्मक विश्लेषण करने के पश्चात् यह उल्लेख करता है "बजट 1997-98 के दौरान मन्द औद्योगिक विकास का न ही तो विश्लेषण करता है और न ही इसके पलटने के उपाय बताता है। इसका मुख्य कारण देशीय बाजार मे मन्दी की स्थिति है न कि स्वदेशी लॉबी द्वारा तथाकथित आयात का डम्पिग (Dumping)। मेरे विचार में इस सम्बन्ध में अल्पकालीन उपचार उपलब्ध नहीं हैं और औद्योगिक पुनरुत्थान के लिए विनियोक्ताओ मे विश्वास बहाल करना आवश्यक है। इसके लिए राजनीतिक स्थिरता की कठिन प्रक्रिया उपलब्ध कराने के साथ स्थिर नीति सम्बन्धी वातावरण, कानूनी एव प्रशासनिक क्रियाओ द्वारा उचित सकेतो के साथ नीति के कार्यान्वयन मे राजनीतिक एव नौकरशाही पक्षपात को न्यूनतम करना होगा। इन सभी दृष्टियो से बजट में सरकार की इच्छाओ की अभिव्यक्ति तो है परन्तु दुर्भाग्यवश इसक द्वारा भ्रांतिपूर्ण सकेत ही दिए गए हैं।"

बजट के पश्चात् का घटना-चक्र

लोकसभा मे बहस के बाद वित्त मत्रा यशवन्त सिन्हा ने 12 जून 1998 को तीन मदो पर शुल्को मे कटौती की घोषणा की (1) अतिरिक्त सीमा शुल्क को 8 प्रतिशत मे घटाकर 4 प्रतिशत कर दिया गया (2) यूरिया की कीमत मे वृद्धि का प्रस्ताव पूर्णतया वापस ले लिया गया और (3) पेट्रोल पर उत्पाद शुल्क की दर 35 प्रतिशत से घटाकर 32 प्रतिशत कर दी गयी। शुल्को मे घोषित इन कटौतियो का कुल प्रभाव राजस्व प्राप्तियो में 3 600 करोड रुपये की हानि होगी।

तलिका 10 **बजट-पश्चात् शुल्को मे कटौती का प्रभाव**

(करोड़ रुपये)

(1) सीमा शुल्क में 8% से 4% की कटौती	1 300
(2) यूरिया की कीमत में वृद्धि समाप्त करना	2,000
(3) पेट्रोल पर उत्पाद शुल्क को 35 प्रतिशत से घटा कर 32 प्रतिशत करना	300
कुल	3 600

इस पीछे हटने की कार्रवाई के परिणामस्वरूप राजस्व घाटा 48 068 करोड रुपये से बढकर 51 668 करोड रुपये हो जाएगा—सकल देशीय उत्पाद के 3 प्रतिशत से बढकर 3 2 प्रतिशत। इसी प्रकार, राजकोषाय घाटा 91 025 करोड रुपये से बढकर 94 625 करोड रुपये हो जाएगा। इस प्रकार मूल बजट में प्रस्तावित 5 6 प्रतिशत की तुलना म राजकोषीय घाटा सशोधित बजट में सकल देशाय उत्पाद के 5 8 प्रतिशत पर पहुच जाएगा।

शुल्कों में ये सशोधन इस कारण घोषित किए गए कि भारतीय जनता पार्टी के गठबन्धन मे सहयोगी दलों ने सरकार पर यह दवाव डाला कि वह किसान विरोधी बजट का भाव न दे क्योंकि अन्यथा बजट-आबटनो मे कृषि तथा ग्राम विकास को काफी बढावा दिया है। अत यूरिया की कीमत मे वृद्धि जिसे बजट के फौरन बाद कम करके 0.50 रुपए प्रति किलोग्राम किया गया था, पूर्णतया समाप्त कर दी गयी ताकि यथार्थपूर्व स्थिति स्थापित की जा सके।

चाहे उद्योग ने 5 प्रतिशत सरक्षण की माग की थी, वित्त मत्री ने 8 प्रतिशत आयात शुल्क लगा दिया। परन्तु यह शुल्क निर्धारणीय मूल्य (Assessable value) पर नहीं था बल्कि बुनियादी शुल्क पर था। परिणामत कर पर होने के कारण, वास्तव मे आयात शुल्क 12 से 16 प्रतिशत की अभिसीमा म था। जिन महत्त्वपूर्ण वर्गों को छूट दी गयी उनमें शामिल थे रूक्ष तेल उर्वरक कोयला, पावर, परिशोधन शालाए, टेलीकॉम और सोना एव चादी और सबसे महत्त्वपूर्ण, व्यापार के लिए आयातित वस्तुए। अत वित्त मत्री ने हमवार मैदान कायम करने के उपायो मे लगभग दो तिहाई आयात को छोड दिया। दूसरे शब्दो मे छूट के माध्यम से वित्त मत्री ने इस उपाय के प्रभाव को काफी कम कर दिया और अब आयात शुल्क को और घटाकर 4 प्रतिशत करने से तो वित्त मत्री केवल एक तिहाई आयात को ही सरक्षण प्रदान कर सके है। जाहिर है कि सरक्षण का शोर तो अधिक है परन्तु वस्तुस्थिति एक अलग सकेत देती है।

आयात शुल्क को 8 प्रतिशत से आधा कर 4 प्रतिशत कर दिया गया ताकि इसका स्फीति के रूप में कोई प्रभाव न पडे। कुछ अर्थशास्त्रियो ने यह अनुमान लगाया था कि 8 प्रतिशत आयात शुल्क के कारण स्फीति मे 2.5 प्रतिशत की वृद्धि हो जाएगी। उच्च स्फीति दर की बजाए सरकार ने उच्च विकास दर को तरजीह दी। यह भय था कि यदि स्फीति की दर ऊची हो जाती है तो अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर 7 प्रतिशत से नीचे रह जाएगी और इस परिस्थिति में बजट का सारा गणित गडबडा जाएगा। चाहे वित्त मत्री ने बडे जोश से अपने बजट के पक्ष में तर्क दिए, यह बात बिल्कुल साफ है कि बजट बनाते समय पूरी सावधानी नहीं बरती गयी और इस कारण बजट में बडे जोर से प्रक्षेपित स्वदेशी की भावना को धक्का ही लगा है।

□□□

50
राष्ट्रीय एजेंडा
( )

1. राष्ट्रीय एजेन्डा मे दिए गए विवरण

भाजपा गठबन्धन सरकार ने 18 मार्च 1998 को अपने सहयोगियो से विचार विमर्श के पश्चात अपना राष्ट्रीय एजेडा जारी किया। राष्ट्रीय एजेडे मे निम्नलिखित मदो का समावेश किया गया

यह हमारा सयुक्त वादा है एक ऐसा आश्वासन जो हम मिल-जुलकर पूरे देश के सामने प्रस्तुत कर रहे है। हमारे जेहन मे आजादी की स्वर्ण जयती वर्ष के अवसर पर याद किये गये ऐतिहासिक महत्व के मुद्दे मौजूद हैं। साथ ही, हमारे दिमाग मे बासवीं शताब्दी के अत और एक नयी शताब्दी के उदय के वक्त की मागो तथा उस वक्त ससद के दोनो सदनो द्वारा सवसम्मति से अगीकृत 'भारत के लिए कार्यक्रम' की प्रासंगिता ओर महत्व भी है। इस अवसर पर हम एक नये राजनीतिक युग जिसमे सहिष्णुता और आपसी समझदारी हो गतिशील आर्थिक विकास हो तथा मानवीयता के प्रिय मूल्य हो और उससे भी ज्यादा हमारा महान भूमि और उसके लोगो की नियति मे अडिग विश्वास हो।

शासन

1 हमारा प्रथम वादा हे देश को एक स्थायी स्वच्छ पारदर्शी आर सक्षम सरकार देने का, जो लोगो के सर्वांगीण विकास को सुनिश्चित करने मे कामयाब हो सके। इसके लिए सरकार, पुलिस एव अन्य नागरिक सेवाओ सहित समग्र प्रशासनिक सुधार के लिए समयबद्ध कार्यक्रम लागू करेगी।

अर्थव्यवस्था

2 हम लोग सुधार प्रक्रिया (Reform process) को जारी रखेगे। हमारा प्रयास होगा कि हम इस प्रक्रिया के तहत 'भारतीयो द्वारा भारत का निर्माण' के सिद्धात पर राष्ट्रीय अथव्यवस्था को एक मजबूत स्वदेशी स्वरूप प्रदान करे। इसके लिए हम बेरोजगारी उन्मूलन आधारभूत सरचना (Infrastructure) के विकास खासकर ऊर्जा एव विद्युत उत्पादन को प्राथमिकता देते हुए सुधारो की समीक्षा कर उसे पुनर्जीवन प्रदान करेंगे। हम सकल देशीय उत्पाद की दर को 7 8 प्रतिशत तक ले जाएगे ओर वित्तीय तथा राजस्व घाटे को नियंत्रित करेंगे। हम नीतियो तथा कायक्रमो को मानवीय चेहरा (Human face) देगे जिसमे गरीबी को पूर्णतया दूर करने को अंतिम लक्ष्य बनाया जाएगा। इसीलिए हमने 'बेरोजगारी हटाओ-गरीबी दूर करो' का नारा दिया ह।

3 हम विश्वीकरण (Globalisation) के प्रभावो का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करेगे तथा उसकी कमजोरियो को दूर करने के लिए तथा राष्टीय अथव्यवस्था देशी औद्योगिक इकाइयो तथा वित्तीय एव सेवा उपक्रमो को मजबूती प्रदान करने हेतु राष्ट्रीय स्थितियो आर आवश्यकताओ के अनुरूप एक समय सारिणी बनाएंगे।

4 हम कृषि ग्रामीण विकास सिचाई के क्षेत्र मे योजना व्यय का 60 प्रतिशत लगाएगे और करो मे छूट सहित विविध लाभो के द्वारा कृषि उत्पादन मे भारी वृद्धि करेगे ताकि कृषि बागवानी वाकिनकी खाद्य प्रसस्करण (Food processing) मत्स्य पालन आदि विकास के माध्यमो द्वारा जनता की क्रय शक्ति मे वृद्धि हो सके। साथ हा हम प्रभावकारी फसल बीमा भी लागू करेंगे। फार्म सब्सिडी (Farm subsidy) को भी हम जारा रखेगे तथा उसे और अधिक प्रत्यक्ष प्रभावकारी और विशिष्ट बनाएगे। मध्यम ओर लघु सिचाई परियोजनाओ पर विशेष ध्यान दिया जाएगा तथा विकास की सभावना के अनुरूप निवेश पर जोर दिया जाएगा।

5 हम एक राष्ट्रीय जल नीति निर्धारित करेंगे जिसके द्वारा विवादो का त्वरित निपटारा किया जा सके और निर्णयो को समयबद्ध रूप से लागू किया जा सके।

6 हम उचित लाभो प्रेरणाओ तथा मुख्य क्षेत्रो मे प्रत्यख विदेशी निवेश (Direct foreign investment) के द्वारा अगले पाच वर्षो मे राष्ट्रीय बचत को सकल देशीय उत्पाद के 30 प्रतिशत तक वढा देगे ताकि इसके जरिये राष्ट्रीय प्रयासो को लाभप्रद रूप में बढाया जा सके और गर प्राथमिक क्षेत्रो मे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पर रोक लगायी जा सके।

7 हम स्वरोजगार और अनिगमीय क्षेत्र मे काम करने वाले व्यक्तियो की सामाजिक सुरक्षा तकनीका और वित्तीय जरूरतो का गहन अध्ययन करके एक विकास बैंक की स्थापना करेंगे जिससे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के इस सबसे बडे क्षेत्र को बढावा मिल सके।

8 ऊर्जा एव विद्युत जैसे आधारभूत क्षेत्र के विकास के लिए जनता के पेसे के अलावा राष्टाय एव अन्तर्राष्टीय बाजार के साधना को भी आमंत्रित करेगे ताकि विकास को एक नयी गति मिल सके।

9 हम उद्योग को नोकरशाहा के शिकजे से मुक्त करने के लिए तत्सबधा सभी नियमो एव कानूनो की समीक्षा करेगे।

श्रम

10 हम सगाठत और असगठित दोनो तरह के श्रम को रास्टाय सपत्ति एव विकास मे बराबर का हिस्सेदार बनाएगे। पुरुषा एव महिलाओं को समान काम के लिए समान वेतन देने सबधी नियमो को हम कडाई से लागू करेंगे।

बेरोजगारी उन्मूलन

11 हर नागरिक के काम के अधिकार को मान्यता प्रदान करने हेतु नयी सरकार बेरोजगारी की समाप्ति पर जोर देगा।

खाद्यान्न सुरक्षा (Food security) और मूल्य स्थिरता

12 अगले पाच वर्षों मे खाद्यान्न सुरक्षा को सुनिश्चित कर एक भूखमुक्त भारत का निर्माण किया जाएगा सार्वजनिक वितरण प्रणाली मे इस तरह के सुधार ओर विकास किये जाएँगे कि ग्रामीण एव शहरी गरीबो की सेवा की जा सके। साथ हा हम सभी उचित तरीको ओर आवश्यक विधि निर्माण के द्वारा मूल्य स्थिरता को बहाल करेगे।

स्वास्थ्य और पेय

13 अगले पाच वर्षो मे सभी गावो तक पेय जल पहुचाया जाएगा। विभिन्न तरह के कार्यक्रमो द्वारा हम 'सभी को स्वास्थ्य सुविधाए प्रदान करने होंगे।

सभी को शिक्षा

14 हम निरक्षरता के पूर्ण उन्मूलन के लिए प्रतिबद्ध हैं। शिक्षा के क्षेत्र मे हम सरकारी और गेरसरकारी खर्च को सकल देशीय उत्पाद (Gross domestic product) के 6 प्रतिशत तक पहुचाना चाहते है। इसके लिए हम पाचवीं कक्षा तक सभी को मुफ्त शिक्षा देंगे।

सबके लिए आवास

15 राज्य सरकारो के साथ विमर्श द्वारा हम एक 'राष्टीय आवास और पुनवास नीति विकसित करने के लिए कटिबद्ध हैं जिसका उद्देश्य होगा सबके लिए आवास की व्यवस्था करना। इसके तहत हम हर वर्ष 20 लाख अतिरिक्त आवासीय इकाइयो का निर्माण करेंगे।

महिलाओ का सबलीकरण (Empowerment)

16 हम ससद और विधानसभाओ मे महिलाओ के लिए 33 प्रतिशत स्थान आरक्षित करने सबधी कानून का निर्माण करेंगे लडकियो के लिए कालेज स्तर तक मुफ्त शिक्षा की व्यवस्था तथा लघु सिचाइयो मे महिला उद्यमियो के लिए 'विकास बैंक' की स्थापना करेगे।

युवा शक्ति का विकास

17 राष्ट निर्माण के मिशन मे युवा शक्ति का भरपूर उपयोग किया जाएगा। इसके लिए एक 'राष्टीय पुनर्निर्माण बल (National Reconstruction Corps) बल का गठन किया जाएगा जिसका उद्देश्य होगा पर्यावरण सरक्षण बजर भूमि को उत्पादक बनाना वन विनाश को रोकना तथा साक्षरता का विस्तार करना। खेलो के विकास के लिए भी एक समयबद्ध कार्यक्रम बनाया जाएगा।

बच्चे

18 बच्चो के हित मे एक राष्टीय चार्टर पेश किया जाएगा। बच्चो के बीच निरक्षरता, भूख और स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव के पूर्ण उन्मूलन को सुनिश्चित करना हमारा लक्ष्य है। बाल श्रम को समाप्त करने के लिए भी आवश्यक कदम उठाये जाएँगे।

जनसख्या

19 प्रोत्साहन और दड के उचित और न्यायपूर्ण सम्मिश्रण द्वारा जनसख्या नियत्रण के उपाय अमल मे लाये जाएंगे।

सवैधानिक और कानूनी सुधार

20 पिछले 50 वर्षों के अनुभवो के आधार पर भारतीय संविधान की समीक्षा तथा आवश्यक अनुशसा करने के लिए एक आयोग का गठन किया जाएगा।

21 सरकारिया आयोग की आधार केद राज्य सबधो को मैत्रीपूर्ण बनाने के प्रयास किये जाएँगे तथा पचायत एव अन्य स्थानीय निकायो की भागीदारी के आधार पर सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया जाएगा। जिन राज्यो मे गरीबी रेखा के नीचे जनसख्या का प्रतिशत अधिक हैं उन पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

सभी राज्यो मे अति पिछडे इलाको की पहचान के लिए एक 'पिछडा क्षेत्र आयोग का निर्माण किया जाएगा, जो उन इलाको के समेकित विकास के उपाय भी सुझाएगा। इसके अलावा संविधान के आठवे अनुच्छेद मे उल्लिखत सभी 19

भाषाओ को राजभाषा का दर्जा देने की स्थितियो के अध्ययन के लिए एक समिति का गठन किया जाएगा।

22 गोस्वामी समिति की सिफारिशो के आधार पर दलबदल भ्रष्टाचार, राजनीति का अपराधीकरण और चुनावो मे धाधली को रोकने के लिए आवश्यक चुनाव सुधार कायक्रम लागू किये जाएगे।

23 एक 'राष्ट्रीय न्यायिक आयोग का गठन भी किया जाएगा जो उच्च न्यायालयो एव सर्वोच्च न्यायालय मे न्यायिक अधिकारियो की नियुक्ति की अनुशसा करेग' तथा उनके लिए एक आचार सहिता का निर्माण करेगा।

भ्रष्टाचार

24 प्रधानमत्री सहित किसी भी व्यक्ति के खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोपो की जाच के लिए एक अधिकरयुक्त लोकपाल कानून का निर्माण किया जाएगा।

नये राज्य

25 दिल्ली को पूर्ण राज्य दर्जा उत्तराचल वनाचल और छत्तीसगढ जैसे नये राज्यो का निर्माण किया जाएगा।

राष्ट्रीय सुरक्षा

26 सैन्य बलो के बीच तत्परता चुस्ती तथा मनोबल बहाल करने पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। साथ ही एक 'राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद (National Security Council) का किया जाएगा, जो देश पर मडराते सैन्य आर्थिक एव राजनीतिक खतरो का विश्लेषण करेगी तथा सरकार को उचित सलाह देगी। सुरक्षा भौगोलिक अखडता और राष्टीय एकता का सुनिश्चित करने के लिए परमाणुविक नीति का पुनर्मूल्याकन कर इसमे नाभिकीय (Nuclear weapons) के निर्माण को शामिल किया जाएगा।

आतरिक सुरक्षा

27 हम देश के सभी हिस्से के सभी नागरिको की सुरक्षा के लिए प्रतिबद्ध हैं। इसके लिए हम एक दगा मुक्त एव आतकवाद से रहित भारत के निर्माण के लिए प्रभावकारी कदम उठाएगे।

अन्तर्राष्ट्रीय सबध

28 पडोसी देशो के साथ पारस्परिक आधार पर शांतिपूर्ण सबध विकसित करने की कोशिश की जाएगी। हम विश्व व्यापार सगठन (World Trade Organisation) क मुद्दो पर अपनी कार्यसूची को समतामूलक मानवीय और शोपणरहित विश्व निर्माण के व्यापक परिप्रेक्ष्य में पुन परिभापित करेंगे।

सच्ची धर्मनिरपेक्षता

29 हम एक ऐसे समाज निर्माण के लिए प्रतिबद्ध है जिसमे जाति धर्म वर्ग वर्ण वश या लिग के आधार पर कोई भेदभाव न हो। 'सर्वपथ समादर और समानता के अनुरूप हम धर्मनिरपेखता के मूल्यो का पालन करेंगे। हम अल्पसख्यको के आथिक और शैक्षिक विकास के लिए प्रभावकारी कदम उठाएगे।

अनुसूचित जाति जनजाति और पिछडा वर्ग

30 अनुसुचित जाति जनजाति और पिछडे वर्गों के हितो की रक्षा की जाएगी। राज्य स्तर पर शैक्षिक सस्थानो मे उनके लिए दिये जा रहे आरक्षण को हम वैधानिक सुरक्षा प्रदान करेंगे। छुआछूत को हम जडमूल से साफ करेंगे तथा सामाजिक समरता के आधार पर सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए हम एक राप्टीय चार्टर पेश करेंगे।

पर्यावरण

31 पर्यावरण सरक्षण के लिए हम एक उचित वैधानिक तत्र की स्थापना करेगे तथा विकास और पारिस्थितिकी के बीच सतुलन के लिए एक राष्टीय पर्यावरण नीति का निर्माण करेगे।

32 प्रसार भारती

हम प्रसार भारती कानून को उसके मूल रूप से विकसित कर एक प्रभावकारी उपकरण बनाएंगे जो संसद के प्रति उत्तरदायी होगा। साथ ही हम प्रसारण अध्यादेश में आवश्यक परिवर्तन कर उसमे निजी प्रसारण की छूट देते हुए राष्ट्रीय हितो की भी रक्षा करेगे।

विज्ञान और तकनालाजी

33 विज्ञान और और तकनालाजी विकास को विभिन्न सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रों के साथ एकीकृत किया जाएगा।

सूचना तकनीक

34 हम मानते हैं कि भारत एक साफ्टवेयर महाशक्ति बनने की क्षमता रखता है। हम राष्ट्रीय सूचना नीति को लघु, मध्यम और दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य मे पुनर्परिभाषित करगे।

सहमति के आधार पर शासन की नयी संहिता

35 अतत हम इस बात मे विश्यास करते ह कि 100 करोड की आबादी वाले राष्ट्र की जनता पर सिर्फ बहुमत और अल्पमत के गणित आधार पर शासन नहीं किया जा सकता। इसलिए देश के सभी प्रमुख मुद्दों पर विरोधी पार्टियों तथा समाज के सभी तबको के बीच सवाद के द्वारा राष्ट्रीय सहमति विकसित करने के लिए प्रयास किया जाएगा।

निष्कर्ष

यह राष्टीय एजेंडा इस महान राष्ट्र के शासन को

संस्कृति और कृत्य को बदलनेके लिए प्रतिबद्ध एक औपचारिक और विश्वसनीय प्रतिज्ञापत्र है, जो देश को भूख, भय और भ्रष्टाचार जैसे तीन अभिशापों से मुक्त कर एक नये सपन्न, सबल और आत्मविश्वास से परिपूर्ण भारत मे परिवर्तित करने की ओर लक्षित है।

2. राष्ट्रीय एजेंडा—एक समीक्षात्मक अध्ययन

भाजपा नेतृत्व वाले गठजोड वाले राष्ट्रीय एजेंडा की समीक्षा से पता चलता है कि चाहे इसमें मुख्यत भाजपा के लोकघोषणा पत्र की छाप प्रतिबिंबित है किन्तु कई मुद्दे जिनपर सहमत प्राप्त नहीं हो सकता छोड दिए गए हैं। सरकार का दायित्व सभालने पर भाजपा विवाद ग्रस्त होने की अपेक्षा देश के विकास पर अधिक बल देना चाहती है। इसी कारण राष्ट्रीय एजेंडा मे अयोध्या मे राम मन्दिर के निर्माण सविधान के अनुच्छेद 370 को समाप्त करने और समान नागरिक संहिता (Uniform civilcide) को लागू करने का उल्लेख नहीं किया गया। कारण यह है कि प्रधान मत्र अटल बिहारी वाजपेयी भली भाँति जानते हैं कि चाहे ताकिक दृष्टि से समान नागरिक संहिता लागू होनी चाहिए और ऐसा प्रावधान हमारे संविधान मे किया गया था परन्तु यदि इस मुद्दे पर निहित स्वार्थो के कारण विरोधी दल समर्थन नहीं देते, तो इसे लागू करना सभव नहीं। यही बात अनुच्छेद 370 (Article 370) को समाप्त करने की है। अत वास्तविकता का तकाजा है कि इस परिस्थिति को स्वीकार करते हुए अभी इन मुद्दो को छोड दियचा जाए और देश की मूल समस्याओ की ओर ध्यान केन्द्रित किया जाए। इस वास्तविकता को स्वीकार करने का अर्थ कुछ कट्टरपथी राजनीतिक विश्वासघात मानते हैं परन्तु यह दृष्टिकोण सही नहीं है क्योंकि इन मुद्दो को जीवित रखने के लिए जो परिश्रम करना पडे, उसकी अपेक्षा उस ताकत को ऐसे क्षेत्रों मे लगाना कहीं अधिक लाभदायक होगा जिनमे आम राय बनायी जा सकती है और जो मुद्दे जनजीवन से अधिक जुडे हुए हैं।

राष्ट्रीय एजेंडा नयी सरकार की दृष्टि का सकेत मात्र है। इसे इस प्रकार से यदि साचे तो आर्थिक क्षेत्र मे इसका मुख्य बल 'रोजगारोन्मुख विकास' (Employment oriented growth) की ओर है। इस सम्बन्ध में राष्ट्रीय एजेंडा मे उल्लेख किया गया

"हम सुधार प्रक्रिया को जारी रखेंगे और इसमे स्वदेशी पर बल देंगे ताकि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास का आधार इस बात पर हो कि भारत का विकास भारतीयो द्वारा किया जाएगा। इस दृष्टि से बेरोजगारी की समाप्ति को सर्वोच्च महत्व देते हुए सुधार प्रक्रिया की समीक्षा की जाएगी और और इसे मजबूत बनाया जाएगा ताकि इसमे आधारसरचना का तीव्र गति से विकास हो, विशेषकर ऊर्जा और पावर जनन के क्षेत्र मे। इस प्रकार सकल देशीय उत्पादन (Gross domestic product) की वृद्धि-दर 7-8 प्रतिशत तक लायी जाएगा और राजकोषीय एव राजस्व घाटे को नियन्त्रित किया जाएगा। हम राष्ट्रीय विकास के प्रयासो को एक मानवीय चेहरा (Human face) देने का प्रयास करेंगे ताकि इस प्रकार गरीबी को पूर्णतया समाप्त करने का अन्तिम लक्ष्य प्राप्त किया जा सके। इसके लिए हमारा नारा होगा बेरोजगारी हटाओ।"

राष्ट्रीय एजेंडा में उत्पादन-प्रधान विकास का समन्वय रोजगार प्रधान विकास के साथ करने का दृढ निश्चय सही दिशा मे एक सराहनीय कदम है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय एजेंडा मे दो क्षेत्रो की पहचान की गयी है—वे ह कृषि और लघु उद्योग। विकास रणनीति की दृष्टि से राष्ट्रीय एजेंडा मे यह उल्लेख किया गया

"कृषि, ग्राम विकास, सिचाई और अन्य विविध प्रोत्साहनो के लिए योजना व्यय का 60 प्रतिशत सुनिश्चित करेंगे ताकि इन क्षेत्रो मे सार्वजनिक विनियोग किया जा सके और इस प्रकार कृषि उत्पादन मे भारी वृद्धि प्राप्त की जाए ताकि कृषि, बागवानी खाद्य-विधायन, मत्स्य आदि विकास के माध्यम बनाए जा सके जिसमे जनसामान्य की क्रयशक्ति मे वृद्धि हो सके। प्रभावी फसल बीमा योजनाए चालू की जाएगी। पशुपालन दुग्धशालाओ, विशेषकर गाय और उसकी सतान को बढावा देने की ओर विशेष प्रयास किए जाएगे। यह रोजगार-जनन (Employment generation) का एक रास्ता है जिसके द्वारा ग्राम एव नगर क्षेत्रो मे भूख और गरीबी दूर की जा सकती है। हम फार्म साहाय्य (Farm Subsidies) जारी रखेंगे परन्तु उन्हें अधिक प्रत्यक्ष, कुशल और विशिष्ट बनाने का प्रयास करेंगे। मध्यम और छोटे पैमाने की सिचाई योजनाओ की ओर विशेष ध्यान दिया जाएगा, इस सम्बन्ध मे विनियोग पर बल विकास के सामर्थ्य के अनुसार दिया जाएगा।"

"हम स्वरोजगार और अभिनिगमीय क्षेत्र (Unincorporated Sector) की वित्तीय, तकनालाजीय और सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओ का व्यापक अध्ययन करेंगे और अर्थव्यवस्था के इस सबसे बडे भाग की प्रोन्नति के लिए एक विकास-बैंक स्थापित करेंगे। निस्सन्देह इस क्षेत्र मे रोजगार और स्वरोजगार (Self employment) के लिए बहुत भारी सामर्थ्य है। इसके साथ साथ वित्तीय आलम्बन सस्थानो के अतिरिक्त, हम अन्य संस्थान भी कायम करेंगे जो हमारे कारीगरों, छोटे पैमाने के उद्योगो, ग्राम, खादी, पावरलूम, हाथ करघा, हस्तशिल्प और अन्य ऐसे उद्योगो को सेवाए, तकनालाजी और विपणन सुविधाएं उपलब्ध करेंगे। ये और

कृषि रोजगार जनन के लिए ऐसा असीमित क्षेत्र है जिसका अभी तक विदोहन नही किया गया।

यदि *भारतीय अर्थव्यवस्था* मे *रोजगार की वृद्धि से देखे* तो कृषि स्वरोजगार और अनिगमीय क्षेत्र द्वारा लगभग 80 प्रतिशत रोजगार उपलब्ध कराया जाता है। भारत मे जो क्षेत्र पिछडे माने जाते हे उनमे विशेषकर कृषि का पिछडापन एक प्रधान कारण है। चूंकि बडे पैमाने के उद्योगो मे केवल 55 *लाख व्यक्तियो को रोजगार प्राप्त है* इसलिए देश की *विशाल* श्रमशक्ति का रोजगार उपलब्ध कराने और इनमे व्यापक अल्परोजगार को रोजगार उपलब्ध कराने और इनमे व्यापक अल्परोजगार की स्थिति को समाप्त करने के लिए इन क्षेत्रो का विकास हमारी भावी रणनीति का मूलाधार होना चाहिए। इस दृष्टि से राष्ट्रीय एजेंडा ने *अर्थव्यवस्था के मर्म केन्द्रो की* सही पहचान की है। यह कहा जा सकता हे कि यह गाधीवादी दृष्टिकोण है परन्तु भारत जैसे विशाल देश के लिए रोजगार जनन का यही एकमात्र सही उपाय है। बहुराष्ट्रीय निगम हमे आधार सरचना (Infrastructure) के विकास मे *सहायोग दे, यह तो स्वीकार्य है* परन्तु *उपभोग वस्तु क्षेत्र* मे प्रवेश कर हमारे लघु उद्योगो मे कार्य कर रहे लाखो व्यक्तियो बेरोजगार कर दे, यह राष्टीय हित की दृष्टि से स्वीकार्य नहीं। इसलिए बहुराष्ट्रीय निगमो को केवल चयनात्मक क्षेत्रो मे ही प्रवेश की इजाजत दी जानी चाहिए। इसी कारण राष्टीय एजेडा मे *साफ शब्दो में यह उल्लेख किया गया*

'प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग (Direct foreign investment) के केन्द्रक क्षेत्र (Core sector) मे ही प्रोत्साहन दिया जाएगा ताकि यह राष्टीय प्रयाप मे पूरक बन सके और गैर प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रो मे प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग निरुत्साहित किया जाएगा। आर्थिक सुधारो के जोर के दौर मे राष्ट्रीय एजेडा की इस रणनीति को लागू करने के लिए जो साहस चाहिए, वह नयी सरकार अपने व्यवहार मे यदि कारगर रूप मे जुटा पाएगी यह केवल समय ही बताएगा। हम केवल यह कह सकते हे कि नयी सरकार इस दृढ निश्चय को असली जामा पहनाए।

राष्टीय एजेडा मे विश्वीकरण (Globalisation) के प्रभावो की बडी सावधानी से समीक्षा करने और अपनी *राष्टीय परिस्थितियो और आवश्यकताओ के अनुसार* इसका विनियन करने का निश्चय किया गया है ताकि राष्टीय अर्थव्यवस्था को दुर्बल बनाने की अपेक्षा इसे मजबूत बनाया जा सके ओर देशीय औद्योगिक आधार और वित्तीय एव सेवा क्षेत्रो को बढावा दिया जा सके। इस प्रकार राष्ट्रीय एजेडा विश्वीकरण के दुष्प्रभावो से देशीय उद्योगो और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को बचाने के लिए वचनबद्ध है। भले ही इसे स्वदेशी नीति कहा जाए या राष्टीय नीति परन्तु सत्य तो यह है कि विदेशी विनियोग को जहा आमंत्रित करना जरूरी है *वहा यह भी आवश्यक है कि विदेशी विनियोग हमार* अर्थव्यस्था पर इतने हावी न हो जाए कि वे हमे अपना नीतियो को विदेशी हितो के अनुरूप ढालने पर मजबूर कर सके।

इस सम्बन्ध मे विश्व व्यापार सगठन के (World *Trade Organisation*) के सदर्भ मे *अपनी नीति स्पष्ट* करते हुए राष्टीय एजेडा मे उल्लेख किया गया विश्व व्यापार सगठन से सम्बन्धित विषयो पर हम अपनी कार्यनीति एक ऐसी विश्व व्यवस्था के निर्माण के लिए तय करेगे जो अपने सर्वव्यापक लक्ष्य के आधार पर न्यायिक मानवीय और *शोषण मुक्त सामाजिक व्यवस्था को बढावा दे। इस उद्देश्य* के लिए हम विकासशील देशो के साथ मिलकर विस्तृत वैश्विक व्यापार प्राथमिकता प्रणाली (Global Trade Preference System) के माध्यम द्वारा व्यापार और आर्थिक सहयोग की पद्धति का निर्माण करने का प्रयास करेगे।

राष्टीय एजेडा मे आधार सरचना (*Infrastructure*) पर प्रधान बल देने का जिक्र किया गया है। इसके लिए राष्टीय एव अन्तर्राष्टीय स्रोतो से साधन जुटाने का प्रयास किया जाएगा। इस प्रकार देश मे ऊर्जा और पावर की कमी को दूर करके विकास प्रक्रिया को और त्वरित किया जाएगा।

राष्टीय एजेडा मे सभी के लिए मकान उपलब्ध कराने के लक्ष्य से प्रति वर्ष 20 लाख अतिरिक्त मकान बनाने का लक्ष्य तय किया है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य विशेषत गरीब परिवारो के लिए आवास मुहैय्या कराना होगा।

सभी के लिए आगामी पाच वर्षों मे पीने का पानी उपलब्ध कराया जाएगा और यह प्रयास किया जाएगा कि सभी के लिए स्वास्थ्य सुविधाए उपलब्ध करायी जाए।

काम के अधिकार को स्वीकार करते हुए नया सरकार का मुख्य बल 'बेरोजगारी हटाओ' पर होगा। रोजगार विहीन विकास (Jobless Growth) की वर्तमान प्रवृत्ति की अपेक्षा सरकार लाभकारी रोजगार जनन को विकास की सफलता का मानदण्ड बनाएगी। हमारा नये विनियोग और कृषि स्वरोजगार, अनिगमीय क्षत्र आधार सरचना ओर गृह निर्माण पर *विशेष बल देने का उद्देश्य यह हे कि ये क्षेत्र भारी* रोजगार विस्तार के माध्यम बन सके हे।

जहा तक पवित्र भावनाओ का सम्बन्ध हे यह सब सही जान पडता है किन्तु यह और भी बेहत्तर होता यदि राष्टीय एजेडा मे जहा अर्थव्यवस्था मे सकल देशाय उत्पाद की वृद्धि दर 7 8 प्रतिशत प्रति वर्ष करने का लक्ष्य रखा है वहा साथ मे रोजगार की वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य भी तय किया

जाता ताकि इससे न केवल अतिरिक्त श्रम शक्ति के लिए रोजगार उपलब्ध कराया जा सकता। जब तक देश मे रोजगार की वार्षिक वृद्धि दर 3 4 प्रतिशत नहीं की जाती तब तक बेरोजगारी को दूर करना सभव नहीं। हम आशा कर सकते हैं कि योजना आयोग को सरकार यह निर्देश देगी कि वह विनियोग-आबटन (Investment allocation) का ऐसा ढाचा नौवीं योजना के दौरान कायम करे जो रोजगार प्रधान हो और इस प्रकार रोजगार की 3-4 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि प्राप्त की जाए। इसके लिए यह जरूरी है कि प्रत्येक योजना से जहा उत्पादन सम्बन्धी लक्ष्य तय किए जाते हैं वहा साथ साथ रोजगार लक्ष्य भी तय किए जाए।

राष्ट्रीय एजेडा मे राष्ट्र के तीन मुख्य अभिशापो के विरुद्ध सघर्ष करने का सकल्प किया गया है—वे हैं भूख, भय और भ्रष्टाचार। यदि इन अभिशापो से देश मुक्त हो जाता है तो भारत एक समृद्ध, सशक्त और आत्मविश्वास वाला देश बन सकेगा।

राष्ट्रीय एजेडा नयी सरकार की इच्छाओ की अभिव्यक्ति है। इसमे बहुत सी आदर्शवादी बाते भी की गयी हैं जिन्हे व्यवहार मे पालन करते समय अनेक अडचनें उत्पन्न हो सकती है। इसलिए अब जरूरी है कि रकार उन ठोस उपायो की रूपरेखा तैयार करने की ओर ध्यान दे जो इस एजेंडे के कार्यान्वयन के लिए सही औजार बन सकते हैं। प्रबन्ध का लक्ष्य होता कि किसी कार्य को सही ढंग से करना और नेतृत्व का लक्ष्य होता है सही कार्यों को करना। राष्ट्रीय एजेडा के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकार ने सही कामो की पहचान कर ली है और अब प्रश्न उन्हे कुशल ढग से लागू करना है। इसके लिए कुशल प्रबन्ध की आवश्यकता है जिसकी तैयारी मे जुट जाना अनिवार्य है। उद्योग मत्री श्री सिकन्दर बख्त ने परिस्थिति को ठीक परिप्रेक्ष्य मे रखा है सरकार का लक्ष्य न तो अन्ततोगत्वा स्वदेशी है और न ही अन्ततोगत्वा उदारीकरण है। सरकार को बडी सावधानी से राष्ट्रीय हितों का ध्यान मे रखते हुए सही मिश्रण तैयार करना होगा। यहा हमारा प्रबन्ध कौशल मध्य मार्ग की मर्यादाओ को तय करने मे सहायता देगा। अत नयी सरकार अपने नेक इरादो को किस हद तक असली जामा पहना सकेगी यह राष्ट्रीय एजेडा की सफलता की कसौटी होगी।

प्रधानमत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा हाल ही मे की गई घोषणा के अनुसार लघु स्तर उद्योगो मे विनियोग की सीमा जो सयुक्त मोर्चा सरकार द्वारा आबिद हुसैन समिति की सिफारिशो के आधार पर 3 करोड रुपये कर दी गयी थी अब कम करके 1 करोड रुपये कर दी गयी है। यह एक सही दिशा मे कदम है। इसका भारतीय निर्यात सस्थाओं के महासघ और लघु उद्योगो की भारतीय परिषद द्वारा स्वागत किया गया है।

प्रधान मंत्री ने अर्थव्यवस्था मे नयी रूह डालने के लिए 90 दिन का कार्यक्रम तय किया है। जिस हद तक भाजपा नेतृत्व वाली सरकार अपनी नीतियो को स्पष्ट करते हुए उनका अनुपालन करती जाएगी उस हद यह अपनी विश्वसनीय स्थापित कर सकेगा कि ये अपने पूर्व के शासको की तुलना मे बेहत्तर शासन व्यवस्था कर पायी है।

□□□

51

नौवीं पंच वर्षीय योजना (1997–2002)
(NINTH FIVE YEAR PLAN-1997-2002)

सयुक्त मोर्चा सरकार के आधीन तैयार की गयी नौवीं योजना मार्च 1998 को जारी की गयी। यह बात निश्चित नहीं कि क्या भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्वाधीन सरकार जो मार्च 1998 मे बनायी गयी इस योजना को अपनाएगी। चूंकि यह औपचारिक दस्तावेज प्रोफेसर किया गया, इस कारण इस योजना की संक्षिप्त रूप रेखा नीचे दी जा रही है।

1. परिप्रेक्ष्य, उद्देश्य और विकास की रणनीति (Perspectives, Objectives and Strategy of Development)

नौवीं योजना रण नीति के चार महत्वपूर्ण आयामो के सदर्भ मे विकसित की गयी है और इसमे विकास का 15 वर्षीय परिप्रेक्ष्य दिया गया है। जीवन का गुणवत्ता उत्पादक रोजगार का जनन क्षेत्रीय सतुलन और आत्मनिर्भरता के रूप मे इस नीति के मुख्य आयामो को अभिव्यक्त किया जा सकता है। यह त्वरित आर्थिक विकास पर केन्द्रित होगी जिसमे कृषि के विशेष कार्य भाग पर बल दिया जाएगा क्योंकि इसके निर्धनता को समाप्त करने और अधिक रोजगार जनन के प्रबल प्रभाव हो सकते हैं। इस प्रकार युक्तिसगत नीतियो द्वारा 15 वर्ष तक लगातार आर्थिक विकास को बढावा दिया जाएगा।

(क) जीवन की गुणवत्ता (Quality of Life)

योजना मे खाद्य एव पौष्टिक सुरक्षा (Nutritional security) को आश्वसत करने के लिए एक अच्छी रणनीति की आवश्यकता स्वीकार की गयी है। यह भी जरूरी होगा कि एक विस्तृत और उचित रूप मे लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System) का निर्माण किया जाए। बढती हुई जनसख्या के स्वास्थ्य एव पर्यावरण पर प्रभाव सुरक्षित पीने के पानी के अभाव और अपर्याप्त नगरीय सफाई की समस्याओ के समाधान के लिए उचित नगरीकरण (Urbanisation) द्वारा बीमारिया की रोकथाम महामारियो पर नियत्रण और नगरीय ठोस एव ताल अपशिष्ट उत्पाद प्रबनध (Solid and Liquid Waste Management) के प्रोग्राम तैयार करने होगे। इसको मजबूत बनाने के लिए साथ साथ प्राथमिक स्वास्थ्य सुरक्षा और स्त्री एव बाल-विकास के उपायो का विस्तार करना होगा। सामाजिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्राथमिक शिक्षा विशेषकर स्त्रियो की शिक्षा का केन्द्रीय स्थान है और इस पर और अधिक बल देना होगा। इस दृष्टि से समय बद्ध रूप मे निम्नलिखित मुख्य सेवाओ को उपलब्ध कराने के प्रयास करने होंगे।

(*i*) सुरक्षित पीने के पानी (*ii*) प्राथमिक सवास्थ्य सेवाओ की उपलब्धि (*iii*) प्राथमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण (*iv*) सभी बेघर परिवारो को रहने के लिए सार्वजनिक गृह निर्माण के लिए सहायता उपलब्ध कराना (*v*) बच्चो को पोषणीय भोजन के रूप मे सहायता (*vi*) सभी ग्रामो एव बस्तियो को सडको से जोडना और (*vii*) ऐसी सार्वजनिक वितरण प्रणाली का निर्माण करना जो निर्धनो के लिए लक्षित हो।

(ख) उत्पादक रोजगार का जनन

नौवीं योजना का एक प्रमुख उद्देश्य विकास प्रक्रिया मे ही अधिक उत्पादक रोजगार (Productive employment) उत्पन्न करना है और इसके लिए ऐसे क्षेत्रो उपक्षेत्रो और तकनालाजी पर बल देना होगा जो श्रम प्रधान (Labour intensive) हो और इसका प्रयोग ऐसे क्षेत्रो मे करना होगा जिनमें बेरोजगारी और अल्परोजगार की इच्छा दरे विद्यमान हो।

रोजगार की गुनवत्ता (Quality) मे उन्नति प्राप्त करने के लिए ऐसी परिस्थितिया कायम करनी होगी जिनमे उत्पादिता (Productivity) तीन रूप से बढे ताकि श्रम न्यायोचित रूप मे भाग प्राप्त करने का दावा कर सके। अल्परोजगार की व्यापक अभिव्यक्ति और श्रम के अनियमतीकरण (Casualisation of labour) को स्वीकार करते हुए गरीबो के लिए रोजगार के अवसर बढाने की जरूरत है विशेषकर ऐसे व्यक्तियो के लिए जो मौसमी व्यवसायो मे काम करते हैं।

(ग) क्षेत्रीय सतुलन (Regional Balance)

बाजार-आधारित वद्धि (Market based growth) बिना सरकारी हस्तक्षेप से अधिक पिछडे क्षेत्रो तक पहुच नहीं सकती। बडे पैमाने पर क्षेत्रीय असतुलन को दूर करने के लिए कम सम्पन्न राज्यो को आधार सरचना (Infrastruc ture) के लिए अधिक सार्वजनिक विनियोग जानबूझ कर आबंटित किया जाए। क्षेत्रीय असमानताओ विशेषकर जोवन स्तर की असमानताओ को दूर करने के लिए कृषि तथा अन्य ग्रामीण क्रियाओ का विकास अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके लिए न केवल पिछडे क्षेत्रो मे कृषि की उत्पादिता को बढाना जरूरी है बल्कि देश के अन्य क्षेत्रो और ग्राम क्षेत्रो के बीच समन्वय की मात्रा भी बढानी अनिवार्य है। ऐसे क्षेत्र जिनमे आय का स्तर सापेक्षत ऊचा है परन्तु मानवीय विकास का स्तर नीचा है उचित सार्वजनिक हस्तक्षेप (Public intervention) करना होगा ताकि सामाजिक आध ार सरचना के रूप मे अर्थात् सुरक्षित पेय जल प्राथमिक स्वास्थ्य रक्षा और प्राथमिक शिक्षा सुविधाए उपलब्ध करायी जा सकें। विनियोग को आकर्षित करने और विकास को राज्य सरकारो द्वारा प्रोन्नत करने के प्रयासो का मार्गदर्शन सहकारीसघवाद (Co-operative federalism) की भावना द्वारा करने की जरूरत है ताकि ऐसी सावजनिक नीति को पहल की जानी चाहिए और ऐसी कार्यवाही की जानी चाहिएउ कि जिसमें सभी राज्य सामूहिक हित मे एक सी नीति अपनाए।

(घ) आत्मनिर्भरता (Self reliance)

आत्मनिर्भरता हमारी विकास नीति और रणनीति का मुख्य अग रहेगी।

(i) भुगतान शेष मे टिकाऊपन बनाए रखने के लिए और विदेशी ऋण से बचाव के लिए जरूरी है कि निर्यात-आध ार के विस्तार पर ध्यान केन्द्रित किया जा सके।

(ii) आत्मनिर्भरता का तकाजा है कि विनियोज्य ससाधनो (Invvestible resources) का लगभग सम्पूर्ण भाग देशीय स्रोतो से जनित हो ओर विदेशी स्रोतो का प्रयोग केवल उस सीमा तक किया जाए जिस तक कि विदेशी दायित्व निभाने की सामर्थ्य उपलब्ध हो।

(iii) आत्मनिर्भरता की किसी भी रणनीति में खाद्य में स्वावलम्बिता (Self sufficiency) एक बुनियादी अग है। अत भारत को कृषि की वृद्धि दर का लक्ष्य अपनी आवश्यकताओं से ऊचा रखना होगा ताकि बुरे मानसून के वर्षो में उसे मजबूर होकर खाद्यान्नों का भारी मात्रा मे आयात न करना पडे।

(iv) आत्मनिर्भरता मे तकनालाजीय आत्मनिर्भरता (Technological self reliance) का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। जबकि उत्तम और सर्वोचित तकनालाजी की प्राप्ति जहा से भी उपलब्ध हो सके वाछनीय है दीर्घकाल की दृष्टि सि यह अनिवार्य है कि सभी महत्त्वपूर्ण तनालाजियो मे देशीय सामर्थ्य का विकास किया गया। इस पहलू का महत्त्व आज और भी बढ गया है क्योंकि बहुत सी तकनालाजियो के आयात पर प्रतिबन्ध लगाए जा रहे हैं।

नौवीं योजना के उद्देश्य (Objectives of the Ninthd Plan)

नौवीं योजना का लक्ष्य "वद्धि के साथ सामाजिक न्याय और समानता है। नौवीं योजना के विशिष्ट लक्ष्य जो बाजार शक्तिया पर अधिक विश्वास और सार्वजनिक नीति की अनिवार्यताओ से उत्पन्न होते हैं इस प्रकार है —

(i) कृषि ओर ग्राम विकास को प्राथमिकता देना ताकि पर्याप्त उत्पादक रोजगार कायम हो सके ओर गरीबी को दूर किया जा सके

(ii) कीमता मे स्थिरता के साथ अर्थव्यवस्था की वद्धि दर को त्वरित करना

(iii) सभी के लिए खाद्य ओर पौष्टिक सुरक्षा उपलब्ध कराना और ऐसा करते समाज के कमजोर वर्गों का विशेष रूप मे ध्यान रखना

(iv) सभी को समय बद्ध रूप मे बुनियादी न्यूनतम सेवाए (Basic Minimum Services) उपलब्ध कराना, इनमे पीने का सुरक्षित पानी प्राथमिक स्वास्थ्य रक्षा सुविधाए, सवव्यापक प्राथमिक शिक्षा, आवास और यातायात एव परिवहन द्वारा सभी से सम्बन्ध स्थापित करना

(v) जनसख्या की वृद्धि दर पर नियत्रण प्राप्त करना

(vi) विकास प्रक्रिया पर्यावरणीय पोषणीयता के आश्वासन के लिए सामाजिक गतिशीलता और सभी स्तरों पर जन सहयोग बढाना

(vii) स्त्रियो और सामाजिक दृष्टि से कम सम्पन्न वर्गों के लिए अर्थात् अनुसूचित जातिये जनजातियों और अन्य पिछडे वर्गों तथा अल्पसख्यको को अधिकार सम्पन्न (Em powerment) बनाकर सामाजार्थिक परिवर्तन और विकास के एजेन्ट बनाना

(viii) जन सहभागिता (People s Participation) को प्रोन्नत एव विकसित करना और इसके लिए सहभागी सस्थानों अर्थात् पचायती एज सस्थानों, सहकारिताओ और अन्य स्वत सहायता समूहो को बढावा देना और

(ix) आत्मनिर्भरता के निर्माण के प्रयासो को सबल बनाना।

विकास रणनीति (Development Strategy)

(*i*) विकास रणनीति का आधार राज्य के कार्यभाग को बदस्तूर बनाए रखना है परन्तु इसके कार्यान्वयन और विषय वस्तु मे परिवर्तन करना होगा। सरकार का बाजार मे हस्तक्षेप प्रतियोगिता की मात्रा बढाने के लिए अनिवार्य है। इसके साथ साथ एकाधिकार एव अन्य प्रतिबन्धात्मक व्यवहारो के लिए उचित कानून बनाने जरूरी है। इसी प्रकार, अधिनिर्णयन (Adjudication) और ऐसे अनुशासन को लागू करने के लिए भी कानून बनाने होगे। इस बात की भी आवश्यकता है कि लाइसेस प्रणाली के शेष लक्षण विशेशकर उपभोग वस्तु क्षेत्र मे समाप्त कर दिए जाए।

(*ii*) नौवीं योजना सहकारी सघवाद (Co operative federalism) की अवधारणा पर आधारित ह जिसमे राज्यो को अधिक स्वतत्रता दी जाएगी कि वे न केवल अपनी प्राथमिकताए निर्धारित करे बल्कि सार्वजनिक हस्तक्षेत्र (Public intervention) के रूप और उन्हे वस्तुओ तथा से सेवाओ को उपलब्ध कराने मे भी स्वतत्रता होगी। इसके लिए पचायती राज सस्थानो को अधिक ससाधन प्रदान किए जाएगे और उन्हे अधिक जिम्मेदारी निभानी होगी। इसके अतिरिक्त उन्हे अपने ससाधन जुटाने के लिए अधिक अधिकार भी सौपने होंगे। पचायती राज सस्थान जमीनी स्तर पर विकास कार्यक्रमो को पहुचाने की प्रमुख एनेन्सियो का कार्य भी करेगे।

(*iii*) वित्तीय क्षेत्र के विनियमन (Deregulation) के कारण यह जरूरी हो गया है कि सख्त विवेकशील मापदण्ड (Prudentialnorus) कायम किए जाए और सरकार को इसपर अपनी निगरानी भी बढानी होगी।

(*iv*) आर्थिक वृद्धि ओर विकास के लिए पर्याप्त मात्रा गुणवत्ता (Quality) और विश्वसनीय आधार सरचना कायम करनी होगी ताकि देश अन्तर्राष्ट्रीय रूप मे प्रतिस्पर्धा कर कर विदेशी विनियोग को आकर्षित कर सके। यदि आधार सरचना के अभाव को दूर करना है तो निजी क्षेत्र को विकास प्रक्रिया मे भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना होगा।

(*v*) समष्टि-आर्थिक प्रबन्ध (Macro economic management) की मुख्य चिन्ता राजाकोषीय एव राजस्व घाटा है। सरकार के राजस्व घाटे (Revenue deficit) को सीमित करने की आवश्यकता को इस दृष्टि से देखना चाहिए कि सार्वजनिक परिसम्पत्तियो (Public assets) का अनुकूलतम प्रयोग हो सके आर वर्तमान सामाजिक योजनाओ /प्रोग्रामो की प्रभाविकता बढायी जा सके।

(*vi*) इस बात को भी आवश्यकता है कि एक पारदर्शी सब्सिडी प्रणाली कायम की जाए जो चयनात्मक रूप मे विशेष लक्षित समूहों की ओर निर्देशित हो।

(*vii*) ओद्योगिक एव वित्तीय नीति ढाचे को इस प्रकार परिवर्तित करना होगा कि यह देशय बचत (Domestic Saving) को बढाने के लिए विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग के तीव्र विस्तार को प्रोन्नत करे और विदेशी उधार पर निर्भरता को कम करे।

(*viii*) भुगतान शेष की स्थिरता इस बात पर निर्भर करती है कि हम निर्यात की वद्धि दर को किस सीमा तक बढा सकते हे। इस कारण निर्यात उन्मुख योजनाओ को पुन मजबूत बनाने की जरूरत है।

(*ix*) उत्पादिता (Productivity) और गुणवत्ता की पर्याप्त वद्धि सुनिश्चित करने के लिए तकनालाजी नीति (Technology policy) का विकास आवश्यक है। इससे भारताय वस्तुओ/उत्पादो की अन्तर्राष्टीय बाजार मे स्पर्द्धा शक्ति बढ सकेगी।

(*x*) पर्यावरण सरक्षण को समग्र विकास प्रक्रिया के साथ जोडना होगा ताकि लोक कल्याण मे वद्धि हो सके।

अत विकास प्रक्रिया का बल नीति सम्बन्धी आयोजन (Planning for pol cy) होना चाहिए ताकि इससे आर्थिक प्रणाली को जो सकेत मिले उनके परिणामस्वरूप विभिन्न आर्थिक एजेन्ट ऐसा व्यवहार करे जो कि हमारे राष्टीय उद्देश्यो से युक्ति सगत हो।

2 समष्टि-आर्थिक आयाम और नीति सम्बन्धी ढाचा (Macro economic Dimensions and Policy Frame work)

वृद्धि दर एव विनियोग लक्ष्य

स्थिर कीमतो के साथ अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर को त्वरित करना नौवीं योजना के उद्देश्यो का केन्द्रीय लक्ष्य है। किन्तु वृद्धि दर, रोजगार और गरीबी को कम करने के लक्ष्यो मे सम्बन्ध क्षेत्रीय वृद्धि दर के ढाचे पर निर्भर करता है यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि जनसख्या के वंचित भाग और देश के पिछडे क्षेत्रो को विस्तृत विकास प्रक्रिया मे किस हद तक कामयाबी से जोडा जा सकता है। इसी सदर्भ मे कृषि विकास को विशेष रूप में सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी है क्योकि यह ऐसा विकास का ढाचा निर्धारित करता है जिसमे सकल देशीय उत्पाद मे त्वरण के साथ बेरोजगारी एव गरीबी मे तेजी से कमी होता है।

आठवीं योजना के दौरान प्रचलित कीमतो पर सकल देशीय उत्पाद की 6 5 प्रतिशत की वद्धि दर की प्राप्ति की

संभावना है जिसके लिए औसत विनियोग दर सकल देशीय उत्पाद के 25 प्रतिशत और वर्धमान पूंजी उत्पाद अनुपात (Incremental capital output ratio) 3 9 आका गया। आठवीं योजना के दौरान देशीय बचत महत्त्वपूर्ण रूप मे बढ कर सकल देशीय उत्पाद का 24 1 प्रतिशत हो गयी। मुख्य चिन्ता का विषय यह है कि कुछ आधार सरचना क्षेत्रो मे वर्धमान पूजी उत्पाद अनुपात मे महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है। इससे अधिक गभीर समस्या यह है कि सार्वजनिक विनियोग कुल विनियोग के अनुपात के रूप मे आठवीं के 45 प्रतिशत के लक्ष्य से गिर कर 33 6 प्रतिशत हो गया अर्थात् सकल देशीय उत्पाद के 10 4 प्रतिशत के लक्ष्य से गिरकर 8 4 प्रतिशत। सकल देशीय उत्पाद मे आधार सरचना क्षेत्र मे 2 प्रतिशत की गिरावट का आर्थिक एव सामाजिक क्षेत्रो पर प्रभाव पडा है।

जनवरी 1997 मे राष्ट्रीय विकास परिषद (National Development Council) ने नौवीं योजना के लिए 7 प्रतिशत प्रतिवर्ष के लक्ष्य को स्वीकृति प्रदान की। यह अनुभव किया गया कि यह विकास लक्ष्य व्यवहार्य बन सकता है यदि विकास के बल मे कुछ परिवर्तन हो और नीति सम्बन्धी कुछ निर्णय कर लिए जाए। इसमे विनियोग दर मे तीव्र वृद्धि करके इसे आठवीं योजना के स्तर से 3 3 प्रतिशत ऊपर उठाना होगा जिसमे से 2.1 प्रतिशत देशीय बचत और 1.2 प्रतिशत विदेशी बचत से प्राप्त किया जाएगा। (देखिये तालिका 1)

तालिका 1: नौवीं योजना (1997 2002) मे समष्टि मानदण्ड

	आठवीं योजना	नौवीं योजना
	(प्रचलित कीमतो पर सकल देशीय उत्पाद का प्रतिशत)	
1 देशीय बचत दर	24 1	26.2
2 चालू खाते का घाटा	0 9	2.1
3 विनियोग दर	25.0	28.3
4 वर्धन पूजी उत्पाद अनुपात	3 9	4 0
5 सकल देशीय उत्पाद की वृद्धि दर	6.5	7.0
6. निर्यात वृद्धि दर प्रतिशत प्रतिवर्ष	10.5	14.5
7 आयात वृद्धि दर (प्रतिशत प्रतिवर्ष)	14 1	12.2

स्रोत योजना आयोग, नौवीं पचवर्षीय योजना (1997 2002)

इस परिदृश्य मे कुल रूप मे राष्ट्रीय विनियोग जो आठवीं योजना के दौरान 1,394 हजार करोड रुपये था, सकल देशीय उत्पाद का 25 प्रतिशत, बढकर नौवीं योजना मे (1996-97 की कीमतो पर) 2,205 हजार करोड़ रुपये अर्थात् 28.3 प्रतिशत हो जाएगा। निजी उपभोग व्यय में 6.5 प्रतिशत की दर से वार्षिक वृद्धि होगी जिसका अभिप्राय यह है कि प्रति व्यक्ति उपभोग की वृद्धि दर 4 7 प्रतिशत प्रति वर्ष होगी।

चाहे 1996-97 मे परिवार बचत (Household saving) की दर 19 2 प्रतिशत थी परन्तु नौवीं योजना मे यह जानबूझ कर एक रूढिवादी अनुमान के रूप मे 18 9 प्रतिशत मानी गयी है। नौवीं योजना मे निजी निगम क्षेत्र की बचत 4 5 प्रतिशत होने का अनुमान है जबकि यह आठवीं योजना मे 3 7 प्रतिशत और 1996 97 मे 4 1 प्रतिशत थी। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है कि सार्वजनिक क्षेत्र की बचत म काफी वृद्धि होनी चाहिए—सकल देशीय उत्पाद के 1 6 प्रतिशत से 2 8 प्रतिशत। इसमे सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो की बचत सकल देशीय उत्पाद का 3 8 प्रतिशत रखी गयी है जोकि आठवीं योजना की 3.5 प्रतिशत की प्राप्ति से कुछ हद तक ऊची है। सार्वजनिक बचत को बढाने की आवश्यकता राजकोषीय सन्तुलन की पोषणीयता से भी सम्बन्धित है। सातवीं योजना मे केन्द्र सरकार के राजकोषीय घाटे (Fiscal deficit) को सकल देशीय उत्पाद के औसतन 4 1 प्रतिशत रखने का लक्ष्य रखा गया और इसी प्रकार समग्र सार्वजनिक क्षेत्र की उधार आवश्यकता को सकल देशीय उत्पाद के 6 9 प्रतिशत तक रहने का अनुमान है। अत नौवीं योजना के अन्त तक सरकार (जिसमे केन्द्र एव राज्य सरकारें शामिल हैं) के राजस्व घाटे (Revenue deficit) के लगभग शून्य की स्थिति तक पहुच जाने का लक्ष्य है। निजी निगम क्षेत्र (Private Corporate Sector) का विनियोग बढकर सकल देशीय उत्पाद का 8 8 प्रतिशत हो जाएगा जबकि आठवीं योजना मे यह 4 33 प्रतिशत था। परिवार क्षेत्र का विनियोग जो आठवीं योजना के दौरान सकल देशीय उत्पाद का 8 4 प्रतिशत था के बढकर 9 7 प्रतिशत हो जाने का अनुमान है। सार्वजनिक क्षेत्र का भाग जो वस्तुत सकल देशीय उत्पाद का 8 6 प्रतिशत था, बढकर 9 8 प्रतिशत हो जाने की प्रत्याशा है। (देखिये तालिका 2)

आर्थिक सुधारो ने ऐसी परिस्थितिया कायम कर दीं हैं कि इनमे प्रत्यक्ष और पोर्टफोल्यो विनियोग (Portfolio Investment) का अन्तर्प्रवाह हो सकता है। चाहे गैर-ऋण कायम करने वाले विदेशी अन्तर्प्रवाहो (Foreign inflows) से अपेक्षाकृत कुछ अधिक पोषणीय चालू खाते का घाटा सहन किया जा सकता है जोकि शुद्ध ऋण-आधारित वित्त पोषण मे सभव नहीं था, किन्तु इस बात को नौवीं योजना के चालू खाते के घाटे (Current Account Deficit) का परिकलन करते समय दृष्टि मे नहीं रखा गया।

तालिका 2 **नौवीं योजना मे संसाधनों का अन्तः क्षेत्रीय प्रवाह**

हजार करोड रुपये

	सार्वजनिक क्षेत्र	निजी निगम क्षेत्र	परिवार क्षेत्र	कुल
कुल विनियोग	**759**	**691**	**755**	**2 205**
	(9 8)	(8 8)	(9 7)	(28.3)
वित्त उपलब्ध कराया गया				
1 अपनी बचत	218	351	1 471	2 040
	(2 8)	(4 5)	(18 9)	(26 2)
2 उधार				
2 परिवार क्षेत्र से	501	215	716	0
	(6 5)	(2 7)	(9 2)	
2 2 विदेशी स्रोतों से	40	125	0	165
	(0.5)	(1 6)		(2 1)

नोट ब्रैकट मे दिए गए आंकडे सकल देशीय उत्पाद का प्रतिशत हैं।
स्रोत योजना आयोग **नौवीं पंचवर्षीय योजना** (1997 2002)

यह मान लिया गया है कि जिस हद तक विदेश से इक्विटी विनियोग (Equaty investment) के गैर-ऋण कायम करने वाले प्रवाह (Non-debt creating flows) आकर्षित कर लिए जाते है उनसे योजना का वित्त-प्रबन्ध आसान हो जाएगा। अत नोवी योजना सकल देशीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप मे चालू खाते पर 2 1 प्रतिशत के घाटे और 2 5 प्रतिशत के शुद्ध विदेशी अन्तर्प्रवाह पर आधारित है।

अर्थव्यवस्था का विकास-निष्पादन (Growth performance) न केवल उपलब्ध विनियोज्य ससाधनो पर निर्भर करता है बल्कि इनके क्षेत्रीय प्रयोग के ढाचे पर भी। कृषि को इसमे विशेष महत्त्व दिया गया है क्योकि अन्य क्षेत्रो के विकास की तुलना मे इसके विकास से गरीबी अपेक्षाकृत अधिक तेजी से कम होती है। कारण यह है कि कृषि विकास के कारण एक ओर तो रोजगार मे वृद्धि होती है और दूसरी ओर बुनियादी खाद्य पदार्थों की कीमते सापेक्षत स्थिर रहती है। खाद्य एव पोषणात्मक सुरक्षा प्रदान करने और क्षेत्रीय असमानताओ कि़ो कम करने मे इसका केन्द्रीय महत्त्व है। नावी योजना मे कृषि क्ी औसत वार्षिक वृद्धि-दर का लक्ष्य 4 5 प्रतिशत रखा गया है। दूसरा महत्त्व का क्षेत्र आध ार सरचना सुविधाओ की उपलब्धि है जोकि न केवल 7 प्रतिशत की वृद्धि दर का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है बल्कि पाइप-लाइन विनियोग (Pipeline Investment) के रूप मे पर्याप्त परियोजनाए उपलब्ध कराना है ताकि योजना के बाद के काल मे यह वृद्धि दर कायम रखी जा सके। इसके लिए आवश्यक हे कि सावजनिक क्षेत्र अपनी कुशलता एव वित्ताय निष्पादन को काफी हद तक उन्नत करे जिससे न केवल सावर्जनिक क्षेत्र के लिए आवश्यक ससाधन जुटाए जा सके बल्कि यह निजी क्षेत्र से भी आधार सरचना विनियोग (Investructural investment) आकर्षित कर सके।

चाहे नौवीं योजना मे परिकल्पित वर्धन पूजी-उत्पाद अनुपात (Incremental capital-output ratı- ICOR) या तो तदनुरूप आठवी योजना के बराबर है या कुछ कम है पर समग्र पूजी-उत्पाद अनुपात 4 03 आठवीयोजना के अनुपात 3 9 के औसत से थोडा अधिक है। इसका मुख्य कारण गत वर्षों मे विनियोग मे तीन क्षेत्रो मे हुए अभाव की पूर्ति करना है। ये क्षेत्र है खनन एव खदन बिजली गैस और पानी और रेल परिवहन जिन मे यह अनुपात ऊचा है।

नौवीं योजना सार्वजनिक क्षेत्र मे विनियोग को आठवीं योजना के दौरान 30 प्रतिशत के निम्न स्तर से बढाकर लगभग 34 प्रतिशत तक ले जाना चाहती है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए केन्द्र को नौवी योजना के लिए कुछ सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आवश्यक विनियोग का केवल 3 75 प्रतिशत भार सहन करना होगा और इसका मुख्य दायित्व राज्य सरकारो (27 9 प्रतिशत) और सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमो (58 35 प्रतिशत) पर होगा।

तालिका 3 : **विकास की क्षेत्रीय संरचना**

	क्षेत्र	आठवीं योजना		नौवीं योजना	
		वृद्धि दर (प्रतिशत)	वर्धमान पूंजी उत्पाद अनुपात	वृद्धि दर (प्रतिशत)	वर्धमान पूंजी उत्पाद अनुपात
1	कृषि एव सम्बन्धित क्षेत्र	3 7	2 7	4 5	2.2
2.	खनन एव खदान	4 1	6 3	7 7	5 9
3	विनिर्माण	9.5	4 7	9 7	4 4
4	बिजली गैस और पानी	7 6	10 3	10 6	16 3
5	निर्माण	4.4	3 3	5 7	2.7
6.	व्यापार	10 0	0 8	7 1	0 8
7	रेल परिवहन	2.4	14 0	3.4	12 9
8.	अन्य परिवहन	7.5	7 5	7 9	6.5
9	सचार	13 9	7 3	11.2	7 1
10	वित्तीय सेवाए	8 9	0 8	10 1	0 7
11	सार्वजनिक प्रशासन	4 3	8 1	4 9	5 6
12	अन्य सेवाएं	5.3	6 0	5 5	5 8
	कुल	6.5	3 9	7.0	4.0

स्रोत योजना आयोग नौवीं पचवर्षीय योजना (1997 2002)

आरभ से ही सभी पचवर्षीय योजनाए इस अन्तर्निहित मान्यता पर आधारित रही ह कि देश म कुल विनियोग माग (Investment demand) उपलब्ध विनियोज्य ससाधनो (Investible resources) से लगातार अधिक रहेगी। आठवा योजना के दौरानकुल विदेशी पूजी अन्तप्रवाह आर चालू खात के घाटे के बीच अन्तर रहने के कारण विदेशा मुद्रा रिजव लगातार बढते चले गए ह आर इससे यह बात पता चला

है कि बचत की अपेक्षा कोई सीमाबन्धन इस का के दौरान प्रभावी रहा। चिन्ता का विषय राजकोषीय एव आधार सरचना परिस्थितिया हैं जहा पर आधार सरचना पर विनियोग का मुख्य भाग सार्वजनिक क्षेत्र मे ही रहेगा।

नौवीं योजनामे क्षेत्रीय विनियोग की रूपरेखा निजी क्षेत्र मे सभावित विनियोग लक्षित सार्वजनिक क्षेत्र विनियोग और शेष विनियोग की पूर्ति सार्वजनिक या निजी क्षेत्र किसी भी द्वारा किए जाने पर आधारित है। सार्वजनिक क्षेत्र को उपलब्ध ससाधनो की सीमाओ को देखते हुए, *सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के बीच ठीक ठीक क्षेत्रीय विनियोग* का अनुमान लगाना सभव नहीं। चाहे दोनो क्षेत्रो मे त्रुटि की मात्रा अधिक नहीं है। इन दोनों क्षेत्रो मे महत्त्वपूर्ण असतुलन के कुछ क्षेत्र विद्यमान है। पहला, अन्य परिवहन जिसमें नागरिक विमान परिवहन और जमीनी परिवहन शामिल है (रेलवे को छोड़कर) और वास्तविक जायदाद में आवश्यकता से अधिक निजी विनियोग आकर्षित होगा जबकि मत्स्य क्षेत्र और विनिमाण क्षेत्र म अभाव अनुभव किए जा सकते है। अत उधार व्यवस्था को परिवर्तित करने के सभी प्रयास करने होंगे ताकि इन क्षेत्रो में वास्तविक जायदाद (Real estate) और अन्य परिवहन की अपेक्षा अधिक विनियोग आकर्षित हो सके। किन्तु चिन्ता का मुख्य क्षेत्र सार्वजनिक उपयोगिताओं (Public utilities) का क्षेत्र हैं जिसमें बिजली गैस और जल सभरण शामिल है जिनमे निजी क्षेत्र एव सावजनिक क्षेत्र मे विनियोग आबटन के अनुमान के पश्चात् कुल विनियोग के आधे से भी अधिक भाग के लिए अतिरिक्त ससाधन जुटाने होगे। इस समसया का मूल कारण अर्थव्यवस्था में विनियोज्य ससाधनो की अनुपलब्धि नहीं है वल्कि सावजनिक उपयोगिताओं (Public utilities) द्वारा पयाप्त आन्तरिक ससाधन न जुटा पाना है और परिणामत पूजी बाजार से अतिरिक्त ससाधन गतिमान न कर पाना है। अत पावर क्षेत्र के सुधार मे फौरी कारवई और इस प्रकार अन्य उपयोगिताओ में ऐसे ही सुधार करने होगे ताकि वर्तमान अभाव और न बढ जाए और इस क्षेत्र के लिए ससाधन जुटाने के अन्य तराके ढूढने होंगे। इस सदर्भ मे वतमान सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो मे सरकारी हिस्सा पूजी और ऋण के विनिवेश (Disinvestment) द्वारा विशेष कायभाग अदा किया जा सकता है। यदि नौवी योजना के दौरान उपयोगिताओ के क्षेत्रो मे विनियोग का आवश्यकताओ को पूरा करना है तो कुछ वतमान सावजनिक क्षेत्र के उद्यमों मे हिस्सा पूजी के विनिवेश और सरकारी ऋण सम्बन्धी प्रतिभूतियों के विक्रय पर बल देना होगा।

तालिका 4 **नौवीं योजना के दौरान क्षेत्रीय विनियोग की आवश्यकता और उसके स्रोत**

हजार करोड़ रुपये

	आवश्यक विनियोग	प्रक्षेपित निजी विनियोग	सार्वजनिक क्षेत्र केन्द्र	राज्य	अतिरिक्त आवश्यकता 5=(1 (2+3+4))
	(1)	(2)	(3)	(4)	
1 कृषि	194.9	1171	22.7	59.5	-44
2 वानिकी	3.8		1.8	2.0	
3. मत्स्य	25.3	11.3	0.6	7.4	6.0
4 खनन एव खदान	74.2		56.8	2.4	15.0
5. विनिर्माण					
(क) पजीकृत	513.0	376.3	93.8	10.2	327
(ख) अपंजीकृत	198.1	160.9	0.6	1.6	35.0
6 बिजली आदि	364.5	47.1	68.8	72.0	176.6
7 निर्माण	43.5	24.3	14.0	8.1	2.9
8 व्यापार	51.7		1.7	10.1	39.9
9 होटल आदि	17.3		0.5	0.5	16.3
10 रेल परिवहन	36.8		46.5		-9.7
11 अन्य परिवहन	139.0	113.1	39.6	39.5	53.2
12 सचार	67.8		49.7		18.1
13 बैंकिंग एवं बीमा	96.6		2.6		93.7
14 वास्तविक जायदाद आदि	225.0	240.2		5.5	20.7
15 लोक प्रशासन आदि	107.8		24.0	88.2	-4.4
16 अन्य सेवाएं	46.2	20.1	5.6	22.4	1.9
कुल	22 0.5	1110.4	429.3	329.4	336.1

नोट केन्द्र और राज्यों द्वारा सार्वजनिक विनियोग में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के प्रतिनिधियों द्वारा किया गया विनियोग शामिल है

स्रोत योजना आयोग, *नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997 2002)*

कृषि विकास की रणनीति

आठवीं योजना के दौरान कषि में सावजनिक क्षेत्र के विनियोग में महत्त्वपूर्ण कमी अनुभव की गयी जिसकी नौवी योजना के दौरान इजाजत नहीं दी जा सकती। विनियोग की सरचना मे *भी दीर्घ परिपाक अवधि* (Long gestation period) की अपेक्षा अल्प परिपाक अवधि वाले प्राजैक्टो की ओर परिवतन करना होगा, जिसमे वतमान ससाधनो का अनुकूलतम प्रयोग अवश्य है (विशेषकर सिचाइ क्षमता में)। निजी विनियोग का सबसे महत्त्वपूर्ण निर्धारक उधार है और इसकी उचित ब्याज दर पर उपलब्धि सुनिश्चित करनी होगी। अन्य सहायक नीतिया जिनकी *आवश्यकता है* मे निम्नलिखित उल्लेखनाय है

(i) सक्षम न्यूनतम समर्थन कामत नाति (Minimum support price policy) जो किसानो को *पयापत प्रोत्साहन* दे और इसके साथ साथ भारतीय कषि वस्तुओ को विश्व बाजार मे प्रतियोगी बनाए,

(ii) एक स्पष्ट आदान सब्सिडी (Input Subsidy)

तालिका 5 नौवीं योजना के दौरान कृषि उत्पादन के मूल्य मे लक्षित वृद्धि दरे

	वार्षिक चक्रवृद्धि दर	नौवीं योजना में लक्षित वृद्धि दर
1 कृषि फसले	2.77	3 82
(क) खाद्यान्न	2.67	3 05
(*i*) चावल	3 41	2.75
(*ii*) गेहू	3 44	3 75
(*iii*) मोटे अनाज	0 67	2.20
(*iv*) दालें	1 16	3.50
(ख) तिलहन	5 81	5 25
(ग) गन्ना	2 79	4 00
(घ) फल और सब्जियां	4 55	3 00
(ड) अन्य कषि उत्पाद	1 40	2.64
(*i*) रूई	3.57	4 00
(*ii*) चाय	2.65	5 00
(*iii*) कॉफी	4.51	5 00
(*iv*) गर्म मसाले	3 92	4 25
(*v*) रबड	8.50	9 00
2. पशुधन4.57	6.59	
(क) दुग्ध समूह	4 89	7 04
(ख) गोश्त और मुर्गीपालन समूह	5 66	7.50
(ग) अन्य पशुधन उत्पाद	1 50	2.00
3 मत्स्य 6 31	6.50	
4 कुल 3 21	4.50	

नोट कषि में कृषि फसले पशुधन और मत्स्य शामिल किए गए हैं। वाणिकी को शामिल नहीं किया गया।

स्रोत योजना आयोग नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997 2002)

निर्धारित करते समय पूर्वीय और प्रायद्वीपीय क्षेत्रो के उच्च क्षमता वाले क्षेत्रो मे छोटे किसानो के हितो को ध्यान मे रखा जाएगा।

(*iii*) नये अधिक उपजाऊ किस्म के बीजो को अपनाने की गति मे ढील को पलटने की आवश्यकता है जिसके लिए *कृषि अनुसन्धान और विस्तार सेवाओ पर खर्च बढाना होगा।*

(*iv*) सिचाई सुविधाओ का विस्तार करना होगा और सिचाई की सभाव्य क्षमता और वास्तविक उपयोग मे अन्तर कम करना होगा।

नौवीं योजना मे त्वरित कृषि विकास की 4 5 प्रतिशत वद्धि दर प्राप्त करने के लिए अधिक फसल तीव्रता (Crop ping intensity) और अधिक उत्पादिता तभी प्राप्त की जा सकती है यदि निम्नलिखित शर्तें पूरी को जाए —

(*i*) फसल तीव्रता को 134 2 प्रतिशत से बढाकर 140 प्रतिशत करना

(*ii*) प्रति हैक्टेयर उत्पादन का मूल्य 1996 97 की कीमतो पर 15 326 रुपये से बढाकर 17 688 रुपये करना

(*iii*) सकल फसल-आधीन क्षेत्र को 1 905 लाख हैक्टेयर से बढाकर 1 993 लाख हैक्टेयर करना और

(*iv*) उर्वरक उपभोग को 143 3 लाख टन से बढाकर 200 लाख टन करना।

कृषि और गैर फार्म क्षेत्रों (Non farm sectors) मे प्रतिगामी और अग्रगामी सम्बन्धो (Backward and farward linkages) के कारण एक गहरा परस्पर सम्बन्ध है। तीव्र *कषि विकास के लिए ग्रामीण गैर फार्म क्रियाओ को प्रोत्साहन* देने की आवश्यकता है। कृषि मे भी विविधता लाने की जरूरत है। इसमे पशुपालन दुग्धशालाए और मत्स्य (Fish eries) द्वारा कषि उत्पादन मे 4 5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त करने मे मुख्य योगदान दिया जा सकता है। इस वृद्धि दर को बनाए रखने के लिए देशीय माग और निर्यात दोनो मे तेज वृद्धि अनिवार्य है। कृषि उत्पादन मे लक्षित उच्च वृद्धि दर और निर्यात दोनो के लिए कषि विपणन भाण्डारग्राह और वितरण-आधारसरचना (Distribution Infrastructure) करना होगा। पैकेजिग वर्गीकरण और कषि वस्तुओ के प्रमाणीकरण (Certification) और भावी बाजारो के विकास की ओर विशेष ध्यान देना होगा।

आधार संरचना और मूल उद्योग (Infrastructure and Basic Industries)

7 प्रतिशत की विकास दर प्राप्त करने के लिए ओर इसे प्रक्षेपित काल मे और त्वरित करने के लिए आवश्यक आधार *सरचना का निर्माण अनिवार्य है।* इसमे सबसे पहली प्राथमिकता तो चल रही योजनाओ को तेजी से पूरी करने को दी जानी चाहिए ताकि आधार सरचना सुविधाओ की उपलब्धि बढायी जा सके। उचित कीमत निर्धारण और लागत वसूली की समस्याओ का शीघ्रअतिशीघ्र समाधान करना होगा। उचित कीमत निर्धारण से न केवल सार्वजनिक प्राधिकारो को ससाधनो की उपलब्धि की मात्रा मे वृद्धि होगी बल्कि इससे निजी क्षेत्र के लिए भी आधार सरचना प्रौजैक्टो को सक्षम आर आकर्षक बनाने मे भी सहायता मिलेगी। यह रणनीति सभी उपक्षेत्रो के लिए एक जैसी नहीं हो सकती और इनमे से प्रत्येक के लिए अलग रणनीति अपनानी होगी। (देखिए तालिका 5)

पावर नौवीं योजना के दौरान बिजली को माग जो 1996 97 मे 327 अरब किलोवाट घण्टे की बढकर 2001 2002 मे 505 अरब किलोवाट घण्टे हो जाएगी। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए 1996 97 की 84 912 मेघावाट की जनन क्षमता के विरुद्ध 131 243 मेघावाट

जनन क्षमता कायम करनी होगी। किन्तु नौवीं योजनाके दौरान व्यवहार्य अतिरिक्त सामर्थ्य 40245 मेगावाट रहने की प्रत्याशा है। इस प्रकार आधार ऊर्जा अभाव (Base energy shortage) जो 1996 97 मे 11.5 प्रतिशत था कम होकर 1 4 प्रतिशत हो जाएगा और पीक अभाव (Peak shortage) 18 प्रतिशत से कम होकर 11 6 प्रतिशत हो जाएगा। पावर क्षेत्र मे रणनीति का मुख्य बल निम्नलिखित रूप मे होगा—

(*i*) वर्तमान प्लान्टो से लाभ को अधिकतम करने के लिए प्लान्ट लोड कारक (Plant load factor) को उन्नत करना होगा सचारण एव वितरण का हानि (T & D losses) को कम करना होगा।

(*ii*) बिजली के टैरिफ को युक्तियुक्त बनाना होगा

(*iii*) केन्द्र और राज्यो के स्तरो पर स्वतन्त्र विनियामक निकाय (Regulatory bodies) स्थापित करना और

(*iv*) विभिन्न अन्तिम प्रयोगकर्ताओ द्वारा माग प्रबन्ध और ऊर्जा सरक्षण के उपाय करने होगे।

तालिका 6 **वाणिज्यिक ऊर्जा के अन्तिम उपभोग के लिए माग प्रक्षेपण**

	1994 95	2001 02	2006 2007	2011 2012
बिजली (अरब कि वा घ)	89 4	50 5 1	761 9	1 130 6
		(8.3)	(8 6)	(8 2)
पैट्रोलियम उत्पाद (लाख मीट्रिक टन)	638	1069	1 550	८243
		(7 7)	(7 7)	(7 7)
कोयला (लाख मीट्रिक टन)	796	1 22	1,587	2,109
		(6.3)	(5 4)	(5 9)
प्राकृतिक गैस (करोड घन मीटर)	1 211 0	1 663 9	1934 6	208.2
		(4 6)	(3 1)	(2 7)

नोट । पावर जनन के लिए माग को छोडकर
ब्रैकट मे दिए गए आकड़े इस काल के दौरान वार्षिक चक्रवृद्धि दर के रूप मे है

कोयला—नौवीं योजना के अन्त तक कोयले की माग बढकर 4 180 लाख टन हो जाएगी जबकि 1996 97 मे यह 2 960 लाख टन थी। देशीय स्रोतो से उत्पादन 2001 2002 तक बढकर 3 600 लाख टन हो जाने की संभावना है। नौवीं योजना की आवश्यकता को पूरा करने के लिए देशीय उत्पादन मे 20 000 करोड रुपये करने के लिए देशीय उत्पादन म 20,000 करोड़ रुपये का निवेश करना जरूरा है।

पैट्रोलियम—पैटोलियम उत्पादो और प्राकतिक गैस का कुल अन्तिम ऊजा उपभोग म भाग जो अस्सी के दशक मे लाभग 35 प्रतिशत था, बढकर 1996 97 मे लगभग 54 प्रतिशत हो जाएगा। देश रूक्ष तेल और पैट्रोलियम उत्पादो मे बहुत अधिक निर्भर हैं और आने वाले वर्षों में यह निभरता और भी बढ जाएगी। तेल क्षेत्र मे निम्नलिखित प्राथमिकताए है

(*i*) देशी रूक्ष तेल उत्पादन को पर्यवेक्षण, मण्डार प्रबन्ध (Reservoir Management) को उन्नत करने और तेल की प्राप्ति की मात्रा बढाकर अधिक किया जा सकता है।

(*ii*) गैस के प्रयोग मे और सुधार किया जा सकता है।

(*iii*) अतिरिक्त आधार सरचना के रूप मे रूक्ष तेल और पेटोलियम उत्पादो के लिए बन्दरगाहो सम्बन्धी सुविधाए, पाइप लाइन, टैंकर, रेल वैगन आदि स्थापित की जानी चाहिए।

(*iv*) वर्तमान प्रशासित कीमत निर्धारण प्रणाली शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करना होगी। सीमा कीमतो (Border prices) का रूक्ष तेल और पैटोलियम उत्पादो के कीमत निर्धारण के लिए मार्गदर्शी सिद्धान्त के रूप मे प्रयोग करना चाहिए।

रेलवे—लम्बी दूरी के यातायात के लिए रेले सबसे उपयुक्त हैं परन्तु कुल वस्तुओ एव सवारियों के यातायात मे इनके भाग मे समय के साथ भारी कमी हुई है। रेलवे परिवहन के अनुकूलतम प्रयोग के लिए निम्नलिखित उपाय सोचे गए है —

(*i*) रेलो के सामर्थ्य विस्तार (Capacity expansion) के लिए चल स्टाक (Rolling stock) अर्थात सवारी एव माल गाडियो के डिब्बो एव इजनो मे वद्धि, एक डिब्बे के वापसी समय (Turn round time) को कम करना, गाडियो की औसत रफ्तार बढानी होगी और विभिन्न गाडियो के बीच समय के अन्तर को कम करना होगा।

(*ii*) माल और सवारी यातायात के बीच क्रास सब्सिडीकरण (Cross Subsidisation) को कम करना होगा और इसके लिए टैरिफ को युक्तियुक्त बनाना होगा और माल और सवारी यातायात के बीच अनुपात को बढाना होगा।

सडके—वस्तुओ के यातायात की गति को तेज करने और देश के भागो के साथ सडक परिवहन का सम्पर्क तेज करने के लिए निम्नलिखित उपाय करने होंगे —

(*i*) अधिक यातायात वाले मार्गों मे अधिक लेन कायम करना

(*ii*) जहा पर भी सभी मौसमो के लिए अच्छी सडके उपलब्ध नहीं हैं उनका निर्माण करना,

(*iii*) निजी विनियोग को सडक परिवहन क्षेत्र में सक्षम बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के उपाय करना, जैसे प्रयोगकर्ताओं से दानव्य (Charges) वसूल करना भूमि का विकास और कर समबन्धी रियायतें।

बन्दरगाहे— भारत मे बन्दरगाहो की उत्पादिता बहुत ही नीची है। इस सम्बन्ध म जिन दिशाओ मे सुधार की जरूरत है वे हैं —

(*i*) जहाजो के वापसी के समय मे सुधार के लिए सभी मुख्य बन्दगाहो पर रात्रि जहाजरानी सुविधाओ को उन्नत करना। इसके अतिरिक्त बन्दरगाह आधार सरचना के अनुरक्षण (Maintenance) को भी उन्नत करना होगा।

(*ii*) माल की ढुलाई के लिए यत्रीकृत उपायो का प्रयोग करना

(*iii*) निजी क्षेत्र के सहयोग को बढावा देना

(*iv*) बन्दरगाहो पर विभिन्न प्रकार के टैरिफ निश्चित करने के लिए स्वतत्र टैरिफ विनियामक प्राधिकरण की स्थापना।

विदेशी क्षेत्र और अन्तर्राष्ट्रीय आयात

आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए किसी भी सफल रणनीति के लिए एक सक्षम विदेशी क्षेत्र एक महत्त्वपूर्ण अग है। इसके लिए एक उचित मिश्रित नीति अपनानी होगी जिसमे राजकोषीय नीति मौद्रिक नीति विदेशी मुद्रा विनिमय दर नीति आयात निर्यात नीति औद्योगिक नीति विदेशी विनियोग नीति विदेशी उधार न ति और विदेशी सहायता नीति का समन्वय करना होगा। सरकार का समेकित राजकोष घाटा कम करना जरूरी है और मौद्रिक नीति ऐसी होनी चाहिए जो सरकार एव उत्पादक क्षेत्र की उधार की उचित आवश्यकताओ और स्फीति नियत्रण एव विदेशी मुद्रा बाजार मे अच्छी परिस्थितिया कायम करने मे सन्तुलन स्थापित करे।

निर्यात पर बल देने का उद्देश्य अपरिहार्य आयात के लिए केवल विदेशी मुद्रा अर्जित करना नही। इसके तीन मुख्य कारण है। पहला विश्व व्यापार सघ का सदस्य होने कारण भारत एक निश्चित समय अवधि के अन्दर खुली अर्थव्यवस्था (Open economy) बनने के लिए वचनबद्ध है और इसके लिए अनुकूल परिस्थितियो का सफलतापूर्ण प्रबन्ध नौवीं योजना के दौरान करना आवश्यक है। दूसरे, देशीय उत्पादन ढाचे और देशीय माग ढाचे के बीच तीव्र सामर्थ्य निर्माण (Capacity creation) के काल मे असतुलन कायम होने की भारी सभावना है। इस असतुलन को विदेशी व्यापार से ही दूर किया जा सकता है। तीसरे, अर्थव्यवस्था की त्वरित वृद्धि दर के आयोजन के लिए विदेशी विनियोग के अपेक्षाकृत अधिक अन्तर्प्रवाह के कारण यह अनिवार्य है कि भुगतान के भावी भार के रूप मे ब्याज लाभाश और पूजी लाभ (Capital hsomd) के प्रबन्ध का भी आयोजन किया जाए।

नौवीं योजना के दौरान आयात की 12 2 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर कायम रखी जा सकती ह जिसका अर्थ यह → सक्ल देशीय उत्पा" की तुलना मे आयात की अन्तर्निहित लोच (Implicit elasticity) 1 75 हागी जबकि यह आठवीं योजना के दौरान 1 6 थी। नौवीं योजना मे निर्यात का लक्ष्य 14 5 प्रतिशत प्रति वर्ष रखा गया है और इसके लिए निर्यात विरोधी प्रवृत्ति को कम करने की आवश्यकता है जोकि अभी भी बनी हुई है। इसके लिए प्रोत्साहन ढाचे को व्यापार योग्य (Tradable) वस्तुओ एव सेवाओ की ओर मोडना होगा और इसे गैर व्यापार योग्य वस्तुओ से हटाना होगा। इसके अतिरिक्त देशीय विक्रय के विरुद्ध निर्यात की सापेक्ष लाभदायकता को उन्नत करना होगा। कृषि निर्यात पर विशेष बल देना होगा।

तालिका 7 **भुगतान-शेष और इसका नौवी योजना मे वित्त प्रबन्ध**

1996 97 की कीमतों पर हजार करोड़ रुपये

	1996 97	2001 2002	नौवीं योजना
निर्यात	1199	2359	9163 (11 8)
आयात	1639	2911	11161 (15 0)
व्यापार शेष	-44 0	55 2	249 8 (3 2)
शुद्ध अदृश्य मदें	30 8	16 2	84 8 (1 1)
चालू खाते पर अधिशेष	13 2	3J 0	165 0 (2 1)
वित्त प्रबन्ध किया गया			
शुद्ध विदेशी सहायता	0 5	1 8	6 0 (0 1)
शुद्ध विदेशी ऋण	15 5	11 0	37 7 (0 7)
विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग	8 7	25 5	93 2 (1 2)
शुद्ध पोर्टफोलियो विनियोग	9 3	8 9	38 8 (0 5)
कुल पूंजी अन्तर्प्रवाह	34 0	47 2	195 7 (2 5)
रिजर्व में परिवर्तन	20 8	8 2	3)7 (0 4)

नोट 1 शुद्ध विदेशी ऋण मे अनिवासी भारतीयों की जमा और अल्पकालीन उधार शामिल हैं।

2 ब्रैक्ट में दिए गए आकडे सक्ल देशीय उत्पाद (GDP) का प्रतिशत हैं।

स्रोत योजना आयोग **नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997 2002)**

व्यापार अवरोधको (Trade barriers) पर नियत्रणो मे लगातार कटौती के परिणामस्वरूप विदेशी विनिमय दर (Ixchange rate) नीति के मुख्य उपकरण के रूप मे उभरी है और इसे निर्यात प्रोत्साहन का प्रधान उपाय मानना चाहिए। नौवीं योजना के दौरान विदेशी विनिमय दर को देश के औसत कीमत स्तर के रूप मे जानबूझ मूल्यह्रास करना होगा और इसके पूरक उपाय के रूप मे एक कडी स्फीति विरोधी नीति अपनानी होगी। प्रोत्साहन ढाचे को निर्यात के पक्ष मे परिवर्तित करने के अन्य मुख्य सहायक के रूप मे निर्यात पर सभी प्रकार के करो से छट और टरिफ सुधार ह।

विदेशी विनियोग के विकास आर रोजगार प्रभाव निश्चय ही आयात की तुलना मे कहीं अधिक लाभदायक ह और जिन क्षेत्रो म आयात मे प्रभावी रूप से उदारता नाया गयी है उनमे विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग के "दार प्रवेश का इजाजत दी जाना

चाहिए। किन्तु एकाधिकार एव प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार कानून मे सशोधन किया जाना चाहिए ताकि स्वामित्वहरण (Takes overs) और समामेलन (Mergers) द्वारा प्रतियोगिता में कटौती रोकी जा सके।

3 सार्वजनिक क्षेत्र की योजना ससाधन और आबटन

(Public Sector Plan S Resources and Allocations)

नौवों योजना के दोरान 1996 97 की कीमतो पर सार्वजनिक क्षेत्र परिव्यय 8 75 000 करोड रुपये आका गया है। वास्तविक रूप मे यह आठवीं योजना के लिए 4 34 100 करोड़ रुपये के परिव्यय से 35 7 प्रतिशत अधिक है।

नौवीं योजना के लिए वित्त प्रबन्ध

सावजनिक क्षेत्र के लिए कुल परिव्यय 8 75 000 करोड रुपये मे से केन्द्र का भाग 5 08 071 करोड रुपये है और *राज्यो का भाग 3 66 979 करोड रुपये है। केन्द्र के द्वारा जुटाए* जाने वाले 6 75 176 करोड रुपये के ससाधनो मे

तालिका 8 नौवीं योजना के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र परिव्यय का समग्र वित्त प्रबन्ध ढांचा

1996 97 की कीमतों पर करोड रुपये

	केन्द्र	राज्य	कल
1 चालू राजस्व से अधिशेष	94_14	31 453	1_5 667
	(14 0)	(15 7)	(14 4)
सार्वजनिक उद्यमों के संसाधन	3 01 1_6	55 030	3,56,156
	(44 6)	(7.5)	(40 7)
3 उधार (जिसमें विविध पूजा प्राप्तिया एव अन्य देयतार शामिल हैं)	2,19 768	1 13,391	3,33 159
	(32.6)	(56.7)	(38 1)
4. विदेशो से शुद्ध अन्तर्वाह	60 018	—	60 018
	(8 9)		(8 9)
5 न्यून वित्त प्रबन्ध	0	—	0
6. कुल संसाधन	6 75 1_6	1 99 874	8 75 000
	100 0)	(100 0)	(100 0)
7 राज्यो का योजनाओ के लिए सहायता	*1 67 105*	*1 67 105*	0
8 सार्वजनिक क्षेत्र योजना के लिए ससाधन	5 08 1	3 66 979	8 75 000
	(58 31)	(41 9)	(100 0)

स्रोत योजना आयोग नौवीं पचवर्षीय योजना (1997 2002)

केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्र क उद्यमो द्वारा आन्तरिक और गैर बजटीय स्रोतो से 3 01 176 करोड रुपये उपलब्ध कराए जाएगा केन्द्र के शेष बजटीय ससाधन 3 74 000 करोड़ रुपये है इसमे स 1 67 105 करोड रुपये राज्यो की योजनाओ के लिए कैन्द्रीय सहायता के रूप म दिए जाएगी। इस प्रकार राज्यो की योजनाओ के लिए 45.5 प्रतिशत ससाधनो का हस्तातरण है जबकि यह आठवीं योजना मे 43 5 प्रतिशत था।

नौवीं योजना के वित्तीय ढाचे मे न्यून वित्त प्रबन्ध *जिसकी परिभाषा केन्द्र के मुद्रीकृत घाटे (Monetised deficit)* के रूप मे की गयी है की कोई व्यवस्था नहीं जोकि आठवीं योजना के दौरान केन्द्र के ससाधनो का 6 प्रतिशत था। केन्द्र के कुल उधार के रूप मे नौवीं योजना मे 32 6 प्रतिशत ससाधन जुटाने का लक्ष्य रखा गया है जोकि आठवीं योजना के 35 4 प्रतिशत स कम है। इस प्रकार, सकल राजकोषीय घाटा (Gross Fiscal Deficit) जो 1997 98 मे सकल देशीय उत्पाद का 5 प्रतिशत था, कम होकर योजना के अन्तिम वर्ष मे 3 5 प्रतिशत हो जाएगा।

नौवीं योजना मे राज्यो के वित्त प्रबन्ध की योजना में यह परिकल्पना की गयी है कि अतिरिक्त ससाधन जुटाने मे यह परिकल्पना की गयी है कि अतिरिक्त ससाधन जुटाने के लिए बजटीय उपायों के रूप मे और राज्य के उद्यमो मे सुधार सम्बन्धी उपायों के रूप मे भरसक प्रयास किया जाएगा भले ही राज्यो को प्राप्त होन वाला केन्द्रीय सहायता मे वृद्धि की गयी है।

ससाधनो को गतिमान करने की दृष्टि से केन्द्र, राज्यो एव सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो द्वारा बहुत से उपाय किए जाएंगे। इनमे मुख्य निम्नलिखित ह

केन्द्र के गैर योजना व्यय और कर एव कर भिन्न राजस्व के रूप मे वद्धि पर कडा अनुशासन लागू करना होगा। कर सकल देशीय उत्पाद अनुपात (Tax GDP Ratio) जो केन्द्र के लिए 1997 98 में 10.3 प्रतिशत था को बढाकर योजना के अन्तिम वर्ष तक 11 5 प्रतिशत करना होगा। किन्तु यचह स्तर 1989 90 में उपलब्ध 11.3 प्रतिशत के स्तर से थोडा ही ऊचा है। योजना काल के दौरान गैर योजना राजस्व व्यय मे सकल देशीय उत्पाद के रूप मे 10.3 प्रतिशत से घटकर 8 7 प्रतिशत तक पहुच जाने की सभावना है। इन प्रक्षेपणों (*Projections*) मे पाचवे वित्त आयोग की सिफारिशो के प्रभाव का भी ध्यान रखा गया है। ससाधन प्रक्षेपणो के परिणामस्वरूप सकल राजकोषीय घाटे मे कटौती के कारण ब्याज के रूप मे योजना के दौरान कम दायित्व सहन करना पडेगा।

नौवा योजना मे सार्वजनिक उद्यमो के आन्तरिक और गैर बजटाय साधना स 3 01 176 कराड रुपये प्राप्त करने की व्यवस्था है। इस कारण केन्द्र के सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमो

केवल 2 प्रतिशत था, परन्तु अल्परोजगार एव बेरोजगारी का समूचा प्रभाव उस वर्ष मे 10 प्रतिशत था। इसके लिए गृह-आधारित रोजगार को प्रोन्नत करने के लिए संस्थात्मक उपाय करने होंगे और यह कार्य विशेषकर ग्राम क्षेत्रो मे बढाना होगा ताकि रोजगार प्राप्त व्यक्तियो की आय बढाया जा सके और उच्च वद्धि दर वाले क्षेत्रो मे मजदूरी के सशोधन द्वारा इसको कम करने के दबाव घटाए जा सके।

नियमित मजदूरी रोजगार (Regular wage employ ment) के सिकुडने के साथ शिक्षित बेरोजगारों को स्वरोजगार के रूप म रोजगार अवसर ढढने पडते हैं और ऐसे अवसर अधिकतर अनौपचारिक क्षेत्र (Informal sector) मे पाए जाते हैं। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि अनौपचारिक क्षेत्र का विस्तार किया जाए, विशेषकर उच्च आय वाले स्थानो पर, जहा असगठित क्षेत्र मे आय स्तर काफी अच्छे रहने की सभावना है और जहा पहली पीढी के प्रवासी (Migrants) काम खोजते हैं और रोजगार प्राप्त करते हैं।

5 नौवी योजना की समीक्षा

चूंकि भारतीय जनता पार्टी के नेतत्व वाली सरकार नौवीं योजना को सशोधित करने पर विचार कर रही है इसलिए इसकी विस्तत समीक्षा करने की आवश्यकता नहीं। किन्तु इस योजना के निर्माण से सम्बन्धित दो कमजोरियो का उल्लेख करना रुचिकर होगा।

पहली नौवीं योजना का वित्तीय ढाचा बहुत ही कमजोर बुनियाद पर आधारित है और यह केन्द्र और राज्यो से ऐसी माग करता है जिसे पूरा करनेकी कोई सभावना नहीं विशेषकर देश मे वर्तमान अस्थिर राजनैतिक वातावरण म।

दूसरी यह योजना कीमत नीति के बारे म बिल्कुल खामोश है और इसमे कीमत नियत्रण के ढाचे की रूप रेखा तैयार ही नहीं की गयी जोकि सरकार क प्रशासनिक और अन्य व्यय मे विध्वसकारी वद्धि का मुख्य कारण है।

Attention: Readers

We request you for your frank assessment regarding some of the aspects of the book given as under:

08 013A भारतीय अर्थव्यवस्था

रुद्र दत्त और के० पी० एम० सुन्दरम उनतीसवां संस्करण 1998

Please fill up the given space in neat capital letters

(i) What topics of your syllabus that are important from your examination point of view are not covered in the book ?

(ii) What are the chapters wherein the treatment of the subject matter is not systematic or organised or updated?

(iii) Have you come across misprints/mistakes/factual inaccuracies in the book? *Please specify the chapters and the page numbers*

(iv) What other books on the same subject have you found/heard better than the present book? Please specify in terms of price and quality

(v) Further suggestions and comments for the improvement of the book.

(PS If need be please attach a separate sheet to write your views)

Other Details:

(i) Who recommended you the book? (Please tick in the box near the option relevant to you)
☐Teacher ☐Friends ☐ Bookseller

(ii) Name of the recommending teacher his designation and address

(iii) Name and address of the bookseller you purchased the book from

(iv) Name and address of your institution (Please mention the University or Board as the case may be)

(v) Your name and complete postal address

(vi) Course you are enrolled in

The best assessment will be awarded each month The award will be in the form of our publications as decided by the Editorial Board

Please mail the filled up coupon at your earliest to
The EDP Department (FB)
S CHAND & COMPANY LTD ,
Post Box No 5733 Ram Nagar New Delhi 110 055